Ishwar Ashram Trust
LIBRARY
ACC. No...
New Delhi

प्रकाशक :—

श्रीमन्नारायणस्वामीजी महाराज की आज्ञा से

अवैतनिक मन्त्री

गुरुमण्डल ग्रन्थमाला

५, क्लाइव रो,

कलकत्ता—१

मूल्यम् ३६) षट्त्रिंशत् रूप्यकाणि

मुद्रक :—

श्री विश्वनाथ सिंह

संस्थापक : प्राण आर्ट प्रेस,

३२, कैलाश बोस स्ट्रीट, कलकत्ता-६

GURUMANDAL SERIES NO. XXVIII

TRIPURA RAHASYAM

MAHATMYA KHANDAM

WITH

HINDI TRANSLATION

VOLUME I

5, CLIVE ROW
CALCUTTA-1

VIKRAM ERA
2027

FIRST EDITION
2000

A. D.
1970

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

प्रकाशकीयम्

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके सकलशब्दमयी किल ते तनूः ।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो मनसि रासु बहिःप्रसरासु च ॥

(महामहिममाहेश्वरोऽभिनवगुप्ताचार्यपादः)

विदितमेवैतत्तत्रभवतां सुधियां यदस्मिन्प्रवर्तमाने कलिकाले तन्त्रागमानां प्रसारमन्तरा न वैदिको न मिश्रो क्रियाकलापः सिद्धिपथमेति। अथैष त्रिपुरामाहात्म्यग्रन्थो माहात्म्यखण्डरूपः प्रथमांशो विदुषां करकमलेषु समुपहारीक्रियते भाषानुवादसहितः।

अस्य ग्रन्थस्य पठनादिदमेव ज्ञायते यत्परम्पराप्राप्तस्यावधूतसम्प्रदायस्य शक्त्युपबृंहणात्मकस्य मौलिमणिरयम्। अस्मिन् पथि पदं दधतां साधकानां सहृदयवराणां प्रथमं शास्त्रानुसार्यध्ययनं यदा पूर्णं जायते तदैवाऽद्वैतवादस्यातुलनीया सिद्धिः। भगवत्या अनादिसिद्धायास्त्रिपुरायाः जीवातुभूतः सर्वो ब्रह्माण्डप्रपञ्चः। शक्तिशिवात्मकविश्वप्रपञ्चस्य निमेषोन्मेषपरिणामरूपमेव सर्वं प्रापञ्चिकम्।

अत्र ब्रह्मणः समारभ्य नानामन्वन्तरानुगता चितिरूपायाः भगवत्याः कथा यादृग्वर्णनविच्छित्त्या स्फुटं प्रतिपादिता येन साधकस्य मनसि दैत्यरूपाज्ञानजनितवासनावासितान्तःकरणस्य प्राणिनो दैवीं तनुं प्रापणाय स्वान्तःस्थां हृदेवतां सर्वात्मभावेन ध्यात्वा तत्साक्षात्कारार्थं सर्वथा यतनीयम् येनाऽज्ञानजनितो मोहान्धकारः क्षयं यायात्। इतः परं बहु कथ्यं वर्तते। अग्रिमेषु भागेषु ग्रन्थस्यास्य चर्याखण्डोऽथच ज्ञानखण्ड इत्येतौ द्वावंशौ झटिति प्रकाशनाय पुरो विदुषां स्थापनाय च यतमाना वयं अद्ययावदनधिगतपरिचर्याखण्डास्तत्प्राप्त्यै निरन्तरं गवेषणाय बद्धपरिकराः स्म।

एष ग्रन्थस्त्रिपुराधीश्वर्याः सर्वशक्तीनामाश्रयीभूतायामाहात्म्यमनुरुद्ध्य प्रचलति। महर्षिरयं हारितायनो ग्रन्थमिमं चिकीर्षुः प्राक्तनजन्मसंस्कारवशाद्देव्याः पराम्बायाः स्वगुरोर्भार्गवरामसकाशान्मन्त्रदीक्षां प्राप्य सुश्लोकैरनुष्टुप्प्रभृतिभिस्समुपबृंहितं विधाय प्रकटयामास जगतो हितायाऽत्र न सन्देहस्थानम्। चितिसत्तयोरेकान्ताऽनुभव आजन्मनः प्राणिमात्रस्य। तत्रानन्दस्य परमप्रेमास्पदस्य साक्षात्कारो यथा स्यात्तदर्थं दुर्लभे मानवजनुषि शुभावसरज्ञइति त्रिपुरापदाभिमतार्थः।

अत्र क्रमशः सृष्टिविधौ त्रिदेवानां महेशितुः प्राकट्यमनु भगवत्याश्चितेरुत्कर्षप्रकर्षसूचकं सकलकार्यकलापजातं कामरूपस्य श्रीलक्ष्म्याः पुत्रस्य मर्त्यलोके समागमनमनु देवेन्द्रादीनां यादृङ्मत्सरः स्वपूजाविधौवुपेक्षाशीलानांमर्त्यलोकस्थलोकानां तद्वर्णनपुरःसरं कामविजयवर्णनं नानादिव्यविभूतीनां कात्यायनीप्रमुखानां चरित्रःसहितं नानाजन्मार्जितवासनावासितान्तःकरणस्य दैत्यराजस्याऽङ्गस्य त्रैलोक्यविजयादुद्धतस्य हुण्डस्य देवगणप्रतारणं तित्स्वर्गान्निष्कासनमथ च क्रमशः श्रीभगवतीकृपाकटाक्षेण तत्सहायकदेवीभिर्नानासेनापतिभिर्दैत्यगणपराजयवर्णनपुरःसरमज्ञानान्धकारपतितस्याऽपि स्वपूर्वभवार्जिततपःप्रभावाल्लक्ष्यगतिशीलस्य दैत्यस्य हुण्डस्य देवीसाक्षात्कारवर्णनं क्रान्तदर्शिनोऽस्य बुधराजस्य नितरां कृतिचमत्कृतिमादधाति। मध्येग्रन्थं नानास्तुतिबृंहितं देवीप्रशस्तिरूपं भागजातं परायाः सत्कीर्तिख्यापनाय भक्तजनानां नितराम्मोदमावहतीत्यहो प्रमोदास्पदमेतत्।

अस्य ग्रन्थकृतः परिचयस्तु केवलं दाक्षिणात्ये हालास्यनगरे मीनाक्षीमन्दिरे श्रीदेवीप्रसादं प्राप्य ततः स्वोत्कर्षप्रकर्षं ग्रन्थविस्ताराय जनयन्भगवतः परशुरामस्य कृपापात्रतां प्राप्य कवित्व सिद्धिं प्राप्त इत्यवधीयते। कस्मिन्समयेऽस्य जनिः कुत्रत्यञ्च

जनपदमेषोऽलञ्चकार तद् वंशवर्णनादिकं सर्वमैतिह्यगर्भितमिति बहुशोऽन्वेषणपरा अपि वयं न पारयामः किञ्चित्प्राप्त मिति निराशवादमेवावलम्बामहे।

अन्ते च भूतभावनमहेश्वर इव महामहिमश्रीमन्नारायणस्वामिपादाः सविशेषं स्मरणीया येषामनारतं प्रेरणया ग्रन्थरत्नमिदं प्राकाश्यं प्राप्य विद्वद्धौरेयकरकञ्जोपहारीभूतं सञ्जातम्। ऐषमः स्वामिपादा दुर्लभानां निगमागमग्रन्थानां मुद्रणाय सयत्नं परिकरंबद्ध्वा सँल्लग्ना इति विदुषाममन्दानन्दसन्दोहः स्यात्। गुरुमण्डलग्रन्थमालायाः पुराण-स्मृति-ग्रन्थानां प्रकाशनकर्मणि महनीयचरणा एते स्वामिपादाः सन्ततं प्रेरणादातारः। किमपि कृतकृत्यभावजातं मनसि विचिन्वानो वयं भगवतीं सर्वेश्वरीं सकलप्राणिजातस्य कल्याणाभ्युदयाय सादरं प्रार्थ्यमाना ग्रन्थस्यास्य मुद्रणे भाषानुवादविषयेऽथापि बन्धनादिकर्मणि भ्रमप्रमादापाटवादिकृतान्दोषाञ्छिरसि धार्यमाणाः सादरं साभ्यर्थनं सहृदयेभ्यो विद्वद्वृन्देभ्यः क्षमायाञ्चां कुर्म्मः। यदि स्तोकमपि स्थानं विद्वद्धौरेया विद्वांसो स्वान्तर्हृदि विलसिताया जगन्मातुः परदेवताया: स्तुतिकरणव्याजेन दास्यन्ति मन्यामहेऽस्मदीयः प्रकाशनश्रमः साफल्यमेष्यति।

ग्रन्थस्यास्य प्रकाशने कलिकातानगर्यां ३२, कैलासबोसवीथीस्थितस्य 'प्राण-आर्ट-प्रेस'-इत्याख्यप्रकाशनस्थानस्याधिपतिः श्रीमान् विश्वनाथसिंहो धन्यवादार्हो येन नूतनाक्षरप्रापणे भूरिश्रमेण कार्यं विधाय सर्वातिसुन्दरं कृतिप्रसारजातं ग्रन्थमुद्रणं विहितम्।

कृतेनानेन प्राकाश्यं नीतेन कर्मणा साम्बसदाशिवः प्रीयतामित्यलं जल्पितेन।

सतां पादसेवकस्य
प्रकाशकस्य
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता।

दत्तात्रेयजयन्ती मार्गशीर्ष शुक्ला १४, विक्रमसम्वत् २०२७।

श्रीललिताम्बा पातु

सम्पादकीय यत्किञ्चित्

सहृदयधुरीण विद्वद्वर्ग एवं तन्त्रों के अत्यन्त प्रेमी सद्गृहस्थवृन्द को "श्रीत्रिपुरारहस्यम्" का माहात्म्यखण्ड भाषानुवाद समेत सेवार्थ उपहारीकृत करते हुए हमें अमन्द आनन्द का अनुभव हो रहा है। इस ग्रन्थ की आवश्यकता इस रूप में अधिकाधिक अनुभूत हो रही थी कि दीर्घकाल से छपे संस्कृत के मूलग्रन्थ की वाराणसी मेंप्रकाशित प्रतियाँ दुर्लभ हो गयी थी। प्रकृतमनुसरामः तन्त्रमार्ग के दर्शनानुसार आजन्म ही प्राणीमात्र सुखानुभूति और दुःख क्षय के लिये प्रयत्नशील देखे जाते हैं। इनमें शनैः शनैः बाह्यरूप से सँल्लग्न भी रहते हैं परन्तु रजोगुण ओर तमोगुण के प्रभावसे "स्व" की परिच्छिन्नता में बंधे नित्य सर्वैश्वर्यसम्पन्न, सम्पूर्णतः पूर्णकाम, अपने आपे में ही नित्य शुद्ध, बुद्ध एवं मुक्त वृत्तिसम्पन्न, प्रशान्त, विमल, ज्योतिर्मय और सब के अन्तरात्मभूत महामहिम तत्त्व को भली प्रकार नहीं जान सकते।

इस विविधतापूर्ण वैचित्र्यों की सृष्टि में संसार के सुखोपभोग की ही प्राप्ति न्यूनाधिक रूप से सभी को इष्ट है; बाह्य दृष्टि से है भी वह ठीक। परन्तु जिनकी प्राप्ति ही दुःख से और अन्तिम परिणाम विषादमय तथा क्षणभंगुर हों वे वास्तविक सुख को पा लाने में क्षीणसामर्थ्य लौकिक साधन कहाँ तक क्षमता रखते हैं? यह प्रश्नवाचक चिह्न का विषय है। इस पर भारतीय महर्षियों ने ऊहापोहपूर्वक निम्नलिखित रूप से उपासना को ही एकमात्र इष्ट कहा है।

उपासना में "उप" = उपसर्ग और "आस" = धातु निवासे अ प्रवेशने दो शब्द आते हैं, इसके वरिवस्या, शुश्रूषा, परिचर्या पर्याय शब्द हैं। जिसका अभिप्राय है कि अपने इष्ट अथवा आराध्य देव तक पहुँचना। भक्त इस ऐकान्तिक साधना से अपने इष्टदेव की कृपाप्राप्ति के लिये दत्तचित्त होता है। सभी शास्त्र भक्ति को उपासना का प्राण मानते हैं जिससे योग की सिद्धि होकर "द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" (पातञ्जलयोग सूत्र) अपने स्वरूप का आत्मा का साक्षात्कार होता है। उपासना वस्तुतः तपस्या ही है।

"न हि मानुष्यात्परमस्ति किञ्चित्" मानव का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। इसमें दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और निरतिशय आनन्द की नित्य प्राप्ति होनी है जो परमात्मरूप में ही शक्य है।

प्रत्येक प्राणी परमार्थतः परमात्मरूप है परन्तु अज्ञान के कारण उस जीव को अपनी स्वरूपानुभूति नहीं होती। जीव ही शिव है इस ऐक्य अनुभव में अज्ञान ही बाधक है। इसे दूर करने का प्रत्येक मनुष्य देहधारी प्राणी का प्रथम कर्तव्य है; इसे निरसनकरने हेतु शास्त्रकारों ने कर्म, उपासना और ज्ञान ये तीन श्रेष्ठ साधन बताये हैं। शास्त्रों द्वारा आदिष्ट कर्म से चित्त शुद्ध होता है उस शुद्ध चित्त से उपासना में एकाग्रतया ध्यानस्थिति होती है और फिर ज्ञान के द्वारा परब्रह्म में स्वयं लीन हो आनन्दस्वरूप पा लेता है।

उपासन-प्रकार

उपासना दो प्रकारकी है। सकाम एवं निष्काम। वर्तमान काल में सकाम भाव से ही लोग ईश्वरीयोपासना में लगते हैं। पुराणों, तन्त्रों एवं शास्त्रीय प्रबन्धादि में दोनों साधनाओं का प्रयोग आता है। सकाम उपासना के साथ नैमित्तिकता का भी उल्लेख है। संध्यावन्दनादि नित्यकर्म हैं उन्हीं नित्य षट्कर्मों से गृहस्थ निहाल होता है परन्तु हैं ये निष्काम ही।

उपास्यदेव सूक्ष्म तत्त्व है, आधिभौतिक नाम रूप व कर्म का आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। आरम्भ में सगुण स्थूल मूर्ति में देवात्मभाव करने की आवश्यकता है; फिर शनैः शनैः देहबुद्धि क्षीण होने पर ब्रह्मात्म्यैक्यभाव की बुद्धि स्थिर होती जावेगी जो उपासना की चरम परिणति है।

अव्यक्त और व्यक्त दोनों ही उपासनायें शास्त्रों में प्रतिपादित हैं जिनसे निर्गुण निराकार परब्रह्म की उपासना की जाती है। परन्तु "क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्" (गीता १२-६) कह कर भगवान् श्रीकृष्ण ने अव्यक्तोपासना का मार्ग कठिन बताया है।

इष्टदेव की अर्चना, नाम, जप, गुणानुवाद, कीर्तन और उनका ध्यान उपासना में मुख्य है। शनैः शनैः सत्यपद का साक्षात्कार इसी राजमार्ग से होता जाता है।

नवविधभक्ति, तन्त्रोपचारी साधना, लोकभक्ति आदि प्रमुख उपासनायें हैं।

वैदिक काल से ही उपासना का प्राधान्य रहा है। गायत्री की उपासना एवं पुरश्चरणादि क्रियायें दिव्यरूप से सदैव से प्रचलित रही हैं।

मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियां स्वभाव से ही बहिर्मुख रहती हैं। आरम्भ में साधक को यह बहिर्मुखता बारम्बार मन को आराध्य में लगाने में बाधक होती है। इसलिये विषय-विषयी-भाव से एक मूर्ति के माध्यम से उस पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। जो अन्तर्यामी शक्तिरूप में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डल में व्याप्त है वह वैसी ही स्थिति में देह में भी 'यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे।" तब पिण्ड और ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत परन्तु माया के आच्छादन से उस प्रत्यक्तत्त्व का अपरोक्ष अनुभव होना कठिन है। इसलिये उपासना कर्म उस आराध्य को प्राप्त करने का अन्यतम उपाय है।

देहात्मवादी साधक प्रतीकोपासना द्वारा आत्मशक्ति और परमात्मशक्ति का नाना रूपों में प्रत्यक्ष अनुभव करता है। अपनी देहोपाधि में पड़ा जीव मन के द्वारा बाहर दीखनेवाले श्रेष्ठ, सुन्दर, सामर्थ्ययुक्त और शोभाप्रद पदार्थों का उपासन करता है; रम्य और दिव्य विषयों के प्रति आकर्षण करता है। पूज्यवर्ग के लिये श्रद्धा धारण करता है और ईश्वर की साकार एवं निराकार मूर्ति की भक्ति करता है। विश्व के नियामक, पालक और लयकर्त्ता ईश्वर की अचिन्त्य महिमावाली शक्तिका क्रमशः साक्षात्कार करता है। ब्रह्मात्म्यैक्य की अपरोक्षानुभूति करता है और परमेश्वर की सायुज्यता के साथ पूर्वोक्त अखण्ड आनन्द का अनभव करता है।

बहिरंग उपासना

बहिरङ्ग उपासना में 'सम्पत्' 'आरोप' 'सम्वर्ग' एवं 'अध्यास' इस प्रकार चार विधियाँ हैं।

अन्न प्राण मन आदि ही ब्रह्म है इस प्रकार की 'सम्पत्' भावना है।

उपास्य के प्रतीक पर इष्ट का आरोपकर उपासना 'आरोप' विधि है; देवी, शिव, विष्णु, राम एवं कृष्ण इनकी मूर्तिमें देवभावना और उनके महद्यश का गायन, ध्यान, कथा श्रवण एवं स्तवन इसका उपाय है।

कर्मकाण्ड द्वारा अनेकविध देवगण की एकमेव अग्नि में सविधि आहुतियाँ देकर उपासना 'सम्वर्ग' विधि है।

शालग्राम शिला में विष्णु और बाणलिङ्ग आदि में उपास्य का आरोप व देहाकार धारणा करनी 'अध्यास' विधि है।

इसमें नाना अल्प सिद्धियोंके विघ्नों के कारण साधन मार्ग में अन्तराय उपस्थित होता है। शनैः शनैः उपासक अपनी [illegible] रूप से चालू रक्खे तो उपास्य एवं उपासक का तादात्म्यभाव हो कर इष्टसिद्धि मिल जाती है।

अन्तरंग उपासना

बहिरङ्ग उपासना से अन्तरङ्ग उपासना श्रेष्ठ है, इसमें व्यक्त प्राकृतिक दृश्य में अधिष्ठानरूप उस अचिन्त्य अव्यक्त एवं अज्ञात अपरिच्छिन्न तत्त्व का चिन्तन, मनन और निदिध्यासन इष्ट है, इस विधि में ध्यानशक्ति के द्वारा ध्याता-ध्येय, विषय-विषयी अथवा शक्ति एवं शिव इनका द्वैत व अन्तर शनैः शनैः मिटता जाता है ; परिणामस्वरूप ध्याता, ध्यान तथा ध्येय इनकी त्रिपुटी से शुद्ध निर्विशेष, अण्डानन्दमय ज्ञान की स्फूर्ति अखण्ड रूप से होती है उससे ब्रह्मात्म्यैक्यभाव का साक्षात्कार होता है।

मनुष्यों के सत्व, रज और तमोगुणमूलकप्रकृतियों के होने से प्रत्येक का आहार, व्यवहार और उपासना भी भिन्न प्रकार की है। अतः अधिकारीभेद से उत्तम, मध्यम और अधम इस प्रकार त्रिविध उपासनायें देखी जाती हैं।

यह तो पूर्व भी कहा जा चुका है कि अपनी अपनी शक्ति के अनुसार श्रेयः साधन और अनित्य भोगसुख की प्राप्ति के लिके अज्ञानजनित मायामोह में फँसे अज्ञ जन भी नियत अभिलाषी रहते हैं परन्तु यह लौकिक अभिलाषा घटघट वासी चिति सत्ता एवं आनन्द से सब ओर से परिपूर्ण अन्तरात्म रूप भगवान् परमेश्वर में एकान्त प्रीति अनुभव करने की ओर लगायी जाय तो हमारी बहुत बड़ी सफलता होगी। हन्त ! लोगों को अपने मायाविभ्रम में जकड़नेवाली एवं आत्मा के गुणों को आच्छादनकरनेवाली अविद्या के कारण सर्वथा एकान्ततः सुखदात्री, त्रिविध तापों का नाशकरनेवाली पारमेश्वरी प्रीति का लाभ सुसाध्य कैसे हो ? इसके लिये सम्पूर्ण शास्त्रों ने सर्वथा एक ही निष्कर्ष निकाला कि आत्मज्ञान को लोपनेवाली, मलिनसत्व गुणयुक्त और रजोगुण तथा तमोगुणप्रधाना अविद्या के परिहार के लिये उपासना की जाय।

जो इस विश्व ब्रह्माण्ड के अणु-अणु में सब स्थावर-जङ्गम भूतमात्र में सर्वत्र सर्वदा ओतप्रोत रूप से अन्तर्बहिः विराजमान है उस सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी के स्वरूपभाव को प्राप्त होने को जबतक साधक धारणा ध्यान को पाकर अपने हृदय में मनःस्थैर्य न लेआवे तबतक मूर्त्त श्रीविग्रहों की उपासना कर्तव्यत्वेन बतायी गयी है।

शास्त्रों में अपने इष्टदेव उस चिन्मय, अप्रमेय, निर्गुण, अशरीरी, कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ परम सत्ता की साधकों के हित के लिये ही रूपकल्पना है। कर्मकाण्डनिरत विद्वान् अरूपवाले उस महामहिम की पूजा रूपीविग्रह (रूपात्मक शरीर) में करते है तथा ब्रह्मज्ञान के अमृतानन्द में पगे उच्च साधनयुक्त लोग आलम्बनात्मक ध्यान में ही उपासना करते हैं। (कुलार्णव तन्त्र षष्ठ उल्लास) वहीं पर नवमउल्लास में बताया है कि

अग्नौ तिष्ठति विप्राणां हृदि देवो मनीषिणाम् ।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम् ॥

विप्रगण के लिये वैदिकविधि से स्थापित अग्नि में, मनीषियों के हृदय में, मन्दबुद्धिवाले व्यक्तियों के लिये प्रतिमाओं में तथा आत्मतत्वज्ञ महानुभावों के लिये सर्वत्र अकुण्ठ भावसे वे देवाधिदेव स्थित [श्रीमद्भागवत ११ स्कं० २०/६] हैं। "तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता। मत्कथाश्रवणादौ च श्रद्धा यावन्न जायते।" अन्ततः सुकर्म द्वारा उपासना का क्रम तब तक चलाते रखना आवश्यक है जब तक साधना करते करते क्षणभंगुर सांसारिक भोग, धन, पुत्र कलत्रादि में निर्वेद भाव न प्राप्त हो जाय और भागवती कथाओं, सत्पुरुषों के आख्यानों व गुरुजनों में दृढ श्रद्धा आदि का अखण्ड प्रवाह न बहने लगे। इस महाविशाल संसारसागर के उत्तरण हेतु शास्त्रों में वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र इन तीन उपासना-पद्धतियों का निरूपण किया गया है। उन में मन्द, मध्यम एवं उत्तम अधिकारियों के भेद के अनुसार ही व्यवस्था है परन्तु बहिर्मुखी वृत्ति के आधुनिक व्यक्तियों के लिये शनैः शनैः शास्त्र के उद्दिष्ट मार्ग पर चलने से जीवन सुकर होनेपर नित्यज्ञानानन्दमय उस अखण्ड चेतन सत्ता का साक्षात्कार अवश्य होता है, यह ध्रुव सत्य है।

इस उपासना के विषय को लेकर सम्पूर्ण त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड द्वारा प्रतिपाद्य विषय का यथाविधि निरूपण किया गया है। तन्त्र शास्त्रमें वेदाम्बुधि के समान ही अलङ्घ्य एवं सब ओर से पारिभाषिक शब्दों की विच्छित्ति से परिपूर्ण अलौकिक तत्त्व को प्राप्ति का सुगम सरस और मानुष्यप्रयत्नसाध्य विधियों का समवेत प्रयत्न दिया हुआ है। इनका मूल वेदों में प्रतिपादित निदानविद्या है; जिसका भलीप्रकार गुरुमुख से ज्ञान हो जाने से अत्यन्त निर्मल शुद्ध सद्विद्या की प्राप्ति होती है। इस शास्त्र में जो बीज रूप से वेदों में प्रतिपाद्य अभिध्येय लक्ष्य है उसे अत्यन्त विस्तार से समझाया गया है।

वदिक साधना एवं तन्त्रागम साधना की एकरूपता

'तनु विस्तारे' धातुसे निष्पन्न जिसके माध्यम से अध्यात्मज्ञान एवं तत्वज्ञानपूर्वक आत्मप्राप्ति का विस्तार किया जाय वही "तन्त्र" शास्त्र है।

"तनोतिविपुलानर्थान् तत्त्वमन्त्रसमन्वितान्। त्राणं च कुरुते यस्मात्तन्त्रमित्यभिधीयते॥

यतः तत्त्व (परोक्षसत्ता) के साक्षत्कारार्थ मनन त्राण धर्मवाले अलौकिक विधिविधानों के सहित विपुल परमार्थ साधनों का विस्तार करता है और जिस में निरूपित साधना द्वारा साधक का त्राण करता है इसी कारण से 'तन्त्र' कहलाता है।

संक्षेप में, देवता के रूप, गुण एवं कर्मादिके चिन्तन, मनन अथच देवताविषयक मन्त्र का उपदेश, यन्त्र के द्वारा उसकी संयोजना, उसका पटल, पद्धति, कवच, सहस्रनाम एवं स्तोत्र इस पंचांग उपासना का जिसमें विधिपूर्वक वर्णन हो वह तन्त्र नाम से अभिहित है। वैसे आर्षशास्त्र, सिद्धान्त, अनुष्ठान और विज्ञान इस व्यापक अर्थ में भी यह प्रयुक्त होता है। वेदसम्मत मार्ग ही तन्त्र का प्रतिपाद्य है। "आगम" भी तन्त्र की एक संज्ञा है। आरम्भ में वेदोदित वाणी ही आगम संज्ञा से युक्त थी बाद में तन्त्रों के अर्थ में इसे अन्वर्थ नाम प्राप्त हुआ।

आगम के निर्वचन के लिये तत्त्ववैशारदी में बताया है—"आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति यस्माद् अभ्युदय-निःश्रेय-सोपायाः स आगमः।" अभ्युदय एवं निःश्रेयस के उपाय जिस के द्वारा बुद्धि में आरोहण करें वह आगम है।

और भी, "आगतं पञ्चवक्त्रात्तु गतञ्च गिरिजानने। मतञ्च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते।" भगवान् महेश्वर के स्वमुख से आविर्भूत और भगवती को सुनाये गये तथा वासुदेव भगवान् को जो अभिमत शास्त्र है वह आगम है।

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनम्। साधनं चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च॥
षट्कर्मसाधनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः। सप्तभिर्लक्षणैर्युक्तं आगमं तद्विदुर्बुधाः॥

विद्वान् लोग सृष्टिक्रम, प्रलयक्रम, देवतार्चन, सर्वसाधन, पुरश्चरण, षट्कर्म-साधन (शान्ति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन एवं मारण) व चतुर्विध ध्यानयोग इन सात लक्षणों से युक्त शास्त्र को "आगम" कहते हैं।

अतः कलिकाल के इस ईतिभीतियुक्त सन्दिहान वातावरण में संशय को छेदन करनेवाले और साधनों की दुरूहता में भी राजमार्ग की व्यवस्था करनेवाले आगमशास्त्र ये 'तन्त्र' ही आध्यात्मिक सफलता के मार्गप्रदर्शक हैं।

"कलावागममुल्लङ्घ्य योऽन्यमार्गं प्रवर्तते।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्यं न संशयः॥"

"कलावागमसम्मतः" के अनुसार कलि में आगमशास्त्र ही एकमात्र सिद्धिप्रद है। निःसन्देह इस शास्त्र में प्रतिपादित साधनसंस्कारों द्वारा शुद्धसंकल्पपूर्वक जीवनसत्ता को स्फुरण करानेवाली आत्मविषयक प्रत्यभिज्ञा उत्तरोत्तर वृद्धिगत एवं बद्धमूल होती है।

षट्चक्रनिरूपण

शारदातिलक में—

पिण्डं भवेत्कुण्डलिनी शिवात्मा पदं नु हंसः सकलान्तरात्मा। पदं भवेद्बिन्दुरमन्दकान्ति ह्यतीतरूपं शिवसामरस्यम्॥
पिण्डादियोगं शिवसामरस्यात् सबीजयोगं प्रवदन्ति सन्तः। शिवे लयं नित्यगुणाभियुक्ते निर्बीजयोगं फलनिर्व्यपेक्षम्॥

अर्थात् अ + उ + म् स्वरूपात्मक ॐ प्रणव पिण्डरूप, कुण्डलिनी शक्ति तद्रूपा और उसीके कारण वही शिवात्मा तथा सकल चराचरके अंतरात्मरूप हंस श्वासोच्छ्वास उसका स्थान व बिन्दु से इस ओर ज्योति का विकास (रूप) होता है। शिवा एवं शिव के सामरस्य (एकीभाव) रूपातीत (चिन्मय भाव) इस प्रसङ्ग में शरीर की अन्तर्ज्योति की सदा चार अवस्थाओं का वर्णन है।

पिण्डे युक्ताः पदे युक्ताः रूपे युक्ता षड़ानन। रूपातीते तु ये युक्तास्ते मुक्ता नात्र संशयः॥ अर्थात् हे षडानन पिण्ड में युक्त, पद में युक्त, रूप में युक्त सभी ही सिद्धि की ओर उन्मुख है आगे जो रूपातीत तत्त्व में परायण हैं वे ही युक्त हैं, इसमें कोई संशय नहीं। ये चारों अवस्थायें हम सर्वसाधारण जनों के व्यावहारिक ज्ञान से अतीत हैं। अणोरणीयान्महतोमहीयान् इस अन्तरंग साधना के अधिकारी भी कहाँ ?

पिण्डं कुण्डलिनी शक्तिः पदं हंसः प्रकीर्तितः। रूपंबिन्दुरिति ख्यातं रूपातीतं तु चिन्मयः॥

अर्थात् पिण्ड कहते हैं कुण्डलिनी शक्ति को ; पद हंस प्रकीर्तित है, रूप बिन्दु इस नाम से प्रसिद्ध है और रूपातीत चिन्मय की संज्ञा है।

सच्छास्त्र, सद्गुरु, एवं सदुपदेशयोग्य सच्छिष्य इनका योग बनने पर परमानन्दप्रद शिवसामरस्य का अपूर्व अनुभव हो सकता है।

शारीरिक रचना में बाह्य दृष्टि से जो चर्म, अस्थि, मज्जा, वसा, मांस, नाडीजाल, तथा रुधिर का एक सौहित्य-भाव से जीव गति में प्राणवाहिका गति होती है उसके मूल में चैतन्य के अधिष्ठान आत्मा की प्रतिक्षण प्रधानता रहती है। सर्व-साधारण लोगों के अतिरिक्त योगीगण जिस अमृतीकरण का साक्षात्कार करते हैं व त्रिगुणमयी चन्द्र-सूर्याग्निरूप सुषम्णा मूल कन्द से आकर शिरोप्रदेश तक लम्बमान स्थित है और मेरुदण्ड के बहिर्देश में इडा और पिङ्गला नामक दो नाडियां चलती हैं। सुषुम्णा के अन्दर मेढ्रदेश (जो प्रजापति स्थान है) होकर शिरोभागपर्यन्त फैली हुई जो दीप्तिशालिनी नाडी है उसे वज्रा या वज्रिणी नाडी कहते हैं। उस में चित्रिणी नामवाली एक और नाडी है जिसका अनुभव योगीलोगों को योगाभ्यास एवं गुरूपदेश से होता है। आज्ञाचक्र में स्थित प्रणव की ज्योति से यह चित्रिणी सदा प्रदीप्त रहती है जो मकड़ी के जाल के सूत्र के समान सूक्ष्म तथा शुद्धबोधरूपा है। सम्पूर्ण चक्र वा मार्ग इस नाडी से गूथे हुए हैं इस नाडी के अन्तर्विवर (छिद्र) को "ब्रह्म-नाडी" नाम से पुकारा जाता है ; इसी नाडी के गर्भ से कुण्डलिनी अपने पति के निकट आती जाती रहती है। यह ब्रह्म-नाडी बिजली की संलग्न चकाचौंधों के समान अति ज्योतिर्मयी और ब्रह्मज्ञान-प्रदायिका है। उसका नीचेकी ओर गुद-चक्र से लगा अधोमुख रहता है यह सुषुम्णा का ग्रन्थि-स्थान अथवा मुख है।

षट्चक्र में सम्पूर्ण देवों व शक्तियों का सङ्घट्ट समाया हुआ है; सर्व प्रथम यह जानलेना आवश्यक है कि मूलाधार पृथिवीतत्त्व और गंधतन्मात्रा का स्थान है अतः यह अतिस्थूल है ; उसके उपरिस्थित स्वाधिष्ठान जलतत्त्व और रसतन्मात्रा का स्थान है जो पृथिवीतत्त्व से अपेक्षाकृत सूक्ष्म है। उसके उपरि भाग में मणिपूरचक्र अग्नितत्त्व एवं रूपतन्मात्रा का स्थान है, उसके उपरितन भाग में अनाहत वायु तत्त्व एवं स्पर्शतन्मात्रा का स्थान है एवं कण्ठदेशस्थित विशुद्ध चक्र आकाशतत्त्व एवं शब्द तन्मात्रा का स्थान है। ये उत्तरोत्तर स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होते जाते हैं और स्थूल तत्त्व का लय सूक्ष्मतत्त्व में अजस्र होता रहता है। सुतराम् पृथिवीतत्त्व का लय जलतत्त्व में; जलतत्त्व का लय अग्नितत्त्व में ; अग्नितत्त्व का लय वायु में और वायुतत्त्व का लय आकाशतत्त्व में होता जाता है।

आधारचक्र

यह "मूलाधार" नाम से अभिहित है। रक्त (लाल) वर्ण, व, श, ष, स, स्वर्ण की कान्ति के सदृश इन चारों वर्णों से युक्त चार दलों वाला उनकी कर्णिकाओं का चतुष्कोण धरामण्डल है। यह पीतवर्ण आठ दलों से घिरा हुआ है इसी पृथ्वी मण्डल के बीच के नीचे के भाग में 'धरा-बीज' है। यहाँ चतुर्भुज ऐरावत पर आरूढ़ पीतवर्ण और वज्र हाथ में लिये धराबीज के बिन्दु के मध्य शिशुरूप ब्रह्मा है। यह रक्तवर्ण, चतुर्भुज व दण्ड, कमण्डलु अक्षसूत्र और अभय अपनी भुजाओं में धारण किये हुए हैं तथा चतुर्मुख है। उसकी कर्णिकाओं में स्थित रक्तपद्म के ऊपर चक्राधिष्ठात्री देवी 'डाकिनी' शक्ति है जो रक्तवर्ण, चतुर्भुजशूल, खट्वांग ; खड्ग और चषकधारिणी है। कर्णिका के मध्य में विद्युत् के आकारका त्रिकोण है। इस त्रिकोण के मध्य में रक्तवर्ण कामवायु और कामबीज स्थित है उसके ऊपर श्यामवर्ण स्वयम्भू लिङ्ग है जिसके ऊपर साढेतीन चक्र (वलय) वाली कुण्डलिनी (अबला) है उसके ऊपर लिङ्ग के अग्र भाग में चित्कला है जो दण्डाकार रूप से स्थित है।

स्वाधिष्ठानचक्र

स्वाधिष्ठान चक्र सिन्दूर वर्ण का षट्दल है। इस षट्दल में तडिद्वर्ण और बिन्दुयुक्त ब, भ, म, य, र, ल, ये, छै वर्ण हैं। इस की कर्णिकाओं के मध्य स्थान में अर्धचन्द्रयुक्त अष्टदल पद्माकार शुक्ल वर्ण अम्भोज मण्डल है उस में "वं" यह वरुण बीज है यह बीज मकराधिरूढ एवं पाशहस्त वाला है। उसकी गोद में गरुडके ऊपर आसीन विष्णु है जो चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा तथा पद्मधारी, पीताम्बर वनमाला और श्रीवत्स कौस्तुभधारी अति युवा है। पद्मकर्णिका से लगे रक्तपद्म के ऊपर राकिणी शक्ति विराजमान है, जो श्याम वर्ण चतुर्भुज शूल, पद्म, डमरू और खट्वाङ्ग को धारणकी हुई है कुटिल दाढोंवाली, भयंकरी, शुक्ल (श्वेत) अन्न और रक्तधाराभिलाषिणी है।

मणिपूरकचक्र

नाभिस्थित पद्म का नाम मणिपूरक चक्र है; जो दशदलवाला है। इस की सारी पंखुडियाँ (दल) नीलवर्ण वाली हैं और बिन्दुसहित ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, इन दशवर्णों से युक्त है। उस की अपनी कर्णिकायें त्रिकोणाकार है। त्रिकोण के बहिर्भाग में स्वस्तिकयुक्त रक्तवर्ण का वह्निमण्डल है, उसके मध्य में 'रं' यह वह्नि बीज है जो रक्तवर्ण, मेंढे पर आरूढ़, चतुर्भुज, वज्र, शक्ति, वर और अभय मुद्रा धारण किये हुए है। उसके क्रोडप्रदेश में रुद्र है जो वृषारूढ रक्तवर्ण द्विभुज वर एवं अभयधारी, भस्मलेपन किये (रमाये) शुभ्रवस्त्र से शुक्लीकृतदेह वाला और वृद्ध है। पद्मकर्णिका के रक्त पद्म

के ऊपर "लाकिनी" शक्ति का आसन है जो नीलवर्ण, चतुर्वक्त्रा (चारमुँहवाली) चतुर्भुजावाली हाथों में वज्र, शक्ति, अभय, एवं वरधारिणी घोर दंष्ट्रावाली रक्तयुक्त खेचरान्न एवं मांसाभिलाषिणी है।

अनाहतचक्र

हृदयकमल का नाम अनाहत चक्र है। इस पद्म का बन्धूक पुष्पका सा रंग है जिसमें सिन्दूर की आभावाले बिन्दु से संयुक्त क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, इन द्वादश वर्णोंवाले द्वादश दल रहते हैं। उसकी कर्णिकाओं में षट्कोण धूम्रवर्ण का वायुमण्डल है। उसके ऊपर सूर्यमण्डल का स्थान है उसके मध्य में विद्युत्कोटिसदृशदीप्त त्रिकोण है। उसके ऊपर वायुबीज है। जो कृष्णसार मृगाधिरुढ. धूमधूम्र वर्ण, चतुर्भुज अङ्कुश हस्त है। उसके उपरिक्रोडस्थान में हंस की आभा वाला ईश्वर है। इसके द्विभुज है और उनमें वर तथा अभय धारे हुए त्रिनयन हैं। इस कर्णिका के रक्तपद्म के ऊपर "काकिनी" शक्ति उपविष्ट है जो नीलवर्ण, चतुर्भुजा, पाश, कपाल वराभयहस्ता पीतवस्त्रधारिणी, सर्वाभरणभूषिता, सुधार्द्रहृदया, कंकालों की माला धारिणी है। इसके मध्य त्रिकोण में वाणलिङ्ग शिव अधिष्ठित है, जो अर्द्धचन्द्र बिन्दुरूप मस्तकवाला, स्वर्ण रंग वाला कामोद्गम में उल्लासित है। उसके अधोदेश में स्थिरदीपकलिका के आकारवाला हंसरूपी जीवात्मा है इस कर्णिका के अधोभाग में रक्तवर्ण ऊर्ध्वमुख अष्टदल पद्म है तथा कल्पतरु रत्नवेदी जो चन्द्रातप पताकादि से सुशोभित मानसपूजा का स्थान है।

विशुद्धचक्र

कण्ठमूल में विशुद्धचक्र का स्थान है। यह चक्र धूमधूम्रवर्ण अतिशय केसर, रक्तवर्णवाला है। बिन्दु संयुक्त अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः, इन षोडश वर्ण से युक्त षोडश दल का है। कर्णिकाओं से ऊपर वृत्तरूप में गोलाकार शुक्ल वर्ण नभोमण्डल है। उसके मध्य भाग में त्रिकोण है जहाँ चन्द्रमण्डल का स्थान है। उसके ऊपर "हं" यह नभोबीज है जो शुक्ल वर्ण का शुक्ल वस्त्र परिधान पहने शुक्लगजाधिरूढ चतुर्भुज पाश, अंकुश, वर और अभय धारी है उसके क्रोडप्रदेश में वृष पर रक्खे महासिंहासन पर आसीन सदाशिव है यह अर्द्धनारीश्वररूपवाला है जिसका अर्द्ध अंग, स्वर्णवर्ण का एवं अर्ध अंग शुक्ल वर्ण का है। यह पंचमुखी तीन नेत्रधारी, दशभुजायुक्त शूल, टङ्क (कुदाल) खड्ग, वज्र, दहन, नागेन्द्र, घण्टा, अंकुश, पाश, त्रिशूल धारी, व्याघ्रचर्म पहने नाग का हार धारे अमृत का धारा छोड़ते हुए अधोमुख अर्ध चन्द्रशेखर हैं। इस कर्णिका के चन्द्रमण्डलके मध्य में "शाकिनी" शक्ति है जो शुक्लवर्ण चतुर्भुजा, पाश, अंकुश, धनुष और बाण लिये पीतवस्त्रा पांच मुँहवाली तथा त्रिनयना है।

आज्ञाचक्र

दोनों भौंहों के मध्य में आज्ञाचक्र की स्थिति है जो शुक्लवर्ण कर्प्पूर रंगवाला है एवं "हं" इन दो वर्णों से युक्त द्विदलयुक्त है। इसकी कर्णिकाओं में चक्राधिष्ठात्री "हाकिनी" शक्ति है जो शुक्लवर्ण रक्तवर्ण षड्वक्त्रा ; तीन नेत्रवाली षड् भुजा वर अभय, अक्षमाला कपाल डमरू और पुस्तक धारिणी तथा श्वेतपद्मके ऊपर आसनासीन है। उसके ऊपर त्रिकोण में इतर लिङ्ग है जो शुक्ल वर्ण विद्युदाकार है उसके ऊपर त्रिकोण में प्रणव के आकारवाला अन्तरात्मा स्थित है। इसकी ज्योति प्रदीप की आकृतिवत् है। उसके चतुर्दिक् अन्तरिक्ष में ज्योति का जो स्फुल्लिङ्ग विश्व है उससे वेष्टित है। इसो की प्रज्वलित दीपसदृश ज्योति द्वारा मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक सारा षट्चक्रमण्डल प्रकाशमय बनता है। इसो की सूक्ष्मस्वरूप मन है। उसके ऊर्ध्व भाग में चन्द्रमण्डल में हंस की गोद में शक्तिसहित परमशिव विराजमान है।

सहस्रारचक्र

सुषुम्ना नाडी के ऊर्ध्वभाग में सहस्रदल कमल है जो शुक्ल वर्ण अधोमुख, रक्तमकरन्द से शोभित, सुश्वेत रंगों के अकार से लेकर क्षकार तक के पचास वर्णों द्वारा बीस आवरण में सहस्रसंख्यक वर्णों से युक्त सहस्र दल है। इस की कर्णिका में हंस एवं उसके ऊपर परमशिवरूप गुरु है। उसके ऊपर सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डल और उससे आगे महावायु का स्थान है। उसके बाद ब्रह्मरन्ध्र का प्रदेश है। उसके अनन्तर चन्द्रमण्डल में विद्युदाकृतिवाली त्रिकोणात्मिका महाशंखिनी है। उसी में कमल के तन्तु के सौवें भाग के अन्यतम भाग के सदृश सूक्ष्म रक्तवर्णवाली अधोमुखी चन्द्र की षोडशी "अमा" कला है उसके अन्तर में बालाग्र के हजार भागों के एक अंश के समान सूक्ष्म रक्तवर्ण की अधोमुखी निर्वाण कला है। उसके अधोभाग में अव्यक्त नादरूपवाली निरोधिका नामक वह्नि है।

उसके ऊपर निर्वाण कला के क्रोड में शिवशक्तिरूप परं बिन्दु है। इसी पर बिन्दु के केशाग्र कोटि विभाग के अन्यतम अंशरूप से सूक्ष्म तेजोंऽसरूपा निर्वाणशक्ति है। इस शक्ति का जीव हंस है बिन्दु के मध्यस्थित शून्य ब्रह्मपद है। (साधारणतः सभी तन्त्रों के अनुसार)

अन्यान्य तन्त्रों के अनुसार सहस्रदल कमल की कर्णिका के मध्य में चन्द्रमण्डल में अकथादि त्रिकोण है उसके मध्य के समीप त्रिबिन्दु है इस त्रिबिन्दु का अधोबिन्दु हकार पुरुषात्मक तथा ऊर्ध्व बिन्दु द्वयरूप विसर्ग प्रकृतिरूप सकार है। यही पुं-प्रकृत्यात्मक हंस त्रिबिन्दु रूप में प्रकाशित है उसके मध्य में अमा कला व अमा कला की गोद में निर्वाणशक्ति और उसके मध्य में शून्य परब्रह्म है। [आगमकल्पद्रुमपञ्चशाखामतानुसार]

शब्दोत्पत्ति का मूल-नाद

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात्परमेश्वरात्। आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्बिन्दुसमुद्भवः॥

शारदातिलक १।६

सत् स्वरूप परम शिव से तथा चिदानन्द स्वरूपा उनकी शक्ति से सकल ब्रह्मरूप द्वारा सृष्टि का विकास होता है उससे नाद और नाद से बिन्दु का विकास होता है। बिन्दु यहाँ शक्ति अथ च चैतन्य का एक स्वरूपबोधक शब्द है जहां प्रकाश और अप्रकाश दोनों सम्मिलित हैं। जिस प्रकार मक्खन का घी करने के लिये दूध घनीभूत होता है उसी प्रकार सृष्टि रचने की इच्छा से शक्ति की घनीभूत अवस्था बिन्दु रूप में प्रगट होती है। सूक्ष्म से स्थूल में यह शक्ति नाद के द्वारा प्रकट होती है। विद्यमानात्परादूबिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्। शारदातिलक १।११

शब्दार्थ भेद से दो प्रकार की सृष्टि है, अर्थ का सर्जन शब्द के कारण ही है।

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥ (भर्तृहरिवाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड।)

प्रलयकाल में समस्त विश्वप्रपञ्च कालवश शब्दब्रह्म में लीन और सृष्टिकाल में पुनः प्रकट होता है।

सच्चिदानन्द विभव शिव की विमर्श शक्ति सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा से बिन्दुरूप में प्रगट होती है। इस बिन्दुभाव में प्रपञ्च तथा ज्ञान ज्ञातृ-ज्ञेयभाव वटबीज में जैसे वृक्ष अन्तर्निहित रहता है उसी प्रकार सूक्ष्मभाव से लीन रहता है। बाद में अन्तर्लीन जगत् को व्यक्त करने की इच्छा से ही वह महाबिन्दु त्रिकोणरूप में परिणमन हो जाता है।

जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के प्रतीक हैं यही बिन्दु से आगे विकार को प्राप्त हुआ काम कला का त्रिकोण है यही सूर्य चन्द्राग्नि स्वरूप है यही ज्येष्ठा, वामा और रौद्री है यही इच्छा, क्रिया तथा ज्ञानरूपा है। बिन्दु से तत्त्व विकसित होतेहैं।

प्रकृति पुरुषात्मक या शिवशक्ति स्वरूप से जगत् का विकास है।

इस प्रकार अव्यक्त (मूल प्रकृति), ईश्वर, हिरण्यगर्भ तथा विराट् ये आधिदैविकरूप से भावित हैं। कामगिरि, पूर्णगिरि, जालन्धर और ओड्यान की अर्चना से निदर्शित अधिभूतभाव है। कुलकौलिनी कुण्डलिनी इनका आध्यात्मिक भाव है। तन्त्र का मुख्य लक्ष्य ही कुण्डलिनी ज्ञान है।

बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवः शब्दात्मकोऽभवत्। स एव श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति गीयते॥

कारणभूतापराक् =बिन्दु पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के कार्य बिन्दुओं की सृष्टि में प्रवृत्त हुआ तो अव्यक्त कारण "रव" शब्दात्मक हुआ यही "शब्द-ब्रह्म" नाम से श्रुतिनिपुण विद्वानों द्वारा गाया (कहा) जाता है। जब यह अव्यक्त परा शब्द विभक्त हुआ तब "रव" बना। वह प्राणियों के देह में कुण्डली रूप को प्राप्त होकर गद्य-पद्य आदि के भेद से वर्ण रूप में आविर्भाव करता है। उसका क्रम इस प्रकार है :—

जब आत्मा बुद्धि सहित मन को (अर्थ की प्रकृति को ध्यान में रख) बोलने की इच्छा से प्रेरणा करता है तो मन कायाग्नि को आघात करता है वह कायाग्नि वायु को आघात करता है और मारुत हृदय में चलायमान होकर मन्द्र स्वर को उत्पन्न करता है। इससे स्पष्ट हो गया कि वक्ता की इच्छा से शक्ति की स्वतन्त्र घात प्रतिघात वाली विच्छित्ति से निष्पन्द रवात्मक शब्द मूलाधार में आता है तब 'परावाक्" कहलाता है। जब शरीरगत वायु द्वारा नाभि में आता है तो पश्यन्ती वाक् ; जब और आगे शरीर वायु से हृदय तक आता है तो हृदय में अनाहत चक्र में निश्चयात्मिका बुद्धि से युक्त होने पर "मध्यमा वाक्" हो जाता है और अन्त में वह शरीर वायु के द्वारा विशुद्धचक्र या कण्ठदेश में आता है। वह "वैखरी वाक्" कहलाता है।

इससे स्पष्ट हो गया कि कानों को विस्पष्ट सुनाई देने के पहले की अवस्था "मध्यमा" है, जो शब्द मन ही मन सुना जाता है ; उसके नीचे जिसे मन धारण नहीं कर सकता केवल अहं तत्त्व उपलब्ध कर पाता है वह शब्दतत्त्व की "पश्यन्ती" अवस्था है जो शब्दतत्त्व का प्रथम स्पन्दन है बुद्धितत्त्व में विकास पाता है वह "परा अवस्था" है। इसे ही "परावाङ्मूल-चक्रस्था पश्यन्ती नाभिसंस्थिता। हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कण्ठदेशगा।" कह कर शास्त्रकारों ने स्फुटतया गाया है।

"तस्य वाचकः प्रणवः" इस पतञ्जलि के सूत्र द्वारा उस परात्परतत्त्व का वाचक ॐ है, जो सर्वव्यापी है।

मनन से त्राणधर्म के कारण "तज्जपस्तदर्थ भावनम्" के आधार पर उसके वाचक मन्त्र का जप करते-करते प्रवाह को अन्तर्मुखी मोड़ देना ही द्रष्टा-दृश्य का एकीकरण होता है।

उपर्युक्त निवेदन से जैसे बिन्दु = परावाक् समस्त शब्दों की जननी है वैसे ही अर्थरूप छत्तीस तत्त्वों की माता है यह स्पष्ट हुआ। वे इस प्रकार हैं : पञ्च महाभूत = आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी।

पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ = कर्ण, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और नासिका।

पञ्च कर्मेन्द्रियाँ = वाक् पाणी, पाद, पायु (गुदा) एवं उपस्थ (जननेन्द्रिय)।

पञ्च इन्द्रियों के विषय = शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध।

मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, कला अविद्या, राग, काल, नियति, माया, शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव।

शाक्त-दर्शनों की पृष्ठभूमि कपिल के सांख्यदर्शन पर आधारित हैं। ये तीन प्रमाण मानते है ; प्रत्यक्ष, अनुमान और आप्तवचन ; वेदप्रामाण्य इन्हें अभीष्ट है। इनके अनुसार संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं; आधिभौतिक,=डकैत, चोर, आदि से उत्पन्न, आध्यात्मिक=वात, पित्त तथा कफ आदि से उत्पन्न काम क्रोध और मदादि से जन्य मानसिक और आधि दैविक = शीतोष्णजन्य, वर्षा, वायु, वज्रपतन एवं ओला आदि से उत्पन्न। इन तोनों को निवृत्ति सांसारिक उपायों से स्वल्प समय के लिये हो सकती है। दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिये सांख्यशास्त्र का ज्ञान ही मूर्धन्य है। अतः पुरुष के लिये पञ्चविंशति तत्त्व ज्ञान आवश्यक है। ८ प्रकृति = अव्यक्त, बुद्धि, अहंकार और पञ्चतन्मात्र; १६ विकार = ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रिया बुद्धि, मन तथा पांच महाभूत और पुरुष ये पच्चीस तत्त्व हैं।

सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से बनी प्रकृति सत्य संसार का मूल कारण है। इसमें अनुमान और आप्त वाक्य (अपौरुषेय वेद) प्रमाण हैं। यह प्रकृति पुरुष के लिये, जो स्वभावतः सुख-दुःख आदि सांसारिक क्लेशों से रहित है, प्रवृत्त होती है और उसीसे पुरुष स्वयं को "अहं सुखी" 'अहं दुःखी" ऐसा मानता है। परन्तु जब पुरुष को यथार्थ ज्ञान हो जाता है तो प्रकृति उस पुरुष के अर्थ काम करना छोड़ देती है अन्ततः पुरुष मोक्ष प्राप्त कर लेता है। परन्तु एक पुरुष के मोक्ष से संसार का नाश नहीं होता, इससे अनुमान किया जा सकता है कि पुरुष अनन्त हैं और एक पुरुष के मुक्त होने पर भी प्रकृति और और पुरुषों के अर्थ प्रवृत्त होती रहती है। इस कारण संसार का नाश नहीं होता। यह इस अर्थ में अनीश्वरवादी हैं कि संसार की रचना, सुख-दुःख आदि का कारण प्रकृति एवं पुरुष इन दोनों का परस्पर सन्निकट रहना है। ज्ञान हो जाने पर भी पुरुष की मृत्यु तत्क्षण नहीं हो जाती। इसका कारण प्रारब्ध है, जैसे बर्तन बन जाने पर भी कुम्हार का चाक थोड़ी देर पीछे कालावधि तक चला करता है। इनकी ईश्वर के प्रति आस्था नहीं है, हाँ इन्होंने देवतादि को अवश्य मान्यता दी है। यज्ञ आदि में निष्ठा नहीं के बराबर है कारण यज्ञादि का सीधा स्वर्गादि के प्रति आकर्षण है मोक्ष प्राप्ति को वह नहीं ला सकते हैं।

उससे आगे बढ़कर पतञ्जलि ने योग की प्रणाली का आविष्कार किया। इसके अनुसार एकवार तत्त्वज्ञान हो जाने पर भी पुरुष आत्मत्व को विस्मृत कर सकता है और स्वयं को सांसारिक जीव समझ सुख-दुःख के बन्धन में फँसता है। इसलिये ऐसा उपाय आवश्यक है कि जिससे ज्ञान प्राप्त होने के बाद वह सदा सर्वदा के लिये मुक्त बन जाय। इसके लिये चित्त की वृत्तियों के निरोध को उन्होंने योग संज्ञा दे उस सतत प्रपञ्च के बन्धन से छुटकारा दिलाने का उपाय बतलाया। इसी में "तज्जपस्तदर्थ-भावनम्" सूत्र द्वारा ईश्वर की उपासना करने का अनुपम मार्ग बताया। इस महर्षि के अनुसार ईश्वर के बिना प्रकृति अपने आप प्रवृत्त नहीं हो सकती क्योंकि वह जड है। पुरुष एवं ईश्वर में भेद करते हुए उनने बताया है ईश्वर में पूर्ण ऐश्वर्य स्वभावतः स्थित है तथा प्रकृत्या सुख-दुःख से रहित है उसकी सर्वज्ञता अविच्छिन्न है परन्तु पुरुष में मुक्त हो जाने पर भी उपर्युक्त ईश्वर के गुण पूर्णतया आ नहीं सकते। ईश्वर कर्तुं-अकर्तुं-अन्यथाकर्तुं समर्थ है यदि उसकी इच्छा हो जाय तो क्षणमात्र में ही सब संसार के पुरुषों का मुक्त बना दे सकता है। ईश्वर में सत्त्व गुण अनादि काल से अव्याहत है तथा जब वही इच्छा करता है तो प्रकृति पुरुष दोनों एकत्र अथवा समीप हो जाते हैं। ॐ ईश्वर का नाम है और उसके जप से सब चित्तविक्षेप नष्ट हो जाते हैं तथा अणमादिक अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं अन्त में कैवल्य मुक्ति का अधिकारी हो जाता है।

उपासना योग के अङ्गरूप में समाविष्ट है। योग अन्य प्रकार से भी सम्भव है। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, अष्टाङ्गयोग में आते हैं व वैराग्यनित्यानित्यविवेक विचार आदि समाधि के अन्य उपाय हैं। समाधि दो प्रकार की है सविकल्प और निर्विकल्प एक तो वह है जिसमें चित्त को २५ तत्त्वों में से किसी एक पर अथवा ईश्वर पर

स्थिर किया जाय ; दूसरे जिसमें चित्त को निरालम्ब रखने का अभ्यास दीर्घकाल तक धैर्यपूर्वक अपना साधनक्रम बढा कर किया जाय अर्थात् चित्त की सब वृत्तियों का पूर्ण निरोध कर दिया जाय। सविकल्प से निर्विकल्प ही श्रेष्ठ है। सम्प्रज्ञात समाधि दूसरी प्रकार की समाधि की अवस्था का कारण हो सकती है वास्तव में इनके अनुसार अभीष्ट असम्प्रज्ञात समाधि ही है। इसके प्राप्त होते ही इच्छाओं के समूल नाश हो जाने से कर्म भुने हुए अन्न के बीजों के समान निर्वीर्य हो जाते हैं योगी उन्हें नहीं भोगता।

उनका कहना है कि मेरुदण्ड के बाँयी ओर की नाली को इडा और दक्षिण ओर की नाडी को पिङ्गला नाम से पुकारा जाता है। इन दोनों के बीच की नाडी को सुषुम्णा कहा जाता है। इडा में चन्द्र की स्थिति और पिङ्गला में सूर्य की स्थिति है। सुषुम्णा त्रिगुणमयी है और चन्द्र-सूर्याग्नि स्वरूपा है। इसके सबसे नीचे के भाग की कुण्डलिनी संज्ञा है। योगी उसे जगाने का प्रयत्न करता है। जाग्रत होने पर कुण्डलिनी सुषुम्णा के भीतर विद्युत् प्रवाह से भी अधिक द्रुत गति से सिर की ओर चढ़ने लगती है और अपने मार्ग में आनेवाले छहों चक्रों को भेदन (पार) कर ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाती है। जैसे-जैसे यह ऊपर की ओर जाती है योगी के कर्म-बन्धन जिन्हें शैवों तथा शाक्त दर्शनों में आणव, मायीय और कार्मणमल नाम से कहा जाता है, ढीले पड़ते जाते हैं उसे अलौकिक शक्ति-संघट्टों का साक्षात्कार होता जाता है यहाँ तक कि मन एवं शरीर से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और वह परमानन्द में मग्न होकर उस अन्तर्यामी परमात्मा का शुद्ध स्वरूप देखने लग जाता है। सत्ता, चेतना और आनन्द का नाम त्रिपुर है उसकी अधिष्ठात्री त्रिपुरा है जिसका साक्षात्कार ही इसका प्रतिपाद्य है।

इस प्रकार, महादेवा भगवती त्रिपुरासुन्दरी की प्रेरणा से इस महनीय "त्रिपुरारहस्य" के माहात्म्य-खंड की प्रकाशन चेष्टा में सम्पादन करते हुए अल्पज्ञता एवं प्रमादजन्य त्रुटियाँ रह गयी हों तो कृपालु पाठक-पाठिकावृन्द अपनी सहृदयता से क्षमा करते हुए ग्रन्थ को अविकल पठन-पाठनद्वारा सलिल बना अपनी विद्या को वीर्यवती बनाकर इस परिश्रम को सफल करेंगे।

आरम्भ से ही महावीतराग विद्वन्मूर्द्धन्य अनन्तश्रीविभूषित महायोगिवर्य श्रीमन्नारायण स्वामी जी महाराज का हमें कृपापूर्ण मार्गदर्शन मिला है इस समग्र ग्रन्थ के अवशिष्ट भागों को भी शीघ्रातिशीघ्र पाठकगण के करकमलों में स्वामिचरणों के कृपाप्रसाद से भेंट किया जा सकेगा ऐसी आशा है।

यद्भद्रं तन्न आसुव

विनयावनत—
सम्पादक

त्रिपुरा-रहस्य

लेखक—स्वर्गीय शिवमूर्त्ति महामहोपाध्याय, पण्डित गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी विद्यावाचस्पति

हमारे शास्त्रों के दो भेद हैं—निगम और आगम, जिन्हें वेद और तन्त्र नाम से कहा जाता है। वेद समस्त विद्याओं का भण्डार है। उनमें से जिन जिन तत्त्वों को अनुभव के अनुसार जहाँ प्रमाणित किया गया, उन शास्त्रों को आगम या तन्त्र कहते हैं। इसके अतिरिक्त, हमारे पुराण सृष्टि के विवरण प्रस्तुत करते हैं, पर आगम सृष्टि के प्रादुर्भाव का रहस्य बतलाता है। इसलिये दोनों परस्पर एक दूसरे के पूरक हैं। 'त्रिपुरा-रहस्य' आगम शास्त्र का विषय है। इसलिये, इस शास्त्र का भी परिचय देना आवश्यक हैं।

आगम शास्त्र शक्ति को प्रधान मानता है। शक्ति और शक्तिमान् मिलकर जगत् के मूलतत्त्व बनते हैं। जब यह सिद्ध हो गया, तब अपने अनुभव और अधिकार के अनुसार प्रधानता किसी की भी मानी जा सकती है। यह भी कहा जा सकता है कि शक्तिमान् तो निर्विकार कूटस्थ मात्र है। शक्ति के सहारे ही शक्तिमान् होगा और शक्तिमान् के आधार पर ही शक्ति टिक सकती है। अतः अङ्ग-अङ्गी की तरह दोनों की शक्ति स्थित है। इसीलिये शक्ति को शक्तिमान् का अङ्ग माना गया है। किन्तु आगम-शास्त्र शक्ति को ही प्रधान मानता है। उसके अनुसार शक्ति ही अपने आश्रय को बना लेती है अथवा यों कहा जाय कि शक्तिमान् भी शक्ति का ही एक विकास है। आगम शास्त्र में यद्यपि शक्तिमान् रूप से शिव, विष्णु आदि की उपासना की जाती है; किंतु शक्ति से भिन्न मानकर नहीं। अतः शिव की उपासना वहां गौरीसहित है एवं विष्णु की उपासना लक्ष्मी-सहित। अतः शक्ति की प्रधानता आगम शास्त्र में प्रसिद्ध है। वह शक्ति को जड़ नहीं मानता; किन्तु चिच्छक्ति नाम से इसकी उपासना बतलाता है और उसे परम शिव से अभिन्न मानता है; क्योंकि दोनों कभी भिन्न भिन्न होकर नहीं रहते। इससे अद्वैत में भी बाधा नहीं आती है। अविभाग-रूप अद्वैत बना ही रहता है। यह भी एक बड़ा भेद है कि आगम-शास्त्र में परमतत्त्व सर्वथा निर्धर्मक नहीं माना जाता उसमें एक स्वातन्त्र्य-रूप मुख्य शक्ति या मुख्य रूप धर्म सदा बना रहता है। अपने स्वातन्त्र्य के कारण ही जब प्रपञ्च-रूप से क्रीड़ा करने की इच्छा करता है, तब आणव-मल से सम्बद्ध होकर जीव रूप बन जाता है और उसकी शक्तियाँ भी संकुचित होकर जीव की सहचारिणी बन जाती हैं, उन्हीं के कारण जीव अपने को परिच्छिन्न और दुःखमग्न मानने लगता है।

हमारे अन्य दर्शन शास्त्रों में यह एक विचारणीय प्रश्न आता है कि परब्रह्म स्वतन्त्रता से किसी को सुखी और किसी को दुःखी बनाता है, तो उसमें विषमता और निर्दयता का भाव अवश्य है। किन्तु, आगम शास्त्र कहता है कि यह तो किसी दूसरे पर अनुग्रह या अत्याचार नहीं है। जब वह स्वयं ही प्रपञ्चरूप से नाना रूप धारण करता है, तब यह स्वयं ही सुख और दुःख भोगता है। यहां दूसरे पर अनुग्रह और अत्याचार का प्रश्न ही नहीं है। (सुख अथवा दुःख भी आनन्द रूप से स्वयं वह ही

आगमशास्त्र में शक्ति के भिन्न-भिन्न विकास माने गये हैं। महामाया, माया और प्रकृति ये सब शक्ति के ही क्रमिक विकास हैं। जब परम शिव आणवमल के परिग्रह से संकुचित हो जाता है, तब महामाया और माया के बन्धन में पड़ता है। माया शिव की शक्तियों को संकुचित कर उनके द्वारा जीव को अपने बन्धन में लेती है। इन्हें ही "पंचकंचुक" कहा गया है। ईश्वर में पाँच प्रकार की प्रधान शक्तियाँ हैं जो संकुचित रूप में जीव को प्राप्त होती हैं। ईश्वर में "सर्वकर्तृत्व है, अतः उसके शक्ति कला-रूप

है

आनन्द दुःख से अद्वयत या सुख दुख से समस्त ग्रहन को कहते है

से संकुचित होकर जीव कों प्राप्त है ? कला-शिक्षा द्वारा जीव भी बहुत कुछ निर्माण कर सकता है, फिर भी सब कुछ बनाने सामर्थ्य इसे प्राप्त नहीं है। जितनी कला इसमें होगी उतना ही सर्जन कर पायगा। ईश्वर की दूसरी शक्ति 'सर्वज्ञता' है; विद्या-रूप में संकुचित होकर जीव को प्राप्त होती है। विद्या द्वारा जीव भी बहुत कुछ जान सकता है; किन्तु सर्वज्ञ नहीं सकता ईश्वर की तीसरी शक्ति त्रिकालाबाध्य सत्ता है, अर्थात् उसका अस्तित्व सर्वदा है। किसी भी काल में उसका अभा नहीं रहता। यही शक्ति काल-रूप में संकुचित होकर जीव को प्राप्त होती है, जिससे यह नियतकाल तक सत्ता धारण कर सक है। ईश्वर में चौथी शक्ति आनन्दरूपा है। वह नित्यानन्दमय है। वह उसकी शक्ति रागरूप से संकुचित होकर जीव को प्रा है। राग (प्रेम) के द्वारा जीव भी आनन्द का उपभोग आंशिक रूप से करता है, परमानन्द इसे प्राप्त नहीं होता। इसी प्रका ईश्वर में पांचवीं शक्ति सर्वभवन-सामर्थ्य है। इसका तात्पर्य है कि वह स्वेच्छया यथाभिरुचि रूप धारण कर सकता है या वि र्त्तित हो सकता है। यह शक्ति भी नियत रूप से संकुचित होकर जीव को प्राप्त होती है। इसी शक्ति से प्राणी घटता-बढ़ता और बाल्य, यौवन आदि भेद या मनुष्य, पशु आदि नाना पर्यायों में अनेक रूप बनता है; किन्तु सब कुछ नहीं बन सकता। इन्हीं पाँ कञ्चुकों से आवृत होकर वह जीवभाव प्राप्त करता है स्वभावतः जीव इन पाँचों कंचुकों को तोड़ डालना चाहता है। मैं भी सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, पूर्णानन्दमय बनूं, यह इसकी इच्छा स्वभावतः रहती है। किन्तु, जीवभाव रहते माया के ये पाँचो कञ्चुक टूट नहीं सकते और पूर्ण शक्तियाँ वह प्राप्त नहीं कर सकेता। इन पाँचो कंचुकों को तोड़ने का उपाय शास्त्रों ने उपासना ही बताया है। उपासना द्वारा मन का निरन्तर ईश्वर में अर्पण करने से जीव में ईश्वर के धर्म प्रकट होने लगते हैं। यह ईश्वर-धर्म जैसे-जैसे बढ़ता जाता है वैसे-वैसे क्रमशः पाँचो कञ्चुक शिथिल होते जाते हैं और अन्त में टूट जाते हैं फिर तो जीव शिवरूप बन जाता है। उपासना बिना ज्ञान के हो नहीं सकती। मन को ईश्वर में लगाने का नाम ही उपासना है। जब तक ईश्वर का ज्ञान न होगा तब तक मन लगेगा कैसे ? अज्ञात वस्तु को तो मन पकड़ ही नहीं सकता, इसलिये ईश्वरत्वज्ञान पहले आवश्यक होता है। उपासना करते-करते वह ज्ञान भी स्वच्छ होता जाता है और उपासना भक्तिरूप में परिणत हो जाती है। ज्ञान और भक्ति का एक दूसरे के माध्यम से उत्कर्ष होता जाता है और चरम अवस्था में परमाभक्ति और परमज्ञान एकरूप ही हो जाते हैं। इस स्थिति पर पहुँचने पर जीवभाव निवृत्त होकर शिवत्व की प्राप्ति हो जाती है।

अधिकारानुसार उपासना के बहुत भेद शास्त्रों में वर्णित हैं। जिस प्रकार शक्तिमान् रूप में शिव विष्णु आदि उपास्य के अनेक भेद हैं, उसी प्रकार आगमशास्त्र में भी शक्ति के अनेक उपास्य भेद बताये गये हैं। उन अनन्त-रूपों का दस रूपों में वर्गीकरण किया गया है, जिससे दस महाविद्यायें आगम शास्त्र में विख्यात हैं। जिस समय प्रपञ्च का दृश्यपदार्थ अस्तित्व में नहीं था, उस महाप्रलयावस्था से आरम्भ कर प्रपञ्च की पूर्णता पर्यन्त दस अवस्थायें मानी गयीं हैं। उन अवस्थाओं में कार्य करने वाली चित्-शक्ति को दस विभागों में विभक्त किया गया। जब महाप्रलय में जगत् का प्रादुर्भाव करने की इच्छा भगवान् या भगवती को होती है, तब उस प्राथमिक अवस्था को "आद्याशक्ति" कहा जाता है। उस अवस्था में कुछ नहीं है ऐसा नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि कुछ नहीं होता तो प्रपञ्च में सब कुछ कहां से आता 'असत्' से सत् नहीं हो सकता यह आर्य दर्शनों का डिण्डिम-घोष है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ (श्रीमद्भगवद्गीता)

इससे यह सिद्ध होता है कि महाप्रलय दशा में भी सब कुछ है, किन्तु सुषुप्ति दशा में है। अतः सम्पूर्ण स्थूल-सूक्ष्म ब्रह्माण्ड की सुषुप्ति का नाम ही "महाप्रलय" कहलाता है। उस अवस्था में जीव भी रहते हैं ; किन्तु सुषुप्ति-दशा में। सुषुप्ति एक प्रकार की मृत्यु-अवस्था है। इसीलिये आद्याशक्ति के समस्त उपकरण शव (मृत) रूप माने गये हैं शव पर ही वह आरूढ़ मानी गयी है। शवों के मुण्डों की ही माला पहने हुए हैं। कानों में कुण्डल शवों के मुण्ड हीं हैं और काञ्ची (करधनी) शवों के निर्जीव

हाथों को बनी है। आद्या-शक्ति का स्वरूप भी गहरा कृष्ण वर्ण है ; जो प्रकाश के सर्वथा अभाव की सूचना देता है। इस प्रकार महाविद्याओं के स्वरूप पूर्ण वैज्ञानिक हैं। फिर जब, सम्पूर्ण प्रपञ्च बन जाता है, तब उसकी अधिष्ठात्री महाशक्ति का नाम षोडशी होता है। उस समय वह सोलह कलाओं से परिपूर्ण मानी गई। वह पूर्ण जगत् की अधिष्ठात्री है और रजोगुण-प्रधान होने से आगम-शास्त्र उसका रूप रक्तवर्ण का मानता है।

प्रपञ्च के सोलह पदार्थ अभी कहे गये। इन सोलहों को तीन वर्गों में बाँटा गया है—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। शक्ति के ये ही तीन पुर हैं। इनका उत्पादन, पालन आदि करनेवाली महाशक्ति इन्हीं तीनों पुरों में रहती है, जिससे वह "त्रिपुरा" कहलाती है। उस महाशक्ति "त्रिपुरा" भगवती का ही यह प्रभाव है कि जगत् के समस्त पदार्थ तीन तीन रूपों में ही विभक्त हैं। उत्पादक, पालक और संहारक त्रिदेव ब्रह्मा, बिष्णु और महेश माने गये हैं। लोक भी तीन हैं—भूमि, अन्तरिक्ष और स्वर्ग। इनलोकों के नियामक देवता भी तीन हैं—अग्नि, वायु और आदित्य। वेद भी तीन माने गये हैं ऋक्, यजुः और साम। हमारे जीवों के शरीर भी तीन हैं - स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। स्थूल शरीर तो प्रत्यक्ष ही है। इसके ही स्थूल पदार्थों का निरूपण न्याय आदि शास्त्र करते हैं, किन्तु, यह स्थूल शरीर सर्वथा जड है। इसका परिचालन करनेवाला सूक्ष्म-शरीर है, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेंद्रिय, पाँच प्राण तथा मन और बुद्धि ये सत्रह तत्त्व माने जाते हैं। इसका निरूपण सांख्य ने विस्तार से किया है। स्थूल शरीरों के नष्ट हो जाने पर भी सूक्ष्म शरीर बना रहता है। भिन्न भिन्न शरीरों और भिन्न भिन्न लोकों में यही सूक्ष्म शरीर जाता है और आता है। किन्तु, महाप्रलय में यह भी नष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में तब प्रश्न उठता है कि ज्ञान और कर्म के संस्कार किसके आधार पर रहते हैं। यदि संस्कार न रहें, तो आगे होनेवाली सृष्टि में प्राणियों के जन्म और कर्म का कौन नियामक होगा ? अतः वेदान्त दर्शन सूक्ष्म शरीर का भी आधारभूत एक कारण शरीर मानता है। वह कारण शरीर वासनात्मक है। वह हमारी सुषुप्ति दशा में भी अपना काम करता है और महाप्रलय में भी बना रहता है। वह उसी दिन निवृत्त होता है, जिस दिन भगवती महाशक्ति की कृपा से जीव को मोक्ष प्राप्त होता है, इसलिये उसे 'अनादि-सान्त' कहते हैं। आगम शास्त्र में तो कारणशरीर से पहले के भी शरीरों का वर्णन आता है। वह कहता है। कारण शरीर तक तो भाषा की सृष्टि है ; किंतु इससे आगे का महाकारण शरीर या बैन्दव शरीर बिन्दुरूपा महा-माया से बना है। गुरुजन जब शिष्य को शिक्षा देते हैं, तब इसी 'बैन्दव' शरीर को जागरित करते हैं। इसी शरीर के द्वारा उपासना की सिद्धि होती है। फिर, मुक्तिदशा में एक 'चिद्रूप कैवल्य शरीर' माना गया। उस मुक्ति के आगे भी उपासक जब उपास्य इष्टदेव की कृपा से अपने अपने इष्टदेव की नित्यलीला में प्रवेश करता है तब एक 'हंसदेह'—स्वरूप देह प्राप्त होती है। इसी को आगमशास्त्र जीवन की अन्तिम सफलता मानता है और यही उसका परम पुरुषार्थ है। आगमशास्त्र के अनुसार यह केवल भक्ति से प्राप्य है। ज्ञान से प्राप्त होनेवाला मोक्ष उसके यहाँ परम पुरुषार्थ नहीं माना जाता।

उपर्युक्त 'महाकारण शरीर', 'बैन्दव शरीर' और 'चिद्रूप कैवल्य शरीर'—ये तीन अलौकिक शरीर हैं। किन्तु लोकव्यवहार में तो स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन शरीर आते हैं। इसीलिये अवस्थायें भी तीन होती हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जाग्रत् अवस्था का 'स्थूल शरीर' से सम्बन्ध है, स्वप्नावस्था का 'सूक्ष्मशरीर' से और सुषुप्ति अवस्था का 'कारणशरीर' से। इन सभी शरीरों और अवस्थाओं से छुटकारा पाने का उपाय बतलाने वाले वेद भी तीन हैं; यह पहले बताया जा चुका है। इन वेदों का सार रूप 'प्रणव' हैं, उसकी मात्रायें भी तीन ही हैं। इस प्रकार तीन का क्रम सर्वत्र चलता है। यही त्रयी 'त्रिपुरा' की व्यापकता की सूचना हमें देती रहती है। इस 'त्रिपुरा' का वर्णन करनेवाला 'त्रिपुरा-रहस्य' आगम ग्रन्थ है। इसके भी तीन खण्ड हैं—माहात्म्यखण्ड, ज्ञानखण्ड और चर्याखण्ड। प्रथम में त्रिपुरा भगवती के अवतारों का वर्णन है। अवतारों के द्वारा उसका माहात्म्य बताया गया है। द्वितीय ज्ञानखण्ड में परतत्त्वरूपा भगवती का स्वरूप उपलक्षित किया गया है। फिर, तृतीय चर्याखण्ड में उपासना की विधि वर्णित है। चर्याखण्ड तो अभी कहीं प्राप्त ही नहीं हुआ। केवल अभी दो खण्ड ही इसके प्राप्त हैं। इनमें से 'माहात्म्य-खण्ड' के ही कुछ अंशों का निर्देश यहाँ दिया गया है।

आर्य संस्कृति का यह नियम है कि किसी भी विद्या को जानने के पहले उसका 'सम्प्रदाय' जानना आवश्यक होता है। 'सम्प्रदाय' शब्द को आजकल बहुत दूषित मान लिया है। किन्तु पुराने समय में यह शब्द बहुत महत्त्व का माना जाता था। किसी पुरुष ने किसी विद्या का आविष्कार किया हो अथवा किसी विद्या की प्राप्ति की हो, उसका ज्ञान अपने शिष्यों को दे और शिष्य भी उसका ज्ञान अपने शिष्यों को दें इसी क्रम-परम्परा का नाम सम्प्रदाय है। कोई भी पुरुष किसी से विद्या की कुछ बात कहता तो वहाँ सबसे पहले पूछा जाता था 'भवतः कुतः सम्प्रदायः' इत्यादि। त्रिपुरा- रहस्य ग्रन्थ में भी त्रिपुरा भगवती की विद्या का पहले सम्प्रदाय ही बताया गया है इस ग्रन्थ के प्रवक्ता मेधा या सुमेधा ऋषि हैं। उन्होंने परशुराम से विद्या प्राप्त की। परशुराम ने दत्तात्रय से, दत्तात्रय ने ब्रह्मा से, ब्रह्मा ने विष्णु से और विष्णु ने शिव से यह विद्या प्राप्त की। यही इस सम्प्रदाय का विवरण है। श्रीमार्कण्डेय पुराण' में 'सप्तशती' नाम के दुर्गाचरित्र के उपदेष्टा भी मेधा ऋषि हैं। सम्भव है, ये वे ही मेधा हों; क्योंकि दोनों ही शक्ति सम्प्रदाय के अग्रणी नेता हैं। दोनों पृथक्-पृथक् भी हो सकते हैं। यह तो अन्वेषण का विषय है।

मेधा ऋषि के परशुराम से दीक्षा प्राप्त करने के कारण परशुराम का चरित्र इस ग्रन्थ के आरम्भ में विस्तार से वर्णित हुआ है। परशुराम के सुचरित्र का पुराणों में भी बहुधा वर्णन है। च्यवन ऋषि के पुत्र ऋचीक को गाधिराज की कन्या ब्याही थी। पहले उत्तम राजकुल की कन्यायें भी ब्राह्मण लोग ग्रहण कर लिया करते थे। उस गाधि-नन्दिनी ने ऋचीक ऋषि की बहुत सेवा की। तब सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन ऋचीक ने कहा; "तुमने मुझे बहुत सन्तुष्ट किया है, कोई वर माँगो।" गाधि-नन्दिनी ने प्रार्थना की कि मेरे भ्राता नहीं है। आप कृपाकर मेरी माता को अत्यन्त तेजस्वी प्रतापी पुत्र दीजिये और मुझे भी एक सुयोग्य प्रतापी विद्वान् पुत्र दीजिये। ऋचीक ऋषि ने दो प्रकार के चरु बनाये। अपने तपोबल से एकमें ब्रह्मतेज रक्खा और दूसरे में क्षत्रतेज। ब्रह्मतेज-वाला चरु अपनी पत्नी को खाने के लिये बतलाया और क्षत्रतेज वाला चरु वह अपनी माता को खिला दे ऐसा समझाया। गाधि-नन्दिनी दोनों चरुओं को लेकर अपनी माता के पास गयी और दोनो चरुओं का प्रभाव बतलाया। माता के मन में लोभ आया। उसने बड़े प्यार से पुत्री से कहा कि पुत्रि! प्रत्येक मनुष्य अपने पुत्र को सबसे अच्छा देखना चाहता है। अतः ऋषि ने तुझे जो चरु दिया है, उसमें अवश्य ही अधिक वैशिष्ट्य होगा। मुझे विश्वास है कि मेरी पुत्री अपनी माता के प्रति इतनी उदारता बरतेगी कि अपना चरु मुझे दे देगी। तेरी ऐसी कृपा से तेरा भ्राता बड़ा प्रशस्त प्रभावशाली होगा, जिससे तुझे भी सुख होगा। मातृ-भक्ति गाधिनंदिनी ने माता की अतिशय प्यारभरी वाणी सुन कर उसकी बात मान ली। दोनों मुग्ध स्त्रियाँ ब्रह्मतेज और क्षत्रतेज की बातें नहीं समझ सकीं और विशेष प्रभाव के लोभ में चरु बदल कर खा गयीं। जब ऋचीक ने पूछा कि तुम दोनों ने चरु खा लिये, तब उनकी स्त्री ने परिवर्त्तन करके चरु भक्षण (खाने) की बात कह दी। ऋषि ने कहा कि तुमने बड़ा अनर्थ किया। अब तुम्हारी माता को ब्राह्मण-स्वभाववाला पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हें अतिशय युद्ध-प्रिय तथा कालाग्नि सदृश क्रोधवाला क्षत्रिय स्वभाव का पुत्र होगा। यह सुन कर ऋषिपत्नी बहुत दुःखित हुई और उन्होंने प्रार्थना की कि मैं हिंसा करनेवाला क्रोधी पुत्र नहीं चाहती। ऋषि ने कहा, मैं क्या करूँ? चरु का प्रभाव तो कभी हटाया नहीं जा सकता। जब ऋषिपत्नी ने बहुत अनुरोध किया, तब ऋषि ने कहा कि मैं अपने तपोबल से इतना कर सकता हूँ कि वह क्षत्रिय गुण तुम्हारे पुत्र में प्रकट न होकर पौत्र में प्रकट हो। ऋषि के इस आश्वासन से ऋषिपत्नी सन्तुष्ट हो गयीं। बाद, इसी चरु के परिवर्त्तन से गाधिराज की पत्नी में 'विश्वा-मित्र' का जन्म हुआ। इसीलिये विश्वामित्र तपस्या के बल से ब्राह्मण बन गये। इधर ऋचीक की पत्नी से जमदग्नि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जमदग्नि ऋषि जीवन-पर्यन्त स्वयं शान्त ब्राह्मण बने रहे। किन्तु ऋचीक के पौत्र और जमदग्नि के पुत्र परशुराम में चरु का प्रभाव प्रकट हुआ। वे दुर्दान्त क्षत्रिय-स्वभाव के प्रतापी पुरुष हुए। ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होने के कारण प्रथम वयस में परशुराम ने भलीभाँति वेदादि का अध्ययन किया और स्वाभाविक रुचि होने के कारण शस्त्रविद्या में भी निष्णात हो गये। जब माहिष्मती के राजा कार्त्तवीर्य सहस्रार्जुन ने इनके पिता का वध कर दिया, तब इनका वह क्षत्रबल कालाग्नि के समान भड़क उठा।

इन्होंने अपने बाहुप्रताप से कार्त्तवीर्य का तो समूल नाश कर ही दिया, परमोद्धत सम्पूर्ण क्षत्रियों के संहार का भी व्रत ले लिया। इसके क्रोध और प्रताप के सामने कोई क्षत्रिय न ठहर सका। बहुतेरे क्षत्रियों ने शरणागत होकर, बहुतेरों अपनी जाति बदल कर और बहुतों स्त्रियों में छिप-छिप कर अपने प्राण बचाये। इतने पर भी जब इन्हें मालूम हुआ कि अभी बहुत से क्षत्रिय जीवित बच गये हैं तब फिर दूसरी बार इन्होंने क्षत्रियों का संहार किया। इस प्रकार क्रमशः इक्कीस बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हुए ये क्षत्रियों को नष्ट करते रहे। बड़ी कठिनाई से कहीं कोई क्षत्रिय बच पाया। अन्त में पूर्णावतार भगवान् राम के सामने इनका बल-गर्व खर्व हुआ, तब इन्होंने अपना अस्त्र छोड़ दिया।

शस्त्र-त्याग कर जब परशुराम तपस्या के लिये जा रहे थे तब इनके मन में बड़ा भारी पश्चात्ताप हो रहा था कि मैंने बहुत बड़ा अनर्थ किया है। इस महापाप से मेरा छुटकारा कैसे होगा ? उसी समय मार्ग में इन्हें एक अत्यन्त तेजस्वी व्यक्ति दिखाई पड़ा, जो विक्षिप्त-सा प्रतीत हो रहा था। परशुराम उसके समीप जाकर उससे कुछ बातें करना चाहते थे; किन्तु वह अन्यमनस्क-सा बना रहा और इनसे उसने कुछ बात नहीं की। उसकी ऐसी धृष्टता देखकर परशुराम ने बुरे शब्दों से उसका तिरस्कार किया; तब भी वह कुपित न हुआ और वह हँसता हुआ ही कुछ अनाप-शनाप बोलता रहा। उसकी ऐसी निर्लिप्तता देखकर परशुराम ने निश्चय किया कि अवश्य ही यह कोई विशिष्ट तपस्वी है, जिसने काम, क्रोध आदि पर विजय प्राप्त कर ली है। परशुराम तुरन्त उसके चरणों में गिर पड़े और प्रार्थना करने लगे कि अपना परिचय दीजिये और मेरा उद्धार कीजिये। परशुराम का समर्पण देखकर उस व्यक्ति ने कहा, "मैं बृहस्पति का भ्राता 'सम्वर्त्त' हूँ। छोटी अवस्था में ही घर छोड़कर तपस्या में लग गया था। लोगों से बचने के लिये विक्षिप्त-सा रहता हूँ और सर्वथा आत्म-चिन्तन करता रहता हूँ। तुम्हें उपदेश देने का मेरे पास समय नहीं है। तुम दत्तात्रेय के पास जाओ। वे ही तुम्हें 'त्रिपुरा' भगवती की दीक्षा देंगे और उस भगवती की आराधना से तुम्हारा कल्याण होगा।" 'सम्वर्त्त' का ऐसा उपदेश पाकर परशुराम गन्धमादन पर्वत पर भगवान् दत्तात्रेय के दर्शनार्थ गये।

गन्धमादन पर्वत हिमालय से भी बहुत उत्तर है। वह एकान्ततः देवभूमि है। वहाँ बड़ा प्रशान्त तपोवन परशुराम ने देखा, उस तपोवन में एक बहुत बड़ा प्रभावोत्पादक आश्रम था। उस आश्रम के प्रथम कक्ष में एक तपस्वी को बैठा देखकर प्रणामपूर्वक परशुराम ने पूछा, "आपका शुभ नाम क्या है और दत्तात्रेय भगवान् का आश्रम कहाँ है ?" उस तपस्वी ने हँसते हुए उत्तर दिया कि यही दत्तात्रेय का आश्रम है। गुरु-कृपा से आप के आगमन की बात मैंने पहले ही जान ली थी। भगवान् दत्तात्रेय भीतर विराज रहे हैं आप उनके समीप चले जाइये। परशुराम ने भीतर प्रवेश कर देखा कि एक तेजस्वी युवा के रूप में दत्तात्रेय भगवान् विराजमान हैं। उनके समीप ही एक परम सुन्दरी वेश्या बैठी हुई थी। वह अपनी प्रेम चेष्टाओं से उन्हें मुग्ध कर रही है। पास ही सुरा से परिपूर्ण एक पात्र रखा है। परशुराम के चित्त में यह दृश्य देखकर बड़ा सन्देह उत्पन्न हुआ ; किन्तु 'सम्वर्त्त' के उपदेश में पूर्ण श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी। श्रद्धा शब्द का अर्थ है कि दोष-दर्शन की वृत्ति ही न उत्पन्न होने देना। अतः इन्होंने उक्त दोषों की ओर ध्यान ही नहीं दिया। इन्होंने मन में विचार किया कि महात्माओं के चरित्र अलौकिक होते हैं। ऐसा सोच कर परशुराम प्रणाम कर उनके चरणों के पास बैठ गये। जब दत्तात्रेय भगवान् ने परशुराम को देखा, तब इनका स्वागत करते हुए कहा, "परशुराम तुम कल्याण की लालसा से सन्मार्ग में प्रवृत्त हुए हो। संसार में इन्द्रियजय ही कल्याण का मार्ग है। जिसने इन्द्रियों को जीता उसने सब कुछ जीत लिया। जिह्वा और उपस्थ इन दो का विजय ही सबसे कठिन है। मैं तो इन दोनो के उपभोग की सामग्री अपने पास रखता हूँ। यह सुरा और वेश्या ये दोनों मेरे पास वर्त्तमान हैं। उपभोग की इस सामग्री को देखकर तपोवन में जितने महात्मा थे ; सब मेरा संग छोड़ चले गये। सभी मुझे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। फिर, तुम मेरे पास किसकी प्रेरणा से आये ? तुम्हें मेरे चरित्रों से घृणा क्यों नहीं होती ?"

इस प्रकार के प्रश्न सुनने के पश्चात् परशुराम ने "सम्वर्त्त" की बातें सुनायीं और कहा कि मैं आपका परिचय प्राप्त कर चुका हूँ मैं पूर्ण श्रद्धा के साथ आपकी शरण में आया हूँ। कृपाकर शरणागत का त्याग न कीजिये और मुझे उपदेश दीजिये। दत्तात्रेय

परशुराम की वास्तविक श्रद्धा जानकर बड़े प्रसन्न हुए और 'तांत्रिक प्रत्यभिज्ञा-दर्शन' के अनुसार उन्हें उपदेश दिया। 'इस दर्शन के के अनुसार परम शिव ही एक मूल तत्त्व हैं। जब वे अपने स्वातन्त्र्य से नाना रूप से क्रीड़ा करना चाहते है, तब अपनी शक्तियों को संकुचित कर नाना रूप धारण करते हैं। जीव को उस परमशिव का भान होता रहता है ; क्योंकि इसकी शक्तियाँ शिव की महा-शक्ति का ही अंश है। किन्तु, भान होने पर भी यह रहस्य को समझ नहीं पाता। जिस दिन इसे "मैं परम शिव ही हूँ" ऐसी प्रत्यभिज्ञा हो जायगी, उस दिन यह कृतार्थ हो जायगा। यह प्रत्यभिज्ञा भगवती त्रिपुरसुन्दरी की कृपा के बिना नहीं हो सकती, अतः तुम त्रिपुरसुन्बरी की आराधना में लग जाओ। वही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेगी। "भगवन्! मैं त्रिपुरसुन्दरी की आराधना— किस रीति से करूँगा?" परशुराम द्वारा यह पूछे जाने पर दत्तात्रेय ने त्रिपुरसुन्दरी के अवतारों का वर्णन किया। भगवती का तत्त्वज्ञान दिया और उपासना की सारी विधियाँ भी समझा दीं एवं दीक्षा भी दे दी। दीक्षा प्राप्तकरके परशुराम त्रिपुरसुन्दरी आराधना करने मलयपर्वत पर चले गये।

सुमेधा ऋषि एक समय कल्याण-कामना से भगवान् परशुराम की सेवा में मलयाचल पर गये और उन्होंने आत्मकल्याण के उपायों का प्रश्न किया। परशुराम ने इन्हें वही पूर्वोक्त सारे तत्त्व समझाये और त्रिपुरसुन्दरी के एक रूप 'बालाम्बा' की दीक्षा दी। दीक्षा तन्त्रशास्त्र का एक आवश्यक कृत्य मानी गयी है। दीक्षा के बिना तान्त्रिक को किसी उपासना का अधिकार प्राप्त नहीं होता। वैदिक-मार्ग में भी उपनयन-संस्कार नामक दीक्षा आवश्यक है। बिना उपनयन-संस्कार के वेद का अक्षरोच्चारण वर्जित है। इसी प्रकार, तान्त्रिक दीक्षा के बिना कोई भी तन्त्रोक्त अनुष्ठान नहीं किया जा सकता। पहले कहा जा चुका है कि गुरु दीक्षा के द्वारा शिष्य के 'बैन्दव शरीर' को जागरित करता है। वह अलौकिक 'बैन्दब शरीर' ही अलौकिक भगवान् की उपासना में संलग्न हो सकता है। वैदिक दीक्षा-रूप उपनयन संस्कार में अग्नि-सञ्चालन कर शिष्य की मेधा शक्ति प्रस्फुटित की जाती है। तभी वह वेद के गम्भीर तत्त्वों को पढ़ने और समझने का अधिकारी होता है। अतः परशुराम ने पहले सुमेधा को छोटी दीक्षा दी और कहा कि इसकी आराधना द्वारा जब तुम सिद्धि प्राप्त कर लोगे, तब आगे की उच्च शिक्षा दी जायगी। इस उपासना की सिद्धि प्राप्त हो जाने पर पुनः हमारे पास आना।"

सुमेधा ऋषि श्रीशैल पर भ्रामरी देवी के स्थान में जाकर व्रत-नियमपूर्वक तपस्या करने लगे। वे निरन्तर भगवती के ध्यान में तत्पर रहते थे और आहारादि के द्वारा होनेवाली शरीर यात्रा की भी परवाह नहीं करते थे। इस उपासना में इनमें भगवती की स्फूर्ति होने लगी। एक रात्रि को स्वप्नावस्था में इन्हें भगवती का दर्शन प्राप्त हुआ। हर्षगद्गद होकर सुमेधा ने भगवती की श्रद्धा-भक्तिपूर्वक स्तुति की। भगवती ने वरदान दिया कि तुम उपासना में सिद्ध हो गये। अब गुरु के पास जाओ और इससे आगे की उच्च दीक्षा ग्रहण करो।

ऋषि सुमेधा भोर होते ही गुरु के पास चल पड़े। किन्तु, रास्ते में उन्हें सन्देह हुआ कि मैंने जो कुछ देखा और सुना है वह तो स्वप्नावस्था की बात थी। स्वप्न को तो दार्शनिक भ्रमरूप कहते हैं। दिन में जो कुछ हम सोचते विचारते हैं और जैसी हमारी मनो-वृत्तियाँ होती रहती हैं, उन्हीं का एक आकार रात्रि में निद्रारूप दोष के कारण दिखाई दे जाया करता है। उसमें सत्यता का विश्वास कैसे किया जाय? इस प्रकार विचार कर उन्होंने निश्चय किया कि गुरु के पास मैं नहीं जाऊँगा। ऐसा विचार वह कर ही रहे थे कि आकाशवाणी द्वारा उन्हें पुनः आदेश मिला कि सन्देह मत करो, अवश्य गुरु के पास जाओ। तब सुमेधा बड़ी प्रसन्नता से परशुराम भगवान् के पास गये और सब वृत्तान्त गुरु को सुना गये। गुरु परशुराम ने बड़ी प्रसन्नता प्रगट की और सुमेधा का अभिनन्दन किया, फिर उन्होने सुमेधा को त्रिपुरसुन्दरी की उच्च दीक्षा दी और उसकी सम्पूर्ण चर्या-विधि उन्हें बतला दी। फिर, आशीर्वाद भी दिया कि तुम इस ज्ञान से ग्रन्थ का निर्माण भी करोगे।

सुमेधा का गोत्र नाम "हारितायन' भी इस ग्रंथ में मिलता है। वे वहाँ से 'हालास्य' नगर में मीनाक्षी देवी के स्थान में आये और वहां गुरु के बताये मार्ग से उपासना करने लगे। एक दिन ध्यान करते हुए उन्हें ऐसा भान हुआ कि एक श्वेत जटाधारी तपस्वी तेजोमय मूर्ति हाथ में वीणा लिये, सामने खड़ी है। ऐसी दीप्त मूर्ति के दर्शन से चकित हो जब सुमेधाऋषि ने आँखें खोलीं, तब ठीक उसी रूप में खड़े भगवान् नारद को देखा प्रणिपात और स्वागताभिनन्दन करने के अनन्तर सुमेधा ने हाथ जोड़कर कहा, "आपकी आज्ञा पीछे सुनूँगा, पहले मेरे सन्देह का निराकरण कीजिये कि जो स्वरूप मैं अपने भीतर देख रहा था, वही स्वरूप बाहर देख रहा हूँ; यह कैसे ? आप मेरे भीतर कैसे प्रवेश कर गये थे ?" नारद हँसे। कहने लगे, तुम्हारा नाम तो सुमेधा है, बड़े उपासक प्रतीत हो रहे हो; किन्तु बात बालक जैसी करते हो। किसके भीतर और किसके बाहर की बात कह रहे हो ? आत्मा के भीतर-बाहर अथवा शरीर के भीतर-बाहर ? यदि आत्मा के भीतर बाहर की बात करते हो, तो उससे बाहर तो कोई वस्तु है ही नहीं। वह तो 'विभु', अर्थात् सर्वव्यापक है। मैं उससे बाहर कैसे रह सकता हूँ ? यदि शरीर के भीतर-बाहर की बात करते हो; तो शरीर तो सात वितस्ति में परिच्छिन्न है और मैं महाकाश के आधार पर स्थित हूँ। फिर, यह सम्पूर्ण महाकाश उस छोटे-छोटे शरीर के भीतर कैसे अँट सकता है ? शरीर के बाहर भी मुझे कोई कैसे देख सकता है क्योंकि देखने के साधन इन्द्रियाँ हैं। वे शरीर के भीतर हैं। वे इन्द्रियाँ जड़ हैं। उनकी गति स्वतः बाहर हो नहीं सकती और बाहर के पदार्थ भी जड़ हैं। उसमें भी वह शक्ति नहीं, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकर उड़ सकें और भीतर प्रवेश कर सकें। अतः भीतर बाहर यह तो कल्पना-मात्र है। इस कल्पना का आधार ग्रहण कर तुम बालक जैसा प्रश्न क्यों करते हो ? मनुष्य तो भावनावश किसी चीज (वस्तु) को बाहर भीतर कहता है।

नारद भगवान् के इस प्रश्न का विचार दर्शनों में भी है और आधुनिक विज्ञान भी अपना युक्ति प्रयोग इस पर करता है। भारतीय दर्शनों में अधिकतर चक्षुरिन्द्रिय को बहिर्गामी माना गया है। बाहर जाकर द्रव्य का रूप आदि वह ग्रहण कर लेती है। इसीलिये, सांख्यशास्त्र में इन्द्रियों को भौतिक न कहकर अलंकारजन्य कहा गया है, जिससे इसमें विशिष्ट शक्ति निहित की गयी है। किन्तु जब सभी लोग शरीर को भोग-साधन मानते हैं, तब शरीर से बाहर जाकर इन्द्रियाँ अपना विषय ग्रहण कर सकें, यह कैसे सम्भव हो सकता है ? यह ठीक है कि चक्षुरिन्द्रिय दूर तक चली जाती है; परन्तु शरीर-सम्बन्ध के बिना वहाँ उसमें विषय-ग्रहण का सामर्थ्य कहाँ से प्राप्त होता है ? इसके अतिरिक्त सभी दर्शन इन्द्रियों के विषय-ग्रहण में मन की सहकारिता मानते हैं। मन के सहयोग के बिना इन्द्रियों से विषय-ग्रहण संभव नहीं होता। तब क्या इन्द्रियों के साथ मन भी बाहर चला जाता है ? यदि मन भी बाहर चला जाता है, तो फिर उतनी देर तक यह शरीर जीवित कैसे रहता है ? ये सारी उलझने पेचीदी हैं। आधुनिक विज्ञान कहता है कि बाहर के विषयों का चक्षु के धरातल-रूप दर्पण पर प्रतिविम्ब आ पड़ता है और अपने स्थान पर ही रहकर चक्षु उन विषयों को ग्रहण कर लेती हैं। तब प्रश्न उठता है कि पदार्थों की दूरी और समीपता का ग्रहण कैसे होता है, जिसकी उपपत्ति आधुनिक विज्ञान की ठीक-ठीक नहीं लगती। अस्तु ;

उपर्युक्त प्रकार की दार्शनिक जटिलता में डाल कर देवर्षि नारद ने अपने आगमन का प्रयोजन सुमेधा को बतलाया। उन्होंने कहा—"ब्रह्मा ने मुझे भेजा है। उन्होंने मेरे द्वारा तुम्हारे पास यह सन्देश भिजवाया है कि तुम 'त्रिपुरा-रहस्य' ग्रन्थ का निर्माण करो।" सुमेधा ने बड़े विनम्र शब्दों में कहा, "मैं तो कुछ नहीं जानता। ग्रन्थ मैं क्या लिखूँगा। गुरुजी ने तो जो कुछ भी बताया था, वह सारा ज्ञान विस्मृत हो गया। मेरी स्मृति ठीक नहीं है। मैं ग्रन्थ निर्माण कैसे कर सकता हूँ ?" नारद ने तुरन्त ब्रह्मा का ध्यानपूर्वक आवाहन किया। आवाहन करते ही ब्रह्मा पधारे। नारद ने पूछा, "भगवन् ! त्रिपुरा भगवती की कृपा सुमेधा ने तो प्राप्तकर ली। ऐसा भाग्यशाली होकर इसकी स्मृति-शक्ति कैसे नष्ट हो गयी ?" ब्रह्मा ने बताया कि 'सरस्वती' नदी के तीर पर एक 'अलर्क" नाम के तपस्वी ब्राह्मण रहते थे। वे भगवती के अनन्य उपासक थे और उनकी स्त्री भी भगवती की भक्त थी। उनके यहाँ एक 'सुमन्तु' नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पाँच वर्ष की अवस्था में ही बड़ी श्रद्धा से भगवती की आराधना करने

लगा। एक दिन 'अलर्क' ने अपनी स्त्री को प्रेमपूर्वक आमन्त्रित करते हुए 'अयि' ऐसा कहा। बालक ने उसे 'ऐ' रूप में ग्रहण कर लिया। वह निरन्तर उस शब्द का उच्चारण करने लगा। छोटी अवस्था में ही उस बालक की मृत्यु हो गयी। वही अब 'सुमेधा' रूप से उत्पन्न हुआ है। बाग्बीज के प्रभाव से भगवती की इस पर अत्यन्त कृपा तो है; किन्तु ज्ञान-पूर्वक इसने शुद्ध जप नहीं किया था। अतः स्मृति-शक्ति नहीं है। मैं इसे स्मृति-शक्ति दे देता हूँ जिससे यह विद्वान् हो जायगा और त्रिपुरा-रहस्य ग्रन्थ का निर्माण कर सकेगा। चलते-समय ब्रह्मा ने सुमेधा को आदेश दिया "तुम नित्य चार-चार अध्याय की रचना करना और ३६ दिनों में ग्रन्थ समाप्त कर देना। प्रतिदिन जो रचोगे, उसे नारद को सुनाते जाओगे। नारद इतने समय तक तुम्हारे समीप रहेंगे।" इस प्रकार, यह आदेश देकर ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये और नारद भी चले गये। दूसरे दिन फिर नारद आये और उस दिन से ही सुमेधा ने ग्रन्थ का निर्माण आरम्भ किया। इसने प्रतिदिन ब्रह्मा के आदेशानुसार चार-चार अध्याय के क्रम से ३६ दिनों में ग्रन्थ परिपूर्ण कर दिया।

सुमेधा ने परशुराम और दत्तात्रेय भगवान् के सम्वाद के रूप में इस ग्रन्थ का निर्माण किया है। जब परशुराम भगवान् ने श्रीजगदम्बिका का स्वरूप पूछा, तब दत्तात्रेय ने यही बताया कि त्रिपुरा भगवती परतत्त्व-रूप हैं। उनका स्वरूप मन और वाणी के अगोचर है। उस स्वरूप को तो ब्रह्मा और विष्णु भी कह और जान नहीं सकते। किन्तु समय-समय जो उनके अवतार हुए हैं, उनके ही चरित्र मैं तुम्हें सुनाऊँगा। उनसे तुम त्रिपुरा-माहात्म्य जान सकोगे, हमारे शास्त्रों में परतत्त्व के जानने की प्रक्रिया अवतार द्वारा ही सम्पादित की गयी है। अवतारवाद आर्य शास्त्रों का मुख्य विषय है। इसके बिना परतत्त्व के समझने का कोई उपाय नहीं है। श्रीमद्भागवत में अवतार का दूसरा शब्द 'आविर्भाव' लिखा है। जब वह परतत्त्व, भगवान् या भगवती आविर्भूत होते हैं, तब मनुष्य उसे जान सकता है। भागवत में यह जगत् ही भगवान् का पहला अवतार या आविर्भाव बताया गया है। इसके अन्तर्गत भिन्न भिन्न कार्य साधनार्थ भिन्न भिन्न शक्तियों को लेकर परतत्त्व के आविर्भाव समय-समय होते रहते हैं। फिर, उनके नाम, रूप, लीला और धाम से ही परिचय प्राप्त कर भाग्यशाली मनुष्य परतत्त्व की उपासना द्वारा सिद्धि प्राप्त करते हैं।

दत्तात्रेय भगवान् ने त्रिपुरा भगवती का पहला कुमारी अवतार बताया है। उसके चरित्र के सम्बन्ध में कहा है कि जिस समय भगवान् विष्णु शेष-शय्या पर क्षीरसमुद्र में शयन कर रहे थे और ब्रह्मा भी उनके समीप सेवा में उपस्थित हुए थे तथा भगवान् की आँखें खुलने पर, जिस समय ब्रह्मा को कुछ उपदेश हो रहा था, उसी समय इन्द्र आदि बहुत-से देवता बड़े परिश्रान्त रूप में घबराये हुए वहाँ आये। सभी देवगण प्रणाम कर विष्णु के आदेशानुसार उनके समक्ष बैठ गये। फिर विष्णु के प्रश्न पर उन्होंने अपने आगमन का कारण यह बताया कि हमलोगों में परस्पर बहुत विवाद छिड़ा हुआ है और उसके कारण बहुत अशांति हो रही है। उस विवाद को मिटाने के लिए ही आपकी सेवा में हम सब उपस्थित हुए हैं। इन्द्र ने कहा कि एक दिन जब मैं देव सभा में बैठा देवताओं को अपना माहात्म्य बता रहा था कि मैं सब देवताओं का राजा हूँ; मुझे पूरी शक्ति और सर्वज्ञता प्राप्त है, मेरे शासन में ही आपलोगों को सदा रहना चाहिए, तब बीच में ही अग्नि ने खड़े होकर कहा कि आपका यह अभिमान सत्य नहीं। सबसे बड़ी शक्ति तो मुझे प्राप्त है कि मैं समस्त वस्तुओं को क्षण-भर में नष्ट कर सकता हूँ। मैं ही सब पार्थिव पदार्थों को बनाता हूँ और मैं ही बिगाड़ता हूँ। इसलिये, सबसे श्रेष्ठ तो मुझे मानना चाहिये। अग्नि अपना महत्त्व कह ही रहे थे कि बीच में ही सोम बोल उठे कि नहीं तुम्हारा जीवन तो मेरे ही आधार पर है। यदि मैं तुम्हें भोजन नहीं दूँ, तो तुम कभी के समाप्त हो जाओ। जगत् के सम्पूर्ण तत्त्व तो मेरे ही परिणामभूत हैं। हमारे बिना किसी पदार्थ की सृष्टि नहीं हो सकती। तुम तो केवल मेरे अंगों की, भिन्न-भिन्न रूप में व्यवस्था-मात्र करते हो। तुम तो मेरे अनुयायी हो। इसलिये सबसे श्रेष्ठ तो मैं ही हूँ। इसी बीच वायु बोल उठे कि तुम सब वृथा अभिमान कर रहे हो मेरे समान शक्ति तो किसी में भी नहीं। मैं एक निमेष के लिये भी अपनी गति बंद कर दूँ, तो संसार के सब प्राणी मरणासन्न हो जायँ। जड़ पदार्थों को भी मैं जहां चाहूँ, उड़ा ले जा सकता हूँ। वृष्टि आदि तो मेरे ही

कारण होती है। अग्नि मेरी सहायता के बिना नहीं जल सकते। सोम का अवयवसन्निवेश भी मैं ही बनाता हूँ। इसलिये सबसे श्रेष्ठ तो मैं ही हूँ। हे प्रभो! इस प्रकार हम लोगों में विवाद उठ खड़ा हुआ और वह किसी प्रकार शान्त नहीं हो रहा है। यदि यह विवाद बढ़ कर परस्पर संघर्ष का रूप धारण कर लेगा, तो जगच्चक्र का परिचालन असम्भव हो जायगा। अतः आपकी सेवामें हम सब उपस्थित हैं कि वस्तु-स्थिति को स्पष्ट करके हमारा विवाद शान्त कर दें।

इन्द्र की बात सुन कर विष्णु मुस्कुराये और एक बार ब्रह्मा की ओर देखा और उन्होंने ब्रह्मा से कहा कि इन्हें मुख्य तत्त्व का आप उपदेश कर दें। किन्तु ब्रह्मा ने निवेदन किया कि भगवन्! इन अभिमानग्रस्तों को समझाना मेरी शक्ति के बाहर है। आप ही कृपा कर इन्हें मुख्य तत्त्व का उपदेश दे सकते हैं। विष्णु ने कहा परतत्त्व का उपदेश तो मैं भी नहीं कर सकता। मैं भगवान् शंकर का स्मरण करता हूं। वे ही यहाँ आकर अपने उपदेश द्वारा इनका विवाद शान्त कर सकेंगे। भगवान् विष्णु आदि के स्मरण करने पर शंकर भगवान् वहाँ पधारे। अभ्युत्थान और कुशल- स्वागत के अनन्तर सब वृत्तान्त सुन कर भगवान् शंकर ने कहा कि इन देवताओं को जगदम्बा ने मोहित किया है। उस भगवती की कृपा के बिना इनका मोह शान्त नहीं हो सकता, इसलिये उचित है कि हम सब मिल कर भगवती का ध्यान और स्तुति करें। वही कृपा कर प्रादुर्भूत होंगी और इनका मोह दूर करेंगी। जब ब्रह्मा, विष्णु और महेश ध्यानमग्न भगवती की स्तुति करने लगे, तब अकस्मात् घोर महाभयानक शब्द हुआ। उस भयानक शब्द से वहाँ पर बैठे सभी देवता मूर्च्छितप्राय हो गये और ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश खड़े होकर स्तुति करने लगे। चैतन्य-लाभ होने पर देवताओं ने देखा कि एक तेजोमय, किन्तु सौम्य मूर्त्ति दूर स्थित दिखाई दे रही है। उन्हें उस दिव्य रूप का तत्त्व कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या अद्भुत वस्तु है। देवताओं ने परामर्श कर पहले अग्नि को भेजा कि तुम जाकर इस रूप का ज्ञान प्राप्त करो कि यह क्या है। अग्नि ने समीप जाकर जब उस अद्भुत मूर्त्ति से पूछा कि आप कौन हैं, तब वहाँ से शब्द हुआ कि पहले तुम अपना परिचय दो और बतलाओ कि क्या शक्ति रखते हो। अग्नि ने बड़े अभिमान से कहा, "मैं सब का प्राण रूप; सब वस्तुओं में रहने वाला अग्नि हूँ। मुझ में इतनी शक्ति है कि मैं क्षणमात्र में सम्पूर्ण जगत् को भस्म कर सकता हूँ।" इस पर उस मूर्त्ति ने एक तिनका (तृण) उसके सामने रक्खा और कहा कि पहले इसे भस्म करके दिखाओ। अग्नि ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति उस तृण पर लगा दी, किन्तु उसे न जला सके। वे बिलकुल निस्तेज होकर लौट आये। उन्होंने अन्य देवताओं से कहा कि मैं इस अद्भुत तत्त्व को नहीं पहचान सका। अब आपलोग यत्न कीजिये। तत्पश्चात् सोम, वायु आदि गये और वे भी उस तृण को न तो गीला कर सके, न उड़ा सके। अन्त में इन्द्र अपने विविध आयुधों से सुसज्जित होकर उस आश्चर्यमय रूप के सामने पहुँचे। इन्द्र का वज्र भी उस तृण का कुछ नहीं बिगाड़ सका और इन्द्र निस्तेज हो गये। सभी के हतप्रभ हो जाने पर और उनके द्वारा बहुत स्तुति-प्रार्थना करने पर, उस महातेज से एक सौम्य मूर्त्ति प्रकट हुई। उस मूर्त्ति ने इन्द्र को समझाया कि तुम किसी में भी शक्ति नहीं है। समस्त शक्तियाँ मेरी दी हुई हैं। तुमलोग वृथा बड़प्पन का अभिमान मत करो और जिस-जिस कार्य में नियुक्त हो, उसका सम्पादन ठीक प्रकार से करते रहो। इसी से तुम्हें सिद्धि प्राप्त होगी। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि को भी दर्शन, आशीर्वाद एवं वर आदि देकर वह मूर्त्ति अन्तर्हित हो गयी। अन्त में, दत्तात्रेय ने कहा कि यह कुमारिका-अवतार था, जो देवताओं के अभिमान को नष्ट करने के लिये हुआ था।

यह कथा 'केनोपनिषद्' में भी आई है। थोड़ा भेद कथाप्रक्रिया में है। वहां उमा हैमवती का दर्शन होना लिखा है और उसमें इन्द्र को ब्रह्मज्ञान कराया गया है। कुल मिलाकर तात्पर्य यही है कि मुख्य 'परतत्त्व' ही सर्वशक्तिमान् है और सभी शक्ति-स्रोत यहीं से फूटता है। उस मूलतत्त्व को न पहचान कर अपने शक्ति का अभिमान करने वालों की इसी प्रकार दुर्गति होती है। भगवती की अवर शक्ति माया है जिसके परिणामभूत हमलोगों के अन्तःकरण द्वारा निर्मित वासना-ज्ञान है। उस छोटे से तृण-रूप वासना ज्ञान को न तो अग्नि जला सकती है और न वायु उड़ा सकता है। वह भगवती की कृपा से ही परम ज्ञान का उदय

होने पर हट सकता है। इसी दृष्टान्त से समझ लीजिये कि सब की शक्ति परिमित है। अनन्त शक्ति तो भगवती की ही है।

इस प्रकार "त्रिपुरा-रहस्य" में अनेक अवतारों का वर्णन करने के बाद भगवती 'ललिता' का अवतार लिखा गया है। 'तन्त्रशास्त्र' में ललिता की उपासना बहुत मुख्य मानी गयी है। सभी सम्प्रदायों में यह उपास्य है। वैष्णव भी राधा की सखी कह कर 'ललिता' की उपासना करते हैं। इसका रहस्य बड़ा अद्भुत है। इस 'त्रिपुरा-रहस्य' ग्रंथ में भी इस अवतार का बहुत विस्तार से वर्णन है। प्रायः इसी अवतार के वर्णन में यह ग्रंथ पूर्ण हो गया है। इसे एक नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव कह कर यहाँ 'ललिता' का वर्णन हुआ है और त्रिपुरा भगवती का ही एक रूप ललिता को माना गया है। विभाण्डक दैत्य के वध के लिये इसका अवतार हुआ। विभाण्डक की उत्पत्ति का भी इसमें विस्तृत वर्णन है।

विभाण्डक ने जब शंकर का घोर तप किया और शंकर जब वरदान देने के लिये पधारे, तब उसने अजर-अमर बन जाने का वर मांगा। शंकर ने कहा कि मूल-तत्त्व ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई अजर-अमर नहीं हो सकता। इस असम्भव वर को मत मांगो, दूसरा कोई वर ले लो। किंतु विभाण्डक ने और कोई वर स्वीकार नहीं किया और निरन्तर तप ही करता गया। इसकी अत्यंत उग्र तपस्या से जब त्रिलोकी भस्म होने लगी, तब देवताओं की प्रार्थना पर पुनः भगवान् शंकर उसके पास पधारे और बहुत समझा-बुझा कर उसे यह वर लेने पर राजी किया कि वर्त्तमान में जितनी शक्तियाँ हैं या जितने शस्त्रास्त्र हैं, उनसे वह नहीं मरेगा। इस प्रकार का वरदान प्राप्त कर उसने सभी देवताओं को परास्त किया। उसके युद्धों का इस ग्रंथ में अतिविस्तृत वर्णन है। अंत में, देवताओं की प्रचुर प्रार्थना पर भगवती त्रिपुरा ने एक शक्ति के रूप में अपने को प्रकट किया और नये शस्त्र की रचना से इसका वध किया। इस ललितावतार का वर्णन 'त्रिपुरा-रहस्य' ग्रन्थ में विस्तृत रूप से और इसकी स्तुति, प्रार्थना आदि भी अति रहस्यमय और अति विस्तृत है।

॥ शमित्योऽम् ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड की विषयानुक्रमणिका

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
१	सर्वप्रपञ्च के कारणभूत ॐ शिवतत्त्व और ह्रीं शक्तितत्त्व के द्वारा प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव से आगे के ग्रन्थविषयक वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण।	१
	दक्षिण देश में मलयाचल की प्राकृतिक सुषमा और उसकी उपत्यकाओं तथा पर्वत के ऊपर की भूमि के मनोरम दृश्य का वर्णन।	३
	महर्षिप्रवर पुण्यपुञ्ज श्रीपरशुराम के आश्रम का वर्णन तथा हारितायन का आगमन।	
	श्रेयः प्राप्ति के लिये अपने गुरु श्रीपरशुराम को उसका प्रश्न करना।	५
	महाविष्णु स्वरूप दत्तात्रेय का पूर्वसमय में साक्षात् श्रीत्रिपुराम्बा के विषय में हुए सम्वाद का स्मरण तदनुसार अपने शिष्य सुमेधा को भगवतीबाला की दीक्षा देना।	७
	सुमेधा हारितायन को साधना करने से बालाम्बा का स्वप्न में दर्शन और हारितायन को स्वरूपाविर्भूत बालाम्बा के साक्षात् दर्शन होने की सत्यता का आकाशवाणी द्वारा निश्चय, श्रीबाला की दीक्षा लिये हुए सुमेधा का फिर अपने गुरुदेव के समीप जाना और भगवती परा को प्रसन्न करने का साधन बताने से उसे सिद्धि प्राप्त होना।	११
	ब्रह्मा की सभा से आये श्रीनारद एवं हारितायन सुमेधा का सम्वाद।	१३
२	श्रीविद्यातत्त्व के विषय में देवर्षि नारद का गुरुसम्प्रदाय के साथ त्रिपुरारहस्य का स्फोरणवर्णन।	
	त्रिपुरा के गूढ़तत्त्व का सविस्तर वर्णन।	१५
	श्रीनारद के ध्यान करने पर ब्रह्मलोक से समागत पितामह ब्रह्मा का शुभागमन और श्रीब्रह्मा द्वारा देवर्षि से अपने स्मरण करने का कारण पूछना।	१६
	श्रीब्रह्मा द्वारा त्रिपुरा भगवती के माहात्म्य का हारितायन सुमेधा द्वारा सुविशाल ग्रन्थ के रूप में रचना के श्रेय प्राप्त होने और उसे श्रीविद्या के साक्षात्कार में पूर्वजन्म की इसी भागवती साधना के कारण भगवती सरस्वती का वरदान जिससे इस महामहिम ग्रन्थ का आविर्भाव का सुअवसर प्राप्त होना; शिवतत्त्व से शक्तिपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् की कारण भगवती त्रिपुरा का वर्णन।	२३

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठ
200		
३	सरहस्य त्रिपुरामाहात्म्य का वर्णन।	
	महर्षि जामदग्न्य परशुराम का चरित्र वर्णन।	
	श्रीरामचन्द्र को स्वशक्तिप्रदान का वरदान।	
४	अत्यधिक निर्वेदप्राप्त परशुरामजी का सम्वर्त से मिलन;	
	परशुराम को सम्वर्त के वास्तविक रूप के प्रति सन्देह।	
	सम्वर्त एवं भार्गव परशुराम का सम्वादवर्णन।	
	स्वात्मतत्त्व का संक्षेप से दिग्दर्शन तथा उसे जानकर आत्मोपलब्धि का उपदेश।	
	अवधूत महर्षि सम्वर्तजी द्वारा गुरु की प्रशंसा तथा दत्तात्रेय के पास जाने को परशुराम को आदेश देना।	
	श्रीपरशुराम का गन्धमादन को प्रस्थान।	
५	मार्ग में जाते हुए उसका मनुष्यशरीर के नाना दोषों पर ऊहापोह करना।	
	संसारि लोगों की दुःखपूर्ण अवस्था का वर्णन।	
	जगत् की असारता का चिन्तन।	
	परशुराम का दतात्रेय के आश्रम में प्रवेश और महा अवधूताचार्य श्री दत्तगुरु के दर्शन।	
	दत्तात्रेय से भार्गव राम का प्रश्न करना और श्री गुरुदेव दत्तात्रेय द्वारा उनका उत्तर।	
६	श्रीगुरुवर्य दत्तात्रेय के आदेश से राम का आत्मप्राप्ति के लिये निश्चय करना।	
	भार्गव राम को श्रीदत्तगुरु का सदुपदेश।	
	प्रसङ्गप्राप्त परमशिवअद्वैततत्त्व का उपदेश और त्रिपुरा की आराधना का आदेश।	
	देवगण का अपनी अपनी श्रेष्ठता बतलाने को परस्पर में विवाद।	
७	श्रीपराम्बा के विषय में पुराकल्प की देवगण की कथा का उपक्रम; उनके परस्पर विवाद में	
	अग्नि की श्रेष्ठता का वर्णन।	
	देवगण को समझाने के लिए विष्णु की मध्यस्थता करना।	
	त्रिदेवों द्वारा भगवती त्रिपुरा का स्मरण करना।	
८	त्रिदेवों को भगवती का दर्शन सर्वप्रथम ब्रह्मा द्वारा भावमय स्तवपाठ करना तथा	
	विष्णु द्वारा भगवती की स्तुति।	
	पशुपति शिव के द्वारा त्रिपुराम्बा का स्तवन।	
	देवी द्वारा तीनों देवों को सान्त्वनाप्रदान।	
	अग्नि की पराजय।	
	श्रीदेवी का वायु के साथ सम्वाद।	
९	भगवती के प्रतिबल के विषय में इन्द्र का सन्देह।	

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
	देवी से इन्द्र का विवाद ।	८६
	बृहस्पति द्वारा भगवती त्रिपुरा की स्तुति।	६३
	देवगण द्वारा भगवती की स्तुति करने पर त्रिपुरा द्वारा स्वप्रभाव को प्रकाशित करना।	६५
	विष्णु द्वारा इन्द्रादि देवगण को भगवती के दिव्यप्रभाव का वर्णन।	६७
	सभी देवगण का भगवती के परमोघप्रभाव के प्रति आश्वस्त होना और त्रिदेवों का स्वधामगमन और इस प्रकार इन्द्रादि देवताओं का मोहनाश होना।	६६
१०	भगवती के त्रिपुराख्यान का निरूपण।	१००
	भगवती द्वारा तीन रूप धारण करना।	१०१
	सृष्टि के विषय में परशुराम की शंका करना।	१०३
	ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की रचना में तपस्या करने के बाद नानाविध उपायों से उसे आरम्भ करने के विषय में भार्गव परशुराम को श्रीदत्तात्रेय का उपदेश।	१०५
	बढ़ती हुई सृष्टि के विषय में ब्रह्माजी द्वारा तप से सन्तुष्ट की हुई भगवती को अपनी बाधायें बताना।	१०७
	ब्रह्मा तथा मृत्यु का सम्वादवर्णन।	१०६
	जगत्कृत्य से अत्यन्त संत्रस्त त्रिदेवों का भगवती को प्रसन्न कर उनसे अपना अभीष्ट सिद्ध करने का प्रयत्न।	१११
	ब्रह्मादिदेवगण को स्वशक्तिप्रदान करने के लिये अपने अंश से श्रीलक्ष्मी, पार्वती और सरस्वती का आविर्भाव करना तथा उनकी विच्छित्ति का वर्णन।	११३
	त्रिपुराख्यान के चरित्र के श्रवण का फल।	११५
११	भगवती के त्रिरूपाख्यान का वर्णन।	१२०
	बृहस्पति के समक्ष देवराज इन्द्र का आत्मनिवेदन।	१२१
	देवराज द्वारा ब्रह्मा के पास सब देवगण सहित बृहस्पति के निर्देशन में ब्रह्मलोक में गमन तथा ब्रह्मा की सभा का वर्णन।	१२३
	श्रीब्रह्मा और देवराज का परस्पर सम्वाद।	१२५
१२	भगवती रमा का उपाख्यान—कामदेव की कथा।	१२७
	देवगण को लक्ष्मी का वरदान।	१२६
	तपस्या से प्रसन्न भगवती श्री का आविर्भाव।	१३१
	देवगण के सभी कार्यों में सहायताप्रदान करने के लिये लक्ष्मी द्वारा कामदेव को समर्पण करना।	१३३
	कामदेव का उपाख्यान।	१३५
१३	लक्ष्मी तथा कामदेव का उपाख्यान।	१३६

विषयविवरण

अध्याय संख्या		पृष्ठसं
	मर्त्यगण को वश में करने के लिये बालक काम का मर्त्यलोक में आकर जनगण को आवाहन।	
	मर्त्यगण के साथ काम का भीषण युद्ध।	
	राजा शेखर के मन्त्रियों द्वारा अपने स्वामी से इस उद्धत काम को दबाने की मन्त्रणा करना।	
	साम, दाम, दण्ड एवं भेद इन नीतियों का प्रतिपादन ।	
	वर्धन राजा का अपने इष्टदेव महादेव को सन्तुष्ट करने को तपस्यार्थ जाना ।	
१४	भगवान् शंकर द्वारा अजेय होने का वरदान पाने को तप करते हुए राजा को दर्शन देना ।	
	राजा द्वारा शंकरस्तुति ।	
	वर्धन को भगवान् शिव का वरदान ।	
	राजावर्धन का काम से युद्ध का आरम्भ करना और राजा के अमात्य सुधृति द्वारा नगर की रक्षा के लिये प्रयास ।	
	शिवकवच द्वारा वीरपुरुषों की रक्षा का विधान ।	
१५	श्रीनारद के प्रबोधन करने से देवराज इन्द्र का कामदेव की सहायता के लिये तैयार हो जाना।	
	कामदेव का युद्ध के प्रति अत्यधिक उत्साह ।	
	काम की सहायता करने के लिये इन्द्र के पुत्र जयन्त का समुत्साह।	
	सुधृति तथा वसुगण की परस्पर वार्त्ता ।	
	सावित्र एवं रणधीर का युद्ध में कौशल वर्णन ।	
१६	जयन्त एवं रणधीर का परस्पर में युद्ध ।	
	जयन्त एवं रणधीर की युद्धकथा।	
	युद्ध में रणधीर को मूर्च्छित करदेने पर भीम का कामदेव केसाथ मर्त्ययुद्ध में पराक्रम दिखाना ।	
	देवगण से युद्धहेतु राजपुत्रों द्वारा पूरी साजसज्जा करना ।	
१७	भीम आदि महारथियों द्वारा रणक्षेत्रमें युद्ध के कौशल का प्रदर्शन ।	
	वीरसेन के द्वारा युद्ध में प्रभूत पराक्रम व्यक्त करना ।	
	शत्रुञ्जय और कुबेर के गदायुद्धका निरूपण ।	
	शत्रुञ्जय के गदायुद्ध के लाघव से कुबेर का उसकी प्रशंसा करना ।	
	वरुण और शत्रुघ्न का आपस में युद्ध ।	
	वरुण तथा समरतापन का युद्ध ।	
	यम एवं सुधृति का युद्ध ।	
१८	राजपुत्रों से युद्धकरनेपर हराये हुए देवराज इन्द्र प्रभृति देवगण को बाँध लेनेका निरूपण ।	

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
	गौरी के शुभजन्म के उपलक्ष्य में पिता पर्वतराज के द्वारा ब्राह्मणगण को नानाविध दान।	२६५
	नारद एवं हिमवान् का सम्वाद।	२६७
	हिमवान् को स्वपुत्री के लिये नारद द्वारा योग्यवर के रूप में वरण के लिये श्रीविष्णु के सुन्दर गुणों का वर्णन करना।	२६६
३०	अपने पिता नगराज को नारद से प्रेरणा पाने के कारण विष्णु को उसका वर बनाने के अभिप्राय में अपनी असहमति होने से गौरी का अपने इष्टपति की प्राप्ति के लिये तप करने को अज्ञातस्थान में जाना।	३०१
	भगवती का ज्ञानकलिकास्तोत्र।	३०३
	गौरी के समक्ष भगवती त्रिपुराम्बा का आविर्भाव।	३०५
	गौरी के सामने सखियों में से एक के द्वारा पितृगृह में सर्वाशतया माता आदि की आकुलता का वर्णन।	३०७
३१	हिमालय द्वारा गौरी के अन्वेषण का भगीरथ प्रयत्न।	३०६
	गौरी के वियोग से अत्यधिक विलाप करते नगराज हिमालय को दूत द्वारा अपनी पुत्री का वृत्तकथन।	३११
	शोकाकुल हिमालय को स्वपुत्री का वृतान्त वर्णन करना।	३१३
	गौरी का अपना अन्तर अभिप्राय कहना।	३१५
	नारद एवं हिमवान् का सम्वाद।	३१७
	विष्णुदूतों द्वारा नगराज के प्रदेश तथा राजधानी के लोगों पर अत्याचार करने पर स्वपुत्री सहित मेनाव हिमाचल द्वारा कुलगुरु कश्यप द्वारा सान्त्वना देना।	३१६
३२	पुरोहित के द्वारा वस्तुस्थिति वर्णन करने पर मेना द्वारा गौरी की प्रार्थना।	३२१
	स्वस्वरूप स्थित गौरी द्वारा भीषण आकृतिका धारण करना।	३२३
	उस विशाल भीषणआकार से भयत्रस्त उपस्थित देवगण द्वारा प्रार्थना।	३२५
	हिमाचल द्वारा विष्णु से क्षमा मांगना।	३२७
	गौरी को वधू बनाकर लाने का अनुरोध।	३२६
	ब्रह्मा द्वारा गौरी के साथ विवाह करने को शंकर को बुलाना।	३३१
	गौरी का शिव के साथ मंगलविवाह।	३३३
३३	विष्णु को ज्वालामुखी देवी द्वारा सुदर्शन चक्र देना।	३३४
	विष्णु को सुदर्शन की प्राप्ति के विषय में दत्तात्रेय-परशुराम-सम्वाद में अवान्तर कथा।	३३५
	ज्वालामुखी देवी को विष्णु द्वारा स्वतपस्या द्वारा प्रसन्न करना।	३३७
	ताराशंकर पद्म द्वारा इन्द्र का पराभव।	३३६
	बृहस्पति को इन्द्र द्वारा अपनी स्थिति कहना और इन्द्र को गौरी का दर्शन होना।	३४१

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
३४	सन्तान के विषय में भगवती गौरी का देवराज इन्द्र के समक्ष स्पष्टीकरण।	३४०
	पुत्रप्राप्ति में बाधक ऋषिपत्नी के शाप का वृत्तान्त।	३४१
	भूलोकस्थित विप्रगण के ऊपर अपना अधिकार करने को देवगण द्वारा विष्णुप्रभृति सुरनायकवृन्द से मन्त्रणा।	३४२
	पुत्रप्राप्ति होने का शिव को शाप है इस विषय में भगवती गौरी का इन्द्र से सम्वाद।	३४३
	श्रीविष्णु की प्रार्थना।	३४५
	श्रीगौरी के उपाख्यान में सम्पूर्ण चराचर को अपने में लय करनेवाले लिंग में शक्तियुक्त त्रिदेवों का अन्तर्भाव और उनके तुरीयपद होने का वर्णन।	३४६
	शिवपूजा में लिंग के माहात्म्य का वर्णन।	३४७
	लिंगपूजा ही उत्कृष्ट है इसके लिए भगवती त्रिपुरा का वरदान।	३४८ ४०
	इन्द्र एवं कामदेव का सम्वाद।	३४९
	शिवजी को पराजित करने के लिए सज्जित काम का अपनी पत्नी से वार्त्तालाप।	३५०
	लक्ष्मी द्वारा अपने साथ रति को लिवा लाना।	३५१
३५	लक्ष्मी के अनुरोध से त्रिपुरा द्वारा काम को कामाक्षीरूप से अपने नेत्र में समाविष्ट कर लेना।	३५२
	भगवान् शिव का कामदहन।	३५३
	दत्तात्रेय एवं भार्गव के सम्वाद में देवस्वामी कार्त्तिकेय का जन्म।	३५४
	विधाता आदि देवगण द्वारा कार्त्तिकेय जन्म की प्रार्थना भगवान् शिव का गौरी के साथ संगम।	३५५
	भूमि तथा अग्नि द्वारा शिव के वीर्य को धारण करने में असमर्थ होने पर ब्रह्मा के कहने से उसे गंगाद्वारा धारण करना।	४१
	शरों के वन में कुमार स्वामीकार्त्तिकेय का आविर्भाव।	३५६
	स्कन्द द्वारा क्रौञ्चपर्वत का विदारण करना।	३५८
	ब्रह्माजी द्वारा सनत्कुमार रूप में स्कन्द के पूर्वजन्म की कथा को कहना।	३५९
	गौरी के सहित भगवान् शंकर का सनत्कुमार के संनिकट जाना।	३७४ ४२
	कार्त्तिकेय के पूर्वजन्म के विषय में श्रीशंकर एवं सनत्कुमार का सम्वाद।	३७७
	भगवती पार्वती तथा श्रीशंकर द्वारा सनत्कुमार का वर्णन।	३७८
३८	भगवती सावित्री का वृत्तान्त।	३७९
	सावित्री एवं ब्रह्माके के कलह में श्रीविणु तथा शिव के द्वारा मध्यस्थता।	३८०
	यज्ञ में ब्रह्मा द्वारा सावित्री का आवाह।	३८१
	क्रुद्ध हुई सावित्रीद्वारा यज्ञ में अत्यधिक कोलाहल मचाना।	३८२ ४३

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
३८	देवगण द्वारा संकट से त्राण पाने के लिये त्रिपुरा भगवती की प्रार्थना।	३८७
	श्रीब्रह्मा के यज्ञ में त्रिपुरा की आज्ञा से शान्तिस्थापन का वर्णन।	३८९
३९	त्रिपुरा भगवती के दर्शन करने के अनन्तर श्रीब्रह्मा की जिज्ञासा की शान्ति के लिये गोपकन्या के पूर्व जन्म का वृत्तान्त।	३९०
	हर्यक्ष के द्वारा गोपवधू के साथ बलात्कार का वर्णन।	३९१
	त्रिपुरा के कहने से सावित्री को सन्तोष होना।	३९३
	स्वरवर्णादिरूपा गायत्री का परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी इन चार प्रकार की वाणी का स्वरूप।	३९५
	गोपराज द्वारा गायत्री की प्रार्थना।	३९७
	सावित्री का पर्वत में रहकर ब्रह्मा के साथ यज्ञकार्य सम्पन्न करना।	३९९
४०	श्रीदत्तभार्गव के सम्वाद में द्वापर युगों में गोप के घर में विन्ध्यवासिनी के अवतार का वृत्तान्त।	४००
	देवगणद्वारा देवीकी स्तुति करना।	४०१
	देवों के द्वारा मातृकास्तुति।	४०३
	मातृकास्तव के अनन्तर भगवती के विन्ध्यवासिनीरूप का वर्णन।	४०५
	संकट के निवारण के लिये देवी द्वारा देवगण को उपाय कहना।	४०७
	कंस के द्वारा नन्द के घर से वसुदेव द्वारा लायी हुई कन्या को उसे देने पर शिला पर मारने से उसका आकाश में गमन और आकाशवाणी।	४०९
	गोपियों द्वारा भगवती कात्यायनी का व्रत करना।	४११
	श्रीभगवती कात्यायनी के व्रत का विधान।	४१३
४१	कात्यायनी देवी का द्वापर में विन्ध्यवासिनी रूप से अवतारधारण वर्णन।	४१५
	भगवती के द्वारा तीन रूपों को धारण करना।	४१७
	भावी कलियुग में जनता के उत्पथगामिनी होने से उन्हें सन्मार्ग पर लाने को देवगण द्वारा भगवती को अनुरोध करना।	४१९
४२	श्रीभगवती चण्डिका के माहात्म्य का वर्णन।	४२१
	दैत्यों द्वारा स्वर्ग से निकाले गये देवगण की दुर्दशा।	४२३
	विष्णु के कथन से भगवती को प्रसन्न करने पर देवकार्य के सम्पन्न करने को भगवती पार्वती को भेजना।	४२५
	काली के द्वारा चण्ड एवं मुण्ड दैत्य का सिर फोड़ना।	४२७
	दैत्यराज के दूत सुग्रीव के द्वारा दैत्यपति के समीप भगवती गौरी द्वारा प्रति सन्देश भेजना।	४२९
४३	देवी गौरी द्वारा धूम्रलोचन, चण्ड-मुण्ड तथा रक्तबीज राक्षसों का वध होने पर देवी को पराजित करने के लिये शुम्भ का अपनी सेना सहित आगमन।	४३१
	शुम्भ की विशाल सेना की प्रशंसा।	४३३

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठांक
	रक्तबीज के नाश कर दिये जाने पर चण्डिका से युद्ध करने को निशुम्भ का आगमन।	
	केवल मात्र देवी का शुम्भ से युद्ध।	
	शुम्भादि के वध के अनन्तर विष्णु द्वारा श्रीदेवी की स्तुति करना।	
	श्रीदेवी द्वारा देवगण के हितार्थ शुम्भादि दैत्यों के वध किये जाने का निरूपण।	४८
४४	भगवती कालिका के चरित्र का वर्णन।	
	"दिव्य स्त्रियों को छोड़कर तुम्हारा कोई भी विनाश नहीं कर सकता" इस प्रकार कालखंज दैत्यों की तपस्या से प्रसन्न हो ब्रह्मा का वरदान।	
	भगवती त्रिपुरा के रूप के लावण्य का वर्णन।	
	काली के द्वारा भगवान् सदाशिव को पति रूप में वरण करना।	४९
	ब्रह्मादि देवगण द्वारा कालिका की स्तुति।	
	महाकालेश एवं भगवती कालिका के संगमकाल में भगवती देवी को प्रतिबोध।	
४५	दुर्गाचरित्र में पतिव्रता स्त्री का माहात्म्य।	
	पतिव्रता सुमित्रा (सानुमती) द्वारा वायु का निरोध।	५०
	नारद द्वारा अन्वेषण करने पर पतिव्रता को छेड़ने से वायु का निरोध हुआ, इसे जान देवगुरु के आदेश से इन्द्र का महर्षि मुद्गल के आश्रम में कुबेर, वरुण एवं अग्नि के साथ जाना। महर्षि के कथनानुसार सानुमती को प्रसन्न करने के लिये इन इन्द्रप्रमुख देवगण का महर्षि के आश्रम में नानाविध सेवाव्रतों का पालन करना।	
	शची का साध्वी के शाप से महिषीरूप का धारण करना और महिषी को पुत्र की प्राप्ति उसका अजेय हो त्रिलोक को त्रासयुक्त करना ; देवगण का इन्द्र की अध्यक्षता में संकट को टालने के लिये विष्णु एवं शिव के समीप जाकर उपाय पूछना। उनके द्वारा देवी की प्रार्थना करने का परामर्श।	५१
	भगवती द्वारा अपने दिव्य रूप को धारण कर महिषासुर के वध के लिये साज-सज्जायुक्त होना।	
४६	देवी द्वारा राक्षसराज महिष की सेना को पराजित करने पर त्रैलोक्य के कण्टक इस असुरराज के वध से समस्त देवगण द्वारा भगवती की स्तुति।	
	महिषदैत्य की सेना से सिंह का युद्ध।	
	सिंह के प्रबल पराक्रम के आगे दैत्य का पराभव।	
	अम्बिका एवं महिषासुर के बीच में युद्ध।	
	भगवती के द्वात्रिंशन्नाम (बत्तीसनामों) मालास्तोत्रम् का विवरण।	५२
	देवगण द्वारा देवी की स्तुति तथा देवी की पूजा काविधान के साथ भगवती का अन्तर्धान करना।	
४७	काम के पुनरुद्भव के कथानक का निरूपण।	
	श्रीदेवीमाहात्म्य की उत्कृष्टता।	

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
	देवी को सन्तुष्ट करने को देवगण द्वारा काम को फिर से जीवित करने की प्रार्थना।	४८१
	ललिता द्वारा काम को वरदान।	४८३
	काम के उज्जीवन के बाद शङ्करांश से भगवती गिरिजा में स्कन्द का आविर्भाव।	४८५
४८	भगवान् श्रीविष्णु द्वारा मोहिनी रूप से शंकर को मोहित करने का प्रश्न ;	
	भगवान् विष्णु द्वारा साठ हजार वर्ष तक त्रिपुरा की आराधना।	४८७
	देवीमाहात्म्य में श्रीविष्णु द्वारा मोहिनीरूप के धारने की उत्कृष्टता का निरूपण।	४८९
	श्रीविष्णु द्वारा मोहिनीस्वरूप से शिव का सम्मोहन।	४९१
	त्रिपुरारूप से भगवती का द्वादश पीठों में नित्य विराजमान होना।	४९३
४९	ललितामाहात्म्य।	४९५
	त्रिपुरा के माहात्म्य के विषय में हयग्रीव तथा अगस्त्य का सम्वाद।	४९७
	राक्षसराजभण्ड के प्रबल प्रताप का वर्णन।	४९९
	भण्ड के द्वारा त्रैलोक्य का विजयवर्णन।	५०१
५०	शिवजी को प्रसन्न करने के लियेदैत्यराज भण्ड की तपस्या का वर्णन।	५०३
	उसकी उग्र तपस्या से इन्द्र के आसन का डगमगाना।	५०५
	श्रीशिव से वर प्राप्तकर भण्ड द्वारा लोकों को त्रस्त करना।	५०७
	शून्यकपुर में भण्ड के वैभव का वर्णन।	५०९
	गणेश एवं भण्ड का युद्धकौशलवर्णन।	५११
	गौरी से पराजित भण्ड का ब्रह्मादि देवगण की मध्यस्थता से शून्यकपुर को लौट जाना।	५१३
५१	ललिता माहात्म्य के प्रकरण में भण्ड से निष्कासित देवराज प्रभृति को देवगण के गुरु बृहस्पति	५१४
	द्वारा आश्वासन तथा ललिता को प्रसन्न करने के हेतु तपस्या का उपदेश।	५१५
	देवगण द्वारा तन्त्र मार्ग से यज्ञ करने पर भगवती का प्रसन्न होकर चिदग्निकुण्ड से आविर्भाव।	५१७
	भगवती की लोकोत्तर अद्भुत शोभा का वर्णन।	५१९
	श्रीबृहस्पति द्वारा भगवती त्रिपुरा की स्तुति।	५२१
	पराम्बा की स्तुति।	५२३
	प्रसन्न हुई भगवती द्वारा देवगण को अभीष्ट वरदान देना।	५२५
५२	भगवती से आश्वस्त हुए देवगण द्वारा उनके गुरु बृहस्पति के आदेश से देवी के स्वरूप दर्शन के लिये	
	श्रीसूक्त का जपविधान।	५२६
	इधर श्रुतवर्म्मा द्वारा देवगणको पराजित करने के लिये मन्त्रणा।	५२९
	श्रुतवर्म्मा के भाषण की मदोन्मत्तद्वारा भर्त्सना।	५३१
	ज्वालामालिनिका द्वारा दैत्यगण के मार्ग को रोकने के लिये अग्नि की ज्वाला का प्रसार करना।	५३३

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसं
	देवगण द्वारा उत्साहपूर्वक भगवती का पूजन करना ।	
५३	ललितामाहात्म्यप्रकरण ।	
	हयग्रीव द्वारा अगस्त्य के प्रति लक्ष्मीसूक्तविधान का कथन ।	
	लोपामुद्रा को अपने पिता के गृह में श्रीदेवीदीक्षा की प्राप्ति ।	
	देवी के श्रीसूक्तविधान का वर्णन ।	
	श्रीदेवी के श्रीपुर के लिये ब्रह्मा द्वारा विश्वकर्मा को उपदेश ।	
५४	श्रीपुर का निरूपण।	
	लघुश्यामला का वर्णन	
	श्रीचक्र का वर्णन ।	
५५	श्रीब्रह्मा एवं विश्वकर्मा का सम्वाद ।	
	ब्रह्मादि देवगण के द्वारा व्यक्त स्वरूप में अपने पुर में निवास हेतु भगवती को प्रार्थना करना।	
	देवी के द्वारा श्रीब्रह्मा को अपने आसन के लिये आदेश ।	
	सदाशिव द्वारा देवी की व्यक्त आकृति का नामकरण ।	
	अपने समानशीलसम्पन्न पुरुष के वाम अङ्क में भगवती की स्थिति ।	
	श्रीपुर में कामेश्वर भगवान् की गोद में स्थित श्रीदेवी के शक्तिमण्डल के निर्माण का वर्णन ।	
५६	श्रीब्रह्मा एवं विश्वकर्मा का सम्वाद ।	
	पराशक्ति के द्वारा अपने अद्भुत स्थान आदि की रचना का वर्णन ।	
	श्रीचक्र का वर्णन ।	
	मुद्रादेवी वर्णन के सहित ब्राह्मी माहेश्वरी आदि का वर्णन ।	
	देवी शक्तियों के नाम व स्थान का वर्णन ।	
५७	श्रीचक्रदेवतागण का वर्णन ।	
	स्वअभीष्टस्थान की प्राप्ति के लिये दशशक्तियों द्वारा तपस्या का वर्णन ।	
५८	ज्ञानानन्द रूपी शक्ति का पिङ्गला इडा के सहित माहात्म्य कथन ।	
	चिन्तामणिगृह में चिति शक्ति की प्रधानता का ब्रह्मा द्वारा वर्णन ।	
	श्रीदेवी कृपा से सायुज्य पर्यन्तपद की प्राप्ति ।	
५९	श्रीनारद द्वारा भण्ड का समुद्बोधन।	
	देवर्षि तथा भण्ड का सम्वाद ।	
	शब्दरूपा भगवती का वर्णन ।	
	श्रीपुर में श्रीदेवी के शक्तिमण्डल का आविर्भाव का वर्णन ।	
	चितिस्वरूपा भगवती का परमार्थतया निरूपण ।	

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
	भगवती श्रीदेवी की कृपा से भण्ड को त्रैलोक्य के प्रभुत्व की प्राप्ति।	६०३
६०	नारद एवं हारितायन के सम्वाद में भण्डासुर के विषय में वर्णन।	६०४
	कामेश्वरी के पतिरूप में भगवान् कामेश्वर का आविर्भाव।	६०५
	नारद के द्वारा भण्डासुर के भाग्य के लिये परामर्श।	६०७
	राक्षसराज भण्ड की सेना के साथ देवी शक्तियों का सज्जित हो युद्धार्थ आगमन।	६०९
	देवीकी शक्तियों का भण्ड की दैत्यसेना के साथ युद्ध।	६११
	श्रीदेवी के साथ युद्ध करने को शीघ्रता करते हुए भण्ड के मन का उद्वेग।	६१३
	राक्षसराज भण्ड के अपने भावी कार्य के लिए नाना प्रकार के सन्देह द्योतन।	६१५
६१	श्रीललिता की सेना की पूरी तैयारियाँ जानने के लिये दैत्यराज के द्वारा दूत भेजना।	६१७
	विजयमन्त्री द्वारा साम-दान दण्ड और भेद नीतियों का विवेचन।	६१९
	देवी की शक्तिसेना में प्रविष्ट दैत्यदूत अमित्रघ्न को दण्डनाथा द्वारा पकड़ लिया जाना।	६२१
	देवीकी आज्ञा से अमित्रघ्न को छोड़ना।	६२३
	शक्ति सेना में से लौट आये विद्युन्माली दूत द्वारा अपनी आँखों देखा शक्तिसेना की तैयारियों का वर्णन।	६२५
	दूत द्वारा भण्ड दैत्यराज के समक्ष देवीशक्तियों की युद्धसज्जा का वर्णन।	६२७
६२	अमित्रघ्न के द्वारा राक्षसराज के सम्मुख देवीशक्तियों का निरूपण।	६२८
	अमित्रघ्न द्वारा देवी के द्वारा भिजवाये गये सम्वाद का वर्णन।	६२९
	दैत्यराज भण्ड द्वारा इन सबको सुनने के अनन्तर अपने भावी कार्य के शुभफल की आशा से हर्ष।	६३१
	देवी की शक्ति सेना के साथ युद्ध करने के लिये दैत्य सेनाधिपति की तैयारियाँ करना।	६३३
	हस्तिसेनानायिका को दण्डनायिका का आदेश।	६३५
६३	श्रीबालादेवी का समर में पराक्रमवर्णन।	६३७
	श्रीबाला के द्वारा राक्षससेना के संहार किये जानेपर कुटिलाक्ष द्वारा नाना तर्कवितर्कों का करना।	६३९
	बाला और रथनेत्री का सम्वाद।	६४१
	विशुक्र के द्वारा बाला का निरोध।	६४३
	फिर रथनेत्री तथा बाला का सम्वाद।	६४५
६४	विशुक्र दैत्य के साथ बाला का युद्ध।	६४७
	विषङ्ग का बाला के साथ युद्ध।	६४९
	भण्डअसुरराजके समक्ष बाला का आगमन।	६५१
	कुमारी तथा भण्डदैत्यराज का परस्पर युद्धकौशल में पराक्रम।	६५३
	भण्डराक्षस तथा बाला का युद्ध।	६५५
६५	बाला का समर में पराक्रमवर्णन।	६५६

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठ
	भगवती के आदेश से बाला का युद्ध से लौटाकर लिबालाना और भगवती के पार्श्व में उसका स्थान।	
	देवी की सेना तथा राक्षसराज की सेनाओं में भयङ्कर युद्ध का वर्णन।	
	विशुक्र द्वारा सम्पत्करी के साथ युद्ध।	
	अश्वारूढा द्वारा भण्ड की माया की प्रतारणा।	
	कुमारी एवं भण्ड दोनों का पराक्रम निरूपण।	
६६	सम्पत्करी एवं अश्वारूढा द्वारा दुर्मदराक्षस का वध।	
	भण्डासुर का अपने सेनापतियों से परामर्श करना।	
	शक्तिगण से युद्ध करने को दुर्मद का प्रयास।	
	शक्तिसेना तथा दैत्यसेना का युद्ध।	
	दुर्मदका देवी के साथ युद्ध।	
६७	नकुली के पराक्रम से करङ्कादि दैत्यगण का वध।	
	कुरण्ड द्वारा अश्वारूढा को युद्ध के लिये ललकारना।	
	कुट्टिलाक्ष के आदेश से पाँच दैत्य सेनापतियों की अध्यक्षता में शक्तिसेना से लड़ने को तत्पर होना।	
	कोलमुखी को वारण कर मन्त्रनाथा देवी द्वारा युद्ध की तैयारी करना।	
६८	नकुली का पराक्रम।	
	विषङ्ग को कुट्टिलाक्ष का समझाना।	
	देवीकी माया से मोहित कुट्टिलाक्ष का विषङ्ग को प्रबोधन	
	श्रीदेवी की आज्ञा से तिरस्करिणी द्वारा दैत्यसेना को नष्ट-भ्रष्ट करना।	
	तिरस्करिणी द्वारा बलवान् दैत्य की पराजय।	
६९	विषङ्ग के छलयुद्ध का वर्णन।	
	बाला के साथ भण्ड के पुत्रों का युद्ध।	
	कुट्टिलाक्ष के साथ जम्भिनी का युद्ध।	
	मन्त्रिणी एवं विशुक्रका युद्ध।	
	दैत्यों का श्रीचक्रपर आक्रमण।	
७०	विषङ्ग की पराजय का वर्णन।	
	युद्ध में कामेश्वरी तथा विषङ्ग का सम्वाद	
	कामेश्वरी द्वारा विषङ्ग के सामने उसे तिरस्कार युक्त वचनों से निन्दित करना।	
	विषङ्ग का वध करने को दण्ड साम्राज्ञी द्वारा उपाय करना।	
	ज्वालामालिनी का द्वारा शत्रु को रोकने के लिये साल के निर्माण का वर्णन।	
७१	श्रीचक्र के विनाश के लिये विशुक्र द्वारा विघ्नयन्त्र का प्रयोग।	

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
	विशुक्र द्वारा विषङ्ग को प्रबोधन।	७१७
	विघ्नयन्त्र द्वारा श्रीचक्र को नाश करने का प्रयत्न।	७१६
	शक्तिगणों पर विघ्नयन्त्र के प्रभाव का वर्णन।	७२१
	बाला के साथ भण्डपुत्रों का युद्ध।	७२३
७२	उभयपक्ष की सब सेनाओं का आगमन।	७२५
	गणेश और विशुक्र का युद्ध।	७२७
	अपने पराक्रम को काम में लेने के लिये श्रीदेवी से निवेदन के लिये बाला की व्यग्रता।	७२६
	दण्डिनी के लिये बाला द्वारा अपना अभिप्राय वर्णन।	७३१
	भण्ड के तीस पुत्रों का आगमन।	७३३
७३	भण्ड के महावीर पराक्रमशील पुत्रों का वध।	७३५
	गणेश और गजासुर का परस्पर मुष्टिका युद्ध।	७३७
	बाला द्वारा प्रदर्शित पराक्रम का वर्णन।	७३६
	बाला द्वारा दैत्यसेना के विध्वंस का वर्णन।	७४१
	विषङ्ग एवं विशुक्र की मूर्च्छा।	७४३
७४	दोनों पक्षों की सेना का समागम।	७४५
	विशुक्र एवं विषङ्ग द्वारा भण्ड के शोक को दूर करने के लिये चेष्टा।	७४७
	श्रीरथ चक्र में विराजी श्रीमाता के सामने शक्तिसेनाओं की सज्जा का वर्णन।	७४६
	युद्ध में विशुक्रपुत्रों की स्थिति।	७५१
	पुत्र शोक में व्याकुल दैत्यराज विशुक्र का युद्ध के लिये प्रयत्न।	७५३
	विशुक्र के वध से विष्णु आदि देवप्रमुखों एवं शक्तियों द्वारा जयकार वर्णन।	७५५
७५	विषङ्ग के वध का उपक्रम।	७५६
	स्तम्भिनी द्वारा विशिख दैत्य के साथ युद्ध।	७५७
	मोहिनी और विकटेक्षण का युद्ध।	७५६
	देवी की शक्तियों द्वारा राक्षसगण से युद्ध।	७६१
	युद्ध में विषङ्ग द्वारा माया का प्रसारण करना।	७६३
	विषङ्ग का वध।	७६५
७६	भण्ड का श्रीदेवी के चरणों के दर्शन से इष्टप्राप्ति होने पर सन्तोष।	७६६
	मन्त्रमहाराज्ञी के साथ भण्ड का युद्ध।	७६७
	दोनों पक्षों की सेनाओं के युद्ध क्षेत्र में पूर्ण सज्जासहित आधमकने के कारण उठी धूलि से आकाश का छाजाना।	७६६

अध्यायसंख्या	विषयविवरण	पृष्ठसंख्या
	दोनों पक्षों की सेनाओं में मारकाट मचजाने से मन्त्रिणी आदि शक्तियों द्वारा शक्तिसंघ की सहायतार्थ आगमन ।	७७
	दैत्यराज और उसके सारथि का परस्पर संवाद ।	७७
	विशुक्र के वध से देवप्रमुखगण तथा शक्तिसेना द्वारा भगवती का जयजयकार एवं ब्रह्माण्ड में शान्ति।	७८
७७	भण्डासुर के के वध का वर्णन ।	७८
	श्रीललिता एवं दैत्यराज भण्ड के बीच परस्पर युद्ध ।	७७
	भण्ड द्वारा अपनी माया का प्रसार करना ।	७८
	दैत्य की त्रास से शक्तिगण की रक्षा करने के लिये मन्त्रिणी द्वारा श्रीदेवी की प्रार्थना ।	७८
	दैत्यपति का भण्ड का बध ।	७८
७८	मेरु पर्वत के शिखरपर श्रीललिता भगवती की स्तुति करते हुए देवगण द्वारा उसमें श्रीचक्र का अभिषेक करना ।	७८
	श्रीपुरराज के प्रतिबिम्ब के समान भगवती के पुर का निरूपण ।	७८
	श्रीचक्रराज पुर में महादेवी का अभिषेक ।	७८
	श्रीपरादेवी के प्रति भक्तिभाव की प्राप्ति के सोपान के फल के सहित चरित्र श्रवण की फलश्रुति का वर्णन ।	७८
७९	दत्तात्रेय परशुराम सम्वाद प्रकरण में आगम शास्त्रों के स्वरूप का वर्णन ।	७९
	आगमों के महत्व का वर्णन ।	७९
	वैदिक एवं तान्त्रिक सिद्धान्तों की तुलना और एकवाक्यता ।	७९
	वेदों में परोक्षवाद के रूप में अविशेष तत्त्व का गोपन ।	७९
	तन्त्रशास्त्र की वैदिक सम्प्रदाय से अविरुद्ध सङ्गति ।	७९
८०	उपासक के मुख्य धर्म का वर्णन ।	८०
	विभिन्न यन्त्रों में श्रीदेवी की पूजा का वर्णन ।	८०
	श्रीचक्रादि में महादेवी के पूजन के विधान का वर्णन ।	८०
	नाना विधानों से देवी की आरार्तिक्य का फल वर्णन ।	८०
	श्रीचक्रराज के दान के फल का महत्त्व ।	८०
	इस सम्प्रदाय की दीक्षा लेने की फल श्रुति ।	८१
	दीर्घकाल तक उपासना करने से ही भगवती श्रीत्रिपुरा की भक्ति की प्राप्ति ।	८१

० समाप्त ०

श्रामन्महागणाधिपतयेनमः

श्रीपरमगुरुभ्यो नमः परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः

श्रीसरस्वत्यैनमः

त्रिपुरारहस्यम्

(माहात्म्यखण्डम्)

प्रथमोऽध्यायः

परशुरामः सुमेधसोः सम्वादः

ॐ नमः कारणानन्दहृद्बीजाकाशगात्रिणे । यल्लीलालेशलसितालोकालोकाण्डरेणवः ॥१॥

यदक्षरं परं ब्रह्म जगन्मालामणिप्रभम् । सर्वं सर्वात्मकं सर्वसारं सर्वपदाश्रयम् ॥२॥

यदेवाऽशेषसंसारदलबीजशिवात्मकम् । शिवरूपं शक्तिरूपं ब्रह्मरूपस्वरूपकम् ॥३॥

त्रिपुराम्बिकायैनमः

मङ्गलाचरण

श्रीगणेशाम्बिके नत्वा नारायणपदाम्बुजम् । त्रिपुराम्बारहस्यस्य भाषां कुर्मो यथामति ॥

प्रथम अध्याय

परशुराम और सुमेधा का सम्वाद

सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति स्थिति संहार के एकमात्र भाव ॐकारवाच्य उन कारणानन्द से हृद् बीजरूपी आकाश गात्रवाले (देहवाले) अपनी स्वाच्छन्द्यभरता से ही सृष्टि के लीला विस्तार का प्रकटन करने वाले महामहिम तत्व को नमस्कार करता हूँ जिनकी लीला के लेश-मात्र से लोकालोक ब्रह्माण्ड की रेणुका स्वरूपगत रूप में प्रतिष्ठित हो कर कार्य करती चलती है ॥ १ ॥

जो स्वयं अक्षर (अविकारी) पर ब्रह्म है और सम्पूर्ण जगद्रचना रूपी माला में मणि की कान्ति धारण कर स्वयं विलसित है उस सर्व ब्रह्ममय ब्रह्मात्मक रूपवाले सम्पूर्ण संसार के सार और सम्पूर्ण श्रेष्ठ धामों के आश्रय भूत उस परतत्व का मैं अभिनिवेश (ध्यान) करता हूँ ॥२॥

सम्पूर्ण संसार की इस परम प्रकान्त विच्छित्ति के लिए जो बीजरूप से शिवरूप में अधिष्ठित है और शक्ति तथा शक्तिमान् के अभेद के साथ ही जो शिवतादात्म्योपपन्न शक्ति-स्वरूप और शक्तितादात्म्यापन्न शिवरूप है और ब्रह्मस्वरूप में अधिष्ठित हैं उनका मैं अभिनिवेश करता हूँ ॥३॥

त्रिपुरां परमेशानीं महाप्रलयसाक्षिणीम् । दग्धकामोज्जीवनायसुधासारांनमाम्यहम् ॥४॥
अस्तिदक्षिणदिग्भागेमलयाद्रिर्महोच्छ्रयः । शृङ्गसङ्घातसंक्रान्तसततसप्तिमहापथः ॥५॥
अनेकशृङ्गलीलात्तमहापुरुषवभवः । स्वाङ्गव्याप्तिपराक्षिप्तमहामेरुमहीत्वकः ॥६॥
नानावृक्षाङ्कुरप्रान्तविश्रान्तघनमण्डलः । मृदुप्रबालविलसच्छविक्षिप्तारुणप्रभः ॥७॥
अमरीमृदुगीतात्तभृङ्गीरवसमश्रुतिः । श्रीगन्धगन्धसंरम्भजितनाक्यङ्गसौरभः ॥८॥
एलालतापरिमलविलसद्बालमारुतः । अनेकपद्मिनीफुल्लपद्मसंस्थितहंसकः ॥९॥
प्रावृड्जलदसंस्पर्धिगन्धसिन्धुरमण्डलः । भिन्नसिन्धुरदानोद्यद्वासनाभरितान्तरः ॥१०॥

श्रीमती त्रिपुरा परमेश्वरी भगवती जो महाप्रलय की साक्षिणी है और दग्धकाम के उज्जीवन के लिये सुधासा रमयी है उस भगवती को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

दक्षिण दिशा में विशाल गिरिराज मलयाचल है उसके सर्वोच्च शिखरों की ऊंचाई से भगवान् सूर्यनारायण का विशाल क्रान्ति-मार्ग भी सङ्क्रमण पाता है। परमव्योमको स्पर्श करने वाले उन शिखरों से ऐसा प्रतीत होता है कि महापुरुष के वैभव की कान्ति झलकती हो अपने अङ्गों की व्यापकता से महामेरु से आक्रान्त पृथ्वी का वह लक्ष्मण बन रहा हो ॥५—६॥

उस विशाल पर्वतराज की अधित्यका में नाना विशाल वृक्षों का घनमण्डल छाया हुआ है कि प्राकृतिक दृश्यों की नयनाभिराम छवि का वर्णन करते नहीं बनता। कोमल प्रवाल (मूंगे) की अरुणिमा शोभा से सूर्य की लालिमा को भी वह पर्वतराज दूर बिठाता है। उन सुगन्धित वृक्षों में भौरों का गुञ्जार का निनाद ऐसा लगता है मानो देवगण की स्त्रियां वहां अपने कोमल कण्ठों से मृदुगीतों का गायन करती हों। चन्दन की मृदुमन्दसुगन्धता से ऐसा प्रतीत होता है मानो देवगण के अङ्गों की सौरभ वहां उतर आई हो ॥ ७—८ ॥

एला (इलाइची) लता की भीनी-भीनी मनोमोहक परिमल से शीतलमन्द सुगन्ध पवन में एक प्रकार की मादकता समा गई है। अनेक पद्मिनीके और फूले हुए कमल के पुष्पों के साथ हंसपंक्ति अत्यधिक शोभा दे रही है। नूतन के बादलों से गिरी बूँदों की स्पर्धा से मुग्धकारी भूमि की गन्ध में मानो हाथियों के गण्डस्थल से मादक गन्ध आ रही हो। उस मदकपोल की गन्ध को उत्कण्ठित भ्रमर समूह को दान देने के लिए जैसे वे उन्मत्त गज अत्यन्त उत्सुक हों। उस पर्वतराज की ऊपर वाली भूमि (अधित्यका) में सिंह, व्याघ्र, वराह आदि हिंसक जन्तुओं का समूह भी तत्र घ मता है जिससे वहांकी नैसर्गिक शोभा कई गुना बढ़ गई है ॥९—१०॥

सिंहव्याघ्रवराहौघशोभालम्बदधित्यकः । विस्तीर्णवनखण्डान्तराश्रमोद्यदुपत्यकः ॥११॥
तापसान्तेवासिवेदघोषघुङ्घुमितान्तरः । हुतगव्यघृतामोदपरिबृंहितमारुतः ॥१२॥
वायुकम्पितशाखाग्रबद्धचीरपताककः । क्वचित्तु तरुमूलेषु सुखासनसमाश्रयाः ॥१३॥
तपस्विनो ध्यानपराश्चित्रार्पितनरा इव । क्वचिद्ब्रह्मपरं जप्यं जपन्तो ब्रह्मवादिनः ॥१४॥
क्वचिद्ग्रीन्ह्यूयमानानित्यनैमित्तिकक्रमैः । क्वचिदध्यापयामासुर्वेदान्विप्रार्भकान्बुधाः ॥१५॥
क्वचित्सभायांशास्त्रेषु मीमांसन्तेपरस्परम् । क्वचित्प्रवचनं चक्रुः पुराणानांकथाविदः ॥१६॥
एवंविधेऽद्रिप्रवरे सर्वर्त्तुगुणभूषिते । प्रत्यग्भागे विविक्तायांभुवि कासाररोधसि ॥१७॥
तृणपर्णचयोद्भवत्कुटीमध्यमहीतले । विष्टरे सुखमासीनः कार्ष्णसाराङ्गसम्भवे ॥१८॥

इसके साथ ही पर्वत के सन्निकटवर्ती भूमि प्रदेश के विस्तृत वन प्रदेश में मुनियों के आश्रम शोभित हैं जिन में उन ऋषियों के शिष्यगण वेदपाठ की मधुर ध्वनि से सारे वातावरण को आर्षघोष से निनादित कर रहे हैं, उन आश्रमों में यज्ञकुण्डस्थित अग्नि में हवन करने से नाना गव्य हवनद्रव्यों तथा घृत की सुगन्धि से सारा वायुमण्डल मुखरित हो रहा है। वायु के निरन्तर बहने से वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग में बराबर स्पन्दन चालू रहता है जो बंधी हुई चीर पताकाओं को इधर-उधर फहराते रहती हैं। इन तपोवनों में कहीं पर वृक्षों के मूल भाग में सुखासन (आलथी पालथी मार कर) से तपस्वी ध्यान में ऐसे बैठे हैं मानों चित्रलिखित मूर्त्ति ही विराज रही हो ॥११--१३॥

कहीं पर ब्रह्मविचार-परायण महर्षिगण ब्रह्मानुचिन्तन में तत्पर हैं; किसी स्थान पर नित्य एवं नैमित्तिक विधिविधान से यज्ञवेदियों में आहुतियां दी जा रही हैं। कहीं विद्वान् लोग विप्रवटुकों (ब्रह्मचारियों) को चारों वेद पढ़ा रहे हैं ॥१४-१५॥

एक ओर शास्त्रों के पूर्व पक्ष और उत्तर पक्ष को लेकर सिद्धान्त स्थिर करने के लिए निगमागम पारदर्शी विद्वान् महानुभाव मीमांसा में लगे हैं और कहीं पर कथा के मर्मस्पर्शी वाचकवृन्द पुराणों के उपन्यास और प्रवचन कार्यों में लगे हैं ॥१६॥

इस प्रकार प्रकृतिनटी की सुरम्य लीला भूमि में उस पर्वतराज में जहां सम्पूर्ण ऋतुओं का क्रमशः उन्मेष होता रहता है प्रत्यग्भाग (सर्वत्र) ही में विस्तृतभूमि पर सरोवरों के किनारे सुन्दर तृण पत्रों से छायी हुई कुटिया में कृष्णसारमृग की चर्म के बने आसन पर सुखपूर्वक विराजमान कपूर की भांति गौरवर्ण स्वच्छवस्त्र और यज्ञोपवीत धारण किये सारे शरीर में भस्म रमाये हुए महाकाल के भाल में शोभा पाने वाले त्रिपुण्ड्र को धारण कर अपनी नित्यक्रियाओंको विधिपूर्वक सम्पादन कर शान्त सुन्दर रूपवाले श्रीपरशुराम विराजमान हैं ॥१७-१९॥

कर्पूरगौरसर्वाङ्गः स्वच्छवस्त्रोपवीतकः । भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गःकालशोभित्रिपुण्ड्रकः ॥१९॥
कृतनित्यक्रियःशान्तोजामदग्न्यःशुभेक्षणः । यः साक्षाद्देवदेवस्य विष्णोरंशसमुद्भवः ॥२०॥
रामः सर्वजनारामः साक्षात्पशुपतेः प्रियः । विष्णोर्दत्तात्रेयमूर्त्तेः सेवालब्धात्मवैभवः ॥२१॥
तं कदाचिन्मुनिवरं प्रसन्नेन्द्रियमानसम् । प्रियशिष्यः सुमेधाह्वः सदा सेवनतत्परः ॥२२॥
पप्रच्छ प्राञ्जलिर्भूत्वाभक्तिश्रद्धासमन्वितः । राम! दीनदयासिन्धो! भक्तानुग्रहविग्रह! ॥२३॥
पुरैकदा मया पृष्टो भवान् भूरिविभावनः । किं दीनमानुषादीनां संसारक्लेशभागिनाम् ॥२४॥
परं श्रेयोवहं पुण्यं सर्वोत्तमतमंभवेत् । यस्मादभ्यधिकं नैव किञ्चिच्छ्रेयःसुसाधनम् ॥२५॥
एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र श्रोतव्यं यदि मेभवेत् । अपि गोप्यं वदन्तीह गुरवो दीनवत्सलाः ॥२६॥
एवं मयापि संपृष्टो भवानीषत्स्मिताननः । वदामि कालक्रमतः प्रोक्तवानिति भार्गव! ॥२७॥
तस्याद्य षोडशसमा व्यतीयुस्त्रुटिलेशवत् । स एवाऽर्थो मम स्वान्ते परिवर्त्तेत्यहर्निशम् ॥२८॥
वद मे तत्सुकृपया मय्यनन्यशरण्यके । इति तद्वचनं श्रुत्वा भार्गवः परिचिन्तयन् ॥२९॥
सस्मार तत्पुरा प्रोक्तं दत्तात्रेयेण विष्णुना । त्रिपुराया रहस्यं यत्साक्षाच्छिवमुखाच्छ्रुतम् ॥३०॥

जो साक्षात् देवाधिदेव भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न हैं, सम्पूर्ण प्राणीमात्र को प्रिय हैं और प्रत्यक्ष भगवान् पशुपति के प्रिय अपने आराध्य गुरुवर्य श्रीविष्णु भगवान् दत्तात्रेय की मूर्त्ति की निष्ठामयी सेवा से ही उन्हें आत्मसाक्षात्कार की पूर्ण विभूति प्राप्त हुई है ॥२०-२१॥

एक दिन प्रसन्नइन्द्रियमनवाले उन मुनिवर श्रीपरशुराम को उनकी सेवा में सदा परायण प्रियशिष्य सुमेधा ने भक्तिश्रद्धायुक्त हो प्रणाम कर पूछा "हे दीनदयासिन्धो भक्तजन पर कृपा के लिए ही शरीर धारण करने वाले गुरुवर्य! मैंने एक बार चतुरस्र(चारों तरफ) कल्याण दृष्टि वाले आप से पूछा था कि संसार के उग्र तापों से पीडित दीन हीन मनुष्य आदि के लिये क्या अत्यधिक कल्याणकारी सब से उत्तमोत्तम पुण्य है जिस से अधिक अन्य कोई भी श्रेयस्कर साधन नहीं हो? हे विप्रेन्द्र! आप मुझे सुनने के योग्यसमझें तो अवश्य ही बतलावें, क्योंकि प्रणतवत्सल गुरुजन अत्यधिक गोपनीय तत्त्व को भी अधिकारी शिष्यों को कृपा कर कहते ही हैं। इस प्रकार मेरे पूछने पर आपने कुछ-कुछ मन्द हास्य करते हुए कहा कि कालक्रम से जो कहा गया था उसे बताता हूँ। उसके बाद आज तक १६ वर्ष एक त्रुटि के भाग के समान समय बीत गया, वही प्रश्न मेरे मन में दिन रात घूमता रहता है। आप बहुत अनुग्रह करके आप की अनन्य (एकमात्र) शरण में आये हुए मुझे यह बताइये"। इस प्रकार उस का प्रश्न सुनकर उन्होंने सोचकर श्रीविष्णुदत्तात्रेय ने जो पहले श्रीशिवजी के मुख से सुना था उसीश्रीत्रिपुरा भगवती के रहस्य का स्मरण किया ॥२२-३०॥

विशुद्धहृदि संन्यस्तं तत्कालेन शिवाज्ञया । मयि संक्राम्य सर्वस्वं भक्तिज्ञानोपबृंहितम् ॥३१॥
माहात्म्यवैराग्ययुतमितिहासैर्विचित्रितम् । न देयमेतत्कस्मैचित्तन्त्रसर्वस्वमुत्तमम् ॥३२॥
नास्तिकाय शठायाऽपि नाम्ना भागैकलेशतः । भक्तानामपि चान्येषां वक्तव्यं न पुरस्त्वया ॥३३॥
कारणात्परमेशस्य वाक्यार्थस्यापि गौरवात् । एकस्तव महाभक्तः सुमेधा हारितायनः ॥३४॥
शिष्यस्तस्मै सुभक्ताय वद कालेन भार्गव ! । स चैतत्समुपाकर्ण्य ग्रन्थतोऽनुविधास्यति ॥३५॥
संहितां पावनीं धन्यां तन्त्रसारसमन्वयाम् । ग्रन्थरूपां विधायाऽथ शिष्यानध्यापयिष्यति ॥३६॥
इति स्मृत्वा गुरुवचः शिष्यं दृष्ट्वा कृताञ्जलिम् । नियत्याभगवच्छक्तेरनुल्लङ्घ्यस्थितिंचिरम् ॥३७॥
चिन्तयित्वा सुनिश्चित्य तं प्राह पुरतः स्थितम् । वत्स कालं प्रतीक्षस्व सर्वं कालेन जायते ॥३८॥
श्वः पुष्ये शुभवेलायामुत्तरोपक्रमं भवेत् । एवं स्थिते समभवत्सन्ध्यामृदुकरो रविः ॥३९॥
अन्वास्य पश्चिमां सन्ध्यां तौ जप्यं जेपतुःपरम् । ध्यायन्हृदिस्वात्मशक्तिंरात्रौसुष्वपतुःसुखम्॥४०॥

यह शास्त्र विशुद्ध हृदय में भली प्रकार सुरक्षित रक्खा हुआ उस समय श्रीशिव की आज्ञा से भक्ति-ज्ञान से पूर्ण मुझे नाना चित्रविचित्र इतिहासों से सुसज्जित माहात्म्य और वैराग्य से युक्त प्राप्त हुआ था। उन्होंने मुझे यह आदेश दिया कि यह उत्तम तन्त्रों का सर्वस्व है किसी भी नास्तिक मूर्ख को लेशमात्र भी मत देना। अधिक क्या जो अन्य देवों के भक्त हैं उन्हें भी मत देना क्यों कि भगवान् परमेश से यह वचन मिला है। और उनके कहने का बहुत बड़ा महत्त्व है कि तेरा एक बड़ा भक्ति करनेवाला सुमेधा हारितायन (हरीत का वंशज) शिष्य होगा; हे भार्गव उसे समय आने पर तू अच्छी प्रकार कहना वह इस तत्त्वको सुन कर ग्रन्थ बनायेगा ॥३१-३५॥

वह भली प्रकार तन्त्रों के सार का समन्वय करने वाली अत्यन्त पवित्र धन्य संहिता को ग्रन्थ रूप में निबन्धन कर अपने शिष्यवर्ग को पढ़ायेगा ॥ ३६ ॥

इस प्रकार अपने पूज्य गुरुवर्य के कथन को स्मरण कर अपने सामने अञ्जलि बांध कर प्रणाम करते हुए उसी शिष्य को देख कर भाग्याधीन ही भगवान की शक्ति द्वारा यह सब अवसर उपस्थित किया गया है इसका उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता इसे भलीप्रकार सोच विचार से निश्चित करके अपने सामने खड़े सुमेधा से श्री परशुराम बोले; "हे वत्स ! समय की प्रतीक्षा करो सब कुछ समय पर ही होता है" ॥ ३७—३८ ॥

"कल पुष्य नक्षत्र है मैं तुम्हें अपने प्रश्न का यथोचित प्रत्युत्तर दूंगा"। ऐसे कहते-कहते सूर्य की तेज किरणें मन्द हो गई और सन्ध्या काल उपस्थित हो गया। पश्चिम सन्ध्या का काल उपस्थित होते ही वे दोनों गुरु-शिष्य सन्ध्यागत भगवान् अंशुमाली का उस स्थान पर उपस्थान करने लगे और उन्होंने परम जपनीय इष्टदेव के मंत्र का विधिपूर्वक जप किया एवं अपने हृदयप्रदेश में आत्म-शक्ति का ध्यान करते हुए रात्रि में सुखपूर्वक शयन किया ॥ ३९-४० ॥

अथ प्रातः समुत्थाय कृताह्निकविधिं गुरुम् । दण्डवत्प्रणिपत्याऽथ बद्धाञ्जलिपुटो नतः ॥४
उपतस्थे समुचिते काले परमशोभने । अथ तं राम आहूय वत्सेति मधुरस्वरम् ॥४
पुष्पाञ्जलिं प्रयोज्याग्रस्थितहैमासने शुभे । या बाला त्रिपुरा प्रोक्ता ललिताश्रीकुमारिका ॥४
तस्या वपुर्वाङ्मयं यत्तच्छिष्याय प्रदत्तवान् । साङ्गं पीठं समभ्यर्च्यनानाविभवहेतुभिः । ४
प्रजप्तदिव्यकलशतोयैः संस्नाप्य मार्गतः । पाशत्रयमपि छित्त्वा चाधिवास्य निशांयतः ॥४
ग्राहयामास तद्रूपमाधारत्रयशोभितम् । द्वादशाद्यं तुर्यमध्यमवसानचतुर्दशम् ॥४
त्रिधा स्थितं च तद्रूपं तथा चर्याक्रमं शुभम् । आचारक्रममुद्रादि रहस्यमखिलं क्रमात् ॥४
मूर्धहृन्मूलदेशेषु प्रसादविनियोजनम् । स्वात्मान्यावाहुतिंतत्त्रयाणांक्रमशोऽब्रवीत् ॥४
इति प्रोच्य समादिश्य तत्साधनविधौ ततः । वत्सैतद्ब्रह्म परमं साधयस्वाविलम्बितम् ॥४
ततः पूर्णपदं तुभ्यं ददाम्यचिरकालतः । इति संप्राप्तसर्वस्वरहस्यो हारितायनः ॥५
त्रिः परिक्रम्य नत्वातं श्रीशैलं प्राविशद्द्रुतम् । तत्र श्रीभ्रामरीदेवी नित्यं सन्निहितास्थिता ॥५

बाद में प्रातः काल उपस्थित होने पर जब गुरु श्रीपरशुरामजी अपनी नित्यक्रियाओं को सम्पादन कर चु
तब हारितायन सुमेधा ने उनके पास आकर दण्डवत्प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए नतमस्तक हो परम शोभन समय में वन्दन
की। अनन्तर श्रीपरशुराम ने उसे बुला कर "हे वत्स" इस मधुरस्वर से सम्बोधित किया। उन्होंने अपने सामने शु
सुवर्ण के आसन पर विराजमान भगवती को पुष्पाञ्जलि समर्पित कर भगवतीललिता श्रीत्रिपुरा कुमारिका का ध्यान कर
हुए उसके वाङ्मय शरीर को अपने अधिकारी शिष्य को दे दिया अर्थात् ललिता-रहस्य का उपदेश किया। उन्हों
नाना उपलब्ध वैभव की सामग्रियों से सपरिकर भगवती के पीठ की दिव्यमन्त्रित कलसजल से निगमागम प्रतिपादि
विधिविधान से स्नान करवाकर पूजा की। तीनों पाशों को छेदन कर रात्रिकाल बिता दिया ॥४१-४५॥

तीनों आधारों पर शोभित उस महाभगवती का रूप ग्रहण किया (ध्यान किया) एवं द्वादशादि परावाक्संज्ञि
और चौदह तत्त्वों का त्रिधास्थित भगवती का रूप और शुभचर्याक्रम आचार क्रम मुद्रा आदि का सम्पूर्ण रहस्य क्रमश
बताया। मूर्धा, हृदय और गणेश स्थान के मूलवाले देशों में आत्मप्रीणन की प्रतिक्रिया और आत्मरूपी अग्नि में तीनों
तत्वों की आहुति देने का क्रमनिरूपण बताया ॥ ४६—४८ ॥

इस प्रकार रहस्यपूर्ण तत्वों का क्रम बता कर और सब साधन विधि के सम्बन्ध का उपदेश विधिपूर्वक देक
श्रीपरशुराम बोले "हे वत्स ! यही परम ब्रह्म है इसे तू विना विलम्ब के साधन कर" ॥ ४६ ॥

"इसके बाद मैं तुझे शीघ्र ही पूर्णपद की प्राप्ति प्रदान करूंगा"। इस प्रकार सम्पूर्ण सर्वस्वरहस्य को पाक
श्रीहारितायन ने अपने गुरुवर्य की तीन परिक्रमा कर श्रीशैल में साधना करने को शीघ्रतापूर्वक प्रवेश किया
वहां भगवती भ्रामरीदेवी नित्य विराजमान थी ॥५०—५१॥

तस्याः सम्मुखतः स्वच्छांवातातपसहांकुटीम् । निर्माय तत्र कालेन साधनं समुपाक्रमत् ॥५२॥
एवं साधयतस्तस्य फलाहारस्य योगिनः । भक्तिश्रद्धानिर्भरस्य नियतेन्द्रियचेतसः ॥५३॥
प्रसन्नचित्तस्य सदा ध्यानतत्परचेतस । विश्वस्तगुरुवाक्यस्य नवषञ्चत्रिमासकाः ॥५४॥
ययुःक्षणमिवात्यर्थं संसिद्धं तस्य साधनम् । प्रसन्नदेहकरणः सुस्वरः शुभलोचनः ॥५५॥
लघुगात्राशनो दृष्टः पुष्टाष्टावयवःशुभः । अथ स्वप्नेतस्य रात्रौ बाला श्रीपरमेश्वरी ॥५६॥
सर्वावयवशोभाढ्या तरुणारुणसच्छविः । अक्षमालापुस्तकाभीवरशोभिचतुर्भुजा ॥५७॥
त्रिनेत्रचन्द्रशकलविलसन्मुकुटोज्ज्वला । कोटिमन्मथलावण्या कुमारी दशवार्षिकी ॥५८॥
प्रादुरासीज्जगन्माता लीलास्वीकृतविग्रहा । तां दृष्ट्वा स्वप्नसमये प्रसन्नो हारितायनः ॥५९॥
दण्डवत्प्रणिपत्याथ हर्षगद्गदसुस्वरः । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा संस्तोतुमुपचक्रमे ॥६०॥
जय श्रीत्रिपुरे मातर्जय बालाम्बिके परे । जय भक्तप्रिये नित्यं जय कारुण्यविग्रहे ॥६१॥

उनके सम्मुख सुन्दर वायु और गर्मी को सहन करने वाली कुटी बनाकर वहां समयसे साधन करना शुरू किया ॥५२॥

इस प्रकार सदा ध्यान में तत्पर मन वाले, प्रसन्न चित्त भक्ति श्रद्धा में निर्भर इन्द्रियों को नियत रूप तथा गुरु वचनों में विश्वास रखने वाले फलाहार से साधन करते हुये उस योगिराज के सतरह मास क्षण के समान बीत गये और उसका साधन अव्यर्थ एवं पूर्ण सिद्ध हो गया देह और अन्तःकरण जिसका प्रसन्न हो गया; श्रेष्ठस्वर, सुन्दर-नेत्र, अल्प भोजन से हलका शरीर वाला आठ अवयव जिसके पुष्ट हो गये हैं ऐसा पुष्ट और सुन्दर रूप में दीखा। इसके बाद उस रात्रि में स्वप्न में श्रीपरमेश्वरी बालारूप में सम्पूर्ण सुन्दर अवयवों से सुशोभित तरुण अरुण के समान श्रेष्ठ छविवाली अक्षमाला एवं पुस्तक तथा अभय मुद्रा से अत्यधिक सुन्दर चतुर्भुजावाली तीन नेत्र तथा चन्द्रखण्ड से सुशोभित उज्ज्वल मुकुट वाली करोड़ों कामदेवों से भी सुन्दर स्वरूपवती दश वर्ष की अवस्थामें लीलासे स्वीकार किया है शरीर को जिसने ऐसी जगन्माता प्रकट हुई। स्वप्न समय में उन्हें देख हारितायन प्रसन्न हुआ ॥५३—५८॥

इसके बाद दण्डवत् प्रणाम कर हर्ष से गद्गद स्वर में हुये अञ्जलि बांधकर वह स्तुति करने लगे। हे श्रीत्रिपुरे! मातः आपकी जय हो, हे बालाम्बिके! हेपरे! आप की जय हो। हे नित्य भक्तों के प्रिय करने वाली आपकी जय हो हे करुणासे शरीर धारण करने वाली आपकी जय हो ॥६०—६१॥

लोके त्रिविक्रमोल्लासिवस्तुप्रवस्थितिर्यतः । त्रिपुरेति ततः प्रोक्ता ब्रह्मादीनां पराश्रया ॥६२॥
महिम्नस्ते लेशं हरिहरभवाद्या अपि परं , न वक्तुं ज्ञातुं वा प्रभव इह देवादिगुरवः ।
तथाभूता देवी क इह भुवनेषु स्तुतिपथं , समीहेदारोढुं तव चरणसेवाविरहितः ॥६३॥
पदाम्भोजेभक्तिस्तवभवतिचिन्तामणिगणो , नतच्चित्रंदेवि! प्रभवति समीहाधिकफलम् ।
अतस्त्वत्पादाब्जप्रणिहितसमस्तेन्द्रियवतां , फलं न प्राप्यं किं वद परशिवे सुन्दरि परे ॥६४॥
त्वमेवादौ सृष्टेः सहजमुखपीयूषजलधिर्निताान्तं विश्रान्ता वपुषि विमले निश्चलतरे ।
न खं वायुस्तेजः सलिलमपि भूमिर्घटपटौ , न चज्ञानाज्ञाने वचनविषयो वा स्थितमभूत् ॥६५॥
त्वमेवैका सेयं निरवधिमहाशक्तिभरिता , स्थिता संविद्रूपा सकलजगतामादिसमये ।
जगन्मालाजालाङ्कुरगणसुबीजैकवपुषा , परानन्दाकारा परमशिवजीवस्थितिकरी ॥६६॥

जहां से त्रिविक्रम स्थूल सूक्ष्म एवं तुरीय, प्राण मन और वाणी; सत्त्व, रज और तम, ऋक् साम एवं यजु में व्याप्त इसलिये ब्रह्मादिकों को परमआश्रय देने वाली आप त्रिपुरा कही गई हैं। इस संसार में आपकी लेशमात्र महिमा को हरिहर शिवादिक तथा देवादि गुरुजन भी वर्णन करने के लिये तथा जानने के लिये समर्थ नहीं हो सकेंगे ऐसी सामर्थ्यमयी आप हैं आपकी चरणसेवा से विमुख कौन व्यक्ति इस संसार में स्तुति मार्ग पर चढने के लिये समर्थ हो सकता है ? ॥६२—६३॥

हे देविहे ! परशिवे ! हे सुन्दरि ! हे परे ! आपके चरणकमल में भक्ति चिन्तामणि रूप होती है और चेष्टा से भी अधिक फलवाली होती है इसमें कोई विचित्रता नहीं इसलिये आपके चरण कमलों में समर्पित समस्त इन्द्रिय वालों को क्या फल प्राप्त नहीं होगा ? सो कहो ॥६४॥

आपही आदि में सम्पूर्ण सृष्टि के नित्य आनन्दरूपी अमृत के सर्वथा विश्राम स्थान हैं जब निश्चलतर शरीर विमल शरीर में आप प्रत्यक्ष हो जाती हैं न तो आकाश, न वायु, न तेज, न जल, और न पृथ्वी न घट पट ही, न ज्ञान और न अज्ञान उस संवित् प्राप्ति की स्थिति में वैखरी वाणी में कहे जाते हैं परावाक् ही उसका गन्तव्य हो जाता है ॥६५॥

आप एकाकी ही निःसीम महाशक्ति से भरी हुई सम्पूर्ण जगत् के आदिकाल से संविद् रूप में स्थित रहती हैं। जगत् के सम्पूर्ण क्रियाकलापों के मालाजाल के अङ्कुर गणों के सुन्दर बीज को अपने में समाकर परम आनन्द स्वरूप परमात्मतत्त्व भगवान् शङ्कर के उन्मेष का कारण बनती हैं ॥६६॥

ततः संविद्रूपा तव सकलमेतद्विलसितं, विभातं सद्रूपं तदितरवपुश्चापि सहसा ।
यथाम्भोधौ भङ्गा घटकलशकुण्डा इव मृदि, प्रभा भानोर्यद्वत्कनकशकलं भूषणगणाः ॥६७॥
अतस्त्वद्रूपान्नो पृथगिह भवेत्किञ्चिदपि वा, सदा सर्वात्मत्वाद्विलससि महाकाशवपुषा ।
तथाभूतायास्ते परिमितकराङ्घ्र्यादिवपुषा, विलासो भक्तेषु प्रभवति कृपायन्त्रणवशात् ॥६८॥
तवाप्येतद्रूपं शिवगुरुपदाम्भोजविलसत्, सुभक्तिप्रोन्मीलद्विमलनयनानां विधिवशात् ।
कदाचित्केषाञ्चिद्भवति पुरतो भाग्यवशतः, परं यत्तद्रूपं कथमिह भवेदम्ब सुलभम् ॥६९॥
नमस्ते बालाम्ब त्रिपुरहरसौभाग्यनिलये, नमस्ते भक्तेहासमधिकफलोत्पादचतुरे ।
नमस्ते दैन्याद्रिप्रविदलनवज्रायितकृपे, नमस्ते मोहाम्भोनिधिकवलनागस्त्यचरणे ॥७०॥

तदनन्तर संविद् रूप आप ही यह सारा संसारजाल जगच्चित्र के विलास रूपमें आपसे इतर आकार धारण किया हुआ भी अकस्मात् सद्रूपा प्रकट होती है। जैसे समुद्र में उसकी वीची (तरंगे) सागर रूप ही रहती हैं; जैसे मिट्टी में घड़ा, कलस, कुण्डा, शराव आदि नाना प्रकार से कहे जाते हैं। जिस प्रकार सूर्य की भास्वर ज्योति का किरण-स्वर्ण जाल सूर्य के अतिरिक्त कुछ नहीं और सम्पूर्ण आभूषणों का सोने के नाना आकारों में विशेष व्यवहारोपयोगी रूप के अतिरिक्त कुछ नहीं, वैसे ही सारा जगत् आपका संवित् रूपही है ॥ ६७ ॥

अतः आपके रूपसे पृथक् चाहे जो कुछ भी हो उसमें आप ही सदा महाकाश के आकार में सर्वात्मभाव में विलास करती हैं; ऐसी महामहिमामयी आपकी सगुण परिच्छिन्न मूर्त्ति जो हाथ पैर और मुख आदि देहधारी रूप से भक्तों के ऊपर कृपा करने के लिये ही विलासमात्र है। हे मातः! आपका यह अतीव दिव्यस्वरूप श्री शिव सद्गुरु के चरण कमल में अधिकाधिक भक्ति के संरम्भसे खुल गये हैं ज्ञान नेत्र जिनके ऐसे महाभाग्यशाली किन्हीं पुण्य पुञ्जवाले पुरुषों के विधिवश से और उनके महाभागवन्त होने के कारण कभीही साक्षात्कार में आता है। भला बताइये तो सही उस अलौकिक भास्वद् रूपकी आभाकी झलक किस प्रकार हमारे जैसे व्यक्तियों को अनायास सुलभ हो? हे बालाम्ब! (आत्मरूपसे संवित् प्रकाशात्मक आपका उन्मेषनिमेष ही सदा एकरस रहता है यहां बालाम्ब अन्वर्थ नाम है) हे शंकरसौख्यआगरी! मेरा आपको नमस्कार है, हे भक्त के अभीष्ट से भी बहुत अधिक फलों के उत्पन्न करनेमें चतुर भगवती! आपको नमस्कार है, हे दीनतारूपी विशाल पर्वत के दलन करने में वज्रसे भी कठोर रूपसे चूर्णकर कृपा करने वाली आपको नमस्कार है, हे मोह रूपी समुद्र की चुल्लू करने में अगस्त्यको अपना अनुचर बनानेवाली महाविभूति सम्पन्ने! आपको पुनःपुनः सादर नति है ॥६८-७०॥

इति स्तुत्वा महादेवीं प्रेमविह्वलितान्तरः । दण्डवत्पतितो भूमौ तस्याश्चरणसन्निधौ ॥७१॥
आनन्दाश्रुकलारुद्धनेत्रः पुलकिताङ्गकः । भक्तिनिर्भरितस्वान्तो नाशक्नोत्किमपीहितुम् ॥७२॥
यदा स वक्तुं द्रष्टुं वाकिञ्चित्कर्तुमनीश्वरः । प्रेमवारिधिनिर्मग्नस्तदा सा त्रिपुराम्बिका ॥७३॥
प्राह गम्भीरामृतौघवर्षिण्या सुस्मिताननाः । वाचावत्सेत्युपामन्त्र्य मूर्ध्नि हस्ताम्बुजं न्यधात् ॥७४॥
स तु पूर्वं दर्शनेन मग्न आनन्दसागरे । पुनस्तस्याः करस्पर्शाद्ब्रह्मानन्दमयोऽभवत् ॥७५॥
उवाच सा जगन्माता सुमेधोत्तिष्ठ मा चिरम् । गच्छ शीघ्रं गुरोः पार्श्वे सिद्धोऽसीप्सितलाभतः॥७६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता सद्यो मनोरथमनुष्यवत् । सोऽपि प्रबुद्धस्तत्काले किमेतदिति चिन्तयन् ॥७७॥
नातिस्वस्थमनाः स्वप्ने भूयोभूयो विचिन्तयन् । तां मूर्त्तिं सुन्दरीं वाचं पीयूषरससोदरीम् ॥७८॥
वेलां कल्यात्मिकां ज्ञात्वा स्नानायाऽगात्सरिद्वरे । तदेव चिन्तयानः स विस्मृताह्निकसत्क्रियः॥७९॥
स्मयन्नुवाच स्वात्मानमेतत्किम्मे समीक्षितम् । सत्यं वा यदि वाऽसत्यं न वेद्म्येतस्यकारणम्॥८०॥

इस प्रकार महादेवी की स्तुति कर प्रेम से विह्वल है अन्तःकरण जिसका उस भगवती के चरणों के स वह पृथ्वीपर दण्डवत् गिर गया ॥ ७१ ॥आनन्द के आंसुओं से नेत्र वाला पुलकित शरीर होकर भक्ति से पूरि है अन्तः करण जिसका ऐसे कुछ भी बोलने की चेष्टा नहीं कर सका ॥-७२॥

जब वह प्रेम रूपी समुद्र में डूबा हुआ बोलने तथा देखने के लिये और कुछ भी करने के लिये असमर्थ रहा वह त्रिपुराम्बिका प्रसन्न मुखवाली (मन्द हास्य मुखवाली) गम्भीर अमृत समूह की वर्षा करने वाली वाणी से "हे ऐसा सम्बोधन कर उसके मस्तक पर अपने करकमल को रक्खा ॥७३-७४॥

वह तो प्रथमदर्शन से आनन्द समुद्र में मग्न हो गया था फिर उसके हाथ के स्पर्श से ब्रह्मानन्द में मग्न हो वह जगन्माता बोली "हे सुमेधः" ! उठ विलम्ब मत कर शीघ्र ही गुरु के पास जाओ; ईप्सित लाभ से तुम कृ गये हो ॥७५-७६॥

इतनी कह वह तत्क्षण अन्तर्हित हो गई वह भी मनोरथ करने वाले मनुष्य के विचार के समान ही तत्क्ष जागा । अरे यह क्या ! ऐसा विचार करता हुआ स्वप्न में देखे दृश्य से मन अत्यन्त अस्वस्थ ऐसा वह बारम्बार सुन्दरमूर्ति अमृत व रस से पूर्ण वाणी के विषय में विचार करता हुआ प्रातःकाल जानकर समुद्र किनारे स्ना करने के लिये गया । अपनी सारी नित्यक्रियाओं को भूलकर भगवती का ही चिन्तन करता हुआ वह आश्चर्य करता अपने आप में कहने लगा, यह मैंने क्या देखा ? यह सत्य है या झूठ इसका कारण मैं नहीं जानता हूँ ॥७७-८०॥

विश्वस्य गुरुसान्निध्यं गत्वाकिं प्रब्रवीम्यहम्। स्वप्नस्यभ्रान्तिरूपत्वादविश्वास्योमनीषिणाम् ॥८१॥
न गच्छामि कथंदेव्या वचनाच्छ्रद्धया खलः। अहो विषममाभाति कालस्य गतिरुल्वणा ॥८२॥
तथापि नैव गच्छामि तत्परा क्षन्तुमर्हति। इति निश्चित्य नित्यार्थे प्रवृत्ते तु सुमेधसि ॥८३॥
आहाऽशरीरवाण्येनं शृणु वत्सेति वल्गुना। वचसां त्वमविश्वासं त्यज सत्यं न तन्मृषा ॥८४॥
इति श्रुत्वाऽथ वचनमाकाशे निर्जनालये। प्रसन्नचित्तः साष्टाङ्गं ननाम भुवि सादरः ॥८५॥
अथ शीघ्रं रामशयं गत्वा तत्पादपङ्कजम्। मूर्ध्ना संस्पृश्य तद्वृत्तं यथावत्स न्यवेदयत् ॥८६॥
तच्छ्रुत्वा भार्गवो रामः प्राह शिष्यं सुविस्मितः। धन्यस्त्वं वत्स ते स्वप्ने दृष्टा सा त्रिपुरा परा ॥८७॥
नान्यस्त्वत्तो धन्यतरः प्रसन्ना यस्य सा परा। मयाऽपि सर्वमेतत्तेवृत्तं समवलोकितम् ॥८८॥
योगदृष्ट्याऽथ ते सर्वं सम्यक् सम्पद्यतेऽधुना। इत्युक्त्वा सुशुभे काले साङ्गोपाङ्गां सविस्तराम् ॥८९॥
श्रीविद्यां क्रममार्गेण दीक्षयामास योगिराट्। प्राप्तदीक्षस्य तस्याथो दत्तात्रेयाच्छ्रुतं पुरा ॥९०॥

मैं विश्वास कर गुरु के समीप जाकर क्या बोलूँ ? स्वप्न के भ्रान्तिरूप होने से बुद्धिमानों के लिये वह विश्वास करने योग्य नहीं है। हतविवेक मैं भगवती के कहने से क्यों न जाऊं ? अहो ! आश्चर्य है मुझे सब कुछ ही विषम लगता है, काल की कुटिल गति है ॥८१-८२॥

तो भी मैं न जाऊं तो भगवती पराम्बा मुझे क्षमा कर सकती है इस प्रकार जब निश्चित कर सुमेधा अपने नित्यकर्म में लग गये तो आकाश से बड़ी स्पष्ट प्रेममयी दिव्यवाणी बोली "हे वत्स" ! इसे सुन मेरे कहे हुए का तुम अविश्वास छोड़ो, जो कुछ तुमने देखा वह सब कुछ सत्य है कभी मिथ्या नहीं है ॥८३-८४॥

अनन्तर इस प्रकार देवलोक से आकाश में वाणी सुनकर सुमेधा अत्यन्त प्रसन्न हुये और उन्होंने आदर सहित इष्ट-देव को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अब शीघ्र ही श्रीपरशुरामजी के आश्रम में जाकर उनके चरण कमलों में मस्तक नवाकर वह सम्पूर्ण वृत्तान्त, जैसा उसने अनुभव किया, कह दिया ॥८५-८६॥

इसे सुनकर भार्गव श्रीपरशुराम ने अत्यन्त विस्मित होकर शिष्य को कहा "हे वत्स" ! तू वस्तुतः धन्य है तेरे स्वप्न में परा जगदम्बा त्रिपुरा का दर्शन हुआ यह तेरे लिये गौरव की बात है। तेरे से अधिक धन्य अन्य दूसरा व्यक्ति नहीं हैं जिस पर वह परमाम्बा इतनी अधिक प्रसन्न हुई हो मैंने भी यह सब वृत्तान्त योगदृष्टि से देखा ॥८७-८८॥

अब सारी बातें ही भली भांति सम्पन्न की जायगी यह कहकर अत्यन्त शुभ मुहूर्त्त में योगिराज श्रीपरशुरामने कौल मार्ग के अनुसार साङ्गोपाङ्ग विस्तारपूर्वक उसे श्रीविद्याकी दीक्षा दी ॥८९-९०॥

इतिहासं तन्त्रसारं पुण्यं भागवतोत्तमम्। साक्षाच्छिवोक्तं त्रिपुरारहस्यमुपदिष्टवान् ॥९१॥
वत्सेतत्परमं गोप्यं रक्षणीयं प्रयत्नतः। न्यस्तं मयि श्रीगुरुणा तदाज्ञावशतस्त्वयि ॥९२॥
संक्रामितमभक्तेषु नास्तिकेषु न वक्ष्यसि। आराध्य त्रिपुरेशानीं तत्प्रसादमवाप्य च ॥९३॥
निबध्य ग्रन्थरूपेण सच्छिष्येषु नियोजय। एवमाज्ञा मम गुरोस्तत्सत्यं स्यान्न चान्यथा ॥९४॥
इत्युक्त्वा प्रणतं शिष्यमाशीर्भिरनुयोजयत्। अथ नत्वा गुरुं रामं परिक्रम्य प्रदक्षिणम् ॥९५॥
जगाम हालास्यपुरे यत्र श्रीमीनलोचना। पराम्बा राजते साक्षात्सुन्दरेश्वरवल्लभा ॥९६॥
सुवर्णपद्मिनीतीरे वेगवत्यविदूरतः। तपः परममातिष्ठदुद्दिश्य श्रीपराम्बिकाम् ॥९७॥
ध्याननिष्ठो महाभागो नियमैरन्वितो यमैः। काले काले पूजयन् तां नियतेन्द्रियमानसः ॥९८॥
तां ध्यायन् ललितां नित्यं भक्तिभावसमृद्धिमान्। पूजयामास परमामेवं तस्य सुमेधसः ॥९९॥

सुमेधा के दीक्षा प्राप्त कर लेनेपर जो पवित्र भगवती के सम्बन्धका अत्युत्तम तन्त्रों का सार रूप इतिहास प्रत्यक्ष में भगवान शंकर ने अपने श्रीमुखसे कहा उस त्रिपुरारहस्य का उपदेश उसे किया ॥९१॥

हे वत्स ! यह सारा ही तत्त्व परम रहस्यपूर्ण है इसे विशेष प्रयत्नसे सुरक्षित रखना चाहिये; मुझे श्री भगवान् गुरुदेव ने उपदेश किया उन्हीं की आज्ञासे मैंने तुम्हें यह बता दिया ॥९२॥

इस परमसार रहस्य को भक्तिहीन व नास्तिक व्यक्तियों को तू न कहना। भगवती त्रिपुरामहेश्वरी की आराधना कर उनका अनुग्रह प्राप्त करके ग्रन्थ के आकार में बनाकर इसे सच्छिष्यों (अधिकारियों) को ही बताना ॥९३॥

इस प्रकार "मेरे गुरु की आज्ञा सत्य हो अन्यथा न हो जाय" यह कहकर सुमेधा ने नतमस्तक हो गुरुदेव को प्रणाम किया और आशीर्वाद से गुरु ने भी उसकी वर्धापना की ॥९३-९४॥

तदनन्तर गुरु श्रीपरशुरामको नमनकरके प्रदक्षिणा क्रम से परिक्रमण कर वह सुमेधा ऋषि हालास्यपुर में गया जहां शोभायुक्त मीन लोचनवाली (भगवती मीनाक्षी) साक्षात् सुन्दरेश्वर महेश्वर की पत्नी विराजमान थी ॥९५-९६॥

वेगवती स्वर्ण पद्मिनी के तट से कुछ दूरपर उसने श्री पराम्बाका ध्यान कर उत्कृष्ट तपस्या की ॥९७॥

अपने तपस्या कालमें वह महाभाग ध्यानपूर्वक यम-नियमों का पालन करता हुआ संयमपूर्वक नियत समय पर भगवती का पूजन करता रहा ॥९८॥

नित्य ही भगवती ललिता को एकनिष्ठ ध्यानसे जपते हुये उसका अनन्य भक्तिभाव बढता रहा और पूजाका क्रम अविकल चलता रहा; इस प्रकार उस सुमेधाके द्वारा भगवती ललिता की एकाग्रमनसे ध्यान धारणा करते हुये पांचवर्ष बीत गये ॥९९॥

अतिक्रान्ताः समाःपञ्च ललितां ध्यायतोऽन्वहम्।
अथैकदा ध्याननिष्ठो दृष्ट्वाऽन्तःपुरुषं शिवम् ॥१००॥
कर्पूरगौरं जटिलं भस्मोद्धूलितविग्रहम्। करेणवाद्यन् वीणां पुरतः समवस्थितम् ॥१०१॥
किमेतदिति साश्चर्यमुन्मील्य नयने तदा। पुःरस्थितं नारदं तमन्वीक्ष्योत्थाय विस्मितः ॥१०२॥
विष्टरं प्रतिपाद्यऽथ प्रणिपत्य कृताञ्जलिः। उवाच मधुरं वाक्यं विनीतो हृष्टमानसः ॥१०३॥
देवर्षे स्वागतं तेऽस्तु क्षन्तव्या मदपाकृतिः। मया ध्यानस्थितेनेह पुरस्त्वं नावलोकितः ॥१०४॥
सतां समागमो लोके भूर्यभ्युदयकारणम्। कृतार्थोऽहं भवद्भिर्यदनुग्रहविलोकितः ॥१०५॥
ईप्सितं मे सुसम्पन्नं भवद्दर्शनमात्रतः। तथापि मे मुनिश्रेष्ठ ! प्रष्टव्यमवशिष्यते ॥१०६॥
पृच्छामि किञ्चित्त्वां ब्रह्मन् महान् सन्देह आस्थितः।
त्वं बहिः संस्थितोऽपीह कथं मेऽन्तः समीक्षितः ॥१०७॥
एतस्य कारणं ब्रूहि यदि श्रोतव्यमस्ति मे। साधवः समभावेन संस्थिता दीनवत्सलाः ॥१०८॥
इति पृष्टस्तदा तेन लोकानुग्रहतत्परः। नारदः प्रहसन् वाक्यमुवाचाऽखिलदर्शनः ॥१०९॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये द्वादशसाहस्र्यां संहितायां नारदाभिगमनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

इसके बाद एक दिन जब वह अपने ध्यानको केन्द्रित कर हृदयस्थ इष्टदेव शिवके ध्यानमें लगा हुआ आनन्द अनुभव करता हुआ कर्पूर के समान गौरवर्णवाले, जटाधारी सारे शरीर में भस्म रमाये परमप्रभु का स्मरण करता था तभी हाथ से वीणा बजाते हुये महापुरुषको अपने सामने देखकर अहो ! यह क्या है इसप्रकार आश्चर्यपूर्वक अपने नेत्रों को खोलकर सामने खड़े हुये नारदको देख फिर विस्मित हो उठकर उन्हें भली प्रकार पाद्य अर्घ्य, व आसन देकर हाथ जोड़कर पूजाकर प्रणाम किया और अत्यन्त प्रसन्न होकर विनीत भावसे वह मधुरवाणी बोला ॥१०१-३॥

हे देवर्षे ! आपका स्वागत हो मेरेसे ध्यानमें बैठे कोई अपराध हो गया हो और आपको मैने न देखा हो तो कृपा कर क्षमा करें ॥१०४॥ महान् पुरुषोंका समागम बारंबार इस संसार में अभ्युदय का कारण होता है। मैं तो आपकी कृपादृष्टि से ही कृतकृत्य हो गया हूँ ॥१०५॥

मेरी सम्पूर्ण कामनायें और अभीष्ट आपके शुभदर्शन से ही पूर्ण हो गये हैं फिर भी हे मुनिश्रेष्ठ मुझे आपसे पूछना बाकी है। हे ब्रह्मन् ! मैं आपको कुछ पूछता हूं मुझे बड़ा संदेह हो रहा है, हे महाराज आप बाहर विराजमान हैं तो भी मुझे अपने अन्तःकरण में कैसे दिखलाई पड़े ? यदि मेरे सुनाने योग्य हो तो इसका कारण मुझे बतलाइये। साधु महानुभाव दीनों पर अकारण स्नेह करते हैं और उनकी समदृष्टि होती है ॥१०६-१०८॥

इसप्रकार सुमेधाके पूछने पर सम्पूर्ण प्राणीहि ते रत देवर्षि नारद जो अपने आत्मयोग से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का दर्शन करने का सामर्थ्य रखते हैं हँसते हुये बोले ॥ १०९ ॥

इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्यकी बारह हजार श्लोक वाली संहिता के अस्सी अध्यायोंवाले ग्रन्थ में
नारदाभिगमननामक प्रथम अध्याय संपूर्ण ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

——*

नारदद्वारा सुमेधसे रहस्य-ज्ञानप्रदानम्

हारितायन! वत्सैतत्त्वया प्रोक्तं महाऽद्भुतम्। अन्तः समीक्षित इति विदुषेवाऽतिबालवत्
नूनं मया पर्यटता दृष्टा भुवनपङ्क्तयः। विद्वांसो मन्दमतयः स्त्रियः शूद्राश्च पामराः
बहुधा तैरहं पृष्टो नैवमद्यावधि क्वचित्। नाम्ना सुमेधा विद्वांस्त्वं प्रश्नार्थं वद मे स्फुटम्
अन्तः समीक्षित इति यत्त्वयोक्तं वचः शुभम्। किमन्तस्तत्र किं बाह्यं कस्मात्कस्य किमात्मकम्
अन्तः शरीर इति तु नात्र वक्तुं क्षमं भवेत्। दृष्टोऽहं देशसंस्थानो महाकाशेन संवृतः
असंख्यातप्रमाणन्तत् सप्तवैतस्तिकं त्विदम्। शरीरं तव तत्रापि द्रष्टा त्वं कुत्र संस्थितः
बाह्यादन्तस्त्वया दृष्टोऽथवाऽन्तःसंस्थितेन वा। बाह्येन्द्रियैरान्तरं त्वमौदरं न समीक्षसे
यद्यान्तरेण संदृष्टस्त्वयाऽहं तत्र मे शृणु। आत्मा पर्यनुयोज्यः स्यात्तव तत्र त्वया सखे॥
त्वं बहिर्दृष्ट इत्येतदत्रापि शृणु मद्वचः। कस्य बाह्यं केन दृष्टं कथं किं तत्र कारणम्॥

---

* द्वितीय अध्याय *

हे वत्स! हरितायन? तुमने अति महा अद्भुत वर्णन किया, आत्मान्तः करण को देखा इस प्रकार तुमने बालक समान होकर भी विद्वान्की भांति आचरण किया है। मैने घूमते हुए कई भुवनोंके भुवन देख लिये विद्वान्, मूर्ख, शूद्र और पापियों को देखा उन्होंने बहुत प्रकार से मुझे पूछा और आज तक कहीं भी तेरे जैसा किसीने विलक्षण नहीं किया। हे पुत्र नाम से ही तुम यथार्थ सुमेधा विद्वान् हो मुझे अपने प्रश्न का आशय स्पष्ट रूपसे समझाओ। जो यह शुभवाणी कहा कि अन्तः साक्षात्कार कर लिया तो कौन अन्तः पदार्थ है? कौन बाह्य है? यह विभेद किस हुआ है? और उसका रूप क्या है? अन्तः शरीर इस प्रकार से तो इसे कहा भी नहीं जा सकता। मैने सभी संस्थानको महाकाशसे व्याप्त देखा है। सात बालिश्त की लम्बाई के प्रमाण वाला यह तेरा शरीर असंख्यात (अनन्त) प्रमाण का है उसमें भी देखने वाला तू कहां स्थित रहा? तू ने बाहरसे अन्तर् देखा कि अन्तः स्थित होकर सब कुछ देखी? बाहरी इन्द्रियों से तो अपने उदर (पेट) के अन्तर् भाग की कोई वस्तु तुम्हे दिखाई ही नहीं देगी। आन्तर प्रत्यक्ष (आत्म प्रत्यक्ष) द्वारा तू ने मुझे देखा तो ले सुन? हे सखा उस कालमें तेरी आत्माको तुमने [illegible] किया। तू ने बाहर देखा इस प्रकार भी मेरी बातकी पुष्टि सुन। किसका बाह्य किसने देखा? कैसे देखा? [illegible] क्या कारण है? ॥१-९॥

इन्द्रियं देहतुल्यत्वाज्जडं स्वस्मिन् हि संस्थितम्। बहिर्गतं कथं तेन दृष्टं स्यादिति तद्वद ॥१०॥
सर्वं बहिर्गतं तत्र संस्थितं नेक्षितं कुतः। दृष्टश्चेदिन्द्रियेणाऽहं किं जातं तव तद्वद ॥११॥
आगतोऽहमब्जयोनेः सदनात्त्वां समीक्षितुम्। तत्राभूत्तव या वार्त्ता तां वदामि सखे शृणु ॥१२॥
सभायां ब्रह्मणः स्थाने मार्कण्डेयो महानृषिः। पितामहं समासीनं देवाद्यैः समुपस्थितम् ॥१३॥
नत्वा पप्रच्छ सर्वेषां शृण्वतां विनयान्वितः। भगवन् त्वं समस्तज्ञः सर्वलोकपितामहः ॥१४॥
नाज्ञातं तव किञ्चित्स्यात्सर्वकर्त्ता भवान् यतः। अहं त्वत्कृपया देव चिरजीवितमाप्तवान् ॥१५॥
साक्षाच्छिवाराधनतो जितं मृत्युपदं मया। सर्वशास्त्राणि दृष्टानि सेतिहासागमानि च ॥१६
पुराणान्यपि सर्वाणि विद्याश्चाखिलगोचराः।
किं तत्र सारं श्रोतव्यं यदि मे स्यात्सुनिश्चितम् ॥१७॥
भवान् वदतु तन्मेऽत्र सन्देहो मे महानयम्। अत्र पृष्टा मया देवा ऋषयः सिद्धयोगिनः ॥१८॥
वदन्ति स्वस्वाभिमतं भक्तिश्रद्धावशेन ते। सर्वानभिज्ञास्ते यस्मात्प्रोचुः स्वस्वोचितं वचः ॥१९॥
त्वं लोककर्त्ता सर्वज्ञः सर्वात्मा सर्वदर्शनः। वद तन्मे दयासिन्धो यथापृष्टो मया प्रभो ॥२०॥

इन्द्रिय तो देहके समान होनेसे जड़ है अपने में ही स्थित है तो बाहर स्थित किसी वस्तु को उसने कैसे देख लिया ? उसे तू बता, जब देखा ही तो सारी बाहरकी वस्तुयें क्यों नहीं देख पाया ? जब मैं तेरी इन्द्रियोंसे देखा गया तो तेरा क्या हुआ ? वह भी बता ॥१०-११॥

मैं भगवान् ब्रह्माजी के लोक से तुम्हें देखने को आया हूं; वहां जो तेरे विषय की बात हुई, सो बताता हूं हे सखे ! सुन। ब्रह्मसदन (श्रीब्रह्मा के लोक) में सभा में महर्षि मार्कण्डेय ने देव गण आदि से बैठे हुए पितामह सेहित भगवान् ब्रह्मा से विनयान्वित हो प्रणाम कर सब के सन्मुख पूछा "हे भगवन् ! आप सर्वज्ञ हैं सम्पूर्ण सृष्टि के कर्त्ता हैं। हे देव ! मुझे आपकी ही कृपा से दीर्घजीवन (चिरंजीविता) प्राप्त है। ॥१२-१५॥

मैंने साक्षात् भगवान् शिवकी आराधना कर मृत्युपद को जीतलिया है। मैने इतिहास आगम सहित सम्पूर्ण शास्त्रों खेचरी व गोचरविद्याओं और ज्ञान विज्ञान को देखा उनमें सुननेयोग्य सारतत्त्व क्या है ? सो आप भली प्रकार सुनिश्चित सिद्धान्त का प्रतिपादन कीजिये मुझे अत्यधिक सन्देह है ॥१६-१८॥

मैने इस विषयमें देवगण, ऋषि समुदाय, सिद्ध योगीजन को जो पूछा तो सबने भक्ति श्रद्धाके वशीभूत हो अपना अपना अभिमत अभिप्राय प्रकट किया। वे महानुभाव सर्वानभिज्ञ रहे इसी लिये अपना अपना उचित वचन कहा। आप लोककर्त्ता सर्वज्ञ, सम्पूर्ण भूतों के आत्मा और ब्रह्म दर्शन किये हुए हैं हे दयासिन्धो ! हे प्रभो आप मुझे जैसे मैंने पूछा है वैसे ही समझाइये" ॥१९-२०॥

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः । क्षणं ध्यात्वा सुमनसा ननाम भुवि दण्डवत् ॥२१
संस्मारितः पराशक्तेः प्रभावं तेन हर्षतः । पुलकाङ्कुरुहो नेत्रे पूर्णानन्दाश्रुनिर्भरः ॥२२
कृताञ्जलिः प्रणम्याथो त्रिपुरां सर्वकारणम् । वक्तुं समुपचक्राम सम्बोध्य मुनिपुङ्गवम् ॥२३
शृणु मद्वचनं ब्रह्मन् सत्यं ते कथयाम्यहम् । सभासद्भिः समेतस्त्वं श्रद्धत्स्वाऽत्र मयोदिते ॥२४
अश्रद्दधाना ये केचित्तेषां नात्र भवेत्स्थितिः । या सर्वजगतां हेतुर्यया सर्वमिदं ततम् ॥२५
यस्यामत्येति सर्वं सा त्रिपुरा सर्वतोऽधिका । यया विरहितं सर्वं वन्ध्यात्मजसमं भवेत् ॥२६
यस्याः प्रसादलेशेन सर्वं स्वात्मनि संस्थितम् । प्रत्यणुक्षणभागेषु या पूर्णा त्रिपुरा हि सा ॥२७
या विचित्रतनुप्राणकरणानि प्रतिक्षणम् । भुवनानि प्रभिन्नानिस्वात्मनाच्छादयत्यजा ॥२८
यस्याः पर्यन्तमध्यादिभागं नाहं हरिर्हरः । जानीमो वयमेतस्याश्चरणाम्बुजरेणवः ॥२९
सृष्टिः स्थितिः संहृतिश्च तिरोधानमनुग्रहः । क्रियते सर्वदाऽस्मासु स्थितया परयायया ॥३०

महर्षि मार्कण्डेय का कथन सुनकर लोकपितामह श्रीब्रह्मा एक क्षण भर ध्यान कर प्रसन्नमनसे भूमिपर दण्ड किया, उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवती पराशक्ति का प्रभाव स्मरण किया व पुलकित शरीर और आंखो पूर्णानन्द से आंसुओंसे सविशेष रोमाञ्चित हो हाथ जोड़ त्रिपुरेशीको प्रणाम किया जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी सर्वक है और मुनियों में श्रेष्ठ श्रीमार्कण्डेय को सम्बोधन कर कहना आरम्भ किया ॥२१-२३॥

हे ब्रह्मन् ! आप मेरा वचन सुनिये मैं आपको सत्य कहता हूं आप सब उपस्थित सभाके सदस्यों के साथ में हुए पर श्रद्धा जमावें ॥२४॥

जो कोई भी इनमें अश्रद्धालु हैं उनकी कोई स्थिति नहीं है । जो त्रिपुरा सम्पूर्ण जगत् की कारण हैं जिससे सारा व्याप्त है और अन्तमें उसीमें समा जाता है वही आदि जगन्माता सबसे अधिक समर्थ है । इस महेशानी के बि सम्पूर्ण सृष्टिही वन्ध्याके पुत्र के समान निरर्थक और सत्ताहीन है ॥२५-२६॥

जिसकी कृपा के लेश से सब अपनी आत्मा में ही स्थित है । जो प्रति अणु (देश) क्षण (काल) और भूभाग (वि में स्वतः पूर्ण है वही त्रिपुरा है । जो प्रतिक्षण विचित्र शरीर प्राण और साधन सम्पन्न नाना भुवनों को अपनी सर्वोत्त आत्मकला से प्रविभाग कर बनाती है, और स्वयं वही आद्या उन्हें आच्छादित करती है ॥२७-२८॥

जिसके पूर्ण, अन्त, मध्य भाग और आदि स्थान को न तो मै, न विष्णु और न शंकर ही जानते हैं केवल हम लो उस पराम्बा के चरण कमलों की रेणुओं को ही जानते हैं । सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोधान और अनुग्रह शक्तियों कृपा हम लोगों पर वही पराशक्ति किया करती है ॥२९-३०॥

सा सर्वदेवी सर्वेशी सर्वकारणकारणम् । त्रिपुरा सुन्दरी प्रोक्ता स्वतन्त्रा चिद्विलासिनी ॥३१॥
अनेकरूपा सा शक्तिर्जाता भक्तकृपावशात्। सर्वश्रेष्ठा सर्वमाता त्रिपुरा वाक्समाश्रया ॥३२॥
तन्मूर्त्तिः सर्वतोत्कृष्टा तत्सिद्धान्तः परो मतः । सैव सर्वेश्वरी सर्वपूज्या शृणु मुनीश्वर ! ॥३३॥
तद्रहस्यं महापुण्यं शिववक्त्रैकगोचरम् । आदिनाथाच्छक्तिमुखात्सदाशिवतुरीयकात् ॥३४॥
रुद्राद्विष्णोर्मया लब्धं नान्यो जानाति कश्चन। मर्त्ये लोके महाविष्णोरंशो दत्तगुरुः स्मृतः ॥३५॥
तेन श्रीकण्ठमुखतः श्रुतः स्वांशे समाक्षिपत् । भार्गवः सोऽपि गुर्वाज्ञावशेन प्रोक्तवान् ततः ॥३६॥
सुमेधसे स्वशिष्याय स सम्प्रति महीतले। चिकीर्षुर्ग्रन्थरूपेण हालास्यं समुपस्थितः ॥३७॥
त्रिपुराध्याननिरतः श्रीगुरोराज्ञया बुधः । इत्युक्तं देवदेवेन ब्रह्मणा ब्राह्मणं प्रति ॥३८॥
तत्त्वां द्रष्टुमिह प्राप्तः सत्यमेतद्ब्रवीमिते । इति सर्वं मया प्रोक्तं यथावृत्तं समागमे ॥३९॥
उत्तरं वद मत्प्रश्ने यज्ज्ञातं हारितायन ! । इति नारदवाक्यं स श्रुत्वा सञ्चिन्त्य सर्वतः ॥४०॥

"वही सर्वदिव्य प्रभासम्पन्न देवगण में सबसे अधिक दिव्यरूप से भासती है, सब भूतमात्र की ईश्वरी है, स्वतन्त्र कर्तृत्वसम्पन्न है चिद्विलास वाली अघटित घटना पटीयसी सुन्दरी भगवती त्रिपुरा है। एक होकर भी स्वभक्तों पर कृपा करके अनेक रूप वाली है, सबसे श्रेष्ठ, सब की जननी, त्रिपुर में विलास करने वाली और परावाक्समाश्रया है। उसी परास्वा की मूर्त्ति सबसे श्रेष्ठ है उसके सम्बन्ध का सिद्धान्त ही सबसे उत्कृष्ट है। हे मुनीश्वर ! वही सर्वेश्वरी सर्वपूज्या है उनके सम्बन्ध का भगवान् शिवके द्वारा कहा हुआ महापुण्यजनक रहस्य को तू सुन। शक्ति की प्रमुखतावाले भगवान् आदिनाथ सदाशिव तुरीय श्रीरुद्रसे विष्णुने इसे प्राप्त किया, विष्णु के माध्यम से यह मुझे प्राप्त हुआ। इस अत्यन्त गोपनीय तत्व को दूसरा कोई नहीं जानता है। मर्त्यलोक में महाविष्णु के अंश श्री दत्तगुरु कहे गये हैं, उन्होंने श्रीकण्ठ से सुनकर अपने अंश भार्गव में सब समावेश कर दिया; उन्होंने गुरु की आज्ञा के वशीभूत हो अपने शिष्य सुमेधा को यह सारा तत्त्व कहा। वह अभी पृथ्वी पर श्रीत्रिपुरा के रहस्य को स्फोरण करने वाले ग्रन्थ को बनाने की इच्छा से हालास्य नगर में स्थित है" ॥३१-३७॥

वह महाविद्वान् श्रीगुरु की आज्ञा से त्रिपुराके ध्यान में लगा रहता है। इस प्रकार देवाधिदेव ब्रह्मा ने ब्राह्मण को जो बताया वही मैं देखने के लिये यहां आया हूँ यह तुम्हें सत्य कहता हूँ। इस प्रकार तुम्हारे समागम में जो बातें जैसी हुई हैं वे सब यथावत् तुम्हें बता चुका हूँ। "हे हारितायन ! अब मेरे प्रश्न का उत्तर दो" इस प्रकार श्री-नारदका कथन सुनकर हारितायन चारों ओर विचार कर कोई उत्तर न जान पाया और लज्जित हो कर देवमुनि से बोला। "हे महर्षे ! मैं आपके प्रश्नों का कोई भी उत्तर नहीं जानता हूँ; ॥३८-४०॥

नोत्तरं ज्ञातवान्वक्तुं लज्जितो मुनिमब्रवीत्। महर्षेऽत्र न जानामि किञ्चिदप्युत्तरं तव ॥४१॥
भवान्सर्वं वदतु मे यदत्रानन्तरं शिवम्। भवतोक्तं यथा तद्वद् गुरुणाहं प्रचोदितः ॥४२॥
ग्रन्थतः कुरु वत्सेति त्रिपुराया रहस्यकम्। श्रुतं गुरुमुखात्सर्वं ध्याननिष्ठेन तन्मया ॥४३॥
विस्मृतं मन्दबुद्धित्वाद्दयां कुरु मयि प्रभो !। इत्युक्त्वा तस्य चरणौ प्रणिपत्यान्वयाचत ॥४४॥
नारदोऽथ चिरं तत्र ध्यात्वा सर्वमचेष्टत। अथ ध्यानाहुतो ब्रह्मा नारदेन महर्षिणा ॥४५॥
आजगाम क्षणात्तत्र कृपया भाविगौरवात्। प्राप्तं तत्र विधातारं ज्वलन्तमिव पावकम् ॥४६॥
नवविद्रुमसङ्काशं चतुर्वक्त्रं चतुर्भुजम्। कमण्डलुञ्चाऽक्षमालामभयं वरमेव च ॥४७॥
दधानं श्वेतवसनं स्वच्छयज्ञोपवीतकम्। तेजोराशिं समीक्ष्याऽथो नारदः सहसोत्थितः ॥४८॥
सुमेधसाऽप्यनुगतो दण्डवत्प्रणनाम तम्। संपूज्यार्घ्यासनाद्यैस्तं कृताञ्जलिरवस्थितः ॥४९॥

"आप मुझे जो सर्वथा कल्याणकारी तत्त्व है (अथवा शिव तत्त्व-अन्तिम ज्ञातव्य) उसे समझाइये जैसा आप ने कहा वैसे ही पूज्य गुरुदेव ने मुझे आदेश दिया, "हे वत्स" भगवती त्रिपुरा के रहस्य का बन्धन ग्रन्थ के द्वारा करो। मैने एकाग्रध्यान लगा कर श्रीगुरुमुख से सब सिद्धान्त सुने। परन्तु मन्दबुद्धि होने से वह सब विस्मृत कर (भूल) गया। हे प्रभो आप मेरे ऊपर दया कीजिये" ॥४१-४३॥

इस भांति उस महर्षि के चरणों में सादर प्रणाम कर अनुरोध किया इस प्रकार हारितायन सुमेधा के अनुरोध पर महर्षि नारद ने दीर्घकाल तक ध्यान कर सब प्रकार यत्न किया। इसके अनन्तर ध्यान द्वारा आमन्त्रित पितामह ब्रह्मा नारद द्वारा प्रार्थना करने पर भविष्य में श्रीत्रिपुरा का महारहस्य पूर्ण ग्रन्थ सभी नर-नारियों को सुलभ होगा इस गौरव को बढ़ाने के लिये क्षण भर में ही कृपा कर उपस्थित हो गये। नारद ने वहां पर प्रज्वलित अग्नि के समान आभा हुए नवीन विद्रुम (मूँगा) की आभा धारण किये हुए चतुर्वक्त्र (चार मुखवाले) चतुर्भुज ब्रह्माजी को देखा। उन्होंने अपने हाथ में कमण्डलु, अक्षमाला, अभय और वर धारण कर रक्खे थे। वे श्वेतवस्त्र और शुद्ध यज्ञोपवीत धारण किये हुये थे तेज के पुञ्ज ब्रह्माजी को देख देवर्षि सहसा अभिवादन करने को उठे उनके पीछे-पीछे सुमेधा भी थे। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। पितामहको अर्घ्य आसन आदि से पूजन वन्दन करके नारद हाथ जोड़े खड़े रहे ॥४४-४९॥

दृष्ट्वाऽऽह नारदं ब्रह्मा वत्स किं ते स्मृतोऽस्म्यहम्। किं कर्त्तव्यं मया तेऽद्य वद यत्प्रार्थितं त्वया ॥५०॥
इति श्रुत्वाऽथ वचनं नारदः प्रत्युवाच तम्। भगवन् त्वत्प्रसादेन परिपूर्णमनोरथः ॥५१॥
भवतोक्तं पुरा वाक्यं मार्कण्डेयाय धीमते। त्रिपुराया रहस्यस्य माहात्म्यमतिचित्रितम् ॥५२॥
तत एनं सुमेधाख्यं तद्रहस्यकविं मुनिम्। पश्यामीत्यागतोऽत्रायं दृष्टोऽहं हारितायनः ॥५३॥
भवद्वाक्यं सत्यमस्तु कविर्भूयादयं मुनिः। परं भवन्तं पृच्छामि किञ्चिन्मे मनसि स्थितम् ॥५४॥
त्रिपुरा परमेशानी साक्षात्परशिवात्मिका। तत्केन पुण्यपाकेन प्राप्तमेतेन सेवनम् ॥५५॥
तद्रहस्याचार्य एषः सर्वोपासकपूज्यताम्। कथं प्राप्तोऽत्र नैवास्ति साधारणफलादिदम् ॥५६॥
एतन्मे संशयं देव! छेत्तुमर्हस्यशेषतः। गोप्यमप्येतदिच्छामि श्रोतुं तत्कृपया वद ॥५७॥
एतच्छ्रुत्वा नारदोक्तं ध्यात्वा किञ्चिदुवाच ह। शृणु नारद यत्सृष्टमस्य पुण्यं पुरा कृतम् ॥५८॥

श्री ब्रह्मा ने नारद को देख कहा "हे वत्स तुमने मुझे क्यों याद किया ? मुझे क्या करना चाहिये और जो अपना अभीष्ट हो सो बताओ" ॥५०॥

यह सुन कर नारद ने लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा से कहा "हे भगवन् ! आपकी कृपा से मैं सारे मनोरथ पूर्ण किये हुये हूँ। आप ने पूर्व कालमें जो भगवती त्रिपुरा के रहस्य का अत्यन्त चित्र विचित्र वर्णनों से परिपूर्ण विवरण किया था उसी महामहिमामयी के गूढ़तत्त्व को जो सुमेधा नामक मुनि भली प्रकार जाने हुए हैं, उन्हें देखने जैसे ही मै आया था कि तत्क्षण ही हारितायन ने मुझे देख लिया। हे महर्षे ! आपकी वाणी सत्य हो इस प्रकार यह मुनि जन्मजात कवि के समान परम क्रान्तदर्शी हो। परन्तु मेरे मन में जो विचार है उसे पूछना चाहता हूँ ; इस विलक्षण भगवती त्रिपुरा परमेशानी का सेवन जो साक्षात्परशिवारूपा है इस व्यक्ति को किस पवित्र पुण्य के फल से मिला ? उस तत्त्व के चूडान्त तत्त्व और रहस्य के जानने में इस श्रेष्ठ मुनि को रहस्याचार्य का पद प्राप्त है और सभी उपासकों में इसे कनिष्ठिकाधिष्ठित ही माना जाता है ; इस पद की योग्यता इसे कैसे प्राप्त हो गई ? यह कोई साधारण फल से प्राप्त नहीं है। हे देव ! मुझे यह सन्देह हो रहा है आप उसे सर्वथा मिटा दीजिये। यह गोपनीय तत्त्व भी है फिर भी इसे सुनना चाहता हूँ आप कृपा कर बतलाइये" ॥५१-५७॥

इस देवर्षि नारद के कथन को सुन कर पितामह ने कुछ समय तक ध्यान लगाया और फिर कहा "हे नारद ! सुन इसने पूर्व में जो किया था एवं जिसके कारण इसका पुण्य बना (वह इस प्रकार है।) ॥५८॥

पुराऽयं ब्राह्मणः कश्चिदलर्क इति विश्रुतः । सुमन्तुतनयः प्रत्यग्वाहिनी या सरस्वती ॥५९॥
तस्यास्तीरे सुरुचिरे निवासे निवसन्द्विजः । चारुरूपा तस्य भार्या सती भर्तृपरायणा ॥६०॥
अयं तस्य सुतो बालः पञ्चवर्षः प्रियः पितुः । सुमन्तुरन्वहं दुर्गापूजोपासनतत्परः ॥६१॥
महाभक्तो दृढमतिः सदा दुर्गापरायणः । अयीत्येवं स्वभार्यांस (?) आह्वयत्यनुवासरम् ॥६२॥
अलर्क एष तच्छ्रुत्वा समभ्यस्य च मातरम् । बालभावादाह्वयति 'ऐऐ !' इति मुहुर्मुहुः ॥६३॥
अथ रोगेणाभिभूतो बालो मातृप्रियः सदा । "ऐऐ" इति वदन्ध्यायन्मातरं प्राप पञ्चताम् ॥६४॥
त्रैपुरे मन्त्रराजे तदाद्यं बीजमबिन्दुकम् । प्रोक्तं वाग्भवमित्येतत् वाग्यस्माद्भवति द्रुतम् ॥६५॥
निरन्तरं तदावृत्या गतः कालोऽस्य भूयसा । अन्ते तदेव प्रवदन्देहन्यासमवाप्तवान् ॥६६॥
तत्पुण्यस्य प्रभावेण श्रीबाला त्रिपुरा परा । महायोगिभिरप्येषा प्रार्थ्यते दर्शनेच्छया ॥६७

पूर्व कालमें यह अलर्क नामक एक प्रसिद्ध ब्राह्मण था । इसके पिता का नाम सुमन्तु था वह द्विज पश्चिमवाहिनी (सरस्वती के सुन्दर तीर पर रहता था ।) चारुरूपा नामवाली उसकी पतिपरायणा साध्वी धर्मपत्नी थी । यह पांच वर्ष का बालक अपने पिता का बहुत प्यारा (लाडला) पुत्र था । सुमन्तु प्रतिदिन ही दुर्गा भगवती की उपासना में ही लगा रहता था ॥५९-६१॥

वह महाभक्त दृढ़ निश्चयसम्पन्न और दुर्गाजी का अनन्य उपासक था । वह प्रतिदिन अपनी भार्या को "अयि" इस प्रकार कहकर सम्बोधन करता । यह अलर्क पिता के द्वारा माता के लिये किये सम्बोधन को सुन उसका अभ्यास का अनुकरण से बालचपलतावश 'ऐ' 'ऐ' इस प्रकार बारम्बार अपनी माताको बुलाया करता; अनन्तर माता का यह दुलारा प्यारा बालक रोगी हो गया और "ऐ" "ऐ" कहता हुआ माता का ध्यान करते-करते परलोकवासी हो गया ॥६२-६४॥

त्रिपुरा सुन्दरी के मन्त्रराज में बिन्दुरहित यह आद्य बीज है, इसे वाग्भव कहा जाता है इससे वाणीसिद्धि अतिशीघ्र होती है और निरन्तर ही उसकी बार-बार आवृत्ति करने से इसका दीर्घ समय निकल गया । अपने अन्त समय में भी उसी बिन्दु रहित "ऐ" इस वाग्भव बीज को कहते-कहते उसने अपने प्राण छोड़े । उस पुण्य के प्रभाव से श्रीबाला भगवती पराम्बा त्रिपुरा, जिसके दर्शनों की इच्छा से महायोगीलोग भी अहर्निश प्रार्थना करते हैं, इस बालक पर शीघ्र ही प्रसन्न हो गई और स्वयं साक्षात् अम्बिकाने प्रत्यक्ष दर्शन दिये ॥ ६५-६७॥

सा प्रसन्नाऽचिरेणास्य प्रत्यक्षाभवदम्बिका। अनुग्रहं कृतवती स्तोत्रेणाऽनेन संस्तुता ॥६८॥
विचित्रार्थपदाढ्येन छन्दोबद्धात्मना तदा। न शक्तिरस्य पद्यानामासीद्विवेचितुं तदा ॥६९॥
तद्बीजजपमाहात्म्याद्देवतादर्शनेन च। अनुपस्थितमेवास्य स्तोत्रमत्यन्तविस्मृतम् ॥७०॥
अज्ञानेन यतो जप्तं पुरा बीजमबिन्दुकम्। अतः सर्वं विस्मरति धारणाविरहादयम् ॥७१॥
तथापि भाविकार्यस्य गौरवाद् वचनान्मम। सर्वं प्रतिस्फुरत्वेनमदृष्टश्चाऽश्रुतं तथा ॥७२॥
भूतं स्थितं भविष्यच्च गुर्वनुक्तमनीक्षितम्। छन्दोव्याकरणं चार्थैः काव्यरूपकलक्षणम् ॥७३॥
सर्वं भासतु तथ्येन कल्पान्तरगता अपि। लोकान्तरमानसाश्च व्यक्ताव्यक्ता अतीन्द्रियाः ॥७४॥
प्रतिभासन्तु चित्तेऽस्य न मृषोक्तं भवेत्क्वचित्। कर्ता स्यादेष त्रिपुरारहस्यस्य महामतिः ॥७५॥
पुरा स्थितमिदं सर्वमग्रन्थात्मतयाऽधुना। हारितायननिबद्धं (?)ग्रन्थरूपं भविष्यति ॥७६॥
इतिहासमिदं श्रेष्ठं विचित्रार्थकथायुतम्। शृण्वतां पठतां भक्त्या तुष्टा स्यात्त्रिपुराम्बिका ॥७७॥

इस स्तोत्र से उसने भगवती की स्तुति की वह इस पर बहुत प्रसन्न हुई, स्तोत्र में विचित्र अर्थवाले पदों का पूर्ण सुयोग था और वह मधुर छन्द में निबद्ध था। उस समय इस अबोध में पद्यों के विवेचन की कोई शक्ति नहीं थी। उस बीज मन्त्र के जप की महिमा से तथा भगवती पराम्बा के दर्शन से इसे उस समय का स्तोत्र अब अनुपस्थित एवं अत्यन्त विस्मृत हो गया। पूर्व में इसने अज्ञान में (बिना जाने ही) बिना बिन्दु का वाग्भवबीज जपा इसलिये धारण करने की त्रुटि से यह सब कुछ विस्मरण कर (भूल) जाता है। फिर भी भगवतीके प्रशस्त चरित्रों का स्तुति-निबन्धन इष्ट है; इसको भावि गौरव प्राप्त होगा और मेरी आज्ञा है इसे सब कुछ जो अदृष्ट (न देखा हुआ) अश्रुत (न सुना हुआ) है उसे वह प्रतिस्फुरित हो जाय। भूत, वर्तमान, और भविष्य का जो कुछ वर्णन है श्रीगुरु से प्रतिपादित और कभी न देखा हुआ छन्द, व्याकरण, सुन्दर रीतियों द्वारा गुम्फन कर अर्थ एवं योजनामें विच्छित्तिवाला, काव्यों, नाटकके लक्षणोंसे परिपूर्ण व सब कुछ श्रीत्रिपुराके सम्बन्ध का सारतत्त्व इसे यथातथ्य (पूर्ण सत्य के साक्षात्कार के साथ) अवश्य प्राप्त हो। यही नहीं जो कुछ दूसरे-दूसरे कल्पों में हैं अन्य व्यक्तियों के मन की अव्यक्त अभिव्यक्ति है, प्रगट और अप्रगट तथा इन लौकिक इन्द्रियों से जो ग्रहण न की जा सकती हो वे सब इसके चित्त को भासित हो जांय इसकी कही हुई उक्ति कभी मिथ्या न हो। यह महाबुद्धिमान् त्रिपुरारहस्य का कर्त्ता हो। पहले जो अब तक अग्रन्थ रूप से स्थित था आगे वह हारितायन का निबद्ध किया हुआ ग्रन्थ का रूप ले ले। यह महत्त्वपूर्ण इतिहास भगवती की विचित्र अर्थपूर्ण कथाओं से युक्त होनेसे श्रेष्ठ है। भक्ति पूर्वक इसे सुनने वाले और पढ़ने वालों पर श्रीत्रिपुराम्बिका अत्यन्त सन्तुष्ट हो ॥६८-७७॥

पठत्वशेषशास्त्राणि शृणोत्वखिलसत्कथाः । न यावदेतत्पठितं श्रुतं वा भुवि जायते ॥७९॥
तावत् केन श्रुतं नैव पठितं वा भविष्यति । किं बहूक्तेन देवर्षे ! सर्वसारमिदं भवेत् ॥७९॥
एतत्सम्यग्विदित्वा तु नावशिष्येत किञ्चन । यावदेतन्न जानाति तावन्न स्यात्सुपूर्णता ॥८०॥
सुमेधः ! शृणु मद्वाक्यं तव सर्वं स्फुरिष्यति । आरभ्य रामवचनात् त्रिपुरास्वप्नदर्शनम् ॥८१॥
कर्त्तव्यं क्रमशः सर्वं ज्ञातं तव भविष्यति । षट्त्रिंशद्दिवसैरेतत्कर्तव्यं भवता भवेत् ॥८२॥
अध्यायानां चतुष्कं स्यात्प्रत्यहं कुर्वतस्तव । सहस्राणां द्वादशकं खण्डं त्रितयमेव च ॥८३॥
आद्यो माहात्म्यखण्डः स्यात् ज्ञानखण्डस्तथाऽपरः । चर्याखण्डस्तृतीयः स्यादेवमेतद्भविष्यति ॥८४॥
कृत्वैतदादौ देवर्षे ! कर्त्तव्यं परमाद्भुतम् । वत्स नारद भक्त्यैतच्छ्रोतव्यं वै त्वया भवेत् ॥८५॥
वक्ताऽयमाद्यः श्रोता त्वं नारदेत्थं भविष्यति । इत्थमुक्त्वा जगत्कर्त्ता ताभ्यां तत्र प्रपूजितः ॥८६॥

भले ही सम्पूर्ण शास्त्र गुरुमुखसे अध्ययन किये जांय और सम्पूर्ण सत्कथायें भी सुनली गई हों परन्तु जब तक इसका पठन अथवा श्रवण नहीं हो जायगा तब तक किसी भी प्रकार का शास्त्राध्ययन अथवा श्रवण पूर्ण नहीं होगा । हे देवर्षे ! अधिक तुम्हें क्या बताऊँ यह ग्रन्थ सम्पूर्ण आगमनिगम और तदनुसारी शास्त्रों का पूर्ण निचोड़ हो ॥७९॥ इस ग्रन्थ को सुष्ठु प्रकार जानने से कुछ भी जानना अभीष्ट नहीं रहे । मनुष्य जब तक इसे नहीं जानता है तब तक उसको सुपूर्णता नहीं होगी । हे सुमेधः ! तू मेरी बात सुन । तुम्हें सब स्वतः स्फुरण हो जायगा । श्री परशुराम के कथन से आरम्भ होकर भगवती त्रिपुरा के स्वप्न में दर्शन होने तक और तुम्हें जो करना है वह क्रमशः तुम्हें ज्ञात हो जायगा । इस रचना को तू छत्तीस दिन में पूरा कर लेना ॥८०-८२॥

इस प्रकार प्रति दिन तुम्हें चार अध्यायें करनी होंगी । बारह हजार श्लोकों का उपनिबन्ध होगा और तीन खण्ड होंगे । आद्य माहात्म्यखण्ड होगा, दूसरा ज्ञानखण्ड तथा तीसरा चर्याखण्ड इस प्रकार सब व्यवस्थितरूप से रहेगा । सबसे प्रथम इसे करके फिर एक कर्तव्य और करना रह जाता है सो हे देवर्षे ! वह अद्भुत कार्य तुम्हें करना होगा । हे वत्स नारद ! भक्ति पूर्वक तुम्हें ही इसे सुनना होगा ॥८३-८५॥

इस प्रकार यह हारितायन आद्य वक्ता और हे नारद तुम सर्वप्रथम श्रोता बनोगे ।" इस प्रकार हो जाने पर वहाँ सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्मा की उन दोनों ने पूजा की तभी चतुर्मुख अन्तर्धान कर गये ॥८६॥

तदैवान्तर्हितो ब्रह्मा नारदोऽपि सभाजितः । सुमेधसा ययौ वीणां रणयन्नीप्सितान्दिशम् ॥८७॥
अथ क्षणं स्थितस्तूष्णीं विमना हारितायनः । सत्सङ्गविरहादीषत्कलुषीकृतमानसः ॥८८॥
अथ वेगवतीं गत्वा स्नात्वा कृतविधिर्मुनिः । सुन्दरेशं सुमीनाक्षीमभ्यर्च्य गणपं गुरुम् ॥८९॥
स्मृत्वा ग्रन्थस्य करणमुपचक्राम स द्विजः । 'ॐ नमः कारणानन्देत्यारभ्य' क्रमशः कृतम् ॥९०॥
समाप्तिमकरोदन्ते "सा भवेत्त्रिपुरैवह्रीम्" । शिवशक्तिप्रणवयोर्मध्ये ग्रन्थस्तु तन्मयः ॥९१॥
एवंविधस्तेन कृतो ब्रह्मणोक्तं यथा पुरा ।

इति श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

200.

❀❀❀❀❀❀

नारदजी भी उसी समय सुमेधा द्वारा भली प्रकार सत्कृत होकर अपनी भगवन्मयी वीणा को बजाते हुए अपनी अभीष्ट दिशा की ओर विदा हो गये ॥८७॥

इस घटना के बाद हारितायन क्षण भर शान्त रहे फिर सत्संग के विरह से कुछ खिन्नता सी उनके मनोभावों में आयी और उनका ध्यान उचट गया। इसके बाद उस मुनिने वेगवती नदी के तट पर जाकर स्नान एवं नित्य सन्ध्या विधि आदि सम्पन्न कर सुन्दरेश, सुमीनाक्षी देवी, की पूजाकर गणपति, श्रीगुरुदेव का स्मरण कर ब्रह्माजीके आदेशरूप ग्रन्थ के निर्माण का श्रीगणेश किया। उन्होंने "ॐ नमः कारणानन्द" से आरम्भ कर क्रमशः अन्तमें "सा भवेत् त्रिपुरैव ह्रीम्" यहाँ तक के ग्रन्थ की समाप्ति की। शिव शक्ति और ॐकार के मध्य यह ग्रन्थ उन्हीं की स्वातन्त्र्यःयभरता का प्रतिपादन करता है और उनके गौरव से परिपूर्ण है। ऐसा महिमासम्पन्न यह अपूर्व ग्रन्थ हारितायन ने प्राचीन काल में श्रीभगवान् ब्रह्मा के निर्देश से रचा ॥८८-९१॥

॥ श्रीत्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्डका द्वितीय अध्याय समाप्त ॥

तृतीयोऽध्यायः

——*

सत्रिपुरारहस्यमाहात्म्यं परशुरामचरित्रवर्णनम्

आदिनाथो महेशानः सर्वकारणकारणम् । सर्वकर्त्ता विजयते सर्वात्मकतया स्थितः ॥१॥
श्रीविष्णोरंशयोगीशो दत्तात्रेयो महामुनिः । गूढ़चर्यां चरँल्लोके भक्तवत्सल एधते ॥२॥
जमदग्न्यरणेर्जातः क्षत्रेन्धनमहानलः । रामोऽभ्युदेति भक्तान्तरज्ञानध्वान्तनाशकः ॥३॥
एवं ध्यात्वा गुरून्स्वर्णपद्मिनीरोधसि स्थितः । पितामहोक्तविधिना षट्त्रिंशद्दिवसैः कृतम् ॥४॥
इतिहासं भागवतं तन्त्रसारमखण्डितम् । वैराग्यभक्तिमाहात्म्यक्रियाज्ञानसमन्वितम् ॥५॥
नानाख्यानकथाचित्रं त्रिपुराया रहस्यकम् । पठतां पापशमनं शृण्वतां क्लेशनाशनम् ॥६॥
विचारितं स्वात्मलाभजननं मोक्षसाधनम् । पूजितं त्रिपुराभक्तिकरं दृष्टं शुभोदयम् ॥७॥

❀ तृतीयअध्याय ❀

भगवान् आदिनाथ महेश्वर सम्पूर्ण कारणों के कारण सब भूतमात्र के कर्त्ता जो समस्त प्राणिमात्र की आत्मा है (सर्वात्मरूप से सर्वदा स्थित हैं) उनकी जय हो ॥१॥

श्रीविष्णु के अंश योगीश्वर महामुनि दत्तात्रेय अति रहस्यमयी जीवनचर्या को सम्पन्न करते हुए अपने भक्तों पर कृपाकरने वाले संसार में विजयी हों ॥२॥

जमदग्नि रूपी अरणि (मन्थानदण्ड) से उत्पन्न और क्षत्रियरूपी इन्धन को भस्म करने में महाभीषण अग्नि रूप श्रीपरशुराम अपने भक्तजन के हृदय के अज्ञान को नाश करनेवाले सदैव तत्पर हैं ॥३॥

इस प्रकार स्वर्णपद्मिनी नदी के तट पर स्थित होकर हारितायन ने अपनी गुरुपरम्परा का श्रद्धापूर्वक ध्यान कर के पितामह द्वारा कहे गये विधान के अनुसार ३६ छत्तीस दिनों में पूर्ण किया हुआ श्रीत्रिपुरा का रहस्य बनाया । इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि यह भगवती चितिके सम्बन्ध का सम्पूर्ण इतिहास यथावस्थित जैसा हुआ है (इति-ह-आस) सर्व तन्त्रों का सार, अपने में स्वतः पूर्ण, विविध प्रकार की अनुपम कथाओं से सविशेष चित्रित, वैराग्य भक्ति, उस अचिन्त्य शक्तिके माहात्म्य, क्रिया (कर्म विधि) और ज्ञान काण्ड से युक्त है । यह भली प्रकार मनन से पढ़ने वाले के सम्पूर्ण पापों का शमन (नाशन) करता है और सुननेवाले (श्रोता) के सब क्लेशों को विनाश करने में अमोघ है इसे विचार पूर्वक धारण करने से अपने आत्मसाक्षात्कार का अलभ्य लाभ मिलता है; जिससे मोक्ष मार्ग का साधन सुगम बन जाता है । इसकी पूजन अर्चन करने से भगवती त्रिपुरा की परम भक्ति का सर्वेष्ट साधन मिलता है जिससे शुभभाग्य के उदय का अवसर तत्काल उपलब्ध होता है । भलीभांति सुलेख द्वारा लिखे जाने से यह विद्यातत्त्व का साक्षात्कार करता है और इसमें प्रतिपादित साधन विशेष का सविधि सम्पादन करने से (सेवन से) निस्संदेह यह वाञ्छित अभीष्ट का दाता है ॥४-७॥

विद्याप्रदं सुलिखितं सेवितं वाञ्छितार्थदम्। यत्र श्रीत्रिपुरादेव्याः कथाविभवकीर्तनम् ॥८॥
ज्ञानवैराग्यभक्त्याढ्यं नारदाद्यैः श्रुतञ्च यत्। तत्र किं दुर्लभतरं चिन्तामणिरिव स्थितम् ॥९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राप्तो देवर्षिसत्तमः। वल्लकीं वादयन्रम्यामानन्दाप्लुतमानसः ॥१०॥
सुमेधा अपि तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय सुस्मितः। सम्पूज्यासनपाद्याद्यैः कृताञ्जलिरभाषत ॥११॥
देवर्षे! त्वत्प्रसादेन ज्ञातं सम्यग्यथार्थतः। प्रगुणाञ्जनयोगेन प्रज्ञाचक्षुरिवाखिलम् ॥१२॥
पितामहोक्तं संपन्नं रचितं तद्रहस्यकम्। आज्ञापयाऽग्रे शिष्यं मां भवतः किंकरोम्यहम् ॥१३॥
अद्य सर्वाणि शास्त्राणि छन्दांसि विविधानि च। सर्वे लोका दिशः कालाः सेन्द्रियाश्च निरिन्द्रियाः ॥१४॥
ज्ञाताः करस्थितस्वच्छवैक्रान्तमणिखण्डवत्। नमस्ते ब्रह्मपुत्राय नारदाय महात्मने ॥१५॥

जहां श्रीत्रिपुरामहेशानी का कथारूपी वैभव का अत्यन्त संरम्भ से गुणानुवाद गाया गया है, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति (उपासना) की त्रिवेणी से इसके प्रति श्लोक में भव्य भावों की चमत्कृति भगवती के समुदार गुणों का अपूर्व रहस्य गुम्फित है तथा इसे नारद आदि परमश्रेष्ठ ऋषियों ने सुना है। इस महा कलिसन्तरण ग्रन्थ के उपस्थित रहने पर क्या वस्तु दुर्लभतर (कठिनता से प्राप्त) है? क्योंकि यह चिन्तामणि के समान स्थित है ॥८-९॥

इसी बीच में उस महामहिम हारितायन के यहाँ आनन्द से परिपूर्ण अन्तःकरण देवर्षिश्रेष्ठ श्री नारद अपनी रमणीय वीणा को बजाते हुए वहां आ गये ॥१०॥

सुमेधा भी उन्हें देखकर सहसा ही सुस्मित हो उठे और उन्हें आसन, पाद्य एवं अर्घ्य से विधिपूर्वक पूजन कर अपनी अञ्जलि बाँध प्रणाम कर कहा ॥११॥

"हे देवर्षे! आपके कृपापूर्ण प्रसाद से जैसे नाना नेत्र रोगों को शमन करने वाली अति उत्तम औषधों के योग से तैयार किये गये अञ्जन से अन्धे (प्रज्ञाचक्षु) को सब कुछ दिखाई देने लगता है वैसे ही मुझे भली प्रकार विदित हो गया। जो भगवान् पितामह ने निर्देश किया था वह रहस्यमय रचना मैंने तैयार कर दी है। आगे आप मुझ शिष्य को आदेश दीजिये कि मै आपके लिए क्या करूँ? ॥१२-१३॥

आज मुझे सम्पूर्ण शास्त्र, विविध छन्द, सम्पूर्ण लोक, दिशायें, भूत, भविष्य और वर्तमान कालकी स्थितियां इन्द्रिय प्रधान प्राणी और इन्द्रिय रहित भूतवर्ग इस प्रकार ज्ञात हो गये हैं, जैसे हाथ की हथेली पर स्वच्छ वैक्रान्तमणि का टुकड़ा ले लिया हो ॥१४॥

हे ब्रह्मपुत्र महात्मन् नारद! आपको मैं नमस्कार करता हूँ जिनकी कृपा के सुयोग से ही मुझे अचिन्त्य तत्त्व उस चिति का सम्पूर्णतया ज्ञान हो पाया" ॥१५॥

यत्कृपायोगतः सम्यग् ज्ञातं सर्वं परापरम्। इत्युक्त्वा पादयोस्तस्य दण्डवन्निपपात ह ॥१६॥
अथ तं नारदोत्थाप्य वक्षसाऽऽपीड्य तं मुनिम्। आसने सन्निवेश्याऽथो मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥१७॥
हारितायन ! धन्योऽसि त्वत्समो नैव विद्यते। यस्यैवं त्रिपुरापादभक्त्या सम्पत्तिरुद्गता ॥१८॥
यत्त्वया त्रिपुरादेव्या रहस्यं रचितं शुभम्। तच्छुश्रूषुरहं प्राप्तस्त्वच्छ्रयं ब्रह्मवाक्यतः ॥१९॥
श्रद्धावतो ममाग्रे तत्सर्वं वद सुविस्तृतम्। इति तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राञ्जलिर्हृष्टमानसः ॥२०॥
आनन्दाश्रुकलापूर्णविकासन्नेत्रपङ्कजः। त्रिपुरास्मृतिसञ्जातरोमाञ्चद्विगुणाङ्ककः ॥२१॥
अवदन्नारदं वाक्यं मधुनिष्यन्दसुन्दरम्। उपपन्नं तवैवेदं ब्रह्मपुत्र ! महामुने ! ॥२२॥
यच्छिष्यभूतान्मत्तस्त्वं शुश्रूषस्यखिलं विदन्। नैसर्गिकः स्वभावोऽयं सतां सुमहतां भवेत् ॥२३॥

इस प्रकार कहकर हारितायन उनके चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् कर भूमि पर लौटने लग गये ॥१६॥

इस प्रकार श्रीनारद ने उस मुनि को उठाकर अपनी छाती से स्नेहवश लगा लिया और आसन पर बैठाकर मधुरवाणी से बोले ॥१७॥

"हे हारितायन ! तू धन्य है तेरे समान भाग्यशील अन्य व्यक्ति नहीं हैं जिसके पास भगवती त्रिपुरा के चरण कमलों की भक्ति से महती ज्ञानशक्ति का उद्भव (प्राकट्य) हो गया ॥१८॥

जो तुमने त्रिपुरा भगवती का शुभ रहस्य रचा है उसे अपने इष्टदेव पितामह श्रीब्रह्मा के उपदेश से सुनने की इच्छा से मैं तेरे पास आया हूँ। मैं उस परम तत्त्व को सुनने में अत्यन्त श्रद्धावान् हूँ तू मुझे वह सब विस्तारपूर्वक बता" ॥१९॥

इस प्रकार श्री नारद के कथन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर आनन्द से निकले आसुओं से सारे नेत्र रूपी कमल खिल उठे हैं और भगवती त्रिपुरा के साक्षात् स्मरण ध्यान मात्र से ही आनन्द से उनके रोमाञ्च होने से रोम दुगुने उठ गये हैं (अपने इष्ट के ध्यान से ही रोमोगद्म होना देवता की पूर्ण कृपा के प्रसाद का परिचायक हैं।) ऐसे हारितायन ने नारदजी को मधु से सने हुए अमृतोपम वचन कहे। "हे महामुने ! ब्रह्मपुत्र ! यह आप जैसे महाशास्त्रविद् परावरज्ञ के लिए समुचित ही है कि सर्वज्ञ होते हुए भी मुझ शिष्यभूत मर्त्य अज्ञानी से अखिल भुवनाराध्या के पवित्र गुणानुवाद को सुनने की कामना करते हैं ॥२०-२२॥

सत्पुरुषों की यह निसर्गजात (स्वाभाविक) प्रकृति का सद्गुण है कि निमर्त्सर होकर अपने से कम जानने वाले (अल्पज्ञ) दूसरे व्यक्ति से भी ऐसे महानुभाव सद्ग्रन्थों के आशय सुना करते हैं ॥२३॥

अमत्सरा अवरतोऽप्यल्पं शृण्वन्ति सज्जनाः। नैतच्चित्रं परादेव्याश्चारित्र्यममृतोपमम् ॥२४॥
न तु द्राक्षाफले भेदो लोष्ट्रस्थे मणिपात्रगे। समं स्वभावमधुरं न पात्राद्भिद्यते रसः ॥२५॥
तवाज्ञां शिरसा धृत्वा विधात्राज्ञामनुस्मरन्। वदाम्यतिविचित्रं तद्रहस्यं परमामृतम् ॥२६॥
आवयोः संवादरूपं समाहितमतिः शृणु। आसीद्ब्रह्मसुतः श्रीमान्भृगुर्मुनिगणेडितः ॥२७॥
तत्पुत्रश्च्यवनः साक्षाद्ब्रह्मणासदृशो भुवि। सुकन्या यस्य चारित्र्यात्पित्रा दत्ता महात्मने ॥२८॥
येन सोमग्रहो दत्तो जित्वाऽश्विभ्यां शतक्रतुम्। ऋचीकस्तस्य तनयो महात्मा च्यवनोपमः ॥२९॥
तस्मै दत्ता स्वतनया गाधिना पुत्रमिच्छता। सेवया तोषितः सोऽपि वरं पत्न्यै प्रदत्तवान् ॥३०॥
सा वव्रे भ्रातरं पुत्रं क्षत्रं ब्रह्मकुलोत्तरम्। अथ सर्वं क्षत्रवीर्यं ब्रह्मवीर्यं स वीर्यवान् ॥३१॥
आक्षिप्य निर्ममे तत्र पायसद्वयमुत्तमम्। तत्पुंसवनयुग्मं स हुत्वाऽग्नेः सम्भृतं तदा ॥३२॥

फिर परा देवता त्रिपुरा के अमृतोपम पेय तत्त्व को सुनने का आप मुझे श्रेय दें तो कोई विचित्र बात नहीं ॥२४॥

यदि पत्थर के पात्र में अथवा मणिपात्र में दाख का फल रक्खा जाय तो द्राक्षाफल तो कोई भेद नहीं करेगा। वह तो स्वाभाविक मधुरता में वैसा ही रहेगा ; किसी भी पात्र में उस दाख को रखने से फल के स्वाद में कोई अन्तर नहीं आता ॥२५॥

आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर और विधाता की आदेशोक्ति का स्मरण कर आपकी सेवा में अतिविचित्र उस रहस्य को कहता हूँ जो परम अमृत सम अपरिमित तृप्ति और असीम तुष्टि प्रदान करता है "आप हम दोनों के सम्वाद को सम्यग् भली प्रकार ध्यानपूर्वक सुनिये।" श्रीब्रह्माजी के पुत्र श्रीमान् मुनियों से पूजित भृगुजी थे ; उनके पुत्र च्यवन साक्षात् ब्रह्मा के सदृश भूमि पर प्रगट हुए। उनके तपस्यापूर्ण चरित्र के कारण ही सुकन्या को पिता ने विशेष परिस्थिति में धर्मपत्नी के रूप में उन्हें दे दिया। उन्हीं च्यवन महर्षि ने शतक्रतु इन्द्र को जीत कर अश्विनीकुमारों के लिए यज्ञ भाग सोम का प्रावधान किया। च्यवन के समान ही ऋचीक उसका पुत्र था, उसे राजा गाधिने अपनी सन्तान की इच्छा से अपनी पुत्री व्याह दी। ऋचीकने पत्नी की सेवा से प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया उसने अपने भाई तथा पुत्र के लिए क्रमशः क्षत्रिय और ब्रह्मकुल का अंश मांगा। तदनन्तर समर्थ उन ऋषि ने क्षात्रवीर्य और ब्राह्मवीर्य के दो उत्तम चरु बनाये। उन्हें पुंसवन विधि से अग्नि में हवन कर सिद्ध किया। उस महात्मा ने एक अपनी पत्नी को दिया और दूसरा अपनी सास को ॥२६-३२॥

एकं पत्न्यै परन्तस्या मात्रे दत्तं महात्मना । अथ गाधिमहाराज्ञो महिषी विपरीततः ॥३३॥
कन्याया अधिकं मत्वा बुभुजे लक्षिता तया । कन्यया वञ्चयित्वा तां तज्ज्ञात्वा मुनिरब्रवीत् ॥३४॥
किं कृतं हे वरारोहे ! हतङ्कार्यं तवाधुना । वञ्चिताऽसि जनन्या त्वं चरुव्यत्ययहेतुतः ॥३५॥
भविता तनयो भद्रे कालान्तकसमो नृपः । भ्राता साक्षाद्ब्रह्ममयो दैवमत्र परायणम् ॥३६॥
तच्छ्रुत्वा घोरसङ्काशं वचनं साऽन्वतप्यत । प्रार्थयामास भर्त्तारं नत्वा साध्वी पुनः पुनः ॥३७॥
ब्रह्मन्ननुग्रहो मेऽस्तु क्षन्तव्या मदपाकृतिः । ब्राह्मणस्य सुशान्तस्य तव पाणिगृहीत्यहम् ॥३८॥
न भूयादीदृशः पुत्रः प्रसादं कुरु सर्वथा । तच्छ्रुत्वाऽऽह महाभागः श्रूयतां मद्वचः शिवे ॥३९॥
पायसं मन्त्रसम्भूतममोघं तत्कथं भवेत् । न तद्व्यर्थं भवेदद्य किन्तु मद्वचनं शृणु ॥४०॥
शान्तस्तव सुतो भूयात्तत्सुतस्तादृशो भवेत् । सर्वक्षत्रान्तकृत्साक्षाद्विष्णोरंशो महाबलः ॥४१॥

इसके बाद गाधि महाराज की महिषी (प्रधान रानी) ने विपरीत रूप से अपनी पुत्रीवाला चरु अधिक मात्रा में जान उसके देखते-देखते खा लिया । कन्या को वञ्चन (ठगी हुई) की हुई जान मुनि ने कहा ॥३३॥

"हे वरारोहे ! तुमने यह क्या किया । अब तेरा काम बिगड़ गया । तुम्हारी माता ने चरु की अदला-बदली कर तुम्हें ठग लिया है ॥३४॥

हे भद्रे ! तुम्हारे कालानल के समान तेजस्वी राजा होगा और तेरा भाई साक्षात् ब्राह्ममय होगा । दैव की यही गति थी । इस प्रकार विपरीत घोर (कर्णकटु) वचन को सुनकर वह वराकी मन में बहुत घबड़ा गयी और बारम्बार प्रणाम कर अपने पतिदेव से बोली ॥३५-३७॥

"हे ऋषिवर्य ! मेरे ऊपर पूर्ण कृपा करें, मेरी त्रुटियों को क्षमा करें" मैं आप जैसे सुशान्त व अत्यन्त शीलसम्पन्न ब्राह्मण की अर्धाङ्गिनी भार्या हूँ ॥३८॥

आप ने जैसा अभी बताया है वैसा पुत्र न हो ऐसी कृपा करें यह सुनकर महाभाग ऋषि बोले "हे शिवे ! मन्त्र से तैयार किया गया चरु अमोघ है (अव्यर्थ) है वह मिथ्या कैसे हो ? वह कभी व्यर्थ नहीं होगा किन्तु मेरी बात सुन ॥३९-४०॥

तेरा पुत्र शान्त हो और उसका पुत्र वैसा ही बने । सम्पूर्ण क्षात्र बल को नष्ट करने वाला साक्षात् विष्णु का अंश महापराक्रमी क्षात्रबल से पूर्ण होने पर भी वह ब्राह्मण ही होगा ॥४१॥

ब्राह्मणोभविता सोऽपि क्षत्रवीर्येण सम्भृतः । इति श्रुत्वा भर्तृवचोऽप्रसन्ना साऽभवत्तदा ॥४२॥
अथ कालेन सुषुवे जमदग्निं सुतं सती । स ब्राह्मणः सुशान्तात्मा ब्रह्मभूतः शुचिव्रतः ॥४३॥
अथ कालेन सञ्जातो रेणुकायां शुभेक्षणः । क्षत्रनीहारमिहिरो महाबलपराक्रमः ॥४४॥
स कदाचित्पितृवधक्रोधात्सन्तोष्य शङ्करम् । प्राप्तवान्परशुं तस्मादमोघं चापमेव च ॥४५॥
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रां करवाण्यहम् । इति तत्र प्रतिज्ञाय पितृघातसुमन्युना ॥४६॥
आदाय परशुं दिव्यं क्षत्राणां कुलनाशनः । निःक्षत्रां पृथिवीं कृत्वा कश्यपायाऽखिलां भुवम् ॥४७॥
दत्त्वा प्रत्यक्समुद्रात्तु भूमिं जित्वा महौजसा । सम्प्रार्थितो ऋषिवरैर्विरतः क्षत्रघातनात् ॥४८॥
तप आतिष्ठदुग्रं सः प्रकृत्या चण्डकोपनः । कोपं शान्त्यनले हुत्वा तपसैवातिभूयसा ॥४९॥
जिताः समस्तपुण्यानां लोकास्तेन महात्मना । अथ कालेन महता रामः सत्यपराक्रमः ॥५०॥

तब अपने पति की बात सुनकर वह अप्रसन्न हुई। इस घटना के बाद समय बीतने पर उस सती ने जमदग्नि स्वपुत्र को जन्म दिया; वह ब्राह्मण अत्यधिक शान्तात्मा; ब्रह्मकर्मपरायण और पवित्र व्रतों का पालन करनेवाला था। उन्हीं के अंश से पत्नी रेणुका में शुभलक्षण युक्त अति - दिव्य क्षत्रिय - रूपी कुहरे के लिए सूर्य के समान महाबल-पराक्रम-सम्पन्न पुत्र (श्री परशुराम) हुए। उन्होंने एकबार अपने पूज्य पिता के वध के क्रोध से (दुःखित हो) भगवान् देवाधिदेव शङ्कर को अपनी तपस्या से प्रसन्न कर दिव्य अस्त्र परशु और अमोघ धनुष प्राप्त किया ॥४२-४५॥

वहीं पर अपने पिता के वध से क्रुद्ध हो उन्होंने प्रतिज्ञा की कि २१ बार पृथ्वी को क्षात्र तेज से रहित (निःक्षत्र) बनाऊँगा ॥४६॥

अपने दिव्य फरसे से ही उन क्षत्रियों के कुल को नष्ट करने वाले जामदग्न्य ने सारी पृथ्वी के क्षत्रियों का संहार कर सम्पूर्ण समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को जीतकर महर्षि कश्यप को दान में दे दी और बड़े-बड़े ऋषियों के अनुनय विनय से उन्होंने २१ बार के बाद क्षत्रियों के संहार के कार्य से अपना हाथ खींच लिया ॥४७-४८॥

अपने स्वभाव से ही अत्यन्त उग्र एवं क्रोधी उन परशुराम ने अपने पिता के वध से उठते क्रोध को शान्ति रूपी अग्नि में आहुति देकर अति उग्र तपस्या से उन महात्मा ने समस्त पुण्यलोकों को जीत लिया ॥४९॥

बहुत अधिक समय बीतने पर तब रावण के वध के लिए सत्यपराक्रमी राम ने विष्णु भगवान् के अंश से अवतार धारण किया ॥५०॥

रावणस्य वधार्थाय स्वांशेनाऽवततार ह। तेन मैथिलभूपालगृहविन्यस्तशाङ्करम्
धनुः समारोप्य तदा वीर्यशुल्कामुपावहत्। आरोप्यमाणं तद्भग्नं धनुः शैवं महोल्बणम्
तत्कर्मसर्वलोकानां श्लाघ्यमासीन्महाद्भुतम्। एतच्छ्रुत्वा जामदग्न्यो वैमानिकमुखात्तदा
असहन्क्षत्रियाणां तच्छ्लाघनां भार्गवस्तदा। गाढानलसुसम्पर्कजातोत्सेकपयो यथा
कोधारुणितनेत्रान्तरागाग्निज्वालया जगत्। दहन्निव कोधमूर्त्तिः प्रलयाग्निरिव ज्वलन्
आः क्षत्रबन्धोरद्याहमपनेष्यामि वै मदम्। आरोप्य परशुं स्कन्धे वामेनादाय वैष्णवम्
चापं वदन्निति ततः प्रचचाल निजालयात्। देवर्षयोऽथ तं दृष्ट्वा भार्गवं मन्युना वृतम्
ऊचुरद्य पुनः क्षौणीं क्षत्रहीनां करिष्यति। क्रोधेन तस्य महता चकम्पे वसुधा भृशम्

उनने मिथिला के राजा (जनक) के घर पर रक्खे हुए शङ्कर जी के धनुष को उठा उसे भङ्ग वीर्य-शुल्का (यदि कोई इस धनुष को उठायेगा वही सीता की वरमाला का अधिकारी होगा) सीता से किया ॥५१॥

उस शिव के विशाल सुन्दर धनुष को उठाकर भङ्ग करने (तोड़ने) के अत्यन्त अद्भुत कार्य की सभी लोगों ने पूरी (प्रशंसा) की। जब श्रीपरशुराम ने आकाश में जाते हुए विमानवाहक देवगण से यह सब बार्ता सुनी तो की उस प्रशंसा को सहन न करते हुए अपने अत्यधिक क्रोध से नेत्रों से उठती हुई अग्नि की ज्वाला से जग जलाते हुए मानों प्रलय की अग्नि ही जल रही हो और जैसे एक साथ अतिप्रचण्ड अग्नि पर रक्खे जल के तप्त होने से उसमें उबाल पर उबाल आते हैं वैसे ही उस तपस्वी श्रेष्ठ में शिवधनुर्भङ्ग को सुनकर अप्रत क्रोधावेश की गम्भीर प्रतिक्रिया हुई ॥५२-५५॥

"अरे इस क्षत्रियाधम का मद मैं आज ही चूर्ण विचूर्ण करूँगा" ऐसे कहते हुए अपने कन्धे पर परशु रख और वाम हस्त में वैष्णव अस्त्र धनुष सम्हाले हुए वह अपने निवास-स्थान से चले। इसके बाद देवर्षिगण ने श्रीपरशुराम जब क्रोधारुष्ट देखा तो वे बोले "फिर से यह सारी पृथ्वी को आज क्षत्रियहीन बना देगा।" उस प्रबल परा के भीषण क्रोध से सारी पृथ्वी थर-थर काँपने लगी। उस समय श्रीपरशुराम क्रोध से ऐसे तम-तमाये कि उस ज्योति से उनके मुखमण्डल की कान्ति से सूर्यनारायण की कान्ति भी धूमिल पड़ गई। सारे अन्तरिक्ष में धूलि छा गई और के सारे समुद्र जैसे प्रलय काल में अपनी मर्यादा छोड़ देते हैं वैसे ही अपने तटवर्ती प्रान्तर को छोड़ सहसा बढ़ने लग इस प्रकार जब श्रीराम अपने विवाह के उपलक्ष्य में आयोजित उत्सव को सम्पन्न कर सेना के साथ लौट रहे थे तब

हतप्रभो दिवानाथो धूलिधूसरितं नभः । वेलातिलङ्घिनो जाताः समुद्राः प्रलये यथा ॥५९॥
एवं स निर्गतः स्थानान्मार्गे सेनासमावृतम् । राघवं राममासाद्य कृतवैवाहिकोत्सवम् ॥६०॥
रे राम क्षत्रबन्धो त्वं वीर्योत्सिक्तोऽतिमन्दधीः । त्वया कृतमकर्तव्यमज्ञात्वा शूरमानिना ॥६१॥
अद्य यावन्न श्रुतः किमहं क्षत्रकुलान्तकः । रामोऽस्मीति मदाद्यन्मामवज्ञाय कृतं ह्यघः ॥६२॥
नाद्यापि परशोर्धारा कुण्ठिता क्षत्रघातिनः । यत्त्वयाद्य कृतं कर्म फलं तस्य भुजिष्यसि ॥६३॥
अद्य मे परशोर्धारा पारणं प्रविधास्यति । बहुकालेन ते कण्ठच्छेदोष्णरुधिरेण वै ॥६४॥
क्षमां खलेषु नो कुर्यादुपेक्षेवाऽऽमयागमे । कालेन तस्यैव भवेद्देहः क्षीरमिवान्तकम् ॥६५॥
कथं सहेत शान्तोऽपि गुरोरपमतिं कृताम् । समर्थे मादृशस्तत्र पादाक्रान्त इवानलः ॥६६॥
मयि जीवति चापस्य गुरोः कैलासवासिनः । क्षत्रियापसदेनाभूद् बालेन परिभावनम् ॥६७॥
आः कालस्य व्यत्ययता नात्र क्षान्तिर्गुणावहा । जामदग्न्ये वदत्येवं रामो राजीवलोचनः ॥६८॥

उनकी रघुकुल—तिलक श्रीराम से भेंट होने पर वे बोले "हे क्षत्रियाधम ! राम ! तू अपने बल के अभिमान में चूर्ण अत्यन्त मलिनबुद्धिका हो गया है। तू अपने आप को शूरवीर मानने वाला है और तू ने न करने योग्य कार्य किया है। क्या तूने अब तक नहीं सुना कि मैं वही क्षत्रियों का अन्त करने वाला राम हूँ ? अपने गर्वमद में मेरी अवज्ञा करके यह अपराध किया गया है ॥५६-६२॥

मेरे क्षत्रियघाती इस फरसे की धार आज भी भूठी (निर्बल) नहीं हो गई है आज तू जो बुरा कर्म कर चुका उसका फल अवश्य भोगेगा ॥६३॥

मेरे फरसे की धार आज बहुत समय से प्रतीक्षमाण तेरे कण्ठ के छेदन करने से निकले हुए गर्म-गर्म खून से अपनी पारणा करेगी। दुष्ट पुरुषों को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहिए ; किसी रोग के आने पर उसकी उपेक्षा करने से वह वैसे ही देह विनाश का कारण बनता है जैसे सर्प को दूध पिलाना। मैं शान्त ऋषि-जीवन बितानेवाला होने पर भी अपने गुरुदेव के अपमान को कैसे सहन करूँ ? उसपर भी पैरों तले रौंदे हुए आग के समूह के समान मेरे जीते-जीते गुरुवर्य कैलासवासी भगवान् चन्द्रशेखर के धनुष का तुझ नीच क्षत्रिय बालक ने तिरस्कार किया। खेद और आश्चर्य है कि ऐसे धिक्कारने योग्य कार्य के करने पर भी जो समय का परिवर्तन हुआ है वह असह्य है इसमें क्षमा करने से कोई गुण लाभ नहीं मिलेगा" ॥६४-६७॥

इस प्रकार श्रीपरशुराम के कहने पर कमलनेत्र श्रीराम ने श्री परशुराम के चरणों में साष्टांग दण्डवत् कर उनका अभिवादन किया और बारम्बार हाथ जोड़कर उनसे क्षमा याचना करते हुए "सत्पुरुषों को क्षमा ही इष्ट है" यह कहा। इस प्रकार ब्रह्मण्य (ब्राह्मण भक्त) श्रीराम ने हाथ जोड़ उनसे क्षमा मांगी ॥६९॥

पादयोः प्रणिपत्याऽथ सभाजनमकल्पयत्। सान्त्वपूर्वं क्षमस्वेति भूयो रामः कृताञ्जलि ॥६९॥
ब्रह्मण्यो नम्रभावेन क्षमापनमथाकरोत्। यदा न क्षमते सोऽपि भूयोऽधिक्षेपतत्परः ॥७०॥
तदैष क्रोधताम्राक्षो वाक्यमेतदुवाच ह। राम त्वं ब्राह्मणोऽसीति युज्यते क्षान्तिरत्र मे ॥७१॥
राघवाणां ब्राह्मणेषु शस्त्रधारा सुकुण्ठिता। अयं कण्ठः कुठारेण छिद्यतां मे यथा सुखम् ॥७२॥
सर्वथा ब्राह्मणा गावः पूज्या नो रघुजन्मनाम्। इति ब्रुवति काकुत्थे जामदग्न्यो ज्वलन्निव ॥७३॥
तोयसम्पृक्ताज्यहोमाद्धव्यवाडिव सम्बभौ। अथाऽवदद्राघवं तं रामं रघुकुलोद्वहम् ॥७४॥
क्षत्राधमाऽतिधृष्टोऽसि ज्ञातः किं ब्राह्मणस्त्वया। साक्षान्मृत्युं क्षत्रियाणां न जानासि कुतः खल ॥७५॥

अथावदद्रघुवरो वेद्मि त्वां रेणुकासुतम्। नाहं नृपस्तथाभूतो ये हता ब्रह्मबन्धुना ॥७६॥
न चाहं रेणुकातुल्यः स्थितोऽस्मि पुरतस्तव। ब्राह्मण्यं वा क्षत्रभावं सन्त्यजाऽन्यतरद्वृतम् ॥७७॥

परन्तु फिर भी उस प्रचण्ड तपस्वी का क्रोध शान्त न हुआ जान उनमें जैसे यह रोष अधिक तीव्रभाव से उठ गया हो और वारंवार अपने गुरु के अपमान का तिरस्कार करनेको तैयार ही हो रहे हैं तब क्रोध से एक साथ ही आँखें कर बोले, "हे परशुराम आप ब्राह्मण हैं आप को मेरे ऊपर क्षमा करना ही इष्ट है क्योंकि हम रघु के वंश वाले ब्राम्हणों पर शस्त्र का प्रयोग कुण्ठित ही रखते हैं (कभी नहीं करते)। आप मेरे कण्ठ का छेदन अपने इच्छानुसार कर सकते हैं। हम रघुवंशियों के लिए ब्राह्मण और गायें सदा ही पूज्य हैं" ॥७०-७२॥

इस प्रकार महाराज ककुत्स्थ के वंशज श्रीराम के कहने पर फिर परशुराम के क्रोध को अधिक बढ़ने का मार्ग मिला। जैसे आज्य (हवनीय द्रव्यों) के अग्नि में डालने पर जल का प्रक्षेप उस जलती अग्नि की लपटों को द्विगुणित प्रज्वलित कर देता है वैसे ही श्रीपरशुराम बहुत अधिक क्रोधावेश में आ गये। अब उन्होंने श्रीराम के वंशज राघवेन्द्र श्रीराम से कहा ॥७३-७४॥

"हे क्षत्रियाधम ! तू वास्तव में अत्यन्त धृष्ट है, क्या तू ने मुझे ब्राह्मण जाना है ? मुझे तू क्षत्रियों की साक्षात् मृत्यु ही निश्चयरूप में क्यों नहीं समझता ?" तब श्रीरघुवर ने कहा, "मै आपको रेणुका के पुत्र के रूपमें जानता हूँ। मैं वैसा (क्षत्रिय नृपति) नहीं हूँ जिन्हें अपने को ब्राह्मण मानने वाले आपने मारा है। मैं मातारेणुका तुल्य निःशस्त्र हूँ आपके सामने खड़ा हूँ। आप ब्राह्मणत्व अथवा क्षत्रभाव में एक को छोड़कर आइये मैं सन्नद्ध हूँ ॥७५-७७॥

काकुत्स्थ एवं वदति रुषा धिग्धिगिति ब्रुवन्। स्वकरे संस्थितं चापं वैष्णवं प्रददौ द्रुतम् ॥७८॥
तस्मै प्रोवाच संक्रुद्धः कत्थनं किं वृथा तव। माहेश्वरं जीर्णधनुर्भग्नं दैवेन तत्त्वया ॥७९॥
इदं वैष्णवमारोप्य मत्समक्षं स्थिरीभव। ततो मया द्वन्द्वयुद्धे विमदस्त्वं भविष्यसि ॥८०॥
एवमुक्तो रघुवरः श्रुत्वा वाक्यं धनुर्वरम्। आदाय लीलया मौर्वीमारोप्य निमिषार्धतः ॥८१॥
निषङ्गात्सायकं तीक्ष्णं सन्धायाऽऽकर्णपूरितम्। प्रदर्श्य भार्गवायाऽथो रुषा प्रोवाच राघवः ॥८२॥
राम! शीघ्रं वदाऽमोघबाणः क्व विनिपात्यताम्। उपेक्षणीयस्त्वं यस्माद्ब्राह्मणो भार्गवोद्भवः ॥८३॥
विश्वामित्रस्य सन्बन्धादातताय्यपि मे गुरुः। प्रदर्श्य लक्ष्यं बाणस्य जीव नाऽऽशु यथा गतः ॥८४॥
अमोघोऽयं महाबाणो जीवितान्तकरस्तव। श्रुत्वा राघवसम्प्रोक्तं दृष्ट्वाऽद्भुतपराक्रमम् ॥८५॥

ककुत्स्थ के वंशधर श्रीराम के ऐसा कहने पर श्रीपरशुराम ने क्रोध से "धिक्कार है तुझे धिक्कार है" इस प्रकार कहते हुए अपने हाथ में रक्खे श्रीविष्णु के धनुष को राम को जल्दी से दिया ॥७८॥

क्रुद्ध हो परशुराम ने श्रीराम से कहा कि "क्यों व्यर्थ में बढ़-बढ़ के बातें करते हो। माहेश्वर धनुष पुराना था उसे भाग्यवश तुमने भङ्ग किया; यह वैष्णव धनुष है इसे लेकर मेरे सामने खड़े होओ तब मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करके तुम्हारा मद चूर-चूर होगा" ॥७९-८०॥

इस प्रकार रघुश्रेष्ठ श्रीराम ने श्रीपरशुराम के कथन को सुन सरलता से हलके खेल-खेल में ही श्रेष्ठ धनुष को सम्हाला और आधी पल में ही उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा कर अपने तरकस में से तीक्ष्ण बाण को लगा उसे अपने कनौती तक खींचकर राघवेन्द्र राम ने श्रीपरशुराम को दिखा क्रोध से कहा "हे राम! आप मुझे शीघ्र बतलाइये इस अमोघ बाण को मै कहाँ छोड़ूँ? क्योंकि आप तो भृगुवंशी सुयोग्य ब्राह्मण हैं इसलिए टालने योग्य हैं ॥८१-८३॥

मेरे धनुर्विद्या के गुरुदेव श्रीविश्वामित्र के सम्बन्ध से आप आततायी (मारने की इच्छा करने वाले) होने पर भी मेरे गुरु हैं सो आप बाण का लक्ष्य बताकर कहीं यह शीघ्र न छूट न जाय उस प्रकार प्राण रक्षा का उपाय करें ॥८४॥

यह अमोघ महा बाण है इसे अन्य स्थान पर छोड़ना उचित है (नहीं तो) यह आपके जीवन का अन्त करने वाला बनेगा" इस प्रकार राघव श्रीराम का कथन सुन कर और उसका अद्भुत पराक्रम देखकर उसे साक्षात्

मत्वाऽतिमानुषं साक्षात्परमात्मानमव्ययम् । प्रणम्य दण्डवद् भूमौ स्तुत्वा प्रोवाच भार्गवः ॥८
जानामि त्वां परात्मानं पुरुषं प्रकृतेः परम् । जगद्रक्षाविधानार्थं जातो नटनरोपमः ॥८
आसादिता मया पुण्यलोका बहुतपोगणैः । तत् सर्वं शरलक्ष्यार्थं दत्त्वा जीवामि राघव ॥८
तथाऽस्त्विति वदन् रामो निपात्य शरमुल्बणम् । ब्रह्मण्यो भार्गवं प्राह नमस्ते रामभार्गव ॥८
क्षन्तव्यं मे दुरुक्तं यद् ब्राह्मणो मे सदा गुरुः । इति तस्य वचः श्रुत्वा भार्गवो लज्जयाऽन्वितः ॥९०
नत्वा प्रदक्षिणीकृत्य जगाम स यथागतम् ॥९१॥

इति श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे भार्गवेण रा घवाय कलाप्रदानं नामतृतीयोऽध्यायः २९३

अव्यय परमात्मा और मानवातीत श्रेष्ठ व्यक्ति समझ श्रीपरशुराम ने अभिवादन कर अवतारी पुरुष के रूप में उन्हें स्तुति की ॥८५-८६॥

"हे राम ! मै तुम्हें प्रकृति से उच्च परमात्मा पुरुष जानता हूँ जगत् की रक्षा करने के लिये तुम नटबु के समान अवतार लेकर आये हो मैंने बहुत उग्र तपों द्वारा कई पुण्यलोकों को प्राप्त किया है उन्हें बाण का ल बनाने के लिए तुम्हें सौंप मैं अपनी जीवन रक्षा करता हूँ" ॥८७-८८॥

इस पर श्रीराम ने 'तथास्तु' कहकर उस अमोघ बाण को छोड़ ब्राह्मणों को अत्यन्त सम्मान देने वाले जो आज्ञानुवर्ती (ब्रह्मण्य) राम ने श्रीपरशुराम की सादर वन्दना की । वह बोले "हे भगवन् ! आप मेरे से कहे ह कटु वचनों के लिए क्षमा प्रदान करें ।" इस प्रकार उसके वचन को सुनकर श्रीपरशुराम लज्जित हो प्रणाम कर प्रदक्षि क्रम से जैसे आये थे अपने आश्रम की ओर पधार गये ॥८९-९१॥

श्रीत्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड का परशुराम द्वारा श्रीराम को कलाप्रदान नामक तृतीयअध्यायपूर्ण ॥

—oo—

चतुर्थोऽध्यायः

निर्विण्णस्य भगवतः परशुरामस्य संम्वर्तेनिदेशेन दत्ताश्रमं प्रति गमनमतिः ।

अथ मार्गे जामदग्न्योऽत्यन्तनिर्वेदमासवान् । परिभावित एवं स चिन्तयानो जगाम ह ॥१॥
नूनं मया कश्यपाय दत्त्वा क्षोणीं प्रतिश्रुतम् । नाऽतःपरं हेतिहस्तः क्रुध्यामि नृपजन्मसु ॥२॥
अहो मे चित्तसम्मोहः किं वदामीदृशोऽभवम् । क्रोधेनाऽत्यन्तरिपुणा पातितो मोहखातके ॥३॥
क्रोध एव तपोमृत्युः क्रोधान्नश्यति वै तपः । क्रुद्धस्य दूरतो याति विचारः सत्त्वबुद्धिजः ॥४॥
तस्य स्पर्शोऽपि न भवेद्विटं दृष्ट्वा सती यथा । कथं क्रुद्धे विचारः स्याच्छ्वित्रे सौन्दर्यवत्किल ॥५॥
क्रुद्धो न कुर्यात्किं कर्म गर्ह्यं घोरं पिशाचवत् । नान्तरं लेशतोऽप्यस्ति पिशाचक्रुद्धयोर्भु वि ॥६॥
उभयोरीक्षितं पुत्रप्रियादिपरिपीडनम् । क्रुद्धो न हन्यात्कं को वा क्रुद्धो हन्ति गुरूनपि ॥७॥

चतुर्थ अध्याय

इसके अनन्तर मार्ग में जमदग्नि के सुपुत्र श्रीपरशुराम को बहुत अधिक वैराग्य हुआ और इस प्रकार अपना पराभव होने से चिन्ता करते हुए वे चले ॥१॥

"अवश्य ही मैंने महर्षि कश्यपजी को पृथ्वी दान में देकर यह प्रतिज्ञा की थी कि इसके बाद मैं कभी अपने हाथ में परशु लेकर किसी क्षत्रिय कुल में जन्मे पुरुष पर क्रोध नहीं करूँगा ॥२॥

अहो ! आश्चर्य है कि मेरे चित्त को इतना अधिक सम्मोह हुआ मैं क्या कहूँ मेरी ऐसी गति हो गई ? अत्यन्त वैरी क्रोध के कारण मैं मोह के गड्ढे में गिरा दिया गया ॥३॥

क्रोध ही तप की मृत्यु है । क्रोध से तप का नाश होता है । क्रोधित व्यक्ति का सात्विकबुद्धि से उत्पन्न हुआ विचार दूर से ही भाग जाता है । क्रोधी को तो उस सद्विचार का स्पर्श भी नहीं होता, जैसे विट को देख सती अस्पृश्य रहती है । क्रुद्ध व्यक्ति में सद्विचार कैसे हो ? अवश्य ही यह कुष्ठी (कोढी) में सौन्दर्य देखने की सी बात है । क्रुदध आदमी पिशाच के समान घोर निन्दित कर्म क्या नहीं कर सकता ? पिशाच और क्रुद्ध में कोई अन्तर नहीं है ॥४-६॥

दोनों ही अपने प्रिय पुत्र और प्राणप्यारी अपनी पत्नी आदि इष्टजन को पीड़ा देते देखे जाते हैं । क्रुद्ध व्यक्ति कौन ऐसा है जो अपने किसी आत्मीय को न मारे । क्रोधी पुरुष अपने श्रद्धास्पद गुरुओं का भी हनन कर सकता है ॥७॥

क्रोध एव महाञ्छत्रुरीदृग्येन कृतस्त्वहम्। क्रोधान्मया पुरा क्षत्रस्तनन्धयगणा हताः ॥८॥
आच्छिद्याच्छिद्य जननीहस्ताभ्यां पुक्कसो यथा। अहो मे निर्दयं स्वान्तं किं कृतं क्षत्रपोतकैः ॥९॥
हिंसिताः कोटिशो बालाः सदृशा अदृशा अपि। नूनं क्रोधो येन नैव जितस्तस्य कथं तपः ॥१०॥
प्रवृद्धशत्रोर्नृपते राज्यसौख्यं यथा तथा। केन मे निहतस्तातः के हता नृपराशयः ॥११॥
पुरुषादेनेव मया कृतं कर्म सुगर्हितम्। अभिमानः क्रोधमूलो यस्माद्धेतुवशादहम् ॥१२॥
निगीर्णः क्रोधसर्पेण प्रबलाजगरात्मना। एवं चिन्तयता तेन मार्गे कश्चन पूरुषः ॥१३॥
दृष्टस्तेजोराशिमयो ज्वलदग्निगिरिर्यथा। पुष्टसुन्दरसर्वाङ्गः फुल्लपङ्कजलोचनः ॥१४॥
मलिनाङ्गो मुक्तकेश उन्मत्तचरितोऽपि यः। महापुरुषवद् दृष्टो महात्मा मुनिराट् कविः ॥१५॥

क्रोध ही बड़ा प्रबल वैरी है जिसने मेरी इस प्रकार की हीन दशा बना दी। क्रोध से ही मैंने प्राचीन काल अपनी माताओं के हाथों से छीन-छीन कर दुधमुहे क्षत्रिय बालकों को मारा; जैसे जंगली आदिवासी (भील) मार करता है। अरे मेरा हृदय इतना निर्दय क्यों बना? उन क्षत्रिय बालकों ने क्या अपराध किया था कि मैंने करोड़ों ही एक समान और इतर आकृति वाले बालगण को भी मारा? अवश्य ही जिस पुरुष ने क्रोध को नहीं जीत उसका कैसा तप? उसकी तपस्या उसी तरह है जैसे पड़ोस के बढ़े हुए शत्रु के कारण किसी राजा को राज्य का सुख है। अपने लिए पश्चात्ताप करते हुए श्री परशुराम कहते हैं कि किसी ने मेरे पिता को मारा और कितने निर्दोष राजाओं को मारा ॥८-११॥

मैंने पुरुषमारक निर्दय कृतान्त के समान गर्हित कार्य किया। अभिमान क्रोध का मूल है उसी के वशीभूत होने के कारण मुझे अजगर रूप वाले क्रोध सर्प ने निगल लिया।" इस प्रकार कई प्रकार तर्क-वितर्क की चिन्ता में श्रीपरशुरामजी चले जारहे थे तो मार्ग में जैसे जलते तप्त अङ्गारों वाले अग्नि के पर्वत के समान किसी तेजोराशिमय व्यक्ति को देखा ॥१२-१३॥

उसके सब अङ्ग सुन्दर रूप से पुष्ट थे तथा बड़ी-बड़ी आंखें विकसित (खिले) कमल के समान थीं। वह उन्मत्त का आचरण करता हुआ भी धूलि से मलिन अङ्गोंवाला और खुले बाल रक्खे हुए था। फिर भी वह महात्मा मुनिराट् क्रान्तदर्शी (कवि) महापुरुष के समान दिखाई पड़ता था॥ १४-१५॥

दृष्ट्वैवं भार्गवो विप्रं त्यक्तलिङ्गाश्रमादिकम् । दिगम्बरं पङ्कदिग्धं गन्धसिन्धुरवत्स्थितम् ॥१६॥
तं दृष्ट्वा जामदग्न्योऽथ परं संशयमागतः । कोऽयं विलक्षणाचारः सदसल्लिङ्गसंयुतः ॥१७॥
किं महापुरुषो वाऽथाऽप्रमत्तो वाऽपि कश्चन । अत्र बुद्धिर्नान्तमेति यथा वेषान्तरे नटे ॥१८॥
प्रमत्तश्चेत्कथमयं तेजोराशिपदं भवेत् । भूयः पश्याम्ययं मार्गं दूषयत्यपि नो सताम् ॥१९॥
तस्मादयं कोऽपि महापुरुषो गूहिताकृतिः । परीक्षणीयः किञ्चिन्मे यत्नेनेत्यभिचिन्तयन् ॥२०॥
तमुवाच हसन् रामः कस्त्वं पुरुषसत्तमः । महापुरुषवद् भासि स्थितिस्ते कीदृशी वद ॥२१॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य पलायनपरोऽभवत् । क्षिपन्पाषाणखण्डांश्च हसन्नुच्चैर्मुहुर्मुहुः ॥२२॥
विप्रलापं तथा कुर्वन्बहुधोन्मत्तचेष्टितः । एवंविधं भार्गवस्तं करे जग्राह सत्वरः ॥२३॥
गृहीत्वा चिन्तयामास नायं मे विदितोऽभवत् । भूय एवं परीक्ष्याऽथ व्रजाम्यहमपीप्सितम् ॥२४॥

उस विप्र को सारे वर्णाश्रमधर्म के चिन्ह मात्र को छोड़े हुए, दिगम्बर (नग्न) रूप वाले, कीचड़ से लिपटी देहवाले, जैसे मदगन्धवाला हाथी जल से निकल धूलि से शरीर को पाट लेता है ठीक उसी प्रकार खूब मस्ती में देखा ॥१६॥

उसे देखकर श्रीपरशुराम ने बहुत सन्देह किया कि विलक्षण आचरण करने वाला सत् और असंत् वेष बनाया हुआ यह कौन है ? क्या कोई महापुरुष है कि अप्रमत्त (प्रमाद रहित जीवन बिताने वाला) या कोई अन्य ही रूप वाला है ? इसके सम्बन्ध में जैसे नाना वेषधारी नट का पूरा निश्चय नहीं होता वैसे ही बुद्धि ठीक निर्णय नहीं कर पाती। यदि यह ठीक प्रमत्त (मतवाला) ही होता तो इसके शरीर पर तेज की इतनी प्रभा कैसे है ? फिर भी देखता हूँ कि यह सत्पुरुषों के वेदविहित मार्ग को भी दूषित नहीं करता है ॥१७-१९॥

इसलिये यह कोई छिपे वेश में महापुरुष लगता है। इसकी बहुत चेष्टा करके परीक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार सोचते हुए श्रीपरशुराम ने हँसते हुए कहा "हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप कौन हैं ? आप महापुरुष के समान दीखते हैं ; आप की किस तरह की स्थिति है ? वह मुझे बतलावें" ॥२०-२१॥

इस प्रकार श्रीपरशुराम के वचन को सुन वह पत्थर के ढेलों को फेंकता हुआ बार-बार जोर-जोर से हँसता हुआ कई तरह के अण्ट-सण्ट बिना प्रयोजन के निरर्थक वचन बोलता हुआ कभी मत्त (पागल) की भांति चेष्टा करता हुआ जैसे ही भागने को तैयार हुआ वैसे ही श्रीपरशुराम ने जल्दी ही उस अवधूत का हाथ पकड़ लिया (जो वह जाने न पावे)। हाथ पकड़ कर वह सोचने लगे कि मैं इसे पूर्णरूप से नहीं जान पाया ; इसकी फिर परीक्षा कर अपने अभीष्ट ज्ञातव्य को जान पाऊँगा ॥२२-२४॥

इति निश्चित्य भूयस्तमधिक्षेप्तुं प्रचक्रमे । अधिक्षिप्तोऽपि बहुधा परिभूतोऽपि न स्थितेः ॥२५॥
प्रच्युतो मुखवैवर्ण्यमपीषन्नोपलक्षितम् । महापुरुष एवेति तदा निश्चित्य भार्गवः ॥२६॥
तत्पादयोर्निपतितः प्रार्थयामास तं मुनिम् । अथ सोऽपि प्रसन्नात्मा जामदग्न्येऽनुकम्पयन् ॥२७॥
बभाषे सस्मितं वाक्यं बहुसन्दर्भगुम्फितम् । कस्त्वमित्यहमापृष्टस्त्वया तच्छृणु भार्गव ! ॥२८॥
त्वमित्यवगते प्रश्नः पिष्टपेषणवद्वृथा । त्वया नावगतश्चेत्त्वमिति वाक्स्यान्निरर्थिका ॥२९॥
केनचिद्वपुषा ज्ञात इति चेत्तद्वदस्व मे । न ज्ञातस्ते चिदात्मा तदज्ञेयत्वात्तथाविधः ॥३०॥
अन्नञ्चेदं त्वया दृष्टं साक्षादेव न संशयः । तस्मात्पर्यनुयोगस्ते संज्ञायां सुव्यवस्थितः ॥३१॥
ज्ञातं कारणमप्येवं तस्मात्संज्ञैव न त्वया । ज्ञाता सा न स्वतःसिद्धा कल्पिता बहुधापि सा ॥३२॥
न संस्थिता साऽप्येकत्र सङ्घातस्याऽऽश्रयत्वतः । तस्मादहं त्वया राम सम्यक्पृष्टो वदामि ते ॥३३॥

इस प्रकार निश्चय करके वे फिर उसकी भर्त्सना करने लगे। बहुत तरह से उसकी निन्दा करने पर भी वह अपनी स्थिति से प्रच्युत नहीं हुआ। यही नहीं किसी प्रकार के कटु वचन से उसके मुँह की कान्ति में विवर्णभाव तक नहीं दिखाई पड़ा। तब श्रीपरशुराम ने विचारा हो न हो यह महापुरुष है यह निश्चित कर उनके चरणों में सादर विनम्र नमस्कार किया और उस मुनि से प्रार्थना की इस घटना के अनन्तर उस प्रसन्नात्मा महानुभाव मुनि ने भी जमदग्नि के पुत्र पर अनुकम्पा करते हुए स्मितहास्य से अत्यन्त कार्यकारी प्रकरणवद्ध वाणी में कहना आरम्भ किया। "हे भार्गव ! तुमने मुझ से पूछा कि "तू कौन हैं ?" इसका उत्तर सुन ॥२५-२८॥

"तू" इसे जान लेने पर पूछना केवल पिष्ट-पेषण (पिसे हुए का पीसना) के समान व्यर्थ है। तुझे यह ज्ञात क्या है यह पता नहीं तो तेरी वाणी ही निरर्थक हुई। किसी शरीर के माध्यम से "तू" पदार्थ को जान गया तो भी मुझे बता ; तब तो चिदात्मा को तू नहीं जान पाया क्योंकि पुरुषाकार या अन्य साकार आकृति में वह जाना नहीं जाता ॥२९-३०॥

यह अन्न तैं ने साक्षात् ही देखा है ; इसमें कुछ सन्देह नहीं। इसीलिये तू ने उसे संज्ञा देकर सम्बोधित किया। इसी प्रकार से कारण तुमने जान लिया इसलिए उस आत्मा की संज्ञा तू ने अब तक नहीं जानी। वह स्वतः सिद्ध है बहुत प्रकार से लोगों ने उसकी कल्पना की है। वह एक स्थान में अवस्थित नहीं कारण संघात (समूह) का आश्रयत्व उसका है। इसलिये हे राम ! तू ने भली प्रकार पूछा सो मैं तुझे बताता हूँ" ॥३१-३३॥

एवं तद्वचनं श्रुत्वा स्तब्धवाग्बुद्धिपौरुषः । लज्जितः प्राह योगीशं नत्वा प्रार्थनपूर्वकम् ॥३४॥
महापुरुष ! न ज्ञातमुत्तरं तत्र तत्त्वया । ज्ञात्वाऽहं बोधनीयो वै शिष्यभूतमकल्मषम् ॥३५॥
इत्युक्तस्तेन रामेण सोऽनुकम्पितमानसः । वक्तुं स्ववृत्तमारेभे गिरा मधुरया तदा ॥३६॥
भार्गवाऽऽङ्गिरसं त्वं मां जानीह्यवरजं गुरोः । सम्वर्त इति विख्यातं त्रिलोक्यां प्रथितं गुणैः ॥३७॥
स्थितिं वक्ष्यामि मे राम शृणु संयतमानसः । पुरा मे गुरुणा भ्रात्रा विद्वेषस्समजायत ॥३८॥
तेनाऽहं प्राप्तनिर्वेदः प्राप्त एतां स्थितिं किल । दत्तात्रेयेण गुरुणा सुसम्यगनुबोधितः ॥३९॥
आत्मानमखिलं मत्वा तद्विलासमिमं तथा । अभयं मार्गमाश्रित्य शङ्कोन्मेषणवर्जितः ॥४०॥
सञ्चराम्यचलस्थानः सूत्रपाञ्चालिका यथा । इत्युपाकर्ण्य तद्वाक्यं प्राह प्राञ्जलिरास्थितः ॥४१॥

इस प्रकार उस अतितेजस्विता-सम्पन्न महाभाग पुरुष के कथन को सुनकर परशुराम की वाणी, बुद्धि और बल तीनों ही स्तब्ध (कुछ न बोलने, सोचने और करने की स्थिति में) हो रहे एवं वह लज्जित होकर फिर प्रार्थना करते हुए बोले "हे महापुरुष मैने जो पूछा उसका उत्तर नहीं जाना मुझे आप निर्दोष शिष्य जानकर सम्यक् प्रकार से समझावें" ॥३४-३५॥

इस प्रकार तब श्रीपरशुराम के कहने पर उस महानुभाव मुनि ने अनुकम्पापूर्ण मन से अत्यन्त मधुर वाणी में अपना वृत्तान्त कहना आरम्भ किया ॥३६॥

"हे भृगुगोत्रोत्पन्न ! तू मुझे अङ्गिरा के पुत्र गुरु के छोटे भाई सम्वर्त इस नाम से विख्यात और अपने गुणों से त्रिलोकी में अधिकाधिक प्रसिद्धि पाया हुआ व्यक्ति जान" हे राम ! मैं अब अपनी स्थिति बताता हूँ तू खूब ध्यान लगाकर उसे सुन । बहुत पूर्व काल में मेरा अपने भाई बृहस्पतिसे विद्वेष हो गया था उसी से मुझे आत्यन्तिक निर्वेद (वैराग्य) होकर निश्चय ही यह स्थिति प्राप्त हुई । गुरुवर्य दत्तात्रेय ने मुझे भली प्रकार आत्मज्ञान से प्रबोधन दिया ॥३७-३९॥

अब मैं उस गुरुज्ञान की कृपा से सम्पूर्ण सृष्टि को आत्मा मानकर और सारा विलास उसी के कारण है यह समझ कर एवं अभय मार्ग में आश्रय पाकर शङ्काओं के उन्मेष (उठने) से रहित हो अचल स्थिति में घूमता रहता हूँ जैसे सूत के धागे में बँधी हुई काठ की पुत्तलिका । यह सब सुनकर तब श्रीपरशुराम ने फिर अञ्जलि बांधकर प्रणामपूर्वक मुनि से कहा ॥४०-४१॥

रामः प्राह मुनिं वाक्यं सम्प्रार्थनगिरा तदा । महापुरुष मां दीनं संसारभयपीडितम् ॥४२॥
अनुगृह्य शुभं मार्गमधिरोहय निर्भयम् । इत्युक्तः स पुनः प्राह दयार्द्रहृदयो मुनिः । ४३॥
शृणु वत्स ! मया प्रोक्तं सारं सर्वार्थसंग्रहम् । यस्मिन्मार्गे त्वमासीनः स भीमो बहुवनर्थदः ॥४४॥
यथा कश्चित्कचिद्गच्छन्नभयं दैवमोहितः । मार्गं दस्युसमाकीर्णमाश्रितो याति निर्भयः ॥४५॥
अज्ञानादथ तन्मार्गे क्लिश्यन्विभ्यन्पदे पदे । क्षेमप्राप्त्याशया याति तथा संसृतिवर्त्मनि ॥४६॥
अथ केनाऽपि मार्गज्ञपुङ्गवेन प्रबोधितः । सुमार्गमाश्रितो याति दुर्मार्गस्थान्हसन्यथा ॥४७॥
तथाऽहं नाथसम्प्रोक्तसुमार्गस्थोऽतिनिर्वृतः । हसन्नन्यान्कुमार्गस्थांश्चिरं गच्छामि सर्वतः ॥४८॥
तत्र संसृतिमार्गस्तु विपरीतो विषूचिकः । तत्राऽतिक्लेशभाजोऽपि न जानन्ति विमोहिताः ॥४९॥
विश्रब्धाः क्लेशजालेषु सुखबुद्ध्याऽतिपामराः । ये तेषां दुर्लभो मार्गो योऽस्मद्विधनिषेवितः ॥५०॥

परशुराम ने तब प्रार्थना के स्वर में कहा—"हे महापुरुष ! आप संसार भय से अति संत्रस्त मुझ दीन पर कृपा करके मुझे कल्याणकारी निर्भय मार्ग का उपदेश कर उस पर चलाइये" ॥४२॥

परशुराम के इस अनुरोध पर दयार्द्रहृदय मुनि बोले—"हे वत्स सम्पूर्ण पुरुषार्थों के संग्रहभूत सार वचन को मुझ से सुन। जिस मार्ग में तू चल रहा है वह अत्यन्त भीम (भीषण) और बहुत अनर्थकारी है ॥४३-४४॥

जैसे कोई व्यक्ति कहीं चलते-चलते दैवमोहित हो निर्भय हो बढ़ता जाता है एवं दैवदुर्विपाक से लुटेरों से भरे-पूरे निर्जन मार्ग में अज्ञान के कारण भटक जाता है तब तो उसे क्षण-क्षण उन भीषण प्राण लेने वाले (मारक) डकैतों का भय पद पद पर बना रहता है, वैसे ही इस संसार के मार्ग में (प्रवृत्ति मार्ग में) अज्ञानी पुरुष निडर हो दस्युओं से भरे पूरे उस मार्ग में जाने वाले पुरुष के समान कल्याण पाने की आशा से चलता है। बाद में जब किसी सन्मार्ग के जानने वाले पुरुष-श्रेष्ठ द्वारा उसे दुर्गम बीहड़ (भयानक) मार्ग से सुमार्ग का प्रबोधन होता है तो दुर्मार्ग (खराब मार्ग) को हंसते-हंसते पार कर जाता है ; वैसे ही मैं श्रीनाथभगवान् के कहे मार्ग में स्थित हो अत्यन्त वैराग्य का आश्रय लेकर दुष्ट मार्ग में रहने वाले व्यक्तियों को तिरस्कार करता चारों ओर बहुत काल से चला आ रहा हूँ। इस संसार में जो प्रवृत्ति का मार्ग है वह विपरीत है और पदे पदे कण्टकों (दुःखों) से परिपूर्ण (भरा पड़ा) है । उसमें अधिकाधिक कष्टों के जाल से पीड़ित लोग भी मोह को प्राप्त होकर अपनी विपन्न (दुःखास्थिति) अवस्था को नहीं जानते हैं। इस तरह के व्यक्ति नाना कष्टों में लुभे हुए सुखबुद्धि का ही भ्रम कर विषकीट का सा जीवन बताते हैं ऐसे अति नीच पुरुषों को हम जैसे व्यक्तियों से सेवित मार्ग सर्वथा ही दुर्लभ है ॥४५-५०॥

तस्मात्स्वमार्गसंस्थानं ज्ञात्वा तत्र विरक्तधीः । गुरूपदिष्टमार्गेण स्वात्मशक्तिं महेश्वरीम् ॥५१॥
त्रिपुरां सम्यगाराध्य, तत्कृपालेशमाश्रितः । उपलभ्य स्वात्मभावः सर्वसाम्याश्रयात्मकम् ॥५२॥
इतरत्तच्छक्तिमयमाभासैकरसस्थितिम् । ज्ञात्वा सर्वं स्वात्ममयं शक्तिचक्रात्मनः पराम् ॥५३॥
जगद्गुरुसमापत्तिं प्राप्य, निर्भयसंशयः जामदग्न्य यथेच्छं त्वं चराऽहमिव निश्चलः ॥५४॥
स्वात्मानं सर्वभावस्थं स्वात्मस्थं सर्वभावकम्, पिण्डाऽहम्भावमुन्मूल्य, वेत्तृभावासनस्थितः ॥५५॥
वेद्यं स्वदेहं संबुध्य, सदा वेत्त्रभिलक्षकः । यश्चरेत्तस्य नो कार्यं विद्यते, संसृतेः पथि ॥५६॥
दोषं विभावयेदादौ भूयः संसृतिवर्त्मनि, तेन तत्राऽऽशु वैराग्यं, ततः सन्मार्गलक्षणम् ॥५७॥

इसलिये अपने अभीष्ट मार्गके स्थान को भली प्रकार जानकर निवृत्ति प्रधान हो विरक्त भाव से श्री सद्गुरु के उपदेश दिये गये मार्ग द्वारा अपनी आत्मशक्ति महेश्वरी भगवती त्रिपुरा की अच्छी प्रकार विधिपूर्वक आराधना कर उसकी कृपा के लेश का आश्रय लेकर स्वात्मभाव को पाकर सबके प्रति समता का आश्रय ले। अन्य जो कुछ संसार का स्वरूप है वह उसकी शक्तिमय से गम्य (कृतार्थ) है और उसके आभास के एकरस से सत्ताभाव को चरितार्थ कर रहा है, इसे भली भांति जानकर सम्पूर्ण विश्वप्रपञ्च को आत्ममय और शक्ति चक्रस्वरूपवाली पराम्बा का आश्रय तथा जगद्गुरु की शरणागति पाकर निर्भय संशयरहित हे परशुराम यथेच्छ मेरे समान ही जहां तेरी इच्छा हो अभय बन विचरण कर ॥५१-५४॥

जो व्यक्ति स्वयं सर्वभावों में स्थित आत्मा में अविचल स्थिति बनाये हुए है व ब्रह्मभाव से पूर्ण है उसी भाव में सर्वात्मना रङ्गकर अस्थि मांस मज्जा आदि सप्तधातु के पञ्चतन्मात्रा से बने शरीर के प्रति पिण्डभाव का उन्मूलन कर ज्ञातृभाव से निश्चलमन होकर विशेष जानने योग्य अपनी देह स्थित इस अति उत्तम आत्मा की प्राप्ति के लिये सम्यक्तया जानकर सदा ही वेत्ता (आत्मा) को अपना लक्ष्य बना जो व्यक्ति विचरण करता है उसे संसार मार्ग का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता ॥५५-५६॥

सबसे आदि में इस दोषपूर्ण संसार मार्ग में सब ओर से दुर्गुणों के दोष देखे, फिर बार-बार व्यक्ति दोषों की खान से अपने को उपर उठाने की भावना से भावित हो शीघ्र वैराग्य की ओर रुझान कर लेता है तब सन्मार्ग लक्षण वाला यह निर्भय आत्मपद प्राप्त होता है ॥५७॥

एतन्मयोक्तं संक्षेपात्सारं मर्त्यः सदाभ्यसन्। अचिरेणैव संयाति शुभमार्गं परात्परम् ॥५८॥
एवमुक्तं तस्य वचो दुर्विभाव्यमतीन्द्रियम्। मत्वाऽथ भार्गवः प्राह भूयः कलुषितान्तरः ॥५९॥
महापुरुष ! यत्प्रोक्तं त्वया सारतरं वचः। तस्याऽतिगहनत्वाद्वै न सम्यग्विदितं मया ॥६०॥
सारसंक्षेपवचनात्तन्मे सन्देह आततः। विस्तरेण सुकृपया यथा ज्ञातं मया भवेत् ॥६१॥
तथा मे वद सर्वज्ञ रक्ष मां शरणागतम्। इति तद्वचनं श्रुत्वा सम्वर्त्तो ध्यानमास्थितः ॥६२॥
ज्ञात्वा तस्याऽखिलं भावि प्रोवाच मधुरं वचः। शृणु राम मयोक्तं त्वं नायं मार्गोऽतिगोचरः ॥६३॥
मलीमसधियां पुंसां न सुज्ञेयमिदं भवेत्। ऊर्द्ध्वमार्गस्थितेः सूक्ष्मभावात्कलुषितात्मनाम् ॥६४॥
नीतिसुज्ञेयमेतद्वै वक्तुं न सुलभं तथा। अतिलौकिकवृत्तित्वाद् दुर्लभश्चैतदुच्यते ॥६५॥
त्रिपुराम्बापादसेवामन्तरा नैव लभ्यते। सापि श्रीगुरुनाथस्य कृपाद्वारैव नान्यथा ॥६६॥

संक्षेप से मेरे द्वारा कहे गये इस सार भूत उपदेश का सदा अभ्यास करता हुआ मरणधर्मा मनुष्य शीघ्र ही परात्पर तत्व से ओतप्रोत शुभ मार्ग जो दुर्विभाव्य (कठिनता से समझ में आने योग्य) और इन्द्रिय से अगोचर तत्व है, उसे जानकर, भार्गव श्रीपरशुराम ने फिर अन्तःकरण कलुषित से पूछा ॥५९॥

हे महापुरुष ! आपने जो सारयुक्त वचन कहे उनके अत्यधिक गम्भीर होने से मैं उन्हें भली भांति नहीं समझ पाया। बहुत ही सार रूप से इसीलिये संक्षेप से कहने के कारण मुझे सन्देह हो गया। हे सर्वज्ञ मुने! मुझमें आए हुए मुझे आप विस्तारपूर्वक कृपा कर समझावें जिससे मै सुलभरूप से जान सकूँ इस प्रकार आप मेरी रक्षा करें ॥६०-६१॥

इस प्रकार श्रीपरशुराम की बात सुनकर सम्वर्त ने ध्यान लगाकर उसकी सारी शंकायें भावीरूपकी हैं यह जानकर मधुर वाणी में कहा—'हे परशुराम ! सुन मैंने जो मार्ग बताया है वह अतिगोचर नहीं है। हाँ, जिन लोगों की बुद्धि मलिन है उन्हें यह सरलता से सुलभ नहीं है ॥ ऊर्ध्वमार्ग की गति अति सूक्ष्म है ऐसे गहन विषय को कलुषित बुद्धि वाले नीति को सुगम रूपसे तो जान सकते हैं वैसा उनके लिये यह सुलभ नहीं है। यह लौकिक वृत्तिको अतिक्रमण कर जाता है इसलिये इसे दुर्लभ कहा जाता है। भगवती त्रिपुराम्बा के पादकमल की सेवा विना यह कभी नहीं मिल

तत्कारणन्तु सत्सङ्गः सर्वं तन्मूलकं यतः । तस्माद्दत्तात्रेययुरोः समीपं व्रज भार्गव ! ॥६७॥
तं समाराध्य सन्तोष्य वाञ्छितं प्राप्स्यसि द्रुतम्। विना गुरोराश्रयतः सुखं विन्देत वै कथम् ॥६८॥
मार्गच्युतस्य गहने रात्रौ सूर्यं विना यथा । विना सद्गुरुसेवाया न सुखं विन्दते क्वचित् ॥६९॥
अन्धस्याऽञ्जनकर्त्तेव विनाऽन्यत्र गुरोर्गतिः। साक्षात्सदाशिवो देवः शिष्यलोकानुकम्पितः ॥७०॥
मनुष्यरूपमास्थाय सदा पर्यटति प्रभुः । विना श्रीगुरुपादाब्जसंश्रयं कः समीहितम् ॥७१॥
लभेत त्रिषु लोकेषु समृद्धोऽपि धनादिभिः। तस्मादितस्त्वं गच्छाऽऽशु तस्य पादान्तिकं गुरोः॥७२॥
आराधय सुभक्त्या तमकैतवधिया ततः । प्रसन्नेऽथ गुरौ किं स्याद्दुर्लभं भुवनत्रये ॥७३॥
स आस्ते सम्प्रति गिरौ गन्धमादनसंज्ञिते । आश्रमे पुण्यभूयिष्ठे सिद्धयोगिसुसेविते ॥७४॥
व्रजाम्यहं शुभं तेऽस्तु यथाऽभिलषितां गतिम्। इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य जगामाऽऽकाशमार्गतः ॥७५॥

और वह महामाया भी श्रीगुरुनाथ की कृपा द्वारा ही मिलती है अन्य किसी प्रकार से नहीं। उसका कारण सत्संग है। क्योंकि सब कुछ (आत्मोन्नति) का मूल ही वह है। इसलिये हे भार्गव ! तू दत्तात्रेय गुरुवर्य के पास जा ॥६१-६७॥

उनकी आराधना करके उन्हें संतुष्ट कर शीघ्र ही अभीष्ट प्राप्त करेगा। गुरुका आश्रय लिये बिना कैसे शुभगति की प्राप्ति हो ? जैसे कोई व्यक्ति सूर्य के बिना गहन रात्रि के अन्धकार में मार्ग भटक गया हो (प्रकाश होने पर मार्ग का पूरा ज्ञान पाता है) वैसे ही सद्गुरु की सेवा के बिना कहीं भी सुख नहीं मिलता। जैसे अंधा मनुष्य अञ्जन कितना भी लगावे आंखों से नहीं देख सकता उसी प्रकार सद्गुरु की भक्ति किये बिना सुखदायक गति नहीं प्राप्त हो सकती। गुरुदेव साक्षात् सदाशिव हैं। वह शिष्य लोगों पर पूर्ण अनुकम्पाशील हैं वही सर्व-प्रभु मनुष्यरूप में गुरु बनकर घूमते हैं। श्रीगुरुचरणकमलों के आश्रय के बिना कौन व्यक्ति अभीप्सित मनोरथ को प्राप्त कर सकता है भले ही वह धन ऐश्वर्य आदि से समृद्ध भी हो ? इसलिये यहां से तू अतिशीघ्र गुरुचरणों की सन्निधि में जा सुभक्तिपूर्वक निश्छल एवं निष्कपट भाव से उनकी आराधना कर। तब गुरु के प्रसन्न होने पर तीनों लोकों में दुर्लभ वस्तु क्या है ? अर्थात् कुछ भी दुर्लभ नहीं ॥६८-७३॥

अभी वह गंधमादन नामक पर्वत पर सिद्धों तथा योगिगणों से सेवित पुण्यबहुल आश्रम में विराजे हैं। मैं अब जाता हूँ। जा तू अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर तेरा मार्ग प्रशस्त हो"। यह कहकर उसके देखते-देखते

वातनुन्नाभ्रपटलमिव दूरं निमेषतः । प्रागुत्तरान्तरदिशं ययौ दृग्गोचरातिगः ॥७५॥
ततः संवर्तवाक्यस्य श्रुतिजातत्वरावृतः । गन्तुं मनो दधे तत्र यत्र दत्तगुरुः स्थितः ॥७७॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ॥३७७॥

एक निमिष मात्र में ही वायु से फटे हुए बादल के समान आकाश मार्ग से पूर्व-उत्तर के बीच वाली (ईशान) दिशा में जाते-जाते सम्वर्त अदृश्य हो गये ॥७४-७६॥

इसके अनंतर सम्वर्त के वाक्य (कहने) के सुनने से दर्शन के लिए अत्यधिक शीघ्रमनस्क हो पद्मराज ने वहां जाने का विचार किया जहां श्रीगुरुदेव श्रीदत्तात्रेय विराजमान थे ॥७७॥

श्री त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड का सम्वर्त द्वारा दत्ताश्रम में जाने का निर्देश नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

पञ्चमोऽध्यायः

श्रीपरशुरामस्य गन्धमादनं प्रति प्रस्थानविधिः ।

अथोत्तराशाऽभिमुखो जगाम भृगुवंशजः । दत्तात्रेयाऽऽश्रमं गन्तुं सत्वरो जातसंभ्रमः ॥१॥
चिन्तयन् स्वात्मनि तदा मार्गे व्यवहृतेः स्थितिम्। नूनमद्याऽवधि मया मुख्यं चिन्त्यं न चिन्तितम्॥२॥
प्रवाहपतितो मर्त्य इव तद्वशतां गतः । यद्वदन्धानुगोऽन्धः स्यादविज्ञातगतिक्रमः ॥३॥
अग्रगस्य फलं भुङ्क्ते तथेमे सर्वतो जनाः । अविदित्वैव पर्यन्तं कुर्वन्ति कृतकर्मणः ॥४॥
विदन्ति तस्य च फलमन्यदेवाऽसमीहितम् । दृष्ट्वा क्वचित्फललवसम्भवं दैवतन्त्रजम् ॥५॥
दृष्ट्वाऽन्यकर्मजं तच्च मोहिताः फलतर्षया । फललेशाभासलुब्धा आपदं प्राप्नुवन्ति हि ॥६॥

पञ्चम अध्याय

अनन्तर श्री परशुराम अपने गुरु श्री दत्तात्रेय के आश्रम में जाने के लिये अत्यधिक उत्कंठित हो उत्तर दिशा को ओर शीघ्रता बढ़ने का मन किया ॥१॥

वह मार्ग में अपने व्यवहार की स्थिति को सोचते विचारते इस चिन्ता में पड़े कि अवश्य ही अबतक मैंने मुख्यरूप से जो चिन्तन करने योग्य आत्मचिन्तन (संवित्प्राप्ति का साधन) था उसके लिये कोई मार्ग नहीं अपनाया ॥२॥

मैं नदी के प्रवाह में गिरे मनुष्य के समान इधर उधर लहरों में बहता इतराता निरुद्देश्य फिरता हूँ; और भी मेरी वही गति है जैसे अन्धे मार्गदर्शक का पीछा करने वाले अन्धे की होती है । दोनों ही किधर जाना इष्ट है इसे जानते नहीं और निरुद्देश्य चलते बनते हैं । जो आगे ले जाने वाला अन्धा व्यक्ति है वह जिस स्थिति में सुख अथवा दुःख का फल भोगता है वही गति इन सब संसारी पुरुषों की है । इन्हें अपने किसी कर्म के लक्ष्य तक पहुंचनेके फल तक का पता नहीं रहता है, ऐसे लोग जघन्य कर्मों द्वारा दूसरे पवित्र पुण्य कर्मके फलकी आशा करते हैं । कहीं पर किसी फल के तुच्छमात्र की प्राप्ति की आशा जो देवता और तन्त्र के द्वारा प्राप्त हुई देखते हैं तो उसको अपनाकर उसे ही करते हैं और अपने दुष्कर्मों के फल के रूप में उलटा ही फल देखकर लाभ की दुराशामात्र से मोहित हो जाते हैं । ऐसे लोग फल के तुच्छमात्र आभास से ही लुभ जाते हैं जिससे अन्त में आपत्तियों के जाल में

यथा चाऽऽमिषलोभेन झषो बडिशवेधितः । कस्य किं तत्सुखं जातं हतसंसारवर्त्मनि ॥७॥
आकृमिश्वपचात्सर्वे सुखार्थं सततोद्यताः । यत्सुखं विट्कृमेर्जिह्वामैथुनोत्थन्तु यादृशम् ॥८॥
तदेव तादृशं लोकत्रयराजस्य नेतरत् । सर्वं हि भौतिकोत्थस्य देहस्याऽर्थं समीहितम् ॥९॥
स देहो मलमूत्रास्रङ्मांसस्नाय्वस्थिसङ्कुलः । मुहुर्निन्द्यः सदा दुःखहेतुरत्यन्तकुत्सितः ॥१०॥
एतत्सम्बन्धिनः सर्वे पुत्रमित्रकलत्रकाः । इमं नश्वरमत्यन्तबीभत्समतिदुःखदम् ॥११॥
देहमात्मधिया दृष्ट्वा करोत्यपि विनिन्दितम् । को नाम गुणलेशोऽत्र वर्त्तते हतदेहके ॥१२॥
सर्वैः सुविदितं लोके जनैः पामरपण्डितैः । सदा स्रवद्द्वारयुतममेध्याऽशुचिगन्धिनम् ॥१३॥
विण्मूत्रकफनिष्यन्दं लोमत्वगस्रृगाततम् । मत्वा प्रियतमं देहमत्युत्तमतमं जनः ॥१४॥

फँस जाते हैं। जिस प्रकार बड़ी मछली अपने थोड़े से लोभ के कारण मांस पाने की इच्छा से मछली पकड़ने के कांटे में बिंध जाती है, तो बताओ अपने संसारी जीवन के मार्ग से भटक कर किसे क्या सुख मिला ? ॥७॥

एक छोटे कीड़े से लेकर चण्डाल तक सभी लोग सुख के लिये ही अपनी सारी शक्तिभर चेष्टा करते रहते हैं। जो सुख विष्ठा के कीड़े को जीभ के द्वारा एवं विषयेन्द्रिय के द्वारा जिस रूप में मिलता है वैसा ही सुख तीनों लोकों के अधिपति बनने का है उससे अन्य प्रकार का नहीं। सब तो पाञ्चभौतिक देह के बने इस शरीर के स्वार्थ के लिये ही किया जाता है न। वह देह मल, मूत्र रुधिर मांस, स्नायु एवं हड्डियों का ढांचा मात्र है उसको सदैव अविद्या, राग, काल, कला और नियति चक्र में परिच्छिन्नता (नामरूप ही सीमित अवधि) में फँसना पड़ता है। इसलिये सब ओर (क्षणभङ्गी) का क्रियाकलाप होता रहता है। इसीलिये इसे अत्यन्त निन्दायुक्त कहा गया है, यह अत्यन्त कुत्सित और दुःख का हेतु है। इसी के मोह ममत्व के कारण ही सभी पुत्र, मित्र और धर्मपत्नी जैसों के सम्बन्धों का मेल बनता है। इस नश्वर, अत्यन्त बीभत्स तथा अत्यधिक दुःखदायी देह में आत्मबुद्धि (अपनत्व) की भावना जानते बूझते हुये अधिकाधिक निन्दित कार्य भी स्वार्थवश मनुष्य करता है। पतनशील देह के होने पर इसमें कितना गुणों का लेश है ? ॥८-१२॥

लोग इसे भलीभांति जानते हैं कि सदा ही यह नव मलद्वारों वाला शरीर झरता रहता है, अपवित्र है। कई बार भी इसकी शुद्धि पर अवहेलना की गई कि सब ओर से नाक को असह्य दुर्गन्ध को सहन करना होता है। यह इस देह में मल-मूत्र और कफ का समूह भर रहता है तथा यह लोम (रोम), त्वचा और खून से पूर्ण है इसके प्रति प्रेम भरी दृष्टि बनाकर अदूरदर्शी जन इसे प्रियतम और अति उत्तम समझता है। अज्ञानी लोक इसे अति सुन्दर सुगन्ध

सुगन्धिगन्धकुसुमैर्मण्डयत्यतिसुन्दरैः । अवेत्य मण्डितं देहं प्रमोदमुपयाति च ॥१५॥
विस्मृत्य नित्यप्रवहन्मूत्रविट्श्लेष्मसङ्चकम् । पुष्टं रसाधिक्यवशात्प्रतिक्षणं विकारिणम् ॥१६॥
स एव देहो जरसा व्याप्तो रोगदूषितः । व्रणादिप्रवहन्मज्जादुर्गन्धप्रसरोद्यतः ॥१७॥
चैतन्यकलया हीनो जलक्लिन्नोऽत्यमङ्गलः । कृमिराशिमयश्चान्यैर्भक्षितो विड्मयोऽशुचिः ॥१८॥
एवंभूतदशायुक्तं पश्यन्नप्यन्यदेहकम् । मत्वा स्वदेहमजरामरमत्यन्तमूढधीः ॥१९॥
एवंविधेऽतिबीभत्से नारीदेहे नृदेहेके । परस्परस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वाऽत्यन्तसुमोहितः ॥२०॥
विचारणीयं सौन्दर्यं किं तत्राऽस्ति सुसूक्ष्मकम् । मलासृगस्थिसङ्घातमृते तत्प्रतिपाद्यताम् ॥२१॥
अहोऽतिमुग्धदृष्टीनां कुणपेऽत्यन्तगर्हिते । नश्वरे दुःखदे चाऽतिभयदे क्षणिकेऽशुचौ ॥२२॥

पुष्पों से सजाता है । इस प्रकार से सजा-बजा कर पामर लोग अति हर्षित होते हैं ॥१३-१५॥

वह नित्य जिस शरीर से मूत्र, विष्ठा श्लेष्मा का समूह बहता रहता है इसे भूलकर नाना प्रकार के लेह्य, चोष्य, पेय और भोज्य पदार्थों द्वारा प्रतिक्षण विकारग्रस्त होने वाले शरीर को पुष्ट करता जाता है । वही देह वृद्धावस्था से जकड़ा जाकर रोगों से ग्रस्त होता है और व्रण आदि से बहता हुआ दुर्गन्ध का प्रसार करता रहता है ॥१६-१७॥

यदि दुर्भाग्य से किसी समय कोई (फोड़ा) होकर उसका घाव बन जाता है तो उसमें से पीव बहता है और अधिकाधिक दुर्गन्धयुक्त दोष से विजातीय द्रव्य उसमें से निकलता रहता है । वास्तविक बात तो यह है कि चैतन्यकला के विना यह क्षण में ही जलीय तत्व से भरपूर होकर अमङ्गल अशुद्ध (मृत देह) बनता है तथा कीड़ों से भरा हुआ यह अन्य प्राणियों का भक्षण होता है । यह केवल दुर्गन्धयुक्त मल से पूर्ण है । इस प्रकार की दशा में रहते हुए दूसरे के देह को देखकर भी अत्यन्त मूढ़ बुद्धि के पुरुष अपने शरीर को सर्वाधिक उत्तम मानकर इस प्रकारके अत्यन्त बीभत्स घृणास्पद नारी शरीर और पुरुष शरीर के रहने पर भी एक दूसरे के सौन्दर्य को देख मूढजन अतीव मोहित हो जाते हैं । यहां यही विचारने योग्य बात है कि इसमें सूक्ष्म रूप से सौन्दर्ययुक्त क्या तत्व है ? क्या मल, रक्त और हड्डियों के समूह को छोड़कर और भी कुछ है ? उसे तो बतलाओगे । अहो ! अत्यन्त कुत्सित, क्षणमात्र में विनाशशील, दुःखदायी, अतिभयदायक, क्षणिक और अपवित्र मृतक के समान इस देह में अत्यन्त प्रीतिपूर्वक मुग्ध हो रमनेवाले संसारी व्यक्तियों को इसमें सौन्दर्य ही सौन्दर्य दीख पड़ता है जिससे मोहित हो इसे ही अपना लक्ष्य बना इसे पाने की प्रतिपल कामना करते रहते हैं ? इस मल-मूत्र और नाना प्रकार के दोषों से परिपूर्ण नारी शरीर के प्रति क्या नयनाभिराम

सौन्दर्यं भाति येनेमे मोहिताः प्रार्थयन्ति यम् । यत्स्त्रीगात्रं चारुतरं कामिनां प्रीतिवर्धनम् ॥२३॥
पुरुषाङ्गाद्विशेषः कस्तत्र स्यादप्यणोर्मितः । मांसपिण्डौ स्तनौ तौ च स्फोटदुर्मांससम्मितौ ॥२४॥
दुर्व्रणस्फोटसंयोगे तयोः सौन्दर्यमीक्षितम् । देहेऽत्यन्ताऽशुचिमये ये प्रीतिमभियान्त्यहो ॥२५॥
धिगस्तु तान्कृमिप्रायानमेध्यरमणान्नरान् । अविचारस्य माहात्म्यं किं वदाम्यहमीदृशम् ॥२६॥
पश्यन्नपि महादोषं गुणमेवाऽभिमन्यते । एवं कुदेहाऽभिमतेः कामक्रोधादयोऽप्यरम् (?)॥२७॥
भवन्ति येन विहता भ्रमन्त्युल्कामुखा इव । न कुत्रचित्स्थितिं यान्ति भ्रमवायुस्थतूलवत् ॥२८॥
प्रायो जना मन्दधियो जिह्वोपस्थपरायणाः । न विदन्त्यतिसान्निध्यस्थितं मृत्युं भयङ्करम् ॥२९॥

सौन्दर्य इन्हें लगता है जिससे मोहित हो उसकी याचना करते हैं । जो स्त्री का शरीर है वह कामी पुरुषों के लिए अति सुन्दर तर और उनकी प्रीति बढ़ानेवाला है ॥१८-२३॥

पुरुषों के अङ्ग विशेष से उस स्त्री के अङ्गों में अणु के मान (कुछ) भी तो कोई विशेषता नहीं; उसके दोनों स्तन मांस के पिण्ड हैं स्पष्टरूप से जो अधिक बढ़ा मांस है उससे भरे हैं । जब उसी सौन्दर्य की प्रतिमा में घातक व्रण के संयोग बन जाँय तो दोनों की शोभा भी देखते ही बनती है । अहो ! खेद और आश्चर्य है कि इस प्रकार के अत्यन्त अपवित्र देह में भी पामर लोग प्रीति करते हैं । उन कीड़ों के समान (कृमि प्रायः) बल्कि उनसे भी हीनतर दशापन्न व्यक्तियों को तो अशुद्ध वस्तुओं में रमण करने वाले ही समझा जाय; वे धिक्कारने योग्य ही हैं। इस अविवेक और मूर्खता की चरम सीमा पहुंच गई मैं इस प्रकार निम्नगामी विचार धारा का क्या वर्णन करूँ ? ॥२४-२६॥

इस बड़े भारी दोष को देख कर भी संसारी (विषयी) लोग इसे गुण ही मानते हैं। इसी प्रकार कुदेह का अभिमान कर मूर्ख लोग काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं मद इनके वश में अपना किया कराया नष्ट करते हैं और इसके द्वारा प्रताडित होकर पुच्छलतारों के समान निरुद्देश्य हो जाते हैं । ऐसे लोग अपने आत्म की स्थिरता नहीं कर सकते और असन्तोष एवं अशान्ति के थपेड़ों से प्रताडित होकर तेज भगूले के चक्कर में पड़े रूई के छोटे पहल के समान चौरासी के फेर में आते जाते रहते हैं । प्रायः मूर्ख लोग मन्द बुद्धि हो केवल जिह्वा और जनन इन्द्रिय के लोभ के वशीभूत हो भोगपरायण रहते हैं उन्हें अपनी अत्यन्त सन्निधि स्थित भयंकर मृत्यु का कुछ भी तो ज्ञान नहीं होता ॥२७-२९॥

ईहन्ते चाऽतिदीर्घार्थसिद्धिमप्यल्पजीविताः। स्वार्थसिद्ध्यै परान्हन्ति कामक्रोधहताऽऽशयाः॥३०॥
कामक्रोधहता मर्त्याः सुखसिद्ध्यै सदोद्यताः। न क्वचित्सुखमायान्ति क्षणं किञ्चिदपि ध्रुवम् ॥३१॥
दुरन्ताऽऽशागाढवन्हिज्वालाप्लुष्टात्मनां नृणाम् । कुतो वैराग्यपाटीरपङ्कलेपनजं सुखम् ॥३२॥
धन्यास्ततो हि तिर्य्यञ्चः संशान्तमनसः सुखम् । क्षुधानिवृत्तिमात्रार्थास्तत्कालार्थकृतोद्यमाः ॥३३॥
असङ्ग्रहपरा नित्यं शयानाः स्वस्थमानसाः। अहो धिक्कामवशतां सदा सन्तापकारिणीम् ॥३४॥
दुष्पूरां सर्वथोपायैः चिरकालाऽर्थसाधनैः । लोके यावद्धनं धान्यं पशवः स्त्रिय एव च ॥३५॥
न तस्य तावत्प्राप्त्याऽपि क्षणं निश्चिन्तता भवेत्। अहो महादुःखिनस्ते येषां कामहतं मनः ॥३६॥

उनके भोगपरायण होने की कामनाओं का न वारापार है और न अन्त है, वे लोग थोड़े समय की अवधि के जीवन को अपने कार्यों के दीर्घकाल तक प्रयोजन सिद्ध होने वाला बनाने की दुश्चेष्टा तथा व्यर्थ इच्छायें करते हैं। अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये काम, क्रोध के मारे सदुद्देश्यों को ताक पर रख अन्य लोगों को हानि पहुंचाते हैं ॥३०॥

काम, क्रोध के वशीभूत हो मर्त्यलोग सुख की सिद्धि के लिये सदा तैयार रहते हैं, और कहीं भी न तो एक क्षण के लिये और न स्थायी रूप से ही उन्हें सुख मिलता है ॥३१॥

आशा का कभी अन्त नहीं होता, उसकी तीव्रता से अन्तःकरण में एक प्रकार की जलन उठती रहती है, उस गाढ़ी तृष्णा ज्वाला से झुलसे मनुष्यों को वैराग्यरूपी चन्दन के ठण्डे लेपन से उत्पन्न सुख कहाँ ? ॥३२॥

उन लोगों से तो तिर्यग्योनि वाले पशु पक्षी ही धन्य हैं जो शांतमन रहकर सुखपूर्वक जीवन बिताते हैं; वे प्राणी तबतक व्याकुल रहते हैं जबतक कि भूख-प्यास की निवृत्ति न हो और उस समय के लिये ही क्षुधा निवारणार्थ इधर-उधर अपना उद्यम करते फिरते हैं ॥३३॥

ये किसी प्रकार का कभी संग्रह नहीं करते, भली-भांति निर्भय शयन करते हैं एवं नित्य स्वस्थचित्त रहते हैं। अहो ! कामनाओं की वशवर्तिता (पराधीनता) को धिक्कार है जो सदा ही सन्ताप का कारण बनती है। यह जीवन में कभी भी पूर्ण नहीं होती, भले ही दीर्घकाल तक उसे पूरा करने के नाना प्रकार के साधन जुटाये जांय और उपाय किये जांय। संसार में जितना धन, धान्य, पशु-विशेष और स्त्रियां हैं उनकी आवश्यकता के अनुरूप प्राप्ति हो जाने पर भी एक क्षण भर के लिये निश्चिन्तता की स्थिति तो नहीं आती। अहो ! जिनका मन कामनाओं से मारा गया है ऐसे व्यक्ति ही संसार में सबसे अधिक दुःखी हैं ॥३४-३६॥

सर्वसम्पत्समृद्धानामपि साम्राज्यमृच्छताम् । धनमेव हि दुःखानां मूलं नित्यभयावहम् ॥३७॥
दुःखेन प्राप्यते लोकैः कायक्लेशादिभिश्चिरम्। तद्धनप्राप्तिमात्रेण मित्राण्यपि च शत्रवः ॥३८॥
आत्मभूतात्मजोऽप्यस्मै द्रुह्यति प्रेयसी प्रिया । मातुः पितुः प्रियान्मित्राच्छङ्कते करटो यथा ॥३९॥
मृत्युमस्य प्रार्थयन्ति पुत्रदारादयः प्रियाः । तस्माद्धनेनाऽत्ममृत्युसमेन किमु वै सुखम् ॥४०॥
तथाप्यविद्वान्सततमीहते मुग्ध एव तत् । एवम्भूतधनेनेह कुटुम्बानान्तु रक्षणम् ॥४१॥
क्रियते बह्वनर्थाय महायासेन सर्वदा । कुटुम्बं पुत्रदारादि तद्वृथाऽभिनिवेशतः ॥४२॥
ममैते पुत्रदाराद्या इत्येवमभिमानयन्। अभिमानमृते किञ्चित्सम्बन्धोऽपि न लभ्यते ॥४३॥

सम्पूर्ण प्रकार की सम्पत्तियों का भोग जिन समृद्ध व्यक्तियों के पास है वे भी साम्राज्य की प्राप्ति की इच्छा करते हैं अतः सब दुःखों का मूल धन ही है एवं यह अत्यन्त भयदायक है । (इसका चोर, डाकू अग्नि और कराधान के रूप में राजा द्वारा छीनने का सतत भय बना रहता है) संसारी लोग अपने शरीर को नाना कष्टो और चिन्ताओं में डालकर बहुत समय के बाद दुःख से धन को प्राप्त करते हैं उसके प्राप्त होते ही मित्रगण भी शत्रु बन जाते हैं ॥३७-३८॥

अपने शरीर से उत्पन्न पुत्र भी उस धनी पिता से द्रोह करता है वही स्थिति उसकी प्रियतमा भार्या पत्नी की है ऐसे ही माता और पिता के प्रिय व्यक्तियों के लिए भी मित्रता करने में शंका करते हैं जैसे करट पक्षी (काक-कौआ) सदा ही शङ्काशील रहता है ॥३९॥

उस धन का ही यह अभिशाप समझिये कि पुत्र, धर्मपत्नी, उसके प्रिय सम्बन्धीगण जो प्रियपात्र हैं हृदय से प्रार्थना करते रहते हैं कि यह जल्दी ही मरे और धन का भोग-विलास अपने स्वयं किया जाय। इसीलिए जिस धन की श्रेणी अपनी मृत्यु के समान है उससे क्या सुख है ? ॥४०॥

फिर भी मूर्ख सतत मुग्ध सा हो धन का संग्रह करने में अपनी कृतकृत्यता मानता है। इस प्रकार के धन से इस संसार में अपने कुटुम्बियों का भरण-पोषण करता है और उसके लिये वह बहुत सारे अनर्थों का सहारा लिये सदा ही दिन-रात चिन्तामग्न हो प्रयास करता रहता है। यह कुटुम्ब पुत्र, स्त्री, भृत्य, पशु, स्थावर, सम्पत्ति आदि मेरी है इस मिथ्या अभिनिवेश (झूठी तेरे मेरे की भावना) से अभिमानी वह गर्व से फूला नहीं

तच्चाऽन्त्ये बहुशोकाय यथा कोशकृतः क्रिया। चिरं संयोगिनाश्चाऽपि स्यादेवाऽन्ते वियोगता।४४।
लोकेऽवश्यं युग्मभूताः शोचन्त्येकवियोगतः । एवं वियोगपर्यन्तं संयोगप्रीतिसंयुताः ॥४५॥
शोचन्त्यतितरामन्त्ये संयोगफलमीदृशम् । फलव्यत्यय एवाऽस्ति संयोगस्य तु सर्वथा ॥४६॥
अविचार्यैव पर्यन्तं दाराद्यैः संयुता नराः। निश्चित्य स्थिरसंयोगं मूढाः कौटुम्बिनो नराः ॥४७॥
सदा कुटुम्बैकरताः शोचन्त्यन्तेऽतिदुःखतः । एष एव महान्दोषो धनेष्विह जनेषु च ॥४८॥
अस्थैर्यं सर्वसुगुणघस्मरं दुर्निवारणम् । एतेनाऽस्तङ्गतास्सर्वे गुणा निःशेषिता अतः ॥४९॥
सङ्गो नैव विधेयः स्याज्जातु स्वक्षेममिच्छता। सर्वं भयेन संव्याप्तं मृत्युनाऽतिबलीयसा ॥५०॥
धनं गृहं तथा दाराः स्वर्गाद्यमपि कर्मजम् । तस्मान्नेच्छेत किमपि मृत्युग्रस्तश्च शोकदम् ॥५१॥

परन्तु अभिमान को छोड़कर और कुछ स्थायी सम्बन्ध भी तो प्राप्त नहीं होता। यह सब संसार का धन जन का संयोग अन्ततः बहुत शोक के लिये होता है जैसे कोष संग्रह करने वाले की क्रिया है। जो लोग दीर्घ समय तक संसारी व्यक्ति के रूप में साथ रहे हैं उनका अन्त में वियोग होना अवश्यम्भावी है। जो जोड़ा लोक में देखा जाता है उसमें एक व्यक्ति का शीघ्र अथवा विलम्ब से वियोग होगा ही और फिर उससे शोकाग्नि में अवश्यमेव ही जलना पड़ेगा। इस प्रकार अन्त वियोग में परिणत होने तक के लिये ही संयोग बना करता है, इस तरह संयोग सदा साथ-साथ संग रहने का रूप नहीं लेता उसका विपरीत फल वियोग ही होता है। अपने भविष्य के फल की चिन्ता किये बिना ही अपने कुटुम्बी सभी पुत्र आदि के सहित इन सबका स्थायी संयोग बना रहेगा यह निश्चित कर मूर्ख कुटुम्बीजन केवल कुटुम्ब के भरण-पोषण में ही घुले रहते हैं और अन्त में विपत्तियों के पहाड़ टूटने के कारण शोकमग्न हो जाते हैं। धन और जन में यही भारी दोष है ॥४१-४८॥

ये सब अस्थिरता, सब गुणों के भक्षक और दुःख से निवारण किये जाने वाले (इनका आना जाना अनिवार्य) है। इससे इससंसारी संघात में आ सारे गुण विशेष अस्त हो जाते हैं इसलिए अपने कल्याण (हित) को चाहने वाले व्यक्ति को कभी भी संसारी पदार्थों की सङ्गति नहीं करनी चाहिये। यह सब महाबलवान् मृत्यु के भय से भरे पड़े हैं। धन, गृह औरस्त्रियां यहां तक सुकर्म से प्राप्त होने वाले स्वर्ग की भी बुद्धिमान् कभी भी इच्छा न करे सब अन्त में मृत्यु को प्राप्त होते हैं और शोकदायक हैं ॥४९-५१॥

अभयं सर्वदेच्छेत न शोचति यतो जनः । व्रजामि तं महात्मानं दत्तात्रेययुरुं मुनिम् ॥५२॥
शरणं क्षेममन्विच्छन्नात्मनस्सर्वतोऽभयम् । एवं मार्गे चिन्तयानः पर्वतेन्द्रमवैक्षत ॥५३॥
पुरोभागे रोचमानशृङ्गाक्रान्तविहायसम् । शृङ्गसङ्घातविश्रान्तबलाहककदम्बकम् ॥५४॥
अमरीगणसङ्गीतनादघुङ्घुमितान्तरम् । नृत्यदप्सरसां श्रेणीनूपुराऽऽरावभाङ्कृतम् ॥५५॥
दोललोलाव्यग्रसिद्धपुरन्ध्रीगणसुन्दरम् । मैरेयक्षीबयक्षस्त्रीसंक्रीडद्गुह्यकावृतम् ॥५६॥
कदम्बकुसुमोदश्वत्सौरभाऽऽभरिताऽन्तरम् । सौगन्धिकसुगन्धाढ्यं मन्दगन्धवहस्थलम् ॥५७॥
पद्मिनीपद्मसंराजद्धंसचक्राङ्गसारसम् । भृङ्गीनिकरझङ्कारपरिबृंहितकुञ्जकम् ॥५८॥

इसलिए अभयपद को पाने की सदा इच्छा करे जिससे निरापद हो मनुष्य शोक को अवकाश न दे। मैं इसकी प्राप्ति के लिए महात्मा मुनिश्रेष्ठ श्रीदत्तात्रेय गुरु की शरण में जाता हूँ। मार्ग में श्रीदत्तात्रेयजी के आश्रम की ओर चलते "उन्हीं के द्वारा अपना सर्वथा कल्याण सम्भव है और वहीं पर सब ओर से अभय मिलेगा" इस प्रकार सोचते हुए परशुराम ने पर्वतराज गन्धमादन को देखा ॥५२-५३॥

उस शैलराज के अति उन्नत भाग में सुन्दर चोटियों के शिखरों ने आकाश की ऊँचाई को घेर रक्खा है। उन पर्वत शिखरों पर मानो मेघों की पंक्ति विश्राम कर रही है उस असीम निसर्गजात प्राकृतिक सुषमा को देखें की बधुओं का सङ्गीतगायन का नाद घुम्-घुम् की मीठी ध्वनि से गुञ्जारित कर रहा है, साथ ही नृत्य करने वाली अप्सराओं का एक साथ मिलकर पैरों के घूँघरू की झम्-झम् से उसकी शोभा अवर्णनीय हो रही है, बराबर चलने वाले दोल (झूला) में झूलती हुई सुप्रसन्न (चिन्तारहित) सिद्ध पुरन्ध्रीगण (नगर बधुयें) इस शैलराज की शोभा को द्विगुणित कर रही है। कहीं पर यक्ष स्त्रियां अपने अतिमादक द्राक्षासव और अन्य मद्यों के प्यालों में भरे मदन करती हुई स्थित हैं और गुह्यक आदि क्रीड़ा रत हैं ॥५४-५५॥

सारा वायुमण्डल कदम्ब के पुष्पों की भीनी-भीनी सुगन्ध से पूर्णतया पूरित है। इसके साथ चित्र-विचित्र सुगन्धित वनौषधियों और सुन्दर वन्य पुष्पों की मनमोहक सुगन्ध इस अप्रतिम शोभा को अधिकाधिक आकर्षण का केन्द्र बना रही है; शीतल मन्द सुगन्ध पवन; वायु के झोकों से उसे देव-सुलभ रम्य स्थान बना रहा है। कहीं कमलिनी और कमल पुष्पों से सज्जित सरोवर पर हंस, सारस, वकुल क्रीड़ा कर रहे हैं। सर्वत्र ही वनराजि में भ्रमरों की मधुर गुञ्जार पुष्पित कुञ्जों में सुनाई दे रही है ॥५६-५८॥

एवं शोभामवेक्षन्स प्राप्तवानन्तिकं गिरेः। गन्धमादनसञ्ज्ञस्य गीर्वाणाऽऽवसतेस्तदा ॥५९॥
अत्राऽऽस्ते स महायोगी यः संवर्त्तेन वर्णितः। दीनाज्ञानानुद्दिधीर्षुर्भवपङ्काब्धिविप्लुतान् ॥६०॥
इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टिगोचरिताऽभवत्। पर्णशाला तस्य मुनेर्यद्दर्शनपिपासितः ॥६१॥
ननु शाला तस्य भवेदाङ्गिरसगुरोर्मुनेः। नूनं ममाऽल्पभाग्यस्य दैवमद्य प्रफुल्लितम् ॥६२॥
अहो जनानां कालेन भाग्यमभ्युदितं भवेत्। अद्याऽहं सम्प्रपश्यामि तत्पादसरसीरुहम् ॥६३॥
संसारदावतापघ्नममृताम्भोधिवर्षणम्। स एवं चिन्तयन् रामः शालाद्वारमुपागतः ॥६४॥
दृष्टवान् द्वारदेशस्थं ब्राह्मणं ध्यानतत्परम्। तद्ध्यानभङ्गभीत्याऽथ संस्थितो दूरतः क्षणम् ॥६५॥
उन्मीलिताक्षमथ तमुपलक्ष्योपसंसृतः। वन्दित्वा तस्य चरणौ प्रष्टुं समुपचक्रमे ॥६६॥
भो ब्रह्मन्नाश्रमः कस्य भवत्ययमतिप्रियः। दर्शनादेव सर्वेषामतिविश्रान्तिदायकः ॥६७॥

इस प्रकार पर्वतराज की अनिन्द्य (नयनाभिराम) शोभा को देखते-देखते वह देवगण के निवासयोग्य नाम से गन्धमादन पर्वत के निकट पहुंच गया ॥५९॥

"यहीं पर वह महायोगीराज मुनि निवास करते हैं जिनके लिये श्रीसम्वर्त्त ने मुझे बतलाया, जो स्वयं संसाररूपी पङ्क से परिपूर्ण समुद्र में डूबते दीनहीन स्त्री पुरुषों का उद्धार करने की प्रबल कामना करते रहते हैं ॥६०॥

इस प्रकार सोचते हुए श्रीपरशुराम को जिस महर्षि के दर्शनों की उत्कट पिपासा लगी हुई थी उसकी पर्णकुटी सामने दीख पड़ी। अवश्य ही यह आङ्गिरस बृहस्पति के गुरुदेव की कुटिया होनी चाहिए। आज मुझ मन्द भाग्य के ऊपर विधि की अनुकूलता से दैव प्रसन्न ही है। अहो ! प्रसन्नता का विषय है कि समय पर ही लोगों का भाग्योदय होता है। आज मैं उनके चरणकमलों का दर्शन करूँगा। ये पादकमल संसाररूपी ताप को मिटाने वाले और अमृत समुद्रों की वर्षा करने वाले हैं।" इस प्रकार विचारों में मग्न श्रीपरशुराम ऋषि दत्तात्रेय की पर्णशाला के द्वार पर आ गये और उन्होंने वहीं पर ध्यान में अवस्थित एक ब्राह्मण को देखा। उसका कहीं ध्यान भङ्ग न हो जाय इस डर से वह दूर पर खड़े रह गये। इसके बाद जब उसकी आंखे खुलीं तो उसे देखकर वे पास में आ गये तथा उसके चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् कर पूछने लगे ॥६१-६६॥

"हे ब्रह्मन् ! यह अत्यन्त प्रिय आश्रम किसका है ? इसके दर्शन करने से ही सभी को अत्यन्त विश्राम और

अत्र दत्तात्रेयगुरोराश्रमः कुत्र विद्यते। कृपया ब्रूहि योगेन्द्र! द्रुतं मे दीनवत्सल! ॥६९
इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्राह्मणः शान्तमानसः। वाक्यं मधुरसासारमाह स स्मितपूर्वकम् ॥७०
अयमेवाऽश्रमस्तस्य योगिराजस्य सद्गुरोः। किमीहितं तव वद कस्त्वं कस्मादिहागतः ॥७१
अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य रामः प्राह कृताञ्जलिः। भृगुवंश-प्रसूतोऽहं जामदग्न्यो महामुने! ॥७२
रामो नाम जनैः ख्यातः केन चिद्धेतुनाऽत्रतु। प्राप्तः संवर्त्तमुनिना नोदितोऽतिकृपावता ॥७३
एतत्क्षणं द्रष्टुमेव गुरोश्चरणमीहितम्। मनो मे त्वरते ब्रह्मन् तत्पादावभिवन्दितुम् ॥७४
ततस्सर्वं सुविदितं भवेद्वै भवतो ननु। भ्रमन् मरुस्थलारण्ये दावसङ्गाऽतितर्षितः ॥७५
सुशीतजललाभाऽन्यद्यथा नो नन्दयेत्तु तम्। तथा मम गुरोः पाददर्शनाऽन्यन्न रोचते॥ ७६
आख्यातु तं भवान्मह्यमाश्रितार्त्तिविनाशनम्। अथ तद्वाक्यमाकर्ण्य प्रहस्य मधुरं वचः ॥७७

आराम का अनुभव होता है यहां सद्गुरु श्रीदत्तात्रेय का आश्रम कहां है? हे योगेन्द्र! दीनों पर दया करने वा आप मुझे कृपा करके शीघ्र ही बतलावें" इस प्रकार परशुराम के वचन सुनकर शान्तमना वह ब्राह्मण हँसकर मधु के से भी उत्कृष्ट सारवाली वाणी में बोला—"यही वहउस सद्गुरु योगीराज का आश्रम है। तुम्हें क्या चाहिये? तू कौ है और यहां क्यों आया है?" ॥६७-७०॥

तदनन्तर श्रीपरशुराम ने उसके वचन सुनकर हाथ जोड़कर कहा-"हे महामुने मैं भृगुवंशज महर्षि जमदग्नि पुत्र लोगों द्वारा राम के नाम से विख्यात हूँ। अतिकृपालु सम्वर्त्त मुनि द्वारा किसी कारण से प्रसङ्गतः प्रेरणा पाकर आया हूँ। इसी क्षण ही मैंने सद्गुरु महाराज के चरणों का दर्शन करने की दीर्घकाल से अत्यन्त कामना की है ब्रह्मन् उनके पादपद्म का वन्दन करने को मैं अत्यन्त लालायित हूँ। इससे आपको निश्चय ही सब बातों का चल गया होगा। कोई व्यक्ति जब किसी मरुस्थल वाले वन में दावाग्नि के सङ्ग से अत्यन्त तृषा (प्यास) से पीड़ित व्याकुल होता हो और उसको जैसे ठण्डे जल के मिलने से ही शान्ति तथा आराम मिलता है वैसे ही श्रीगुरुचरणों दर्शनों को छोड़ और कुछ मुझे अच्छा नहीं लगता। आप कृपा करके शरण में आनेवालों की आर्त्ति (पीड़ा) मिटाने वाले उन श्री गुरुजी के स्थान को बताइये ॥७१-७५॥

इसके अनन्तर उसका कथन सुनकर हँसते हुए उन महर्षि ने मधुर वाक्य कहे "हे परशुराम! मैं तेरा आने सब कारण जानता हूँ जो यहां तू महात्मा गुरु की सेवा की महिमा के वश से खींचा हुआ है उससे ही स्पष्ट

राम जानामि ते सर्वमत्राऽऽगमनकारणम् । गुरोर्महात्मनः सेवामहिमवशतः स्फुटम् ॥७७॥
गच्छाऽन्तराऽऽस्ते मुनिराट् सर्वलोकसुहृत्तमः। इत्युक्तस्तेन मुनिना शालाऽन्तः प्रविवेश ह ॥७८॥
तत्राऽऽसीनमासनाग्ये ऽवधूतकुलनायकम् । उपासितं योगिमुख्यैरवदातगुणाशयैः ॥७९॥
दण्डवत्तत्पदाब्जाऽग्रे प्रणिपत्य कृताञ्जलिः। आस्थितो नाऽतिदूरे स पश्यन् तत्स्थितिचेष्टितम्॥८०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे रामस्य दत्ताश्रमगमनंनामपञ्चमोऽध्यायः।४५०।

जाओ अन्दर सम्पूर्ण लोकों के सुहृत्तम मुनिराज विराजे हैं।" इस प्रकार मुनि के कहे जाने पर श्रीपरशुराम उस कुटिया के अन्दर गये वहां उन्होंने सिंहासन पर आसीन अवधूत कुल के नायक उत्तम गुणों से पूर्ण योगीराजों द्वारा सेवित गुरुवर्य को देखकर उनके चरण कमलों में दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़े हुए उनकी सारी मानसिक चेष्टाओं को देखते हुए सन्निकट ही खड़े रह गए ॥७६-८०॥

इस प्रकार श्रीमदितिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में परशुराम का योगीराज दत्तात्रेय के आश्रम में प्रवेश नामक पञ्चम अध्याय समाप्त ॥

षष्ठोऽध्यायः

दत्तात्रेय-दर्शनमनु रामेण प्रश्नोत्तरवर्णनम्

तं ददर्श महात्मानं तेजोराशिमनुत्तमम् । तमालकोमलदलनीलनालनालतनुच्छविम् ॥१॥
फुल्लराजीवनयनं राकेन्दुप्रतिमाऽऽननम् । नवविद्रुमसामन्तदन्तच्छदविराजितम् ॥२॥
मन्दस्मिताऽतिसौन्दर्य्यप्रभापूर्णदिगन्तरम् । प्रौढमुक्तापङ्क्तिशोभापरीभाविद्विजाऽऽवलिम् ॥३॥
पूर्णगण्डाभोगराजन्नासावंशलसन्मुखम् । कम्बुग्रीवं दीर्घबाहुद्वयशोभाविराजितम् ॥४॥
नवप्रबाललालित्ययुतपाणितलाऽञ्चितम् । विशालपृथुलोरस्कं तनुत्रिबलिकोदरम् ॥५॥
करिनासोरुसुभगं तूणीसोदरजाधिकम् । पङ्केरुहाऽतिसुभगं पादपङ्केरुहान्वितम् ॥६॥

षष्ठ अध्याय

श्रीपरशुराम ने अत्यन्त अपूर्व तेजोमण्डल सम्पन्न उस महात्मा को देखा। उनका शरीर तमाल पत्र के समान अत्यन्त कोमल नीले नाल दंड की भांति शोभित है, नेत्र पूर्ण विकसित कमल की भांति विशाल हैं। पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान उनका आभा दीप्त मुखमण्डल है। नवीन मूँगे के समान सामन्त से जुड़े हुए दांतों का लावण्य अतुलनीय है। अपनी मुस्कान से अत्यन्त सौन्दर्य की शोभा से सारी दिशायें व्याप्त हो गई हैं। उनके दांतों की पंक्ति ऐसी लगती है मानो अत्यन्त प्रौढ मोतियों की लड़ी को भी तिरस्कृत कर रही हो। उनकी ग्रीवा कम्बु (शंख) के समान सुन्दर है। लम्बे जानु तक फैले दोनों बाहु शोभामण्डित हैं। उनकी हथेली में अभिनव प्रवाल के लालित्य का पूरा आभास है तथा शरीर के आगे का (छाती वाला) भाग विशाल और मांसल है एवं सूक्ष्म तीन बलियाँ (रेखायें) उदर पड़ने से वह सर्वातिशायी सुन्दर परिलक्षित होता है। हाथी की सूँड के समान बहुत अधिक सुन्दर और तूणीर रक्खे बाण से अधिक इकहरे छरहरा शरीर वाले शोभा में कमल से अधिक कोमल चरण कमल सहित अतिशय शोभा युक्त लगते हैं ॥१-६॥

सौन्दर्यकन्दममलं तारुण्यश्रीनिषेवितम् । दर्शनादेव नारीणां कोटिमन्मथदीपनम् ॥७॥
एवंभूतं समालोक्य स्त्रिया लक्ष्मीसमानया । कयाचिदतितारुण्यलावण्य–लसदङ्गया ॥८॥
मदिरामदसंरक्त-घूर्णनेत्राम्बुजा तया । आलिङ्गितपुरोभागन्यस्तमैरेयकुम्भकम् ॥९॥
यतिवेषधरं मिश्रलिंगिनं शङ्कितोऽभवत् । किमेतदद्भुतं वृत्तं मुनेरस्य महात्मनः ॥१०॥
विषसम्पृक्तमाध्वीकमिव पश्यामि चेष्टितम् । अहो महात्मनां लोके गतिरत्यन्तचित्रिता ॥११॥
कचिद्बाह्यसमीचीना क्वचिदान्तरसौभगा । अचिन्त्यवृत्तयो लोके योगिनः खलु मादृशम्॥१२॥
न ह्यसारं स संवर्त्तो मह्यमादिशति क्वचित् । द्वारेऽप्येष महाशान्तः संश्रयेत्प्राकृतं कथम्॥१३॥
अत्राऽपि परितः सर्वे निषण्णाः सात्त्विकर्षभाः । तस्मान्नैतद्यथा दृश्यमन्यदेवाऽस्ति किञ्चन॥१४॥

वे अत्यन्त निर्मल सौन्दर्यके कन्द (खान) हैं युवावस्था की शोभा से सारा शरीर भला लगता है, उनके शरीर को देखने से ही स्त्रियों के कोटि कामदेवों का उद्दीपन हो जाता है। इस प्रकार लक्ष्मी के समान उस स्त्री के सहित विराजमान है जो पूर्ण यौवन भार से सारे अङ्गों में लावण्ययुक्त है तथा उस ललनाललाम के मदिरा मद से घूरते लाल हुए नेत्रकमल शोभा को बढ़ा रहे हैं। अपने अग्रभाग में सटा मैरेय मद्य का कुम्भ रक्खे है। इस प्रकार के यतिवेषधारी परन्तु गृहस्थ की स्थिति से मुक्त स्त्री के सहित अतएव मिश्रलिङ्ग (चिन्ह) वाले उन महर्षि को देखकर श्रीपरशुराम को शङ्का हुई। अहो ! इस महात्मा मुनि का क्या अद्भुत वृत्त है। इसके कार्यों से मुझे ऐसा लग रहा है कि विष से मिला हुआ माध्वीक हो। सबसे अधिक आश्चर्य यही है कि लोक में मेरे जैसे व्यक्तियों के लिए महात्माओं की गति अत्यन्त अचिन्त्यवृत्तियोंवाली है ॥७-११॥

कहीं पर, तो बाहर से भली; लगने वाली कहीं अन्दर से सर्वथा सुभग सुन्दर अचिन्त्य वृत्ति को धारने वाले योगी लोग होते हैं। परन्तु महात्मा सम्वर्त्त मुझे कभी भी व्यर्थकी साररहित बातें नहीं बता सकते। द्वार पर ही यह महाशान्त महानुभाव है तो फिर सांसारिक प्राकृत पदार्थों का सेवन क्यों करते हैं ? इनके चारों ओर यहां भी सभी सात्त्विक श्रेष्ठ महानुभाव विराजे हुए हैं। इसलिये मुझे जैसे यह दीख रहे हैं वैसे नहीं हो सकते। अन्य ही विलक्षणता लिये हुए यह सब दृश्य-कलाप है। चाहे जैसे भी हैं यह मेरे सनातन गुरु हैं जो सत् (त्रिकालाबाधिततत्व) और असत् (प्रतिक्षण

यथा तथा वा भवतु गुरुर्मेऽयं सनातनः । मनःकल्पितमेवेह सदसद्भेदभेदनम् ॥१
इति निश्चित्य मेधावी सुचित्तस्तत्र तस्थिवान् । तं समालोक्य स गुरुर्विनीतं भार्गवं ततः ॥१
प्रोवाच मधुरं वाक्यं विचित्रार्थसमन्वितम् । स्वागतं भार्गव तव कच्चित्ते कुशलं स्थितम् ॥१
आश्रमे तव गोविप्रतृणवीरुन्महीरुहाम् । कच्चिदभ्यागतश्चाऽग्नि काले शुश्रूषसि क्रमात् ॥१
काले काले स्वाध्ययनात्कच्चित्ते ब्रह्म सन्धृतम् । अकाण्डेषूत्थितान्देहजाताऽरीञ्जयसि ह्यरम् ॥१
तपसा ते जिता लोका बहवः पुण्यसंश्रयाः । त्वया भार्गववंशो वै नीतोऽत्युच्चपदं परम् ॥१
तपसा विद्यया शक्त्या ब्रह्मचर्येण तेजसा । वदाऽऽगमनकार्यं ते मादृशान्नसदाश्रयाः ॥१
लोकेऽक्षगोचरजयः पुरुषार्थैककारणम् । पुरुषार्थस्य सम्पत्तिः परो लाभ इह स्मृतः ॥१
अलब्धपुरुषार्था ये तत्राऽर्थेनैव चोद्यताः । पुरुषास्तेन जीवन्ति जीवत्कुणपसंज्ञकाः ॥१

नाशमय) का भेदन करने वाले हैं जो सब मेरे मनके कल्पत भ्रम है" इस प्रकार वे मेधावी श्रीपरशुराम निश्च
स्वस्थचित्त हो खड़े रहे। उन विनीत भार्गव श्रीपरशुराम को देखकर गुरुदेव श्रीदत्तात्रेय ने विचित्र अर्थवाले
वाक्य कहे, 'हे भार्गववंशी परशुराम ! तेरे शुभागमन के लिये सुस्वागत है। तू सब प्रकारसे कुशल से है न? तेरे
का वातावरण गौ, विप्र, तृण, लता, पक्षीगण और वृक्षादि के लिये तो सानुकूल बना है न ? समय पर तू अग्नि
और अग्नि-सेवा का कार्यक्रम सुन्दररूप से सम्पन्न कर लेता है न ? समय समय पर अपने स्वाध्याय से तेरा
जीवन ब्रह्म-प्राप्ति के लक्ष्य की ओर उत्तरोत्तर बढ़ रहा है कि नहीं ? असमय में कभी कभी तेरे शरीर के शत्रुगण
क्रोध, लोभ, मोह, मद, और मात्सर्य इन्हें एक ही बार में तू शमनकर देता होगा न ? अपनी तपस्या से तूने बहुत
वाले लोकों को जीता है और अपनी तपस्या, विद्या, शक्ति, ब्रह्मचर्य तथा तेज से भार्गववंश के गौरव को बढ़ाक
उन्नत स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया है। तू अपने आने का कारण बता। मेरे जैसे असदाश्रयों (बुरी वस्तुओं को
वाले) के पास क्यों आया ? संसार में पुरुषार्थ का एक कारण सम्पूर्ण इन्द्रियों पर विजय है, इस लोक में
(धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) की प्राप्ति ही सबसे ऊँचा लाभ है ॥१२-२२॥

जिन्हें पुरुषार्थ प्राप्त नहीं है ऐसे व्यक्ति तो जीते हुए भी शव (मृतक) संज्ञावाले हैं

इति बह्वर्थनिःश्वासाः स्वार्थघ्नाः काष्ठपूरुषाः । सूत्रपाञ्चालिकेवेह व्यर्थचेष्टापरा नराः ॥२४॥
अहं पुराऽतिवैराग्यान्न्यस्तसर्वक्रियोऽभवम् । द्वयं तत्राऽतिबलवदिन्द्रियेष्वात्मशत्रुषु ॥२५॥
रसनोपस्थयुगलं बहवस्तेन पातिताः । द्वयं येन जितं सम्यक्तेन सर्वं जितं भवेत् ॥२६॥
अहमित्थम्भूत आभ्यां जातो नूनंविनिन्दितः।नसंश्रयन्ति मां सन्तो निषिद्धपथसेविनम् ॥२७॥
बुद्धिभ्रंशकरी चेयं सुरा सज्जनगर्हिता । तादृशी वारयोषाऽपि मयैतदुभयं श्रितम् ॥२८॥
अतो मत्सङ्गतिं प्रायस्त्यक्त्वा सन्त इतो गताः । तस्मादेवंविधस्येह स्थाने त्वंकथमागतः ॥२९॥
वद भार्गव !तथ्यं तद्येन शुध्येत मन्मनः । इति पृष्टो जामदग्न्यो रामः प्राह सुविस्मितः ॥३०॥
संवर्त्तचरितं तच्च पूर्वदृष्टमनुस्मरन् । नूनं स्वरूपगुप्त्यै नो मुनिराहेदृशं वचः ॥३१॥
उद्विग्नो मादृशां सङ्गात्कामिनां हतचेतसाम् । न प्राकृतं वदेन्मह्यं संवर्त्तोऽतिदयापरः ॥३२॥

विभिन्न स्वार्थों में ही जो अपना श्वास रमाये रहते हैं वे अन्तिम लक्ष्य (वास्तविक परमर्थ) ब्रह्म प्राप्ति के बाधक हैं, काठ के बने आदमी हैं कठपुतली के समान ही ऐसे निरुद्देश्य लोगों की चेष्टायें व्यर्थ हैं। पहले मैं भी अत्यन्त वैराग्य से सम्पूर्ण नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य विधियों से सन्यास लेकर ऐसा आचरण करने लगा। अत्यन्त बलवान् आत्मशत्रुओं में से दो इन्द्रियां-रसना और उपस्थ (जनेन्द्रिय) अत्यन्त बलवान् हैं। इनसे बहुत लोगों का पतन हुआ है। जिसने भली प्रकार इन पर विजय प्राप्त कर ली उसने सब ही जीत लिया। मैं इन दोनों के कारण ही लोक में निन्दा का पात्र हुआ। मेरा मार्ग वेदबाह्य होने से निषिद्ध है इसलिये सन्त लोग मेरा संश्रय नहीं लेते। यह सुरा बुद्धि का नाश करने वाली है और सज्जन पुरुषों द्वारा इसकी भूरि-भूरि निन्दा की गई है। ऐसी ही यह वारयोषा (वेश्या) भी है इन दोनों का सेवन मैं करता हूँ। इसलिये सन्त लोग मेरी सङ्गति को छोड़कर यहां से चले गये। इसलिये इस प्रकार के स्थान पर तू क्यों आया है ?" ॥२३-२८॥

हे परशुराम ! सारी बातें यथार्थ बता जिससे मेरा मन स्वस्थ हो।" इस प्रकार श्रीपरशुराम से पूछने पर 'जमदग्निपुत्र श्रीपरशुराम ने अत्यन्त विस्मित होकर मन में विचारा संवर्त के आचरण को जो देखा था उसे स्मरण करते हुए कहा, "अवश्य ही इस महामुनि ने अपने स्वरूप को गोपन करने के लिये ही ऐसी वाणी कही है। यह मेरे जैसे कामी और विवेक रहित लोगों से उद्विग्नमन होकर यह सब चेष्टा कर रहे हैं। परन्तु सम्वर्त महर्षि अत्यन्त दयावान् हैं, वे मुझे किसी प्रकार व्यर्थ की बात न कहते"; इस प्रकार मन का समाधान कर प्रणाम कर अत्यन्त शुभ वाणी

इति व्यवस्य नत्वा तमाहाऽत्यन्तशुभं वचः । भगवन्नार्हसि मयि शङ्कितुं शरणागते ॥३
अनन्यगतिरद्य त्वां दयापीयूषवारिधिम् । दीनः संसृतिकान्तारदुर्गभ्रमणकातरः ॥३
दुःखदावाग्निजटिलज्वालामालाऽऽकुलाऽऽशयः । वाञ्छामध्याह्नतरणिकिरणैः परितापितः॥३
दैवात्संवर्त्त-सन्मार्गं प्राप्याऽऽसादितवानहम् । स्रवच्छीतलपीयूषमकरन्दाऽऽलवालकम् ॥३
कल्पद्रुमवरं सेव्यं सेवकाऽलिकुलाऽऽवृतम् । त्वां महात्मानमनघं सोऽहं त्वदनुकम्पितः ॥३
भवामि न चिरादेव संवर्त्तोक्तिमहत्त्वतः । नाहं विशङ्कनीयः स्यामनन्यशरणागतः ।
भवान्मया सुविदितो निश्चितश्चाऽपि मे गुरुः ॥३
सद्वाऽसद्वा स एवाऽस्तु पन्थास्ते सद्गुरोर्मम । गुरुः साक्षात्परः शिवस्सर्वेषामात्मदो मतः ॥३
अनात्मदैरसद्भिः किं को लाभस्तत्समागमात् । धनैः पुत्रैर्गृहैः स्त्रीभिर्ग्रामैरखिलभूधनैः ॥३

में बोले 'हे भगवन् ! आपकी शरण में आये हुए मेरे प्रति आप किसी प्रकार की शङ्का न करें । मैं कहीं भी न पाकर दयारूपी अमृत के सागर आप ही की शरण में आया हूँ एवं संसाररूपी वन के अत्यन्त दुर्गम भ्रमण से अधिक कातर हो गया हूँ । दुःखके दावानलकी ऊँची उठने वाली लपटोंसे बहुत त्रस्त हो चला हूँ एवं विविध लि के मध्याह्न सूर्य की तेज किरणों से अधिकाधिक परितापित हूँ । दैवयोग से सम्वर्त मुनि जैसे ब्रह्मवेत्ता की मार्ग में से भेंट हो गई निरन्तर झरते रहने वाले शीतल अमृत मकरन्दकी आलवालके रूपमें तथा भौरों रूपी सेवकों द्वारा श्रेष्ठ कल्पतरु आप हैं जिन्हें योगी मुनिगणरूपी भ्रमरों के समूह घेरे रहते हैं, उन्होंने मुझे आप जैसे परम पवित्र केपास कृपाकी प्राप्तिके लिये भेजा है जिससे सम्वर्त्त के कथन के महत्व से मैं अधिकाधिक उपकृत हो जाऊँ। मैं एकमात्र आश्रय लेकर शरणमें आया हूँ मेरे ऊपर आप किसी प्रकारकी शंका न करें । मै आपका पूरा-पूरा सुन्दर प्राप्त कर चुका हूँ और मैंने निश्चित कर लिया है कि आप मेरे गुरुदेव हैं । हे महात्मन् जो आप का मार्ग ही वह सत् (निरात्यसत्ता वाला) हो अथवा असत् (क्षणपरिणामी) हो वही मेरी गति है; गुरु ही साक्षात्परम जो सब सच्छिष्यों को आत्म-ज्ञान देते हैं ऐसा माना जाता है ॥२६३६॥

जो लौकिक अनात्माके भाव का ही लाभ देते हैं ऐसे उत्पथ मार्ग पर ले जाने वालों के साथ समागम से कुछ प्रयोजन सिद्ध होता है ? धन, पुत्र, गृह, स्त्रियां, ग्राम एवं सम्पूर्ण भूमण्डल का धन प्राप्त हो गया तो

प्राप्तैरनात्मभूतैस्तैरप्राप्ताऽऽत्मफलस्य किम् । हृतात्मनः सुखं कस्माद्भवेदखिलवैभवैः ॥४१॥
जात्यन्धस्येव दीपानां सहस्रै रिव नो फलम् । तस्मान्मयि कृपासिन्धो भगवन् दीनवत्सलः!॥४२॥
कृपा कर्त्तुं समुचिता शुद्धोऽहं त्वत्पदाऽऽश्रितः । इत्येवं तस्य वचनं श्रुत्वा दीनदयापरः ॥४३॥
प्रसन्नवदनः प्राह दत्तात्रेयो महामुनिः । साधु वत्स जामदग्न्य सम्यग्व्यवसितं त्वया ॥४४॥
स्वाऽऽत्मनः पदवी श्रेष्ठा दुर्लभा परिमार्गिता । नैतदल्पफलं ज्ञेयं यदात्मपदमार्गणम् ॥४५॥
आश्चर्योऽत्र नरो लोके स्वात्मलोकाऽनुचिन्तकः । एतावदत्र नृतनौ सारभूतं महाफलम् ॥४६॥
शाश्वतप्रापकं सत्यं यदात्मपदमार्गणम् । नूनं जना गोचरेषु संधृताक्षाशयाः सदा ॥४७॥
इन्द्रजालनिभेष्वद्धा समीहन्ते पदे पदे । अलभ्य तत्र विश्रान्तिं कालपाशेन पाशिताः ॥४८॥
देहाद्देहान्तरं यान्ति चाऽसङ्ख्येपरिक्रमैः । चक्राऽऽन्दोलनयन्त्रस्थजना इव मुधा सदा ॥४९॥

अनात्मभाव से प्रसक्त है तो क्या लाभ हुआ ? क्योंकि आत्मफलकी प्राप्ति तो इनसे आकाशमें पुष्प पाने की अभिलाषा है । जिनकी आत्मा हर ली गई है (जिन्हें आत्मज्ञान नहीं हैं) उन्हें सम्पूर्ण वैभव मिल भी जांय तो सुख किससे होगा ? जो व्यक्ति जन्म से ही अन्धा हो उसके सामने हजारों दीपकों की जगमगाहट भी किस लाभप्रद काम की ? हे दीनों के ऊपर कृपा करने वाले कृपा के सागर भगवन् ! आप मुझ पर कृपा कीजिये जिससे आपके चरणोंकी शरणसे मैं शुद्ध होऊँ " इस प्रकार दीनों पर सहज दया करने वाले महामुनि दत्तात्रेय ने उसकी बात सुन कर प्रसन्न हो कहा "हे वत्स ! जामदग्न्य साधु साधु तू ने यह उचित ही किया है अपने लिए अत्यन्त ही दुर्लभ मार्ग जो श्रेष्ठ है उसे ढूँढ़ निकाला है । जो आत्मपद का अन्वेषण करता है वह अल्प फल देने वाला कार्य मत समझो । आश्चर्य की बात है कि इस संसार में आत्मलोकानुचिन्तक ही विरले होंगे । इतना ही तो इस मनुष्य शरीर में सारभूत महाफल है कि शाश्वत पदवी को प्राप्त होने वाले सत्य आत्मपद के मार्ग का अन्वेषण किया जाय । अवश्य ही संसारी लोग सदैव गोचर पदार्थों में ही अपने इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं वह सब इन्द्रजाल के समान है और उसमें सत्य का भाव बरतना पदे पदे व्यर्थ ही सिद्ध होता है । उस व्यक्ति को विषयों में काल के पाश से यन्त्रित हो किसी प्रकार की विशेष विश्राम (शांति) की भावना नहीं आती और संसार में नाना असंख्यात प्राणिदेहों से दूसरे देह में ऐसे व्यक्तियों का परिक्रमण चलता रहता है । जैसे कोल्हू के समान चारों ओर घूमने वाले यन्त्र में जोते हुए प्राणी से ये लोग व्यर्थ ही जीवन बिताते हैं ॥४०-४९॥

ऊर्ध्वाऽधो मध्यगमनं यान्ति तत्तद्गतिक्रमात्। प्रसन्नोऽहं जामदग्न्य! दृष्ट्वा निष्ठां तवाऽचलाम्
वद तेऽभीप्सितं किं तदागतो यन्निमित्ततः। श्रुत्वैवं तद्वचो रामः प्रसन्नेन्द्रियमानसः ।
प्रणिपत्य प्रश्रयतः समाह प्राप्तविष्टरः । कृताञ्जलिर्मधुरया गिरा सूनृतया तदा ॥
महाराज गुरो स्वामिन् त्वयि तुष्टे महेश्वरे। किमलभ्यमिहास्त्यन्यदिह लोके परत्र च ॥
रत्नेच्छस्येव सम्प्राप्तरोहणस्य महात्मनः । नूनं मया बहुतिथं संसृतेर्वर्त्म संश्रितम् ॥
तत्र भ्रमन्न विश्रान्तिं लब्धवान् जातु लेशतः। ईहामन्युज्वलत्कीलिज्वालाजालसमाकुलः॥
दन्दह्यमानोऽनुदिनं दीर्घकालोऽतिवाहितः। अन्तःशीतलता लब्धा न मया कुत्रचित्क्वचित्॥
लोके सर्वे नरा नार्यो मृगा यादो विहङ्गमाः। आढ्यो रङ्को महीपालो मण्डलेशश्च चक्रपः ॥
गन्धर्वा गुह्यका यक्षा सिद्धविद्याधराऽऽदयः। सर्पा नागा यातुधाना इन्द्रचन्द्रादयोऽपि च ॥
दन्दह्यमाना एवैते सदा काममहाऽग्निना । तस्माद्यथाऽहमनिशं भवेयं सर्वशीतलः ॥

सत्त्व की अधिकता होने पर ऊर्ध्व गति की योनियां पाते हैं राजस भाव से मध्य तथा तामस भाव के आधिक्य नीची योनियों में अपने-अपने पूर्व कर्मोंके कारण जाते हैं। हे परशुराम! तेरी अचल निष्ठाको देख कर मै अत्यधिक प्र हूँ। अब तू जिस निमित्त से यहां आया है उस अभीष्ट कार्य को बता।" इस प्रकार श्रीदत्तात्रेयजी का कथन सु श्रीपरशुराम को सब ओर से अत्यधिक प्रसन्नता हुई। अपने गुरुदेव को नमस्कार कर आश्रय प्राप्त कर आसन प उन्हों ने हाथ जोड़े जोड़े मधुर और स्निग्ध वाणी में इस प्रकार कहा, "हे महाराज गुरुवर्य मेरे स्वामिन्! आप महेश्वर के प्रसन्न होने से क्या कोई वस्तु इस लोक और परलोक में दुर्लभ है? महात्मा पुरुषों का समागम र इच्छा करने वाले पुरुष को शुभ प्राप्ति का अवसर है। अवश्य ही मैने बहुत प्रकार के संसार से लगे मार्ग का अ किया। उसमें भटकते भटकते मुझे कहीं लेश मात्र भी विश्राम नहीं मिला। इच्छा व क्रोधकी अत्यन्त झुलसा देने लपटों से अत्यन्त व्याकुल हो अधिकाधिक जलता हुआ मै बहुत अधिक काल बिता चुका, मुझे कहीं भी अन्तःशीत का सार रूप से अनुभव नहीं हुआ। संसारमें सभी स्त्री, पुरुष, मृग(चौपाये) जल चर प्राणी, पक्षीगण, धनी,निर्धन, मण्डलाध्यक्ष, चक्रवर्त्ती, गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष, सिद्ध, विद्याधर आदि, सर्प, नाग, राक्षस गण, इन्द्र और चन्द्र आदि भीषण अग्नि से अत्यधिक तपाये हुए रहते हैं। इसलिए मैं दिनरात सर्वप्रकार से शान्ति अनुभवकर संतोषादि से ऐसी कृपा कीजिये ॥५०-५६॥

दह्यमाने वने गङ्गामध्यस्थ इव सिन्धुरः । तथाऽहं भवतः सम्यग्बोधितः स्यामिति प्रभो ! ॥६०॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य दत्तात्रेयो महामुनिः । अवदत्सुशुभां वाणीं हर्षयन्भार्गवं मुनिम् ॥६१॥
राम संशृणु मद्वाक्यं यदुक्तं भवताऽनघ । अत्यन्तश्रेयसो मूलमेतत्ते वाञ्छितं शुभम् ॥६२॥
नूनं त्वयि कृपा सम्यग्भगवत्या समाहिता। अनेकप्राग्जनुकृतं सुकर्म फलितं तव ॥६३॥
न ह्यल्पकर्मभिर्जातु शुभमेतं प्रजायते । महाफलं व्यवसितमारात्ते हि फलोदयः ॥६४॥
शृणु मद्वचनं राम सावधानेन चेतसा । आत्यन्तिकन्तु यत्क्षेमं तत्तेऽभीष्टतमं मतम् ॥६५॥
तद्विना ज्ञानयोगेन न सिध्यति कदाचन । सर्वेषां प्राणिनामात्मा साक्षादेव परः शिवः ॥६६॥
स्वमायावैभववशात्स्वात्मानमविदन्परम् । सङ्कोचे सर्वशक्तीनां स्वयं सङ्कुचितस्ततः ॥६७॥
नैतावदिह सत्यं स्याद्भाति रिक्तमपि क्वचित् । तथा तथा भासनात्तु विना किञ्चिन्न विद्यते ॥६८॥

जैसे वन के जल जाने पर गङ्गा की धारा में हाथी को शीतलता भली प्रतीत होती है वैसे ही आप से आत्म-बोध की शिक्षा प्राप्त कर हे प्रभो मैं भी उद्धार पा जाऊं" ॥६०॥

इस प्रकार महामुनि दत्तात्रेय ने श्री परशुराम का कथन सुन कर शुभ लक्षणोंवाली वाणी में मुनि भार्गव को प्रसन्न करते हुए कहा "हे परशुराम मेरा कथन सुनो ! हे निष्पाप (पाप रहित) तू ने जो कहा वह अत्यन्त ही श्रेयस्कर लक्ष्य प्राप्ति का मूल है। तुझे यह अभीप्सित संकल्प शुभ ही हुआ है। निश्चय हा तुझे भगवती की कृपा प्राप्त हुई है जो तू ने नाना पूर्व जन्मों में सुकर्म किया था उसके पुण्यका उदय हो चुका; अल्प (छोटे) कार्योंसे कहीं भी कदापि इस प्रकार का शुभदायक फल नहीं मिलता तुझे महान् फल की प्राप्ति शीघ्र ही सन्निकट भविष्य में होने वाली है। अब बहुत ध्यान लगा कर मेरे उपदेश को सुन जो आत्यन्तिक क्षेम की प्राप्ति है उसे ही तू प्राप्त करने का लक्ष्य बना चुका है। वह कभी भी ज्ञानियों से मिले बिना सिद्ध नहीं हो सकता। सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा साक्षात् ही परम शिव है। अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति माया के वैभव के कारण परमोच्च आत्मभाव का अधिष्ठान होकर भी अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का अधिकाधिक संकोच कर के वह स्वयं संकुचित बन जाते हैं। इतना ही नहीं यह सब उनकी सत्ता के कारण ही "भातिरूप में भान होता है" कहीं भी उनकी सत्ता की रिक्तता नहीं। उस रूप के भासन होने से उस सर्व-सत्तात्मक के बिना कोई भी स्थावर जङ्गम नहीं रहता। लोक में भासन भान ही होता है, कोई पदार्थ का अभान होने से भासन होना पृथक् नहीं कहलाता है। भानशक्ति, भासन और भान में अन्तः स्थित रूपवाले परम शिव

भासनं भानमेवेह नाऽभानाद्भासनं पृथक् । भानशक्तिर्भासनं हि भानात्मा परमः शिवः ॥६९॥
स एवाऽत्यच्छया शक्त्या स्वयमेकः सनातनः । भासते विविधाऽऽकारो विचित्रत्वेन सर्वतः ॥७०॥
स एवाऽऽत्मा तु सर्वेषां लोकानां नित्यसत्प्रभः । अभात इव भातोऽपि सदा मोहेन मन्यते ॥७१॥
तस्मात्तत्प्रत्यभिज्ञानान्मोहनाशे सति द्रुतम् । अन्तर्बहिः सर्वतश्च गङ्गाऽन्तर्द्वीपगो यथा ॥७२॥
शीतलं भावमभ्येति नाऽन्यथा यत्नकोटिभिः । तज्ज्ञानं दुर्लभं लोके दुर्लक्ष्यं विषयाऽऽत्मभिः ॥७३॥
विना पराशक्तिकृपां नैव लभ्यं कदाचन । अतौ आद सर्वजनैः सेव्या सा त्रिपुराऽम्बिका ॥७४॥
सेवनं तु विना भक्त्या दुर्लभा जन्मकोटिभिः । साऽपि तस्याः सुमहिमाऽऽकर्णनेन विना तथा ॥७५॥
तस्मात्प्रयत्नेन जनैः सदा सुश्रद्धया युतैः । श्रोतव्या कीर्त्तितव्या च त्रिपुरायाः परा कथा ॥७६॥
शृण्वतोऽनुदिनं सैव दृढां भक्तिं प्रयच्छति । ययाऽऽसाद्य परां सेवां समाप्नोत्यभयं पदम् ॥७७॥

हैं वही अति निर्मल शक्तिसहित स्वयं एक सनातन है और नाना स्थावर जङ्गम सृष्टिके प्राणियोंमें चारों ओर भांति-भांति के आकार में विचित्र रूप से वहां भासित होते हैं। वही सभी लोकों का नित्य सत्प्रभाका भासन करने वाला आत्मा है। भात होने वाले इसे भी अज्ञानी लोग मोह से अव्यक्त अभात सा मानते हैं। इसलिए इस सत्तत्त्वके प्रत्यभिज्ञान से शीघ्र ही मोह का नाश होने पर अन्दर, बाहर और चारों ओर गंगा के अन्तरालवर्त्ती द्वीप में जाने वाले की स्थिति के समान शिव ही शिव बचा रहता है। इस एक ही तत्व का अहर्निश चिन्तन, मनन और निदिध्यासन होने से हृदय में शीतल भावकी प्राप्ति होती है, नहीं तो करोड़ों यत्न करते रहो यह नहीं मिले गा। यह ज्ञान लोकों में दुर्लभ है एवं विषयों में आत्मबुद्धि रखने वालों के लिए तो दुर्लक्ष्य भी तथा परा शक्ति की कृपा के विना कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए सबसे प्रथम सभी जन उस परा त्रिपुरा अम्बिका का सेवन करें। भक्ति के विना सेवन करने से उसकी कृपा कोटि जन्म में भी दुर्लभ है और वह भक्ति भी उस महा महिमवती की गौरवपूर्ण सत्कथाओं को सुने विना सुलभ नहीं ॥६१-७५॥

इसलिए पूर्ण प्रयत्न से सुश्रद्धा के साथ भगवती त्रिपुरा की दिव्य कथा सुननी और कहनी चाहिए। उसको प्रति दिन सुनने वाले को कृपा कर यह दृढ़ अविचल अनपायिनी भक्ति का सुयोग कर देती है। जिससे परमेश्वरी देवता की सेवा का लाभ होकर अभय पद की प्राप्ति होती है ॥७६-७७॥

नान्यः पन्थारतस्य भवेत्पदस्य प्रापणे क्वचित् । अत आदौ परा श्रद्धा कर्त्तव्या महिमश्रुतौ
सैव कल्पतरुर्नृणां वाञ्छितार्थप्रसाधने ॥७८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे परशुरामाय श्रेयस्कराय
दत्तगुरोस्त्रिपुरोपासनोपदेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥५१८॥

उस पद को पाने का और कोई उपाय (मार्ग) नहीं है। इसलिये सबसे पहले उस पराम्बा की महिमा सुनने के लिये उत्कृष्ट श्रद्धा करनी चाहिये; वही मनुष्यों के वाञ्छित अर्थ को सिद्ध बनाने में साक्षात् कल्पतरु है ॥७९॥

इस प्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में श्रीदत्तगुरु का त्रिपुरा
भगवती की उपासना का उपदेश नामक षष्ठ अध्याय समाप्त।

सप्तमोऽध्यायः

देवानां श्रेष्ठताविषये विवादो भगवत्या आविर्भावश्च

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं भार्गवः प्रीतमानसः । पुनराह शुभं वाक्यं मधुराऽक्षरसुस्वरम् ॥१॥
श्रीगुरो या त्वया प्रोक्ता त्रिपुरेति पराऽम्बिका। कीदृशी सा कथम्भूता किंस्वभावा किमाश्रिता॥२॥
वद मे करुणासिन्धो ! सविस्तरतयाऽधुना । इति पर्यनुयुक्तस्तु प्रोवाच ललित वचः ॥३॥
त्रिपुरामहिमसिन्धुमग्नाऽन्तःकरणो मुनिः । ध्यात्वा प्रणम्य परमां ध्यानजाऽऽनन्दसम्प्लुतः ॥४॥
शृणु राम पराशक्तेर्महिमा केन वर्ण्यते ?। लोकेश्वरैर्विधात्राऽऽद्यैः सर्वज्ञैः सर्वशक्तिकैः ॥५॥
अद्याऽपि सा न विज्ञाता केयं कुत्र स्थितेत्यपि ?। न सा वर्णयितुं शक्या ईदृशीति यथार्थतः ॥६॥

सप्तम अध्याय

श्रीदत्तगुरु के वचन सुनकर प्रसन्नमन हो श्रीपरशुराम ने फिर मधुर अक्षरोंवाली पूर्ण सुस्पष्ट स्वर वाणी में कहा; "हे श्रीगुरो आपने जो त्रिपुरा नाम वाली परा अम्बिका के विषय में कहा वह स्वरू कैसी है? उसका कैसे आविर्भाव हुआ ? उसका स्वभाव कैसा है और किसे आश्रय कर स्थित है हे करुणासिन्धो ! आप अब मुझे भगवती के विषय में विस्तारपूर्वक बतावें"। इस प्रकार पूछे जाने पर भग त्रिपुरा की महिमा रूपी सिन्धु में निमग्न अन्तःकरण (पूर्णतया भगवती के ध्यान में परायण) हो मुनि ने ध्यान से उ आनन्द में विभोर हो प्रणाम कर ललित मधुर वचन कहे ॥१-४॥

"हे परशुराम ! पराशक्ति की वास्तविक महिमा कौन वर्णन कर सकता है, सर्वशक्तिमा लोकेश्वर ब्रह्मा, सर्वज्ञ (ब्रह्मवेत्तागण) आदि महानुभावों ने उस परास्था के विषय में पूर्ण चेष्टा कर खोज (अनुस की परन्तु आज तक वे लोग जान नहीं पाये कि वह कौन है? कहां स्थित है ? उसका इदमित्थं यथार्थतः अबतक ज्ञात नहीं हो पाया है। वेद, शास्त्र एवं सम्पूर्ण तन्त्र उसका वर्णन नहीं कर सके; प्रत्यक्ष प्र प्रमाण पराक् (सामने दिखने वाली वस्तु)पदार्थ का ही भली प्रकार ज्ञान करा सकते हैं। वे मेय (बुद्धिगम्य पद) का

वेदाः शास्त्राणि तन्त्राणि वक्तुं न प्रभवन्ति वै । प्रत्यक्षादिप्रमाणानि पराक्संस्थानि सर्वदा ॥७॥
विश्रान्तानि मेयपदे नाऽऽक्रमन्ति तु तत्पदम् । वैश्वानरस्य ज्वालेव नान्तर्गच्छति कुत्रचित् ॥८॥
सा शक्तिर्मातृसामस्त्यसङ्घट्टपदवीं श्रिता । न तर्केण युक्तया वा ज्ञातुं योग्या कदाचन ॥९॥
अस्मीत्यवगमादन्यन्नोपलभ्येत कुत्रचित् । सा लीलाऽऽत्ततनुः शास्त्रैर्वेदाद्यैश्च निरूप्यते ॥१०॥
प्रमाणानां प्रमात्री सा चिच्छक्तिरिति शब्द्यते । लीलाऽऽत्तवपुषोऽप्यस्या नान्तोऽस्ति महिमाम्बुधेः ॥११॥
शक्या गणयितुं सम्यक्पार्थिवाः परमाणवः । नान्तोऽस्ति महिमाराशेरस्याश्चित्रतनोः क्वचित् ॥१२॥
तथापि सारतो लेशं त्रिपुरा चरितस्य ते । अभिधास्यामि तद्राम! सावधानमनाः शृणु ॥१३॥
पुरा क्षीराम्बुधिप्रान्ते शयानः फणितल्पके । आदिनारायणः साक्षात्तस्याः सत्त्वतनुर्हरिः ॥१४॥

ग ति कर सकते हैं परन्तु यह माता, मान और मेय से अतीत है उनके अधिकार क्षेत्रमें इस महिमामयी के स्वरूपका ज्ञान होना नहीं आता। यह तो अग्नि की ज्वाला के समान कहीं भी अन्दर नहीं छिपी रहती। वह शक्ति है मातृगण की संपूर्ण सम्बन्धित स्थान की आश्रय भूता (जो कुछ प्रत्यक्ष दृश्य हैं उनका आश्रय) है। उसे न तर्क से तथा न युक्ति से कभी जाना जा सकता है। "अस्मि"मैं हूँ इस प्रकार जाननेवाले को ही प्राप्त होती है अन्यत्र नहीं; वह लीला प्राप्त शरीर वाली शास्त्रों और वेदों आदि में कही गई है। प्रमाणोंकी भी प्रमातारूप वह चिति शक्ति इस प्रकार प्रतिपादित होती है। अपनी लीलासे प्राप्त शरीर वाली इसकी महिमा रूपी सागर का अन्त नहीं है। सारे पृथ्वीके परमाणुओं की राशि की गणना भलो प्रकार की जा सकती है परन्तु विचित्र शरीर वाली इस महिमा की राशिसे भरी पूरी चितिशक्ति की गुणगाथा का गान कहीं भी नहीं हो सका। फिर भी त्रिपुरा भगवती के चरित्र का लेशमात्र (अत्यल्प अंश) तुम्हें साररूप से कहूँगा सो हे राम ! तू सावधान होकर सुन" ॥५-१३॥

'प्राचीन काल में साक्षात् उस चिति के सात्त्विक शरीर की मूर्ति भगवान् आदिनारायण विष्णु क्षीर-समुद्र में अपनी शेष-शय्याके ऊपर लक्ष्मीजी द्वारा पादपद्म युगलकी सेवा पाते हुए अत्यन्त शोभायुक्त विराज रहे थे; विविध

श्रिया लालितपादाब्जयुगलोऽतिविराजितः । भिन्ननीलमणिस्तोमकान्तिकान्ताऽङ्गसुप्रभः
प्रावृषेण्यपयोवाह-मध्यप्रोद्यत्तडित्प्रभम् । पीताम्बरं यस्य कटितटे संराजते स्फुटम् ॥
श्रीवत्सशोभिपृथुलपीनवक्षःस्थलाञ्चितः । वनमालातुलसिकागन्धाऽऽहूतमधुव्रतैः ॥१७॥
अङ्गात्कान्तिच्छटेवेह निर्गता लक्ष्यते बहिः । पीनदीर्घचतुर्बाहुनालपद्मतलान्वितः ॥१८॥
करसंवृतशङ्खारिगदापद्मविराजितः । राकेन्दुप्रतिमानाऽऽस्यो बिम्बोष्ठश्चारुनासिकः ॥१९॥
कर्णोल्लसत्सुमकरकुण्डलद्वयशोभितः । विकसत्पद्मयुगलपरिभाविशुभेक्षणः ॥२०॥
भृङ्गाऽऽवलिनिभस्निग्धदीर्घकेशालिमण्डितः । नूत्नरत्नावलिप्रोद्यच्चारुकोटीरमस्तकः ॥२१॥
प्रेमाऽमृतावलोकनिष्यन्दैरभिषिञ्चद्रमां मुहुः । भक्तैः प्रह्लादमुख्यैस्तु सेव्यमानोऽन्वहं हरिः ॥२२॥
आस्ते समस्तजगतोरक्षणदक्षिणः सदा । कदाचित्तत्र लोकानां स्रष्टा गच्छन् पितामहः ॥२३॥

नीलमणियों के समूह की शोभा से भगवान् का सुन्दर शरीर अत्यधिक कान्ति-सम्पन्न हो रहा था। वर्षाऋतु में काले बादलों में जैसे बीच बीच में विद्युत् के प्रकाशका शोभाधायक दृश्य होता है उसी की प्रभा के समान वह अपने कटि भागमें पीत वस्त्र लगाये हुए हैं, उनके सब ओर से उभरे पीन विस्तृत वक्षःस्थल पर श्रीवत्स की शोभा अप्रतिम रूप से उनके लावण्य को द्विगुणित कर रही है। विशिष्ट वनमाला और तुलसी के सुगन्धमय वातावरण में भौरों की पंक्ति ऐसी है मानों बुलाई गई हो। अङ्ग से कान्ति की शोभा जैसे बाहर फैलती हुई निकली जा रही हो उनके मांसल चारों भुजाओं की शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो बंक नाल पद्मतल में शोभित होते हों। हाथों में धारण किये शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म पूर्ण शोभा देते हैं। पूर्ण चन्द्रमा की कान्ति के समान मुख शोभित है; बिम्ब (रक्त का फल) के फल के समान ओठ हैं, नाक की चारु शोभा भी उस सौन्दर्य को द्विगुणित बनाती है। दोनों कानों में धारण किये हुए सुन्दर मकराकृत कुण्डल शोभित हैं, उनकी विशाल आंखें खिले कमल की कान्ति को तिरस्कृत करती हैं। कालिमा में भ्रमरों की पंक्ति के समान उनके चिक्कण और लम्बे बाल भले लगते हैं। नूतन विशिष्ट रत्नों की जटित माला उन्नत किरीट भाल पर शोभित है। अपने स्निग्ध प्रेम भरे नेत्रों के द्वारा देखते हुए रमा (लक्ष्मी) का बराबर उस प्रेमामृत से सिञ्चन करते हैं। प्रति क्षण प्रह्लाद आदि मुख्य भक्तों से सेवित भगवान् समस्त संसार की रक्षा में दाक्षिण्यप्राप्त सुनिपुण विष्णु सदा ही विराजमान हैं ॥१४-२२॥

वहां लोकों के सर्जन करने वाले पितामह ब्रह्मा आये; उन्होंने दण्डवत् प्रणाम से

दण्डवत्प्रणिपत्याऽथो कृताञ्जलिपुटो विधिः । स्तुत्वा बहुविधैःस्तोत्रैः स्थितः सम्प्राप्तविष्टरः ॥२४॥
अथ देवाः शतमखमुखाः सम्मुखतो हरेः । आजग्मुर्विवदन्तो वै क्रुद्धाः संरक्तलोचनाः ॥२५॥
प्रणिपत्य विधातारं हरिञ्च कमलापतिम् । उपविष्टाः क्रमात्तत्र सम्प्राप्ताऽऽज्ञा मधुद्विषः ॥२६॥
तत्र पार्षदमुख्येन सुनन्देन प्रचोदितः । शतक्रतुरुपक्रामद्वक्तुं वृत्तं निजं कलेः ॥२७॥
भगवन् ! कमलाकान्त ! पुराणपुरुषाऽव्यय ! । विवदामो वयं सर्वे यत्राऽर्थेतन्निशामय ॥२८॥
अहं शतुक्रतुर्देवराजस्त्रिभुवनेश्वरः । मयोक्तं देवसदसि प्रसङ्गात्सकलं जगत् ॥२९॥
मयाऽधिष्ठितमेवाऽऽस्ते यज्ञानामप्यहं पतिः । पर्जन्यो ऽग्निस्तथा वायुः सर्वे मम वशंवदाः ॥३०-३१॥
तस्मादहं सर्वतस्तु श्रेष्ठो नाऽन्यस्तु कश्चन । इति मद्वचनं श्रुत्वा प्राह वैश्वानरस्ततः ॥३२॥
माऽभिमानं वृथा कार्षीरिन्द्र त्वं मूढभावतः । किन्न पश्यसि मां सर्वलोकश्रेष्ठं सुरोत्तमम् ।३३।
अहं मुखं त्वत्पुरोगदेवानामस्मि वासव ! । यूयं भुञ्जय मद्दतं हविस्सर्वमखे पुनः ॥३४॥

जोड़ कर बहुत प्रकार के स्तोत्रों से स्तुति करते हुए आसन ग्रहण किया। तत्पश्चात् इन्द्र की अध्यक्षता में देवतागण परस्पर विवाद करते हुए क्रोधित हो रक्तलोचन करके भगवान् विष्णु के सम्मुख आए ॥२३-२५॥

उन्होंने विधाता एवं कमलापति भगवान् विष्णु को प्रणाम कर क्रम से मधुसूदन की आज्ञा से अपने अपने स्थान ग्रहण किये।

वहां पार्षदों में मुख्य सुनन्द की प्रेरणा से इन्द्र ने कलि (कलह-वादविवाद) के विषय का सारा वृत्तांत कहना आरम्भ किया, "हे भगवन् कमलापते ! पुराणपुरुष अव्यय (अच्युत) ! हम सब लोग यहां जिस विषय को लेकर विवाद करते हैं वह आप सुनिये। मैं सौ अश्वमेध करने वाला त्रिभुवन का अधिपति देवगण का राजा हूँ, मैंने देवगण की सभा में कहा कि सारा संसार ही मेरे से अधिष्ठित है मैं ही यज्ञों का स्वामी हूँ। मेघ, अग्नि और वायु मेरे ही वश में हैं। इसलिये मैं सब ओर से श्रेष्ठ हूँ और कोई नहीं"। इस प्रकार मेरी बातें सुनकर वैश्वानर (अग्नि) ने कहा, 'हे इन्द्र! तू मूढ़भाव से वृथा अभिमान मत कर। क्या तू सब लोकों में श्रेष्ठ देवगण में उत्तम मुझे नहीं देखता ? हे वासव ! तुम्हारे नेतृत्ववाले सब देवगण का मैं मुख हूँ (अग्निर्वै देवानां मुखम्) फिर सब यज्ञों में मेरे दिये हुए हविर्भाग को ही तुम लोग भोगते हो। मैं पृथ्वी पर न रहूँ तो कभी भी यज्ञ न होवें। मैं रुद्र का नेत्रात्मा हूँ(त्रि नेत्र ज्योति) हूँ; सारे जगत् का संहार करता हूँ। स्कन्दस्वामी मेरा ही तनुज है उसीसे देवतागण राक्षसों को

न स्यामहं यदि भुवि न यज्ञाः स्युः कदाचन । अहं रुद्रस्य नेत्रात्मा संहराम्यखिलं जगत् ॥३
सेनानीर्मत्तनूजो वै तेन दैत्यजिगीषवः । तस्माद्वृथा मोहमिमं त्यक्त्वा देवगणैर्वृतः ॥३
मां समाराधय क्षिप्रं नो चेत्त्वं न भविष्यसि। श्रुत्वैतत्सोम आहाऽथ मा मोहं प्रतिपद्यथ ॥३
जीवन्त्यन्नेन वै लोकास्तत्रैव मदनुग्रहः । यद्यहं विमुखो भूयां तर्हि शस्यं विना जगत् ॥३
अवसीदेत्क्षणेनैव मदङ्गजनिताऽमृतैः । वासवाग्निमुखा देवा जीवन्त्यनुदिनं ननु ॥३
वृथाऽभिमानेन यूयं मा विनाशमुपैष्यथ । एतद्वाक्यं समाकर्ण्य जगत्प्राणश्चुकोप ह ॥२
सोम! किं कत्थसे वृथा क्षणेनाऽहमिदं जगत् । सोमाऽग्निवासवयुतं सदेवाऽसुरमानुषम् ॥२
कीर्त्तिशेषं करिष्यामि नन्वहं सर्वनाशनः । दह्यमाने ऽपरार्धार्त्ते न सोमो न च वासवः ॥२
न ब्रह्मविष्णुरुद्रा वा तदाऽऽसन्नितरे कुतः । तदायं मत्सखा ह्यग्निर्ब्रह्माण्डमखिलं मया ॥२

जीतने की महत्वाकांक्षा रखते हैं। इसलिये वृथा इस मोह को छोड़कर सभी देवतागण के साथ मेरी आरा शीघ्र करो नहीं तो तुम नहीं रहोगे'। अनन्तर यह सुनकर चन्द्रमा बोला "तुम लोग मोह मत करो। लोग अन्न के आधार से जीवित रहते हैं वहीं पर मेरी कृपा समझो। यदि मैं विमुख हो जाऊँ तो धान्य के जगत् क्षण में ही अत्यन्त दुःखित हो जाए। निश्चय ही मेरे अङ्गों से उत्पन्न अमृत से ही अग्नि एवं प्रमुख देवगण की स्थिति है। व्यर्थ अभिमान करके तुम लोग विनाश को मत प्राप्त होओ" इसको जगत् का प्राण वायु क्रुद्ध हुआ ॥२६-४०॥

हे सोम ! क्यों तू व्यर्थ षट्राग अलापता है ? मैं क्षण भर में सोम, अग्नि और इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता दैत्य और मनुष्यों के जगत् की कथा ही शेष कर दूँगा क्योंकि मैं सब का नाश करने वाला हूँ। इस विश्व को से जलाने (धधकने) पर न तो सोम ,न इन्द्र ही और न ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र शेष बचे रहेंगे, तब इतर लोगों तो बात ही क्या ? तब मेरा मित्र यह अग्नि मेरे सहयोग से अधिकाधिक प्रचण्ड होकर सबको तत्काल जलाने फिर मेरे साथ यह वेगवान् बल सम्पन्न सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम लोगोंको भस्मसात् करने लगेगा। केवल मैं और अग्नि ही

प्रैधितो दहति क्षिप्रं ततोऽहं वेगवान्बली । शून्याऽऽत्मकं करोम्यग्निसद्वितीयस्तदा त्वहम् ॥४४॥
यदि मेऽनुग्रहो न स्यात्तत्र स्पन्देत किं वद । अहमेकः सर्वमहान्मत्तः स्पन्दति वै जगत् ॥४५॥
इत्येवं कलहे प्राप्ते सभायां स्वर्गवासिनः । अग्निपक्षाऽऽश्रिताः केचित्सोमपक्षाऽनुगाः परे॥४६॥
अन्ये मारुतपक्षास्स्युश्चाऽन्ये मत्पदवृत्तयः । एवं परस्परं वादैर्जाते वादैकतत्परे ॥४७॥
क्रुद्धे देवगणे स्वस्वशस्त्राऽऽदानपरे तदा । वाचस्पतिः सुराचार्यः प्राह सान्त्वनपूर्वकम् ॥४८॥
मा नाशमापद्यथ बुधा मद्वाक्यं शृणुताऽऽदरात् । अत्राऽन्तमभिजानाति जलशायी जनार्दनः॥४९॥
तत्र गत्वा क्षीरनिधिप्रान्ते ते पुरुषोत्तमम् । नत्वा तन्मुखतो ज्ञात्वा शान्तिम्भजत सत्वरम् ॥५०॥
तद्वयं समनुप्राप्तास्तव पादाम्बुजं ततः । संशयं छिन्धि भगवन् ! त्वं गतिर्देवताऽऽपदि ॥५१॥
इति सम्प्रार्थितो विष्णुः शतक्रतुमुखैर्बुधैः । विचार्य देवकलहशान्त्युपायं चिरं तदा ॥५२॥

रहेंगे। यदि मेरा अनुग्रह न हो तो कौन हिले-डुले (स्पन्दन करे) सो तो बता। मैं एकाकी ही सबसे महान् हूँ, मेरे से ही जगत् में स्पन्दन (हिलना चलना क्रिया) होता है"। इस प्रकार स्वर्गवासी देवगण की सभा में भीषण वादविवाद उपस्थित होने पर कई अग्नि के पक्ष में हो गये, अन्य लोग सोम को बड़ा कहने की पुष्टिमें करने लगे, दूसरे दूसरे देवता मारुत का पक्ष लेने लगे और कई मेरे पक्ष की पुष्टि करने लगे। इसप्रकार परस्पर वादविवाद होजाने पर देवतागण कई पक्षों में विभक्त हो क्रुद्ध होकर अपने अपने शस्त्र सम्हाल कर युद्ध के लिये तैयार होगये। तब देवगण के आचार्य बृहस्पति ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा ॥४१-४८॥

"हे देवगण ! आप सब कलहपूर्ण विनाश को प्राप्त मत होओ; मेरी वाणी को आदर-पूर्वक सुनो। इसमें सर्वसम्मत सिद्धान्त जलशायी जनार्दन ही जानते हैं। आप लोग क्षीरनिधि में पुरुषोत्तम विष्णु के निकट जाकर उन्हें प्रणाम कर उनसे निर्णय जान शीघ्र ही समाधान कर शान्त होवें'। 'इसलिये हम आपके चरणकमलों की शरण में आए हैं। हे भगवन् ! आप हम लोगों का सन्देह दूर कीजिये, क्योंकि आप ही देवगण की आपत्ति में एकमात्र गति हैं। इसप्रकार देवगण द्वारा प्रार्थना किये जाने पर विष्णु ने देवगण के पारस्परिक विवाद को शान्त करने के उपाय को बहुत समय तक सोचा "सभी मेरे वचनों से आश्वस्त नहीं होंगे। अपने

नैते मद्वाक्यविस्रब्धाः स्वस्वपक्षदृढाऽऽशयाः । नाऽत्र शान्तिर्मया शक्या विधातुमिति चि

कपर्द्दिनं महादेवं दध्यौ हृदि जनार्दनः । ध्यानाऽऽहूतस्तदा शम्भुराविरासीत्सभाभुवि ॥
वृषाऽऽरुढोऽम्बिकापार्श्वः शुद्धस्फटिकसन्निभः । बालशीतकरप्रोद्यत्कपर्दमुकुटोज्ज्वलः ॥
मालतीमालिकाऽऽकारस्वर्धुनीशोभिमस्तकः । फालनेत्रोज्ज्वलत्कीलिज्वालाज्वलितदि

भस्मत्रिपुण्ड्रलसितफालदेशाऽतिसुन्दरः । कुण्डलीकृतनागेन्द्रमूर्धरत्नत्विषाऽरुणा ॥५७॥
माणिक्यमुकुराऽऽभासा गण्डभूमिर्विराजते । प्रणयाऽवलोकसुधाधाराभिः प्लावयन्सतीम् ॥
वहन् रुद्राक्षहाराणामावलिं पृथुलोरसि । हरिणं परशुं बिभ्रद्वराऽभीतिं कराऽम्बुजैः ॥
व्याघ्रत्वक्पटसंराजत्कटीतटलसद्वपुः । इभचर्मोत्तरीयाऽऽढ्य-भस्मोद्धूलितविग्रहः ॥६०॥

अपने पक्ष की पुष्टि में ही मन लगाये रहेंगे। यहां मेरे द्वारा शान्ति होनी शक्य नहीं" इस प्रकार सोच कर जनार्द जटाधर भगवान् महादेव शंकर का ध्यान किया। ध्यान करने पर आहूत भगवान् शंकरजी सभा में आ हो पधारे ॥४६-५४॥

वह वृष पर आरुढ़ हैं अम्बिका पार्श्वभाग में विराजी रही उनकी शुद्ध स्फटिकके समान धवल शरीरकी कान्ति बाल चन्द्रमाकी किरणों से उद्यत्कपर्द (प्रकाशित जटाजूट) से जटित मुकुट शोभित है; उनके मस्तक पर मालती पुष्प मालाके आकारमें गंगा विराजी है। भालके नेत्र की उज्ज्वल ज्ञानाग्निसे सम्पूर्ण दिशायें अधिकाधिक विकसित हो उनके भाल देशमें भस्म त्रिपुण्ड्र के तिलके सुन्दर रूप से शोभित हैं। कुण्डली मारे सर्पराज मस्तक पर धारे हुए कान्ति से अरुण रंग की शोभा पा रहे हैं। माणिक्य पंक्तिके मुकुर (दर्पण) के आभास से गालों की शोभा बढ़ रही अपने प्रणयपरिष्कृत आंखोंके अमृत स्रवण से सतीको सिञ्चन करते (बड़े प्रेमसे सतीकी ओर देखते हुए) हैं। उनके विशाल हृदय पर रुद्राक्षके हारोंकी पंक्ति शोभित है तथा अपने करपङ्कजोंसे हरिण, परशु, वर एवं अभय मुद्रायें धारण हैं। व्याघ्रका अजिन ही कटि प्रदेशमें धारण किये हैं जो वस्त्रका काम करता है जिससे शरीरकी शोभा द्विगुणित है। ह चर्म का शरीर पर उत्तरीय वस्त्र पहने एवं अत्युत्तम भस्म उनके शरीर में रमा हुआ है। अपने वृषभ पर कर्पूर के

कर्पूराऽचलवद्राजदुक्षोपरि विराजिते । नवरत्नप्रोद्यमानमहासिंहासने स्थितः ॥६१॥
पद्माऽऽसनसुपद्माऽऽभपदपद्माऽतिशोभनः । प्रमथाद्यैः पार्षदैश्च वाणाद्यैर्भक्तशेखरैः ॥६२॥
नन्दीभृङ्गीप्रभृतिभिर्गणैः संसेवितो भवः । तमोमूर्त्तिः पराशक्तेस्त्रिपुराया महेश्वरः ॥६३॥
देवाऽधिदेवो जगतीसंहाराऽऽचारतत्परः । निरीक्ष्य तं विष्णुमुखाः प्रोत्थिता विबुधेश्वराः ॥६४॥
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याऽथो सपर्यां समकल्पयन् । सभाजितो हरिमुखैर्भवो विष्णुं रमापतिम् ॥६५॥
अवरुह्य वृषश्रेष्ठात्परिष्वज्य ससंभ्रमम् । स्वाऽऽसनेऽथ समाविष्टो जनार्दनमुखैर्बुधैः ॥६६॥
मुरारेरिङ्गितं ज्ञात्वा दृष्ट्वा देवानपीश्वरः । कलिना मन्युना ग्रस्तान् जगतां स्वस्तये ततः ॥६७॥
त्रिपुरां जगतां धात्रीं प्रार्थयामास शङ्करः । शङ्करस्य व्यवसितं ज्ञात्वा विधिहरी ततः ॥६८॥
नत्वा स्मृतिपरौ तस्या जातौ शुद्धाऽऽत्मना युतौ । कारणैः पुरुषैरेवं संस्मृता सा परात्परा ॥६९॥
जगद्रक्षावितानाय प्रादुरासीत्पराम्बिका । महाशब्दः समभवद्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरः ॥७०॥

समान रक्खे नवरत्नों से जगमगाते सिंहासन पर स्थित हैं। आपके पद्मासन के सुन्दर कमलकी तरह शोभासे पादपद्म अत्यन्त शोभित हैं। प्रमथ आदि पार्षद और बाण आदि भक्तों के शिरोमणि तथा नन्दी भृङ्गीरिटी आदि गणोंसे सेवित शंकर पराशक्ति त्रिपुरामहेशानी की तमोगुणी साक्षात् मूर्त्ति भगवान् महेश्वर देवाधिदेव संसार के संहार की क्रिया में ही तत्पर हैं। ऐसे भगवान् शशिशेखर का आविर्भाव देख विष्णु प्रधान हैं ऐसे देवराज आदि खड़े हुए भगवान् शंकर को साष्टांग प्रणाम कर उनकी पूजा की। भगवान् विष्णु आदि सभी उपस्थित देवगणों से अभिवादन ग्रहण कर शंकर अपने वृष से उतरे और खूब प्रेमपूर्वक श्रीविष्णु से बाहु भर कर गले मिले। अनन्तर शिव अपने आसन पर बैठ कर मुरारि श्रीविष्णु का संकेत पाकर और देवतागण को कलह से ग्रस्त देख, शिव समस्त संसार की धात्री भगवती त्रिपुरा की ध्यानपूर्वक संसारके कल्याण के लिए प्रार्थना करने लगे। इसके अनन्तर ब्रह्मा तथा विष्णुने शंकरजी के इस व्यवहार को जान कर नमस्कार कर उसी भगवती के ध्यान से शुद्धात्मा हो गये। इस प्रकार कारण-पुरुष उन ब्रह्मादि महात्माओं द्वारा स्मरण किये जाने पर परात्परा महेशानी अम्बिका जगत् की रक्षाके विस्तार के लिये प्रगट हुई। उस समय वज्र को दलन करने में भी निष्ठुर, महावज्र के गिरने के भीषण महानाद को भी तिरस्कृत करने वाला शब्द हुआ ॥६१-७०॥ उस महान् शब्द का प्रसार भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डोंमें समा गया। उसी समय शीघ्रता से पूर्व और उत्तरादि दिशायें जगमगाने लगी। करोड़ों विद्युत्प्रकाशोंकी द्योतना छटा (जगमगाहट) एक साथ हुई उसके तेज तथा घनगर्जन से सभी इन्द्र, अग्नि, वायु आदि देवगण बिलकुल अन्धे के समान और बधिर से हो गये और सन्त्रास से

तेन शब्देन महता ब्रह्माण्डान्तरमायता । लेशीकृतमहावज्रप्रपातौघमहास्वनः
प्रजज्वालाऽतितरसा तथा प्रागुत्तरा हि दिक् । द्योतना कोटितडितां युगपत्तु यथा तथ
तत्तेजसा च शब्देन बुधाः सेन्द्राग्निवायवः । अन्धीभूताश्च बधिरीकृताः सन्त्रासवेपिता
मूर्च्छिताः पतिता भूमौ छिन्नमूला इव द्रुमाः । विसंज्ञा स्रस्तवसना भ्रष्टकोटीरभूषणाः
विक्षिप्तबाहुचरणाः समासाद्येतरेतरम् । संघशः पतिताः केचित्केचिद्विरलतो बुधाः
एवभूते देवरणे विधिविष्णुमहेश्वराः । दृष्ट्वा महाप्रकाशैकस्तोमं व्याप्तदिगन्तरम्
तत्तेजसो न मूर्धानं न मध्यं नाऽन्तमेव च । लक्षितं तैस्तदा सर्वलोकं व्याप्य व्यवस्थित
आ पातालादा द्युमूर्ध्नः प्रकाशैकघनं महत् । खद्योतीकृतमार्त्तण्डकोटिकोटिमहद्द्युति
ज्ञात्वा पराशक्तिलीलाविभवं कारणेश्वराः । दण्डवत्पतिता भूमौ भक्त्या तां शरणं गताः
भूयो भूयः प्रणेमुस्ते दृष्ट्वा तत्प्रभवाद्भुतम्। कृताञ्जलिपुटाः स्तोतुं प्रवृत्ता जगदम्बिकाम्

इति श्रीमदिति हासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे।
भगवत्याः समाविर्भाव वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ५६८ ॥

कांपने लगे। सब मूर्च्छित हो कर जैसे छिन्नमूल वाले वृक्ष भूमि पर गिर जाते हैं उसी प्रकार गिर पड़े। हो गये उनके वस्त्र इधर-उधर बिखर गये तथा मुकुट और आभूषण टूट गये। उनकी भुजा और पैर बिखि एक दूसरे के ऊपर गिरने लगे। देवगण कई तो साथ ही गिरे और कई एक एक कर गिर पड़े। इस प्रकार देव स्थिति होने पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ने महाप्रकाश को एक समूह के रूप में सारी दिशाओं में फैलता उस विलक्षण तेज का न तो ऊपर का भाग, न मध्य और न अन्त ही कहीं था। वह सारे लोकोंमें व्याप्त था। पा लेकर अन्तरिक्षके शिरो भाग तक महत् प्रकाश ही प्रकाश था। यहाँतककि सूर्यका कोटि-कोटि प्रकाश भी उसके जुगनू के समान ही लगता था। पराशक्ति के लीला वैभव को उन कारणेश्वर देवगण ने जानकर दण्डवत् हो भूमि प्रणाम किया और भक्तिपूर्वक उसकी शरण में गये ॥७१-७६॥ उन्होंने वारम्वार उसके अद्भुत प्रभवको देख क किया और हाथ जोड़े हुए वे जगदम्बिका की स्तुति करने लगे ॥८०॥

इस प्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्यके माहात्म्यखण्ड का देवों द्वारा
भगवती के दर्शन नामक सप्तम अध्याय समाप्त

अष्टमोऽध्यायः

त्रिदेवैस्त्रिपुरास्तवनवर्णनम्

स स्तवं कर्त्तुमुद्युक्तो ब्रह्मा लोकपितामहः । भक्तिसन्ततवागग्र्यैरानन्दभरिताऽन्तरः ॥१॥

जय जय मातर्जगतां जय जय सर्वाधिके महेशानि !
जय जय भक्ताऽऽर्त्तिहरे ! जय जय सर्वाऽन्तरस्थचिद्रूपे ॥२॥
जगतां जनिमुखरचना यद्भ्रूलीलाविलासतः कुर्मः ।
विधिहरिरुद्रेशाऽऽद्या वयं महेशीं नमामि तां देवीम् ॥३॥
स्रष्टाऽस्म्यहं मुरारिः पालयिता चैष नाशको रुद्रः ।
ईशस्तिरोऽधिमूलं सर्वं त्वच्छक्तिलेशतः सिद्धम् ॥४॥
सर्वाऽनुग्रहमूलं सदाशिवोऽप्येष तावकपादाब्जम् ।
संश्रित्यैव प्रभवति तस्मात्त्वं सर्वसेवनीयाऽसि ॥५॥

अष्टम अध्याय

भक्तिसे सम्प्लुत विविध समादृत वाणियोंसे अत्यन्त आनन्दित हो लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा देवीकी स्तुति करने लगे "हे लोकों की माता आप की जय हो, हे सबसे उत्कृष्ट महेश्वरी आप सर्वोपरि विजयी हों, हे भक्तों के दुःखों को हरनेवाली आपकी जय हो; सम्पूर्ण प्राणीमात्र के अन्तर में स्थित चितिरूपवाली आपकी सदा जय बनी रहो। हम लोग ब्रह्मा विष्णु, रुद्र, ईशआदि जिनके भ्रुकुटि की भङ्गिमा के संकेतमात्र से ही लोकों की उत्पत्ति, पालन और संहार क्रिया करते हैं उनके सारे क्रियाकलाप का मूलकारण आप ही हैं, मैं ऐसी महाशक्तिसम्पन्ना श्रीदेवी को प्रणाम करता हूँ ॥१-३॥ मैं सर्जन करता हूँ, विष्णु पालक है, नाश करनेवाला रुद्र, विलय करनेवाले ईश ये आपकी शक्ति के लेशमात्र से ही अपने कार्य करने में पूर्णतया सिद्ध है। सम्पूर्ण अनुग्रह का मूल कारण यह सदाशिव भी आपके पादकमल का आश्रय लेकर ही सर्वप्रकार से सब कार्य करने में समर्थ है। अतः आप ही सबसे सेवनीय हैं ॥४-५॥ वामा, ज्येष्ठा और रौद्री रूप से हम लोगो का संस्थापन कर अम्बिका शरीर से आप तुर्यपद की अधिष्ठात्री हो विराजमान हैं। हे मातः! आपही अम्बिकाके शरीर द्वारा सारे आकाशको संहरण करके अपने निजस्थानमें स्थित होती हैं तब पञ्च महाप्रेतकी संज्ञा से (ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईशान और सदाशिव रूपमें) आपके मञ्च को

वामाज्येष्ठारौद्रीरूपेणाऽस्मान् स्थिताऽसि संस्थाप्य ।
यर्हि वयं तर्हि तथा भूता तुर्यं तथाऽम्बिकावपुषा ॥६॥
संहृत्य तावदाकाशं स्वस्थाने संस्थिताऽसि यदि जननि ! ॥
तर्हि वयं प्रथिताख्याः पञ्चमहाप्रेतसंज्ञया जगति ॥७॥
अखिलाऽऽपत्समयेष्वप्यस्माकं त्वं विचित्रतनुविभवा ।
रक्षापरा यथा स्वे जनयित्री दारके जगन्मातः ॥८॥
लोकानां सकलानां त्वद्गुणजाता वयं त्रयस्त्वाद्याः ।
अस्मभ्यमपि त्रिभ्यः पुरा स्थितेस्त्वं प्रकीर्त्तिता त्रिपुरा ॥९॥
इति संस्तुत्य लोकानां स्रष्टा भक्त्यैकनिर्भरः ।
दण्डवत्पतितो भूमौ ध्यायन् हृदि पराऽम्बिकाम् ॥१०॥

धारण कर प्रसिद्ध होते हैं। आपत्ति के समय हम लोगों की रक्षा के लिये विचित्र शरीर के वैभव वाली आप [illegible] रक्षिका रहती हैं वह उचित ही है हे जगन्मातः जैसे जननी अपने पुत्र के ऊपर सदा रक्षा का छत्र रखती हैं। [illegible] लोकों के आदिभूत हम तीनों ही आपके सत्व, रज और तमोगुणों से आविर्भूत होते हैं। हम लोगों से पूर्व ही [illegible] स्थिति होने से (त्रिकालमें स्थितिवाली) आपका नाम त्रिपुरा अन्वर्थ है। इस प्रकार लोकोंकी रचना करनेवाले श्रीब्रह्म भगवती की एक मात्र निष्ठापूर्ण भक्ति से निर्भर हो हृदय में उनका ध्यान करते हुए दण्डवत् हो भूमि पर प्रणाम [illegible] ॥१०॥ श्रीब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार स्तुति और दण्डवत्प्रणति करने के बाद पीताम्बरधारी श्रीविष्णु ने भक्ति गद्गद् स्वर से अत्यन्त चतुरतापूर्ण स्तुति रचनाओं से स्तुति की ॥६-११॥ "हे श्रीसम्पन्न मातः ! हम लोग इस [illegible] वन में गुणों की अधिकता से युक्त हो आपके आदेश को पालन करने के हेतु अत्यन्त जागरूक हो तत्पर रहते हैं [illegible] लिए हे जननी आपके चरण कमलों में अहैतुकी भक्ति की कामना करते हैं वह हमें सदा ही प्राप्त होती रहे ॥ [illegible] देवगण की ईश्वरी आप की ही सत्तामात्र से सम्पूर्ण भावराशि उन उन गुणों के आधिक्य से नाना भेदों से पृथक् [illegible] रूप धारण किये देखी जाती है। आपके ही चमत्कारका फल है कि विगत हो गया है भान जिसका ऐसे (भासमान [illegible] होने वाले) पदार्थ भी नानाशक्तिविभव से शोभित होते हैं नहीं तो हे देवि ! उनकी कुछ भी सत्तासम्पन्नता की [illegible] नहीं रहे ॥१३॥ भूमि, जल, तेज वायु और आकाश, जङ्गम, भूत और स्थावर, वनस्पति वृक्ष आदि जिनकी स्थिति [illegible] भी आप ही के कारण हैं; यही नहीं दिशा काल और जो भी सद्रूप से तथा असद्रूप से भान होनेवाला [illegible] पदार्थ है वह लेशमात्र भी आपकी सत्तासे वियुक्त नहीं है (सबमें आपकी सत्ता का चमत्कार है) यह ध्रुव सत्य है [illegible]

अथ पीताम्बरो भक्त्या गद्गदस्वरतो हरिः । अस्तौषीदतिचातुर्यप्रकरोक्तिप्रगुम्फनैः ॥११॥
श्रीमातर्वयमिह ते गुणप्रभूतास्त्वच्छास्ति सततमतीव जागरूकाः ।
कुर्मस्तज्जननि ! पदाम्बुजैकभक्तिं वाञ्छामो भवतु तदेव सर्वदा नः ॥१२॥
देवेशि ! त्वयि सति सर्वभाववर्गस्तत्तद्रूपगुणप्रभेदभिन्नगात्रः ।
नानाशक्तिविभवशोभितो विभानो नोचेद्देवि ! किमपि नैव भावितः स्यात् ॥१३॥
भूरापोऽनलचरखानि जङ्गमानि भूतानि स्थिरविभवानि चाऽपि माता ।
दिक्कालो सदसदपीह सर्वमेतत्त्वद्रूपं न भवति लेशतस्त्वदन्यत् ॥१४॥
लोकेषु प्रथितमहाप्रभावयुक्ता ब्रह्माद्या वयमिह लोकनाथनाथाः ।
त्वत्पीठप्रपदनिकेतना हि जाताः सेवाऽतस्तव पदपद्मयोर्नमस्ते ॥१५॥
रूपं ते परममतीन्द्रियं श्रुतीनां मूर्धानोऽप्यतिचकिता वदन्ति नैव ।
त्वन्मायाविभवपराकृताऽन्तरङ्गा ये ते त्वां कथमिह तादृशीं विदन्ति ॥१६॥

लोकों में जो सुप्रख्यात महाप्रभावशाली ब्रह्मा आदि हम लोकनाथों के अधिपति आपकी सेवा से ही आप के पीठ के प्रकृष्ट पद को प्राप्त करने वाले बन गये हैं। हे मातः ! ऐसे विलक्षण आपके चरणकमलों में सादर प्रणाम है ॥१५॥ आपके रूप को जो इन्द्रियोंसे गोचर नहीं है (केवल योगीगण को ही ध्यानगम्य है) उसके सम्बन्ध में श्रुतियों के मूर्धस्थित वेदान्त शास्त्र के वचन भी अति चकितभाव से "नेति नेति" "यह नहीं-यह नहीं" इस अख्यातिभाव के रूप में ही प्रतिपादन करते हैं। आपकी माया के वैभव से सर्वथा परिपूर्ण अन्तरंगवाले उसी में मग्न हो आप जैसी है उसका इदमित्थंतया (सर्वथा यथार्थ) वर्णन वे कैसे कर सकते हैं ॥ १६ ॥

पुनः वही आप के पादपद्मों की सेवा से तद्रूप-गुण-युक्त हो अखिल मल दोषों के संघ का परिष्कार किया हुआ श्रीनाथ के अमृत वचन से अत्यन्त शुद्ध चित्त हो परमशिवात्मरूपा आप को जान जाते हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्म को पूर्ण जाननेवाला अपौरुषेय वाङ्मय वेद आप के स्वरूप को गुण से भासने वाला (त्रिगुणात्मक) बतलाता है। इसी-लिये आप परम कृपा करके उस चिति प्रकाशक तेजः स्वरूप को ही हमारे लिए धारण करती हो ॥ १८ ॥

आपका यह रूप जो महाप्रकाशमात्र है हमें आपकी सेवा के गौरव से लक्षित हुआ है। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देव-गण के दोषों के शमन के लिए हे मातः ! उसी प्रकार सभीके हितस्वरूपमें प्रगट हों यही निवेदन है"॥१९॥ इस प्रकार

भूयस्त्वत्पदसरसीरुहैकसेवाऽन्यग्भूताऽखिलमलदोषसङ्घयुक्तः ।
श्रीनाथाऽमृतवचसा सुशुद्धचित्तो वेत्ति त्वां परमशिवात्मरूपिणीं सः ॥१७॥
सर्वज्ञोऽप्यजनितवाङ्न्यो हि वेदस्त्वद्रूपं वदति गुणप्रभेदभासम् ।
तस्मात्त्वं परकृपया विभर्षि चैतत्तेजौघात्मकवपुरेतदस्मदर्थम् ॥१८॥
रूपञ्चैतदपि महाप्रकाशमात्रं त्वत्सेवाविभवत एव लक्षितं नः ।
देवेन्द्राद्यखिलसुरौघदोषशान्त्यै मातस्ते भवतु समीहितस्वरूपम् ॥१९॥
एवं मुरारिः संस्तुत्य त्रिपुरां परमेश्वरीम् । भक्तिपीयूषवारिधिमग्नो नैक्षत किञ्चन ॥२०॥
अथ स्तोतुं पशुपतिः समारेभे कृताञ्जलिः । भक्तिनिर्भरसंराजत्सुकोमलवचोगणैः ॥२१॥
नमामि परमेश्वरि ! त्वमिह सर्वदेवोत्तमैर्विधातृहरिशङ्करैः परमपूरुषैः पूजिता ।
अतस्त्वदधिकः कथं भवति कोऽपि देवाऽभिधस्त्वमेव सकलोत्तमा भवसि राजराजेश्वरी ॥२२॥
धिगस्तु मनुजाऽभिधान्नरपशून् विमूढान् हि तान् विहाय परमेश्वरीं परशिवां समस्तोत्तमाम् ।
मुधा हि विबुधाऽधिपान् परिचरन्ति ये कामिनो विहाय सुरशाखिनं मृतकरीरवृक्षाऽऽश्रयान् ॥२३॥

मुरारि श्रीविष्णु परमेश्वरी त्रिपुरा कीस्तुति कर माता के भक्तिरूपी अमृत के महासागर में आनन्द मग्न हो गये कुछ भी न देख पाये ॥ २० ॥ विष्णु के स्तुतिवादन के बाद पशुपति श्रीमहादेव प्रणाम कर स्तुति करने लगे; उन वाणी भक्ति पूर्ण सुन्दर-स्निग्ध गम्भीर अर्थ से युक्त (परिपूर्ण) थी ॥ २१ ॥

"हे परमेश्वरि ! आप परमपुरुष विधाता, विष्णु, और शङ्कर जैसे सब देवगण में श्रेष्ठ व्यक्तियों से पूजी गई हैं आप को नमस्कार करता हूँ । इसीलिए कोई भी देवता कहलाने वाला आप से अधिक वैभव और चमत्कार पूर्ण शक्ति वाला कैसे हो सकता हैं । क्योंकि आप ही सम्पूर्ण देवगण से श्रेष्ठ राजराजेश्वरी हैं ॥ २२ ॥ ऐसे विमोहित मनु नाम के नर पशुओं को धिक्कार है कि वे भगवती सबसे उत्तम परमेश्वरी परशिवा को छोड़कर व्यर्थ ही अन्य देव के तथाकथित अधिपतियों का वन्दन अर्चन कर उनसे फल की कामना करते हैं ; उनका यह प्रयत्न ऐसे ही है जै सञ्जीवन कल्प वृक्ष को छोड़ कर मानो ये निर्जीव करीर (टीट) के वृक्ष के आश्रय की चेष्टा करते है ॥२३॥ हे जगन्न ननी ! आपके चरणकमलमें विषयवासनाओंसे रहित मेरा चित्त स्थित (जमा) रहे । आपके उन चरणोंकी सेवामें मेरे हा हाथ सतत लगे रहें और हे शिवे आपके गुणसमूह रूपी अमृत सागर के सर्वदा गुणगान करने में मेरी वाणी का यो योग हो ॥२४॥ ब्रह्मा, हरि और शंकर की प्रियतमा ये सतियाँ-शारदा, लक्ष्मी और पार्वती आपकी ही सुयुक्त कला

जगज्जननि ! तावके चरणपङ्कजे मे सदा स्थिरीभवतु मानसं विषयवासनानिर्गतम् ।
तदीयपरिसेवने सततमस्तु पाणिद्वयं वचो भवतु कीर्त्तने गुणगणाऽमृताब्धेः शिवे ! ॥२४॥
विधातृहरिशङ्करप्रियतमाः सतीः शारदारमागिरिसुताऽभिधास्तव कलाः सुमुख्या वयम् ।
मुखे हृदि निजाऽर्घके वपुषि धारयन्तः सदा जगद्विसृतिधारणप्रलयकर्मसु प्रोद्यताः ॥२५॥
त्वमेव विसृतिविधौ स्थितिरहीशपर्यङ्कके मयि प्रलयनं शिवे गुणविलापना चेशके ।
अनुग्रहकृतिः शिवे परतरे परब्रह्मणि स्थिता परशिवाऽऽत्मना सहजचित्प्रकाशाऽऽत्मिका ॥२६॥
भुवः कठिनता यथा रस इवाऽप्सु रूपं शुचेर्यथा च मरुतो गतिर्भवति शून्यता खे यथा ।
यथा भवति चोष्मता दिनकृतस्तथा त्वं शिवे शिवादिवसुधान्त के परशिवे च साराऽऽत्मिका॥२७॥

उन्हें आपके बताये जगत् के सर्जन, धारण और प्रलय के कार्यों में उद्यत हो हम अपने मुख,हृदय और शरीर में धारण करते हैं। आप ही सर्ग काल में विधि में ; शेषशायी विष्णु में स्थिति (पालन) के समय में; मुझ शिव में प्रलय की दशा में, ईश में गुण विलापन क्रियारूप में और परम मंगल कारी परात्पर ब्रह्म पर अनुग्रह करनेवाली सत्ता हैं और पर-शिवात्मरूप से सहज चित्प्रकाशस्वरूपा हैं ॥२६॥

पृथ्वी की जैसे कठिनता, जल का जैसे रस, तेज का जैसे रूप, वायु की जैसे गमनशीलता और आकाश की जैसे शून्यता है (अवकाश) है और जैसे दिनकर सूर्य की गरमी ही है उसी प्रकार हे शिवे ! शिव-तत्व से पृथ्वी पर्यन्त पर-शिव में आपही सार रूप से अवस्थित हैं॥२७॥ इन्द्र आदि प्रमुख देवगण महामहेशी आप के सर्वोच्च प्रभाव से ही अधिकाधिक मोहित होकर आपस में विपक्षीगण से पराभव (तिरस्कार) पाते हैं। हे शिवे ! आपके इन बालक सुरगण को एक वार अपने महान गौरवपूर्ण कथारूपी अमृत से सने हुए कटाक्षलेश के द्वारा उदारता से देख दानव रूपी शत्रुओं से बचावें (उद्धार कीजिये) ॥२८॥

हे जगज्जननी ! सदा विषयों के दावानल से अत्यधिक सन्तोष पाये हुए लोगों को अपने अमृत रस से परिप्लावित करुणापूर्ण नेत्रों से आप देखलें। हे परात्परे आप सम्पूर्ण ताप का संहार करने वाली हैं आप ही जगदाधार हैं आप को सतत नमस्कार है ॥२९॥ इस प्रकार ब्रह्मादि त्रिदेव ने भक्तिपूर्वक स्तुति कर भक्तिविभोर हो भगवती

बुधाधिपमुखामरास्तव महामहेश्याः परप्रभावपरिमोहिताः परिभवन्ति चाऽन्योन्यतः।
समुद्धर तवार्भकान् जननि दानवारीन् शिवे विभावयत्कथाऽमृताऽप्लुतकटाक्षलेशैः सकृत् ॥२९॥
जगज्जननि संततं विषयदावसन्तापिताञ्जनान् करुणया दृशाऽमृतरसौघनिःष्यन्दया।
विभावय परात्परे ! सकलतापसंहारिणी त्वमेव जगदाश्रया सततमस्तु तुभ्यं नमः ॥२९॥
एवं संस्तुत्य सद्भक्त्या ब्रह्माद्या भक्तिनिर्भराः। दण्डवत्पतिता भूमौ ध्यायन्तस्त्रिपुराऽम्बिकाम्॥३०॥
अथ सा त्रिपुरेशानी प्रसन्ना संस्तवैः स्तुता। सुराणां तमपाकर्त्तुं मोहं सावयवा बभौ ॥३१॥
तप्तकाञ्चनवर्णाऽङ्गी दिव्याऽऽभरणभूषिता। अष्टादशभुजा कन्यारूपिणी सुस्मिताऽऽनना ॥३२॥
मञ्जीरनूपुराऽऽरावझणज्झणितदिक्तटा। तलपादप्रभाक्षिप्तनवविद्रुमपल्लवा ॥३३॥
सुमन्दपेशलगतिसतीर्थीकृतहंसिका। कौसुम्भाऽम्बरसंराजत्कटीतटविराजिता ॥३४॥
गम्भीराऽऽवर्त्तसदृशनाभिह्रदविराजिता। रक्तकौशेयोत्तरीयसंशोभितभुजान्तरा ॥३५॥

त्रिपुराम्बिका को ध्यानपूर्वक दण्डवत् प्रणाम किया ॥३०॥ अब वह त्रिपुरा महेश्वरी अपनी स्तुति से प्रसन्न देवगण का मोह दूर करने के लिये सम्पूर्ण अङ्गों सहित प्रगट हुई ॥३१॥ उनके शरीर की अङ्गकान्ति शुद्ध स्वर्ण वर्ण की है, बहुतदिव्य आभूषणों से सुन्दर सजी है, अट्ठारह भुजा वाली कन्या रूप में सुस्मितमुख वाली है ॥३२॥ अपने में धारण किये मंजीर नुपूरों के शब्द से सारी दिशाओं को छम-छमाहट से पूर्ण ध्वनितकर रही है। अपने पैरों के प्रदेश की आभासे नवीन मूंगा के पल्लव की शोभा को भी तिरस्कृत करनेवाली है ॥३३॥ देवी ने अपनी अत्यन्तमन्द स्निग्ध गति से मानसरोवर में चलनेवाली हंसिनी की गति का साहचर्य किया है कौसुम्भ (केसरिया) वस्त्र कटि प्रदेश शोभा को अधिकाधिक बढ़ाता है। उनके उदर प्रदेश पर गम्भीर आवर्त्त (भंवर) की वलियाँ पड़ी है मानों नाभि आवर्त उठ रहे हों। वह लाल कौशेय अपने उत्तरीय वस्त्रके रूपमें धारण किये हुए है अपने हाथोंमें धनुष, पाश, घण्टा, रत्नपात्र, खेटक, जयमाला, पद्म, पुस्तक, चिन्मयीमुद्रा, शङ्ख; चक्र, खड्ग (करवाल), शूल, परशु, गदा, अंकुश एवं बाणको अरुण (लाल) हाथों में धारण किये हुए है। श्रीदेवी ने कण्ठ में हेमपद्म (सुवर्ण कमल) की सुन्दर माला पहन रखी और बाहुओं में नाना रत्नों का बाजबन्द शोभित हैं। हाथ में अंगुलियों के पर्वों में रत्न जटित अंगुठी

धनुः पाशन्तथा घण्टां डमरुं रत्नपात्रकम् । खेटके जयमालाञ्च पङ्कजं पुस्तकन्तथा ॥३६॥
चिन्मुद्रां चक्रशङ्खौ च खड्गं शूलं परश्वधम् । गदां सृणिं शरान् हस्तैर्बिभ्राणां पल्लवाऽरुणैः॥३७॥
हेमपद्मस्रजं कण्ठे रत्नकेयूरशोभिताम् । रत्नाऽङ्गुलीयसंराजदङ्गुलीकोरकोज्ज्वला ॥३८॥
नवरत्नलसद्ग्रैवेयकशोभितकन्धरा । मणिमाङ्गल्यशोभाऽऽढ्या श्रीचन्दनसुरूषिता॥३९॥
चन्द्रसूर्यसमानाऽऽभताटङ्कयुगलोज्ज्वला । पक्वबिम्बफलच्छायादन्तच्छदविराजिता ॥४०॥
नासाऽऽभरणमाणिक्यद्विगुणाऽरुणदृक्छदा । पद्मपत्रनिभत्र्यक्षलीलाऽऽहूतमृगीगणा ॥४१॥
कस्तूरीतिलकाऽऽख्यातमुखपूर्णेन्दुलाञ्छना । मुखाम्बुजमिलिन्दौघसमानचिकुरावलिः ॥४२॥
मृदुदीर्घघनश्यामकेशाऽऽमोदसुमेदुरा । अनर्घ्यमणिकोटीरप्रभापूर्णद्युमण्डला ॥४३॥
फालशोभिनिशानाथकलिकोत्तंसमण्डिता । सदा कुमारिका देवी परब्रह्मस्वरूपिणी ॥४४॥
ईदृशी सा पराशक्तिस्त्रिपुरा लोकसुन्दरम् । लीलार्थं सन्धृतवती रूपं परमपावनम् ॥४५॥
ततो विधिहरीशानानाह गम्भीरया गिरा । वत्साः शृणुध्वं मद्वाक्यं कल्याणं करवाणि वः॥४६॥

(अंगूठी) और हथफूल आभूषण से अधिकाधिक शोभावाली है ॥३२-३८॥

अतिनवीन ९ रत्नों से शोभित ग्रैवेयक (गले में किलड़ी) से सारा शरीर आभादीप्त है मणियों मङ्गल-सूत्र से चतुर्गुणित शोभावाली, श्रीचन्दन से अत्यन्त विलासवती उसके कानोंके बालों (ताटङ्क) के जोड़े चन्द्र सूर्य की शोभा वहन करते हैं, भगवतीके धवल दांतों की पंक्ति पके हुए दाडिमके फलकी शोभा का अनुकरण करती है। अपने नाक में नकबेसर के लगे माणिक्य से भगवती के अरुण नेत्रों की शोभा दुगुनी हो गई है, पद्मपत्र के समान विशाल तीनों नेत्र लीलया ही मृगीगण का आवाहन करते हैं। कस्तूरी के तिलक से शोभित मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की शोभा को मात करता है। मुखकमल पर घिरे हुए भ्रमरों के समूह रूपी घने बालों की अलकावली शोभा दे रही है। अतिचिक्कण, कोमल, लम्बे, घने और काले बालोंमें सुगन्धकी छटा फूट रही है। अति बहुमूल्य मणिजटित शिरोमुकुटकी कान्तिसे सारा द्युमण्डल जगमगा रहा है। भाल प्रदेश में निशामणि चन्द्रमाकी कला से ऊपर का प्रदेश शोभित है, वह देवी परब्रह्मस्वरूपिणी सदा कुमारिका रूपमें वहां विराजी है। ऐसी अति विलक्षण रूप शोभाकी खान पराशक्ति त्रिपुराने अत्यंत नेत्रदृष्टि में सुन्दर शोभाधायक परम पवित्र रूप को लीलाके लिए धारण किया ॥३९-४५॥ तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और ईशान को गम्भीर वाणी में वह इस प्रकार बोली, "हे वत्सगण ! मेरी कल्याणयुक्त वाणी को सुनो मैं तुम्हारा कल्याण करतीं हूँ। मैं अभी देवगण का मोहनाश करने के लिए प्रगट हुई हूँ। इस प्रकार अमृत की वर्षा करनेवाली दृष्टि से सुमूर्च्छा में पड़े हुए मृत-प्रायः देवगण को देख भगवती ने सान्त्वना दी। इसके बाद इन्द्रकी प्रधानता में सभी देवगण नींद से जागे हुए के समान उठ बैठे।

देवानां मोहनाशाय प्रादुर्भूताऽस्मि सम्प्रति। इत्युक्त्वाऽमृतवर्षिण्या दृष्ट्या देवान् सुमूर्च्छितान्॥
मृतप्रायान् समालोक्य समाश्वस्तांस्तदाऽकरोत्। अथेन्द्रप्रवरा देवा निद्रामुक्ता इवोत्थिताः॥
किमिदं किमिदञ्चे ति प्रोचुरन्योन्यसङ्गताः। न विजानाति कोऽप्येनां परमाद्भुतरूपिणीम्॥४८
अथाऽग्निं प्रेषयामासुरिन्द्राद्याः सुरसत्तमाः। त्वमग्ने सत्वरं गच्छ जानीह्येतं महत्तरम्॥४९
भूतं कस्मात्समुद्भूतं किं वीर्यं किं स्वरूपकम्। इत्याकर्ण्य हविर्भक्षो वाक्यमिन्द्रमुखोदितम्॥५०
साटोपमुपसृत्याऽथ प्राह तां परमेश्वरीम्। तत्प्रभाऽऽक्षिप्ततेजस्कः कथञ्चित्सविधं गतः॥५१
का त्वं कुमारि! वद मे किंवीर्या त्वं कुतः स्थिता। जिज्ञासुरहमायातस्त्वां वरेण्यां महत्तराम्॥५२
श्रुत्वा तद्वाक्यमथ सा जगाद परमं वचः। वद त्वं कतमः कस्मादागतस्ते च किं बलम्?॥५३
अनन्तरं ममाऽशेषवृत्तान्तः कथ्यते मया। इत्युक्तोऽग्निरुवाचैनां शृणु कल्याणि मद्वचः॥५४
अहं हुताशनः साक्षान्मुखं विबुधसन्ततेः। जिज्ञासिता त्वमिन्द्राद्यैः प्रहितोऽहं तवाऽन्तिकं॥
वीर्यं मे महदुत्कृष्टममोघमतिदारुणम्। यदिदं दृश्यते किञ्चिज्जगत्स्थावरजङ्गमम्॥५७॥

वे सब आपस में एक दूसरे से पूछने लगे, 'अरे यह क्या है? यह क्या है? इस परम अद्भुत रूपसम्पन्न मामयी को कोई भी नहीं जानता'। इसके बाद इन्द्रादि देवगण ने अग्नि को भेजा "हे अग्निदेव! तुम जाओ और इस महत्तर भूत को जान कर आओ कि यह कहां से प्रगट हुआ है? इसमें कितना बल है और इसका स्वरूप है?" ॥४६-५०॥

इस प्रकार इन्द्रके कथनको सुनकर हवि का भक्षण करने वाले अग्निदेव बहुत अधिक घमण्ड करके देवी के जाकर यद्यपि वह तेज में देवी के सामने निस्तेज लग रहा था तो भी किसी प्रकार वहाँ पहुंचा और परमेश्वरी से "हे कुमारिके! तुम कौन हो? तुम्हारे में कैसा बल है? और कहां से आई हो? इसके लिए जिज्ञासु होकर वरेण्य और महत्तर तत्त्व तेरे पास आया हूँ" ॥५१-५३॥

अग्नि के वचन सुनने के बाद वह परम विशिष्ट वाणी में बोली, "तू बता कि कौन है? किस कारणसे आया और तेरा कैसा बल है? इसके अनन्तर मैं अपना सारा वृत्तान्त बताऊंगी"। तब अग्नि ने देवी से "हे कल्याणि! सुन मैं साक्षात् देवगण का मुख अग्नि हूँ। इन्द्र आदि देवगण ने तुम्हारे लिये पूछने को कहा है इसीलिये मुझे उन्होंने तुम्हार पास भेजा है। मेरा पराक्रम (बल) अत्यन्त अमोघ दुर्धर्ष है, जो कुछ जगत् में स्थावर और जङ्गम वस्तु-मात्र दिखाई देता है उस सबको क्षण भरमें भस्म कर राखकी ढेरी बना दूँ इस तरहका शक्तिसम्पन्न अन्य कोई व्यक्ति

भस्मीकुर्यां क्षणेनैव नैवमन्योऽस्ति कश्चन। इत्याकर्ण्य शुचेर्वाक्यं प्रहस्य प्राह सा परा ॥५८॥
अग्ने तवेदृशं वीर्यं यदि तर्ह्याशु मेऽग्रतः। प्रदर्शयैतन्निहितं तृणं दह तवाऽग्रतः ॥५९॥
श्रुत्वाऽवहेलनं वाक्यं कुद्धो वैश्वानरस्तदा। प्राह चाऽतिस्तब्धधिया स्वात्मानं मानयन् गुरुम्॥६०॥
नूनं त्वमबला बाला तस्मान्मुग्धप्रभाषिणी। सर्वभस्मीकरो योऽहं तृणदाहे नियोजितः ॥६१॥
करोमि तस्य सदृशं सतृणां त्वां दहेऽधुना। इत्युक्त्वा क्रोधताम्राऽक्षो महाज्वालापरीवृतः ॥६२॥
भक्षितुं तां तृणमपि पपात तरसा शुचिः। महाबलोद्योगयुतः सर्वप्राणेन सञ्जवात् ॥६३॥
प्रवृत्तोऽपि तृणं दग्धुं न शशाक धनञ्जयः। हिमाऽब्धिपतितोल्केव शान्ताऽर्चिः शीततां गतः॥६४॥
वेपमानः सुशीतेन खद्योतसदृशप्रभः। करकेव समस्ताऽङ्गमारब्धं गलितुं यदा ॥ ६५ ॥
तदा समस्तप्राणेन पलायनपरोऽभवत्। लज्जितः कुण्ठितोऽर्चिष्मानन्तर्धानं गतस्ततः ॥ ६६ ॥
इन्द्राय चाऽवदद्वृत्तं न ज्ञातुमशकं हरे!। तदग्रे संस्थितं भूतं महासत्त्वपराक्रमम् ॥ ६७ ॥

इस प्रकार अग्नि का कथन सुनकर परास्बा ने हंस कर कहा, "हे अग्निदेव? यदि तेरा इस प्रकार का उत्कृष्ट वीर्य है तो मेरे सामने ही जल्दी से जल्दी दिखा। देख तेरे आगे यह तृण (तिनका) रक्खा है इस जरा जला दे।" जब अग्नि ने इस प्रकार के अपमान भरे वाक्य सुने तो वह क्रुद्ध हो गया। वह अत्यन्त स्तब्ध बुद्धि से अभिमान करके स्वयं को गुरु मानते हुए बोला, "निश्चय ही अबला कुमारी ही है इसीलिये तू मुग्ध भाषण (बढ़-चढ़ करके बोली) बोल रही है, जो मैं सब कुछ को जला डालता हूँ, उसे तूने केवल एक तृण को जलाने के लिये ही कहा। मैं तिनके के समान ही तुझे भी साथ ही अभी जलाता हूँ।" इस प्रकार कह कर अत्यन्त क्रोधसे लाल लाल आँखें करके खूब धधकती ज्वालाओंके साथ जैसे ही उसने तृणको जलानेकी तैयारीकी कि अग्नि तत्काल एकही झटकेमें गिर पड़ा। वह महाबलशाली सब शक्ति भर चेष्टाकर खूब तेजी से जलाने लगा तो भी तृण को न जला पाया और बर्फ के जमे समुद्र में गिरे हुए पुच्छल तारे के समान सारी जलती ज्वालायें स्वतः शान्त होकर अग्नि निर्वाण को प्राप्त कर शीतल हो गया ॥५४-६४॥

जुगनू के समान ज्योति वाला ठण्डक से कांपता हुआ करक (ओलों) के समान उसका शरीर जब गलने लगा तो अपनी शक्तिभर भाग खड़ा हुआ; लज्जित और बलसे कुण्ठित अग्नि वहां से तब अन्तर्धान कर गया। इन्द्रको आकर वह बोला कि "हे हरे! मैं तो यह सब वृत्त न जान सका कि सामने महाबल पराक्रमशील जो प्राणी है वह कैसा है?" इसके बाद इन्द्र ने शुभ्रांशु चन्द्रमा को इस अति श्रेष्ठ प्राणी के विषय में जानने के लिये कहा, "हे सोम! अति

अथेन्द्र आह शुभ्रांशुं ज्ञातुं भूतं महोन्नतम् । त्वं गच्छ सोम सुजवाज्जानीह्येतं महत्तरम् ॥ ६८
भूतं कस्मात्समुद्भूतं किंवीर्यं किंस्वरूपकम्। इत्याकर्ण्याऽथ शुभ्रांशुर्वाक्यमाखण्डलोदितम् ॥६९
साटोपमुपसृत्याऽथ प्राह तां परमेश्वरीम् । तत्प्रभाहततेजस्कः कथञ्चित्सविधं गतः ॥ ७०
का त्वं कुमारि वद मे किंवीर्या त्वं कुतो ह्यसि । जिज्ञासुरहमायातस्त्वामद्भुततमां स्त्रियम् ॥ ७१
श्रुत्वा शुभ्रांशुवाक्यं सा जगाद परमं वचः। वद त्वं कः कुतः प्राप्त इमं देशञ्च किम्बलः ॥ ७२
अनन्तरं मया(म?) स्वीयवृत्तं संकथयामि ते। सोम एवं तया प्रोक्त आमन्त्र्यैनामुवाच ताम् ॥ ७३
सोमराज इति ख्यातः सर्वलोकस्य पालकः । ओषधीनामहं स्वामी जीवयाम्यमृतांशुभिः ॥ ७४
तृणवीरुद्गुल्मवृक्षान्मया जीवति वै जगत् । एतत्सोमवचः श्रुत्वा प्रहस्य प्राह सा परा ॥ ७५
यदि सोमेदृशं वीर्यमाशु दर्शय मेऽग्रतः । तृणं मया दह्यमानं निहितश्चैतदग्रतः ॥ ७६
संशामय स्वकिरणैरमृताढ्यैः सुशीतलैः । श्रुत्वैतत्फल्गुवचनं मत्वा स्वात्माऽवहेलनम् ॥ ७७
क्रुद्धः प्राह मदोत्सिक्तः शशाङ्को बलगर्वितः । अबला त्वं बालभावादज्ञात्वा मत्पराक्रमम् ॥ ७८

शीघ्रतया जाकर उस महत्तर भूत का उत्पत्तिस्थान, वीर्य (पराक्रम) और स्वरूप का पता लगाओ।" इस प्रकार इन्द्रके कहने पर चन्द्रमा भगवती परमेश्वरीके पास जाकर बहुत लम्बी चौड़ी बातें बनाकर उसके अति प्रभायुक्त के सामने निस्तेज सा होकर बोला, "हे कुमारी मुझे बता तू कौन है ? तेरे में क्या बल है ? और तेरा उदभव कहांसे है तेरीसी अद्भुततम स्त्रीके सम्बन्धमें जाननेकी इच्छासे तुम्हारे पास आया हूँ।" चन्द्रमाकी वाणी सुनकर उस परा अति मधुर वचन कहे, "तू बता यहां कहा से आया है ? तेरा क्या पराक्रम है ? इसके बाद मैं अपने विषय में बात बताऊँगी" इस प्रकार पूछे जाने पर चन्द्रमा ने देवी को आमन्त्रित कर कहा, "मैं सोमराज नाम से विख्य सब लोकोंका पालक हूँ, मैं औषधियों तृण, वीरुत् (फैली लताएं) गुल्म (झाड़ी) आदि का स्वामी हूँ, उन्हें अमृत किर से जीवन दान करता हूँ। तृण, विरुत् (काठिन्य से आरोहण की अपेक्षा न रखने वाली लता गुल्म और वृक्ष (जो पुष्पों से फलें) मेरे ही प्रभाव से स्थित है जगत् भी इसी क जीता है" ॥६५-७४॥ इस प्रकार चन्द्रमा की वाणी सुनकर पराम्बा ने हंस कर कहा, 'हे सोम ! यदि जैसा तू को बता रहा है वैसा ही है तो मेरे सामने अपना वीर्य (बल) दिखा। तेरे सामने मैं यह जलता हुआ तिन रखता हूँ इसे अपनी अमृतपूर्ण अत्यन्त ठण्डी किरणों से शान्त कर दे" ॥७५-७६॥ इस रूप में अति लघु वचन और अपना अपमान समझ कर बलसे गर्वित चन्द्रमाने मदोन्मत्त हो क्रोधित होकर कहा, "तू बाल-सुलभ चापल अबला है मेरे पराक्रम को नहीं जानकर तू ने जो अनुपयुक्त कहा है उसका मैं बदला चुकाऊंगा; तुझे अपनी

उक्तवत्यसि यद्वाक्यं तस्याऽपचितिमेव ते । दिशामि त्वां शीतकरैर्जडीभूतां करोम्यहम् ॥७६॥
इत्युक्ताऽनेकिरणैः शीतनीहारवर्षणैः । ववर्ष चाऽतिवेगेन बलाहकगणा इव ॥८०॥
तस्य नीहारधारास्ताः फालनेत्राऽर्चिभिर्हताः । कीर्त्तिशेषमनुप्राप्तस्तदाऽप्लुष्टकलेवरः ॥८१॥
सोमोऽपि दन्दह्यमान ईषत्प्राणाऽवशेषितः । भीतः पलायितः शीघ्रं प्राहेन्द्रं नाऽशकं हरे॥८२॥
ज्ञातुं तत्तु महाभूतं महासत्त्वपराक्रमम् । अथ शक्रः प्राह वायुं तत्सत्त्वप्रतिवेदने ॥८३॥
वायो त्वं सत्वरं गच्छ जानीह्येनं महत्तरम्। भूतं कस्मात्समुद्भूतं किंवीर्यं किंस्वरूपकम्॥८४॥
इति श्रुत्वा वचो वायुः पुरन्दरमुखोदितम् । साऽभिमानं गतस्तत्र यत्र श्रीपरमेश्वरी ॥ ८५ ॥
उवाचाऽऽतिबलं मत्वा स्वात्मानं सावहेलनम्। का त्वं वदाऽबले कस्माद्देशात्प्राप्ताऽत्र किंबला॥८६॥
पुरन्दरादिप्रहितस्त्वां जिज्ञासुरिहाऽऽगतः । वायुवाक्यमिति श्रुत्वा सा प्रोवाच शुभं वचः ॥८७॥
वद त्वं कः कुतः प्राप्तः किंबलः किंपरायणः । वदाम्यनन्तरं यस्ते कृतः प्रश्नस्तदुत्तरम् ॥८८॥
इति श्रुत्वा वचो देव्याः प्रोवाचाऽऽमन्त्र्य तां पराम्। अबले शृणु मे वृत्तं लोकोत्तरतमं शुभम् ॥८९॥
अहन्त्वतिबलो वायुर्जगत्प्राणो महागतिः । इन्द्रादिसन्निधेः प्राप्तो जगतामाश्रयः परः ॥९०॥

किरणोंसे एक दम जड़ ही बना दूंगा" ॥७७-७९॥ यह कहकर शीत और नीहार (ओलों)की ठण्डी वर्षा करने को ठंडे कणों वाली अनेक किरणों से जिस प्रकार मेघ गण अति वेग पूर्वक बरसते है वैसे ही पूरी शक्ति लगाकर चन्द्रमा ने वर्षा की। भगवतीने चन्द्रमाकी नीहार (उपल, कोहरा) की वर्षाको अपने भालके तृतीय नेत्र की अग्नि से सुखा दिया। इधर चन्द्रमा भी क्रमशः निर्बल शरीर होकर शरीर जब कीर्तिमात्र शेष रहा तो जलता हुआ कुछ प्राण बचने पर डरा हुआ भागकर शीघ्र ही इन्द्र से बोला, "हे हरे ! मैं उस महाभूत अत्यन्त बलपराक्रमशील को नहीं जान सका"। इसके बाद इन्द्र ने वायु को उसका बल जानने के लिये भेजा ॥८०-८३॥

वह बोला, "हे पवन ! तुम जल्दी जाकर उस महातिबलवान् प्राणी का पता लगाओ कि वह कहां से प्रकट हुआ है ? उसका कैसा बल है ? और क्या स्वरूप है ?" इस तरह वायु ने इन्द्र के कथन को सुनकर अभिमानपूर्वक अपने को अतिबलशाली समझ बड़ी रूक्षता से जाकर जहां श्रीपरमेश्वरी विराजी हुई थी कहा, "हे अबले ! मुझे बता तू कौन देश से यहां आई है और तेरा कैसा बल है ? मैं देवराज इन्द्र द्वारा भेजा हुआ तुम्हारे से सारी बातों को जानने के लिये आया हूँ।" वायु के कथन को सुन उस भगवती ने कल्याणमयी मधुरवाणी में कहा, "पहले तू बता कौन है ? कहां से आया है ? तेरे में कितना बल है ? क्या कर सकता है ? इसके अनन्तर मैं तुझे जो प्रश्न किया है उसका उत्तर दूंगी।" इस प्रकार देवी भगवती का वचन सुनकर वायु ने पराम्बा को आमन्त्रणा देकर कहा "हे अबले ! मेरा

मया संवेपिताः काले महान्तोऽपि च भूभृतः। ज्वालाणुका इव सदा प्रचरन्ति च सर्वतः ॥
समुद्राश्चाऽपि शुष्यन्ति मयि क्षुब्धे प्रभञ्जने। गतिं मम स्थगयितुं समर्थो नैव कश्चन ॥
इति श्रुत्वा मरुद्वाक्यं प्राह सा परमेश्वरी। ननु वायो समर्थस्त्वं वीर्यं पश्यामि तावकम् ॥
तृणञ्चैतत्पुरो न्यस्तं समाहर्तुं तदर्हसि। कदर्थनावचश्चैतच्छ्रुत्वा मन्युपरीवृतः ॥
प्राहाऽधिक्षेपणं वाक्यं मारुतो बलगर्वितः। विनाशमबले कस्मात्प्रार्थयस्यतिमूढधीः ॥
महाबलं महावेगं कः सोढुं शक्नुयाद्बली। मूढा त्वमवलिप्ताऽसि शमयामि मदं तव ॥
आदौ तृणायितां त्वां वै नामशेषां करोम्यहम्। स्थिरीभव सहस्वाऽऽशु मम वेगं सुदुःसहम् ॥
इत्युक्त्वा तां परां देवीं मारुतो मन्युना वृतः। महाबलेन वेगेन यावद्गन्तुं मनो दधे ॥
तावत्पङ्गुमिवाऽऽत्मानं दृष्ट्वा हीनगतिं तदा। सर्वप्राणेन चोद्युक्तः पदान्न चलितुं क्षमः ॥

लोकोत्तर (विलक्षण) शुभ वृत्त सुन, मैं अत्यन्त बलवान् अतितीक्ष्णगति सम्पन्न जगत्का प्राणरूप वायु हूँ; सम्पूर्ण लो का सर्वाधिक आश्रय हूँ इन्द्र की सन्निधि से आया हूँ। मेरे से हिलाये हुए बड़े बड़े पर्वत भी समय पर ज्वाला पतिङ्गों के समान चारों ओर चक्कर लगाते हैं। मेरे क्षुब्ध हो जाने पर समुद्र भी सूख जाते हैं। मेरे अव्याहत को रोकने में कोई भी समर्थ नही होता" ॥८४-९२॥

इस वायु की वाणी सुनकर वह परमेश्वरी हँस कर बोली, "हे पवन! अवश्य ही तू समर्थ है तो मैं स्वयं की शक्ति देखती हूँ। यह एक तृण तेरे सामने रक्खा गया है इसे तू उड़ाकर ले जा।" अत्यन्त बल से अभि में चूर चूर हो पवन ने भगवती के निन्दायुक्त वचन सुनकर क्रोधावेश में आकर बलगर्वित होकर अति निन्द्य वाक्य कहे "हे अबले! अत्यन्त ही अज्ञानबुद्धि से तू अपना विनाश क्यों चाहती है? मुझ महाबलशाली महावेगवान् का तेज कौन बलवान् सहन कर सकता है? अर्थात् मेरे वेग और बल के सामने क्या कोई टिक सकेगा हे मूर्खे! तू अपने घमण्ड में विवेकहीन हो गई है, तेरे मद को मैं अभी अत्यन्त खर्वित चूर्णित करता हूँ। प्रथम तो तुझे ही तिनका बना तेरे नाम को मिटा दूंगा। अच्छा तू स्थिर हो जा और मेरे अत्यन्त कठिन से सहन होनेवाले वेग को शीघ्र रोक।" पराम्बा को यह कहकर क्रोध में आकर पवन ने ज्यों ही खूब लगा कर वेग सहित जाने की चेष्टा की त्यों ही स्वयं पाङ्गले के समान अपने को हीनगतिवाला देख

तदा ह्रिया भयेनाऽपि पलायनपरोऽभवत्। पुरन्दरं प्राह वायुर्नैतज्ज्ञातुमलं मम ॥१००॥
अमोघं तन्महाभूतं महासत्त्वपराक्रमम्। एवमग्नीन्दुवायूनां दृष्ट्वा तस्मात्पराभवम् ॥१०१॥
पुरन्दरः शङ्कितोऽभूत् किं मे तदिति चिन्तयन्। चिन्तयित्वाऽपि बहुधा नाऽध्यगच्छत किञ्चन।
विमना इव संमूढो न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ॥१०२॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
देवी-बल-परीक्षणं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ७०० ॥

शक्ति लगा कर भी एक पद भर भी नहीं चल पाया तो लज्जा और भय से व्याकुल हो (वहाँ से) दौड़ा। इन्द्रके पास आकर उसने कहा, "मैं इस अमोघ महाबल एवं पराक्रम-सम्पन्न महाभूत को पूर्णरूप से नहीं जान पाया"। इस प्रकार अग्नि, सोम और वायु का पराजय देखकर इन्द्र मन में शङ्का करने लगा कि यह क्या है। इस रूप से बहुत बार सोचने पर भी उसे कुछ भी ज्ञान नहीं हो सका। वह एकदम विमनस्क सा होकर सम्मोह को प्राप्त हुआ पराम्बा के विषय में वह क्या है इसका कुछ निश्चय नहीं कर पाया ॥९३-१०२॥

इस प्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड का 'देवी के बल का परीक्षण' नामक अष्टम अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

1
9'55
6669
700
7/2/84

नवमोऽध्यायः

इन्द्रेण देवीसम्वादवर्णनम्

चिन्तयित्वा चिरं शक्रस्तज्जये कृतनिश्चयः। बलदर्पसमुन्नद्धो वज्रमुद्यम्य सत्वरः॥
जगामाऽऽरुह्य जीमूतं यत्र सा संस्थिताऽम्बिका। तां दृष्ट्वा सुकुमाराङ्गीं पद्मकिञ्जल्कवर्चसम्॥
स्वसौन्दर्यजिताऽनेककोटिकन्दर्पसौभगाम्। दूरे स्थितस्तां पप्रच्छ तेजसा मुषितेक्षणः॥
का त्वं पद्मपलाशाक्षि व्याप्याऽङ्गप्रभया जगत्। स्थिताऽसि कन्या कस्य त्वं कस्मादत्र समागता॥
रूपन्ते रुचिरं तद्वदङ्गविन्यासंसौष्ठवम्। वन्द्यो ममाऽमरपुरे सन्ति रम्भामुखाः स्त्रियः॥
नेदृशी देवलोके वा भुवि वाऽपि रसातले। मया दृष्टा सुचार्वङ्गी भुजाऽष्टादशकोज्ज्वला॥
वद शीघ्रं मया पृष्टा सत्यमत्र यथा स्थितिम्। तच्छ्रुत्वा शक्रवचनं पराम्बा प्राह तं प्रति॥
कस्त्वं किमर्थं सम्प्राप्तः किं वीर्यस्त्वं किमुद्यमः। श्रुत्वा वृत्तं तव ततो वदामि मम संस्थितिम्॥

नवम अध्याय

दीर्घ काल तक इन्द्र ने उस पराम्बा पर विजय पाने का पूर्ण निश्चय कर बल और अभिमान से अत्यधिक [illegible] हो वज्र को लेकर शीघ्र ही अपने वाहन जीमूत पर चढ़कर जहां सुकुमार अङ्गोंवाली अम्बिका थी वहां [illegible] किया दम की कर्णिकाओं के समान तेज वाली अपने अनिन्द्य सौन्दर्य से अनेक कोटि कामदेव की शोभा को अत्यन्त तुच्छ बनाने वाली भगवती को देखकर दूरसे ही उसके तेज से चौंधियाये नेत्र वाला इन्द्र बोला, "हे कमल वाली अपनी अङ्गों की कान्ति से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर तूं कौन स्थित है? तू किस की कन्या है? कहां से यहां आई है? जैसा ही काम को लजाने वाला तेरा विलक्षण रूप है वैसा ही तेरे अङ्गों के विविधविन्यास का [illegible] गठन है, मेरे अमरपुर में रम्भा प्रमुख स्त्रियां अत्यन्त सौन्दर्यवती हैं (परन्तु उन में भी तेरे समान रूप का लक्षांश नही देखा जाता) इस प्रकार की रूप सौष्ठव की साक्षात् मूर्ति न तो देवलोक में, न पृथ्वी पर और न ही रसातल मैंने अठारह भुजाओं वाली अत्यन्त आभासम्पन्न अङ्गों की स्त्री नहीं देखी।" उसके वचन को सुन कर पराम्बा ने से कहा ।१-७। "तू कौन है? किस उद्देश्य से आया है? तेरा क्या बल वीर्य है? और तू कौन उद्यम करता तेरे सारे वृत्त को सुन कर तब मैं अपनी स्थिति की सारी वार्ता बताऊंगी"। इस देवी के वचन को सुन कर सहसा

इति श्रुत्वा वचो देव्याः प्राह शक्रः सहस्रदृक्। शृणु मे वचनं सम्यगहं सुरपुरेश्वरः ॥९॥
शतक्रतुस्त्रिभुवनश्रियो भोक्ता महाबलः। त्वां जिज्ञासुरिह प्राप्तो नान्योऽस्ति भुवने क्वचित् ॥१०॥
बलेन यशसा लक्ष्म्या तुल्यो वीर्येण सम्पदा। सदा भुवनशास्ताऽहं देवा मम वशंवदाः ॥११॥
वज्रं ममाऽऽयुधञ्चैतदमोघं सर्वदुःसहम्। एतेन मद्धृतेनैव न जीवन् यास्यति क्वचित् ॥१२॥
बहवो दानवा दैत्या महाबलपराक्रमाः। सकृद्वज्रस्य संस्पर्शात्कृतान्तशरणं गताः ॥१३॥
बलः पाकोऽथ नमुचिर्वृत्रस्त्वाष्ट्रोऽपि तारकः। समस्तलोकजेतारो गता वज्रात्पराभवम् ॥१४॥
बहुनाऽत्र किमुक्तेन न मे तुल्यबलः क्वचित्। जानीहि मां महेन्द्राख्यं महाबलपराक्रमम् ॥१५॥
इतीन्द्रवचनं श्रुत्वा प्राह सा परमेश्वरी। नूनमिन्द्र! मया ज्ञातस्त्वं कश्यपतनूद्भवः ॥१६॥
इदं तृणं सुनिहितं तवाऽग्रे लघु बल्वजम्। यत्किञ्चित्तव वीर्यं वा वज्रस्याऽपि शतक्रतो! ॥१७॥
प्रदर्शयाऽस्मिन्नो चेत्त्वं वैश्वानरमुखा इव। पलायमानं पश्यामि त्वामपीन्द्र ह्रिया नतम् ॥१८॥
निशम्यैतद्वचो देव्याः शक्रः प्रस्फुरिताऽधरः। उद्यम्य वज्रं संक्रुद्धस्तां प्रहर्त्तुं मनो दधे ॥१९॥

इस प्रकार देवी के वचन सुन सहस्रनेत्र इन्द्र ने कहा, "मेरी बात भली प्रकार सुनो मैं सुरलोक का अधिपति हूँ शतक्रतु (सौ अश्वमेध किया हुआ होने से) का अवसर है तीनों भुवन की लक्ष्मी का मैं भोगने वाला महाबली हूँ। तुम्हे जानने की इच्छा से मैं यहां आया हूँ; मेरे समान बल, यश, लक्ष्मी, वीर्य और सम्पत्ति में सारे भुवन में अन्य कोई नहीं है। सदैव ही मैं भुवनों पर शासन करता हूँ सभी देवगण मेरे वशवर्ती हैं। मेरा आयुध यह वज्र अमोघ और सर्व दुःसह है। इसके आघात से कहीं भी कोई जीवित ही बचे। बहुत से महाबल पराक्रमी दानव दैत्यगण एक बार के इस वज्र के संस्पर्शसे यमराज की शरणमें चले गये ॥८-१३॥ बल, पाक, नमुचि, वृत्र त्वाष्ट्र एवं तारक जैसे सम्पूर्ण लोकों के जीतनेवाले भी इस वज्रसे पराजयको प्राप्त हुए। और अधिक क्या कहा जाय बलमें मेरे बराबर कोई भी नही है, महा-बल-पराक्रमशील मुझे महेन्द्र नामसे प्रसिद्ध जानो।" इस प्रकार इन्द्र के वचन सुनकर उस परमेश्वरी ने कहा, "हे इन्द्र! अवश्य ही मैं जानगई कि तू कश्यप का पुत्र है यह छोटा सा तिनका मोटे घासका है; हे शतक्रतो! (जो त अपने लिये बढ़ बढ़कर बाते करता है) तेरे वीर्य अथवा वज्र का सामर्थ्य है तो इसी में सब बल दिखा दे। नहीं तो जैसे अग्नि, वायु और सोम आदि के समान तुझे लज्जासे सिर झुकाये भागते ही देखूँगी।" देवी के इस प्रकार वचन सुनकर इन्द्र क्रोधमें ओठोंको फड़काने लगा अपने हाथमें वज्र लेकर उसी (भगवती) पर प्रहार करने चला ॥१४-१९॥ जब

उद्यते स्वायुधे शक्रे सहसा ज्वलिता दिशः। तस्मिन्निन्द्रे स्थिते चोद्यद्वज्रहस्तेऽतिकोपने ॥१॥
स्मितमीषच्चकाराऽम्बाहसत्कोटीन्दुचन्द्रिकम्। स्मितमात्राच्छतधृतेरुद्यतः सायुधः करः ॥२॥
संस्तम्भितस्तथा पादवाङ्नेत्रादीन्द्रियाणि च। ईषन्न वेपितुं शक्तो हस्तादिकमपि स्वयम् ॥३॥
एवं संस्तब्धसर्वाङ्गो मघवा लिखिताऽऽकृतिः। वक्तुं कर्त्तुं प्रचलितुं नेष्ट ईषदपीश्वरः ॥४॥
एवं भूतं सहस्राक्षं दृष्ट्वा काष्ठनराकृतिम्। अन्वतप्यन्त विबुधा भयेन परिवेपिताः ॥५॥
दीना नष्टेश्वरा देवा हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः। अथेन्द्रःस्तब्धमात्मानमपराधात्स्वयं विदन् ॥६॥
तत्कालाऽऽपद्रक्षणार्हं सस्माराऽऽङ्गिरसं गुरुम्। तदा संस्मृतमात्रस्तु हरिणाऽऽङ्गिरसो मुनिः॥७॥
देव्या कृतं मदशमं ज्ञात्वेन्द्रस्याऽभ्यगात्त्वरन्। योगिराजः सुमेधावी ज्ञातज्ञेयपराऽवरः ॥८॥
क्षणेन तत्र सम्प्राप्तो यत्रेन्द्रस्तु जडीकृतः। दृष्ट्वा बुधगणाः सर्वे जीवमिन्द्रावनक्षमम् ॥९॥
स्रोतोऽभिरुह्यमानानां नौप्राप्तिरिव सम्बभौ। गीष्पतेर्दर्शनादेवमाश्वस्ताश्चिदशास्तदा ॥१०॥

इन्द्र ने अपना वज्र सम्हाला तो अकस्मात् दिशायें जलने लगीं। इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध होकर हाथ में वज्र लेकर खड़ा
अम्बा ने कोटिचन्द्र गण की चांदनी को तिरस्कृत करने वाले ईषत् हास्य किया। उसके हंसने मात्र
ही शतधृति इन्द्र की स्थिति अपने हाथ में वज्र थामे हुए एक साथ स्तम्भित सी हो गई; उसके पैर, वाणी,
आदि इन्द्रियाँ जैसे वह था उसी रूप में रह गई। न तो वह स्वयं एवं न उसके हाथ पैर आदि थोड़े बहुत
उधर भी हिल पाये। इस प्रकार इन्द्र बिलकुल स्तब्ध सा हुआ चित्र-लिखित के समान न बोल सका,न कुछ
सका और न चल ही सका ॥२०-२३॥ इस रूप के कठपुतलीकी तरह बने इन्द्रको देखकर सभी देवगण भय से
हुए बहुत अधिक सन्ताप करने लगे। दीन नष्ट ईश्वर (पति) वाले गौरवहीन देवगण हाहाकार करते हुए जोरसे
करने लगे। आगे इन्द्रने स्वयं अपने अपराधसे पूर्ण स्तब्ध जानकर तत्काल उस आपत्तिपूर्ण स्थिति से स्वरक्षण करने को
आङ्गिरस बृहस्पति को याद किया। तब इन्द्र के स्मरण करने मात्र से ही आङ्गिरस गुरु, देवी ने इन्द्र के मद
चूर्ण किया है इसे जानकर शीघ्रही वहां आगये। अत्यन्त मेधासंपन्न, सम्पूर्ण योगियोंमें श्रेष्ठ,अचिन्त्यशक्ति-चिति,
पूर्ण ज्ञाता वह एक क्षणमें ही वहां उपस्थित हो गये जहां इन्द्र स्तब्ध किया हुआ था। सभी देवगण इन्द्रकी रक्षा
समर्थ महर्षि बृहस्पति को आया देख इस प्रकार हर्षित हुए जैसे जल-स्रोतोंमें फँसे हुए व्यक्तियोंको नौका का
मिल गया हो। तब गुरुदेव बृहस्पति के दर्शनमात्र से देवगण आश्वस्त होगये। इसके बीच में अत्यन्त दूरस्थ
स्पति विश्वेश्वरी को देख रोमाञ्च खड़े हो जाने से पुलकायमान होगये; उनके आंखों में आनन्द के आंसूओं की

एतस्मिन्नन्तरे तत्र धिषणो दीर्घदर्शनः। विश्वेश्वरीं समालोक्य हर्षरोमाञ्चपीवरः ॥३०॥
आनन्दाऽश्रुकलारुद्धनेत्रो मूर्ध्नि कृताऽञ्जलिः। साष्टाङ्गं प्रणिपत्याऽथो गद्गदस्वरसंयुतः ॥३१॥
बद्धाञ्जलिः परामम्बामीडितुं समुपाक्रमत्। गूढाशाया मोदभरैर्वाक्पुष्पैः पूजयन्निव ॥३२॥

जय जय शङ्करि जगदभयङ्करि विधिमुखकिङ्करि वेदनुते !।
दुष्टभयङ्करि शिष्टशुभङ्करि सकलवशङ्करि पाहि सुरान् ॥३३॥
जगतां जननस्थितिहरणादिषु विधिहरिशङ्करविबुधेशाः ।
तव पदपङ्कजसेवाऽऽसादितकरुणालेशाः प्रभवन्ति ॥३४॥
यदि तव करुणालेशविहीनो विबुधगणेशोऽप्यतिमूढः ।
नेदं चित्रं त्वद्विमुखोऽपि हि न कचिदीशः परमेशः ॥३५॥
विधिहरिमुख्या अपि तव लीलां न प्रभवः स्युर्वर्णयितुम्।
तत्र कथं मम शक्तिः स्तोत्रे तव महिमाऽब्धेर्वद मातः ! ॥३६॥

लग गई और नतमस्तक हो वह देवी को अञ्जलि बांध कर साष्टाङ्ग प्रणाम कर गद्गद स्वर में हाथ जोड़ कर भगवती परम्बा की स्तुति करने लगे मानो अत्यन्त गूढ़ आशा की पूर्ति के लिये अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल हो वाक्यपुष्पों से भगवती की पूजा में लगे हुए हों ॥२४-३२॥

"हे कल्याण करनेवाली, जगत् को अभय देनेवाली, ब्रह्मादि प्रमुख जिसके सेवा परायण हैं ऐसी वेदों द्वारा स्तुति की गई, दुष्टजनके लिये अत्यन्त भीषणे! शास्त्र-मर्यादानुकूल आचरणशील व्यक्तियों का मङ्गल करनेवाली, कला सहित तत्त्वों को वश में रखनेवाली, आप सर्वोत्कृष्ट हैं आपकी सर्वदा जय हो, आप इन देवगण की रक्षा कीजिये ॥३३॥

जगत् के जन्म, पालन और हरण, लय एवं अनुग्रह कार्यों में ब्रह्मा, हरि, शङ्कर आदि विशिष्ट देवगण आपके पादकमलों की सेवा से प्राप्त किये दया के लेश से ही समर्थ होते हैं ॥३४॥

यदि आप की करुणा के लेशसे रहित देवगण का अधिपति भी अत्यन्त मूढ़ बनता है तो आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि आप से विमुख होकर कहीं भी ईश्वर भाव को प्राप्त परमेश्वर नहीं हो सकता ॥३५॥

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर प्रमुख कारण देवगण भी आपकी लीलाका वर्णन करनेमें सक्षम नहीं हैं तब हे मातः ! आपके महिमा रूपी अगाध समुद्रकी स्तुति करनेमें मेरी शक्ति कैसे हो ? सो आप बतावें ॥३६॥ पूर्वमें आविर्भूत अपौरुषेय वाणी

वाचः प्राञ्चस्तव निःश्वसितं विधिहरिमुख्या गुणजाताः ।
लीलाजनितं सकलं तत्ते न विदन्त्यवरास्त्वामम्बाम् ॥३७॥
सकलचराऽचरवपुराद्या त्वं स्वाऽऽश्रितलोकाऽलोकगणा ।
नाऽन्यत्किञ्चित्तव शरणं स्वं विभवं श्रित्वा ननु भासि ॥३८॥
तन्तुभिरोतः प्रोतो यद्वत्पट इह हेम्ना कटकाद्यम्। अखिलश्चोतं प्रोतं तद्वत् कलया त्रिपुरे परमपरम् ॥३९॥
वर्णाद्या अपि षड्विधमार्गाः कालाद्या अपि नवसङ्घाः ।
स्थैर्याद्या अपि पञ्चकला ननु चिच्छक्तेस्त्वन्नास्त्यन्यत् ॥४०॥
सर्वस्याऽदौ परचितिवपुषा विलससि चैका शिवरूपा ।
द्रष्टा श्रोता वक्ता नान्यस्तत्त्वां स्तोतुं कः शक्तः ? ॥४१॥
दिनमणिबिम्बात्किरणगणा इव तस्यास्त्वत्तः सकलमभूत् ।
तस्मात्त्वत्तो नान्यत्किञ्चन दृश्याऽदृश्यं जगदखिलम् ॥४२॥

वेद आपके निःश्वास हैं; ब्रह्मा विष्णु प्रमुख देवगण गुणजात हैं, जो सगुणरूप से दृष्टि में आनेवाली यह विशाल सृष्टि रचना है वह आपकी लीलासे उत्पन्न है इसीसे आप समर्था अम्बाको अवर (अन्यनिम्न कोटिके) लोग नहीं जानते ॥३७॥

आप सम्पूर्ण कलायुक्त जङ्गम और स्थावर प्राणिमात्र के शरीर हैं, आद्या हैं आप ही अपने में लोक (प्रकट आये हुए) अलोक (अव्यक्त) सभी तत्त्व ग्राम को समेटे हुई हैं। आपकी शरण में रहनेवाले पदार्थों के अतिरिक्त कुछ भी तो दृग्दृश्य वस्तु नहीं है। आप ही निश्चय रूपसे अपने वैभवको लेकर भासमान होती हैं (उन सभी वस्तुओं की स्वरूपगत सत्ता आप ही हैं) ॥३८॥

विश्व में जैसे तन्तुओं (सूत्र जाल) से ओत प्रोत वस्त्र है, जैसे सुवर्णसे कटक, कुण्डल आदि आभूषण हैं, उसी प्रकार हे त्रिपुरे। यह सम्पूर्ण विश्व-प्रपञ्च और परतत्व एवं अपरतत्त्व आपकी ही कला से ओत-प्रोत है ॥३९॥ वर्ण, पद, आदि षड्विध मार्ग और काल आदि नव सङ्घ तथा स्थैर्य आदि पांच कलायें अवश्य ही चिति-शक्ति आप से पृथक् नहीं हैं ॥४०॥ सब के आदि में पर-चिति शरीर से आप ही शिवरूपा विलास करती हैं, आप ही द्रष्टा, श्रोता और वक्ता हैं अन्य नहीं; इसलिये आपकी स्तुति कौन कर सकता है ॥४१॥ सूर्य के बिम्ब से किरणों का समूह जैसे प्रगट होता है वैसे ही आप से यह सारा दृश्य प्रपञ्च आविर्भूत हुआ। इसलिये आप से अन्य दृश्य (दृष्टि में आनेवाला) अदृश्य (अलोक वस्तु) सम्पूर्ण जगत् कुछ भी नहीं है। (आप ही अभिन्न निमित्तोपादानरूपा हो जगत्के दृश्य वस्तुओं में व्याप्त हैं) ॥४२॥

देवेशि ! त्वद्दुर्घटशक्त्याऽऽच्छादितनेत्रास्त्वद्रूपम् ।
जानीयुस्ते कथमिह विबुधाः पालय सर्वान् सुरसङ्घान् ॥४३॥
एष महेन्द्रस्तव पदसविधेस्तब्धतनुस्त्वां न विजानन् ।
ईषद्दृष्ट्या करुणारसया पाहि शतक्रतुममरेशम् ॥४४॥
इति संस्तुत्य गीर्वाणगुरुः परमहेश्वरीम् । नत्वा भूयः प्रार्थनया प्रसादं योजयद्धरौ ॥४५॥
अथः तस्याः कृपादृष्टिलेशपीयूषसंप्लुतः । इन्द्रः पुरेव प्रकृतिङ्गतोऽहंस्तम्भवर्जितः ॥४६॥
ज्ञात्वा विश्वेश्वरीं सम्यग्गुरोर्वाक्याद्यथाविधि। भक्त्या परमया युक्तो देवीं सर्वोत्तमोत्तमाम् ॥४७॥
पराशक्तिं सर्वजगन्निदानं शुद्धचिन्मयीम् । भूयः प्रणम्य साष्टाङ्गं कृताञ्जलिपुटो हरिः ॥४८॥
भक्त्या गृहीतसुस्वान्तः किञ्चिद्ध्रीनतकन्धरः । अस्तौषील्लोकजननीं मधुकोमलवाग्गणैः ॥४९॥
शृण्वतां सर्वदेवानां सविधे बलशासनः । तस्याः कृपादृष्टिलेशाच्छिन्नो मायासु बन्धनः ॥५०॥
नमस्ते त्रिपुरे मातर्नमः परशिवाऽऽये । नमः कारणसत्याऽऽख्यपराऽऽनन्दसुधाऽऽत्मिके ॥५१॥

हे देवों की अधीश्वरि ! मातः ! आप की अघटितघटनापटीयसी शक्ति से आच्छादित नेत्रवाले हम देवता लोग आपके रूप को कैसे जानें ? (अतः) आप हम सभी सुरसङ्घों की रक्षा करें ॥४३॥ और तो और, यह महेन्द्र आपके धाम के सन्निकट ही एक साथ चकित सा स्तब्ध शरीर हो आपको नहीं जान रहा है, कृपा करके करुणा से पूर्ण कुछ दृष्टि से शतक्रतु देवराज इन्द्र की आप रक्षा कीजिये" ॥४४॥ इस प्रकार परममहेश्वरी की स्तुति कर बृहस्पति ने प्रणाम कर फिर प्रार्थना द्वारा इन्द्र के प्रति भगवती की कृपा का संयोजन किया । अब उस पराम्बा की कृपा-दृष्टि के लेशमात्र अमृत से सिञ्चित हो इन्द्र पहले के समान ही स्वस्थ हो अहंग्रहरूपी स्तम्भन से छुटकारा पा गया । अपने गुरुदेव के वचनोंसे विधिपूर्वक विश्वेश्वरीको भली प्रकार जान कर अत्यन्त भक्तिविलसित अन्तःकरणसे उस उत्कृष्ट, सम्पूर्ण जगत् के मूल कारण, शुद्धचिन्मयी पराशक्ति को फिर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़ कर भक्ति पूर्वक परा के ध्यान से स्वस्थ चित्त हो लज्जा से शिर झुका कर वह मधुर कोमल वाणी में लोकजननी की स्तुति करने लगा ॥४५-४९॥

सम्पूर्ण देवगणके सुनते सुनते उनकी सन्निधिमें उस भगवतीकी कृपा दृष्टिके लेशसे उसके मायाजालका बन्धन छिन्न भिन्न हो गया ॥५०॥ "त्रिपुरे ! मातः ! आपको सादर नमस्कार है, हे परमशिव की आश्रया आप को नमन है । हे कारण सत्य आख्यावाली परमानन्दसुधा परास्वरूपे ! आप ही सत् और असत् वस्तु समूह की कारण रूपा हैं; आपसे ही

त्वं हि कारणरूपाऽसि सदसद्वस्तुसन्ततेः । त्वत्तः सकलमुत्पन्नं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥५५॥
त्वयि प्रलीयमानश्च त्वं सत्यं सर्ववस्तुषु । मृत्तिकेव घटादीनां भूषणानाञ्च काञ्चनम् ॥५६॥
नाऽन्यत्त्वत्तो लेशतोऽपि जगदेतद्भवेत्क्वचित् । जलं विना शैत्यमिव प्रकाशोऽग्नेरिव क्वचित् ॥५७॥
द्युमणेः शक्तयो यद्वत्किरणाः संस्थितास्तथा । त्वत्तः सकलवस्तूनि विभान्ति परमेश्वरि ! ॥५८॥
विधौ हरौ शिवे तद्वदन्यस्मिन् देवताऽभिधे । यत्सारमस्ति तत्सर्वं तव शक्तेर्विजृम्भितम् ॥५९॥
नामाऽऽकृतिक्रियाहीना संविन्मात्रैकरूपिणी । अनुग्रहाय लोकानां रूपं नाम क्रियाऽपि ते ॥६०॥
तस्मादनन्यः सततं पुरुषार्थेच्छुरन्वहम् । त्वामेव भक्त्या सेवेत श्रितचिन्तामणिं शिवे ॥६१॥

त्वयि प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं त्वय्यप्रसन्ने किमिहाऽस्ति लभ्यम् ।
विहाय सेवां जगदीशशक्ते वृथैव चाऽन्यत्र रता विमूढाः ॥६२॥
मितेश्वरेणापि हि सम्प्रबद्धा विना तदाराधनतो न मुक्ताः ।
महेशशक्त्या दृढसम्प्रबद्धास्तदप्रसादात्कथमस्तु मुक्तिः ? ॥६३॥

ही सत् और असत् वस्तु समूह उत्पन्न हैं ; आप से ही सम्पूर्ण कलापूर्ण (दृश्यजगत्) उत्पन्न है, आप में सब कुछ प्रतिष्ठित है एवं आप में ही यह सम्पूर्ण प्रलीयमान है आप ही सब वस्तुओंमें सत्ता योग्य रूपमें स्थित है जैसे घटादि की मृत्तिका और आभूषणों का सुवर्ण सत्यरूप में स्थिति रखता है उसी प्रकार आप से अन्य लेशमात्र भी जगत् कहीं भी किसी रूप में स्थितिसम्पन्न नहीं है (सब में सत्तात्मक अंश आप ही है)। जल के विना शीतलता के समान, अग्निके विना प्रकाशके समान, दिनमणि (सूर्य) की किरणें शक्तियाँ है वैसे ही हे परमेश्वरि ! आपसे सम्पूर्ण कला सम्पन्न वस्तुयें विशेष रूपसे भासमान होती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव इनमें और उसी प्रकार अन्य भी देवता नाम के तत्व में जो सार है वह सब आपकी शक्ति का ही विलास है। आप नाम, रूप, क्रिया से अतीत संविन्मात्र हो अद्वितीय रूप वाली हैं आप लोकों के अनुग्रह के लिये रूप, नाम और क्रिया करती हैं इसलिये पुरुषार्थ (परमेश्वर प्राप्ति) की इच्छा करनेवाला सतत ही आप की अनन्य भाव से भक्ति करे हे शिवे ! आप ही चिन्तामणियों का अखण्ड निवास हैं ॥

आप के प्रसन्न होने पर कौन ऐसी वस्तु है जो प्राप्त करने योग्य न हो ? आप के अप्रसन्न होने पर लभ्यवस्तु क्या है ? (भगवती के रुष्ट होने पर प्राप्ति योग्य पदार्थ दुर्लभ होजाता है) हे जगदीशशक्तिस्वरूपे ! आप की भक्ति को छोड़ कर व्यर्थ ही विमूढ़ लोग अन्यत्र रमण करते है। जो सीमित स्वल्प राज्य का अधिपति है उसके द्वारा भी बन्धन में डाले हुए लोग विना उससे आवेदन अनुरोध किये मुक्ति (छुटकारा) नहीं पा सकते तो महेश्वरी

अनादिशक्त्या तव मायया वै बद्धा जनाश्चिरकालाद्विमूढाः ।
हित्वाऽऽत्मशक्तिं परदेवतां त्वां दैवाऽभिधान् भिन्नरूपान्नमन्ति ॥६१॥
त्वमेव सर्वाऽऽद्यतया परात्परा त्वत्तो जाता देवताऽऽख्याः कथं स्युः ।
यद्वद्धेम्नोऽन्यो न भूषागणः स्यादाख्याशेषास्तद्वदीशादिदेवाः ॥६२॥
ईशाद्येष्वप्यन्ततस्त्वीश्वरत्वं सर्वेश्यास्तेऽनुग्रहस्यैव लेशः ।
तद्व्यामोहो जाह्नवीमतिसंस्थां हित्वा कुल्यान्वेषका दावदग्धाः॥६३॥
सत्त्वं मूढं मृतके देहकाऽऽख्ये सर्वेशत्वाऽऽद्यभिमानेन युक्तम् ।
मातर्भूयस्त्वघकृत्यं दुरीहं त्वत्तोऽन्या का रक्षितुं मां समर्था ॥६४॥
सा त्वं विश्वप्रसवित्री परास्वा सर्वं मेऽघं क्षन्तुमेवाऽर्हसीति ।
न प्रार्थ्या स्वे तोकके मातुरेषा क्षान्तिर्यस्मात्सहजा सुप्रसिद्धा ॥६५॥
योऽहं तेऽग्रे स्तब्धकायोऽभवं वै नैतद्रोषादपि तेऽनुग्रहः स्यात् ।
रोषे सर्वं भस्मशेषं समीयान्मातुस्तोके तर्जनैवाऽतिदुष्टे ॥६६॥

शक्ति के द्वारा भली प्रकार जकड़ कर बांधे गये लोग उसकी अप्रसन्नता से कैसे छूट सकते हैं ? आपकी अनादि शक्ति माया से दीर्घ समय से बन्धन में पड़े विमूढ़ लोग आत्मशक्ति परदेवता आपको छोड़कर (व्यर्थ ही) भिन्न रूप धारण किये दैवनाम वालों को नमन करते हैं। यही विडम्बना है। आप ही सभी की आदिभूता परात्परा हैं आप से उत्पन्न हुए देवत्व (दिव्यवपुधारी) रूप के नाम को कैसे प्राप्त करें ? जैसे सुवर्ण से अन्य आभूषणों की स्थिति नहीं उसी प्रकार ये ईश आदि देवगण अपनी भिन्न भिन्न आख्या भले ही रक्खें आपका ही इनमें सत्त्व है। ईश आदिमें अन्ततोगत्वा जो ईश्वरता है वह आप सर्वेशीके अनुग्रह का लेश है। उन सब का जो व्यामोह है वह उसी प्रकार का है जैसे दावानल से जले लोग अत्यन्तप्रवाहयुक्त गंगा को छोड़ छोटी तलैया की खोज करते हैं (अहो दिङ्मूढता !) ॥५१-६३॥

अपने मर्त्य देह नामके इस ३॥ हाथके शरीरमें सर्वेशता एवं सर्वज्ञता आदि के अभिमानसे युक्त हो जो आपकी सत्ता को तिरस्कृत करता है ऐसा पापात्मा मैं अत्यन्त जघन्य पाप का भागी हूँ मुझे आप को छोड़ कर अन्य कौन रक्षा कर अभय हस्त दे सकता है ? ॥६४॥ वही आप विश्व ब्रह्मांडों की जनिका सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न परास्वा हैं आप मेरे सब पाप ताप को क्षमा-दान दें। मुझे यह क्षमा अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये नहीं मांगनी है फिर भी हे मातः ! आप की प्रकृति से ही क्षमा करने की सहज वृत्ति प्रसिद्ध है ॥६५॥ जो मैं आपके सामने एक साथ स्तम्भित होगया वह आपका रोष नहीं बल्कि अनुग्रह ही है, क्यों कि आप के क्रोध से तो सब भस्म ही होकर राख की ढेरी बनजाता

एवं बहुविधैर्वाक्यैः स्तुत्वा पीयूषसंस्रवैः। क्षमापयत्परां देवीं महेन्द्रो भक्तिनिर्भरः ॥६७॥
शक्रमेवंविधं दृष्ट्वा पावकाद्या दिवौकसः। ज्ञात्वा तां लोकजननीमपराधमपि स्वकम् ॥६८॥
भीताः प्राञ्जलयो नेमुर्दण्डवच्चरणाऽन्तिके। स्तुत्वा विविधसूक्तैस्तां क्षामयामासुरम्बिकाम् ॥६९॥
तदा सा परमेशानी विधिमुख्यान् दिवस्पतीन्। प्रसन्ना प्राह कल्याणी कल्याणं परमं वचः ॥७०॥
भो भो देवा विधीन्द्राद्याः शृणुध्वं वचनं मम। अप्रमादिभिरायत्तैः स्वस्वकार्येषु संततम् ॥७१॥
भवितव्यं भवद्भिर्मे शास्तिपालनतत्परैः। विधातृहरिरुद्राणां वशे शक्र सदा भव ॥७२॥
अन्ये देवास्तद्वशे च तिष्ठन्त्वग्निपुरोगमाः। मयि सन्ततसंन्यस्तभावा भवथ सात्त्विकाः ॥७३॥
विधातृमुख्या यूयञ्च सृष्ट्यादिकरणोद्यताः। ध्यायन्तो मां सदा स्वाऽऽत्मसंविदेकस्वरूपिणीम् ॥७४॥
एवं तस्या वचः श्रुत्वा धातृमुख्याः सुरेश्वराः। नत्वा बद्धाञ्जलिपुटाः प्रार्थयामासुरम्बिकाम् ॥७५॥
मातरस्माकमनिशं तव पादाब्जदर्शनम्। त्वयि चाऽनन्यभक्तिश्च भूयादेतन्महेश्वरि ! ॥७६॥

क्यों कि आप तो अति दुष्ट पापी पुरुषों के लिये थोड़ी तर्जना ही कर उनका नामशेष तक कर देती हैं" ॥६६॥

एवं प्रकार देवराज महेन्द्र ने अमृत से सने हुए विविध भक्तिपूर्ण वचनों से भक्तिनम्र हो परादेवी से क्षमा याचना की ॥६७॥ इस प्रकार भक्तिविह्वल हो प्रार्थना करते हुए इन्द्र को देखकर अग्नि आदि देवगणने उसे देवजननी जानकर और अपना अपराध देख भयभीत हो श्रद्धाभक्तिसे नत होकर अञ्जलि बांधकर दण्डवत् प्रणाम किया और विविध भावपूर्ण स्तोत्रों से अम्बिका से अपने कुकृत्यों के लिये वे अनुनय विनयपूर्वकक्षमा-याचना करने लगे। तब वह परम कल्याणी महेश्वरी प्रसन्न होकर ब्रह्मा आदि प्रमुख देवगण के प्रति अत्यन्त कल्याणकारी वचन कहने लगी ॥६७-७०॥

"हे ब्रह्मा आदि देवगण ! तुमलोग मेरी बात सुनो तुम लोग अपने अपने कार्यों में लगे हुए मेरे आदेशोंको पूर्णतया पालन करनेकी चेष्टा करो। हे इन्द्र ! तू विधाता, हरि और रुद्र इन तीन कारणदेवों के वश में सदा रह और अन्य देवगण जैसे वायु व अग्नि आदि भी उनके अनुगमनमें रहो और तुम लोग सम्पूर्ण रूपमें मुझे आत्मसमर्पण कर सात्त्विक बनने का प्रयत्न करो ॥७४॥ 73

हे ब्रह्मा आदि प्रमुख देवगण! तुमलोग सृष्टि,स्थिति और संहारलय,औरअनुग्रह कार्योंमें तत्पर-सदा सर्वदा मुझे स्वात्म सम्विद् ही एकमात्र स्वरूपवाली हूँ ऐसा मानो"॥७४॥इस प्रकार ब्रह्माजी जैसे प्रधान देवगण उसकी वाणी सुनकर प्रणाम करते हुए अम्बिकाजी की हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे,"हे मातः! हमलोगोंको दिन-रात आपके श्रीचरणोंके दर्शन करते होते रहें और हे महेश्वरि ! हमारी आपमें अनन्य निष्ठा सततं बनी रहे। इतना आप हमारा योगक्षेम बना देंगी तो अन्य

एतावति समृद्धे तु सर्वं सम्पन्नमेव नः । प्राप्ते कल्पतरौ चाऽन्यन्न प्राप्यं शिष्यते क्वचित् ॥७७॥
भक्तिलक्ष्मीसमृद्धानां किमन्यैः फल्गुभावनैः । तद्रिक्तानामपि प्राप्तैः किं चिन्तामणिकोटिभिः?॥७८॥
चिन्तामणिगणैर्देवि दीयते सभयं फलम् । त्वत्पादभक्तिलेशोऽपि प्रयच्छत्यभयं फलम् ॥७९॥
तस्मादभयमन्विच्छुः श्रयेत्त्वत्पादपङ्कजम् । सदा नो दिश सद्भक्तिं किमन्यद्याचितेन नः ॥८०॥
इति ब्रह्मादिवाक्यं सा श्रुत्वा लीलाऽऽत्तविग्रहा । उक्त्वा तथाऽस्त्विति ततस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥८१॥
अन्तर्धिमागतायान्तु तस्यामिन्द्रादयः सुराः । विधिं हरिं शिवं नत्वा बद्ध्वाऽञ्जलिमथो वचः ॥८२॥
प्राहुर्विनीतभावेन प्रश्रयाऽवनतेन च । विधे मुरारे शम्भो नः कृपयाऽर्हथ रक्षितुम् ॥८३॥
पराऽपराधान्महतः कथञ्चिद्गुरुणा वयम् । मोचिताश्चाऽथ वाञ्छामस्तद्रूपं वास्तवन्तु यत् ॥८४॥
तज्ज्ञातुं कृपयाऽस्मभ्यं वदन्तु श्रोतव्यमस्ति चेत् । त्वद्गतीनथ किं कुर्मो दिशन्त्वाज्ञामतःपरम् ॥८५॥
इतीन्द्रादिवचः श्रुत्वा मुरारिः प्राह सस्मितः । शतक्रतो शृणु वचो मम संयतमानसः ॥८६॥
इयन्तु परमा शक्तिर्या समस्तविभावना । सा शक्तिः परमेशस्य विमर्शाऽऽख्या महत्तरा ॥८७॥

सब कुछ सम्पन्न होता जायगा । जब कल्पवृक्ष ही मिल गया तो क्या कहीं कोई अन्य वस्तु पाने योग्य बाकी रह गयी ? ॥७७॥ भक्ति रूपी लक्ष्मीसे पूर्ण समृद्ध लोगों को छोटे मोटे कार्यों के लिये भावना करने का क्या प्रयोजन ? इन भक्तिरहित लोगों को चिन्तामणि कोटियों की क्या आवश्यकता ? ॥७८॥ हे देवी ! चिन्तामणि समूह से यह आशंका रहती है कि मन की भूल से भयवाले फल की आशा रहती हैं परन्तु आपके चरणों की भक्ति का लेशमात्र भी प्राप्त होने से अभय (भयरहित) सुफल प्राप्त होता है यह ध्रुव सत्य है ॥७९॥

इसलिये अभय पद की इच्छा वाला आपके चरणकमलकी शरण में जाय । कृपया आप हमें सदैव निज पादपद्म में सद्भक्ति दीजिये हमें इससे अन्य मांगने से क्या प्रयोजन" ॥८०॥ इस प्रकार ब्रह्मादि देवगण की वाणी सुनकर लीलाप्राप्त शरीरवाली भगवती "तथास्तु" यह कह कर वहीं अन्तर्हित हो गई ॥८१॥ देवीके अन्तर्धान करने के अनन्तर इन्द्रादि देवगण, ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी श्रद्धावनत अञ्जलि बांधे प्रार्थना करने लगे, "हे ब्रह्माजी, हे मुरारे भगवन् ! और हे शम्भो ! आप हम लोगोंकी रक्षा करें । भगवती परा के भारी अपराध से हमें गुरुदेव ने बचाया अब हम उनके वास्तविक रूप को जानना चाहते हैं आप कृपा करके हमारे सुनने योग्य यदि हो तो सुनावें । आपलोगों के प्राप्त करने के मार्ग की हमें आज्ञा करें" ॥८२-८५॥ इस प्रकार इन्द्र आदि देवगण की बात सुन कर हंसते हुए विष्णु बोले, "हे इन्द्र ! तुम संयतमन से मेरे कथन को सुनो । वह समस्त विभावना परमाशक्ति परमेश की विमर्श नामवाली महत्तर शक्ति है महाकाशमयी है जिसमें सम्पूर्ण जगत् विशेष रूपसे भासता है । यही द्रष्टारूप में सम्पूर्ण

महाकाशाऽऽत्मिका यस्यां जगदेतद्विराजते। सेयं द्रष्ट्रात्मना भूत्वा जगद्व्याप्य व्यवस्थिता ॥८
दृश्यते यज्जगदिदमिति तद्रूपमुच्यते। दृश्यन्तु द्विविधं प्रोक्तं कालदेशविभेदतः ॥८
कालः क्रियामयो रयो देशो मूर्त्तिमयः स्मृतः। वर्णः पदं तथा मन्त्र इति कालस्त्रिधा स्थितः॥९
कला तत्त्वञ्च भुवनमिति देशोऽपि वै त्रिधा। षडध्वनाम्ना चैतत्तु प्रोक्तं षट्सङ्घरूपतः ॥९
स्वकारणात्मकं कार्यं तरोर्बीजात्मता यथा। तेन वर्णादयः कालः कलादिर्देश उच्यते ॥९
द्रष्टुस्तद्वयनिर्भानाद्द्रष्ट्रात्मकमुदीरितम्। तस्मादखिलमेतद्वै द्रष्टृरूपमुदीरितम् ॥९
तं द्रष्टारं स्वात्मरूपं चितिशक्तिस्वरूपिणम्। दृश्यदेहादितो भिन्नं मत्वा तां ज्ञातुमर्हसि ॥९
इदं संग्रहतः प्रोक्तमात्मशक्त्यवबोधनम्। न सकृच्छ्रवणाल्लभ्यं तद्रूपं पारमेश्वरम् ॥९
अनन्तजन्मस्वभ्यस्तमिथ्यामार्गनिषेविणाम्। तस्मादेतन्मया प्रोक्तं धृत्वाऽन्तःश्रद्धया सदा ॥९
तत्पादभक्त्या तस्यान्तमचिरेणाऽधिगच्छसि। शक्रपावकमुख्यैस्त्वं द्युलोकमनुपालय ॥९
स्वस्वकार्ये नियुङ्क्ष्वैतान् देवान्सततजाग्रतः। सदा हृदि महाशक्तिं भावयन्नुक्तमार्गतः ॥९

जगत्को व्याप्तकर स्थित है,जो दृश्य जगत् दीखता है वही उसका सगुण रूप कहा जाता है। दृश्य जगत् काल एवं देश विशेष भेदसे दो प्रकारका कहा है॥८६-८९॥ गमनशील काल क्रियामय और देश अचल मूर्त्तिमय माना गया है;वर्ण,पद और मन्त्र इस प्रकार काल तीन प्रकारसे स्थित है॥९०॥ देश भी कला, तत्त्व और भुवन इस रूपमें तीन प्रकार का है। यह षडध्व नाम से षट्संघ रूप वाला है। जैसे वृक्ष बीज रूप वाले अपने कारण स्वरूप का कार्य है उसी प्रकार वर्णादि काल और कला आदि को देश कहा जाता है॥९१-९२॥ द्रष्टा (देखनेवाले) को उसका निर्भान होता है जिससे द्रष्टात्मक कहा गया है। इसीलिये यह सकल विश्व प्रपञ्च दृष्टरूप बताया गया है। उस द्रष्टा को चितिशक्ति रूप वाले अपने आत्मरूप को दृश्यदेह आदि (आदि से सुत, कलत्र, धन, दास, दासी, पशु समझें) से भिन्न मानकर महामहिमामयी को तुम जान सकते हो॥९३-९४॥ यह तुम्हें संक्षेपसे, आत्मशक्तिका ज्ञान करा देनेवाला विषय कहा है। वह सार्वभौम पारमेश्वर रूप एक वार के श्रवणसे प्राप्य नहीं होता और विशेष रूपसे अपनेजन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कारों द्वारा अभ्यास किये गये मिथ्या मार्ग के सेवन करने वालों को तीन काल में भी नहीं। इसलिये जो तुम्हें बताया उसे श्रद्धापूर्वक अन्तःकरण में धारण करो और उस पराम्बाके चरणों में भक्ति करो जिससे यह शीघ्र ही तुम्हें हृदयङ्गम हो जाय। हे इन्द्र! सभी अग्नि एवं पवन आदि देवगणके साथ तुम अन्तरिक्ष लोक-स्थित का पालन करो और सदैव जागरूक रहकर इन देवगण को अपने अपने अभीष्ट कार्यों में लगा दो। सदैव बताये हुए मार्ग से महाशक्ति की भावना करते जाओ तब हेशतक्रतो! तुम अभय मार्ग को सरलता से

अधिगच्छाऽभयं मार्गमञ्जसा त्वं शतक्रतो !। एवं मुरारिवचनं श्रुत्वा बलभिदादयः ॥९९॥
प्रदक्षिणीकृत्य धातृमुखांल्लोकेश्वरान् सुराः। प्रणम्याऽऽज्ञां समादाय जग्मुः स्वं स्वं निवेशनम्॥१००।
ईशानो हरिधातृभ्यां भक्त्या सम्यक् सभाजितः। पश्यतोस्तत्क्षणेनैव गतोऽन्तर्द्धिं महेश्वरः॥१०१॥
अथ नारायणं ब्रह्मा स्तुत्वा नत्वा यथाविधि। ययौ स्वभवनं राम! सर्वलोकपितामहः ॥१०२॥
एवं सा परमा शक्तिर्महाद्भुततरक्रिया। सर्वदेवोत्तमा सर्वसाक्षिणी विश्वमोहिनी ॥१०३॥
ननु श्रुतं भार्गवैतत्कुमार्याख्यानमद्भुतम्। यत्र सा परमाशक्तिः कुमारीवपुषा स्वयम् ॥१०४॥
इन्द्रादीनां मोहनाशमकरोत्परदेवता। इदमाख्यानमशुभनाशनं शृण्वतां सदा ॥१०५॥
श्रीपरापादसद्भक्तिवर्धनं पावनं महत्। श्रोतव्यमेतत्सततं त्रिपुराप्रीतिमिच्छता ॥१०६॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे
श्रीदेवीशक्त्यवबोधनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥८०६॥

करोगे"। इस प्रकार इन्द्र आदि देवगण विष्णुके वचन सुनकर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश इन लोकेश्वरों की प्रदक्षिणा कर उनसे आज्ञा लेकर अपने अपने स्थान पर चले गये ॥९५-१००॥

ब्रह्मा और विष्णु द्वारा भगवान् शंकरजी का भली भांति भक्तिपूर्वक सत्कार किया गया और उन दोनोंके देखते वह अन्तर्धान कर गये ॥१०१॥ बाद में श्रीनारायण की ब्रह्मा ने विधिपूर्वक स्तुति वन्दना की और हेपरशुराम सम्पूर्ण लोकों के पितामह ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये ॥१०२॥ इस प्रकार वह परमा शक्ति महा अद्भुत क्रिया-सम्पन्ना है सब देवों में उत्तम सम्पूर्ण विश्वभूतों एवं ब्रह्माण्डों की साक्षीरूपिणी विश्व को अपने माया जाल से मोहित करने वाली है ॥१०३॥ हे भृगुकुल तिलक परशुराम ! तुम ने अवश्य ही कुमारी के अद्भुत आख्यान को सुना जहां उस परमा शक्ति परदेवता ने स्वयं कुमारी शरीर से इन्द्रादि का मोह नाश किया। यह आख्यान सुनने वाले श्रोताओंके अशुभोंका नाश करने वाला है ॥१०४-१०५॥ यह श्रीपराके चरण कमलों में सद्भक्ति बढ़ाने वाला है महान् पावन (पवित्र करने वाला) है; भगवती त्रिपुरा की कृपा की इच्छा रखने वाले को इसे सदैव सुनना चाहिये। ॥१०७॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड के षडध्वमार्ग रूपी
शक्ति का अवबोधन नामक नवम अध्याय समाप्त।

दशमोऽध्यायः

भगवत्यास्त्रिरूपाख्यानवर्णनम्

जामदग्न्यस्तु संश्रुत्य कुमार्याख्यानमद्भुतम्। विस्मितः प्राह मधुरं वाक्यं तं प्रणतस्तदा ॥१॥
भगवन् महदाश्चर्यमाख्यानं भवतोदितम्। न कदाचिच्छ्रुतं पूर्वं त्रिपुरामहिमोन्नतम् ॥२॥
ब्रह्मविष्णुहरैर्यैवं पूजिता संस्तुता तथा। ततः सर्वाधिका वै त्रिमूर्त्तिर्जननी यतः ॥३॥
अहो मयाऽद्य भवतः कथाऽमृतरसं मुखात्। निर्गतं श्रुतिरन्ध्रेण पीतं स्वान्तरुजाऽपहम् ॥४॥
कृपयाऽनुगृहीतोऽहं श्रीमता गुरुमूर्त्तिना। धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं यन्मे तुष्टो गुरुर्भवान् ॥५॥
नेदृशं श्रीकथासारममृतं पिबतो मम। क्षुत्तृट्परिश्रमो निद्रा जायते जातु सन्ततम् ॥६॥
भगवन् त्वन्मुखेन्दूद्यच्छ्रीकथाऽमृतसेवनात्। न तृप्तोऽस्मि मनाक्कोऽपि प्रत्युत तृषितोऽस्म्यहम् ॥७॥
भूयः श्रीत्रिपुराम्बाया लीलाविभववर्णनम्। श्रोतुमिच्छामि तन्मह्यं कृपया निगद प्रभो ॥८॥
एवं सम्प्रार्थितो भूयो दत्तात्रेयो महाशयः। सन्तुष्टो जामदग्न्यस्य ज्ञात्वा श्रद्धाऽतिरिक्तताम् ॥९॥

दशम अध्याय

जमदग्नि के पुत्र श्री परशुराम ने तब भगवती कुमारी के अद्भुत आख्यान को सुनकर विस्मित हो प्रणाम कि
और अपने गुरुदेवसे मधुर वचन बोले "हे भगवन् ! आपने महान् आश्चर्य कारक अभूतपूर्व भगवती त्रिपुराकी महिमा
बढ़ाने वाला आख्यान बताया मैंने इससे पूर्व कभी भी ऐसा (विलक्षण वर्णन) नहीं सुना था। जो भगवती ब्रह्मा, वि
और शंकर द्वारा इस प्रकार पूजित और वन्दित हुई क्योंकि तब वही त्रिमूर्त्ति स्वरूपा सबसे अधिक है विश्वजननी है। जो
हो ! मैंने आज आपके मुख से कहे हुए जो भगवती के आख्यान का अमृत रस कानों से सुनकर पान किया
वह अपने अन्तः करण के सब रोगों को नष्ट करने वाला है ॥१-४॥ मुझे आप श्रीमान् गुरुदेव ने कृपाकर अ
अनुग्रह पात्र बनाया; मैं धन्य हो गया, कृतकृत्य हो गया हूँ जो आप गुरुवर्य मुझ पर सन्तुष्ट हैं ॥ ५
इस प्रकारके भगवती की सुन्दर कथारूपी सार अमृत को पीते हुए मुझे भूख, प्यास, थकावट और निद्राका जरा
भी अनुभव नहीं होता ॥६॥ हे भगवन् ! आपके मुख रूपी चन्द्र से टपकने वाला श्रीमाता के कथारूपी अ
के सेवन से मेरी थोड़ी भी तृप्ति नहीं हो रही है बल्कि अधिकाधिक उस अखण्ड तत्त्व को जानने की जिज्ञासा प्रबल
प्रबलतम बन रही है ॥७॥ फिर श्री त्रिपुरा माता के लीला वैभव के वर्णनको सुनना चाहता हूँ सो हे प्रभो ! आ
कृपा करके मुझे बतावें" ॥८॥ इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर अत्यन्त उदारबुद्धि दत्तात्रेयने सन्तुष्ट हो श्रीपरशु

उवाच त्रिपुरादेव्या अवतारकथाः शुभाः। शृणु रामाऽभिधास्यामि त्रिपुरायाः कथाः शुभाः॥१०॥
या च श्रीत्रिपुरा प्रोक्ता परमाकाशरूपिणी। यस्यां सर्वमिदं विश्वं प्रविभक्तं प्रकाशते ॥११॥
सा चिदानन्दाऽद्वयाऽऽत्मरूपिणी परमेश्वरी। वागिन्द्रियमनोऽतीता साक्षिणी सकलाश्रया ॥१२॥
सा भक्तकृपया देवी नानाविधतनुक्रिया। तद्भेदगणने शेषः सहस्राऽऽस्योऽपि न प्रभुः ॥१३॥
तस्मात्प्रधानरूपाणि कानिचित्कथयामि ते। आद्या कुमारी तत्रोक्ता त्रिरूपाऽनन्तरा मता ॥१४॥
गौरी रमा भारतीति ततः काली च चण्डिका। दुर्गा भगवती पश्चात्प्रोक्ता कात्यायनी परा ॥१५॥
ललिता श्रीमहाराज्ञी तत्र पूर्णतमा मता। एतासां क्रमतो लीलाः शृणु वक्ष्यामि भार्गव ॥१६॥
तत्र प्रोक्ता कुमारी सा या स्तुता विधिमुख्यकैः। भूयः सा त्रिपुरा देवी त्रिरूपा समजायत ॥१७॥
तत्तेऽभिधास्ये परममाख्यानं परमाद्भुतम्। पुरा सर्गाऽऽदिसमये त्रिपुरा चितिरूपिणी ॥१८॥
एकाऽऽसीन्नेतरत्तत्र तस्याः किञ्चिदपि स्थितम्। सा तथारूपिणी शक्तिः स्वस्वातन्त्र्यवशेन तु ॥१९॥
सृष्ट्युन्मुखी यदा जाता तदेच्छा समजायत। इच्छाया ज्ञानमुत्पन्नं क्रिया च तदनन्तरम् ॥२०॥

को अत्यधिक श्रद्धायुक्त देख कहा, "हे परशुराम ! त्रिपुरा देवीकी मङ्गलमय अवतार कथाओंको तुम्हें सुनाऊँगा॥९-१०॥ जो श्री त्रिपुरा को परमाकाश रूपा कहा गया है जिसमें यह सारा विश्व प्रकृष्ट रूप से विभक्त हुआ सा प्रकाशित है वह चिदानन्द अद्वय आत्मस्वरूपवाली परमेश्वरी, वाणी, इन्द्रिय और मन से अगोचर है, सम्पूर्ण प्राणी वर्ग की साक्षिभूता है सब की आश्रय है ॥११-१२॥ वही देवी अपने भक्त के ऊपर अनुग्रह करके विविध शरीरों की क्रिया धारण करती है; उन सब का भेद बताने में हजार मुँह वाला शेष नाग भी सक्षम नहीं है ॥१३॥ इसलिये भगवती के कुछ प्रधान रूपों को तुम्हें बताता हूँ। सर्व प्रधान आद्या कुमारी बताई गई है तदनन्तर त्रिरूपा मानी गई है ॥१४॥ गौरी, रमा और भारती इस प्रकार क्रम है;तब काली चण्डिका दुर्गा भगवती कही जाती है बाद में कात्यायनी परमा देवी है ॥१५॥ ललिता श्रीमहाराज्ञी उन में पूर्णतम मानी जाती है। इन की क्रमशः लीलायें तुम्हें बताता हूँ हे परशुराम ! सुनो ॥१६॥ जो कुमारी कही गई है जिसे ब्रह्मादि-देवगण ने स्तवन वन्दन द्वारा प्रसन्न किया वही फिर त्रिपुरा देवी तीन रूपों वाली हो गई ॥१७॥ उसके सर्वश्रेष्ठ परम अद्भुत आख्यान को मैं तुम्हें सुनाता हूँ। प्राचीन काल में सृष्टिके आदि समय में चिति-रूपवाली त्रिपुरा एक ही रही उससे इतर कोई भी स्थित नहीं था। वह उस रूपवाली महाशक्ति अपनी स्वातन्त्र्यशक्तिके द्वारा जब सृष्टि रचनेके लिये उद्यत हुई तो "एकोऽहं बहुस्याम्" की इच्छा प्रादुर्भूत हुई। इच्छासे ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसके अनन्तर क्रिया हुई। तब तीनों कारणभूत देवगणके ईक्षण से तीन मूर्तियाँ हो गईं। इच्छामय पशुपति,ज्ञानात्मा स्वयं विष्णु तथा क्रियात्मक ब्रह्मा हुए;उनकी भावना शङ्करीने की

ततस्त्रिमूर्त्तयो जातास्त्रितयाद्वेतेक्षितात्। इच्छामयः पशुपतिर्ज्ञानात्मा हरिरेव च ॥२१॥
ब्रह्मा क्रियात्मकस्तान् सा भावयामास शङ्करी। ते निसर्गमहावीर्याः सत्यसङ्कल्पशालिनः ॥२२॥
तपः सुपरमं चक्रुर्यतचित्तेन्द्रियक्रियाः। तदा न रात्रं न दिवा सूर्यो न च तारकाः ॥२३॥
न भूमिर्न जलं तेजो वायुर्वा न दिशः कचित्। न निमेषो युगश्चाऽपि स्थितं सर्वं नभोमयम् ॥२४॥
स्वयम्प्रभास्तु ते देवा नभोनिलयसंश्रयाः। महता तपसा युक्ताः समाधये सुनिश्चलाः ॥२५॥
अनेकयुगपर्यासकालेऽतीते पराम्बिका। पराऽऽकाशमयी तत्र विधातारमुवाच ह ॥२६॥
वत्सोत्तिष्ठ विधे किं ते तपसा कर्त्तुमिच्छसि। सृज लोकान् सभुवनानतस्त्वं जनितो मया ॥२७॥
इत्यादिष्टः पराशक्त्या जगत्स्रष्टुं मनो दधे। अहं कुत्र सृजामीति चिन्तयन् समपश्यत ॥२८॥
तदा दृष्टो महाकाशः सर्वशून्यमयोऽमलः। अनन्तविस्तरोऽनादिर्नाऽन्तं तस्योपलक्षितम् ॥२९॥
अवकाशोऽस्ति मे सृष्टेरिति मत्वा पितामहः। व्यचलत्किञ्चिदङ्गेन स्पर्शं तत्रोपलब्धवान् ॥३०॥
स्वाऽङ्गस्य चलनादेव स्पर्शाद्वायुर्व्यजृम्भत। वायोर्वेगादूष्मणस्तु प्रादुर्भावोऽऽभवत्तदा ॥३१॥

वे जन्मजात ही महापराक्रमशील सत्यसङ्कल्प रखनेवाले थे उन्होंने अपने चित्त, इन्द्रियों और क्रियाओं का दमन कर एकाग्र मन से अति उत्कृष्ट तप किया ॥ १८-२२॥ ॥ उस समय न रात्रि, न दिन, न सूर्य और न तारागण थे, न भूमि रही, न जल,तेज,वायु अथ च दिशायें भी नहीं थी। न निमेष का पता था और न युग का ही। सब कुछ नभोमय हो था ॥२३-२४॥ वे तीनों ब्रह्मा विष्णु और पशुपति स्वयं प्रकाशमय थे अन्तरिक्ष को आवास बना स्थित थे। उन्होंने खूब दीर्घकाल तक अति उग्र तपस्याकी और समाधिमें पूर्ण स्थिर हो मग्न हो गये ॥२५॥ जबअनेक युग-युगों का पर्याप्त समय बीत चला तब परमाकाशमयी इस विलक्षण शक्ति ने ब्रह्मा को कहा, "हे वत्स ! उठ, हे विधातः ! तू अपनी तपस्या द्वारा क्या करना चाहता है सम्पूर्ण भुवनों सहित लोकोंको तू रच;इसीके लिए इच्छा की तो मैंने तुझे प्रगट किया है।" इस प्रकार पराशक्ति के आदेश को पाकर ब्रह्माने संसारको रचने के उपक्रम का विचार किया कि मैं कहाँ सृष्टिकी रचना करूँ इस प्रकार सोचते हुए उसने ध्यान लगाया ॥२६-२८॥ उस समय सर्व शून्य (परिपूर्ण) मय निर्मल महाकाशको देखा जो अनन्त विस्तारवाला अनादि और अन्तहीन दीखता था। मेरी सृष्टि का यहीं पर अवकाश है ऐसा मानकर पितामह कुछ चले तो उनके अङ्गसे किसी वस्तुके साथ स्पर्श मिला॥२९-३०॥ अपने अङ्गके चलनेसे ही स्पर्श वायु का विजृम्भण हुआ; तब वायु के वेग से ऊष्मा (गरमी-तेज) का प्रादुर्भाव हुआ ; ऊष्मा के रूप से संयुक्त अग्नि को ब्रह्मा ने देखा। अग्नि के बाद वह जल ठण्ढक पहुंचाने वाला, रस (तरलता) से पूर्ण, शीघ्र गमनशील, [illegible]

ऊष्मणो रूपसंयुक्तमग्निं प्रेक्षितवान् विधिः। ततो वह्नेस्तु परितो शीतसंस्पर्शसंयुतम् ॥३२॥
रसाढ्यं तलिलं स्यन्दि स्नेहसंयुक्तमेव च। तत्र गन्धस्तु संदृष्टोऽनन्तरं तन्मलेन तु ॥३३॥
पृथिवी ददृशे तस्य कठिना धारणक्षमा। दृष्ट्वैतावज्जगत्स्रष्टा चाऽस्ति मत्सृष्टिधारिणी ॥३४॥
अस्यां सृजामि भुवनं नानातनुविचित्रितम्। इति मत्वा तत्र सृष्टिं वितेने जगदीश्वरः ॥३५॥
श्रुत्वैवं वचनं तस्य दत्तात्रेयस्य भार्गवः। प्राह संशयितस्वान्तो मधुराऽक्षरया गिरा ॥३६॥
भगवन्नत्र मे चित्तमन्तं नैवाऽधिगच्छति। बहुशङ्काऽऽस्पदं वाक्यं श्रुत्वा तव विचित्रितम् ॥३६॥
आकाशमुखभूतानि सिद्धवद्धातुरीक्षणात्। अकर्तृकाणि मे भान्ति कर्त्ता नाऽन्यो यतः स्थितः ॥३८॥
कथं तेषां जगद्धात्रा विना संज्ञापकं तदा। शब्दः प्रवर्तितस्तस्मात्पूर्वं भूतसृतेः कथम् ॥३९॥
पाञ्चभौतिकदेहस्य सम्बन्ध इति शंस मे। न मे संशयनीहारहरणेऽन्यत्प्रगल्भते ॥४०॥
त्वद्वाक्यचण्डकिरणाद्भगवन् करुणानिधे!। अपृष्टमपि शिष्याय प्रपन्नाय दयालवः ॥४१॥
गुरवः प्राहुरत्यन्तशुद्धचित्ता भवादृशाः। इति पृष्टो भार्गवेण दत्तः प्रीतः कृपानिधिः ॥४२॥

(चिकनाहट)वाला रहा और उसके बाद उस जलके मलसे युक्त गन्धको देखा जो पृथ्वी थी उसकी कठिन गाढता धारण करनेकी क्षमतावाली है अतः इसमें विविध शरीरोंकी विचित्रतावाले भुवनोंको बनाऊंगा। यह मानकर वहां जगदीश्वरने सृष्टि की रचना का आरम्भ कर दिया।" महर्षि दत्तात्रेय के वचन सुनकर अपने अन्तः करण में सन्देह करता हुआ परशुराम विशेष मधुर वाणी में बोला, "हे भगवन्! इस विषयमें आपने कई शङ्कास्पद विचित्र भावों से युक्त वचन कहे हैं उनसे मेरा मन सिद्धान्त बात को नहीं जान रहा है। आकाश प्रधान जो ये पंच महाभूत हैं वे धाता ब्रह्मा के देखने मात्रसे ही सिद्ध पदार्थके समान मुझे कर्ता विना के लग रहे हैं, क्योंकि इनका कर्त्ता कोई नहीं॥३१-३७॥ जब उनका बिना जगत् के सर्जन करने वाले ब्रह्माजी को छोड़ संज्ञापन करने वाला होता नहीं तब भूतसृष्टि के पहले कैसे शब्द का परिवर्त्तन हुआ और उसका (भूतसृष्टि का) पांचभौतिक देह के साथ सम्बन्ध कैसे हुआ? सो आप मुझे कहिए ॥३८-३९॥ ॥ मेरे संशयरूपी कुहरे (नीहार)को दूर हटानेमें अन्य कोई भी आपसे अधिक प्रगल्भ नहीं है। हे करुणानिधान प्रभो! आपके वचनरूपी सूर्य की किरणों से मेरा संदेहरूपी कुहरा हटेगा अन्य किसीसे भी नहीं। आप जैसे अत्यन्त शुद्ध निर्मल चित्तवाले दयालु गुरुजन हैं जो बिना पूछे हुए भी अपने शिष्य पर कृपा कर आपन्न (शरण में जाने पर) होने पर सब तत्त्व बतला देते हैं" ॥४०-४१॥ ॥

इस प्रकार श्रीपरशुराम द्वारा भगवान् दत्तात्रेय से पूछने पर वह कृपानिधि प्रसन्न हुए। उपदेश करने वालों में

प्राह सूनृतया वाचा सम्बोध्य वदतां वरः। राम ! बुद्धिमतां श्रेष्ठ प्रश्नस्तेऽतिविशारदः ॥४३॥
त्रिधा स्थितस्तन्मयाऽग्रे प्रोच्यतेऽवसरे स्फुटम्। न ज्ञातुं शक्यते सद्यस्त्वया तस्मात् स्थिरीभव ॥४४॥
असाम्प्रतं तु शिष्याय वदन् स्यान्मुग्ध एव सः। विपरीतं प्रसिध्येत चाऽसाम्प्रतनिरूपणात् ॥४५॥
असाम्प्रतस्य श्रवणाद्विनश्येत्कटकारवत्। इतिश्रुत्वा गुरोर्वाक्यं पुनराह भृगूद्वहः ॥४६॥
स्वामिन् किमुक्तं भवता कटकारः कथंविधः। किं वृत्तं तस्य कस्माद्वै विनष्टस्तन्निवेदय ॥४७॥
एवं पर्यनुयुक्तः सोऽवदद्विद्वच्छिरोमणिः। शृणु राम ! पुरा वृत्तं कटकारसमाश्रयम् ॥४८॥
आसीत्कश्चित्कलिङ्गेषु कुवलाख्यो यदोः पुरे। कटकारोऽतिनिपुणः कटकर्मसुशिक्षितः ॥४९॥
कृत्वा विचित्रचित्राणि कटानि कुवलाभिधः। राज्ञे निवेदयत्तेन राजा तुष्टः सुशिक्षया ॥५०॥
तस्मै ददौ धनं भूरि तेनाऽऽढ्यः समजायत। धनेन तेन कटकृत् ब्राह्मणाऽऽराधनोद्यतः ॥५१॥
श्रुत्वा क्वचित्पुराणेषु ब्राह्मणानां प्रशंसनम्। कदाचित्कुवलः पुण्यकथातत्परतः स्थितः ॥५२॥

श्रेष्ठ श्रीदत्तात्रेय ने उसे सम्बोधन कर अत्यन्त कोमल वाणी में कहा "हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राम ! तेरा प्रश्न अत्यन्त युक्ति विशारद है; तीन प्रकार से जो तूने पूछा है अवसर आने से तुम्हें सामने ही समझाता हूँ। यह कुछ कठिन अवश्य है तू जो तत्काल समझ जायगा यह शक्य सम्भव नहीं अतः स्थिर चित्त हो जा। जो गुरु अपने शिष्यके लिये असम्बद्ध बातें बताता है वह मुग्ध भावापन्न गुरु है और प्रश्नके साथ अप्रासङ्गिक बातें बतानेसे सदा ही विपरीत फल होता है ।४५॥ असन्दर्भ (प्रकरण को छोड़ी बात) का प्रसङ्ग जोड़नेसे जैसे चटाई बनानेवाले कटकारका सब विपरीत हो या वैसे ही सब विनष्ट होजाता है। इस प्रकार श्री गुरुदेव के वाक्य सुनकर फिर भृगुवंशी श्री परशुराम बोले " हे स्वामिन् ! आपने क्या कहा ? वह कट (चटाई) बनाने वाला कैसा था ? उसे क्या हुआ ? किस कारण से वह नष्टकार्य हुआ सो आप मुझे कहिये" ॥ ४७ ॥ इस प्रकार पूछने पर विद्वानों के शिरोमणि (पण्डितों में अग्रणी) श्री दत्तात्रेय बोले, "हे राम ! जो पूर्व समय में कटकार (चटाई बनाने वाले) के विषय में घटना घटी सो तू सारी सुन कलिङ्ग देश में राजा यदु के नगर में कुवल नामक चटाई बुनने वाला अत्यन्त निपुण कटकर्म में भली प्रकार शिक्षा प्राप्त व्यक्ति रहता था ।४८॥ वह विशिष्ट चित्र विचित्र कट बनाकर राजा को भेंट देने को गया। उस की इस की कारीगरी से प्रसन्न होकर राजा ने उसे प्रभूत धन भेंट में दिया जिससे वह पूर्ण धनी बन गया। उस धन से चटाई बनाने वाला ब्राह्मणों की सेवा में लगा कारण उसने कहीं पुराणों में उनकी प्रशंसा सुनी थी। एक बार कुवल पुण्य कथायें बहुत ध्यानसे सुन रहा था तो उसने अपने सामने कथा सुनानेवाले से अध्यात्मविचार के

तत्राऽध्यात्मविचारस्तु प्रवृत्तस्तेन संश्रुतः। न तद्भेदाऽतिसूक्ष्मत्वात्पुनः पुनरपि श्रुतम् ॥५३॥
तदाऽऽप्तवचनं विप्रमेकान्ते सङ्गतः क्वचित्। भगवन् यत्त्वया प्रोक्तमध्यात्मविषयं वचः ॥५४॥
तदतीव गभीरार्थं मया भूयोऽपि संश्रुतम्। तत्र सारं समाकृष्य मम धारयितुं क्षमम् ॥५५॥
वद ब्रह्मन्करुणया दृष्ट्या पश्य सकृत्तु माम्। प्रार्थितः कुवलेनैवं प्राह संक्षिप्य सारतः ॥५६॥
शृणु ते कथयिष्यामि कुवलाऽध्यात्मसंग्रहम्। अक्षार्थाद्विमुखः शान्तो दृश्यं मत्वा दृगात्मकम् ॥५७॥
ज्ञात्वा सर्वं समं पश्चादागतं न त्यजन्सदा। अनागतमनिच्छन्वै सन्तुष्टो निर्भयः सदा ॥५८॥
विचरेत्सङ्गरहित इति ते सुनिरूपितम्। एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य कुवलो मोहितोऽविदन् ॥५९॥
समज्ञानेन विप्रेषु भक्तिशैथिल्यमाश्रितः। आढ्यः सदा सुखंप्राप्तान्कामान्सेवन्कथादिकम् ॥६०॥
देवतासेवनञ्चाऽपि त्यक्त्वा पापभयं तथा। संस्थितो नास्तिकप्रायः प्राप्तवान्धमां गतिम् ॥६१॥
एतत्ते भार्गव प्रोक्तं वृत्तं कटकृतो मया। तस्मादकाले सम्प्रोक्तो दोषाय परिकल्पते ॥६२॥
एवं भुवं समालोक्य जगतां प्रपितामहः। मनसैवाऽसृजत् सर्वान् सचराऽचरमानुषान् ॥६३॥

को सुना। वह वराक कटकृत् अतिसूक्ष्म विचारवाले उस आख्यान को वारम्वार सुनकर भी समझ न पाया ॥४९-५३॥ फिर एकान्त में अपने श्रद्धेय उस ब्राह्मण से कही बात चलने पर उसने पूछा "हे भगवन् आपने जो अध्यात्म विषय को लेकर वर्णन किया है उस गम्भीर अर्थ वाले प्रकारण को मैंने वार वार सुना है उसमें से मैं अपने लिये सार ग्रहण नहीं कर सका। अब आप कृपा करके हे ब्रह्मन्! मुझे संक्षेप में सार बात बतला दें।" इस प्रकार कुवल ने जब प्रार्थना की तो ब्राह्मण बोला "हे कुवल, सुन तुम्हें अध्यात्म संग्रह बताता हूँ। जो कुछ इन्द्रियों के विषय हैं उनसे अपना अनुराग हटा ले और शान्त हो सब दृश्य वस्तुओं में सम भाव बरत सर्वत्र समदर्शन कर प्रत्यक्ष आई को छोड़े नहीं और न आने वाली की इच्छा न करे इससे सदा ही सन्तुष्ट हो निर्भय बन सङ्ग (सांसारिक विषयों की आसक्ति) रहित हो विचरण करे यह तुझे भली प्रकार बता दिया।" इस प्रकार उस ब्राह्मण की सारभरी बात को न जानती हुई कुवल समज्ञान से मोहित हो विप्रगण में जो भक्ति रखता था उसमें शिथिलता करने लगा। अपने धन से सुख पूर्वक सांसारिक भोगों को भोगता हुआ वह कथा, भक्ति, श्रद्धा और देवतागण की निःस्वार्थ सेवा एवं पाप के भय को छोड़ कर नास्तिक जैसा ही बन गया और अधम गति को प्राप्त हुआ। 'हे भार्गव! यह मैंने तुम्हें कटकार (टोकरी बनानेवाले) का सारा वृत्तान्त कहा इसलिये असमय में कही हुई बात दोषका कारण बन जाती है" ॥५४-६२॥ इस प्रकार भूमण्डल को देख संसार के प्रपितामह ब्रह्मा ने सम्पूर्ण स्थावर जंगम सृष्टि के प्राणीमात्र को मनुष्यों

मनुष्यान्यक्षगन्धर्वान्सिद्धविद्याधरकिन्नरान् । रक्षांसि दानवान्दैत्यान्भूतप्रेतपिशाचक
देवान्पितॄन्सुराऽधीशान् पशूनश्वानजान्खगान् । भूचराञ्जलजातांश्च तृणवीरुद्द्रुमांस्त
भुवनान्यपि चित्राणि विधिरेवं ससर्ज वै । सृष्टं सृष्टं क्षणेनैव सर्वं तत्राऽवसीद
दृष्ट्वाऽवसन्नां सृष्टिं स्वां पुनरेव मनो दधे । तपस्यासु तदाऽतीते बहुकाले पराम्बिक
प्राहाऽशरीरवचसा विधे किं तपसि स्थितः । मया सृष्टौ नियुक्तः सन्सृष्टिं त्यक्त्वा किमास्थि
तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह विधाताऽऽकाशरूपिणीम् । मातर्मया सृज्यमानं क्षणादेवाऽवसीद
तत्पालने नियुङ्क्ष्वैनं विष्णुं लोकेश्वरं शिवे । विमृश्य ब्रह्मवचनं सा पराऽऽकाशरूपि
आकाशवाण्या तं विष्णुं प्राह सा परमेश्वरी । उत्तिष्ठ विष्णो तपसो विरमाऽऽचक्ष्व मद्व
पालनार्थं मया सृष्टः स त्वमाज्ञावशेन मे । विधिसृष्टं पालयस्व स्वात्मशक्तिं समाश्रि
इति वाक्यं समाकर्ण्य पराम्बाया हरिस्तदा । नमस्कृत्य तथेत्युक्त्वा जगत्पालनतत्प
स्वात्मशक्तिं समाश्रित्य हरिर्योगेश्वरो जगत् । तत्र तत्र स्थितं सर्वमपालयदशेष

सहित बनाया । इसमें मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, किन्नर, रक्षोगण, दानव, दैत्य, भूत, प्रेत, देवता, पितृगण, सुराधिपति लोग, पशु, अश्व (घोड़े) बकरा बकरी, पक्षी, भूचर और जल में उत्पन्न प्राणी स लता, बीज से उत्पन्न वृक्ष आदि तथा अन्यान्य विचित्र भुवनों की विधि ने रचना की । यह रचा हुआ क्षणमात्रमें ही साराका सारा स्थिर नहीं रहा वहीं समाप्त हो गया॥६३-६६॥ इस प्रकार सृष्टिको अवसन्न (स कर ब्रह्मा ने तपस्या करने की मन में ठानी । बहुत समय के बाद पराम्बिका ने दिव्य वाणी में कहा, "हे ब्रह्म क्यों करते हो ?" इसे सुन विधाता ने आकाशरूपा पराम्बा को सम्बोधन कर कहा "हे मातः मेरी स सृष्टि क्षण में ही नष्ट हो जाती है उसके पालन करने के लिए हे शिवे ! लोकेश्वर विष्णुको नियुक्त क ॥६७-६९॥ ब्रह्मा के कथन को भली प्रकार विमर्श कर आकाश रूपी पराशक्ति ने आकाशवाणी से सम्बोधित किया, "हे विष्णो ! तू उठ तपस्या से विराम ले और सुन अपनी आज्ञा के वशीभूत रखने के लि तुम्हें पालन करने (सृष्टि के) लिए ही बनाया है अतः ब्रह्मा के रचे हुए संसार को आत्म-सृष्टि का आश्र पालन कर ।" इस प्रकार श्रीविष्णु तब पराम्बा का वाक्य सुन कर भगवती को प्रणाम कर "आपकी जैसी यह कह जगत् के पालन में तत्पर हो अपनी आत्मशक्ति का आश्रय लेकर योगेश्वर ने उन उन स्थानों में सारे जगत् का समग्र रूप से पालन किया ॥७०-७४॥ इस प्रकार ब्रह्मा से रची गई और विष्णु द्वारा पालन

एवं जगत्सृज्यमानं पाल्यमानञ्च विष्णुना। समवर्द्धत वर्षाऽम्बुस्रोतोभिर्ह्रदतोयवत् ॥७५॥
आपूरितं जगत्सृष्ट्या प्रत्यहं वर्धमानया। भूचरैर्भरिता भूमिः खेचरैर्भरितं नभः ॥७६॥
यादोभिर्जलमाक्रान्तं कृमिकीटैर्विलं तथा। तरुगुल्मादिभिस्तद्वद्व्याप्ताऽद्रेर्दुर्गभूमिकाः ॥७७॥
श्वापदैर्मृगव्याघ्राद्यैः संव्याप्तानि वनानि च। मशकैर्मक्षिकाद्यैश्च व्याप्तं सर्वान्तरं तदा ॥७८॥
एवं जगति संव्याप्ते निरन्तरतया स्थिते। आक्रन्दस्समभूत्तत्र प्राणिनां पीडिताऽऽत्मनाम् ॥७९॥
विदीर्यमाणं ब्रह्माण्डमासीत्प्राणिभिराततम्। बीजपुष्ट्या दाडिमानां यथा पक्वफलं तथा ॥८०॥
एवं जाते निरुच्छ्वासे लोके संमृदिताऽऽकुले। दृष्ट्वा विधिश्चिन्तयानो हा कष्टमिति निःश्वसन् ॥८१॥
पुनरातिष्ठत तपो विधिर्लोकहितेप्सया। तपसा तस्य सन्तुष्टा पुनराह पराम्बिका ॥८२॥
आकाशवाण्या धातारं हर्षयन्ती महेश्वरी। विधे पुनः किं तपसि स्थितस्तद्वद मा चिरम् ॥८३॥
अभीष्टं यदहं तत्ते विधास्यामि न संशयः। इत्युक्तः प्राह लोकानां कर्त्ता धाता पराम्बिकाम् ॥८४॥
मातर्मया सृज्यमानं पाल्यमानं गदाभृता। व्याप्तं प्राणिभिरत्यन्तं पीडितं सकलं जगत् ॥८५॥

पुष्ट की गई सृष्टि भली प्रकार बढ़ने लगी जैसे वर्षा से जल के स्रोतों से सरोवर का जल बढ़ता है ॥७५॥ प्रतिदिन बढ़ती हुई सृष्टि से सारा जगत् प्राणिमात्र से बराबर भर गया। पृथ्वीचारी प्राणियों से भूमि पूर गई और आकाशचारी जीवों से आकाश भर गया। ॥७६॥ जलचर जन्तुओं से जल भाग पूर्ण हो गया, कृमियों एवं कीड़ों से बिल भर गये; वृक्ष, झाड़ियों और तत्तत् वन के घासों वनस्पतियों से पर्वत स्थित दुर्गम भूमियां व्याप्त हो गई ॥७७॥ मृग, व्याघ्र, सिंह, हाथी आदि चौपाये जन्तुओं से सब वन प्रदेश भर गया तथा मच्छर और मक्षिका तथा सूक्ष्म जन्तुओं से तब अन्दर के सब स्थान व्याप्त हो गये ॥७८॥ इस प्रकार निरन्तर सृष्टि के उत्पादन और पालन के क्रमके चलते रहने से जगत् में व्याकुल आत्मा प्राणियों का बहुत कोलाहल हुआ ॥७९॥ प्राणियों से भरे पूरे ब्रह्माण्ड जैसे विदीर्ण हो रहा हो, बीज की पुष्टता होने से दाडिम के जैसे पके हुए फल होते जाते हैं वैसे ही प्राणीगण के बढ़ने से अधिकाधिक सम्मर्द (भीड़भाड़) बढ़ने पर लोक में श्वांस लेना दूभर होने लगा। इसे देख ब्रह्मा चिन्ता करते करते 'हा दुःख है' इसतरह निःश्वास छोड़ने लगा ॥८०-८१॥ लोकों के हित कामना से वह फिर तप करने लगा; उसके तप से सन्तुष्ट हो पुनः अम्बिका ने कहा ॥८२॥ महेश्वरी आकाशवाणी से ब्रह्मा को हर्षित करती हुई प्रबोधन करने लगी "हे विधे! तू फिर तपस्या क्यों करता है इसे शीघ्र कह? जो तुझे अभीष्ट हो सो मैं अवश्य ही कर दूंगी" ॥८३॥

इस प्रकार कहने पर लोकों के कर्त्ता धाता (ब्रह्मा) ने पराम्बिका को प्रार्थना की ॥८४॥ "हे मातः! मेरे द्वारा रची हुई और विष्णु द्वारा पालित सृष्टि प्राणियों से भर गई है इससे जगत् को अत्यन्त पीड़ा (कष्ट) हो रही है।

अनन्तरं विधेयं यत्तदाज्ञापय शङ्करि। एवमुक्ता जगद्धात्री प्राह रुद्रं महेश्वरम् ॥८६॥
रुद्राऽलं तपसा शीघ्रमुत्तिष्ठ मम शासनात्। विधिसृष्टं प्राणिगणं संहर्त्तुं त्वमिहाऽर्हसि ॥८७॥
इति श्रुत्वा जगन्मातुर्वचनं खाश्रितं तदा। नमस्कृत्वा पशुपतिस्तां परब्रह्मरूपिणीम् ॥८८॥
ओमित्याहाऽथ जगतस्संहारे कृतनिश्चयः। कालनेत्रोन्मेषणेन युगपद्भस्मसात्करोत् ॥८९॥
तद्दृष्ट्वा कृत्यमाश्चर्यं विधाता जगतः क्षयम्। असन्तुष्टः प्राह रुद्रं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥९०॥
अलं महेश भवतः संहृतेरतिचित्रितात्। बहुकालेन सृष्टं मे त्वया भस्मीकृतं क्षणात् ॥९१॥
तत्पुनस्तप आतिष्ठ लोकानां स्वस्तयेऽधुना। इति सम्प्रार्थितो धात्रा पुनस्तपसि संस्थितः ॥९२॥
ततश्चिन्तासमाविष्टः सृष्टिर्मे स्यात्कथन्विति। ततः प्रजापतीन् ब्रह्मा स्वांऽशेनाऽसृजत प्रभुः ॥९३॥
दक्षकश्यपमुख्यान्वै सृष्टास्तैः प्राणिनस्तदा। विविधास्तैः समग्रं वै जगद्व्याप्तं चराऽचरैः ॥९४॥
तदा क्रमेण जगतां संहारार्थमचिन्तयत्। स्तुत्वा रुद्रं पशुपतिं प्रसाद्य प्रपितामहः ॥९५॥
तस्यांऽशेनाऽसृजन्मृत्युं संहारे तं न्ययोजयत्। मृत्यो ममाऽऽज्ञया चैतान्संहर क्रमशोऽखिलान् ॥९६॥

इसके बाद क्या करना चाहिए सो शङ्करि! आप आज्ञा करो।" इस तरह कही जाने पर जगत् की धारण करनेवाली महेश्वरी ने महेश्वर रुद्र से कहा ॥८६॥ "हे रुद्र! अपनी तपस्या से अब विराम लो और मेरी आज्ञा से शीघ्र उठो। ब्रह्मा की इस रची प्राणियों की सृष्टि को तू संहार कर" ॥८७॥ इस प्रकार तब जगन्माता के आकाशवाणी से कहे हुए वचन को सुनकर पशुपति रुद्र ने परब्रह्मस्वरूपिणी को नमस्कार कर 'आपकी जो आज्ञा पालन की जायगी' कहकर तदनन्तर जगत् के संहार का निश्चय कर रुद्र ने अपने भालनेत्र के खोलने मात्रसे ही बार में उसे भस्मसात् कर दिया (जला डाला) ॥८८-८९॥ उस जगद्के क्षयके आश्चर्यजनक कृत्य को देखकर ब्रह्मा असन्तुष्ट हो रुद्र को प्रणाम कर अञ्जलिबांध कर कहा ॥९०॥ "हे महेश आप अपनी अति विचित्र संहार लीला से विरत होइये।" बहुत काल से जो मैंने रचा उसे आपने क्षणमात्र में ही भस्म का ढेर बना दिया ॥९१॥ अब फिर लोकों के मंगल के लिए पुनः तपस्या करें। इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर रुद्र फिर तपस्या करने लगे तब चिन्ता से आकुल ब्रह्मा यह सोचने लगे कि मेरी सृष्टि कैसे रहे। अनन्तर प्रभु ब्रह्मा ने अपने अंश से प्रजापतियों को रचा जिनमें दक्ष कश्यप प्रमुख रहे। इन्होंने तब विविध प्राणियों की रचना की जिससे स्थावर और जङ्गम से सब सृष्टि फिर भर गई ॥९२-९४॥ फिर जगत् के प्राणियों का संहार क्रम से हो इसलिए प्रपितामह ब्रह्मा पशुपति रुद्र की स्तुति कर उन्हें प्रसन्न कर लिया ॥९५॥ उसी के अंशसे मृत्युका सर्जन किया और उसे संहार का

मया त्वमेतदर्थं वै सृष्टः संहृतिहेतवे । तच्छ्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं मृत्युः प्राह प्रणम्य तम् ॥९७॥
न संहर्त्तुमिहेच्छामि भगवन्क्षन्तुमर्हसि । शपिष्यन्ति जना मां वै न मा क्रौर्ये नियोजय ॥९८॥
बहुधैवं प्रार्थितोऽपि न तद्ब्रह्माऽनुमन्यत । प्रतिषिद्धस्तत्र धात्रा तपः परममास्थितः ॥९९॥
वर्षाणामयुतं तत्र पादाङ्गुष्ठसमाश्रयः । शीर्णपर्णाशनो दान्तस्तदा लोकसृडीश्वरः ॥१००॥
सुप्रसन्न उवाचैवं मृत्योऽहं तपसा तव । तुष्टः प्रतीच्छ यन्मत्तो वरं वाञ्छितमस्ति तत् ॥१०१॥
तच्छ्रुत्वा प्राह धातारं मृत्युर्नत्वा कृताञ्जलिः । भगवन्यदि मे तुष्टस्तदाऽऽज्ञापय मां विभो ॥१०२॥
नेच्छाम्यहं सुसंहर्त्तुमेतदेवाऽभिवाञ्छितम् । तदाकर्ण्य प्राह विधिर्मृत्यो नैतद्भविष्यति ॥१०३॥
नासीन्ममाऽनृता वाणी संहरेति पुरोदितम् । अन्यद्वरं प्रतीच्छाऽऽशु यत्ते मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥१०४॥
तच्छ्रुत्वाऽतिभयान्मृत्युः प्रारुदत्सहसा तदा । रुदतस्तन्नेत्रयुगादश्रुधाराऽभिजायत ॥१०५॥
तद्गृहीत्वाऽञ्जलौ धाता व्यसृजद्बहुधा भुवि । ततो रोगा बहुविधा जाता विविधमूर्त्तयः ॥१०६॥
तदा विधिरुवाचेदं मृत्यो मा क्लेशमावह । इमे रोगाः समुत्पन्नास्तव साहाय्यकारणात् ॥१०७॥

नियुक्त कर कहा "हे मृत्यो ! मेरी आज्ञा से तुम इन सब का क्रम क्रम से संहार कर दो मैंने तुम्हें संहार करने के लिए ही रचा है" इस ब्रह्मा के वचन को सुन कर मृत्यु ने उन्हें प्रणाम कर कहा, "हे भगवन् मैं संहार करना नहीं चाहता, आप मुझे क्षमा कीजिये ; निश्चय ही मुझे लोग शाप देंगे । अतः आप मुझे इस क्रूर कार्य में मत लगाइये" ॥९६-९९॥ बहुत बार इस प्रकार प्रार्थना करने पर भी ब्रह्मा ने उसकी बात नहीं मानी ब्रह्मा ने जब उसे मना किया तो वह परम तप करने लगा । उसने पैर के अंगूठे के बल खड़े रह कर सूखे पत्तों का आहार कर संयमपूर्वक दशहजार वर्ष तक तपस्या की । तब लोक रचयिता ईश्वर ब्रह्मा ने अत्यन्त प्रसन्न होकर इस प्रकार कहा, "हे मृत्यो ! मैं तेरी तपस्या से बहुत सन्तुष्ट हूँ, तुम्हें जो अभीष्ट हो वह वर मुझसे मांगो' ॥९९-०॥ इसे सुन कर मृत्यु ने अञ्जलि बांध ब्रह्माजी को नमस्कार कर कहा, "हे भगवन् आप यदि मुझ पर प्रसन्न हैं तो विभो ! मुझे आज्ञा दीजिए मुझे तो यही अभीष्ट है कि मै संहार करना नहीं चाहता ।" उसे सुन कर ब्रह्मा बोले, "हे मृत्यो ! यह नहीं होगा जो मैंने पहले "प्राणियों का क्रम-क्रम से संहार करो" यह कहा था वह वाणी मिथ्या नहीं हो सकती । तू मुझसे अपना कोई और अभीष्ट हो सो वर मांग" इसे सुन कर तब मृत्यु अत्यन्त भय से अकस्मात् रोने लगा, रोते हुए उसके दोनों नेत्रों से आंसुओं की धारा बह निकली ॥१०२-१०५॥ उस धाराको अपनी अजलि में लेकर ब्रह्मा ने पृथ्वी पर बहुत रूपों से छोड़ दिया । उससे विविध आकृति वाले बहुत प्रकार के रोग हो गये ॥१०६॥ तब ब्रह्मा ने कहा, "हे मृत्यो ! तू किसी प्रकार का क्लेश

एते भवन्ति ते रोगाः पुरोगास्तेन ते जनाः। नाऽभिजानन्ति तस्मात्ते सिद्धं सर्वं समीहितम् ॥१०
तथेति प्रतिजग्राह तुष्टो मृत्युर्विधेर्वचः। तदेवं जगतः सृष्टिस्थितिसंहारसंस्थितौ ॥१०
ब्रह्मा हरिः पशुपतिः स्वे स्वे कर्मणि संस्थिताः। जगत्कृत्येन संश्रान्ता विषण्णा विगतप्रभाः ॥१०
उपतस्थुर्महादेवीं जगत्कारणकारणम्। तदा प्रसन्ना परमा प्रादुर्भूता महेश्वरी ॥१०
त्रिवर्णा द्वादशभुजा दशवक्त्रा महाप्रभा। पञ्चविंशतिनेत्राढ्या ब्रह्माण्डं व्याप्य संस्थिता ॥१०
कमण्डलुं स्वक्षमालां वरं त्राणं सुदर्शनम्। शङ्खं गदां पङ्कजातं मृगं शूलं परश्वधम् ॥१०
कपालं धारयन्ती सा त्रिमूर्त्येकस्वरूपिणी। तां दृष्ट्वा विधिमुख्यास्ते दण्डवत्प्रणता भुवि ॥१०
तत्पादभक्तिसञ्जातहर्षाऽश्रुभरितेक्षणाः। तद्दर्शनाऽऽनन्दितान्तःकरणास्तं समीडिरे ॥१०
नमामस्त्वां देवीं श्रितजनसमीहाऽधिकफल-प्रदानां लोकेशीमगणितमहावैभवयुताम्।
स्वलीलामात्रार्थप्रकटितविधात्रण्डविततिं परब्रह्माकारां परमशिवजीवाख्यधमनीम् ॥११०

मत कर, तेरी सहायता करनेके कारणसे ये रोग उत्पन्न किये गये हैं तेरे आगे-आगे होकर ये रहेंगे। वे लोग तुझे नहीं जान पायेंगे। इसलिए तेरा सब इच्छित कार्य सिद्ध हो गया।" ॥१०६-१०८॥ मृत्यु ने ब्रह्मा वचन सुनकर प्रसन्न होकर हां भर ली। इस प्रकार तब जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार की क्रिया में विष्णु और पशुपति रुद्र अपने-अपने कार्य में स्थित हो गये। जगत् के सर्जन, पालन और संहार कार्य से ये थके हुए, दुःखी और परिश्रम से प्रभा हीन हो जगत् के कारणोंकी कारण महादेवी की स्तुति करने लगे ॥१०९

तब भगवती परमा शक्ति महेश्वरी प्रसन्न हो प्रादुर्भूत हुई, वह तीन वर्णवाली, बारह भुजा धारणा की हुई मुखवाली अपने महातेज की कान्ति बिखेरती हुई पचीस नेत्रों से शोभा को बढ़ाती हुई ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर हुई कमण्डलु, सुन्दर अक्षमाला, वर, त्राण, सुदर्शन शङ्ख, गदा, कमल, मृग, शूल, परशु और कपाल (खप्पर) की हुई वह त्रिमूर्त्ति होने पर भी एक स्वरूप वाली विराजी थी ॥१११-११३॥ उसे देख ब्रह्मा विष्णु और भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। उस इष्ट देवता के चरण कमलों में भक्ति के कारण हर्ष गद्गद से उनकी आंखों में प्रेमके आंसू छलकने लगे। उस महाभगवती के दर्शनोंसे आनन्दित अन्तःकरण हो तीनों ही स्तुति करने लगे, "आपकी शरण में आये हुए पुरुषों को उनकी इच्छित वस्तु से अधिक फल देने वाली की लोकस्वामिनी, असंख्य महावैभव से युक्त भगवति ! आपको हमलोग प्रणाम करते हैं। अपनी लीला मात्रसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंको प्रकट करनेवाली परब्रह्माकारमयी परम शिवतत्त्व की जीव संज्ञावाली धमनी श्वास यन्त्र

विहाय त्वां देवीं क्षितिमुखशिवान्तात्मकगणे प्रमेये कालाग्निप्रमुखशिवपर्यन्तनिवहे ।
प्रमातॄणां तद्वत्स्थिरचरविभेदेऽपि सकले त्वया रिक्ते जाते भवति मृगतृष्णाजलविधिः ॥११७॥
महच्चित्रं देवि स्वयमिह जगद्भेदनिवहे स्थिता सम्व्याप्याऽपि प्रकटतरमूर्त्या ननु सदा ।
नखानि श्रोत्रादीन्यपि वचनमुख्यान्यपि तथा प्रवर्त्तेते जातु त्वयि नहि मनोप्यन्तरतमः ॥११८॥
नतानां भक्तानामतिकरुणयाऽनुग्रहपरा मनोवाङ्नेत्राणां सुलभगतिहेतोस्त्वमनघे ।
यथा ध्याता तैस्तैः पदनलिनसेवापरजनैस्तथा रूपं धत्से जननि जगदुद्धारणपरे ॥११९॥
निमेषोन्मेषाभ्यामगणितविधात्रण्डविलयोद्भवै स्यातां यस्याः परतरमहाशक्तिवपुषः ।
महामायाशक्तेः श्रितजनसमीहाफलविधौ कियच्चित्रं नानाविधतनुधृतिस्ते परशिवे ॥१२०॥

हम नमस्कार करते हैं ॥११४-११६॥ हे भगवति ! पृथ्वीसे आरम्भ कर शिवतत्त्व पर्यन्त आत्मक समूह जो प्रमाके विषय (प्रमेय) है जिसमें कालाग्नि प्रमुख शिवपर्यन्त समूहमें आपको छोड़कर स्वतन्त्रतया इनका अस्तित्व नहीं । इन प्रमाताओं में जैसे सारे स्थिर (अचल) और चर (जङ्गम) का विभेद होने पर भी आपके द्वारा रिक्त किये जाने से मृगमरीचिका के समान ही इनका खोखला अस्तित्व है ॥११७॥"हे देवि ! बहुत ही आश्चर्य का विषय है कि इस जगत्के विविध भेद समूह में केवल आप ही सब को व्याप्त कर प्रगट मूर्त्तिरूप में विराट दर्शन देती हैं। आपसे ही नख, क्षेत्र, आंख, मुख और इनके नाना विधिके क्रियाकलाप चलते हैं आप में ही यह मनके अन्तरालका 'महतो महीयान् अणोरणीयान्' विलास समाया है ॥११८॥

आपके चरणों में नतमस्तक होने वाले भक्तों के ऊपर आप करुणा करके अनुग्रहशील होती हो । हे अम्बे ! उनके मन, वाणी और नेत्रों के सामने सुलभ रूप की उपलब्धि होने को आपके पदकमलकी सेवा करनेवाले लोगों द्वारा जैसी जैसी जिस जिस रूप में ध्यान की जाती हो वैसा ही वैसा हे जननि ! हे जगत् के उद्धार करने वाली मातः ! आप ग्रहण कर लेती हो ॥११९॥ जिस परमोच्च महाशक्ति के शरीर से केवल आंखों की पलक उघाड़ने और बन्द करने मात्र से ही अगणित ब्रह्माण्डों का बनना और बिगड़ना निर्भर करता है उस महामाया शक्तिके लिए आश्रयमें जानेवाले भक्तगण की अभीष्टसिद्धि के फल देने में नाना प्रकार के शरीरों को धारण करना हे परशिवे! आपके लिए क्या कोई विचित्र बात है ? अर्थात् कुछ भी विचित्र नहीं ॥१२०॥ आपके द्वारा ब्रह्मा आदि हम तीनों देवगण जगत् की सृष्टि

भवत्या ब्रह्माद्या वयमिह जगत्सृष्टिविलयस्थितौ संस्थां प्राप्ता जननि सततं तद्व्यवसिताः ।
विषण्णाः स्मः कृत्ये विहतबलवीर्यादिविभवाः समुद्धर्त्तुञ्चाऽस्मान्प्रभवसि हि चैकैव परमा ॥१२१
इति संस्तुत्य धात्राद्या जगद्धात्रीं पराम्बिकाम् । कृतप्रणतयो भक्त्या स्ववृत्तं प्रोचुरादरात् ॥१२२
तच्छ्रुत्वा धातृमुख्यानां वाक्यं सा परमेश्वरी । प्राह प्रसन्ना वरदा प्रियं तेषां वितन्वती ॥१२३
ब्रह्मन्मुरारे शम्भो वो ज्ञातं वृत्तं मयाऽनघाः । भवन्तः स्थूलरूपेण मदंशेन विना स्थिताः ॥१२४
अतो न निर्वृता यूयं श्रान्ताश्च स्वेषु कर्मसु । हतप्रभा हतबला निर्वीर्या इव संस्थिताः ॥१२५
तच्छुभं वो विधास्यामि चिन्तां जहथ मां चिरम् । एवमुक्त्वा क्षणेनैव त्रिपुरा सा महेश्वरी ॥१२६
स्वाङ्गात्त्रिधा स्थिता त्रीणि रूपाणि व्यसृजत्तदा । ब्रह्मविष्णुमहेशांशाद्रूपत्रयमभूत्तदा ॥१२७
वाणी रमा च रुद्राणी श्वेतरक्ताऽसितप्रभाः । हंसपद्ममृगेन्द्रस्थाः सौन्दर्यमणिरोहणाः ॥१२८

पालन और संहारकी क्रियाओंमें नियुक्त होकर सतत अविरत भावसे उन विधानोंमें लगे हैं अब उस-उस कार्यसे हम कर अपने बल, वीर्य, और क्रियादि शक्तियोंके वैभव को नष्ट कर चुके हैं हमारा उद्धार करनेको आप ही परमा समर्थ हैं अन्य नहीं" ॥१२१॥

इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और पशुपतिने जगद्धात्री पराम्बिकाकी स्तुति कर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और आदर अपना अपना वृत्तान्त कहा ॥१२२॥ तब ब्रह्मा आदि तीनों देवगण का कथन सुन कर वह परमेश्वरी वरदात्री प्र हो उनका प्रिय करती हुई बोली ॥१२३॥ "हे अनघ (परम पवित्र) ब्रह्मन् ! मुरारे ! और हे शम्भो ! मैंने तु वृत्तान्त जान लिया । तुम सब ही स्थूल रूप से मेरे अंश के बिना स्थित रहे ॥१२४॥ इसलिए तुम नि नहीं हुए और अपने अपने कार्यों में पूर्ण थक गये मानो प्रभाहीन, बलरहित और निर्वीर्य बन गये हो ॥१२५॥

तुम लोग और अधिक समय तक चिन्ता मत करो मैं तुम्हारा कल्याण करूंगी ।" इस प्रकार कह कर त्रिपुरा महेश्वरी ने एक क्षण भर में ही अपने अङ्ग से तीन प्रकार से स्थित हो तीन रूपों को धारण कर लिया; ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अंशसे तीन रूप हो गये ॥१२६-१२७॥ वाणी श्वेत कान्तिवाली, रमा रक्तशोभाधारिणी रुद्राणी कृष्णवर्णा हुई, तीनों के वाहन क्रमशः हंस, पद्म और सिंह हुए वे सभी सौन्दर्य को सहस्रगुणित करने मणियों से आभूषित थी ॥१२८॥

मत्तेभमन्दगमना मृदुशोणलसत्तलाः । नखचन्द्रांशुनिवहन्यक्कृतेन्दुगणप्रभाः ॥१२९॥
कमठाऽभप्रपदकाः पुष्टगुल्फविराजिताः । कन्दर्पतूणाभजङ्घानभोभूतावलग्नकाः ॥१३०॥
अनर्घ्यकौशेयगूढपृथुश्रोणीभराऽलसाः । स्मरकल्पलताबालनिम्ननाभिविराजिताः ॥१३१॥
मृदूदरत्रिबलिकास्तनुरोमालिशोभिताः । माणिक्यकलशाऽकारकुचद्वयभरानता॥१३२॥
मृदुदीर्घचतुर्बाहुकरकञ्जमृणालिकाः । कम्बुकन्धरविन्यासाः पक्वबिम्बफलाऽधराः ॥१३३॥
कुन्दकोरकपङ्क्त्याभदन्तपङ्क्तिसुशोभनाः । चाम्पेयकलिकाकारनासावंशविराजिताः ॥१३४॥
श्वासामोदपरीवाहभरिताशाकृशोदराः । मणिदर्पणसाधर्म्यव्रतगण्डद्वयोज्ज्वलाः ॥१३५॥
नीलोत्पलसुहृत्कान्तिनेत्रत्रयसुसौभगाः । अर्धशीतांशुदापादनिटिलाभोगभासुराः ॥१३६॥

उनका मन्दगमन (गति विलास) मदोन्मत्त हाथी की चाल को लज्जित करता था। रक्तिमासे उनके कोमल पैरों के तलवे शोभित होते तथा उन देवियों के नख रूपी चन्द्रकिरणों के समूह से प्राकृतिक चन्द्रगण की प्रकृष्ट कान्ति भी फीकी होती जा रही थी ॥१२९॥ कच्छप की आभा से उनकी मन्द मन्द पादगति का आभास होता था उनके सम्पूर्ण गुल्फ (गट्टों) की भी शोभा देखते बनती थी। कामदेव के तरकस (बाणों के रखने का स्थान) के समान उनके जङ्घाप्रदेश की कान्ति अन्तरिक्ष तक व्याप्त हो रही थी ॥१३०॥ अत्यन्त मूल्यवान् कौशेय (रेशमी साड़ी) के धारण करनेसे उसके आवरणमें छिपे मोटे श्रोणी (कटि) प्रदेशका भार उन्हें अत्यन्त शोभा सम्पन्न बनाये हुए था। काम की कल्पलता के आलवाल प्रदेश के समान नाभि का निम्न भाग का तरह विराजित हो रहा था ॥१३१॥उनके मृदुकोमल उदर पर तीन बलियां पड़ रही थी जो नयनाभिराम लगती थीं साथ ही उनके शरीर पर रोमावलि शोभा को चतुर्गुणित बना रही थी। माणिक्य रत्नोंके कलश की आकृति वाले उनके दोनों स्तन उभरे हुए थे जिससे वे कुछ झुकी हुई लग रही थीं ॥१३२॥ कोमल लम्बे चारों हाथों में कमल पुष्प धारण किये शंख के समान कन्धर (ग्रीवा) प्रदेश का विन्यास ललित लगता था उनके अधर (ओष्ठ) पके हुए बिम्ब फल के समान शोभित थे ॥१३३॥ कुन्दकोरक की एक समान पंक्ति की आभा वाले उनके दांत सुशोभन प्रतीत होते थे। चम्पा के पुष्प की कलि के आकार वाला उनका नाक का आभूषण भला लगता था। उनके श्वांस लेते समय सुगन्धित वायु का उच्छ्वास निकलने से सारी दिशायें विशिष्ट गन्धमय वातावरण से भर जाती ॥१३४॥ मणि दर्पण की समान-कान्ति धारण किये हुए उनके गण्डस्थल (गाल) अत्यन्त उज्ज्वल लग रहे थे ॥१३५॥ नीलकमलकी शोभाके समान रहने वाली आभासे उनके तीनों नेत्र अत्यधिक शोभा दे रहे थे। अर्ध चन्द्रकी कलासे उनके जूडेका मुकुटका शृंगार समधिक कान्तियुक्त है ॥१३६॥ उनके भलीभांति संवार कर बांधे हुए केश पाश ऐसे लगते हैं मानो संसार के

जगत्तिमिरसन्दोहरक्षेपाकारचूलिकाः । निसर्गचाम्पेयसुमसौरभास्पदबालिकाः ॥
मणिप्रवेकपटलप्रत्युप्तमुकुटोज्ज्वलाः । अनर्घ्यरत्नपुरटक्लृप्तकुण्डलमण्डिताः ॥१३८॥
नासामणिप्रभाचोरासुरशिक्षकतारकाः । गलविन्यस्तमाणिक्यग्रैवेयकविभूषिताः ॥१३९॥
मुक्ताहारमृणालोत्थविकसन्मुखपङ्कजाः । केयूराङ्गदमाणिक्यवलयाङ्गुलिभूषणाः ॥१४०॥
गाङ्गेयपट्टिकाकाञ्चीदामनद्धांशुकावृताः । मञ्जीरहंसककाणक्वणत्क्वणितनिर्भराः ॥१४१॥
एवं विधा वागधीशा शुद्धस्फटिकसन्निभा । त्रिनेत्रा चन्द्रचूडाला वीणापुस्तवराभयान् ॥
धारयन्ती कराम्भोजैर्विद्याततितनूज्ज्वला । विद्रुमाभा विशालाक्षी पद्मा पद्मचतुष्टयम् ॥
दधाना पाणिजलजैरैश्वर्यनिवहेश्वरी । दलदिन्दीवराभासा चतुर्भिः पाणिपल्लवैः ॥१४४॥
आसादिताः खड्गखेटाशूलमुद्गरहेतिकाः । कोटीरकोटिसंक्लृप्तशीतांशुकलिकोज्ज्वलाः ॥
एवंविधास्तदङ्गात्तु त्रिविधाः क्षणमात्रतः । प्रादुर्भूता महादेव्यो विस्फुलिङ्गा इवार्चिषः ॥

अन्धकार के समूह को एक स्थान में संघटित कर दिया हो; उनके बालों की लटों में स्वाभाविक चम्पा के के सौरभ विशेष अङ्गशोभाधायक होती है ॥१३७॥ उनके मुकुटों में मणियों की लड़ियां इस सुन्दरता से गूंथी कि उनकी शोभा कई गुण मुखरित होती। उनके कुण्डलों में अत्यधिक मूल्यवान् रत्नों के आभूषण लगे हैं। नास की प्रभा शुक्र तारेकी क्रान्तिको भी हीन बनाती है। गले में भली प्रकार सजा हुआ गलहार तीनों देवियों के समान शोभा पाता है। मुक्ताहार में हंस के जड़ाव की शोभा से उन देवियोंके मुख कमल अधिकाधिक सुन्द गये हैं। केयूर, अङ्गद (बाजूबन्द) और माणिक्यका वलय और विभिन्न रत्नोंसे जटित अंगुलि के आभूषण वे शोभित हैं उनके कटितट में सुवर्ण की पट्टी की काञ्चीदाम की कान्ति से जो तागड़ी धारणकी हुई है, जो मञ्जीर (नूपूर) के शब्द से अत्यधिक मंजुल झंकार करती है ॥१३९-१ सुन्दर साड़ीसे ढके हुए इस प्रकार सम्पूर्ण वाणीकी अधिष्ठात्री सरस्वती शुद्ध स्फटिकमणिके समान श्वेतकान्तिमती नेत्रवाली, चन्द्रमा का आभूषण जूड़े पर लगाये हुई, वीणा, पुस्तक, वर तथा अभय मुद्रा अपने करकमलों में धार हुई, शुद्ध विद्या से अति उज्ज्वल शरीरवाली विराजी हुई थी। श्रीलक्ष्मी मूंगे की सशोभा से सम्पन्ना विशाल ने अपने चारों हस्तकमलों में चार कमलों को लिए हुई ऐश्वर्य समूह की अधिष्ठात्री थी एवं महेश्वरी विकसित कम शोभा धारण की हुई अपने चारों करकमलों में तलवार; गदा, शूल, मुद्गर और हेति (अंकुश) सहित विराजमान उनके मुकुट की आभा कोटि युक्त चन्द्र किरणों की कलिकाओं से भी उज्ज्वल थी। उस परमा महेशानी के से क्षणमात्रमें ही तीन प्रकारकी महादेवियां आविर्भूत हुईं जैसे अग्निमें से चिनगारियां निकलती हैं ॥१४२-१४

ताः प्रणम्य परां देवीं सविधे संस्थितास्तदा । विधात्रादीनतः प्राह त्रिपुरा परमेश्वरी ॥१४७॥
भो ब्रह्मकेशवहराः भवदर्थं मया इमाः । स्वांशात्सृष्टा महादेव्यः प्रतीच्छध्वं क्रमेणताः ॥१४८॥
इयं विद्रुमवर्णाभा धातर्जाता तवांऽशतः । तथा रौद्री मेचकाभा त्वदंशेनोद्गता हरे ॥१४९॥
विशदङ्गा भारतीयं रुद्र तेंऽशात्समुद्गता । तत्तदंशोद्भवा तस्य सोदरीति प्रसिध्यतु ॥१५०॥
विधातुः सोदरी विष्णोर्विष्णो रुद्रस्य तस्य तु। विधेरेवं विवाहेन विधिना द्रुतमस्तु वः ॥१५१॥
पत्नी तथाऽऽद्या भवतु विवाहो मङ्गलाय वः । एवं कृतविवाहानां शक्तिभिर्मम योगतः ॥१५२॥
त्यक्तश्रमा निर्वृताश्च समर्था विश्वकर्मसु । यूयं भवथ धात्राद्या जगतां स्वस्तयेऽधुना ॥१५३॥
इत्युक्त्वा सा महेशानी तत्रैवाऽन्तरधीयत । अन्तर्द्धिमागतायान्तु देव्यां ते जगदीश्वराः ॥१५४॥
स्वांस्वांशक्तिं समादाय स्वस्थानं प्रतिपेदिरे। अथ काले शुभे तत्र त्रयस्ते जगदीश्वराः ॥१५५॥
वैवाहिकविधानेन बभूवुर्दारसंयुताः । मेरुपृष्ठे सुविपुले योजनायुतविस्तरे ॥१५६॥
विवाहशाला रुचिरा निर्मिता विश्वशिल्पिना । चतुर्योजनमुन्नम्रा नियुतस्तम्भसंयुता ॥१५७॥

तब वे तीनों ही परा देवी को प्रणाम कर उसके निकट ही स्थित हो गईं; इसके अनन्तर भगवती परमेश्वरी त्रिपुरा ने ब्रह्मा, विष्णु और महेशान को कहा; "हे ब्रह्मन् ! हे केशव ! हे हर ! मैंने तुम्हारे लिए ये महादेवियां अपने अंश से सर्जन की हैं उन्हें क्रम से ग्रहण करो ॥१४८॥ हे ब्रह्मन् ! यह विद्रुमवर्ण (मूंगाकी शोभा) की आभा धारणकी हुई तेरे अंशसे हुई है और रौद्री शक्ति श्याम कान्तिवाली हे विष्णो ! तेरे अंशसे हुई है॥१४९॥हे रुद्र ! जो श्वेत अंगवाली यह भारती है वह तेरे अंश से आई है अपने जिस-जिसके अंशसे यह उत्पन्न हुई उस उसकी वह सहोदरी (सगी बहन) प्रसिद्ध हो ॥१५०॥ विधाता की सगी बहन विष्णु को, विष्णुकी सगी (सोदरी) रुद्र को और रुद्रकी सोदरी ब्रह्माको विवाहविधि से शीघ्रतापूर्वक प्राप्त हो ॥१५१॥ ये सर्वप्रथम पत्नी होवें और यह विवाह मङ्गलकारी हो इस प्रकार मेरी शक्तियोंके यो से विवाह किये हुए तुम लोगोंको विश्व के सर्ग (रचना), पालन और संहार कर्मोंमें परिश्रम नहीं होगा सब प्रकारसे निर्वृत (पूर्णताप्राप्त) रहोगे और समर्थ होओगे । हे ब्रह्मन् ! हे हरे ! और हे शिव ! तुम लोग अब संसार के सम्पूर्ण प्राणीमात्रका कल्याण साधन करो" ॥१५२-१५३॥ इस प्रकार कह कर आद्या महेशानी वहीं पर अन्तर्धान कर गई । उस देवीके अन्तर्धान करने पर वे जगत् के ईश्वर ब्रह्मा, विष्णु और हर अपनी अपनी शक्तियोंको लेकरअपने-अपने धामको चले गये ॥१५४॥ इसके अनन्तर शुभ मुहूर्त आने पर वहां उन तीनों जगदीश्वरसे देवियोंके साथ विवाह विधिके रचनेमें एक हजार योजनमें फैले हुए विपुल मेरुपर्वतके ऊपर विश्व-शिल्पी विश्वकर्मा द्वारा अतिसुन्दर विवाहशाला रची गयी थी । मण्डपभूमि हजारों हजार स्तम्भों के आधारवाली चारयोजन ऊंची, सारे आवरण का गोलाकार चन्दवा आकाश में तारों के समान रूप से चित्रित था, चारों ओर उन स्तम्भों के नानारत्नोंके गुच्छ लटकाये गये थे जिनकी

वितानमाकाशनिभं तारकाकारचित्रितम् । परितो लम्बमानैस्तु रत्नगुच्छैः सुशोभितम् ॥१५५
पताकाभिर्ध्वजैर्नीलमणि-वैडूर्यनिर्मितैः । त्रिंशद्योजनमुन्नम्रैः समन्तादुपशोभितम् ॥१५६
विद्रुमस्तम्भविन्यस्तपाञ्चालीगणमण्डिता । तत्र स्वर्णमयी भूमिः हीरकास्तरणानि च ॥१५७
मणिप्रवरसञ्जातवेदिकाभिः समुज्ज्वला । नवरत्नमयैर्दीपवृक्षैः सर्वत्र मण्डिता ॥१५८
हरिन्मणिकृताऽत्यच्छतोरणाघपरीवृता । प्रतिस्तम्भसमाबद्धमणिरम्भातरूज्ज्वला ॥१५९
मणिपाञ्चालिकाहस्तन्यस्तहीरकचामरा । यक्षकर्दमसंसिक्ता धूपामोदसुधुङ्धुमा ॥१६०
दीपसन्ततिसञ्जातप्रभा संमूर्च्छनावशात् । मणिप्रवेकज्वलितधगद्धगितदिक्तटा ॥१६१
शालायाः परितस्तत्र कल्पानोकहवाटिकाः । निसर्गस्यन्दिमधुरमकरन्दौघनिर्भराः ॥१६२
तदामोदप्रसक्ताऽलिपङ्क्तिझङ्कारजृम्भिताः । माद्यच्छुकपिकारावभरितान्तरसुन्दराः ॥१६३
फलसङ्घभराक्रान्तिभूलम्बिविटपायुताः। तस्यां सर्वं विवाहार्थं कल्पयामास शिल्पिराट् ॥१६४

शोभा कहते नहीं बन पाती ॥१५५-१५८॥ नीलमणि और वैदूर्य से बनी हुई पताकायें और ध्वजों से सब ओर से शोभित था जिनकी ऊंचाई तीस योजन की थी। विद्रुम (मूंगा) के स्तम्भों पर अतिसुन्दर रत्नजटित पाञ्चाली (परियों) गण से सुशोभित वहां सोने से सज्जित भूमि पर हीरों का बहुत सुन्दर प्राङ्गण बना था, सर्व मणियोंसे बनी हुई वेदियोंसे अति उज्ज्वल वहां नवरत्नमय दीपकोंके सुन्दर झाड़फानुस सर्वत्र सुशोभित हैं; हरी मणि बने स्वच्छ तोरणों के समूह से घिरी हुई प्रत्येक स्तम्भ में जड़ी हुई मणि की उज्ज्वल रम्भाओं (परियों) से वृक्ष तिर द्वारा उज्ज्वल मणियों की बनी परियों के हाथमें दिये गये चँवर सुशोभित हैं सर्वत्र ही यक्ष कर्दम (अंगलेप) से लिप्त श्रेष्ठ धूपकी सुगन्धसे सुवासित है ॥१५९-१६३॥ नवों रत्नोंवाले दीपोंके वृक्षोंकी पंक्तिसे सर्वत्र शोभायुक्त राग आभूषण ध्वनिके साथ मणियोंकी जगमगाहटसे सब दिशाओंमें अति विलक्षण प्रकाश स्फुरित हो रहा था ॥१६४॥ स्थान पर विवाहशाला के चारों ओर कल्पवृक्षोंकी अति अति मनोरम वाटिकायें लगी हैं जहां सहज मन्द-मन्द प्राकृतिक मधुर सुगन्ध मकरन्द (पराग) का अजस्र स्रोत बह रहा हो। उन पुष्पों की महक (सुगन्ध) के आ से भौंरों की पंक्तियां आकर मधुर गुञ्जार कर शोभा को चार चांद लगाती हैं, जिनके साथ ही शुक और (तोतामैंना) की मधुर मनुष्यसुलभ अनुकरण की ध्वनि से सारा का सारा वातावरण अत्यन्त मुखरित हो रहा है। के समूह से आक्रान्त (लदे हुए) फलवाले वृक्षों की शाखायें पृथ्वी की ओर नीचे झुकी हुई हैं। (इस प्रकार) शोभनीय साधन सामग्री से विश्वकर्मा ने विवाहार्थ अतिदुर्लभ यज्ञशाला की रचना की ॥१६५-१६७॥

तत्राऽऽजग्मुर्देवगणाः स्वलङ्कृतविमानगाः। तेषां विमानविततिव्याप्ता वनभूमयः ॥१६८॥
ऋषयो मुनयः सिद्धा विद्याधरसकिन्नराः। नरा नागाः पूर्वदेवा यातुधानाः सहस्रशः ॥१६९॥
तैरापूर्णा विशालापि शाला शुभसमागमे। गायद्गन्धर्वमधुररागालापसुमूर्च्छनैः ॥१७०॥
मञ्जुलारावझङ्कारझङ्कृतैः सुमनोहरा। नृत्यद्रम्भादिविबुधवेश्यागणलयोत्तरैः ॥१७१॥
भरिता श्रवणानन्दैर्वाद्यैरुच्चावचैस्तथा। देवासुरमनुष्यादियोषितः समलङ्कृताः ॥१७२॥
नूत्नरत्नोत्कीर्णहेमविविधाकल्पकोटिभिः। परार्ध्यरत्नविलसद्वसनैः परिपेशलाः ॥१७३॥
एवंविधायां शालायां विवाहः समवर्त्तत। शुभे मुहूर्त्ते विलसत्सभामण्डपमध्यतः ॥१७४॥
नवरत्ना कल्पवेदी मध्ये ज्वलति पावके। नारायणानुजायास्तु शर्वाण्याः पाणिपल्लवम् ॥१७५॥
जग्राह शङ्करो वेदविधिना मन्त्रमुच्चरन्। एवंविधात्रवरजारमापाणिसरोजनिम् ॥१७६॥
समाददत्तदा तत्र साक्षान्नारायणः परः। अथ तस्याः पशुपतेः कनीयस्याः करग्रहम् ॥१७७॥

उस अत्यन्त सुन्दर प्रशस्त विवाहशाला में अपने अपने सजे विमानों से देवगण आये, उनके विमानों की पंक्तियों से सारी वनकी भूमि परिपूर्णरूपसे व्याप्त हो गई॥१६६॥इस महती विशाल विवाहशालामें सहस्रों सहस्र ऋषिगण, मुनिजन, सिद्ध लोग; विद्याधर और किन्नर, मनुष्य, नाग, पितरगण एवं राक्षस लोग शुभ विवाहोपलक्ष्यमें सम्मिलित हुए ॥१६९॥ इस प्रदेश में शुभविवाह के अनुरूप ही गन्धर्व गणों के मधुर रागों के सुन्दर आलाप और सुमूर्च्छनाओं से अति मञ्जुल गायनकी विविध झङ्कारोंसे वहांका वातावरण झंकृत हो रहा है। इसके साथ ही रम्भा और ऊर्वशी आदि देवगणकी अप्सरायें अपना जोड़ बिठा कर सुन्दर नृत्य कर रही हैं। इस प्रकार ऊँचे नीचे मनोहर, सुनने में कानोंको अति-आनन्द देनेवाले (सुखदायक)गानसे सब ओर वायुमण्डल भी सुमनोहर लग रहा है (जहां) देव, असुर और मनुष्य आदिकी सौभाग्यवती स्त्रियां (सुहासिनी मातायें, ललनायें और बहनें) नवीन नवीन रत्नोंकी जड़ाउ आभूषण पंक्तियों से सुवर्ण पर अति कमनीय कलाकृतियों से कोरे गये सुन्दर आभूषण धारण किये हैं, अत्यन्त मूल्यवान् रत्नों से शोभित वस्त्रों को पहनी हुई वे सब ओर कान्तिको बढ़ा रही हैं ॥१७०-१७३॥ इस प्रकार की सजी विवाहशाला में विवाह का मङ्गलाचार आरम्भ हुआ शुभ मुहूर्त्त में सुशोभित सभामण्डप बीच से नवरत्नों की बनी कल्पवेदी (विवाह वेदिका) के मध्य में जलती हुई अग्नि के समक्ष शङ्करजी ने वेद की विधि से मन्त्रों का उच्चारण करते हुए भगवान् नारायण की छोटी बहिन शर्वाणी का करकमल विवाह में ग्रहण किया ; इसी प्रकार ब्रह्मा की भगिनी रमा (लक्ष्मी) का पाणिसरोज साक्षात् देवश्रेष्ठ नारायण ने लिया। तदनन्तर उस पशुपतिकी छोटी भगिनी वाग्देवी सरस्वतीका हथलेवा पितामह

पितामहः समकरोद्वाग्देव्याः पावकाग्रतः। तत्रोत्सवः समभवत्परमः शोभनोदयः ॥१७४
सर्वे समुदितास्तत्र कल्याणोत्सवमण्डपे। एवं विवाहविधिना ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥१७५
त्रिपुरायाः कलाः प्राप्य वाणीलक्ष्मीशिवाभिधाः। जगतां जननीर्भक्तजनतापापहारिणीः ॥१७६
जगत्सु मङ्गलकरीर्वाक्सम्पज्ज्ञानदायिनीः। विचित्रवस्त्राभरणस्वायुधादिसुशोभिताः ॥१७७
परां निर्वृतिमायाता विश्राममभवंस्तदा। तच्छक्तिसंयुताः स्वे स्वे लोके गत्वा महेश्वराः ॥१७८
जगत्सृष्ट्यादिकृत्येषु सन्नद्धा विधिमुख्यकाः। निरन्तरं महादेव्याः पादपद्मार्चने रताः ॥१७९
एतत्ते भार्गवाख्यातं त्रिरूपाख्यानमुत्तमम्। यत्र सा त्रिपुरेशानी त्रिरूपा समजायत ॥१८०
वाणी रमा शिवारूपा सर्वलोकप्रसादिनी। ब्रह्मविष्णुशिवान् यत्र भावयन्ती कलात्मभिः ॥१८१
एतदाख्यानमायुष्यमभीष्टफलदायकम्। श्रोतव्यं त्रिपुराभक्तैः सर्वदा संयतात्मभिः ॥१८२
श्रोतॄणां परमादेवी भक्तानां सहसा द्रुतम्। सम्पाद्य वाञ्छितानर्थानैहिकान्सुखसाधनान् ॥१८३

ब्रह्मा ने अग्नि के समक्ष लिया। वहां अत्यन्त विलक्षण मङ्गलकारी उत्सव हुआ ॥१७४-१७८॥ सभी लोग कल्याण उत्सव मण्डपमें इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर द्वारा त्रिपुरा भगवतीकी कलाओंको वाणी, लक्ष्मी और शिवा नामसे हुई देख प्रसन्न हुए। ये सम्पूर्ण जगत्के प्राणीमात्रकी जननियां हैं; भक्तजनके सम्पूर्ण दैहिक, दैविक और भौतिक का समूल नाश करती हैं तथा संसारमें मङ्गल करनेवाली हैं; क्रमशः वाणी, सम्पत्ति और ज्ञानकी दात्री हैं अपने विचित्र वस्त्र, आभरण और निज आयुधोंके साथ अत्यन्त शोभित होती हैं इस शुभ महोत्सवको देख सब लोग प्रसन्न हुए और कार्यके सम्पन्न होने पर सब विश्राम अनुभव करने लगे। तब अपनी-अपनी शक्तिसहित स्वस्थाने ये महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु और शिव जाकर अपने अपने सर्जन, पालन और संहारके कर्मों में संलग्न हो गये निरन्तर महादेवी त्रिपुराके चरणकमलोंकी सेवामें लगे रहे॥१७९-१८३॥हे भार्गव! मैंने तुझे त्रिपुरा भगवतीका उत्तम आख्यान जहां उस त्रिपुरा महेश्वरी ने अपने तीन रूप धारण किये ॥१८४॥ वाणी, रमा और शिव रूप वाली ये सम्पूर्ण की प्रसन्नता करनेवाली हैं जहां अपने कलारूपों से ब्रह्मा, विष्णु और शिवको सर्वदा तादात्म्यापन्न हो भावना हैं ॥१८५॥ यह पवित्र आख्यान आयुवर्धक तथा अभीष्ट फलों को देने वाला है। इसे सर्वदा ही त्रिपुराके भक्तों खूब संयत आत्मा बनकर (खूब मनोयोगपूर्वक) सुनना चाहिए ॥१८६॥

यह परमोत्कृष्ट महिमासम्पन्न भगवती देवीका आख्यान (इसे) सुननेवाले भक्तगणका अकस्मात् अतिशीघ्र इस सुख साधन अभीष्ट प्रयोजनको पूर्ण कर अन्तमें भक्ति प्रदान कर अन्तिम लक्ष्य अभेद शाम्भव ज्ञानका साक्षात्कार करा

अन्ते भक्तिक्रमेणैव कृत्वा शाम्भववेदनम्। प्रददाति परं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१८८॥
श्रुतमेतज्जामदग्न्य ! कच्चिदव्यग्रचेतसा । परमाद्भुतमाहात्म्यं त्रिपुराया महाफलम् ॥१८६॥
अभक्तानां नास्तिकानां शठानां दुष्टचेतसाम् । न वाच्यं सम्मुखे जातु नोचेत्सा कुप्यतीश्वरी ॥१६०॥
त्वया सदा धारणीयं चिन्तनीयञ्च सर्वदा । किं पुनः श्रोतुमिच्छा ते वद राम महामते॥१६१॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये दत्तात्रेयपरशुरामसंवादे माहात्म्यखण्डे त्रिरूपाख्यानं नाम दशमोऽध्यायः ॥६०७॥

के माया जालसे छुटकारा देकर वह महामहिमामयी महादेवी जन्म मरण के चक्र से अर्जित अपना परम पद प्रदान कर देती है ॥१८७-१८८॥ हे जामदग्न्य ! तुमने खूब ध्यानसे बिना किसी व्याग्रताके परम विचित्र अत्यन्त महान् फल देने वाले भगवती महेश्वरी त्रिपुराका माहात्म्य सुन लिया है न ?॥१८६॥ जो व्यक्ति त्रिपुराके अभक्त हैं, नास्तिक हैं; मूर्खऔर दुष्ट चित्तवाले हैं उनकेसम्मुख कभी इसे मत सुनाना, नहीं तो वह ईश्वरी कोप करती है ॥१६०॥ तुझे इसे सर्वदा धारण करना और चिन्तन करना चाहिए। हे महामते (परम बुद्धिमान्) ! परशुराम ! बोल तेरी और फिर क्या सुनने की इच्छा है ? ॥१६१॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासश्रेष्ठ त्रिपुरारहस्य के दत्तात्रेय-परशुराम-सम्वाद-रूप में माहात्म्य खण्डका त्रिपुरा का आख्यान नामक दशम अध्याय समाप्त।

7·4
6669
90

100/7·4 = 13%

एकादशोऽध्यायः

भगवत्यास्त्रिरूपाख्यानवर्णनम्

एवं विधं समाख्यानं त्रिरूपाया महत्तरम्। श्रुत्वा सविस्मयो रामः श्रीदत्तमुखपङ्कजा
निर्गमन्नूतनामोदमकरन्दमनोहरम्। आनन्दामृतवाराशिमग्नस्वान्तो बभूव ह
आह भक्तिप्रेमभरपेशलं वाक्यमुत्तमम्। अहोऽत्यद्भुतमेतद्वै प्रोक्तमाख्याननायकम्
नैवंविधं समाख्यानं श्रुतमासीद्दयानिधे!। भवन्मुखाब्जनिर्गच्छत्कथामृतझरीभरम्
पिबतः श्रोत्रपुटतस्तृषा शान्तिर्न विद्यते। यथा कामिजनस्याऽतिसुन्दरी भासगोचरम्
जुषतोऽनुक्षणं तृष्णा वर्धते मे तथाऽभवत्। गुरो श्रीनाथ मे सम्यक् श्रुतमाख्यानमुत्तमम्
त्रिरूपायाः शुभं पुण्यं गौर्य्यादीनामपि प्रभो। वदाऽऽख्यानं कथं भूतं कृपया करुणानिधे
इति पर्यनुयुक्तोऽथ दत्तात्रेयो यतीश्वरः। प्राह गम्भीरया वाचा मधुराक्षरसुस्वरम्

एकादश अध्याय

श्रीदत्तात्रेयजी के मुखारविन्द से इस प्रकार का तीन-रूप धारण करनेवाली भगवती का अतिश्रेष्ठ समाख्यान कर जिस प्रकार निकलती हुई नूतन आमोदकारी सुगन्धसे परागकी मनोहरता सूंघनेवालेको अच्छी लगती है उसी इस आख्यानकी अप्रतर्क्य मनोहरता से आनन्दरूपी अमृत के समुद्र में गोते लगाने (निमग्नमन) वाला श्रीराम हो गया ॥१-२॥ वह (इस अलौकिक आख्यान से प्रभावित) भक्ति और प्रेम से छलकती हुई स्नेहमती वाणी उत्तम वचन बोला, "अद्भुत आख्यान के नायक (श्रेष्ठ) इस कथानक को आपके द्वारा कहा गया है ॥३॥ हे दयानिधे मैंने ऐसा आख्यान (कभी) नहीं सुना था। आपके मुख कमल से निकले हुए कथा रूपी अमृत की सतत झरी से पूर्ण इसे कानों के पुटोंसे पान करते रहने (सुनते सुनते) से तो तृषा की शान्ति नहीं होती है (मन इस महती की आख्यायिकाको सुनता ही रहे इससे कभी भी विरत न होऊँ। यही एकमात्र अमर इच्छा होती है। जिस प्रकार पुरुषको अति सुन्दरी स्त्री भासगोचर होते ही उसको प्रत्येक क्षण देखते रहनेकी उसकी पिपासा बढ़ती ही जाती है उसी प्रकार मेरे मनकी अतृप्त वासना आख्यान को सुनने के लिये क्षण क्षण बढ़ती ही जाती है। हे गुरु हे श्रीनाथ ! मैंने भली प्रकार आपसे त्रिपुरा के उत्तम आख्यान को सुना, हे प्रभो ! उसीका तथा गौरी, पद्मा सरस्वती आदि के पुण्यदायी चरित्रों को भी कृपाकर के कहें; हे करुणानिधे ! इनका आख्यान, प्रकार का है सो कृपा करके बतलाइये ॥७॥ इसके बाद इस प्रकार पूछने पर यतीश्वर

भार्गव ! शृणु गौर्यादिचरित्रं लोकपावनम्। एवं गौरीं रमां वाणीं प्राप्य रुद्रादयस्तदा ॥९॥
निर्वृताः स्वेषु कृत्येषु विक्लमाः स्युरतीव ते। एवं सृष्टेषु लोकेषु कर्मवैचित्र्यहीनतः ॥१०॥
समाः समाचारपरा बभूवुर्मानवा भुवि। तेनाऽऽसीत्कोऽपि नैवाढ्यो न रिक्तो न सुखाधिकः ॥११॥
न क्लेशी न च पाल्यो वा पालको वापि कश्चन। न सेव्यः सेवको वापि न राजा न प्रजास्तथा ॥१२॥
सर्वं समं समाक्षीद्वै योगीश्वरमनो यथा। एवंविधे जने जाते न यज्ञो न च दक्षिणा ॥१३॥
न दानं नापि पूजादि शान्तमासीन्निराकुलम्। एवंभूते भुवि तदा देवाद्याः सेन्द्रनायकाः ॥१४॥
न सुखं लेभिरे मर्त्यसेव्यभावविहीनतः। तदा गुरुं सभासीनं प्रणम्य विबुधैः सह ॥१५॥
पप्रच्छेन्द्रः सहस्राक्षो विनीतः पुरतः स्थितः। आङ्गिरस गुरो ब्रह्मन् भवान् नः कुलदैवतम् ॥१६॥
बुधानां कृच्छ्रवाराशितरणे तरणिर्मतः। तदस्माकं महत्कृच्छ्रं सम्प्रति प्रेक्ष्यतां भवान् ॥१७॥

दत्तात्रेय ने गम्भीर वाणी में मधुर अक्षर सुन्दर स्वर सहित कहा, "हे भार्गव संसार को पवित्र करने वाले गौरी आदि के लोकपावन चरित्र को सुन ॥ ८॥ ॥ इस प्रकार रुद्र, विष्णु और ब्रह्मा ने गौरी, रमा तथा सरस्वती को प्राप्त कर अपने अपने दायित्व के कार्यों में तत्पर हो बहुत ही अधिक श्रम रहित हो गये। इस प्रकार कर्म की विचित्रता के न होने से सर्जन किये गये लोकों में मनुष्यगण पृथ्वी में समान स्तर के तथा समान आचरण परायण बन गये। इसमें न तो कोई भी धनी था, न रीता थोथा (खाली हाथ अभावग्रस्त) और न सुखाधिक वाला था; न क्लेशग्रस्त था; न किसी की अधीनता में पाला जाता था और न कोई भी पालन करने वाला था, कोई न सेवनीय (सेवायोग्य) था, न ही सेवक भी, न राजा था और न प्रजा ॥९-१२॥ सब समान थे सबकी समदृष्टि थी जिस प्रकार योगी समदर्शी होता है। इस प्रकार की जनताके होनेसे न यज्ञ और न दक्षिण होती थी; न दान होता था, न देव पूजा आदि का विधान चलता था व सर्वत्र शान्त वातावरण से जगत् आकुलता रहित था (कहीं कोई हाय, हाय असन्तोष, अशान्ति तथा संसार के कर्दम में फंसा व्यक्ति नहीं था। जिससे जन गण द्वारा पूर्ण सन्तोष का जीवन बिताकर आनन्द से कालयापन होता था॥ १३॥ ॥ इस प्रकार के लोग पृथ्वी पर होने से इन्द्र के नायकत्व में देवगण मर्त्य प्राणीगण से सेवायोग्यभाव (कोई देवप्रीणनके कार्य) से विहान होने से सुख न पा सके। तब सभा में विराजे हुए श्री देवगुरु बृहस्पति के साथ सहस्रनेत्र वाले इन्द्र ने देवगण के साथ विनीत हो पूछा, "हे आङ्गिरस हे ब्रह्मन् हे गुरुदेव ! आप हमारे कुलदेव हैं देवगण के लिये आप इस दुःसाध्य सागर को पार करने में नौका हैं तो हम लोगों के कठिन समय को आप (कृपा करके) सम्हालिये (देखिये)। सभी मर्त्यगण देवताओं के पशु हैं (अर्थात् देवगण को मर्त्यलोग सब प्रकार से सन्तुष्ट

मर्त्या बुधानां पशव इति नः श्रुतिभिः श्रुतम् । कथं पितामहवचो मृषा स्यादिति चिन्त्यताम् ॥
यद्यस्मत्तन्त्रमासीना न स्वतन्त्रा भवन्ति ते । मर्त्यास्तदा देवपाल्याः पशुत्वं तेषु जायते ॥
तन्नः सम्पद्यते येन तदाशु परिचिन्त्यताम् । भवान् नो विषमे त्राता त्वन्धस्याऽञ्जनकृद्यथा ॥
इत्थं पुरन्दरवाचो निशम्याऽऽङ्गिरसो गुरुः । क्षणं विमृश्य प्रोवाच सम्बोध्येन्द्रपुरोगमान् ॥
हे पुरन्दर मद्वाक्यं श्रोतव्यं भवताऽऽदरात् । देवानामिष्टसिध्यर्थं यद्ब्रवीमि हितं वचः ॥
गच्छ देवैर्वृतः शीघ्रं शरण्यं प्रपितामहम् । शरणं स भवच्छ्रेयो विधास्यत्यम्बुजासनः ॥
जगत्तन्त्रस्वतन्त्रोऽसौ सर्वज्ञः सर्वकृद्विभुः । एवमेव भवेत्क्षेमं भवतां भयनाशनम् ॥
नाऽन्योऽत्र विद्यते कश्चिदुपायो भवदीप्सिते । इत्याकर्ण्य गुरोर्वाक्यं प्रणम्य धिषणं तदा ॥
ओमिति द्रुतमेवेन्द्रः सदेवपितृगुह्यकः । जगाम ब्रह्मसदनं सत्यलोकं शचीपतिः ॥
तत्र गत्वा जगद्धातुः सभां बाह्यसमाश्रयाम् । शतयोजनविस्तीर्णां विंशद्योजनमायताम् ॥

करते हैं) इस प्रकार हमने श्रुतियों के द्वारा अब तक जाना है; तो पितामह ब्रह्मा जी की वाणी क्यों मिथ्या हो पर विचार करें ॥१४-१८॥ जब वे हम लोगों के अधिकार में हैं तो स्वतन्त्र (किसी रूप में) नहीं तब सभी देवगण के पाल्य हैं एतावता देवों के वे पशु बने हैं ॥१९॥ वह हम लोगों के लिये सम्पन्न हो उसे आप शीघ्र सोच विचार लें। आप ही हमारी विषम स्थिति (विपत्ति) में रक्षा करने वाले हैं जैसे अन्धे के लिये (सुरमा) बनाने वाला ॥२०॥ इस प्रकार अङ्गिरागोत्री बृहस्पति ने पुरन्दर (इन्द्र) की वाणी सुन एक क्षण भर विचार कर इन्द्र आदि प्रमुख देवगण को सम्बोधन कर कहा ॥२१॥

"हे इन्द्र ! मैं जो देवगण की इष्टसिद्धि के लिये हित वचन कहता हूँ तुम आदरपूर्वक मेरा कथन सुनो तुम अति शीघ्र देवगण के साथ शरणमें जानेके योग्य प्रपितामह की शरण में जाओ वह पद्मासन ब्रह्मा आप का श्रेय बनायेंगे ॥२२-२३॥ वह जगत् के तन्त्र (नियमविधान) से स्वतन्त्र हैं सर्व (ब्रह्म) को जाननेवाले हैं कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ हैं, विभु हैं इसी प्रकार आपके भय को नाश करने शाला क्षेमकारी बानक बनेगा कोई उपाय आपके अभीष्ट सिद्धि के लिये नहीं है" ॥ २४॥ ॥ इस प्रकार श्रीबृहस्पति के वचन सुन उन्हें प्रणाम देवगण पितेश्वर तथा गुह्यक (कुबेरका अनुचर) वर्ग के साथ "हां महाराज जो आज्ञा" इस रूप में कह कर शचीपति इन्द्र ब्रह्मा के सदन सत्यलोक में चला गया ॥२४-२६॥ ब्रह्मा के वहां जगत् के धाता की बाहर लगी सब देवगण के साथ जाकर उसे आसन पर विराजमान देखा। वह सभा सौ योजन विस्तीर्ण और चौड़ाई योजन तक फैली थी; उसके ३० खम्भे लगे थे रत्न के स्तम्भों से सर्वत्र प्रदीपित थी।

त्रिंशदुच्छ्रायसंयुक्तां रत्नस्तम्भप्रदीपिताम् । स्तम्भप्रभामूर्च्छनेन हेमभूमिप्रभाधिकाम् ॥२८॥
भूमिप्रभाशबलितचन्द्रकान्तोद्ध्वभूमिकाम् । कान्तित्रयसुसङ्क्रान्तमुक्ताजालविचित्रिताम् ॥२९॥
स्तम्भसंन्यस्तमाणिक्यमयपुत्तलिकाञ्चिताम् । चन्द्रकान्तखण्डकल्पितप्रतिमानेत्रभासिताम् ॥३०॥
इन्द्रनीलतारकिकापक्ष्मकेशप्रकाशिताम् । चन्दनाऽगरुकस्तूरीकाश्मीरपटवासकैः ॥३१॥
घुमघ्युमितगन्धाढ्यां मणिकाञ्चनचित्रितैः । तोरणैः कदलीस्तम्भैः पूगवृक्षैः समन्ततः ॥३२॥
मण्डितां माल्यजालैश्च मन्दमारुतशीतलाम् । मध्ये मणिप्रवेकाढ्यं मुक्ताच्छत्रविराजितम् ॥३३॥
सिंहासनं जगत्स्रष्टुः परितोऽपि सभासदाम् । नानाविधान्यासनानि संस्थितानि सहस्रशः ॥३४॥
तेषु सिद्धा महात्मानः कपिलाद्या महर्षयः । भृग्वाद्याः सनकाद्याश्च योगीन्द्राः सुव्यवस्थिताः ॥३५॥
कोटिमन्मथलावण्यपरिपूर्णाङ्गसौभगाः । तारुण्यगर्विता रामा रमण्यश्चाऽमरग्रहाः ॥३६॥
ताभिः सुवीज्यमानास्ते कामिनीभिः समन्ततः । तासां वदनराकेन्दुमन्दस्मितमरीचिभिः ॥३७॥

प्रभा के बढ़ने से स्वर्णभूमि की कान्ति कहीं अधिक सुन्दर लग रही थी ॥२७-२८॥ यत्र तत्र स्वर्ण खचित भूमि की प्रभा से युक्त ऊपर छत की ओर चन्द्रकान्त मणियां जगमगा रही थीं इस प्रकार रत्नप्रभा से दीपित सुवर्ण भूमि से शोभित और चन्द्रकान्त मणियों से नीचे की छत भरी होने से तीनों की कांतियां एक साथ आकर मोतियों के जाल से मिलकर विचित्र चमत्कारी दृश्य उपस्थित कर रही थीं ॥२९॥ वहां मणिस्तम्भ में लगी हुई मणिक्यमय पुतलियों से युक्त हैं जिसमें चन्द्रकान्त मणिके प्रतिमाओं के नेत्रों में लगी अत्यधिक प्रकाश छोड़ती है। इन्द्रनील ताराओं के केश पाश से सजी बजी चन्दन, अगरु, कस्तूरी, केशर और कपूर की सुगन्ध से चारों ओर मन्द मन्द सुगन्ध समीर से वातावरण अत्यधिक परिपूर्ण है। सर्वत्र मणिकाञ्चन चित्रित चारों ओर तोरण, केले के स्तम्भ और सुपारी के मंगल वृक्षों के समूह से शोभित पुष्प मालाओं के जाल से अत्यधिक विलास युक्त हो मन्द मन्द ठण्डी हवा के शीतल झोंके आते रहते हैं। सब के बीच में अतिमात्र मणियों के जड़ाव से मोतियों के गुथे हुए छत्र से विशेष शोभित जगत् के सर्जन करने वाले ब्रह्मा का आसन लगा है। उसके चारों तरफ अनेक प्रकार के हजारों की संख्या में सभासदों के आसन स्थित हैं ॥३०-३४॥ जिन पर सिद्धगण, कपिल आदि सिद्ध महात्मा, भृगु आदि महर्षि-गण और सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन आदि योगीन्द्र अपने अपने स्थानों पर सुव्यवस्थित हैं ॥३५॥ कोटि कामदेवों के सौन्दर्य से पूर्ण अङ्गों की शोभावाली तारुण्य से गर्वीली स्त्रियां और अमरगण की रमणियां चारों ओर उन सभासदों को ब्रह्मसभा में पङ्खा झेल रहीं हैं। उनके मुखरूपी चन्द्र की मन्द मुस्कान की बिखरी किरणों से जब

सम्पृक्तास्तम्भसंक्रान्तप्रतिमानेत्रपङ्क्तयः । मुमुचुर्नीरपृषतानतिस्वच्छान्निरन्तरान्
सभाशोभादर्शनोद्यदानन्दाश्रुकला इव । तत्र सिंहासने धाता नवविद्रुमसच्छवि
प्रसन्नवेदवदनो ब्रह्मव्याख्यानतत्परः । एवंविधं विधातारं चाऽपश्यदमराऽधिप
सत्यलोकान्तरे चाऽपि स्थित एवंविधो विधिः । रूपद्वितयमासीनः लोकरक्षणहेतो
अन्तःसभायां देवेन्द्रमुखानाममृतान्धसाम् । प्रवेशो नास्ति तत्प्रोक्तं जितषड्रिपुसंश्रयम्
तत्र प्राप्ता न मुह्यन्ति नाधो यान्ति कदाचन । कामक्रोधादिभिर्नैव परिभूता भवन्ति च
कामक्रोधादियुक्तानां बाह्ये सदसि संस्थितिः । एतदर्थं द्विधाऽत्रैव संस्थितः प्रपितामहः
तत्राऽमराधिपो देवैः साकं दृष्ट्वा जगत्प्रभुम् । दूरादेवाऽमेरशानो दण्डवत् प्रणनाम तम्
प्रणेमुर्विबुधाः सर्वे बद्धाञ्जलिपुटास्तदा । तान् दृष्ट्वा जगतां धाता प्रोवाच प्रसभं तदा
भो पाकशासन ! बुधैर्माभैरुत्तिष्ठ ते हितम् । सेत्स्यति ब्रूहि किं तेऽत्रः प्राप्तो कारणमाशु मे
इति श्रुत्वा चतुर्वक्त्रवचनं विबुधेश्वरः । उत्थाय मूर्ध्नि विन्यस्तकरकञ्जपुटस्तदा ।

स्तम्भों पर लगी उनकी प्रतिभा की नेत्र पंक्तियां पड़ती हैं तो अति स्वच्छ जल के कण (छींटे) छोड़ रही हैं ऐसा होता है कि मानों सभा की अप्रतिम शोभा को देखकर आनन्द विभोर हो आँखों से आंसू विवश निकल आ उस सिंहासन पर ब्रह्मा नवीन विद्रुम की उज्वल आभावाले अपने सुप्रसन्न चतुर्मुख ब्रह्म व्याख्यान में परायण दि है। इस प्रकार के शोभास्पद ब्रह्मसदन में अति विशाल सभा में ब्रह्मा को देवगण के अधिपति इन्द्र ने देखा ॥४ सत्यलोक के अन्तर्भाग में इसी प्रकार के ब्रह्मा सृष्टि की रक्षा के कारण से द्वितीय रूप धारण किये बैठे है उस अन्तः सभा में देवराज इन्द्र आदि देवताओं का प्रवेश नहीं है। इसे षड्रिपुओं (काम, क्रोध, लोभ, मो और मात्सर्य) पर विजय पाने वाला ही पाने का अधिकारी है। लोग इसे प्राप्त कर न मोहित होते हैं और न नीचे जाते हैं; काम क्रोधादि द्वारा न परिभव प्राप्त करते हैं एवं ऐसे व्यक्ति जो काम, क्रोध आदि वाले हैं उन्हे बाहरी सभा में स्थान हैं। इसी लिये प्रपितामह ब्रह्मा दो रूपो में यहां स्थित है ॥४२-४४॥

वहां जगत् के स्वामी ब्रह्मा को देवगण सहित देवराज इन्द्र ने देख दूरसे ही उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया तब सभी देवतागण ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। उन्हें देखकर जगत् धाता ब्रह्मा ने तत्क्षण कहा, " देवगण के साथ तू आया है अपना उत्साह दृढ़ रख, डर मत, तेरा कल्याण निष्पन्न होगा; तू शीघ्र बता, यहां तेरे का क्या कारण है ?" ॥४६-४७॥ देवगण के स्वामी इन्द्र इस प्रकार ब्रह्मा के (आश्वस्त) वचन सुनकर उठकर अं पर करकञ्ज का पुट लगा देख (अभय हो) देवगण सहित अपना वृत्तान्त कहने लगा ॥४८॥ "हे विधातः ! हमारे

स्ववृत्तं वक्तुमारेभे विबुधैः सह वज्रभृत्। विधातर्नः स्ववृत्तेषु भवानेव परायणम् ॥४९॥
भवदाज्ञां मूर्ध्नि धृत्वा त्रिलोकीशासने स्थितः। भवत्कृपालेशतोऽपि मयि त्रिभुवनेशिता ॥५०॥
सुस्थिता जगतां नाथ देवेशत्वमपि ध्रुवम्। परन्तु लोकत्रितयनाथता मयि तादृशी ॥५१॥
यादृशी चित्तविन्यस्ता विधातुर्वै विधातृता। बल्वजेऽपि तृणे यद्वन्मेघनादादिशब्दनम् ॥५२॥
नाहं मर्त्यैर्मानितोऽद्य न मां मर्त्या भजन्ति च। नेष्टो न पूजितो नैव प्रणतो नापि संस्तुतः। ५३॥
मर्त्यास्तु पशवः प्रोक्ता धातर्नोऽद्यमृतान्धसाम्। तदद्यापि न सम्पन्नं भवतोक्तं हि यत्पुरा ॥५४॥
मां मानयन्ति विबुधा भवद्वचनगौरवात्। श्रद्धामात्रनिमित्तेन ममेन्द्रत्वमिति स्थितम् ॥५५॥
एवं प्रोक्तं ममाऽशेषवृत्तमग्रे यथोचितम्। आज्ञापयतु नो देवो यत्कर्त्तव्यमनन्तरम् ॥५६॥
इति श्रुत्वा सहस्राक्षवचनं विश्वसृट् तदा। विमृश्य किञ्चिद्गम्भीरवचसा प्रत्यवोचत ॥५७॥
मघवन्नत्र मे वाक्यं शृणु यत्ते ब्रवीम्यहम्। यत्त्वां मर्त्या न मन्यन्ते इत्युक्तं तत्र कारणम् ॥५८॥
निबोध वदतो मत्तः स्वहितायेतराश्रयाः। स्वार्थरिक्तस्य चाऽहं वा हरिर्वा शंकरोऽपि वा ॥५९॥

प्रकार के झंझट लग जाने पर आपही सब प्रकार से हमारे मार्ग-दर्शन करने वाले हैं। आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके हमने त्रिलोकी के शासन का भार उठाया है। आप ही की अहैतुकी कृपा के लेशमात्र से ही मेरे में त्रिभुवन का स्वामित्व है हे जगत् के नाथ मेरे में देवगण का अधिपति का स्थान निश्चित सर्वथा सुव्यवस्थित है॥४९-५०॥ परन्तु मेरे में रक्खी हुई तीनों लोकों की नाथता मेरे चित्त में ही सुरक्षित है आप विधाता की मोटे घासके तिनके में भी रचना-शक्ति है परन्तु हमलोगों का आधिपत्य मेघगर्जन के समान निस्सार है॥५१-५२॥ आज कल न तो मर्त्यों के द्वारा मेरा मान होता है न वे मेरा भजन करते हैं। न तो मेरे लिये यज्ञ किया जाता है, न पूजा की जाती है, न कोई प्रणाम करता है और न स्तुति ही॥५३॥ हे पितामह! देवगण के मर्त्यलोक भोग्य पशु कहे गये हैं वह आज तक आप का पहले का कहा हुआ पूर्ण नहीं होता॥५४॥ मुझे तो देवगण आपके कथनानुसार मानते हैं; केवल श्रद्धा मात्र की निमित्तता से मुझ में इन्द्र पद स्थित है॥५५॥ इस प्रकार मैंने आपके सामने अपना यथोचित वृत्त कह दिया अब इसके बाद जो मेरे करने का कार्य है उसे आप आज्ञा करें" ॥५६॥ इस प्रकार ब्रह्मा ने इन्द्र का वचन सुनकर विचार किया और कुछ गम्भीर वाणी में कहा॥५७॥ "हे इन्द्र! इस विषय में जो मै कहता हूँ वह तू सुन। जो तूने कहा कि 'मर्त्यलोग (संसारी) मुझे नहीं मानते' उसका कारण यह है मैं बताऊँ। अपने हित के लिये ही दूसरे लोग आश्रय लेते हैं स्वार्थसिद्ध न हो तो भले ही मैं होऊँ, विष्णु हो अथवा शंकर भी हो तो ईश्वरत्व होने पर भी उसके लिये तो

कियान् तस्य जगत्सर्वं सेश्वरं तृणतो लघु । आश्रयन्ति परं सर्वे स्वार्थं किञ्चित्समाश्रिताः ॥६०॥
मर्त्यानां भवतां किञ्चिन्न प्रयोजनमस्ति वै । तेनाऽप्रयोजका यूयं कथं मान्यत्वमर्हथ ॥६१॥
तद्गम्यतां मदवरां लक्ष्मीं पद्मासनां शुभाम् । प्रसाद्य विष्णुरमणीं शुभं प्राप्स्यथ मा चिरम् ॥६२॥
इति श्रुत्वा स्वात्मयोनिवचनं तद्दिवस्पतिः । प्रणम्य हिमवत्पार्श्वं ययौ लक्ष्मीकृपाऽऽप्तये ॥६३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये दत्तात्रेयपरशुराम-संवादे
माहात्म्यखण्डे रमोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ॥६६॥

हमारी मान्यता तृण से भी छोटी है सभी लोग किसी स्वार्थ के आश्रित होकर ही दूसरे का मुँह जोहते हैं और उसका सहारा लेते हैं ॥५८-६०॥ मनुष्यों को तुमलोगों से ऐसा किसी रूप का प्रयोजन (स्वार्थ) नहीं हैं इससे उनके प्रयोजन में आते नहीं उनके द्वारा तुम्हें मान्यता कैसे दी जावे ? ॥६१॥ इस लिये मेरी छोटी बहन शुभ लक्ष्मी पद्मासना के शरण होओ तुम लोग विष्णुप्रिया को प्रसन्न कर शीघ्रमेव शुभ इष्ट प्राप्त करोगे"॥६२॥ इस प्रकार देवराज स्वर्गाधिपति इन्द्र ने आत्मयोनि ब्रह्मा का कथन सुन उन्हें प्रणाम कर हिमालय प्रदेशमें लक्ष्मी की कृपा प्राप्त करने के लिये प्रस्थान किया ॥६३॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के दत्तात्रेय-परशुराम-सम्वाद के
माहात्म्य-खण्ड में रमा के उपाख्यान विषयक ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

द्वादशोऽध्यायः

सलक्ष्मीप्रादुर्भावं कामोपाख्यानवर्णनम्

अथ ते पुरुहूताद्यास्तुहिनाद्रितटे स्थिताः। स्वर्धुनीसविधे पद्मां तुष्टुवुर्हरिवल्लभाम् ॥१॥
नमो लक्ष्म्यै महादेव्यै पद्मायै सततं नमः। नमो विष्णुविलासिन्यै पद्मस्थायै नमो नमः ॥२॥
त्वं साक्षाद्धरिवक्षःस्था सुरज्येष्ठा वरोद्भवा। पद्माक्षी पद्मसंस्थाना पद्महस्ता परामयी ॥३॥
परमानन्ददाऽपाङ्गहृतसंश्रितदुर्गतिः। अरुणानन्दिनी लक्ष्मीर्महालक्ष्मीस्त्रिशक्तिका ॥४॥
साम्राज्या सर्वसुखदा निधिनाथा निधिप्रदा। निधीशपूज्या निगमस्तुता नित्यमहोन्नतिः ॥५॥
सम्पत्तिसम्मता सर्वसुभगा संस्तुतेश्वरी। रमा रक्षाकरी रम्या रमणी मण्डलोत्तमा ॥६॥
एवमिन्द्रमुखा देवा नामाऽष्टाविंशतिं पठन्। उपतस्थुर्हरेः कान्तां ब्रह्मशक्तिं समाहिताः ॥७॥
एवं तत्परचित्तास्ते यदा तां शरणं गताः। तदा लक्ष्मीः प्रादुरासीद्देवानां प्रीतये द्रुतम् ॥८॥

बारहवां अध्याय

ब्रह्मा जी से आदेश पाने के अनन्तर इन्द्र आदि देवगण हिमालय पर्वत के समीपस्थ (एकान्त प्रदेश में) गङ्गा की सन्निधि में भगवती विष्णुप्रिया लक्ष्मी की स्तुति (तपस्या) करने लगे ॥१॥ "लक्ष्मी को नमस्कार हो, महादेवी को प्रणाम हो, हम पद्मा को सदैव नमन करते हैं विष्णु भगवान् के साथ विलास करनेवाली आपको नति हो कमलवासिनी आपको बारम्बार नमस्कार हो ॥२॥ आप साक्षात् भगवान् विष्णु के हृदय कमल में स्थित रहती हो, देवगण की पूज्य हो, वर से आविर्भूत हो, कमल के समान नेत्र वाली, पद्म में सदैव वास करने वाली, हाथ में कमल धारण करनेवाली, परामयी हो ॥३॥ आप सर्वोत्तम परमानन्द देने वाली हैं, अपने कृपा-कटाक्ष से आपके आश्रितजन की दुर्गति हरने वाली हो, लक्ष्मी, महालक्ष्मी और तीनों शक्तिमयी हो ॥४॥ साम्राज्या आप हो, सम्पूर्ण सुख देने वाली, सम्पूर्ण अक्षय्य निधियों की आप स्वामिनी, निधि अटूट धन-भण्डार की प्रदान करने वाली हो। कुबेर के द्वारा पूज्य हो, वेद के द्वारा स्तुति की गई हो, सर्वदा उच्च उन्नति के शिखर पर पहुँचने वाली हो ॥५॥ सद्बुद्धि द्वारा समस्त सम्पत्तियों की आप ही सर्व प्रकार से उत्कृष्ट सद्भावकारिणी, सम्यक् प्रकार से स्तुति की गई ईश्वरी हो। आप ही रमा रक्षा करी (रक्षा करनेवाली त्रिताप से) अतिशय रम्य (सुन्दर) रमणशील, अपने मण्डल में सब से उत्तम हैं ॥६॥

इस प्रकार इन्द्र आदि प्रधान देवगण द्वारा अटठाइस नामों को पढ़ते हुए हरि की कान्ता ब्रह्मशक्ति लक्ष्मी जी का ध्यान पूर्वक स्मरण किया गया ॥७॥ इस प्रकार उन्हीं में मन प्राण और शरीर को लगा जब वे उसकी शरण में हुए

अनन्तकोटितडितां पुञ्जीभूतसमप्रभा । दलद्रक्तोत्पलाभाङ्गी ततहेमाम्बराऽन्विता ॥
करपद्मलसच्छूतदलपद्मचतुष्टया । हेमकुम्भप्रभाक्षेपतुङ्गवक्षोजशोभिता ॥१०॥
पक्वविद्रुमन्यक्कारिमृदुदन्तच्छदाऽन्विता । मुखामोदसमाकृतभृङ्गीझङ्कारमध्यगा ॥११॥
इन्दीवरसुसौभाग्यवदान्याऽऽकर्णलोचना । कस्तूरीतिलकाऽऽख्यातमुखराकेन्दुलाञ्छना ॥
अनर्घ्यरत्नप्रप्तभूषणौघविभूषिता । एवंविधां रमां दृष्ट्वा दण्डवत्प्रणताः सुरा ॥१३॥
आनन्दाऽश्रुकलोपेताः स्तुवन्तो गद्गदस्वरैः । तान् विलोक्य तदा लक्ष्मीरुवाच स्मितपूर्वकम् ॥
मधुनिर्झरनिष्पन्दकन्दसुन्दरभाषिणी । भो भो शक्र सहस्राक्ष भो देवा असुरद्विषः ॥
प्रसन्नाऽस्मि वरं यद्वो वाञ्छितं मत्सकाशतः । प्रतीच्छध्वं स्तुता साऽहं भवद्भिर्गुप्तनामभिः ॥
त एवंविधमाकर्ण्य वचनं निर्जरास्तदा । प्रोचुर्विडौजाप्रमुखा बद्धाञ्जलिपुटाः परम् ॥

तो लक्ष्मी अति शीघ्र देवगण की प्रसन्नता के लिये प्रादुर्भूत हुई ॥८॥ उस समय वह महालक्ष्मी अनन्त
विद्युत्प्रकाशों की पुञ्जीभूत (संघटित) कान्तिसम प्रभा को धारण की हुई थी, विकसित रक्त कमल के सम
अङ्गों की शोभा धारण की हुई थी, विशुद्ध सुवर्णमय (लाल) वस्त्रों को धारण की हुई थी ॥९॥ अपने हस्त
में चार कमल के दल लिये हुई थी शोभन सुवर्ण कलश की कान्ति को भी नीचा दिखाने वाले अपने ऊँचे
उरोज (कुच) द्वय से अति शोभित हो रही थी ॥१०॥ लक्ष्मी ने पके मूँग की रक्तिम शोभा को अपने कोमल
की आभा से अधिकाधिक फीका बना दिया है। उसके मुख की अत्यन्त मधुर सान्द्र सुगन्ध से खिंचे हुये
गुञ्जारसे उसका मध्य भाग सुशोभित हो रहा है। नील कमल की अति उत्कृष्ट आनन्ददायिनी गरिमापूर्ण शोभायु
पर्यन्त नेत्रों का अति सुहावना चित्र भासता है। श्रीलक्ष्मीजी के मस्तक में कस्तूरी के तिलक ने उनके मुखम
शोभा को अति मुखरित कर दिया है ॥११-१२॥

अत्यन्त अमूल्य रत्नों के जड़ाव से नाना आभूषणों की कान्ति से वह रमा विभूषित है। इस प्रकार
दिव्यतेजोमयी मूर्ति भगवती रमा को देखकर दण्डवत्प्रणाम कर देवगण ने आनन्द के आंसुओं से व्याप्त हो गद्गद
से स्तुति की। उन्हें देख भगवती लक्ष्मी ने मन्दहास्य से कहा ॥१३-१४॥ वह अत्यन्त मधुर अमृत के निर्झर से
मूलरूप से सुन्दर भाषण करती हुई बोली, "हे सहस्राक्ष। हे इन्द्र और राक्षसों के द्वेषी (वैरी) देवगण! मैं तुम
प्रसन्न हूँ जो मेरे अपने गुप्तनामों से स्तुति की गई है उसके लिये जो तुम्हे अभीष्ट है सो वर मांगो" ॥१५-१६॥

इस प्रकार की वाणी सुनकर इन्द्र आदि के सहित वे सभी देवगण अत्यन्त भक्तिभावसे हाथ जोड़कर बोले

मातस्त्वयि प्रसन्नायां दुष्प्रापं किमिहोच्यते । प्राप्तकल्पतरोः किं वा वाञ्छितं परिशिष्यते ॥१८॥
अम्बाऽस्माकं यथा मर्त्याः सेवकाः सम्भवन्ति वै। तथा कुरु शुनासीरः स्याद्यथा त्रिजगत्पतिः ॥१९॥
सदा वशंवदाः सर्वे मानवाः सन्तु नः शिवे । यजन्त्वस्मान् समुद्दिश्य वितरैवं वरं शिवे ॥२०॥
इति बर्हिर्मुखोक्ता सा प्राह मञ्जुलया गिरा । देवाः शृणुध्वं मद्वाक्यमहं सम्पदधीश्वरी ॥२१॥
अद्य प्रभृति ये मर्त्याः सुत्रामप्रमुखान् सुरान् । यजन्ति विधिवत्तेषां सम्पदः स्युर्हि वाञ्छिताः ॥२२॥
उदासीना ये सुरेषु तेषां सम्पत्तिराशयः । क्षयं गच्छन्तु तरसा ग्रीष्मे पल्वलतोयवत् ॥२३॥
भवदुक्तैर्नामभिर्ये मां स्तुवन्ति सदा नराः । तेषां सदाऽहं सन्तुष्टा निवसामि समीपतः ॥२४॥
य एतैर्नामभिर्देवा भृगुवारे निशोद्भवे । पूजयित्वा मत्समीपे पठन्त्यष्टोत्तरं शतम् ॥२५॥
सुवासिनीं पूजयन्ति नामैकैकेन मानवाः । एकैकवासरे त्वेवं चणकाढ्यैर्निवेदनम् ॥२६॥
अष्टाविंशतिवारैस्ते भजन्त्यचलसम्पदम् । प्रसन्ना सर्वदैवाऽहं तथा यूयं प्रसादकाः ॥२७॥

इस प्रकार की वाणी सुनकर इन्द्र आदि के सहित सभी देवगण ने अत्यन्त भक्तिभाव से हाथ जोड़ कर कहा ॥१७॥ "हे मातः ! आपके प्रसन्न होने पर क्या कोई वस्तु कठिनता से प्राप्त होनेवाली है ? कोई भी दुष्प्राप्य नहीं; कल्पवृक्षको जिसने पालिया उसके लिये क्या अभिलषित पदार्थ बाकी रह गया ?॥१८॥ हे अम्ब ! मर्त्यलोक वाले जैसे हमारे सेवक बन जांय इन्द्र जिस प्रकार तीनों जगत् का स्वामी बन जाय वही विधि आप करें ॥१९॥ हे शिवे ! सभी मनुष्यगण हम लोगों के वश में हो जांय एवं वे हम लोगों के प्रीत्यर्थ यजन करें हे शिवे ! यही आप हमें वरदान दीजिये ॥२०॥ इस प्रकार देवगण में प्रमुख इन्द्र आदि के कहने पर वह लक्ष्मी मधुर वाणी में बोली, "हे देवगण तुम सब मेरी बात सुनो मैं सम्पत्ति की स्वामनी हूँ; आज से जो संसारी लोग देवराज आदि प्रमुख देवगण की अच्छी प्रकार विधिपूर्वक पूजा करेंगे उन्हें मनोवाञ्छित सम्पत्ति प्राप्त होगी । जो लोग देवगण के प्रति उदासीन रहेंगे उनकी प्रभूत सम्पत्ति भी उसी प्रकार तत्क्षण क्षीण हो जाय जिस प्रकार ग्रीष्म-ऋतु में घाम से छोटी तलैया का जल सूख जाता है। तुम्हारे द्वारा कहे गये नामों से जो लोग सदा सर्वदा मेरी स्तुति करेंगे तो उनके यहां मैं सर्व प्रकार से अत्यन्त प्रसन्न हो कर सदा निवास करती रहूँगी ॥२१-२४॥ हे देवगण ! जो शुक्रवार को रात्रि के आने पर मेरी पूजन कर मेरे १०८ नामों का पठन करते हैं, मेरे एक एक नाम से सधवा सौभाग्यवती स्त्रियों की पूजा करते हैं और इस प्रकार प्रति शुक्रवार को २८ वारों तक चने के प्रसाद से भोग लगाते हैं वे अचल सम्पत्ति के भागी होते हैं । मैं सर्वदा ही तुम पर प्रसन्न हूँ और तुम मेरे से प्रसाद प्राप्त कर सब अपने

गच्छन्तु स्वर्गवसतिं फलितं वोऽभिवाञ्छितम्। इत्युक्त्वा सा परा देवी जगामाऽऽकाशतां तदा ॥२
ततः शतक्रतुमुखास्तां दिशं भक्तिभावतः। प्रणम्य कृतकृत्यत्वं मत्वा स्वभुवनं ययुः ॥२
अथ काले बहुतरे गते देवास्त्रिविष्टपे। समासीनाः सुधर्मायामाङ्गिरससमाश्रयाः ॥३
जीवे शृण्वति ते प्राहुरिन्द्रं सिंहासनस्थितम्। भो देवराज नो वाक्यं श्रूयतां हेतुसंयुतम् ॥३
पुरा लक्ष्मीः प्रसन्ना नो वरं दत्तवती च यम्। तत्राऽद्य धरणीमध्ये न फलं दृश्यते क्वचित् ॥३
क्वचिल्लक्षे सहस्रे वा दृश्यते तादृशो जनः। एको यथा वृतोऽस्माभिरन्ये शान्ताऽऽशयाः स्थिता ॥३
अद्याप्यस्मदभीष्टन्तु न सिद्धं सुरनायक!। विचारयाऽग्रे यद्योग्यं शुभं नः स्याद्यथा हरे ॥३
एवमुक्तः शतमखः विचार्य वचनं तदा। प्रणिपत्य गुरुं वाचस्पतिमूचे कृताञ्जलिः ॥३
गुरो विमृश्यतां चैतत्कुतो नः सिद्धिरद्य नो। हरिवल्लभया प्रोक्तं न मृषा भवितुं क्षमम् ॥३
तत्कुतोऽस्मान् मानवा नो यजन्ति विधिपूर्वकम्। भवतः स्यादविदितं न हि लोकत्रये स्थितम् ॥३
त्वं हि सर्वान्तरगतं वेत्सि सर्वाऽऽन्तरेशवत्। तन्नो ब्रूहि शिवं येन प्राप्स्यामो ह्यविलम्बितम् ॥३

निवासस्थान स्वर्गलोक में चले जाओ, तुम्हारा अभिवाञ्छित सिद्ध हो।" यह कह कर भगवती महालक्ष्मी आकाशरूप अन्तर्धान कर गई ॥२५-२८॥ अनन्तर शतक्रतु इन्द्र की प्रमुखता में वे देवगण उस दिशा को भक्तिविनम्र हो प्रणाम कर कृतकृत्य बन अपने अपने निवासभवन में चले गये ॥२९॥ इसके अनन्तर बहुत सा काल बीत जाने पर स्वर्ग में आङ्गिरस बृहस्पति के समाश्रय (तत्त्वावधान) में आसीन देवगण ने देवसभा में उसके (देवगुरुके) ऊपर सिंहासन पर विराजमान इन्द्र को कहा, "हे देवराज हमलोगों की कारणपूर्विका वाणी (प्रयोजनवाली) सुनें ॥३०-३१॥ प्राचीनकाल में लक्ष्मीदेवी ने प्रसन्न होकर जो हमें वर दिया उसका आज तक पृथ्वी भर में कहीं भी फल नहीं दिखाई देता है ॥३२॥ लाखों अथवा सहस्त्रों जनों में कोई ही विरला मनुष्य ऐसा दीख पड़ता है जो जैसा हम लोगों के द्वारा वृत (वरण किया गया) हो, अन्य लोग तो पहले के समान ही उदासीन शान्तभाव के ही व्यक्ति हैं ॥३३॥ हे देवगण में श्रेष्ठ इन्द्र! आज कि मिति तक भी हमारा अभीष्ट क्यों नहीं सिद्ध हुआ; हे हरे! आगे आप जो उपयुक्त हो और जिस प्रकार हमारा मङ्गल हो उसे भली प्रकार विचार लें" ॥३४॥ शतमख इन्द्र को देवगण के द्वारा कहने पर उसने विचारकर तब हाथ जोड़ प्रणामकर गुरुदेव बृहस्पति को कहा, "हे गुरुवर्य! आप इसका विशेष-विचार विमर्श करें कि क्यों हमें अब तक सिद्धि नहीं हुई है। भगवती विष्णुप्रिया द्वारा कहा हुआ तो कभी भी मिथ्या नहीं हो सकता ॥३५-३६॥ तो क्यों पृथ्वी पर मानव हमें प्रीणन करने के लिये विधिपूर्वक यज्ञ नहीं करते? आप को तो सब के अन्तर मन की सब कुछ ज्ञात है जिस प्र

एवं शतक्रतुवचो निशम्याऽऽङ्गिरसो मुनिः । निमीलिताक्षः सुचिरं ध्यात्वोवाच सुरेश्वरम् ॥३९॥
शृणु मद्वचनं पाकशासनाऽतिशुभोदयम् । अभीष्टं भवतां कालात्सेत्स्यत्यत्र न संशयः ॥४०॥
गच्छ देवगणैः साकं पुनः कमलवासिनीम् । सन्तोष्याऽभीष्टसिद्धिं त्वं भजिष्यसि शतक्रतो ! ॥४१॥
उपायो नास्ति चाऽत्राऽन्यो येनेष्टं सिध्यति द्रुतम् । तत्त्वं गच्छ महादेवीं शरणं शरणेष्टदाम् ॥४२॥
इति श्रुत्वा गुरुवचो देवैः सह दिवस्पतिः । जगाम जाह्नवीतीरे हिमशैलतटोपरि ॥४३॥
तत्र गत्वा सुविमले स्वर्धुनीतोय आप्लुतः । अनिमेषगणैः साकं तपस्येव मनो दधे ॥४४॥
ध्यायन् हरिमनोज्ञाङ्गीपादपद्मयुगं मुहुः । आवर्त्तयन्नामगणमष्टाविंशतिसङ्ख्यकम् ॥४५॥
अवष्टभ्य भुवं पादाऽङ्गुष्ठाग्रेणेन्द्रमुख्यकाः । ऊर्द्ध्ववाहा निरालम्बा मारुताऽऽहारतत्पराः ॥४६॥
एकाग्रचित्ता ह्यचलकायचक्षुर्मनोवचः । शिलोत्कीर्णसुपाञ्चालीसङ्घवत्संस्थितास्तदा ॥४७॥
एवं त्रिसप्तदशके मासेऽतीते भृगूद्वह । उग्रेण तपसा तुष्टा प्रत्यक्षीभवदञ्जसा ॥४८॥

सर्वान्तर्यामी प्रभु जानते हैं । इसलिये जिससे अविलम्ब हमें मङ्गल प्राप्त हो वह उपाय बताइये ॥३७-३८॥ इस प्रकार आङ्गिरस मुनि देवगुरु (बृहस्पति) ने इन्द्र का कथन सुन कर बहुत देर तक आंखे बन्दकर ध्यान लगा सुरेश्वर से कहा ॥३९॥ "हे पाकशासन ! तुम अत्यन्त मङ्गलमय विधान को प्रकट करने वाला मेरा वचन सुनो । तुम लोगों का समय आने पर सारा अभीष्ट सिद्ध होगा इसमे कोई सन्देह नहीं ॥४०॥ फिर तुम देवताओं के साथ कमलवासिनी लक्ष्मी के पास जाओ, हे शतक्रतो ! उसे सन्तुष्ट कर अभिलषित सिद्धि पा जाओगे ॥४१॥ और दूसरा कोई उपाय नहीं है जिससे तुम्हारा इष्ट शीघ्र सिद्ध हो; इसलिये तुम शरण में आये हुए को इष्टवस्तु देनेवाली महादेवी लक्ष्मी की शरणागति में जाओ" ॥४२॥ इस प्रकार देवगण के सहित इन्द्र देवगुरु बृहस्पति का कथन सुन हिमालय पर्वत के सन्निकट गङ्गा के तीर पर गया ॥४३॥ उसने वहाँ जाकर अत्यन्त निर्मल गङ्गाजल में स्नान किया और जिनकी आंखों की पलकें नहीं झंपती उन देवगण के सहित तपस्या में ही पूरा मनोयोग दिया ॥४४॥ हरि की प्राणप्यारी भगवती लक्ष्मी के पादकमलों का वारम्वार ध्यान करते हुए २८ संख्यावाले नामों का पाठ करते हुए इन्द्र प्रमुख देवगण पृथ्वी पर पैर के अंगूठे के सहारे से खड़े हो ऊपर की ओर बाहु कर विना किसी अवलंब के पकड़े हुये और केवल वायु के आहार पर ही जीवन बिताते हुये वे सब लोग एकाग्र मन कर शरीर, आंख, मन और वाणी को निश्चल बना, अचल पत्थर की शिला पर खुदाई की गई पुतलीगण के समूह के समान स्थित हो गये ॥४५-४७॥ हे भृगुवंशज परशुराम ! इस प्रकार २१० मास बीत जाने पर उनकी उग्र तपस्या से सन्तुष्ट हो तत्काल ही

तत्राऽऽगत्य सुरानिन्द्रप्रमुखान् तान् निशाम्य तु। काष्ठकुड्यसमान् ध्यानतत्परान् प्राह सा रमा॥
भो भो देवाः सुरेशान प्रसन्नाऽस्मि वरप्रदा। विरमन्तु भवन्तोऽस्मादत्युग्रतपसो बुधाः॥
ब्रुवन्तु वो वाञ्छितं यत्प्रददाम्यविशङ्कितम्। इति श्रुत्वा वचो देव्या मधुरस्वरसुन्दरम्॥
उन्मीलितदृशो देवा दृष्ट्वा देवीं हरिप्रियाम्। पूर्वदृष्टां स्मितापाङ्गीं दण्डवत्पतिता भुवि॥
हर्षरुद्धकलाऽव्यक्तवाचा स्तोतुं प्रचक्रमुः। शरणागतदीनार्त्तिगिरिदारणवज्रिणि॥

रक्षाऽस्मान् प्रणतान् लक्ष्मि! नारायणि! नमोऽस्तु ते।
यत्कृपालेशमासाद्य नराः पङ्ग्वन्धका अपि ॥ ५४ ॥
स्पर्धन्ति विधिमुख्यैः सा नारायणि! नमोऽस्तु ते।
पुराणपुरुषो विष्णुर्यां विना सोऽपि पालने ॥ ५५ ॥

न शक्तः सा परा त्वं वै नारायणि नमोऽस्तु ते। पराशक्तिस्त्वमीशानी वाच्यवाचकरूपिणी॥
सर्वसारमयी त्वं वै नारायणि नमोऽस्तु ते। सृष्टिकर्त्री ब्रह्मशक्तिर्गोश्री (?) विष्णुबलोद्यमा॥

प्रत्यक्ष में महादेवी प्रगट हो गई ॥४८॥ वहां आकर लक्ष्मी ने उन इन्द्रप्रमुख देवगण को, जो काठ की दिवाल समान निष्कम्प ध्यानमग्न थे, कहा ॥४९॥ "हे देवपते ! और हे देवताओ ! वरदेनेवाली मैं (तुमलोगों पर) प्रसन्न हूं बुधगण ! तुम इस अत्यन्त उग्र तपस्या से विराम करो ॥५०॥ तुमलोग अपना इच्छित कहो जिसे मैं बिना किसी के तुम्हें दूंगी।" इसप्रकार देवी के मधुर स्वर से कहे सुन्दर वचनों को सुन देवगण ने आंखें खोलीं पहले देखी हुई लक्ष्मीजी (हरिप्रिया) को जो स्मितवदना थी, भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया और हर्ष से रुद्धकला होने (रोमांचित) से गद्गद हो अव्यक्तवाणी में ही वे स्तुति करने लगे ॥५१-५२॥ "हे शरण में हुए दीनों के कष्टरूपी पर्वतों को गिराने में वज्रस्वरूपे ! महालक्ष्मि ! आप हम प्रणतजन की रक्षा करें, हे नारायणि आपको हम प्रणाम करते हैं। हे नारायणि ! जिस के कृपालेशमात्र पाकर लूले, लङ्गड़े एवं अन्धे लोग भी ब्रह्मा और महेशकी स्पर्धा करने लगते हैं ऐसी हे नारायणि ! आपको नमस्कार है ॥ ५३-५४॥ ॥ साक्षात् पुराण-पुरुष भी जिसके विना पालन करने में समर्थ नहीं ऐसी आप पराशक्ति हैं, हे नारायणि ! हमारा आपको सादर नमस्कार ॥५५॥ ॥ आप ईशानी सर्वसमर्थता प्राप्त पराशक्ति हैं, वाच्य और वाचक रूपमें आप स्थित हैं, निश्चयही आप सर्वसार हैं। हे नारायणि ! आप को वारम्वार नमन है ॥ ५६॥ ॥ आप सृष्टि की सर्जन करनेवाली ब्रह्मशक्ति, सम्पूर्ण भूमण्डल की श्री (गोश्री) सृष्टिकी पालिका विष्णु के बल को प्रेरणाकरनेवाली एवं रुद्रशक्ति के रूप में संहार करनेमें समवेत त्रिशक्ति हे नारायणि ! आपको नमस्कार है।" इसप्रकार स्तुति करके देवगणने अपने वृत्तान्त का

संहारिणी रुद्रशक्तिर्नारायणि नमोऽस्तु ते। इति स्तुत्वा स्ववृत्तान्तं प्रवक्तुमुपचक्रमुः ॥५८॥
मातः पुरा वरं प्राप्य त्वत्तो याता वयं दिवि। तदद्यापि न सम्पन्नं नरा नो न यजन्ति वै॥५९॥
तद्यथाऽस्मान् यजन्त्येते भवन्त्यस्मत्परायणाः। तथा कुरु महादेवि स्युर्नराः पशवो हि नः॥६०॥
इति देववचः श्रुत्वा देवसाहाय्यकारणात्। विचार्य देवान् प्रोवाच शृणुध्वं विबुधर्षभाः ॥६१॥
मया यदुक्तं पूर्वं वो तत्तथैव न चाऽन्यथा। निष्कामास्तु नराः कालस्वभावात्तत्र किम्भवेत्॥६२॥
भवत्वेवं तथाप्यत्र विधास्ये भवदीप्सितम्। इत्युक्त्वा सा स्वमनसा कुमारं दिव्यवर्चसम् ॥६३॥
उत्पाद्य तरसा तेभ्यो दत्त्वोवाच बुधान् तदा। अयं कुमारः कामाख्यो महाबलपराक्रमः ॥६४॥
साधको भवतां कार्ये भविष्यति न संशयः। एतत्सत्याय योगेन मर्त्याः स्युर्वो वशंवदाः ॥६५॥
एनं गृहीत्वा गच्छन्तु भवन्तो वाञ्छिताऽऽप्तये। वत्स काम सुरार्थं त्वं जित्वा मर्त्यानशेषतः॥६६॥
संस्थापय सुरेन्द्रादिसुराणां वशवृत्तिषु। इत्युक्ताऽन्तर्हिता सद्यः पश्यताञ्च दिवौकसाम् ॥६७॥

करना आरंभ किया ॥५७-५८॥ "हे मातः! आप से वरदान पाकर हम लोग स्वर्ग में चले गये अवश्य, परंतु आज तक भी वह पदगौरव पूरा नहीं हुआ; मर्त्यलोक के मनुष्य हमें उद्दिष्ट कर यज्ञ नहीं करते ॥५९॥ इसलिये जिस प्रकार ये लोग हमारी भक्ति में लगें व हमारे लिये यज्ञ करें उस प्रकार की व्यवस्था कर दीजिये क्यों कि मनुष्य तो हमारे पोषण करने वाले पशु हैं।" इस प्रकार देवगण का कथन सुनकर देवता लोगों की सहायता के हेतु (भगवती लक्ष्मी ने) विचार कर उनसे कहा, "हे श्रेष्ठदेवगण! जो मैंने पहले कहा वह उसी प्रकार सत्य होकर रहेगा उसे किसी प्रकार अन्यथा न समझना काल की बलिहारी है कि मर्त्यलोकमें सब लोग निष्काम बन गये हैं तब क्या हो? अस्तु ऐसे ही सही, फिर भी मैं इस विषय में आपका अभीष्ट सिद्ध करूंगी।" इस प्रकार कहकर वह (लक्ष्मी) अपने मन से दिव्य तेजोधारी कुमार को उत्पन्न कर क्षणभर में उन्हें देकर तब बोली "यह कामनामक कुमार महाबल-पराक्रम-सम्पन्न है तुम्हारे कार्य में सब प्रकार से सहायक होगा इसमें कोई सन्देह नहीं। इस सत्यवाणी के सिद्ध करने के लिये योग बनते ही भूमि के मानवगण तुम लोगों के वश में हो जायेंगे। ॥ ६०-६५ ॥ इसे लेकर तुम लोग अपना अभिलषित कार्य करने को जाओ।" (काम को सम्बोधन कर वह बोली) "हे वत्स कामदेव! तुम देवगण के कार्य की सिद्धि के लिये सम्पूर्ण रूप से मर्त्य लोगों को जीतकर उन्हें सुरपति इन्द्र आदि देवगण के वश में ले आओ।" इस प्रकार कह कर (महालक्ष्मी) देवगण के देखते देखते तत्क्षण अन्तर्धान कर गई ॥६६-६७॥ तब देवगण भगवती

त्रयोदशोऽध्यायः

सलक्ष्मीप्रादुर्भावं कामोपाख्यानवर्णनम्

पुरन्दर! गतोऽहं ते कार्यसिद्ध्यै न तन्मृषा। एकलोऽहं विजित्याऽऽशु करोमि त्वद्वशे न
इत्युक्त्वा धनुरादाय निषङ्गञ्च महत्तरम्। पश्यतां सर्वदेवानां भुवमाक्रान्तवान् स
पद्मकिञ्जल्कसङ्काशः पद्मपत्रनिभेक्षणः। फुल्लपद्मसमानाऽऽस्यः पक्वबिम्बरदच्छद
कुण्डलप्रोल्लसद्गण्डो रत्नकोटीरशोभितः। कोमलाङ्गो दीर्घबाहुः पीताम्बरलसत्क
वामहस्तलसच्चापो दक्षहस्ताऽऽत्तसायकः। आमर्षसभ्रुकुटिलः कुमारः पञ्चहायन
जगाम पृथिवीमध्ये पश्यतां नयनोत्सवः। इन्द्रोऽपि स्वगणैर्द्रष्टुं कृत्यं कामस्य दुष्कर
ऐरावतं समारुह्य वज्रहस्तस्समाययौ। अन्येऽपि देवा ऋषयः सिद्धविद्याधरकिन्नरा
गगने संस्थितास्तत्र यत्र कामो भुवि स्थितः। अथ कामो नरान् प्राह समाहूय रुषा वच
भो नराः शृणुताऽऽज्ञां मे भवन्तः सर्व एव हि। यजन्तु देवान् शक्रादीन्न चेच्छास्या हि मे नरा

तेरहवां अध्याय

"हे पुरन्दर! मैं तेरी कार्यसिद्धि के लिये जाता हूँ वह मिथ्या नहीं है। मैं अकेला ही मनुष्यों को शीघ्र
उन्हें तेरे वश में करता हूँ" ॥१॥ इस प्रकार धनुष, वज्र और भारी तूणीर लेकर (काम) सब देवगण के देखते देखते
से पृथ्वी पर आक्रमण के लिये आया ॥२॥ कमल की खिली कलिका के समान; पद्म के दल के तुल्य बड़ी
आंखों वाला, पूर्ण विकसित बिम्बफल के समान दातों की पङ्क्ति की शोभा वाला, कुण्डल की कान्ति से उज्ज्वल
के ऊपर का मुख भाग विशेष आभादीप्त है, रत्नखचित मुकुट से शोभित, कोमल अङ्गोंवाला, आजानु लम्बे बाहु
उसके अपने कटि प्रदेश में पीताम्बर शोभा देता है। वह बांयें हाथ में शोभायुक्त धनुष धारण किये है, दाहिने हाथ
बाण लिये हुए है, क्रोध से भौंहें टेढ़ी किये हुए, पांच वर्ष की उम्रवाला, देखने वालों की आखों को आनन्द
वाला कुमार भूमण्डल पर गया ॥ ३-५॥ ॥इन्द्र भी कामदेव का कठिन कृत्य देखने के लिये अपने गणों के साथ
वज्र धारण कर ऐरावतहाथी पर चढ़कर आ गया। अन्य देवगण, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर एवं किन्नर लोग भी उस
पर आकाश में ठहर गये जहां कामदेव पृथ्वी पर खड़ा था। तदनन्तर कामदेव ने मर्त्यलोगों को
क्रोध में कहा, "हे मनुष्यो! मेरी आज्ञा को तुम सब लोग सुनो, सब ही मनुष्य इन्द्रादि देवगण का
करो, नहीं तो मैं तुम लोगों को दण्ड दूंगा" ॥६-९॥

साक्षाद्धरेः क्षेत्रभवः किमसाध्यं त्वया भवेत् । नरा यथाऽस्मद्वशगा यजन्त्यनुदिनं हि नः ॥७८॥
कर्त्तव्यं भवता तद्वद् येनाऽहं त्रिजगत्पतिः। भवामि पशवोऽस्माकं पाल्याः स्युर्मनुजा भुवि ॥८९॥
एवमिन्द्रवचः श्रुत्वा कामः प्रोवाच सस्मितः । फल्गुवाचा हर्षयंस्तान् सुरान् वीर्येण दर्पितः ॥८०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तरामसंवादे
कामोपाख्यानं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१~~०४९~~॥ 1045

कुछ असाध्य कार्य हो सकता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं । पृथ्वी के मानव जिस प्रकार हम लोगों के वश में होकर हमारे लिये प्रति दिन यज्ञ करें उसी प्रकार तू कर जिससे मैं तीनों जगत् का स्वामी हो जाऊँ । पृथ्वी में मनुष्य लोग हमारे पशु हों और पाल्य हों" ॥७८-७९॥ इस प्रकार इन्द्र की वाणी सुन कर काम ने स्मितपूर्वक अति संक्षिप्त वाणी में उन देवगण को हर्षित करते हुए अपने वीर्य के अभिमान में उद्धत बन कहा ॥८०॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासश्रेष्ठ त्रिपुरारहस्य माहात्म्यखण्ड के दत्तराम-सम्वाद में
काम का उपाख्यान नामक बारहवां अध्याय समाप्त ।

त्रयोदशोऽध्यायः

सलक्ष्मीप्रादुर्भावं कामोपाख्यानवर्णनम्

पुरन्दर! गतोऽहं ते कार्यसिद्ध्यै न तन्मृषा। एकलोऽहं विजित्याऽऽशु करोमि त्वद्वशे न
इत्युक्त्वा धनुरादाय निषङ्गञ्च महत्तरम्। पश्यतां सर्वदेवानां भुवमाक्रान्तवान् स
पद्मकिञ्जल्कसङ्काशः पद्मपत्रनिभेक्षणः। फुल्लपद्मसमानाऽऽस्यः पक्वबिम्बरदच्छद
कुण्डलप्रोल्लसद्गण्डो रत्नकोटीरशोभितः। कोमलाङ्गो दीर्घबाहुः पीताम्बरलसत्क
वामहस्तलसच्चापो दक्षहस्ताऽऽत्तसायकः। आमर्षसभ्रुकुटिलः कुमारः पञ्चहायन
जगाम पृथिवीमध्ये पश्यतां नयनोत्सवः। इन्द्रोऽपि स्वगणैर्द्रष्टुं कृत्यं कामस्य दुष्कर
ऐरावतं समारुह्य वज्रहस्तस्समाययौ। अन्येऽपि देवा ऋषयः सिद्धविद्याधरकिन्नरा
गगने संस्थितास्तत्र यत्र कामो भुवि स्थितः। अथ कामो नरान् प्राह समाहूय रुषा वच
भो नराः शृणुताऽऽज्ञां मे भवन्तः सर्व एव हि। यजन्तु देवान् शक्रादीन्न चेच्छास्या हि मे नरा

तेरहवां अध्याय

"हे पुरन्दर! मैं तेरी कार्यसिद्धि के लिये जाता हूँ वह मिथ्या नहीं है। मैं अकेला ही मनुष्यों को शीघ्र
उन्हें तेरे वश में करता हूँ" ॥१॥ इस प्रकार धनुष, वज्र और भारी तूणीर लेकर (काम) सब देवगण के देखते देखते
से पृथ्वी पर आक्रमण के लिये आया ॥२॥ कमल की खिली कलिका के समान; पद्म के दल के तुल्य बड़ी
आंखों वाला, पूर्ण विकसित बिम्बफल के समान दातों की पङ्क्ति की शोभा वाला, कुण्डल की कान्ति से उज्ज्वल
के ऊपर का मुख भाग विशेष आभादीप्त है, रत्नखचित मुकुट से शोभित, कोमल अङ्गोंवाला, आजानु लम्बे बाहु
उसके अपने कटि प्रदेश में पीताम्बर शोभा देता है। वह बांयें हाथ में शोभायुक्त धनुष धारण किये है, दाहिने हाथ
बाण लिये हुए है, क्रोध से भौंहें टेढ़ी किये हुए, पांच वर्ष की उम्रवाला, देखने वालों की आखों को आनन्द
वाला कुमार भूमण्डल पर गया ॥ ३-५॥ ॥इन्द्र भी कामदेव का कठिन कृत्य देखने के लिये अपने गणों के साथ
वज्र धारण कर ऐरावतहाथी पर चढ़कर आ गया। अन्य देवगण, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर एवं किन्नर लोग भी उस
पर आकाश में ठहर गये जहां कामदेव पृथ्वी पर खड़ा था। तदनन्तर कामदेव ने मर्त्यलोगों को
क्रोध में कहा, "हे मनुष्यो! मेरी आज्ञा को तुम सब लोग सुनो, सब ही मनुष्य इन्द्रादि देवगण का
करो, नहीं तो मैं तुम लोगों को दण्ड दूंगा" ॥६-९॥

एतद्वाक्यं समाकर्ण्य जना जहसुरुच्चकैः । नूनं स्तनन्धयः कस्याप्ययं स्यात्क्रीडने रतः ॥१०॥
वदन्त एवमन्योन्यं जनास्तत्सौभगेक्षकाः । अहो धन्यतमा चाऽस्य जननी यदपत्यकम् ॥११॥
ईदृग्विधं सुचार्वङ्गं नयनाकर्षणं प्रियम् । नैवंविधः शिशुर्दृष्टो भुवि कस्याऽपि केनचित् ॥१२॥
कोऽप्ययं राजतनयो नेदृशः प्राकृतो भवेत् । इत्येवं वदतां तेषां जनानां स रमासुतः ॥१३॥
विस्मापयन्नुवाचोच्चैः शृण्वतां वसुधौकसाम् । भो नरा मां प्राकृतकं न जानीथ कुमारकम् ॥१४॥
अहं पद्मालयासूनुरागतो मातृशासनात् । विधातुं वो निर्जराणां सर्वान् मर्त्यान् वशंवदान् ॥१५॥
साम्नाऽथ वाऽपि दण्डेन करोमि वशवर्त्तिनः । देवानां नात्र सन्देहो मतं वो वदथाऽऽशु मे ॥१६॥
एवं वचः समाकर्ण्य प्रोचुस्ते विस्मिता जनाः । कुमार शृणु नो वाक्यं किमर्थं देवतावशे ॥१७॥
स्थास्यामस्ते कुतोऽस्माकं न तिष्ठन्ति वशे सुराः । यथाऽस्माभिर्न कृत्यं वै तेषां तैरपि नस्तथा ॥१८॥
अन्यच्चाप्यवगच्छ त्वं राजा नो मानवः प्रभुः । वीरव्रतोऽयमध्यास्ते ब्रह्मावर्त्ते तु सम्प्रति ॥१९॥

यह बात सुनकर लोग जोरोंसे हंसे और बोले, "अवश्य ही यह स्तनपान करनेवाला बालक है किसीके साथ खेलमें लगा है" ॥१०॥ इस प्रकार आपस में एक दूसरे से कहते हुए उसकी अन्यतम सुन्दरता को देखकर स्तब्ध से रहे। "अहो इसकी माता धन्यतम है जिसकी सन्तान इसप्रकार सुन्दर अङ्गों से युक्त आंखों को ललचादेनेवाले आकर्षण वाली एवं बहुत प्रिय है। (अब तक किसी ने) पृथ्वी में किसी के भी बालक को इतने सुन्दर रूप में नहीं देखा ॥११-१२॥ (मालूम होता है कि) यह कोई राजा का पुत्र है सर्वसाधारण-जन (लौकिक) का बालक इस प्रकारसे दिव्य शोभाधारी नहीं हो सकता।" इस प्रकार लोगों के कहते रहने पर वह लक्ष्मी का पुत्र काम ऊंचे स्वर से सब को आश्चर्य चकित करता हुआ सुनने वाले पृथ्वीनिवासी लोगो से बोला "हे लोगों ! तुम मुझे साधारण मर्त्य बालक मत समझो; मैं भगवती लक्ष्मी का पुत्र हूँ ! मेरी मा के आदेश से तुम सब लोगों को देवगण के वशवर्ती करने को आया हूँ ॥१३-१५॥ भले ही सामनीति से अथवा दण्ड के द्वारा देवगण के वश में रहने वाले तुम लोगों को बनाऊँगा इसमें कोई सन्देह नहीं है; तुम लोगोंको जो अभिमत हो शीघ्र कहो मै जानना चाहता हूँ"॥१६॥ इस प्रकार कामके वचन सुनकर वे लोग बहुत विस्मित हुए बोले, "हे कुमार ! हमारी बात सुनो, हम क्यों देवगण के वश में रहेंगे; वे देवता लोग ही हमारे वश में क्यों नहीं रहते ? जैसे हम लोगों द्वारा उनके लिये कोई कृत्य करना नहीं हैं वैसे ही हमारे लिये भी उनका प्रयोजन स्वार्थ नहीं है ॥१७-१८॥ और बातें भी तू हम से जान ले; हमारा मनुष्य राजा समर्थ वीरव्रत नामक है जो वर्तमान में ब्रह्मावर्त्त प्रदेश में रहता है ॥१९॥ हमलोग उसी के वशवर्ती हैं, वह हमारा पालन करने वाला स्वामी है

वशंवदास्तस्य वयं स नः पालयिता प्रभुः । न तवाऽऽज्ञां करिष्याम एकाज्ञावर्त्तिनः ॥
इत्थं ब्रुवत्सु मर्त्येषु कोधारुणितलोचनः । अस्त्रजालेन तान्मर्त्यान् बबन्धाऽद्भुतविक्रमः ॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र कर्णात्कर्णं निशम्य तत् । समागता राष्ट्रपालाः कोटिशः प्रोद्यताऽऽयुधाः ॥
तान् दृष्ट्वा पुनरेवैषः क्रोधाग्निज्वलिताऽऽकृतिः । शरान् धनुषि सन्धाय पदैकमपि नाऽचलत् ॥
ते दृष्ट्वा सुन्दरं बालं विस्मापनपराक्रमम् । प्राहुस्तं राष्ट्रपालास्ते दर्पमानोद्धतं वचः ॥
रे कुमारक मा नाशमुपैह्यद्य बलात् स्वयम् । पतङ्ग इव दावाग्निमस्मद्रोषेण सङ्गतः ॥
आत्मनाशाय चोद्युक्तो व्यर्थं त्वं मातृशोचन ! । एवं तेषामुपश्रुत्य वचो वै मर्मकृन्तनम् ॥
नाऽपश्यत्तत्र किमपि रोषाऽन्धीकृतलोचनः । प्रबुद्धः क्रोधमूर्च्छायाः क्षणेन प्राह तान् प्रति ॥
व्यर्थं कत्थन्ति वै बालाः न बालो वयसाऽल्पकः । वीर्याल्पकोऽल्पमेधाश्च बालः प्रोक्तो विचक्षणैः ॥
तद्वो वीर्यं बलं शस्त्रं प्रदर्शयत मा चिरम् । अनन्तरं मदीयास्त्रवीर्योर्वरितकीर्तिकान् ॥

हम लोग एक अपने राजा की ही आज्ञा मानने वाले हैं तेरी आज्ञा का पालन नहीं करेंगे" ॥२०॥ मर्त्यलोक इस प्रकार कहने पर क्रोध से लाल आंखें कर अद्भुत विक्रमवाले कुमार ने अपने पराक्रम से उन्हें अस्त्र जालसे सबको बांध लिया ॥२०-२१॥ इतनेमें ही कानों कान कुमार द्वारा लोगोंका बंधना सुन कोटिशः राष्ट्रपाल लोग आयुधोंसे पूर्णतया सज्जित हो आ गये॥२२॥उन्हें देखकर फिर वही कुमार क्रोधसे प्रचण्डाकृति हो बाणोंको धनुष पर चढ़ा एक भी पैर नहीं चला । उस विस्मय में डालने वाले पराक्रमी सुन्दर बालक को देख कर अत्यन्त उद्धत वाणी में वे राष्ट्रपाल बोले ॥२३-२४॥

"अरे ! कुमाराधम ? तू आज हठ (दुराग्रह) से नष्ट मत हो, हम लोगों से युद्ध जो करेगा तो तू हमारे रोषसे दावाग्निमें पतिङ्ग (भिनगेने) के समान नष्ट हो जायगा ॥२५॥ हे माता के शोक का कारण ! तू विनाश करने के लिये क्यों व्यर्थ में तैयार है" । इस प्रकार उन राष्ट्रपालों के मर्मभेदी वचनों को सुनकर वह वहां क्रोध से आकुल नेत्रों से कुछ भी न देख पाया । एक ही क्षण में क्रोधमूर्च्छा से जब उठा तो उन (राष्ट्रपाल) से बोला ॥२६-२७॥ "व्यर्थ ही तुम लोग अनुभवहीन होकर बढ़ बढ़ कर बातें करते हो बाल कोई उम्र से नहीं होता; जो व्यक्ति पराक्रम में हीन और बुद्धि में मन्द है वही बुद्धिमानों द्वारा "बाल" कहा गया है । इस लिये तुम लोग अतिशीघ्र अपना वीर्य, बल और शस्त्र का प्रयोग दिखलाओ; बाद में मैं अतिशीघ्रतया तुम को अपने अस्त्र की शक्ति से अतिउर्वर कीर्तिवाला (अपने अस्त्र द्वारा तुम्हें मार अच्छा यश पाऊंगा) बनाऊंगा

विधास्यामि द्रुतं युष्मान् व्यर्थां वाचं विमुञ्चथ। अथैतद्वाक्यतो द्राग् नुन्नास्ते राष्ट्रपालकाः॥ ३०॥
ववर्षुरस्त्रजालानि सान्द्राऽऽसारानिवाऽम्बुदाः। शस्त्राऽऽसारास्तेऽभितस्तं पतन्तःप्रोल्लसन्तिवै॥३१॥
राकेन्दोर्ज्वलितोल्कानां सहस्रं पततामिव। आयान्तीं शस्त्रवृष्टिं स दृष्ट्वा लघुपराक्रमः॥ ३२॥
अस्त्रवृष्ट्या क्षणेनैको नाशयामास सर्वतः। खण्डितान्यष्टधा तेषां शस्त्राण्यासन् पृथक्पृथक्॥ ३३॥
शस्त्रनीहारमुक्तोऽथ कामो दिनमणिर्बभौ। तद्दृष्ट्वा शक्रमुख्यास्तं शशंसुः साधु साध्विति॥ ३४॥
अवाकिरन् पुष्पवर्षैर्वादयन्तोऽथ दुन्दुभीन्। पुनर्द्रुततरं कामस्तान् प्रत्येकं शरैस्त्रिभिः॥ ३५॥
विव्याध समरे तैस्ते नामशेषत्वमापिताः। कटिबाहुशिरोर्वङ्घ्रिपार्श्वकुक्षिषु दारिताः॥ ३६॥
ते खण्डिताः समभवन् खण्डैः कीर्णा वसुन्धरा। शोणितस्रोतसस्तत्र ववुरुष्मोदका इव॥ ३७॥
केशाऽन्त्रशैवला मीनीकृताङ्गुलिसहस्रकाः। ऊह्यन्मुण्डासंख्यगणाः (?) पिशाचोत्सवदर्शनाः॥ ३८॥
मरालीभूतकाकौघाः तरङ्गीभूतहेतिकाः। फेनिलौघा महावेगा निम्नाऽऽवर्त्तशताऽऽकुलाः॥ ३९॥

वाणी कहना छोड़ दो" ॥२९॥ इस के बाद इस प्रगल्भ कथन से राष्ट्रपालक गण शीघ्र ही क्रुद्ध हो अपनी ओर से अस्त्रों को इस प्रकार छोड़ा कि मानो बादल सान्द्र आसार (जलवर्षा) को छोड़ते हों। शस्त्रास्त्रों को संल्लग्न रूप से छोड़ने पर वे जब इधर उधर गिरते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों पूर्णिमा की रात्रि में अत्यन्त प्रकाशमान उल्कायें (नक्षत्र समूह) हजारों की संख्या में नीचे गिर रहे हों। अत्यन्त पराक्रमी उस कुमार ने उस आयी शस्त्रों की वर्षा को देख एक क्षण भरमें एकाकी जो वह अपने अस्त्रों की वर्षासे जनगण चारों ओरसे नष्ट करने पर तुला था; सुन अकेला ही राष्ट्रपालोंके शस्त्रोंको आठरूप में खण्ड खण्ड कर पृथक् पृथक् गिराता था॥३०-३३॥ अनन्तर शस्त्रों की घनघोर वर्षण क्रिया से मुक्त हो काम कुहरे से छुटे हुये सूर्य के समान सर्वत्र शोभायमान हुआ, उसे देख सभी इन्द्र प्रभृति देवगण ने अनेकानेक साधुवाद दिये॥३४॥ तत्पश्चाद् दुन्दुभियां बजाते हुए उन्होंने पुष्पों की वर्षा की। फिर काम ने अतिशीघ्रतापूर्वक प्रत्येक को तीन तीन बाणों से युद्ध में बेंध दिया इससे वे केवल नाम मात्र को ही शेष रह गये। उसने उनके (प्रतिपक्षियों के) कटि प्रदेश, बाहुभाग, शिर, उरु (जंघाप्रदेश) पाद, पार्श्व तथा कुक्षि प्रदेशों में बाणवृष्टि से घाव कर दिये॥३५-३६॥ वे सब अङ्ग प्रत्यङ्गों से खण्डित हो गये उनके अङ्ग-विकल भागों से भूमि पट गई; रक्त की धारा इस प्रकार बही मानो गर्म पानीकी नदी बह रही हो॥३७॥ उस शोणित की नदी में केश और आंते जलीय घास का दृश्य प्रस्तुत करती हैं, हजारों कटी हुई अङ्गुलियां छोटी छोटी मछलियां सी हैं, कटे नर मुण्डों की असंख्यातराशि पिशाच लोगों के उत्सव का कारण होती हैं। इसमें कौओं के समूह हंस रूप से जमें हैं दूरनिक्षेप अस्त्र ही स्थान स्थान पर तरङ्गका आकार धारण करते हैं, उस लोहित नद में फेनों का समूह चलता है, प्रचण्ड वेग से बहने

भीरूणां हृदये कम्पं विदधति पदे पदे । एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा कामस्याऽमोघविक्रमम् ॥
इन्द्रादयोऽमराः स्वेष्टं सिद्धमित्येव सञ्जगुः । तत्राऽन्तरे चारगणाः श्रुत्वा राज्यस्य विप्लवम् ॥
वीरव्रताय कथितुं ब्रह्मावर्त्ते समागताः । प्रविश्य राजधानीं ते द्वारिकान् प्रोचुरञ्जसा ॥
विज्ञापयन्तु नः प्राप्तान् महाराज्ञे यशस्विने । कार्यमात्यन्तिकं ह्यस्ति द्रुतं नात्र विलम्ब्यताम् ॥
इति श्रुत्वा चारवाक्यं द्वारिकाः सहसोत्थिताः । स्वनाथाय जगुर्वृत्तं चारोक्तं तं निशम्य तु ॥
द्वारनाथो महाराजसविधे वेगवत्तरम् । गत्वाऽऽशीर्भिर्वर्धयित्वा कृताञ्जलिरुवाच तम् ॥
सिंहासनगतं मन्त्रिमुख्यैः पौरैरुपासितम् । मण्डलाधिपसंघातैर्दूतैर्देशान्तराऽऽगतैः ॥
भटैर्भटाधिपैः शूरैः प्रतिपक्षक्षयङ्करैः । निशितोत्खातसंवेल्लत्करवालकरोद्यतैः ॥
परीतं हेमशृङ्गस्थमृगेन्द्र इव संस्थितम् । महाराज यशःसूर्यहतशत्रुतमस्तक ॥
प्राप्ताश्चारैः सोमदिशः प्रोचुरात्यन्तिकन्तु तैः । अग्रे यदाज्ञापयति देवस्तद्विदधाम्यहम् ॥
इति श्रुत्वा द्वारनाथवाक्यं राजेङ्गितस्ततः । वर्द्धनो मन्त्रिराट् प्राह प्रवेशय स मां द्रुतम् ॥
आज्ञप्त एवं द्वारेशश्चारान् तत्राऽऽनयद्द्रुतम् । चारा दूरान्महीपालं नत्वा बद्धकराः स्थिताः ॥

वाला है निम्न प्रदेशमें सैकड़ों भँवरसे पड़े दीखते हैं ॥३८-३९॥ इस वीभत्स दृश्यसे डरपोक कातर लोगों के हृदय पद पर कम्प होता है। इस प्रकार काम के अमोघ विक्रमवाले अतिविलक्षण युद्ध के पराक्रम को देख इन्द्र देवगण ने यह जान लिया कि अपना अभीष्ट सिद्ध हो चुका। इसके अनन्तर राज्य के गुप्तचर लोग राज्य में विप्लवको सुनकर वीरव्रत को सूचना देनेके लिये ब्रह्मावर्त (राजधानी) में आ गये। राजधानी में प्रवेश कर ही शीघ्र द्वारस्थित पहरेदारों को कहा, "यशस्वी महाराज को हमारे आगमन की सूचना दे दो; बहुत आवश्यक है, शीघ्रता करो; इसमें विलम्ब न करो" ॥४०-४३॥ इस प्रकार गुप्तचरके कथनको सुनकर द्वार के रक्षक गण सहसा और अपने स्वामी को सारा वृत्तान्त कहा; उसे सुनकर द्वारनाथ अतिवेग से महाराज के निकट जाकर शुभाशी देकर हाथ जोड़कर बोला ॥४४-४५॥ वह उस समय मन्त्रिगण राजाओं सहित नागरिकों, मण्डलाधिपति जहां तहां से आये दूर देशोंके दूत,वीर, महाभट,शूर और शत्रु को दहलाने वाले अति प्रचण्ड करवाल हाथमें लिये पक्षी को समर में पराजित करनेवाले लोगों से घिरा हुआ सिंहासन पर इस प्रकार विराजमान था मानो (शिखर) पर सिंह बैठा हो। (वह बोला) "हे कीर्तिरूपी सूर्य से शत्रुरूपी अन्धकार को समूल नष्ट करने वाले महा चारगण पश्चिम दिशा से आये हैं उन्होंने अत्यावश्यक कार्य की सूचना दी है आगे जो आप देव आज्ञा दें करूँ" ॥४६-४९॥ इस प्रकार द्वारनाथ के वचन सुनकर वर्द्धन नामक प्रधानमंत्री ने राजा का संकेत पाकर कहा अतिशीघ्र प्रवेश कराओ तथा मुझसे मिलाओ" ॥५०॥ इस प्रकार द्वाराधीशको आज्ञा देने पर वह अतिशीघ्र चार

तान प्राह वर्द्धनोऽत्यन्तप्रियो राज्ञः प्रिये स्थितः। चारा निरामयं कच्चिद्देशेषु प्रविभावितम् ॥५२॥
राष्ट्रकोशेषु सेनासु प्रकृतिष्वस्ति साम्प्रतम्। आत्यन्तिकं वचो राज्ञः पादयोर्विनिवेद्यताम् ॥५३॥
तन्निशम्य नता भूयश्चारा बद्धकराम्बुजाः। नाथ ते वर्धते कीर्तिसितचन्द्रः प्रतिक्षणम् ॥५४॥
पराः पारं गताः सद्यो लोकालोकमहीभृतः। हिमवत्पार्श्वतः कश्चित्कुमारोऽर्कप्रतापनः ॥५५॥
औत्तरानष्टपालान् स निजघान महारणे। बद्धाः प्रकृतयः सर्वा देशो विप्लावितोऽद्य वै ॥५६॥
स एकाकी पञ्चसमः कमलाऽङ्घ्रिकराङ्कितः। हतास्तेन मुहूर्त्तेन कोटिशो राष्ट्रनायकाः ॥५७॥
एतद्विज्ञापितं देव भवानग्रे परायणम्। इति तद्वाक्यमाकर्ण्य राजा वीरव्रतस्तदा ॥५८॥
परामृशन् पार्श्वसंस्थं चापं शरधिमाशु वै। उत्थाय निर्ययौ सोमकाष्टाभिमुखतस्तदा ॥५९॥
तदा शीघ्रं पुरो गत्वा वर्धनः प्रणिपत्य तम्। उवाचाऽमृतसंस्रावववाक्यं वाक्यज्ञकोविदः ॥६०॥
क्षम्यतां नाथ भगवन् स्वयं तं शुभमेष्यति। विमृश्यकारिणं सम्यगशुभं दूरतस्त्यजेत् ॥६१॥
मन्त्रिभिः सहितो मन्त्रं कृत्वा निश्चित्य चाऽऽगमम्। फलाऽवसानं कर्त्तव्यं विभज्य स्वमनीषया ॥६२॥

वहां ले आया। वे गुप्तचर लोग राजा को प्रणाम कर हाथ जोड़े खड़े रहे ॥५१॥ उन्हें राजा के अत्यन्त प्रिय उस के सदैव कल्याण की कामनामें स्थित वर्द्धनने कहा, "हे चारगण ! क्या देशोंमें राष्ट्रके कोष, सेना, और सप्तविध प्रकृतियों में निरामय तो है न ? यदि कोई अत्यन्त आवश्यक (विघटनकारी) बात हो तो राजा की सेवामें कहो।" ॥५२-५३॥ उसे सुनकर हाथ जोड़े गुप्तचर लोग बोले, "हे स्वामिन् ! आपकी कीर्ति शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की बढ़ती कलाओं के समान प्रतिक्षण बढ़ रही है। आपके राज्य के राजागण लोकालोकके पर्वत तक खूब दूर तक फैल गये हैं, परन्तु हिमालयके सन्निकट किसी सूर्य के समान तेजस्वी कुमार ने उत्तर दिशामें नियुक्त आठों द्वारपालों को महायुद्ध में मार गिराया है और सब प्रजा को बांधकर सारे देश में उपद्रव का आज सूत्रपात कर दिया है ॥५४-५६॥ वह अकेला ही कामदेव के समान लक्ष्मी के चरणों का आशीर्वाद पाया हुआ है। उसने क्षणभर में ही कोटि संख्या में राष्ट्रनायकों को मार गिराया है ॥५७॥ हे नाथ ! यह हमने आपको सूचनार्थ निवेदन किया आगे आप ही प्रमाण हैं (जो उचित हो सो करें)।" इस प्रकार राजा वीरव्रत ने तब उन गुप्तचरों की बात सुनकर बहुत विचार परामर्श कर पास में रक्खे धनुष बाण और तरकस को शीघ्र सम्हालते हुए उठकर तत्काल सोम (चन्द्र) उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया ॥५८-५९॥ उस समय वर्धन शीघ्र राजा के सामने जाकर उसे प्रणाम कर समयोचित कहने वालों में निपुण वह मंत्री अमृतसे पूर्ण मधुर वाणी में बोला, "हे नाथ ! मुझे क्षमा करें। हे भगवन् ! आप स्वयं ही शुभ मंगल को प्राप्त होंगे भली प्रकार विचार विमर्श करनेवाले के अशुभ दूर से ही नष्ट हो जाते हैं ॥६०-६१॥

मन्त्रियोंके साथ भली प्रकार मन्त्रणा करके सामने आये कार्यके भारको वहन करनेका स्थिर रूप बना लेना निश्चय

एवं बहुप्रार्थितं तन्मन्त्रिणाऽऽकर्ण्य भूपतिः। सभां सभासदः पश्चाद्राजानमनु ये गताः ॥६३
पञ्चाशदक्षौहिणीपाः राज्ञोऽग्रे दूरतो गताः। ससेनास्तान् वर्धनस्तु संन्यवर्त्तयत द्रुतम् ॥६४
पुनः सभां समागम्य नानारत्नोज्ज्वलान्तदा। आसीनाः स्वस्वसंस्थाने राज्ञा सह सभासदः ॥६५
अनन्तरं महाराजं वर्धनः प्राह सान्त्वयन्। आकर्णय महाराज समाधाय मनो वचः ॥६६
दण्डनीतिमुपाश्रित्य राजानः सुखभागिनः। विमृश्यकारी तत्राऽऽदौ श्लाघितस्तेन वक्ष्यहम् ॥६७
राज्ञा विमृश्य कर्त्तव्यं सर्वं सम्यक् सुमन्त्रिभिः। साम दानं भेददण्डौ प्रोक्ता नीतावुपायकाः ॥६८
पूर्वपूर्वाऽसम्भवे तु तत्र स्यादुत्तरोत्तरम्। अत्राऽर्हः कतमोपायो भवेद्विमृश मन्त्रिभिः ॥६९
क्वचिद्विमर्शरहितं कर्त्तव्यं सविधोद्भवे। अन्तरयति तत्राऽपि स्यात्तर्हि तदपीष्यते ॥७०
व्यवस्य मन्त्रिभिश्चैतदुद्यमं क्रियतां ततः। एतच्छ्रुत्वा वचो राजा मन्त्रिणां मुखमैक्षत ॥७१

ही अन्त में सुफल हो इस प्रकार अपनी बुद्धि से कर्तव्य का बटवारा करने पर विजय निश्चित है" ॥६२॥ इस प्र
उस मन्त्री द्वारा विविध प्रकारसे प्रार्थना करने पर ध्यानपूर्वक सब बातें सुनकर राजा युद्धके लिये तैयार हुआ। स
सभा राजा के पीछे पीछे जानेवाले सभासद पचास अक्षौहिणी सेनाओं के सेनाध्यक्ष राजा के आगे आगे दूर तक
उन सब को सेना सहित वर्धन ने दूर तक जाकर विदा किया ॥६३-६४॥ तब विविध रत्नों से प्रकाशित सभा में
राजा के सहित सभी सभासद अपने अपने स्थानों पर बैठ गये। तब वर्धन ने महाराज को सान्त्वना देते हुए
"हे महाराज ! मनको एकाग्रकर भली प्रकार सुनिये। दण्डनीति को ग्रहण करके राजागण सुखके भागी बनते है
भी भली प्रकार चारों ओर से हानि लाभका विचार करने वाला ही प्रशंसाके योग्य है; इसलिये सर्वप्रथम मैं उसी
को बताता हूँ ॥ ६५-६७ ॥

राजाको भली प्रकार अपने श्रेष्ठ मन्त्री लोगों से परामर्श कर सब कार्य करना चाहिये। नीति में साम, दान,
और दण्ड जो उपाय बताये गये हैं उनमें पूर्व पूर्व क्रम से सफलता न मिले तो उत्तर उत्तर नीतियां काम में ली
अर्थात् साम से काम न निकले तो दान उससे न बने तो भेद और उससे भी कोई बाधा बनी रहे तो
की नीति अपनायी जाय। इस समय सन्दर्भप्राप्त काम के युद्ध में कौन सा उपाय उपयुक्त होवे सो आप मन्त्रि
साथ विचार विमर्श करें ॥६८-६९॥ सन्निकट ही कोई समस्या अकस्मात् उपस्थित होजाय तो
विचार किये भी (यावद्बुद्धि बलोदयं) उपाय करना चाहिये। उसमें भी विभिन्न उपायों के एक साथ आने पर
जिसके अनुगमन करने से शीघ्र सुफल मिले वह ही करने योग्य है ॥७०॥ इसके बाद मन्त्रियोंके साथ खूब परिश्रम
अपना ध्येय निश्चित कर उसीके लिये प्रयत्न करना इष्ट है"। इस प्रकार वार्त्ता सुनकर राजा ने मन्त्रियोंका मुख देख

ज्ञात्वेङ्गितं मन्त्रिणस्तु प्राहुः स्वस्वमतं तदा। कश्चित्सामोत्तमं प्राह दानमेकः परं परः ॥७२॥
दण्डमाहाऽपरस्तत्र श्रुत्वा बहुविधं मतम्। राजा तूष्णीं स्थितः किञ्चिदीक्षाञ्चक्रेऽथ वर्धनम् ॥७३॥
तदोत्थाय प्रणम्याऽग्रे वर्द्धनः प्राक्रमद्वचः। राजन्! यन्मन्त्रिभिः प्रोक्तं स्वस्वाऽवसरगोचरम् ॥७४॥
सर्वं सदेव तत्राऽपि प्रकृते तद्विचार्यताम्। समे साम स्वपक्षा ये चाऽव्यये वाऽपरं बले ॥७५॥
तदसत्त्वे द्वितीयं स्यात्परे परबलाश्रये। परस्य तत्र नो लाभो यत्राऽयः स्वस्य वै भवेत् ॥७६॥
तत्राप्यसति तस्याऽन्त्योऽपरः स्याद्बहुसंश्रयः। सोऽप्याद्याभ्यामेव भवेत् न चेद्बहुसमाश्रयः ॥७७॥
चतुर्थस्तत्र वै प्रोक्तः सर्वथाऽन्याऽनुपस्थितौ। यत्राऽऽद्येन सुसम्पाद्यं तत्रान्त्यं वै प्रयोजयन् ॥७८॥
अनर्थायैव तत्सर्वं न फलोदयमावहेत्। पराऽर्थस्य विशेषेण निश्चयान्नाऽद्ययोः स्थलम् ॥७९॥

उसके संकेतके सहारेसे मन्त्रियोंने तब अपना अपना अभिमत कहा। किसीने सामको श्रेष्ठ बताया, किसी ने बाद में दान को बड़ा कहा; अन्य ने दण्ड की विशेषता निरूपण की। (कोई मन्त्री जब एक स्थिर निश्चय पर न पहुँचा) बहुत प्रकारके मत सुन राजाने कुछ काल बिलकुल मौन रक्खा और वर्धनकी ओर कुछ देखा ॥७१-७३॥ तब वर्धन ने उठकर राजाको प्रणामकर उसके आगे कहना प्रारम्भ किया,"हे राजन् आपके द्वारा पूछने पर मंत्रियों ने अपनी अपनी बारी आने पर जैसा अवसर जिसे समुचित प्रतीत हुआ सो कहा वह सब ही यथार्थ रूपसे सत्य है; उसमें भी यहां के उपयुक्त समयोचित जो वर्तमानमें (अभी) ठीक हो उसका विचार करना चाहिये। अपने पक्षके सामने जो समानस्तरवाला हो अथवा शत्रु के पास व्यय न हो सकने योग्य सेना हो तब साम का उपाय ग्रहण करना उचित है। जब साम नीति का अभाव हो और शत्रुपक्ष वाला दूसरे राजा लोगों के साथ समझौता कर उनके बल का आश्रय ले तब दान की नीति उचित है। शत्रु (दूसरे) को इसमें लाभ नहीं, जहाँ प्रकृति (राष्ट्र दुर्ग,पुरी, कोश) आदि अपनी ही अधिकारापन्ना हों। दान में सफलता न मिले तथा शत्रुपक्ष वाला स्वबहु मित्रगण की सहायता लिये हुए हो तब अन्तिम का ही आश्रय सिद्धि देता है। वह भी चाहे तो आदिके दोनों के (साम और दान) सम्मिलित परिश्रम से ही बहुतों का आश्रय लिया हुआ भी जब अन्य कोई किसी न किसी बाधाके आ जाने पर अन्य की अनुपस्थिति में चतुर्थ ही उपाय कहा गया है। जहाँ सामसे भली प्रकार काम सम्पादनीय न हो (न चलता हो)तो दण्डको ही प्रयोगमें लाते हुए किसी न किसी बाधाके बीचमें आनेके कारण अनर्थ ही सम्भव है उसका फलका उदय नहीं; केवल शत्रु पक्ष की शक्ति का विशेष रूपसे निश्चय होनेसे आदिके साम और दानका कोई फल नहीं आद्य ही ठीक है इस लिये और परपक्ष का यह सब अनर्थ का कारण ही होता है कोई सुफलकी प्राप्ति नहीं होती। पर के प्रयोजन का विशेष रूप से निश्चय होने से आरम्भ के दोनों की कोई आवश्यकता ही नहीं ॥७४-७९॥ आद्य के द्वारा भली प्रकार काम निकल जाने पर सामने

आद्योत्थितत्वान्नाऽन्यस्य चाऽसहायात् परश्च न। तस्मादन्त्य उपायोऽत्र भाति शेषित इत्यसौ
तत्र चाऽन्त्यमनालोच्य कुर्वन्नप्यवसीदति । बालः पञ्चाब्दक इति तेन राष्ट्रेश्वरा जिताः
देवकार्यार्थमायातस्तस्माद्बलवदुत्तरम् । तत्राप्यर्थो न राज्यादौ तत्र दानं हि सत्तमम्
दाने समुन्नतिर्नो चेत् समानं बलमिष्यताम् । एकःकुमारस्तेनाऽत्र हता राष्ट्राधिपाः क्षणात्
कोटिशोऽतिबलास्तेन दैवं बलमिदं भवेत् । तत्राऽस्माभिः प्राकृतकैः फलं नैव समीहितम्
तस्माद्राजन् कुलगुरुमुपतिष्ठ पिनाकिनम् । महादेवं तदंशेन सर्वं सेत्स्यति ते मतम् ॥
इतोऽन्यन्मे बुद्धिपथे न समायात्युपायकः । समं स्वस्वबलेनैव समाक्रामन्ति निम्नगम् ॥
तस्मान्महाराज मया विज्ञापितमिदं वचः । ससभ्यस्त्वं विचार्याऽथ सफलं कर्त्तुमर्हसि ॥
एतच्छ्रुत्वा वर्द्धनस्य मतं सर्वमतोत्तमम् । साधु साध्विति ते सभ्या मन्त्रिणोऽप्यूचुरादरात् ॥

आनेके कारण सामके एकाकी हो जानेसे दूसरेका प्रयोग नहीं करे इसलिये अन्तिम जो भेद उपाय है उससे अन्य साधन ही इष्ट है वह अगत्या अवशिष्ट रह जाता है ॥८०॥ उसमें भी अन्तिम नीति का भली प्रकार विवेचन किये करनेवाला मनुष्य दुःखका भागी बन जाता है । एक पाँच वर्षके बालकने राष्ट्रेश्वरोंको जीत लिया वह देवगण के लिये आया हुआ है इसलिये साम,दान, दण्ड और भेद इन चारों में एक के बाद दूसरी नीतिका उत्तरोत्तर होना उचित है। उसमें राज्य आदिमें दानकी नीति श्रेष्ठ होते हुए भी उसका यहां उपयोगी प्रयोजन नहीं है॥८१ दानमें समुन्नति नहीं होने से समान बलकी खोज करनी अपेक्षित है । एक कुमार है उसके द्वारा एक क्षण में राष्ट्र अधिपति लोग परास्त हो गये जो कोटि संख्यक हैं सभी उससे अत्यधिक बलशाली थे इससे दैवबल सम्पन्न बालक होना चाहिये । इसमें हम सर्वसाधारण मनुष्यों द्वारा इन चारों नीतियोंमें से कोई का फल उसे परास्त इष्ट नहीं है ॥८३-८४॥ इसलिये हे राजन् ! आप कुलगुरु पिनाकधारी भगवान् महेश्वर की आराधना कीजिये, कृपा से सब आपके मतानुसार सिद्ध हो जायगा ॥८८॥ इससे दूसरा कोई उपाय मेरी बुद्धि में नहीं आता अपने बल(शक्ति)के साथ ही (बुद्धिमान् लोग)अपने नीचेके व्यक्तियोंको समाक्रान्त कर लेते हैं(उन पर विजय पा लेते हैं इसलिये हे महाराज ! मैंने अपनी ओरसे(जो मुझे जचा वह)कहा आप अपने सभी मन्त्रिपरिषद्के सदस्योंके साथ करनेके अनन्तर उसे क्रियात्मक रूप से सफल कर सकते हैं" ॥८७॥ सबके मतोंसे अति उत्तम वर्द्धनकी मान्यता कर सभी सदस्य मन्त्री लोगों ने आदर पूर्वक साधुवाद दिया ॥८८॥ उस समय विचक्षण राजाने उसे सुनकर

राजा तदाकर्ण्य तदा महादेवस्य तोषणे । चकार निश्चलां बुद्धिं वर्द्धनोक्त्या विचक्षणः ॥८६॥
विप्रैराचार्यमुख्यैश्चाऽप्यनुज्ञातो यथाविधि ॥६०॥
इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तरामसंवादे
कामोपाख्यानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥११३६॥

महादेव को तपस्या से सन्तुष्ट करने के लिये वर्द्धन मन्त्री के कहने से अपनी निश्चित बुद्धि स्थिर की ॥८६॥ इस शुभ कार्य के लिये आचार्य प्रमुखों द्वारा विप्रगण द्वारा उसे विधिवत् आज्ञा मिली ॥६०॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में दत्तराम-सम्वादके
प्रकरणमें कामाख्यान नामक तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुर्दशोऽध्यायः

कामाख्यानेराज्ञोऽजेयत्व-प्राप्तवतःकामेनयुद्धवर्णनम्

अथ राजा शुभेऽरण्ये तीर्थरोधसि निर्जने । राज्यं मन्त्रिषु संन्यस्य तपस्येव मनो दधे ॥१॥
तत्र स्थितः शशाङ्काऽर्धशेखरं जगदीश्वरम् । ध्यायन्नेकाग्रचित्तेन जितबाह्येन्द्रियो बभौ ॥२॥
एवं सर्वाऽऽत्मना राजा जलाऽऽहारो महेश्वरम् । उपस्थितो दिनानान्तु पञ्चकं तदनन्तरम् ॥३॥
निराहारो निराधारो नियतेन्द्रियमानसः । ध्यायन् पिनाकिपादाब्जमूर्ध्वबाहुर्नरेश्वरः ॥४॥
बाह्यं वाऽप्यान्तरं वाऽपि न किञ्चिद्वेद तत्परः । एवं दिनत्रयेऽतीते चाष्टमे क्षणदामुखे ॥५॥
आविर्बभूव सर्वेशः साधितुं भक्तवाञ्छितम् । शारदाभ्रप्रतीकाशवृषस्कन्धविराजिते ॥६॥
आसने नूतनरत्नौघचित्रजातिविचित्रिते । मुक्ताजालसमाकीर्णे राङ्कवाजिनकोमले ॥७॥
आसीनःस्फटिकाऽच्छाऽऽभो जटामण्डलमण्डितः । बालचन्द्रकृतोऽत्तंसस्त्रिनेत्रो नागकुण्डलः ॥८॥
फुल्लपङ्कजपञ्चास्यः प्रसन्नवदनोडुपः । कुण्डलाऽहिफणान्यस्तमणिराजत्कपोलभूः ॥९॥

चौदहवां अध्याय

इस प्रकार मुनिमन्त्रणा से भगवान् शंकर की भक्ति द्वारा दैवी बल की प्राप्ति का निश्चय करने के अनन्तर राजा तीर्थ के तट पर निर्जन शुभ वन प्रदेश में (जाकर) राज्य का भार मन्त्रियों को सौंप कर तपस्या में संयत मन से लग गया ॥१॥ वहाँ स्थित हो उसने शशिशेखर जगदीश्वर भगवान् शंकर का एकाग्रमन से मन तथा प्राण को रोक कर ध्यान करते हुए सम्पूर्ण बाहरी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करली ॥२॥ इस प्रकार पूर्णरूपसे राजाने केवल जलपर आधारित पाँच दिन तक भगवान् महेश्वरकी तपस्या की । उसके बाद बिना किसी आहारके तथा आधार अवलम्बके नियत इन्द्रिय मानस होकर नरेश्वरने भगवान् शंकरके चरणों का ध्यान करते हुए ऊपरकी ओर हाथ किये उनकी स्तुति आराधना की ॥३-४॥ इष्टदेवके ध्यानमें तत्पर उसे न तो बाहरी वस्तुओंका और न आन्तर हृदय का कुछभी ज्ञान रहा; इसप्रकार तीन दिन बीत जाने पर आठवीं रात्रि के आरम्भ में सब के स्वामी भगवान् महेश्वर भक्त की मनोकामना पूर्ण करने के प्रदोष समयमें प्रकट हुए ॥५॥ वह शरत्कालके मेघके समान स्वच्छ श्वेत बैल पर आसीन हुए, नवीन रत्नों के समूह विभिन्न प्रकारके रंगों से शोभित, मृगचर्म से भी अधिक कोमल मोतियों के जाल से गुथे हुए आसन पर विराजे थे उनकी आभा स्फटिकमणि के समान अत्यन्त स्फीत गौर वर्णमयी थी जटा-मण्डल से अत्यधिक शोभायमान थे, द्वितीया प्रतिपदा के चन्द्रमाको मस्तक पर धारे, तीन नेत्रधारी, नाग का हार पहने थे, अति सुन्दर खिले कमलोंके समान उनके पांचों मुख हास्य पूर्ण विलास से शोभित थे,उनका मुखचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न था व कानोंमें कुण्डलोंके स्थानमें सर्पोंके फणों में न्यस्त मणियों से कपोल प्रदेश अत्यन्त शोभित था ॥६-९॥ उनके चारों भुजाओं में शूल, कपाल, मृग और परशु

तुर्बाहुलसच्छूलकपालमृगटङ्ककः । सर्पयज्ञोपवीताऽऽढ्यो रुद्राऽक्षस्रगलङ्कृतः ॥१०॥
याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः । व्यालेशमण्डितौघेन मण्डिताङ्गोऽतिसुन्दरः ॥११॥
द्राणीविलसद्वामवामाऽङ्कः करुणानिधिः । भस्मोच्छूलितसर्वाङ्गो रुद्राक्षस्रगलङ्कृतैः ॥१२॥
रुद्रुद्राऽध्यायमन्त्रैः प्रमथैः परिवारितः । राज्ञः पुरोऽवस्थितः स महादेवः परात्परः ॥१३॥
वाच दृष्ट्वा राजानं ध्येयमात्रात्मना स्थितम् । मधुराऽक्षरसंयुक्तं सम्बोध्य कृपया शिवः ॥१४॥
दा प्रमथसङ्घस्य कोलाहलमहाध्वनेः । ध्येयात्परावृत्तमनः प्रोन्मील्य नयनेऽग्रतः ॥१५॥
पश्यद्वेदेवं तमम्बिकाप्रमथाऽन्वितम् । प्रणतो दण्डवद्भूमौ मूर्ध्न्याऽऽहितकराञ्जलिः ॥१६॥
दर्शनोत्सवोद्यच्चन्द्रमाश्च द्विगुणाङ्गकः । आनन्दाऽश्रुपरीवाहप्लावितोरःस्थलाऽवनिः ॥१७॥
भूयो भूयः प्रणम्यैवं प्रस्तोतुमुपचक्रमे ॥१८॥

ङ्कर भक्तहितङ्कर जगतां रक्षक दुष्टसुशिक्षक, ते पादाम्भोजं बिबुधेशानामपि नो लभ्यं करुणाब्धे ।
भवतो निर्मलदृष्ट्या पश्याम्यद्य महाफलदं, तस्मान्मत्तो धन्यो नाऽन्यो मानुषलोके जगदीश ।१९॥

ण करना उनकी शोभा को अधिक से अधिक बढाता था, रुद्राक्ष की माला से वह आभूषित थे ॥१०॥ व्याघ्र चर्म पहने हुए थे, उनके गज (हाथी) चर्म का उत्तरीय वस्त्र था। हृदय प्रदेश पर सर्पराज विराजमान था जिससे के अङ्ग अत्यन्त सुन्दर रूप से मण्डित थे ॥११॥ उनके बांयी ओर गोद में सदा की भांति रुद्राणी विराजी थी णानिधि शंकर सारे अङ्गों में भस्म रमाये हुए थे, रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए प्रमथ गणों से रुद्राष्टाध्यायी न्त्रों द्वारा सतत प्रार्थना की जा रही थी। ऐसे परात्पर भगवान् महादेव राजा के सम्मुख उपस्थित हुए ॥१२-॥ अपने आराध्य इष्टदेव के ध्यान के योग्य स्वरूप में स्थित राजा को देख शिव ने कृपा करके अति मधुर अक्षरों से सम्बोधन किया उस समय प्रमथ गण की वेद ध्वनि से राजा ने स्वध्येय से मन हटा आंखें खोलकर ने सामने भगवती अम्बिका और प्रमथगण सहित देवोंके देव भगवान् शंकरको देखा ॥१४-१५॥ वह दण्डवत् होकर स पर प्रणत हो गया और शिर से नत दोनों हाथों को जोड उन परमाराध्य के दर्शनों से उसके हृदयाकाश में न्त प्रसन्नता व्याप्त थी मानों चन्द्र का उदय हो गया हो और तपस्या से क्षीणता होने पर भी उसके अङ्ग प्रसन्नता ूले नहीं समा रहे थे, आनन्द के आंसुओं की धारा निकल उसके हृदय प्रदेश तक बहती थी। बारम्बार इस र की स्थिति में उसने (भगवान् शंकर को) प्रणाम कर स्तुति आरम्भ की ॥१६-१८॥ "हे शंकर ! हे भक्तों के हित ने वाले, जगत्के प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले और दुष्ट लोगोंको सर्वदाके लिये दण्ड देकर अच्छी शिक्षा देनेवाले आप चरणकमल देव वृन्द को भी सुलभ नहीं हो सकते। हे करुणा के समुद्र ! मैं उन्हीं महाफल को देनेवाले आपके कमलों को निर्मल दृष्टि से आज देखता हूँ; हे जगत्के स्वामिन् ! इसलिये मुझ से अधिक धन्य इस मनुष्यलोक में

प्राग्जन्मार्जितपुण्यसमूहैरासं दुर्लभमानुष्यम्, तत्र च गात्रं बलवन्नेत्रञ्जातं स्वान्तं विमलं
एवं सत्यपि करुणासिन्धुं त्यक्त्वाऽन्यत्र रता मनुजा, ये तान्मूढान्नरपशुभूतान् धिग्धिक् स्वार्थच्युतान्
हस्तौ तावकपदपरिचर्यासक्तौ वाणी गुणकथने, नेत्रे श्रीशिवमूर्तिनिरीक्षाकर्मणि चित्तं ते
कर्णौ लीलाऽकर्णननिरतौ चरणौ देवपरिक्रमणे, कालो यस्य त्वेवं यातो धन्याद्धन्यः स एवाऽ
शम्भो तावकपदसेवायां क्षणमपि येन स्थितमत्र, तस्य बुधेशपदं तृणतुल्यं मानुषभाग्यं कियदु
एवं सत्यपि मम या वाञ्छा क्षुद्रार्थेषु निविष्टा सा, लोके विद्वत्परिहसनार्था भूयादीश्वर चिरकालम्
तस्मान्मह्यं दिश देवेश प्रेमोच्छित्तिं विषयेषु प्रायो, जानन्नपि भुवि लोको विषयो दुःखनिदानं

कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है ॥१९॥ पूर्व जन्म के कमाये हुए पुण्यों के समूह से यह दुर्लभ मनुष्य देह मिला है शरीर, बलसम्पन्न और सब अङ्ग आंख कान नाक आदि का सकल प्रकार से पूर्ण बनना और चित्त का निर्मल यह सब होने पर भी आप करुणा-वरुणालय को छोड़ कर भी मनुष्य लोग विषय भोग आदि विपरीत वस्तुओं में रहते हैं ऐसे मनुष्य के रूप में पशु के समान आचरण करने वाले अपने परमात्म-प्राप्ति के सर्वथा सुन्दर उद्देश्य च्युत होने के कारण बनने वाले पामरों को धिक्कार है, धिक्कार है ! ॥२०॥ जिस व्यक्ति के हाथ आपके कमलों की भक्तिमें लगे हैं; वाणी आपका गुणानुवाद गानेमें, दोनों नेत्र आप श्रीशिवमूर्ति के दर्शन करने में आपके तत्वके चिन्तन में, दोनों कान लीला सुनने में अत्यन्त रस लेते हैं और चरणों से आपकी परिक्रमा कर जीवन होता है और जीवन का शुभ समय आपकी इस प्रकार सेवा में बीतता है ऐसा ही पुरुष इस संसारमें जन्म धन्यता धन्यतम है (इसमें कोई सन्देह नहीं) ॥२१॥ हे शम्भो ! जो व्यक्ति आपके चरणकमलों की सेवा प्रशंसामें एक क्षण मात्र भी ठहरा उसके लिए देवत्वको प्राप्त होना तो अति तुच्छ (तृण तुल्य) है उसके मनुष्य की प्रशंसा के लिये जितना कहा जाय थोड़ा ही है। इतना होने पर भी मेरी जो इच्छा बहुत अल्प प्रयोजनों को करने की हुई है उससे विद्वान् लोग मेरे क्षुद्र स्वार्थमय उद्देश्य की हंसी ही उड़ावें हेईश ! मैं यही चाहता हूँ इसलिये हे देवेश ! आप मेरे ऊपर कृपा करें जिससे मेरे विषयोंके प्रति अनुराग का उच्छेद हो जाय। प्रायः इसको लोग ही जानते है ऐसा भी इस संसार में विषयमात्र ही दुःख प्राप्ति के मूलकारण हैं उन्हें ही पलपल दिन रात रहते हैं वे सदा आपकी सङ्कल्पमयी मायासे मोहित चित्तवाले बन (किंकर्त्तव्यविमूढ) जाते हैं। हे शिव ! आपकी शरण में आये मुझ दीन पर आपकी करुणा की दृष्टि हो जाय मैं श्रद्धाभक्ति से आपकी शरण में आया हूँ" ॥२२॥

इस प्रकार राजा ने विश्व के कल्याणकरनेवाले देवेश्वर भगवान् शंकर की स्तुति कर भक्ति विह्वल करण से युक्त हो उन्हें पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् महेश्वर गौरी समेत अपने

वाञ्छन्त्येव सदा तव मायामोहितचित्ता शिव मयि ते, करुणादृष्टिर्विलसतु दीनेऽनन्यशरण्ये प्रणतोऽस्मि
एवं संस्तुत्य देवेशं शङ्करं लोकशङ्करम् । प्रेमविह्वलितस्वान्तो दण्डवत् प्रणतो भुवि ।
अथ देवोऽवरुह्याऽऽशु वृषाद्गौरीयुतस्तदा ॥२४॥

उपसृत्य समीपे तं राजानं मूर्ध्नि सोऽस्पृशत् । उवाच प्रेममधुरसुन्दरं वचनं शिवः ॥२५॥
वत्सोत्तिष्ठ द्रुतं ब्रूहि प्रियं किं तेऽभिवाञ्छितम् । यन्न लभ्येत तल्लोके मद्भक्तस्य न विद्यते ॥२६॥
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा प्रोत्थायाऽञ्जलिसंयुतः । शिवाऽङ्घ्रिदर्शनोद्भवैराग्यभरमन्थरः ॥२७॥
महादेव प्रियं मेऽद्य यदि त्वं दातुमिच्छसि । तर्हि मे विषयाऽऽसक्तिं समूलां विनिवर्त्तय ॥२८॥
नेच्छामि किञ्चित्त्वत्पादसेवनादन्यदल्पकम् । कृपा पूर्णा यदि मयि नय मां त्वत्समीपतः ॥२९॥
राज्ञ एवं वचः शम्भुर्निशम्य प्राह सुस्मितम् । वत्सैतदस्तु कालेन मत्सामीप्यं भविष्यति ॥३०॥
परन्तु सद्यस्त्वं गच्छ कामं जय दुरासदम् । तस्य जेता भुवि दिवि प्रायो नैवाऽस्ति मामृते ॥३१॥
तस्मात् कामं विनिर्जित्य प्रजाः पालय धर्मतः । एवं तद्वचनं श्रुत्वा ननाम भुवि दण्डवत् ॥३२॥
प्राह देवं महेशानं न वाञ्छामीति ते रितम् (?) ! प्रसादं कुरु ते पादसेवां हित्वा महत्तरम् ॥३३॥

शीघ्र उतर कर राजा के निकट जाकर उसके शिर को स्पर्श किया और प्रेम से मधुर स्निग्ध वचन बोले ॥२४-२५॥ "हे वत्स ! उठ जल्दी ही मुझे अपना अभिलषित प्रिय कार्य बता क्योंकि मेरे भक्ति के लिए ऐसी संसार में कोई वस्तु नहीं जो उसे न मिलती हो" ॥२६॥ इसे सुनकर राजा ने हाथ जोड़ उठकर भगवान् शिव के पादकमल के दर्शन मात्र से ही उठे हुए वैराग्यभाव के कारण धीमी धीमी गति (वाणी) से कहा ॥२७॥ "हे महादेव ! आज यदि आप मुझे मेरा अभिलषित प्रिय देना चाहते हैं तो मेरी विषयों के प्रति आसक्ति (रुझान) को आप समूल हटा दें ॥२८॥ आप के चरणकमलोंकी भक्ति को छोड़ मैं अन्य तुच्छ वस्तुओंको कथमपि नहीं चाहता। यदि मेरे ऊपर आपकी पूर्ण कृपा है तो मुझे आप अपने समीप ले आवें" ॥२९॥ राजा के इस प्रकार वचन सुनकर शम्भु भगवान् सम्यक्प्रकार से स्मित कर बोले, "हे वत्स ! यह सब समय पर होगा तू मेरे सामीप्य को अवश्य पायेगा ॥३०॥ परन्तु तत्काल तू जा और बहुत कठिनता से वश में आने वाले काम को जीत ले। उसे जीतनेवाला केवल मुझे छोड़ प्रायः कोई पृथ्वी और स्वर्ग में नहीं हैं ॥३१॥ इसलिये तू काम को जीतकर धर्मपूर्वक प्रजा का पालन कर"। इस प्रकार शंकरजीके वचन सुन राजा ने भूमि पर दण्डवत् हो प्रणाम किया और वह भगवान् महेश्वर से बोला, "प्रभो ! आपके चरणकमलकी भक्तिको छोड़कर संसारमें अन्य महत्तर वस्तु कुछभी हो चाहे वह तीनों लोकोंके अधिपति बनने का अवसर हो मेरे लिये वह अभीष्ट नहीं फिर सार्वभौम पद की तो बात ही क्या ? हे देव ! अब आप

त्रिलोकेशत्वमपि मेमाऽस्तु किं सार्वभौमता । वद देव त्वया प्रोक्तं ददामीत्यभिवाञ्छितम् ॥३
तदन्यथयितुं कस्मान्नाऽहं शत्रुजयं वृणे । त्वत्सान्निध्यं यदि न मे तर्ह्यहं देवसंस्थितः ॥३
तपस्येव ततो देव वरं फल्गु न मे मतम् । इति श्रुत्वा नृपवचो भूयः प्राह महेश्वरः ॥३
शृणु राजन् त्वया पूर्वं कामस्य जयहेतवे । तपश्चरितमेतस्मात्तद्व्यर्थं न भविष्यति ॥३
यदि पूर्वं मत्समीपप्राप्तये पतितं भवेत् । तर्हि तत्फलमेव स्यान्न भवेद्भावना वृथा ॥३
तस्मादिदं फलं नैव मदुक्तं व्यर्थतामियात् । गच्छ कामं रणे जित्वा सार्वभौमत्वमास्थितः ॥३
अन्ते मज्ज्ञानमासाद्य मत्समीपं प्रपत्स्यसि । मत्प्रसादात्तव मनः सदा निर्वासनं भवेत् ॥४०
इत्युक्त्वा पश्यतः शम्भुरन्तर्धानं गतस्तदा । ततो राजा महादेवं प्रणम्य प्रेमभावतः ॥४१
शिवाज्ञां मानयन्नन्तर्निर्मलः सम्बभूव ह । एतस्मिन्नन्तरे कामः सर्वाञ्जित्वा जनान् भुवि ॥४२
बद्ध्वा समागमद्ब्रह्मावर्त्तं तत्र बहिःस्थिताः । दृष्ट्वा जनाः कुमारं तं सौन्दर्यौघपरिप्लुतम् ॥४३
निबद्धनयनास्तत्र विस्मृताऽऽत्मगृहादयः । यद्यदङ्गं येन दृष्टं तत्सौन्दर्याऽऽहृतेक्षणाः ॥४४

ही बताइये कि आपने जो कहा कि आप मुझे मेरा अभिलषित देंगे तो उसे अन्यथा करने (व्यर्थ करने) को मैं कैसे [illegible] को जीतने वाला वर आप से मांग सकता हूँ ॥ ३२-३४॥ ॥ यदि आपकी सन्निधि मुझे न हो तो मैं फिर आप [illegible] और भक्ति करूं और तपस्या में लगूं इससे छोटा वर तो मुझे मान्य नहीं" ॥ इसप्रकार नृप की वाणी सुन भगवान् महेश्वर फिर बोले ॥३५-३६॥ "हे राजन् ! सुन, तू ने पहले काम के ऊपर विजय करने के हेतु से तपस्या की इस लि[illegible] वह व्यर्थ नहीं होगी । यदि पहले मेरे सामीप्य की प्राप्ति करने के लिये तू प्रयत्न करता तो उस तपस्या का फ[illegible] होता, तो तेरी भावना वृथा नहीं होगी इसलिये मेरा कहा हुआ फल व्यर्थ न हो अतः तू जा रण [illegible] कामदेव को जीत कर सार्वभौम पदवी पा ले । अन्त में मेरा ज्ञान पाकर मेरे समीप में ही तेरी स्थिति [illegible] जायगी; मेरी कृपा से तेरा मन सदा ही वासनारहित बन जायगा" ॥३७-४०॥ इस प्रकार भगवान् शम्भु कहकर [illegible] देखते देखते अन्तर्धान कर गये । तदनन्तर राजा खूब श्रद्धाभक्तिपूर्वक महादेव को प्रणाम कर शिव की आज्ञा [illegible] मानते हुए अत्यन्त निर्मल मनवाला बन गया । इसके बीचमें काम पृथ्वी भर के सभी मनुष्यों को जीत [illegible] उन्हें बांध कर ब्रह्मावर्त्त प्रदेश में आ गया । वहां बाहर ठहरे हुए लोगों ने ज्योंही सौंदर्य के समूह से पूर्ण [illegible] कुमार को देखा तो उनकी दृष्टि एकटक उसी में लगा विस्मित से होकर अपने अपने घरों को भूलकर वहीं स्थिति [illegible] ली ॥४१-४३॥ जिस जिस व्यक्तिने उस सौन्दर्यकी मूर्ति कामराजको देखा तो अपनी अपलक दृष्टि उसीमें लगा दी [illegible] सब कोई ऐसे निश्चेष्ट बने हुए थे कि मानों सब के सब ही काठ की मूर्ति के समान स्थित हों । उस [illegible]

दृग्लोहिताक्षा इव जना निश्चेष्टास्तत्र संस्थिताः । तदा कामो नागरिकानाह रोषाऽरुणेक्षणः ॥४५॥
हे जना मां महाराजं वदन्तु प्राप्तमन्तिके । शीघ्रं मच्छास्तिमथ वा युद्धं वा स्वीकरोतु सः ॥४६॥
इति तद्वचनं श्रुत्वा कामस्याऽत्यद्भुतं जनाः । पुरा श्रुतं महाभीमवीर्यं प्राप्तं निशाम्य ते ॥४७॥
तत्र सुनागराः सर्वे पलायनपरा भवन् । हाहेति पुत्र पुत्रेति मातर्भ्रातः सखे इति ॥४८॥
निर्गच्छध्वं पलायध्वमित्याक्रन्दः समाबभौ । तत् परम्परया श्रुत्वा जनाः पौरास्तु सर्वतः ॥४९॥
निर्जग्मुः स्त्रीबालवृद्धा आह्वयन्तः परस्परम् । एवं क्षणात्तन्नगरमुद्वेलमिव सागरम् ॥५०॥
जातक्षुब्धं जनसन्दोहाक्रन्दकोलाहलेन तत् । दुर्गपाला भटाः सेनानायकौघाः सहस्रशः ॥५१॥
वाहनानि समारुह्य शस्त्रास्त्रधृतबाहवः । एतस्मिन्नन्तरे तस्य सेनानीः सुधृतिर्द्रुतम् ॥५२॥
महावीर्यबलः सेनां प्रस्थाप्य नगराद्बहिः । द्वारे निवेश्य द्वाराधिपतीन् प्रागादितः क्रमात् ॥५३॥
कोणेष्वपि महाशूरभटान् संस्थाप्य गुल्मशः । वर्धनस्य गृहं प्रागात् द्रुतं वाहनमास्थितः ॥५४॥
तावत्तावदेवाऽऽशु संस्थाप्याऽन्तःपुरे जनान् । रक्षकान् रक्षणार्थाय दूतान् शीघ्रगमानपि ॥५५॥

क्रोधसे लाल लाल आंखें कर नगरवासियों से कहा ॥४४-४५॥ "हे लोगो ! तुम लोग अपने महाराज को जाकर
दो कि मैं उसके पास आया हूँ। या तो वह मेरी आज्ञा मान ले, नहीं तो मेरे युद्ध का आह्वान स्वीकार करें ॥४६॥
प्रकार काम की अति अद्भुत वाणी को सुनकर लोगों ने पहले सुने हुए महाभीम वीर्यशाली काम को आया
सभी भले मानस हड़बड़ाकर भागने लगे । कोई हा पुत्र ! हा पुत्र ! इस प्रकार कहता हुआ, कोई हे मातः ! हे भ्रातः
! इसप्रकार निदारुण चीखता हुआ, अरे निकल चलो भागजाओ इसरूपमें वहाँ बहुतभारी कोलाहलपूर्ण वातावरण
क्षणमें आ गई ॥ ४७-४८॥ ॥ उसे एक दूसरे से सुनकर सब ओर से नगर के लोग स्त्रियों, बालकों और वृद्ध
को आपस में पुकारते हुए निकल भागे ! इस प्रकार क्षण भरमें ही वह सारा नगर इस प्रकार अशान्त लगने लगा
उद्वेलित सागर लहराता हो ॥४९-५०॥ लोगों के भयभीत हो भागने व कोलाहल करने से सारा नगर ही बहुत
अशान्त हो गया उससे सावधान हो हजारों ही दुर्गपाल, वीर तथा सेनानायकगण अपने अपने वाहनों पर चढ़ कर
में शस्त्रों एवं अस्त्रों को लेकर उपस्थित हो गये ॥५१॥॥ इसके अनन्तर उसका सेनापति महापराक्रमी सुधृति
शीघ्रतया नगर के बाहर सेना को भेजकर पूर्व दिशा के क्रम से चारों ओर द्वार के अधिपतियों को सब कोनों
महावीर योद्धागणों को दलों में नियुक्त कर अपने वाहन पर चढ़कर शीघ्र वर्धन के महल की ओर चला
५२-५४॥ तब तक वर्धन ने शीघ्र ही अन्तः पुर (डयौढी) में रक्षा करनेवाले लोगों को और शीघ्रगतिशील दूतों को

राज्ञे निवेदितुं प्रेत्य स्वयं मन्त्रिभिरावृतः। निवेद्य राजपुत्रेषु कामस्याऽऽगमनं ततः ॥५
निर्जगाम स्वभवनात् सुधृतिं समवैक्षत। आगत्य वर्धनं नत्वा प्रोवाच स चमूपतिः ॥५
शृणु वर्द्धन मद्वाक्यं सेनासेनाधिपैः सह। प्रेषिता कामरोधाय विहितं द्वाररक्षणम् ॥५
गुल्मा निवेशिताः कोणे नागराः सन्निवर्त्तिताः। पलायनपराः सर्वे गच्छाम्यहमितः परम् ॥५
राजपुत्रानुपादातुं शत्रुञ्जयमुखान् ततः। तान् पुरस्कृत्य तरसा गच्छामि समराऽवनिम् ॥६
एवं वदति तत्काले सुधृतौ राजपुत्रकाः। सहिताः स्वस्वसेनाभिर्निर्जग्मुरमितौजसः ॥६
शत्रुञ्जयः शत्रुहा च भीमः समरतापनः। चत्वारो राजतनयाः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥६
सन्नद्धगात्रा मुकुटकुण्डलाऽऽद्यैरलङ्कृताः। वज्रसंहननाः प्रोद्यद्बहुशस्त्रास्त्रकोविदाः ॥६
रथेषु सूर्यवर्चःसु सदश्वेषु विराजिताः। चामरैर्वीज्यमानास्ते स्तुता वन्दिगणैर्मुहुः ॥६
सुधृतिस्तान् सुसङ्गम्य नत्वाऽऽरुह्य गजाधिपम्। जगाम राजपुत्राणामग्रे सर्वान् समाक्षिपन् ॥६
उवाच राजपुत्रोऽथ वर्धनं कुलवर्धनम्। अप्रमत्तैः कुरु भटैः रक्षणं सेनया युतैः ॥६

लगा कर राजा के निवेदन करने को स्वयं मन्त्रीगण के साथ राजपुत्रों को भी कामदेव के आने की सूचना अपने भवन से निकल सुधृति से मिला। आकर के वर्धन को नमस्कार कर वह सेनापति बोला ॥५५-५७॥ "हे मेरी बात सुन, सेनाधिपतियों सहित कामदेव को रोकने के लिए सब ओर सेना भेज दी गई है॥५८॥ द्वार को सु करने की व्यवस्था कर ली गई है। सभी प्रमुख अङ्गों पर सेना की टुकडियाँ नियुक्त कर ली गई हैं। सभी वासियों को जो भगे जा रहे थे सुरक्षित स्थान पर लौटा दिया गया है ॥५९॥ तब शत्रुञ्जय आदि राजपुत्रों को लाने के लिये मैं आगे जाता हूँ उन्हें आगे करके मैं युद्धभूमि में तत्क्षण ही प्रस्थान करता हूँ" सुधृति के ऐसा कहते ही अति तेजस्वी राजपुत्र अपनी अपनी सेनाओं सहित युद्ध के लिए आगे बढ़े शत्रुञ्जय, शत्रुहा, भीम और समरतापन ये चारों राजाके पुत्र इन्द्रके सदृश पराक्रमशाली थे ॥६२॥ महावीर सेना के युद्ध क्षेत्र की योग्यभूषा (पोशाक) पहने मुकुट कुण्डल आदि से शोभित थे ये वज्रसंहनन और युद्ध के सम्पूर्ण शस्त्र चलाने में सुदक्ष थे। सूर्य के समान तेजस्वी रथ जिनमें अति वेगवान् घोड़े जुते हुए थे उनपर वे आरूढ़ उनके पार्श्व में चामर डुलाये जा रहे थे। बारम्बार युद्ध के लिये भावना भरने को बन्दीगण उनकी प्र परक स्तुति गा रहे थे। सुधृति ने उनसे मिल उन्हें प्रणाम कर श्रेष्ठ हाथी पर सवार होकर राजपुत्रों के आगे चलना आरम्भ किया और सबको वह युद्धकी तैयारीका सन्देश देता हुआ बढ़ चला॥६३-६५॥अनन्तर राजपुत्रने गौरवबढ़ाने वाले वर्धन से कहा, "सेनासहित पूर्ण सावधान महावीरभटों के साथ खूब तत्परता से गुप्तचरों

सान्तःपुरे स्वनगरे चारैर्वृत्तं निवेदयन्। इति श्रुत्वा राजसुतवाक्यं स्वीकृत्य तद्वचः ॥६७॥
प्रोवाच वदतां श्रेष्ठो वचस्तत्कालसम्मितम्। राजपुत्र महाभाग गच्छ त्वं सह सेनया ॥६८॥
कर्त्तव्यमत्र यत्किञ्चिन्नगरे मयि जीवति। न हास्यति त्वत्प्रसादात् प्रायः कृत्यन्तु साम्प्रतम्॥६९॥
कृतमेवाऽवजानीहि भवताऽपि रणोद्यमे। सावधानेन योद्धव्यं भटैः सेनाधिपैः सह ॥७०॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र प्राप्तः कुलपुरोहितः। विद्यापतिर्ब्राह्मणौघवृतस्तेजोमयः शुचिः ॥७१॥
तं दृष्ट्वा राजपुत्रास्ते रथादुत्तीर्य सत्वरम्। अभिवाद्य गुरुं विप्रान् प्रश्रयाऽवनताः स्थिताः ॥७२॥
ततो विद्यापतिर्विप्रैराशीर्भिरनुयोज्य तान्। फालेषु तिलकं कृत्वा संस्पृश्याऽङ्गानि सर्वशः ॥७३॥
रक्षां समकरोन्मन्त्रैर्भटावन्नामसंयुतैः। "अग्रे शिवो रक्षतु त्वां शूलपाणिस्त्रिलोचनः ॥७४॥
पिनाकी पृष्ठतः पार्श्वे पाशहस्तो महेश्वरः। मूर्धानं जटिलस्तेऽव्याद्धस्तौ सर्पविभूषणः ॥७५॥
कालाग्निनयनो वक्षः कटिं करोटित्वक्पटः। रुद्राक्षभूषणः कुक्षिं कपाली पादयुग्मकम् ॥७६॥
पुष्पबुद्दक् पृष्ठदेशं सर्वतः श्रीशिवङ्करः। भस्मनैव विधायाऽङ्गरक्षां दत्त्वाऽऽशिषः शुभाः ॥७७॥

समय समय पर सूचना पाकर अन्तः पुर सहित सारे नगर की रक्षा करना ॥ ६६॥ ॥ इस प्रकार राजा के पुत्र का वाक्य सुनकर वाणीके सुन्दर प्रयोग करने वालोमें श्रेष्ठ वह वर्धन उस समयके लिये अत्यन्त उपयुक्त अनुकूल वचन बोला, "हे महाभाग राजपुत्र ! अपनी सेना सहित तू बढ़ ।" ॥६७-६८॥ "मेरे जीते जी नगर की रक्षा के लिये जो मुझे करना है वह कोईभी कार्य किये बिना मैं न रहूँगा यह सब तुम्हारी कृपासे ही सम्भव होगा। समझलो यहां तो सब करने योग्य कार्य हो गया है ॥६९॥ अब तुम्हे रणभूमिमें कर्त्तव्य पालन कर सावधान होकर अपने सेनापतियोंके साथ युद्ध करना चाहिये" ॥७०॥ इसके अनन्तर ब्राह्मणोचित-कर्म-परायण, तेजस्वी, अत्यन्त पवित्र, राजकुल का पुरोहित विद्यापति वहां आया ॥७१॥ उसे देखकर सभी राजपुत्र शीघ्र रथ से उतर कर अपने पूज्य गुरु को प्रणाम कर श्रद्धाविनत खड़े हो गये ॥७२॥ तब विद्यापतिने विप्रगणके साथ उन्हें वैदिकमन्त्रोंसे शुभाशीर्वाद देकर उनके मस्तकपर विजयतिलक लगा अङ्गोंको स्पर्श कर "शिवके नाम पृथक् पृथक् भट (वीर) लोगोंकी रक्षा करे" इस प्रकार बोलकर रक्षाविधान किया। शूल हाथमें धारण किये त्रिलोचन भगवान् शिव तुम्हारी आगे रक्षा करें, पिनाकधारी पीठ पीछे, पार्श्व भाग में पाश हाथ में लिये महेश्वर, सिरको जटाधारी एवं हाथोंको सर्पोंका आभूषण पहने भगवान् सर्पभूषण रक्षा करें ॥७३-७५॥ कालाग्निनेत्र वाले वक्षःस्थल की, कपालधारी और बाघाम्बर पहने कटिप्रदेशकी, रुद्राक्षमालाधारी कुक्षिदेश (पेट) की रक्षा और कपाली भगवान् दोनों पैरोंकी रक्षा करें ॥७६॥ खिले कमल पुष्पके समान नेत्रवाले पृष्ठदेशके लिये और श्रीशिवङ्कर चारों ओर से रक्षक बने। भस्म द्वारा ही अङ्ग रक्षा करके शुभ आशीर्वाद देकर नाना प्रकार के महादानों की विधियां सम्पन्न करवा कर

कारयित्वा महादानान्यपि नानाविधानि च । प्रणतस्तैः राजपुत्रैर्विप्रैर्विद्यापतिर्ययौ ॥
अथ सर्वे जनाश्चक्रुर्जयशब्दं दिविस्पृशम् । सिंहनादं भटास्तद्वच्छङ्खनादश्च सैनिकाः ॥
दुन्दुभीन् पटहान् भेरीन् वादयन्तः सुकाहलान् । निर्जग्मुः सैनिका राजपुत्रान् संवृत्य सर्वतः ॥
अश्वानां ह्रेषितं वीरहुङ्कारा गजचीत्कृताः । रथघोषा ज्यानिनादा आस्फोटाः क्ष्वेलना अपि ॥
मिलिता रोदसीमध्यं विदारणकरा इव । उत्सिक्तोदधिवत्सेना नगरद्वारतस्तदा ॥
निर्जगाम महाभीमा भीरुहृत्स्फोटदर्शना । द्वितीयसागरमिव भूमध्ये संस्थितिं गतम् ॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामाख्याने राजपुत्राणां युद्धात्र
रक्षाविधिपूर्वकं युद्धभूमौ सज्जीभवनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१२२॥

राजपुत्रों ने विनत हो विद्यापति को प्रणाम किया और विप्रगण के सहित वह राजपुरोहित चला गया ॥७७
यह सब विधि सम्पन्न होनेके अनन्तर सब लोगोंने आकाशव्यापी जय जयकारोंका घोष किया, महाभटों ने सिंह
की और सैनिकों ने शङ्खनाद किया ॥७९॥ दुन्दुभी, ढक्का, भेरी, और झांझें बजाते हुए सैनिकलोग राजपुत्रों
ओरसे घेर कर युद्धके लिये आगे बढ़े ॥८०॥ घोड़ोंका हिनहिनाना, वीरोंका हुङ्कार भरना और हाथियों का चिं
रथों के घोष, धनुषों की प्रत्यञ्चा की टङ्कारें, अस्त्र शस्त्रों की झनकारें और ललकारें तथा गर्जनायें सभी
युद्धके विभीषक वातावरण को हृदयमें कम्प उत्पन्न करने वालासा बना रहे थे । तब उत्ताल तरङ्गोंसे तटों की सी
लांघनेवाले समुद्रके समान वह सेना महाभीमकाय रूपवाली, भीरु लोगोंके हृदयमें भय प्रकम्पन करनेवाली (युद्धके
नगर के द्वार से बाहर निकली उससे ऐसा प्रतीत होता था कि भूमण्डल पर एक दूसरा समुद्र सास्थित हो
॥८१-८३॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में काम के आख्यान
प्रकरणमें राजपुत्रों की युद्धसज्जा नामक चौदहवां अध्याय समाप्त ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

सनारदप्रबोधनं देवराजस्य कामसाहाय्यार्थं युद्धे सहयोगवर्णनम्

तां महतीं सेनां सुधृतिर्व्यभजत् क्रमात्। शत्रुञ्जयं राजपुत्रं दशाऽक्षौहिणीसंयुतम् ॥१॥
निवेश्य पुरतः स्वयं कुञ्जरसंस्थितः। विंशत्यक्षौहिणीयुतः स्थितः सेनाधिपैर्वृतः ॥२॥
शत्रुहणं विंशत्यक्षौहिणीयुतं तथा। दक्षे भीमं सन्निवेश्य विंशत्यक्षौहिणीयुतम् ॥३॥
यक्षौहिणीयुतं पश्चात् समरतापनम्। तद्बहिः पृष्ठभागे तु शूलखेटकधारिणः ॥४॥
शूराः सिंहसमाः समरेष्वनिवर्त्तिनः। लक्षकोटिसहस्राणां कोटिकोटिशतैर्मिताः ॥५॥
रिघहस्तास्तु तावन्तो दक्षतः स्थिताः। शक्तिचक्रधरा वामे स्थिताः शूरास्तथाऽमिताः ॥६॥
सन्नद्धसेनानां विभज्य सुधृतिस्तदा। राजपुत्राय विज्ञाप्य स्वयमग्रे गजस्थितः ॥७॥
याऽभिससाराऽग्रे विकर्षन् महतीं चमूम्। तदन्तरे नारदस्तु जगामाऽऽखण्डलाऽग्रतः ॥८॥

पन्द्रहवां अध्याय

ा के नगर से बाहर सज कर निकलने के बाद उस विशाल सेना को सुधृति ने क्रम से विभिन्न भागों में बाँट दश अक्षौहिणी सेनाके सहित राजपुत्र शत्रुञ्जय को बीचमें रखकर आगे हाथी पर स्वयं आरूढ़ होकर सेनापतियों बीस अक्षौहिणी सेनाके साथ वह डट गया ॥१-२॥ शत्रुहा को वाम पार्श्वमें स्थित बीस अक्षौहिणी सेनाके साथ, दक्षिण तरफ बीस अक्षौहिणी के साथ, और पीछे की ओर बीस अक्षौहिणी सेना के साथ समरतापन को ख्या। उसके चारों ओर, बाहरकी ओर तथा पृष्ठ भागमें शूल और गदा मुद्गर धारी, समरसे पीठ न दिखाने ह के समान प्रबल पराक्रमी, महाशूरवीर रक्खे गये जिनकी संख्या लाख कोटि सहस्रों की थी और गदा और ने अस्त्र हाथमें लिये कोटि कोटि सैकड़ोंकी संख्या वाले दक्षिण की ओर नियुक्त किये गये; उतनोही संख्या में ा हाथों में शक्ति और चक्र लिये हुए वाम भाग में रक्खे गये, ये संख्या में अमित (अनगिने) थे ॥३-६॥ र भलीप्रकार युद्धभूमिके उपयुक्त व्यूह की रचना कर सब सेनाओं को उन-उन स्थानों पर सुदृढ़ नियुक्त तिने तब राजपुत्रको सारी व्यवस्था समझा कर आगे हाथी पर सवारी की ॥७॥ वह बड़ी सेना को आगे बढ़ाता ामदेव के सामने आ पहुंचा। उसके बाद देवर्षि नारद इन्द्र के सामने आये। उन्हें चांदी के पर्वतके समान धवल

तमपश्यच्छतमखो रजताऽद्रिसमप्रभम्। कृष्णाजिनपरीधानं भस्मदिग्धकलेवरम्
शारदेषज्जलयुतजीमूतमिव खे स्थितम्। वायुवेगादिवाऽऽयान्तं वृत्तान्ताऽम्बुसुवृष्टये ॥
कामयुद्धाय लोकाय गजराजोपरि स्थितम्। विबुधेशो गजात्तस्मादवरुह्य मुनेस्तदा ॥
चरणौ शिरसा नत्वा सभाज्य विधिदृष्टतः। पुरः स्थितस्तदा प्राह नारदो विबुधेश्वरम् ॥
सुत्रामन् किं पश्यसि त्वं राज्ञस्तु महती चमूः। सुसन्नद्धाऽत्र सम्प्राप्ता पश्याऽनन्ता समुद्रवत्॥
भवदर्थं कथञ्चैकः कामः संसाधयिष्यति। यद्यपि श्रीमहत्त्वेन साध्यमेवाऽतिदुष्करम् ॥
मूर्तिप्रधानं नो वीर्यं किन्तु बीजगुणात्तु तत्। उप्तं वटधानाया स्थूलमप्यवनीगतम् ॥
प्ररोहयेन्नैव वटशाखाश्चाप्यतिपल्लवाम्। तथाऽपि राज्ञः सेना सा त्वसङ्ख्या काम एकलः ॥
विपरीतमिवाऽऽभाति तस्माद्देवगणैर्वृतः। कामपृष्ठं समाश्रित्य कामं लक्ष्मीञ्च तोषय ॥
अन्यथा सा जगन्माता तुभ्यं क्रुध्यत्यवज्ञया। इति नारदसद्वाक्यमाकर्ण्य सुरराट् ततः ॥

शोभायुक्त और कृष्णाजिन धारण किये और भस्म शरीर पर रमाये इन्द्रने देखा; जिस प्रकार शरत्कालीन बादलों
जल रहता है वैसे ही इन्द्रने आकाशमें उस दिव्य मूर्ति को वायु के वेग के समान अच्छी जल वृष्टि करने के लिये
हुए देखा। उस समय इन्द्र काम को युद्ध में सहायता करने को गजराज ऐरावत पर आरूढ़ था। उन्हें
ही देवाधिपति इन्द्र ने हाथी (गज) से नीचे उतरकर महाभाग्य के योग से देवर्षि का दर्शन हुआ है ऐसा जान
अपने शिर को मुनि के चरणों में नवाकर प्रणाम किया। उस समय अपने सामने स्थित नारद ने देवराज इन्द्र
कहा ॥८-१२॥ "हे देवराज! क्या आप नहीं देखते कि राजा की बहुत बड़ी सेना असंख्यात रूप में समुद्र के
यहां एकत्र तैयार है? ॥१३॥ आपके लिये एकाकी कामदेव किस प्रकार अकेला इस विशाल वाहिनी से निपटेगा
यद्यपि भगवती लक्ष्मीजी के प्रतापसे इसके लिये अति दुष्कर कार्य भी साध्य ही है ॥१४॥ मूर्तिकी प्रधानतासे वीर्यका
सम्बन्ध नहीं किन्तु बीजमें गुण होनेसे उसका प्राधान्य है। वटके बीजको अग्निमें जला देनेके बाद वपनशक्ति नष्ट होने
कितनी ही मात्रा में स्थल भागमें उसे बोया जाय वह अति पल्लवयुक्त पत्तों और डालियों वाली शाखाका रूप नहीं
सकता। इतना होने परभी राजाकी सेना संख्यामें अनगिनत है और कामदेव अकेला है यह विपरीतसाही लगता है इसलिये
सब देवगणके सहित आप कामदेव का आश्रय लें और कामदेव एवं लक्ष्मीको प्रसन्न करें ॥१५-१७॥ यदि ऐसा
करेंगे तो जगन्माता लक्ष्मी अपनी अवज्ञा समझ आप पर क्रुद्ध होंगी।" तदनन्तर इस प्रकार नारदके सद्वाक्य
सुन कर देवराज इन्द्र ने "यह ठीक ही है" ऐसे मन में जचा कर जाने के लिये तैयारी की ॥ १८॥ ॥

युक्तमित्येव तज्ज्ञात्वा गन्तुमेव मनो दधे। ततो नत्वा मुनिं देवं सहितो देवसेनया ॥१९॥
आजगाम कामपार्श्वं मरुत्पितृगणैर्वृतः। प्राप्तं शक्रं देवगणैर्दृष्ट्वा कामः प्रसन्नधीः ॥२०॥
आत्मानं पूजितं मत्वा देवैः शक्रमुवाच ह। देवेश पश्य महतीं सेनामर्णवसन्निभाम् ॥२१॥
भीरुहृत्कम्पनकरीं नानाध्वजविचित्रिताम्। वायुनुन्नाऽभ्रसदृशैर्धावद्भिरभितो रथैः ॥२२॥
गजैर्नीलाद्रिसदृशैर्दानधारासु निर्झरैः। रक्तकम्बलसन्ध्याऽभ्रैः चित्रधातुविचित्रितैः ॥२३॥
अश्वैः कल्लोलसदृशैः सर्वतः परिवारिताम्। एवं शक्रः कामवचो निशम्य प्राह तत्तदा ॥२४॥
शृणु काम कथञ्चैकः सर्वतः संस्थितां चमूम्। नानाशूरसमाक्रान्तां योधयस्यतिदारुणाम् ॥२५॥
इति तद्वाक्यमाकर्ण्य कामः क्रोधाऽरुणेक्षणः। शृणु शक्र मृषा पूर्वं मया नोक्तं कदाचन ॥२६॥
इमां सेनां निमेषाऽर्द्धात् पश्यतस्तव संक्षयम्। नयामि त्वं न सन्देहं कुरु सत्यं वदामि ते ॥२७॥
यावदेव न सम्प्राप्ता मत्समक्षमियं चमूः। तावदेव विलम्बं त्वं जानीहि विबुधेश्वर ॥२८॥
एवं तद्वाक्यमाकर्ण्य देवाः सेन्द्रपुरोगमाः। अपूजयन् साधुशब्दैर्विस्मिताः सर्वतः स्थिताः ॥२९॥
एतस्मिन्नन्तरे तत्र सेना प्राप्ता समीपतः। कामस्तदा तां महतीं सेनां दृष्ट्वा स्वयं पुरः ॥३०॥

ष्टदेव और मुनि को नमस्कार कर वह देवसेना के साथ मरुत् और पितृगण के साथ काम के पास आ गया। देवगण के साथ आये इन्द्र को देखकर प्रसन्न कामदेव अपने को सम्मानित और पूजित मानकर उनके सहित देवराज से बोला, "हे देवेश! महासमुद्र के समान महती सेना को देखो जो डरपोक लोगों के हृदय को कँपा देनेवाली नानाप्रकार के ध्वजाओं से विचित्रित है वायु के द्वारा चलने वाले अभ्र (बादलों के समान) इधर उधर सब ओर दौड़ने वाले रथों, नील पर्वतके समान गण्डस्थलसे मदधारा सतत बह रही हो ऐसे हाथियों तथा रक्त कम्बलों के सदृश सन्ध्या कालीन बादलोंके प्रतिस्पर्धी चित्रविचित्र धातुओंसे सजे कल्लोल (तरङ्गों) के समान घोड़ोंके साथ सब ओर फैली हुई है" ॥ १९-२३॥ ॥ इस प्रकार कामदेव का कथन सुनकर इन्द्र ने तब कहा "हे कामदेव! सुन तू अकेला चारों ओर अनेकानेक शूरवीरों से पूर्ण अति दारुण खड़ी सेना से कैसे लड़ पायेगा?" ॥२४-२५॥ इस प्रकार उसके वाक्य को सुनकर क्रोधसे लाल आंखें कर कामदेव बोला, "हे इन्द्र! सुन मैंने पहले कभी मिथ्या बात नहीं कही ॥२६॥ इस सेनाको मैं तेरे देखते आधी निमेष में ही नष्ट करता हूँ। तू सन्देह मत कर। मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ ॥२७॥ हे देवराज! जब तक यह सेना मेरे सामने नहीं आती तभी तक ही विलम्ब जान" ॥२८॥ इस प्रकार कामदेव के कथन को सुन इन्द्र सबके आगे खड़ा रहा है ऐसे उन देवगणने चारों ओर स्थित विस्मय प्रकट कर "साधु साधु" इन शब्दोंसे कामदेवकी पूजा की ॥२९॥ इसके अनन्तर उस युद्ध भूमिमें दोनों सेनायें समीपमें आगई; तब कामदेवने उस विशाल वाहिनी को देख स्वयं आगे आगे

सञ्चार पुरतस्तस्याऽऽविस्फारितधनुष्करः । यावज्जिगमिषुः कामस्तावदिन्द्रो बुधैर्वृतः ॥३१॥
परिवार्य बभूवाऽग्रे कामं योद्धुं महाभुवि । यावत्सेनाद्वयमुखं युक्तं तावच्चमूद्वये ॥३२॥
महाशब्दः समभवत् युद्धवादित्रनिर्गतः । मृदङ्गभेरीपटहशृङ्गकाहलशङ्खजः ॥३३॥
सिंहनादनेमिघोषमिश्रः प्रतिभयङ्करः । प्रवृत्तः शस्त्रसम्पातः सघोषः सेनयोर्द्वयोः ॥३४॥
विबुधानां मानवानां परस्परमभूद्रणः । तत्र शूरा महाकाया मृगेन्द्रसमविक्रमाः ॥३५॥
नानाशस्त्राऽस्त्रकुशलाः शत्रुपक्षभयङ्कराः । समेता द्वन्द्वशस्तत्र समशस्त्रास्त्रवाहनाः ॥३६॥
रथिभिस्तत्र रथिनो गजस्थैर्गजिनस्तदा । अश्विभिश्चाऽश्विनः पादक्रमिणः पादचारिभिः॥३७॥
धानुष्कैर्धनुषा युक्ता गदाहस्तैर्गदाधराः । खड्गिनः खड्गकुशलैर्धृतभल्लैश्च भल्लिनः ॥३८॥
भुशुण्डीशक्तिपरशुपरिघप्रासशूलिनः । भुशुण्डीशक्तिपरशुपरिघप्रासशूलि भः ॥३९॥
योद्धुं समुद्यतास्तत्र क्रमेण समभावतः । एवं न्यायेन समरो दैत्यैर्देवैः समेधितः ॥४०॥
मुहूर्त्तमभवत् साम्यान्निश्चले (?) नाप्यनाकुलः । धर्मयुद्धरताः सर्वे परस्परजयैषिणः ॥४१॥

अपने हाथमें धनुषको चढ़ाये चलनेका उपक्रम किया। कामदेव जब युद्धमें जानेकी इच्छा करनेही वाला था तभी इन्द्र देवगण के सहित उसे घेर कर उस विशाल रणभूमि में सहायता के लिये आ गया ॥ ३०-३१॥ ॥ जब दोनों सेनाओं का आगेका भाग आमनेसामने मिलगया तभी दोनों ओरसे सेनामें युद्धके नाना बाजोंसे निकला खूब गम्भीर शब्द होने लगा जिसमें मृदङ्ग (ढोलक) भेरी (बड़ा नगाड़ा), पटह (ढका) सींग, ताल और शंखकी ध्वनियां होरही थी वीरोंका सिंहगर्जन रथोंकी धुरिसे निकलने वाले शब्दसे मिलकर अत्यन्त ही एक दूसरेके सैन्यदलसे अति भीषण युद्ध का आवाहन करनेवाला घोष उपस्थित करता था। उन दोनों ओर के सैनिकों के विभिन्न शस्त्र सज्जित किये जाने से उनके खनखनाहट की ध्वनि तीव्रतर होने लगी ॥३२-३४॥ देवगण तथा मनुष्यों का आपस में युद्ध हुआ। उन सेनाओं में सिंह के समान पराक्रम वाले, विशाल शरीरधारी, अनेक प्रकार के शस्त्र और अस्त्रों के चलाने में कुशल तथा शत्रुपक्ष के लिये अत्यन्त भयदायक थे; वे क्रमसे बराबर के शस्त्र और अस्त्र सम्भाले हुए वीरगण रथों पर आरूढ़ हो रथवालों से, हाथियों पर चढ़े हाथी पर सवार वीरों से और घोड़े के सवार घुडसवारों से एवं सभी पैदल योद्धागण पदातिगण से (लड़नेलगे) ॥३५-३७॥ धनुषधारी धनुष्कों से, हाथ में गदावाले गदाधारियों से, तलवार वाले तलवार लिये हुए वीरगण से, भालावाले भालाचलानेवालों से, जिनके पास प्रक्षेप्यास्त्र, शक्ति, फरसा, परिघ; प्रास और शूल थी वे अपने अपने शस्त्रधारियों के साथ लड़ने लगे। सभी योद्धागण एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा करते करते युद्धकौशल दिखाने लगे। एक मुहूर्त में दोनों ओर से निश्चलता और अनाकुलता हो गई कि सभी धर्मयुद्धमें डटे हुए, परस्पर जय की इच्छा रखने वाले, शत्रुपक्षके छिद्रोंको खोजने वाले, वीर लोग थोड़ी थोड़ी देरसे अन

छिद्रान्वेषपराः शस्त्राण्युत्सृजन्तोऽन्तरेऽन्तरे । अथ मर्त्यसुरानीकद्वयं सम्मिलितं तदा ॥४२॥
युद्धं समभवद्घोरं तुमुलं लोमहर्षणम् । आह्वयन्तो रोषवाक्यैर्भृकुटिकुटिलाऽननाः ॥४३॥
स्थिरीभव मत्समक्षं पश्य प्राणान् हरामि ते । तव त्राता न चान्योऽस्ति प्रेषयामि यमक्षयम् ॥४४॥
धिक् त्वामनार्य बहुधा मुधा कत्थस्ययं क्षणः । जीवितान्तकरस्तेऽद्य धात्रा कल्पितो न चाऽन्यथा ॥४५॥
हतः पश्य मया त्वं वै न पलाय्य गमिष्यसि । इत्यादि वाक्यं बहुधा वदन्तस्ते परस्परम् ॥ ४६ ॥
एवं युद्धे जायमाने महाघोरे भयङ्करे । क्रोधेनाऽन्धीकृताः सर्वे नाऽविदुः स्वं परं तथा ॥ ४७ ॥
बुधैर्बुधानां मर्त्यानां मर्त्यैर्युद्धं तदाऽभवत् । सेनासंक्षुब्धरजसा पटलेनाऽवृतं नभः ॥ ४८ ॥
हेतिवर्षसमाक्रान्त्या ध्वान्तीभूतश्च सर्वतः । एवं स्थितेऽतिरोषेण भूयोऽप्यन्धीकृता युधि ॥४९॥
नाऽविदन् स्वं परं वाऽपि जघ्नुः स्वीयान् स्वयं रुषा । न विदुस्तेऽतिरोषेण भुवं खं वा दिशस्तथा॥५०॥
दिनं रात्रं तथाऽऽत्मानं युद्धं शस्त्रमपीतरत् । सम्प्रहारैकसंस्कारशेषा जघ्नुः परस्परम् ॥ ५१ ॥
एतस्मिन्नन्तरे शक्रसुतो वसुगणैर्वृतः । जगामैरावतसुतस्कन्धारूढोऽत्यमर्षणः ॥ ५२ ॥

छोड़ने लगे ॥ ३८-४१॥ ॥ अनन्तर मर्त्यलोग और देवगण उभय सम्मिलित हुए उस युद्ध में लड़े जो तुमुल लोमहर्षण भयंकर युद्ध था । इसमें भौंहें चढ़ाकर क्रोधसे एक दूसरे प्रतिपक्षीको युद्ध करने को ललकार रहे थे ॥४२-४३॥ "अरे मेरे सामने आ तो सही देख मैं तेरे प्राणों को हरता हूँ ।" "तेरी कोई भी रक्षा करने वाला नहीं हैं तुझे अभी यम का अतिथि बनाता हूँ ।" "अरे नीच तुझे धिक्कार है बहुत बार चाहे सो बोलता रहा (बक झक में) अब तेरे अन्तकाल का क्षण उपस्थित है; तेरे जीवन का अन्त करनेवाला उपस्थित है, मेरे हाथोंसे आजही तेरी लीला पूरी करनी है ।" "अरे देख अपना जीवन बचाकर भाग जा नहीं तो मैं तुम्हें मार दूगाँ ।" इस प्रकार वे परस्पर एक दूसरे को ललकारते जाते थे ॥४४-४६॥ इस तरह महाघोर भयङ्कर युद्ध होने लगा क्रोध से अन्धे होकर किसी ने अपने पक्ष और शत्रुपक्षके लोगों को नहीं पहचान पाया ॥४७॥ (ऐसी विषम स्थिति में) तब देवगण देवताओं से और मर्त्यलोग मनुष्यों से ही भिड़ गये । सेनाओं के रौंदने से उठी हुई धूलि द्वारा सारा आकाशमण्डल व्याप्त हो गया ॥४८॥ प्रक्षेप्यास्त्रों के बार बार प्रयोग करते रहनेके कारण चारों ओर अन्धकार हो गया । इसपर भी अतिक्रोधसे दोनों ओर और भी अधिक भयंकर युद्धमें विवेकशून्य हो गये ॥४९॥ अपना कौन हैं और पराया कौन है इसे वे लोग जान नहीं सके, अगत्या क्रोधावेशमें अपनेही पक्ष के लोगोंको वीरगणने मार गिराया । अतिरोषसे उन सब को पृथ्वी है कि आकाश है अथवा दिशायें हैं इसका ज्ञान ही न हो ॥५०॥ दिन रात अपनेको युद्धरत रख शस्त्र अस्त्र और अन्य किसी वीरको भी उन्होंने प्रहार करते करते एक दूसरे को मार क्षतविक्षत किया ॥५१॥ इसके बाद अत्यन्त अमर्षण (अजेय) शक्रका पुत्रजयन्त वसुगणके साथ ऐरावत हाथी पर

जयन्तः सुधृतेरग्रे महत्या देवसेनया। तयोः समभवद्युद्धं मुहूर्त्तमतिदारुणम्॥
तदा सुधृतिसेनाग्रैर्निहतेन्द्रमहाचमूः। छिन्नपादशिरोहस्तपार्श्वाऽक्षिश्रोत्रनासिकाः॥
सुरसङ्घा गतप्राणाः पतिताः क्ष्मातले ततः। गतप्राणास्तत्र केचिदल्पप्राणास्तथाऽपरे॥
मूर्च्छिताश्चेतरे चान्ये भीत्या त्वत्र मृषा मृताः। निमील्य नेत्रे प्राणानां गतिं रुद्ध्वा चिरं बलात्॥
वीरे दूरस्थिते नेत्रकोणेनाऽप्यवलोकनम्। कुर्वतः श्वासमपि च रेचयन्ति शनैः शनैः॥
एवं निशाम्य कदनमन्ये भीत्याऽभिदुद्रुवुः। भग्नामेवं देवचमूं दृष्ट्वा वसुगणास्तदा॥
सावित्रप्रमुखास्तत्र सुधृतेस्तां महाचमूम्। उद्वेलसागरमिव प्रवृद्धां जघ्नुरञ्जसा॥
वसुभिर्हन्यमाना सा सुधृतेर्महती चमूः। ननाश तीव्रवातेन वर्षाभ्रततिवद्द्रुतम्॥
केचिद्द्विधा कृता मध्ये केचिच्छिन्नकराऽङ्घ्रयः। केचिदर्धाङ्गविधुराः केचिच्च तिलशः कृताः॥
एवं चमूं विलोक्याऽन्ये दुद्रुवुर्भयकातराः। अशक्नुवन्तः सरितः शोणितानां व्यतिक्रमे॥
इतस्ततश्च धावन्तो वसुभिस्ताडिता भृशम्। अप्राप्य शरणं किञ्चित्पतिता रक्तसिन्धुषु॥

चढ़कर सुधृति के सामने विशाल देवसेना सहित उपस्थित हुआ। तब उन दोनोंका एक मुहूर्त्त तक अत्यन्त दा
हुआ ॥५२-५३॥ तब सुधृतिकी सेनाके अग्रणियोंने इन्द्रकी विशाल सेनाके वीरोंपर कहीं पैर, कहीं शिर, कहीं ह
पार्श्व भागमें चोटें की; कहीं आंखें, कान, नासिका, क्षतविक्षत कर देवगण की बुरी दशा बना दी। उनमें कई
के घाट पहुंचाये गये। अन्य लोग एकदम भीरु (डरपोक) अल्प प्राण थे। दूसरे भयके मारे विचलित हो गये
कोई झूठे ही भयसे मृत्युको प्राप्त हुए ॥५४-५६॥ ॥ उनमें कई आंखोंको बन्दकर वरवश ही प्राणोंकी गतिको रोक
खड़े वीरों को नेत्रोंके कोनेसे देखकर भी धीरे धीरे श्वासको छोड़ते रहे ॥५७॥ इस प्रकार अधिकाधिक संख्यामें
को सुनकर दूसरे कातर लोग डरके मारे खिसकने को दौड़ने लगे। देवगणकी सेनाको इस प्रकार भग्न देखकर
प्रमुख व सुगणों ने तब सुधृति की विशाल सेना को जो सागर में उत्ताल तरङ्गों की भाँति बढ़ती चली आ
क्षण मात्र में नष्टकर गिरा दिया। वसुओंने उस सुधृति की विशाल सेना पर जैसे ही प्रहार किया तो वह
नष्ट हो गई जैसे तीव्र वायु के झोकों से वर्षाकाल के भारी भारी बादल शीघ्र उड़ जाते हैं ॥
कई लोगों के बीच में से काट कर दो टूक कर दिये गये, किसीके हाथ कट गये और किसी के पैर पृथक् हो
किसी का आधा अङ्ग कट गया और किसी को तिल तिल कर टुकड़ा टुकड़ा कर दिया गया ॥६१॥
दुर्दशा देखकर अन्यलोग भय के मारे भाग गये और जब वे आगे गये तो लोहित खून की नदी के
का सामना न कर सकने के कारण वापिस लौटे तो वसुगण ने फिर उन्हों पर आक्रमण किया।

अगाधरक्तसलिले निमग्नोऽस्तत्र केचन । बाहुभ्यां प्रतरन्त्यन्ये मज्जन्तश्च पदे पदे ॥ ६४ ॥
मृतान् गजान् समासाद्य तस्थुः प्राणपरीप्सवः । अन्तरीपमिवाऽऽसाद्य दूरात् प्रोह्य समागताः॥६५॥
अन्ये रथाङ्गमासाद्य तेरुर्नौकामिवाऽर्णवे । अश्वान् रथान् तथा केचित्तीर्णाः शोणितवाहिनीम्॥६६
सेनापराभवं दृष्ट्वा सुधृतेस्तनुजस्तदा । रणधीरो महाशूरः वज्रसंहननो युवा ॥ ६७ ॥
रथमारुह्य सन्नद्धो मणिहेमपरिष्कृतम् । धनुर्विस्फारयन् प्रागाद्वसूनां पुरतो रुषा ॥ ६८ ॥
प्राहोच्चैः सैनिकान् स्वीयान् पलायनपरान् तदा । निवर्त्तध्वं निवर्तध्वं नोचितं वः पलायनम् ॥६६॥
अभिद्रवन् तं धर्मश्च जहाति श्रीर्यशस्तथा । भर्त्तृपिण्डस्य निकृतिर्युद्धे देहसमर्पणम् ॥ ७० ॥
एवं वदन् वसुगणं समासाद्य वचोऽब्रवीत् । धिग्वोऽबलान् कातरांश्च यदनुद्रुत्य सर्वतः ॥ ७१ ॥
शस्त्रैः प्रहरथाऽलं तन्मां पश्यत पुरः स्थितम् । शूरैर्विगर्हितः पन्थाः भीतानां यदनुद्रवः ॥७२॥

आश्रय न पाकर रक्त के समुद्र में ही गिर कर शरण ली ॥६२-६३॥ कई लोग अगाध रक्त रूपी जल में डूब गये कई ने बाहुओं के बल से तैरने की चेष्टा की हैं और बहुत से पदपद पर डूबने लगे ॥६४॥

कई अपने प्राणोंको बचानेके लिये मरे हाथियों पर चढ़े और अपनी रक्षा कर पाये मानों दूरसे चढ़कर समुद्रके भीतर के स्थल देश (अन्तरीप) को पा गये हों ॥६५॥ कई दूसरे लोग रथ के पहियों को पाकर उनके सहारे से ऐसे तैर गये मानो समुद्र में नौका को पाकर पार हुए हों; कोई अश्वों, रथों के माध्यम से उस रक्त की नदी को तैर गये ॥६६॥ सुधृति के पुत्र ने तब अपनी सेना की हार देखकर युवक रणधीर महाशूर वज्र संहनन मणियों और सोने से सजे हुए रथ पर चढ़कर पहले से धनुष को चढ़ा कर वसुगणों के सामने आकर ऊंचे स्वर स क्रोधावेश में अपने दौड़ते हुए सैनिकों से कहा "हे वीर सैनिकों तुमलोग लौटो आओ लौट आओ, तुम्हारा भागना उचित नहीं है। युद्ध क्षेत्र से डर कर भागने वाले को धर्म, श्री और यश छोड़ देते है, युद्ध में अपना देह छोड़नेवाला व्यक्ति अपने स्वामी के शरीर से उऋण हो जाता है" ॥६७-७०॥ इसप्रकार कहते हुए वसुगणके पास जाकर वह कहने लगा, "अरे तुम सबको धिकार है जो दुर्बल एवं कायर लोगों को, जो इधर उधर भागते हों शस्त्रों से प्रहार करते हो। बस अब बहुत हो गया! देखो मैं तुम्हारे सामने आ गया हूँ ॥ ७१॥ ॥ यह तो वीरलोगों द्वारा वर्जित किया हुआ मार्ग है कि भयभीत

पश्यामि भवतां वीर्यं प्रदर्शयत मे द्रुतम् । तदन्वहं स्ववीर्येण तोषयाम्यचिरेण वः ॥
वसवस्तद्वचः श्रुत्वा रणधीरोदितं तदा । युगपत्परिवव्रुस्तं रसं मधुकरा इव ॥
तथापि रणधीरस्तु वसुमध्ये रथस्थितः । न चचाल सुवर्णाद्रिर्यथोपगिरिसंवृतः ॥
अथ तं शरवर्षेणववर्षुर्वसवोऽभितः । तथा मुसलशक्त्यृष्टिकुन्तभल्लाऽसिवृष्टिभिः ॥
वसुशस्त्राऽतिवर्षेण संप्लुतं सेनयाऽऽत्मजम् । दृष्ट्वा मृतं मेनिरे तं सैनिका दूरसंस्थिताः ॥
कलभं सर्वतः सिंहैराक्रान्तमिव कश्चन । न समर्थो मोचयितुं विषण्णवदनो भवन् ॥
अथ तां शस्त्रवृष्टिं स लघुहस्तः क्षणाऽर्द्धतः । एकैकमष्टधा छित्वा ताञ्जघान त्रिभिः शरैः ॥
प्रत्येकं निशितैस्तच्च दृष्ट्वाऽद्भुतपराक्रम् । शशंसुर्देवता मर्त्याः साधु घोषैश्च सर्वतः ॥
ततस्ते विविधैरस्त्रैर्जघ्नुर्मण्डलसंस्थिताः । सोऽपि शीघ्रं तमस्त्रौघं प्रत्यस्त्रैरहनत् क्रमात् ॥

लोगोंको प्रहार करते हो" ॥७२॥ "मैं तुम लोगों के सहज पराक्रम को देखता हूँ मुझे शीघ्र अपना पराक्रम दि इसके बाद तब मैं अपने वीर्यसे तुम लोगोंको प्रसन्न करता हूँ ।" ॥७३॥ तब रणधीर के द्वारा कहे गये वाक्यों को वसु लोग एक साथ जिस प्रकार भौंरे एक साथ रस को देख झपट पड़ते हैं वैसे उस को शस्त्रों द्वारा आवृ लगे ॥७४॥ तब भी वसुगण के बीच रथ में स्थित रह कर इस प्रकार विचलित नहीं हुआ जैसे उपगिरि से घि सुवर्ण पर्वत अचल रहता है ॥७५॥ इसके अनन्तर वसुगण ने चारों ओर से बाणों की वर्षा की और साथ ही शक्ति, दुधारी तलवार, लम्बा भाला और असि के द्वारा आक्रमण किया ॥७६॥ वसुगण ने इतनी शस्त्र वर्षा दूर स्थित सैनिकों ने राजा के आत्मज को सेना समेत मृतक समझ लिया ॥७७॥ जैसे सिंहों से घिरे हुए ह बच्चे को कोई भी छुड़ा लाने में समर्थ नहीं होता उसी प्रकार वसुगण के पञ्जे में पड़े रणधीर का कोई मोचक वाला वहाँ नहीं था ॥७८॥ अब उसने बहुत क्षतविक्षत हो शस्त्रों की उस वर्षा को आधे क्षण में एक एक के आठ तरह से छेद कर और उन पर प्रत्येक के लिये तीन तीन तीक्ष्ण बाणों से आक्रमण कर अपना अद्भु दिखाया । उस अद्भुत पराक्रम को देख कर चारों ओर से देवताओं एवं मनुष्यों ने उसे साधुवाद देते ह बधाईयां दी ॥७९-८०॥ तदनन्तर एक घेरे में स्थित उन वसुगणों ने विविध अस्त्रों से उस पर प्रहार किया भी शीघ्र ही उनके अस्त्रसमूह को अपने अस्त्रों से क्रमशः विफल कर दिया ॥८१॥ अकेला वह यन्त्र में लगे

एकोऽष्टभिर्महद्युद्धमकरोद्भ्रमिवद्भ्रमन्। एवं मुहूर्त्तमभवद्युद्धं वसुगणैस्तदा ॥८२॥
भ्रमन्नावर्त्तवद्युद्धं सर्वेषां सम्मुखेऽकरोत्। ततः प्रत्येकमुरसि विव्याध निशितैः शरैः ॥८३॥
ध्वजानेकैकशः छित्वा चतुर्भिश्चतुरो हयान्। सारथीनां शिरो भल्लैश्चकर्त्ताऽतिद्रुतं तदा ॥८४॥
निशितेन क्षुरप्रेण हृदि विव्याध तान् वसून्। हतध्वजाऽश्वयन्तारो वसवः सुदृढाऽर्दिताः ॥८५॥
मूर्च्छिताः पतिता भूमौ कृत्तमूला इव द्रुमाः। हाहाकारो महानासीद्वसून् दृष्ट्वा निपातितान्॥८६॥
देवसेनासु मर्त्येषु जयशब्दो महानभूत्। एतस्मिन्नन्तरे तत्र वसुः सावित्रसंज्ञकः ॥८७॥
मूर्च्छामुक्तोऽतिनिशितैः रणधीरं शरैस्त्रिभिः। निहत्य सिंहनादं स कृतवान् प्राह मण्डले ॥८८॥
सावित्रशरसंविद्धो रणधीरोऽतिमर्षितः। अर्द्धचन्द्रेण चिच्छेद धनुः सावित्रहस्तगम् ॥८९॥
स छिन्नधन्वा महतीं गदामादाय वेगतः। अश्वान् विसंज्ञानकरोद्बलाहकसमान् तदा ॥९०॥
रणधीरोरसि तदा प्रास्यत् सर्वायसीं गदाम्। अथाऽऽयान्तीमशनिवद्गदामतिभयङ्करीम् ॥९१॥
लघुहस्तः प्रचिच्छेद त्रिधा नभसि मध्यतः। अथाऽऽददेऽतिनिशितं खड्गं चर्म च सुन्दरम् ॥९२॥

समान चारों ओर खड़े आठों वसुगणोंसे घूम घूमकर लड़ने लगा। इस प्रकार एक मुहूर्त्त तक उसका वसुगणसे युद्ध हुआ ॥८२॥ तब घूम घूम कर चक्राकार रूप में सभी के सम्मुख उसने युद्ध किया। और अन्ततः सब की छाती पर तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया ॥८३॥ एक एक करके उनकी ध्वजा काट डाली, चार बाणों से चारों घोड़ों और सारथियों के शिरोंको अत्यन्त शीघ्रतासे तीक्ष्ण भालेसे काट गिराया। तब अश्वके खुरकी आकृतिवाले तीक्ष्ण धार वाले बाण से उन वसुओं के हृदय बेंध दिये गये। ध्वजा, अश्व और सारथियों के साफ हो जाने के बाद वसु लोग बहुत अधिक त्रस्त किये गये ॥८४-८५॥ वे इस प्रकार मूर्च्छितहो भूमि पर लोटपोट हो गये मानो जड़ काटे हुए वृक्ष गिरते हों। वसुओंको पराजित देख देवगणमें घोर हाहाकार और मर्त्य लोगोंमें बहुत भारी जयकार होने लगा। इसके बीचमें वहां सावित्र नामक वसु ने मूर्च्छा से छूट कर रणधीर पर अत्यन्त तीक्ष्ण तीन बाण चलाये और सिंहनाद करके मण्डल में से छोड़े सावित्र के बाण से आहत हो रणधीर अत्यधिक क्रुद्ध हुआ। उसने अर्द्धचन्द्रसे सावित्रके हाथमें लिये धनुष के टुकड़े २ कर दिये। ॥८६-८९॥ जब उसका धनुष टूट गया तो उस सावित्रने बड़े वेगसे गदा लेकर मेघके समान रणधीरके घोड़ों पर आघात कर उन्हें अचेत बना दिया और तब रणधीर के उरोभाग (छाती) में सब ओर से लौह की बनी गदा से आक्रमण किया। अब अपने ऊपर अति भयङ्कर वज्र के समान आती हुई गदा को देख लघुहस्तने तीन स्थान पर ऊपरसे ही बीच में

सावित्रो रणधारस्य रथेऽवप्लुत्य तद्धनुः । चिच्छेद यन्ता भल्लेन हतः क्रोडेऽतिवेगितः ॥९३
शिरो जहार खड्गेन यन्तुः समुकुटं रुषा । रणधीरः छिन्नधनुर्हतसारथिरुच्चकैः ॥९४
क्रुद्धः खेटकनिस्त्रिंशौ जग्राहे शत्रुतापनः । गृहीतमात्रं तरसा तौ चिच्छेद महाजवी ॥९५
गदां शक्तिञ्च शूलञ्च गृहीतं सोऽच्छिनद्द्रुतम् । एवं सावित्रखड्गस्य लाघवं वीक्ष्य देवराट् ॥९६
अपूजयत् साधुवादै रणधीरश्चुकोप ह । विवृत्य मुष्टिं सुदृढां वज्रनिष्पेषनिष्ठुराम् ॥९७
जघान वक्षसि वसुं जगर्ज च महामृधे । अपाऽक्रामत् पञ्चहस्तं संज्ञामीषज्जहौ ततः ॥९८
प्राहरत् पुनरेवाऽऽजौ रणधीरं महाबली । अवप्लुत्याऽन्तरे हस्ताद्वसोराक्षिप्य खड्गकम् ॥९९
बभञ्ज जानुना मध्ये तदद्भुतमिवाऽभवत् । अथ तौ मुष्टिभिर्घ्नन्तौ विशस्त्रौ च परस्परम् ॥१००
मुहूर्त्तं तत आप्लुत्य सावित्रं भुव्यपोथयत् । तस्य वक्षसि संरुह्य मुष्टिना मूर्ध्न्यताडयत् ॥१०१
मुष्टिनाऽभिहतो रक्तं सावित्रः पतितो वमन् । ज्ञात्वा मुमूर्षुं सावित्रं सिंहाऽऽक्रान्तगजं यथा॥१०२

टुकड़े २ कर दिये। तब उस (सावित्र) ने अत्यन्त तीक्ष्ण खड्ग और सुन्दर चर्म लेकर रणधीर के रथ पर उछ
कर उसके धनुष को नष्ट कर दिया और सारथि के उपर भाले से अत्यन्त वेग से गोद में आक्रमण किया ॥९३॥ उ
खड्ग से सारथि का मुकुट सहित शिर विलग कर दिया। अपने धनुष को छिन्न किया जाने और सारथि के मा
से क्रुद्धहो शत्रुतापनने खेटक गदा और निस्त्रिंश नामक अस्त्र सम्हाले ॥९४॥ हाथमें लेतेही महावेग सम्पन्न उसने गद
शक्ति और शूल को शीघ्र ही छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार देवराज ने सावित्र के खड्ग का लाघव (कौशल) दे
उसे बहुत साधुवाद दिया। (इस पर) रणधीर क्रुद्ध हुआ। वज्र के प्रभाव से कहीं अधिक अपनी मु
मुट्ठी बांधी और वसु की छाती पर प्रहार किया और युद्ध में गर्जना की उसे पांच हाथ ऊंचा उछाला ॥९५-९८॥ उ
महाबली ने रणधीर से युद्ध कर फिर आक्रमण किया। थोड़ी देर में रणधीर ने वसु के हाथ से खड्ग छीनकर अ
घुटने से बीच में उसे तोड़ डाला, जो अत्यन्त विस्मयजनक हुआ। अब वे दोनों विना अस्त्र के होकर आपस में
मुट्ठियोंसे परस्पर मारने लगे ॥९९-१००॥ एक मुहूर्त्त तक इस प्रकार लड़नेके बाद सावित्रको पृथ्वी पर लुढ़का दिया और
उसकी छाती पर चढ़कर मुट्ठी से सिर में प्रहार किया ॥१०१॥ मुष्टि से चोट खाकर सावित्र ने खून की उल्टि
की। उसे जैसे सिंह की ताड़नासे हाथी विकल होता है वैसे मरा हुआ समझ देवराजने अपने पुत्र जयन्तको सावित्र

प्रेषयामास देवेशो जयन्तं तद्विमोक्षणे । ततो जयन्तो महतीं शक्तिमादाय वेगतः ॥१०३॥
जघान पृष्ठतस्तस्य धर्माऽपेतेन वर्त्मना । रणधीरो हतः शक्त्या न्यपतन्मूर्च्छितो भुवि ॥१०४॥
तदन्तरे तु सावित्रमपोवाहेन्द्रनन्दनः । कथञ्चित्प्राणसंशेषमिन्द्रपार्श्वं समानयत् ॥१०५॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तरामसम्वादे कामाख्याने
जयन्तरणधीरयुद्धं विक्रमो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१३२७॥

छुड़ाने के लिये भेजा । तब जयन्तने बहुत बड़ी शक्ति लेकर पूरे वेग से धर्मविमुख मार्ग से रणधीर के पीठ पीछे से आक्रमण किया । शक्ति से प्रताड़ित रणधीर पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर गया ॥१०२-१०४॥

उसके बाद इन्द्र के पुत्र ने प्राण बचे सावित्र को उठाकर किसी प्रकार इन्द्र के पास पहुंचा दिया ॥१०५॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में दत्तराम-सम्वादके
प्रकरणमें कामाख्यानस्थ रणधीर का पराक्रम नामक पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ॥

षोडशोऽध्यायः

जयन्तरणधीरयुद्धवर्णनम्

जयन्तशक्तिसंविद्धो गाढमूर्च्छामुपेत्य तु । रणधीरोऽकिञ्चनज्ञो मुहूर्त्तात्प्रत्युपस्थि
तदन्तरे जयन्तोऽपि रथाऽऽरुढाऽऽत्तकार्मुकः । रणधीराऽग्रतः प्रागात्तिष्ठ तिष्ठेति वै क्रु
तं दृष्ट्वा रणधीरोऽपि निर्भर्त्सयत वै रुषा । शचीसुतं त्वां जानामि न च त्वं शक्रनन्द
स्त्रीस्वभावं समासाद्य पृष्ठतो मां यतोऽवधीः । कृत्वैवं कर्म यल्लोके कृतं कापुरुषैः प
पुरुषम्मन्य एव त्वं वीरगोष्ठीवहिष्कृतः । व्रजाऽत्र वीरभूमौ ते न कार्यमवशिष्यतु
न शोचय शचीं व्यर्थं धिगनार्याऽसतीसुत । अथवा ते भवच्छ्रद्धा युद्धे तर्हि स्थिरो भा
मदग्रे निमिषाऽर्धेन नयाम्यन्तकसन्निधिम् । इत्युक्त्वा निशितैर्भल्लैश्चिच्छेद तिलशो मु
तदन्तरे जयन्तोऽपि गदां चिक्षेप रोषतः । हतोऽसि रणधीरेति तदवप्लुत्य सोऽग्रे गदा

सोलहवां अध्याय

जयन्त की शक्ति के आघात से रणधीर को अत्यधिक गाढ़ी मूर्च्छा आई और वह एक मुहूर्त तक [illegible] को न जानने की स्थितिमें रहा फिर चेतना आनेसे युद्धके लिये उपस्थितहो गया ॥१॥ उसके बाद रथपर चढ़ाये जयन्त भी रणधीर के सामने "ठहर जा" "ठहर जा" ऐसे बोलता हुआ आया ॥२॥ उसे देख कर क्रोध से उसे भर्त्सना देने लगा, "अरे तू शची पुत्र है; मैं तुझे देवराज का पुत्र नहीं मानता क्योंकि तू भीरु प्रकृति के बनकर तुमने पीठ पीछे से मुझे चोट दी । इस प्रकार नीच कर्म कर तुमने कायर पुरुषों के [illegible] किया ॥३-४॥ तू अपनेको पुरुष मानता है वीरोंकी गोष्ठीसे तू बहिष्कृत किया (निकाला हुआ) है, इस स्थानों यहां वीरभूमिमें तेरे लिये कोई भी करने योग्य काम बाकी नहीं रहा । हे अनार्य एवं असतीके पुत्र ! व्यर्थही [illegible] शोक करा । अथवा तू लड़ने को इच्छुक है तो आ युद्ध में स्थिर हो ॥५-६॥ आ लड़, मेरे सामने आते ही निमिषमें यमके निकट पहुँचाता हूँ ।" यह कहकर तेज भालोंसे तिल तिलसे उसका रथ चूर चूर कर दिया ॥[illegible] जयन्तने रोषसे गदा फेंकी 'हे रणधीर ! ले तू मारा गया' यह कहने पर उछल बीचमें ही रणधीरने पकड़ लिया

गृहीत्वा तां गदां प्राह साधु शूरोऽसि शक्रज!। हतोऽस्मि नात्र सन्देहो हतस्त्वां निहनिष्यति ॥९॥
इति ब्रुवति रोषेण कषायीकृतलोचनः। चिच्छेद खड्गपातेन धनुस्तदपि शक्रभूः ॥१०॥
छिन्ने द्वितीये चापेऽपि रुषा खड्गं परामृशत्। वेगादाप्लुत्य सव्येन करेण निमिषाऽर्द्धतः ॥११॥
निपात्य शक्रतनयकिरीटं जग्रहे शिखाम्। विचकर्ष शिखां धृत्वा तार्क्ष्यः सर्पपतिं यथा ॥१२॥
छेत्तुं गले यावदयं करवालं समुन्नयत्। तावदग्निः शतमखसुतं मत्वा हतं जवात् ॥१३॥
आक्रोशत्स्वमृतान्धःसु हा हेति परिघेण तम्। जघान दक्षिणकरे सर्वप्राणेन पावकः ॥१४॥
परिघाऽऽहतहस्तात्तु करवालोऽपतद्भुवि। व्यर्थीकृतन्तु तत्कर्म दृष्ट्वा स्वात्मपराभवम् ॥१५॥
चुक्रोध रणधीरोऽथ जयन्तश्च पदाऽऽहनत्। संहतः पादघातेन पपात भुवि मूर्च्छितः ॥१६॥
पावकं वामहस्तेन गले जग्राह सत्वरः। दक्षमुष्टिं वज्रकल्पां पातयामास मूर्धनि ॥१७॥
मुष्टिनाऽभ्याहतो वन्हिर्घूर्णमानो भुवं ययौ। तदन्तरे शतमखः प्राप्तः पुत्रपरीप्सया ॥१८॥

गदा को लेकर रणधीर बोला, "अच्छा, हे शक्र के पुत्र ! तू शूरवीर है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं तो आघात से मारा गया फिर भी हत हुआ ही मैं तुझे मारूंगा" ॥९॥ इस प्रकार रोष से लाल आंखें कर इन्द्रके पुत्र जयन्त ने तलवार का आघात कर उसके धनुषको काट दिया ॥१०॥ दूसरे धनुषके छिन्नभिन्न (टूटने) होने पर रोषसे खड्ग को सम्हाल लिया बड़े वेग से उछल कर सव्य (दक्षिण) हाथ से आधे निमिष में ही शक्र के पुत्र जयन्त का किरीट गिरा कर उसकी शिखा (चोटी) पकड़ ली। उसकी शिखा को रणधीर ने पकड़ कर इस प्रकार खींचा जैसे गरुड़ सर्पपति को खींचता है ॥११-१२॥ जब तक उसने गले में आघात करने को तलवार सम्भाली ही थी कि तब तक अग्नि ने जयन्त को बहुत अधिक घायल समझ वेग से हा हा अनर्थ हो गया "यह एक परिघ (लोहे के डण्डे) से उसके दक्षिण हाथ पर सारा बल लगा कर आक्रमण किया ॥१३-१४॥ जब परिघकी चोट हाथ पर पडी तो उससे छूट कर तलवार भूमि पर गिरी। अपने कर्मको इस प्रकार व्यर्थ किया गया जान तथा अपनी पराजय देखकर रणधीर अत्यन्त कुपित हुआ और उसके पैरके आघात से घायल हो वह भूमि पर मूर्छित हो गिर पड़ा ॥१५-१६॥ (फिर) अग्नि को बांयें हाथ से अति शीघ्र गले से पकड़ दाहिने हाथ की मुष्टिका (मुट्ठी) वज्र के समान बांध उसके शिर पर चोट दे मारी ॥१७॥ मुष्टिका के लगते ही अग्नि चारों ओर घूम कर भूमि पर पड़ गया। इसके बाद अपने पुत्र को पाने की इच्छा से इन्द्र युद्ध भूमि में आ गया ॥१८॥ ऐरावत पर आरूढ़ इन्द्रको देख रणधीर कूद पड़ा। देवेन्द्रको उसने नीचे (तल) से आघातकर उसके किरीट

ऐरावतस्थस्तं दृष्ट्वा रणधीरो ह्यवप्लुतः । तलेनाऽऽहत्य देवेन्द्रं किरीटं पातयद्भुवि ॥
किरीटभङ्गाऽवमतोऽतोदयत् कुलिशेन तम् । वज्राऽऽहतोऽथ जघने निपपात महीतले ॥
क्विसञ्ज्ञो मूर्च्छितो गाढं रणधीरोऽभवत्तदा । सेनापतिसुतं तादृग्विधं भीमो निशाम्य तु ॥
सारथिञ्चोदयामास रणधीराऽन्तिकं नय । इत्याज्ञप्तो निमेषेण रथं सारथिरानयत् ॥
अवतीर्य रथाद्भीमो रथोपरि निधाय तम् । अपवाह्य स्वयं भीमो गदामादाय सुप्रभाम् ॥
सर्वायसीं महारत्नप्रत्युप्तां शत्रुतापनीम् । उड्डीय शक्रशिरसि पातयामास वेगतः ॥
गदयाऽभिहतः शक्रो भग्नमूर्धा पपात ह । मूर्च्छितः करिराजस्य पृष्ठे कृत्तद्रुमो यथा ॥
तथाविधं देवपतिं ज्ञात्वैरावतसत्तमः । प्राद्रवद्वेगतो युद्धाच्छक्रप्राणरिरक्षया ॥
दृष्ट्वा पराङ्मुखं भीमो देवेभं जगृहे जवात् । लाङ्गूले विचकर्षाऽथ धनुःशतमितं बली ॥
आत्मानं नो मोचयितुं समर्थः करिराट् तदा । करेण तं समादातुं प्रचक्राम पुनः पुनः ॥
सव्याऽपसव्यमार्गेण भ्रामयित्वा मुहुर्मुहुः । गदया कटिदेशे तं जघान बलवद्भुवा ॥

को क्रोध से गिरा दिया ॥१६॥ किरीट (मुकुट) के गिरने से अपना अपमान मानकर वज्रसे इन्द्र ने रणधीर पर किया । वज्रसे जघन (कुल्हे) आहत हुआ वह केवल गिरा ॥२०॥ उस समय रणधीर गाढ़े रूपमें मूर्च्छित होकर बन गया । रणधीर जो सेनापति का पुत्र था उसकी ऐसी परिस्थिति देखकर भीम ने सारथि को कि "मुझे रणधीर के समीप ले चल ।" इस प्रकार आज्ञा पाकर सारथि एक निमेष (एक पलक ही रथ को ले आया ॥२१-२२॥ रथ से उतर कर भीम ने उसे रथ पर रक्खा और स्वयं भीम सम्पूर्ण लोहेका सुन्दर शोभा युक्त गदा को लेकर युद्ध करने लगा । उसने महारत्नों से भरी शत्रुकों कष्ट देनेवाली गदा को इन्द्र के शिर पर बड़े वेग से चोट की ॥२३-२४॥ मूर्च्छित हो करिराज की पीठ पर इस प्रकार गिरा जैसे और पेड़ गिरता हो ॥२५॥ देवपति इन्द्र की इस प्रकार मूर्च्छित अवस्था जानकर श्रेष्ठ ऐरावत अपने स्वामी की आयु की इच्छा से युद्ध से बड़े वेग से भागा ॥२५-२६॥ भीम ने देवराज के गज को विपरीत दिशा में भागते हुए पकड़ लिया और लाङ्गूल को उस बली ने सौ धनुष के बल के समान मरोड़ा ॥२६-२७॥ उस समय अपने आपको छुड़ानेमें असमर्थ होकर सूंड़ से उसे पकड़ने को वार वार मुड़नेकी चेष्टाकी ॥२८॥ वार वार बांये पार्श्व से गदा को घुमा कर कटि प्रदेश पर खूब जोर लगा कर चोट मारी ॥२९॥ उस गदा के घात से

ताडितस्तेन गदया चीत्कुर्वन् त्रिःपरिक्रमन्। जगाम धरणीमग्रजानुभ्यां रुधिरं वमन् ॥३०॥
ततो भीमः खमाप्लुत्य पतितं शक्रंपार्श्वतः। वज्रं समाददे तस्य पृष्ठतस्तदनन्तरम् ॥३१॥
शक्रं निहन्मि तस्यैव शस्त्रेणेति व्यचिन्तयत्। तदन्तरे शक्रहेतिरन्तर्धानं गता द्रुतम् ॥३२॥
एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मरुद्गणसमावृतः। भीमेन युद्धमकरोन्मृत्योस्त्रातुं शचीपतिम् ॥३३॥
गदामादाय भीमोऽपि बहुभिः परिवारितः। गदया ताडयामास मरुतस्तान् समन्ततः ॥३४॥
तदन्तरे सारथिस्तु रणधीरं सुमूर्च्छितम्। सुधृतेः सन्निधिं नीत्वा पुनः प्रत्याऽऽगतस्त्वरा ॥३५॥
बहुशो देवतावृन्दैर्निरुद्धोऽपि सुवेगतः। वञ्चयित्वा भर्तृशयं रथमानयदक्षतम् ॥३६॥
दृष्ट्वा रथं सर्वशस्त्रसम्भृतं प्राऽरुहत्तदा। सारथिं पूजयामास वाक्यैर्मधुरपेशलैः ॥३७॥
उद्यम्य चापमस्त्रौघैर्वायुना समयुध्यत। कुरङ्गवाहनरथे शस्त्रास्त्रसुपरिष्कृते ॥३८॥
समासीनो धूम्रवर्णः पाशाङ्कुशमुखाऽऽयुधः। भीमं निशितबाणौघैर्ववर्षाऽतिबलो रुषा ॥३९॥
बाणौघेन समाच्छन्नो विवस्वान् तुहिनैरिव। प्रतिसायकवृष्ट्या तं नाशयामास वेगतः ॥४०॥

हो जोर से चीत्कार कर तीन बार परिक्रमणकर से घूमकर रुधिर की वमी करता हुआ आगे के घुटनों के बल भूमि पर गिर पड़ा ॥३०॥ तब भीम ऊपर की ओर उछल कर देवराज के पास गया और उसके पास से वज्र को ले लिया। तदनन्तर उसके पीठ पीछे से इन्द्र को उसी के अस्त्र से मारूँ (कि नहीं) इस प्रकार सोचने लगा। उसी समय इन्द्रका आयुध अकस्मात् अन्तर्हित हो गया ॥३१-३२॥ इसके अनन्तर मरुद्गणों सहित वायुने देवराजको मृत्यु से रक्षा करने के लिये भीमसे युद्ध किया। गदा लेकर बहुत वीरोंसे घिरा भीम भी चारों ओरसे उन मरुद्गणों पर गदासे घात करने लगा ॥३३॥ इसी बीच सारथि भी गम्भीर मूर्च्छाकी स्थितिमें रणधीरको सुधृतिके पास ले जाकर जल्दी ही फिर लौट आया ॥३४॥ बहुत बार देवगणने उसको मार्गमें रोका तो भी उन्हें छल-बलसे ठग कर अपने स्वामीके बैठनेयोग्य रथ को सुरक्षित रूप से ले आया ॥३५-३६॥ सब प्रकार के शस्त्रों और अस्त्रोंसे सजे रथ को देख भीम उस पर चढ़ा और मीठे कोमल प्रशंसा भरे वाक्यों से सारथि की बड़ाई करने लगा ॥३७॥ धनुष पर नाना बाणों को चढ़ा कर वह वायु के साथ लड़ने लगा। मृग के वाहन वाले रथ में भली प्रकार शस्त्र-अस्त्र सुरक्षित थे; उस पर अति पराक्रमी धूम्रवर्णने पाश एवं अङ्कुश के मुखवाले आयुधको लेकर बहुत क्रोधसे भीम पर तीखे बाणों से वर्षा की ॥३८-३९॥ बाणों के समूह से भीम इस प्रकार छाया गया जैसे ओस कण से (कोहरे से) सूर्य छा जाता हो परन्तु अपनी ओर से प्रतिरोधी बाणों की वर्षा से बहुत वेग से (तीव्रगति से) उनका नाश कर दिया ॥४०॥

अथ तीक्ष्णेन भल्लेनाऽहनद्वायुं स्तनाऽन्तरे । गाढविद्धो वायुरपि क्षणमासीज्जडीकृ
तदन्तरे तु मरुतो युगपत् समयोधयन् । अङ्कुशान् चिक्षिपुर्भीमं निहन्तुमतिवेगि
तावद्भिरर्धचन्द्रैस्तान् भीमश्छित्त्वाऽतिवेगतः । एकैकं हृदि विव्याधाऽऽकर्णाऽऽकृष्टैः शरैरि
मरुतस्तैर्हताः सर्वे पेतुरूर्व्यां सुमूर्च्छिताः । बुद्धस्तदन्तरे वायुर्भीमे प्रास्यदथाऽङ्कुशा
तेनाऽतिविद्धो हृदये कश्मलं क्षणमाविशत् । पुनः संज्ञामवाप्याऽथ गदामादाय वेगत
स्वस्माद्रथादवप्लुत्य वायोः स्यन्दनमारुहत् । भ्रामयित्वा गदां मूर्ध्नि मारुतस्य जघान
पतितस्तु गदाऽऽविद्धो भग्नमूर्धा समीरणः । मूर्च्छितो विगतप्रज्ञः सारथिस्तमपावहत्
पराभवं मारुतस्य दृष्ट्वा यक्षपतिस्तदा । वरुणः पितृराडिन्द्रो गन्धर्वपतिरेव च
विमृश्य दुर्जयं भीमं समीयुर्युगपन्मृधे । ऐरावतस्थो देवेन्द्रः पितृराण्महिषस्थितः
ऋषस्थो वरुणो मर्त्यवाहनो धननायकः । गन्धर्वपतिरश्वस्थो विविधैर्हेतिभिर्वृताः
आजग्मुर्भीममायोद्धुं समेताः कृतसंविदः । तद्दृष्ट्वा सुधृतिः प्राह गत्वा शत्रुञ्जयान्तिके

इसके अनन्तर उस भीम ने तीक्ष्ण भाले से वायु के स्तनप्रदेश पर आक्रमण किया। वायु भी इस आघात से व्याकुल हो क्षणभर के लिए एक साथ स्तब्ध रह गया ।।४१।। इसके बाद मरुद्गण एक साथ ह लगे। वे भीम को मारने के लिये अति वेग वाले अङ्कुशों की मार मारने लगे ।।४२।। उतनी ही अर्धचन्द्राकार के अस्त्रों से भीम ने उन्हें बड़े वेग से काटा और एक एक को कर्णप्रदेश तक धनुष को तीन तीन तीक्ष्ण बाणों से बेंध दिया ।।४३।। उन बाणों के आघात से मरुद्गण मूर्च्छित हो भूमि पर लुढ़क इसके बाद वायु को चेतना हुई तो उसने भीम पर अङ्कुशास्त्र चलाया ।।४४।। उससे बेंधा हुआ वह एक क्षण तक हो गया फिर होश आने पर अपनी गदा को लेकर भीम बड़े वेग से अपने रथ से उतर कर वायु के रथ पर गया और उसने गदा को घुमा कर वायु के सिर पर मारा ।।४५-४६।। गदा की मार से वायु का सिर फ वह मूर्च्छित हो संज्ञाहीन हो भूमि पर गिरा; उसे सारथि उठा ले आया ।।४७।। तब यक्षों के अधि मारुत की पराजय देखकर सभी वरुण, पितृराट्, इन्द्र और गन्धर्वपति इन सबने मन्त्रणा करके दुर्जय भीम युद्ध में एक साथ पहुंचने की चेष्टा की। इन्द्र ऐरावत पर सवार था, पितृराट् यम भैंसे पर आरूढ की सवारी वरुण की रही, धन का अधिपति कुबेर मनुष्यवाहन पर आरुढ था, गन्धर्वपति घोड़े पर चढ़ा नाना प्रकार के क्षेप्यास्त्रों से सजे हुए थे ।।४८-५०।। युद्ध के प्रहार को लेकर सभी तरह की मन्त्रणा कर के युद्ध करने को एक साथ ही मिलकर आ धमके। उसे देख सुधृति शत्रुञ्जय के पास गया ।।५१।।

राजपुत्रा महेन्द्राद्या गच्छन्ति कृतसंविदः। हन्तुं भीमं महाबाहुं तद्यामस्तत्र वै वयम् ॥५२॥
एकस्य बहुभिर्युद्धं विषमं प्रतिभाति मे । इति तद्वाक्यमाकर्ण्य युक्तमित्यभिमन्यत ॥५३॥
ततः शत्रुञ्जयमुखानरुन्धन् देवतागणान्। समाशश्वास सुधृतिर्देवेशं गजसंस्थितः ॥५४॥
शत्रुञ्जयो धनपतिं वरुणं शत्रुहा तथा। गन्धर्वराजं भीमोऽपि यमं समरतापनः ॥५५॥
शत्रुञ्जयसुतो वीरविक्रमश्च प्रभञ्जनम्। शत्रुघ्नतनयो वह्निं वीरसेन इतीरितः ॥५६॥
इन्द्राऽऽत्मजं भीमपुत्रो वीरभानुसमाह्वयः। वीराग्रगः समरतापनपुत्रो वसुं तथा ॥५७॥
एवं समासाद्य तदा युद्धं चक्रुर्महाऽद्भुतम्। भीरुहृत्कम्पजननं परस्परजयैषिणः ॥५८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामाऽऽख्याने
देवगणराजपुत्राणां युद्ध वर्णनांनाम षोडशोऽध्यायः ॥१३८५॥

"हे राजपुत्रो ! महेन्द्र आदि देवगण एक साथ मन्त्रणा कर महावीर भीमको मारनेके लिये जाते हैं इसलिये हम वहों ही चले ॥५२॥ अकेला व्यक्ति बहुत वीरों से लड़े यह तो हमें विषम (सम्भव न होनेवाला) कष्टकर लगता है । इस प्रकार उसके वाक्य को सुनकर उसे ठीक ही सबने मान लिया ॥५३॥ तब देवगण को शत्रुञ्जय की प्रमुखता में उन मनुष्यों ने रोक लिया । हाथी पर चढ़े सुधृति ने देवराज इन्द्र से सामना किया । कुबेर के साथ शत्रुञ्जय तथा वरुण के सामने शत्रुहा, गन्धर्वराज को भीम ने, यम को समरतापन ने, शत्रुञ्जय के पुत्र विक्रमने वायु को तथा शत्रुघ्न के पुत्र वीरसेन ने अग्नि के साथ भिड़ने का (उपक्रम किया) ॥५४-५६॥ इन्द्रपुत्र जयन्त का वीरभानु नामक भीम के पुत्र ने तथा समरतापन के पुत्र वीराग्रग ने वसु के साथ युद्ध में सामना किया ॥५७॥ इस प्रकार स्थिति बना कर सबने भीरुलोगों के हृदय को कंपा देने वाला महाअद्भुत युद्ध किया जिसमें दोनों ओर के वीर परस्पर जीतने की अभिलाषा रखते थे ॥५८॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड का कामाख्यान में देवगण के प्रमुख व्यक्तियों तथा राजपुत्रों के बीच युद्ध प्रकरण नामक सोलहवां अध्याय समाप्त ॥ 20-35/0

सप्तदशोऽध्यायः

भीमादीनां युद्धकौशलवर्णनम्

मुहूर्त्तमात्रमभवत् सुयुद्धं रोमहर्षणम्। भीममश्वसमारूढश्चित्रसेनः शरैस्त्रिभि:
विव्याध तद्धनुर्मध्ये चिच्छेद च महेषुणा। स छिन्नधन्वा परिघं गन्धर्वेशे समुत्सृज
आयान्तं परिघं मध्ये चिच्छेद निशितेषुणा। सार्धपत्रैश्चतुःसंख्यैश्चतुरो भीमवाजि
कृष्वा गताऽसून् समरे सारथिश्चैकपत्रिणा। छित्त्वा किरीटमेकेन सिंहनादमथाऽकरो
हताश्वसारथिर्भीमः प्रजज्वाल सुमन्युना। गदयाऽताडयच्चित्रसेनाश्वमतिवेग
गदापातप्रणष्टाऽसुर्भिन्नमूर्धा वमन्नसृक्। पपात तुरगात्तस्य चित्रसेनं परामृश
ज्ञात्वा तु बलिनं चित्रसेनोऽन्तर्धानमागतः। अन्तर्हितो महामायां प्रचकार विमोहिनीं
अश्मवर्षान् शस्त्रवर्षान् सर्पान् प्रेतगणानपि। प्रादुश्चकार मुण्डौघानसृगङ्गारमारुतान्
यतो यतो निःसरति माया तस्य ततस्ततः। एवं भीमस्समालोक्य मायां गन्धर्वनिर्मिताम्

सत्रहवां अध्याय

एक मुहूर्त्त तक अति रोमाञ्चकारी सुन्दर युद्ध हुआ। अश्व पर चढ़े हुए चित्रसेन ने भीम पर तीन प्रहार किया; उसने उसके धनुष को बीच में ही बेंध दिया और महेषु (बड़े तीक्ष्ण बाण) से छिन्न-भिन्न धनुष टूट जाने पर उसने गन्धर्वों के पति पर परिघ से आघात किया ॥१-२॥ आते हुए परिघको बीच में ही शर से काट डाला। साथमें चार तीक्ष्ण बाणों से भीमके चारों घोड़ों और एक से सारथि को और एक से को उड़ा उसने सिंह गर्जना की ॥३-४॥ घोड़े और सारथि के मर जाने से भीम का क्रोध अधिकाधिक उसने गदा से चित्रसेन के घोड़े पर बहुत वेग से चोट की ॥५॥ गदा के लगने से उसके प्राण-पखेरू उड़ फूट गया और खूनकी उलटियां हुईं। तब घोड़ेसे गिरते उसने चित्रसेन को देखा ॥६॥ चित्रसेन भीमको अत्यन्त जान तिरोहित हो गया और छिप कर उसने विमोहन करनेवाली महामाया को फैलाया। उसने क्रमशः वर्षा, शस्त्रोंकी वर्षा, सर्पों और प्रेतगणों, मुण्डों के समूहों, लहू, अग्नि और वायु को प्रादुर्भूत किया। उसके

तदा प्रायुङ्क्त निर्माय शस्त्रं भीमो विहायसि । चित्रसेनमहामाया विनष्टाऽस्त्रेण तत्क्षणे ॥१०॥
ददर्श गन्धर्वपतिमायान्तं स्वस्य सम्मुखे । वेगात्त्रिशूलमादाय पुरारिमिव चाऽन्धकम् ॥११॥
तस्य मूर्ध्नि गदां भीमः प्राहिणोदतिवेगतः । गदयाऽभिहतो भूमौ पपात विगताऽसुवत् ॥१२॥
अथाऽवहत्तं गन्धर्वो विवक्षुः प्राणरक्षणम् । वीराऽग्रगो वसून् युद्धे शस्त्राऽस्त्रैः समवाऽकिरत् ॥१३॥
वसवः शरवर्षेण ववर्षुः समराऽङ्गणे । अपोह्य शरवर्षं तं वसूनेकैकशस्तदा ॥१४॥
त्रिभिः सुपुङ्खैर्विव्याध पादहृन्मूर्धसु क्रमात् । ते हता मन्युनाक्रान्ताः पर्याप्तं युगपद्रणे ॥१५॥
शस्त्रैरुच्चावचैर्जघ्नुः सर्वप्राणैर्बलीयसः । अथ वीराग्रगस्तीक्ष्णभल्लैर्हृदि जघान तान् ॥१६॥
कर्णान्ताऽऽकृष्टैरथ ते गाढविद्धा महेषुभिः । निपेतुर्मूर्च्छिताः सर्वे सावित्रस्तु शरैस्त्रिभिः ॥१७॥
छित्त्वा वीराऽग्रगरथं सारथिं वाजिनस्तथा । खण्डशः शरवर्षेण चकार निमिषाऽर्धतः ॥१८॥

जैसे-जैसे माया निकलती, भीम उससे किसी प्रकार (घबराया नहीं) इस प्रकार गन्धर्व की बनाई माया को देखकर भीम ने शस्त्र बना कर आकाशमें छोड़ा। चित्रसेन की महामाया क्षणमात्रमें उसके अस्त्र से विनष्ट हो गई ॥७-१०॥

अपने सामने गन्धर्वपति को आते हुए भीम ने देखा; (अपनी ओर से) उसने वेग से त्रिशूल को लेकर जैसे प्राचीन समय में भगवान् शंकर ने अन्धकासुर के ऊपर आक्रमण किया वैसे ही उसके सिर पर बड़े जोर से गदा का आघात किया। गदा की चोट से त्रस्त गन्धर्वराज मृतक के समान भूमि पर लोटपोट हो पड़ गया। अनन्तर विवक्षु गन्धर्व प्राणों की रक्षा के लिये उसे उठा कर ले गया। वीरों में अग्रणी भीम ने वसुगण पर शस्त्रों और अस्त्रों से वर्षा की ॥११-१३॥ समरभूमि में वसुओं ने बाणों की वर्षा की! अनन्तर सारे बाणों की वर्षा का निवारण कर उसने वसुओं को एक एक करके तीन तीखे बाणों से पैर, हृदय और सिर में क्रमशः आक्रमण किया। इस प्रकार एक साथ रणमें बाणोंसे बिंधकर क्रोधित हो ऊँचेकी ओर फेंके जानेवाले तथा नीचे फेंके जाने वाले अस्त्रोंसे सब शक्ति लगा कर आकमण किया। अनन्तर वीरों में श्रेष्ठ भीम ने तीक्ष्ण भालों से उन वसुओं के हृदयप्रदेश पर घात किया। बाद में कानों तक खीचे गये तीक्ष्ण बाणों को धनुष पर चढ़ा कर भीम ने भली प्रकार उन्हें भेद दिया जिससे सब मूर्च्छित होकर गिर गये। सावित्र ने तीन बाणों से वीराग्रणी के रथ, सारथि तथा घोड़ों पर आधी निमेषमें ही खूब बाण-वर्षा कर उनके खण्ड-खण्ड टुकड़े कर दिए ॥१४-१८॥ उसके बाद तलवारसे सावित्र पर पक्षी की

अथ खड्गेन सावित्रं जघानोड्डीय पक्षिवत् । तदा सावित्रमुकुटं खड्गहत्या द्विधाऽभवत्
सावित्रः शेखरभ्रंशात् सक्रोधः परिघेण तम् । प्राऽहरन्मूर्ध्नि तेनाऽसौ भिन्नमूर्धा पपात ह
मुहूर्त्तं मूर्च्छितः सोऽथ प्रोत्थाय गदयाऽहनत् । सावित्रं बलवत् सोऽथ वमन् रक्तं पपात ह
अग्निना वीरसेनोऽपि चिरं युद्ध्वा महाऽसिना । जघानाऽग्निं सुवेगेन हतस्तेन च मूर्धनि
असृग्धारासम्प्लुतां गां वह्निर्जज्वाल मन्युना । प्राहिणोन्निजशक्तिं स वीरसेनं विनाशितुम्
तां दृष्ट्वा वीरसेनोऽपि ज्वलन्तीमशनिप्रभाम् । तोयाऽस्त्रं प्राहिणोच्छीघ्रं शान्ता शक्तिस्तदस्त्रतः
अथाऽग्निः स्वां विनिहतां दृष्ट्वा शक्तिं रुषा पुनः । इषुभिर्निशितैस्ततस्य चिच्छेदाऽऽयुधसन्ततिम्
हतसर्वायुधः सोऽपि मुष्टिमुद्यम्य वेगतः । जघान मूर्ध्नि तेनाऽग्निर्निपपात महीतले
तावत्तु वीरसेनोऽपि जग्राह ज्वलनं जवात् । बाहुभ्यां वक्षसाऽऽपीड्य नगरे तं समानयत्
शीतिकामन्त्रितदृढरज्जुभिस्तमबन्धयत् । अकरोत्तुमुलं युद्धं वायुना वीरविक्रमः

तरह झपटकर आक्रमण किया । तब तलवार की चोट से सावित्रका मुकुट दो भागों में टूक-टूक हो गया । उसके टूट जाने से बहुत क्रुद्ध हो सावित्र ने परिघ लेकर सिर पर चोट की । उससे सिर फूट जाने गिर पड़ा ॥१९-२०॥

एक मुहूर्त्त तक मूर्च्छित हो वह भीम उठ कर गदा से जोर-जोर से प्रहार करने लगा जिससे सावित्र उलटी करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा ॥२१॥

वीरसेनने भी अग्निके साथ बहुत देर तक बड़ी तीक्ष्ण तलवारसे लड़कर उस पर बड़े वेगसे उसके सिर किया ।२२॥ उस समय उसके सिर से लहू की धारा निकली जिससे अग्नि क्रोध से कुपित हुआ । उसने वीरसेन विनष्ट करने के लिए अपनी शक्ति भेजी । उसे विशेष वज्र के समान जलती हुई शक्ति को देख वीरसेन जलास्त्र को छोड़ा जिससे वह शक्ति शीघ्र शान्त हो गई ॥२३-२४॥ अब अग्नि ने अपनी शक्ति को शान्त फिर क्रोध से अपने तेज बाणों से उसके अस्त्रों के समूह को काट डाला ॥२५॥ सारे अस्त्रों के नष्ट हो जाने भी वेग से मुट्ठी बांधकर अग्नि के सिर पर प्रहार किया जिससे अग्नि भूमि पर गिर पड़ा ॥२६॥ वीरसेनभी उसे शीघ्रतापूर्वक अपनी बाहोंमें छातीसे लगाकर नगरमें ले आया॥२७॥ शीतलीकरण प्रयोग द्वारा दृढ़ रस्सी से उसे बांध दिया । वीरविक्रम ने वायु के साथ तुमुल युद्ध किया ॥२८॥ उस पर बाणों की

शरवर्षैः समाच्छाद्य सिंहनादमथाऽकरोत् । शरवर्षं क्षणेनैव विधूय प्रतिवर्षनः ॥२९॥
जघानोरस्यङ्कुशेन महता वीरविक्रमम् । अङ्कुशेनाऽऽहतं वक्षः स्फुटितं रुधिरस्रवम् ॥३०॥
अङ्कुशाऽऽघातसञ्जातव्यथयाऽकम्पत क्षणम् । विघूर्णमाननयनो निष्प्रज्ञः क्षणमास्थितः ॥३१॥
अथ प्रज्ञां समासाद्य हृदि मग्नाऽऽङ्कुशं तदा । बलादुत्पाट्य वेगेन ताडयत्तेन मारुतम् ॥३२॥
निजाऽङ्कुशाऽऽहतो वायुर्भग्नमूर्धाऽपतद्भुवि । मृतवन्मूर्च्छितो वायुस्तदाऽसौ वीरविक्रमः ॥३३॥
पुनः पपात तां सोढुमशक्तो हृदयव्यथाम् । बहु सुस्राव रुधिरं हृदयादङ्कुशाऽऽहतात् ॥३४॥
वायोश्च मस्तकात्तद्वदुभावपि सुमूर्च्छितौ । शत्रुञ्जयः कुबेरेण चकार तुमुलं रणम् ॥३५॥
शत्रुञ्जयो रथाऽऽरूढः कुबेरो नरवाहनः । उभौ शस्त्राऽस्त्रकुशलौ धनुर्विद्याविचक्षणौ ॥३६॥
परस्परं दर्शयन्तौ स्वस्वशस्त्रास्त्रकौशलम् । चिरं युद्ध्वा कुबेरेण शत्रुञ्जय उवाच तम् ॥३७॥
धनेश किं विलम्बेन दर्शय स्वम्बलाऽवधिम् । नो चेदिमं शरं विद्धि तव प्राणहरं परम् ॥३८॥

जोर से सिंहनाद किया। उसके बाणों के जाल को प्रतिरोधकारी बाणवर्षण से हटा भारी अंकुशास्त्र से वीरविक्रम की छाती में प्रहार किया। उस समय अङ्कुश की चोट से वक्षःस्थल फट गया उससे खून निकला ॥२९-३०॥ अङ्कुश चोट लगने से जो व्यथा हुई उससे वह क्षणभर शमःसह कांपा और आंखे तिलमिला चेतनाहीन बन गया ॥३१॥ जब उसे कुछ चेतना हुई तो अपने की हृदय में लगे अङ्कुश को अपनी शक्ति भर निकाल खूब वेग सहित उसे ही मारुत पर दे मारा ॥३२॥

अपने अङ्कुश का आघात खाकर वायु शिर के फूटने से भूमि पर मृतक के समान मूर्च्छित होकर पड़ गया तब वह वीरविक्रम उस हृदय की वेदना को सहन न कर सका तो फिर गिर गया। अङ्कुश से चोट खाये हुए उसके हृदय से बहुत रुधिर निकला ॥३३-३४॥ उसी प्रकार वायु के मस्तक से भी खून निकलने लगा; दोनों ही गाढी मूर्च्छा में लेट गये। शत्रुञ्जय ने कुबेर के साथ भीषण युद्ध किया ॥३५॥ शत्रुञ्जय रथ में चढ़ा था; कुबेर नरयान पर आरूढ था। दोनों शस्त्रों और अस्त्रों के चलाने में कुशल और धनुर्विद्या के विशारद थे ॥३६॥ आपस में अपने अपने शस्त्रों और अस्त्रों के कौशल को दिखाते हुए बहुत दीर्घकाल तक युद्ध कर शत्रुञ्जय कुबेर से बोला ॥३७॥

"हे धनाधिप ! विलम्ब में क्या रक्खा है ? अपने बल की अवधि (सीमा) तो दिखा, नहीं तो इस बाण को तू अपना प्राण लेवा (प्राण हरण करने वाला) जान लेना" ॥३८॥

शत्रुञ्जयवचः श्रुत्वा क्षणेन निशितेषुणा। शरेणाऽऽपूरितं चापं चिच्छेदाऽद्भुतविक्रम
अथाऽश्वान् सारथिं केतुं चतुर्भिश्च त्रिभिस्त्रिभिः। छित्त्वा जगर्ज धनपो हतमातङ्गसिंहव
साधु शूर श्लाघ्यतमो विदितं मे बलं तव। इतो याहि न चेदेष क्षणः स्याज्जीविताऽन्तक
शत्रुञ्जयो धनेशोक्तं श्रुत्वाऽमर्षेण पूरितः। गदामुद्यम्य वेगेन ताडयद्वाहनं नर
गदयाऽभिहितो मर्त्यः पपात भुवि मूर्च्छितः। तदन्तरे धनेशस्य गदया मूर्ध्न्यताडयत्
वज्रनिष्ठुरया मूर्ध्नि ताडितो गदया भृशम्। क्षणमात्रं मूर्च्छितोऽसौ तदा तद्धस्तगं धनु
शत्रुञ्जयः समाक्षिप्य बभञ्जाऽतुलविक्रमः। निवृत्तमूर्च्छो धनपः दृष्ट्वा चापस्य भञ्जनम्
क्रोधसंरक्तनयनो जग्राह महतीं गदाम्। तदा शत्रुञ्जयः प्राह सखे शृणु वचो मम
पृथिव्यान्तु गदायुद्धे मत्तुल्यो नहि विद्यते। शस्त्राऽचार्यः प्राह यन्मे तद्ब्रवीमि निशामय
शिक्षितोऽतितरां तेन गदायां तदनन्तरम्। गदायुद्धेन ते तुल्यं पश्यामि भुवि कञ्चन
यदि जेताऽसि धनपं गदायां स महत्तमः। तदद्य यावन्मनसि त्वद्वदेक्षा समाहित

अद्भुत पराक्रमशाली कुबेर ने शत्रुञ्जय को वचन सुनकर क्षणमात्र में ही तीक्ष्ण बाण को अपने धनुष पर चढ़ा पर चलाया तदनन्तर अश्व, सारथि और पताका को चार बाणों तथा तीन तीन बाणों से छेद कर वह इस प्रकार जैसे हाथी को मारकर सिंह गर्जन करता है ॥३९-४०॥ "हे शूर! तुझे साधुवाद है! तू अत्यधिक प्रशंसा के मैंने तेरे बल को जान लिया इधर आ जा नहीं तो यह क्षण तेरे प्राणों का अन्त करने वाला होता है" ॥ की कही बात को सुनकर शत्रुञ्जय क्रोध से आग बबूला हो गया उसने गदा सम्हाल कर खूब कस कर नर पर प्रहार किया ॥४२॥ गदा से घायल हो मर्त्य भूमि पर मूर्च्छित हो गिर गया; बाद में धनेश के गदा से चोट की। वज्र से भी अधिक निष्ठुर गदा बहुत अधिक प्रताड़ित हो क्षणभर में वह मूर्च्छित हो पराक्रमी शत्रुञ्जय ने उसके धनुष को गदा चला कर तोड़ डाला। जब धनाधिप कुबेर मूर्च्छा से जागा अपने चाप को टूटा हुआ देखा ॥४३-४५॥

क्रोध से लाल लाल आंखें करके कुबेरने अपनी भारी गदा को उठाया तब शत्रुञ्जय बोला, "हे मित्र बात सुन ॥४६॥ पृथ्वी में गदायुद्ध में लडनेवाला मेरे समान कोई अन्य नहीं है ऐसे जो मेरे शस्त्राचार्य ने मैं बताता हूँ; देख गदा में उस आचार्य ने मुझे शिक्षा दी और कहा "गदायुद्ध में तेरी बराबरी करने वाला दृष्टि में और किसी को मैं नहीं देखता हूँ ॥४७-४८॥

यदि गदा युद्धमें धनपति कुबेरको जो तूं जीत जायगा तो अवश्य ही महत्तम माना जाएगा। इसलिए

अर्थात्त्वया सङ्गतोऽहं गदायुद्धे धनेश्वर। प्रदर्शयाऽऽत्मनो वीर्यं गदायुद्धेऽतिसम्भृतम् ॥५०॥
एवं शत्रुञ्जयवचो निशम्य धनदस्तदा। ओमित्युक्त्वा तेन सह गदायुद्धं समारभत् ॥५१॥
शत्रुञ्जयो धनेशश्च गदायुद्धविशारदौ। सुशिक्षितौ महाप्राणौ दृप्तपञ्चास्यविक्रमौ ॥५२॥
तौ चेरतुर्मण्डलानि सव्यसव्येतराणि च। विषमाणि समाऽर्धानि विषमाऽर्धसमानि च ॥५३॥
समानि समनिम्नानि समनिम्नाऽर्धकाणि च। अवप्लुतप्लुताऽर्धानि विषमप्लुतकानि च ॥५४॥
उत्प्लुतप्रोत्प्लुतव्युत्थप्लुतहंसप्लुतानि च। गदायुद्धप्रोक्तगतीः सर्वा अपि परस्परम् ॥५५॥
दर्शयन्तौ गतिज्ञौ तौ सुशिक्षौ युद्धकोविदौ। परस्परप्रहारस्य सन्धिप्रेक्षणकोविदौ ॥५६॥
उपक्रमगतिज्ञानात् संश्लाघन्तौ परस्परम्। अलक्ष्यवेगसञ्चारौ लक्षितौ कन्दुकाविव ॥५७॥
एवं तयोर्गदायुद्धं प्रेक्षन्तः सिद्धचारणाः। शशंसुर्युद्धकौशल्यमहो युद्धमितीङ्गनैः ॥५८॥

मन में तेरी गदा के बलप्रदर्शन की इच्छा लगी थी; "हे धनेश्वर ! मैं सविशेष हेतु से ही तेरे साथ गदा युद्ध करने को आया हूँ; अब गदायुद्ध में खूब अपना शौर्य दिखाओ" ॥४९-५०॥

इस प्रकार धनेद कुबेर ने शत्रुञ्जय का कथन सुन हां भर कर उसी के साथ गदा युद्ध करना आरम्भ किया ॥५१॥ शत्रुञ्जय और धनेश दोनों ही गदायुद्ध में परम प्रवीण भलीप्रकार शिक्षित अति बलवान् और गर्वीले सिंह के समान बलशाली थे ॥५२॥

उन्होंने सव्य और सव्यसे इतर मण्डल बना विषम, समार्ध और विषम, अर्धसम, सम समनिम्न, समनिम्नार्धक अवप्लुत, प्लुतार्ध, विषमप्लुत, उत्प्लुत, प्रोत्प्लुत, व्युत्थ, प्लुतंहस तथा प्लुत जो गदायुद्ध की उस शास्त्र में कही गई गतियां है उन सब को ही आपस में दिखाने लगे (कभी शत्रु के बढ़ाव को रोके रहना, कभी विपक्षी के प्रहार को विफल करने के लिये झुक कर निकल भागना, कभी उछल-कूद करना और कभी निकट आकर गदा का प्रहार करना, और कभी लौटकर पीछेकी ओर किये हुए हाथसे शत्रु पर आघात करना आदि क्रियायें गदायुद्धके कौशल हैं)॥५३-५५॥

प्रतिपक्षी के बचाव की गति को जानने वाले भली प्रकार शिक्षाप्राप्त, युद्ध में प्रवीण आपस में प्रहार की विधि के सन्धि के करने में सुदक्ष प्रहार करने और बचाव करने की गति के ज्ञान से एक दूसरे को चकित करते हुए दोनों के प्रहार करने के वेग का सञ्चार दीखने में नहीं आता था ऐसे वे गेंद के समान दीख पड़े ॥५६-५७॥ इस प्रकार उनके गदायुद्ध को देखते हुए सिद्ध और चारण-लोग इस अप्रतिम युद्ध के कौशल की बड़ाई करने लगे। 'अहो ! कितना सुन्दर युद्ध है' इस प्रकार संकेत

एवं चिरं तेन सह युद्ध्वा धनपतिस्तदा । स्वतोऽधिकं गदायुद्धे मेने शत्रुञ्जयं ततः
आप्लुत्य खे धनपतिः प्रहर्त्तुश्चोन्नयद्गदाम् । तज्ज्ञात्वावञ्चयच्छत्रुञ्जयोऽमोघमवप्लुतम्
ज्ञात्वा स्वं धनपः पृष्ठे जघानाऽधर्मतस्तदा । शत्रुञ्जयः पृष्ठदेशे ताडितो मूर्च्छितः क्षणम्
ततः प्रज्ञां समासाद्य क्रोधादरुणलोचनः । धिक्त्वामनार्यमशुभं धर्माऽपेतं धनाधिपम्
यन्मामधर्मयुद्धेन जघ्निवान् राक्षसो यथा । न त्वया गदया योद्धुमर्होऽहं धर्ममाश्रितः
युद्धेषु संश्लाघ्यतमं गदायुद्धं प्रचक्षते । बहुभिर्धर्मनियमैर्नियतं योगवर्त्मवत्
तत्त्वत्कृतस्याऽपचितिं पश्य कर्त्ताऽस्मि सम्प्रति । इत्युक्त्वा भुवि चिक्षेप गदां सर्वायसीं ततः
मुष्टिमुद्यम्य वेगेन जघान हृदि वै ततः । मुष्टिनाऽभिहतो यक्षराजः शोणितमुद्गिरन्
पपात भुवि चाऽत्यन्तं मूर्च्छितो मृतवत्तदा । पतितं तं पाशचयैर्बबन्ध निमिषाऽर्धतः
अथ मोचयितुं यक्षा राजानं कोटिकोटिशः । शस्त्रोद्यतकराः शत्रुञ्जयं हन्तुं समारभन्

करते थे ॥५८॥ इस प्रकार बहुत समय तक उसके साथ युद्ध कर कुबेरने अपने से अधिक ही गदा युद्ध में शत्रुञ्जय माना। तदनन्तर धनपति ने आकाश में उड़कर प्रहार करने के लिये गदा को सम्हाला। उसे जान कर उसके मारने को अमोघ जान कुबेर को ठग लिया। धनपति ने तब अधर्म से उसकी पीठ पर प्रहार किया। पृष्ठदेश में ताडित हो क्षण भर मूर्च्छित हो गया ॥५९-६१॥ तब चेतना लौट आने पर क्रोध से लाल-लाल कर उसने कुबेर को धिक्कारा, 'तुझ आचरण से पतित अशुभ अमंगल धर्महीन धनाधिप को धिक्कार है ॥६२॥ तू ने मेरे ऊपर अधर्म युद्ध द्वारा आघात किया जैसे राक्षस करता है। धर्म के आश्रय में रहनेवाला मैं तेरी गदा से युद्ध करने में अक्षम हूँ ॥६३॥

युद्धों में सबसे अधिक श्लाघा गदायुद्ध की लोग किया करते हैं जैसे योग का मार्ग विविध नियम और से बँधा है उसी प्रकार गदायुद्ध भी ॥६४॥ इसलिये तेरे किये खोटे कर्म का मैं अभी बदला चुकाता हूँ।" इस कर उसने भूमि में सर्वलौहमयी गदा को फेंक दिया ॥६५॥ बाद में मुट्ठी बांध कर खूब वेग से उसके पर चोट की। मुट्ठी के प्रहार से यक्षराज खून की उल्टी करता हुआ तब मृतक के समान मूर्च्छित हो गिरा; उसे गिरा देख शत्रुञ्जय ने आधे निमिष में ही उसे पाशों से बांध लिया ॥६६-६७॥ अनन्तर उस यक्ष छुड़ाने के लिये कोटि कोटि यक्ष लोगों ने हाथों में अस्त्र लिये हुए शत्रुञ्जय के ऊपर प्रहार करना आरम्भ तत्पश्चात् उन सब को वेग से प्रहार कर गदा से ही शमन कर दिया जैसे सूर्यनारायण अपनी किरणोंसे प्राणि

अथ तान् गदया सर्वान् शमयामास वेगतः । दिनेश इव भूतौघान् ततस्तं निधिपं जवात् ॥६६॥
समादाय व्रजन्तं तं पुलस्त्यः सुनिशाम्य वै । आगत्य वत्सेत्यामन्त्र्य मधुरं वाक्यमब्रवीत् ॥७०॥
शत्रुञ्जय धनेशोऽयं जितो युद्धे त्वया बलात् । देहि मह्यमिमं पौत्रं प्रेयांसं हृदयङ्गमम् ॥७१॥
वीरव्रतो याचितं न विप्रेभ्यो न प्रयच्छति । तं तत्सुतः कथं मह्यं न ददास्यभियाचितम् ॥७२॥
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य भुवि दण्डवत् । समर्प्य तस्मै धनपं संन्यवर्त्तत वेगतः ॥७३॥
एवं जयन्तेन तत्र वीरभानुरयोधयत् । तौ युद्ध्वा सुचिरं तत्र बहुशस्त्राऽस्त्रकोविदौ ॥७४॥
लोकान् विस्मापयामासतुः स्वकौशलकर्मभिः । खड्गयुद्धं समासाद्य जयन्तो वीरभानुना ॥७५॥
बलिना ताडितो मूर्ध्नि न्यपतत् स्यन्दनोपरि । सारथिः पतितं दृष्ट्वा जयन्तं तमपाऽवहत् ॥७६॥
शत्रुहा वरुणेनाऽथो युयोधाऽतिबलीयसा । शस्त्रैरस्त्रैर्बहुविधैः शंसनीयपराक्रमः ॥७७॥
वरुणो मकराऽरूढः शत्रुहा रथसंस्थितः । विचित्रं युद्धं चक्राते लोकविस्मापनं महत् ॥७८॥
शत्रुहा वरुणेनैवं सुसंयुध्याऽचिरं ततः । त्रिभिः शरैः सुनिशितैर्हृदि विव्याध तोयपम् ॥७९॥

शान्त कर देते हैं। फिर उस कुबेर को वेग से ले जाते हुए देख पुलस्त्य ने आकर शत्रुञ्जय को "हे वत्स" इस प्रकार सम्बोधन कर मधुर वाक्य कहा ॥६८-७०॥ "हे शत्रुञ्जय! यह धनेश तेरे द्वारा बल पूर्वक युद्धमें जीता गया है। तुम इस प्रेयांस (सर्वाधिक प्रिय) हृदय को सुन्दर लगने वाले मेरे पौत्र को मुझे दो। वीरव्रत मांगने वाले विप्रगण को किसी प्रकार नहीं नटता तो उसका पुत्र तू मांगने पर उसे मुझे क्यों नहीं देओगे? अवश्य ही दे दोगे" ॥७१-७२॥

मुनि के वचन सुन कर धनाधिप कुबेर को उन्हें देकर वह वेग से लौट गया ॥७३॥ इसी प्रकार जयन्त के साथ वीरभानु लड़ा। बहुविध अस्त्र-शस्त्र की कला के जानने वाले उन दोनों ने दीर्घ समय तक लड़कर अपने युद्ध कौशल के कर्मों से लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। बलि वीरभानु के साथ जयन्त खड्गयुद्ध में भिड़ कर अपने सिर में आघात पाकर रथ में गिर गया। सारथि उसे पतित देख जयन्त को रथ में उठा ले गया ॥७४-७६॥

प्रशंसनीय पराक्रम वाला शत्रुहा अत्यन्त बलवान् वरुणके साथ लड़ने लगा ॥७७॥ वरुण अपने वाहन मकर पर और शत्रुघ्न रथ पर आरूढ़ रहा। दोनोंने लोगों को विस्मयमें डालने वाला अत्यन्त विचित्र भीषण युद्ध किया ॥७८॥ इस प्रकार शत्रुहा ने वरुण के साथ युद्ध कर बाद में जल्दी ही तीन तीक्ष्ण बाणों से वरुण को हृदय पर आघात

त्रिभिः शरैर्गाढविद्धो वरुणः क्रोधमाययौ । चतुर्भिर्निशितैरस्त्रैश्चतुरस्तस्य वाजिनः ।
निहत्य ध्वजमेकेन यन्तारञ्चैकपत्रिणा । हत्वा कर्णान्तपूर्णेन हृदि विव्याध तोयपः ।
शत्रुहा हतकेत्वश्वसारथिर्गाढमन्युना । वारुणं मकरं तीक्ष्णकर्णिना मूर्ध्न्यताडयत् ।
अन्येन चापं चिच्छेद किरीटमपरेषुणा । आकर्णाऽऽकृष्टबाणेन विव्याध निटिले तदा ।
तीक्ष्णबाणविनिर्भिन्नफालदेशाज्जलेशितुः । असृग्धाराऽतिवेगेन निरगात् सोऽपि मूर्च्छितः ।
शुशुभेऽसृग्धारया स फालनिर्गतया । तदा शैलेश इव शृङ्गोद्यच्छोणतोयझराऽऽवृतः ।
अथ प्रज्ञां समासाद्य क्रोधेन वरुणो रुषा । बबन्ध निजपाशेनाऽमोघेन बलिनं बलात् ।
तदा दृष्ट्वा शत्रुहणं बद्धं समरतापनः । नीयमानं जलेशेन रुरोध पथि सायकैः ।
वरुणो बलवान् तेन युयोध सुचिरं तदा । बद्धं शत्रुहणं चापञ्च (?) गृहीत्वा शस्त्रकोविदः ।
तस्याऽपि निशितैर्बाणैः सारथिं रथवाजिनः । निहत्य छित्त्वा तच्चापं वरुणः प्रययौ जवात् ।

मारा ॥७६॥ तीन बाणों से बुरी तरह व्याकुल हुआ वरुण क्रुद्ध हुआ । चार अत्यन्त तेजधार वाले भालों शत्रुहाके चार घोड़ों को, एक से ध्वजाको और एक बाण से सारथिको मार कर तथा कानों तक जोरसे धनुष कर उसने शत्रुहा के हृदय पर बाणप्रहार किया ॥८०-८१॥ अपने ध्वजा पताका के कट जाने और सा घोड़ोंके मारे जाने से अत्यधिक क्रोध से वरुण के वाहन मकर (मगरमच्छ) को तीक्ष्णफलक के बाण से आघात मारा । दूसरे से उसका धनुष काट दिया और एक अन्य बाण से मुकुट को खण्डित किया तथा धनु तक खींच कर चढ़ा भालप्रदेश में प्रहार किया ॥८२॥

जलाधिराज वरुण के तीक्ष्ण बाण के लगने से उसके भालप्रदेश का स्फोटन हुआ जिससे बड़े वेग से धारा निकली और वह मूर्च्छित हो गया ॥८३-८४॥ भालदेश से निकली खून की धारा से तब वह सु शोभित हुआ मानों पर्वत के शिखर से निकलता हुआ लाल जल का स्रोत बह रहा हो ॥८५॥ अनन्त लौटने पर वरुण ने क्रोध-रोष से बली शत्रुहा को बांधा ॥८६॥ तब समरतापन ने शत्रुहन को बंधा द्वारा ले जाते देख बाणों से मार्ग रोका ॥८७॥ बली वरुण ने उसके साथ दीर्घ समय तक शस्त्रविशारद वरुण ने बंधे हुए शत्रुहन और धनुष को लेकर उसके भी सारथि को तथा रथ के घोड़ों को बाणोंसे मार कर उसके धनुष के टुकड़े-टुकड़ेकर वह बड़े वेग से चला गया ॥८८-८९॥ तब समरतापन ने

तदा खड्गं समादाय गत्वा समरतापनः। वरुणं निजघानाऽऽशु मूर्ध्नि तीक्ष्णाऽसिना स च ॥९०॥
तेन खड्गप्रहारेण भिन्नमूर्धा जलेश्वरः। मूर्च्छितः पतितो भूमौ कृत्तपक्षमहीध्रवत् ॥९१॥
तदन्तरे तु वरुणं बद्ध्वा समरतापनः। नेतुं समीहते यदा तदा वैवस्वतो यमः ॥९२॥
महामहिषसंरूढो योद्धुं समरतापनम्। आययौ भिन्ननीलाऽद्रिप्रतिमो मृत्युनाऽऽवृतः ॥९३॥
रोगैर्दूतैश्च सहितो विकृताऽऽस्याऽङ्घ्रिबाहुभिः। आयान्तं सम्मुखे दृष्ट्वा भीमं भीमगणैर्वृतम् ॥९४॥
यद्दर्शनेनैव जनाः संत्यजन्ति भयादसून्। तं दृष्ट्वाऽपि तदा धीरो नाऽकम्पत महीध्रवत् ॥९५॥
युयोधाऽन्यरथारूढः शस्त्राऽस्त्रैर्विविधैर्बली। युद्ध्वा चिरं यमेनैवमर्धचन्द्रेण वक्षसि ॥९६॥
आकृष्य कर्णपर्यन्तं जघान शमनस्य वै। तेनाऽऽहतो दण्डधरो वमन् रक्तं सुफेनिलम् ॥९७॥
पपात महिषाद्भूमौ दूता हा हेति चुक्रुशुः। वरुणं पुनरासाद्य गन्तुमेव मनो दधे ॥९८॥
तदद्भुतं यमपराभवं दृष्ट्वा सुरा नराः। विस्मिताः प्रशशंसुस्तं सर्वे समरतापनम् ॥९९॥
तदन्तरे यमगणा वरुणस्य गणा अपि। आगत्य रोद्धुं युगपत्प्रवृत्ताः सर्वतो दिशम् ॥१००॥

वरुण के पास जाकर शीघ्र ही तेज तलवार से उसके सिर पर प्रहार किया ॥९०॥ उस खड्ग के आघात से वरुणका सिर फट गया। वह मूर्च्छित होकर पर कटे पर्वतके समान भूमि पर पड़ गया ॥९१॥ उसके बाद जैसे ही समरतापन ने वरुण को बांधकर ले जाने का चेष्टा की उसी समय महामहिष पर चढ़ कर यमराज युद्धके लिये आ पहुंचा। वह टूटे हुए नील पर्वत की आकृति के समान मृत्यु के साथ था ॥९२-९३॥

विविध रोगों तथा विकृत मुख; अङ्ग तथा बाहुओं वाले दूतों सहित आते हुए भीम यमको अपने भयङ्कर वीरगण के साथ देख वह न तो डरा और न कम्पित हुआ, जिनके देखने मात्र से ही लोग भयसे प्राणोंको छोड़ देते हैं। जब अन्य रथ पर आरूढ़ होकर वह बली विविध अस्त्र-शस्त्रों से लड़कर दीर्घकालतक यम के द्वारा उसकी छातीमें प्रहार करने पर उसने खींच कर यम के कर्णभाग में चोट की। उससे आहत हो यम बहुत फेनयुक्त खून का वमन करते हुए भूमि पर गिर गया; (यह देख) यमदूतों ने हाहाकार मचाया। वरुण से फिर युद्ध होने पर वह भी जाने का ही मन करने लगा ॥९४-९८॥

उस अद्भुत यम के पराभव को देख कर देवगण एवं मनुष्य विस्मित हो सभी समरतापन की बड़ाई करने लगे ॥९९॥ उसके बाद यम के गण और वरुण के गण आकर चारों ओर से दिशाओं को रोकने लगे ॥१००॥ उन अगणित

तान् दृष्ट्वा परितः सर्वानसंख्यातगणान् तदा । गदामादाय महतीं सर्वानेवाऽभ्यकालयत् ॥१००
ते काल्यमाना बहुधा न न्यवर्त्तन्त वै यदा । वायव्याऽस्त्रेण वरुणगणं तूर्णमपाऽकरोत् ॥१०१
गणं याम्यमथाऽऽग्नेयाऽस्त्रेण हत्वा तदा पुनः । गन्तुं मनो दधे यावत्तावद्रोगाः सहस्रशः ॥१०२
परिवार्य विलोप्तुं तं यदा समरतापनम् । उद्ययुस्तावदेवाऽयं मत्वाऽन्याऽस्त्रैः सुनिर्गतान् ॥१०३
नाम त्रयास्त्रमासाद्य रोगान् प्रति समुत्सृजत् । तदस्त्रोत्सर्गमात्रेण क्षणादेवाऽखिलाऽऽमयाः ॥१०४
महावातेन जलदा इव निःशेषतां ययुः । तदन्तरे महाकालमहिषो यमवाहनः ॥१०५
क्रुद्धो विनिःश्वसन् हन्तुं प्रागात् समरतापनम् । खुरैर्विदारयन् पृथ्वीं शकृन्मूत्रमवाऽसृजत् ॥१०६
लाङ्गूलमुन्नयन्नर्दन्नदन् जातिरवं तदा । आयान्तं वीक्ष्य महिषमग्रे समरतापनः ॥१०७
पशौ शस्त्रेण किमिति त्यक्त्वा शस्त्रमशेषतः । मुष्टिना प्राऽहरन्मूर्ध्नि बलवान् बलवत्तरम् ॥१०८
तेन मुष्टिप्रहारेण भिन्नमूर्धा ह्यपाऽसरत् । ईषत्कश्मलमायातो महिषोऽभ्यद्रवत् पुनः ॥१०९
अभिद्रुत्य विषाणाभ्यां हित्वा समरतापनम् । गृहीत्वा शृङ्गयोर्मध्ये पलायनपरोऽभवत् ॥११०

संख्यावाले गणोंको बड़ी गदा लेकर उसने ललकारा । उसके द्वारा बारबार बहुत तरहसे आह्वान करने पर भी वे न तब वायव्य अस्त्रसे वरुणगणों को शीघ्र ही हटा दिया ॥१०१-१०२॥ यमराज के गणों को जैसे ही समरता सन्धान कर मारने का मन किया कि तब तक सहस्रों रोग उसे घेर जैसे आग्नेयास्त्र समेटने को तैयार उसी समय अन्य अस्त्रोंसे उन्हें उद्यतमान नामत्रयास्त्र को लेकर रोगोंकी ओर छोड़ दिया । उस अस्त्र के छोड़ने से ही क्षण में ही सब रोग वैसे नष्ट हो गये जैसे बड़े भारी झञ्झावात से मेघ नष्ट हो जाते हैं । तब यम का महाकाल महिष क्रुद्ध हो कर जोर जोर से निःश्वांस छोड़ता हुआ समरतापन को मारने को आया । खुरों से पृथ्वा को विदीर्ण कर मूत्र और पुरीष छोड़ा । अपनी पूँछ को ऊपर उठाकर माहष का घोर शब्द हुआ वह युद्ध में (कदन करने लगा) । तब समरतापन ने अपने आगे महिष को आया देखकर उस पशु शस्त्र से मारने से क्या लाभ ऐसा सोचकर सब शस्त्र छोड़कर उस बलवान् ने अपनी पूर्ण शक्ति लगा मुट्ठी से आघात किया ॥१०३-१०९॥

उस मुट्ठी के आघात से सिर फूटा हुआ वह वहां से हटा; कुछ समय तक मूर्च्छित हो महिष चेतना पाकर उसकी ओर दौड़ा ॥११०॥ दौड़ कर अपने दोनों सींगों से समरतापन को मार कर उनमें उठा दौड़ने लगा ॥११

तदद्भुतं वीक्ष्य सुरा जहर्षुः शत्रुघातनात्। विषण्णा मनुजा मत्वा हतं समरतापनम् ॥११२॥
ततः प्रज्ञां समासाद्य पृष्ठमारुह्य सत्वरम्। महिषस्याऽहनत् पृष्ठतलाभ्यां बलवद्रुषा ॥११३॥
तलप्रहाराऽभिहतं पृष्ठं तस्य विदीर्यत। विदीर्णपृष्ठः पतितो मृतवन्निर्गतेक्षणः ॥११४॥
निर्यातितबहिर्जिह्वो घर्घराराव संयुतः। मूर्च्छाविमुक्तः प्रेतेशस्तद्दृष्ट्वाऽतिरुषाऽन्वितः ॥११५॥
उद्यम्य कालदण्डं तं हन्तुं समरतापनम्। ययौ यदा तदा दृष्ट्वा सुधृतिः समचिन्तयत् ॥११६॥
अमोघः कालदण्डोऽयं प्राप्तः समरतापनम्। भस्मीकुर्यान्न सन्देहः किं कृत्वा नः शुभं भवेत् ॥११७॥
एवं विमृश्य मनसि ययौ शीघ्रं यमाऽन्तिकम्। तिष्ठ क्व गच्छसीत्युक्त्वाऽयमङ्गजवरस्थितः ॥११८॥
तीक्ष्णेनाऽऽकर्णकृष्टेन भल्लेन समताडयत्। दण्डोद्यते सव्यभुजे ततस्तेनैवमाहतात् ॥११९॥
कराच्च्युतः कालदण्डो निपपात महीतले। पुनर्दण्डं समादातुं यमो यावत् समागतः ॥१२०॥
सुधृतिस्तावदन्येन भल्लेन यममूर्धनि। जघान तेन भल्लेन भग्नमूर्धा पपात ह ॥१२१॥

अद्भुत कार्य को देख शत्रु के ऊपर घात करने से सुरगण प्रसन्न हुए और समरतापन को मरा मान मनुष्य लोग बहुत दुःखी हुए ॥११२॥ तब उसने चेतना आने पर शीघ्र ही पीठ पर चढ़कर पृष्ठ के तल पर बहुत जोर लगा ऐसी चोट मारी कि आघात लगते ही महिष की पीठ विदीर्ण हो गई। पीठ टूटा, आंखें बाहर निकाल बाहर की ओर जिह्वा को निकाले घर्घर शब्द करता हुआ मृतक के समान गिर गया। मूर्च्छा से विमुक्त हो उसे देख प्रेतेश अत्यन्त क्रुद्ध हो कालदण्ड लेकर समरतापन को मारने को दौड़ा तो उस समय सुधृति सोचने लगा ॥११३-११६॥ "यह अमोघ कालदण्ड आया है समरतापन को भस्म ही कर देगा इसमें सन्देह नहीं, क्या करने से हमारा मंगल हो" इस प्रकार मन में सोचकर शीघ्र यम के पास जा बोला, "अरे ठहर कहां जाता है ?" यह कहकर अङ्गज पास खड़ा हो तीक्ष्ण धार के भालेसे उस पर आघात किया। दक्षिण भुजा में दण्ड लेते ही यमने आघात किया ही था कि उसके हाथ से छूट कर कालदण्ड भूमि पर गिर पड़ा॥ फिर उस दण्ड को लेने के लिये जैसे ही यम आया सुधृति ने वैसे ही दूसरे भालेसे यमके सिर पर आघात किया जिससे सिर फटा हुआ वह गिर गया ॥११७-१२१॥

तत्कर्माऽत्यद्भुतं दृष्ट्वा शशंसुर्निर्जरा नराः । साधुशब्देन महता तदा वै मेघवाहनः ।
दृष्ट्वाऽतिमानुषं तस्य सुधृतेर्विक्रमं जवात् । ऐरावतसमारूढः प्रायाद्योद्धुं शतक्रतुः ।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्याने नानाप्रमुख
देवगणैः सह मर्त्यमहावीराणां युद्धवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१५०८॥

उसके इस अति अद्भुत युद्धकौशल को देखकर देवतागण और मनुष्यों ने खूब जोरों से "साधु-साधु" अत्यधिक प्रशंसा की । तब मनुष्य की शक्ति को अतिक्रमण करने वाले सुधृति के पराक्रम को देखकर मेघवाहन इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर युद्ध क्षेत्र में लड़ने को आ गया ॥१२२-१२३॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में कामोपाख्यानस्थ नाना प्रमुखदेवगण से सुधृति आदि का युद्ध नामक सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥

अष्टादशोऽध्यायः

राजपुत्रैः सह युद्धे महेन्द्रप्रमुखदेवादीनां बन्धनवर्णनम्

सुधृतिं प्राप्य समरे गजसंस्थं पुरन्दरः। चिरं युद्धं समकरोत्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१॥
सुधृतेर्युद्धसारत्वं सुधृतित्वं निशाम्य तु। शतक्रतुर्विस्मितोऽभूत् युध्यमानो रणाऽजिरे ॥२॥
शतक्रतुः सितशरधाराभिः सुधृतिन्तदा। ववर्ष तोयद इव मेरुशृङ्गं सुवृष्टिभिः ॥३॥
शतक्रतुशराऽऽसारसंच्छन्नः सुधृतिस्तदा। न दिशो नाऽपि चाऽऽकाशं भुवं वा पश्यति क्वचित् ॥४॥
एवमिन्द्रशराऽभ्रौघच्छन्नं सुधृतिपूषणम्। हा हेति चुक्रुशुर्दृष्ट्वा मर्त्यसेनाः समन्ततः ॥५॥
एतस्मिन्नन्तरे शक्रशरवृष्टिं महाऽस्त्रतः। विनाश्य निर्ययौ सूर्य इव जीमूतमण्डलात् ॥६॥
अथ सायकवृष्ट्याऽऽशु देवेशं समवाऽकिरत्। तीक्ष्णनाराचजालेन विव्याध च शचीपतिम् ॥७॥

अठारहवां अध्याय

इन्द्र ने गज पर आरूढ सुधृति को युद्ध में पाकर उससे दीर्घ समय तक अत्यन्त भीषण और रोमांचकारी युद्ध किया ॥१॥ सुधृति के द्वारा युद्ध के सारभूत शस्त्र चलाने की क्रिया में प्रदर्शित दक्षता और उसके धैर्य को देखकर रणक्षेत्र में युद्ध करता हुआ इन्द्र अत्यन्त विस्मित हुआ ॥२॥ तब शतक्रतु देवराज ने सुधृति पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की जैसे जल के बादल मेरु के शिखर पर सुन्दर वर्षा करते हैं ॥३॥

इन्द्र के बाणों की अचाल वर्षा से घिरे उस सुधृति को न दिशायें, न आकाश अथवा न पृथ्वी कहीं दिखाई पड़ी ॥४॥ इस प्रकार इन्द्र के बाणोंरूपी बादलों के समूह से छाया हुआ सुधृति सूर्य जैसा स्थित हो गया, (तब) चारों ओर खड़ी मनुष्यसेना ने उस दृश्य को देखकर बहुत अधिक हाहाकार किया ॥५॥ इसके अनन्तर महा अस्त्रों से देवराज इन्द्रके द्वारा की गई बाणोंकी वृष्टि को नष्ट कर सुधृति मेघमण्डल से सूर्यके समान बाहर निकल आया ॥६॥ उसने अब बाणों की वर्षा से शीघ्र ही देवराज को छा दिया और तीक्ष्ण बाणों के जाल को बिछाकर शचीपति को दुर्दान्त बेंध दिया ॥७॥

गदां सर्वायसीं भूयो भ्रामयित्वा जघान ह। गदयाऽभिहतः कुम्भे बलेनाऽभ्रमुवल्लभः
भूयो भ्रमन्निपतितो वमन् रक्तं सफेनिलम्। इन्द्रस्तावदवप्लुत्य वज्रहस्तोऽभिधावत
सुधृतिस्तावदेवाऽऽशु गदया दक्षिणे भुजे। ताडयामास बलवत्ताडितो देवभूपतिः
मूर्च्छामवाप नितरां पतितं कुलिशं करात्। सुधृतिः सत्वरं तावद्बध्वेन्द्रं मूर्च्छितं भुवि
बद्ध्वा नेतुमभिक्रामत्तावद्देवाः समन्ततः। नानाविधप्रहरणाः सुधृतिं वव्रुरोजसा
सुधृतित्वात्तु सुधृतिरिन्द्रं वामेन पाणिना। गृहीत्वैव दक्षिणेन गदया तानभिद्रवत्
तदन्तरे वीरसेनः शत्रुञ्जयमुवाच ह। पितृव्य किं पश्यसि त्वं सुधृतिं हन्ति देवता
इन्द्रं बद्ध्वा गृहीत्वाऽसौ एको युध्यति संयुगे। नाऽयं विलम्बने काल इत्युक्त्वा चोदयद्रथम्
शत्रुञ्जयमुखाः श्रुत्वा वीरसेनस्य भाषितम्। शस्त्रवृष्टिं प्रकुर्वन्तो विविशुः शक्रवाहिनीम्
अथाऽभवद्घोरतरो रणः परमदारुणः। अमर्त्यानाञ्च मर्त्यानां शस्त्राऽस्त्रबहुसङ्कुल

सहित रक्त की वमी मुख से करता हुआ भूमि पर पड़ गया ॥२४-२७॥

इन्द्र उछल कर वज्र हाथ में ले सुधृति की ओर दौड़ा। सुधृति ने तभी गदा से इन्द्रकी दक्षिण भुजा पर चोट की। इस आघात से ताड़ित देवराज मूर्च्छित हो गया उसके हाथसे वज्र गि सुधृति ने शीघ्र ही जब तक भूमि में मूर्च्छित देवेन्द्र को बांध कर ले जाना आरम्भ किया तभी चारो नाना प्रकारके आयुधोंसे प्रहार करने वाले देवगणने बड़े ओज से (रोष) से सुधृति को घेर लिया॥२८-३१॥ अपने धैर्यशील स्वभाव से सुधृति ने बांये हाथ से इन्द्र को थाम कर दक्षिण हाथ से गदा थाम उन पर पीछे की ओर प्रहार किया ॥३२॥ तब वीरसेन शत्रुञ्जय से बोला, "हे पितृव्य ! (हे चाचाजी) क्या देखते हैं ? देवतागण सु मारते हैं। इन्द्रको बांध कर और पकड़े हुए वह अकेला ही युद्ध में लड़ता है, यह विलम्ब करने का समय इस प्रकार कह कर रथ को उधर ले गया। शत्रुञ्जय प्रमुख लोगों ने वीरसेन का कथन सुनकर शस्त्रवृष्टि शक्रवाहिनी (इन्द्र की सेना) पर आक्रमण कर दिया। तदनन्तर अत्यन्त भयङ्कर परम दारुण युद्ध मर्त्यों और बीच शस्त्र और अस्त्रों के समूह के साथ हुआ ॥३३-३६॥ (इस युद्धमें) तलवार, प्रास (लौह मण्डित शूल, गदा, चक्र, परश्वध (युद्ध की कुल्हाड़ी) भुशुण्डी (प्रक्षेप्यास्त्र) शक्ति, परिघ (लौह से सिरामढ़

इन्द्रोऽपि तावदेवाऽऽशु शरजालं समन्ततः । चिच्छेदाऽस्त्रेण महता वायुनेवाऽभ्रमण्डल
एवं कृतप्रतिकृतं निरीक्षन्तौ परस्परम् । संश्लाघन्तौ च सुधृतिदेवेन्द्रौ लाघवं बल
तन्मध्ये सुधृतिः शीघ्रहस्तस्तीक्ष्णैः शरैस्त्रिभिः । धनुर्निषङ्गं मुकुटं चिच्छेद युगपद्द्रुतम्
अथेन्द्रः शेखरभ्रंशात् क्रुद्धः प्रस्फुरिताऽधरः । दधाराऽन्यत्किरीटाऽग्र्यं विश्वकर्मविनिर्मितम्
तावत्तदपि वेगेन चकर्त्त सुधृतिः शरैः । पुनरन्यद्विश्वकर्मदत्तं मूर्ध्न्याऽभिधारयत्
तावत्तदपि चिच्छेद भूयोऽन्यान्यपि भार्गवः । किरीटानां शतञ्चैकं सुधृतिर्लघुविक्रमः
चिच्छेदैवं तदा देवराजो लज्जाऽनताऽऽननः । क्रोधाऽग्निना प्रज्वलित ऐन्द्राऽस्त्रं समवाऽसृज
सुधृतिस्तरसा तच्च वायव्यास्त्रेण नाशयत् । तथा दीर्घेण भल्लेन प्राहरच्चेन्द्रवाहनम्
हतो भल्लेन देवेन्द्रगजः कुम्भान्तरे दृढम् । क्रुद्धः सुधृतिहस्तस्थञ्चापमाच्छिद्य सत्वरम्

इन्द्र ने भी तब तक अति शीघ्र चारों ओर के बाणों के जाल को भारी अस्त्रों से हटा दिया जैसे (आकाश में छाये) बादलों को हटा देता है ॥८॥ इस प्रकार घात और प्रतिघात के कार्य को परस्पर देखते सुधृति तथा देवेन्द्र एक दूसरे के युद्धकौशल तथा बल की प्रशंसा करते (लड़ते रहे) ॥९॥ उसके बीच में ही ने अतिशीघ्र हस्तकौशल कर तीन अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से एक साथ ही इन्द्र के धनुष, निषङ्ग (तूणीर) और का छेदन कर दिया ॥१०॥ अनन्तर मुकुट के भङ्ग होने से क्रुद्ध और अधरों को फड़काते हुए इन्द्र ने श्रेष्ठ किरीट जो विश्वकर्मा ने बनाया था, पहना, तभी उसे भी सुधृति ने बाणों से अति वेग से काट दिया विश्वकर्मा द्वारा दिये गये अन्य मुकुटको उसने शिरमें धारण किया । उसे भी सुधृति ने छेद दिया; फिर अन्य भी वह पहनता उसे भृगुवंशी सुधृतिने उड़ा दिया इस प्रकार उस दक्ष वीरवर एक सौ मुकुट भङ्ग कर दिये। तब ने लज्जा से नीचा मुख किये क्रोधरूपी अग्नि से जलते हुए ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया ॥११-१४॥

सुधृति ने बड़ी शीघ्रता से उसे वायव्यास्त्र से नष्ट कर दिया और फिर लम्बे भाले से इन्द्र के वाहन आक्रमण कर दिया ॥१५॥ देवराज के हाथी को भाले से सिर के ऊपर उठे हुए कुम्भ प्रदेश पर दृढ़ प्रहार किया क्रुद्ध होकर हाथीने सुधृति के हाथके धनुष को शीघ्रता से रौंद दिया। तब अत्यन्त अद्भुत सी बात हुई जिसे

बभञ्ज पादेन तदा तदद्भुतमिवाऽभवत्। साधु साध्विति तैर्देवैः श्लाघितो गजपुङ्गवः ॥१७॥
ससार सुधृतिं वेगात्करेणाऽऽदातुकामुकः। तदन्तरे तु सुधृतिरङ्कुशं बृहदायसम् ॥१८॥
गजराजाय चिक्षेप महामात्रस्तमाच्छिनत्। इन्द्रोऽपि बद्धमुकुटश्चिक्षेप परिघन्तदा ॥१९॥
गजराजाय सुधृतेः परिघेणाऽऽहतो गजः। क्रुद्धोऽभिधावदिन्द्रं स मुसलात्तकरः करी ॥२०॥
तावद्वज्रेणाऽभिहतो ममार सुधृतेर्गजः। ततः स्यन्दनमास्थाय सुधृतिर्लघुविक्रमः ॥२१॥
तीक्ष्णैः शरैस्त्रिभिर्देवपतिं मूर्ध्न्यभिताडयत्। गाढविद्धः शरैस्तीक्ष्णैरीषत्कश्मलमाप सः ॥२२॥
पुनरैरावतश्चाऽपि त्रिभिः संजघ्निवान् शरैः। इन्द्रोऽपि मूर्च्छानिर्मुक्तः शक्तिं तावत्समाक्षिपत् ॥२३॥
नवघण्टासुरुचिरां दीप्तामशनिसन्निभाम्। दृष्ट्वाऽऽयान्तीं महावेगाममोघां सुधृतिस्तदा ॥२४॥
रथाद्द्रुतं गदाहस्त आप्लुतः पक्षिराडिव। तावत् स्यन्दनमासाद्य शक्तिरैन्द्री ससारथिम् ॥२५॥
साश्वध्वजं सशस्त्रञ्च भस्मशेषं चकार ह। सुधृतिः क्रोधताम्राक्षस्तावदैरावतं बली ॥२६॥

देवगण ने इन्द्र के ऐरावत को प्रभूत साधुवाद दिये ॥१६-१७॥ बड़े वेग से हाथी ने अपनी सूंड से सुधृति को उठाने की इच्छा की। इसके बाद सुधृति ने बड़ा भारी लोहे का अङ्कुश गजराज की ओर फेंका जिसे महावत ने तोड़ दिया। इन्द्र ने भी मुकुट लगाकर सुधृति के हाथी पर परिघ (लौह का अस्त्र) छोड़ा। उसके आघात से वह गज क्रुद्ध हो इन्द्र की ओर दौड़ा। मूसल को सूँड में थामे वह हाथी वज्र से इन्द्र द्वारा प्रहार किया गया और वहीं मर गया। तब लघु विक्रम सुधृति ने रथ पर चढ़ कर तीन बड़े तीक्ष्ण बाणों से देवराज इन्द्र पर आघात किया, इन तीक्ष्ण बाणों से गाढ़ा बिंधा हुआ इन्द्र कुछ देर मूर्च्छित रहा ॥१८-२२॥

फिर उस (सुधृति) ने ऐरावत को भी तीन बाणों से प्रहार किया इन्द्र ने भी मूर्च्छा से छूट कर शक्ति छोड़ी ॥२३॥ तब सुधृति नवीन घण्टा के समान शोभावाली, वज्र के समान भलीप्रकार दीप्त (जलती हुई) महावेगवाली अमोघ शक्ति को आती देख रथ से जल्दी ही गदा हाथ में ले उतर आया जैसे पक्षीराज गरुड़ झपट कर आता है। तब उस इन्द्र की छोड़ी शक्ति ने रथ को पाकर सारथि सहित घोड़े, ध्वजा और शस्त्र सब को भस्म कर दिया। क्रोध से लाल आंखें कर बलवान् सुधृति ने सम्पूर्ण लौहमयी गदा को फिर घुमा कर ऐरावत को मारा। अत्यन्त बलपूर्वक चलाई गई गदा से अपने शिर के कुम्भप्रदेश में लगे प्रहार से ऐरावत फिर चारों ओर घूम कर झाग

करवालप्रासशूलगदाचक्रपरश्वधैः । भुशुण्डीशक्तिपरिघशतघ्नीतोमरेषुभिः ॥३७॥
उच्चावचैः शस्त्रजालैरन्योन्यमभिहन्यताम् । पक्वतालफलानीव वायुना शिरसां गणः ॥३८॥
पतन्ति शस्त्रघातेन हस्तपादादिकं तथा । रथाऽश्वगजपादातिपद्घातोद्धतं रजः ॥३९॥
आच्छाद्य ज्योतिषां राशिं गाढसन्तमसायितम् । तत्र केचिन्न पश्यन्ति परं वा स्वीयमेव वा ॥४०॥
शब्दमार्गाऽनुसारेण युध्यन्ति निपुणा रणे । अश्वेभ्यः पतिताः केचिद्गजेभ्योऽपि तथा परे ॥४१॥
गजैः सम्मृदितास्तत्र बहवोऽश्वाः पदातयः । तावच्छस्त्रौघसम्पातवेगनिर्यदसृक्स्रवैः ॥४२॥
परितः प्रोच्छलद्भिस्तु यन्त्रादिव विनिर्गतैः । रजः संशान्तमभवदभ्रनिर्गमवत् क्षणात् ॥४३॥
प्रकाशे सति ते शूरा भ्रष्टवाहाः समागमन् । वाहनैर्विविधैः स्वीयैरन्यैरपि भृगूद्वहैः ॥४४॥
रथिनो गजसंस्थाना गजिनश्चाऽश्ववाहनाः । अश्वारोहा रथारूढा एवं व्याकुलितं भवत् ॥४५॥

शतघ्नी (तोप) तोमर (लौहगदा) और बाणों तथा ऊँचे तथा नीचेकी ओर फेंके जानेयोग्य विभिन्न अस्त्रोंसे आघात करते रहे और युद्ध हुआ)। पके हुए तालके फलके समान वीरोंके (धड़ों से) शिर तथा हाथ पैर आदि शस्त्रोंके प्रहारसे गिरते हुये (यह रथों, घोड़ों, हाथियों, पैदल सेना के पैरों से रौंदी उठी हुई धूलि सारे आकाश में छा गई (उसने) सूर्यको प्रगाढ़ अन्धकार से ढक दिया। वहां कोई भी अपने अथवा परपक्ष के व्यक्ति को नहीं देख पाता था ॥३७-४०॥ सुदक्ष वीरगण केवल शब्दकी ध्वनिकी ओर लक्ष्य कर युद्ध भूमिमें लड़ रहे थे; कई वीर घोड़ोंसे गिरे और दूसरे बली लोग हाथियोंसे गिर पड़े ॥४१॥ कई वहां हाथियों के पैरों से कुचल दिये गये, अश्व और पैदल सैनिक हताहत हुए। उस समय शस्त्रोंके सामूहिक प्रयोगसे अनेक योद्धा मारे गये। वीरोंके शरीरोंसे निकले लहूकी धाराओंसे चारों ओर यन्त्रमें से निकले पदार्थ की तुलना की समता सी हो रही थी और उससे आकाश में छायी हुई रज क्षण में ही नीचे बैठकर शान्त हो गई ॥४२-४३॥ प्रकाश (फिर) हो जानेसे वे सभी वीरगण भ्रष्ट हो गये हैं वाहन ऐसे (बिना वाहनों के) ही आ गये (उन्होंने) अपने विविध वाहनों और अन्य लोगों के यानों से वहां आगमन किया। (ऐसी गड़बड़ मची कि) रथ वाले हाथियों पर चढ़ गये। हाथियों वाले घोड़ों पर आरूढ हो गये और अश्वारोही वीरगण रथों पर सवार बने; इस प्रकार सब ओर आकुलता छा गयी और चारों ओर लोग व्याकुल हो गये ॥४४-४५॥

यथाप्राप्तं समारूढा भ्रष्टवाहा विशङ्किनः। युद्धायैव सुसन्नद्धा न विदुर्वाहनं स्वकम्॥
एवमत्यन्तसम्मर्दैः प्रादुरासीदसृग्वहा। नदी फेनाऽऽवर्त्तयुता महावेगा भयङ्करा॥
अनेकक्षुद्रसरितां योगेनेव महानदी। क्षुद्रशोणितधाराभिर्युता साऽसृग्वहा नदी॥
द्वीपप्रायमृतकरी निरोधप्रतिवाहिनी। कङ्कवायसहंसाऽऽढ्यदीर्घकेशाऽन्त्रशैवला॥
हस्तिहस्तग्राहवती खेटकूर्मौघसंवृता। नृजङ्घोरुमहामत्स्या क्षुद्रमत्स्याऽङ्गुलाऽऽवलिः॥
महाघोषवती भीरुहृदयोत्कम्पकारिणी। युध्यमाना भटास्तत्र परस्परजिघांसवः॥
नष्टशस्त्रा मुष्टितलनखदन्ताऽऽयुधा भवन्। विस्फारिताक्षा भ्रुकुटीकुटिला दष्टदन्तदाः॥
शस्त्राण्युद्यम्य धावन्तश्छिन्नबाहूदराः परे। कचिन्मस्तकहीनाश्च युयुधुः शस्त्रपाणयः॥

अपने वाहनों के नष्ट हो जाने से जिस वीर को जो वाहन जैसे मिला विना शङ्का के वह उसी पर युद्ध के लिये सज्जित हो गया; किसी को भी अपने वाहनों का पता ही नहीं लगा ॥४६॥ इस प्रकार भयङ्कर विपुल संघर्ष में खून की नदी, जिसमें फेनों तथा भंवर का योग था, बड़ी वेगवाली और भयङ्कर रूप से प्रादुर्भूत हुई। जैसे नाना छोटी नदियों के मिल जाने से महानदी बनती है उसी प्रकार छोटी-छोटी खून की धारा से युक्त हो वह लहू की नदी बनी ॥४७-४८॥ इसमें मृत हाथियों का समूह मानों द्वीप का सादृश्य (ऊंचे रूप से) लिये हो, रुकावटसे नदी अपने प्रति प्रवाह को धारण करने वाली हो गई, गृद्ध, कौवे और हंसोंके समूह बालों, आंतों और सिवारों का रूप हो गया हो ॥४९॥ हाथियों के सूँडसे ग्राह (मकर) वती, खेट (घोड़े) रूपी से पूर्ण है, जहां मनुष्यों की कटी जङ्घायें ही बड़ी मछलियों का रूप ले रही हों और उनकी अंगुलियों का समूह ही मछलियाँ बन गयीं हैं ॥५०॥ वहां दोनों सेनाओं में होने वाला कोलाहल ही नदी का कल-कल निनाद भीरू (कायर) लोगों के हृदय में हड़कम्प मचाने वाली यह शोणित की नदी मानों साक्षात् महानदी के ही बन गई हो। उसमें युद्ध करते हुए वीरगण आपसमें एक दूसरे को मारनेकी इच्छा रखनेवाले जब उनके शस्त्र नष्टहो गये तो मुट्ठी, पैरों, नखों, एवं दन्तोंको ही आयुध बना वे सब लोग लड़ने लगे। उन वीरों में युद्ध इतना छा गया कि अपनी आँख फाड़े हुए, तनी भौंहों को चढ़ाये हुए और दांतों को कटकटाते हुए हाथों में लेकर दौड़ते हुए (प्रहार करने को) चले; अन्य वीर कटी भुजा और पेटवाले तथा कहीं कोई वीर कर दिया गया, फिर भी हाथों में शस्त्र लेकर लड़ने को भिड़ पड़े ॥५१-५३॥

एवं प्रवृत्ते समरे मर्त्याऽमर्त्यसमाकुले। शत्रुञ्जयाद्या नृपतिपुत्रास्तत्सूनवोऽपि च ॥५४॥
विविशुर्देवसेनायां महाबलपराक्रमाः। चिरं ते देवसेनाभिर्युद्ध्वा संक्षोभ्य चाऽमरान् ॥५५॥
आसेदुः सुधृतिं सेनापतिं बद्धसुराधिपम्। बद्धं सुरेशं वामेन गृहीत्वेतरहस्ततः ॥५६॥
गदया समयुध्यन्तं दृष्ट्वा ते विस्मिता भवन्। साधु शूररणश्लाघ्य इति स्तुत्वा नृपाऽऽत्मजाः ॥५७॥
संजघ्नुर्देवसेनां ते बलवद्युद्धदर्पिताः। तैर्हन्यमाना विबुधा सोढुमप्रभविष्णवः ॥५८॥
त्यक्त्वा शस्त्राणि हा हेति चुक्रुशुश्चाऽभिविद्रुताः। तदा कुबेरो वरुणो यमो गन्धर्वराडपि ॥५९॥
मिलित्वा युयुधुस्तत्र वायुसोममुखैर्युताः। तान् युध्यमानान् सुचिरं ते युद्ध्वा राजनन्दनाः ॥६०॥
बबन्धुस्ते कुबेरादीन् बलाद्युद्धेन निर्जितान्। शत्रुञ्जयो धनपतिं शत्रुहा वरुणं तथा ॥६१॥
चित्रसेनो यममपि भीमं समरतापनः। जयन्तं वीरसेनश्च वीरभानुः समीरणम् ॥६२॥

इस प्रकार देवगण और मनुष्यों के बीच युद्ध होने पर परमवीर और पराक्रमी शत्रुञ्जय आदि राजा के पुत्रगण तथा उनके लड़के भी देवगण की सेना में जा घुसे ॥५४॥ बहुत समय तक उन्होंने देवसेनाओं के साथ युद्ध कर अमरगण के दांत खट्टे कर सेनापति सुधृति के निकट तक नाकापाई की, जिसने इन्द्र को बांध रक्खा था। वे सब बांये हाथ से देवराज इन्द्र को हाथ से पकड़े और दहिने हाथ में गदा लेकर युद्ध करते उसे देख अत्यन्त विस्मित हो गये। उन राजपुत्रों ने कहा, "हे शूरवीर पुरुषों द्वारा रण में प्रशंसनीय वीरवर! तुम्हें साधुवाद है" इस प्रकार उसे बधाईयां देकर बलवान् युद्ध से गर्वित उन्होंने देवसेना के ऊपर आघात किया। उनके आघात से प्रताडित हो देवगण ने प्रहारों को सहन नहीं करपाने से अपने शस्त्रों को वहीं छोड़ दौड़ते हुए हाहाकार किया। तब कुबेर, वरुण, यमराज, गन्धर्वपति, वायु, सोम प्रमुख देवगण एक साथ मिलकर युद्ध करने लगे। युद्धकरनेवाले उन देवगण के साथ वे राजपुत्र खूब समय तक लड़े और उन्होंने युद्ध में उन्हें जीतकर बलात् बांध लिया। शत्रुञ्जय ने धनपति को, शत्रुहा ने वरुण को, चित्रसेन ने यम को, समरतापन ने भीम को, वीरसेन ने जयन्त को, वीरभानु ने वायु को तथा वीराग्रग ने वसुओं को बांधा; उसी तरह वीर विक्रम ने शशाङ्क को इन्द्र

वीराग्रगो वसूंस्तद्वत् शशाङ्कं वीरविक्रमः । बद्ध्वा सेन्द्रान् सर्वदेवान्नेतुं समुपचक्रमुः

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामाऽऽख्याने देवगणराजपुत्रा-
युद्धे राजपुत्रादिभिर्देवेन्द्रादीनां बन्धनवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥१३८५॥

सहित सब देवगण को बांधकर वे ले जाने लगे ॥५५-६३॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड का देव-मनुष्यों के युद्ध में राजपुत्रों द्वारा इन्द्र सहित प्रमुख देवगण का बन्धन प्रकरण नामक अठारहवां अध्याय समाप्त ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

कामदेवस्य युद्धकौशलवर्णनम्

एवमिन्द्रमुखान् बद्ध्वा यदा नेतुं प्रचक्रमुः । तदा कामो धनुर्दिव्यं तान् रुरोध विकर्षयन् ॥१॥
विद्रुता विबुधाः केचित् केचित्तत्र निपातिताः । विडौजप्रमुखा देवप्रवृद्धा बन्धनं गताः ॥२॥
देवगन्धर्वदाराद्याश्चुक्रुशुर्भयपीडिताः । तदा कामो विकर्षन् स्वं धनुर्मर्त्यानरुन्धत ॥३॥
विमुञ्चन् शस्त्रवर्षाणि शरजालेन संवृणोत् । तदा सुधृतिमुख्यास्ते न्यस्य बद्धान् दिवौकसः ॥४॥
युयुधुः सर्व एवैते कामेनाऽतिबलीयसा । पञ्चहायनको बाल एकः सर्वानयुध्यत ॥५॥

उन्नीसवां अध्याय

इस प्रकार सेनापति सुधृति के नेतृत्व में सभी इन्द्रप्रमुख देवगण को बांध कर जब वे राजपुत्र उन्हें ले जाने लगे तब कामदेव ने अपने दिव्य धनुष को चढ़ाते हुए उन सब के मार्ग को रोक लिया ॥१॥ कई देवगण (भयभीत हो) भाग गये; कई वहीं पर मार दिए गए ॥२॥ देवों तथा गन्धर्वों की स्त्रियां आदि भय से पीड़ित हो बहुत विलाप करने लगीं। तब काम ने अपना धनुष खींच कर मर्त्य लोगों को आगे बढ़ने से रोका ॥३॥ (उसने) शस्त्रों की वर्षा कर बाणों के जाल से उन्हें छा दिया। तब सुधृतिप्रमुख वे राजपुत्र बांधे हुए देवगण को पकड़ कर अत्यन्त बलवीर कामदेव से सभी वीर युद्ध करने लगे। पांच वर्ष के उस एकाकी बालक ने ही सब मर्त्यगण से युद्ध किया ॥४-५॥

कामः शस्त्राऽस्त्रकुशलस्तद्‌द्भुतमिवाऽभवत्। विस्मयं परमं जग्मुर्मर्त्या देवास्तथेतरे॥६॥
सर्वेषामस्त्रजालानि शस्त्राण्यपि पृथक् पृथक्। छित्त्वा जघान प्रत्येकं सायकैः सितशल्यकैः॥७॥
हताः सुधृतिमुख्यास्ते स्यन्दनं संश्रिताः पृथक्। सर्वप्राणैरयुध्यन्त कामेन बलवत्तराः॥८॥
तदा ते निशितैर्बाणैः कामं विव्यधुरेकशः। कामस्तानपि चिच्छेद मध्ये प्राप्तान् शरैः पृथक्॥९॥
कामस्य दृष्ट्वाऽतिबलं सुधृतिः प्रजवात्तदा। भो राजपुत्राः शृणुत वर्धनेन पुरोदितम्॥१०॥
एकः कुमारस्तेनाऽत्र हता राष्ट्राऽधिपाः क्षणात्। कोटिशोऽतिबलास्तेन दैवं बलमिदं भवेत्॥११॥
इति तत्सत्यमेवाद्य पश्यामः कामपौरुषम्। एकः कुमारः सर्वान् नो रुरोध समितिञ्जयान्॥१२॥
अद्यापि नाऽऽगच्छति नो राजा वीरव्रतो विभुः। कामो न जेतुमस्माभिः शक्यो वीरव्रतादृते॥१३॥
सोऽपि राजा महादेवं सन्तोष्य तपसा यदि। भूयात् प्राप्तवशो नो चेत्कामोऽस्माञ्जयति क्षणात्॥१४॥

शस्त्रों और अस्त्रोंके चलाने में कुशल उसके पराक्रम का गौरव अद्‌भुत सा रहा। उसे देख सभी मर्त्य अन्य देवगण अत्यन्त विस्मय करने लगे॥६॥ उसने सभी शत्रुपक्षके मत्येकी अस्त्रों वर्षासे एकत्र बाणके जालों को को अलग-अलग अपने तीक्ष्णफलवाले बाणों से छिन्न-भिन्न कर वीरों को मार गिराया॥७॥

रथों पर सवार सुधृति मुख्य सेनापति लोग पृथक् पृथक् आघातों एवं प्रत्याघातोंसे उससे लड़े और भर वे अति बलशाली काम से युद्ध में भिड़ गये॥८॥ तब उन्होंने खूब तेज बाणों से एक एक करके काम को बेंध दिया; काम ने भी उनके छोड़े बाणों को बीच में ही काटा॥९॥ तब काम के इस महापराक्रम को सुधृति ने बड़े वेग से अपने अनुयायी राजपुत्रों से कहा, "हे राजपुत्रगण! जो वर्धन ने पहले कहा था उसे सुनो। एक यह कुमार है जिसने कोटिसंख्या के राष्ट्राधिप लोगों को क्षण भर में मार गिराया; इससे यह बल वाला हो सकता है॥१०-११॥ इस प्रकार आज कामदेवके पराक्रमको दैवबल का सहारा है, यह हम सत्य रहे हैं कि एक ही कुमार ने महारथी गण को जीतनेवाले हम लोगों को रोक लिया॥१२॥ आज भी हमारा राजा वीरव्रत नहीं आया; काम वीरव्रत को छोड़ हम लोगों से नहीं जीता जा सकता॥१३॥ वह तपस्यासे यदि महादेव को सन्तुष्ट कर प्राप्त वर हो वैरीको वशमें करने की सामर्थ्य पा लेगा (तो ठीक है) कामदेव हमें क्षणभर में जीत लेगा।" इस प्रकार उस सेनापति के कहने पर अपने युद्धकौशल में

वदत्येवमनीकेशे कामः शीघ्रतरक्रियः। सुधृतेरायुधं तीक्ष्णशरेणाऽच्छिनदञ्जसा ॥१५॥
अन्येन हृदि विव्याध गाढं बाणेन पत्त्रिणा। सुधृ तर्हृदि संविद्धः कृत्तमूल इव द्रुमः ॥१६॥
पपात भुवि निष्प्रज्ञो विभिन्नहृदयस्तदा। शत्रुञ्जयं शत्रुहणं भीमं समरतापनम् ॥१७॥
विजेययुद्धकुशलो विद्ध्वा मर्मसु सायकैः। तीक्ष्णैराशीविषप्रख्यैर्मूर्च्छितानकरोद्भृशम् ॥१८॥
ते हताः कामबाणौघैर्जर्जरीभूतविग्रहाः। हित्वा प्रज्ञामायुधञ्च प्रेयसीमिव कामुकः ॥१९॥
संश्लिष्य भूमिं सर्वाङ्गैर्न विदुर्बाह्यमान्तरम्। वीरविक्रममुख्यास्ते पुत्रा दृष्ट्वा तथाविधान् ॥२०॥
पितॄन् शोकसमाक्रान्ताः परिदेवितुमारभन्। हा ताताऽस्मान् परित्यज्य क्व गतोऽनाथतां गतान् ॥२१॥
तव तातेच किं ब्रूमो सोऽपि त्यक्ष्यति जीवितम्। विना भवद्भिर्निमिषमपि नो भविता नृपः ॥२२॥
एवं विलपमानान् तान् दृष्ट्वा सुधृतिनन्दनः। रणधीरः प्राह तदा वचो मे शृणुताऽऽदरात् ॥२३॥

कुशल कार्य करनेवाले कामदेव ने क्षणमात्र में ही सुधृति के आयुध को तीक्ष्ण बाणों से छिन्न-भिन्न कर कर दिया ॥१४-१५॥

अन्य तेजफलक के बाण से उसके हृदय को अत्यन्त दारुणरूप से बेंध दिया। हृदय में आघात लगने से बिंधे हृदयवाला सुधृति जड़-मूलसे कटे वृक्ष के समान अचेत होकर भूमि में गिरा। (उसके साथ ही काम ने) विजय करने योग्य युद्धोंमें कुशल बालक कामने शत्रुञ्जय, शत्रुहन्, भीम और समरतापन को मर्मस्थलों पर विषधर सर्पों के समान तीक्ष्ण बाण चला अत्यधिक मूर्च्छित बना दिया ॥१६-१८॥

काम के बाणों के जाल से आघात किये गये (विशेष व्याकुल पीड़ित) उनके शरीर एकदम जर्जर (विकारोंसे पूर्ण जीर्ण-शीर्ण) हो गये एवं जैसे कामुक लोग प्रेयसी के पास सब कुछ त्याग कर जाता है वैसे ही वे अपने बुद्धि-बल और अस्त्रों को छोड़कर भूमि पर मूर्च्छित हो लुढक गये; उन्हें अपनी अन्तश्चेतना और बाहर के वातावरण का कुछ भी ज्ञान न रहा। उनके पुत्रगण जो वीरविक्रम प्रमुख थे, उन्होंने अपने पिता आदि को इस स्थिति में इसप्रकार देखा तो शोकाकुल हो विलाप करना आरम्भ किया, 'हे तात! आप हम अनाथों को छोड़कर कहाँ गये? आपके चले जाने पर वह भी (पुत्र भी) जीवन को छोड़ देगा। आप लोगों के विना एक निमिष भर भी राजा जीवित नहीं रहेगा" ॥१९-२२॥ इस प्रकार उन्हें विलाप करते देख तब सुधृतिनन्दन रणधीर बोला, "तुम लोग मेरी बात को ध्यान से सुनो। यह पराक्रम दिखाने का समय है विलाप करने का नहीं, हम

पराक्रमस्य कालोऽयं न च वै परिदेवितुम् । शत्रुरत्येति सर्वान् नो भवेच्छोको हि वीर्यह
योद्धव्यं क्षत्रियैर्युद्धं यावत्प्राणस्य धारणम् । तस्माच्छोकं परित्यज्य युध्यामोऽत्र यथाबल
राज्ञे निवेदनायैष वीरसेनः प्रयात्वितः । भवतां देवितं दृष्ट्वा सैनिकाः सर्वतो दिशम
प्रयान्ति भीता हा हेति रटन्तस्त्यक्तहेतयः । निवर्त्तयध्वं शोकात् स्वं चित्तं धैर्यसमाश्रयात्
निशम्यैव सुधृतिजवाक्यं धैर्यं समाश्रिताः । युद्धाय निर्ययुः सर्वे वीरविक्रममुख्यकाः
राज्ञे निवेदनायाऽऽशु वीरसेनः सुनिर्गतः । शत्रुञ्जयसुताद्यास्ते कामस्याऽभिमुखे स्थिता
एतस्मिन्नन्तरे देवा दृष्ट्वा कामात् पराभवम् । इन्द्रादीन्मोचितुं सर्वे धृतधैर्याः समाक्रमन्
रणधीरोऽथ तान् सर्वान्निवार्य शरवृष्टिभिः । विद्रुतानाह्वयत् सर्वान् सैनिकान्मर्त्यपक्षगान्
हे हे शूरा नोचितं वः पलायनमशंसितम् । पलाय्य समराद्यूयं भर्तृपिण्डविनिर्यय

लोगों को शत्रु दबा रहा है शोक करने से वीर्य का हनन सम्भव है ॥२३-२४॥

जबतक शरीर में प्राण है तबतक क्षत्रियगण युद्ध करें यही उनका धर्म-कर्तव्य है। इसलिये सभी लोग कर इस समरभूमि में अपनी शक्ति भर युद्ध करें ॥२५॥ राजा के पास सम्वाद कहने के लिये यह वीरसेन प्रस्थान करे। तुम्हारा यह शोकपूर्ण विलाप सुन सैनिक लोग "हा हा" की पुकार करते हुए अपने अस्त्रशस्त्र आदिको छोड़कर चारों ओर भागते जाते हैं। तुम लोग धैर्य धारण कर अपने चित्तको शोकसे हटा लो" इस प्रकार सुधृति के पुत्र रणधीर के वीरोचित दर्पपूर्ण वचन सुनकर सभी वीरविक्रम मुख्य राजपुत्रगण धैर्य धारण करने के लिये तैयार हो गये ॥२८॥

राजा के पास सब वृत्त कहने के लिए शीघ्र वीरसेन चला गया। अब शत्रुञ्जय के पुत्र आदि योद्धागण काम के सामने खड़े हो गये ॥२९॥ इसी के बाद देवगण ने कामदेव द्वारा उन राजपुत्रों की हार को देख देवगण को छुड़ाने के लिए धैर्यपूर्वक आक्रमण किया ॥३०॥ रणधीर ने उन सब को बाणों की वर्षा से ह मर्त्यपक्षवाले भागे हुए अपने सभी सैनिकों को उद्बोधन किया ॥३१॥ "हे शूरगण! इस प्रकार निन्दित ग तुम्हारा भागना उचित नहीं है। अपने स्वामी की सेवा से अपना निस्तार विना किये भाग कर तुम अधमगति को प्राप्त होओगे। युद्ध में देह का समर्पण करने से ही स्वामी की सेवा में पूर्ण निष्कृति है विरत हो दौड़कर पीठ दिखानेवाले कायर को वीरपत्नियां उलाहना देती हैं। अरे! अपने दूसरे लोक को

अकृत्वा गच्छथाऽत्यन्तमयशंसनिकां गतिम् । भर्तृपिण्डस्य निर्योगो युद्धे देहसमर्पणम् ॥३३॥
पलाय्याऽभ्यागतं वीरपत्न्यश्चोपालभन्ति वै । अलं प्राणपरित्राणाल्लोकद्वितयनाशनात् ॥३४॥
निवर्त्तध्वं निवर्त्तध्वं धैर्यमालम्ब्य सत्वरम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा निवृत्ताः सर्व एव ते ॥३५॥
पुनः समभवद्युद्धं देवमानवसेनयोः । मुहूर्त्तमात्रमभवद्रणः परमदारुणः ॥३६॥
तदन्तरे तु मनुजान् कामः सायकवृष्टिभिः । विधमन्मारुत इव मेघवृन्दं नभस्तले ॥३७॥
ते हन्यमानाः समरे कामस्य शरवृष्टिभिः । न शेकुः सम्मुखे स्थातुं वायोरग्रे घना इव ॥३८॥
तदन्तरे सुधृतिजः शत्रुञ्जयसुतं बली । प्राह तत्कालसदृशं रणधीरो महाधृतिः ॥३९॥
राजपुत्र शृणु वचो भ्रातृभिः सेनयाऽपि च । युतस्त्वं देवसेनाभ्यो रक्षेन्द्रादीन् पितॄनपि ॥४०॥
अहं कामं योधयिष्ये पश्य मेऽद्य पराक्रमम् । इत्युक्त्वा रथमारूढो धनुर्विस्फारयन्महत् ॥४१॥
कामस्य सम्मुखं प्रागात् सायकैरभिवर्षयन् । अथ कामोऽपि तं वर्षं शरस्य शरवृष्टिभिः ॥४२॥

वाले इस प्राणों की रक्षा से तुम लोग बाज आओ शीघ्र ही तुम लोग धैर्य धारण कर लौट आओ, लौट आओ ।" इस प्रकार उसके वीरोचित उद्बोधनको सुनकर सभी भागे हुए वीर लोग लौट आये ॥३२-३५॥फिर देवगण और मानवों की सेना का युद्ध हुआ जो एक मुहूर्तपर्यन्त परमदारुण युद्ध चला ॥३६॥ इसके पश्चात् मनुष्यों को कामदेवने अपने बाणों की वर्षा से इस प्रकार परास्त कर दिया जैसे मेघों के समूहको प्रबल वायु आकाश में उड़ा देता है ॥३७॥ काम की उदग्र बाणोंकी वर्षा से आघात पाये हुए वे लोग उसके सामने वैसे ही नहीं ठहर पाये जैसे वायु के सामने बादल ॥३८॥ तत्पश्चात् महाधैर्यशील बली सुधृति के पुत्र रणधीर ने शत्रुञ्जय के पुत्र से समयोचित वचन कहे ॥३९॥

"हे राजपुत्र ! अपने भाईयों और सेनाओं की सहायता से तू देवगण की सेनाओं से लड़, इन्द्रादि और पितृगणको जो बांधे हुए हैं उन्हें देवगणको मत ले जाने दे और बचा ले॥४०॥ मैं कामसे रणमें लड़ूँगा । आज तू मेरा पराक्रम देख ।" इसप्रकार कहताहुआ वह रथ पर सवार होकर अपने विशाल धनुष से टङ्कार करता हुआ कामदेव के सामने बाणोंकी वर्षा करता हुआ बढ़ता आया । तदनन्तर काम ने भी अपने बाणों की वर्षा कर तब उसके अस्त्रों को

विनिवार्य सुनिशितान् प्रायुङ्क्त सायकान् तदा। तान् प्राप्तानेव मध्ये चिच्छेद सायकैस्त्रिभि
छित्त्वा द्रुतं मुष्टिदेशे मन्मथस्य महेषुणा। जघान रणधीरोऽपि तदा कामकराद्धनुः
प्रापतद् भुवि तद्दृष्ट्वा शशंसुः साधु साध्विति। कामोऽपि विक्रमं दृष्ट्वा रणधीरस्य संयुगे
साधु वीरश्लाघ्यतम स्तुत्वैवं निशितं शरम्। चापमादय सन्धाय रणधीरस्य पश्यतः
चिच्छेद चापं बाणौघं लघुहस्तः प्रतापवान्। तेन क्रुद्धः सुधृतिजश्चापमन्यत् समाददे
अथ कामस्तस्य रथमश्वान् सूतं शरासनम्। चिच्छेद युगपद्बाणैः शीघ्रं लघुपराक्रमः
अथाऽऽदाय गदां सर्वलोहामशनिसन्निभाम्। प्राद्रवन्मदनं हन्तुं क्रोधेनाऽग्निरिव ज्वलन्
रणधीरं तथाऽऽयान्तं दृष्ट्वा कामः सुवेगतः। चकार वर्षं निशितशराणां घनराडिव
रणधीरोऽपि तां वृष्टिं सर्पानिव खगेश्वरः। ग्रसन् जघान गदया सर्वप्राणेन मन्मथम्

वारण कर अत्यन्त तीन तीक्ष्ण बाणोंको छोड़कर उन्हें काट दिया। फिर मन्मथकी मुट्ठी में रणधीरने बड़े तीक्ष्ण से आघात किया। आगे काम के हाथ से उस रणधीर ने धनुष पर घात कर उसे भूमि पर गिरा दिया जिसे सबने रणधीर को साधुवाद दिया। कामदेव ने भी रणधीर के युद्ध पराक्रम को देख "हे वीरों के श्लाघ (अत्यन्त प्रशंसा-योग्य) तुम्हें बहुत साधुवाद हैं।" इस प्रकार बधाई देकर अपने धनुषको लेकर उस शूरवीर अत्यन्त काम ने के देखते-देखते उस पर बाण चलाकर उसके धनुष और तूणीर (तरकश) के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। क्रुद्ध होकर सुधृति के पुत्र रणधीर ने दूसरा धनुष हाथ में सम्हाल लिया ॥४१-४७॥

अनन्तर युद्ध में कौशलपूर्वक पराक्रमी काम ने उसके रथ, घोड़ों, सारथि और धनुष को एक साथ से छिन्न-भिन्न कर दिया ॥४८॥ तदनन्तर सम्पूर्णतः लौहमयी, वज्र के समान प्रहार करने वाली अपनी गदाको रणधीर क्रोध से अग्नि के समान जलता हुआ मदन को मारने को दौड़ा। रणधीर को इस प्रकार देख काम ने खूब वेग से अत्यन्त तीक्ष्ण तीव्रगतिवाले बाणों की वर्षा की जैसे विशाल घनराज वर्षण करता है ॥४९-५०॥

रणधीर ने भी उस वर्षा को जैसे पक्षियों के राजा गरुड सर्पों को निगल जाता है वैसे शक्तिहीन कर पर खूब शक्ति भर अपनी गदा का प्रहार किया ॥५१॥

गदया ताडितो मूर्ध्नि भ्रमन्नेत्रः पपात ह । गाढमूर्च्छामवाप्तोऽथ रणधीरोऽपि तत्क्षणम् ॥५२॥
कामसायकवर्षेण चालनीभूतविग्रहः । पपात मूर्च्छितोऽत्यन्तं वज्राहत इवाऽद्रिराट् ॥५३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामाऽऽख्याने देवगणराजपुत्राणां समरे कामसुधृतिपुत्रयोः युद्धवर्णनं एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१६२४॥

सिर पर गदा से ताड़ित हो अपनी आँखें फिराकर गाढ़ी मूर्च्छा में स्थित काम भूमि पर लोट गया। उसी समय कामदेव के बाणों की वर्षा से अपना सारा शरीर बिंधकर चलनी बेज हो जानेसे जैसे वज्र के आघात से गिरिराज धराशायी हो जाता है वैसे ही रणधीर भी अत्यन्त मूर्च्छित हो भूमि में गिर पड़ा ॥५२-५३॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में सुधृतितनय तथा कामदेव के बीच युद्धप्रकरण नामक उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥

विंशतितमोऽध्यायः

कुलगुरोराज्ञया सश्रद्धं देवराजप्रमुखादीनां मोचनवर्णनम्

तदन्तरे वीरसेनो मार्गे राजानमैक्षत। प्रणम्य चरणौ मूर्ध्ना विमना इव संस्थि
तथाविधं प्रियतमं पौत्रं राजा निरीक्ष्य तु। आशीर्भिरनुयोज्याऽथ मूर्ध्न्युपाघ्राय चाऽऽ
वत्स किं दीनभूतोऽसि कच्चित्ते कुशलं तनौ। नगरे भ्रातृषु तथा पितृषु स्त्रीगणेषु
सेनासु भृत्यवर्गेषु कोशेषु गुरुमन्त्रिषु। वद शीघ्रं समीक्ष्य त्वां दीनं शुष्यति नो मन
इति श्रुत्वा तदा वीरसेनः प्राञ्जलिरब्रवीत्। राजंस्त्वन्निर्गमदिनाच्चतुर्थेऽह्नि पुरा श्रु
कामो गीर्वाणसेनाभिरिन्द्राद्यैरपि संवृतः। समागतः सुतुमुलं युद्धं चक्रुर्बुधा नो
अथाऽस्माभिः सुधृतिना सेनया सह संयुगे। युद्ध्वा विनिर्जिता देवा बद्धा इन्द्रमरुन्मु

बीसवां अध्याय

इसके अनन्तर वीरसेन ने मार्ग में राजा को देखा उसके चरणों में सिर नवाकर एवं प्रणाम
विमनस्क (उदास) सा खड़ा रहा ॥१॥ इस रूप में अपने प्रियतम पौत्र को देख राजा ने आशीर्वाद
सूँघ कर कहा ॥२॥ "हे वत्स ! कैसे दीन सा लगता है ? तेरे शरीर में सब प्रकार से स्वस्थता है न?
भ्राताओं में, पिता लोगों, स्त्रियों, सेनाओं, नौकर-चाकरों, कोश और गुरुजन तथा मन्त्रियों में
कुशल तो है ? तू शीघ्र बता तुझे इस प्रकार दीन देख कर मेरा मन सूखता है ।" इस प्रकार
हाथ जोड़कर बोला, "हे राजन् ! आपके जाने के चौथे दिन ही इन्द्रादि देवगण की सेना सहित
सुना गया था, आया, (उस समय) देवगण ने मनुष्यों से बहुत भीषण युद्ध किया ॥३-६॥ बाद में
ने सुधृतिके द्वारा सेनाके साथ युद्धमें लड़कर इन्द्र व मरुत् आदि प्रमुख देवगणको जीत लिया और उन्हें

अथ कामः क्षणेनैव महाबलपराक्रमः। शत्रुञ्जयादीन् सुधृतिं पातयामास संयुगे ॥८॥
अक्षौहिणीनां पञ्चाशद्धतास्तेन दिनाऽर्धतः। भ्रातरो रणधीरेण तदाऽऽश्वस्ताः सुदुःखिताः॥९॥
साम्प्रतं योधयत्येको रणधीरः स्वसेनया। मन्ये निपतितः सोऽपि कामेन सह सङ्गरे ॥१०॥
सुधृतिप्रमुखा येन क्षणाद्युद्धे निपातिताः। तत् कथं योधयेदेको रणधीरो महाबलम् ॥११॥
इति प्रोक्तं सर्ववृत्तं भवानग्रे परायणम्। तच्छ्रुत्वा पौत्रवचनं मा भैरिति समीरयन् ॥१२॥
आजगाम युद्धभुवि धनुर्विस्फारयन्मुहुः। क्षणेन तावत् कामोऽपि मूर्च्छातः प्रत्यबुध्यत ॥१३॥
राजानं पुरतो दृष्ट्वा कामः शरसुवृष्टिभिः। अवाकिरन्मेरुगिरिं पर्जन्य इव वृष्टिभिः ॥१४॥
राजाऽपि प्रतिवर्षेण शरवृष्टिं व्युदस्य ताम्। नीहारपटलान्मुक्तः चण्डांशुरिव सम्बभौ ॥१५॥
अथ राजाऽपि निशितैर्गीर्धपत्रैः सुतेजितैः। विव्याध मदनं भूयः सोऽपि तान्मध्यआच्छिनत् ॥१६॥

अनन्तर महाबल पराक्रमशील कामदेव ने क्षण में ही शत्रुञ्जय आदि वीरों और सुधृति को युद्ध में हरा दिया। आधे दिन में ही उसने पच्चास अक्षौहिणी सेना को मार भगाया। रणधीर ने दुःखित भाईयों को तब बहुत ढाढस बँधाया ॥७-९॥ "अभी एकाकी रणधीर अपनी सेना के सहित रण में लड़ता है; मेरी मान्यता है कि वह भी काम से युद्ध में लड़ता हुआ पराजित हो गया हो ॥१०॥ जिसकामके द्वारा सुधृति प्रमुख महारथीगण भी क्षणभर में युद्ध में विजित हो गये तब कैसे अकेला रणधीर उस महाबली से लड़ेगा ? ॥११॥

इस प्रकार जो घटना घटी उसका वृत्तान्त आप से कहा, आगे आप ही सब तरह परायण (प्रमाण)हैं।" पौत्र की बात सुनकर वह राजा "मत डर" इस प्रकार कहता हुआ बार-बार धनुष की टङ्कार करता हुआ युद्धभूमि में आ गया। क्षणभर में ही काम भी मूर्च्छा से जाग गया ॥१२-१३॥ कामदेव ने राजा को सामने देख तीक्ष्ण बाणों की भली वर्षा से उसे घेर दिया जैसे मेघ वर्षासे मेरु पर्वतको घेर लेते हैं ॥१४॥ राजा भी अपने प्रतिरोधी बाणों से निकले हुए सूर्य के समान शोभित हुआ ॥१५॥ अब राजा ने भी अति तीक्ष्ण सायकपुङ्खों से मदन को छेद दिया फिर उसने भी उन्हें काटकर बीचमें ही काट डाला ॥१६॥ काम ने अपने धनुष पर बाण चढ़ा उसे कानों तक खींच कर बड़े वेग से राजा पर प्रहार किया। राजा ने भी अपने बाणों से प्रति प्रहार से मदन को बेंध दिया; बाणों को काम ने तेज गतिवाले बाणों से अपने पास आने के पहले ही काट दिया ॥१७॥

आच्छिद्याऽऽकर्णपूर्णेन राजानं ताडयद्भृशम्। राजाऽपि तं शरं मध्ये चिच्छेदाऽऽप्तमाशुगैः ॥
एवं युद्धमभूत् कामराज्ञोरत्यन्तदारुणम्। राजानं वीक्ष्य सम्प्राप्तं सैनिकाः सहसोत्थिताः ॥
सुधृतिप्रमुखाश्चापि मूर्च्छामुक्ताः समन्ततः। तन्वः प्राणमवाप्येव राज्ञा सर्वेऽभिसङ्गताः ॥
प्रणेमुः सर्व एवैते शत्रुञ्जयमुखा नृपम्। युध्यमानो नृपः प्राह सुधृते शृणु मद्वचः ॥
कामेन युद्ध्वाऽतिचिरं खिन्नाः श्रान्ताश्च सम्प्रति। इन्द्रादीन् रक्षत भृशं सुरेभ्यः सर्वतो दिशम् ॥
योद्धाऽस्म्यंह मन्मथेन भवन्तः प्रेक्षका मम। इत्युक्त्वा युयुधेऽत्यन्तं राजा कामेन संयतः ॥
तयोर्युद्धं समभवत् विष्णुकैटभयोरिव। उच्चावचैरस्त्रगणैः शस्त्रैरपि सुतेजनैः ॥
अस्त्राण्यस्त्रेण शस्त्राणि शस्त्रेण विनिवार्य्य च। चक्रतुर्युद्धमत्यन्तं परस्परजयैषिणौ ॥
अभेद्यकवचौ तद्वदच्छेद्यदृढकार्मुकौ। अक्षय्यतूणयुगलौ धनुर्विद्याविशारदौ ॥२५॥

इस प्रकार कामदेव और राजा का अत्यन्त भीषण युद्ध हुआ। राजा को आया देख सैनिक अकस्मात् उठ खड़े हुए। तब सुधृति प्रमुख राजपुत्रगण भी चारों ओर से मूर्च्छा से जगे जैसे शरीर प्राण संजीवन धारण करता है वैसे ही राजा के साथ वे अत्यन्त (उत्साहयुक्त) बन गये ॥१८-१९॥

उस समय सभी शत्रुञ्जय प्रमुख राजपुत्रों ने राजा को प्रणाम किया। लड़ते हुए राजा ने कहा, "हे मेरी बात सुन, कामदेव के साथ बहुत समय तक युद्ध करते करते तुम लोग बहुत खेदयुक्त और थकित हो अब इन्द्रादि को देवगण से सब दिशाओं का ध्यान रखकर रक्षा करो ॥२०-२१॥ मैं कामदेव के साथ लड़ूँ सब लोग देखनेवाले बनो।" इस प्रकार कह वह खूब मनोयोगपूर्वक कामदेव से अत्यधिक कुशलता से लड़ा

उनका युद्ध विष्णु एवं कैटभ दैत्य के बीच में हुए संग्राम के समान हुआ। परस्पर एक दूसरे पर पाने की इच्छा वाले दोनों ने ही ऊँचे की ओर प्रयोग में लिये जाने वाले और भूमि पर स्थित वीरों द्वारा जाने वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण अस्त्रों को अस्त्र से और शस्त्रों को शस्त्र से वारण कर बहुत दारुण युद्ध किया। अभेद्य कवच पहन रक्खे थे, उनके धनुष भी उसी प्रकार अत्यधिक दृढ़ ठोस बने थे जिससे कोई उन्हें छेद पावे, उनके पास तरकस में बाण कभी कम नहीं होते और दोनों ही धनुर्विद्या में परम प्रवीण वीर थे ॥२३-

लाघवेन च वीर्येण बभूवतुरतिक्रियौ। एवं तयोर्विक्रमतोरतिक्रान्तं दिनत्रयम् ॥२६॥
युध्यतोस्तुर्यदिवसे युद्धमासीन्महत्तरम्। अस्त्राऽग्निभिः सर्वलोका व्याप्ताः समभवन् तदा॥२७॥
राजा तदा हीयते यच्छ्रान्त्या कामोऽभिवर्धत। ज्ञात्वा राजा हीयमानमात्मानं शङ्करं तदा॥२८॥
सस्मार मनसा शीघ्रं तदा देवस्त्रिलोचनः। त्रिशूलं प्रेषयामास तद्राज्ञस्तु शरासने ॥२९॥
सन्निविष्टं सायकवत्तद्राजा पाणिनाऽऽददे। तं शरं सारभूतं स मेने गुरुतरं यतः ॥३०॥
नन्वेष सायकोऽत्यन्तं भारभूतोऽशनिप्रभः। कुत एवं निषङ्गे मे नाऽऽसीत् पूर्वं कदाचन ॥३१॥
अथवाऽहं श्रान्त इति स्यादेवमपि वा शिवः। कुलेशः कामविजये सन्निधानं गतो भवेत् ॥३२॥
चिन्तयन् चिन्तितं बाणं कार्मुके समयोजयत्। तदाऽर्चिषः समुत्पेतुः शरादशनिसन्निभात्॥३३॥
तदाऽपसव्यं कामस्य चक्रुः शकुनयो मृगाः। दिशः प्रजज्वलुर्भूमिश्चकम्पे रज आततम् ॥३४॥

अपने युद्धकौशल और वीरता से उन्होंने अत्यन्त तुमुल युद्ध की क्रियाओं का अतिमानुष रूप में प्रदर्शन किया। उनके इस प्रकार पूर्ण पराक्रम दिखाते हुए युद्ध में तीन दिन बीत गये ॥२६॥ चौथे दिन बहुत विकट संग्राम किया गया। उस समय अस्त्रों की अग्नि से सब लोक घिर गये ॥२७॥

राजा जब अपने में श्रम से हीनताका अनुभव करने लगा कि कामदेव क्रमशः बढ़ता है तो इसी त्रुटिको अपने में जान कर उसने शंकर भगवान् का मन से स्मरण किया। तब त्रिलोचन भगवान् शंकर ने त्रिशूल भेजा। वह राजा के धनुष में बाण की तरह लग गया; उसे राजा ने अपने हाथ से पकड़ लिया क्योंकि उस सारभूत बाण को अत्यधिक गुरुतर देखा ॥२८-३०॥ "यह बाण अत्यन्त ही भारयुक्त है और वज्र के समान है किस प्रकार यह मेरे धनुष में आ गया ? ऐसा पहले तो तरकस में कभी नहीं था ॥३१॥ अथवा यह भी सम्भव है कि मैं अत्यन्त श्रांत हो गया हूँ या यह भी शक्य है कि अपने कुल के स्वामी श्रीशिव मेरे द्वारा काम को जीतने के लिये सन्निधान किये विराजे हों" ॥३२॥

इस प्रकार विचार करते हुए उसने विशेष चिन्तामग्न हो बाण को धनुष पर चढ़ाया तब वज्र के समान बाण से ज्वालायें निकलीं ॥३३॥ उससमय पक्षीगण और मृगवृन्द काम के बायीं ओर आ गये; दिशायें भीषणरूप से तपने लगीं, भूमि कांपने लगी और सब ओर धूलि छा गई जो काम के लिये अपशकुन हुआ ॥३४॥

तद्दृष्ट्वा विपरीतं स कामः सस्मार मातरम् । लक्ष्मीं साऽप्रेषयत् दूतान् रक्षणार्थं मनोभुवः ॥३५॥
तावच्चिक्षेप राजा तं शरमग्निशिखोपमम् । पश्यतां सर्वलोकानां शरः कालाऽग्निसन्निभः ॥३६॥
दहन्निव त्रिलोकीं स पपात मदनोपरि । हा हेति चुक्रुशुर्देवा दृष्ट्वा शरनिपातनम् ॥३७॥
सम्प्राप्य स शरः कामं ददाहाऽनलवत्तृणम् । धनुस्तूणयुगं शस्त्रं सर्वं भस्मीभवत् क्षणात् ॥३८॥
कामोऽपि विगतप्राणो दग्धाङ्गारसमाऽङ्गकः । निपपात क्षितितले क्षीणपुण्यो यथाऽम्बरात् ॥३९॥
तदन्तरे ते दूता लक्ष्म्या ये प्रेषिताः पुरा । आगता ददृशुः कामं भूमौ निपतितं व्यसुम् ॥४०॥
ते गृहीत्वा विसंज्ञं तं जग्मुः पद्मासमीपतः । अथ राज्ञा हतं कामं दृष्ट्वा सुधृतिमुख्यकाः ॥४१॥
अत्यन्तं जहृषुः सर्वे महारिपुनिपातनात् । सैनिका जयभेर्यादीन्यभिजघ्नुः समन्ततः ॥४२॥
हर्षव्याकुलिताः सर्वे प्रोत्सिक्ता अब्धिवज्जनाः । राजानमभिसंगम्य वर्धयामासुरुच्चकैः ॥४३॥
प्रणेमुरपरे तत्र परिरम्भन्ति चाऽपरे । पश्यन्ति सप्रणयतोऽप्यन्ये भाषन्ति केचन ॥४४॥

इस प्रकार सब ओर विपरीतता देख कर कामदेव ने माता लक्ष्मीका स्मरण किया । उसने कामदेवके लिए दूतों को भेजा ॥३५॥ जैसे ही राजा ने सब लोगों के देखते-देखते अग्नि की लपट उठने के तुल्य को छोड़ा वैसे ही महाकाल की अग्नि के समान वह बाण तीनों लोकों को भस्म करता हुआ सा मदन पर गिरा । देवगण बाण के निपात (गिरने)को देखकर हा हा कर विलाप करने लगे ॥३६-३७॥

उस बाण ने कामदेव के पास आते ही उसे इस प्रकार जलाया जैसे अग्नि तिनके को जला देती है। उसके धनुष और तूणीर का जोड़ा तथा शस्त्र सब ही क्षण भर में भस्म हो गये । कामदेव भी निष्प्राण हो कर अङ्गार (कोयलों) के समान अङ्गवाला हो भूमितल पर इसप्रकार गिर गया जैसे अन्तरिक्ष से पुण्य-क्षीण मनुष्य ॥३८-३९॥ उसके बाद वे दूत जो पहले लक्ष्मी के द्वारा भेजे गये थे उन्होंने आकर प्राणहीन कामदेव को भूमि पर पड़े देखा ॥४०॥ वे उस चेतनाहीन कामदेव को पद्मा देवी के निकट ले गये। अब सुधृति आदि राजपुत्रगण राजा द्वारा कामदेव को मारा हुआ देख बड़े प्रबल शत्रु के नष्ट होने से सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए। सैनिकगण ने जयजयकार करते और भेरी आदि बजाते हुए चारों ओर विजयका निनाद किया ॥४१-४२॥ सभी लोग समुद्र के समान हर्षातिरेक से अत्यन्त प्रसन्न हुए; राजा के पास आकर उसे जोर-जोर से प्रभूत साधुवाद देने लगे। अन्य लोग प्रणाम करने लगे, दूसरे लोग उससे गले मिलने लगे, कई प्रणामपूर्वक उसे देखने लगे एवंअन्य लोग उसके शौर्य की प्रशंसा में बोलते रहे ॥४३-४४॥

एवं प्रवृत्ते सेनायां संमर्दे हर्षसम्भवे। सुधृतिं प्राह नृपतिः कालोचितवयस्तदा ॥४५॥
सुधृते सत्वरं सेनां सन्नह्य चतुरङ्गिणाम्। प्रयाणं नगरायाऽऽदौ कृत्वा पश्चाच्च सैनिकाः ॥४६॥
ये क्षताः शस्त्रघातेन तान् भैषज्येन योजय। साम्परायेण कृत्येन मृतानग्रक्षतेन तु ॥४७॥
पृष्ठक्षतान्निखातेषु सह पश्वादिभिः कुरु। इत्याज्ञाप्य क्षितिपतिः समारोहत स्यन्दनम् ॥४८॥
तावद्भटाः सैनिकाश्च नायका नायकाऽधिपाः। वाहनानि विचित्राणि संरुह्य हेतिपाणयः ॥४९॥
इन्द्रादिविबुधेशानान् बद्धानादाय सर्वतः। परिवार्य महीपालं नगरायाऽभिचक्रमुः ॥५०॥
बन्दिवृन्दैस्तूयमानः शस्यमानस्तथा भटैः। प्रयातो नगरायाऽऽशु महीपालः श्रिया ज्वलन् ॥५१॥
भूपतेर्विजयं श्रुत्वा मन्त्रिणो नगरं द्रुतम्। अलञ्चक्रुश्च विजयं घोषयामासुरुच्चकैः ॥५२॥
वर्धनो मन्त्रिराट् तत्र दूतान् शीघ्रगमान् बहून्। आख्यातुं विजयं राज्ञो बन्धुप्रियजनेषु च ॥५३॥
प्रस्थाप्य राजमार्गेषु साकं तोरणबन्धनैः। कदलीपूगवृक्षैश्च दीपपाञ्चालिकागणैः ॥५४॥

इस प्रकार सेना में हर्ष से उत्पन्न अत्यधिक कोलाहल के होने से राजा ने सुधृति को समय के उपयुक्त वचन कहे ॥४५॥ "हे सुधृते ! चतुरङ्ग (हाथी, रथ, घोड़े और पैदल) सेना को क्रम से एकत्र कर सबसे प्रथम नगर के लिये जाने का प्रयत्न कर; बाद में जो सैनिक शस्त्रप्रहार से क्षति विक्षत हो गये हैं उन्हें औषधसेवा द्वारा ठीक कर। अत्यधिक क्षत से जो मर गये हैं उनके लिए और्ध्वदैहिक क्रिया की व्यवस्था कर तथा जो पीठ की ओर आघात से घायल है उन्हें पशुओं, रथों और वाहनों से ले जाने की व्यवस्था करदे।" इस प्रकार आज्ञा देकर राजा रथ पर आरूढ़ हो गया ॥४६-४८॥ तब तक वीरलोग, सैनिक, नायक और नायकोंके अधिपतियों ने विचित्र सवारियों पर आरूढ़ होकर अपने हाथ में अस्त्र लेकर इन्द्र आदि देवगण को बांधे हुए राजा को चारों ओर से घेर कर नगर के लिये प्रस्थान किया ॥४९-५०॥ बन्दीगण द्वारा भली प्रकार स्तुति किया और भाटों द्वारा प्रशस्ति पाया हुआ राजा विजयोल्लासकी शोभा से शोभित हो नगर की ओर गया ॥५१॥

भूपति की विजय सुनकर मन्त्रियों ने शीघ्रता से नगर को अत्यधिक सजाया और ऊँची आवाज से विजय की घोषणा की ॥५२॥ मन्त्रियों में प्रधान वर्धन ने शीघ्र जाने वाले दूतों को राजा के बन्धुगण और प्रिय लोगों में विजय का संवाद पहुंचाने के लिये भेजा ॥५३॥

तोरण-द्वारोंके बांधनेके साथ उन्हें केला और सुपारीके वृक्षोंसे सजाकर, प्रदीपपुत्तलिकाओंसे सुशोभित कर तथा

समादिशदलङ्कर्त्तुं तथा देवाऽऽलयेषु च। पूजनाय कुलगुरोश्चन्द्रमौलीश्वरस्य तु।
विशेषेण बहुविधानुपचारान् प्रकल्पयत्। कन्याः सुरूपा भूषाढ्याः श्वेतकौशेयवासिनीः।
दध्यक्षतकराश्चान्याः पूर्णकुम्भफलग्रहाः। अन्या विविधपात्रेषु विचिता इति दीपकान्।
आददानाः सङ्घशस्ता समादिशत वै द्रुतम्। विद्यापतिः कुलगुरुर्विप्रैर्विद्याविशारदैः।
जयाऽभिषेकसामग्रीं कल्पयद्विधिदृष्टतः। प्रकल्प्यैवं मन्त्रिगणैर्वर्धनप्रमुखैर्युतः ॥५६॥
विद्यापतिः स्यन्दनं स्वं समारुह्य पुराद्बहिः। जगाम सहितो विप्रैर्वर्धनो हयमास्थाय।
गजं रथं समारुढाश्चाऽन्ये मन्त्रिमुखा ययुः। क्रमेण निर्गताः सर्वे नगरद्वारतो बहिः।
तदन्तरे भूमिपतिः कुलरत्नाऽभिधं गजम्। चतुर्दन्तं श्वेतवर्णमैरावतकुलोद्भवम् ॥६२॥
अलङ्कृतं समारुह्य नगराऽभिमुखो ययौ। शत्रुञ्जयाद्यास्तनुजास्तत्पुत्राश्च पृथक् पृथक्।
हस्तिश्रेष्ठान् समारुह्य राजानमनुसंययुः। रणधीरो रथाऽऽरूढो राज्ञ आसीत् पुरःसरः।
निवर्त्य नृपतेराज्ञां सेनया सह पृष्ठतः। प्रययौ देवराजादीन् बद्धानादाय संयतः

देव-मन्दिरों में सजावट करने का राजा ने प्रस्थान करते ही आदेश दिया, "विशेषरूप से कुलगुरु चन्द्रमौलीश्वर पूजन करने के लिये बहुत प्रकार के साज-सामानों और सामग्रियोंको सम्पादित किया(स्थान-स्थान पर) सुहासिनी स्त्रियां आभूषणोंसे सजी, श्वेत रेशमी वस्त्र धारणकी हुई हाथमें दही चावल लिए हुई और अन्य महिला कुम्भ और फल लिये हुई, अन्य बालायें विविध पात्रोंमें शुभशकुनकी चित्र-विचित्र वस्तुओंको लेकर दीपकों को सुन्दर रूप से सजा संघबद्ध हो तैयार हो जांय" इस प्रकार आदेश दिया। इधर कुल के गुरु विद्यापति ने नगर में पारंगत विप्रगणसहित विधिविधान से राजा के विजय के अभिषेक की सामग्री तैयार की। इसप्रकार मन्त्रिगण के साथ विद्यापति अपने रथ पर चढ़ कर नगर के बाहर विप्रगण के साथ आया; वर्धन घोड़े पर ॥५४-६०॥ अन्य मन्त्रीलोग हाथी, रथ पर चढ़ कर आये। क्रम से सब नगर के द्वार के बाहर स्थित उसके बाद राजाने कुल-रत्न नामक गज जो चार दांतों वाला, श्वेत वर्णका, ऐरावतके कुल से सम्बद्ध आभूषित था उस पर चढ़ कर नगर की ओर प्रस्थान किया। शत्रुञ्जय आदि उसके पुत्र और पृथक्-पृथक अतिश्रेष्ठ हाथियों पर आरूढ़ होकर राजा के पीछे-पीछे चलने लगे॥६२-६४॥

रणधीर रथ पर आरूढ़ हो राजा के आगे था। राजा के आदेश का पालन कर पीछे सेना के सहित बाँधे हुये देवराज इन्द्र आदि को लेकर अत्यधिक संयतभाव से चला ॥६५॥

सुधृतिर्गजमारूढो गदापाणिः प्रतापनः । अविदूरे पुरद्वाराद्राजा गुरुमवैक्षत ॥६६॥
ततोऽवरुह्य करिणो विद्यापतिमुपाऽऽययौ । रणधीरो राजपुत्राश्चाऽन्ये सर्वे निशम्य तु ॥६७॥
राजानमवरूढं स्वाद्वाहनाद्व गुरुदर्शनात् । अवतेरुः स्ववाहेभ्यो राजानमनुसंययुः ॥६८॥
राजा गुरुं समासाद्य पस्पर्श शिरसा पदम् । शत्रुञ्जयाद्यास्तदनु प्रणेमुर्गुरुपुङ्गवम् ॥६९॥
विद्यापतिश्चापि नृपमाशीर्भिरनुयोज्य तु । राजानमवदत् पश्चात् सर्वविद्याविशारदः ॥७०॥
राजन्निमं मुहूर्त्तं वै प्रवेशे ह्यवरं विदुः । विश्राम्याऽग्रिममौहूर्त्ते प्रशस्ते नगरे विश ॥७१॥
तच्छ्रुत्वा प्राह नृपतिर्नमस्कृत्य तथाऽस्त्विति । ततोऽवतीर्य स गुरुः स्यन्दनादविदूरतः ॥७२॥
तरुच्छायां समाश्रित्य निषसादाऽऽसने शुभे । तदाज्ञया क्षितिपतिर्निषण्णो नाऽतिदूरतः ॥७३॥
शत्रुञ्जयाद्याः सर्वेऽपि निषेदुर्गुर्वनुज्ञया । विद्यापतिस्ततोऽपश्यद्रथसंस्थान् दिवौकसः ॥७४॥
दृष्ट्वा पप्रच्छ नृपतिं क इमे बन्धनं गताः । इति वाक्यं गुरोः श्रुत्वा प्राञ्जलिः प्राह भूमिपः ॥७५॥

अत्यन्त प्रतापी गदा हाथ में लिये सुधृति हाथी पर चढ़ा था। राजा ने पुर के द्वार से थोड़ी दूर पर अपने गुरुवर्य को देखा ॥६६॥ तब हाथी से नीचे उतर कर वह अपने कुलगुरु विद्यापति के पास आया। रणधीर और अन्य राजपुत्र सभी राजा को हाथी से नीचे उतरा देख गुरु के दर्शन के लिये अपने-अपने वाहनों से उतर पड़े एवं राजा के पीछे पीछे चलने लगे ॥६७-६८॥

राजा ने कुलगुरु के पास जाकर शिर से उसके पादों की वन्दना की, उसके बाद शत्रुञ्जय आदि ने गुरुश्रेष्ठ (विद्यापति) को प्रणाम किया ॥६९॥ विद्यापति ने भी आशीर्वाद से राजा को वर्धापित किया; सर्व विद्याओं में परम प्रवीण वह फिर बोले ॥७०॥

"हे राजन् इस मुहूर्त्त को प्रवेश में नेष्ट कहा गया है, विश्राम करके अग्रिम मुहूर्त्त के प्रशस्त मुहूर्त्त में नगर में प्रवेश करना" ॥७१॥ इसे सुनकर राजाने गुरुको प्रणाम कर "ऐसा ही हो" इस प्रकार कह अपनी स्वीकृति दी। वह गुरु रथ से उतर कुछ दूर वृक्ष की छाया में उत्तम आसन पर बैठा। गुरु की आज्ञा से राजा वहीं निकट बैठा; शत्रुञ्जय आदि सभी लोग भी गुरुजी के आदेश से बैठ गये। तब विद्यापति ने रथ में बैठे देवगण को देखा ॥७२-७४॥ इन्हें देखकर गुरुने राजा से पूछा, "बांध कर लाये हुये ये लोग कौन हैं ?" इसप्रकार गुरु का कथन सुन हाथ जोड़ कर राजा बोला ॥७५॥

एते शक्रादयो देवाः शत्रुपक्षसमाश्रयाः । सुधृतिप्रमुखैर्युद्धे निर्जिता बन्धनं गताः
तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो विद्यापतिरुदारधीः । असम्यगिव तन्मत्वा वचनं प्राह भूमिपम्
हे राजन् शृणु मत्प्रोक्तं नैतदौपयिकं तव । एते हि देवाः पूज्या नो मर्त्यदिष्टैकहेतवः
कारणेन हि सम्बद्धास्त्वजेया मानवैः सदा । मोचयेमान् प्रार्थयस्व शीघ्रं पूजय पूजनैः
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं राजा सुधृतिमक्षत । नृपतेरिङ्गितं ज्ञात्वा सुधृतिः सत्वरं सुरान्
विमुच्य राजसविधमानयन्मानपूर्वकम् । इन्द्रादीनागतान् दृष्ट्वा प्रोत्थितो नृपतिर्द्रुतम्
क्रमेण नत्वा शक्रादीनासनाद्यैः सभाजयत् । क्रमेण सम्पूज्य सुरान् राज्यं कोशञ्च वाहनम्
पुत्रदारादिकं सर्वं स्वञ्चाऽपि विनिवेद्य वै । अज्ञानकृतमेतन्मे क्षमध्वमिति सोऽब्रवीत्
तद्दृष्ट्वेन्द्रमुखा देवा राज्ञो दाक्षिण्यमुत्तमम् । प्रोचुः शुभतरां वाचं तत्कालसदृशीं तदा

"ये शत्रुपक्षवाले इन्द्र आदि देवता लोग हैं। सुधृति प्रमुख सेनापतियों ने इन्हें युद्ध में जीत लिया है" ॥७६॥ राजा के उस कथन को सुनकर उदारबुद्धि विद्यापति ने (इस प्रकार देवगण के कथन) अनुचित सा मान राजा से कहा ॥७७॥

"हे राजन् ! मेरा कथन सुन, यह सब तेरे लिये करना (बांधना) आदि उचित नहीं; मर्त्यप्राणियों के बनाने के एकमात्र कारण ये देवगण हमलोगों के पूज्य हैं। हमारे साथ ये विशेष कारण से सम्बन्धित हैं। मानवगण से अजेय हैं; इन्हें बन्धनमुक्त कर, प्रार्थना कर और शीघ्र इन्हें भक्तिभावपूर्ण पूजनसे संतुष्ट कर"

इस प्रकार गुरु का वाक्य सुनकर राजा ने सुधृति को देखा। राजा के संकेत को जानकर अतिशीघ्र देवगण को मुक्तकर सम्मानपूर्वक राजा के पास उन्हें पहुंचा दिया। इन्द्रादि देवगण को राजा शीघ्र उठ खड़ा हुआ ॥८०-८१॥ उसने क्रम से देवराज आदि को प्रणाम कर उनके लिए आसन और नैवेद्य आदि सजा विधिवत् अर्चन किया। क्रमसे पूजा कर उसने राज्य, कोश, वाहन पुत्र व स्त्री आदि स्वयं को भी उनकी सेवामें अर्पित कर, "हे देवगण ! यह सब मेरा अज्ञानमें किया हुआ कार्य है उसे आप इस प्रकार वह बोला ॥८२-८३॥ राजा की उत्तम विनम्रता को देख इन्द्रप्रमुख देवगण ने उस समय के अत्यन्त मङ्गलमय वचन कहे ॥८४॥

धन्योऽसि नृपतिश्रेष्ठ यस्य ते भक्तिरीदृशी । श्रीगुरौ दुर्लभा लोके कथं हास्यति ते प्रियम् ॥८५॥
अनयैव हि भक्त्या ते सर्वं सिद्ध्येत् समीहितम् । राजन्निष्टं साधयस्व साधयामो वयं दिवम्॥८६॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवाः शक्रमुख्यास्ततः परम् । राजा प्रयातो नगरं गुरुणा सम्प्रचोदितः ॥८७॥
इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामाऽऽख्याने बद्धानां देवराजादीनां मोचनपूर्वकं सादरं राज्ञा पूजनं तस्मै वरप्रदानवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥१७११॥

"हे नृपतिश्रेष्ठ ! तू धन्य है जो श्रीगुरुचरणों में तेरी ऐसी अबाधरूप से निष्ठायुक्त दुर्लभ भक्ति है; तेरा इस लोक का प्रिय हितकर इष्ट कैसे छूट सकता है ? इसी तेरी एकमात्र अविचल भक्ति से अपने अभीष्ट सब कार्य सिद्ध हो; हे राजन् ! तू अपना अभीष्ट साध, हमलोग स्वर्ग को जाते हैं" ८५-८६॥

इस प्रकार कहकर शक्रप्रमुख देवगण अन्तर्धान कर गये उसके बाद राजा गुरु से प्रेरणा (अनुज्ञा) पाकर नगर को प्रस्थान कर गया ॥८७॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्नइतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में देवगण की बन्धनमुक्ति और राजा को वरप्रदान नामक बीसवां अध्याय समाप्त ॥

एकविंशोऽध्यायः

कामममनोरथपूरणाय कमलालयया त्रिपुराराधनेन गौर्याविर्भावो दुराग्रहिणा कामेन शिवाराधनेनिषिद्धे
गौरी लक्ष्मयोः कलहपूर्वकं युद्धवर्णनम्

काममादाय ते दूताः कमलासविधं गताः। न्यवेदयन् युद्धवृत्तं देवानाञ्च पराभवम्।
श्रुत्वा लक्ष्मीर्जगन्माता दृष्ट्वा कामं गताऽऽयुषम्। ईषच्छोकसमाक्रान्ता धैर्यमालम्ब्य वै पुनः
त्रिपुरां परमेशानीं ध्यात्वा निश्चलमानसा। निमील्य नेत्रयुगलं तन्मयी संस्थिता क्षणम्।
उन्मील्य नेत्रयुगलममृतांशुप्रवर्षणम्। अपश्यन्मन्मथं लक्ष्मीस्तत्क्षणादेव मन्मथः
उत्तस्थौ निद्रित इव युद्धोत्सुकितमानसः। सम्प्रेक्ष्य परितः स्वञ्च निरायुधमवेत्य सः
लज्जितः प्रेक्ष्य जननीं ववन्दे तत्पदाम्बुजम्। वन्दित्वाऽतिविषण्णाऽऽस्यो लक्ष्मीं प्राह तदा वचः
मातः कुतो मे समरे मर्त्यैरासीत् पराभवः। अहं ते मानससुतो विष्णुपत्न्याः समुद्गतः

इक्कीसवां अध्याय

वे दूतगण कामदेव को लेकर कमला के पास गये; उन्होंने युद्ध का वृत्तान्त और देवताओं की
भगवती को कही ॥१॥ जगन्माता लक्ष्मी (यह सब) सुनकर और कामदेव को आयुशेष (मृत) देख कुछ
हुई फिर धैर्यधारण कर निश्चल (स्थिर) मन से परमेशानी त्रिपुरा का ध्यान कर अपने दोनों नेत्रों को
उसी तन्मय भाव से क्षण भर स्थित रही ॥२-३॥

अमृत की किरणों की वर्षा करनेवाले अपने दोनों नेत्रों को खोलकर कामदेव को
देखा (जिससे) कामदेव तत्काल ही युद्ध के लिए उत्कण्ठित मन वाला निद्रा से जागे हुए के समान
हुआ। चारों ओर देखकर अपने को बिना अस्त्र शस्त्रोंके जानकर वह लज्जित हुआ तथा माता को सामने
चरण कमलों में वन्दना की। वन्दन कर तब अत्यन्त दुःखितवदन हो वह लक्ष्मी से बोला ॥४-६॥

" हे मातः ! समरभूमि में मनुष्यों से मेरी हार क्यों हुई ? मैं आपका मानसपुत्र भगवती,

देवताविजयार्थं ते संकल्पाद्भवं शिवे। मोघः कथं ते सङ्कल्पो देवानाञ्चाऽपि बन्धनम् ॥८॥
वद मातर्द्रुतं ह्येतच्छोको मां दहतीश्वरि। फल्गुभूतो मृतो युद्धे किमर्थं जीवितस्त्वया ॥९॥
अल्पीयसैः पराभूतो मनसस्ते सुतोऽप्यहम्। मम नौपयिकं लोके जीवनं सर्वनिन्दितम् ॥१०॥
श्रुत्वाऽत्र कारणं मातर्हास्यामि खलु जीवितम्। श्रुत्वैवं कामवचनं शोकोद्गारसमन्वितम् ॥११॥
प्रोवाच पद्मा पद्माऽऽस्या तत्कालप्रतिमं वचः। वत्स काम शोकमेतं जहि कापुरुषाऽऽश्रितम् ॥१२॥
पुरुषा न हि शोचन्ति धीराः क्वाऽपि महाशयाः। आपदम्भोधिर्निमग्ना अपि धैर्यमहाप्लवम् ॥१३॥
समासाद्य प्रयान्त्येव तीर्त्वा सम्पत्तटं द्रुतम्। आपत्सु ग्लानिमायान्ति जनाः फल्गुस्वभावजाः ॥१४॥
शृण्वत्र कारणं वक्ष्ये येन त्वं निर्जितो रणे। न मर्त्यवीर्यात्त्वं युद्धे केवलं निर्जितः खलु ॥१५॥
राजा वीरव्रतः साक्षान्महादेवमुपाश्रितः। तत्प्रसादेन युद्धे त्वं निर्जितोऽसि महीपते ॥१६॥

की धर्मपत्नी कमला से उत्पन्न हुआ हूँ ॥७॥ हे शिवे! देवगण की विजय के लिए मैं आपके सङ्कल्प से पैदा हुआ आपका सङ्कल्प मोघ (असफल) कैसे हुआ और देवगणका भी बन्धन क्यों? ॥८॥ हे मातः! आप मुझे शीघ्रातिशीघ्र बतलावें। महेश्वरि! यह शोक तो मुझे जला डाल रहा है। मैं अत्यन्त फल्गु (साररहित) छोटा सा होकर युद्ध में मर गया। अब आपने किस लिए मुझे जीवित किया? ॥९॥ आपका मानसपुत्र अत्यल्प शक्तिवाले (थोड़े से) मर्त्यलोगों से पराजित हो गया। मेरी उपयुक्तता तो कुछ भी नहीं रहा। लोक में मेरा जीवन सब ओर से निन्दायुक्त बन गया है ॥१०॥ इस विषय में कारण को सुनकर मैं अपने प्राण छोड़ दूँगा।" इसप्रकार शोक के उद्गारों से युक्त काम के वचन को सुनकर कमलमुखवाली पद्मा ने समयोचित वाणी कही, "हे वत्स! कामदेव! तू कायर पुरुषों में रहनेवाले अपने इस शोक को छोड़। कहीं भी धीर पुरुष महानुभाव शोक नहीं करते; आपत्तिरूपी समुद्र में डुबे हुए भी धैर्यरूपी महती नौका को पाकर शीघ्र ही सम्पत्ति के तट को तरकर पहुंच जाते हैं। आपत्ति में तुच्छ स्वभाव के लोग ही ग्लानि को प्राप्त होते हैं ॥११-१४॥ जिस कारण से तू युद्ध में हारा उसको मैं बताती हूँ, सुन, केवल मर्त्य लोकवाले मनुष्यों के बल से तू युद्ध में निश्चय ही नहीं हारा ॥१५॥

राजा वीरव्रत साक्षात् महादेवके आश्रय में है; हे देहधारियोंके स्वामिन्! काम! तू उसके कृपाप्राप्त राजासे हार

तद्गच्छाऽऽराधय शिवं महादेवमधीश्वरम्। जेताऽसि समरे सर्वान् प्रसादात्तस्य शूलिनः ॥१७॥
तच्छ्रुत्वा श्रीवचः कामो जगाद क्रोधमूर्च्छितः। मा वदैवं महादेवि शत्रुपक्षसमाश्रयम् ॥१८॥
देवं वा मनुजं वाऽपि मादृशो जगतीतले। कथं नु शरणीकुर्याद्धीनः सन् जगदीश्वरि ॥१९॥
ततोऽन्यं वद देवेशं यत्प्रसादादहं द्रुतम्। जेता भवेयं सर्वेषां देवानामपि वै रणे ॥२०॥
महादेवं विजेष्यामि प्रथमं तदनन्तरम्। देवान् मर्त्यान् दानवादीन् सर्वानेव क्रमेण तु ॥२१॥
तच्छ्रुत्वा कामवचनं प्राह पद्मालया तदा। वत्स देवं न जानीषे महादेवं त्रिलोचनम् ॥२२॥
सर्वदेवाऽधिदेवेशं हित्वा कोऽन्यो महांस्ततः। यथा जलानां जलधिर्ज्योतिषाञ्च नभोमणिः ॥२३॥
पर्वतानां सुमेरुश्च तथा देवेषु शङ्करः। प्राणिनां जङ्गमा श्रेष्ठास्तेषु मर्त्यास्ततः सुराः ॥२४॥
तेभ्यो ब्रह्मा चतुर्वक्त्रः स्रष्टा लोकस्य चोत्तमः। ततो विष्णुः पालयिता यन्नाभिकमलाद्विधिः ॥२५॥
सञ्जातः प्रलयस्याऽन्ते स भवेत् पुरुषोत्तमः। ततोऽपि त्र्यम्बकः श्रेष्ठः सर्वदेवाऽधिदेवराट् ॥२६॥

गया ॥१६॥ इसलिए तू जा और अधीश्वर महादेव शिव का आराधन कर उसी शूली महेश्वर की कृपा से तू लोगों को युद्ध में जीत लेगा" ॥१७॥

श्रीदेवी के कथन को सुनकर कामदेव क्रोध से मूर्च्छित हो गया और बोला, "हे महादेवि! आप प्रकार न कहें। हे जगदीश्वरि! शत्रुपक्ष की ओर वाले देव हो चाहे मनुष्य भी क्यों न हो मेरे जैसा जगतीतल क्यों कर हीन बनकर उसकी शरण में जाय? ॥१८-१९॥ मुझे उससे अन्य देवता को आप बतावें जिसकी कृ युद्ध में मैं सब देवगण के प्रतिपक्षवाले सभी लोगों को जीत सकूँ ॥२०॥ सबसे प्रथम महादेव को जी तदनन्तर देवताओं, मर्त्यों (मनुष्यों) व दानवगण आदि सभीको क्रमसे पराजित कर दूँगा"॥२१॥ तब कामदेवका सुनकर पद्मालया ने कहा, "हे वत्स! तू महादेव त्रिलोचन शंकर को नहीं जानता; उन सर्व देवगण के अधि के अधिपतिको छोड़कर अन्य कौन देव उनसे बड़ा है? जैसे जलके स्थानोंमें समुद्र, ज्योतिर्मय पदार्थोंमें सूर्य और न में सुमेरु श्रेष्ठ हैं वैसे ही देवगणमें शङ्कर जी हैं। प्राणियों में चलने फिरने वाले श्रेष्ठ हैं, उनमें मनुष्यलोग, उनसे देवगण, उनसे लोक के सर्जन करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं, उनसे विष्णु उत्तम हैं, जिनके नाभि कमल से हुए; प्रलय के अन्त में वह ही पुरुषोत्तम हैं। उनसे भी सब देवगण के अधिदेवराज त्र्यम्बक भगवान्

यस्य संहरणं कृत्यमंशभूता महेश्वराः। रुद्राः कुर्वन्ति सर्वेशा मन्युरूपाः सुभीषणाः ॥२७॥
स देवः सर्वदेवेशः सदाशिव इति स्मृतः। यल्लिङ्गस्य पुरा विष्णुरन्तं नाऽपश्यदच्युतः ॥२८॥
यदंशेन विधेर्मानं भङ्क्त्वा छिन्नं शिरो महत्। नाऽस्ति तस्माच्छ्रेष्ठतरस्तस्मात्तं शरणं व्रज ॥२९॥
निशम्य जननीवाक्यं पुनः प्राह स मन्मथः। मातः सर्वोत्तममपि शिवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥३०॥
नाऽऽराधयाम्यहं यस्माच्छत्रु संश्रयणो हि सः। वद मातः शिवो यस्मान्महिमानमवाऽऽप्तवान् ॥३१॥
तं समाराध्य जेताऽस्मि महादेवमपीश्वरी। नैसर्गिको वा महिमा तस्य देवस्य मे वद ॥३२॥
आकर्ण्य कामवचनं तदा लक्ष्मीर्महेश्वरी। ध्याननिष्ठा समभवन्निमील्य नयनद्वयम् ॥३३॥
क्षणं ध्यात्वा महादेवीं त्रिपुरां परमेश्वरीम्। प्रार्थयामास कामस्य सौभाग्यप्राप्तये तदा ॥३४॥
विज्ञाय प्रार्थनं देवी लक्ष्म्याः कामस्य सिद्धये। गौरीं नियोजयामास सा तत्राऽविर्बभूव ह ॥३५॥
दृष्ट्वा गौरीं महालक्ष्मीः सहसोत्थाय सन्नता। भूत्वा गौरीं समादाय करेण विनिवेशयत् ॥३६॥

श्रेष्ठ है ॥२२-२६॥ जिनका कृत्य संहार करना है उनके अंशभूत महेश्वर रूद्रगण जो सर्वेश मन्यु रूप (अवन्ध्यकोप) हैं और अत्यन्त भीषण हैं वे ही उस कार्य को सम्पन्न करते हैं। वह देव सब देवगण के ईश सदाशिव कहे जाते हैं जिनके ज्योतिर्लिङ्ग का वारपार पुराकाल में अच्युत विष्णु नहीं देख पाये ॥२७-२८॥ जिनके अंश द्वारा ब्रह्मा का मानभङ्ग होकर उसका बड़ा शिर काट डाला गया उनसे श्रेष्ठतर अन्य कोई नहीं, इसलिये शिवकी शरण में जा" ॥२९॥

जननी की वाणी सुनकर फिर कामदेव बोला, "हे मातः ! सबसे उत्तम भी त्रिभुवनेश्वर शिव की मैं आराधना नहीं करूंगा क्योंकि वह शत्रुपक्ष वाले हैं। हे मातः ! तू बता शिव किसप्रकार इतनी महिमा को प्राप्त हुए ? ॥३०-३१॥ उसी परमाराध्य देव की आराधना कर हे ईश्वरि ! मैं महादेव को भी जीत लूँगा। उस देव की सहज महिमा आप मुझे बतलावें।" काम का वचन सुनकर तब महेश्वरी लक्ष्मी ने अपने नेत्रों को बन्द कर ध्यान लगाया ॥३२-३३॥

लक्ष्मी ने क्षणमात्र महादेवी परमेश्वरी त्रिपुरा का ध्यान कर कामदेव के सौभाग्य की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की ॥३४॥ देवी ने लक्ष्मी की प्रार्थना कामदेव की सिद्धिके हेतु जानकर गौरी को नियुक्त कर दिया, वह वहां प्रादुर्भूत हुई ॥३५॥

गौरी को देखकर महालक्ष्मी सहसा उठ कर भक्तिविनत हो लेकर अपने हाथ से रत्नमय सिंहासन पर

रत्नाऽऽसने ततः पूजां विधाय कमलोद्भवा । स्तुत्वा मधुरया वाचा प्राह गौरीं महेश्वरी ।
देवि धन्याऽस्मि यत्तेऽहं कृपया ह्यवलोकिता । त्वं साक्षाद्देवदेवस्य महादेवस्य प्रेयसी ।
त्वद्दर्शनं न सुलभं ब्रह्मादीनामपीश्वरि । अद्य मे त्रिपुरा प्रीता यत्त्वां द्रक्ष्यामि चक्षुषा ।
अनुजां वासुदेवस्य पत्नीं पशुपतेः प्रियाम् । इति तद्वचनं श्रुत्वा गौरी प्रोवाच सस्मितम् ।
किं पद्मे नेत्रयुगलं निमील्य ध्यानमास्थिता । किं चिन्तयसि मे ब्रूहि द्रुतं कमलवासिनि ।
निशम्य गौरीवचनं प्राह साऽमृतपेशलम् । गौरि ते वच्मि वृत्तान्तं शृणु यच्चिन्तयाम्यहम् ।
अयं कुमारः कामाख्यः सुतो मे मानसः शिवे । देवानामिष्टसिद्ध्यर्थमुद्भावित इहेश्वरि ।
स निर्जितो रणे वीरव्रतेन धरणीतले । स राजा परमेशस्य तव पत्युः प्रसादतः ।
अजेयमपि मे पुत्रं जितवान् संयुगे शिवे । विषण्णो निर्जितस्तेन सर्वान् जेतुमिहेच्छति ।
शिवमाराधयेत्युक्तो न शृणोति वचो मम । इति श्रुत्वा रमावाक्यं ददर्श काममन्तिके ।

विराजमान किया । महेश्वरी कमला ने तब पूजा कर मधुर वाणी से गौरी को कहा ॥३६-३७॥

"हे देवि ! मै धन्य हूँ कि आपने मुझे कृपाकर दर्शन दिया । आप साक्षात् देवदेव महादेव की हैं ॥३८॥ हे ईश्वरि ! आपके दर्शन ब्रह्मादि को भी सुलभ नहीं है । आज भगवती त्रिपुरा प्रसन्न हों जिससे मैं आपको आंखों से देखती हूँ ॥३९॥ आप वासुदेव की छोटी बहन हैं, पशुपति शंकर की प्रिया हैं प्रकार कमला के वचन सुन गौरी ने मन्दहास्य करते हुए कहा, " हे पद्मे ! अपने दोनों नेत्रों को बन्द कर ध्यान में लगी हो; हे कमलवासिनि ! क्या सोच रही हो मुझे जल्दी बताओ ?" ॥४०-४१॥

गौरी के वचन को सुनकर वह अमृततुल्य मधुर वाणी से बोली, "हे गौरि ! आपको सारा वृत्तान्त सुना जो मैं चिन्ता करती हूँ सुनो ॥४२॥ हे शिवे ! यह कामदेव नाम का कुमार मेरा मानस पुत्र है । हे ईश्वरि ! की अभीष्ट कार्य की सिद्धि के लिए यह उत्पन्न किया गया है ॥४३॥ धरणीतल पर उसे वीरव्रत राजा ने लिया । हे शिवे ! उस राजा ने युद्ध में अजेय (न जीते जाने जाने वाले) भी मेरे पुत्र को आपके पति कृपा से जीता है । उससे यह अत्यन्त दुःखित हो सभी को पुनः जीतना चाहता है ॥४४-४५॥ मैंने इसे शिव की आराधना कर परन्तु यह मेरी बात नहीं सुनता ।" इस प्रकार रमा की वाणी सुनकर गौरी ने की ओर देखा ॥४६॥

स्मितपूर्वं वत्स काम एहीति प्राह शङ्करी । श्रुत्वा गौरीवचः काम उपसृत्य शिवां तदा ॥४७॥
दण्डवत् प्रणिपत्याऽथ बद्धाञ्जलिपुटस्थितः । प्राह गौरी वत्स किं ते कर्त्तुं व्यवसितं वद ॥४८॥
कामः प्राह ततो मातः शृणु मे यच्चिकीर्षितम् । युद्धे सर्वान् विजेष्यामि तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ॥४९॥
तत्र देवं न जानामि यस्तुष्टो वाञ्छितप्रदः । इति श्रुत्वा गिरं तस्य प्रोवाच शिववल्लभा ॥५०॥
व्यवसायो महानेष न शिवाऽऽराधनं विना । भविष्यति ततः काम शिवमाराधय द्रुतम् ॥५१॥
न कश्चिन्मत्प्रियाल्लोके शिवादन्यो हि विद्यते । दुर्लभार्थप्रदानाय तस्माद्व्रज महेश्वरम् ॥५२॥
इत्युक्त्वा मदनं गौरी प्राह लक्ष्मीं ततो वचः । प्रेषिताऽस्मि महादेव्या त्वच्छ्रेये त्रिपुराऽऽख्यया ॥५३॥
चिन्तां परित्यज तव पुत्रः प्राप्नोति वाञ्छितम् । इति तस्या निगदितुं सन्देशमहमागता ॥५४॥
प्रसादयतु देवेशं शिवं कामार्थलब्धये । एवं वदन्त्यां गौर्यां स कामः प्राह रुषाऽन्वितः ॥५५॥
शृणु शर्वाणि मद्वाक्यं शत्रुपक्षसमाश्रयम् । शिवं कदाऽप्यहं नैव शरणं यामि शङ्करि ॥५६॥

भगवती शङ्करी ने मृदुहास्यपूर्वक "वत्स ! काम ! आओ" इस प्रकार कहा। गौरी के कथन को सुनकर काम शिवा के पास जाकर उसे दण्डवत् प्रणाम कर बाद में अपने दोनों हाथ जाड़े खड़ा हो गया। गौरा ने कहा, "हे वत्स ! तेरी क्या करने की इच्छा है सो बोल ?" ॥४७-४८॥ तब कामदेव बोला, "हे मातः ! मेरी जो कामना इच्छा है सो सुनें, अत्यन्त दुष्कर तप करके मैं सब को युद्ध में जीतूँगा। इस विषय में मैं उस देवता को नहीं जानता जो प्रसन्न होकर मुझे अभिलषित (वर) देने वाला हो।" इस प्रकार उसका कथन सुन शिववल्लभा बोली, "यह तो बड़ा भारी व्यवसाय है जो शिवजी की आराधना किये विना सम्पन्न नहीं होगा। हे काम ! इसलिए शीघ्र तू उन की आराधना कर ॥५१॥ मेरे प्रियपतिदेव श्रीशंकर को छोड़ अन्य कोई विभूति ऐसी नहीं जो दुर्लभ प्रयोजन की सिद्धि के लिए सक्षम हो इसलिये उन्हीं की शरण में जा" ॥५२॥

इस प्रकार मदन के प्रति वचन कहकर गौरी ने लक्ष्मी से कहा, "हे पद्मे ! मैं त्रिपुरा नामवाली महादेवी द्वारा तेरे कल्याणके लिए भेजी गई हूँ, तू चिन्ताको छोड़, तेरा पुत्र मनोवाञ्छित सिद्धि पायेगा। इसप्रकार उसी का सन्देश कहने आई हूँ। अपने पुत्र के इष्टफल की प्राप्ति के लिये काम देवेश भगवान् शिव की प्रार्थना करे।' इस प्रकार गौरी भगवती के कहने पर वह कामदेव क्रोध और अमर्ष में भरकर बोला ॥५२-५५॥

"हे शर्वाणि ! आप मेरी बात सुनें, शत्रुपक्ष वाले लोगों के आश्रयदाता शिव की शरण में हे शङ्करि ! मैं कभी नहीं जाऊँगा।

शिवादप्यधिकं देवं प्रसाद्य प्राप्य चेहितम् । शिवं तदाश्रितांश्चापि विजेष्याम्यहमोजसा ॥५७॥
त्यजामि वा देहमिमं न शिवं संश्रये क्वचित् । श्रुत्वैवं कामवचनं क्रुद्धा प्राह महेश्वरी ॥५८॥
यस्मान्मद्वचनं पथ्यमपि त्वं न शृणोष्यतः । शिवं युद्धे समासाद्य भस्मशेषत्वमृच्छसि ॥५९॥
शशापैवं तदा लक्ष्मीः श्रुत्वा शापं सुतस्य तम् । क्रुद्धा शशाप गौरीं सा रोषाऽऽरुणितलोचना ॥६०॥
यस्मात् कुमारे मे शापो दत्तस्तस्मात्त्वयाऽधुना । भर्तृनिन्दाश्रुतिवशात् भस्मशेषी भविष्यसि ॥६१॥
ततोऽतिक्रोधसंयुक्ता गौरी प्राह हरेः प्रियाम् । कुमारे प्रेमभावेन विचाररहिता यतः ॥६२॥
ततस्त्वं भर्तृवियुता शोकं प्राप्स्यसि वै चिरम् । सपत्नीभिरपि क्लिष्टा भविष्यसि हरिप्रिये ॥६३॥
इति शप्ता पुनर्लक्ष्मीः क्रुद्धा योद्धुं समुत्थिता । रुद्राण्यपि मृगेन्द्रं स्वं वाहनं समुपस्थिता ॥६४॥
धनुर्दिव्यं समादाय शरवर्षाणि चक्रतुः । विविधानि च शस्त्राणि तथाऽस्त्राणि च भार्गव ॥६५॥
एवं तयोः समभवत् युद्धमत्यन्तदारुणम् । गौर्य्या समागतास्तत्र प्रमथा युयुधुर्भृशम् ॥६६॥

शिव से अधिक गौरवशाली देव को प्रसन्न कर और अपना अभिलषित पाकर शिव और उसके आश्रित भक्तगण को भी मैं अपने ओज से जीत लूँगा ॥५७॥ मैं भले ही इस देह को छोड़ दूँगा परन्तु शिव को कभी नहीं भजूँगा।" इस प्रकार काम का वचन सुनकर महेश्वरी क्रुद्ध हो बोली, "मेरे हितकारी वचन को भी तू नहीं सुनता इसलिये शिव से युद्ध में भिड़कर तू भस्मशेष होगा" ॥५८-५९॥

इस प्रकार शाप दिया। तब लक्ष्मी ने अपने पुत्र के उस शाप को सुन अत्यन्त क्रुद्ध हो रोष से आँखें लाल कर गौरी को श्राप दिया, "क्योंकि अभी तुमने मेरे कुमार को शाप दिया है इसलिये तू अपने पति की निन्दा के सुनने के कारण से भस्मशेष होगी" ॥६०-६१॥ तब अत्यन्त क्रोधयुक्त हो गौरी ने विष्णुप्रिया को कहा "कुमार में प्रेमाधिक्य से तू विचारहीन हो गई सो दीर्घकाल तक पति से वियुक्ता रह शोक को प्राप्त होगी और हे हरिप्रिये ! सौतों से भी क्लेश पावेगी" ॥६२-६३॥ इस प्रकार शाप दी गई लक्ष्मी क्रुद्ध हो युद्ध करने को उठ खड़ी हुई। रुद्राणी भी अपने वाहन मृगेन्द्र सिंह पर आरूढ़ हो उपस्थित हो गई ॥६४॥ दोनों ने दिव्य धनुष लेकर बाणों की वर्षा की। हे भार्गव ! उस युद्ध में विविध अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग किया गया ॥६५॥

इस प्रकार उन दोनों का अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ। गौरी के साथ वहां आये प्रथमगण ने खूब वीरता

लक्ष्मीस्तान् प्रमथानस्त्रैर्विव्याध बलवत्तरैः । हतस्तदा महाऽस्त्रेण प्रमथा भृशपीडिताः ॥६७॥
पलायिताः शिवं प्रोचुर्युद्धं देव्याश्च पद्मया । श्रुत्वा शिवो वृषाऽऽरूढ़ः प्रययौ यत्र सङ्गरः ॥६८॥
तदन्तरे युद्धवृत्तं श्रुत्वा विष्णुः समागतः । ब्रह्माऽपि युद्धसन्देशं प्राप्य देवैः समावृतः ॥६९॥
आजगाम सरस्वत्या समेतो युद्धमीक्षितुम् । सिद्धगन्धर्वविद्याधाः सकिन्नरमहोरगाः ॥७०॥
आजग्मुर्युद्धमभवद्यत्र तत्र समीक्षकाः । अभवत्तुमुलं युद्धं लक्ष्मीगौर्योः परस्परम् ॥७१॥
सृजतो विविधाऽस्त्राणि परस्परजयेच्छया । निवारयितुमायातौ शिवविष्णू समीपतः ॥७२॥
अस्त्राऽग्निना विनिर्दग्धौ मूर्च्छितौ सम्बभूवतुः ।अथ लक्ष्मीर्धनुर्दिव्यं गौर्याश्चिच्छेद सायकैः ॥७३॥
हृदि विव्याध निशितशरेणाऽऽनतपर्वणा । हृदयाच्छरसंविद्धाद्रुधिरं बहु निर्ययौ ॥७४॥
गाढविद्धा मूर्च्छिताऽभूद्गौरी तस्मिन्महारणे । शोणितं हृदयात्तस्या निर्गतं यद्रणाऽजिरे ॥७५॥
प्रलयाग्निरिवाऽत्यन्तं प्रजज्वाल समन्ततः। तज्ज्वालाभिः समाकीर्णं जगन्नाशोन्मुखं बभौ ॥७६॥

अत्यधिक युद्ध किया। लक्ष्मी ने उन प्रमथगण को अत्यधिक बलशाली शस्त्रों से बेंध डाला। महाशस्त्र से आघात पाकर प्रमथ लोग अत्यन्त व्याकुल हो गये ॥६७॥ युद्ध से भगे उन्होंने शिव के पास जाकर पद्मा के साथ हो रहे गौरी के युद्ध के विषय में कहा। (यह) सुनकर शिव अपने वृष पर आरूढ़ होकर वहां आये जहां युद्ध (हो रहा) था ॥६८॥ बाद में युद्ध का वृत्त (समाचार) सुनकर विष्णु (वहां) आये। ब्रह्मा भी युद्ध का सन्देश पाकर देवगण सहित एवं सरस्वती के समेत युद्ध देखने को आ गये। जहां युद्ध हो रहा था वहां सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर और बड़े सर्पगण सहित दर्शकगण बनकर आये। लक्ष्मी और गौरी का आपस में अत्यन्त दारुण घोर युद्ध हुआ। दोनों ही एक दूसरे के ऊपर विजय पाने की इच्छा से अपने-अपने अस्त्र छोड़ती थी। उन्हें इससे वारण करने के लिए शिव और विष्णु समीप आये ॥६९-७२॥

अस्त्रोंकी लपेटों से जले वे दोनों मूर्च्छित हो गये। बादमें लक्ष्मी ने दिव्य धनुष लेकर बाणों से गौरीके हृदय प्रदेश पर आघात किया। अत्यन्त तीक्ष्ण फलवाले तेज बाणसे हृदय बिंधने से शरीरसे बहुत रुधिर निकला ॥७३-७४॥ बहुत अधिक बाणों से जर्जरीभूत होकर गौरी उस महारण में मूर्च्छित हो गई; युद्ध में जो उसके हृदयसे रक्त निकला वह प्रलय की अग्नि के समान चारों ओर जलने लगा उसकी ज्वालाओं से घिरा जगत् विनाश की ओर उन्मुख होने लगा ॥७५-७६॥

तदा ब्रह्मा रमां स्तोतुमुपाऽक्रामत् कृताञ्जलिः। भीतो जगन्निधनतस्तां क्षमापयितुं विधिः॥७७
जय लक्ष्मि महादेवि जय सम्पदधीश्वरि। जय पद्मालये मातर्जय नारायणप्रिये॥७८
त्वं गतिः सर्वजगतां भीतानां भयहारिणी। प्रणतार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥७९
सकृत्सन्नतिमात्रेण भक्त्या दारिद्र्यनाशिनि। जगतो हर भीतिं त्वं नारायणि नमोऽस्तु ते॥८०
जगतां जनयित्री त्वं पालयित्री हरिप्रिया। संहारिणी रुद्ररूपा नारायणि नमोऽस्तु ते॥८१
पद्माऽऽस्ये पद्मनिलये पद्मकिञ्जल्कवर्णिनि। पद्मप्रिये पद्मपदे नारायणि नमोऽस्तु ते॥८२
त्राहि त्राहि कृपामूर्ते जगद्विध्वंसनादितः। कृपया रक्ष जगतीं नारायणि नमोऽस्तु ते॥८३
इतिस्तुत्वा चतुर्वक्त्रो दण्डवत् पतितो भुवि। इन्द्राद्या निखिला देवाः सिद्धविद्याधरादिकाः॥८४
त्राहि देवि महालक्ष्मीत्येवमुच्चुक्रुशुर्भृशम्। महाग्नेर्विबुधान् दृष्ट्वा वित्रस्तान् शरणागतान्॥८५
विधिस्तुत्या च तरसा प्रसन्ना चाऽभवत् क्षणात्। मा बिभ्यथेति तान् देवानुक्त्वा सा परमेश्वरी॥८६

तब ब्रह्मा ने लक्ष्मी को हाथ जोड़कर स्तुति आरम्भ की। विधाता ने जगत् के नाश से भयभीत होकर क्षमा प्रार्थना के लिये स्तोत्रपाठ किया॥७७॥ "हे लक्ष्मी महादेवी! आपकी जय हो, हे सम्पत्ति की अधीश्वरि! आपकी जय हो, हे पद्मालये मातः! आप सबसे उत्कृष्ट रूप से विराजमान हैं। हे नारायण की प्रिये! आपकी सर्वत्र जय हो॥७८॥ सम्पूर्ण जगत् की आप ही गति हैं, डरे हुए लोगों के भय हरनेवाली हैं आपकी शरण में नतमस्तक होनेवाले के दुःख हरनेवाली देवि! नारायणि! आपको नमस्कार है॥७९॥ एक बार ही भक्तिपूर्वक जो आपके चरण कमलों में प्रणाम करता है, उसके दारिद्र्य का नाश करनेवाली हे लक्ष्मि संसार के भय को आप हर लीजिये; नारायणि! आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥८०॥ संसार को जन्म देनेवाली पालन करने वाली विष्णुपत्नी एवं रुद्ररूपा बन संहार करने वाली आप हैं आपको मेरा नमस्कार है॥८१॥ हे कमल मुखि! हे पद्म में निवास करनेवाली! पद्म के पराग के समान वर्ण (रंग) वाली, पद्म को प्यार करने वाली पद्मपदवाली नारायणि देवि! आपको मेरा नमन है॥८२॥ हे कृपामूर्त्ते! जगत् को विध्वंस और विनाशादि से बचाइये। आप कृपा करके जगत् की रक्षा करें। हे नारायणि मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ"॥८३॥

इसप्रकार चतुर्मुख ब्रह्मा ने स्तुति कर भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया। इन्द्र आदि सभी देवगण सिद्ध विद्याधर आदि सहित "हे देवि! हे महालक्ष्मि! हमारी रक्षा करो।" इस प्रकार बार-बार आर्तस्वर में प्रार्थना करने लगे। महाप्रचण्ड अग्नि से विशेष त्रस्त पीड़ित देवगण को शरण में आये देख और विधि के स्तवन से तत्काल सन्तुष्ट हो उस परमेश्वरा ने देवगण से "डरो मत" इस प्रकार कहकर उस रुधिर से उत्पन्न अग्नि को क्षणभर में

तमग्निं रुधिरोद्भूतं भक्षयामास वै क्षणात् । अग्निज्वालाविनिर्दग्धान् देवान्मर्त्यानपीतरान् ॥८७॥
दृष्ट्या पीयूषवर्षिण्या जीवयामास च क्षणात्।अथ विष्णुशिवौ चाऽपि मूर्च्छामुक्तौ समुत्थितौ॥८८॥
ते सर्वे ददृशुर्लक्ष्मीं रुधिरोत्थाऽग्निभक्षणात्। ज्वालामालां विमुञ्चन्तीं रोमकूपेभ्य आतताम् ॥८९॥
विमुक्ता मूर्च्छया साऽपि गौरी शङ्करवल्लभा। क्रोधादग्निं महाज्वालं वमन्ती पर्युपस्थिता ॥९०॥
दृष्ट्वा लक्ष्मीं रमाश्चापि क्रोधव्याकुलितेक्षणाम् । तयोः समाधानहेतोर्ब्रह्मविष्णुशिवास्तदा ॥९१॥
भारतीं प्रेषयामासुः प्रसाद्य विधिवल्लभाम् । सा समागत्य तरसा भवानीञ्च हरिप्रियाम् ॥९२॥
समादाय स्वपाणिभ्यामकरोन्मेलनं तयोः । हे रमे हे भवानि त्वं शृणु मद्वचनं शुभम् ॥९३॥
अनर्हमेतद्युवयोः क्रोधं लोकस्य नाशनम् । समाधानं विधास्येऽहं शापानाञ्च परस्परम् ॥९४॥
गौर्याः शापादेष कामः शिवाद्भस्मीभविष्यति । पुनरुज्जीवनं प्राप्य गौर्याः प्रियनिमित्ततः ॥९५॥
शिवं जेष्यति हे गौरि तव देहान्तरे पुनः । भर्तृनिन्दाश्रवणतो भस्मीभावो भविष्यति ॥९६॥

लिया। अग्नि की ज्वाला से जले हुए देवगण मनुष्यों और अन्य लोगों को भी अपनी अमृत की वर्षा करने वाली दृष्टि से क्षण में ही जीवित कर दिया। अब विष्णु और शिव भी मूर्च्छा से छुटकारा पाकर उठ खड़े हुए ॥८४-८८॥ उन सब ने रक्त से उठी हुई अग्नि के भक्षण से अपने रोमकूपों से निकली ज्वालाओं को छोड़ती हुई लक्ष्मी को देखा ॥८९॥

मूर्च्छा से उठकर शङ्करवल्लभा वह गौरी भी क्रोध से महाप्रबल अग्नि की ज्वालाओं को मुँह से निकालती हुई उपस्थिति हो गई ॥८९-९०॥ रमा लक्ष्मी को भी क्रोधसे व्याकुल ईक्षण करती देख उन दोनोंको समझाने के लिए तब ब्रह्मा, विष्णु और शिवने ब्रह्माकी पत्नी सरस्वतीको प्रसन्न करने को भेजा। उसने जल्दी ही आकर भवानी और हरिप्रिया लक्ष्मी को अपने दोनों करों से पकड़ कर उनका मेलन (मिलाप) प्रेम करवा दिया। "हे रमे ! तथा हे भवानि ! तुम मेरा मङ्गलकारी वचन सुनो ॥९१-९३॥ तुम दोनों के लिये लोक का नाश करने वाले क्रोध का करना अयोग्य है। मैं तुम्हारे दोनों के बीच हुए परस्पर के शापों का समाधान (हल) बताऊँगी ॥९४॥ गौरी के शाप से यह कामदेव भस्मीभूत होगा, फिर तुम्हारे प्रिय निमित्तकार्य से उज्जीवन पाकर हे गौरि ! तेरे दूसरे प्राप्त जन्ममें बाद में शिव को जीतेगा। तब पुनः तेरा शरीर अपने पतिदेवकी निन्दा को सुनने से भस्म (दग्ध) हो जायगा ॥९५-९६॥

रमे तवाऽपि सापत्नदुःखाच्छीघ्रं कलेवरम्। विनष्टं सत् पुनश्चारुतरं स्याच्चकलेवरम् ॥९
अंशाऽवतारे च तव भर्त्रा स्याच्च वियुक्तता। मोहं परित्यज्य परं स्वरूपं परिचिन्तय ॥९
इति वाणीवचः श्रुत्वा गौरी च हरिवल्लभा। प्रकृतिस्था तमोभावं त्यक्त्वा शान्तिं परां ययौ ॥९
इति ते राम! सम्प्रोक्तं रमाऽऽख्यानं शुभोदयम्।य एतच्छृणुयात्तस्य रमा स्याद्वाञ्छिताऽर्थदा॥१००

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्याने गौरीलक्ष्म्योर्युद्धे त्रिदेवैः सन्धिप्रयासवर्णनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥१८११॥

हे रमे ! तेरा भी अपनी सौत के दुःख से शीघ्र ही यह नष्ट हुआ शरीर फिर अधिक रूप से सुन्दर
अंशावतार में तेरे पति के साथ विरह (वियोग) होगा, (इसलिये) मोह को छोड़कर परमार्थस्वरूप का
कर" ॥९७-९८॥ इस प्रकार गौरी तथा हरिवल्लभा लक्ष्मी ने सरस्वती का कथन सुनकर पूर्ववत् स्वस्थ हो क्रोध
तमोगुण को छोड़ अत्यधिक शान्ति प्राप्त की ॥९९॥

हे परशुराम ! इस प्रकार तुझे शुभकल्याण का जनक भगवती रमा का आख्यान कहा गया। जो
इसे सुने उस पर भगवती रमा प्रसन्न हो वाञ्छित अर्थों को प्रदान करे ॥१००॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में गौरी तथा कमला के कलह से उत्पन्न
युद्ध के अनन्तर शाप और उसका समाधान नामक इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥

द्वाविंशोऽध्यायः

भगवत्या महालक्ष्म्याविष्णोर्वियोगवर्णनम्

इति श्रुत्वा महाऽऽख्यानं जामदग्न्यो महाशयः । दत्तात्रेयं पुनः प्राह विस्मितोऽत्यद्भुतश्रुतेः ॥१॥
श्रीगुरो भवता प्रोक्तमाख्यानमतिशोभनम् । रमायाश्चित्रितं सर्वविस्मापनकरं तथा ॥२॥
कथं लक्ष्मीर्भर्तृरता वियोगाद्दुःखिताऽभवत् । सपत्नीकृतदुःखं वा देहान्तकरणं महत् ॥३॥
गौर्याश्च भर्तृनिन्दातो भस्मताऽभूत् कथं वद । कृपया नाथ मयि तत् सर्वं वक्तुमिहाऽर्हसि ॥४॥
इत्यर्थितो भार्गवेण प्रीतः प्राह दयानिधिः । शृणु राम पुरावृत्तमाख्यास्ये संयतो भव ॥५॥
पुरा विष्णुर्महालक्ष्म्या वैकुण्ठे संस्थितोऽभवत् । वृन्दां भूमिश्च सन्तुष्टः स्वीचकाराऽतिभक्तितः ॥६॥

बाईसवां अध्याय

जमदग्नि के पुत्र महानुभाव उदाराशय परशुराम ने इस प्रकार भगवती के महाख्यान को सुनकर अत्यन्त अलौकिक अद्भुत कथा के श्रवण से विस्मय करता हुआ फिर श्रीदत्तात्रेयसे कहा ॥१॥

"हे श्रीगुरुदेव ! आपने भगवती रमा के अत्यन्त सुन्दर चित्र-विचित्र घटनाओं से चित्रित तथा सब के विस्मयकारक आख्यान को कहा । अपने पति की सेवा में लगी लक्ष्मी वियोग से क्यों दुःखित हुई अथवा सौतों द्वारा किया हुआ दुःख उसके लिये विशेषतः महान् देहका अन्त करने वाला क्यों हुआ? ॥२-३॥ गौरीके देह का भस्मीभाव पति की निन्दा से क्यों हुआ ? हे स्वामिन् ! आप मुझे सब यथावत् कहिये" ॥४॥ इस प्रकार परशुराम द्वारा प्रार्थना करने पर अत्यन्त प्रसन्न होकर दयानिधान दत्तात्रेय बोले, "हे परशुराम ! प्राचीन समय में घटे वृत्तान्त को मैं कहता हूँ, ध्यानमग्न हो तू सुन ॥५॥ पुराकाल में विष्णु भगवान् वैकुण्ठ में महालक्ष्मीके साथ विराजमान थे उन्होंने वृन्दा और भूमि को उनकी अत्यन्त भक्ति के कारण प्रसन्न हो अङ्गीकार कर लिया ॥६॥

ताभ्यां चिरं पूजितो वै लक्ष्म्याः कोपेन शङ्कितः । परोक्षं रमते ताभ्यामेवं चिरतरं ह्यभूत्
लक्ष्म्याऽपि विदितश्चैतत् पृष्ट आच्छादयद्धरिः । अथ कालेन महता कदाचित् पार्षदैर्युता
लक्ष्मी वाण्या समाहूता विष्णुना ज्ञापिता ययौ । तदा लक्ष्मीविहीनः स भूवृन्दाभ्यां च सम्भ
क्रीडन् समास्थितस्ताभ्यां लालितोऽतितरां हरिः। तदाऽकस्माद्रमा देवी सम्प्राप्ता सत्यलोकतः
भूवृन्दाभ्यां समालक्ष्य क्रीडन्तमतिकामुकम् । क्रोधाग्निना प्रजज्वाल हरिरालक्ष्य शङ्कितः॥
निर्गता वैकुण्ठधाम्नो ययौ द्रुततरं रमा । अनुव्रज्य हरिः शीघ्रं हिमाद्रौ तां पराऽमृशत् ॥
जग्राह दक्षहस्ते तां सान्त्वयामास वै तदा । क्रोधेन सा प्रज्वलन्ती वह्निना घृतपिण्डवत् ॥
द्रवीभूता जलमयी सञ्जाता कमलाऽऽलया । अक्षयं सलिलं तच्च नदीरूपेण चाऽवहत् ॥
सैवं पद्माऽभिधा जाता नदी परमपावनी । नारदस्य तु शापेन शुष्कतोयाऽभवद्धि सा ॥

उनसे दीर्घकाल तक पूजे गये विष्णु लक्ष्मी के कोपसे शङ्कित हो उसके परोक्ष में (पीछे से) उनके साथ रमण
इस प्रकार करते करते दीर्घकाल बीत गया ॥७॥ लक्ष्मीने भी विदित होने पर श्रीविष्णुको पूछा (परन्तु) भगवान्
ने उसे छिपाये रक्खा। इसके अनन्तर बहुत काल होने पर किसी दिन सरस्वती ने लक्ष्मी को आमं
किया। वह विष्णु को ज्ञापित कर पार्षदों सहित सरस्वती के पास चली गई। तब लक्ष्मी के जाने से विष्णु भू
और वृन्दा देवी के साथ रहे। उनके साथ क्रीड़ा करते हुए उनके द्वारा हरि भगवान् अत्यधिक सन्तुष्ट किये गये
तब अकस्मात् रमा देवी सत्यलोक से आई। उसने भूदेवी और वृन्दा दोनों के साथ अतिकामुक भाव से विष्णु
क्रीड़ा करते देख क्रोधरूपी अग्नि से लालवर्ण कर रुष्टता प्रगट की। इसे देख विष्णु शङ्कित हुए ॥८-११॥

भगवती रमा अतिशीघ्र वैकुण्ठलोक से निकल चली। हरि उसके पीछे जाकर शीघ्र हिमालय पर उ
परामर्श कर मनाया। भगवान् ने उसे दाहिने हाथ से ग्रहण किया तब सान्त्वना दी। तब वह क्रोध से जलती हु
अग्नि से जैसे घृत का जमा हुआ पिण्ड पिघल जाता है वैसे ही वह कमलालया पिघलकर जलरूप हो गई। व
अक्षयजलवाली नदी होकर बहने लगी ॥१२-१४॥ इस तरह वह पद्मा नामक परमपावन नदी हो गई। वही नार
के शाप से ही सूखे जलवाली बन गई। जब भगीरथ राजर्षिने अत्यन्त कठिन तपस्या द्वारा गङ्गा को सन्तुष्ट कर अपने
रथ के पीछे-पीछे आने के लिये मना लिया तो रथ उस मार्ग से चला ॥१५-१६॥

भगीरथोऽपि राजर्षिस्तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् । गङ्गां रथानुगां चक्रे रथस्तन्मार्गजो ययौ ॥१६॥
गङ्गया सङ्गता पद्मा शापान्मुक्ता यदा बभौ । तदा पद्मा गङ्गया तु मिलिता प्रवहच्चिरम् ॥१७॥
कालान्तरे विभक्ता च प्राक् समुद्रेण सङ्गता । पद्मागङ्गाविभेदे तु स्नानात् स्वर्गमवाप्नुयात् ॥१८॥
इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं रामः पप्रच्छ सादरम् । भगवन् नारदोऽत्यन्तशान्तचित्तो दयानिधिः ॥१९॥
कस्मात्तेन नदी शप्ता विमुक्ता शापतः कथम् । एतन्मे शंस भगवन् संभिन्ना गङ्गया कुतः ॥२०॥
एवं पृष्टो भार्गवेण प्राह दत्तो महामुनिः । शृणु राम पुरावृत्तं नारदस्याऽतिचित्रितम् ॥२१॥
कदाचिन्नारदो ब्रह्मलोके ब्रह्मसभागतः । तत्र प्रसङ्गो गान्धर्ववेदस्य समजायत ॥२२॥
तत्र गन्धर्वमुख्याश्च देवा यक्षाश्च किन्नराः । गन्धर्वं समुपाऽक्रामत् प्रशस्तं चोत्तरोत्तरम् ॥२३॥
वीणायां मूर्च्छयद्रागं नारदश्चापि तं तदा । तद्रागस्य मूर्च्छनया सर्वे ब्रह्मसभासदः ॥२४॥
नादब्रह्मणि संलीनाः प्रापुर्निर्वाणवत् सुखम् । प्रशंसुर्नारदं सर्वे साधु साध्विति वै तदा ॥२५॥

गङ्गा से मिलकर पद्मा जब शाप से मुक्त हुई तब पद्मा गङ्गा के साथ बहुत काल तक बही ॥१७॥ कुछ काल के बाद विभक्त होकर पूर्व समुद्र में जाकर मिल गई । पद्मा और गङ्गा जहां विलग होती हैं उस स्थान पर स्नान करने से मनुष्य स्वर्ग पाता है" ॥१८॥

इस प्रकार सद्गुरु दत्तात्रेय का कथन सुनकर राम ने आदरपूर्वक पूछा, "हे भगवन् । देवर्षि नारद अत्यन्त शान्तचित्त दयानिधि है, किस कारण से उसने नदी को शाप दिया और शाप से वह क्यों मुक्त हुई ? हे भगवन् ! गङ्गा से यह अलग क्यों हुई ?" इस सब वृत्त को आप मुझे कहिये ॥१९-२०॥

इस प्रकार परशुराम द्वारा पूछने पर महामुनि दत्तात्रेय बोले, "हे परशुराम ! प्राचीनकाल में घटित हुआ नारद के विषय का यह आख्यान अत्यन्त विचित्र है । किसी समय नारद ब्रह्माजी के लोक में उनकी सभा में पहुंचे, वहां गन्धर्ववेद की चर्चा का प्रसङ्ग चला ॥२१-२२॥ उसमें वहां गन्धर्वमुख्य देवगण, यक्ष एवं किन्नरगण ने एक के बाद एक सुन्दर से सुन्दरतर और सुन्दरतम गान-वाद्य आरम्भ किया ॥२३॥ तब नारद ने भी वीणा पर अपने राग के आलाप से वहां सुसंगीत सुनाया उससे प्रभावित हो सभी ब्रह्मा की सभा के सदस्यगण ने नादब्रह्म में लीन हो निर्वाण के समान परम सुख प्राप्त किया । तब सभी ने "साधु साधु" इस प्रकार कह कर नारद की प्रशंसा की २४-२५॥

अथ वाणी कच्छपीं स्वां रागमूर्च्छनकोविदा । अवादयत्तद्गतिं तु नारदाद्याश्च नो विदुः ॥२६॥
अन्ते सभा विसृष्टाऽभून्नारदो निर्गतस्ततः । सरस्वत्या गतिं तां तु चिन्तयन् पथि संययौ ॥२७॥
नारदेन न विदिता सा गतिः सर्वतोत्तमा । पद्मातीरे समागत्य नारदो निर्जने वने ॥२८॥
तां गतिं मूर्च्छयामास सरस्वत्या सुमूर्च्छिताम् । अपश्रुतिं तत्र श्रुत्वा जहासोच्चैस्तदा नदी ॥२९॥
नारदः स्वोपहासेन लज्जितो मन्युना वृतः । शशाप पद्मां सरितं यतोऽहं हसितस्त्वया ॥३०॥
ततो नष्टजला त्वं वै भविष्यसि सरिद्वरे । इति शापं सुभीमं सा श्रुत्वा तं दण्डवन्नता ॥३१॥
प्रार्थयामास बहुधा शापस्याऽन्तं तदा नदी । प्रार्थितो नारदः शापस्याऽन्तमाह नदीं प्रति ॥३२॥
गङ्गया श्रीब्रह्ममय्या भविष्यसि यदा सह । तदा त्वं शापतो मुक्ता भविष्यसि महानदि ॥३३॥
अथ पद्मा नारदं तं पप्रच्छ प्रणता सती । देवर्षे का हि सा गङ्गा कथं भूमिं प्रयास्यति ॥३४॥

अनन्तर राग तथा लयादिगान में प्रवीण सरस्वतीने अपनी वीणा पर ऐसा सुन्दर राग आलापा कि उसकी गति को नारद आदि सभासदगण नहीं जान पाये ॥२६॥ अन्त में सभा विसर्जित हो गई, नारद वहां से निकला व मार्गमें सरस्वती से आलापित राग की गति के विषय में सोचते हुए चला ॥२७॥

नारद उस सबसे उत्तम राग की गति को नहीं पहचान पाया। पद्मा नदी के तीर पर आकर नारद ने निर्जन वन में सरस्वती के द्वारा आलापी हुई उसी राग को आलापा। उसके स्वरों की विरसता को सुनकर तब नदी जोर से हँसी ॥२८-२९॥ अपने प्रति किये गय उपहास से नारद लज्जित हो बहुत क्रुद्ध हुआ; उसने पद्मा नदी को शाप दिया, "क्योंकि तूने मेरी हँसी उड़ाई है इसलिये हे सरिद्वरे ! तू सूखे जलवाली बन जायगी।" इस प्रकार अत्यन्त भीषण शाप को सुनकर वह नारद के सामने दण्डवत् होकर प्रणाम करने लगी ॥३०-३१॥ तब नदी ने बहुत प्रकार से शाप का अन्त करने के लिये प्रार्थना की। प्रार्थना किये गये नारद ने नदी को शाप का अन्त होने का प्रकार बताया ॥३२॥

"श्रीब्रह्ममयी गङ्गासे जब तू सङ्गम करेगी तब हे महानदि ! अपने शापसे छुटकारा पा जायगी" ॥३३॥ अनन्तर पद्मा ने नारद को प्रणाम कर पूछा "हे देवर्षे ! वह गङ्गा कौन है ? भूमि पर क्यों जायगी ? ॥३४॥

कथं ब्रह्ममयी सा च वद मे कृपयाऽखिलम् । इति पद्मावचः श्रुत्वा हृष्टो देवर्षिसत्तमः ॥३५॥
प्राह गङ्गासुचरितं पद्मां प्रति महानृषिः । शृणु पद्मे कथां पुण्यां महापातकनाशिनीम् ॥३६॥
परस्य जगतः कर्त्तुर्ब्रह्मणः शिवरूपिणः । शक्तिः सर्वमयी तस्य सारभूता हृदात्मिका ॥३७॥
महाकाशमयी यस्यां प्राप्तान्यणुविधिं नदि!। असंख्यातान्यण्डकानि यत्राऽण्डे भुवनावलिः ॥३८॥
एवं स्थिता महाशक्तिर्ब्रह्माद्यास्तुष्टुवुश्च ताम् । महता तपसा युक्ता प्रसन्ना साऽभवत्तदा ॥३९॥
वरं वृणीध्वं भो देवा इत्यभून्नाभसं वचः । तच्छ्रुत्वा प्राऽवदन् देवा ब्रह्मविष्णुपुरःसराः ॥४०॥
देवी त्वं वरदात्री चेन्मूढजीवा अपि द्रुतम् । अनायासेन परमां प्राप्नुयुर्येन सद्गतिम् ॥४१॥
तथा व्यक्तस्वरूपा त्वं भूत्वा तिष्ठेह सर्वतः । निशम्यैवं विधिमुखवचनं प्रत्यभाषत ॥४२॥
देवाः शृणुध्वं वः प्रीत्यै व्यक्तरूपा भवाम्यहम् । यदा तु वाष्कलिर्नाम दानवेशो महाबलः ॥४३॥

"वह ब्रह्ममयी क्यों है ? इसे आप कृपा करके मुझे कहिये ।" इस प्रकार पद्मा की बात सुनकर देवर्षिश्रेष्ठ नारद प्रसन्न हुये । उस महर्षि ने पद्मा को गङ्गा के पवित्र चरित्र को सुनाया । "हे पद्मे ! महापातकों को नष्ट करने वाली पुण्यजनिका कथा को सुन । परमोच्च शिवरूपी जगत् के रचने वाले ब्रह्म की ब्रह्ममयी शक्ति उसकी सारभूत हृदयस्वरूपिणी महाकाशमयी है ॥३५-३७॥

हे नदि ! उसमें असंख्य अण्ड अणुरूप से विराजे हुए हैं एवं उस एक अण्डमें भुवनों की श्रेणी स्थित है ॥३८॥ इस प्रकार महाशक्ति त्रिकालाबाधित नित्य स्थित है । उसे ब्रह्मा आदि कारणदेवगण ने स्तुति से प्रसन्न किया । महान तपस्या से युक्त हो तब वह प्रसन्न हो गई" ॥३९॥ "हे देवगण ! वर मांगों" इस प्रकार आकाशवाणी हुई । उसे सुनकर ब्रह्मा, विष्णु पुरःसर सभी देवगण बोले ॥४०॥ "देवी आप जब वरदात्री हैं तो मूर्ख, अज्ञानी जीव भी शीघ्र ही बिना किसी प्रयास के (सरलता से) जिससे सबसे उत्तम सद्गति को प्राप्त हो वैसे व्यक्त (प्रगट) स्वरूप बना कर आप चारों ओर इस लोक में विराजें ।" इस प्रकार विधातृ प्रमुख देवगण के वचन सुनकर वह प्रत्युत्तर के रूप में बोली ॥४१-४२॥

"हे देवगण सुनो तुम लोगों की प्रीति के लिये मैं प्रगटरूपवाली बनती हूँ । जब वाष्कलि (बालि) नामक

त्रिलोकीं स्ववशे कुर्याज्जित्वेन्द्रादींन् स्वतेजसा । तदैष विष्णुरिन्द्रार्थं वटुरूपेण दानवम् ॥४४॥
भिक्षित्वा त्रिपदं स्थानं त्रिलोकीमाहरिष्यति । विष्णोरुत्क्षिप्तपादेन भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहतः ॥४५॥
तोयरूपाऽमृतमयी निर्गच्छामि महानदी । तां मां दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च पीत्वा वा सद्गतिं व्रजेत् ॥४६॥
गङ्गा त्रिपथगा चेति तदा सिद्धा वदन्ति माम् । इत्युक्त्वा विरराम ऽथ नभोरूपा महेश्वरी ॥४७॥
एवं सा विधिमुख्यानां वरं दत्त्वा महानदी । भविष्यति हि सा गङ्गा तत्सङ्गात्ते शुभोदयः ॥४८॥
श्रुत्वैवं नारदवचः पुनः पप्रच्छ सा नदी । देवर्षे तद्वद मम कथं विष्णुपदक्षतात् ॥४९॥
गङ्गाऽवतीर्णा तत्पश्चाद्भुवश्च कथमेष्यति।श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं भविष्यमपि सुस्फुटम् ॥५०॥
पद्मयैव पुनः पृष्टः प्राह देवर्षिसत्तमः । शृणु पद्मे कथां पुण्यां गङ्गावतरणाऽभिधाम् ॥५१॥
इतस्त्रयोविंशतिमे पर्याये दानवेश्वरः । त्रेताया वाष्कलिर्नाम विष्णुभक्तोऽतिधर्मवित् ॥५२॥

महाप्रबल वीर दानवों का राजा, अपने वीर्य से (पराक्रम द्वारा) इन्द्र आदि सुरगण को जीत कर तीन लोको को वश कर लेगा तब यह विष्णु इन्द्र के लिए वटुरूप धारण कर उस दानव से तीन पाद के प्रमाण की भूमि मांग कर त्रिलोकी को ले लगा । विष्णु के द्वारा ऊपर की ओर (नापने के लिए) पाद के ऊपर करने से अण्डकटाह को भेदन कर मैं जलरूपा अमृतमयी महानदी निकलूँगी । मुझ उस महानदी को देखकर, स्पर्श कर और पीकर मनुष्य सद्गति पायेगा ॥४३-४६ तब से सिद्धगण मुझे गङ्गा और त्रिपथगा इस नाम से पुकारेंगे ।" इस प्रकार कह आकाशवाणी रूपा महेश्वरी ठहर गई ॥४७॥

इस प्रकार विधिप्रमुख देवगण को वर देकर वह महानदी गङ्गा होगी । उसी के सङ्ग से तेरा मङ्गलकारी अभ्युदय होगा" ॥४८॥ इस प्रकार नारद के कथन को सुनकर फिर उस नदी ने पूछा, "हे देवर्षे ! तो मुझे बताइये कि विष्णु के पैर के द्वारा क्षत होने से कैसे गङ्गा अवतीर्ण होगी और बाद में किस प्रकार पृथ्वी पर आवेगी ? उसी सब भविष्य को भी मैं अच्छी प्रकार सुनना चाहती हूँ" ॥४९-५०॥

पद्मा से इस प्रकार फिर पूछने पर देवर्षिश्रेष्ठ नारद बोले, "हे पद्मे ! गङ्गा के अवतरण नामकी पुण्यदायिका कथा को सुन । इससे तैईसवें पर्याय (कल्प) के त्रेता युग में दानवों का अधिपति वाष्कलि नामवाला विष्णुभक्त अत्यन्त धर्म के मर्म को जानने वाला होगा ॥५१-५२॥

तपसा तोषयित्वा तं ब्रह्माणं कमलासनम् । वरं लब्ध्वा स विपुलं युधि निर्जित्य वासवम् ॥५३॥
भविष्यति त्रिलोकेशः सदा धर्मपरायणः । अथेन्द्राद्यैः सुरैर्विष्णुः प्रार्थितो मायया ऽभवत् ॥५४॥
विप्रभक्तं वाष्कलिं तं वञ्चितुं विप्रवेषतः । वटुः खर्वतरोऽगच्छद्भिक्षितुं दानवाधिपम् ॥५५॥
योगदृष्ट्या भार्गवस्तं गुरुः प्राह विदन् हरिम् । दानवेश न विप्रोऽयं विष्णुरिन्द्रार्थमागतः ॥५६॥
वञ्चितुं त्वां विजानीहि नास्मै त्वं दातुमर्हसि । अथ दृष्ट्वा समायान्तं विष्णुं वटुकरूपिणम् ॥५७॥
मुमोदाऽतितरां साक्षाद्विष्णुदर्शनतो हि सः । उत्थाय शीघ्रं प्रणतः स्वाऽऽसने सन्निवेशयत् ॥५८॥
प्रक्षाल्य पादौ तोयेन तीर्थं मूर्ध्नि विधारयत् । सम्पूज्य भक्तिभावेन कृताञ्जलिरभाषत ॥५९॥
भगवन् किं प्रियं तेऽद्य यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् । तत्प्रतीच्छ मया दत्तं जानीह्यं वाऽविशङ्कितम् ॥६०॥
वटुराह दानवेशं राजंस्त्वं ब्रह्मचारिणे । मह्यं भूमिं प्रयच्छाऽऽशु पादत्रितयसम्मिताम् ॥६१॥

कमलासन ब्रह्मा को तपस्या से सन्तुष्ट कर विपुल वर पाकर वह इन्द्र को युद्ध में जीतकर सदा धर्मपरायण रहनेवाला त्रिलोक का स्वामी होगा। अनन्तर इन्द्र आदि देवगण से प्रार्थित विष्णु, विप्रों के भक्त वाष्कलि को ठगने के लिए विप्रवेष से बहुत छोटा सा ब्रह्मचारी (वटु) बन दानवों के स्वामी से याचना करने जायगा। योगदृष्टि से उसके गुरु भार्गव शुक्राचार्य उसे विष्णु जान बलि को चेतावनी देंगे। "हे दानवों के स्वामिन्! यह विप्र वेषधारी विष्णु इन्द्र के लिये तुझे ठगने के लिये आया है, इसे जान ले। इसे तू दान मत देना।" अनन्तर वटुकके वेषधारी विष्णु को आया देख साक्षात् विष्णु के दर्शन से वह अत्यन्त आनन्द अनुभव करने लगा। उठ कर उसने शीघ्र प्रणामकर वटुकको अपने आसन पर बिठाया। दोनों पादों को जल से धोकर तीर्थ लेकर शिर से धारण किया। भक्ति भाव से उस वटु का पूजन कर हाथ जोड़ प्रणम किये वह बोला ॥५३-५९॥

"हे भगवन्! आज आपको हमसे मनोवाञ्छित क्या प्रिय वस्तु दी जाय? इसलिये आप कहिये जिससे निश्शङ्क होकर मेरे दिये दान को आप लें" ॥६०॥

दानवों के स्वामी को वटु वामन बोला, "हे राजन्! तू मुझ ब्रह्मचारी को शीघ्र तीन पाद के बराबर भूमि दे" ॥६१॥

तच्छ्रुत्वा बाष्कलिः प्राह भगवन् गुरुणा ह्यहम् । प्रतिषिद्धोऽपि ते दद्यां कथं सर्वान्तरात्मने ॥६२॥
ईश्वराय भगवते न दद्यां याचितं किल । तां क्षमस्व गुरोर्वाक्यविहतिं पुरुषोत्तम ! ॥६३॥
इत्युक्त्वा तत्करतले पानीयं समवाऽसृजत् । प्रतिगृह्यतामिति वदन् बाष्कलिर्दृढभावनः ॥६४॥
विष्णुस्तदेश्वरीशक्तिमाविष्टो ऽवर्धत क्षणात् । सव्येन भुवमाक्रम्य पादमन्यमथोत्क्षिपत् ॥६५॥
पादाङ्गुष्ठनखोद्भिन्नब्रह्माण्डोर्ध्वतलात् स्रुता । ब्रह्मद्रवा तदा गङ्गा सुधाविशदभासुरा ॥६६॥
तृतीयपादं निक्षेप्तुं स्थलं याचत दानवम् । एकेन भूमिः सङ्क्रान्ता द्वितीयेन नभस्तलम् ॥६७॥
तृतीयपादविन्यासस्थानं वद नृपोत्तम ! । श्रुत्वा विष्णुवचः प्राह बाष्कलिर्दानवेश्वरः ॥६८॥
भगवन्नस्ति मूर्धा मे स्थानं तत्ते दिशाम्यहम् । इति श्रुत्वा पदं मूर्ध्नि न्यस्यत भूतलेन यत् ॥६९॥
प्रसन्नो दानवेशाय सायुज्यं दिशदुत्तमम् । भिन्नोर्ध्वाण्डमहाभित्तेर्निर्गतां ब्रह्मरूपिणीम् ॥७०॥

यह सुनकर बाष्कलि बोला, "हे भगवन् ! गुरु के द्वारा बारम्बार निषिद्ध करने पर भी सर्वान्तरात्मा आपको मैं क्यों न दूँ । ईश्वर षडैश्वर्य सम्पन्न आपको मैं आपका मांगा हुआ न दूँ ? उस गुरु के वचन की मैंने जो अवज्ञा की है, हे पुरुषोत्तम ! उन्हें आप क्षमा करें" ॥६२-६३॥ यह कहकर दैत्यराज ने "आप लें" इस प्रकार कहा तो दृढ़भाववाले बाष्कलिने उसके हाथमें सङ्कल्प कर पानी छोड़ दिया ॥६४॥

तब विष्णु ईश्वरी शक्ति से आविष्ट हो क्षणमात्र में ही बढ़े । दाहिने पैर से सारी भूमि को नाप कर दूसरा पैर ऊपर की ओर उछाला ॥६५॥ उसके पाद के अंगूठे के नख से फूटे हुए ब्रह्माण्ड के ऊपर के तल से स्वयं ब्रह्मद्रवा गङ्गा सुधा जैसी विशद चमकवाली झरी ॥६६॥ तब तीसरे पदको रखने के लिये दानवसे स्थलकी याचना की । "एक से भूमि को नाप लिया दूसरे से नभस्तल और हे नृपोत्तम ! तीसरे पाद के रखने का स्थान बता ।" विष्णु के वचन सुन बलि दानेश्वर बोला ॥६७-६८॥ "भगवन् ! मेरा सिर है तीसरे पाद के स्थान के लिये उसे ही मैं आपको बताता हूँ ।" इस प्रकार सुनकर वामन वटुने मूर्धा (सिर) पर पाद को रक्खा तथा उसे भूतल से नीचे भिजवा दिया । भगवान् ने प्रसन्न हो दानेश्वर को सायुज्यपदवी प्रदान की । इस प्रकार ऊर्ध्व अण्ड-कटाह की महाभित्ति से भेदन कर निकली ब्रह्मरूपिणी गंगा को ब्रह्मा कमण्डलु में महाओज से धारण करेंगे । बहुत समय के बाद देवराज अत्यन्त कठिन तपस्या कर ब्रह्मा को प्रसन्न कर उसे स्वर्ग में ले आवेगा । फिर कालान्तर में सूर्यवंश में सगर नामक राजा होगा । वह एक

गङ्गां कमण्डलौ ब्रह्मा ग्रहिष्यति महौजसा । अथ कालेन महता देवेन्द्रः सुमहत्तपः ॥७१॥
तप्त्वा प्रसाद्य ब्रह्माणं समानेष्यति वै दिवम् । ततः कालान्तरे सूर्यवंशे राजा भविष्यति ॥७२॥
सगराख्यो वाजिमेधसहस्रं स विधास्यति । हरिष्यति च तत्राऽश्वमिन्द्रः कपिलसन्निधम् ॥७३॥
षष्टिसहस्रसंख्याताः सगरस्य तु ये सुताः । अश्वं मृगयमाणास्ते भेत्स्यन्ति त्वरितो भुवम् ॥७४॥
तत्र तेजः समासाद्य कापिलं भस्मतां गताः । सागरा अथ तत्पौत्रो भगीरथ इतीरितः ॥७५॥
भविष्यति स धर्मात्मा गतिं पैतामहीमथ । विचिन्त्य तप आतिष्ठदत्युग्रञ्च महत्तरम् ॥७६॥
तप्त्वा स्वर्गाद्द्रुतं गङ्गां पतन्तीं शिवमूर्धनि । पुनर्महत्तपस्तप्त्वा ततो भूमिं भगीरथः ॥७७॥
अवतारयियषति वै रथं साऽनुगमिष्यति । भगीरथो रथे स्थित्वा त्वन्मार्गेणाऽनुयास्यति ॥७८॥
तदा त्वं शापतो मुक्ता भविष्यसि सरिद्वरे । एवं रमा सपत्नीजं दुःखं प्राप्ता महत्तरम् ॥७९॥
पुनः कालान्तरे राम रावणं राक्षसाधिपम् । रावणं सर्वलोकानां हन्तुं विष्णुरभून्नरः ॥८०॥
सूर्यवंशं समासाद्य चतुर्धा स्वं विभज्य तु । तस्य पत्नी महालक्ष्मीर्जानकी भूसमुद्भवा ॥८१॥
भूत्वा भर्तृवियोगं सा प्राप्ता गौर्यास्तु शापतः । गौरीं चाऽपि पुरा राम महादेवेन कारणात् ॥८२॥

हजार अश्वमेध यज्ञ करेगा वहां इन्द्र कपिल के संनिधान में अश्वमेध के घोड़े को चुरा ले जायगा। सगर के जो साठ हजार लड़के अश्व को ढूँढ़ते हुए अतिशीघ्रता से पृथ्वी को खोदेंगे तो कपिल के तेज के द्वारा सगरपुत्र भस्म होंगे। उसके बाद उसका पौत्र भगीरथ धर्मात्मा होगा। वह अपने पितामहगण की गति का विचार कर महान् अति उग्र तप करेगा; तपस्या करके स्वर्ग से शिव की मूर्धा स्थित जटा में वेग से गिरती गंगा को देखेगा। फिर महती तपस्या कर भगीरथ भूमि पर उसका अवतरण करावेगा वह (गंगा) उसके रथ के पीछे चलेगी। भगीरथ रथ में बैठकर तेरे प्रवाहवाले मार्ग से जायगा ॥६६-७८॥

हे सरिताओं में श्रेष्ठे ! तब तू शाप से छुटकारा पायेगी। इस प्रकार रमा अपनी सौतों से उत्पन्न किए भारी दुःख को प्राप्त हुई फिर कालान्तर में हे राम ! राक्षसों के अधिपति सब लोकों को भयभीत करनेवाले (डरानेवाले) रावण को वध करने के लिये विष्णु नरदेह धारेंगे ॥७९-८०॥

वह सूर्यवंश में अवतार लेकर चार रूपों से अपने को विभक्तकर (लीला करेंगे)। उसकी पत्नी महालक्ष्मी पृथ्वी से समुद्भवा जानकी होकर पूर्वदत्त गौरी के शापसे अपने पति से विरह प्राप्त करेगी। हे राम ! गौरी भी

वियुक्ताऽभूद्दक्षकन्या तद्यज्ञे शिवनिन्दनम् । श्रुत्वा भस्मीभवत्क्रोधाल्लक्ष्मीशापेन भार्गव ॥८३॥
इति श्रुत्वा दत्तगुरोर्वाक्यं पश्चाद् भृगूद्वहः । पुनः पप्रच्छ स गुरुं विस्तरेण कथां हि ताम् ॥८४॥
इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामाऽऽख्याने वामनबाष्कलिनोः सम्वाद-
पूर्वकं पद्माशौर्योर्भाविजन्मनि तयोर्वियोगकारणवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥१८९॥

महादेव से वियुक्त होगी । दक्षकन्या बनकर उसके यज्ञ में पतिदेव शिव की निन्दा सुनकर हे भार्गव ! लक्ष्मीके शापसे क्रोध से अपने शरीर को जला लेगी" ॥८१-८३॥

इस प्रकार भगवान् दत्तात्रेय के वचन को सुनकर भृगुकुलजात परशुराम ने फिर गुरु से विस्तारपूर्वक उस कथा को पूछा ॥८४॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में गौरी और रमा के स्वपतियों के वियोग का कारणवृत्तान्त कथन नामक बाईसवां अध्याय समाप्त ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

दाक्षायण्याः कथानकवर्णनम्

श्रीगुरो ! श्रोतुमिच्छामि विस्तरेण कथामिमाम् । गौरी केन निमित्तेन वियुक्ता शङ्करेण वै॥१॥
कुतो दक्षात् समुत्पन्ना निन्दा केन कृता तदा । कुतो देवाऽधिदेवस्य निन्दा वै समजायत ॥२॥
एतन्मे भगवन् शंस कृपया तव सेवके । सुपृष्टो भार्गवेणैवं प्राह प्रवदतां वरः ॥३॥
राम भार्गव वक्ष्यामि गौर्याः शापकथां शृणु । पुरा भस्मासुरो लोके तपस्तप्त्वा महत्तरम् ॥४॥
शिवं सुतोषयामास वरं प्राप ततोऽद्भुतम् । करं न्यसेद्यस्य मूर्ध्नि स यायाद्भस्मतां क्षणात् ॥५॥
एवं लब्ध्वा वरं दैत्यः प्रत्येतुं शिवमूर्धनि । निक्षेप्तुं करमारब्धस्ततो देवः पलायितः ॥६॥
दैत्येनाऽनुद्रुतो भूयो भीत्याऽन्तर्द्धिं समाययौ । अथ गौरी महादेवं मृगयित्वा तु सर्वतः ॥७॥

तेईसवां अध्याय

"हे श्रीगुरुदेव ! मैं विस्तारपूर्वक यह कथा सुनना चाहता हूँ। भगवती गौरी किस निमित्त से भगवान् शङ्कर से वियोग को प्राप्त हुई ॥१॥ (वह) दक्ष से क्यों उत्पन्न हुई ? किसने निन्दा की ? तब देवाधिदेव शङ्कर की निन्दा किस प्रकार हुई ? ॥२॥ हे भगवन् ! मेरे इस सन्देह की निवृत्ति आपके इस सेवक को कृपाकर कहिये।" इस प्रकार परशुराम द्वारा भली प्रकार पूछने पर प्रकर्षरूप से सुसम्बद्ध अर्थ के साथ बोलनेवालों में श्रेष्ठ भगवान् दत्तात्रेय बोले, "प्राचीन काल में भस्मासुर नामक दैत्य ने लोक में बहुत उग्र तप कर भगवान् शिव को सन्तुष्ट कर लिया; उनसे यह अद्भुत वर पाया "वह जिस किसी के सिर पर स्वहस्त रक्खे वही क्षणमात्रमें भस्म हो जाय"॥३-५॥

इस प्रकार वर मांग कर दैत्य ने इसके ऊपर मन का पूरा सन्तोष करने के लिये श्रीशिव के शिर पर हाथ धरना चाहा; तब भगवान् (वहां से) शीघ्र दौड़ निकले ॥६॥ दैत्य ने जब दौड़कर पीछा किया तो वह अन्तर्धान कर गये। इसके अनन्तर गौरीने महादेव को खोजने पर देवदेव से वियुक्त हो अत्यन्त दुःख से देह को विलुप्त कर

वियुक्ता देवदेवेन दुःखेनाऽत्यन्तभूयसा । देहं विलोपितवती ततो विष्णुरुपायतः ॥८॥
जघान तं महादैत्यमथ कालान्तरे भुवि । दक्षप्रजापतिर्देवीं तपसाऽतोषयच्छिवाम् ॥९॥
तदा गौरी देहहीना गगनैकस्वरूपिणी । तुष्टा तं छन्दयामास वरेण वरदा सती ॥१०॥
स वव्रे तनया भूत्वा गृहे मे वस शङ्करि । इति दत्त्वा समुत्पन्ना तनयोमाऽभिधानतः ॥११॥
दाक्षायणी तां शिवाय ददौ दक्षः प्रजापतिः । अथाऽऽत्मानं महादेवश्वशुरत्वेन वै गुरुम् ॥१२॥
मानयामास कस्मिंश्चित्काले ब्रह्मा शिवेन वै । सङ्गतः कार्यवशतः सहितो विष्णुमुख्यकैः ॥१३॥
तत्राऽऽजग्मुर्बुधगणाः प्रजापतिगणा अपि । अपि दक्षः समाजगामाऽथ तं दृष्ट्वा देवतागणाः ॥१४॥
प्रत्युत्थिता ऋषिगणाश्चाऽन्ये ये तत्र संस्थिताः । ब्रह्मविष्णुहरेभ्योऽन्ये सर्वे तं प्रत्युपस्थिताः ॥१५॥
अथ दक्षो मन्युयुतो महामानी शिवं प्रति । ज्वलन् क्रोधाग्निनैवाऽसौ प्रोवाच परुषं वचः ॥१६॥
एष शम्भुर्मम गुरोः प्रत्युत्थानविवर्जितः । मानस्तम्भसमारूढः शिष्यभूतोऽतिमूढधीः ॥१७॥

दिया । तब विष्णु ने उस महादैत्य को सुन्दर उपाय द्वारा मार डाला । बादमें समय व्यतीत होने पर पृथ्वी पर दक्ष प्रजापति ने तपस्या से देवी शिवा को प्रसन्न कर लिया ॥७-९॥ तब प्राकृत देहहीन आकाशमात्र व्यापकरूपा वरदेनेवाली गौरी ने प्रसन्न हो वर से उसे कृतार्थ कर दिया ॥१०॥ उसने वर मांगा कि हे शङ्करि ! तू पुत्री हो कर मेरे घर में निवास कर । इस प्रकार वर देकर पुत्रीरूप से "उमा" नाम से दाक्षायणी (दक्ष की पुत्री) भगवती उत्पन्न हुई । दक्ष प्रजापति ने उसे (विवाहयोग्यअवस्थावाली होने पर) शिव को दे दिया । अब उसने महादेव के श्वसुर के रूप में अपने को गुरु माना । किसी समय कार्यवश विष्णु प्रमुख देवगण के साथ ब्रह्मा भगवान् शिवसे मिले॥११-१३॥ वहां देवता एवं प्रजापतिगण भी सम्मिलित हुए एवं दक्ष प्रजापति भी आये । उसे देखकर देवगण और ऋषिलोग और अन्य जो वहां उपस्थित थे ब्रह्मा, विष्णु और शिव से इतर व्यक्ति सभी उन्हें देख खड़े हो गये (स्वागत और अभिनन्दन करने को) ॥१४-१५॥ अब महा अभिमानी दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हो शिव के प्रति क्रोधाग्नि से जलते हुए बहुत कटु वाणी में बोले ॥१६॥

"इस शम्भु ने गुरुस्वरूप मेरा आदर भाव से उठकर अभिवादन नहीं किया । अपने अभिमानी स्वभाव के वश से शिष्यभूत होकर भी अत्यन्त मूढबुद्धि हो गया है यह अहंभाव है ॥१७॥ सुन्दर चरित्र सुशील आदि से रहित यह यहां रह नहीं सकता ।" दक्ष का कथन सुनकर पद्म से उत्पन्न जगदीश्वर ब्रह्मा

सच्चारित्रविहीनोऽयं नाऽत्र संस्थातुमर्हति । निशम्य दक्षवचनं पद्मभूर्जगदीश्वरः ॥१८॥
मैवमज्ञ इव ब्रूहीत्येवं तं विनिवारयत् । दक्षस्तदाप्रभृति वै शिवं सर्वत्र निन्दति ॥१९॥
कदाचिद्दक्ष ईजानः सर्वान् देवानृषीन् मुनीन् । निमन्त्रयच्छिवमृते पूर्वविद्वेषहेतुतः ॥२०॥
दाक्षायणीमप्यात्मभवां शिवे रोषान्न चाऽऽह्वयत् । प्रवृत्ते तु महायज्ञे वैमानिकगणात् सती ॥२१॥
शुश्राव यज्ञं सुश्रेष्ठं पितुः सर्वसमर्हणम् । शङ्करं प्रार्थयामास पितृयज्ञदिदृक्षया ॥२२॥
शिवेन प्रतिषिद्धाऽपि दर्शनोत्कण्ठिता सती । जगाम यज्ञसदनं दीक्षितो यत्र वै पिता ॥२३॥
अथाऽवलोक्य पितरं प्रणयादब्रवीत्तदा । तात किं ते विस्मृताऽहं यज्ञे सर्वसमर्हणे ॥२४॥
इमास्ते तनुजाः सर्वा जामातृसहिताः कुतः।निमन्त्रिताः शिवः कस्मान्नाऽऽहूतः सहितो मया ॥२५॥
इत्याकर्ण्य मृडान्योक्तं दक्षो रोषाऽरुणेक्षणः।शृणु वत्से न यज्ञेऽस्मिन् शिवः पूजां समर्हति ॥२६॥
इति नाऽऽकारितस्त्वं तु न पूज्या तस्य योगतः। निशम्यैवं पितुर्वाक्यं सती प्राहाऽपमानिता ॥२७॥

ने कहा एक अज्ञजन के समान इस प्रकार मत बोल इस प्रकार उसे वारण किया। तब से ही दक्ष सर्वत्र शिव की निन्दा करते रहे ॥१८-१९॥ किसी समय दक्ष ने यज्ञ करते हुए सभी देवगण ऋषियों और मुनियों को श्रीशिवसे विद्वेष होने से उन्हें छोड़कर निमन्त्रित किया ॥२०॥

अपनी पुत्री दाक्षायणी उमा को भी शिव के प्रति रोष के कारण (उसने) नहीं बुलाया। महायज्ञ आरम्भ होने पर सती ने दिव्य विमान पर आरूढ़ देवों से पिता के सर्वप्रशंसा के योग्य सुश्रेष्ठ यज्ञ के विषय में सुना। पिता के यज्ञ को देखने की इच्छा से उसने शंकरजी से प्रार्थना की ॥२१-२२॥ शिव के द्वारा रोकी जाने पर भी सती दर्शन करने को उत्सुक हो यज्ञभूमि में गई जहां यज्ञ के लिए दीक्षित पिता था ॥२३॥ पिता को देख अत्यन्त प्रम से (सती) बोली, "हे तात सबके अर्चनयोग्य सज्जा से पूर्ण यज्ञ में क्या आप मुझे (बुलाना) भूल गये ? ॥२४॥ ये आपकी पुत्रियां सभी आपके जवाइयों के साथ क्यों बुलाई गई हैं और मेरे सहित शिव क्यों नहीं बुलाये गये ?"॥२५॥

इस प्रकार मृडानी (भवानी) का कहा सुनकर दक्ष ने रोष से लाल आंखें कर कहा, "हे वत्से ! सुन इस यज्ञ में शिव पूजा के योग्य नहीं हैं ॥२६॥ इसलिए वह नहीं बुलाये गये; उनके साथ योग होने से तू भी सम्मानयोग्य (पूजा की अधिकारिणी) नहीं है।" इस प्रकार पिता के वचन सुन अपमानित हो सती बोली ॥२७॥

तात ते चित्तविभ्रंशो महानेषोऽशुभोदयः । म्रियमाणस्येव जन्तोर्विपरीताऽर्थदर्शनम् ॥२८॥
शिवः परमकल्याणमयः सर्वसुपूजितः । पूज्यते यत्र नो यज्ञे न स यज्ञो भवेत् क्वचित् ॥२९॥
यज्ञस्तेऽयं सुसम्पन्नोऽप्येष नैवेह शोभते । विभूषिताऽपि युवतिर्यथाशुका सुन्दरी यथा ॥३०॥
विद्याहीनो यथा विप्रो भर्तृहीना यथाऽबला । शौर्यहीनो यथा राजा कर्णहीनः प्लवो यथा ॥३१॥
चन्द्रहीना यथा रात्रिः सूर्यहीनं दिनं यथा । तथा क्रतुरयं तात शिवहीनो न राजते ॥३२॥
श्रुत्वैवं वचनं सत्याः प्राह दक्षोऽतिमर्षितः । धिगनार्ये वृथाजल्पे किं न पश्यसि वै पतिम् ॥३३॥
अशिवं शिवनामानं श्मशानाऽऽवासतत्परम् । नृकरोटधरं चर्मवाससं सर्पभूषणम् ॥३४॥
भूतप्रेताऽनुगं नृस्थिमालिनं जटिलं नटम् । एवंविधः कथं पूज्यः क्रतुषु स्याद्विनिन्दितः ॥३५॥
गच्छ त्वं तत्र यत्राऽस्ति पतिस्ते ह्यशिवङ्करः । इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं सती पतिविनिन्दनम् ॥३६॥

"हे तात ! आपके चित्त का विकार हो गया है यह महान् अमङ्गल का आरम्भ सूचित करता है जैसे मरने वाले जन्तु को सब उलटा ही प्रयोजन दीखता है उसी प्रकार आपको भी विपरीत ही सूझता है ॥२८॥ भगवान् शिव परमकल्याणमय सब के द्वारा भली प्रकार पूजे जाते हैं, वह जिस यज्ञ में नहीं पूजे जाते हैं वह कहीं भी सफल नहीं होता ॥२९॥ आपका यह यज्ञ भलीप्रकार निष्पन्न है फिर भी यह (शिव के विना) शोभा नहीं देता । जैसे भली प्रकार आभूषण धारण की हुई होने पर भी युवती स्त्री विना वस्त्र पहने निरर्थक है, जैसे विद्याहीन विप्र, जैसे पति के विना स्त्री, जैसे पराक्रमरहित राजा व कर्ण (पतवार) के विना नौका, चन्द्रमा के विना जैसे रात्रि और सूर्य के विना दिन भला नहीं लगता; उसी प्रकार हे तात ! आपका यह यज्ञ शिवजी के विना शोभित नहीं होता" ॥३०-३२॥

इस प्रकार सती के वचन सुनकर दक्ष अत्यन्त रुष्ट हो बोले, "हे श्रेष्ठ जीवन से हीने ! व्यर्थ का बातें करनेवाली क्या तू अपने पति को नहीं देखती ? वह अमङ्गलकारी, झूठे ही शिव नामधारी, श्मशान घर में ही आवास परायण, नरमुण्डमालाधारी, मृगचर्म या व्याघ्र चर्म का वस्त्र पहनने वाला और सर्पों का आभूषण धारण करने वाला है उसके पीछे पीछे प्रेत चलते हैं, वह तीन मुण्डों की माला पहने हैं, जटा बढ़ाये नटरूप में हैं। इस प्रकार का यज्ञों में विनिन्दित व्यक्ति कैसे पूज्य होता है ? ॥३३-३५॥

तू वहीं जा, जहाँ अमङ्गलकारी तेरा पति है ।" इस प्रकार सती पिता के मुँह से पति की निन्दा के शब्द

पिधाय कर्णौ हस्ताभ्यां मन्युना ज्वलिता सती । असाम्प्रतं वचस्तेऽद्य देवदेवं विनिन्दसि ॥३७॥
व्यर्थं तेऽतः क्रतुरयं विहतोऽस्तु पितस्तथा । भर्तुर्महेश्वरस्येत्थं निन्दकादेष देहकः ॥३८॥
सम्भूतो धारणाऽनर्हः संश्रुतं पतिनिन्दनम्। इत्युक्त्वाऽतिरुषा संवर्त्ताऽग्निधारणमास्थिता ॥३९॥
क्षणं प्रजज्वाल ततो देहस्तस्या महाग्निना। ज्वालया सहितो देहो भस्मशेषीभवत् क्षणात् ॥४०॥
एवं सा भस्मतां प्राप्ता लक्ष्म्याः शापेन भार्गव। भर्तृ निन्दाश्रुतिवशात् क्रोधाग्नौ भस्मतां गता॥४१॥
इति श्रुत्वाऽथ पप्रच्छ रामो भृगुकुलोद्वहः । कथारससमास्वादहर्षनिर्भरिताऽन्तरः ॥४२॥
भगवन् भवता प्रोक्ता गङ्गा शक्तिस्वरूपिणी । का सा शक्तिर्ब्रह्ममयी लोकानुद्धर्तुमिच्छया ॥४३॥
ब्रह्माद्यैः प्रार्थिता गङ्गारूपिणी समजायत । श्रोतुं मे तदतीवेच्छा वद मेऽनुग्रहाद्गुरो ! ॥४४॥
इति पृष्टो भार्गवेण दत्तात्रेयः समब्रवीत् । शृणु राम तथा शक्तिर्या गङ्गारूपिणी स्मृता ॥४५॥
सा पुरोक्तैव त्रिपुरा कुमारी च त्रिरूपिका । या सम्भूता सैव शक्तिर्गङ्गा भूलोकपावनी ॥४६॥

सुनकर अपने दोनों कानों को हाथोंसे बन्दकर अत्यधिक क्रोध से जलती हुई बोली, "आप आज अप्रासङ्गिक अनुचित बातें कहते हैं जो देवाधिदेव शङ्कर की निन्दा करते हैं ॥३६-३७॥ इसलिए हे पिताजी ! आपका यह क्रतु व्यर्थ होकर व्याघातसे खण्डित हो । अपने पति महेश्वरके इसप्रकार निन्दा करनेवाले से मैंने पतिनिन्दा सुनी है इसलिये यह देह धारण योग्य नहीं है ।" इस प्रकार अत्यन्त क्रोध से सम्वर्त प्रलयकाल की अग्नि धारण कर वह स्थित हो गई ॥३८-३९॥ बाद में उस भयङ्कर अग्नि द्वारा उसका देह क्षणभर में जलने लगा । ज्वाला के सहित देह क्षणमात्र में जलकर भस्म शेष हो रह गया "हे परशुराम ! इस प्रकार लक्ष्मी के शाप से सती भस्म हो गई अपने पति के लिये निन्दा के शब्द को सुनने के कारण क्रोधाग्नि में जल गई ॥४०॥

इस प्रकार सुनकर भृगुकुल समुत्पन्न रामने बाद में कथा के सरस रस के माधुर्य का आस्वाद लेने से हर्ष से गद्गद् अन्तःकरण हो पूछा ॥४१-४२॥ "हे भगवन् आपने गंगा को शक्तिस्वरूपिणी कहा, कौन सी ब्रह्ममयी शक्ति लोकों के उद्धार करने की इच्छा से ब्रह्मादि द्वारा प्रार्थना की जाने से गंगास्वरूप हो गई है ? वह कौन है ? हे गुरुवर्य ! आप अनुग्रह कर उसे मुझे कहिये" ॥४३-४४॥

इस प्रकार परशुराम द्वारा पूछने पर दत्तात्रेय बोले, "हे राम ! सुन, जो शक्ति है और गंगा रूप में कही जाती है वह प्राचीन काल की बताई हुई त्रिपुरा कुमारी और तीन रूपवाली है वही शक्ति है जो गंगास्वरूप में उत्पन्न होकर भूलोक को पवित्र करने वाली गंगा है ॥४५-४६॥

यां ब्रह्मप्रमुखाश्चाऽपि पूजयन्त्यतिभक्तितः । सा परब्रह्ममहिषी गङ्गा मोक्षात्मरूपिणी ॥४७॥
या दृष्टा चाऽथ संस्पृष्टा पीताऽपि कणमात्रतः । पुनाति सर्वदुष्कृत्यं गङ्गा सर्वोत्तमोत्तमा ॥४८॥
त्रिपुरा च त्रिमार्गस्था त्रिपथेति श्रुता पुनः । स्थूला त्रिपथगा जाता स्थूलदृष्ट्यनुकम्पया ॥४९॥
तस्माद्गङ्गा रसमयी त्रिपुरैव समीरिता । एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टं भार्गव त्वया ॥५०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्याने ससतीदेह-
भस्मीभवनं गङ्गावतरणं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥१९४५॥

जिसे ब्रह्मप्रमुख कारण देवतागण भी अतिभक्तिभाव से पूजते हैं वही परब्रह्ममहाराज्ञी गंगा मोक्षात्मा के रूप को धारणकरनेवाली है। जो देखी गई और स्पर्श की गई तथा कणमात्र भी पी ली गई तो सभी दुष्कर्मों कुकृत्यों को परम पवित्र बना देती हैं। वही फिर गंगा, सब उत्तम वस्तुओं से भी परमश्रेष्ठ त्रिपुरा, त्रिमार्गस्था, त्रिपथा इसप्रकार सुप्रसिद्ध है। स्थूल दृष्टि वाले मनुष्यों पर अनुकम्पा करने के लिए स्थूल त्रिपथगा हो गई है ॥४७-४९॥ इसलिये त्रिपुरा ही रसमयी गंगा कही जाती है। हे भार्गव ! जो तुमने पूछा था यह तुझे सब यथावत् कहा ॥५०॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में सती देह के भस्म होने की कथा पूर्वक गंगावतरणाख्यान नामक तेईसवां अध्याय समाप्त ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

देवगणानां प्रियकाम्यया मनुष्येषु यज्ञप्रवर्त्तनवर्णनम्

इति श्रुत्वा जामदग्न्यः कथामृतरसाऽऽप्लुतः। पुनर्गुरुं पूर्वकथां प्रष्टुं समुपचक्रमे॥१॥
श्रीगुरो करुणासिन्धो त्वत्प्रोक्तरससेवनात्। शोकमोहभयाः सर्वे निःशेषेण लयं गताः॥२॥
न तृप्यामि मनाक् क्वाऽपि कथासंश्रवणात्तव। एवं परास्ते मदने मनुष्येषु महीतले॥३॥
देवानां प्रियकृद्यागः किं निमित्तमवर्त्तत। कामेनाऽपि कथं देवः शङ्करः खलु निर्जितः॥४॥
भस्मीभूतः कथं भूयो जीवितो वद कृत्स्नशः। एवं रामेणाऽनुयुक्तो दत्तात्रेयो गुरूत्तमः॥५॥
उपामन्त्र्य जामदग्न्यं प्राह प्रवदतां वरः। जामदग्न्य महाबुद्धे शृणु प्रश्नान् यथाक्रमात्॥६॥
इतिहासः पूर्वतनश्चित्रितोऽयं सुखोदयः। एवं विनिर्जिते कामे बन्धान्मुक्तो दिवस्पतिः॥७॥

चौबीसवां अध्याय

जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने कथा रूपी अमृत रस के पान से अन्तःकरण में अत्यन्त प्रीतियुक्त होकर फिर श्रीगुरुदेव से कही पूर्वकथा के सम्बन्ध में पूछना आरम्भ किया॥१॥

हे करुणा के समुद्र! श्रीगुरुदेव! आपके द्वारा सुन्दर कथा रूपी अमृतरस के सेवन से मेरे सभी शोक, मोह और भय सम्पूर्णरूप से नष्ट हो गये॥२॥ आपके कथाको सुनाने से मुझे कहीं भी तृप्ति नहीं होती (मन होता है इस पवित्र कथा को सुनता रहूँ) इस प्रकार (i) मदन के हारने पर भूमण्डल में देवगण का प्रियकरनेवाला यज्ञ किस निमित्त से आरम्भ हुआ? (ii) कामदेवने भी शंकर भगवान् को किस प्रकार जीता? फिर (3) वह क्यों भस्मावशेष हुआ एवं जीवित हुआ? यह सब यथातथ्य से पूर्णरूप से कहिये।" इस प्रकार परशुराम द्वारा पूछने पर गुरुश्रेष्ठ श्रीदत्तात्रेय जमदग्नि पुत्रके साथ सम्भाषणकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ वह दत्त गुरु बोले, "हे महाबुद्धिमान् परशुराम! तेरे प्रश्नोंको जैसे तूने पूछा वैसे ही क्रम से उत्तररूप में सुन"॥३-६॥ यह इतिहास अत्यन्त प्राचीन अनेक चित्र विचित्र कथाओं से चित्रित सुख का जनक है।

निर्जरोभिः समेतोऽगात्त्रिविष्टपपुरं प्रति । उवास तत्र देवेन्द्रः पूर्ववद्देवतादिभिः ॥८॥
यावद्वीरव्रतो राजा पृथिवीमधिसंस्थितः । तावद्देवपतिर्वीरव्रतेन कृतसंख्यकः ॥९॥
ततः कालान्तरे शक्रः प्रायाद्देवगणैर्वृतः । सत्यलोकं तत्र विधिं दण्डवत्प्रणतो बुधैः ॥१०॥
तदालोक्य विधिः शक्रं सन्नतं सह दैवतैः । प्रोवाच कृपयाऽऽविष्टः स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥११॥
विबुधेश समुत्तिष्ठ किं ते समभिवाञ्छितम्। वद द्रुतं तद्दिशामि येन त्वं सुखमाप्स्यसि ॥१२॥
इति श्रुत्वा विधिवचो विबुधेश्वर उत्थितः । बद्ध्वाऽञ्जलिं निगदितुं प्राक्रमद् विबुधैर्वृतः ॥१३॥
पितामह पुराऽस्माभिर्भवता प्रेरितैः किल । प्रसादिता महालक्ष्मीस्तया कामो महाबली ॥१४॥
अस्मदर्थस्य संसिद्ध्यै प्रेरितस्तेन वै सह । वीरव्रतात् पराभूतो बद्धो देवगणैः सह ॥१५॥
कथञ्चिद्गुरुवाक्येन मुक्तो धर्मं विजानता । अथ तत्सखिभावेन कालोऽयमतिवाहितः ॥१६॥
नाऽद्यापि मर्त्या भूलोके यजन्ति विबुधान् क्वचित्। इति विज्ञापनार्थाय देवैरत्र समागतः ॥१७॥
अग्रे यथा भवानाह तथा वर्त्ते सुरैः सह । इति श्रुत्वा शक्रवचः स्रष्टा ध्यात्वा क्षणं ततः ॥१८॥

कामदेव को जीतने पर बन्धनसे छुटकारा पाकर स्वर्ग का अधिपति इन्द्र देवगण के साथ स्वर्ग की राजधानीमें गया वह वह देवताओंके सहित पहले के समान निर्विघ्नरहने लगा । उस देवपतिने तब तक वीरव्रत के साथ युद्ध किया जब तक वह पृथ्वी पर शासन करता रहा ॥ १-९॥ बाद में समय बीतने पर इन्द्र ने देवगण के साथ ब्रह्मा के पास सत्यलोक में जाकर उन्हें दण्डवत् कर प्रणाम किया ॥१०॥ उसे देख देवगणके साथ नमन किये देवराजको कृपाकरके ब्रह्मा प्रेममयी गम्भीर वाणीसे बोले, "हे देवराज ! उठो तुम्हें क्या अभिवाञ्छित है ? शीघ्र बताओं उसे मैं करता हूँ जिससे तुम सुखी हो ओ" ॥११—१२॥ इस प्रकार ब्रह्मा की बाणी सुन देवराज इन्द्र उठा एवं अञ्जलि बांध कर देवगण से परिवारित हो कहने लगा, "हे पितामह ! प्राचीन काल में आपकी प्रेरणासे हमलोगों ने महालक्ष्मी को प्रसन्न कर लिया; उसने महाबली काम को हमारे कार्य की सिद्धि के लिये प्रेरित किया । उसके साथ वीरव्रत से पराजित देवगण के साथ मैं बांध लिया गया १३-१५ ॥ किसी प्रकार धर्म को जानते हुए गुरु के कथन से मैं छुट करायागया । अनन्तर उसके साथ मित्ररूप से यह समय (हमलोगों ने) बिताया है ॥१६॥

आज भी भूलोक में मर्त्यलोक कहीं पर भी देवगण के प्रीत्यर्थ यजन नहीं करते इसे कहने के लिये मैं देवगण को साथ लेकर यहां आया हूँ ॥१७॥ आगे जैसे आप कहेंगे उसी प्रकार देवताओं के साथमें आचरण करूंगा ।" इसप्रकार इन्द्र का कथन सुन कर सर्जन करने वाले ब्रह्मा ने क्षणभर ध्यान कर फिर शतमख को कहा, "हे देवेश ! सुन अभी

प्राह ब्रह्मा शतमखं देवेश शृण्वितीरयन्। न सम्प्रति मनुष्या वो यष्टुमर्हन्ति सर्वथा ॥१९॥
निष्कामत्वात्तथाप्येकमुपायं शृणु वच्मि ते। पर्जन्यानामधिपतिं त्वां करोम्यथ देवप ! ॥२०॥
यस्त्वां यजेत भूलोके तत्र त्वमभिवर्षय। अद्य यावत्स्वतन्त्रास्ते मेघाः पर्जन्यकारकाः ॥२१॥
मदाज्ञयैव कालेषु वर्षन्तः सर्वतो दिशम्। ते सर्वे त्वदधीनाः स्युरद्यप्रभृति देवप ! ॥२२॥
एवं पर्जन्यराजाऽभूदिन्द्रस्तेन च हेतुना। जनाः पर्जन्यकामा ये तेषां याज्य अभूद् वृषा॥२३॥
एवं देवान् यजन्ति स्म क्वचिन्मर्त्याः कृषीबलाः। एवं तदा भूमिलोके यागः प्रावर्तताऽग्रतः ॥२४॥
कामो यथा महादेवमजयत्तद्ददामि ते। एवं लक्ष्मीभवान्योश्च समाधाने तदुत्तरम् ॥२५॥
कामो मातरमाचष्ट कृताञ्जलिपुटः स्थितः। मातर्मे ब्रूहि येनाऽहं शिवं जेताऽस्मि संयुगे ॥२६॥
तमुपायं न चेद्देहं विन्यसे तव सम्मुखे। मानिनां मानहानिर्वै मरणादतिरिच्यते ॥२७॥
अद्य यावद्विजानन्ति लोका युद्धेऽमृतं हि माम्। प्रायस्तथैवाऽस्तु तच्च न मे जीवनमुत्तमम् ॥२८॥

वर्तमान में मनुष्यगण तुम्हें प्रसन्न करने के लिये सर्वथा निष्काम होने के कारण यज्ञ नहीं करेंगे ॥ १९ ॥

फिर भी एक उपाय सुनो तुम्हें मैं बताता हूँ। हे देवपते ! मैं तुम्हें पर्जन्य (मेघों) का अधिपति बना देता हूँ। जो कोई भूलोक में तुम्हारे प्रीति के लिये यज्ञ करे वहां तुम वर्षा करना। अब तक पर्जन्य (वर्षण) करने वाले मेघ स्वतन्त्र थे। मेरी आज्ञा से वर्षाकाल में सब ओर दिशाओं में वर्षा करते थे, हे देवराज आज से वे सभी तेरे अधीन हो जांय ॥ २०--२२ ॥ इस प्रकार उस हेतु से इन्द्र पर्जन्यराज हो गया। जो लोग पर्जन्य के वर्षण की इच्छा करते हैं उनके लिये इन्द्र यज्ञ के योग्य (पूज्य) हो गया" ॥ २३ ॥

इसप्रकार देवों को कह कृषि करनेवाले मर्त्य लोग यजनसे देवगणको प्रसन्न करते थे। इसप्रकार तब भूमिलोक में याग का प्रवर्तन आरम्भ हुआ; आगे जिस प्रकार काम ने महादेव को जीता वह तुम्हें बताता हूँ।" इसी प्रकार लक्ष्मी और भवानी के आपस में मेल मिलाप होने के बाद कामदेव ने माता को हाथ जोड़ कर पूछा, " हे मातः आप मुझे वह उपाय बताइये जिस से मैं शिव को युद्ध में जीत लूँ ॥ २५--२६ ॥

उस उपाय को न बताओगी तो आपके सामने देह को छोड़ूँगा। मरनेसे भी कहीं अधिक मानियोंकी मानहानि है ॥ २७ ॥ अबतक लोक में मुझे अमर ही जानते हैं, प्रायः वैसे ही मेरा अस्तित्व हो परन्तु मेरा वह जीवन उत्तम नहीं ॥ २८ ॥

निशम्यैवं कामवचो ध्यात्वा लक्ष्मीः क्षणं ततः। त्रिपुरायै नमस्कृत्य कामं प्रेक्ष्याऽब्रवीत्तदा ॥२९॥
काम ! तेऽहं ब्रवीम्यद्य रहस्यं सर्वतोऽधिकम्। येन सिद्धिस्तव भवेद्युद्धे सर्वांश्च जेष्यसि ॥३०॥
नैतत्त्वया क्वचिद्वाच्यं प्रमादेनाऽन्यथाऽपि वा। शिवादीनामपि ननु माहात्म्यं यद्वशादभूत् ॥३१॥
तस्याः श्रीत्रिपुरादेव्याः शीघ्रं प्रीतिकरं महत्। यन्मयाऽऽसादितं पूर्वं कामेश्वर्याःसुसेवनात् ॥३२॥
तत्ते ब्रवीमि श्रीदेव्या नामाऽष्टशतमुत्तमम्। संस्पृश्य विरजां शीघ्रमेहि मन्मथ मा चिरम्॥३३॥
इति श्रुत्वा रमावाक्यं हर्षसंफुल्ललोचनः। संस्पृश्य विरजातोयं शुचिर्नत्वा ह्युपस्थितः ॥३४॥
तावल्लक्ष्मीं महादेवीं क्रमेणाऽभ्यर्च्य भक्तितः। संस्थापिते रत्नपीठे कामद्रव्योपचारकैः ॥३५॥
अथ कामं समाहूय दापयित्वाऽञ्जलिं क्रमात्। त्रिपुरायाः प्रसादञ्च संयोज्य तदनन्तरम् ॥३६॥
नाम्नामष्टोत्तरशतं प्रोवाचाऽस्मै रमा तदा। श्रीदेव्याः प्राह यत् स्थूलं वपुस्तदपि सुन्दरम् ॥३७॥
एवं सम्प्राप्य कामोऽपि मातरं दण्डवन्नतः। आशीर्भिर्योजितो मात्रा प्रबद्धकरसम्पुटः ॥३८॥

इस प्रकार लक्ष्मी ने कामदेव का कथन सुनकर क्षण भर (इष्टदेव का) ध्यान कर त्रिपुरा को नमस्कार कर काम को देख कर कहा, "हे काम ! तुझे आज सबसे अधिक रहस्य की बात बताती हूँ जिससे तेरी सिद्धि होगी और युद्ध में सब को जीत लेगा ॥ २९--३० ॥

इसे तू कहीं भी किसी प्रमाद से अथवा दूसरी तरह से भी नहीं कहेगा। शिव आदि देवगण की महिमा जिसके कारण से हुई उसी श्रीत्रिपुरा देवी के महान् शीघ्र प्रीतिकर उत्तम श्रीदेवी के एक सौ आठ नाम तुम्हें बताती जिसे मैं ने कामेश्वरी की भली प्रकार भक्ति कर पूर्वकाल में प्राप्त किया था ॥३१--३२॥ तूं उस (विगत रजवाली अति सुद्ध जलवाली नदी में स्नान कर शीघ्र आ, "हे मन्मथ ! विलम्ब न कर" ॥३३॥ इस प्रकार रमा की वचन सु कर हर्ष से प्रसन्न लोचन हो कामदेव विरतजा नदी में स्नान कर विनत होकर उपस्थित हुआ ॥ ३४ ॥

इतने समय में लक्ष्मी महादेवी की भक्तिसहित संस्थापित रत्नपीठ पर कामदेव द्रव्य की सामग्रियों से क्रम विधि भक्ति पूर्वक पूजन कर बाद में काम को बुला कर क्रम से अञ्जलि दिलाकर त्रिपुरा की कृपा प्राप्त कर बाद में रमा उसे एक सौ आठ नामों का उपदेश किया "उसने श्रीदेवी का जो स्थूल ध्यान को बताया वह शरीर भी अत्यन्त ही कमनीय था ॥ ३६--३७ ॥ इस प्रकार एक सौ आठ नाम पाकर कामदेवी माता को दण्डवत् प्रणाम किया माता द्वारा

मातरं प्राह मदनः स्वं जानन् कृतकृत्यकम् । मातर्ममाऽऽज्ञां वितर व्रजेऽहं तां प्रसादितुम् ॥३६॥
त्रिपुरां परमेशानीं त्रिमूर्त्तीनाश्च संश्रयाम् । इति प्रार्थ्य तयाऽऽज्ञप्तो नमस्कृत्य च मातरम् ॥४०॥
ध्यायन् श्रीत्रिपुरापादपद्मं हृदि सुभक्तितः । जगाम मन्दरगिरिकन्दरे सुरमन्दिरे ॥४१॥
तत्र निर्मलसुस्वादुसलिलाऽऽस्त्रावकूलके । कदम्बतरुमूले वै निषसाद शुभे स्थले ॥४२॥
स्नात्वा तत्र समासीनो ध्यायन्मूर्तिं हृदम्बुजे । रमाप्रोक्तक्रमेणैव मानसैरुपचारकैः ॥४३॥
अभ्यर्च्य त्रिपुरामम्बां महाविभवविस्तरैः । अष्टोत्तरशतं नाम्नां जजाप परभक्तितः ॥४४॥
नामाऽष्टशतकाऽऽवृत्तिं प्रत्यहं तस्य कुर्वतः । ध्यानतत्परचित्तस्य प्रसन्ना श्रीः पराम्बिका ॥४५॥
अथ स्वप्ने मन्मथस्य रमारूपेण सा परा । आगत्य प्राह मदनं मधुनिष्यन्दया गिरा ॥४६॥
वत्स काम! किं बहुधा नाममात्रप्रपाठतः । अनवाप्यैव विद्यां मे कथं ते स्यात् समीहितम् ॥४७॥

उसे आशीर्वाद दिया गया । मदन ने हाथ जोड़ माता से अपने को कृत कार्य हुआ जानकर कहा, "हे मातः ! मुझे आज्ञा दो जिससे मैं उसे प्रसन्न करने के लिये जाऊँ ॥३८--३९॥

जो त्रिपुरा परमेशानी और तीनों मूर्त्तियों की आश्रयमूला है ।" इस प्रकार प्रार्थना कर उससे आज्ञा लेकर माता को प्रणाम कर श्रीत्रिपुरा के चरण कमलों का हृदय में भक्तिसहित ध्यान कर मन्दर पर्वत की कन्दरा में स्थित देवमन्दिर में गया ॥ ४०--४१ ॥ वहां निर्मल अत्यन्त स्वादिष्ट जल के सतत प्रवाह के तट पर स्थित कदम्ब वृक्ष के नीचे शुभ स्थल में वह बैठा ॥ ४२ ॥ वहां स्नान कर भगवती की मूर्त्ति को हृदय कमल में ध्यान करता हुआ बैठा हुआ रमा के बतलाये हुए क्रम से महा विभव विस्तारवाले मानसिक उपचारों से त्रिपुरा अम्बा की अच्छी प्रकार पूजन कर उत्कृष्ट भक्ति से एक सौ आठ नामों की आवृत्ति करते हुए उस भगवती के ध्यान में परायण मन वाले उसके ऊपर श्री पराम्बिका प्रसन्न हो गई ॥४५॥ अनन्तर मन्मथ के स्वप्न में वही परा रमा के स्वरूप से आकर मधुर स्निग्धवाणी में बोली, "हे वत्स ! कामदेव बहुत बार नाम मात्र के पाठ से क्या लाभ जब मेरी विद्या को नहीं पायेगा तो तेरा मन का इच्छित कैसे होगा ? ॥ ४६--४७ ॥

इति श्रुत्वा प्रणम्याऽथ कामः प्राह कृताञ्जलिः। मातर्विद्यां न जानामि भवत्या न पुरोदिता ॥४८॥
कृपया तां ब्रूहि मह्यं प्रपन्नाय कृपामयि !। अथ सा परमेशानी प्राह कामं दयाऽन्विता ॥४९॥
वत्स नाऽद्यापि विदिता सा त्वयाऽन्धइवोडुपम्। नामस्तोत्रे सुनिहिता गुप्ता पञ्चदशात्मिका ॥५०॥
नवधा संस्थिता तत्र द्विषट्नामसमाश्रया । आद्यमाद्येव सौऱ्यके पञ्चमं वेद दिङ्नौ ॥५१॥
षष्ठं रसाङ्कयोरन्त्यमश्वे सूर्ये च संस्थितम्। द्वितीययुक्तमेतावत्तृतीयञ्च चतुर्थकम् ॥५२॥
द्वितीये तत्परे स्थाने भूतरुद्रतिथा स्थितम्। षष्ठसप्तमतुर्याणां योगमष्टमसंयुतम् ॥५३॥
एतन्महाकारणं वै त्रिपुरारूपपमद्भुतम्। इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी क्षणेन परमेश्वरी ॥५४॥
अथ कामो नेत्रयुगमुन्मील्य समचेष्टत। न तां तत्र बहिर्दृष्ट्वा विमनाः समपद्यत ॥५५॥
नूनं मया स्वप्न एष दृष्टः परमशोभनः। न मे निद्रा समायाति ध्यायतो जगदम्बिकाम् ॥५६॥
एष मे यातिषष्ठो वै मासः साधयतोऽन्वहम्। न कदाचिदगान्निद्रा रात्रावपि समाहितः ॥५७॥
इति सञ्चिन्त्य भूयोऽपि स्वप्नदृष्टं विभावयत्। विभाव्यमानस्य तदा नाम स्तोत्रादुपस्थिता ॥५८॥

इस प्रकार सुनकर काम उसे प्रणाम कर हाथ जोड़ बोला, "हे मातः मैं विद्याका मन्त्र नहीं जानता आपने पहले मुझे नहीं कहा प्रतिदिन जगदम्बाके एक सौ आठ नामोंको जपते मेरा यह छठा मास चलता है मैं समाहित मनसे बैठा रहता (कभी रात्रि में भी निद्रा नहीं आई)। इसप्रकार सोच कर फिर भी स्वप्न में देखे वृत्त के विषय में उसने उपदेश नहीं किया हे कृपामयि ! उसे मुझ शरणमें आये को आप कृपाकर के बताइये"। तदनन्तर वह परमेशानी दया करके कामदेव को बोली, 'हे वत्स ! आज भी जैसे अन्धा व्यक्ति चन्द्रमा को नहीं जानता वैसे तुझे इस विद्या का पता नहीं। यह पञ्चदशाक्षरवाली नाम स्तोत्रमें भली प्रकार सुरक्षित, गुप्त है॥४९--५०॥वहां नव(नवयोन्यात्मक) रूपसे स्थित है १२नामकी आश्रय मूला है। यह ही महाकारण अद्भुत त्रिपुरा भगवती का स्वरूप है। इसप्रकार कह कर परमेश्वरी देवी क्षण में ही अदृश्य हो गई अब काम ने आंखें खोलकर चेष्टाकी वहां उसे न देखकर वह अत्यन्त चञ्चल मन हो गया ॥५१--५५॥

अवश्य ही मैंने यह अत्यन्त शोभन स्वप्न देखा है जगदम्बिका का ध्यान करते हुए मुझे निद्रा नहीं आती साधना करते हुये छठा मास चलता है कभी भी निद्रा नहीं आई ("कामोयोनिः कमला वज्रपाणि र्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमित्रः" आदि से प्रतिपादित कादिमहाविद्या का उपदेश दिया "क ए ई ल ह्रीं स क ह ल ह्रीं स क ल ह्रीं" इस गुप्त पञ्चदशाक्षरी विद्या का उपदेश दिया) इस प्रकार सोचकर फिर विशेष स्वप्न

विद्या पञ्चदशार्णा या तस्यां संशयितोऽभवत्। स्वप्नत्वेन श्रमं मत्वा तदा प्राहाऽशरीरिणी ॥५६॥
काम! नाऽत्र संशयितुमर्हसीति स्फुटं वचः। नाभसं काम आकर्ण्य विमृश्याऽथ पुनः पुनः ॥६०॥
नाऽन्तं समाययौ तेन सस्मार जननीं रमाम्। अथ कामस्मृता लक्ष्मीः सन्निधानं समेत्य सा ॥६१॥
काम किं ते संस्मृताऽस्मीत्येवमाह पुरःस्थिता। दृष्ट्वा प्राप्तां रमां कामः प्रणम्याऽऽरचिताऽञ्जलिः। ६२।
स्वप्नवृत्तं नभोवाणीं प्राह मातुर्यथातथम्। श्रुत्वाऽथवा चिरं ध्यात्वा प्रसन्नवदनाऽब्रवीत् ॥६३॥
वत्स काम धन्यतमस्त्वं ते सिद्धमभीप्सितम्। त्रिपुरैव हि ते स्वप्ने प्रसन्ना प्राह सा परा ॥६४॥
सन्देहं जहि तत्र त्वं यत्तयोक्तं हि तत्तथा। भूयस्तां साधयेत्युक्त्वा साऽन्तर्धानं ययौ क्षणात् ॥६५॥
अथ कामश्च तां विद्यां जजापैकाग्रमानसः। दिव्यं वर्षत्रयं पश्चादाविर्भूता महेश्वरी ॥६६॥
अपश्यन्मन्मथं तत्र संहृताऽक्षगणं दृढम्। निश्चेष्टं निर्विकारञ्च समानप्राणनिर्गमम् ॥६७॥
तेजोराशिं समालोक्य कृपयाऽऽसाद्य वै तनुम्। रमोपदिष्टध्यानाऽनुरूपमूर्तिसमुज्ज्वला ॥६८॥

दृष्ट का चिन्तन किया बारम्बार उस पर ध्यान जमाने से नाम स्तोत्र से यह विद्या उसे प्राप्त हो गई ॥५८॥ जो पञ्चदशाक्षरी विद्या है। स्वप्न में देखे भाव को श्रम मान कर उसमें उसे संशय हुआ तब अशरीरिणी आकाश वाणी हुई ॥५९॥ इस प्रकार एक दम स्पष्ट आकाश से प्रगट वाणी को सुन बारम्बार उस पर विचार कर उसका सिद्धान्त स्थिर नहीं कर पाया तब उसने अपनी माता रमा को याद किया। अनन्तर काम के स्मरण से लक्ष्मी उसके सन्निकट आकर "हे काम तूने मुझे किस लिये स्मरण किया?" इस तरह कहा और सामने उपस्थित हो गई। रमाको आई देख कामदेव ने प्रणाम कर हाथ जोड़े-जोड़े स्वप्न के वृत्तान्त तथा आकाशवाणी को माता के सामने यथावत् कहा। सुन कर अथवा अधिक समय तक ध्यान कर प्रसन्न मुख हो वहबोली, "हे वत्स! काम तू सबसे अधिक धन्य है तेरा अभीष्ट सिद्ध है परा भगवती त्रिपुरा ने ही स्वप्न में प्रसन्न हो कहा तू सन्देह छोड़ दे इस विषय में जो उस पराम्बा ने बताया वह उसी प्रकार यथार्थ है।" फिर तू उसकी साधन कर इस प्रकार कह कर क्षण भर में रमा अदृश्य हो गई ॥६०-६५॥

अब कामने एकाग्र मन से श्रीविद्या मन्त्रका जप किया; दिव्य तीन वर्ष के बाद महेश्वरी स्वयं प्रकट हुई ॥६६॥ वहां अपनी सब इन्द्रियों को संयमित कर दृढ़ निश्चय किये निश्चेष्ट मुखमण्डल पर तेज की आभा निर्विकार और उसका समान (नाभिमण्डल का वायु) और प्राण (हृदय प्रदेश का वायु) बराबर चलता है इस प्रकार देख कृपा कर के

प्राह वत्स काम ! किं ते वाञ्छितं तत्प्रतीच्छ मे । इति वाक्यं समाकर्ण्य चक्षुरुन्मील्य चाऽग्रतः ॥६६॥
ददर्श देवीं त्रिपुरां ध्यातरूपां मनोहराम् । महातेजोमयीञ्चाऽथ हर्षाब्धौ स न्यमज्जत ॥७०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये कामोपाख्याने कामस्य श्रीविद्यामन्त्रजापेने-
ष्टदेवतादर्शनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२०१५॥

शरीर धारणकर रमा के बताये हुए ध्यानके अनुसार ही अति समुज्ज्वल मूर्त्ति धारणकर त्रिपुरा बोली, "हे वत्स ! काम तुझे क्या अभीष्ट है वह मेरे से मांग ।" इस प्रकार वाक्य सुन कर आंखें खोल कर आगे ध्यान किये गये रूपधारिणी मनोहर और महातेजोमयी देवी त्रिपुरा को देखा और वह हर्ष के सागर में अत्यन्त निमग्न हो गया ॥६७-७०॥

इस प्रकार इतिहासोत्तम श्रीसम्पन्न त्रिपुरारहस्य के कामोपाख्यान में काम को श्री विद्यामन्त्र के जप से इष्टदेव के दर्शन नामक चौबीसवां अध्याय समाप्त ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

परास्विकाया दिव्यस्वरूपवर्णनम्

दृष्ट्वैवं त्रिपुरां देवीं कुरुविन्दसमप्रभाम् । मणिप्रवेकप्रत्युप्तचारुकोटिरशोभिताम् ॥१॥
कोटीरप्रान्तविलसद्बालपीयूषदीधितिम् । ललन्तिकारत्नकान्तिसिन्दुरद्विगुणारुणाम् ॥२॥
विकसन्नीलकुमुदसुहृन्नेत्रत्रयोज्ज्वलाम् । मणिताटङ्कयुगलसङ्क्रान्ताऽपाङ्गसम्पदम् ॥३॥
नासामुक्ताफलोष्ठाभापाटलीभूतदिक्तटाम् । दन्तपंक्तिपराभूतकुन्दकोरकडम्बराम् ॥४॥
ग्रीवाब्जशिखरोद्भूतमुखाम्बुजविचित्रिताम्। मृदुबाहुलताप्रान्तकोरकामाङ्गुलावलिम् ॥५॥
नखेन्दुकान्तिशबलकङ्कणोर्मिमणीगणाम् । मुक्ताहारमृणालोद्यत्कुचकञ्जसुकुड्मलाम् ॥६॥
नाभीह्रदकूलक्लृप्तसोपानाभवलित्रयाम् । हीरहारविसाऽऽसक्तलोमपङ्क्त्यात्मशैवलाम् ॥७॥

पचीसवां अध्याय

इस प्रकार कुरुविन्द (लालमणि) के वर्ण की समप्रभावाली मुकुट प्रान्त में शोभायुक्त बाल चन्द्रमाकी शोभा धारणकी हुई मस्तक के पुरो भाग में पहनी ललन्तिका रत्न की आभा से भालस्थित सिन्दूर की कान्ति से दुगुनी बढ़ी लालिमा वाली पीले नील कमल के समान हृदय हारी तीन नेत्रों से अत्यन्त भूषित मणि के ताटङ्क युगल दोतार की तगड़ी के पहनने से अपाङ्ग की शोभा बढ़ी हुई है, नासाग्रभाग में लगे मुक्ता फल से ओठों की आभा बढ़कर सर्वत्र दिशाओं में पाटलवर्ण का प्रकाश होता है उसकी श्वेत दन्तों की पंक्ति से कालीन पुष्प की घनीभूत शोभा धारण की हुई ग्रीवा रूपी कमल के शिखर पर उद्भूत मुख रूपी पुण्डरीक से चित्रविचित्र आभावाली कोमल बाहुलता के प्रान्त में सुन्दर आभूषण धारे और अंगुलियों में नाना अंगूठियां पहने नख रूपी इन्दु की कान्ति से कङ्कण की सब मणियों पर कान्ति पड़ने से अतिशय शोभाधारिणी मुक्ताहार रूपी हंस से ऊपर की ओर उठे कुच कञ्ज से भली प्रकार भूषित नाभि प्रदेश रूपी सरोवर के किनारे पर बनी सोपान पंक्तिके समान तीन वलियां धारण की हुई, हीरे के हार रूपी विसतन्तु (कमल

कौसुम्भांशुककूर्पासाऽन्तरसंशोभिभूषणाम् । कटिव्योममध्यमासद्रशनामणितारकाम् ॥८॥
पाशाङ्कुशपुष्पबाणपुण्ड्रचापाऽऽयुधाऽन्विताम्। गुल्फाऽऽसक्तांशुकप्रान्तप्रोतरत्नगणोज्ज्वलाम्॥९।
रत्ननूपुरहंसादिपादभूषणभूषिताम् । काश्मीरशशिकस्तूरीसमालेपसुवासिताम् ॥१०॥
कर्णोत्तंसितकादम्बप्रसूनाऽऽमोदमिश्रिताम् । विकसत्पद्मवकुलमालतीहारधारिणीम् ॥११॥
रमावाणीवीज्यमानबालव्यजनशोभिनीम् । आनन्दसान्द्राऽन्तराङ्गो हर्षाऽश्रुभरितेक्षणः ॥१२
रोमाञ्चपीवरतनुर्दण्डवत्प्रणतो भुवि । आनन्दसिन्धुनिमग्नो नेक्षितुं न च भाषितुम् ॥१३॥
उत्थातुं वा समर्थोऽभूत्तदा वीक्ष्य पराम्बिकाम् । एवंविधं मन्मथं तं दृष्ट्वा श्रीत्रिपुराऽम्किाम् ॥१४
उत्तिष्ठ काम सम्पश्य प्राप्तां मां तव भावतः । प्रसन्नां वरदां ब्रूहि वाञ्छितं किं ददामि ते॥१५
श्रुत्वा तत्र त्रिपुरावाक्यमुत्थाय प्राञ्जलिः स्थितः । हर्षगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रमे॥१६
कलये करुणापाङ्गीं कारणमूत्यैंककारणीभूताम् ।
कामेश्वरीं न हीतरदेवं कश्चित् कदाचिदभियाचे ॥१७

नाल) में लगे लोम पंक्ति से स्वयं शैवाल की शोभा देती हुई, रेशमी वस्त्रों की चोली के अन्दर से दीखने वाले अत्य शोभित आभूषण वाली, कटिप्रदेश रूपी आकाश के मध्य भाग में पहनी हुई रत्न जटित मेखला (तागड़ी) से तारों आभा बिखेरती हुई। पाश, अङ्कुश, पुष्पबाण गदा चाप (धनुष) इन आयुधों को लिये हुई, गुल्फ भाग में पहने अत्य महीन वस्त्रों से ढके स्थान में लगी रत्नों की आभा से अत्यन्त उज्ज्वल रत्नों के नुपूर हंसादि पादभूषण से आभू केसर कपूर कस्तूरी के लेपन से अत्यन्त सुगन्धित युक्त कर्ण में लगे कदम्बके फूलों की सुगन्ध से मिश्रित खिले हुए वकुल और मालतीके हारको धारणकरनेवाली लक्ष्मी तथा सरस्वती द्वारा पंखासे हवा करते हुए लघु व्यजनसे शोभायु श्रीत्रिपुरा को इस प्रकार देख कर आनन्द सान्द्र से अन्तःकरण और अङ्ग हर्षित वाले काम ने हर्ष से आंखों में अ भरे हुए रोमाञ्चसे हर्षोत्फुल्ल शरीर हो दण्डवत् होकर पृथ्वी पर प्रणिपात किया। तब भगवती पराम्बिकाको देख आन रूपी समुद्र में निमग्न हो वह न देख पाया न बोल सका अथवा न उठ ही पाया। इस प्रकार कामदेव को अनु हर्षातिरेक से विलक्षण रूप में देख श्रीत्रिपुरा ने कहा, "हे वत्स ! काम ! उठ, तेरे भाव से प्रसन्न हुई वरदात्री मुझे व तुझे तेरा क्या अभिलाषित दूं ?॥१-१५॥

वहां उसने त्रिपुरा के वचन सुनकर उठ कर हाथ जोड़ खड़े हो हर्ष से गद्गद् वाणी से भगवती की स्तु आरम्भ की ॥१६॥ मैं करुणा नेत्र वाली, कारण मूर्ति से सम्पूर्ण जगत की एकान्ततःकारण रूपाकामेश्वरी का ध्या

अभियाचे परमां तामङ्कुशपाशप्रसूनचापकराम् ।
अलमलमनुत्तराम्बाचरणादन्येन देवताऽऽख्येन ॥१८॥

गृह्यन्ते त्रिपुरायाः करुणकल्लोलवासितकटाक्षाः ।
सर्वोपरि लोकेऽस्मिन् पश्याम्यम्बामिहैकरूपां ताम् ॥१९॥

ईप्सितमनीप्सितं वा ममाऽस्तु सततं त्रिमूर्तिजनयित्र्याः ।
ईहाशून्याया नो करोमि शरणं ततोऽन्यदेवगणम् ॥२०॥

ललतु हृदि सैव देवी मम नित्यं या महेशसंसेव्या ।
ललिता राज्ञी मान्या कदापि सेव्याऽस्तु देवता माऽन्या ॥२१॥

हर्षयतु मामजस्रं हरिहरमुख्यैः समाश्रिताऽङ्घ्रियुगा ।
या च हयारूढाख्या सेनानेत्री नमामि तां ब्रूयाम् ॥२२॥

रक्षतु मामिक्षुधनुःपुष्पशराढ्यकृपेक्षया सततम्। कामेश्वराऽभिरामा नाऽन्या ममेश्वरी भवति॥२३॥

अङ्कुरयतु हृदि भक्तिं निजपदयुगले सदा महेशानी ।
अम्बा कामाक्षी नैवाऽन्यस्यां ममाऽस्तु तल्लेशः ॥२४॥

करता हूँ ॥१७॥ अङ्कुश, पाश पुष्प धनुष को हाथ में धारण करने वाली उस परमा भगवती की प्रार्थना करता हूँ इस अपूर्व अम्बा के चरणों को छोड़ अन्य दूसरे देवता नाम से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं ॥१८॥

भक्त गण भगवती त्रिपुरा के करुण कल्लोल से वासित कटाक्षों को ही लिया करते हैं, इस लोक में सबसे ऊपर अलौकिक रूप वाली अम्बा को ही मैं देखता हूँ ॥१९॥ त्रिमूर्ति को उत्पन्न करने वाली भगवती ईहाशून्य त्रिपुरा का ही दिया हुआ मेरा अनभीप्सित और ईप्सित सतत हो मैं अन्य किसी देवगण की शरण में नहीं जाऊँगा । ॥२०॥

मेरे हृदय में वहीं देवी सदा निवास करे जो नित्य महेश द्वारा सेवनीया है, भगवती ललिता महिषी ही मेरी सर्वाराध्या है कभी भी मेरे लिये अन्य देवता मान्य नहीं ॥२१॥ हरि, ब्रह्मा और शिव प्रमुख देवगण के द्वारा जिसके चरण कमलों की भक्ति की जाती है, वह मुझे सदैव अपने कृपाकटाक्ष से प्रसन्न करे। जो अश्वारूढ़ा नामवाली सेना की सञ्चालिका है उसे ही प्रणाम करता हूँ अपना निवेदन उसे ही कहूँ और किसी से भी नहीं । ॥२२॥

सतत इक्षुदण्ड, धनुष, पुष्प एवं बाण इन्हें धारण कर कृपा की दृष्टि से मेरी रक्षा करे जो कामेश्वर की अभिरामा है अन्य कोई भी देवी मेरी स्वामिनी नहीं है । सदा ही महेशानी हृदय में अपने पादयुगल में भक्ति का अङ्कुर बनाई रक्खे केवल अम्बा कामाक्षी ही मेरी आराध्या है अन्य किसी भी देवमें मेरी थोड़ी सी लेशमात्र भक्ति नहीं हो॥२३-२४॥

सम्मनुते मम हृदयं वस्तुं तस्याः पदाब्जयोः सततम् ।
सर्वज्ञाया देव्या घटयतु तन्मे महेश्वरी मनसः ॥२५॥
इति संस्तुत्य मदनो देवीं तां त्रिपुराम्बिकाम् । ननाम दण्डवद्भूयो भक्तिनिर्भरमानसः ॥२६॥
अथ सा त्रिपुरेशानी प्राह मञ्जुलया गिरा । वत्सोत्तिष्ठ प्रसन्नाऽस्मि वरं ब्रूह्यभिवाञ्छितम् ॥२७॥
ददामि दुर्लभमपि नाऽलभ्यं तव विद्यते । श्रुत्वैवं लोकजननीवाक्यमुत्थाय मन्मथः ॥२८॥
श्रीदेवीदर्शनादेव नष्टाऽविद्यातमोगणः । उपलभ्य स्वात्मशक्तिमयीं त्रिपुरसुन्दरीम् ॥२९॥
आप्तकामः प्रसन्नाऽऽत्मा प्राह देवीं कृताञ्जलिः । त्रिपुराऽम्ब त्वत्पदाब्जदर्शनाऽमृतसेवनात् ॥३०॥
शान्ततृष्णोऽस्मि किं याचे नाऽलब्धमिह किञ्चन । पीताऽमृतस्य क्षारोदपानवद्वरयाचनम् ॥३१॥
पश्यतस्त्वां मम भवेदुपहासाय केवलम् । मातर्यदाज्ञापयसि तन्मूर्ध्नाऽभिवहाम्यहम् ॥३२॥
इति श्रुत्वा परा प्रोचे दयमाना स्मिताऽऽनना । वत्स काम न ते किञ्चित् प्राप्तव्यमवशिष्यते ॥३३॥

मेरा हृदय उस सर्वज्ञा परमाराध्या देवी के चरण कमलों में वास करने के लिये उत्कण्ठित रहता है वह महेश्वरी मेरे मन का आकर्षण कर दे ॥२५॥ इस प्रकार कामदेव ने उस त्रिपुरा देवी की स्तुति कर भक्तिभरि मानस वाला बन फिर दण्डवत् प्रणाम किया ॥२६॥ अब उस त्रिपुरेशानी ने अत्यन्त मधुर कोमल वाणी से कह "हे वत्स ! उठ ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ अपना अभिलषित वर मांग ॥२७॥

मैं दुर्लभ वस्तु को भी देती हूँ तेरे लिये कुछ भी अलभ्य नहीं है"। इस प्रकार लोक जननी भगवती त्रिपुरा के वाक्य सुनकर कामदेव उठ कर श्रीदेवी के दर्शन से ही उसके सम्पूर्ण अविद्या कामकर्मादितम गुणमयभाव नष्ट हो गये । आत्मशक्तिमयी त्रिपुर सुन्दरि को पाकर पूर्ण काम वाला प्रसन्न आत्मा हो हाथ जोड़ कर देवी को कहने लगा "हे त्रिपुराम्बिके आपके चरण कमल के दर्शन रूपी अमृत के सेवन मेरी तृष्णा शान्त हो गई है, मैं क्या याचना करूं ? मेरे लिये अप्राप्त कोई वस्तु भी नहीं है आपके दर्शन क वर को मांगना ऐसा ही है जैसे अमृत का पान किये हुए का खारे पानी को पीना । आपको देख मेरे लिये कुछ कहना उपहास की बात है । हे मातः ! आप मुझे जो आज्ञा करती हैं उसे मैं शिरोधार्य करता हूँ"॥२९-३२॥

इस प्रकार सुन कर दया करने वाली मधुर हास्य से मुख कान्ति बढ़ाने वाली पराम्बा बोली, "हे वत्स कामदेव ! तेरे लिये कुछ भी पाने योग्य नही बचा है ॥३३॥ मेरे स्वरूप को जिसने भली प्रकार जान लिया है उसके लिये ब्रह्मत्व भी निश्चय ही तृण है फिर भी क्यों तू मेरे सामने उपस्थित हुआ है । वह कभी व्यर्थ नहीं होता कभी भी किया हुआ तप हीनभाव को नहीं जाता । तेरे लिये अजेय न तो भूमि में न पाताल में और न अन्तरिक्ष में होगा ॥३४-३५॥

विज्ञातमत्स्वरूपस्य ब्रह्मत्वमपि वै तृणम् । तथापि साभिप्रायेण यतस्त्वं मामुपस्थितः ॥३४॥
न तन्मोघं भवेज्जातु न कृतं हीयते यतः । तवाऽजेयो न भूम्यां वा पाताले दिवि वा भवेत् ॥३५॥
गृहाण चापं बाणांश्चेत्युक्त्वा सा जगदम्बिका । स्वीयाच्चापाच्छरेभ्यश्च चापं बाणांश्च तत्समान्॥३६॥
ददौ कामाय भूयस्तं प्राह तुष्टा महेश्वरी । सौभाग्यमुत्तमं लोके सर्वतोऽस्तु रमात्मज ॥३७॥
त्वया दृष्टा जनाः सर्वे धैर्यमभ्युत्सृजन्तु वै । लोकेषु सुभगा ये स्युः सर्वसौभाग्यसम्पदः ॥३८॥
दृष्टान्तभूतस्त्वं भूया मद्भक्तेष्वग्रगस्तथा । स्वप्ने मया समादिष्टा या विद्या साऽपि मन्मथ ॥३९॥
त्वन्नाम्नैवाऽस्तु विख्याता सर्वविद्योत्तमोत्तमा । यतस्त्वमाद्यः सर्वेषामस्या भूत उपासकः॥४०॥
यत्तुभ्यं रमया प्रोक्तं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । यच्च त्वया संस्तुताऽहं श्लोकैर्नवभिरुत्तमैः ॥४१॥
विद्यावर्णनामयुतैर्भक्त्युद्गारसमन्वितैः । तदेतत् स्तोत्रयुगलं विद्या साऽपि च मन्मथ ॥४२॥
तवसौभाग्यजननात् सौभाग्यप्रदमस्तु वै। सौभाग्यविद्या साख्याता सौभाग्याऽष्टोत्तरञ्च तत् ।४३।
सौभाग्यनवरत्नाऽऽख्यं स्तोत्रं स्याद्भुवि विश्रुतम् ।
एतत् स्तोत्रं प्रपठतां प्रीता शीघ्रं भवाम्यहम् ॥४४॥

"तू धनुष और बाणों को ले" इसप्रकार कहकर वह जगदम्बिका अपने धनुष से धनुष और बाणों से उनके समान बाणों को काम को दिया। फिर सन्तुष्ट हो महेश्वरी ने कहा, "हे रमा के पुत्र ! लोक में अतिश्रेष्ठ सौभाग्य तुम्हें चारों ओर से प्राप्त हो। तेरी दृष्टि पड़ने से हो सब लोग धैर्य छोड़ दें; संसारी लोगों में जो अच्छे भाग्य या सम्पूर्ण सौभाग्य सम्पत्तिशाली हैं उनके लिये तू भक्ति कर इच्छित फल पानेवाला दृष्टान्तभूत हो और मेरे भक्तोंमें अग्रणी बन; स्वप्न में मैंने तुझे जो विद्याका उपदेश दिया हे कामदेव ! सब विद्याओं में उत्तमोत्तम वह भी तेरे नाम से ही 'काम-विद्या' से विख्यात हो। क्योंकि इसके सभी उपासकों में तू ही आद्य उपासक हुआ है ॥३६-४०॥

जो तुझे रमा ने मेरे १०८ नामों का स्तोत्र बताया और जो तुमने मेरी स्तुति उत्तम नौ श्लोकों से की जिसमें विद्या के वर्ण एवं नाम संयुक्त हैं और भक्ति के उत्कृष्ट उद्गार से युक्त हैं वे दोनों स्तोत्र, और वह विद्या हे कामदेव ! तेरे सौभाग्य के जनन करने से सौभाग्यदाता हों। इनके नाम क्रमसे वह सौभाग्यविद्या कामविद्या प्रसिद्ध हो सौभाग्य अष्टोत्तरशत एवं सौभाग्यनवरत्न नामक स्तोत्र संसार में विश्रुत रहें। इस स्तोत्र के पढनेवालों पर मैं शीघ्र ही अत्यन्त प्रसन्न होती हूँ ॥४१-४४॥

विद्यार्थिनां भवेद्विद्या धनं स्याच्च धनार्थिनाम्। पुत्रार्थिनां पुत्रलाभः पत्नी भार्यार्थिनां नृणाम्॥४५॥
एतत्स्तोत्रं पठद्भिस्तु यद्यत् स्याच्चिन्तितं भुवि । तत्सर्वं प्राप्यते सत्यं न तेषां हीयते क्वचित् ॥४६॥
एतत्स्तोत्रं सर्वपूर्तिकरं प्रपठतां नृणाम् । प्रसन्नाऽहं शीघ्रतरं भवामि शृणु मन्मथ ! ॥४७॥
इत्युक्त्वा त्रिपुरादेवी नामाऽष्टशतकस्य च। विद्यायाश्चाऽपि माहात्म्यं तत्राऽन्तर्धानमागता॥४८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये कामोपाख्याने कामस्य श्रीविद्यामन्त्रप्राप्ति-
मनु भगवत्या दर्शनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥२०६३॥

विद्यार्थियों को विद्या लाभ हो, धनार्थी लोगों के धन, पुत्रकी कामना करने वालों के पुत्रकी प्राप्ति और भार्या इच्छा करने वाले लोगों को पत्नी का लाभ हो। पृथ्वी पर इस स्तोत्र के पढ़ने वाले जिस जिस वस्तु की कामना वह सब उन्हें प्राप्त होता है यह सत्य है उनका कभी किसी प्रकार अनिष्ट नहीं बनता ॥४६॥

अच्छी प्रकार पाठ करने वाले मनुष्यों के लिये यह स्तोत्र सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्त्ति करता है, हे कामदेव सुन उनपर मैं अतिशीघ्र प्रसन्न होती हूँ" ॥४७॥ इस प्रकार त्रिपुरादेवी एक सौ आठ नामों तथा नवरत्न स्तोत्रविद्या माहात्म्य बतला कर वहीं अदृश्य हो गई ॥४८॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासश्रेष्ठ त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य खण्ड के काम के उपाख्यान में काम को स्वप्न में श्रीविद्यामंत्र की प्राप्ति और भगवती का अमोघ दर्शनसहित श्रीविद्यामन्त्रस्तोत्र और १०८ नामों के पारायण की फलश्रुति नामक पच्चीसवां अध्याय समाप्त ॥

षड्विंशोऽध्यायः

दत्तात्रेयेण सौभाग्याष्टोत्तरशत-नामस्तोत्रोपदेशवर्णनम्

निशम्यैतज्जामदग्न्यो माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम् । स्तोत्रस्य भूयः पप्रच्छ दत्तात्रेयं गुरूत्तमम् ॥१॥
भगवन् त्वन्मुखाम्भोजनिर्गमद्वाक्सुधारसम् । पिबतः श्रोत्रमुखतो वर्धतेऽनुक्षणं तृषा ॥२॥
अष्टोत्तरशतं नाम्नां श्रीदेव्या यत्प्रसादतः । कामः सम्प्राप्तवान् लोके सौभाग्यं सर्वमोहनम् ॥३॥
सौभाग्यविद्यावर्णानामुद्धारो यत्र संस्थितः । तत्समाचक्ष्व भगवन् कृपया मयि सेवके ॥४॥
निशम्यैवं भार्गवोक्तिं दत्तात्रेयो दयानिधिः । प्रोवाच भार्गवं रामं मधुराऽक्षरपूर्वकम् ॥५॥
शृणु भार्गव ! यत् पृष्टं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । श्रीविद्यावर्णरत्नानां निधानमिव संस्थितम् ॥६॥
श्रीदेव्या बहुधा सन्ति नामानि शृणु भार्गव । सहस्रशतसंख्यानि पुराणेष्वागमेषु च ॥७॥
तेषु सारतमं ह्येतत्सौभाग्याऽष्टोत्तराऽऽत्मकम् । यदुवाच शिवः पूर्वं भवान्यै बहुधाऽर्थितः ॥८॥

छब्बीसवां अध्याय

जमदग्नि के पुत्र श्रीपरशुराम ने इसे सुनकर इस स्तोत्र के सबसे उत्कृष्ट माहात्म्य के विषय में गुरुजन में श्रेष्ठ दत्तात्रेय को पूछा ॥१॥ "हे भगवन् ! आपके मुखकमल से निकले वाणी रूपी सुधारस को कानों के पुट से पीते हुए मेरी सुनने की प्यास अनुक्षण (क्षणक्षण में) बढ़ती है ॥२॥

श्रीदेवी के एक सौ आठ नाम जिसकी कृपा से काम ने लोक में सर्वमोहनकारी उत्कृष्ट सौभाग्य पाया, जहां सौभाग्यविद्या के वर्णों का उद्धार मिलता है उसे हे भगवन् ! आप कृपा करके मुझ सेवक को कहिये" ॥३-४॥ इस प्रकार भृगुवंशी परशुराम की वाणी सुन दया के निधान दत्तात्रेयने मधुराक्षरयुक्त वाक्य कहे, "हे भार्गव ! सुन जो (उन्हें बताता हूँ) ॥५-६॥

तू ने श्रीविद्या के वर्णरत्नों के अखण्ड रक्षित स्थान (खजाने) की तरह स्थित भगवती के एक सौ आठ नाम पूछे

हे परशुराम ! श्रीदेवी के बहुत प्रकार से नाम हैं जिनकी संख्या पुराणों और आगमों में लक्ष कोटि रूपों में वर्णित है ॥७॥ उनमें यह सारतम सौभाग्याष्टोत्तरशतनामवाला है जिसे भगवान् शङ्करने प्राचीन काल में भवानी द्वारा बहुत बार उनसे प्रार्थना की जाने पर उपदेश किया था ॥८॥

सौभाग्याऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य भार्गव । ऋषिरुक्तः शिवश्छन्दोऽनुष्टुप् श्रीललिताऽम्बिका ॥९॥
देवता विन्यसेत्कूटत्रयेणाऽऽवर्त्य सर्वतः । ध्यात्वा सम्पूज्य मनसा स्तोत्रमेतदुदीरयेत् ॥१०॥
कामेश्वरी कामशक्तिः कामसौभाग्यदायिनी । कामरूपा कामकला कामिनी कमलाऽऽसना ॥११॥
कमला कल्पनाहीना कमनीयाकलावती । कमला (!)भारतीसेव्या कल्पिताऽशेषसंस्तृतिः ॥१२॥
अनुत्तराऽनघाऽनन्ताऽद्भुतरूपाऽनलोद्भवा । अतिलोकचरित्राऽतिसुन्दर्यतिशुभप्रदा ॥१३॥
अघहन्त्र्यतिविस्ताराऽर्चनतुष्टाऽमितप्रभा । एकरूपैकवीरैकनाथैकान्ताऽर्चनप्रिया ॥१४॥
एकैकभावतुष्टैकरसैकान्तजनप्रिया । एधमानप्रभावैधद्भक्तपातकनाशिनी ॥१५॥

हे परशुराम ! इस सौभाग्याष्टोत्तरशत नामक स्तोत्र के ऋषि शिव हैं; अनुष्टुप् छन्द है, श्रीललिता अम्बिका देवता है और कूटत्रय से चारों ओर से आवर्त करके विनियोग करे; मनसा भगवती का पूजन कर ध्यानकरे एवं इ स्तोत्र का पाठ करे ॥९-१०॥

(१) कामेश्वरी=कामेश्वर की पत्नी (२) कामशक्ति=स्वेच्छा शक्तिमयी (३) कामसौभाग्यदायिनी= कामको मनवाञ्छित सौभाग्य प्रदान करने वाली (४) कामरूपा=सुन्दर स्वरूपवती (५) कामकला=कामकल में प्रवीण (६) कामिनी=कामना करनेवाली (७) कमलासना=कमलासन पर विराजी हुई (८) कमला=लक्ष्मीस्वरू (९) कल्पनाहीना=कल्पनाहीन (१०) कमनीया = अत्यन्त सुन्दर (११)कलावती=कलास्वरूपा (१२) कमलाभारतीसेव्या लक्ष्मी और सरस्वती द्वारा सेवन योग्य (१३) कल्पिताऽशेष संसृतिः=सम्पूर्ण संसारको विमर्शसे करने वाली(१४) अनुत्तरा सर्वोपरि (१५) अनघा=निष्पापा (१६) अनन्ता=अनन्तस्वरूपों वाली (१७) अद्भुतरूपा=अति विलक्षण रूपधारिण (१८) अनलोद्भवा=चितिरूपी अग्नि से प्रगट हुई (१९) अतिलोकचरित्रा=लोकके चरित्रों का अतिक्रमण करने वा (२०) अतिसुन्दरी=अत्यन्त कमनीय सौन्दर्यवती (२१) अतिशुभप्रदा=अत्यन्तशुभफलको देने वाली (२२) अघहन्त्री पापनाशिनी (२३) अतिविस्तारा=अत्यन्तविस्तृतस्वरूपा (२४) अर्चनतुष्टा=पूजनसे प्रसन्न होने वाली (२५) अमितप्रभा अत्यधिक अमित प्रभावाली (२६) एकरूपा = अखण्डस्वरूप धारिणी (२७) एकवीरा=अद्भुत पराक्रम सम्पन्न (२८) एकनाथा=एकान्त स्वामिनी (२९) एकान्तार्चनप्रिया=एकनिष्ठ श्रद्धाभक्तियुक्त अर्चनासे ही प्रसन्न रहने वाल (३०) एका=प्रकृतिरूपा, अद्वितीया (३१) एकभावतुष्टा=एक भाव से प्रसन्न होने वाली (३२) एकरसा=शान्तरसवर्त (३३) एकान्तजनप्रिया=कुण्डलिनीके जागरण करनेमें तत्पर योगी भक्तोंको प्रिय (३४) एधमानप्रभावा=बढ़े हुए प्रभाव वाल (३५) एधद्भक्तपातकनाशिनी=बढ़ते हुये भक्तोंके पापोंको नाश करने वाली (३६) एलामोदमुखा=एला की सुगन्धि

एलामोदमुखैनोऽद्रिशक्रायुधसमस्थितिः । ईहाशून्येप्सितेशादिसेव्येशानवराङ्गना ॥१६॥
ईश्वराऽऽज्ञापिकेकारभाव्येप्सितफलप्रदा । ईशानेतिहरेक्षेषदरुणाक्षीश्वरेश्वरी ॥१७॥
ललिता ललनारूपा लयहीना लसत्तनुः । लयसर्वा लयक्षोणिर्लयकर्णी लयात्मिका ॥१८॥
लघिमा लघुमध्याऽऽढ्या ललमाना लघुद्रुता । हयाऽऽरूढ़ा हताऽमित्रा हरकान्ता हरिस्तुता॥१९॥
हयग्रीवेष्टदा हालाप्रिया हर्षसमुद्धता । हर्षणा हल्लकाभाङ्गी हस्त्यन्तैश्वर्यदायिनी ॥२०॥
हलहस्ताऽर्चितपदा हविर्दानप्रसादिनी । रामरामाऽर्चिता राज्ञी रम्या रवमयी रतिः ॥२१॥
रक्षिणीरमणीराका रमणीमण्डलप्रिया । रक्षिताऽखिललोकेशा रक्षोगणनिषूदिनी ॥२२॥

से सुष्ठु प्रसन्नमुखवाली (३७) एनोऽद्रिशक्रायुधसमस्थितिः=पापरूपी पर्वतों के दारण करने में इन्द्र के वज्र से भी अधिक सशक्त (३८) ईहाशून्या=पूर्णस्वरूपा (३९) ईप्सिता=इच्छारूपा (४०) ईशादिसेव्या=ईश आदि देवों के द्वारा सेवनीय (४१) ईशानवराङ्गना=ईशान भगवान् की श्रेष्ठ पत्नी (४२) ईश्वराऽऽज्ञापिका=ईश्वर को आज्ञा देने वाली (४३) ईकारभाव्या=ई-विमर्श की भावना योग्य (४४) ईप्सितफलप्रदा=इच्छित फल देनेवाली (४५) ईशाना=ईशानरूपा (४६) ईतिहरा=सम्पूर्ण उपद्रव क हरने वाली (४७) ईक्षा=दर्शनरूपा (४८) ईषदरुणाक्षी=कुछ लाल नेत्र वाली (४९) ईश्वरेश्वरी=महेश्वरी (५०) ललिता=ललिता देवीरूपा (५१) ललनारूपा=स्त्रीरूपा (५२) लयहीना=लयहीन (५३) लसत्तनुः=सुन्दर सुराजित शरीर वाली (५४) लयसर्वा=सबको लय करने वाली (५५) लयक्षोणिः=लीन करने वाली पृथ्वी (५६) लयकर्णी=लयकरणवाली (५७) लयात्मिका=लयरूपा (५८) लघिमा=सिद्धिरूपा (५९) लघुमध्याऽऽढ्या=मध्य भाग में उत्तम लघुस्वरूपा (६०) ललमाना=सुन्दर स्वरूपा (६१) लघुद्रुता=विद्युत्सम चपला गति वाली (६२) हयारूढ़ा=घोड़े पर चढ़ी हुई (६३) हताऽमित्रा=शत्रुओं का संहार करने वाली (६४) हरकान्ता=हर की पत्नी (६५) हरिस्तुता=विष्णु के द्वारा स्तुति की गई (६६) हयग्रीवेष्टदा=हयग्रीव भगवान् को इष्ट प्रदान करने वाली (६७) हालाप्रिया=मद्यप्रिया (६८) हर्ष समुद्धता=अत्यन्त प्रसन्नताके उद्रेकसे उद्धत हुई (६९) हर्षणा=सर्वतः प्रसन्नता बरसाने वाली (७०) हल्लकाभाङ्गी=सम्पूर्ण शरीरमें तेज प्रकर्ष से उद्दाम शौर्यवती (७१) हस्त्यन्तैश्वर्यदायिनी=अत्यन्त उत्कृष्टहस्तियों के मर्यादाबद्ध ऐश्वर्य प्रदान (७२) हलहस्तार्चितपदा=हलायुधधारियों से पूजनेयोग्य (७३) हविर्दानप्रसादिनी=हवि के देने से प्रसन्न होने वाली (७४) रामरामाऽर्चिता=राम व परशुरामसे पूजित (७५) राज्ञी = सर्वत्र दीप्त होनेवाली (७६) रम्या=सुन्दरी (७७) रवमयी = बिन्दुके भेदनसे अव्यक्त स्वरूपा (सृष्टिकी मूलभूता) (७८) रतिः = रमणविलासरूपा (७९) रक्षिणी = रक्षा

अम्बान्तकारिण्यम्भोजप्रियाऽन्तकभयङ्करी । अम्बुरूपाऽम्बुजकराऽम्बुजजातवरप्रदा ॥२३॥
अन्तःपूजाप्रियाऽन्तःस्वरूपिण्यन्तर्वचोमयी । अन्तकाऽरातिवामाङ्कस्थिताऽन्तःसुखरूपिणी ॥२४
सर्वज्ञा सर्वगा सारा समा समसुखा सती । सन्ततिः सन्तता सोमा सर्वा साङ्ख्या सनातनी ॥२५
एतत्ते कथितं राम नाम्नामष्टोत्तरं शतम् । अतिगोप्यमिदं नाम्नाः सर्वतः सारमुद्धृतम् ॥२६
एतस्य सदृशं स्तोत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । अप्रकाश्यमभक्तानां पुरतो देवताद्विषाम् ॥२७
एतत् सदाशिवो नित्यं पठन्त्यन्ये हरादयः । एतत्प्रभावात्कन्दर्पस्त्रैलोक्यं जयति क्षणात् ॥२८
सौभाग्याऽष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं मनोहरम् । यस्त्रिसन्ध्यं पठेन्नित्यं न तस्य भुवि दुर्लभम् ॥२९

करने वाली (८०) रमणी=रमण शील (८१) राका = रात्रिरूपा (८२) रमणीमण्डलप्रिया = रमणियोंको अत्य
प्रिय (८३) रक्षिताऽखिललोकशा = रक्षित सम्पूर्ण लोकों का मर्यादाबद्ध ईशन करने वाली (८४) रक्षोगणनिषूदिनी
तमः प्रकर्ष राक्षसों के समूह को नष्ट करने वाली (८५) अम्बा = मातृस्वरूपा (८६) अन्तकारिणी = लीलने व
(८७) अम्भोजप्रिया = कमलों से प्रसन्न होने वाली (८८) अन्तकभयङ्करी = यमराज को भय उत्पन्न करने व
(८९) अम्बुरूपा = जल स्नेह स्वरूपा (९०) अम्बुजकरा = कमल समान कोमल हाथ वाली (९१) अम्बुजजातवरप्रदा
कमलों के अर्पण करने से प्रसन्न हो सुवर देने वाली (९२) अन्तःपूजाप्रिया = मानसिक पूजा से प्रसन्न होने व
(९३) अन्तःस्वरूपिणी = शुद्धस्वरूपवती (९४) अन्तर्वचोमयी = अन्तर्वाग् रूपा (९५) अन्तकाऽरातिवामाङ्कस्थिता
अन्तकासुर के शत्रु शंकर के वामाङ्ग में स्थितवती (९६) अन्तःसुखस्वरूपिणी = आनन्दरूपा (९७) सर्वज्ञा = ब्रह्म
जानने वाली (९८) सर्वगा = सब स्थानों में गति शीला (९९) सारा = सारवती (१००) समा = समवर्तनवा
(१०१) समसुखा = समानभावसे सुखस्वरूप वाली (१०२) सती = सच्चरित्रा, सनातना (१०३) सन्ततिः = सन्त
स्वरूपा (१०४) सोमा = शिवपार्वतीरूपा (१०५) सन्तता = निरन्तर स्थितिरखने वाली (१०६) सर्वा = सर्वस्व
(१०७) साङ्ख्या = सांख्यशास्त्र प्रतिपाद्या एवं (१०८) सनातनी = सनातनरूपा ॥११-२५॥

हे परशुराम ! तुम्हें यह अत्यन्त गोपन करने के योग्य सब ओर से सार उद्धृतकर (निकाल कर) एक सौ अ
नाम बतलाये गये॥२६॥ तीनों लोकोंमें इसके सदृश स्तोत्र दुर्लभ है । अभक्तगण एवं देवताके द्वेषियोंके सामने प्रका
नहीं करने योग्य है । इसे सदाशिव अन्य हर ब्रह्मा विष्णु आदि नित्य पाठ करते हैं; इसके प्रभावसे कामदेव त्रैलोक्य
क्षणमात्र में वशमें करता है ॥२८॥ मनोहर सौभाग्याष्टोत्तर शतनाम स्तोत्रको जो तीनों काल सन्ध्यावेलामें नित्य इस

श्रीविद्योपासनवतामेतदावश्यकं मतम् । सकृदेतत्प्रपठतां नाऽन्यत्कर्म विलुप्यते ॥३०॥
अपठित्वा स्तोत्रमिदं नित्यं नैमित्तिकं कृतम् । व्यर्थीभवति नग्नेन कृतं कर्म यथा तथा ॥३१॥
सहस्रनामपाठादावशक्तस्त्वेतदीरयेत् । सहस्रनामपाठस्य फलं शतगुणं भवेत् ॥३२॥
सहस्रधा पठित्वा तु वीक्षणान्नाशयेद्रिपून् । करवीररक्तपुष्पैर्हुत्वा लोकान् वशं नयेत् ॥३३॥
स्तम्भयेत् श्वेतकुसुमैर्नीलैरुच्चाटयेद्रिपून् । मरिचैर्विद्वेषणाय लवङ्गैर्व्याधिनाशने ॥३४॥
सुवासिनीर्ब्राह्मणान् वा भोजयेद्यस्तु नामभिः । यश्च पुष्पैः फलैर्वापि पूजयेत् प्रतिनामभिः ॥३५॥
चक्रराजेऽथवाऽन्यत्र स वसेच्छ्रीपुरे चिरम् । यः सदा वर्तयन्नास्ते नामाऽष्टशतमुत्तमम् ॥३६॥
तस्य श्रीललिता राज्ञी प्रसन्ना वाञ्छितप्रदा । एतत्ते कथितं राम शृणु त्वं प्रकृतं ब्रुवे ॥३७॥
अथैवं मदनः प्राप्य वरं देव्या महत्तरम् । मर्त्यानमर्त्यानसुरान् यातुधानांश्च किन्नरान् ॥३८॥
यक्षान् किंपुरुषादींश्च चकार स्ववशे द्रुतम् । अथ कालान्तरे कामो महादेवजिगीषया ॥३९॥

पठन करता है उसके लिये भूमण्डल में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । श्रीविद्योपासक लोगों के लिये यह आवश्यक माना गया है। एक वार भी पाठ करने वालों के अन्य दूसरे कर्म का कभी लोप नहीं होता है ॥२९-३०॥

इस स्तोत्र के पठन को न कर के नित्य नैमित्तिक किया हुआ कर्म उस प्रकार व्यर्थ हो जाता है जैसे नग्न व्यक्ति द्वारा किया हुआ शुभ कर्म ॥३१॥ और सहस्त्र नाम के पठन करने में असमर्थ हो तो इसे पढ़े; सहस्रनाम के पाठका फल सौगुना हो जाता है ॥३२॥ सहस्र वार आवृत्ति करने वाला देखनेमात्रसे शत्रुगणको नष्ट करता है। कनेर एवं रक्त पुष्पों से इन नामों को पठन करके हवन करने वाला लोगों को वशमें कर लेता है ॥३३॥ श्वेत पुष्पों से शत्रुस्तम्भन करे व नीले कुसुमों से हवन करने से शत्रुगणका उच्चाटन हो। मरिचसे हवन द्वारा विद्वेषणमें सिद्धि हो एवं व्याधिके नाश के लिये लवङ्ग से हवन किया जाय ॥३४॥ जो सुवासिनी सौभाग्यवती स्त्रियों अथवा ब्राह्मणों को नाम संख्या से भोजन करावे अथवा प्रति नाम लेकर पुष्पों और फलोंसे चक्रराज में अथवा अन्यत्र देवीस्थान में भगवती की पूजा करे वह दीर्घ समय तक श्रीपुरमें निवास करता है । जो सदा इस उत्तम अष्टोत्तरशत नामक स्तोत्रका पठन करता है उस पर श्रीललिता राज्ञी प्रसन्न हो मनोवाञ्छित फल प्रदान करती है । हे परशुराम ! यह तुझे सौभाग्य अष्टोत्तर शतनाम का महत्त्व बताया अब मैं प्रकृत विषय को कहता हूँ, तू सुन" ॥३७॥

अनन्तर इस प्रकार कामदेव ने देवी से अतिमहत्तर वरदान प्राप्त कर आतशीघ्र मनुष्यों, अमर्त्यों, असुरों,

गत्वा क्रोधाग्निमासाद्य भस्मीभूतः पतङ्गवत्। तत्कथां तेऽभिधास्यामि शृणु राम समाहितः ॥४०॥
गौरी दाक्षायणी भूत्वा पितुर्दक्षस्य बर्हिषि। श्रुत्वा निन्दां महेशस्य पत्युर्भस्मत्वमागता ॥४१॥
आकाशमात्ररूपा सा गौरी जगति संस्थिता। अथ काले चिरतरे समतीते नगेश्वरः ॥४२॥
हिमवान् ब्रह्मपुत्रेण नारदेनाऽभिसङ्गतः। प्रत्युत्थाय देवमुनिं सभाजयत भक्तितः ॥४३॥
पाद्यार्घ्यमाल्यहाराद्यैरालेपैर्वस्त्रभूषणैः। पूजयित्वा स्वादुतरैरभोजयत भोजनैः ॥४४॥
एवं सम्पूजितं देवमुनिं परमशोभनम्। समासीनं सभामध्ये प्राह पर्वतभूपतिः ॥४५॥
देवर्षे त्वत्समालोकाद्धन्योऽहं सम्प्रति क्षितौ। यत्त्वया ब्रह्मपुत्रेण दीनोहं सेवकीकृतः ॥४६॥
भगवन् ब्रूहि भुवनात् कस्मात्त्वं समुपागतः। दुर्लभं दर्शनं तेऽद्य गमनेच्छाऽपि कुत्र ते ॥४७॥
एवं पृष्टो नारदोऽथ मधुप्रस्यन्दनं वचः। बभाषे पर्वतश्रेष्ठं स्ववृत्तान्तविवक्षया ॥४८॥
पर्वतेश ! समायातः सत्यलोकदहं ननु। त्वां दिदृक्षुर्धन्यतमं व्रजामि शिवसन्निधिम् ॥४९॥

यातुधान, (राक्षसों) किन्नरों, यक्षों एवं किम्पुरुषों को अपने वश में कर लिया। अब कालान्तर में कामदेव महादेव को जीतने की इच्छा से जाकर उस की क्रोधाग्नि से जलकर पतङ्ग के समान जल कर भस्म हो गया। हे राम! इस कथा मैं तुझे कहता हूँ तू अत्यन्त मन लगाकर सुन ॥३९-४०॥

दाक्षायणी गौरी होकर पिता दक्ष के यज्ञ में अपने पति भगवान् महेश की निन्दा सुन कर भस्म हो गई वह भगवती गौरी आकाशमात्र रूप हो जगत् में विराजमान रही। अनन्तर बहुत काल बीतने पर जब पर्वतराज हिमवान् ब्रह्माजी के पुत्र नारद से मिले; उठ कर उसने देवर्षि को भक्तिपूर्वक अभिवादन किया ॥४१-४३॥

उसने देवर्षि को पाद्य, अर्घ्य, पुष्पमाला, हार आदि आलेप वस्त्र और आभूषणों से पूज कर अत्यन्त स्वादिष्ट उत्तम भोजन से तृप्त किया ॥४४॥ इस प्रकार भली भांति पूजित परम सुन्दर सभा के बीच में बैठे देवमुनि को पर्वतराज ने कहा ॥४५॥ "हे देवर्षे ! वर्तमान समय में पृथ्वी पर मैं आपके दर्शन से धन्य हो गया हूँ कि आप जैसे महर्षि ब्रह्मपुत्र के द्वारा मैं दीन सेवक बन सेवा परायण हूँ" ॥४६॥

हे भगवन् ! आप मुझे बतलाइये कि आप कौन से भुवन से आये ? आप का मुझे आज दुर्लभ दर्शन मिला अब कहां जाने की इच्छा करते हैं ?" इस प्रकार पूछने पर नारद ने पर्वतश्रेष्ठ हिमाचल को मधु से सने मधुर वचन अपने वृत्तान्त कहने की इच्छा से कहे, "हे पर्वतराज ! मैं सत्यलोक से आया हूँ, धन्यतम तुम्हें ही देखने की अभिलाषा से इधर निकल गया अब शिवजी की सन्निधि में जाता हूँ" ॥४७-४९॥

श्रुत्वैवं नारदवचो हिमवान् प्राह सन्नतः। भगवन् वद ! कस्मात्ते धन्य इत्यहमीरितः ॥५०॥
अनपत्यत्वशोकेन वराकः कृपणो भृशम्। इति श्रुत्वा गिरिवचो नारदः प्राह सान्त्वयन् ॥५१॥
शृणु भूभृद्राज यतो धन्यस्तत्ते वदाम्यहम्। त्वं सम्प्रति पराशक्तिपदभक्तिः युतोयतः ॥५२॥
अतः प्रोक्तो मया धन्य इति त्वं प्रीतिहेतुतः। नह्यल्पपुण्यैर्लोकेऽमिन् पराभक्तिः प्रजायते॥ ५३॥
यां ब्रह्मविष्णुरुद्राद्याः पूजयन्ति दिवानिशम्। सा शक्तिः परमा लोके यस्यां सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥५४॥
यत्ते प्रपूर्वदिवसे वामदेवो मुनीश्वरः। अनुजग्राह तदहं वेद्मि वै योगचक्षुषा ॥५५॥
स मुनिः शाक्तमूर्धन्यस्तेन त्वमनुदेशितः। अतस्त्वत्तो धन्यतमो भवेत् क इह तद्वद ॥५६॥
श्रुत्वैवं नारदेनोक्तं हिमवान् पुनरब्रवीत्। ब्रह्मंस्त्वं योगनेत्रेण भूतं भव्यञ्च पश्यसि ॥५७॥
न तेऽस्त्यविदितं किञ्चित् कालत्रितयगर्भिते। पृच्छामि किञ्चिदाचक्ष्व कृपया मयि सेवके ॥५८॥

इस प्रकार नारद की वाणी सुन कर हिमवान् विनम्र होकर बोला, "हे भगवन् देवर्षे ! आपने मुझे किस कारण से धन्य कहा ?" ॥५०॥ " मैं बिचारा पुत्र न होने के शोक से अत्यन्त कार्पण्य दोष से पीड़ित हूँ।" इस प्रकार पर्वतराज के वचन सुन कर नारद ने सान्त्वना देते हुए कहा "हे पर्वतराज ! सुन जिस कारण से तुझे धन्य कहा वह मैं बताता हूँ" क्यों कि तूं अभी परा शक्ति के चरणों में भक्ति करता है इसलिये "तूं धन्य है" इस प्रकार प्रीतिहेतु से तुझे कहा गया। अल्पपुण्यों द्वारा कभी इसलोक में परा की भक्ति नहीं होती ॥५१-५३॥

जिसे ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र आदि दिन रात पूजते हैं वह परमा शक्ति है, जिसमें सब कुछ प्रतिष्ठित है। जो तुझ पर परसों वामदेव मुनीश्वर ने कृपा की उसे मैं योगचक्षु से जानता हूँ। वह मुनि शक्ति के उपासना करने वालों में प्रधान है उससे तुम्हें अनुदेश मिला है इस लिये इस विश्व में तेरे से अधिक कौन व्यक्ति ज्यादा धन्य होगा सो तू बता ॥५४-५६॥

इस प्रकार नारद द्वारा कही बात को सुन हिमवान् फिर बोला "हे ब्रह्मन् ! आप योगनेत्र से भूत और भविष्य काल को देखते हैं तो आप को तीनों कालों की बात भीतर गर्भ में जो कुछ है वह आप से अज्ञात नहीं है सो मैं पूछता हूँ मुझ सेवक को आप कृपा करके कुछ बतलावें।" हे ब्रह्मन् ! सन्तान के बिना कहीं भी सुख नहीं है

अपत्येन विना ब्रह्मन्न सुखं विद्यते क्वचित् । तन्मेऽपत्यं यथा भूयात्तमुपायं विचारय ॥५६॥
श्रुत्वैवं हिमवद्वाक्यं क्षणं ध्यात्वाऽथ नारदः । प्रोवाच गोत्रपतये नारदो दिव्यदर्शनः ॥६०॥
शृणु पर्वतराजन्य तवाऽपत्यं न विद्यते । नाऽत्रोपायोऽपि संदृष्टः कन्यैका ते भविष्यति ॥६१॥
शृणु तच्चापि ते वक्ष्ये दुःखायैव हि सन्ततिः । न हि लोकेऽपत्ययुताः संदृष्टाः सुखिनः क्वचित् ॥६२॥
तत्राऽपि कन्या दुःखानां निदानमवधारय । यदि सा परमाशक्तिरनुगृह्णाति ते नग ! ॥६३॥
तदा सुखाय कन्याऽपि भविष्यति न संशयः । श्रुत्वेत्थं नारदवचः प्राह पर्वतराट् पुनः ॥६४॥
भगवन् सा परा शक्तिर्वामदेवमुखाच्छ्रुता । वर्णरूपा ह्यवगता न सा चिन्तयितुं क्षमा ॥६५॥
अतस्तद्रूपमत्यन्तनिगूढं वागगोचरम् । ततः कथं मे भवति तस्याश्चाऽनुग्रहो वद ॥६६॥
इति श्रुत्वा नारदोऽथ समाचष्टे विचक्षणः । शृणु शैलकुलाधीश ! सा हि सूक्ष्मा परात्परा ॥६७॥
वागाद्यगम्या महती त्रिपुरा सर्वकारणम् । तस्या यत्परमं रूपं सर्वाऽन्तरतया स्थितम् ॥६८॥

इस लिये जिस प्रकार मेरे पुत्र हो उस उपाय को विचारिये ॥५७-५९॥

नारद ने अब इस प्रकार हिमवान् का वाक्य सुन कर क्षण भर ध्यान धर कर पर्वतपति हिमवान् को दिव्य-दर्शन देने वाले नारद ने कहा । "हे पर्वतराजन्य ! सुन, तेरे कोई अपत्य का योग नहीं है इस में कोई उपाय भी नहीं देखा जाता तेरे एक कन्या होगी । सुन वह भी तुझे बताता हूँ सन्तति दुःख के लिये ही है; लोक में सन्तान वाले कहीं भी सुखी नहीं देखे गये" ॥६०-६२॥

उसमें भी कन्या तो दुःखों का मूल कारण है इसे मन में धारण करले । हे पर्वत ! यदि वह परमाशक्ति तेरे ऊपर कृपा करे तो कन्या भी सुख के लिये होगी इसमें कोई सन्देह नहीं । इस प्रकार नारद के कथन को सुनकर लोग-पर्वतराज ने फिर कहा ॥६३-६४॥

"हे भगवन् ! वह परा शक्ति वामदेव के मुख से सुनी वह वर्णरूपवाली जानी गई उसका चिन्तन नहीं किया जा सकता ॥६५॥ अतः उसका रूप अत्यन्त निगूढ़ वाणी से अगोचर है तदनन्तर मेरे ऊपर उसका अनुग्रह कैसे हो सो मुझे बताइये" ॥६६॥ अनन्तर इस प्रकार सुनकर विचक्षण नारद ने कहा हे शैलकुलाधीश ! सुन त्रिपुरा वह परात्परा सूक्ष्मा वाणी आदि से अगम्य महती सब की कारण है । उसका जो ऊंचे से ऊंचा रूप है वह सबके अन्तर स्थित है ॥६७-६८॥ योगियों में श्रेष्ठजन ही उसे अपने अन्तर रूप में जानते हैं अन्य लोग नहीं । उसका

योगिश्रेष्ठा विजानन्ति स्वाऽबहिष्ट्वेन नेतरे । तस्या यदपरं रूपं स्थूलं तत्सर्वगोचरम् ॥६९॥

तदुपास्याऽभिलषितं प्राप्नुह्यचिरमद्रिप । तदप्यनन्तं भक्तानां भावनापथि संस्थितम् ॥७०॥
तत्र गौरी मृडानी या विद्यारूपा परात्परा । तां भजाऽऽशु महादेवीं वाञ्छितप्राप्तये नग ! ॥७१॥
श्रुत्वेत्थं नारदप्रोक्तं पुनः पप्रच्छ पर्वतः । भगवन् सा हि का देवी या गौरीति समीरिता ॥७२॥
किंरूपा किंसमाचारा किंवीर्या शंस मे मुने । निशम्य पर्वतवचो निजगाद ततो मुनिः ॥७३॥
शृणु पर्वतराजन्य गौर्या रूपादिकं शुभम् । सा सम्भूता पराशक्तेर्विष्णवंशेन महेश्वरी ॥७४॥
नीलाभा सिंहसंस्थाना त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरी । खड्गञ्च खेटकं शूलं मुद्गरं पाणिपङ्कजैः ॥७५॥
दधाना शङ्करसती यस्याः संश्रयणाद्भवः । संहृतिं रचयन् कल्पस्याऽन्ते न ग्लायति क्वचित् ॥७६॥
एवंविधसमाचारा कारणाद्देहनाशतः । दक्षात्तनुं समासाद्य पतिनिन्दनसंश्रुतेः ॥७७॥
स्वं देहं भस्मसात् कृत्वा व्योमरूपतया स्थिता । सम्प्रार्थ्यमाना विबुधैर्नदेहमभिवाञ्छति ॥७८॥

जो अपर रूप है वह स्थूल है सब को गोचर होता है ॥६९॥

हे पर्वतराज ! उसकी उपासना कर अपना इच्छित प्राप्त कर, वह भी भक्तों के भावनापथ में स्थित अनन्त रूपों में है ॥७०॥ उस में गौरी मृडानी जो विद्यारूपा परात्परा है उस महादेवी की वाञ्छित फल की प्राप्ति के लिये शीघ्र भक्तिकर ॥७१॥ इस प्रकार नारद की कही वाणी को सुन कर फिर पर्वत ने पूछा, "हे भगवन् ! वह देवी कौन है ? जो "गौरी" इस प्रकार कही जाती है । हे मुने ! उसका स्वरूप क्या है ? उसका क्या पूजन है क्या बल पराक्रम है वह मुझे बताइये ।" तदनन्तर पर्वत की वाणी सुन कर मुनि बोले "हे पर्वतराज ! श्री गौरी के शुभकारी रूप आदि को सुन, वह महेश्वरी पराशक्ति के विष्णु के अंश से उत्पन्न हुई" ॥७२-७४॥

वह नील आभा वाली सिंह पर आसीन शङ्करसती त्रिनेत्रा चन्द्रशेखरी (चन्द्रमा जिसके बालों के जुए में स्थित है) खड्ग, खेटक, शूल और मुद्गर को अपने हस्त रूपी कमल में धारण किये हुई है जिसके आश्रय से भव-शंकर कल्प के अन्त में रचनाका संहार (करने पर वह) कहीं भी मन में ग्लानि नहीं रखती है इस प्रकार के समाचार वाली देहनाश के कारणमात्र से दक्ष की पुत्री हो पति की निन्दा सुनने से अपने देह को भस्मसात् कर व्योमरूपमें स्थित हो गई देवता गण द्वारा प्रार्थना की जाने पर भी आपके देह को नहीं चाहती ॥७५-७६॥

हे नगपते ! उसके बिना त्र्यम्बक अत्यन्त दुःखित है उस परमा की आराधना कर अपने प्रियअभिलाषित वस्तु

तां विना त्र्यम्बकोऽत्यन्तदुःखितो नगभूपते ! तां समाराध्य परमां याचस्व प्रियमात्मनः ॥७६॥
कन्या भव ममेत्येवं ततस्त्वं पर्वताधिप !। तथा कन्यारूपया त्वं युतः परमशोभनः ॥८०॥
लोके पूज्यतमश्चाऽपि देवैः स्तुत्यो भविष्यसि । महादेवस्य श्वशुरस्ततः ख्यातिं गमिष्यसि॥८१॥
तनयां च परां शक्तिं गौरीं प्राप्य नगोत्तम !। सौख्यं यशो महावश्च लोके तव भविष्यति॥८२॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे गौर्युपाख्याने
षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२१४५॥

की याचना करो । हे पर्वतराज ! "आप मेरी कन्या हो" इस प्रकार कह कर ठोस परमशोभन तू कन्या रूप के साथ लोक में पूज्यतम और देवगण से स्तुति करने योग्य बनेगा । तब तू महादेव का श्वशुर है इस प्रसिद्धिको प्राप्त होगा हे नगश्रेष्ठ ! पराशक्ति गौरी को प्रसन्न कर इससे तेरा सौख्य, यश और बल लोक में सर्वत्र होवेगा ॥७७-८२॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्म खण्ड में गौरी उपाख्यान नामक
छब्बीसवां अध्याय समाप्त ।

सप्तविंशोऽध्यायः

गौरीचरित्रवर्णने तारकेयाख्यानवर्णनम्

नगराज ! शृणु कथां गौरीचरित्रसंयुताम् । पुरा रथन्तरे कल्पे तारकेयो महासुरः ॥१॥
तपसा तोषयामास महादेवं त्रिलोचनम् । वरं बहुविधं लब्ध्वा बबाधेऽतितरां जगत् ॥२॥
सृष्टौ स्थितौ संहरणे तस्मै शक्तिमदोद्भवः । सम्मुखस्थस्य सामर्थ्यमवकर्षति च क्षणात् ॥३॥
एवं वरेण सहितो दर्पितः स महासुरः । ससर्जाऽण्डान्यनेकानि ब्रह्मविष्णुशिवानपि ॥४॥
इन्द्रादीनखिलान् देवान् स्वयं सर्वाधिपोऽभवत् । तेन सृष्टा ब्रह्ममुखाः पूजयन्ति महासुरम् ॥५॥
स्वयं यज्ञाऽधिपो जातः स्वसृष्टाण्डेषु सर्वतः । वेदा विनिर्मितास्तेन विद्याश्च विविधास्तथा ॥६॥
अथाऽऽगत्य तारकेयो ब्रह्मादीनाह सोऽसुरः । मां यजन्तु सुराः सर्वे मम वेदान् पठन्तु च ॥७॥

सत्ताईसवां अध्याय

हे पर्वतराज ! गौरीचरित्र से युक्त कथा को सुन प्राचीन काल में रथन्तर कल्प में तारकेय महासुर ने तपस्या से त्रिलोचन महादेव को सन्तुष्ट कर लिया । बहुत प्रकार से वर पाकर जगत् को बहुत अधिक त्रस्त किया ॥१-२॥

उसे सृष्टि रचन में, पालन में और संहार में शक्तिमद अधिकाधिक हो गया, अपने सम्मुख आने वाले की शक्तिको वह क्षणभर में खींच लेता ॥३॥ इस प्रकार वर से गर्वित हो उस महादैत्यने अनेक ब्रह्माण्डों और ब्रह्मा, विष्णु और शिवको रचा ॥४॥ साथ ही इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवगणको भी बनाया और स्वयं सबका स्वामी हो गया । उसके द्वारा रचे गये ब्रह्म प्रमुख देव गण महाअसुर को पूजने लगे । ॥५॥ स्वयं चारों ओर से अपने रचे हुए ब्रह्माण्डों में यज्ञ का अधिपति हो गया, उसने वेदों को बनाया तथा विविध विद्यायें रच डाली ॥६॥

अब असुर तारकेय ने आकर सभी ब्रह्मा आदि देवगण को कहा, "सभी देवता मेरा यजन करो और मेरे वेदों को पढ़ो ॥७॥ मैं सब का ईश्वर देव हूँ और मुझे सदा प्रणाम करो ।" इस प्रकार उसका वचन सुनकर जब

अहं सर्वेश्वरो देवः प्रणमन्तु च मां सदा । इति तद्वचनं श्रुत्वा न स्वीचक्रुर्यदा सुराः ॥८॥
तदा देवान् विनिर्जित्य बद्ध्वा स्वाण्डे विनिक्षिपत् ।
आदित्यांश्च वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ॥९॥
बद्ध्वा निजाण्डे निक्षिप्य ब्रह्मादीन् भेत्तुमाययौ ॥१०॥
दृष्ट्वाऽसुरं समायान्तं स्वान्नेतुं विधिमुख्यकाः । योद्धुमभ्युद्यतास्ते वै स्वपरीवारसंयुताः ॥११॥
युद्ध्वा चिरं तेन विधिमुखा दृष्ट्वा महासुरम् । अजेयं वरदानेन तिरोभूतास्तदेश्वराः ॥१२॥
अन्तर्धानं प्रयातेषु तेषु पश्चान्महासुरः । विधिं हरिं शिवं चाऽन्यं सृष्ट्वा लोके न्यवेशयत् ॥१३॥
सृष्ट्वेन्द्रादीनपि सुरान् स्वर्गादिषु निवेश्य च । सर्वैः पूजां समासाद्य बभौ सर्वेश्वरोऽसुरः ॥१४॥
अथ कालान्तरे भूयोऽपश्यन्नण्डान्यनेकशः । स्वर्गे शचीं समालोक्य तत्सौन्दर्येण मोहितः ॥१५॥
दूतं निशठनामानमानेतुं तां समादिशत् । गत्वा दूतः शचीं प्राह नत्वा स्वस्वामिनेरितम् ॥१६॥
इन्द्राणि तारकेयेन प्रेषितोऽहं समागतः । प्राह त्वामसुरेशानः सर्वलोकेश्वरो विभुः ॥१७॥
मम पार्श्वं प्रयाह्याशु प्रणयेन शुचिस्मिते । अखिलाऽण्डमहाराज्यं भुंक्ष्व त्वं मत्परिग्रहात् ॥१८॥

देवगण ने स्वीकार नहीं किया तब देवताओं को जीतकर उन्हें बांध कर अपने ब्रह्माण्ड में धकेल दिया। आदित्य, रुद्र, अश्विनीकुमार और मरुत् गणों को बांध कर अपने अण्ड में रख ब्रह्मादि को डराने आया ॥८-१०॥

असुर को उन्हें लिवाने आया देख विधिप्रमुख देव अपने पार्षदों समेत युद्ध करने को तैयार हो गये। विधिमुख देवगण ने दीर्घ समय तक उसके साथ युद्ध कर महादैत्य को वरदान से अजेय देख वे कारण से अदृष्ट हो गये ॥१२॥ उनके अन्तर्धान हो जाने के पश्चात् महासुर ने अन्य ही ब्रह्मा विष्णु और शिव बनाकर लोक में उन्हें स्थापित किया ॥११-१३॥

नये इन्द्रादि देवगण को बना कर भी और स्वर्गादि में उन्हें रख सब से पूजा प्राप्त कर वह असुर सर्वेश बना। तदनन्तर कालान्तर में फिर अनेक ब्रह्माण्डों को देखा, स्वर्ग में इन्द्राणी को देखकर उसके सौन्दर्य से मोहित हो निशठ नामक दूत को उसे लाने के लिये आदेश दिया। दूत ने जाकर शची (इन्द्राणी) को नमस्कार कर अपने स्वामी के कहे सन्देश को जा सुनाया। हे इन्द्राणि ! तारकेय के द्वारा भेजा हुआ मैं आया हूँ। तुम्हें सर्वलोकेश्वर विभु असुरेशानने कहा, (है ।क) हे शुचिस्मिते ! अतिशीघ्र प्रेमसे मेरे पास आजा मेरे साथ विवाह कर अखिल अण्डोंके

एवं सम्मानितश्चाहं भवामि वशगस्तव । अन्यथा त्वं बलाऽऽकृष्टा मानहीना भविष्यसि ॥१६॥
इति श्रुत्वा दूतवचः शची चिन्तासमाकुला । किं करोमि न चाऽन्यो मे रक्षको विद्यतेऽधुना ॥२०॥
इन्द्रो जयन्तो देवाश्च बद्ध्वा नीताः सुदूरतः । तेषां वृत्तं न जानामि न कश्चिद्रक्षिता मम ॥२१॥
उपायेन सुरपतिं वारयामि च सम्प्रति । आपदि प्रौढधिषणैरशक्तैः सर्वयत्नतः ॥२२॥
क्षणं तदर्धं वाऽपोह्य प्राप्यते सुखमुत्तमम् । बलवद्व्यवधानेन स्वात्मानं मोचयाम्यहम् ॥२३॥
इति निश्चित्य मनसा शची दूतमचक्षत । शृणु दूत ! तारकेये मत्सन्देशं च प्रापय ॥२४॥
विष्णुर्देवेषु परमश्रीस्तत्पत्नी मनोहरा । वयं तस्याऽनुचर्यस्तां त्वं समानेतुमर्हसि ॥२५॥
ततो वयमनाहूता भवामः परिचारिकाः । एवं शच्या समादिष्टो दैत्यः प्रोवाच सन्नतः ॥२६॥
तच्छ्रुत्वा तारकेयोऽपि तथ्यमित्यनुमन्यत । अथ दूतं विष्णुपत्न्यै प्रेषयामास सोऽसुरः ॥२७॥
वैकुण्ठे दूत आगत्य लक्ष्म्यै चाऽसुरभाषितम् । न्यवेदयदथ रमा श्रुत्वा दूतस्य भाषितम् ॥२८॥

महाराज्य को भोग । इस प्रकार सम्मानित हो मैं तेरे वश में हो जाऊँगा । नहीं तो तूं बलात्कार से खींची जाकर मान हीन होगी ॥१४-१९॥

इस प्रकार दूत का कथन सुनकर इन्द्राणी चिन्ता से व्याकुल हो गई, "मैं क्या करूं अब कोई दूसरा मेरी रक्षा करने वाला नहीं है ।" इन्द्र, जयन्त और देवगण बांध कर बहुत दूर ले जाये गये, उनके समाचार को मैं नहीं जानती मेरा कोई भी रक्षक नहीं रहा ॥२०-२१॥

उपाय द्वारा असुर पति को वारण करती हूँ आपत्ति में प्रौढ़ बुद्धिवाले जो शक्तिहीन हैं सब यत्न से क्षण अथवा आधे क्षण अपना अपोहन (विचार के द्वारा बुद्धि में रहने वाले संशय, विपर्यय आदि दोषों को दूर कर) करके उत्तम सुख पाते हैं । बलवान् को बीच में व्यवधान करके रखने से मैं अपना छुटकारा करती हूँ । इस प्रकार मन से निश्चय कर इन्द्राणी ने दूत से कहा, हे दूत ! सुन तारकेय को मेरा सन्देश पहुंचा दे । देवगण में विष्णु श्रेष्ठ श्री सम्पन्न है उसकी पत्नी लक्ष्मी मनोहर है हम उसकी अनुचरी (सेविकायें) हैं उन्हें तूं लेजा सकता है ॥२२-२५॥

तब हम बिना बुलाये ही परिचारिका बन जाँयगी । इस प्रकार इन्द्राणी द्वारा सन्देश पाकर दैत्य ने प्रणाम कर कहा । उसे सुन कर तारकेय ने भी इसे सत्य समझा । अब असुर ने दूत को विष्णु पत्नी के पास

सावहेलं दूतमाह हे दूत ! शृणु मद्वचः । नाऽहं कामयितुं योग्या तारकेयस्य दुर्मतिः ॥२६॥
प्रार्थयत्यात्मनाशं स गच्छ शीघ्रमितो बहिः। इत्थं निरस्तो दूतोऽथ गत्वोवाचाऽसुराधिपम् ॥३०॥
प्रतिषेधं श्रियः श्रुत्वा समन्युस्तारकेयकः । आगत्य सेनया सार्धं रुरोध श्रीनिकेतनम् ॥३१॥
अथ लक्ष्मीर्युता स्वीयशक्तिभिः शतकोटिभिः । निर्गत्याऽसुरसेनां तां नाशयामास सत्वरम् ॥३२॥
तारकेयः समालोक्य लक्ष्म्या वीर्यं महत्तरम्। स्वयं युयोध बलवान् तया शस्त्राऽस्त्रकोविदः॥३३॥
तयोः समभवद्युद्धं तारकेयश्रियोस्तदा । भयदं सर्वलोकानां विष्णुशङ्करयोरिव ॥३४॥
युध्यतोश्चतयोरेवमत्यगाद्वर्षपञ्चकम् । नाशितं रमया सैन्यं दैत्यः संसृजति क्षणात् ॥३५॥
एवं पुनः पुनर्नष्टसैन्यं सृष्ट्वा युयोध सः । अथ लक्ष्मीः समालक्ष्य चाऽजेयं दैत्यपुङ्गवम् ॥३६॥
सस्मार विष्णुं मनसा भर्तारं पुरुषं परम् । अथ नारायणः श्रीमान् वैनतेयं समास्थितः ॥३७॥

भेजा। दूत ने बैकुण्ठ में आकर लक्ष्मी के लिये असुरके सन्देश को कहा । तदनन्तर रमा दूत के कथन को सुन कर बड़ी उपेक्षा से उसे कहा, "हे दूत ! मेरी बात सुन मैं तारकेय के द्वारा कामना की जाने योग्य नहीं हूँ वह कुबुद्धि वाला अपने नाश को ही बुलावा भेजता है यहां से जल्दी ही बाहर निकल जा। इस प्रकार निकाला गया वह दूत जाकर असुराधिपति से यथावत् बोला ॥२६-३०॥"

लक्ष्मी द्वारा नकारात्मक उत्तर सुन कर तारकेय ने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर अपनी सेना के साथ आकर श्रीनिकेतन को घेर लिया। अब लक्ष्मी ने अपनी शतकोटि संख्यक शक्तियों के साथ निकल कर उस असुर सेना का शीघ्र नाश कर दिया। तारकेय ने लक्ष्मी के पराक्रम को बहुत प्रबल रूप में देख कर स्वयं शस्त्रास्त्र विद्या में प्रवीण वह उसके साथ लड़ा "तारकेय और लक्ष्मी का युद्ध सब लोकों को भयदायी विष्णु और शङ्कर के युद्ध के समान हुआ ॥३१-३४॥"

इस प्रकार युद्ध करते हुए उन्हें ५ वर्ष व्यतीत हो गये। लक्ष्मी द्वारा नष्ट की गई सेना को दत्य क्षण भर में रच देता। इस प्रकार बार-बार नष्ट हुई सेना को बना कर वह लड़ता रहा। इसके अनन्तर लक्ष्मी ने दैत्यश्रेष्ठ को अजेय देख मन से परम पुरुष अपने पतिदेव विष्णु का स्मरण किया। अनन्तर श्रीमान् नारायण गरुड पर चढ़ कर आये ॥३६--३७॥

आविर्बभूव समरे पार्षदैः परिवारितः । एवं कालोदिताऽनेकचण्डांशुसमभास्वरः ॥३८॥
लक्ष्मीं ददर्श समरश्रान्तां त्रस्यन्मुखाम्बुजाम् ।

क्रुद्धोऽत्यन्तं युयोधाऽऽजौ दैत्यराजेन यत्नतः ॥३९॥
तदा स दैत्यः स्वं रूपं द्विधा कृत्वा क्षणेन तु ।

प्रत्येकं युयुधे लक्ष्म्या विष्णुना युगपद् बली ॥४०॥
अथ विष्णुः प्रकुपितश्चक्रं यद्वै सुदर्शनम् । अमोघं तत् प्रचिक्षेप दैत्यनाशाय तत्क्षणे ॥४१॥
चक्रं तद्दैत्यमासाद्य ददाहाऽग्निरिवाऽलयम् ।

तदा लक्ष्म्या युध्यमानः ससर्जाऽन्यं महासुरम् ॥४२॥
पुनः स विष्णुना युद्धं चक्रे घोरं महत्तरम् । एवं भूयो हतो दैत्यः ससर्जाऽऽत्मानमात्मना॥४३॥
दृष्ट्वा दैत्यमजेयं तं वरदानान्महेशितुः । रमया सह देवेशस्तिरोभूतो रणाऽजिरे ॥४४॥

वह युद्ध में विष्णुपार्षदों समेत प्रगट हुए। इस प्रकार प्रलयकाल में उदित अत्यन्तप्रखरकिरणोंवाले अनेक सूर्यों के समान तेजस्वी विष्णु ने युद्ध करने से अत्यन्त श्रान्त एवं त्रस्त मुखकमलवाली लक्ष्मी को देखा। अत्यन्त क्रुद्ध होकर दैत्यराज के साथ खूब चेष्टा पूर्वक विष्णु ने युद्ध किया। ॥३८-३९॥ तब दैत्यने क्षण में अपना दो रूप बनाया और प्रत्येक स्वरूप से पृथक्-पृथक् लक्ष्मी तथा श्रीविष्णु से एक साथ लड़ाई की ॥४०॥

अनन्तर श्रीविष्णु ने अत्यन्त कुपित हो जो अमोघ सुदर्शन चक्र है उसे दैत्य के नाश के लिये फेंका। तत्काल चक्र दैत्य को पाकर अग्नि जैसे घर को जलाता है वैसे उसे जलाने लगा। तब लक्ष्मी से युद्ध करते हुए दैत्य ने अन्य महासुर को बनाया ॥ ४१-४२॥ फिर उसने विष्णु के साथ बड़ा तुमुल घोर युद्ध किया इस प्रकार फिर वध किये गये दैत्य ने अपने से अन्य महासुर को रचा ॥४३॥

महेशके वरदानसे दैत्यको अजेय देखकर रणके प्राङ्गण (रणभूमि)में देवेश विष्णु लक्ष्मी के साथ तिरोभूत (अदृश्य) होगये ॥ ४४ ॥ अब दैत्यपति लक्ष्मी के साथ विष्णु को परास्त मान कर असुरों से युक्त हो अपने स्थान में चला

अथ मत्वा दैत्यपतिः परास्तं रमया हरिम् । जगाम स्थानमात्मीयमसुरैः परिवारितः ॥४५॥
तदन्तरे तु गन्धर्वमुखाच्छ्रुत्वा पराभवम् । विष्णोर्लक्ष्मीसमेतस्य शची सस्मार वै गुरुम् ॥४६॥
स्मृतमात्रो गुरुस्तत्र शचीसविध आगतः । तं दृष्ट्वाऽऽङ्गिरसञ्चाऽग्रे शची प्रत्युत्थिताऽभवत् ॥४७॥
अथ तं सा पूजयित्वा प्रणम्य भक्तियोगतः । मुञ्चन्त्यश्रूणि नेत्राभ्यां दीना प्रोवाच तं गुरुम् ।४८।
गुरोऽहमतिखिन्नाऽस्मि दैत्यराजेन पीडिता । महाबलेन बद्धो मे पतिरिन्द्रः सहाऽमरैः ॥४९॥
परामर्ष्टुं मामधुना समीहत्य सुरेश्वरः । दूतं मे प्रेषयामास युक्त्या स च निवारितः ॥५०॥
लक्ष्मीनारायणौ युद्धे निर्जितौ तेन सम्प्रति । आयास्यत्यभिनेतुं मामद्य श्वो वा महासुरः ॥५१॥
किं करोमि क्व गच्छामि नाऽस्ति मे शरणं क्वचित् ।
प्रपन्नां रक्ष दीनां मामाङ्गिरस गुरोऽधुना ॥५२॥
संश्रुत्वैवं विलपितमिन्द्राण्या धिषणस्तदा । समालोक्य ज्ञानदृशा शचीं प्राह दयाऽन्वितः ।५३।

गया । इसके अनन्तर किसी गन्धर्वके कहने से लक्ष्मीसमेत विष्णुका पराजय सुनकर इन्द्राणी ने देवगुरु बृहस्पतिका स्मरण किया । ॥ ४५-४६ ॥ स्मरण करने मात्र से गुरुदेव वहाँ इन्द्राणी के पास आ गये । अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति को देखकर इन्द्राणी (अभिवादन के लिये) उठ खड़ी हुई ॥४७॥

अनन्तर वह उसका पूजन कर भक्ति पूर्वक प्रणाम कर नेत्रों से आंसुओं को बहाती हुई अतिदीन भावमें गुरुसे बोली ॥ ४८ ॥ "हे गुरुदेव ! मैं दैत्यराज से पीड़ित हो बहुत अधिक खिन्न हूँ; उस महाबली ने मेरे पति इन्द्र को देवगण समेत बांध लिया ॥ ४९ ॥

मुझे असुरेश्वर अपने पास लिवाने की इच्छा करता है, उसने दूतको भेजा था जो युक्तिसे मेरे द्वारा निवारित कर दिया गया ॥ ५० ॥ अब उस महादैत्य ने युद्ध में लक्ष्मी और नारायण दोनों को जीत लिया ; वह महासुर आज अथवा कल मुझे लेने को आवेगा । मैं क्या करूं कहां जाऊँ मेरी कहीं भी शरण नहीं । हे आङ्गिरस ! गुरुदेव ! शरणापन्न मुझ दीना हीना को बचाइये ।" ॥५१-५२॥

इस प्रकार इन्द्राणी द्वारा विशेष रूप से आत्मनिवेदन सुनकर बृहस्पति ने तब ज्ञानदृष्टि से देखकर दयान्वित

पुलोमजे शृणु मम वचनं कालसम्मितम्। एष दैत्यो महादेववरात् सर्वजयी भवत् ॥५४॥
नास्त्यस्य जेता लोकेऽस्मिन् परलोके च विद्यते। स्त्रीभिर्वा न पराजेयः साक्षाद्गौरीमृतेऽसुरः ॥५५॥
आगमिष्यति दूतस्ते नेतुं शीघ्रं महासुरः। त्वं मासं व्यवधिं कृत्वा गौरीमाराधय द्रुतम् ॥५६॥
इत्युक्त्वा निर्गतो जीवः शची च परमेश्वरीम्। गौरीं समाराधयितुं तदैव समुपाऽक्रमत् ॥५७॥
मूर्तिं पृथ्वीमयीं कृत्वा सिंहसंस्थां चतुर्भुजाम्। खड्गं च खेटकं शूलं मुद्गरं दधतीं शुभाम् ॥५८॥
त्रिनेत्रां चन्द्रचूडालां मेचकाऽऽभां सुभूषिताम्। नानोपहारैराराध्य ध्यात्वाऽऽवाह्य यथाविधि ॥५९॥
गुरूपदिष्टस्तोत्रेण नामाऽष्टशतकात्मना। स्तुत्वा तदेकचित्ताऽभूत्तन्मन्त्रजपतत्परा ॥६०॥
अथाऽसुरोऽपि स्मृत्वा तां शचीं कामशराऽऽहतः। दूतेन सह निर्गत्य देवलोकं समाययौ ॥६१॥
संस्थितो नन्दनवने दूतं तं प्रेषयद्द्रुतम्। अथ दूतः समागत्य शचीं प्रोवाच सन्नतः ॥६२॥

होकर उससे कहा, ॥ ५३ ॥ "हे पुलोमजे ! मेरा समयोपयोगी वचन सुन यह दैत्य महादेव के वर से सब के ऊपर विजय करने वाला बना ॥ ५४ ॥ इसलोक में और परलोक में इसका जीतने वाला नहीं है। साक्षात् गौरी को छोड़ वह दैत्य अन्य किन्हीं स्त्रियों से भी पराजित नहीं हो सकता। ॥ ५५ ॥ तुम्हें लेने के लिये महासुर दैत्य शीघ्र आवेगा सो तू एक मास का व्यवधान करके अत्यन्त शीघ्रता से गौरी की आराधना कर" ॥५६॥ इस प्रकार कहकर बृहस्पति बाहर चले गये और इन्द्रपत्नी शची ने परमेश्वरी गौरी की आराधना करने के लिये तभी से श्रीगणेश किया ॥ ५७ ॥

सिंह पर विराजमान चतुर्भुजावाली खड्ग, खेटक, शूल और मुद्गर धारण की हुई, मिट्टी की सुन्दर मूर्त्ति कर त्रिनेत्रा चन्द्र का स्थान सिर के जूड़े में बना चन्द्रप्रभाभासित सुन्दर वस्त्र आभूषणों से सजाकर नाना उपहार द्रव्यों से ध्यानपूर्वक आराधना कर पूर्ण विधिसहित आवाहन कर अष्टोत्तरशतनामा वाले गुरुदेव के बताये स्तोत्र से स्तुति कर भगवती में पूर्ण समाहित मन हो उसी आराध्या के मन्त्र के जप में तत्पर हो गई ॥ ५८-६० ॥

अनन्तर असुर भी कामबाणों से पीड़ित इन्द्राणी को याद कर दूत के साथ अपने आवास से निकलकर देवलोक में गया ॥६१॥ नन्दनवन में ठहरे हुए उसने शीघ्र दूत को भेजा। अनन्तर दूत विनत होकर इन्द्राणी से बोला, "हे देवि ! दैत्येश्वर आया है; नन्दनवन में ठहरा है, जैसे वसन्त में खिले पुष्पों से युक्त वसन्त ऋतु शोभाजनक

देवि दैत्येश्वरः प्राप्तः संस्थितो नन्दने वने । वसन्तकुसुमैश्छन्नो वसन्त इव रूपवान् ॥६३॥
त्वद्दर्शनं समाकाङ्क्षन् तव ध्यानैकतत्परः । त्वां समानयितुश्चाऽहं प्रेषितोऽस्मि वरानने ॥६४॥
एहि त्वं चपलाऽपाङ्गि दैत्यराजं भज द्रुतम्। ब्रह्माण्डानां शतं यस्य वशे तन्महिषी भव ॥६५॥
अनेके धातृविष्ण्वाद्यास्त्वां सेवितुं स्त्रिया सह ।
या त्वयोक्ता पुरा लक्ष्मीस्तया युक्तो जनार्दनः ॥६६॥
निर्जितो युधि स्वं लोकं त्यक्त्वा भीत्या पलायितः ।
प्रबुद्धं ते महाभाग्यं यत्त्वां काङ्क्षति दैत्यराट् ॥६७॥
इति संश्रुत्य दूतस्य वाक्यं सा सुरराट्प्रिया । मनसा गर्हयन्ती तं प्राह वाक्यविशारदा ॥६८॥
शृणु मे वचनं दूत यन्मामिच्छति दैत्यराट् । चिरादेतद्वाञ्छितं मे घटितं कालपाकतः ॥६९॥
भविता नूतनतया पतिर्मे सुरराट् खलु । तत्र मासव्रतपरा स्थित्वा पतिसुखाय वै ॥७०॥
समाप्तव्रतचर्याऽहं भजाम्यसुरभूपतिम् । व्रते पूर्णे वियोगो न भर्त्रा जातु भविष्यति ॥७१॥

होता है वैसे अति रूपवान् वह तुम्हारे दर्शन को इच्छा करता हुआ तुम्हारे केवल ध्यानमें मग्न रहता है ; हे वरानने तुम्हें लिवाने के लिये मैं भेजा गया हूँ ॥ ६२-६४ ॥

हे चञ्चल नेत्रकोण वाली तू आ शीघ्र दैत्यराज को प्राप्त हो। जिसके वश में सैकड़ों ब्रह्माण्ड हैं उस महादैत्य की प्रधान पट्टरानी हो जाओ ॥६५॥ तुम्हारी सेवा में अनेक धाता विष्णु आदि कारणदेव स्वस्त्रीसमेत रहेंगे। पहले जो तुमने लक्ष्मी बताई थी उसके साथ जनार्दन युद्ध में पराजित हो गया (और) अपने लोक को छोड़कर दैत्यराज के डर से भाग गया। तेरा महाभाग्य चेता है जो दैत्यराज तुम्हें चाहते हैं" ॥ ६६-६७ ॥

इस प्रकार दूत का कथन सुनकर वह देवराज की प्रिया शची मन से उस दैत्य दुष्ट की भर्त्सना करती हुई वाक्य कहनेमें विशेष चतुर मधुरवाणीसे बोली ॥६८॥ "हे दूत ! मेरा वचन सुन जो दैत्यराज मुझे चाहता है यह मैं भी दीर्घसमय से चाहती रही, अब समय पर सब घटित होता है अवश्य ही यह असुरों का राजा नवीन रूप में मेरा पति होगा। इस विषय में पति के सुख के लिये एकमास तक व्रतपालन करती हुई व्रत नियम पूरा कर मैं असुर भूपति को भोगूँगी। यह व्रत पूर्ण होने पर पति के साथ कभी मेरा वियोग नहीं होगा ॥६९-७१॥

विहते तु व्रते पत्युर्वियोगः स्याद्द्रुतं मम । नाऽहं पतिवियोगार्तिं भजामि व्रतयोगतः ॥७२॥
तद्गत्वा ब्रूहि दैत्येन्द्रं क्षम्यतां मासमात्रकम् । एवं शची वचः श्रुत्वा दैत्यराजे निवेदयत्॥७३॥
श्रुत्वा सोऽपि प्रसन्नस्तं प्रतीक्षन्समयं स्थितः । इन्द्राणी च प्रतिदिनं वायुमात्राऽशना सती॥७४॥
यता स्वान्तेन्द्रियाहारविहारवचनक्रिया । ध्यायन्नजस्रं श्रीगौरीपादाब्जं मनसि स्थिरम्॥७५॥
दिनानामतियायैवं चतुर्गुणितसप्तकम् । ऊनत्रिंशद्दिने रात्रौ चिन्तयामास वै शची ॥७६॥
नाद्यापि देवी सम्प्रीता दिनमेकमिहाऽन्तरम् । ततोऽहं दैत्यराजस्य भविष्यामि नियन्त्रणे॥७७॥
एतन्मे विषमं भाति किं कृत्वा स्याच्छुभं मम । नान्यो ह्युपायः प्रकृते महद्भयमुपस्थितम् ॥७८॥
आत्मदानं नोचितं वै दैत्यराजाय सर्वथा । तस्मादेकं प्रतीक्षिष्ये दिनं गौरीं समाहिता ॥७९॥
ततः प्रभातेऽमुं देहं देव्यै वह्नौ समर्पये । इति निश्चित्य देवेशपत्नी कुण्डं महत्तरम् ॥८०॥
चकार तत्र भवने यत्र गौरी निवेशिता । कश्चिद्दैत्यपतेर्दूतः शचीं पप्रच्छ तं विधिम् ॥८१॥

व्रत में विघ्न होने पर शीघ्र मेरे पति का वियोग होगा। व्रत के प्रभाव से मैं पति के वियोग के दुःख को नहीं भोगूँगी ॥ ७२ ॥ इसलिये दैत्येन्द्र को बोल कि एक मास के लिये मुझे क्षमा करे।" इस प्रकार इन्द्राणी के कथन को सुन कर (दूत ने) दैत्यराज को जा बताया ॥ ७३ ॥ सुनकर वह भी प्रसन्न हो समय की प्रतीक्षा करता रहा। और इन्द्राणी ने प्रतिदिन केवल वायुमात्र आहार पर निर्भर रह कर अपने अन्तःकरण व इन्द्रियों को निग्रह कर आहार-विहार, वाणी और क्रिया में संयमपूर्वक मनोयोग करती हुई सतत श्रीगौरी के चरण-कमलों को मन में ध्यान करती हुई स्थिर भावसे २८ अट्ठाईस दिन बिता दिये; उनतीसवें दिन रात्रिमें इन्द्राणी ने विचार किया, "आज भी देवी प्रसन्न नहीं हुई आगे केवल एक दिन का अन्तर है, बाद में मैं दैत्यराज के नियन्त्रण में हो जाऊंगी ॥७४-७७॥ यह मुझे अत्यन्त ही विपरीत लगता है (अच्छा नहीं लगता) क्या करने से मेरा मङ्गल हो ? कोई अन्य उपाय नहीं इस समय मेरे लिये बड़ा भय उपस्थित हो गया है ॥७८॥

दैत्यराज को अपना समर्पण करना तो सर्वथा उचित नहीं है। इसलिये एक दिन और ध्यान लगा भगवती गौरी की प्रतीक्षा करूंगी ॥ ७९ ॥ फिर प्रातःकाल होते ही इस देह को देवी के लिये अग्निकुण्ड में समर्पित कर दूंगी।" इस प्रकार देवेन्द्र की पत्नी शची ने जहां भगवती गौरी की प्रतिमा विराजमान थी उस भवन में बड़ा विशाल कुण्ड बनाया दैत्यराजके किसी दूत ने आकर शची से उस विधि के विषयमें पूछा ॥८०-८१॥ वह बोली, "पूरा

सा प्राह मासनिर्वर्त्यं व्रतं पूर्णं भविष्यति । अहं श्वः कल्यसमये दैत्येशं तमनुव्रजे ॥८२॥
गच्छ दूत दैत्यपतिः सूर्यस्योदयनं प्रति । आगच्छत्विह मां नेतुं सन्नद्धः समलङ्कृतः ॥८३॥
श्रुत्वा दूतः शचीवाक्यं तथ्यं मत्वाऽसुरेश्वरे । निवेदयत् सोऽपि हृष्टः कालं तं प्रसमीक्षत ॥८४॥
अथेन्द्राणी महापूजां कृत्वा देव्यै समर्हणैः । एधांसि कुण्डे निक्षिप्य प्रज्वाल्य ज्वलिताऽनले ॥८५॥
ध्यात्वा गौरीं भक्तियुता स्वदेहं होतुमिच्छया । सूर्योदयं समालक्ष्य परिक्रम्य च पावकम् ॥८६॥
बद्ध्वाऽञ्जलिं प्रणम्याऽथ प्रार्थयामास शङ्करीम् । नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै ते समर्पये ॥८७॥
इमं देहं तेन देवी प्रीताऽस्तु परदेवता । इति प्रार्थ्य शची यावत्पावके देहपातनम् ॥८८॥
वाञ्छन्ती तावदाकाशे वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् । अकस्माद्भवद्घोरनिःस्वनोऽतिभयङ्करः ॥८९॥
तं श्रुत्वा च महाशब्दमपश्यद्गगनाऽङ्गणे । सिंहं सुवर्णसङ्काशं शैलराजमिवोन्नतम् ॥९०॥
तस्योपरि महादेवीं पूज्यमूर्तिसमाकृतिम् । दृष्ट्वा नमस्कृत्य शची हर्षव्याकुलिताऽन्तरा ॥९१॥

मास बीतने पर व्रत पूर्ण होगा ; कल प्रातःकाल मै उस दैत्य की अनुगामिनी बनूँगी ॥ ८२ ॥

हे दूत ! जा (और दैत्यराज को कह दे) दैत्यपति यहां सूर्योदय के साथ ही अच्छी प्रकार तैयार और अलंकृत होकर मुझे लेने आ जावे" ॥ ८३ ॥ शची के वाक्य को सुनकर दूत इसे सत्य मान कर उस असुराधिपति को सब वृत्त बता आया । वह भी प्रसन्न होकर उस कहे हुए काल की प्रतीक्षा में रहा ॥ ८४ ॥

अनन्तर इन्द्राणी ने देवी के लिये सुन्दर उपचारों से महापूजा कर कुण्ड में इन्धन लगा और अग्नि प्रज्वलित कर भक्तिपूर्ण अन्तःकरण हो भगवती गौरी का ध्यान कर अपनी देहको उसमें होमकर जलाने की इच्छासे सूर्योदयको देख अग्नि की प्रदक्षिणा कर अञ्जलि बांध प्रणामकर शङ्करी की प्रार्थना की । "महादेवी शिवा देवी के लिये नमस्कार हो, मैं इस देह को आपको समर्पित करती हूँ जिससे भगवती परदेवता प्रसन्न हो ।" इस प्रकार प्रार्थना कर शची जैसे ही अग्नि में देह गिराने की इच्छा करती हुई बढ़ी वैसे ही आकाश में वज्र के गिरने के समान कर्कश अकस्मात् अतिभयङ्कर घोर शब्द हुआ ॥८५-८९॥ उस महाशब्द को सुनकर उसने आकाशमें ज्यों ही देखा तो सुवर्ण-वर्ण के सङ्काश (जैसा) शैलराज के समान उन्नत सिंह और उसके ऊपर विराजी अपनी आराध्या पूज्यमूर्ति के समान आकारवाली महादेवी को देख नमस्कार कर हर्ष से गद्गद अन्तःकरण हो इन्द्राणी खड़ी ही रही ॥९०-९१॥

अथ तं शब्दमाकर्ण्य तारकेयो सुरेश्वरः । खड्गहस्तस्तं निनदमनुप्राऽद्रवदम्बरे ॥९२॥
दृष्ट्वा जघान खड्गेन तं सिंहं मूर्ध्नि कोपितः । पतितः सिंहमूर्ध्न्याशु पफाल शतधाऽऽयुधम् ॥९३॥
अथ गौरी समालोक्य दैत्यं रोषारुणेक्षणा । जघान हृदि शूलेन भिन्नवक्षाः पपात ह ॥९४॥
अथ शीघ्रं समुत्थाय दैत्योऽन्तर्धिं समागतः । क्षणेनैव महासैन्यं ससर्जाऽऽकाशमण्डले ॥९५॥
अथाऽभवन्महायुद्धं भवानीदैत्यसेनयोः । गौरीनिःश्वाससम्भूता मातृका मन्युदीपिताः ॥९६॥
कोटिकोटिगणैर्युक्ता युयुधुर्दैत्यसेनाया । मातृकाभिः स्वीयसेनां प्रनष्टां प्रेक्ष्य दैत्यराट् ॥९७॥
भूयः ससर्ज परमं दैत्यसैन्यं महत्तरम् । निमेषेणैव तदपि मातृकाभिर्विनाशितम् ॥९८॥
अथ दैत्यपतिर्मत्वा मातृका बलवत्तराः । ससर्ज त्र्यम्बकं देवं शिवं चन्द्रावतंसकम् ॥९९॥
स शिवः शूलमुद्यम्य गौर्या योद्धुं समाययौ । तं दृष्ट्वा मातृकाः सर्वा बभूवुर्न्यस्तहेतिकाः ॥१००॥
मत्वा गौरी पतिं शम्भुमथ सा शङ्करी जगौ । नायं शिवो मम पतिरेष दैत्यविनिर्मितः ॥१०१॥

अब उस शब्द को सुनकर असुरों के अधिपति तारकेय अपने हाथ में खड्ग लेकर उस शब्द की ओर आकाश में दौड़ा ॥९२॥ उस सिंह को देख कर अत्यन्त क्रुद्ध हो खड्ग से आघात किया वह खड्ग सिंह के मूर्धाप्रदेश पर पड़ने से शीघ्र ही सौ टुकड़े हो गिरा । अब गौरी ने आयुधको देख रोषसे लाल आंखें कर दैत्य के हृदय में शूल से आघात किया जिससे उसका वक्षःस्थल छिन्न होने से वह गिर पड़ा ॥९३-९४॥

अनन्तर शीघ्र उठ कर दैत्य अदृश्य हो गया, एक क्षण में ही आकाश मण्डल में उसने महासैन्य रचा । अब भवानी और दैत्य की सेनाओं के बीच महायुद्ध हुआ । गौरी के निःश्वास से उत्पन्न मातृकायें अवन्ध्य कोपसे क्रुद्ध हो कोटि-कोटि गण से युक्त हो दैत्य सेना से लड़ने लगीं । उन मातृकाओं के द्वारा अपनी सेना नष्ट होती देख दैत्य-राज ने फिर बहुत विशाल दैत्यसेना रची निमेष में ही उसे भी मातृकाओं ने विनष्ट कर दिया ॥९५-९८॥

अनन्तर दैत्यपति ने मातृकाओं को अपनी सेना से अधिक बलवान् देख चन्द्रचूड, दिव्यप्रकाशमयत्र्य अम्बक, शिव की रचना की, वह शिव शूल लेकर गौरी से युद्ध करने आया । उसे देख स्वामिनीगौरी का पति शंकर मान सभी मातृकाओं ने अपने हेति अस्त्रों को रख दिया । अनन्तर उस शङ्करी को निश्चय हुआ कि यह मेरा पति शिव नहीं है यह तो दैत्य का बनाया मायाशिव है ॥९९-१०१॥

असाम्प्रतं हि शस्त्रस्य हानं मायाविनां रणे । इत्युक्त्वा मातृकामोहनाशनाय महेश्वरी ॥१०२॥
सस्मार शङ्करं देवं सोऽपि स्मरणमात्रतः । आविरासीच्छूलपाणिः पार्षदैः परिवारितः ॥१०३॥
दृष्ट्वा पिनाकिनं ता वै युयुधुर्हेतिकाः । अथ ब्रह्मादयो देवा यक्षा गन्धर्वकिन्नराः ॥१०४॥
नागा गणाश्चाऽप्सरसः सिद्धाः किंपुरुषा अपि। अभ्यागमन् दैत्यराजगौर्योर्युद्धदिदृक्षवः ॥१०५॥
अथाऽभवद्दैत्यपतिगौर्योः परमदारुणम् । युद्धं तत्राऽसुरपतिः सेनाश्च बहुधाऽसृजत् ॥१०६॥
सृष्टमात्रं क्षणेनैव मातृकाभिर्विनाश्यते । अथ स्वसृष्टाऽण्डगणे प्रविलीयत चाऽसुरः ॥१०७॥
विदित्वाऽण्डे विलीनं तं संक्रुद्धा शङ्करी तदा। अथ क्रोधात्समुत्पन्ना महाकाली विभीषणा॥१०८॥
दिगम्बरा मुक्तकेशी मुण्डमालाविभूषिता । करवालकरां तां वै दृष्ट्वा प्रोवाच शङ्करी ॥१०९॥
कालि शीघं दैत्यसृष्टान्यण्डानि ध्वंसयेति वै ।
श्रुत्वा निर्गत्य सा काली ब्रह्माण्डानि शतं क्षणात् ॥११०॥

"मायावियों के युद्ध क्षेत्र में शस्त्र छोड़ देना असमीचीन है" इस प्रकार कह मातृकाओं के मोह को नष्ट करने के लिये महेश्वरी ने शङ्कर देवका स्मरण किया; वहां भी याद करते ही शूलपाणि भगवान् शिव अपने पार्षद गणसे युक्त हो आ प्रगटे । शिव को देख कर वे मातृकायें अपने हेतिकाओं को लेकर तैयार हो गईं । अनन्तर ब्रह्मादि देवतागण, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नागलोग, गण, अप्सरायें, सिद्धलोग और किम्पुरुष भी दैत्यराज और गौरी के बीच चल रहे युद्ध को देखने की इच्छा से जुट गये ॥१०२-१०५॥

अनन्तर दैत्यराज और गौरी का अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ उसमें दैत्यराज ने अपनी सेना को बहुत प्रकार से रचा । उसके रचनेके साथ ही साथ क्षणमात्र में मातृकाओं ने उन्हें विनष्ट कर दिया । इसके बाद वह दैत्य अपने बनाये हुए ब्रह्माण्ड मण्डल में छिप गया ॥१०६-१०७॥

अपने ब्रह्माण्डमें उसे विलीन जानकर अत्यन्त क्रुद्ध शंकरी ने तब क्रोधसे समुत्पन्न, दिशायें ही जिसके वस्त्र हैं बालबिखेरे हुई मुण्डमाला धारण की हुई महाकाली प्रकट की । भगवती ने उसे खड्ग हाथ में लिये देख कहा, "हे काली ! तू अतिशीघ्र दैत्य के द्वारा रचे गये ब्रह्माण्डों को नष्ट कर ।" यह सुनकर उस काली ने

बिभेद करवालेन भक्षयामास ताः प्रजाः । एवं विनष्टेऽण्डगणे दैत्यो धृतमहायुधः ॥१११॥
आजगाम नियुद्धाय सेनां स्रष्टुं मनो दधे । तावद्गौरी महादैत्यं पातयित्वा महीतले ॥११२॥
पादेनाऽऽक्रम्य हृदये शूलेन शिर आच्छिनत् । स छिन्नमूर्धा शूलेन विगतासुरभूत्तदा ॥११३॥
एवं दैत्येश्वरवधं निशम्य विधिमुख्यकाः । जयेति शब्दं व्याजह्रुर्ववर्ष कुसुमैर्वृषा ॥११४॥
संस्तुत्य विविधैः स्तोत्रैर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः । बद्धाञ्जलिपुटाः प्राहुर्देवास्तां सिंहवाहिनीम्।११५।
भवानि दैत्यराजोऽयं भवत्या विनिपातितः । देवशत्रुः सर्वलोककण्टको बलवत्तरः ॥११६॥
नेमं हन्तुं हरिर्वापि हरो वा प्रभवेत् क्वचित् । कुत इन्द्रादयो देवाः प्रभवः स्युर्महेश्वरि ॥११७॥
अस्य दुष्टस्य संहत्या पालितं पुत्रवज्जगत् । तस्मात्त्वं जगदम्बेति स्थाने प्रत्यक्पयोनिधेः॥११८॥
तीरे ख्याता महादेवि भविष्यसि महीतले। पूजिता वाञ्छितानर्थान्मर्त्यानां त्वं प्रयच्छसि ॥११९॥

निकल कर सैकड़ों ब्रह्माण्डों का क्षण भर में अपने करवाल से भेदन कर दिया और उन प्रजागण को खा डाला। इस प्रकार ब्रह्माण्डों के मण्डल के नष्ट हो जाने पर हाथ में महा आयुध लेकर दैत्य युद्ध के लिये आ गया और सेना रचने के लिये मन में इच्छा की। तब ही गौरी ने महादैत्य को भूमि पर गिरा कर पैर से हृदय को रौंद अपने शूल से उसका शिर काट दिया। शूल से मस्तक कटा हुआ वह तब प्राणहीन हो गया ॥ १०९-११३ ॥

एवंप्रकारेण विधिप्रमुख कारणेश्वरों ने दैत्येश्वर के वध को सुनकर जय-जय शब्द से घोष किया एवं पुष्पों की वर्षा हुई ॥ ११४ ॥ देवगण ने विविध स्तोत्रों से सुन्दर स्तुति कर अपने हाथ जोड़कर ब्रह्मा विष्णु को आगे करके सिंहवाहिनी देवी को कहा ॥ ११५ ॥

"हे भवानि ! आपने देवगण के वैरी सम्पूर्ण लोगों के लिये कण्टकस्वरूप, महाबलवान् इस दैत्यराज को मार डाला ॥ ११६ ॥ इसे मारने के लिये हरि अथवा शंकर कहीं भी समर्थ नहीं होते तब हे महेश्वरि ! इन्द्र आदि देवगण उससे कैसे पार पाते। ॥११७॥ इस दुष्ट के वध से आपने जगत् की पुत्र के समान पालना की इसलिये महादेवि ! आप समुद्र के तीर स्थित स्थान में "जगदम्बा" इस नाम से प्रसिद्ध होवेंगी। मर्त्य गण द्वारा आपकी पूजा होकर

इति संस्तुत्य नत्वा ते प्रययुर्निजमन्दिरम् । अथेन्द्राण्यपि तत्रैव यत्र दैत्यो निपातितः ॥१२०॥
अभ्यागत्य प्रणम्याऽम्बामाह वाक्यं कृताञ्जलिः ।
गौर्यहं दुःखजलधिनिमग्नाऽभ्युद्धृता त्वया ॥१२१॥
प्रणताऽस्मि जगद्धात्रि गौरि दीनार्तिहारिणि। इत्युक्त्वा पादयोरग्रे प्रणता देवराट्प्रिया॥१२२॥
अथ गौरी शचीं प्राह सन्तुष्टा स्मितपूर्वकम्। इन्द्राण्यहं प्रसन्नाऽस्मि वरं ब्रूह्यभिवाञ्छितम् ॥१२३॥
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः शची प्रोवाच सन्नता । देवि तुष्टा यदि मम वरं देहि ममेप्सितम्॥१२४॥
महाऽऽपत्सु स्तुता येन नामाऽष्टशतकाऽऽत्मना। स्तवेन तं महाऽऽपद्भ्यः समभ्युद्धर मामिव ॥१२५॥
त्वत्पादपद्मयोर्भक्तिर्भूयान्मम सुनिश्चला । अथ गौरी प्राह शचीं प्रसन्ना वचनं शुभम् ॥१२६॥
इन्द्राणि यत्त्वया प्रोक्तं तत्तथैवाऽस्तु सर्वथा। व्रज स्वं स्थानमित्युक्त्वा चाऽन्तर्धानं जगाम सा ।१२७।

उन्हें वाञ्छित अर्थको देंगी !" इसप्रकार सुन्दर रूपसे स्तुतिकर भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वे अपने-अपने भवनों में चले गये । अनन्तर इन्द्राणी भी जहां दैत्य का वध किया गया था वहां आकर प्रणाम कर हाथ जोड़े हुई अम्बा से बोली, "हे गौरि ! आपके द्वारा दुःखसमुद्रमें डूबी हुई मैं भली प्रकार उद्धार की गई (निकाली गई) हे जगद्धात्रि ! हे दीनजन के कष्ट को हरनेवाली गौरि भगवति ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ।" इस प्रकार कहकर देवराज पत्नी इन्द्राणी ने चरणों में गिरकर प्रणाम किया ॥ ११८-१२२ ॥

अनन्तर भगवती गौरी ने प्रसन्न हो मन्द हास्य से कहा " हे इन्द्राणि ! मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ अपने इच्छित वर को मांग" ॥१२३॥ देवी के इस वचन को सुन शची ने विनत होकर कहा, "हे देवि ! यदि आप सन्तुष्ट हैं तो मुझे अपना अभीष्ट वर दीजिये ॥१२४॥ महाविपत्तियों में पड़े जिस व्यक्तिके द्वारा नामाष्टशतक वाले स्तोत्र से आप स्तुति की गई उसका महाआपत्तियों से मेरे समान ही आप उद्धार कीजिये ॥ १२५ ॥ आपके चरण-कमलों में मेरी सुनिश्चल (दृढ़) भक्ति बनी रहे।" अनन्तर गौरी ने प्रसन्न होकर इन्द्राणी को शुभ मङ्गलमय वचन कहे ॥ १२६ ॥

"हे इन्द्रपत्नि ! तू ने जो कहा है वह उसी प्रकार सर्वथा सिद्ध हो तू अपने निवासस्थान को जा।" इस प्रकार कहकर देवी अदृश्य हो गई ॥१२७॥ हे पर्वतराज ! यह मैंने तुझे गौरीके सबसे उत्तमोत्तम पराक्रमपूर्ण वीर्य (बल)

इति ते वीर्यमाख्यातं गौर्याः सर्वोत्तमोत्तमम् । शृण्वतां पापशमनं गौरीं तां नग! पूजय ॥१२८॥
इत्युक्त्वा हिमशैलाय गौर्य्या वीर्यकथां शुभाम्। ययौ शैलाऽभ्यनुज्ञातो नारदोऽम्बरमार्गतः॥१२९॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे गौर्युपाख्याने
शच्यै वरप्रदानं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥२२६४॥

के विषयमें बताया। यह सुनने वालों के पापों का शमन करने वाला है। (इसलिये) हे पर्वतराज! उस गौरी की पूजा कर ॥१२८॥ इस प्रकार हिमाचल को अति मङ्गलमयी गौरी की वीर्य गाथा कहकर देवर्षि श्रीनारद आकाश मार्ग से पर्वतराज के कहने से चले गये ॥ १२९ ॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य में माहात्म्य खण्ड के गौरी के उपाख्यान में तारकेयासुरवध सहित देवगण को वर तथा नामाष्टोत्तरशतस्तोत्र का फल वर्णन नामक सत्ताईसवां अध्याय समाप्त।

अष्टाविंशोऽध्यायः

दत्तात्रेयेण गौर्याअष्टोत्तरशत-नामस्तोत्रोपदेशवर्णनम्

इति श्रुत्वा कथां पुण्यां गौरीवीर्यविचित्रिताम् । अपृच्छद्भार्गवो भूयो दत्तात्रेयं महामुनिम् ॥१॥
भगवन्नद्भुततमं गौर्या वीर्यमुदाहृतम् । शृण्वतो न हि मे तृप्तिः कथां ते मुखनिःसृताम् ॥२॥
गौर्या नामाऽष्टशतकं यच्छच्यै धिषणो जगौ । तन्मे कथय यच्छ्रोतुं मनो मेऽत्यन्तमुत्सुकम् ॥३॥
भार्गवेणेत्थमापृष्टो योगिराडत्रिनन्दनः । अष्टोत्तरशतं नाम्नां प्राह गौर्या दयानिधिः ॥४॥
जामदग्न्य शृणु स्तोत्रं गौरीनामभिरङ्कितम् । मनोहरं वाञ्छितदं महाऽऽपद्विनिवारणम् ॥५॥
स्तोत्रस्याऽस्य ऋषिः प्रोक्त अङ्गिराश्छन्द ईरित। अनुष्टुब् देवता गौरी आपन्नाशाय यो जपेत् ॥६॥
ह्रां ह्रीं इत्यादि विन्यस्य ध्यात्वा स्तोत्रमुदीरयेत् ।
सिंहसंस्थां मेचकाऽऽभां कौसुम्भांऽशुकशोभिताम् ॥७॥

अट्ठाईसवां अध्याय

इस प्रकार भगवती गौरी के पराक्रम से अत्यन्त विचित्र पवित्र पुण्याख्यान को सुनकर श्रीपरशुराम फिर महामुनि दत्तात्रेय से बोले ॥१॥" हे महाराज ! आपने भगवती गौरी का अद्भुता से भी अद्भुत पराक्रम वर्णन किया, मैं आपके मुख से निकली कथा को सुनकर तृप्ति अनुभव नहीं करता। भगवती गौरी के जिस नामाष्टशतक को बृहस्पतिजी ने इन्द्राणी को बताया वह आप मुझे कहिये मेरा मन सुनने को अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहा है" ॥२-३॥

भार्गव परशुराम द्वारा इस प्रकार पूछने पर दयानिधि, योगियों के राजा, अत्रिपुत्र, भगवान् दत्तात्रेय ने गौरी के अष्टोत्तर शतनाम कहे ॥ ४ ॥ हे जामदग्न्य ! तू गौरी भगवती के नामोंवाला मनोहर, वाञ्छित फल देने वाला, बड़ी भारी आपत्तियों का विनाश करने वाला स्तोत्र सुन ॥ ५ ॥ इस स्तोत्र का आङ्गरा ऋषि है, अनुष्टुप् छन्द है गौरी देवता है, आपत्तिनाश के लिये जपना चाहिये ॥ ६ ॥

ह्रां ह्रीं इत्यादि विन्यास कर भगवती का निम्नलिखित ध्यान कर स्तोत्र पाठ करे ॥ सिंह पर समारूढा,

खड्गं खेटं त्रिशूलञ्च मुद्गरं बिभ्रतीं करैः । चन्द्रचूडां त्रिनयनां ध्यायेद्गौरीमभीष्टदाम् ॥८॥
गौरी गोजननी विद्या शिवा देवी महेश्वरी । नारायणाऽनुजा नम्रभूषणा नुतवैभवा ॥९॥
त्रिनेत्रा त्रिशिखा शम्भुसंश्रया शशिभूषणा । शूलहस्ता श्रुतधरा शुभदा शुभरूपिणी ॥१०॥
उमा भगवती रात्रिः सोमसूर्याऽग्निलोचना । सोमसूर्यात्मताटङ्का सोमसूर्यकुचद्वयी ॥११॥
अम्बाऽम्बिकाऽम्बुजधराऽम्बुरूपाऽऽप्यायिनी स्थिरा ।
शिवप्रिया शिवाऽङ्कस्था शोभना शुम्भनाशिनी ॥१२॥

चन्द्रमा के समान कान्तिवाली, रेशमी वस्त्र धारण की हुई हाथों में खड्ग, खेट (ढाल) त्रिशूल और मुद्गर को धारी हुई, चन्द्रमा को चूड़ा (जूड़ा) के स्थान पर धारण की हुई, तीन नेत्रवाली, अभीष्टदायिनी गौरी का ध्यान करे॥८॥ (१) गौरी=सम्पूर्ण माया तत्त्वों से उपरितन श्वेततत्त्ववाली, (२) गोजननी=माया की उत्पादिका (३) विद्या=शुद्ध विद्या (४) शिवा=शिवपत्नी (५) देवी=दिव्य भास से आभासित (६) महेश्वरी=सबपर शासन करने वाली अघटित घटना पटीयसी (७) नारायणानुजा=जलशायी विष्णु की भगिनी (८) नम्रभूषणा=प्रकृतिवश नम्र आभूषण से सम्पन्ना (९) नुतवैभवा=स्तुत होकर वैभव वाली, विश्रुत विभूति सम्पन्ना, (१०) त्रिनेत्रा=तीन नेत्रवाली; चन्द्र, सूर्य एवं अग्नि रूपी नेत्रों वाली (११) त्रिशिखा=त्रिकूटों पर बसने वाली (१२) शम्भु संश्रया=शिव सामरस्य युक्त, नित्यानन्द स्थिति में ज्ञानरूपी शम्भु पर विपरीतरता (१३) शशिभूषणा=चन्द्रालंकृत शोभावती (१४) शूलहस्ता=हाथ में शूलधारिणी (१५) श्रुतधरा=सम्पूर्ण चराचर की धारिणी, वेदोदितमार्ग-प्रतिष्ठापिका (१६) शुभदा=मङ्गल देने वाली (१७) शुभरूपिणी=अति सौम्य रूपवाली (१८) उमा=स्वरूपतः जननी होते हुए भी पीठाकृतिसे शिवरूपा (१९) भगवती=षडैश्वर्य सम्पन्ना (२०) रात्रिः=लयरूपा (२१) सोम सूर्याऽग्निलोचना=सोम, सूर्य और अग्नि जिसके नेत्र हैं (२२) सोमसूर्यात्मताटङ्का=उसके विराट रूप के ताटङ्क रूप में सोम सूर्य विराजमान है (२३) सोम सूर्य कुचद्वयी=सूर्य चन्द्र स्तन युगलवती ॥९-११॥

(२४) अम्बा=माता (२५) अम्बिका=जननी (२६) अम्बुजधरा=पद्मधारिणी, मेघोंको धारण करने वाली (२७) अम्बुरूपा=स्नेहवती (२८) आप्यायिनी=तृप्तकरनेवाली (फिर भी) (२९) स्थिरा=तीन काल में स्थिर रूपा (३०) शिवप्रिया=छत्तीस तत्त्वों में प्रधान शिव की प्राणप्रिया पत्नी (३१) शिवाङ्कस्था=ज्ञानेश्वर के वाम-अङ्क (गोद) में स्थिता (३२) शोभना=अत्यन्त कमनीया (३३) शुम्भनाशिनी=शुम्भ दैत्य का दलन करने

खड्गहस्ता खगा खेटधरा खाऽच्छनिभाऽऽकृतिः ।
कौसुम्भञ्चला कौसुम्भप्रिया कुन्दनिभद्विजा ॥१२
काली कपालिनी क्रूरा करवालकरा क्रिया। काम्या कुमारी कुटिला कुमाराऽम्बा कुलेश्वरी ॥१३
मृडानी मृगशावाक्षी मृदुदेहा मृगप्रिया । मृकण्डुपूजिता माध्वीप्रिया मातृगणेडिता ॥१४
मातृका माधवी माद्यन्मानसा मदिरेक्षणा । मोदरूपा मोदकरी मुनिध्येया मनोन्मनी ॥१५

वाली ॥१२॥ (३४) खड्गहस्ता= हस्त में खड्गधारी हुई (३५) खगा=अन्तरिक्षगामिनी (३६) खेटध
हाथ में ढाल धारण करने वाली (३७) खाच्छनिभा=आकाश के समान अत्यन्त निर्मल (३८) आकृति=सम्पूर्ण
उसी की समन्तात् कृति है प्रतिबिम्ब है (३९) कौसुम्भाञ्चला=कौसुम्भ रंग का वस्त्र धारिणी (४०) कौसुम्भप्रि
केसर अथवा दिव्य सुवर्ण को प्रिय समझने वाली (४१) कुन्दनिभद्विजा=कुन्द के समान दांत वाली ॥१
(४२) काली=काल को ग्रसने वाली (४३) कपालिनी=मुण्ड का खप्पर रखने वाली (४४) क्रूरा=भ
द्वेषियों के लिये अत्यन्त क्रूरा दयारहित (४५) करवालकरा=तीक्ष्ण असिधारिणी (४६) क्रिया=सम्पूर्ण क्रियाओं
अधिष्ठात्री (४७) काम्या=सतत भक्तजन द्वारा ध्यान की जाने वाली (४८) कुमारी=सर्वोपरि अधिष्ठान व
(४९) कुटिला=अजेय दानवों के लिये भृकुटी ताने हुई, वक्र दृष्टि वाली (दैत्यों के लिये) (५०) कुमारा
स्वामी कार्तिकेय की जननी (५१) कुलेश्वरी=कुलकी ईश्वरी ॥१४॥
(५२) मृडानी=शम्भु की पत्नी (सर्वातिशायी सुख रूपा) (५३) मृगशावाक्षी=मृग के छौने के स
आकर्ण विशाल नेत्रों वाली (५४) मृदुदेहा=अत्यन्त कोमल देहवाली (५५) मृगप्रिया=जो उसे खोजते हैं उन्हें
शरण देने वाली (५६) मृकण्डुपूजिता=मृकण्डुमुनि द्वारा पूजी गई। (५७) माध्वी प्रिया=माध्वी=द्राक्षासे बने मद्य
प्रिया (५८) पानमत्ता = अतिशय दिव्यगुणोंसे मस्त (५९) मातृगणेडिता=मातृका द्वारा पूजित (६०) मातृका=मा
अक्षरोंकी अधित्री (६१) माधवी = मायाकी स्वामिनी (६२) माद्यन्मानसा = सर्वथा अतिशयमदोत्कट मस्तमन
(६३) मदिरेक्षणा = अत्यन्त रक्तनेत्रों से विलासवती रूपिणी (६४) मोदरूपा=नित्य आनन्द स्व
(६५) मोदकरी = मोदकारिणी (६६) मुनिध्येया = अहर्निश श्रीविद्याके मनन करनेवालों के लिये ध्यान में आने
(६७) मनोन्मनी = मन को चञ्चल करने वाली, मनोन्मनी अवस्थाकी स्वामिनी (६८) पर्वतस्था = पर्वत पर विरा
(६९) पर्वपूज्या = प्रति पर्व पूजने योग्य अध्यात्मसाधन में एकसे एक उन्नत दशा में पूजनीया (७०) परमा = सर्वोत्

र्वतस्था पर्वपूज्या परमा परमाऽर्थदा । परात्परा परामर्शमयी परिणताऽखिला ॥१७॥

पाशिसेव्या पशुपतिप्रिया पशुवृषस्तुता । पश्यन्ती परचिद्रूपा परीवादहरा परा ॥१८॥

सर्वज्ञा सर्वरूपा सा सम्पत्तिः सम्पदुन्नता । आपन्निवारिणी भक्तसुलभा करुणामयी ॥१९॥

कलावती कलामूला कलाकलितविग्रहा । गणसेव्या गणेशाना गतिर्गमनवर्जिता ॥२०॥

ईश्वरीशानदयिता शक्तिः शमितपातका । पीठगा पीठिकारूपा पृषत्पूज्या प्रभामयी ॥२१॥

महामाया मतङ्गेष्टा लोकाऽलोका शिवाङ्गना। एतत्तेऽभिहितं राम ! स्तोत्रमत्यन्तदुर्लभम् ॥२२॥

---

(७१) परमार्थदा = परतत्त्वसे भी ऊंचे चरम पुरुषार्थ परमार्थको देनेवाली (७२) परात्परा = परात्पर तत्त्वमयी (७३) परामर्शमयी = कामेश्वर के सान्निध्य से अहं इदं का समानाधिकरण होने के बाद विश्व प्रपञ्च फैलाने वाली (७४) परिणताखिला = सम्पूर्ण चराचर की परिणामकारिणी (७५) पाशिसेव्या = वरुण द्वारा आराधनीया (७६) पशुपति प्रिया = आठ पाशयुक्त पशुओंके पति आदि देवशिवकी प्रियतमा (७७)पशुवृष स्तुता = पशुरूपी धर्म द्वारा स्तुतिकी हुई (७८) पश्यन्ती = नाभिसंस्थ शब्दवती (७९) परचिद्रूपा = पर चित् (चैतन्य) रूपवाली (८०) परीवादहरा = अपकीर्ति हरने वाली (८१) परा = सर्वोत्कृष्टा (८२) सर्वज्ञा=ब्रह्म मयसर्वतत्त्व जाननेवाली (८३) सर्वरूपा=विराट्रूपा, उपनिषद् में 'सर्व ब्रह्मका वाची है, तद्रूपा (८४) सा=तत् शब्द से वाच्या (८५) सम्पत्तिः = सम्पत्ति स्वरूपा (८६) सम्पदुन्नता = सम्पत्ति द्वारा उन्नत करने वाली (८७) आपन्निवारिणी=आपत्तियों का निवारण करने वाली (८८) भक्तसुलभा = भक्त के लिये सुखसे प्राप्त होने वाली (८९) करुणामयी = अत्यन्त दयामयी (९०) कलावती = कला सम्पन्ना, चन्द्रकलाधारिणी (९१) कलामूला = कलाओं का मूलकारण (९२) कलाकालितविग्रहा = कलाओं द्वारा सुललित शरीरवाली (९३) गणसेव्या = गणों के द्वारा सेवनीया (९४) गणेशाना = गणों के ऊपर शासन करने वाली (९५) गतिः = सतत गमन शीला (९६) गमनवर्जिता = एक स्थान स्थिति में एक रूपवाली, स्थिरा (९७) ईश्वरी = कर्तुं अकर्तुं अन्यथाकर्तुं समर्था (९८) ईशानदयिता = ऊर्ध्वमुख पञ्चम ईशान भगवान् की पत्नी (९९) शक्तिः = विश्व प्रपञ्चमूला (१००) शमितपातका = भक्त के सम्पूर्ण पापों का शमन करने वाली (१०१) पीठगा = स्वाधिष्ठानगामिनी (१०२) पीठिकारूपा = जलहरी रूपवाली 'पीठिका विष्णुरूपं स्यात्' विष्णुरूपा (१०३) पृषत्पूज्या = शिवपूज्या (१०४) प्रभामयी = अत्यन्त उज्ज्वल कान्तिमती (१०५) महामाया = महोमाया

गौर्या अष्टोत्तरशतनामभिः सुमनोहरम् । आपदम्भोधितरणे सुदृढप्लवरूपकम् ॥२३॥
एतत् प्रपठतां नित्यमापदो यान्ति दूरतः । गौरीप्रसादजननमात्मज्ञानप्रदं नृणाम् ॥२४॥
भक्त्या प्रपठतां पुंसां सिध्यत्यखिलमीहितम् । अन्ते कैवल्यमाप्नोति सत्यं ते भार्गवेरितम् ॥२५॥
श्रुत्वेत्थं नारदवचः प्रालेयाद्रिर्महामतिः । गौरीमुद्दिश्य तपसि निश्चलं मन आदधे ॥२६॥
अथ पुण्यनदीतीरे सभार्यः पर्वताऽधिपः । स्नात्वा सुखाऽऽसनाऽऽसीनो देवर्षिप्रोदितक्रमात् ॥२७॥
ध्यात्वा मूर्तिं महागौर्याः सिंहसंस्थां विभूषिताम् । अभ्यर्च्य विविधाऽऽकारैरुपहारैः सुभक्तितः ॥२८॥
ध्यानैकतत्परो नित्यमभूत् प्रालेयपर्वतः । ध्यानादुपरतः स्तोत्रं पठत्येतत् पुनः पुनः ॥२९॥
पक्वपर्णाऽशनो दान्तो मौनी स्थण्डिलसंश्रयः । तपस्तेपे पर्वतेन्द्रो वर्षद्वादशकं ततः ॥३०॥

प्रक्रान्त माया का प्रसार करने वाली (१०६) मतङ्गेष्टा = मतङ्गमुनि की इष्टदेवता (१०७) लोकाऽलोका = लोकि होने वाले एवं अलोकस्थान को अतिक्रान्त करने वाली (१०८) शिवाङ्गना = शिवकान्ता ॥१५-२१॥

हे राम तुम्हें यह अत्यन्त दुर्लभ श्री गौरी के अष्टोत्तरशनामों से युक्त अत्यन्त मनोहर स्त्रोत्र कहा। (य आपत्तियों के समुद्र को तरण (पार) करने में अत्यन्त दृढ़ नौका का काम देता है इस का नित्यपाठ करने वालों आपत्तियां दूर से ही भाग जाती हैं। यह मनुष्यों को ज्ञानप्रदानकरनेवाला और भगवती गौरी की कृपा को दे वाला है ॥२२-२४॥

भक्तिपूर्वक पाठकरनेवाले लोगों के सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्ध हो जाते है अन्त में कैवल्य प्राप्त होता है, भार्गव ! यह तुम्हें सत्य कहा गया है। इस प्रकार नारदजीकी वाणी सुनकर महाबुद्धिमान् हिमालय ने गौरी भगव का ध्यान कर तपस्या में अपना निश्चल मन लगाया ॥२५-२६॥

इसके अनन्तर पुण्य नदी के तीर पर अपनी धर्मपत्नी के सहित स्नान कर सुखासन से बैठकर श्रीदेव नारद जी ने जो क्रम बताया उसी के अनुसार सिंह पर आरूढ विभूषित महागौरी की मूर्त्ति को भली प्रकार ध्या कर विशिष्ट प्रकार के उपहारों से अर्चना-पूजा कर ध्यान लगा तन्मय हो हिमालय इसी प्रकार नित्य चर्या क लगा। ध्यान से उपरत (मन हटने पर) होते ही बारम्बार इस स्तोत्र को पठता ॥२६-२९॥ वृक्षों के पके पत्त को खाने वाला, इन्द्रियों को दमन करने वाला, मुनिवृत्तिसे रहने वाला, सतत मननशील भूमि पर शयन करने वाल

गौरी प्रसन्ना तस्याऽग्रे ध्यानरूपं समास्थिता । प्रोवाच तं पर्वतेन्द्रं मेघगम्भीरया गिरा ॥३१॥
नगेन्द्र ! त्वं किमुद्दिश्य तपश्चरसि तद्वद । अलं ते घोरतपसा ददामि वरमुत्तमम् ॥३२॥
तच्छ्रुत्वा पर्वताधीशः प्रणम्य भुवि दण्डवत्। बद्धाऽञ्जलिपुटः स्तुत्वा स्तोत्रैर्नामसमन्वितैः ॥३३॥
शिरस्यञ्जलिमाधाय तां गौरीमभियाचत । देवि गौरि नमस्तुभ्यं शङ्करप्रियदर्शने ! ॥३४॥
अनपत्यत्वदोषाऽग्निदग्धं मामनुजीवय । इति श्रुत्वा नगवचः प्राह गौरी नगेश्वरम् ॥३५॥
पर्वतेश ! न तेऽपत्यं पुरुषं जातु विद्यते । कन्यैका मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥३६॥
अथाऽब्रवीद्धिमगिरिः प्रणम्य रचिताऽञ्जलिः । देवि कन्यापितृत्वन्तु दुःखायेति बुधा जगुः ॥३७॥
यदि कन्यैव मे भूयात्तन्मे त्वं तनुजा भव । न ह्यन्यथा प्रतीच्छामि वरं त्वद्दत्तमप्युत ॥३८॥

मनन परायण अतएव मौनधारी भूमि पर शयनकरनेवाला पर्वतराज बारह वर्षों तक इसी क्रम से तपस्या करता रहा। तब भगवती गौरी प्रसन्न हो भक्तके ध्यानरूपको धारण कर उसके सामने प्रगट हुई। उसने मेघ की गर्जना के समान गम्भीर वाणी में पर्वतराज को कहा ॥ ३०-३१ ॥ "हे पर्वतेन्द्र ! तू किस उद्देश्य को लेकर तप करता है, सो बता। अपनी तपस्या से तू अब विराम ले, मैं तुझे उत्तम वरदान देती हूँ ॥ ३२ ॥

उसे सुनकर पर्वतपति ने भूमि पर दण्डवत् प्रणाम किया शिर नवा कर अपने हाथों की अंजलि बांधे नाम-युक्त स्तोत्रों से उस भगवती गौरि से याचना की, "हे गौरि ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ, हे शङ्करप्रियदर्शने मातः ! आप पुत्र न होने के दोषरूपी अग्नि से जले मुझे जिलावें।" इस प्रकार पर्वतराज के वचन सुनकर भगवती ने पर्वतेश्वर हिमालय को कहा, "हे पर्वताधिराज ! तेरे कोई पुरुष पुत्र होने का नहीं है, हां, मेरी कृपा से एक कन्या होगी इसमें सन्देह नहीं" ॥३३-३६॥

तब हिमगिरि ने हाथ जोड़ प्रणाम कर कहा, "हे देवि ! विद्वान् लोगों ने कन्या के पिता होने को तो दुःखके लिये ही बताया "कन्यापितृत्वं खलुनाम कष्टम्"। पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः। दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा नवेति कन्यापितृत्वं खलुनामा कष्टम्। पुत्री पैदा हुई यह संसार में महती चिन्ता का विषय है; (विवाह योग्य होने पर) किसे दी जाय यह विशेष मन को घुलाता है। जब पाणिग्रहण हो गया तो पति के घर सुख पायेगी कि नहीं; यह कन्या के पिता होना निश्चय ही महान् कष्टकर बात है ॥३७॥ यदि मेरे कन्याही हो तो आप मेरी पुत्री बनें; अन्यथा तो मैं आपके दिये वर को किसी रूप से नहीं मागूँगा" ॥३८॥

श्रुत्वा हिमवता प्रोक्तं प्राह गौरी महेश्वरी । नगाधिराज न तनुं धारयामि कदाचन ॥३९॥
कन्या चैका प्रदिष्टा मे न ततस्तेऽधिकं भवेत्। इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता सद्यो मनोरथशरीरिवत्॥४०॥
अथाऽद्रिराजस्तपसि पुनर्निश्चितमानसः । आतिष्ठदत्युग्रतरं तपस्तापससम्मतम् ॥४१॥
अब्भक्षो वर्षशतकं वायुभक्षस्तथा शतम् । एवं शतद्वयेऽतीते वह्निकुण्डं महत्तरम् ॥४२॥
कृत्वोर्ध्वे रज्जुशतकं विटपे वटशाखिनः । बद्ध्वा तत् सन्निवेश्य स्वपादयोर्हिमवांस्ततः ॥४३॥
अवाक्शिरा निरालम्बो निरुच्छ्वासो निराशकः।एकाग्रं तप आतिष्ठदधस्तस्य प्रिया सती ॥४४॥
एधांसि कुण्डे निक्षिप्य समेधयति पावकम् । एवं प्रतपतस्तस्य समाप्ते वत्सरे पुनः ॥४५॥
छित्त्वैकां रज्जुमगराडातिष्ठत्तप उत्तरम् । एवं तपस्यतस्तस्त वर्षाणां शतकं यदा ॥४६॥
एकन्यूनमतिक्रान्तं तस्य मूर्ध्नस्तदा महान् । तपोऽग्नेर्धूम उदभूत्तेन व्याप्तं त्रिविष्टपम् ॥४७॥
धूमव्याप्त्या व्याकुलिता देवा इन्द्रादयो यदा। तदा भीतिं समापन्नाश्चाऽऽजग्मुरगसन्निधिम्।४८

हिमाचल के कथन को सुनकर महेश्वरी गौरी बोली, "हे नगाधिराज ! मैं कभी शरीर धारण नहीं करती तुझे मैंने कन्या दी; तेरे लिये उससे अधिक नहीं होने का है।" यह कहकर देवी मनोरथके शरीरधारी व्यक्ति के समान अदृश्य हो गई ॥३९-४०॥ अनन्तर अद्रिराज ने फिर तपस्या करने के लिये पूर्ण निश्चय कर अति क्लेश कर उग्रतर तप जो तपस्वियों को सम्मत है उसे किया ॥४१॥

(वह) सौ वर्ष तक जल पीकर रहा; फिर वायु पर निर्भर एक सौ वर्ष तक रहा। इस प्रकार दो सौ वर्ष बीतने पर बहुत बड़ा अग्निकुण्ड बनाकर वटवृक्षके तने में सौ रज्जुओं को बांध ऊपर में अपने दोनों पावों को लटकाकर नीचे शिर कर बिना किसी अवलम्बन के श्वांस रोककर बिना ही आहार एकाग्र मन से तपस्यामें लगा रहा। उसकी प्रिय सती भार्या इन्धन को कुण्ड में डालकर अग्निमें प्रज्वलन सामग्री बढ़ाती गयी। इस प्रकार उसके तपस्या करते-करते एक वर्ष समाप्त हो जाने पर फिर एक रज्जु को काटकर पर्वतराज हिमालय ने उग्रतर तप किया। इस तरह तपस्या करते जब एक सौ वर्ष में एक वर्ष कम रहा तो उसके शिर से तप की अग्नि का धुआं निकला जिससे सारा स्वर्ग व्याप्त हो गया ॥ ४२-४७ ॥

स्वर्गमें धुएं के भर जाने से इन्द्रादि देवगण जब व्याकुल हो गये तब हिमालय के यहाँ आये ॥ ४८ ॥

कुण्डाऽग्निना समृद्धस्य तपोऽग्नेर्ज्वालया ततः । दूरादेव परावृत्ताः सत्यलोकमुपाऽऽययुः ॥४९॥
आगत्य धातृसदनं सभायां ददृशुर्विधिम् । दृष्ट्वा तं दूरतो देवा इन्द्राद्या दण्डवन्नताः ॥५०॥
प्रणतानमरान् दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः । प्राह गम्भीरया वाचा सम्बोध्य विबुधाऽधिपम् ॥५१॥
देवेन्द्रोत्तिष्ठ देवैस्त्वं किमागमनकारणम् । वद शीघ्रं भयं त्यक्त्वा विधास्ये तेह्यभीप्सितम् ॥५२॥
श्रुत्वैवं ब्रह्मवचनमुत्तस्थुः सेश्वराऽमराः । बद्धाञ्जलिपुटस्तत्र प्राहेन्द्रो मन्थरं वचः ॥५३॥
जगदीश्वर भीताःस्मो भयहेतुं ब्रवीमि ते । पृथिव्यां शैलराजो वै हिमवानिति विश्रुतः ॥५४॥
स इदानीं तपः श्रेष्ठमातिष्ठति चिरं खलु । तदीहितज्ञा न वयं किं वा वाञ्छति सम्प्रति ॥५५॥
तस्य मूर्ध्नो महान् धूमो निर्गतः स्वर्गवासिनाम् । भयं सुतीव्रं तेनेत्थमभूत् परमदारुणम् ॥५६॥
सर्वत्र तेन धूमेन व्याप्तं स्वर्गपुरं ननु । अमराणां शरीराणि दहत्यग्निरिवोल्बणः ॥५७॥
प्रचलत्यासनं भूयः सुधर्मायां मयि स्थिते । अत्यस्वस्था देवगणा विन्दन्ति न सुखं क्वचित् ॥५८॥

कुण्ड की अग्नि से बढ़ी हुई ज्वाला से घबरा कर वे दूर से ही लौट गये तथा सत्यलोक में आये ॥ ४९ ॥ ब्रह्मा के लोक में आकर विधाता को देखा; उसे दूर से देख इन्द्र आदि देवगण दण्डवत् प्रणाम करने लगे। भक्ति से विनत देवताओं को देख लोकपितामह ब्रह्मा ने गम्भीरवाणी से अमराधिपति इन्द्र को सम्बोधन कर कहा, "हे देवराज ! देवगण समेत उठो, तुम्हारे आनेका क्या कारण है ? शीघ्र भय छोड़कर बताओ; मैं तुम्हारा अभीप्सित सिद्ध करूँगा।" इस प्रकार ब्रह्मा के कथन को सुनकर इन्द्रसहित वे देवगण उठ बैठे, हाथ जोड़कर इन्द्र ने बहुत धीमे स्वर में कहा, "हे जगत्पते ! हम अत्यन्त भयभीत हैं, अपने भय का कारण बताते हैं। पृथिवी में सुप्रसिद्ध शैलराज हिमवान् है, वह दीर्घकाल से अत्यधिक श्रेष्ठ तप कर रहा है; उसकी इच्छा को हम नहीं जान पाये कि वह अब क्या चाहता है ॥ ५०-५५ ॥

उसके शिर से धुआं निकला उससे इस प्रकार अत्यन्त दारुण सुतीव्र भय स्वर्गवासियों को हो गया। सर्वत्र उस धूम से स्वर्गपुर भर गया है, उससे अत्यन्त प्रचण्ड अग्नि के जलाने के समान अमरदेवगण का शरीर जलता है ॥ ५६-५७ ॥ अपने यहाँ बैठने पर मेरा आसन डोलता है। सभी देवगण लोग अत्यन्त अस्वस्थ हो कहीं भी सुख प्राप्त नहीं करते ॥ ५८ ॥

आपही सदैव विपत्ति में गिरे हम लोगों को शरण देते हैं।" इस प्रकार इन्द्र का कथन सुनकर विश्व

त्वमेव शरणं लोके विपन्नानां सदा हि नः। एवं निशम्येन्द्रवचो विश्वस्रट् ध्यानमास्थितः॥५९॥
क्षणेनोन्मील्य नयने माभैरिति शतक्रतुम्। प्रवदन्निर्जगामाऽथ देवैः सह विधिस्तदा ॥६०॥
आगत्य क्षीरपाथोधेः शयानमुपकूलके। संस्थिता ददृशुर्देवं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥६१॥
प्रणम्य दण्डवद्विष्णुं बद्धाऽञ्जलिपुटा बुधाः। अस्तुवन् संस्तवैस्तस्य वैदिकैः कीर्तिवर्धनैः ॥६२॥
अथ प्रणम्याऽब्जयोनिरुपस्रत्य बुधेरितम्। हिमवत्तपसो वृत्तमवदल्लोकस्रट् तदा ॥६३॥
श्रुत्वा विष्णुर्विधिमुखैः सह तत्र द्रुतं ययौ। यत्र पर्वतराजन्यस्तपो दारुणमास्थितः ॥६४॥
दृष्ट्वा तं तद्विधं विष्णुरेकरज्ज्ववलम्बिनम्। ज्वलदग्निकुण्डमूर्ध्नि लम्बमानं तपस्विनम् ॥६५॥
तपस्तेजोराशिमयं भासन्तमिव भास्करम्। निशामयत पत्नीञ्च परिचर्यारतां तदा ॥६६॥
विष्णुस्तामुपसङ्गम्य पर्यपृच्छद्विनीतवत्। का त्वमत्र महारण्ये शुश्रूषसि कुतस्त्विमम् ॥६७॥
क एष किमभिप्रेत्य तप उग्रमुपस्थितः। श्रुत्वा सा विष्णुवचनं प्राह मञ्जुलया गिरा ॥६८॥

सर्जक ब्रह्मा ने ध्यान लगाया; क्षण भर में ही आंखें खोलकर इन्द्र को बोले, "डरो मत।" इस तरह कहे हुए विधाता ने देवगण के सहित क्षीरसागर के तट पर आकर सोये हुए शङ्ख, चक्र और गदाधारी दिव्य विष्णु को देखा॥ ५९-६१॥ सब देवताओं ने दण्डवत् प्रणाम करके हाथ जोड़ विष्णु की उनके यश को बढ़ाने वाली सुन्दर वैदिक स्तोत्रों से स्तुति की॥ ६२॥

तब लोकसर्जक कमलयोनि ब्रह्मा ने आगे आकर हिमवान् की तपस्या के विषय में देवगण द्वारा कहे गये वृत्त को सुनाया॥ ६३॥ तत्पश्चात् सुनकर विधि प्रमुख उन सब देवगण के सहित विष्णु भगवान् शीघ्राति-शीघ्र वहाँ गये जहाँ पर्वतराज हिमालय अत्यन्त कठिन तप में था॥ ६४॥

एक ही रस्सी के सहारे लटके हुए नीचा शिर किये तपस्वीउसे इस प्रकार देखकर जलते हुए अग्निकुण्ड के ऊपर लटके तपस्या से अत्यन्त तेजस्वी प्रभासित सूर्य के समान ही लगता था, एवं उसकी पत्नी को जो सेवा में लगी हुई थी देखा। तब विष्णु उसके पास जाकर विनयभाव से बोले, "तू कौन है? इस महागहन वन में इसकी क्यों सेवा करती है? यह कौन है? किस अभिप्राय को लेकर उग्र तप करता है?" विष्णु के वचन सुनकर उस स्त्री ने मधुरवाणी में कहा॥ ६५-६८॥

पर्वतानामधिपतिर्हिमवानेष मे पतिः । अपत्यत्वे समानेतुं भवानीमभिवाञ्छति ॥६९॥
प्रतिषिद्धस्तया देव्या शतपाशाऽवलम्बनः । संकल्प्य वर्षशतकं लम्बन्नग्निशिखोर्ध्वतः ॥७०॥
प्रतिवर्षं ह्येकपाशं छिनत्ति नगभूपतिः । एकोनवर्षशतकमतीतमधुना पुनः ॥७१॥
वर्षे शततमे चैकं दिनन्तु परिशेषितम् । यदि गौरी न प्रसन्ना श्वः कल्ये शेषपाशकम् ॥७२॥
छित्त्वा कुण्डे स्वकं देहं भस्मसात्कर्तुमुद्यतः । तदन्वस्मिन्नहमपि कुण्डे देहमिमं स्वकम् ॥७३॥
त्यजामि भर्तृलोकायेत्युवाच पर्वतप्रिया । अथ विष्णुर्विधात्राद्यैर्विचार्य कृत्यमुत्तरम् ॥७४॥
उपतस्थे शिवां गौरीमस्तौषीद्भक्तिनिर्भरः । नमस्ते गौरि शर्वाणि नमो मङ्गलरूपिणि ॥७५॥
नमः सर्वजगद्धात्रि शरणागतवत्सले । इत्यादि बहुशः स्तुत्वा प्रणतो दण्डवत् पराम् ॥७६॥
एवं हरेः प्रार्थनया प्रसन्ना सा महेश्वरी । आकाशरूपिणी प्राह स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥७७

"यह पर्वतों का अधिपति हिमाचल मेरे पतिदेव हैं; भवानी को अपने अपत्य के रूप में लाने की यह कामना रखते हैं॥ ६९ ॥ उस देवी द्वारा प्रतिषेध कर देने पर सौ रस्सियों का सहारा लेकर सौ वर्षों का सङ्कल्प लेकर अग्नि की शिखा के ऊपर लटके हुए इस पर्वतराज ने एक-एक रस्सी को तोड़ दिया। अब फिर निन्यानवे वर्ष बीतने पर सौवें वर्षके पूरे होनेमें एक दिन बचने पर भी यदि गौरी कल कृपा न करेगी तो बची रस्सीके बन्धनको काट कर कुण्ड में अपने देह को भस्म करने को तैयार है। उस देहपात के बाद मैं भी इस कुण्ड में अपने पतिलोक के लिये स्वयं को छोड़ने का विचार करती हूँ ॥" इस प्रकार पर्वत की प्रियाने कहा। तदनन्तर ब्रह्मा आदिके साथ आगे का कार्य विचार कर विष्णु ने भक्तिभरितभाव से शिवा गौरी की प्रार्थना की। "हे गौरि! आपको नति है, हे शर्वाणि! हे मङ्गलरूपिणि! हम आपको प्रणाम करते हैं, हे सम्पूर्ण जगत्का भरण पोषणकारिणि! हे शरण में आये के प्रति वात्सल्य रखने वाली मातः! हम लोग आपको नमस्कार करते हैं।" इस प्रकार उसने परा की बहुविध स्तुति कर दण्डवत प्रणाम किया ॥ ७०-७६ ॥

इस तरह श्रीविष्णु की भक्तिविनम्र प्रार्थना से प्रसन्न हो आकाशरूपिणी महेश्वरी ने अत्यन्त मधुर गम्भीर वाणी में कहा ॥ ७७ ॥ "हे नारायण! तेरे द्वारा मेरी क्यों स्तुति की गई? उसका कारण बता। तू

नारायण किमर्थं ते संस्तुताऽहं वदस्व तत् । त्वं मेऽग्रज इति पुरा प्राह श्रीत्रिपुरेश्वरी ॥७८॥
तत्ते स्मृता ह्यवरजा किमर्थमिह तद्वद । श्रुत्वा गौरीवचो विष्णुः प्राह सस्मितपूर्वकम् ॥७९॥
शृणु मद्वचनं गौरि पश्य लोके महद्भयम् । उपस्थितं पर्वतस्य तपसाऽतिगरीयसा ॥८०॥
पूरयित्वा पर्वतस्य वाञ्छितं शिववल्लभे । रक्ष लोकान् सभुवनान् तपोऽग्निशलभायितान् ॥८१॥
एतेन लोकाः सेन्द्राद्या भवामः पालिता वयम् । पश्य त्वन्मूर्तिरहितं शङ्करं तपसि स्थितम् ॥८२॥
पुराऽस्माकं जगत्कृत्ये सृष्ट्यादौ विश्रमाय वै । ससर्जैव त्रिमूर्तिं सा त्रिपुरा परमेश्वरी ॥८३॥
यदि त्वमशरीरैव भविष्यसि ममाऽनुजे । तदा श्रीत्रिपुरेशान्या शासनोल्लङ्घनं भवेत् ॥८४॥
इत्येतत्ते प्रकथितं स्मृतिकारणमम्बिके । अग्रे यथा त्वं जानासि तथा रक्ष चराचरम् ॥८५॥
श्रुत्वैवं विष्णुवचनं दृष्ट्वा लोके तपोभयम् । श्रुत्वाऽज्ञां त्रिपुरायाश्च प्रोवाचोमिति वै हरिम् ॥८६॥

मेरा भाई है यह पहले श्रीत्रिपुरेश्वरी ने कहा था; तो तू ने अपनी छोटी बहन को किस प्रयोजन के लिये स्मरण किया सो बता ?" गौरी का वचन सुनकर विष्णु ने मन्द हास्यपूर्वक कहा ॥७८-७९॥

"हे गौरि ! मेरी बात सुन देख लोक में पर्वत की अति उग्र तपस्या से भीषण भय उपस्थित हो गया है हे शिवे बताओ, पर्वतराज का अभीष्ट पूरा करके तपस्यारूपी अग्नि में पतिङ्गा बन जलते हुए भुवनों सहित लोकों को बचा ॥ ८०-८१ ॥

इससे लोक एवं इन्द्रादि सहित हम लोग पाले गये यह समझो । तेरी मूर्ति से रहित शंकर को तो तपस्या करते देख; प्राचीन समय में उसी त्रिपुरा परमेश्वरी ने हमलोगों के सृष्टि, पालन तथा संहार के जगत् के कृत्य में विशेष परिश्रम को हटाने के लिये हमारी तीन मूर्तियाँ रची ॥ ८२-८३ ॥

हे मेरी अनुजे ! तू यदि अशरीरा होकर ही रहेगी तब श्रीमती त्रिपुरेशी के आदेश का उल्लङ्घन होगा ॥८४॥ यह तुम्हें हे अम्बिके ! स्मरण कराने का कारण बता दिया । आगे जैसा तू जानती है वैसे ही चर और अचर सृष्टि की रक्षा कर" ॥ ८५ ॥

इस संसार को हिमाचलके तप के भय से डरा देख और श्रीत्रिपुरा की आज्ञा स्मरण कर उसने भगवान् विष्णु

अथ देवा हरिमुखा नत्वा गौरीं महेश्वरीम्। आज्ञामादाय स्वं स्थानमभिजग्मुर्गतत्रसाः ॥८७॥
अथाऽकाशवपुर्गौरी महागम्भीरया गिरा। प्राह तं शैलकुलपं तपोऽग्निज्वालया वृतम् ॥८८॥
भो भो शैलकुलेशान प्रसन्नाऽस्मि निरीक्ष माम्। यत्तेऽभिलषितं तत्ते दिशामि द्रुतमीरय ॥८९॥
एवं वचः पर्वतेशः श्रुत्वेषद्ध्यानसंस्थितः। किं स्वप्न उत सत्यो वेत्येवं सञ्चिन्त्य चक्षणम् ॥९०॥
उन्मील्य नयनेऽपश्यत् परितः पर्वतेश्वरः। दृष्ट्वा न किञ्चित्तत्राऽगः स्वप्नं यावदमन्यत ॥९१॥
तावद्गौरी पुनः प्राह वचनं प्राङ्निरूपितम्। संश्रुत्य गौर्या वचनं स्वरूपायाः शुभोदयम् ॥९२॥
स हर्षमधिकं प्राप्तो ववन्दे तद्दिशामुखः। अथ स्तुत्वा बहुतरं भक्तिनिर्भरिताऽन्तरः ॥९३॥
हिमाद्रिः स्वं ह्यभिमतं वरं वव्रे महेश्वरीम्। गौरि मे सुप्रसन्नाऽसि यदि मे तपसः फलम् ॥९४॥
अस्ति चेन्मम पुत्रीत्वं क्षेत्रसम्भवतोऽस्तु ते। अभिलाषो महानत्र त्वां देवीं शिशुरूपिणीम् ॥९५॥

के प्रति "हाँ" यह कहा ॥८६॥ अनन्तर हरि प्रमुख देवता लोग गौरी महेश्वरी को प्रणाम कर उससे आज्ञा लेकर अपने दुःखत्रास से मुक्त हो स्वस्थ बन अपने स्थान पर चले गये ॥ ८७ ॥

आगे आकाशशरीरवाली गौरी के अत्यन्त गम्भीरवाणी से तपस्या रूपी अग्नि की ज्वाला से घिरे नगाधिराज हिमालय को कहा ॥ ८८ ॥ "हे शैलकुलाधिपते ! मैं (तेरे ऊपर) प्रसन्न हूँ, मुझे सम्मुख देख; जो तेरी अभिलाषा हो सो मुझे जल्दी बता मैं उसे पूरी करूंगी" ॥८९॥

इस प्रकार वचन सुनकर पर्वताधिपति हिमालय कुछ ध्यान लगा स्थित हुआ। क्या यह स्वप्न है अथवा सत्य है इसप्रकार एक क्षणभर सोचकर अपने नेत्र खोलकर चारों ओर देखने लगा। उसने वहाँ कुछ न देखकर जैसे ही न दृष्टिगोचर होने वाला यह स्वप्नमात्र है ऐसा मान लिया तब तक गौरी ने फिर अपने पूर्व के कहे वचनों की आवृत्ति की (उन्हें फिर कहा)। आकाशरूपिणी गौरी के मङ्गलकारी वचन सुनकर वह बहुत अधिक हर्षित हुआ और उसकी वाणी की दिशा की ओर मुख करके प्रणाम वन्दना करने लगा। अनन्तर भक्ति-पूर्ण अन्तःकरण से बहुत प्रकार से भगवती की स्तुति कर हिमाचल ने महेश्वरी के प्रति अपना अभिलषित वर कहा (वर मांगा)।

"हे गौरि ! आप यदि मेरे ऊपर अत्यधिक कृपा करती है और मेरी तपस्या का यह फल हो तो आप मेरे

वत्सलो लालयिष्यामि मुग्धलीलाऽवलोककः । जामातरं महादेवं प्राप्य सम्पूज्य वा ततः ॥९६॥
सञ्जित्य लोकद्वितयं सम्भवाम्यतिनिर्वृतः । इति मे प्रार्थनां देवि पूरय प्रतियाचिता ॥९७॥
इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानान्तर्गत गौर्युपाख्याने
हिमवते वरप्रदानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२३६१॥

घरसे (धर्मपत्नी) योनिज पुत्री हो जन्म धारण कीजिये । इस विषयमें मेरी बड़ी अभिलाषा है कि शिशु रूप में हेदेवि आपको मैं आपकी मुग्ध-लीलाओं को देख पिता रूप में लालन-प्यार करूं । और भगवान् महादेव को अपना जामाता पाकर आप दोनों को भली प्रकार पूजकर फिर दोनों (इस लोक एवं परलोक) लोकों को जीत कर अत्यन्त ही कृतकार्य होऊँ । हे देवि ! मेरी प्रार्थनापूर्वक आप से यह याचना है, आप पूर्ण करें" ॥९०-९७॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में
हिमाचल की तपस्या से सन्तुष्ट गौरी के प्रति पुत्रीरूप
में वरदान की याचना नामक अट्ठाईसवां अध्याय सम्पूर्ण ।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

हिमाचलपत्न्यां भगवत्या गौर्याः समाविर्भाववर्णनम्

श्रुत्वैवं गिरिवर्यस्य प्रार्थनां सा महेश्वरी । प्रोवाचाऽतिशुभां वाचं नभोमात्रस्वरूपिणी ॥१॥
शृणु पर्वतराजन्य यस्त्वया याचितो वरः । भविष्यति द्रुतं सर्वं तनुजाऽहं भवामि ते ॥२॥
यन्मया त्वं निषिद्धोऽपि तपस्येवाऽभिसंरतः । अनीहन्त्या मम वपुस्तपसा ते सुसाधितम् ॥३॥
तेन मां तनुजारूपां विस्मृत्य परमां शिवाम् । बुद्ध्या प्राकृतया युक्तो भविष्यसि नगाधिप ॥४॥
इत्युक्त्वा सा महादेवी अन्तर्धानं समागमत् । अथाऽद्विराट् प्रणम्याऽम्बामाजगाम स्वमालयम् ॥५॥
मेनया प्रियया युक्तः प्राप्येष्टं मुदितोऽभवत् । ततः स्वल्पेन कालेन प्रशस्ततरसम्मते ॥६॥
मेनका हिमशैलस्य सती गर्भमधारयत् । निविष्टा सा परा तत्र महायोगमयी शिवा ॥७॥

उनतीसवां अध्याय

इस प्रकार पर्वतश्रेष्ठ हिमालय की प्रार्थना सुनकर शब्दगुणवाला आकाश ही एकान्ततः जिसका स्वरूप है वह महेश्वरी अत्यन्त मङ्गलमयी वाणी में बोली, ॥ १ ॥ "हे पर्वतराज ! सुन जो तू ने वरदान मांगा है वह अति शीघ्र पूर्ण होगा, मैं तेरी पुत्री बनूँगी ॥ २ ॥

हे नगाधिराज ! जो तू मेरे द्वारा मना करने पर भी तपस्या में ही लगा रहा इससे मेरे परमोच्च शिव स्वरूप को भूलकर मुझे अपनी पुत्री रूप में पाकर तू सहज संसारी मनुष्यबुद्धि से युक्त हो जायगा " ॥ ३-४ ॥ यह कहकर वह महादेवी अदृश्य हो गई। अनन्तर पर्वतराज हिमालय भगवती अम्बा को प्रणाम कर अपने भवन में आ गया ॥ ५ ॥ अपनी प्रिया मेनासहित अपने अभीष्ट वर को पाकर वह अत्यन्त आनन्द में फूला न समाया। अत्यधिक अल्प समय में ही विशेष उत्तमोत्तम मुहूर्त्त में हिमालय की पत्नी सती मेनका ने गर्भ धारण किया

विष्ण्वादिदेवकार्यार्थं परायाश्च निदेशतः । अथ सा मेनका तत्र गिरिराजगृहोत्तमे ॥८॥
पराशक्त्यंशयोगेन बभ्राजाऽतितरां तदा । ददर्श हिमवान् कान्तां देवतामिव रूपिणीम् ॥९॥
उपलक्ष्य स्वाभिमतं मुमोदाऽत्यन्ततो गिरिः । सम्पूर्णसर्वाऽवयवां देहगौरवयोगिनीम् ॥१०॥
कपोलयोः पाण्डुराऽऽभां स्वेदबिन्दुलसन्मुखाम् ।
श्रान्तामकाण्डतः श्यामस्निग्धचूचुकसुस्तनीम् ॥११॥
उद्गच्छद्रोमलतिकां विलीनबलिकोदराम् । सुगूढजघनां लीलाविलासेष्वलसप्रियाम् ॥१२॥
समालोक्य जहौ तापं मानसं पर्वतेश्वरः । यदा गौरी मेनकाया गर्भभूता बभौ शिवा ॥१३॥
तदा प्रभृति शैलेन्द्रविषयेषु शुभोदयः । वृक्षाः पुष्पफलाऽऽक्रान्ताः पुष्पाणि च फलानि च ॥१४॥
निविडानि रसैर्गन्धैः पक्षिणः शिववाशिताः । मारुतो मन्दगमनो हितस्पर्शश्च प्राणिनाम् ॥१५॥
द्यौः शुभ्राऽभ्रसमाकीर्णा मेघाः सौरभवर्षिणः । दिनेशो निर्मलकरो दिशो विमलदर्शनाः ॥१६॥

उसमें महायोग से युक्तपरा शिवा ने विष्णु आदि देवगण के कार्य की सिद्धि के लिये परा त्रिपुरा के आदेश से निवेश किया ॥ अनन्तर वहां गिरिराज हिमाचल के उत्तम गृह में परा शक्ति के अंश के योग होने से मेनका अत्यन्त शोभा धारण करती विराजी । हिमवान् ने अपनी स्त्री को दिव्यगुणसम्पन्न देवता के सुन्दर रूप में देखा जाना ॥६-९॥

अपने इष्टदेवता द्वारा गर्भ में आने के अभीष्ट लक्ष्य को पूरा होते देख पर्वतराज अत्यधिक हर्षित हुआ उसकी प्रिया पत्नी पूर्णरूप से अङ्ग उपाङ्गों से भरी हुई शरीर, में गर्भ के रहने से अधिक गौरव भार का योग लेती हुई, दोनों गालों में पीली आभा धारण की हुई, मुख पर पसीने के बिन्दुओं से शोभितमुखवाली, बिना काम के ही अधिक थकी हुई, काले और चिकने चूचुकों से बढ़े हुए स्तन वाली, शरीर पर रोमलता उठी हुई, पेट की मांसल बलियां गर्भ के बढ़ने से लुप्त हो गई है ऐसी, अत्यन्त गाढ़ जघनप्रदेशवाली और स्त्रियों के विशेष क्रियाकलापों में गर्भ धारण से आलस्य में ही प्रेम करने वाली थी उसे इस प्रकार देखकर पर्वतराज का मन का सन्ताप छूट गया ॥ जब से ही मेनका के गर्भ में शिवा ने प्रवेश किया तब से ही पर्वतराज के प्रदेशों में सर्वत्र मङ्गल विधान ही दृष्टिगोचर हुआ । वृक्ष पुष्पों तथा फलों से लद गये, पुष्प तथा फल, रस और सुगन्ध से परिपूर्ण हो गये । पक्षियों ने मुख

रात्रिस्तारेन्दुशोभाढ्या जनाः संहृष्टमानसाः। एवं विधानि चिह्नानि सम्भूतान्यभितस्तदा ॥१७॥
एवं चिह्नानि संवीक्ष्य गौर्याविर्भावमद्विराट्। मेनेऽतिहर्षसंयुक्तस्तं कालमभिकाङ्क्षितम् ॥१८॥
अथ पर्वतराजन्यकान्ता सर्वशुभोदये। सुषुवे कन्यकां काले गौरीं शङ्करवल्लभाम् ॥१९॥
तां त्रिनेत्रां चन्द्रचूडां चतुर्बाहुविराजिताम्। खड्गं खेटं मुद्गरञ्च दधानां तीक्ष्णशूलकम् ॥२०॥
मेचकाऽऽभां रक्तवस्त्रां सर्वाऽऽभरणभूषिताम्। विलोक्यैवंविधां देवीं भीता शैलेन्द्रवल्लभा ॥२१॥
प्रियं पर्वतराजन्यमाह्वयन्मेनका भृशम्। आगत्य हिमशैलेन्द्रो दृष्ट्वा कन्याञ्च तादृशीम् ॥२२॥
मत्वा गौरीं महेशानीं ननाम भुवि दण्डवत्। अथोत्थाय भक्तिभराऽऽक्रान्तः संस्तवमारभत् ॥२३॥
नमो देवि देवेशलोकेशपूज्ये नमो गौरि भक्ताऽऽर्तिसंहारकर्त्रि।
नमो लोकजालैकहेतुस्वरूपे नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि ॥२४॥

से अपनी उडानें भरी, वायु मन्दगमन और प्राणियों को हितकर रूप से स्पर्श करने वाला बहने लगा ॥ १०-१५ ॥ अन्तरिक्ष सुन्दर गौरहाने बादलों से छाया हुआ, बादल सौरभ वर्षा करने वाले, (प्रभूत धनधान्य को बढ़ाने वाले) सूर्य की किरणें अत्यन्त निर्मल, दिशायें भी सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित बन गयीं, और रात्रि तारागण और चन्द्र से अत्यन्त शोभा युक्त हुई, सर्वत्र लोग अत्यन्त प्रसन्न मन से विचरण करने लगे; चारों ओर इस प्रकार के मंगलमय शुभ लक्षण हो गये ॥ १६-१७ ॥

इस प्रकार के चिह्नों को देखकर पर्वतराज ने अत्यन्त आकांक्षापूर्ण भगवती के आविर्भाव को अत्यन्त हर्षयुक्त हो अनुभव किया ॥१८॥ अनन्तर पर्वतराज की कान्ता ने सर्वप्रकार के मङ्गल के जनक शुभ समय में शङ्कर की प्रिया गौरी को जन्म दिया ॥ १९ ॥ तीन नेत्रों वाली, चन्द्र का जूड़ा सिर में भूषित, चारों भुजाओं से शोभित खड्ग, ढाल, मुद्गर और तीक्ष्ण शूल धारण किये हुए चन्द्रमासे अधिक प्रकाशमयी, रक्तवस्त्रधारिणी और सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित इस रूप में देवी को देखकर शैलराज की पत्नी डरी ॥ २०-२१ ॥

(उसने) अपने प्रियपति हिमाचल को अतिशीघ्र बुलाया, हिमशैलराज ने आकर उस रूपकी विलक्षण कन्या को देखकर उसे गौरी महेशानी मानकर भूमि में दण्डवत् हो प्रणाम किया। अनन्तर उठकर भक्तिपूर्ण अन्तःकरण से उसने स्तुति आरम्भ की ॥ २२-२३ ॥ हे देवराज और लोकपतिगण की स्तुतिपूज्ये देवि ! मैं नमस्कार करता हूँ; हे भक्तगण के दुःख नाशकरनेवाली गौरि ! आपको प्रणाम है। हे लोक प्रपञ्च के एक मात्र हेतु कल्याणार्थ रूप धारण करने वाली भगवति ! मेरा नमस्कार है, हे भवानि ! आपको मैं बारम्बार नतमस्तक हो प्रणाम करता हूँ ॥२४॥

पराशक्तिरूपा शिवस्य त्वमेका जगज्जालसूत्रात्मिका सर्वसंस्था ।
त्वमेकाऽक्षराऽर्थैकरूपा विरूपा नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि ॥२५॥
नतानां भवाब्धौ गभीरेऽतिभीमे स्थितानां समुद्धारणे का त्वदन्या।
समर्था ततो मां समभ्युद्धराऽऽर्तं नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि ॥२६॥
अविद्यामहाग्राहवक्त्रे निविष्टं हृषीकाऽर्थवाञ्छामहासर्पदष्टम् ।
विदित्वा विलम्बं न युक्तं कृपार्द्रे नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि ॥२७॥
चिरात्त्वत्पदं मोचकं दुःखपाशान्न चाऽन्यन्ममाऽस्तीह दुःखप्रशान्त्यै ।
इति स्वाऽन्तरे निश्चितार्थः सदाऽऽहं नमस्ते नमस्ते नमस्ते भवानि॥२८॥

आप ही परम शिव की परम शक्ति रूपा, एकाकिनी (अद्वितीय) हैं, जगत्प्रपञ्च की सूत्ररूपिणी, सर्वप्राणिमात्र में स्थित हैं। आपही एकाअक्षरअविनाशी तत्व की अर्थ प्रयोजन की आविष्काररूपिणी और विशेष आकृति धारण करती हुई भी रूपादिरहित हे भवानि ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ प्रणाम करता हूँ, तथा चरणों में भक्तिसहित नत होता हूँ ॥ २५ ॥

अत्यन्त भीषण गम्भीर (गहरे=अतल स्पर्शी) संसार रूपी समुद्र में बहने वाले भक्ति से नत हो आपको स्मरण करने वाले लोगों को बचाने में आपके बिना अन्य कौन समर्थ है ? अतएव आप मुझ त्रस्त का उद्धार कीजिये ; हे भवानि ! भगवती शिव की पत्नी आपको सादर प्रणाम है ! मैं भक्तिविनम्रकन्धर हो आपको नमस्कार करता हूँ, पुनरपि मैं सादर प्रणति करता हूँ ॥२६॥

अविद्यारूपी महाभीषण ग्राह के मुख में पड़े हुए, इन्द्रियगण की विषयाभिलाषा की उद्दाम वासना रूपी महा भयङ्कर सर्प से डसे हुए मुझे जान कर भी आप कृपा से आर्द्र होकर (दया से पिघलनेवाली) मातः ! आपके लिये मुझ आर्त के उद्धार करने में विलम्ब करना उचित नहीं है। अतः हे मातर्भवानि ! मैं आपको पुनः-पुनः-नमस्कार करता हूँ, प्रणत हूँ और सादर प्रणाम करता हूँ ॥ २७ ॥

आपकी कृपा का प्रसाद जो चरण-कमल है वह दुःखपाश (फन्दे) से मुझे छुड़ाने वाला है यह मैं दीर्घ-काल से अपने अन्तर में निश्चित सिद्धान्त बना चुका हूँ, अन्य कोई भी इस संसार में मेरे दुःखों के शमन में समर्थ नहीं है; अतः मैं आपकी शरण में आकर नतमस्तक हूँ आपको मेरी बारम्बार प्रणति है" ॥ २८ ॥ इस प्रकार

स्तुत्वेत्थं हिमशैलेशो नत्वा भूयः कृताञ्जलिः । भक्त्युद्रेकघनस्वान्तो गौरीं प्रोवाच शङ्करीम् ॥२९॥
देवीदानीं मयि महारचितोऽनुग्रहस्त्वया । कल्पद्रुमाऽऽश्रितानां किं वाञ्छिताऽऽप्तिर्विचित्रिता ।३०।
न हि धन्यो मदन्योऽत्र यद्देवी मदपत्यताम् । स्वीचक्रे न ममैतस्मादन्यद्भाग्यं सुदुर्लभम् ॥३१॥
अहं जडात्मा दीनोऽपि लोके देव्यनुकम्पितः ।
महाभाग्यवतां मूर्ध्नि न्यस्तवान् पदमम्बिके ॥३२॥
अहो भाग्यमहो भाग्यं मदन्यो भाग्यवान्न हि । यद्देवीं तनुजारूपां पश्याम्यथ स्वचक्षुषा ।३३।
देवि मे मानसं किञ्चिदस्ति तत्प्रार्थयामि ते । बिभेमि देहि देव्याज्ञां शरण्ये भक्तवत्सले ॥३४॥
श्रुत्वा हिमगिरेर्वाक्यं मधुरं प्राह सा तदा । जहि भीतिं शैलराज वद यद्वाञ्छितं तव ॥३५॥
मद्भक्तेन हि न प्राप्यमिति किञ्चिन्न विद्यते । श्रुत्वा प्रणम्य शैलेशो वाक्यमाह कृताञ्जलिः ॥३६॥

पर्वतराज नमस्कारपूर्वक भवानी के सामने बारम्बार हाथ जोड़े भक्ति से पूर्ण अन्तःकरण से भगवती मंगलमयी गौरी से बोला ॥ २९ ॥

"हे देवि ! दिव्यस्वरूपिणि ! आपने मेरे ऊपर बहुत बड़ा अनुग्रह किया; क्या कल्पवृक्ष की शरण लेने वाले लोगों को अपनी मनोवांछित कामना मिल जाय तो कोई विचित्रता है ? ॥ ३० ॥ मेरे से अन्य कोई व्यक्ति धन्य नहीं है जिसके यहाँ देवी ने मेरी सन्तान होना स्वीकार किया; मेरे से अन्य किसी भी पुरुष के लिये ऐसा उत्तम भाग्य अत्यन्त ही दुर्लभ है ॥ ३१ ॥

इस संसार में मैं जडमति (मूर्ख) अत्यन्त दीन भी आपके द्वारा कृपापात्र बनाया गया हूँ ; महा भाग्यवान् लोगों के सिर पर ही हेअम्बिके ! आपने सदा आपके चरणों से कृपा की है । अहा ! मेरे भाग्य की मैं क्या प्रशंसा करूँ ? मेरे से ऊँचा अन्य कोई भी भाग्यवान् नहीं कि भगवती पराशक्ति महादेवी को अपनी पुत्री के रूप में आँखों से देखता हूँ ॥ ३२-३३ ॥

हे देवि ! मेरे मन में कुछ विशेष बात आई है सो मैं आपकी सेवा में निवेदन करता हूँ । हे शरण देने वाली भक्तों पर वत्सलता बरसाने वाली दिव्यस्वरूपिणि ! मैं आपके इस अप्रतिम रूप की तेजोराशि से अत्यन्त भयाकुल हूँ मुझे आज्ञा दीजिये" ॥ ३४ ॥ हिमगिरि के वाक्य सुन भगवती ने अत्यन्त मधुर प्रेम से सनी हुई वाणी में कहा, "हेपर्वतराज ! भय त्याग, जो तेरी इच्छा हो सो बोल । मेरे भक्त के लिये इस संसार में न मिलने योग्य कोई वस्तु है ही नहीं ।" (यह) सुनकर पर्वतराज ने हाथ जोड़ कर कहा, ॥ ३५-३६ ॥

देवि त्वां प्राकृतशिशुरूपां द्रष्टुं समीहितम् । शिशुलीलाविलोकेन तुष्यन्ति पितरो भुवि ॥३७॥
देवतारूपिणीं दृष्ट्वा सा मे प्रीतिर्न वर्धते । या पित्रोर्विद्यतेऽपत्ये प्रजालोकप्रपूर्तिदा ॥३८॥
एषा मे प्रेयसी मेना शिशुं त्वां द्रष्टुमीप्सति ।
कालिका त्वं करालाऽऽभा न ह्येवं रूपमीप्सितम् ॥३९॥
भव गौरी वर्णतोऽपि भवेन्नामाऽपि सार्थकम् । अथ त्वया च यो दत्तः शापस्त्वद्रूपवीक्षणे॥४०॥
कुरु तत्राऽनुग्रहं मे प्रार्थिताऽसि महेश्वरि । एवं हिमाद्रिवचनं श्रुत्वोवाच शिवप्रिया ॥४१॥
अद्रिराज मया दत्तः शापस्ते प्रीतिकारणम् । मद्रूपाऽविस्मृतौ न स्यादपत्यप्रीतिरीप्सिता ॥४२॥
किन्तु कालेनाऽऽत्मरूपं दर्शयामि महोदयम् । इत्युक्त्वा निजरूपं तत् सञ्जहार महेश्वरी ॥४३॥
कृत्वा रूपं शिशुरिव रुरोद पर्वताऽऽत्मजा । श्रुत्वा तद्रुदितं देव्या पर्वतः प्रियया सह ॥४४॥

हे देवि ! मैं आपको प्राकृत (सर्वसाधारण, लौकिक) बालकरूपवाली देखना चाहता हूँ; इस लोक में माता-पिता बालक की प्राकृत लीलाओं से प्रसन्न होते हैं ॥३७॥ आपको दिव्यरूपवाली देख मेरी वह पिता में सुलभ होनेवाली प्रीति की स्नेहधारा नहीं बढ़ती है, जो अपने बालक को देखने से मन की इच्छापूर्ण होती है ॥३८॥ यह मेरी प्रिया भार्या मेना आपको शिशु रूप में देखना चाहती है । आप लीलाविलास से कालिका अत्यन्त करालवर्णवाली हो रही हैं इस प्रकार का रूप हम दोनों को अभीष्ट नहीं ॥ ३९ ॥ आप रंग से भी गौरी बनिये, नाम भी 'यथा नाम तथा गुणाः' के अनुसार सप्रयोजन हो । अब आपने जो मुझे आपके रूप को अवलोकन करने में शाप दिया उस विषय में हेमहेश्वरि ! मेरी प्रार्थना है कि आप अनुग्रह कीजिये ।" इस प्रकार हिमाचल के वचन सुनकर शिवप्रिया बोली, "हे पर्वतराज ! मैंने तुम्हारे प्रति अत्यन्त प्रीति के कारण ही शाप दिया है मेरे रूप स्मरण रहने से तुम्हें अपनी लौकिक सन्तान के प्रति अभीप्सित प्रीति का लाभ नहीं होता ॥४०-४२॥

किन्तु समय आने पर तुम्हें अत्यन्त उदार उत्कृष्ट मंगलकारी उत्थान करने वाला अपना रूप दिखाऊंगी ।" यह कहकर महेश्वरीने वह दिव्य आभाका रूप समेट लिया ॥४३॥ वह पर्वतराजकी पुत्री हो अपना प्राकृतरूप बना कर शिशु केस मान रोने लगी । उसके रोने को सुनकर अपनी प्रिया के सहित पर्वतराज उस सारे घटनाक्रम को भूल गया और कन्या ने जन्म लिया यह ही माना । मोहित हुई मेनका नये शिशु के आगमन के समय जो प्रसूति की पीड़ा होती है

विस्मस्माराऽखिलं तच्च कन्यां जातामामन्यत । प्रसूतिपीडितेवाऽऽसीन्मेनका मोहिता सती ॥४५॥
अथ तत्र जनाः श्रुत्वा रुदितं राजवेश्मनि । अभ्याऽऽजग्मुर्द्रुततरं पृच्छन्तः किमभूदिति ॥४६॥
कन्याप्रसूतिं संश्रुत्य स्त्रियः सर्वाः समागताः । ददृशुः सूतिकाऽऽगारे कोटिसूर्यसमद्युतिम्॥४७॥
नूतनस्वर्णवर्णाभां पद्मपत्राऽऽयतेक्षणाम् । पूर्णचन्द्राननां रक्तपाणिपादतलान्विताम् ॥४८॥
समानदेहविन्यासां चित्राऽऽलिखितसुन्दरीम् । कन्यामद्भुतरूपां तां जहर्षुः सर्वतो जनाः॥४९॥
तदन्तरे समागत्य धात्री कन्यां समाददे । पर्वतेन्द्रस्तदा तीर्थं संस्पृश्य विधिवद्द्रुतम् ॥५०॥
धेनूनामयुतं तद्वदशाऽयुतसुवर्णकम् । प्राऽयच्छद्विप्रमुख्येभ्यो जातकञ्चाऽकरोत्तदा ।।५१॥
उत्सवश्च महानासीद्धिमशैलपुरे तदा । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात् पतत् ॥५२॥
तदाऽगराजस्य गृहे सम्मर्दः सुमहानभूत् । ब्राह्मणानां गायकानां नर्तकानाञ्च वन्दिनाम् ॥५३॥

उसके समान ही प्रसूतिपीड़ा अनुभव करने लगी ॥ ४४-४५ ॥

अनन्तर हिमाचलके लोग राजभवन में शिशु के रोने का शब्द सुनकर शीघ्र ही आये और पूछने लगे कि क्या हुआ ? ॥ ४६ ॥ कन्या का जन्म सुनकर सभी स्त्रियां आयीं और जननगृह में कोटि सूर्यों की आभावाली; अभिनव सुवर्ण के समान पीतवर्ण की शोभाधारिणी, कमलपत्र के समान विस्तृतलोचनवाली, पूर्णचन्द्रमा की शोभा को लजाने वाले मुख की कान्ति वाली, हाथों और पैरों के तल में अत्यन्त लालिमा धारण की हुई, सारे देह का गठन अत्यन्त समान रूप से सुन्दर हुआ है ऐसी लावण्यमयी, मानों चित्र में लिखी हुई सुन्दरी ही शिशु के रूप में अवतरित हुई हो ऐसी अद्भुत रूपलावण्यवाली उस कन्या को देखकर सभी ओर से लोग अधिकाधिक प्रसन्न हुए ॥ ४७-४९ ॥

उसके बाद धायने आकर कन्याको सम्हाल लिया । पर्वतराजने तब तीर्थका स्पर्शकर अतिशीघ्र दस हजार गौओं और दश हजार वर्षके प्रमाणका सुवर्ण प्रमुख विप्रगणको (पुत्री के जन्मोपलक्ष्य पर) दान किया और जातक विधि की । हिमराज के नगर में उस समय खूब आनन्दपूर्ण उत्सव हुआ, देवगण ने दुन्दुभियां बजाई और आकाशसे पुष्पों की वर्षा हुई । तब पर्वतराज के यहां ब्राह्मणों, गायकों, नर्तकों, वन्दिगणों, याचकवृन्द एवं शिल्पिकार लोगों की बड़ी भीड़ (बधाई देने के लिये) आकर लगी और चारों ओर साधुवाद का सुन्दर घोष होने लगा । अनन्तर समय आने पर नगा-

याचकानां शिल्पिनाञ्च जल्पघोषश्च सम्बभौ । अथ काले विप्रमुख्यैरगेशः स्वतनूद्भवाम् ॥५४॥
नाम कृत्वा संस्कुरुत नाम चक्रे पुरोहितः ।
गौरीस्वर्णवद्गौरवर्णेयं यस्मात् कन्या तवाऽचल ॥५५॥
ततो गौरीति विख्याता भवत्विह महीतले।एवं हिमाचलः कन्यां प्राप्य गौरीं महेश्वरीम् ॥५६॥
मुमोद सर्वर्द्धियुतः कन्यालीलां विलोकयन् । एवं शैलेन्द्रभवने ववृधे लीलयाऽन्विता ॥५७॥
आरूढयौवना गौरी बभूव स्वल्पकालतः । हिमाद्रिस्तां विलोक्य स्वां कन्यामारूढयौवनाम्।५८।
अचिन्तयत् पतिं तस्या अनुरूपगुणाऽन्वितम् । गर्गं मुनीन्द्रं सङ्गम्य नत्वा पप्रच्छ पर्वतः ॥५९॥
महर्षे मम कन्येयं पतिं कं समुपैष्यति । वद ते न ह्यविदितं भविष्यं भूतमप्युत ॥६०॥
श्रुत्वेत्थं हिमशैलस्य वाक्यं गर्गो महामुनिः। ध्यात्वा क्षणं विदित्वा तत् प्राह संहृष्टमानसः ॥६१॥
नत्वा तां परमां गौरीं सम्बोध्याऽगकुलेश्वरम् ।शृणु शैलेश कन्यायास्तव वृत्तं महाऽद्भुतम् ।६२।

धिराज ने विप्रमुख्य महानुभावों के साथ मन्त्रणा कर अपनी कन्या के लिये "आप नामकरण संस्कार कीजिये" इस प्रकार कहा । पुरोहित ने नामग्रह किया, "हे पर्वतश्रेष्ठ ! यह तेरी कन्या स्वर्ण के समान अत्यन्त उज्ज्वल वर्णवाली है इसलिये महीतल में यह "गौरी" इस प्रकार विख्यात हो ।" इस प्रकार हिमाचल महेश्वरी गौरी को अपनी कन्या के रूप में पाकर सम्पूर्ण महर्द्धियों से युक्त हो कन्या के बालसुलभ चरित्र देख कर अत्यन्त हर्षित हुआ । इस प्रकार बाल लीलासे युक्त वह पुत्री पर्वतराज के भवन में दिन दूनी रात चौगुनी शोभासे बढ़ने लगी ॥५०-५७॥

स्वल्प समय में ही गौरी युवावस्था में पदार्पण करने वाली बनी, हिमाचल अपनी कन्या को आरूढ़ यौवना (युवती रूप में) देख उसी के रूप गुणों के अनुसार ही पति को खोजने के लिये चिन्ता करने लगा । पर्वतराज ने गर्गमुनि के पास जाकर प्रणाम कर पूछा ॥५८-५९॥

"हे महर्षे ! मेरी यह कन्या पति के रूप में किसे प्राप्त करेगी ? हे भगवन् ! आप मुझे बताइये, न तो आप से इसका भविष्य छिपा है अथवा न भूत ही ।" इस प्रकार हिमाचल के वाक्य सुन कर महामुनि गर्ग क्षणमात्र ध्यान लगा कर सब वृत्तान्त जानकर अत्यन्त प्रसन्नमन हो उस सर्वोच्च महिमामयी परमा गौरीको प्रणाम कर नगाधिराज से

भवानी तव कन्येयं तपसा तेऽभिराधिता । अस्याः पतिः शिवो नाऽन्यः सर्वदेवप्रपूजितः ॥६३॥
त्वमेनां न विजानासि तस्याः शापेन मोहितः । सस्मार गौरीं परमां गर्गवाक्येन शैलराट् ॥६४॥
कदाचिदथ देवर्षिर्नारदो भक्तशेखरः । तन्माहात्म्यं विजिज्ञासुः पर्वतेन्द्रगृहं ययौ ॥६५॥
दृष्ट्वा देवर्षिमायान्तं हिमाद्रिः सहसोत्थितः । अभिगन्य मुनीन्द्रं तमासनाद्यैरपूजयत् ॥६६॥
पूजितः प्राह देवर्षिर्हिमाङ्गं स्मितपूर्वकम् । पर्वतेन्द्र तनूजा ते सम्प्राप्तोऽहमवेक्षितुम् ॥६७॥
तां मे प्रदर्शय क्षिप्रं ततो यास्यामि वै दिवम् । श्रुत्वेत्थं नारदवचः कन्यामानीय सत्वरम् ॥६८॥
वत्से नमस्कुरु मुनिमित्युवाच कुमारिकाम् । अथ गौरी यथाऽऽगत्य नमश्चक्रे मुनीश्वरम् ॥६९॥
प्रणमन्तीं परां गौरीं दृष्ट्वा देवर्षिसत्तमः । सङ्गोपयन् देवगुह्यं मनसा प्रणनाम ताम् ॥७०॥
दृष्ट्वा तां यौवनाऽऽरूढामुवाच विधिनन्दनः । अगेश दृष्ट्या तेऽपत्यं सम्प्राप्तं चिरकालतः ॥७१॥

बोले, हे शैलाधिराज ! सुन, तेरी कन्या का वृत्त बहुत ही अद्भुत है, यह तेरी कन्या भवानी है तू ने तपस्यासे इसकी आराधनाकी है, इसका पति सभी देवों के द्वारा पूजित भगवान् शिव ही हैं अन्य कोई नहीं ॥६०-६३॥

इस के शाप से मोहित हुआ तू इसे नहीं जानता ।" (तब) शैलराज ने परमागौरी को गर्ग महर्षि के कथन से स्मरण किया ॥ ६४ ॥ एक दिन भक्तों के शिरोमणि देवर्षि नारद उस कन्या के रूप, गुण एवं प्रभाव को जानने की इच्छा से पर्वतराज के यहाँ गये ॥ ६५ ॥ देवर्षि को आते देख हिमाद्रि सहसा उठ खड़े हुए तथा मुनीन्द्र की सेवामें जाकर उन्हें आसन, पाद्य और अर्घ्य आदि से सविधि बहुमान सम्मान दिया ॥ ६६ ॥

पूजा करने के अनन्तर देवर्षि ने हिमालय से हँसते हुए कहा, "हे पर्वतेन्द्र ! तेरी पुत्री को देखने के लिये मैं आया हूँ, मुझे शीघ्र उसे दिखा बाद में मैं स्वर्ग लोक को जाऊंगा ।" इस प्रकार नारद का वचन सुनकर हिमवान् ने अति शीघ्र कन्या को लाकर "हे पुत्रि ! मुनि को प्रणाम कर" इस प्रकार कुमारिका को कहा । अनन्तर जैसे ही आकर गौरी ने देवर्षि को प्रणाम किया वैसे ही श्रीनारद ने उसे प्रणाम करती देख देवगुह्य उस परा के प्रभाव को छिपाते हुए मन ही मन उन्होंने प्रणाम किया ॥६७-७०॥

ब्रह्मपुत्र देवर्षि ने यौवन में पदार्पण की हुई उस कन्या को देख कहा, "हे पर्वतराज ! तुझे बड़े भाग्य से

नन्वियं करपीडायाः कालमालम्ब्य संस्थिता । काले कन्यां सुपात्रे यो न प्रयच्छति दुर्मतिः ॥७२॥
तस्य पूर्वतराः सर्वे गच्छेयुर्दुर्गतिं गतिम् । वद पर्वतराजन्य कस्मै त्वं दातुमुद्यतः ॥७३॥
कन्या पात्रे नियुक्ता तु महासौख्यप्रदायिनी । श्रुत्वर्षिवाक्यमगराट् नत्वा प्राह कृताञ्जलिः ॥७४॥
देवर्षे त्वं समस्तस्य लोकस्य प्रसमीक्षकः । न हि त्वया ह्यविदितं शुभमन्यद्भवेत क्वचित् ॥७५॥
अहं गर्गस्य वचसा वरं मन्ये त्रिलोचनम् । त्वं कथं मन्यसे तन्मे शंस शिष्यस्य पृच्छतः ॥७६॥
निशम्य पर्वतवचो जगाद सुरतापसः । शृणु पर्वतराजन्य शिवो यस्ते वरो मतः ॥७७॥
नाऽहं मन्ये कुमार्यास्ते तुल्यं तं पाणिपीडने । इयं सर्वेषु लोकेषु रत्नभूता कुमारिका ॥७८॥
समस्तगुणशोभाऽऽढ्यं पतिमर्हति तादृशम् । शिवे सर्वेऽशिवगुणाः सदोन्मत्तविचेष्टितः ॥७९॥
श्मशाननिलयो भूतसङ्घसेव्योऽहिभूषणः । चर्मवासा विरूपाक्षो विषाऽऽहारो भयङ्करः ॥८०॥

कन्या मिली है। अवश्य ही इसके पाणिग्रहण का समय अब उपस्थित हो रहा है। जो मूढबुद्धि समय पर अपनी पुत्री को सत्पात्र वर को नहीं देता उस पुरुष के पूर्वज अत्यन्त दुर्गति को प्राप्त होते हैं। हे पर्वतराज! यह तो बता कि तू इसका सम्बन्ध किससे करना चाहता है? सत्पात्र को दी हुई कन्या अत्यन्त सौख्यदायिनी होती है।" ऋषि नारद के वचन सुनकर पर्वतराज ने हाथजोड़ प्रणाम कर कहा, "हे देवर्षे! आप सम्पूर्ण लोक के विशेष रूप से देखने वाले हैं, आपको कैसा लगता है? सो मुझ शिष्य को जो आपसे पूछता हूँ, बतलावें" ॥ ७१-७६ ॥

पर्वतराज का वाक्य सुनकर सुरतापस नारद बोले, "हे पर्वताधिराज! सुन जो तू ने इसके लिये शिव को वर माना है, मैं उन्हें गौरी के पाणिग्रहण के लिये समान शीलव्यसनवाला नहीं मानता। यह तेरी पुत्री कुमारी गौरी सभी लोकों में अत्यधिक श्रेष्ठ कन्या रत्न है; इसके लिये तदनुरूप वैसा ही सभी गुणों की राशि पति होना इष्ट है। शिव में तो सभी अमङ्गल चिह्न ही विशेष रूप से हैं; वह सदा उन्मत्त लोगों की विचेष्टा करते हैं, श्मशान निवासी हैं, भूतगण उनकी सेवा में रहते हैं, सर्पों का आभूषण पहनते हैं। व्याघ्र चर्म का वस्त्र रखते हैं, तीन नेत्रधारी हैं अथवा विरूप (भयप्रदायिनी) आंखें हैं विष का सेवन करने वाले हैं और अति भयङ्कर आकृति आदि धारण करते हैं ॥ ७७-८० ॥

पुरा देवी तस्य पत्नी गौरी तमनवस्थितम् । दृष्ट्वा लोपं गतवती पुनर्दाक्षायणी तथा ॥८१॥
पित्रिविनिन्दितं वीक्ष्य भस्मीभूता महाऽध्वरे । तस्मादेनां शिवो नाऽर्हः पत्नीं सर्वगुणाऽऽलयाम् ।८२।
शृणु प्रालेयशैलेश कन्यायाः सदृशं पतिम् । माधवः पुण्डरीकाक्षो वैकुण्ठनिलयः पुमान् ॥८३॥
एनामर्हति पत्नीत्वे समानेतुं सदृग्गुणैः । इयञ्चाऽपि पतिं विष्णुं गुणैरर्हति सम्मतैः ॥८४॥
अहो पर्वत ते भाग्यं विष्णुर्जामातृतां व्रजेत् । यं गुणैर्मोहिता लक्ष्मीर्दासीवत् सेवतेऽन्वहम् ॥८५॥
मन्यसे यदि मद्वाक्यं वृणोमि हरिमीश्वरम् । इत्याकर्ण्य नारदोक्तिं पर्वतेशोऽतिविस्मृतः ॥८६॥
शापाद्गौर्याः प्रियां शम्भोस्तपसाऽऽराधितां पुरा । प्राह देवमुनिं शैलो वरं निश्चित्य माधवम् ॥८७॥
धन्योऽहं यत्त्वया कन्या मम पात्रे नियोजिता । सत्यं शिवो नाऽर्हति मे कन्यामशिवलक्षणः ॥८८॥
व्रजाऽद्यैव यथा कन्यां समियान्माधवो द्रुतम् । तथा विधेहि सन्धानं माभूत् कालस्य पर्ययः ॥८९॥

प्राचीन समय में उसकी पत्नी गौरी ने उसे इस प्रकार अव्यवस्थित रूप में देख अपने स्वरूप का लोप कर लिया था, फिर दक्ष की पुत्री हो पिता के महान् यज्ञ में पति की निन्दा सुन जलकर भस्म हो गई । इसलिये ऐसी सम्पूर्ण गुणों की खानि इस कन्या के लिये शिव उपयुक्त वर नहीं हैं ॥ ८१-८२ ॥

हे नगाधिराज ! सुन, इस पुत्री के समान रूप गुण-शील-निधान पति को बताता हूँ; कमलनेत्र वैकुण्ठ-विहारी विष्णु ही ऐसे पुरुष हैं जो इसे अपने समान गुणों से अपनी पत्नीरूप में पाणिग्रहण कर सकता है । यह भी अपने समान गुणों से उस विष्णु को पति कर सकती है ॥ ८३-८४ ॥

हे पर्वत ! अहो ! तेरा भाग्य कितना अधिक प्रशंसा के योग्य है कि विष्णु तुम्हारा जामाता बने, जिसके गुणों पर रीझकर लक्ष्मी प्रतिदिन दासी के समान सेवा करती है ॥ ८५ ॥

मेरे वचन को यदि मानो तो मैं ईश्वर श्रीविष्णु को पति के लिये चयन करता हूँ" इस प्रकार नारद के वचन सुनकर गौरी के शापसे पर्वतराज शम्भुकी प्रिया इस देवी की तपस्या द्वारा पहले आराधना की है उस बातको एक दम ही भुला गया । पर्वतराजने विष्णु को वर निश्चित कर देवर्षि से कहा, "मैं धन्य हूँ कि आपने मेरी सुपुत्री को सुयोग पात्र में लगाया, यह सत्य है कि शिव जिनके अमङ्गलकारी लक्षण है वह मेरी कन्या के योग्य नहीं ॥८६-८८॥

आप आज ही जावें (ऐसी चेष्टा करें) जिससे माधव भगवान् कन्या के साथ पाणिग्रहण करें, इसमें थोड़ा भी

समुत्पतन्ति प्रत्यूहाः शुभोदर्केषु कर्मसु । तस्माद्विहतं यद्वद्भवेत्तद्वत् समाचर ॥९०॥

श्रुत्वेत्थं पर्वतवचो नारदः प्रहसन् गिरिम् । साधयामि तवाऽभीष्टमित्युक्त्वा प्रययौ दिवम्॥९१॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानान्तर्गतस्गौर्युपाख्याने हिमवतो नारदेन कन्याया वरविषये वार्त्तालापो नामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२३९१॥

समयका विलम्ब नहीं करना चाहिये। शुभलक्षण वाले कार्यों में सदैव ही विघ्न आया करते हैं। इसलिये विना किसी विघ्न-बाधा के जो हो वह कीजिये।" इस प्रकार पर्वतराज की वाणी सुन नारदजी ने उस से हँसते हुए "तेरा अभीष्ट सिद्ध करता हूं" यह कह कर स्वर्ग को प्रस्थान किया ॥८९-९१॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में कामोपाख्यान में गौरी का हिमाचल के घर में जन्म और समय पर गर्ग ऋषि द्वारा युवावस्थापन्न गौरी के वर के लिये भगवान् शंकर का वर होने का प्रस्ताव कहना बादमें देवर्षि नारद द्वारा उसको भ्रम पैदा कर श्रीविष्णु के साथ गौरी का पाणिग्रहण का प्रस्ताव रखना गौरी के शाप से विस्मृत पर्वतराज की तदनुसार विष्णु के वर होने की स्वीकृति आदि प्रकरण नामक उनतीसवां अध्याय सम्पूर्ण।

त्रिंशोऽध्यायः

पितुरभिप्रायमसहमानया स्वेष्टपतिप्राप्त्यै गौर्या तपस्याकरणवर्णनम्

अधिगत्य पितुर्गौरी व्यवसायमसम्मतम् । स्वरूपगोपनोद्युक्ता लीलाश्चाऽपि वितन्वती ॥१॥
जगाम सखिभिः सार्धं वनं चतसृभिः शुभम् । हिमशैलतटप्रान्त संस्थितं घोरसन्निभम् ॥२॥
झिल्लीझङ्कारभरितं निकुञ्जततिमण्डितम् । नानातरुलताचित्रं विहगैश्च सुशोभितम् ॥३॥
दिवाकरकरैर्हीनं शीतलोद्देशसुन्दरम् । क्वचिद्धिमैर्निपतितैः पाण्डुरं तृणवर्जितम् ॥४॥
रजताऽद्रिनिभं शृङ्गं दूरतः प्रविराजते । क्वचिन्निर्झरतो नीरं योगिमानसनिर्मलम् ॥५॥
वहत्यत्यच्छपाषाणफलकाऽवलिभूमिषु । अत्युच्चविटपाऽऽसक्तघनराजिविराजितम् ॥६॥
नृत्यद्बर्हिगणाऽऽकीर्णं परभृत्पञ्चमोदयम् । तत्र देवनदीं दिव्यामासाद्य गिरिकन्यका ॥७॥

तीसवां अध्याय

पिता के द्वारा विवाह के लिये नारद को विष्णु की इच्छा जानने के प्रयास को अपने मन के अनुकूल न पाकर भगवती गौरी अपने स्वरूप को छिपाने को तैयार और लीला का विस्तार करती हुई हिमालय पर्वत के निकटवर्ती प्रदेश में स्थित अत्यन्त गहन वनमें चार सखियों के साथ गई ॥१-२॥ उस वनमें झिल्ली (झिंगुरों) के झङ्कार से परिपूर्ण, निकुञ्जों के समूहसे शोभित, सूर्यकी किरणों से वर्जित, इतने अधिक गहन लता प्रतान से ग्रथित, नाना वृक्षों लताओं से अत्यन्त चित्र-विचित्र शोभा धारण किये, पक्षियों से शोभित छाया के कारण प्रान्त भाग अत्यन्तशीतल तथा कहीं विशेष हिमपातसे उस पार्वत्य प्रदेशमें तृण घास से वर्जित पीली भूमि का अभिराम दृश्य था । सामने कुछ दूर पर रजत (चांदी) के पर्वत के समान पर्वत की चोटी शोभित थी । उस वन भूमि में योगियों के अन्तःकरण के समान अत्यन्त निर्मल जल झरनों से अत्यन्त विमल पाषाणों के फलकों के शिलाओं की पंक्ति से पूर्ण भूमि में बहता था, उस प्रदेशमें अत्यन्त ऊंचे देवदार चीड़ आदि वृक्षों के कारण उनकी अत्यन्त घनी पंक्ति शोभा बढ़ा रही थी । उस (अतिशय प्रकृतिसे सुरम्य-प्रान्त-स्थित) वन में नृत्य करते मोरों के झुण्ड से पूर्ण और शान्त प्रदेश की नीरवता को कोयल अपनी

वयस्याभिः परिवृता निषसादोकूलके । श्रान्तां तां समुपालक्ष्य गौरीं काचित् सखीं तदा ॥८॥
द्रुतं गङ्गाम्बुना पादौ सम्यक् समवनेजत । कृतसख्यूरूपधानां सुप्तां तां पर्वताऽऽत्मजाम् ॥९॥
तृणराजोरुवृन्तेन संवीजयत काचन । अन्या निजोरुयुगले कौशेयस्तोमकोमले ॥१०॥
आरोप्य तत्पादयुगं संवाहनपराऽभवत् । एवं मुहूर्तं विश्रम्य समुत्थायाऽऽलिभिः सह ॥११॥
स्नात्वा सुरसरित्तोये कन्दरं तीरसंश्रयम् । समासाद्य तत्र रात्रौ सैकतीं त्रिपुरातनुम् ॥१२॥
कामेश्वराऽङ्कनिलयां गन्धपुष्पफलादिभिः । समाराध्य विधानेन महद्भिरुपचारकैः ॥१३॥
स्तुत्वा स्तुतिगणैर्देवीं वैदिकैस्तान्त्रिकैरपि । वाक्षैर्विशेषतोऽभ्यर्च्य गानैर्नृत्यैः परिक्रमैः ॥१४॥
एवं तस्याः पूजयन्त्याश्चाऽत्यगात् सा निशीथिनी ।
कल्पे कालेऽभिसंवृत्ते चक्रे गौरी शुभं स्तवम् ॥१५॥
परापदाम्बुजप्रीतिरसमाद्यच्छुभाऽन्तरा । अद्भुतं ज्ञानकलिकास्तोत्रं समुपचक्रमे ॥१६॥

काकली (कुड़क राग) से नैसर्गिक वातावरणमें सुन्दरता को प्रदान करती थी। वहाँ पर्वतराज पुत्री दिव्य देवनद गंगा के सन्निकट आकर अपनी सखियों के साथ उसके तट पर बैठ गई। उस गौरी को (चलने से थकी हु देख) एक सखी ने शीघ्र गङ्गा के जल से गौरी के पैरों को भली प्रकार धोया। जब सखियों ने गौरी लिये भूमि पर आवरण बिछा दिया तो पर्वतात्मजा सो गई उसे तृण से बने पंखे से कोई सखी हवा झलने लगी एक अन्य सखी ने अपने रेशम के गद्दे के समान कोमल जङ्घा प्रदेश में गिरिराज कुमारी के दोनों पांव रखक उन्हें सहलाना आरम्भ किया। इस प्रकार एक मुहूर्त (दो घड़ी) विश्राम कर अपनी सहेलियों के साथ उठक गंगा के जल में स्नान कर तट के निकट वाली कन्दरा में रात्रि में बालूमयी कामेश्वर शिव के अङ्क में विराज त्रिपुराकी मूर्तिका गन्ध, पुष्प और फल आदि सामग्री से बड़े उपचारों से विधिपूर्वक पूजनकर वैदिक व तान्त्रिक पद्धति से स्तुति कर पुष्पों एवं फलों से विशेष अर्चनाओं गायनों और नृत्यों तथा परिक्रमाओं से वह पूरी रात्रि बिता दी प्रातःकाल आने पर गौरी ने मङ्गलकारी शुभ स्तुति की ॥ ३-१५ ॥

वह परा भगवती के चरण-कमलों में प्रेमरस से अत्यन्त पगी हुई निर्मल हृदय हो अद्भुत ज्ञान कलिक स्तोत्र का पारायण करने लगी ॥ १६ ॥

ज्ञानकलिकास्तोत्र

शिवे देवि संवित्सुधासागराऽऽत्मस्वरूपाऽसि सर्वान्तराऽऽत्मैकरूपा ।
न किञ्चिद्विना त्वत्कलामस्ति लोके ततः सत्स्वरूपाऽसि सत्येऽप्यसत्ये ॥१७॥
असत्यं पुनः सत्यमन्ये द्विरूपं द्वयाऽतीतमेके जगुः सर्वमेतत् ।
न ते तां विदुर्मायया मोहितास्ते चिदानन्दरूपा त्वमेवाऽसि सर्वम् ॥१८॥
क्षणानां क्रमैर्भिन्नरूपां धराद्यैर्मितामाहुरेके तमोमात्ररूपाम् ।
तमोदीप्तिसंभिन्नरूपाश्च शान्तस्वरूपां महेशीं विदुस्त्वां न तेऽज्ञाः ॥१९॥
शिवादिक्षितिप्रान्ततत्त्वावलिर्या विचित्रा यदीये शरीरे विभाति ।
पटे चित्रकल्पा जले सेन्दुतारानभोवत्परा सा त्वमेवाऽसि सर्वा ॥२०॥
अभिन्नं विभिन्नं बहिर्वाऽन्तरे वा विभाति प्रकाशस्तमो वाऽपि सर्वम् ।
ऋते त्वां चितिं येन नो भाति किञ्चित्ततस्त्वं समस्तं न किञ्चित्त्वदन्यत् ॥२१॥

हे कल्याणकारिणि देवि ! आप संविद्रूपी अमृतसागर सम्पन्ना आत्मस्वरूपिणी हैं, सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम की आत्मरूपा हैं, इस असत्य लोक में भी सत्य रूप के आपके विना किसी की भी सत्ता नहीं है इसी आपके सत्स्वरूप प्रभाव से ही हे सत्ये ! सृष्टि का सारा क्रियाकलाप है ॥ १७ ॥ कई असत्य को, इतर सत्य को, अन्य लोग विलक्षण सत् और असत् दोनों रूपों से तथा कोई सदसत् से अतीत इस सारे विश्व प्रपञ्च को कहते हैं। ऐसे ये लोग आपकी माया से मोहित हो वास्तविकसत्ता को नहीं जानते, आप ही चिदानन्दरूपा यह दृश्य जगत् सब कुछ हैं ॥ १८ ॥ क्षण आदि के क्रम से भिन्न रूप दीखने वाले पृथ्वी आदि के पर्दों को कई लोग तमोमात्र रूप में मानते हैं परन्तु तमोमात्र रूपवाली और तम (अन्धकार) को हटाने वाले प्रकाश सब में अनुस्यूत रूप वाली शान्त मूर्ति महेश्वरी आपको वे अज्ञ लोग नहीं जानते ॥१९॥

शिव तत्त्वसे पृथ्वी पर्यन्त जो छत्तीस तत्वों की पंक्ति है यह जिसके शरीरमें विचित्र आकृति धारणकर स्थित है, पट (वस्त्र) पर चित्र के समान उद्भासित, जल में आकाश के चन्द्र और तारागण के प्रतिविम्ब को रचने वाली आकाश के समान व्याप्त परा आप ही तो सब कुछ हैं ॥२०॥

अभेद रूप में अथवा भेद रूप में बाह्य अथवा अन्तर में प्रकाश की स्थिति हो अथवा अन्धकार जो भी सब पदार्थ हैं वे आपकी चेतन सत्ता के विना कुछ भी रूप में भान नहीं होते। अतः आप ही समस्त यह जागतिक प्रपञ्चहैं। आपको छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं है ॥ २१ ॥

निरुध्याऽन्तरङ्गं विलाप्याऽक्षसङ्गं परित्यज्य सर्वत्र कामादिभावम् ।
स्थितानां महायोगिनां चित्तभूमौ चिदानन्दरूपा त्वमेवका विभासि ॥२२॥
तथाऽन्ये मनः सेन्द्रियं सञ्चरञ्चाऽप्यसंयम्य तन्मार्गके जागरूकाः ।
स्वसंवित्सुधाऽऽदर्शदेहे स्फुरन्तं महायोगिनाथाः प्रपश्यन्ति सर्वम् ॥२३॥
निरुक्ते महासारमार्गेऽतिसूक्ष्मे गतिं ये न विन्दन्ति मूढस्वभावाः ।
जनान् तान् समुद्धर्तुमक्षाऽवगम्यं बहिःस्थूलरूपं विभिन्नं बिभर्षि ॥२४॥
तदाराधनेऽनेकमार्गान् विचित्रान् विधायाऽथ मार्गेण केनाऽपि यान्तम् ।
नदीवारि सिन्धुर्यथा स्वीकरोति प्रदाय स्वभावं नु स्वात्मीकरोषि ॥२५॥
तथा तासु मूर्तिष्वनेकासु मुख्या धनुर्बाणपाशाऽङ्कुशाऽढ्यैव मूर्तिः ।
शरीरेषु मूर्धेव ये तां भजेयुर्जनास्त्रैपुरीं मूर्तिमत्युत्तमास्ते ॥२६॥

अपने मन को एकाग्र कर, सारे इन्द्रिय पदार्थों की भावना को समेट कर एवं सर्वत्र काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड् विकारों को छोड़कर महोयोगियों की शून्यावस्था की स्थिति में उन लोगों की चित्तभूमि में चिदानन्द रूपिणी आप ही विशिष्ट रूप से भान होती हैं ॥ २२ ॥

और अन्य महानुभाव इन्द्रियों सहित मन के सञ्चार को सहज रूप से एकाग्र करने वाले महायोगीन्द्र लोग अपनी सम्वित् सुधाके दर्पण वाले देह में आपके स्फुरण मात्र को ही सब में अनुस्यूत देखते हैं ॥ २३ ॥

ऊपर प्रतिपादित अत्यन्त सूक्ष्म गति से जाने गये महासार मार्ग में जो मूर्ख प्रकृति वाले व्यक्ति गति करना नहीं जानते उन्हें इन्द्रियों से न दीखने वाले स्थूलरूप के अतिरिक्त बाह्य स्थूल रूप जो आकृति धारण से विभिन्न सा लगता है आप ही बनाती हैं ॥ २४ ॥

आपकी आराधना के अनेक प्रकार के विचित्र विचित्र मार्गों को बनाकर अनन्तर किसी भी मार्ग से बहने वाले नदियों के जल को समुद्र स्वीकार करता है उसी प्रकार किसी रूप से आराधक को अपना रूप देकर अपना बना लेती हैं ॥ २५ ॥

और उन अनेक मूर्त्तियों में मुख्य धनुष, बाण, पाश एवं अङ्कुश से सजी हुई मूर्त्ति ही सब रूपों में प्रधान है जो लोग उसकी आराधना करते हैं वे आप त्रिपुरा का साधना करने वाले पुरुषों में उत्तम हैं ॥२६॥

नान् दुःखसिन्धोः समुद्धर्तुकामा पथस्ताननेकान् प्रदिश्य प्रकृष्टान् ।
दयार्द्रस्वभावेति विख्यातकीर्तिस्त्वमेकैव पूज्या पराशक्तिरूपा ॥२७॥
सदा ते पदाब्जे मनःषट्पदो मे पिबन् तद्रसं निर्वृतः संस्थितोऽस्तु ।
इति प्रार्थनां मे निशम्याऽऽशु मातर्विधेहि स्वदृष्टिं दयार्द्रामपीषत् ॥२८॥
इतिसंस्तुत्य सा गौरी त्रिपुरां परमेश्वरीम् । स्तोत्रेण ज्ञानकलिकाऽऽख्येन ध्यानं समास्थिता ॥२९॥
अथसा ध्येयमात्राऽऽत्मरूपिणी समजायत । यदा तदा सा त्रिपुरा प्रत्यक्षीभवदम्बिका ॥३०॥
चक्रराजरथाऽऽरूढा सर्वाऽऽभरणभूषिता । सा चाऽमररमावाणीसव्यदक्षिणसेविता ॥३१॥
पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणलसद्बाहुचतुष्टया । बन्धूककुसुमाऽऽभासा चन्द्रचूडा त्रिलोचना ॥३२॥
कामेश्वराऽङ्कनिलया रत्नकौशेयवासिनी । ददर्श गौरीं ध्यायन्तीं ध्येयमात्राऽवशेषिणीम् ॥३३॥

मनुष्यों को अगाध संसाररूपी समुद्र से उद्धार करने की इच्छा से उन्हें अनेक श्रेष्ठ मार्गों का उपदेश देकर "दया से आर्द्र स्वभाव वाली" यह सुप्रसिद्ध नाम वाली आप ही अद्वितीय पराशक्ति रूप में पूज्य हैं ॥२७॥ सदैव ही आपके चरणकमलों के मकरन्द पान में आसक्त मेरा मन रूपी भ्रमर (भौंरा) खूब छककर रसपान कर निर्वृत हो जाय मेरी इस प्रार्थना को सुनकर हे मातः ! आप अतिशीघ्र अपनी कुछ दयाभरी दृष्टि मेरी ओर कर लें" ॥२८॥

इस प्रकार ज्ञानकलिका नामक स्तोत्र से त्रिपुरा परमेश्वरी का स्तवन कर वह गौरी उनके ध्यान में तत्पर हो गई ॥ २९ ॥ अनन्तर जब वह ध्येय मात्र से आत्मस्वरूपिणी बन गई तो अम्बिका त्रिपुरा प्रत्यक्ष हो गयी ॥ ३० ॥ चक्रराज के रथ पर आरूढ़, सम्पूर्ण आभूषणों से शोभित, अमर रमा (लक्ष्मी) और सरस्वती इन दोनों द्वारा बांये और दहिने पार्श्व में सेवित, पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण इन्हें चारों भुजाओं में धारण किये, बन्धूक पुष्प के समान पीतकान्तिधारिणी, चन्द्र का जूड़ा सिर में लगाये, तीन नेत्र वाली, सदाशिव के अङ्क (वाम भाग) में विराजी और रत्नों से सजे रेशमी वस्त्र धारण की हुई त्रिपुरा ने ध्येयमात्र में एकाग्रचित्त की हुई ध्यानमें स्थित गौरी को देखा ॥ ३१-३३ ॥

परिवारस्वानुचरकोलाहलशतैरपि । अप्रबुद्धां समालोक्य गौरीं तां त्रिपुराऽम्बिका ॥३४॥
चित्ताऽऽकर्षिणिकां शक्तिमवलोकयदम्बिका । अथ सा परमेशान्या विदित्वा वीक्षणाऽऽशयम् ॥३५॥
चकर्ष गौरी चित्तं तद्यद्ध्येये लीनमास्थितम् । ध्येयनिर्गतचित्ता सा किमेतदिति विस्मिता ॥३६॥
प्रेक्षाञ्चक्रे बहिर्दृष्टिमुन्मील्य नगकन्यका । दृष्ट्वा पराम्बिकां गौरी प्रणनामाऽतिहर्षिता ॥३७॥
बद्धाञ्जलिपुटा देवीं प्रवक्तुमुपचक्रमे । देवि संशाधि मां भृत्यां किं विधास्यामि साम्प्रतम् ॥३८॥
अग्रजः कमलाक्षो मां देहेन समयोजयत् । तत् त्वदाज्ञामहं मूर्ध्नाऽऽवहन्ती देहमास्थिता ॥३९॥
त्वद्विनिर्णश्च मे भर्ता तपस्येवाऽभिसंरतः । त्वदाज्ञापय यत् कार्यं मया तत् परमेश्वरि ॥४०॥
निशम्य प्रार्थनां गौर्याः प्राह सा परमेश्वरी ।
शृणु पार्वति यत्किञ्चिन्नाऽस्ति तेऽविदितं क्वचित् ॥४१॥
मदंशभूता यस्मात्त्वं न हास्यति तवेप्सितम् । तपसा विरतो देवः शिवस्त्वां परिणेष्यति ॥४२॥

अपने पार्षद अनुचर गण के विविध भांति के कोलाहल से भी प्रबोधित न हुई देख त्रिपुरा अम्बिका ने चित्ताकर्षिणी शक्ति की ओर देखा। अनन्तर चित्ताकर्षिणी ने भगवती के देखने के संकेत को जान जो गौरी का चित्त ध्येय रूप में लीन था उसे बलात् खींच लिया। जब ध्येय (जिसका ध्यान लगाया गया) चित्त हट गया तो वह अत्यन्त विस्मितचित्त हुई "यह क्या हुआ" इस प्रकार पर्वतराज कन्या ने नेत्र खो बाहर की ओर देखा। पराम्बिका को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर गौरी ने प्रणाम किया। अपने हाथ अञ्जलि बांध उसने निवेदन आरम्भ किया, "हे देवि! मुझ सेविका को आप आदेश दें मैं अब करूँ? मेरे बड़े भाई विष्णु ने मेरी देह का योग कर दिया तब मैंने आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर धारण किया ॥ ३४-३९ ॥

आपके द्वारा निश्चित किया हुआ मेरे पति अभी तक तपस्या में ही रत हैं इस पर मेरे करने योग्य जो हो हे परमेश्वरि! उसे आप कहिये" ॥ ४० ॥ गौरी की प्रार्थना को सुनकर परमेश्वरी ने कहा, "हे पार्वति! जो कुछ होने को है वह तो तेरे से छिपा नहीं है। तू मेरे अंश से प्रगटी है। अतः तू अपना अभिलषित कुछ है वह बिना प्राप्त किये नहीं रहेगी। तपस्या से विरत होकर देवाधिदेव शिव तुम्हारे साथ विवाह करेगा; शीघ्र

कुमारो भविता शीघ्रं सर्वलोकैकनन्दनः । त्वयाऽहं संस्तुता येन स्तोत्रेण नगनन्दिनि ॥४३॥
यस्मात्तच्छाक्तविज्ञानगर्भितं पठतां नृणाम् । ज्ञानदं ज्ञानकलिकास्तोत्रमित्यभिविश्रुतम् ॥४४॥
तस्मादस्तु मत्प्रसादात् प्रीता स्यां पठतां नृणाम् ।
इति गौरीं समाभाष्य जगामाऽन्तर्द्धिमम्बिका ॥४५॥
अथ गौरी प्रणम्याऽम्बां स्नात्वा सुरसरिद्वरे । पुनः सम्पूज्य तां मूर्तिं विसृज्य सलिले ततः ॥४६॥
भुक्त्वा प्रसादं सखिभिः सह पर्वतनन्दिनी । वनस्य शोभां प्रेक्षन्ती सुशीतलशिलातले ॥४७॥
शयाना पर्णशयने शृण्वन्ती सखिभाषितम् । तत्र काचित् सखी प्राह गौरीं प्रति तदा वचः ॥४८॥
शृणु गौरि त्वया चैतदविमृश्य कृतं ननु । पितरौ सम्परित्यज्य वृद्धौ त्वद्विरहाऽऽतुरौ ॥४९॥
वनेऽस्माभिर्महाघोरे समायाताऽसि तन्न सत् । त्वां विना तौ महादुःखदावाग्निमभिसङ्गतौ ॥५०॥
जीवितं जहीतः सत्यं शलभाविव पावकम् । श्रुत्वैवं सखिवाक्यं सा गूहन्ती स्वस्य वैभवम् ॥५१॥

सम्पूर्ण लोगों को आनन्द देने वाला कुमार जन्म लेगा । हे पर्वतपुत्रि ! तू ने जिस स्तोत्र से मेरी स्तुति की है क्योंकि वह शक्तिसम्बन्धी विज्ञान से परिपूर्ण है, उसे पढ़ने वाले मनुष्यों को वह ज्ञान देने वाला होगा, मेरी कृपा से विश्व में ज्ञानकलिका स्तोत्र इस नाम से प्रसिद्ध बनेगा । इसका पाठ करने वाले पुरुष के ऊपर मैं प्रसन्न होऊँगी ।" इस प्रकार गौरी को कह कर भगवती अम्बिका अदृश्य हो गई ॥४१-४५॥

अनन्तर गौरी परा अम्बा को प्रणाम कर सुरसरिच्छ्रेष्ठा गङ्गा में स्नान कर फिर उस मृण्मयी मूर्त्तिको सब उपचारों से पूजा कर उसे जल में विसर्जित कर पर्वतनन्दिनी सखियों सहित प्रसाद को ग्रहण कर वनकी रमणीय शोभा देखती हुई अत्यन्त शीतल शिला पर घास फूस के शयनस्थान पर अपनी सखियों के प्रेमालाप को सुनती हुई सो रही, तब एक सहेली ने गौरी को लक्ष्य कर कहा ॥ ४६-४८ ॥

"हे गौरि ! सुन तू ने यह सब विना विचारे ही किया, वृद्ध माता-पिता तेरे वियोग से व्याकुल हैं उन्हें छोड़कर हम सखियों के साथ इस महाघोर निर्जन वन में तू आ गई वह उचित नहीं । तेरे विना वे अत्यन्त क्लेशकारी दुःख की दावाग्नि से झुलसे, जैसे छोटे पतंगे अग्नि में अपने जीवन की आहुति लगा देते हैं वैसे ही अपने प्राण छोड़ देंगे यह सत्य है ।

पित्रोर्वियोगतो दीना रुदन्ती प्राह तां सखीम् । अवेहि सखि मद्वाक्यमहं पूर्वं पतिं शिवम् ॥५२॥
वृताऽस्मि मनसा तन्मे पित्रा मोघं कृतं ततः । युष्माभिरागता साकं वनमेतद्भयङ्करम् ॥५३॥
तौ रक्षतु परादेवी या मया पूजिता शिवा । एवमादि बहूक्त्वा सा निद्रामभिसमागता ॥५४॥

इति श्रीमदतिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये कामोपाख्यानान्तर्गतगौर्युपाख्याने गौर्यास्तपो-
द्वारा भगवत्या दर्शनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२५०६॥

इस प्रकार अपनी सहेली के वचन सुनकर अपनी विभूति को छिपाती हुई माता-पिता के वियोग से अत्यन्त दीन हो रोती हुई गौरी ने अपनी सखी से कहा, " हे सखि ! मेरे कथन को जान । मैंने अपने मन से पहले ही शिव को अपना पतिरूप में वरण कर लिया है उसे जब पिता ने व्यर्थ किया तो मैं तुम लोगों के साथ इस भयङ्कर वन में चली आई । मेरे द्वारा पूजी हुई परा देवी शिवा (मङ्गलमयी) उनकी रक्षा करे ।" इस प्रकार कई बातें कहती हुई वह सो गई ॥ ४६-५४ ॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य खण्ड के कामोपाख्यानान्तर्गत गौरी के उपाख्यान में गौरी को भगवती त्रिपुरा के दर्शन नामक तीसवां अध्याय सम्पूर्ण ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

हिमवता गौर्या अन्वेषणप्रयत्नववर्णनम्

यदा गौरी वनं याता ततः पश्चान्महीधरः । वनाद्गृहान्तरं प्राप्तस्तनूजादर्शनोत्सुकः ॥१॥
आयान्तं सम्मुखे याति प्रत्यहं तं तनूद्भवा । अनागतां तद्दिने तां चिन्तयामास भूधरः ॥२॥
नूनं नाऽऽयाति सा कस्मात्सम्मुखेऽद्य ममाऽऽत्मजा ।
गता क्वचिद्वा शारीरपीडिता वा भवेत् क्वचित् ॥३॥
अथ वा मयि रुष्टा स्यान्न रुष्टा मयि सा क्वचित् ।
किञ्चिदत्र निमित्तं स्यादिति चिन्ताऽऽकुलो नगः ॥४॥
प्रविश्याऽन्तर्गृहं मेनां प्रियां स समचष्टत । कुत्राऽऽत्मजेति सा पृष्टा प्रब्रवीत् पतिमद्रिपम् ॥५॥
सखीभिः सहिता याता क्वचित् क्रीडापराऽऽत्मजा ।
स्यात् सखीनां गृहे वाऽपि वाटिकायामथाऽपि वा ॥६॥

इकतीसवां अध्याय

जब गौरी सखियों समेत वन को चली गई तब उसके बाद नगाधिराज हिमाचल वन से अपने गृह में पुत्री को देखने की उत्सुकता से आया। प्रतिदिन वह पुत्री बाहर से आते हुए हिमाचल के सामने जाती रही उस दिन उसे आई नहीं देख वह सोचने लगा ॥ १-२ ॥

"अवश्य ही वह मेरी पुत्री किसी कारण से सामने नहीं आई, या तो वह कहीं बाहर गई हो, या उसके शरीर में कोई पीड़ा हो अथवा मेरे ऊपर कहीं रुष्ट हो (किसी अज्ञात कारण से) या मेरे पर किसी बात से रुष्ट भी न हो; कोई न कोई इस न आने में निमित्त अवश्य बना है।" इस प्रकार चिन्ता से व्याकुल हो नगाधिराज अपने अन्तःपुर में जाकर अपनी प्रियतमा मेना से बोला "बेटी आज कहा गई" यह पूछने पर पतिदेव हिमाचल से बोली, "वह अपनी सखियों सहित कहीं बाहर खेलती होगी, या तो वह अपनी सहेलियों के घर में होगी अथवा कहीं वाटिका में हो ॥ ३-६ ॥

तामानेतुं प्रेषयामि धात्रीमित्यब्रवीत् प्रिया। प्रेषिताऽपि तया धात्री विचित्याऽऽलिगृहाणि च ॥७॥
वाटिकां पुनरभ्येत्य न क्वचित् सेति साऽब्रवीत्। नगः श्रुत्वा वचो धात्र्याः शोकसंविग्नमानसः ॥८॥
हा हतोऽस्मीति निःश्वस्य तां विचेतुं बहिर्ययौ ।
ततोऽनुजीविभिः सार्धं विचिन्वन् तत्र तत्र हा ॥९॥
शोकाऽन्धः प्रस्खलन् भूयो मार्गयाणः समन्ततः। मृगयित्वा पुरे तस्मिन् गृहाणि च वनानि च ॥१०॥
समागता गृहे स्यादित्येवं भूयो गृहं ययौ । तत्राऽप्यनुपलभ्यैनां विललाप महीधरः ॥११॥
हा कन्ये कुत्र याता त्वं संहृता वाऽपि केनचित्।
हृता वा भक्षिता वा त्वं रक्षोभिर्वा वृकादिभिः ॥१२॥
न मां वृद्धं प्रियं तातं गता हित्वा कदाऽपि सा।
कश्चिन्न हन्ता तस्या वै गुणैः स्वीयैः शुभोदयैः ॥१३॥
वशीकृत्य स्थिता सा मद्रिपूनपि सर्वतः । तां विनाऽहं क्षणमपि जीवितुं नोत्सहे क्वचित् ॥१४॥

उसे लिवाने को धाय को भेजती हूँ।" इस प्रकार उसका स्त्री (मेनका) ने कहा। धात्री का रानी ने भेजा तो वह उसकी सहेलियों के घरों को खोज कर फिर वाटिका में जाकर वहाँ भी (गौरी को) न पा लौटकर बोली, "वह कहीं भी नहीं मिली।" पर्वतराज धाय का कथन सुनकर शोक में अत्यन्त व्याकुल हो "हा हन्त! मैं मारा गया" यह कह दीर्घ निःश्वास लेकर उसे खोजने के लिये बाहर गया। अपने सेवकगण के साथ अन्वेषण करते हुए स्थान-स्थान पर शोकसे अति विकल हो इन्द्रियों से स्खलित सा गिरता पड़ता बारम्बार चारों ओर खोजते हुए नगर में, गृहों और बाहर वनों में खोजकर "सम्भवतः इस घरमें आई हो" इस प्रकार सोचता प्रत्येक गृह में गया। वहाँ भी उसे न पाकर हिमाचल विलाप करने लगा ॥७-११॥

"हे पुत्रि! तू कहां चली गई? क्या किसी ने तुझे मार डाला या तुम्हारा अपहरण कर लिया? या राक्षस अथवा वन्य भेडिया आदि हिंसक जंतुओं ने तेरा भक्षण कर लिया? कभी भी वह मुझ वृद्ध पिता को छोड़कर नहीं गई, कोई भी उसके शुभ के जनक गुणों से मारने वाला नहीं; वह तो मेरे शत्रुओं को भी सब ओर से वश में करनेवाली है। उसके बिना मैं एक क्षण भी कहीं पर जीवन धारण नहीं कर सकता ॥१२-१४॥

शस्त्रेण कालकूटेन तथोद्बन्धेन केन वा। अग्निना वाऽपि हास्यामि प्राणान्नाऽस्त्यत्र संशयः १५॥
अहो मृषोक्तं भवति दैवतानामपि क्वचित्। यदेनां प्राह दैवज्ञो मम मानप्रवर्द्धिनीम् ॥१६॥
अस्या भर्ता सर्वसेव्यः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः। स ते कीर्तिं सर्वलोके प्रकृष्टां प्रविधास्यति ॥१७॥
इत्यादिवचसां तेषां मृषात्वं न कथं भवेत्। इत्येवं विलपन् शैलः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥१८॥
अथ तं तादृशं वीक्ष्य नृपं मन्त्रिपुरोगमाः। उत्थाप्याऽश्वासयाञ्चक्रुस्समाधानवचोगणैः ॥१९॥
नृपते मा त्यज धृतिमापत्सु धृतिमुत्तमाम्। न त्यजन्ति महात्मानो धृतिरापत्सखा मतः ॥२०॥
आपत्सु धैर्यत्यागं वै प्राहुः कापुरुषव्रतम्। तस्माद्धैर्यं समालम्ब्य यत बुद्ध्यनुसारतः ॥२१॥
एवं प्रबोधितोऽमात्यैरुत्थाय मन्त्रिभिः सह । यावदन्वेषणोद्युक्तस्तावच्चारः समाययौ ॥२२॥
वर्द्धयित्वा शैलराजं प्रणतः प्राह वै वचः । महाराज वयं दिक्षु तां मार्गितुमभिद्रुताः ॥२३॥

यदि वह न मिली तो किसी शस्त्र से, कालकूट विष से अथवा फांसी के फन्दे से या अग्नि में प्रवेश द्वारा अपने प्राणों को छोड़ूँगा इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १५ ॥

अहो ! कभी देवगण का कहा भी मिथ्या होता है ? दैवज्ञ (ज्योतिषी) ने मेरे गौरव को बढ़ाने वाली इस पुत्री के प्रति कहा था कि सर्वज्ञ, सबके सेवन योग्य (भजनीय) पुरुषोत्तम इसके पति होंगे वह (गौरी) लोक में तेरी अत्यन्त ऊँची कीर्त्ति फैलायेगी ॥ १६-१७ ॥ उनके इस प्रकार के और भी वाक्य कैसे मिथ्या हों ?" इस तरह विलाप करता हुआ शैलपति हिमालय मूर्च्छित हो भूमि पर गिर गया ॥ १८ ॥

अनन्तर मन्त्रीगण प्रमुख व्यक्तियों ने इस प्रकार मूर्च्छाग्रस्त देख उसे उठाकर कई प्रकार के समाधानपूर्ण वचनों से हिमाचल को धैर्य बंधाया ॥१९॥ "हे नृपते ! आपत्ति में धैर्य को न छोड़ें; महानुभाव पुरुष गाढ़े समय में अपने धैर्य को छोड़ता है उसे विद्वान् लोग कायर लोगों का व्रत कहते हैं। इसलिये धैर्य धारण कर अपने बुद्धि बलोदय के अनुसार उसे ढूँढने का प्रयत्न कीजिये" ॥ २०-२१ ॥

इस प्रकार अमात्यों द्वारा समझाने-बुझाने से मन्त्रियों के साथ जैसे ही उठकर खोजने को तैयार हुआ तभी एक दूत आ गया ॥२२॥ उसने शैलराज को नाना सम्मानयोग्य सम्बोधनों से कह कर प्रणाम कर कहा, "हे महाराज ! हम लोग नाना दिशाओं में उसे खोजने को गये, वहाँ उत्तर दिशा की ओर बड़े वन की ओर जाने वाली एक पगडण्डी है

तत्र प्रागुत्तरस्यां वै महारण्यप्रवेशिनी । अस्त्येकपदिका याता तयाऽरण्यं कुमारिका ॥२४॥
तत्पदाऽङ्कमुपालक्ष्य जानीमो वयमद्रिप । अन्यासाञ्च चतस्रृणां लक्षितानि पदान्यपि ॥२५॥
नगरोपचतस्रस्ताः कन्या न सन्ति कुत्रचित् । दारिकायास्तव विभो प्रेयस्योऽतितरां हिताः ॥२६॥
तथैकपद्यया वनं गताश्चाराः सहस्रशः । मार्गितुं राजपुत्रीं तां सर्वतो मार्गकोविदाः ॥२७॥
तत्सन्देशहरश्चाहं सम्प्राप्तस्त्वत्पदाऽन्तिकम् । प्राप्यैवं चारवचनं मुमूर्षुरिव सद्रसम् ॥२८॥
हारं मणिमयं तस्मै सम्प्रहृष्टो ददौ द्रुतम् । अथ द्रुततरं शैलः प्रययौ तेन वर्त्मना ॥२९॥
चारप्रदिष्टेन वनं गहनं भीमसन्निभम् । वृक्षैर्गुल्मैर्लताभिश्च महासालैर्भयानकैः ॥३०॥
निचितं झिल्लिकारावैर्झङ्कृतं भीतिवर्धनम् । समालोक्य शैलराजः पर्यतप्यत दुःखितः ॥३१॥
अहो कष्टमिदं दुर्गं वनं सा मम कन्यका । भीरुः कथं प्रविष्टा स्यात् सुकुमारशरीरिणी ॥३२॥
अयस्कल्पैः सुनिशितैः कण्टकैर्वर्त्म सञ्चितम् । कथं सा मृदुपादाभ्यां संयाता सखिभिः सह ॥ ३॥

उसी से कुमारी गौरी गयी है; हे गिरिराज ! हम उसके पैरों के चिन्हों से जानते हैं, (उसके साथ ही) अन्य चारों सखियों के पैरों के चिन्ह भी देखे गये हैं ॥२३-२५॥

नगर में वे चारों कन्यायें भी कहीं नहीं दीखती; हे प्रभो ! आपकी पुत्री की वे बालिकायें अत्यधिक प्रेयसी और हितैषिणी थीं। तब उसी एकपदिका (पगडण्डी) से सब ओर के मार्गों को जानने वाले हजारों दूत राजपुत्री को खोजने को बन में गये। उसका सन्देश लानेवाला मैं आपके पास आया हूँ।" उस दूत के सन्देश को सुन मानो मरते हुए को अमृत मिल गया इस रूप में हिमाचलको प्रसन्नता हुई। उसने अत्यन्त प्रसन्न हो अपना मणिमय हार उपहार रूपमें दूतको दे दिया। अनन्तर शैलराज उस मार्गसे शीघ्र गया। आगे-आगे दूत चलता हुआ मार्ग बताता था। उसी मार्ग सेउ से अत्यन्त भीमाकार गहन वृक्षों, गुल्मों, लताओं और अत्यन्त भयानक ,विशाल साल के वृक्षों से परिपूर्ण, झिल्लिका झींगुरों के नाद से सब दिशाओं को झंकारते हुए, भय को बढ़ाने वाले इस वन को देख पर्वतराज अत्यन्त दुःखित हो मन में परिताप करने लगा। अहो ! अत्यन्त कष्ट का विषय है कि इस दुर्गम वनमें वह मेरी कन्या सुकुमार अङ्गों वाली वह डरपोक बाला कैसे इस भीषण स्थान में घुसी होगी ? ॥२६-३२॥

इस में अत्यन्त तीखे लोहे के समान बने काटों से भरे मार्ग को वह कोमल पैरों से अपनी सखियों के साथ कैसे

मया कदाचिदपि नो रोषिता क्वाऽपि तत् कुतः ।
वनं प्रविष्टा सखिभिः केन वा हेतुना भवेत् ॥३४॥
एवम्भूते घोरतमे श्वापदैर्मांसभोजनैः । समाकीर्णे कथं जीवेद्भयेनैव मृता भवेत् ॥३५॥
श्वापदैर्भक्षिता वा स्यात् दष्टा स्याद्वाऽपि पन्नगैः ।
व्यापादिता वा भल्लूकैर्हृता वा वनचारिभिः ॥३६॥
नष्टा सा सर्वथैवाऽद्य न तां पश्याम्यहं पुनः । इत्येवं विलपन् भूयः स्खलंश्चाऽपि पदे पदे ॥३७॥
आतपैरभितप्ताऽङ्गः पतितोऽभून्महीतले । अथाऽनुयायिभिः शीघ्रमुत्थाप्य तरुमूलतः ॥३८॥
निवेशितः शीततोयैरभिषिक्तश्च जीवितः । उपलभ्य ततः प्रज्ञामुन्मील्य नयने गिरिः ॥३९॥
शोकसंविग्नहृदयः कन्यामेवाऽनुशोचत । ततः क्षणेन सम्प्राप्तश्चारः पर्वतसन्निधिम् ॥४०॥

पाकर गई ? मैंने कभी भी कहीं उसे रुष्ट नहीं किया; तब क्यों वह सखीगण के साथ वन में चली गई ? अथवा क्या कोई और कारण भी हो सकता है ? ॥३३-३४॥

इस प्रकार हिंसक, मांसखानेवाले चौपाये जन्तुओं से भरे पूरे घोरतम वन में वह कैसे जीवित होगी ? कहीं भय से ही कातर वह मर गई होगी, उसे या तो इन वन्य चतुष्पाद हिंसक जन्तुओं ने खा लिया, अथवा सर्पों ने उसे काट लिया हो, या भालुओं ने मार डाला हो, अथवा वन में रहनेवाले, विचरणकरने वाले आदिवासियों ने सम्भवतः उसे हर लिया हो ॥ ३५-३६ ॥

आज तो वह सर्वथा ही गतप्राण हो नष्ट हो गई होगी । उसे अब मैं फिर न देख पाऊँगा" इसप्रकार बारम्बार विलाप करते तथा पद पद पर लड़-खड़ाते हुए सूर्य के घाम से तप्त एवं क्लान्त देह हुआ पर्वतराज भूमि पर पड़ गया । अनन्तर उसके परिचारकों ने वृक्ष के तले उठाकर ठण्डे जल से शरीर को धोया और वह फिर स्वस्थ हो गया । पर्वतराज ने तब चेतना (संज्ञा) पाकर अपने दोनों नेत्र खोलकर शोक से व्याकुलहृदय हो अपनी कन्या का ही

वर्धयित्वा प्रणम्याऽह हर्षयन् पर्वताऽधिपम् । पर्वतेश्वर! कन्या ते इतः क्रोशचतुष्टये ॥४१॥
चारैरासादिता देवनदीतीरे सखीवृता । प्रसुप्ता तत्र तां सर्वे चारा रक्षन्ति सर्वतः ॥४२॥
अहं विज्ञप्तुमायातः स्वामिपादसमीपतः । द्रष्टुमर्हसि तां शीघ्रं गौरीं हृदयनन्दिनीम् ॥४३॥
श्रुत्वा चारस्य वचनममृतस्यन्दिपेशलम् । उत्थितः सहसा देहः प्राणानिव सुसङ्गतः ॥४४॥
ययौ द्रुतं वनं चारदर्शितेनैव वर्त्मना । स गत्वा ददृशे कन्यां सुतां सखिगणैः सह ॥४५॥
उत्थाप्याङ्कं समारोप्य मूर्ध्न्युपाघ्राय शैलराट् ।
आनन्दाऽश्रूणि मुञ्चानः कन्यां स्वां पर्यपृच्छत् ॥४६॥
वत्से ! केन निमित्तेन वनमेतत् समागता । नाऽपराद्धं मया क्वाऽपि त्यक्तोऽहं केन हेतुना ॥४७॥
माता ते त्वां विना सद्यो जीविता स्यात् कथञ्चन ।
वद त्वमिह सम्प्राप्ता हेतुना केन तद्द्रुतम् ॥४८॥

शोक किया। तत्पश्चात् एक क्षण में ही एक दूत पर्वतराज के निकट आया उसे भली-भांति अभिनन्दन कर प्रणाम कर अति प्रसन्नता के वृत्त कहे। "हे पर्वतेश्वर ! आपकी पुत्री गंगा के किनारे अपनी सखियों के सहित यहाँ चार कोश पर आपके दूतों द्वारा सोती हुई प्राप्त की गई। उसकी सब प्रकार दूतगण रक्षा करते हैं ॥ ३७-४२ ॥

मैं आप श्रीमान् के पास उसका वृत्तान्त कहने को आया हूँ आप शीघ्र ही हृदय को आनन्दित करने वाली गौरी को देख सकते हैं" ॥४३॥ दूत के अमृत के सार से सने मधुर वचन सुनकर जैसे देह में प्राणों का सञ्चार होता है वैसे ही पर्वतराज अकस्मात् उठ खड़ा हुआ ॥४४॥ शीघ्र ही चार (दूत) के दिखाये मार्ग से वह आगे गया। वहाँ जाकर कन्या को अपनी सखियों के साथ सोते देखा ॥ ४५ ॥

शैलराज उसे उठाकर गोद में बिठा शिर को सूँघ कर आनन्द के आसुओं से विह्वल हो पुत्री से बोला, "हे वत्से ! तू किस उद्देश्य से इस वन में आई है ? मैंने तो कोई अपराध नहीं किया, मुझे किस कारण छोड़ दिया ? तेरी माता किसी तरह तेरे बिना जीती हुई है, मुझे शीघ्र बता, तू किस कारण से यहाँ आई ?" ॥४६-४८॥ इस प्रकार पिता के शोकोद्गार पूर्ण वचन सुनकर आये हुए लोगों को सर्वसुलभ बालभाव

एवं पितुः समाकर्ण्य शोकोद्गारयुतं वचः । प्राकृतं भावमाश्रित्य मोहयन्तीं समागतान् ॥४९॥
तात सत्यं शृणु वचः प्रब्रवीमि तवाऽग्रतः । मया त्रिलोचनः शम्भुर्मनसा संवृतः पतिः ॥५०॥
त्वया तदन्यथयितं देवर्षेर्वचनान्ननु । तस्माद्वनं सङ्गताऽस्मि प्राणानुत्स्रष्टुमुद्यता ॥५१॥
न हि पतिं वृणे कृष्णं भ्रातरं भगिनी इव । यदि दास्यसि मां तात शम्भवे सत्यतो वद ॥५२॥
तदागच्छामि नगरे वने नो चेद्वसाम्यहम् । इत्युक्त्वा समुपाश्लिष्य पितरं सा रुरोद ह ॥५३॥
अयं शैलपतिः कन्यां रुदन्तीं दीनमानसः । समाश्वास्य तदा प्राह चाश्रूणि परिवर्तयन् ॥५४॥
वत्से! त्वं न विजानासि शिवं नाम्ना शिवं न नु ।
अशिवाऽऽकारचारित्रः श्मशानस्थोऽहिभूषणः ॥५५॥
चर्मवासाः कपालस्रग्भूषितो भूतसेवितः । श्वित्रवत्पाण्डुरतनुः क्रोधनश्चाऽव्यवस्थितः ॥५६॥
पुरा दाक्षायणी तस्य भर्तुर्दुश्चरितैः सती । शोकोपहतचित्ता सा भस्मीभूता पितुर्गृहे ॥५७॥

मोहित करती हुई गौरी बोली, "हे पिताजी ! आप मेरा कहना सुनिये, मैं आपके सामने सत्य-सत्य कहती हूँ, मैंने त्रिलोचन शंकर को मन से अपना पति वरण कर लिया । आपने उसे देवर्षि नारद के कथन से उलट दिया; इसलिये मैं अपने प्राणों को छोड़ने के लिये तैयार हो वन में आई हूँ ॥ ४९-५१ ॥

जैसे भाई को बहिन पति नहीं बना सकती मैं विष्णु को पति नहीं वरण करती । हे तात ! यदि आप मुझे शम्भु को देंगे इसे सत्य-सत्य बतलावें तब तो मैं आऊँ नहीं तो वन में वास करती हूँ ।" इस प्रकार कहकर पिता को गाढी बाँहभर कर गौरी रोने लगी ॥ ५२-५३ ॥

यह दयनीय मानसिक अवस्था वाला हिमाचल रोती हुई कन्या को आश्वासन देकर तब आंसुओं को पोंछते हुए बोला, "हे पुत्रि ! तू शिव को नहीं जानती वह क्या मङ्गलमय है ? उसकी अमङ्गलकारिणी आकृति और शरीर की चेष्टायें हैं । श्मशान में रहने वाला सर्प का आभूषण धारण करने वाला, व्याघ्रचर्म का वस्त्र पहननेवाला कपाल (मुण्ड) माला से भूषित, भूतप्रेत से अनुसेवित, कोढी के समान पीले शरीर वाला, क्रोधी और अव्यवस्थित जीवन बिताने वाला वह है ॥ ५४-५६ ॥

विष्णुः सर्वगुणोपेतः पीताऽम्बरसुशोभितः। वनमालाकौस्तुभाद्यैरलङ्कृततनुः शुभः ॥५८॥
निसर्गसुगुणैर्लक्ष्मीर्यं वव्रे पतिमुत्तमा। स ते योग्यः पतिर्वत्से न शिवस्ते सदृग्गुणः ॥५९॥
श्रुत्वापितुर्वचः प्राह गौरी रोषाऽरुणेक्षणा।
तात मे सैव (?) भर्ताऽस्तु शुभो वाऽप्यशुभोऽपि वा ॥६०॥
नाऽन्यं वृणे शिवात् कञ्चिद्भर्तारमपि सद्गुणम्।
निदानमत्र दिष्टं मे नाऽन्यद्वक्तुं त्वमर्हसि ॥६१॥
श्रुत्वेत्थं तनुजा वाक्यं तद्विश्लेषसुकातरः। ओमित्युक्त्वा समादाय कन्यां स्वनगरं ययौ ॥६२॥
अथ तां पुत्रिकां दातुं शिवायाऽचिन्तयद्गिरिः।सस्मार नारदं भूयः पर्वतेन्द्रः सभास्थितः॥६३॥
विदित्वा नारदस्तत्र तेजोराशिः समाययौ। गिरिस्तं पूजयामास शास्त्रदृष्टेन वर्त्मना ॥६४॥

प्राचीन समय में दक्ष की पुत्री सती ने भर्त्ता के दुश्चरित्रों से शोकाभिभूत हो पिता के घर में अपने को जलाया ॥५७॥ इसके विपरीत श्रीविष्णु सम्पूर्ण गुणों से युक्त, पीत वस्त्र धारण करने से अत्यन्त सुन्दर लगने वाला, वनमाला, कौस्तुभ आदि सुन्दर आभूषणके योग्य वस्तुओं से सज्जित सुन्दर अङ्गकान्ति वाला, शुभका जनक (मङ्गलमय) है। उसके सहज सद्गुणों से उत्तम लक्ष्मी ने उसे पति रूप में वर लिया। हे वत्से ! वह ही तेरे योग्य पति है; शि किसी प्रकार भी तेरे समान गुण वाला नहीं है" ॥ ५८-५९ ॥

पिता के वचन सुन गौरी ने क्रोध से लाल आँखें कर कहा, "हे तात ! मेरा वह शङ्कर पति हो भले ही वह शुभ हो अथवा अशुभ ॥ ६० ॥ मैं शिव के अतिरिक्त किसी दूसरे सद्गुण से सम्पन्न भी व्यक्ति को अपना पति नहीं वरण करूंगी। मुझे इसका कारण भाग्य ही लगता है अन्य आप कुछ भी मुझे मत कहिये" ॥ ६१ ॥ इस प्रकार गौरी के बांहभर कर मिलने से अत्यन्त विह्वल हो हिमाचल पुत्री के वाक्य सुनकर "हाँ" भरकर पुत्री को लेकर अपने नगर में चला गया ॥ ६२ ॥

अनन्तर पर्वतराज ने अपनी पुत्रिका शिव को देने के लिये विचार किया, फिर उसने सभा में बैठे नारद का स्मरण किया ॥ ६३ ॥ उसे जानकर तेजोमूर्त्ति देवर्षि वहाँ आ गये। पर्वतराज ने शास्त्रविधान की रीति मुनि का पाद्य एवं अर्घ्य आदि से पूजन किया ॥ ६४ ॥ उसके अभिवादन को स्वीकार कर नारद ने पर्वतराज को

स्वीकृत्य तत्सपर्यां स प्राह पर्वतभूपतिम् । पर्वतेश ! स्मृतः किन्ते कारणं तत् प्रचक्ष्व मे ॥६५॥
मया ते वाञ्छितं यत्तत्साधितं शुभमूर्जितम् । जामातृत्वे रमाकान्तः पुरुषः प्रार्थितो मया ॥६६॥
अङ्गीचकार भगवांस्तव भाग्यवशाच्च नु । श्रुत्वेत्थं नारदवचो हिमाद्रिर्भीतमानसः ॥६७॥
बद्धाञ्जलिः क्षमस्वेति प्रार्थयामास तं मुनिम् ।
मुने! हि ते प्रतिश्रुत्य कन्यां दास्यामि विष्णवे ॥६८॥
इत्यहं वितथीभूतो निजभाग्यविपर्ययात् । यदा ते विष्णवे कन्यां दास्यामीति प्रतिश्रुतम् ॥६६॥
ततः परदिने कन्या मम रुष्टा सखीगणैः । प्रविष्टा विपिनं घोरं मृत्युवक्त्रमिव स्थितम् ॥७०॥
आसादिता कथञ्चित् सा समानीता च यत्नतः ।
रमापतिं पतिं नैव सर्वथा साऽभिवाञ्छति ॥७१॥
प्रमथेशं तु भर्तारं दौर्भाग्यादीहति स्वयम् । मया किं तत्र कर्तव्यं दुर्भाग्येन मुनीश्वर ! ॥७२॥
अगाधे घोरविपदि मग्नोऽहं सागरे ननु । अत्र त्वमेव मां शीघ्रं समुद्धर्तुमितोऽर्हसि ॥७३॥

कहा, "हे नगपते ! मुझे तू ने क्यों स्मरण किया ? उसका कारण मुझे बता ॥ ६५ ॥

मैंने तेरा इच्छित, मङ्गलकारी, उन्नति कराने वाला, जो कार्य था वह पूर्ण कर दिया । तेरे जामाता बनने के लिये उपयुक्त पुरुष रमाकान्त श्रीविष्णु को मैंने प्रार्थना कर दी ॥६६॥ तेरे सद्भाग्य के कारण ही श्रीविष्णु ने उसे स्वीकार कर लिया ।" इस प्रकार भय से आतङ्कित मन वाले हिमाचल ने नारद की वाणी सुन हाथ जोड़कर मुनि से प्रार्थना की, " हे महाराज ! मुझे क्षमा करें । हे मुने ! आपके सामने मैंने वचन दिया कि अपनी कन्या को श्रीविष्णु को दूंगा; इस प्रकार मैं अपने भाग्य के विपरीत होने से झूठा हो गया हूँ । जब मैंने आपके सामने प्रतिज्ञा की कि अपनी पुत्री को श्री विष्णु को दूंगा तब उसके दूसरे दिन ही मेरी कन्या रुष्ट हो अपनी सखियों सहित घोर वन, जो मृत्यु का साक्षात् मुख है, उसमें तपस्या करने चली गई । किसी प्रकार वह (खोजकर) प्राप्त की गई और बहुत समझा-बुझा कर लाई गई । वह रमा के स्वामी विष्णु को सर्वथा ही नहीं चाहती ॥ ६७-७१ ॥

वह प्रमथ भूतगण के ईश्वर शिव को दुर्भाग्यवश स्वयं पति वरणकर चाहती है । हे मुनीश्वर ! ऐसे दुर्भाग्य के

पर्वतस्य निगदितं श्रुत्वेत्थं देवतापसः । द्रष्टुं गौर्यास्तु माहात्म्यं चुक्रोधाऽतितरां तदा ॥७४॥
सस्मार पार्षदान् विष्णोर्विजयादींस्तदा मुनिः ।
स्मृतमात्रास्तु ते तत्र सम्प्राप्ता विष्णुपार्षदाः ॥७५॥
प्रोवाच विजयं तत्र नारदो मन्युना ज्वलन् ।
एष शैलकुलाऽङ्गारः स्वामिने मे निजात्मजाम् ॥७६॥
ददामीति प्रतिश्रुत्य परिभावयितुं हि नः । समीहत्यधमस्तस्माद्बद्ध्वैनं तत्तनूद्भवाम् ॥७७॥
नय शीघ्रं मुररिपुः पाणिमस्याः प्रतीच्छतु । श्रुत्वैवं नारदवचो विजयः पार्षदेश्वरः ॥७८॥
जित्वा पर्वतराजन्यं समरे बन्धयद्दृढम् । अथ सर्वे पर्वतस्य पौरा भीता विचुक्रुशुः ॥७९॥
हा हेति धावमानाश्च सस्त्रीबालाः सहस्रशः । तावत् कन्यां समानेतुं विविशुर्हरिपार्षदाः ॥८०॥
मेना पुत्रीं समादाय पुरोहितमुपागमत् । काश्यपः पर्वतगुरुर्दृष्ट्वा नगपतिप्रियाम् ॥८१॥

साथ मुझे क्या करना चाहिये ? अवश्य ही मैं अगाध घोर विपत्ति के सागर में डूब चुका हूँ, इस विषय में आपही मेरा अति शीघ्र उद्धार कर सकते हैं" ॥ ७२-७३ ॥

तब देवर्षि नारदने पर्वतराजके इस प्रकार वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो गौरी के महत्त्व गौरवको देखने के लिये विष्णु के पार्षदगण विजय आदि का स्मरण किया। स्मरण करने से ही वे विष्णु के पार्षदगण वहाँ चले आये, विजय से नारद ने क्रोधसे कहा, "यह शैलवंश का अङ्गार, हिमाचल "मेरे स्वामी को अपनी पुत्री को दूगा" इस तरह प्रतिज्ञा कर हमें नीचा दिखाने को प्रयत्नशील है। इसलिये इसे बाँध कर इसकी पुत्री को जल्दी ले चलो; श्रीविष्णु इसका पाणिग्रहण करें।" इस प्रकार नारद के वचन सुनकर पार्षदों के स्वामी विजय ने पर्वतराज को युद्ध में जीतकर उसे कसकर बांध लिया। अनन्तर पर्वत की सब नागरिक प्रजा भय से हाहाकार मचाने लगी; हजारों की संख्या में वे अपने बालकों और स्त्रियों को लेकर "अहो ! अत्यन्त ही अत्याचार हो गया" इस तरह पुकारते हुए दौड़ने लगे। तब तक हरि के पार्षद गण कन्या को लाने के लिये राजभवन में घुसे। मेना अपनी पुत्री को लेकर कुल-पुरोहित के यहाँ गई। पर्वतकुलगुरु काश्यपजी ने पर्वतराज की पत्नी को अपने हाथ में पुत्री को लिये उसकी रक्षा करने वाले को ढूँढती हुई रोती हुई भय से अत्यन्त विकल "रक्षा करो रक्षा करो" इस प्रकार

हस्ते गृहीत्वा तनुजां त्रातारमभिवाञ्छतीम् । रुदन्तीं रक्ष रक्षेति ब्रुवाणां भयविह्वलाम् ॥८२॥
माभैर्वत्से समायाहीत्युक्त्वा स्वस्य गृहाऽन्तरम् ।
प्रवेश्यतां समाश्वास्य पार्वतीं प्राह काश्यपः ॥८३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानान्तर्गतगौर्युपाख्याने-हिमवतो नारदेन कन्यायाः प्रतिश्रुतवरविषये विपर्ययकरणे रोषाद् विष्णुदूतानां हिमालय-बन्धनवर्णनं नामैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२५८८॥

कहती हुई देखकर "हे वत्से ! डरो मत" ऐसा कहकर अपने घर में प्रविष्ट कर उसे सब प्रकार सान्त्वना देकर पार्वती से कहा ॥ ७४-८३ ॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड के कामोपाख्यान में गौरी के विवाह को लेकर हिमाचल के द्वारा नारद को सारा वृत्त बताने पर विष्णु के पार्षदों का पर्वतराज को बांध लेना और उसकी पत्नी का कुलगुरु काश्यपजी के पास पुत्री के साथ रक्षा के लिये जाने के प्रकरणवाला इकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

पुरोहितकथनानन्तरं मेनया गौर्याः सम्प्रार्थनवर्णनम्

लीलयाऽलं महादेवि किं रोदिषि भयार्तवत् । जानेऽहं न च ते भीतिरस्मान्मोहयितुं हि तत् ॥१॥
ततो मेनां भयार्तां तां प्राह पर्वतराट् प्रियाम् ।
शृणु मेने मोहिताऽसि देव्या संस्मर पूर्वजम् ॥२॥
वृत्तं यत्तपसाऽऽराध्य देवीं प्राप्ताऽसि नन्दिनीम् । तामेव शरणं याहि मया सह नगप्रिये ! ॥३॥
श्रुत्वा पुरोहितवचः स्मृत्वा कन्यां पराम्बिकाम् । प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव विविधैः स्तवैः ॥४॥
लोकानां जनयित्री त्वं सर्वलोकमहेश्वरी । मत्तनूद्भवत्वं यत्ते नटानां वेषवत्तु तत् ॥५॥
अहो धन्यतमा लोके मत्तो नाऽन्यो हि विद्यते । अनन्तपुण्यैश्चाऽदृश्या सा मे यस्मात्तनूद्भवा ॥६॥

बत्तीसवां अध्याय

"हे महादेवि ! तू भय से आकुल हुई सी क्यों रोती है ? अपनी लीला को दिखाने से बस कर (अब समेट ले) मैं यह जानता हूँ कि तुझे कोई भय नहीं है यह सब तो हमलोगों को मोहने के लिये ही है ।" तब डरी हुई पर्वतराज की भार्या मेना से (पुरोहित) बोले "हे मेने ! सुन तू मोहित हो गई है; देवी के लिये अपने पूर्व के वृत्तान्त को याद कर जिस तपस्या से देवी की आराधना कर इस आनन्दकारिणी पुत्री को प्राप्त किया है हे नगाधिराजप्रिये तू मेरे साथ उसी परादेवी की शरण में चल" ॥१-३॥

राजपुरोहित के वचन सुन कर मेना ने कन्या को परम्बा रूप में याद कर भूमि पर दण्डवत् प्रणाम कर नानाविध स्तोत्रों से स्तुति की ॥४॥ "तू सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी लोकों की उत्पादनकर्त्री है । तुम्हारा मेरी पुत्री होने का जो भाव है वह तो नटों का वेष बनाने के समान है ॥५॥ अहो ! संसार में मेरे से अधिक धन्यभाग्य दूसरी माता नहीं कि अनन्त पुण्यों द्वारा यह आकाश रूप से अदृश्य रहने वाली महाविभूति मेरी पुत्री रूप आविर्भूत हुई ॥ ६ ॥

अथ संस्तुत्य बहुधा काश्यपः प्राह शङ्करीम् । मातर्न ते स्तुतिं कर्तुं समर्थोऽह्यहिराडपि ॥७॥
तस्मात्त्वां किमहं स्तोष्ये प्रसीद परमेश्वरि । मातरं त्राहि संत्रस्तां दीनां पर्वतराट्प्रियाम् ॥८॥
प्रार्थितेत्थं तदा गौरी निजं रूपं समास्थिता । कालमेघनिभा सिंहवाहना भूषणोज्ज्वला ॥९॥
आयुधैर्ज्वलितैर्ज्वालामालापरिवृतैर्युता । त्रिनेत्रा स्वर्णवसना बालचन्द्राऽवतंसिनी ॥१०॥
निर्जगाम गृहात्तस्मात्समुद्राद्भानुमानिव । अथ तां नारदो दृष्ट्वा प्रणम्य विविधैः स्तवैः ॥११॥
अस्तूयत परां देवीं गौरीं शङ्करवल्लभाम् । एतस्मिन्नन्तरे विष्णुपार्षदाः पर्वतेश्वरम् ॥१२॥
बद्ध्वा तस्याऽऽत्मजां गौरीं ग्रहीतुं तत्र चाऽगमन् ।
तान् दृष्ट्वा पार्वती क्रुद्धान् पितरञ्च पराजितम् ॥१३॥
आक्रन्दतश्च तद्भृत्यानीषत्क्रोधारुणाऽभवत् । तद्देहादरुणा देवी निर्जगाम भयङ्करी ॥१४॥
ज्वालामुखी कालरात्रिस्त्रिशीर्षा च त्रिलोचना । त्रिशूलं करवालञ्च बिभ्रती घोरराविणी ॥१५॥

अनन्तर बहुत प्रकार से शङ्करी की स्तुति कर कुलगुरु काश्यप बोला, "हे मातः ! आपकी स्तुति करने में सहस्रफणवाला सर्पराज शेषनाग भी समर्थ नहीं; इसलिये एक मुखसे मैं आपकी क्या स्तुति करूँ ? हे परमेश्वरि ! आप प्रसन्न होइये । आप पर्वतराज की भार्या अत्यन्त त्रस्त और दीनहीन अपनी माता को बचावें" ॥७-८॥

इस प्रकार आराधित गौरी ने तब कालमेघ के समानक्रान्तिवाली, सिंहवाहनवाली, भूषणों से अत्यन्तशोभित, अत्यन्तज्वाला निकलने वाले तीक्ष्ण आयुधों से युक्त, तीननेत्रवाली, स्वर्ण के समान पीताम्बर वेष्टित, बालचन्द्र का शिरोभूषणधारी हुई ऐसा अपना स्वरूप कर लिया । वह उस गृह से जैसे समुद्र से सूर्यनारायण प्रगट होते हैं वैसे ही निकली । अनन्तर नारदने उसे देख प्रणाम कर विविध स्तुतियोंसे परा शङ्करप्रिया गौरी देवी की स्तुति की । इसी समय में विष्णुके पार्षद वृन्द पर्वतेश्वर को बांध कर उसकी पुत्री गौरी को लेने वहां आये । पार्वती उन क्रुद्ध पार्षदगणको और पराजय की दशा में पिता को तथा उसके सेवकों को अत्यधिक विलाप करते देख कुछ क्रोध से लाल आँखें कर स्थित हो गई । उसके देह से भयङ्कर ज्वालामुखवाली, कालरात्रि की आभावाली, तीन शिरों वाली, तीन नेत्रधारिणी, त्रिशूल और करवाल को ली हुई, अत्यन्त भीषण नाद करने वाली अरुणा देवी निकली ॥९-१५॥

सा प्रणम्य प्राह गौरीं किंकरोमीतिसम्मुखे । आज्ञापयद्विष्णुगणान् जहीति गिरिजा तदा ॥
ततो विष्णुगणान् विष्णुसमाकारबलाऽऽयुधान् ।
शलभान् पावक इव नाशयामास साऽरुणा ॥
करवालत्रिशूलोद्यद्वन्हिना भस्मतां गताः । अथ तद्वृत्तमाकर्ण्य विष्णुर्मन्युवशङ्गतः ॥
सुपर्णमधिरुह्याऽऽशु चक्रहस्तोऽभिसंययौ । तां ददर्शाऽरुणां देवीं ज्वालावक्त्रां भयङ्करीम् ॥
सहस्रारं प्रचिक्षेप ज्वालामालापरीवृतम् । अथाऽऽयान्तं सहस्रारं कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥
कल्पान्ताऽग्निरिवाऽशेषं भस्मीकुर्वाणमम्बरे । दृष्ट्वा शूलं प्रचिक्षेप सहस्रारं प्रतीश्वरी ॥
तच्छूलमरुणाहस्तान्मुक्तं खे क्षणमात्रतः । भस्मीचकाराऽग्निरिव तृणं चक्रं सुदर्शनम् ॥
अथ क्रुद्धो हरिर्भीमां गदामादाय वेगतः । अभ्यधावत तां देवीं गत्वा मूर्ध्न्यभिताडयत् ॥
ताडिता फूत्कृतिं चक्रे ज्वालावक्त्रा हरेः पुरः । तन्मुखज्वालया दग्धः सुपर्णः पतगेश्वरः ॥

उसने प्रणाम कर गौरी को पूछा "मैं क्या करूं ?" इस प्रकार पूछने पर अपने सामने ही "विष्णुगणों को यह गौरी ने आज्ञा दी। तब उस अरुणाने विष्णुके समान ही आकृति, बल और आयुध धारण करने वाले विष्णु को जैसे अग्नि पतिङ्गाको जला देती है उसी प्रकार नष्ट कर दिया। उसकी तलवार और त्रिशूलसे उठी हुई अग्नि से सब जलकर भस्म हो गये। अनन्तर इस वृत्त को सुनकर श्रीविष्णु बहुत अधिक क्रुद्ध हुए; वह गरुड पर आरूढ सुदर्शन चक्र हाथ में धारण किये आगये। उसने उस अग्नि की ज्वाला के मुख वाली, भयङ्कर अरुणा देवी को देखा उसकी ओर ज्वाला की पंक्ति से घिरे सहस्रार चक्रको फेंका। अनन्तर करोड़ों सूर्य के समान कान्ति कल्पान्त की अग्नि के समान, आकाशमार्ग में सामने आने वाले सभी को जलाते हुए, सहस्रार (सुदर्शन) चक्रको उसीका प्रतिरोध करने को ईश्वरी ने शूल फेंका (चलाया) ॥१६-२१॥

अरुणा के हाथ से आकाश में छूटे हुए शूल ने क्षण भर में ही सुदर्शन चक्र को जैसे अग्नि तृण को डालती है वैसे ही भस्म कर दिया। तत्पश्चात् श्रीविष्णु क्रुद्ध हो भीषण गदा को लेकर अत्यन्त वेग से देवी की दौड़े तथा जाकर उसके सिर पर प्रहार किया। श्रीविष्णु के सामने ही गदा से ताडित हो ज्वालामुखी अरुणा फुंकार की। उसके मुख से निकली ज्वालाओं से पक्षिराज गरुड झुलस गया ॥२२-२४॥

विष्णुं समादाय वक्त्रे चिक्षेप ज्वलितेऽरुणा। विष्णुं ग्रसन्तीं तां दृष्ट्वा ज्वालावक्त्रां सुरा नराः ॥२५॥
हा हेत्युच्चुक्रुशुस्तत्र यावत् सा श्रीपतिं रुषा।
देवी निगिरणोद्युक्ता तावज्ज्वालामुखीं द्रुतम् ॥२६॥
गले जग्राह गौरी तां प्रोवाचेषत्स्मयाऽन्विता। अलं वत्से साहसेन भ्रातरं मे समुद्गिर ॥२७॥
पालकं जगतो नो चेदुत्सीदेत्त्रिजगद्द्रुतम्।
तदोद्गीर्णस्तया विष्णुर्मूर्च्छितो ह्यपतत् क्षितौ ॥२८॥
ज्वालाराशिश्च हरिणा सहोद्गीर्णोऽरुणाऽऽख्यया।
गौरी ज्वालाकुलाऽन्तस्थं हरिं निःसारयद्द्रुतम् ॥२९॥
ववृधे चाऽथ सा ज्वाला तिर्यगूर्द्ध्वञ्च सर्वतः।
तां दृष्ट्वा लोकसंहन्त्रीं ज्वालामतिभयानकाम् ॥३०॥
ब्रह्मेशाद्याः सुरगणा गौरीं भीताः प्रतुष्टुवुः। वेपमाना जगुस्त्राहि त्राहीत्युच्चैर्महेश्वरीम् ॥३१॥

अरुणा ने श्रीविष्णु को लेकर अपने जलते हुए मुख में डाला; उस ज्वालामुखवाली के द्वारा विष्णु को मुख में ग्रसते देख सुर और नर सभी वहां कष्टसे आकुल चीत्कार करने लगे। तभी जैसे ही क्रोध से अरुणा देवी लक्ष्मीपति को निगलने को ही थी कि वैसे ही गौरी ने ज्वालामुखी को जल्दी ही गले से पकड़ लिया। गौरी कुछ मन्दस्मितसे बोली, "हे वत्से! तेरे साहस से अब बस कर। मेरे भाई को जो जगत का पालक है उसे निगलने की क्रिया से विरत हो जा नहीं तो शीघ्र ही तीनों लोकों में भारी उपद्रव मच जायगा।" उसके द्वारा मुख से बाहर उद्गिरण कर निकाल दिये जाने पर श्रीविष्णु मूर्च्छित हो भूमि पर गिर गये ॥२५-२८॥

जब अरुणा ने बाहर डकार ली तो विष्णु के साथ ही ज्वाला की अपरिमित राशि निकली। गौरी ने शीघ्र ही श्रीविष्णु को ज्वालामाला के अन्दर से निकाल लिया। इस घटना के अनन्तर वह ज्वाला ऊपर, नीचे, तिरछी और सब दिशाओं में उग्ररूप से बढ़ने लगी। उस अतिभयानक लोकसंहारकारिणी उग्र ज्वालाको देख कर ब्रह्मा एवं महेश आदि देवगण डर कर गौरी की स्तुति करने लगे और महेश्वरी से कांपते हुए "रक्षा करो" "रक्षा करो" इस प्रकार ऊँच स्वर से बोले ॥२९-३१॥

संस्तुता सा प्रपन्नान् तान् प्राह गम्भीरया गिरा ।
मा बिभ्यत सुरा यूयमभयं वः प्रयच्छितम् ॥३

ब्रुवन्तु को वरो मत्तो भवद्भिः प्रार्थितो द्रुतम् ।
इति श्रुत्वा विधिमुखा देवाः प्रोचुर्नगात्मजाम् ॥३

देवि ज्वालामिमां कालाऽनलज्वालासमां द्रुतम् ।
एधमानां प्रशमय लोकान् रक्ष चराऽचरान् ॥३

प्रार्थितैवं सुरगणैः सञ्जहार क्षणेन ताम् । प्राह देवान् प्रति शिवा देवाः शृणुत मद्वचः ॥३
एषा ज्वालामुखी देवी मत्क्रोधप्रभवा ननु । जगद्भक्षयितुं सद्यः प्रवृत्ता सर्वथा शमम् ॥३
न शक्या नेतुमधुना तिष्ठत्वत्र नगोत्तमे । पूजिता देवमनुजैः प्रीतेष्टान् सम्प्रयच्छतु ॥३७॥
कल्पान्ते सर्वजगतां भक्षणात्तुष्टिमेष्यति । इयं रुद्रस्य संहारशक्तिरस्यास्तु योगतः ॥३८॥
शिवः सर्वस्य लोकस्य संहारं रचयेत् परम् ।
इत्युक्त्वाऽमृतवर्षिण्या दृष्ट्या विष्ण्वादिकान् सुरान् ॥३

स्तुति से सन्तुष्ट हुई भगवती ने शरण में आये उन देवगण को गम्भीर वाणी में कहा, "हे देवगण ! डरो तुम्हें अभय दान दे दिया गया, तुम लोग मेरे से कौन वर मांगते हो उसे शीघ्र बतलाओ ।" इस प्रकार सुनकर प्रमुख देवगण ने पर्वतपुत्री से कहा ॥३२-३३॥

"हे देवि ! प्रलयकाल की अग्नि की ज्वाला के समान अत्यन्त उग्र तेजवाली बढ़ती हुई इस को आप शीघ्र ही शमन कर दीजिये एवं सभी स्थावर जङ्गम लोकों की रक्षा कीजिये ।" इस प्रकार देवगण प्रार्थना किये जाने पर गौरी ने एक क्षण में ही उस ज्वाला को समेट लिया । कल्याणमयी देवी ने कहा, "हे देववृन्द ! मेरा वचन सुनो, यह ज्वालामुखी देवी निःसन्देह मेरे क्रोध से प्रगट हुई है; जगत् को भक्षण को प्रवृत्त हुई है । यह तत्काल शमन नहीं हो सकती । इसे इस पर्वतश्रेष्ठ हिमाचल में ही अभी रहना है और मनुष्यों द्वारा भली प्रकार पूजिता हो उन्हें प्रसन्न हो इष्ट लाभ प्रदान करे । कल्प के बीतने पर सम्पूर्ण को खाने से इसकी तुष्टि होगी । यह रुद्र की संहारशक्ति है । इसके योग से भगवान् शिव सम्पूर्ण लोक उत्कृष्ट संहार करते हैं ।" इस प्रकार कहकर अमृत का वर्षणकरनेवाली दृष्टि से विष्णु आदि देवगण तथा

गणानपि मृतान् विष्णोर्जीवयामास चाऽम्बिका ।
विष्ण्वादिभिः स्तुता पश्चात् कन्यारूपं समास्थिता ॥४०॥
पितरं मोचयामास पार्षदैर्बन्धनं गतम् । दृष्ट्वाऽपि गौर्यास्तद्रूपं महिमानमवेत्य च ॥४१॥
मायया मोहितो गौर्या विस्मृतस्तत्क्षणेन हि ।
मुक्तं कथञ्चिदात्मानं मत्वा स्वामात्मजां द्रुतम् ॥४२॥
परिष्वज्य समादाय प्रणम्य विबुधेश्वरान् । प्राह बद्धाञ्जलिर्दीनो विष्णुं तं त्रिजगत्पतिम् ॥४३॥
रमापते मेऽपचितिं क्षमस्व प्रार्थितो मया । अहं तुभ्यं ददाम्येव तनुजां नाऽत्र संशयः ॥४४॥
सा सर्वथा पतिं भर्गं वव्रे तस्मान्मृषोदितम् । ममाऽभूदत एतन्मे सर्वथा क्षन्तुमर्हसि ॥४५॥
एष ते तनुजो ब्रह्मा देवाश्चेमे सुसङ्गताः । यदत्र युज्यते तन्मां शाधि ते शरणागतम् ॥४६॥
श्रुत्वैवं पर्वतवचो विधिः प्रोवाच सस्मयः । धन्यस्त्वं पर्वतेशोऽसि यत्ते कन्येयमीदृशी ॥४७॥

मरे हुए गणों को भी अम्बिका ने जीवित दिया । अनन्तर विष्णु आदि के द्वारा स्तुत होकर गौरी पूर्ववत् कन्या रूप धारण कर स्थित हो गई ॥ ३४-४० ॥

उसने पार्षदों द्वारा बांधे गये पिता को छुड़ा लिया । गौरी के दिव्य रूप को देखकर और उसकी महिमा जानकर भी भगवती की माया से मोहित हो हिमाचल तत्काल ही सब भूल गया । वह अपने को किसी प्रकार मुक्त मान अपनी पुत्री को शीघ्र ही बांहों में भर उसका शिर सूँघ कर विबुधेश्वरों को प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए दीन भाव से तीनों जगत् के पति विष्णु से बोला, "हे रमापते ! आपके लिये मेरी कोई तिरस्कृति हो गई हो तो क्षमा करें । मेरे द्वारा ही आपको प्रार्थना की गई थी कि मैं अपनी पुत्री को आपको दूँगा; इसमें कोई सन्देह नहीं । गौरी ने सर्वथा अपने पति के रूप में श्रीशिव को वरण कर लिया, इसलिये मेरा कहा हुआ मिथ्या हुआ । अतः आप इसे सर्वथा क्षमा करें ॥ ४१-४५ ॥

यह आपका पुत्र (काम), ये ब्रह्मा और देवगण सभी पधारे हैं; इस विषय में मेरे योग्य जो सेवा हो सो मुझ शरणागत को आप भली प्रकार आदेश दें" ॥४६॥

इस प्रकार पर्वतराज की वाणी सुन ब्रह्माने मन्द हास्यपूर्वक कहा, "हे पर्वताधिराज ! तू धन्य है कि तेरी ऐसी पुत्री

भर्तारं शिवमेवाऽत्र समर्हति महेश्वरम् । सोऽप्येनामर्हति शिवः पत्नीं सर्वगुणाऽऽश्रयाम् ॥४८॥
कथं विष्णुर्भवेद्भर्ता तस्या भ्रातेव संस्थितः । योजयामि शिवं सद्यः पतित्वेऽस्या नगोत्तम॥४९॥
इत्युक्त्वा समभिव्रज्य शिवं प्राह विधिस्तदा । स्तुत्वा प्रणम्य देवेशं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥५०॥
महादेवं प्रार्थयामो वयं पर्वतनन्दिनीम् । प्रतीच्छ भार्यामात्मीयां कालेऽस्मिन्नेव शोभने॥५१॥
नैतद्वचो निषेधाऽर्हं पूर्ववृत्तञ्च संस्मर । इति प्रोक्तो जगद्धात्रा ओमित्येवाऽह वै शिवः ॥५२॥
अथ पर्वतराजन्यं प्राह ब्रह्मा चतुर्मुखः । साधितस्ते महेशानः कन्यापाणिग्रहाय वै ॥५३॥
अस्मिन्नेव शुभे काले कन्यां दातुं त्वमर्हसि । वाक्यं विधेः समाकर्ण्य चैतत् प्राह नगेश्वरः॥५४॥
ब्रह्मन् न साधितं किञ्चिद्वैवाहिकमनुत्तमम्। असम्भृत्य च सम्भारान् अनिमन्त्र्य कुलेश्वरान्॥५५॥
कथं विवाह आरभ्यो न किञ्चित् प्रतिभाति मे। समाकर्ण्य नगोक्तं तद्विधिस्त्वष्टारमाह्वयत्॥५६॥

विवाह में भर्त्ता के रूप में महेश्वर शिव को पाने के लिए के ही सर्वथा योग्य है। वह श्रीशिव भी सम्पूर्ण गुणों की खान इसे पत्नी के रूप में प्राप्त करने में सर्वथा उपयुक्त है। उसके भाई के समान होकर श्रीविष्णु कैसे भर्त्ता हो सकते हैं ? हे पर्वतश्रेष्ठ ! तत्काल ही इनके पति रूप में शिव को लगाता हूँ" ॥४७-४९॥

इस प्रकार कहकर शिव के पास जाकर ब्रह्मा ने लोकशङ्कर देवेश शिव को प्रणाम कर स्तुति की और तब कहा ॥५०॥ "हम लोग आप महादेव की प्रार्थना करते हैं पर्वतपुत्री को इसी सुन्दर शुभसमय में अपनी भार्या मान लें; यह वचन किसी प्रकार निषेध के योग्य नहीं है, पूर्व वृत्त को याद करें।" इस प्रकार जगत् के धाता ब्रह्मा द्वारा कहने पर शिव ने "हां" ही भरी ॥ ५१-५२ ॥

अनन्तर चतुर्मुख श्रीब्रह्मा ने पर्वतराज को कहा, "हे हिमाचल ! तेरी कन्या के पाणिग्रहणके लिये महेश्वर को प्रसन्न कर लिया है ॥५३॥ इसी शुभ समय में तू अपनी कन्या को दे सकता है।" श्रीब्रह्मा के वचन सुनकर पर्वतराजने कहा "हे ब्रह्मन् ! आपने अति उत्तम विवाह सम्बन्धी कार्य नहीं साधा, किसी सामग्री को संग्रह किये बिना और कुलेश्वरों को बुलाये बिना विवाह कैसे आरम्भ किया जाय यह मुझे कुछ उचित नहीं जचा।" पर्वतराज के उस कथन को सुनकर श्रीब्रह्मा ने त्वष्टा को बुलाया ॥ ५४-५६ ॥

आहूयाऽऽज्ञापयत्तत्र तं सामग्रीप्रसाधने । आज्ञप्तो विधिना त्वष्टा सस्रजेऽर्धमुहूर्ततः ॥ ५७ ॥
विवाहशालां वेदीश्च पात्राण्यग्नींश्च सर्वतः । वस्त्रभूषणमाल्यानि प्रस्तराऽऽस्तरणानि च ॥५८॥
अन्नपानादिकं सर्वमहीनं समकल्पयत् । प्राह सिद्धं सर्वमिति देवशिल्पिर्विधिं तदा ॥५९॥
दृष्ट्वा तद्दर्शयामास नगराजाय विश्वसृट् । निशम्य हृष्टो हिमवान् प्रणनाम पितामहम् ॥६०॥
अब्रवीद्देवदूतांश्च विमानैः सहितान् द्रुतम् । भूसुरान् भूपतीनन्यान्नगवंश्यान् विशेषतः ॥६१॥
समानयन्त्विति तदा देवदूताः सहस्रशः । आदाय सर्वानाजग्मुर्मुहूर्ताऽर्धेन ते द्रुतम् ॥६२॥
दृष्ट्वा समागतान्सर्वान् पर्वतं प्राह विश्वसृट् । नगेश्वराऽऽगताः सर्वे साधितं सर्वसाधनम् ॥६३॥
सज्जीभव विवाहाय तनुजाश्च समानय । आज्ञप्त एवं शैलेशो गत्वा स्वभवनं द्रुतम् ॥६४॥
कन्याया मङ्गलस्नानं कारयित्वा यथाविधि । काश्यपेन स्वगुरुणा सर्वं वैवाहिकं विधिम् ॥६५॥
कृत्वा कन्यां समादाय प्रियया सहितो नगः । ज्ञातिभिर्ज्ञातिपत्नीभिः संवृतो निर्ययौ गृहात् ॥६६॥

उसे बुलाकर सामग्री जुटाने की आज्ञा देदी । श्रीब्रह्मा से आज्ञा पाकर त्वष्टा ने आधे मुहूर्त्त में ही विवाह-शाला, मडण्प, वेदियां, पात्र, अग्नि और सब ओर की सज्जायें वस्त्र एवं आभूषण तथा मालायें, भली प्रकार बैठने के प्रस्तर के आसन एवं साथ ही अन्न पान आदि प्रभूत मात्रा में तैयार कर दिये । तब देवशिल्पी ने श्रीब्रह्मासे कहा कि सब कुछ भली प्रकार तैयार है । उसे देख श्रीब्रह्मा ने नगराज को सब दिखाया । हिमाचल ने देख कर पितामह को प्रणाम किया ॥५७-६०॥

देवदूतों को हिमाचल ने कहा, "शीघ्र ही विमानों सहित भूदेवों, राजाओं और अन्य लोगों विशेष रूप से पर्वतवंश के लोगों को बुलाकर ले आओ" । इस प्रकार तब हजारों देवदूत विमानों द्वारा शीघ्र आधे मुहूर्त में ही सब जनों को ले आये ॥६१-६२॥ सबको आया देख श्रीब्रह्म विश्वसृष्टिकर्त्ता ने पर्वतको कहा, "हे पर्वतराज ! सब लोग आ गये हैं । सब साधन भली प्रकार सजा दिये गये हैं, विवाहके लिये तू तैयार होजा और अपनी पुत्री को ले आ ।" इस प्रकार आज्ञा पाकर शैलाधिराज शीघ्र अपने भवन में जाकर कन्या को मङ्गल स्नान करवा सम्पूर्ण विधि-पूर्वक अपने कुलगुरु काश्यपजी द्वारा सब वैवाहिक विधि कर के अपनी पुत्री को लेकर हिमाचल अपनी प्रिया के सहित बन्धुबान्धव और उनकी स्त्रियों के साथ घर से निकला ॥६३-६६॥

विवाहशालामाविश्य तस्थौ स सपरिच्छदः । अथ ब्रह्मा शिवं तत्र विवाहविधिना तदा ॥६७॥
योजयामास तत्पश्चात् स्वगणैः परिवारितः । विवेश शालां भूतेशः सर्वमङ्गलसंयुताम् ॥६८॥
तं ददर्श महादेवं विकटं जटिलं कृशम् । व्याघ्रचर्माऽशुकधरं नागचर्मोत्तरीयकम् ॥६९॥
कपालमालाविलसद्गलं पन्नगकुण्डलम् । कालसर्पोपवीतञ्च विरूपाक्षं त्रिलोचननम् ॥७०॥
भूतसङ्घैर्विरूपास्यैरुन्मत्ताऽऽचारसङ्कुलैः । श्मशाननिलयैर्घोरैर्गणैश्च परितो वृतम् ॥७१॥
दृष्ट्वा पर्वतराजन्यो विमनाः समजायत । दृष्ट्वा विधिर्नगं म्लानमुखं शोकपरिप्लुतम् ॥७२॥
विज्ञाय मानसं तस्य प्रोवाचाऽगं विधिस्तदा । किं नगेश्वर शोकेन सम्प्लुतोऽसि शुभाऽऽगमे ॥७३॥
जानासि न महेशानमाश्चर्यचरितं शिवम् । इत्युक्त्वा विधिरीशानं प्रार्थयामास सन्नतः ॥७४॥
देव ! त्वामीदृशं दृष्ट्वा नगः खिन्नो महेश्वर । तद्दर्शय स्वमात्मानं सर्वलोकैकसुन्दरम् ॥७५॥

विवाहशाला में जाकर वह सारे कुटुम्बियों के सहित स्थित हो गया । अनन्तर ब्रह्मा ने शिव को तब विवाह-विधि से पर्वतपुत्री के साथ पाणिग्रह जुड़ाया । तत्पश्चात् सम्पूर्ण मङ्गल सामग्रियों से युक्त विवाहशाला में भूतेश श्रीशिव अपने गणों के समेत पधारे ॥६७-६८॥

अपने सभी पुरजन और परिजन समेत हिमालयने विकट (प्रशस्त), जटाधारी, अत्यन्त कृश (दुबले पतले), व्याघ्र चर्म का वस्त्र धारण किए, हाथी के चर्म का उत्तरीय वस्त्र पहने, गले में मुण्डमाला पहने, सर्पों का कुण्डल धारे, काले सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये, विकराल आँखों वाले, तीन नेत्रधारी महादेव को भूतसमूहों से वेष्टित, ऐसे जिनमें उन्मत्त आचरणों की ही विशेषता है विकृतमुंहवाले श्मशानवासीगण भयानक पार्षद लोगों से घिरे हुए देखा । उसे देख पर्वतराज अत्यन्त निराश हुआ और उसका मन बिगड़ गया । श्रीब्रह्मा ने पर्वतराज को अत्यन्त म्लान मुख और शोक पीडित देख कर उसके अन्तरंग मन का भाव कह तब उससे कहा, "हे पर्वतराज ! तुम ऐसे शुभ समय के उपस्थित होने में क्या शोकाकुल हो गया है ? अत्यन्त अद्भुत चरित्रों से सम्पन्न महेश्वर भगवान् क्या शिव को नहीं जानता ?" यह कहकर श्रीब्रह्मा ने विनम्रभाव से भगवान् शिव की प्रार्थना की ॥६९-७४॥

"हे देव ! हे महेश्वर ! आप को इस रूप में देख कर पर्वताधिपति हिमाचल अत्यन्त खिन्न हो गया है अतः उसे आप अपना सम्पूर्ण लोकों के अद्वितीय सुन्दर रूप को दिखावें" ॥७५॥

एवं सम्प्रार्थितः शम्भुर्योगैश्वर्यबलाऽन्वितः । आत्मानं दर्शयामास कोटिमन्मथसुन्दरम् ॥७६॥
तप्तहेमसमाऽऽभासं नीलेन्दीवरलोचनम् । नानारत्नौघविलसन्मुकुटेन विराजितम् ॥७७॥
रक्तमाल्याऽम्बरधरं नानारत्नविभूषणम् । तादृशैः प्रमथैश्चित्रभूषणाऽम्बरशोभितैः ॥७८॥
सेव्यमानं समालोक्य पर्वतः प्रीतमानसः । अहो धन्या मम सुता यस्या भर्ताऽयमीदृशः ॥७९॥
सर्वलोकमहेशानः सर्वलोकमनोहरः । इत्युक्त्वा तं महादेवं प्रणनाम नगेश्वरः ॥८०॥
न जानामि महादेव तव माहात्म्यमद्भुतम् । जडः स्थाणुस्वभावोऽहं तन्मेऽगः क्षन्तुमर्हसि॥८१॥
इति क्षमाप्य भूतेशं विधिं प्रोवाच शैलराट् । ब्रह्मन्नियं मे तनुजा पाणिं गृह्णातु शङ्करः ॥८२॥
मन्यसे यदि तच्छीघ्रं न कालोऽतिगतो भवेत् ।
ओमित्युक्त्वा विधिः शीघ्रं शिवं प्राह स्मयन्निव ॥८३॥

इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर योग की महती विभूतियों से सम्पन्न भगवान् शम्भु ने तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिवाले, नील कमल के समान आयत दीर्घ विशाल नेत्रवाले, विभिन्न रत्नों के समूह से शोभित, मुकुट से आभूषित, रक्तमाला और शोभन वस्त्र धारण किये, नाना रत्नों के सहित अत्यन्त मूल्यवान् आभूषणों से सजे, करोड़ों कामदेवों के रूप से भी अधिक कमनीय अपना स्वरूप दिखाया। वैसे ही विचित्र प्रकार के आभूषणों और शोभन वस्त्रों से विभूषित प्रमथ भूतगण आदि पार्षदों से भगवान् शम्भु को चारों ओर से घेरे देख कर पर्वतराज अत्यन्त प्रसन्न हुआ। "अहो ! मेरी पुत्री धन्य है जिसका पति इस विलक्षणरूप से सम्पन्न है, जो सम्पूर्ण लोकों के महेश्वर तथा सम्पूर्ण लोकों में अत्यन्त मनोहर कमनीय वपु धारण किये हैं।" यह कह कर पर्वतराज ने महादेव शिव को प्रणाम किया ॥७६-८०॥

"हे महादेव ! मैं आपके अत्यन्त अद्भुत माहात्म्य को नहीं जानता हूँ; मैं मूर्ख जड प्रकृतिवाला जो हूँ, आप मेरा अपराध क्षमा करें।" इस प्रकार भूतेश की सेवा में अपराधक्षमापन निवेदन कर पर्वतराज ने श्रीब्रह्मा से कहा, "हे ब्रह्मन् ! यह मेरी पुत्री है इस का शङ्कर पाणिग्रहण लें यदि समय ठीक मानते हैं तो उसका अतिक्रमण न होने दें।" श्रीब्रह्मा ने "हां" कह कर शीघ्र ही शिव को हँसते हुए कहा ॥८१-८३॥

पाणिं शिव गृहाणाऽस्याः पार्वत्या मा विलम्ब्यताम् ।

अत्येति कालः सगुणः सर्वदोषविवर्जितः ॥८

निशम्य शम्भुर्विध्युक्तं पाणिं गौर्याः समाददे । शैलः समुत्सृजत्तोयं मेनया समवार्जितम् ॥८

अथ घोषो महानासीन्मङ्गलध्वनिमिश्रितः । उच्चावचान्यवाद्यन्त वाद्यानि परितस्तदा ॥८

जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः । अस्तुवन् बन्दिनस्तत्र पुष्पवृष्टिरभूद्दिवः ॥८७॥

ववौ गन्धवहो मन्दं चक्रे सुरभिला दिशः । जेपुर्वशिष्ठप्रमुखाः शैवोपनिषदां गणम् ॥८८॥

विधिर्विवाहविधिना योजयामास शङ्करम् । तत्र पर्वतराजन्यः सर्वान् विप्रमुखान् जनान्॥८

रत्नाऽऽभरणवासोभिरसंख्येयधनैरपि । सम्भावयामास तथा देवान् विधिमुखानपि ॥९

पूजयामास विधिना सम्भृतैः सुसमर्हणैः । भोजयामास नगराट् सर्वांस्तत्र समागतान् ॥९

विविधैरन्नपान्नाद्यैः षड्रसाढ्यैर्मनोहरैः । भुक्त्वा विप्रमुखास्तत्र यथेष्टं तर्पिता धनैः ॥९

"हे शिव ! आप इस पार्वती के साथ पाणिग्रहण करें, विलम्ब मत कीजिये, सब दोषों से वर्जित सुन्दर वाला, काल बीतता है।" श्रीब्रह्मा के वचन सुन कर शम्भु ने गौरी का हाथ विवाहार्थ ग्रहण किया। पर्वतराज मेनका के सहित गठबंधन कर कन्यादान का संकल्प छोड़ा। उस समय मङ्गल शब्दयुक्त अतीव विलक्षण घोष हु तब चारों ओर भिन्न-भिन्न नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। गन्धर्वपतिगण मङ्गलगान करन लगे और अप्सरायें करने लगीं। मागध बन्दीजन स्तुतिगान में लगे; आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई ॥८४-८७॥

शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहने लगा तथा चारों ओर दिशायें सुगन्ध से भर गई। वशिष्ठ प्रमुख ऋषि शैवोपनिषदों का पाठ किया। ब्रह्मा ने विवाहविधि के साथ शङ्कर का गौरी से पाणिग्रहण सम्पादित किया। पर्वतराज ने सभी विप्र प्रमुख लोगों को अमूल्य रत्नों आभूषणों तथा वस्त्रों से और असंख्येय (अनगिनत) धन देकर स्वागतपूर्वक सत्कार किया साथ ही श्रीब्रह्मा आदि प्रमुख देवगणों की सुन्दर रूप से सम्पन्न साज सम्भा पूजा की। वहां आये हुए सभी महानुभावों को पर्वतराज ने भोजन कराया ॥८८-९१॥

षट्रसों से परिपूर्ण विविध अन्न पानादि मनोहर व्यञ्जनों वाले भोज्यपदार्थों से विप्रप्रमुख लोगों को करा यथेष्ट धन देकर उन्हें सन्तुष्ट किया। वे आशीर्वाद देकर अपने-अपने स्थान पर सब दिशाओं में लौट गये

आशिषस्ते प्रयुञ्जाना निर्ययुः सर्वतो दिशम् । एवं विवाहे संवृत्ते हिमवान् प्रददौ धनम् ॥९३॥
असंख्यातं रत्नगणं वासांस्याभरणानि च । हस्त्यश्वरथदासीनां गणानपि च कोटिशः ॥९४॥
पार्वत्यै स्वतनूजायै प्रियायै प्रीतमानसः । अथ तत्सर्वमादाय पार्वतीसहितः शिवः ॥९५॥
गन्तुं निजालयं शीघ्रं मनो दधे महेश्वरः । विधिविष्णुमुखैर्देवैः स्तूयमानापदाऽऽनकः ॥९६॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये कामोपाख्यानान्तर्गतगौर्युपाख्याने गौर्याःशम्भुना सह शुभविवाहवर्णनं नाम द्वात्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२६८४॥

प्रकार विवाह कार्य सम्पन्न होने पर हिमवान् ने प्रसन्न होकर असंख्यात रत्नों, अमूल्य वस्त्रों, आभूषणों, हाथी, घोड़े, रथ और दासियों की नाना कोटियां प्राणों की प्यारी अपनी पुत्री पार्वती को दी। अनन्तर उन सब को लेकर भगवती पार्वती के सहित महेश्वर श्रीशिव ने अपने घर शीघ्र जाने का मन किया। ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवगणों ने इस विवाह महोत्सव की प्रशंसा की ॥९२-९६॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्डके कामोपाख्यान प्रकरण में हिमाचल पुत्री भगवती गौरी के साथ शङ्कर का मङ्गलमय विवाह नामक बत्तीसवां अध्याय समाप्त।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

विष्णवे ज्वालामुखीदेव्या सुदर्शनप्रदानवर्णनम्

अथ देवैः स्तूयमानो महेशः पार्वतीयुतः । हिमाद्रिणाऽभ्यनुज्ञातो निर्ययौ हिमवद्वनात् ॥१॥
किञ्चिद्दूरमनुययौ पर्वतः प्रेमकातरः । ततोऽनुजज्ञे श्वशुरमनुयान्तं महेश्वरः ॥२॥
प्रतियातुमनीशं तं दुहितृप्रेमभारतः । अपश्यत् पार्वतीं देवः कटाक्षेण स्मिताऽऽननः ॥३॥
ज्ञात्वेङ्गितं महेशस्य देवी पर्वतनन्दिनी । पितरं बोधयामास स्वशापभ्रष्टसंस्मृतिम् ॥४॥
दर्शयामास विभवं स्वस्याः परममद्भुतम् । अथ दृष्ट्वा नगपतिस्तनूजां परमेश्वरीम् ॥५॥
ज्ञात्वा स्वरूपं तस्याश्च जगत्तत्त्वञ्च सर्वशः । निवृत्तमोहः सम्प्राप्तनिजवैभवनिर्भरः ॥६॥
अनुज्ञातः शिवाभ्यां स प्रययौ स्वं निवेशनम् । महादेवोऽपि पार्वत्या सहितो धातृमुख्यकान् ॥७॥
अनुज्ञाप्य स्वस्वदेशं प्रमथैरभिसंवृतः । रजताऽद्रिं समासाद्य तपस्येव मनो दधे ॥८॥

तैंतीसवां अध्याय

अनन्तर पार्वती के सहित महेश सब देवगण द्वारा प्रशंसापूर्ण स्तवों से स्तुत होकर हिमाचल से विदा लेकर हिमवत्प्रदेश के वन से आगे निकल गये। प्रेम के वशीभूत हो पर्वतराज कुछ दूर उनके पीछे गया। महेश्वर ने उसे पीछे आया देख लौट जाने को कहा। अपनी पुत्री के प्रति वात्सल्यभार से भावित उसे न जाने को असमर्थ देख भगवान् शंकर ने हंसते हुए कटाक्षसे पार्वती को देखा। महेश के संकेत को पाकर पर्वतपुत्री देवी गौरी ने अपने शापसे खोई हुई स्मृतिवाले पिता को बोध कराया व अपना अत्यन्त अद्भुत ऐश्वर्य उसे दिखाया। अनन्तर पर्वतराज परमेश्वरी अपनी पुत्री को देखकर उसके स्वरूप को तथा जगत् के सार तत्त्व को सर्वांशतः जान कर सब ओर से निवृत्तमोह हो गया। अपने वैभव को दिव्यरूप से प्राप्त कर सर्वथा सम्पन्न हो कर शिव तथा शिवा से विदा हुआ वह अपने भवन में चला गया। पार्वती सहित महादेव ने भी ब्रह्मा, विष्णुप्रमुख देवगण को अपने-अपने लोकों में जाने का आदेश देकर प्रमथ एवं भूत गणों से सेवित रजत शैलवाले अपने लोक में जाकर तपस्या में ही मन लगाया ॥१-८॥

अथ देवनदीतीरे संश्रयं गुणवत्तरम् । समासाद्य महादेवो न्यग्रोधतरुमाश्रितः ॥९॥
तपश्चचार परमं दिव्यवर्षसहस्रकम् । तत्र विघ्नकरं काममनयद्भस्मशेषताम् ॥१०॥
भार्गवैवं मन्मथोऽपि भस्मत्वं प्राप्तवान् शिवात् । एवं श्रुत्वाऽद्भुतकथां भार्गवः पर्यपृच्छत ॥११॥
दयानिधेऽवधूतेश कथामधुझरी तव । मुखपद्मस्रुताऽतीव तृषां पीताऽपि यच्छति ॥१२॥
तत्र माद्यत्स्वभावोऽहं न तृप्यामि द्विरेफवत् । तदहं श्रुतिवक्त्रेण पातुमिच्छामि वै पुनः ॥१३॥
कथं शिवेन नि र्दग्धः कामो विघ्नं तपस्यतः । किमर्थमाचरत् सर्वं शंसैतत् परिपृच्छतः ॥१४॥
अथाऽपि विष्णोर्निर्दग्धं ज्वालामुख्या सुदर्शनम् । प्राप्तं पुनः कथं तेन वदैतदपि मे गुरो ॥१५॥
एवं सुपृष्टो मुनिराट् दत्तात्रेयो जगौ कथाम् । कथयामि शृणु कथां भृगुवंशाऽवतंसक ! ॥१६॥
तथा सुदर्शने नष्टे विष्णुस्त्रिजगतीपतिः । कालाऽन्तरे सुररिपुर्मुराऽऽख्यो दैत्यपुङ्गवः ॥१७॥

इसके अनन्तर गङ्गा के तीर पर अत्यधिक सुन्दरतर स्थान पाकर श्रीमहादेव ने एक वटवृक्ष के नीचे स्थित हो परम दिव्य एक हजार वर्षों तक तपस्या की और वहां विघ्नकरनेवाले कामदेव को भस्मशेष कर दिया (जला दिया)। हेपरशुराम ! इसप्रकार शिव से कामदेव भस्मीभूत हो गया । इस तरह अद्भुत कथा को सुन कर श्रीपरशुराम ने पूछा ॥९-११॥

"हे अवधूतों के स्वामिन् ! दयानिधे ! आपकी कथारूपी अमृतकी निर्झरी (सतत प्रवाहिणी धारा) जो आपके मुख-कमल से निकलती है, उसे बारम्बार पीने पर भी फिर अत्यन्त पिपासाकुल सा हुआ मैं इसमें इतना अधिक आनन्दमग्न हो गया हूँ कि भ्रमर के समान रसपान से कथमपि मुझे तृप्ति नहीं मिलती । इसलिये आपके मुखसे निकले विधिपूर्ण आख्यान को पान करने को फिर फिर इच्छा होती है । शिव के द्वारा काम क्यों भस्म किया गया ? उसने तपस्या करते हुए शिव के कार्य में किस कारण से विघ्न किया । यह सब वृत्तान्त आप प्रश्न करने वाले मुझे बतलाइये ? और हां, जब ज्वालामुखी द्वारा श्रीविष्णु का सुदर्शन जला दिया गया तो उसने फिर कैसे उसे प्राप्त किया ? हे गुरुदेव ! इसे भी आप मुझे बताइये ।" इस प्रकार पूछने पर श्रीदत्तात्रेय ने कथा बतानी आरम्भ की । "हे भृगुवंश को उज्ज्वल करने वाले परशुराम ! तू पूरी वार्त्ता सुन, मैं बतलाता हूँ ॥१२-१६॥ सुदर्शन के नष्ट होने पर कालान्तर में तीनों लोकों के अधिपति विष्णु के पास देवगण का शत्रु, अत्यन्त बलशाली, मुर नामक

योद्धुमभ्याययौ विष्णुं महाबलपराक्रमः । युध्यमानस्तेन हरिरभवद्धीनवर्चसः ॥१८॥
सुदर्शनेन रहितो विशृङ्गः पुङ्गवो यथा । अथ ब्रह्मा प्राह हरिं हरे ! शृणु वचो मम ॥१९॥
सुदर्शनेन रहितो नेमं जेतुं विभुर्भवान् । उपतिष्ठ परां ज्वालामुखीं देवीं समाहितः ॥२०॥
प्राप्य चक्रं तया दत्तं जेतुमेनं समर्हसि । श्रुत्वैवं ब्रह्मगदितं युध्यमानो रमापतिः ॥२१॥
अन्तर्द्धिमाययौ तत्र ततो दृष्ट्वा मुराऽसुरः । पराजितो हरिरिति ज्ञात्वा स्वभवनं ययौ ॥२२॥
अथ विष्णुरुपव्रज्य शैलराजं पराऽऽश्रयम् । यत्र साऽहर्निशं ज्वालामुखी प्रज्वलिताऽऽनना ॥२३॥
स्नात्वा संयतवाक्कायमानसस्तामुपस्थितः । निराहारो निराधारस्तपस्तेपे महत्तरम् ॥२४॥
ऊर्द्ध्वबाहुर्मीलिताक्षः सहस्रं परिवत्सरान् । अथ सा सुप्रसन्नाऽभूज्ज्वालावक्त्रा महेश्वरी ॥२५॥
आविर्भूता हरिपुरश्चिकीर्षन्त्यभिवाञ्छितम् । सूर्यकोटिप्रतीकाशा तरुणाऽरुणसद्वपुः ॥२६॥

दैत्यश्रेष्ठ युद्ध करने के लिये आया । उसके साथ लड़ते-लड़ते श्रीविष्णु बलहीन हो गया, सुदर्शन से रहित हो ह प्रकार उसकी बलहीन गति हो गई जैसे बिना सींग का बैल हो । अनन्तर श्रीब्रह्मा ने श्रीविष्णु से कहा, "हे हरे मेरा वचन सुनो, सुदर्शन के बिना आप इसे जीत नहीं पायेंगे; इसलिये पूर्ण ध्यानमग्न हो परा उस ज्वालामुखी देवी का आराधन कीजिए ॥१७-२०॥

उसके द्वारा दिये चक्र को पाकर आप इसे जीत सकते हैं ।" इस प्रकार श्रीब्रह्मा का कथन सुन कर युद्ध करते हुए श्रीविष्णु अदृश्य हो गया । तब मुर दैत्य वहां उसे (विष्णुको अदृश्य) न देख "विष्णु हार गया है" यह मान कर अपने भवन में चला गया । अनन्तर श्रीविष्णु ने परा के आश्रयस्थान शैलराज में, जहां अपने मुख से ज्वालाओं को निकालती हुई साक्षात् ज्वालामुखी स्थित थी, जाकर स्नान कर वाणी, शरीर, और मन को संयत कर, बिना आहार किये और बिना कोई अवलम्बन लिये बड़ी घोर तपस्या की ॥२१-२४॥

ऊपर बाहुओं को उठा, आंखें बन्द किये वह एक हजार वर्ष तक (वह तपमें रत रहा) । अनन्तर ज्वालामुखवाली महेश्वरी अत्यन्त प्रसन्न हो श्रीविष्णु के सामने उसके अभीष्ट को पूर्ण करने की इच्छा से प्रगट हुई। वह करोड़ों सूर्यों की आभाको बिखेरती हुई, प्रातःकाल (उषःकाल) के अरुणके समान लालदेहवाली, तीनों मस्तकों पर सुशोभित तीनों मुकुट

मस्तकत्रयसंराजत्किरीटत्रयशोभिनी । खड्गं त्रिशूलं बिभ्राणा मुण्डमालाविभूषिता ॥२७॥
नेत्रेभ्यो वदनेभ्यश्च श्रोत्रेभ्यो घ्राणमार्गतः । समस्तरोमकूपेभ्यो महाज्वालां क्षणे क्षणे ॥२८॥
मुञ्चन्ती भीषणाकारा गौरीक्रोधसमुद्भवा । स्तूयमाना सुरवरैर्गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥२९॥
नृत्यद्भिर्गायमानैश्च संवृता स्वगणैरपि ।

निशाम्य विष्णुस्तां ज्वालामुखीं सन्निधिमागताम् ॥३०॥
प्रणम्य दण्डवद्भक्त्या बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः । स्तुतिं चक्रे गुह्यवाग्भिर्विचित्राभिर्मृगूद्वह ॥३१॥
अथ तुष्टा स्तुतिगणैर्ज्वालावक्त्रा महेश्वरी । प्राह विष्णुं लोकपतिं गम्भीरवचसा तदा ॥३२॥
विष्णो लोकेश तुष्टोऽस्मि वरं वृण्वभिवाञ्छितम् । ददामि तुभ्यमखिलमनर्हं ते न विद्यते ॥३३॥
मम देव्या यतो भ्राता पूजितः सर्वतस्ततः । श्रुत्वेत्थं तद्वचो विष्णुः प्राह बद्धाञ्जलिस्तदा ॥३४॥
शृणु मद्वचनं देवि पुराऽहं जगतीमिमाम् । रक्षितुं श्रीमहेशान्या सृष्टस्त्रिपुरया ननु ॥३५॥
तदाज्ञया लोकरक्षाविधौ सततमुद्यतः । तत्राऽद्य दैत्यराट् कश्चिन्मुर इत्यभिविश्रुतः ॥३६॥

वाली; खड्ग त्रिशूल धारण किये, नरमुण्डकी माला पहिने, नेत्रों, मुखों, कानों और नाकों तथा सम्पूर्ण रोम छिद्रों से महाज्वालाको छोड़ती हुई, भीषण आकृतिवाली, गौरी के क्रोधसे आविर्भूत, सुरश्रेष्ठों, गन्धर्वों और अप्सराओं से स्तुति की गई, साथ ही नाचते और गाते हुए अपने गणों से सेवित वह (प्रगट हुई) ॥२५-२९॥

श्रीविष्णु ने ज्वालामुखी को सन्निकट उपस्थित देख दण्डवत् प्रणाम कर भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े खड़े हो गुह्यतम एवं अत्यन्त विलक्षण वाणी से स्तुति की। अनन्तर ज्वालामुखी महेश्वरी ने स्तुतियों से अत्यन्त तुष्ट हो लोकपति विष्णु से गम्भीर वाणी में कहा ॥३०-३२॥

"हे लोकों के स्वामिन् विष्णो ! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ, अपना इच्छित वर मांग। तुझे सब यथावत् दूंगी, तेरे लिये कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं। मेरी स्वामिनी गौरीदेवी का तू बड़ा पूजित भाई है इस लिये भी सब प्रकारसे तू वर पाने योग्य ही है।" इसप्रकार ज्वालामुखी के वचन सुनकर विष्णुने हाथ जोड़कर कहा, "हे देवि ! मेरा कथन सुन। प्राचीन काल में त्रिपुरा महेशानी ने मुझे सृष्टि की रक्षाके लिये रचा; उन्हीं की आज्ञासे लोकरक्षण विधिमें मैं सतत उद्यत रहा। उस

जगतीनाशनोद्युक्तो बाधतेऽखिलदेवताः । तं जेतुं प्रार्थितो देवैरहं स्वबलसंवृतः ॥३७॥
युध्यमानस्तेन युद्धे हीनवीर्योऽभवं ननु । चक्रेण रहितस्तेन तदर्थं त्वामुपस्थितः ॥३८॥
चक्रदानेन जगतीं रक्षाऽद्य सचराऽचरीम् । अथ वा जहि दैत्येशं त्वमेव बलवत्तरा ॥३९॥
श्रुत्वेत्थं प्रार्थितं विष्णोर्देवी ज्वालामुखी तदा ।
आह सस्मितया वाचा सम्बोध्य कमलापतिम् ॥४०॥
नारायण! त्वं दयिता भ्राता गौर्यास्त्रिविक्रमः । अहमाज्ञाकरी तस्यास्त्वं तस्मान्मान्य एव हि ॥४१॥
निग्रहे दैत्यराजस्य शक्ताऽहमपि साम्प्रतम् । आज्ञा श्रीत्रिपुरेशान्याः सर्वेषां मूर्ध्नि तिष्ठति ॥४२॥
वायुर्वाति सदा सूर्य उदेतीन्दुः सतारकः । धरा लोकं धारयति वारिधिर्नातिवर्तते ॥४३॥
यद्भयात्तदहं कस्मान्न बिभेमि निरर्गला । सन्तुष्टा च त्वत्तपसा गृहाण निजमायुधम् ॥४४॥

विषय में इन दिनों कोई मुर नामसे विख्यात दैत्यराज जगत्के नाश करने को तैयार हो सब देवगणको त्रस्त करता है। उसे जीतने के लिये देवगण द्वारा प्रार्थना किया हुआ मैं अपने बल सहित युद्ध करने लगा। उससे युद्ध करते-करते मैं चक्र से विहीन हो अति हीनपराक्रमवाला बन गया। इस लि मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ ॥३३-३८॥

आप कृपा कर मुझे चक्रदान से अनुग्रहयुक्त बना सचराचर जगत् की रक्षा करें। अथवा आप ही बलवत्तर शक्तिसे सम्पन्न हैं तो उस दैत्यको मार दें।" इसप्रकार श्रीविष्णु की प्रार्थना सुनकर ज्वालामुखी ने तब कमलापति को सम्बोधन कर ईषत् मन्द स्मित से वचन कहे "हे नारायण ! तू तीनों लोकों का पराक्रमशील सब प्रकार के दान-दाक्षिण्यादि से युक्त गौरी का भाई है, मैं उसकी आज्ञा का पालन करने वाली हूँ इस लिये तू मेरे लिये मान्य है ही ॥३९-४१॥

प्राप्त काल में मैं भी दैत्यराज को पराजित करने में समर्थ हूँ। त्रिपुरेशानी की आज्ञा सब के लिये शिरोधार्य रहती है। जिसके भय से सदा वायु अपने आप बहती है, सूर्य समय पर प्रकाशित होता है, तारागण समेत चन्द्रमा उदय होता है, पृथ्वीलोक को धारण करती है समुद्र अपनी तट की मर्यादा को उल्लङ्घन नहीं करता। ये सब जिसके भय से सुचारु नियमपूर्वक कार्य करते हैं तो मैं निरर्गला (स्वतन्त्र) क्यों न उससे डरूंगी ? तेरी तपस्या से मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ तू अपने अस्त्र को ले" ॥४२-४४॥ इस प्रकार कह कर अपने आयुध से सहस्रार सुदर्शन को निकालका

इत्युक्त्वा स्वायुधाच्चक्रं सहस्रारं सुदर्शनम् । सहस्रज्वालया युक्तं सर्वशक्तिसमन्वितम्॥ ४५॥
निस्सार्य प्रददौ तस्मै विष्णवे प्रीतमानसा । इदं सुदर्शनं चक्रं महासारं ततोऽधिकम् ॥४६॥
अमोघमप्रतीकार्यं मानसं ते भविष्यति । अनेन जेता लोकानां नाऽजेयस्तव विद्यते ॥४७॥
गच्छ दैत्यं जहि क्षिप्रं लोकं श्रेयोयुतं कुरु । इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता सद्यः स्वप्नदृष्टेव सा शिवा ॥४८॥
अथ चक्रं समासाद्य मुरं समरआह्वयत् । दैत्यसेनापरिवृतं तत्क्षणेनैव श्रीधरः ॥४९॥
सुदर्शनेन भस्मत्वमनयच्छलभं यथा । इति ते कथितं राम विष्णोश्चक्राऽऽप्तिकारणम् ॥५०॥
अथ कामो यथा भस्मीभूतस्तच्छृणु भार्गव ! । प्रणीय पार्वतीं देवस्तप आतिष्ठदुत्तमम् ॥५१॥
अथ कालेन महता तारको नाम दैत्यराट् । शूरपद्माऽभिधानोऽपि तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ॥५२॥
अष्टादशाऽण्डाऽऽधिपत्यं चक्रतुर्बलदर्पितौ । अथ ताभ्यां पराभूतो युधीन्द्रः सुरनायकः ॥५३॥

अत्यन्त प्रसन्न मनसे उसे विष्णुको दे दिया यह सुदर्शन चक्र महासारभूत पहले वालेसे भी अधिक प्रभावक, अत्यर्थ और किसी के द्वारा भी इसका प्रतिरोध नहीं होने वाला है इससे तेरा मनोबल अत्यन्त दृढ़ होगा। इसकी सहायता से तू सब लोकों को जीतने वाला बनेगा तथा कोई भी तेरे से अजेय नहीं होगा । (अब) जा एवं शीघ्र दैत्य को मार; सब लोक में मङ्गल विधान कर।" इस प्रकार कह कर स्वप्न में देखे दृश्य के समान ही वह शिवा अदृश्य हो गई ॥४६-४८॥

श्रीपति भगवान् विष्णु ने चक्र पाकर दैत्य सेना सहित मुर को युद्ध में ललकारा, तत्काल ही जैसे अग्नि कीट-पतङ्ग को भस्म कर देती है उसी प्रकार सुदर्शन से उसे जला दिया। इस प्रकार हे परशुराम ! तुझे विष्णु को चक्र की प्राप्ति का कारण कह दिया। हेभृगुनन्दन ! अब काम जिस प्रकार भस्म हुआ उसे सुन। पार्वती से विवाह करके महादेव शिव ने अति उग्र तपस्या की। अनन्तर बहुत समय के बाद तारक नामका दैत्यराज एवं शूरपद्म नामवाला दूसरा दैत्य भी अत्यन्त कठिन तपकर बलगर्वित हो अठारह ब्रह्माण्डों के स्वामी हो गए। तदनन्तर युद्ध में उन दोनों से पराजित हो देवराज इन्द्र ने दीन दशा को प्राप्त हो देवगण के साथ श्रीब्रह्माजी की प्रार्थना की। उसने सम्पूर्ण तीनों भुवनों की सम्पत्ति नष्ट हुए देवराज को इस प्रकार हाथ

उपतस्थौ विधातारं दीनो देवगणैर्वृतः । स दृष्ट्वैवंविधं शक्रं नष्टत्रिभुवनश्रियम् ॥५४॥
विचार्य प्राह देवेशं प्रश्रयाऽवनतं स्थितम् । शृणु ! शक्र महानेष दैत्यराजो बलैर्युतः ॥५५॥
तारकः शूरपद्मश्च मयाऽग्रतः (ग्रे तौ?) समीहितौ । न त्वया वा तथाऽन्येन जेतुं शक्यौ कथञ्चन।५६।
विना महादेवसुतं स्वामिनं दिष्टमीदृशम् । तद्गच्छ प्रार्थय शिवं पुत्रोत्पादनकर्मणि ॥५७॥
तत्सुतस्तव सेनायाः पतिर्भूत्वाऽसुरेश्वरम् । पराजित्य त्रिभुवनश्रियं दास्यति पूर्ववत् ॥५८॥
श्रुत्वा विधिवचो देवपतिर्देवगणैर्वृतः । ययौ त्रिलोचनं देवं प्रार्थितुं जवतस्तदा ॥५९॥
तत्र गत्वा देवदेवं नीलकण्ठमुमापतिम् । अपश्यद्विबुधाऽधीशः शान्तसर्वाश्रयं तदा ॥६०॥
सनकाद्यैर्मुनिगणैः सत्त्वोर्जितमहाऽऽशयैः । शारदाऽम्बुनिभस्वच्छशान्तचित्तैर्निरञ्जनैः ॥६१॥
परिवृतं मीलिताक्षं ज्वलितं तपसां गणैः । न तत्र कश्चिच्चलति न निःश्वसिति नेक्षते ॥६२॥
परस्परं न पश्यन्ति न वदन्त्यपि कर्हिचित् । न पक्षिणोऽपि वाशन्ति न वायुर्वाति वेगतः ॥६३॥

जोड़े एवं भक्ति विनत अवस्था में देख ब्रह्मा विचार कर बोले, "हे इन्द्र ! यह सैन्यबल की शक्ति से युक्त दैत्य महापराक्रमी है, मैं ने तारक और शूरपद्म इन दोनों को ही सामने से देखा है; ये न तो तेरे द्वारा अथवा न अन्य किसी व्यक्ति द्वारा जीते जा सकते। महादेव के पुत्रदेव स्वामी कार्तिकेय को छोड़ (कोई भी इन्हें पराजित करने में समर्थ नहीं।) यही भाग्य की लिपि है। इसलिये तू जा और पुत्र उत्पन्न करने के काम के लिये भगवान् शिव की प्रार्थना कर। उसका पुत्र तेरी सेना का सेनापति होकर इस दैत्यराज को हरा कर तुझ देवेश को पूर्वकालके समान त्रिभुवन की लक्ष्मी प्रदान करेगा" ॥४६-५८॥

देवगण के साथ सुरराज इन्द्र यह वाणी सुनकर अतिशीघ्र त्रिलोचन महादेव की प्रार्थना करने के लिये गया। वहां जाकर देवपति ने शान्ति के सम्पूर्णतः आश्रयरूप भगवान् देव-देव नीलकण्ठ उमापति को देखा। उसने तपस्या से सत्त्वगुण की अभिवृद्धि से सब ओर से शान्ति प्राप्त किये, शारदीय निर्मल जलकी तरह स्वच्छ, शान्तचित्त, निर्मल-अन्तःकरणवाले सनकादि महर्षिगण द्वारा सेवित जो शिव आँखें बन्द किये; ध्यानमें मग्न समाहित चित्तवाले तपस्वीगण से परिवेष्टित सब ओर से विशेष रूप से प्रकाशित, शान्त आश्रयवाले (भगवान् उमापति को) देखा ॥५६-६३॥

वहां न कोई चलता है; न निःश्वास लेता है एवं न देखता है। न वे कोई आपस में देखते हैं, न कहीं कोई किसी

सूर्यो नैव प्रतपति न स्पन्दन्ते च शाखिनः । चित्राऽऽलिखितवत्तत्र निष्क्रियं प्रत्यचेष्टत ॥६४॥
तत्र दूरेऽपि संस्थातुं नाऽशकद्देवभूपतिः । तपस्तेजः (प्रभावेण चाकचिक्यं समागमत् ?)।
चिन्तयित्वा चिरंतत्र नाऽन्तं प्राप कथञ्चन ॥६५॥
अथ सस्मार वचसां पतिं गुरुमनन्यधीः । नाऽन्योऽत्राऽलं मम त्राण इति मत्वा शतक्रतुः॥६६॥
स्मृतमात्रो योगिराजः समायातः शतक्रतुम् । प्राप्तं गुरुं समालोक्य देवेशः सुखितोबभौ ॥६७॥
अथेन्द्रस्तस्य चरणौ प्रपीड्य शिरसा नतः । बद्धाञ्जलिः प्रत्युवाच दीनोऽत्यन्तसुदुःखितः ॥६८॥
मामेवं पश्यसि गुरो हृतराज्यं सुदुःखितम् । आपद्वारिधिनिर्मग्नमनन्यशरणं चिरम् ॥६९॥
आज्ञप्तो लोकपतिना प्रार्थितुं नीलकन्धरम् । उत्पादनाय पुत्रस्य तदेवमुपसर्पितुम् ॥७०॥
असमर्थः किं करोमि कथं मे स्यात् समीहितम्।
आचक्ष्वाऽत्रोचितां युक्तिं यथा मे स्यात् समीहितम् ॥७१॥

से बातें करते हैं। न पक्षिगण चहकते हैं, न वेग से वायु बहता है, न सूर्य प्रचण्ड रूप से तपता है और न वृक्ष थोड़ीभी हलचल करते हैं। सब ही वहां चित्र में लिखे के समान क्रिया और चेष्टारहित हैं। वहां देवराज दूर पर भी खड़ा नहीं रह सका। तपस्या, तेज, क्षान्ति, दान्ति इनसे प्रभावित अत्यन्त विलक्षण चाकचिक्य स्थिति में रह सोचते हुए वह दीर्घ समय तक उसे क्या करना चाहिये इसका किसी प्रकार निश्चय न कर पाया ॥६३-६५॥

अनन्तर देवराज ने इस विषय में स्वगुरुको छोड़ मेरा त्राण करने में कोई भी समर्थ नहीं है इस एकनिष्ठ बुद्धि से इन्द्र ने वाणी के स्वामी बृहस्पति का स्मरण किया। योगिराज बृहस्पति स्मरण करने से ही शतक्रतु देवराज के पास आये। वह गुरु को आया देख अत्यन्त आनन्दित हुआ। तदनन्तर इन्द्र ने उनके चरणों को दबा कर शिर से नत हो हाथ जोड़ कर अत्यन्त दुःखित हो दीनभाव से कहा ॥६६-६८॥

"हे गुरुदेव! आप राज्य छीने गये, अत्यन्त दुःखित, आपत्ति रूपी समुद्र में डूबे, दीर्घ कालसे एकमात्र आपकी ही शरण में प्राप्त मुझे इस दुरवस्था में देखते हैं। लोकपति ब्रह्मा ने मुझे नीलकण्ठ शिव की प्रार्थना करने की आज्ञा दी, स्वपुत्र के उत्पादन के लिये उन्हें प्रसन्न करने में मैंअसमर्थ हूँ, कहिये मैं क्या करूँ ? किस प्रकार मेरा अभीष्ट पूर्ण हो इस विषय में आप मुझे समुचित युक्ति बतलावें जैसे मेरा मनोरथ सिद्ध हो।" ॥६९-७१॥

श्रुत्वेन्द्रवचनं जीवश्चिन्तयित्वाऽखिलाऽऽगमम् ।
प्राहेन्द्रकार्यसंसिध्द्यै हर्षयन्निव वज्रिणम् ॥७

शतक्रतो ! शृणु वचो गौरीं तोषय भक्तितः ।
सा ते विधास्यति श्रेयो नाऽन्यदत्र परायणम् ॥७

इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो जीवो वायुनुन्नाऽभ्रलेशवत् । अथ देवेश आतिष्ठद्गौरीं तोषयितुं तपः ॥७

वर्षमेकं ततस्तुष्टा गौरी सन्निहिताऽभवत् ।
शतक्रतो ! ब्रूहि यत्ते मनसि ह्यभिवाञ्छितम् ॥७

इति प्राह तदा देवपतिर्देवीमवैक्षत । प्रणम्य दण्डवत् स्तुत्वा विविधैः स्तुतिभिस्तदा ॥७

प्राह गौरीं देवपतिः कृताञ्जलिपुटस्तदा । देव्यहं हृतराज्यश्रीरसुरेण किलाऽभवम् ॥७

तत्र प्राह विधाता मां महादेवसुतात्तव । भवेदीप्सितमित्येवं नाऽन्यस्ते कार्यसाधकः ॥७

तदहं स्वार्थसंसिद्ध्यै समायातस्त्विहाऽधुना । दृष्ट्वा तपस्यभिरतं महादेवं त्रिलोचनम् ॥७

इन्द्र के वचन सुनकर जीव (.बृहस्पति) ने सम्पूर्ण आगमों का चिन्तन-मनन कर इन्द्र के कार्य की सिद्धि लिये उसे हर्षित करते हुए से कहा, "हे इन्द्र ! मेरी बात सुन, तू भक्ति से भगवती गौरी को सन्तुष्ट कर; वह ही कल्याण करेगी । इसमें अन्य कोई उपाय नहीं ।" इसप्रकार कहकर बृहस्पति तत्काल इस तरह अदृश्य हो गये जैसे के पहल वायु से छिन्न भिन्न हो जाते हैं । अनन्तर देवेश ने भगवती गौरी को सन्तुष्ट करने को एक वर्ष तप किया । तब गौरी प्रसन्न होकर प्रकट हुई और बोली, "हे इन्द्र ! तेरे मन में जो अभिवाञ्छित हो बता" ॥७२-७५॥

इस प्रकार जब देवी ने कहा तो इन्द्र ने उसे देखा और दण्डवत् प्रणाम कर नाना स्तुतियों से उसे प्रसन्न कि तब देवपतिने हाथ जोड़ कर गौरी को कहा, "हे देवि ! दैत्य ने मेरा राज्य और लक्ष्मी दोनों छीन लिये हैं। इस में विधाता ब्रह्मा ने मुझे बताया कि महादेव के पुत्र से तेरा अभीष्ट सिद्ध होगा अन्य कोई तेरा कार्य का साधक इसलिये अभी जब मैं अपने प्रयोजन को पूर्ण साधने के लिये उनके यहां आया तो तपस्या करते महादेव त्रिलोचनके आशाओं के नष्ट होने से अधिक निराश हो अपने गुरु बृहस्पति द्वारा प्रेरणा पाकर बाद में आपकी शरण में आय

सर्वथा नष्टसर्वाऽऽशो गुरुणा प्रेरितस्ततः । त्वमेव शरणं प्राप्तः संरक्षाऽऽपन्महार्णवात् ।
इत्युक्त्वा दण्डवद्भूयः पपात तत्पदाऽन्तिके ॥८०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्यानान्तर्गतगौर्युपाख्याने-तारकशूरपद्मभ्यां पराभूतस्य स्वर्गभ्रष्टस्येन्द्रस्य श्रीगुरुप्रसादात्त्रिपुरांशायागौर्यास्तपस्याप्रयत्नेन देवीदर्शनवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२७६४॥

मुझे सर्वथा आपत्तियों के महासमुद्र से बचाइये और मेरी रक्षा कीजिये ।" यह कहते हुए फिर उस भगवती के चरणों के निकट दण्डवत् प्रणाम कर गिर गया ॥७६-८०॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड के कामोपाख्यान में विष्णु को पुनः सुदर्शन-चक्रप्रदान एवंदेवसेनापति कार्त्तिकेय स्वामी को पुत्ररूप में पाने के लिए शिव को प्रसन्न करने के पूर्व देवगुरु के आदेश से इन्द्र द्वारा पार्वती को तप द्वारा त्रिपुरांशा गौरी की उपासना और देवराज को भगवती के दर्शन वर्णननामक प्रकरणवाला तैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

सन्तानविषये गौर्या स्वस्थितिस्पष्टीकरणवर्णनम्

श्रुत्वेत्थमिन्द्रवचनमुवाच तु महेश्वरी । शृणु हर्यश्व ! मद्वाक्यं दुर्घटं प्रतिभाति मे ॥१॥
न मे सन्तानयोगोऽस्ति ऋषिपत्न्यास्तु शापतः । महादेवस्य च तथा मदन्यत्र सुतोद्भवः ॥२॥
तत् कथं स्यात्तव हितं सर्वथा भाति दुष्करम् । निशम्यैवं वचो गौर्याः शक्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥३॥
देवि नूनं तव कथं शापः केन कुतः कथम् । त्वं सर्वलोकसम्पूज्या महादेवेऽपि वा कथम् ॥४॥
वदैतदिति चित्रं मे भाति शङ्करवल्लभे । हरिणा प्रार्थिता सैवं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥५॥
शृणु शक्र यथा शापो मया प्राप्तः शिवेन च । पुराऽहं हिमशैलस्य पितुर्गेहे स्थिता यदा ॥६॥
तदा कदाचित् सखिभिः संवृता वनमभ्यगाम् । शरत्कालेऽरण्यशोभां द्रष्टुमुत्सुकिता सती ॥७॥

चौबीसवां अध्याय

महेश्वरी पार्वती ने इन्द्र के इस प्रकार वचन सुन कहा, "हे इन्द्र ! मेरे वचन सुन; जो तू ने कहा सो सब कठिनता से ही घटनेवाला मुझे लगता है । ऋषि पत्नी के शाप से मेरे सन्तान होने का योग नहीं है और महादेव के भी मेरे से अन्य स्थान पर सुतोद्भव (पुत्र की उत्पत्ति का) योग नहीं है ॥१-२॥

इसलिये तब कल्याण किस प्रकार हो वह सब दुष्कर ही प्रतीत होता है ।" इस प्रकार गौरी के वाक्य सुन कर हाथ जोड़ कर देवराज बोला, "हे देवि ! अवश्य ही आप को शोप किस प्रकार हुआ ? किस ने दिया ? किस कारण से और क्यों दिया ? आप सम्पूर्ण लोकों की पूज्या हैं ? उसी प्रकार भगवान् भूतनाथ महादेव को भी क्यों शाप हुआ ? इसे मुझे बतावें । हे शङ्करवल्लभे ! मुझे सब अत्यन्त विचित्र लगता है ।" इन्द्र द्वारा प्रार्थना की जाने पर वह इस प्रकार बताने लगी ॥३-५॥

"हे इन्द्र ! मेरे द्वारा और शिव द्वारा जैसे शाप की प्राप्तिका योग बना, सो सुन । प्राचीन काल में जब मैं ही अपने पिता हिमाचल के यहां थी तब किसी दिन अपनी सहेलियों के साथ वन में गई । मुझे शरद् ऋतु में वन की

तदा पित्रा समादिष्टाः सहस्रं वनचारिणः । मद्रक्षणायाऽनुगताः वनान्येवमहङ्कृता ॥८॥
अथ तत्र कदाचिद्वै मया मृगी दृष्टा शुभा । अदृष्टपूर्वा रुचिरा मृगेण सह सङ्गता ॥९॥
क्रीडार्थं तां समानेतुमादिष्टा वनचारिणः । मिथुनं मृगयोः सर्वे परिवव्रुः समन्ततः ॥१०॥
मिथुनं तत् समानीय ददुर्मह्यं वनेचराः । अथ तत्र निःश्वसन्ती रुदन्ती हरिणी पुरः ॥११॥
अहं देवि सुहोत्राऽऽख्यः काश्यपस्तपसि स्थितः ।
पत्न्याऽनया भरद्वाजसुतयाऽस्मिन् महावने ॥१२॥
कुरङ्गमिथुनं दृष्ट्वा तद्रतिर्मेऽभियाचता । तत्कुरङ्गशरीरेण स्थिता स्वरतिकारणात् ॥१३॥
तत्र क्षमस्वाऽपवृत्तमनया कृतमज्ञया । इति सम्प्रार्थिता तेन शाप एवंविधो मम ॥१४॥
महादेवस्याऽपि शृणु शापहेतुं पुरातनम् । पुरा त्रेतामुखे विप्राः कर्मणेन्द्रादिकान् सुरान् ॥१५॥
अत्यवर्तन्त तपसा महता सुसमेधिताः । चक्रुर्देवान् वशे सेन्द्रान् ससिद्धाऽसुरराक्षसान् ॥१६॥

शोभा देखने को अत्यन्त उत्कण्ठित देख पिता ने हजारों वनचर लोगों को मेरी रक्षा के लिये पीछे रहने का आदेश दिया; इस प्रकार मैं वनों की सुषमा को देखने गई ॥६-८॥

अनन्तर वहां मैंने अत्यन्त सुन्दर, लोचनों को सुख देनेवाली मृगी को देखा । यह पहले कभी न देखी गई रूपवती सुन्दर मृगी मृगके साथ अपनी रतिक्रीड़ा में आसक्त थी । मैंने अपने खेलने के लिये वनचारियों को इसे लाने का आदेश दिया, चारों ओर से उस मृग के जोड़े को वे लोग घेर चुके । उन वनेचरों ने उस युगल (जोड़ी) को लाकर मुझे दे दिया । तदनन्तर वहां मेरे सामने निसासें निकालती हुई हरिणी रोने लगी ।तब मृग ने कहा, "हे देवि ! मैं कश्यपगोत्री सुहोत्र नामक तपस्या में स्थित इस भरद्वाज की पुत्री अपनी पत्नी के साथ इस महावन में रहता हूँ । वन में मृगों के जोड़े को रतिक्रीडा करते देख उनके समान ही रति की कामना मेरे से मांगती हुई उसी मृगीरूप में अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए स्थित हो गई । इस विषयमें इस अज्ञ द्वारा किया गया अपवृत्त (असद् आचरण) को आप क्षमा करें । इस प्रकार सम्प्रार्थना किए जाने पर उसने मुझे इस आशय का शाप दिया । महादेवजी का भी पुरातन शाप का हेतु सुन । प्राचीन काल में त्रेता के आरम्भ में ब्राह्मण लोगों ने अपने शुभकर्मों एवं महान तप से अपनी उन्नति कर इन्द्र आदि सुरगण का भी अतिक्रमण किया । उन्होंने इन्द्र सहित देवगण सिद्ध, असुर, और राक्षस लोगों को अपने वश में कर लिया । उस समय देवगण भी ब्राह्मणों द्वारा क्या आज्ञा मिलती है इसकी प्रतीक्षा में रहे ॥९-१६॥

आज्ञाप्रतीक्षका देवा विप्राणामभवन् तदा । एवं त्रिलोकीं विप्राणां वशगां वीक्ष्य सर्वथा ॥१७॥
हतप्रभाव इन्द्रोऽभूद्विप्राज्ञापालकः स्वतः । अथ शक्रो देवगणवृतो ब्रह्माणमभ्ययौ ॥१८॥
निवेदयच्च दीनात्मा विप्राऽधीनत्वमात्मनः। श्रुत्वा विधिः प्राह हरिं नैतत् प्रतिविधावहम् ॥१९॥
समर्थोऽस्मि यतस्तेषां बिभेमि तपसां बलात्। इत्युक्त्वा देवसहितो विष्णुमभ्यागमद्विधिः॥२०॥
निवेदयद् ववृत्तं यथावच्चतुराननः । श्रुत्वा नारायणः प्राह ब्राह्मणानां तपोबलम् ॥२१॥
निशाम्य विधिमामन्त्र्य शृणु ब्रह्मन् वचो मम । अद्य विप्रैर्जितं सर्वं दारुकावनवासिभिः ॥२२॥
तपसां राशिभिस्तस्मादुपायो न हि दृश्यते । तेषां निरोधे क्षणतो भस्मीकुर्युर्जगत्त्रयम् ॥२३॥
ब्रह्माण्डानां शतस्याऽपि स्रष्टुमर्हाः पुनः क्षणात् ।
व्यवसायो नाऽत्र कश्चित् सफलो दृश्यते मम ॥२४॥
तद्गच्छामो महादेवं स श्रेयो नो विधास्यति । इत्युक्त्वा सहितो ब्रह्ममुखैः कैलासमागमत् ॥२५॥

इस प्रकार सर्वथा विप्रगण के वशीभूत हुई त्रिलोकी को देख इन्द्र का प्रभाव क्षीण हो गया। वह स्वयं ही ब्राह्मणों की आज्ञा का प्रतिपालन करनेवाला बन गया। तदनन्तर इन्द्र देवगणसहित श्रीब्रह्मा के पास गया। उसने अत्यन्त दीनभावसे ब्राह्मणोंके अधीन होने की अपनी बात कही। सब वृत्तान्तसुनकर श्रीब्रह्माने इन्द्रको कहा, "इसका उपाय करने में मैं समर्थ नहीं हूँ क्योंकि उनकी तपस्याके बल से अत्यन्त भयभीत हूँ।" इसप्रकार कह कर लोकपितामह श्रीब्रह्मा देवगण सहित विष्णु के निकट गए। श्रीब्रह्मा ने यथावत् देवगण का वृत्तान्त विष्णु को सुनाया। सुन कर नारायण ने ब्राह्मणों के तपोबल के प्रभाव को कहा। यह सब देख कर उसने ब्रह्माको बुला कर कहा, "हे ब्रह्मन्! मेरा वचन सुन! दारुकावन में निवास करने वाले ब्राह्मणगण ने सब को जीत लिया। उन तपःपूतशरीरवाले से तपोनिधिश्रेष्ठ ब्राह्मणों ने जो किया है उसके प्रतीकार करने का अभी कोई उपाय नहीं दीखता। उनका निरोध करने से वे क्षणमात्र में ही तीनों लोकों को भस्म कर सकते हैं ॥१७-२३॥

वे क्षण में सैकड़ों ब्रह्माण्डों को बना सकने की सामर्थ्य रखते हैं। इस विषय में मुझे कोई भी प्रयत्न सफल हो यह सम्भव नहीं दीखता। इसलिए आओ हम लोग, महादेव के पास चलें; वह हमारा कल्याण साधन करेंगे ॥२४-२५॥

त्वा शिवं बद्धकरास्तस्थुर्विष्णुमुखास्तदा । दृष्ट्वा विष्णुं सुरैर्युक्तं विधिञ्च प्राह शङ्करः ॥२६॥
शृण्वन्तु विबुधाः सर्वे वाक्यमत्र यथाविधम् । जानामि भवतामत्र समागमनकारणम् ॥२७॥
अद्य विप्रास्तपोराशिज्वालामालापरीवृताः । भस्मीकुर्युः प्राप्तमात्रं वह्निज्वालास्तृणं यथा॥२८॥
तदत्र कृत्यं निश्चेतुं मन्त्रयामः सुमन्त्रिभिः ।
इत्युक्त्वाऽन्यान् विसृज्याऽथ प्रधानसुरनायकैः ॥२९॥
मन्त्रयामास सुचिरमुपन्यस्य पृथक् पृथक् । अथाऽऽह पुण्डरीकाक्ष उपायोऽन्यो न रोचते॥३०॥
अन्यत्र छद्मना जेतुमशक्यास्ते महीसुराः । तद्गच्छतु भवस्तत्र मनोहरवपुर्भृशम् ॥३१॥
विप्रदारान्मोहयित्वा धर्माच्च्यावयतु द्रुतम् । धर्मच्युता यदा विप्रा जेतुं शक्यास्तु सर्वथा ॥३२॥
एष मेऽभिमतः पक्षः सर्वथा ह्यभिरोचते । श्रुत्वेत्थं केशववचस्तुष्टा विधिमुखाः सुराः ॥३३॥

यह कह श्रीविष्णु ब्रह्मप्रमुख इन्द्रादि देवगण सहित कैलास को आ गये । उस समय विष्णु प्रमुख देवगण हाथजोड़ कर शिव को प्रणाम कर (स्थित हो गये) । श्रीशंकर ने देवगण सहित विष्णु और ब्रह्मा को देखकर कहा, "हे देव-वृन्द ! आप सभी मेरे कथन को सुनिये जिस प्रकार से आप यहाँ आए हैं उसका कारण मैं जानता हूँ" ॥२६-२७॥

आज वे विप्रगण तपोराशिकी जाज्वल्यमान ज्वालामालासे परिपूर्ण हैं, उनके पास जाने से ही जैसे अग्नि की धधकती ज्वाला तृण को तुरन्त जला देती है वैसे ही भस्म करदे सकते हैं; इसलिए अच्छी मन्त्रणा करनेवाले आप करने योग्य कार्य को निश्चित करने के लिए सब के साथ भलीप्रकार विचार करें ।" इस प्रकार कह कर अन्य सब देवगण को विदाकर तदनन्तर प्रधान सुरनायकों के साथ दीर्घकाल तक उन्हें पृथक्-पृथक् लेकर मन्त्रणा की । तत्पश्चात् पुण्डरीकाक्ष श्रीविष्णु ने कहा, "अन्य कोई उपाय मुझे नहीं भाता; बिना छल किये ये भूदेव गण जीते नहीं जासकते । इसलिए अत्यन्त मनोहर शरीरधारी शिव वहां जाँय, विप्रपत्नियों को मोहकर अतिशीघ्र उन्हें धर्ममार्ग से विचलित करें । जब वे विप्रगण धर्ममार्ग से च्युत हो जायंगे तब सर्वथा जीते जा सकते हैं" ॥२८-३२॥

यह मेरा अभिमत पक्ष है जो मुझे सर्वथा समुचित प्रतीत होता है । इस प्रकार केशव के कथन को सुनकर

समीड्य शङ्करं देवं चोदयामासुराशिषे । शिवोऽपि देवकार्यार्थं वृषाऽऽरूढः सपार्षदः ॥३४॥
जगाम तत्र विप्रास्ते वने यत्र तपःपराः । अथ तान् भूसुरान् सर्वानभिलक्ष्य विनिर्गतान् ॥३५॥
समित्पुष्पाद्याहृतये प्रविवेश तदाश्रमान् । कृत्वा रूपं सुरुचिरं कोटिमन्मथसुन्दरम् ॥३६॥
दर्शयामास दारेषु चाऽऽत्मानं तादृशं शिवः ।
तं तादृशं समालोक्य विप्राणां ताः सुयोषितः ॥३७॥
कामबाणाऽऽहताः सर्वाः शिवमेवाऽन्वयुस्तदा । निरुध्यमाना पुत्राद्यैर्विस्मृतप्रियबान्धवाः॥३८॥
अन्वगुस्त्यक्तसर्वस्वाः शिवेनाऽत्यन्तमोहिताः ।
अथ ताभिः परिवृतः शिवोऽगच्छद्वनान्तरम् ॥३९॥
कामाचारविनोदैस्ता मोहयामास शङ्करः । सङ्गता हि (?) शिवेनैवं सर्वा गर्भं दधुस्तदा ॥४०॥
उपभुज्य विप्रसतीः आह देवः पिनाकभृत् । यात स्वभवनान्याशु भर्तारो यत्सुकोपनाः ॥४१॥

ब्रह्मादिप्रमुख देवगण प्रसन्न हुए । शङ्कर भगवान् की सविधि पूजनकर उन्हें अपने कार्य की सिद्धि करने के लिए अनुरोध किया । शिव भी देवगण के कार्य को सिद्ध करने के लिए अपने पार्षदगण के सहित वृष पर आरूढ़ हो उस स्थान पर गए जहां वन में विप्रगण तपस्या कर रहे थे । तदनन्तर उन सभी विप्रगण को समिधा, पुष्प आदि लाने के लिये बाहर गए हुए देख उनके आश्रमों में शिवने प्रवेश किया ॥३३-३५॥

श्रीशिव ने करोड़ों कामदेवों का सा कमनीय, अत्यन्त नेत्रों को रुचिर लगनेवाला सुन्दर रूप बना उनकी पत्नियों को उसी प्रकार दिखाया । विप्रगण की वे पत्नियां श्रीशंकर को उस रूप में देख सभी कामबाण से पीडित हो उनके पीछे हो गयीं । उन्होंने पुत्र आदिके बहुत रोकने पर भी अपने प्रिय पति और बान्धवों को विस्मृत कर सब कुछ त्याग कर शिव के द्वारा अत्यन्त मोहित हो उनका पीछा किया । अनन्तर उनसे घेरे शंकर अन्य वन में चले गये ॥३६-३९॥

शङ्कर ने परम्पराप्राप्त कामशास्त्र की अपनी चातुरी से विनोद करके उन्हें मोहित कर दिया । श्रीशिव के साथ अङ्ग-सङ्ग करके इसप्रकार सभी ने गर्भ धारण कर लिया । तब विप्रगणकी सती पत्नियों को भोगकर पिनाकधारी शङ्कर ने कहा, "आप जल्दी ही अपने घर चली जांय क्यों कि आप लोगों के सब पतिदेव अति क्रोधी स्वभाव के हैं।

पुनः काले नु गच्छामः पुरः सन्ध्याऽतिवर्तते ।

एवं ता मुनिपत्न्यस्तु श्रुत्वा शङ्करभाषितम् ॥४२॥

जग्मुर्गेहाऽभिमुखतो भीता भर्त्रपचारतः । तदन्तरे मुनिगणाः फलपुष्पसमिद्ग्रहाः ॥४३॥

प्राप्ता गृहांस्तत्र दारान् वीक्ष्याऽतिविकृताऽऽकृतीन् ।

अभिलक्ष्य गर्भयुताः पत्नीः स्वाः सर्व एव ते ॥४४॥

शङ्किता अभवन् तत्र ज्ञात्वा तत्तपसो बलात् । महादेवाऽपचरितं चक्रुर्धुर्मुनिपुङ्गवाः ॥४५॥

जग्मुर्यत्र महादेवो भस्मीकुर्म इति क्रुधा ।

आगच्छतो मुनीन् दृष्ट्वा महादेवेति कोपनान् ॥४६॥

पलायनपरः शीघ्रमभवद्वृषकेतनः । पलायनपरं देवं नभोमार्गसमाश्रयम् ॥४७॥

दृष्ट्वा मुनिगणाः क्रुद्धाः शापं तस्मिन्नवाऽसृजुः ।

परक्षेत्रेष्वयं यस्मात् कामी बीजं स्वमुत्सृजत् ॥४८॥

तस्मादितः परञ्चाऽन्यस्त्रीषु षण्ढत्वमेष्यति । येन लिङ्गेन चाऽस्माकं पत्न्य एताः प्रदूषिताः ॥४९॥

फिर समय पर चलते हैं सामने सन्ध्या वेला भी आती है।" इसप्रकार वे मुनिपत्नियां शङ्कर के कथनको सुनकर पतियों के उपालम्भसे डरी हुई अपने घरों की ओर चलीं। इतने समयमें ही फल, पुष्प और समिधा लेकर मुनिगण अपने अपने घरों को लौटे; वहां सबने ही अत्यन्त विकृत आकृतिवाली अपनी उन पत्नियों को गर्भयुक्त देख सन्देह किया। इस विषय में तपस्या के बल से यह जान कर कि यह सब महादेव का अपचरित्र है वे मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मणगण बहुत क्रुद्ध हुए ॥४०-४५॥

वे वहां गये जहां शङ्कर थे। "तुम्हें भस्म करते हैं" इस प्रकार कहते क्रुद्ध हो मुनियों को आते देख अपने वृषकेतन नन्दी के ऊपर आरूढ़ हो महादेव शीघ्र ही भागने लगे। आकाशमार्गगामी भागते हुए शंकर को देख मुनिगण ने क्रुद्ध हो उन्हें शाप दिया, "इस कामी ने पर-क्षेत्र में जिस कारण से अपना बीज छोड़ा है इसलिए इसके बाद भविष्यमें अन्य पुरुषकी स्त्रियों में यह षण्ढभावको (नपुंसकता) प्राप्त करेगा। जिस लिङ्ग के माध्यम से हमारी इन पत्नियों को इसने दूषित किया इस परपत्नीगामी जार का वह लिङ्ग हमारे सामने ही सर्वथा

पतत्वस्मत्समक्षं तल्लिङ्गं जारस्य सर्वथा । एवं विप्रैः शिवः शप्तस्तस्मात्ते कथमीप्सितम् ॥५०॥
भवेदमरराजन्य न ह्यपत्यस्य संभवः । श्रुत्वेत्थं पार्वतीवाक्यमिन्द्रः पप्रच्छ सादरम् ॥५१॥
देव्यहं श्रोतुमिच्छामि शिवः किमकरोत्ततः ।
कथं छिन्नं तस्य लिङ्गं किं भूतं तत्तत्तः परम् ॥५२॥
पृष्ट्वैवं देवराजेन प्राह गौरी दिवस्पतिम् । एवं शापोत्तरं तस्य शिवस्याऽऽकाशगामिनः ॥५३॥
पपात लिङ्गं संछिन्नं दूरादाकाशमार्गतः । पतल्लिङ्गं समालोक्य ब्रह्मा विष्णुमचोदयत् ॥५४॥
एतल्लिङ्गं यदि पतेच्छूलिनः पृथिवीतले । शतधा पृथिवी शीर्णा भविष्यति न संशयः ॥५५॥
नाऽस्त्यन्यो धारको लोके विद्यते त्वामृते हरे ।
योन्याकृत्या धारयैतत् क्षोभशान्त्यै न चाऽन्यथा ॥५६॥
त्वामहं धारयिष्यामि योनिरूपेण संस्थितम् ।
इत्युक्त्वा पीठरूपेण स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ॥५६॥
योनिरूपेण तस्योर्द्ध्वं संस्थितः कमलेक्षणः । अथ लिङ्गं योनिमध्ये पपात क्षणतस्तदा ॥५८॥

गिर जाय ।" इस प्रकार ब्राह्मणों द्वारा शप्त हुए मेरे पतिदेव श्रीशिव हैं । इसलिए हे सुरराज ! तेरा अभीष्ट सिद्ध कैसे हो ? (मेरे) अपत्य का होना सम्भव नहीं ।" इस प्रकार पार्वती के वचन सुनकर इन्द्र ने आदरपूर्वक पूछा, "हे देवि ! मैं (आगे का वृत्तान्त) सुनना चाहता हूँ इसके पश्चात् श्रीशिव ने क्या किया ? उनका लिङ्ग कैसे छिन्न हुआ ? उसके बाद क्या हुआ ?" ॥४६-५२॥

इस प्रकार देवराज द्वारा पूछने पर गौरी ने उसे कहा, "ब्राह्मणों द्वारा शाप देने के बाद इस प्रकार आकाश मार्ग से जा रहे श्रीशिव का लिङ्ग उनसे पृथक् होकर गिरा । ब्रह्माने आकाश मार्ग से गिरते लिङ्ग को दूर से देख श्रीविष्णु को कहा, "पृथ्वी पर यदि यह श्रीशंकरजीका लिङ्ग गिरे तो निःसन्देह पृथ्वी शत खण्डों में विभक्त हो जायगी ॥५३-५५॥

हे विष्णो ! तुम्हारे विना अन्य कोई इसे धारणकरनेवाला संसार में नहीं है । इस क्षोभ की शान्ति के लिए योनिका आकार बना कर इसे धारण करो और कोई उपाय नहीं । योनिरूप से स्थित हुए तुम्हें मैं धारण करूंगा।" यह कहकर प्रजापति श्रीब्रह्मा पीठ रूप से स्थित हुए; कमलनेत्र श्रीविष्णु उनके उपरि भाग में योनि रूप से स्थित हो

पततस्तस्य वेगेन योनिस्तु निरभिद्यत । भित्त्वा योनिं पीठमध्ये प्राविशल्लिङ्गमद्भुतम् ॥५६॥
विष्णुर्ब्रह्माऽपि तल्लिङ्गं धारयामासतुर्बलात् ।
तद्भारेण धरां भूयो निविशन्तीं रसातलम् ॥६०॥
कम्पमानां हरिः शेषरूपी दृढमधारयत् । एतस्मिन्नन्तरे देवः शम्भुः प्रकुपितोऽभवत् ॥६१॥
तस्य क्रोधसमुद्भूतः पावको नेत्रनिःसृतः । जगद्दग्धुं समारेभे तद्दृश्यमिवाऽभवत् ॥६२॥
दह्यमाने सर्वलोके हा हा कारो महानभूत् । अथ देवाः सगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ॥६३॥
सिद्धाः पितृगणाः देवमुनयोऽन्येऽपि सर्वतः ।
अस्तुवन्नीलकण्ठं तं क्रुद्धं कालाऽन्तकं शिवम् ॥६४॥
यदा न क्षमते देवः शिवो लिङ्गस्य छेदनात् ।
तदा ब्रह्मा शिवोपस्थलिङ्गात्मा समजायत ॥६५॥
दृष्ट्वा लिङ्गोद्गमं तस्य शान्तमीषन्महेश्वरम् ।
विष्णुः कृताऽञ्जलिः प्राह स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः ॥६६॥
महादेव जगन्नाथ त्राहि लोकांश्चराऽचरान् । नश्यमानांस्तव क्रोधाऽग्निना तमुपसंहर ॥६७॥

गये। अनन्तर लिङ्ग योनि के मध्य में क्षण भर में गिरा तब उसके गिरने के वेग से ही योनि का भेदन हो गया। योनि को पार कर अद्भुत लिङ्ग ने पीठ के मध्य में प्रवेश किया। विष्णु एवं ब्रह्मा ने भी बलात् उस लिङ्ग को धारण किया। उसके भार से रसातल में नीचे जाती हुई धराको कम्पित देख शेषरूपी विष्णु ने उसे दृढ़रूप से धारण किया। इसके बाद देवशम्भु प्रकुपित हुए। उनके क्रोध से उत्पन्न आंखों से निकली अग्नि सारे जगत् को जलाने लगी वह दृश्य अत्यन्त ही अद्भुत सा हुआ ॥५९-६२॥

सम्पूर्ण लोक के जल जाने पर महान् हाहाकार हुआ। अनन्तर गन्धर्वों, विद्याधरों एवं बड़े सर्पों सहित देवगण, सिद्ध तथा पितृगण और अन्य भी देवमुनिगण सब ओर से आक्रुद्ध नीलकण्ठ कालान्तक शिव की स्तुति करने लगे। जब लिङ्गके छेदनकी देवाधिदेव शिव क्षमता न रख पाये तब ब्रह्मा बीज छोड़ने वाले शिवके साक्षात् लिङ्गरूपा ही बन गये। उसके स्वरूप लिंग के उद्भव को देख कर महेश्वर को कुछ शान्त जान विष्णु ने हाथ जोड़ बार-बार प्रणाम कर

तव यत् पतितं लिङ्गं पूजयामो वयं सदा ।

इत्युक्त्वा पुण्डरीकाक्षो लिङ्गे पूजामकल्पयत् ॥६८॥

विविधैरुपचाराऽऽद्यैः पूजयित्वा यथाविधि ।

परिक्रम्य नमस्कृत्य स्तुतिश्चक्रे विचित्रिताम् ॥६९॥

अथ लिङ्गपूजनेन शान्तः सन्निहितो भवः ।

जगाद विष्णुं सम्बोध्य विष्णो मद्वचनं शृणु ॥७०॥

अद्य त्वया पूजितोऽहं लिङ्गेऽस्मिन्नाऽऽदितस्ततः ।

अलौकिकी क्रिया चेयं कृता मत्प्रीतिहेतवे ॥७१॥

अद्य प्रभृत्यहं तस्माल्लिङ्ग एव प्रपूजनात् ।

भवामि नाऽन्यथा विष्णो ! सन्तुष्टः सर्वथा जनैः ॥७२॥

स्थापयन्तु च मां लिङ्गरूपिणं सर्वदेवताः । मर्त्याऽऽद्या अपि सर्वत्र तत्र सन्निधिमेम्यहम् ॥७३॥

ब्रह्मा पीठात्मको योनिर्विष्णुर्लिङ्गमहं त्रयम् । समष्ट्या परमेशस्य रूपं स्यात्तुर्यसंज्ञितम् ॥७४॥

स्तुतिपूर्वक कहा, "हे महादेव ! जगन्नाथ ! आप चराचर लोकों की रक्षा कीजिये; ये सभी आपकी क्रोधरूपी अग्नि से जले जाते हैं इसे आप समेट लें ॥६३-६७॥

आपका जो लिङ्ग पतित हुआ उसे हम सदा पूजेंगे।" यह कह कर पुण्डरीकनेत्र श्रीविष्णु ने लिंग में पूजा की स्थापना की। उनने यथाविधि विविध उपचार आदि से पूजा कर परिक्रमा कर नमस्कार कर विशिष्टचित्रित स्तुति की। तत्पश्चात् लिंग की पूजन से भगवान् शिव शान्त हों सन्निहित हो प्रगट हों गये और विष्णु को सम्बोधन कर बोले, "हे विष्णो ! मेरा वचन सुन। आदितः (सब से प्रथम) आज तू ने इस लिंग में मेरी पूजा की है यह तुमने अलौकिक क्रिया मेरे प्रीत्यर्थ की है ॥६८-७१॥

हे विष्णो ! आज से मैं लोगों द्वारा लिंग में ही पूजा जाने से सन्तुष्ट होऊँगा अन्य किसी रीति से नहीं। सर्वत्र ही सभी देवगण और मानव आदि भी लिङ्ग रूपी मुझे स्थापित करें वहां मैं सन्निधि करूंगा ॥७२-७३॥

पीठात्मक ब्रह्मा, योनिरूप विष्णु और लिंग रूप मैं ये तीनों ही साथ मिलकर समष्टिसे परमेश का तुर्य नामक

इत्युक्त्वा पूजयामास स्वयं शम्भुस्त्रिलोचनः । ब्रह्मा देवपतिर्देवाः सर्वे चक्रुस्तदर्चनम् ॥७५॥
एतद्वेश ते प्रोक्तं शिवस्य चरितं महत् । शापस्य च मया प्रोक्तं कारणं सर्वमादितः ॥७६॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये कामोपाख्यानान्तर्गतगौर्युपाख्याने शिवलिङ्ग-पीठिकापूजननिरूपणवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२८४०॥ 42-5

रूप हो।" यह कह कर स्वंय त्रिलोचन शम्भु ने उस तुर्य रूप का पूजन क्रिया और देवपति ब्रह्मा और सभी देवगण ने उसका अर्चन किया। हे देवराज ! यह तुम्हे श्रीशिव महान् चरित्र तथा शाप के कारण बतलाया और आदि से यथावत् सब वृत्तको कहा ॥७४-७६॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्डके कामोपाख्यान में ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों के सहित तुर्यस्वरूप शिव के लिङ्ग-पूजन का माहात्म्य नामक प्रकरण का चौतीसवां अध्याय समाप्त।

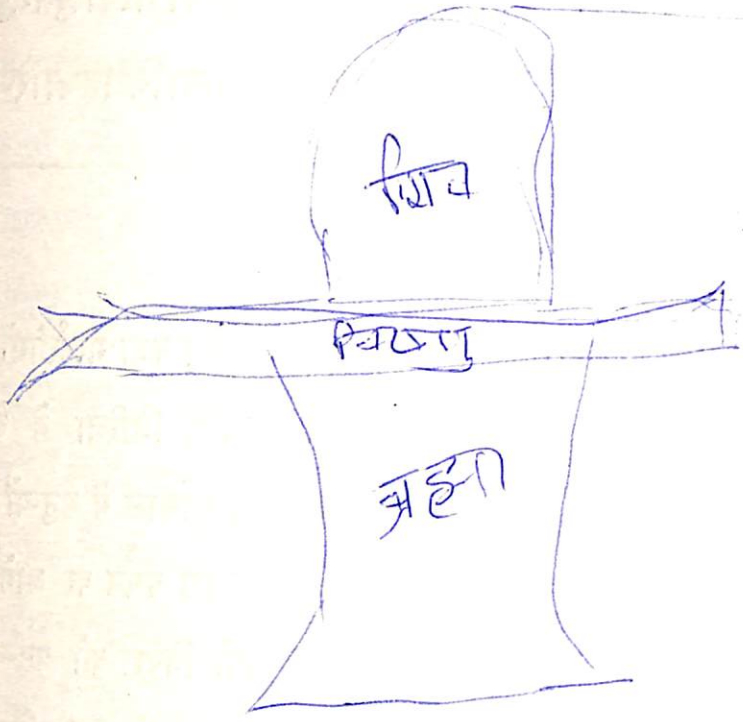

तुर्यात्मक लिङ्ग
ॐ तुर्याय शिवाय

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

श्रीशिवपूजायां लिङ्गमाहात्म्यवर्णनम्

अथ देवपतिर्गौरीं पुनः पप्रच्छ सादरम् । भूमिलोके लिङ्गपूजा कथं मर्त्यैः कृताऽभवत् ॥१॥
एतदाख्याहि मे श्रोतुर्यदि श्रोतव्यमस्ति वै । अथ प्राह सुरेशं सा गिरिजा हृष्टमानसा ॥२
शृणु देवेश वक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् । अथ भूमौ जनाः श्रुत्वा देवेभ्यो लिङ्गपूजनम् ॥३
न श्रद्दधुर्वचः प्रायो लोकविद्विष्टमित्युत । अथ लिङ्गाऽर्चनं लोके लुप्तं मत्वा त्रिलोचनः ॥४
आस्थितस्तप अत्युग्रं त्रिपुराप्रीतिहेतवे । दशवर्षसहस्राणि ततः सा जगदीश्वरी ॥५॥
प्रसन्ना दर्शयामास स्वात्मानं मूर्तिमत्तया । दृष्ट्वा मूर्तिं जगन्मातुः स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः॥६
प्रणतो दण्डवद्भूमौ भक्तिनिर्भरिताऽन्तरम् । अथ सा त्रिपुरेशानी लीलाविग्रहधारिणी ॥७

पैंतीसवां अध्याय

इसके आगे देवराज इन्द्रने गौरी को फिर आदर समेत पूछा, "हे मातः ! भूलोकमें लिंग पूजा मर्त्यलोगों द्वारा कै गई ? कहिए, यदि मेरे सुनने योग्य हो तो अवश्य सुनाइये ।" अब प्रसन्नमानस हो भगवती गिरिजा ने देवराज क कहा, "हे देवराज ! पापों को विनष्टकरनेवाली परम पवित्र कथा को कहती हूँ, तू सुन । पूर्वकाल में मनुष्यों ने देवग से की गई लिंग पूजा को सुनकर प्रायः ऐसी पूजा लोक से निन्दित है यह ध्यान में रख इस वचन पर आगे श्रद्धा क नहीं जमायी; त्रिलोचन शंकर ने इसके बाद लोकमें लिंग पूजा को लुप्त मान कर भगवती त्रिपुरा को प्रसन्न करने के लिए दश हजार वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या की । तब उस जगदीश्वरी ने शंकर पर प्रसन्न हो स्वयं मूर्त्तिमान् रूप से आ दर्शन दिया। जगन्माता की मूर्त्ति को देख शिवने स्तुति कर भूमि पर बारम्बार नमस्कार कर दण्डवत् हो भक्ति पूर्ण अन्तःकरण से प्रणाम किया । अनन्तर लीलामात्रसे शरीर धारण करनेवाली उस भगवती त्रिपुरेशानी जगदीश्वरी ने शम्भु को "शिव" इस प्रकार सम्बोधन कर कहा ॥१-८॥

आह शम्भुं शिवेत्येवमामन्त्र्य जगदीश्वरीम् ॥८॥

शृणु शङ्कर ! मद्वाक्यं लोकविद्विष्टमेव तत् । यल्लिङ्गपूजनं प्रोक्तं न वाञ्छन्ति जनास्ततः ॥९॥

तथाप्यहं ते तपसा तुष्टा दास्यामि वाञ्छितम् । अद्यप्रभृति लोकेषु तव मूर्तिस्तु सर्वतः ॥१०॥

लिङ्गात्मतां समायातु लिङ्गे पूजनमात्रतः । तुष्टास्त्रिमूर्तयः सन्तु तथा तुर्यो महेश्वरः ॥११॥

ब्रह्मणा विष्णुना चाऽपि त्वया तुर्येण शम्भुना । सदाशिवेन चाऽऽराध्यं लिङ्गं सर्वैरपीश्वरैः ॥१२॥

यो लिङ्गं नाऽर्चयेद्भक्त्या तस्य त्वं वा हरिस्तथा ।

अन्येऽपि देवा विमुखा भवन्तु मम शासनात् ॥१३॥

मद्भक्तस्याऽपि लिङ्गाऽर्चा नित्यमावश्यकी भवेत् ।

अनभ्यर्च्य लिङ्गमैशं मदुपास्तिं करोति यः ॥१४॥

तस्य निष्फलमेवाऽस्तु सर्वं कर्म कृतं शिव !। लिङ्गपूजनमात्रेण प्रीताऽहं वाञ्छिताऽर्थदा ॥१५॥

"हे शङ्कर ! मेरा वचन सुन यह जो लिङ्ग पूजन कहा गया है वह लोक में निन्दित है इसी से मनुष्य उसे नहीं चाहते। फिर भी मैं तेरी तपस्या से प्रसन्न हो तुझे अभीष्ट फल दूंगी। आज से लोगों में तेरी मूर्त्ति ही सब प्रकार से लिङ्गात्मक स्वरूप को प्राप्त हो, लिङ्ग में पूजन करने मात्र से ही त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर प्रसन्न हों और तुर्य (चतुर्थ) महेश्वर भी ॥९-११॥

ब्रह्मा, विष्णु तुझ शम्भु तथा तुर्य सदाशिव के द्वारा आराध्य (आराधना के योग्य) यह लिङ्ग सभी ईश्वरों से पूजनीय हो। जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक लिङ्गकी पूजा न करे उसके प्रति अन्य देवगण भी विमुख हों यह मेरी आज्ञा है। मेरे भक्त के लिये भी नित्य लिंगपूजा आवश्यक हो; हे शिव ! ईश्वरीय लिङ्ग की पूजन किये विना जो मेरी आराधना करता है उसका किया हुआ कर्म निष्फल ही हो। लिंग की पूजामात्र से वाञ्छितफल देनेवाली मैं प्रसन्न होती हूँ। विधिपूर्वक लिंग में जिस व्यक्ति द्वारा श्रद्धाभक्ति सहित मैं पूजी गई उसे सालोक्य पद जो लोगों को सर्वथा अलभ्य है, मैं प्रदान करती हूँ। जो लिंग में यन्त्रराज को लिख कर मेरी पूजा करता है; उसका फल चक्रराज की अर्चना से करोड़-करोड़ गुणित हो जाता है। लिंग के शिरो भाग में बनाया गया यन्त्र सब यन्त्रों में सर्वोत्तम है, उसमें पूजन

विधिना पूजिता लिङ्गे येनाऽहं भक्तिभावतः ।
तस्मै ददामि सालोक्यमलभ्यमन्यथा जनैः ॥१६॥
यस्तु लिङ्गे यन्त्रराजं विलिख्य पूजयेच्च माम् ।
तत्फलं चक्रराजाऽर्चाकोटिकोटिगुणं भवेत् ॥१७॥
लिङ्गमूर्ध्नि कृतं यन्त्रं सर्वयन्त्रोत्तमोत्तमम् । तत्र पूजनमात्रेण पूजिताः सर्वदेवताः ॥१८॥
यस्मात्त्रिमूर्तिरूपं तद्वै वा मूर्तित्रयोद्भवाः । अन्यत्ते संप्रवक्ष्यामि रहस्यं शृणु शङ्कर!॥१९॥
लीनार्थगमकं यस्माल्लिङ्गं साक्षात् परः शिवः । मद्रूपमपरं लिङ्गं सर्वकारणभावतः॥२०॥
इत्युक्त्वा विधिमुख्यांश्च प्रशास्य लिङ्गपूजने । पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥२१॥
ततः प्रभृति लोकेषु प्रसृतं लिङ्गपूजनम् । एतत्तेऽभिहितं शक्र ! तस्मान्नाऽपत्यसम्भवः ॥२२॥
तथापि पश्यसि शिवं तपः परममास्थितम् । निरुच्छ्वासं निरुन्मेषं कथं तेन समागमः ॥२३॥
गच्छेन्द्र काममत्रार्थे नियोजय रमासुतम् । स जेष्यति शिवं देवं कालेन तव सम्मतम् ॥२४॥

करने से सब देवगण की पूजा हो जाती है । जिस कारण से लिंग तीनों मूर्त्तियों का रूप है उसके देवता भी तीनों मूर्त्तियों से प्रगट हैं इस लिए देवगण सभी पूजन करते हैं । हे शङ्कर ! तुझे अन्य रहस्य कहती हूँ, सुन । लय करने के अर्थ को बताने वाला लिंग साक्षात् परम शिव है सम्पूर्ण कारणों का भाववाला होने से मेरा अपर रूप ही लिंग है।" इस प्रकार कह कर लिंगपूजन में विधिमुख्य देवतावृन्द को आदेश देकर सब देवगण के देखते-देखते वह वहीं पर अदृश्य हो गई ॥१२-२०॥

तब से लोगों में लिंगपूजन का प्रसार हुआ, हे इन्द्र ! यह तुम्हें बताया इसी से पुत्र की उत्पत्ति नहीं होगी। फिर भी तू अत्यन्त उग्र तप में स्थित बिना ऊपर के श्वांस खींचे और निमेष उघाड़े शिव को देखता है तो उससे समागम कैसे हो ? ॥२१-२३॥

हे इन्द्र ! जा, इस सम्बन्ध में तू लक्ष्मी के पुत्र कामदेव को नियुक्त कर । वह समय आने पर देव शिव को तेरी इच्छानुसार जीतेगा । तब तेरी इच्छा पूर्ण होगी ।" इस प्रकार आदेश देकर अम्बिका अदृश्य हो गई । अनन्तर देवराज ने शीघ्र अपने स्वर्गलोक के भवन में आकर अपने कार्यवश मदन कामदेव को याद किया । अनन्तर स्मरण करते ही

भवेदिति समादिश्य जगामाऽन्तर्धिमम्बिका । अथ देवपतिः शीघ्रमागत्य स्वर्निवेशनम् ॥२५॥
सस्मार मन्मथं देवं स्वकार्यवशतो द्रुतम् । अथ संस्मृतमात्रस्तु मन्मथो रतिसंयुतः ॥२६॥
आविर्भूतः शक्रसभामध्ये निमिषमात्रतः । तरुणो लावण्यनिधिः पुष्पबाणेक्षुकार्मुकः ॥२७॥
ततोऽतिमात्रसौन्दर्ययुतां संश्लिष्य वै रतिम् ।
आच्छिन्दन् स्वर्निवासानां चक्षूंषि च मनांसि च ॥२८॥
दृष्ट्वा प्राप्तं मन्मथं तं प्रत्युद्गम्य दिवस्पतिः । समानयत् करे धृत्वा स्वाऽऽसने सन्निवेशयत् ॥२९॥
अथाऽभ्यर्हणमादाय पूजयामास मन्मथम् । तथा सुपूजितः कामो देवैः सम्मानितो भृशम् ॥३०॥
सन्तुष्टः प्राह देवेशं शृण्वताञ्च दिवौकसाम् ।
ब्रूहीन्द्र ! संस्मृतः कस्मात् किं ते कृत्यं मया स्थितम् ॥३१॥
यास्यामि तत्ते सम्पाद्य सर्वथा ते प्रपूजितः । साधयिष्याम्यसाध्यञ्च त्वदर्थं संशयं जहि ॥३२॥
इति ब्रुवाणं देवेशः प्राह हृष्टः कृताऽञ्जलिः । नैतच्चित्रं रमापुत्र ! सदृशं वचनं तव ॥३३॥

रति के साथ कामदेव निमेषमात्र में ही इन्द्र की सभा के बीच में प्रगट हो गया । वह युवा सौन्दर्य की खान, पुष्प बाण और इक्षु का धनुष लिए था ॥२४-२७॥

तब अत्यन्त सौन्दर्य को भी अतिक्रमण करने वाली रति के आलिंगन कर सभी स्वर्ग निवासियों के नेत्रों और मन में विकार करता हुआ वह (आया) । मन्मथ को आया देख उसके पास जाकर स्वर्गपति इन्द्र ने उसे अपने हाथ से पकड़कर अपने आसन पर बिठाया । इसके अनन्तर उसने पूजाकी सामग्री लेकर कामदेव की पूजा की । देवगण द्वारा इस प्रकार पूजित काम अत्यन्त सम्मानित हुआ । प्रसन्न कामने देवगण के सुनते-सुनते कहा, "हे इन्द्र ! बता, मुझे किस कारण से याद किया ? मेरे द्वारा करने योग्य कौन सा कार्य है उसे तेरे लिए करूं; ? तेरे द्वारा सर्वथा पूजित होकर जाऊँगा । तेरे लिये असाध्य (न होने योग्य) कार्य को भी साधूंगा तू संदेह का त्याग कर" ॥३०-३२॥

इस प्रकार कहते हुए (काम को) देवेश ने प्रसन्न हो हाथ जोड़े कहा, "हे लक्ष्मीपुत्र ! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है यह तो तुम्हारे ही अनुरूप युक्तिसंगत वाणी है । लोकमाता लक्ष्मी ने मेरे लिए ही तुझे रचा है

लोकमात्रा मदर्थे त्वं सृष्टोऽजेयोऽखिलैरपि । यस्ते शत्रुः शिवो देवः सद्यः स तप आस्थितः ॥३४॥
तं जित्वा सत्वरं शैलजातायां सन्नियोजय । श्रुत्वेत्थं शक्रवचनं मदनो विमना अभूत् ॥३५॥
स्मृत्वा प्राक् गिरिजाशापं शिवादात्मप्रणाशनम् ।
स्थितस्तूष्णीं क्षणं तादृग्विधमालक्ष्य वज्रभृत् ॥३६॥
आह किं काम ! विमना लक्ष्यसेऽत्र विशेषतः ।
इति शक्राऽनुयुक्तः स निःश्वसन्नाह स्वाऽन्तरम् ॥३७॥
वद शक्र ! कस्य नाम प्रियं स्यादात्मनाशनम् ।
शप्तोऽस्मि गौर्या भस्मत्वं यास्यसि त्र्यम्बकादिति ॥३८॥
स कालः प्राप्त इत्येवं मन्ये कालो दुरत्ययः ।
तथाऽप्युक्त्वा करोमीति न कुर्यान्मादृशः कथम् ॥३९॥
गच्छामि ते प्रियं कर्तुमग्रे दैवं परायणम् । इत्युक्त्वा निर्ययौ स्वर्गाद्रथं जैत्रं समास्थितः ॥४०॥

सम्पूर्णलोकों द्वारा भी तू अजेय है । जो तेरा शत्रु देवशिव है वह अभी तपस्या में रत है ॥३३-३४॥

उसे शीघ्र जीतकर पर्वतपुत्री गौरी से संगम करवादे । इस प्रकार इन्द्र के वचन सुन कर कामदेव उदास हो गया । प्राचीन काल में दिये गये शिव से अपने नष्ट होने के शाप को स्मरण कर एक क्षण भर एक दम शान्त विना कहे खड़ा रहा । उसे इस प्रकार अत्यन्त शान्त देख इन्द्र बोला, "हे काम विशेष रूप से इस विषय में तू क्यों चिन्तामग्न दीखता है । इस प्रकार इन्द्र के पूछने पर उसने निःश्वास छोड़ते हुए अपने हृदय का भाव प्रगट किया । "हे इन्द्र ! बता तो सही किस व्यक्ति को अपना नाश करना प्रिय हो सकता है ? मुझे गौरी द्वारा शाप दिया गया है कि तू त्र्यम्बक महेश्वर से भस्म हो जायगा ॥३५-३८॥

वह समय आगया । इस प्रकार मैं काल को अत्यन्त ही कठिनता से टाला जानेवाला मानता हूँ । फिर भी "कहता हूँ" यह कह कर मेरे जैसा व्यक्ति क्यों न करे ? मैं तेरा प्रिय करने को जाता हूँ अग्रे दैव के अधीन है ।" इस प्रकार कह कर कामदेव अपने जैत्ररथ पर आरूढ हो स्वर्ग से निकला ॥३९-४०॥

अनन्तर गले में बाहें डाल आलिंगन कर अति दुःखित हो रोती हुई रति ने सब प्रकार से पति को रोका,

अथ कण्ठे समाश्लिष्य रतिरत्यन्तदुःखिता । पतिं निवारयामास रुदन्ती सर्वयत्नतः ॥४१॥
नाथ ! त्वयि समापन्ने कीर्तिशेषमहं कथम् । जीविष्याम्यलमेतेन आत्मनाशव्रतेन ते ॥४२॥
गच्छावो नगरं स्वीयं जीवन् भद्राणि पश्यति । सत्यं तपस्तथा वीर्यं सर्वं जीवनहेतवे ॥४३॥
जीवनाद्विच्युतौ किं स्यात्तपःसत्यपराक्रमैः । मदुक्तं मन्यसे नो चेदहं त्वत्पुरतोऽधुना ॥४४॥
त्यजामि जीवितञ्चैतत्ततो गच्छ यथेच्छतः । त्वया विना कृता चाऽहं क्षणाऽर्धमपि नोत्सहे ॥४५॥
प्राणान् धारयितुं नाथ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते । निशम्य स्वप्रियावाक्यं कण्ठे सक्तां रतिं तदा ॥४६॥
धैर्यवान् प्राह कन्दर्पः प्रिये ! शृणु वचो मम ।

शोचन्त्यापत्सु नो धीराः शोकः सर्वाऽर्थनाशनः ॥४७॥

भाव्यन्यथयितुं नैव शक्ता ब्रह्ममुखा अपि । पुनस्त्वया समेष्यामि कालेन प्राणनायिके ! ॥४८॥
तावत्त्वं त्रिपुरेशानीमाराधय शुभान्तरा । सा ते महेश्वरी सर्वं वाञ्छितं प्रविधास्यति ॥४९॥
इत्थं ब्रुवत्यपि निजकान्ते कामे रतिः प्रिया । शोकसंविग्नहृदया मूर्च्छिता न्यपतत् क्षितौ ॥५०॥

हे नाथ ! आपके भस्म होने पर मैं कैसे जीऊँगी ? अतः इस आत्मनाश करने वाले प्रण से बस कीजिये । आप और मैं दोनों ही अपने नगर को लौट जावें । जीवित रहते हुए सब प्रकार के कल्याणकारी रूप जीवन में मनुष्य देखता है । सत्य, तपस्या और वीर्य सब ही जीवन के लिए हैं; जीवन नहीं रहने पर तपस्या, सत्य और पराक्रमके द्वारा क्या सिद्ध होगा ? मेरे कहे हुए को आप मानते हैं तो ठीक है, नहीं तो मैं आपके सामने अभी अपने प्राण छोड़ देती हूँ फिर अपनी इच्छानुसार आप चाहे जहाँ जाइये । आपके बिना रही हुई मैं एक क्षण भर भी प्राणों को धारण किये नहीं रह सकती । हे नाथ ! मैं आप को सत्य कहती हूँ ।" अपनी प्रिया के वचन सुनकर कण्ठ में लिपटी हुई रति को धैर्यधारी कामदेव ने कहा, "हे प्रिये ! मेरी बात सुन, आपत्तियों में धीर पुरुष कभी शोक नहीं करते क्योंकि शोक सब अर्थों का नाशक है ॥४१-४७॥

ब्रह्मा आदि प्रमुख देवगण भी भावी को बदलने में समर्थ नहीं हैं, हे मेरी प्राणनायिके ! फिर समय आयेगा मैं तुझ से भेंट करूंगा । तब तक तू अपने मंगलरूपवाले अन्तःकरण से त्रिपुरेशानी की आराधना कर वह महेश्वरी तेरा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित पूर्ण करेगी ।" इस प्रकार अपने पतिदेव कामके कहने पर भी (सान्त्वना दिलाने से भी) उसकी प्राणप्यारी पत्नी रति शोकपूर्णहृदय से व्यथित मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर गई ॥४८-५०॥

मूलकृत्तेव कदली हैमी क्षितितलं गता । दृष्ट्वा तादृग्विधां प्राणप्रेयसीं शोककातरः ॥५१॥
उत्थाप्याङ्कं समारोप्य मदनः पर्यदेवयत् । अथ सस्मार जननीं रमां नारायणप्रियाम् ॥५२॥
साऽपि तत्स्मृतिमात्रेण सान्निध्यं समुपागता ।
दृष्ट्वा तां जननीं कामो भुवि न्यस्य प्रियां रतिम् ॥५३॥
प्रणाममकरोन्मातुः स्ववृत्तञ्च न्यवेदयत् । मातर्मया प्रतिश्रुत्य करोमीति प्रियं हरौ ॥५४॥
कथं स्यां विमुखस्तस्माद्यथा कापुरुषो भुवि । तदहं जेतुकामोऽद्य मातः शिवमुपव्रजे ॥५५॥
एनां प्रियां समाश्वास्य सान्निध्यं नेतुमर्हसि । इत्युक्तवन्तं मदनं परिष्वज्य रमा तदा ॥५६॥
शोकभारपरिम्लानमुखी तं प्राह धैर्यतः । वत्स ! गच्छ महेशानं कालेनैव विजेष्यति ॥५७॥
शापो गौर्या निराकर्तुमशक्यो विधिनाऽपि वै ।
तद्गच्छ श्रीमहादेवीं स्मरन् विद्यामयीं जपन् ॥५८॥
सा ते विधास्यति शुभं गच्छ श्रेयः समाप्नुहि । इत्युक्तो मदनो नत्वा मातरं लोकमातरम् ॥५९॥

हिमपात से मूल से कटे केले के वृक्ष के समान वह क्षितितल पर गिरी । अपनी प्राण प्रेयसी को इस प्रकार अचेत गिरी अवस्था में देख शोक से विह्वल हो कामदेव उसे उठाकर गोद में रख बहुविध विलाप करने लगा । अनन्तर उसने अपनी माता नारायणप्रिया लक्ष्मी को याद किया । वह उसके स्मरण करने से ही उसके समीप आ गई । उस माता को देख कामदेव ने अपनी प्रिया रति को भूमि पर लिटाकर प्रणाम किया और उनके सामने अपना वृत्तान्त कहा, "हे मातः ! इन्द्र से यह प्रतिज्ञा कर कि "मैं तेरा प्रिय करता हूँ" अब कायरपुरुष के समान दिये वचनसे विमुख क्यों होऊँ ? "हे जननि ! इसलिये मैं शिवको जीतने की इच्छा कर उसके पास जाता हूँ । मेरी इस प्रियाको आप अपने पास ले जावें ।" इस प्रकार कहते हुए कामदेव को भगवती लक्ष्मी ने अतिस्नेहवश गोद में लिपटा लिया और शोक के भार से अत्यन्त मलिन मुख हो बहुत धैर्य से उससे बोली, "हे पुत्र ! जा महेश्वरदेव को समय आने पर ही जीतेगा । गौरी का शाप तो ब्रह्मा भी मिटाने में असमर्थ है । इसलिये महादेवी को स्मरण करता हुआ विद्यामयी का दिव्य रूप से जप करता हुआ जा सिद्धकर; वह तेरा मङ्गल करेगी और तू अपना श्रेयः साधन कर ।" लक्ष्मी से इसप्रकार कहे जाने पर मदन ने लोकमाता अपनी माँ लक्ष्मी को प्रणाम कर भक्तिभाव से पूरित अन्तःकरण हो त्रिपुरा का ध्यान करते हुए प्रस्थान किया । अनन्तर कमला ने अमृत की वर्षा करने वाले अपने नेत्रों के कोरकों से पुत्र-वधू रति को देखा तब वह भी निद्रा की अवस्था से मानों जाग उठी । वह अपने आत्मीय प्रियपति को न देख कर रमादेवी को अपने सामने

प्रयातस्त्रिपुरां ध्यायन् भक्तिभावसुनिर्भरः । अथ तत्र रतिं पद्मा ह्युपाङ्गैरमृतस्रवैः ॥६०॥
रक्षाश्चक्रे ततः साऽपि निद्रितेव समुत्थिता । अदृष्ट्वा प्रियमात्मीयं शोकार्ता करुणं वचः ॥६१॥
आचचक्षे रमां देवीं दृष्ट्वा स्वाभिमुखे स्थिताम् । आर्ये क्व मे प्रियतमो ब्रूहि तेन विना कृता ॥६२॥
न जीवितुं समीहामि क्षणाऽर्धमपि निश्चितम् । नाथाऽहं किं परित्यक्ता सर्वथा त्वामनुव्रता ॥६३॥
त्वां विना शून्यमेवाऽहं पश्यामि सचराऽचरम् ।
इत्यादि प्रलपन्तीं तां समाश्वास्य प्रबोध्य च ॥६४॥
भवनं स्वं समानीय पार्षदैरन्वरक्षयत् । आश्वस्ता पार्षदैः साऽपि निवसद्विष्णुधामनि ॥६५॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कामोपाख्याने कामदेवस्य देवराज-मन्त्रणया शिवं पराजेतुं त्रिपुरातपःकरणवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३९०५॥

इस शोक से व्याकुल हो करुणापूर्ण वाणी में बोली, "हे आर्ये ! मेरा प्राणों का प्यारा पतिदेव कहां है ? बताइये, आपके बिना मैं एक आधे क्षण मात्र भी निश्चित रूप से अपने जीवन को धारण करने को तैयार नहीं हूँ । हे नाथ ! मैं सर्वथा आपके पीछे चलनेवाली दासी हूँ मैं क्यों छोड़ी गयी ? आप के बिना मैं सम्पूर्ण स्थावर-जंगम सृष्टि को शून्यमय ही देखती हूँ ।" इस प्रकार प्रलाप करती हुई उसे लक्ष्मी ने आश्वासन देकर और समझा कर अपने भवन में लाकर पार्षदों द्वारा रक्षा के लिए नियुक्त कर सुरक्षा बना दी । पार्षद गण द्वारा आश्वस्त होकर वह रति भी विष्णुलोक में निवास करने लगी ॥५१-६५॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड के कामोपाख्यान में इन्द्र के सामने प्रतिज्ञा कर कामदेव का गौरी के शाप को ध्यान में रख शिव पर विजय के लिये जाना और रति का लक्ष्मी के सामने काम-विरह में विलाप तथा लक्ष्मी द्वारा उसे आश्वासन दे विष्णुधाम ले जाने के प्रकरण वाला पैंतीसवां अध्याय सम्पूर्ण ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

त्रिपुरादर्शनमनु शिवद्वारा कामदहनवर्णनम्

अथ कामो जैत्ररथं समास्थाय द्रुतं ययौ । चिन्तयंस्त्रिपुराऽम्बायाः पादपद्मं शुभोदयम् ॥१॥
अथ मार्गे सुरनदीतीरमासाद्य सुन्दरम् । स्नात्वा तत्र परां देवीमुपतस्थे यताऽन्तरः ॥२॥
यदा स संहृताशेषकरणस्त्रिपुरापदम् । समालम्ब्य निश्चलत्वं प्राप तन्मात्ररूपतः ॥३॥
तदा सन्निहिता देवी त्रिपुरा परमेश्वरी । अरुणाऽरुणकल्पाढ्या चन्द्रचूडा त्रिलोचना ॥४॥
पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणान् दधाना पाणिपङ्कजैः । नवरत्नपरिक्षिप्तकिरीटप्रांशुमण्डिता ॥५॥
तारुण्यपूर्णलावण्यवरेण्याऽऽकारमास्थिता । देवाऽधिदेवनिकरस्तुता त्रिपुरसुन्दरी ॥६॥
तां दृष्ट्वा दण्डवत् कामो नमाम पदसन्निधौ । नतस्य तस्य मूर्ध्न्यम्बा करपद्मं न्यधारयत् ॥७॥

छत्तीसवां अध्याय

अनन्तर कामदेव त्रिपुराम्बा के चरणकमल का ध्यान करता हुआ अपने जैत्ररथ पर आरूढ़ हो कर शीघ्र (शंकरके तपस्यास्थल की ओर) गया । तत्पश्चात् मार्ग में देवनदी गङ्गा के सुन्दर तट पर जाकर स्नान कर वहां उसने खूब मनोनिग्रहपूर्वक देवी की उपासना की । जब वह सम्पूर्ण असाधारण कारण को अपने में समेट कर त्रिपुरापद का ध्यान कर तन्मात्र रूप से ही निश्चलताको प्राप्त हुआ तब त्रिपुरा परमेश्वरी देवी सामने प्रगट हुई । वह अरुण वर्ण वाली, अरुणोदय के सूर्य की कान्ति से अत्यन्त विभूषित, चन्द्रमा का जूडा बांधे हुई, तीन नेत्रवाली, पाणिकमलों द्वारा पाश, अङ्कुश, धनुष और बाणों को धारण की हुई, नवरत्नों के जड़ने से किरीट की अत्यन्त उज्ज्वल कान्ति से शोभित, तारुण्य से परिपूर्ण सौन्दर्य से वरणीय आकृति को धारण की हुई, देवाधिदेवगण के सङ्घ द्वारा स्तुति की गई भगवती त्रिपुरसुन्दरी (सन्निहित स्थित हुई) ॥१-६॥

उसे देखकर कामदेवने अम्बा के पादकमलों के निकट दण्डवत् प्रणाम किया । उसके नत होने पर अम्बा ने अपना करकमल कामके मस्तक पर (अभय रूप में) रख दिया । भगवती के कराम्बुज से अपना यह सिर स्पर्श किया गया इससे

स्पृष्टः कराऽम्बुजेनैषः कृतार्थं स्वममन्यत । आनन्दाऽश्रुपरीताऽक्षः पुलकाऽङ्करुहैः श्रितः ॥८॥
उत्थितो देवता वीक्ष्याऽऽऽनन्दभाराऽतिमन्थरः । तुष्टाव गद्गदरवः तत्प्रीत्याऽपगतस्मृतिः ॥९॥
तं तथाभूतमालोक्य प्रसन्ना परमेश्वरी । विदित्वैतत् समायाता तत्र पद्मा हरिप्रिया ॥१०॥
नत्वा स्तुत्वा प्राह परां त्रिपुरां परमेश्वरीम् । मातस्ते भक्तमूर्धन्यः कामो मे प्रीतिवर्धनः ॥११॥
गौरीशापभराक्रान्तो नाऽतो भवितुमर्हति । नैवमेतत् समुचितं यत्त्वज्जनपराभवः ॥१२॥
एतं विना कथं लोकव्यवहारः सुनिर्वहेत् । प्रवृत्तिर्न स्थितेर्भूयात् शाधि त्वं पादसन्नतम् ॥१३॥
श्रुत्वा रमोक्तं त्रिपुरा प्राह गम्भीरया गिरा । पद्मे ! शृणु न मे भक्तो नाशमर्हति कुत्रचित् ॥१४॥
तावत् स्थातुमदीक्षायां यावद्देहपुनर्भवः । गौरीशापेन देहोऽयं भस्मीभवतु शङ्करात् ॥१५॥
पुनः कालेन देहं स्वं नवं प्राप्याऽतिसुन्दरम् । नन्दयिष्यत्येष रतिं त्वाञ्च नाऽस्त्यत्र संशयः ॥१६॥
इत्युक्त्वा मन्मथं वीक्ष्य दृशि स्वस्यां समाहरत् ।
ततः सा त्रिपुरा लोके कामाक्षीत्यभिविश्रुता ॥१७॥

कृतकृत्य माना । आनन्द के अश्रुओं से भरी आंखें कर पुलकित अङ्गमें उठी हुई रोमावलिवाला उठ, कर आनन्द के भार से अति मन्दगति वाला अपने इष्ट देवता को देखकर गद्गद वाणी से उस पराम्बा के प्रति अति प्रीति से अन्य किसी की स्मृति न रखने वाला वह स्तुति करने लगा ॥७-९॥

उसे इस प्रकार भक्तिविनम्र देख परमेश्वरी प्रसन्न हुई । यह सब जान कर विष्णुप्रिया लक्ष्मी वहां आई उसने प्रणाम एवं स्तुति कर परा भगवती त्रिपुरा परमेश्वरी को कहा, "हे मातः ! आपका भक्तश्रेष्ठ यह कामदेव मेरी प्रीतिको वर्धन करने वाला है । गौरी के शाप भार से पीड़ित है अतः वह नहीं होना चाहिए । आपके भक्त का कहीं पराजय हो यह समुचित भी नहीं है । इसके विना लोक व्यवहार कैसे भली प्रकार चल पायेगा किसी प्रकार भी इस संसार के पालन का प्रचलन नहीं होगा अतः आपके चरणों में नत इसे समुचित आदेश शिक्षा दीजिये" ॥१०-१२॥

रमा के वचन सुनकर भगवती त्रिपुरा ने गम्भीर वाणी में कहा, "हे कमले ! सुन मेरा भक्त कहीं भी नाश के योग्य नहीं है; अदीक्षा की स्थिति में यह तब तक रहेगा जब तक इसके देह का पुनर्भव नहीं होता; भले ही गौरी के शाप से यह देह शङ्कर के सकाश से भस्म हो जाय, फिर समय आने पर अपने नवीन अत्यन्त सुन्दर देह को पाकर

विलीनो मदनस्तस्याः सुषुप्त इव सम्बभौ । अथाऽपतत् कामदेहस्तयोः सम्मुखतो भुवि ॥१८॥
पतितस्य तस्य रोमकूपेभ्यस्तादृशास्ततः । विनिर्ययुः कोटिकोटिसंख्याः कामाः समन्ततः ॥१९॥
तान् समादिश्य लोकेषु प्राणिनां कामनाविधौ । उत्थापयत्तच्छ्रीरं महामाया स्वमायया ॥२०॥
स उत्तस्थौ कामदेहः सुप्तो मर्त्य इव द्रुतम् । तमाह्वयत् काम इति सा परा जगदीश्वरी ॥२१॥
मायामयान् पुष्पबाणानिक्षुचापञ्च तादृशम् । जहि शीघ्रं महादेवं तपस्यन्तं त्वमित्यदात् ॥२२॥
अथ कामो रथाऽऽरूढः पुष्पबाणेक्षुकार्मुकः । जगाम तत्र श्रीकण्ठो यत्र शम्भुस्तपोमयः ॥२३॥
अनुवव्राज देवेशः कामं स्वार्थस्य सिद्धये । तपस्यत्येष देवेश इत्यालक्ष्य दिवस्पतिः ॥२४॥
देवैः परिवृतो दूरे पश्यंस्तद्विजयं स्थितः । अथ कामः समालक्ष्य तपस्यन्तं त्रिलोचनम् ॥२५॥
ताडयत् पुष्पबाणेन हृदि सन्धाय कार्मुके । अथ देवः समाधिस्थः स्वभावं लक्ष्य चञ्चलम् ॥२६॥
किमिदञ्चेति चोन्मील्य नेत्रेऽपश्यदगात्मजाम् । विकृतिं स्वात्मनो ज्ञात्वा क्रुद्धश्चन्द्राऽर्धशेखरः ।२७।

रति को और तुम्हें यह आनन्दित करेगा इसमें कोई संशय नहीं समझना ।" इस प्रकार कह कर त्रिपुराम्बा ने मन्मथ को देख अपनी दृष्टि में उसे समेट लिया; तदनन्तर वह त्रिपुरा 'कामाक्षी' इस नाम से लोक में विख्यात हुई। उसके नेत्रों में विलीन कामदेव सुषुप्त सा हो गया। तत्पश्चात् काम का शरीर उन दोनों के सामने ही भूमि पर गिर गया ॥१३-१८॥

तदनन्तर गिरे हुए उसके रोमकूपों से उसी के सदृश कोटि-कोटि संख्या में चारों ओर से कामदेव निकलने लगे। महामाया ने उन्हें लोकों में प्राणिगण की कामना को काम के रूप में आदेश देकर अपनी माया से उसके शरीर को उठाया। काम की वह देह सोये हुए मनुष्य की तरह शीघ्र ही उठ खड़ी हुई; उसे परा जगदीश्वरी ने "काम" यह कह पुकारा "मायामय पुष्पबाण, वैसा ही इक्षु का धनुष तपस्या करते हुए महादेव को लक्ष्य कर शीघ्र छोड़ दे" यह कह उसे दे दिया। अब रथ पर सवार हो काम पुष्पबाण और इक्षुका धनुष हाथ में लिये वहां गया जहां तपोमय श्रीकण्ठ शम्भु विराजे हुए थे ॥१९-२३॥

देवराज इन्द्र अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये काम के पीछे गया। यह देवपति महादेव (पूर्ववत्ही) तप करने में लीन है यह देख देवगणके साथ दूर से कामदेवकी विजय को देखने के लिए खड़ा रहा। अब कामने तपस्या करते त्रिलोचन शंकर को देख अपने धनुष में पुष्पबाणको सन्धान कर उनके हृदय पर छोड़ा। अनन्तर समाधि

पार्श्वेऽपश्यदात्तचापं पुष्पबाणकरं तदा । क्रोधेन दृष्टमात्रोऽथ नेत्राऽग्निज्वालयाऽऽप्लुतः ॥२८॥
संवर्तवह्निना तूलराशिवत् क्षणमात्रतः । भस्मीभूतः शक्रमुखसुराणां तत्र पश्यताम् ॥२९॥
अथ क्रोधाऽग्निना तेन दह्यमानं चराऽचरम् । ज्ञात्वा चतुर्मुखः प्राप्तः सिद्धर्षिगणसंस्तुतः ॥३०॥
क्षमापयद्देवदेवं शम्भुं त्रिजगतां गुरुम् । इति ते सर्वमाख्यातं भार्गवाऽतिसुविस्तृतम् ॥३१॥
गौर्याः पर्वतराजेन सम्भवादिकमुत्तमम् । कामस्य भस्मीभावश्चाऽप्यतीतं सुमहाद्भुतम् ॥३२॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये कामोपाख्यानान्तर्गतगौर्युपाख्याने शिवेन कामदहनवर्णनं नाम षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥२९३७॥

में स्थित देव शम्भु ने अपने स्वभाव को चञ्चल प्रकृति में देख "यह क्या है" इस प्रकार अपने नेत्र खोले तो भगवती पार्वती को देखा (चिन्तन किया) मनकी दशा में विकार जान कर चन्द्रार्धशेखर भगवान् शंकर क्रुद्ध हुए ॥२४-२९॥

उन्होंने पार्श्व में ही धनुष खींचे पुष्पबाण हाथ में सम्हाले हुए कामको देखा। तदनन्तर क्रोध से देखनेमात्रसे शिव के नेत्रों से उठी अग्नि की ज्वाला जो सम्वर्त (प्रलयकाल) की लपट जैसी थी उससे क्षणमात्र में कामदेव इन्द्रादि देवगण के देखते-देखते तूल (रूई) राशि की तरह में भस्म हो गया। अब उस क्रोधाग्नि से जलते हुए चर और अचर सबको देख श्रीब्रह्मा सिद्ध ऋषि गणों के सहित भली प्रकार स्तुति करते हुए आये एवं तीनों जगत् के गुरु भगवान् शंकरसे क्षमा प्रार्थना की। हे भार्गव ! इस प्रकार तुझे अतिविस्तार से गौरी की पर्वतराज के साथ उत्पत्ति आदि उत्तम चरित्र काम का भस्मीभाव जो अत्यन्त अद्भुत हुआ वह सब कहा ॥२९-३२॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्डके कामोपाख्यान में कामदहन नामक छत्तीसवां अध्याय समाप्त ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

दत्तभार्गवसम्वादे देवस्वामिन आविर्भाववर्णनम्

भगवन्नद्भुततमं श्रुतमेतन्मनोहरम् । गौर्याविर्भावमहिमा कामभस्मत्वमेव च ॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवगौरीसमागमात् । यथा कुमार उत्पन्नः कथं दैत्यान् स चाऽजयत्॥२॥
कथं स त्रिपुरेशान्या नेत्रे लीनोऽपि मन्मथः । उत्पन्नो रतिशोकान्तः पद्माहृदयनन्दनः ॥३॥
ब्रूहि मह्यं प्रपन्नाय शिष्याय कृपया गुरो ! । कस्तृप्येत्तव वक्त्रेन्दुपीयूषप्रस्रवाऽऽत्मकम् ॥४॥
श्रीमातुर्जनतापौघहरं शुभकथाऽभिधम् । पिबन् रसायनं लोके मूढोऽपि स्थावराद्दते ॥५॥
वदैतन्मे पुरावृत्तं याचते प्रणताय मे । एवं पृष्टो जामदग्न्यरामेणाऽत्रिसुतो गुरुः ॥६॥
शृणु रामेति चाऽऽमन्त्र्य प्रवक्तुमुपचक्रमे । एवं भस्मत्वमानीते कामे सुरपतिर्वृषा ॥७॥

सैंतीसवां अध्याय

"हे भगवन् ! गौरी की आविर्भाव महिमा और कामदेव के भस्म होने के सम्बन्ध की बातें अत्यन्त अद्भुतसे भी अद्भुत और मनोहर वृत्त मैंने (आपसे)सुना । अब शिव तथा पार्वती के समागमसे जिस प्रकार कुमार उत्पन्न हुआ, उसने किस प्रकार दैत्यों को जीता ? त्रिपुरा ईशानी के नेत्रों में लीन हुआ भी रतिके शोक का अन्त करनेवाला वह कामदेव पुनः कैसे उत्पन्न हुआ ? हे गुरुवर्य ! इसके विषय में आपकी शरण में आये मुझ शिष्य को कृपा करके कहिए । आपके मुख रूपी चन्द्र से झरनेवाले अमृत रूपी जनगण के तापत्रयके समूह को हरने वाले भगवती श्रीमाता के शुभ कथाख्यानरूपी रसायन को पीता हुआ संसार में एकमात्र स्थावर के समान मूढ व्यक्ति को छोड़ कौन तृप्त नहीं होगा ? अर्थात् सहृदय सभी लोग इस अमृत रससार भगवती के कथामृतको सुनने की अहर्निश इच्छा करेंगे ॥१-५॥

आप से प्रार्थना कर सादर नत हुए याचना करने वाले मुझे इस पुरावृत्त (प्राचीन समय में घटित घटना) को समझाइये ।" इस प्रकार जमदग्नि के पुत्र परशुराम द्वारा पूछने पर गुरुदेव अत्रिकेपुत्र श्रीदत्तात्रेय ने "हे राम ! सुन ।"

दुःखितोऽभूदभिमताऽलाभेनाऽत्यन्ततस्तदा । ब्रह्माणं प्रार्थयामास स्वाऽभिप्रेतस्य सिद्धये ॥८॥
ततो विधाता कामारिं स्तुत्वा संशाम्य मन्युतः । इन्द्रादिभिः परिवृतो भूयस्तुष्टाव शङ्करम् ॥९॥
गुह्यैः प्रसिद्धैश्चरितैः स्तुतो देवस्त्रिलोचनः । सन्तुष्टः प्राह देवेन्द्रादीन् विधातृमुखांस्तदा ॥१०॥
भो विधातृमुखा देवा यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् । तद्ब्रूत मा चिरं वस्तत् प्रदिशामि न संशयः ॥११॥
श्रुत्वेत्थं शङ्करवचः प्राह वेधाः प्रजापतिः । त्रिलोचनेमे देवाद्यास्तारकेण सुराऽरिणा ॥१२॥
क्लेशिता निर्जिताः सर्वे विना स्वाऽनीकनायकम् । तत्त्वं सङ्गच्छ पार्वत्या भविता ते ततः सुतः ॥१३॥
स देवसेनां नीत्वा तान् विजेष्यति न संशयः । नो चेदसुरसन्तप्तं भस्मीभूतं जगद्भवेत् ॥१४॥
श्रुत्वा विधातृप्रमुखप्रार्थितं चन्द्रशेखरः । अङ्गीचकार तद्दृष्ट्वा नियत्या नियतं तदा ॥१५॥
अथ पर्वतराजन्यकन्यया सङ्गतिं ययौ । पार्वत्या सङ्गतस्यैवं सहस्रं वत्सरा ययुः ॥१६॥
अथ देवान् विधिः प्राह शक्रादीन् सम्मुखस्थितान् ।
शृणुध्वं मे सुरा वाक्यं पार्वत्या सङ्गतः शिवः ॥१७॥

उसे सम्बोधन कर कहना आरम्भ किया । काम के इस प्रकार दहन कर दिये जाने पर सुरपति इन्द्र अपने अभीष्ट लक्ष्यकी प्राप्ति न होने पर अत्यधिक दुःखित हुआ तब उसने अपने वाञ्छितार्थ को सिद्ध करने के लिये ब्रह्माजी की प्रार्थना की। तब विधाता ने कामरिपु शंकर की स्तुति कर उनके क्रोध को शमन कराकर इन्द्रादि देवगण सहित फिर शंकर की स्तुति की। अपने सुप्रसिद्ध चरित्रों द्वारा देव त्रिलोचन शंकर उन गुह्य गण से स्तुति किये जाने पर सन्तुष्ट हो देवेन्द्र आदि ब्रह्माजी प्रमुख देवगण को बोले, "हे विधाता आदि प्रमुख देवतावृन्द ! जो मेरे से अपना अभीष्ट चाहते हो उसे शीघ्र कहो मैं वह तुम्हें दूंगा इसमें सन्देह नहीं करना" ॥७-११॥

इस प्रकार श्रीशंकर के वचन सुन कर प्रजापति ब्रह्मा ने कहा, "हे त्रिलोचन ! ये देवगण अपनी सेनाके नायक के बिना रण के शत्रु तारक द्वारा प्रताड़ित हो जीत लिये गए; इसलिये आप पार्वती भगवती से सङ्गमन करें जिससे आपको पुत्रकी प्राप्ति होगी। निस्सन्देह वह देवसेना का नायकत्व कर उन्हें (असुरों के) जीतेगा नहीं तो असुरगण से पीड़ित जगत् भस्मीभूत हो जायगा।" ब्रह्मा आदि प्रमुख देवगण की प्रार्थना को सुनकर चन्द्रशेखर ने उस सब वृत्त को भाग्य से नियत होने से पूर्ण होते देख स्वीकृति दे दी ॥१२-१५॥

अनन्तर शिव ने पर्वतराजकी पुत्री पार्वती के साथ सहवास किया। इस प्रकार पार्वती से रमण करते हुए शंकर के

अद्याऽपि नो मुञ्चति स्वं वीर्यं वर्षसहस्रतः । तपसा चिरकालेन सम्भृतं तन्निबोधत ॥१८॥
समग्रं यदि मुञ्चेत् स सत्त्वं जातं ततो भुवि । भस्मीकुर्यादशेषं वै महत्तेजो यतो हि तत् ॥१९॥
कारणेनाऽपि गच्छामः पुनस्तत्र शिवाऽन्तिके । इत्युक्त्वा प्रययौ धाता शक्राद्यैः परिवारितः ॥२०॥
प्रार्थयामास तं देवं तत्र गत्वा सुरैः सह । विरम त्वं महादेव मैथुनाच्चिरकालिकात् ॥२१॥
साकल्यवीर्यसम्भूतं कस्ते धारयितुं क्षमः । रक्ष सर्वानिमान् लोकानन्यथा नाशमेष्यति ॥२२॥
इत्यर्थितो महादेवो विररामाऽतिमैथुनात् । ततो देवस्य यत् क्षुब्धं वीर्यं तत् स्खलितं भुवि ॥२३॥
रसपर्वततुल्यं तद्भूमिर्धारयितुं तदा । न शक्ता तेजसा तस्य दह्यमाना विधिं ययौ ॥२४॥
ब्रह्मन्नाऽहं समर्थाऽस्मि महादेवस्य तेजसाम् । धारणे दह्यमानाऽहं रक्ष मां शरणागताम् ॥२५॥
आकर्ण्य भूमिवचनं पावकं सम्मुखस्थितम् । प्राह वह्ने धारयैतच्छिववीर्यं भुवि स्थितम् ॥२६॥

हजार वर्ष व्यतीत हो गये । अनन्तर ब्रह्मा ने अपने सम्मुख उपस्थित इन्द्र आदि देवगण से कहा, "हे देवगण ! आप मेरा कथन सुनो, श्रीशिव पार्वती के साथ रमण कर रहे हैं उन्होंने आज भी एक हजार वर्ष से अपना वीर्यपात नहीं किया है जो तपस्या से दीर्घ समय से संग्रह किया है. इसे जान लो । यदि अपने समूचे सत्त्व को छोड़ दे तब पृथ्वी पर सम्पूर्ण चराचर को भस्म करें क्योंकि वह तेज असाधारण रूप से महान् है । आओ इस कारण विशेष से भी हम लोग शंकर के निकट चलते हैं ।" इस प्रकार श्रीब्रह्मा इन्द्रप्रभृतिदेवगण के सहित शिव के यहां गये ॥१६-२०॥

वहां जाकर देवों के सहित पितामह ने उन शंकर देव की आराधना की "हे महादेव ! आप दीर्घकाल से चल रही रमणक्रिया से विराम लें । आपके अपने सम्पूर्ण वीर्य से सम्भूत तत्त्व को कौन धारण करने में समर्थ है ? इन सब लोकों की रक्षा करें नहीं तो यह सब नष्ट हो जायेंगे ।" इसप्रकार प्रार्थना किये जाने पर महादेव उस अतिरमण प्रसङ्ग से विरत हो गये । इसके अनन्तर जो वीर्य क्षुब्ध हुआ वह अपने स्थान से स्खलित हो (निकल कर) पृथ्वी में गिरा । तब रसके पर्वत के समान उसे भूमि धारण नहीं कर पायी । उसके तेजसे जलती हुई वह ब्रह्माके पास गई । वह बोली "हे ब्रह्मन् ! मैं महादेव के दिव्यतेजो राशि के एकत्रीभूत तत्त्व को धारण करने में असमर्थ हूँ, इससे जलती हुई आप मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये" ॥२१-२५॥

पृथ्वी के वचन सुनकर अपने सम्मुख उपस्थित अग्नि से श्रीब्रह्मा बोले, "हे अग्ने ! पृथ्वी पर स्थित इस

परिपाकात् कुमारः स्याद्यावत्तावन्मयेरितः । श्रुत्वा प्राह विधेर्वाक्यं वीतिहोत्रः समीहितम् ॥२७॥

भगवन्! धारयाम्येतद्यदि मे स सुतो भवेत्।

नो चेदहं क्लेशभागी व्यर्थं स्यां तत् कथं भवेत् ॥२८॥

श्रुत्वाऽन्यभिमतं वेधाः प्राह तेऽस्तु समीहितम् ।

ततोऽग्निः पृथिवीसंस्थं हरवीर्यं समाददे ॥२९॥

धारयामास तद्ह्यसह्यमपि तेजसा । नाऽशकत्तद्धारयितुं यदाऽग्निः सर्वथा तदा ॥३०॥

विधातारमुपव्रज्य लज्जितः प्राह पावकः । ब्रह्मन्नाहं समर्थोऽस्मि धारणेऽस्य हरौजसः ॥३१॥

तद्रक्ष मां दह्यमानं मयैतत् क्व विसृज्यताम्। विचार्य विधिराहाऽग्निमेषा त्रिपथगा नदी ॥३२॥

त्यजाऽस्यां तन्महावीर्यं शाङ्करं सा वहिष्यति ।

श्रुत्वा विधिवचो गङ्गा प्राञ्जलिः प्राह सा विधिम् ॥३३॥

देवेश! नाऽफला जातु परवीर्यं विधारये ।

पुत्रः सपदि मे भूयाद्धारयामि न चाऽन्यथा ॥३४॥

शिवके वीर्यको धारण करो। यह परिपक्व होने से कुमारका जन्म होगा। जब तक ऐसा न बने तब तक यह रक्षा करने योग्य है यह मेरी उक्ति है।" ब्रह्मा की वाणी सुन कर धनञ्जय अग्नि ने अपनी इच्छा कही, "हे भगवन्! यदि वह मेरा पुत्र बने तो मैं इसे धारण करता हूँ नहीं तो केवल क्लेशताप का भागी ही मैं व्यर्थ में बनूं तो कहिये यह कैसे सम्भव है?" अग्निका अभिप्राय सुनकर श्रीब्रह्मा बोले, "हे अग्ने! तेरी जो इच्छा है उसी प्रकार होगा।" तब अग्निने पृथ्वी पर टिके हरके वीर्यको धारणार्थ ले लिया। तेज से असह्य होने पर भी उसे उसने धारणकर लिया। अग्नि जब सर्वथा ही उसे धारण न कर सका तब ब्रह्मा के पास जाकर लज्जित हो बोला, "हे ब्रह्मन्! मैं इस शिव के ओज को धारण नहीं कर सकता इसलिए जलते हुए मुझे बचाइये। इसे मैं कहां छोड़ूँ?" ब्रह्मा ने विचार कर अग्नि से कहा, "यह त्रिपथगा गंगा नदी है इस में इसे छोड़ वह इस भगवान् शंकर के महावीर्य को वहन कर लेगी।" श्रीब्रह्मा की वाणी सुनकर गङ्गा ने हाथ जोड़ उससे कहा, "जब मुझे कोई फल नहीं मिले तो कभी भी मैं दूसरे के बल को क्यों धारण करूं? वह तत्काल ही मेरा पुत्र हो जाय तो मैं धारण करती हूँ अन्यथा तो कभी नहीं" ॥२६-३४॥

अस्त्वित्युक्ता विधात्रा सा दधाराऽग्निविसर्जितम् ।
वीर्यं शैवं ततो गङ्गा कालेनाऽल्पीयसैव सा ॥३५॥
तत्तेजसा दह्यमाना क्वथिताऽपांवहाऽभवत् । वाष्पधूमसमाक्रान्ता हतयादोगणा ततः ॥३६॥
विधातारं समभ्येत्य प्राह लज्जानताऽऽनना । ब्रह्मन्नेतद्धारयितुमुत्सहे न कथञ्चन ॥३७॥
क्वथ्यमानतोयवहा कृशीभूताऽस्मि साम्प्रतम् ।
विक्लिन्नो यादसां सङ्घः सरितः सागरोऽपि च ॥३८॥
नाऽनुमोदिति मत्सङ्गं निस्तोया च भवाम्यहम् ।
तद्ब्रूहि विसृजामि क्व धातर्मयि कृपां कुरु ॥३९॥
श्रुत्वा पितामहो गङ्गावाक्यं क्षणमचिन्तयत् । ततः प्राह त्रिपथगां गङ्गे ! शृणु वचो मम ॥४०॥
कैलासपर्वताऽधो यच्छराणां सुमहद्वनम् । तत्र वीर्यं शाङ्करं तदुत्स्रष्टुं त्वं समर्हसि ॥४१॥
श्रुत्वैवं धातृवचनं गङ्गा पप्रच्छ सादरम् । अत्याश्चर्यमिदं प्रोक्तं कथं तत्रोत्सृजाम्यहम् ॥४२॥

विधाता ने कहा, "ऐसा ही हो जब अग्नि से छोड़े गर्भ के तेज को गंगा ने धारा तब गङ्गा बहुत अल्प समय में ही उस तेज से जलती हुई अत्यधिक कृश हो गई (जल सूखने लगा) । तब वहवाष्प (भाप) और धूल से परिपूर्ण हो गई । तेजने फिर जल के सब जन्तुगण का नाश कर दिया । विधाता के पास लज्जा से शिर को झुका गङ्गा ने कहा, "हे ब्रह्मन् इसको मैं कथं कथमपि धारण करना नहीं चाहती ॥३५-३७॥

मेरा सब जल उबल कर सूखने लगा है अबअत्यन्त कृशबल वाली (सूखी) धारा बन गई तब जल में रहने वाले प्राणियों का समूह नदियां और सागर भी इसके साथ मेरा सङ्ग नहीं चाहते और मैं जलरहित बनती जाती हूँ। इसलिये "हे विधातः ! मुझे बतावें मुझे क्या करना है ? मेरे ऊपर कृपा करें ।" गङ्गा का कथन सुनकर श्रीब्रह्मा ने एक क्षण सोच विचार कियाऔर तब गङ्गा से बोले, "हे त्रिपथगे भागीरथि ! मेरा कथन सुन । कैलास पर्वत के नीचे भाग में जो शरवण हैं, शर नामक घासों का बन है वहां शंकर के दिव्य तेज को तुम छोड़ सकती हो। इस प्रकार श्रीब्रह्मा का कथन सुनकर गङ्गा ने सादर पूछा, आपने यह तो अत्यन्त आश्चर्यमयी बात कही मैं कैसे उसे वहाँ छोड़ूं ? ॥३८-४२॥

सब सहने वाली भूमि; दिशाओं का आश्रय पाने वाला अग्नि और नदियों में श्रेष्ठ मैं गङ्गा जब उस तेज को

सर्वंसहा चाऽऽश्रयाशो गङ्गा चाऽहं सरिद्वरा । न शेकुर्धारणे यस्य तच्छराणां वनं कथम् ॥४३॥
धारयेदत्र नो हेतुरल्पः स्यात् सर्वथा विधे । वदैतच्छ्रोतुमिच्छामि श्रवणाऽर्हं भवेद्यदि ॥४४॥
पृष्टो धाता गङ्गयैवं प्राह सर्वं जगद्विधिः । शृणु गङ्गे शरवणवृत्तं यत्तत्पुरातनम् ॥४५॥
पुरा भस्माऽसुरकृते वियुक्ता पतिना शिवा । तदा दुःखेन महता शीर्णं तस्याः कलेवरम् ॥४६॥
पपात तत्र शोचन्त्याः शतधा च सहस्रधा । तस्या विशीर्णदेहोत्थमासीच्छरवणन्त्विदम् ॥४७॥
यस्माद्गौर्यंशभूतं तत्ततो वीर्यविधारणे । समर्थमिति सम्प्रोक्तं त्यज तत्राऽविशङ्किता ॥४८॥
श्रुत्वैवं गङ्गया वीर्यमुत्सृष्टं शरकानने । प्राप्य तद्वीर्यमचिराद्ववृधे शरकाननम् ॥४९॥
अथ कालेन तद्वीर्यं कुमारात्मकमुत्तमम् । तमपश्यद्विधिः पूर्वं ततोऽन्येऽपि समाययुः ॥५०॥
ददृशुस्तत्र ते सर्वे तं कुमारं महाऽद्भुतम् । स्वर्णाभं कोटिसूर्याणां तेजसां परिभावकम् ॥५१॥

धारण नहीं कर सके तो वह शरों का वन कैसे धारण कर पावेगा ? यदि धारणकर भी ले तो इसमें कोई बहुत बड़ा कारण हो सकता है। हे विधे ! आप यदि मुझे इस विषय को सुनाने के योग्य समझें तो कृपया सुनाइये मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ४३-४४ ॥

इसप्रकार पूछने पर जगत्के धाता श्रीब्रह्मा ने कहा, "हे गंगे ! प्राचीन इतिहास में जो शरवण का वृत्तान्त है उसे सुन। प्राचीन समय में जब भस्मासुर दैत्य के कारण भगवती गौरी अपने पतिदेव से वियुक्त हो गई तब अत्यन्त दुःख से उसका शरीर जर्जर हो गया वहां उसका शरीर शतशत खण्ड और हजारों टुकड़ों में विभक्त हो गिरा। उसके विशीर्ण (अत्यन्त थकित) शरीर से निकला हुआ यह कास का वन है क्योंकि गौरी के अंश से निकले इस शरवण का और काम के शत्रु शिवके वीर्यका एक स्थानवर्ती होना स्वाभाविक है इससे यह शरों का वन भगवती का अंश होने से उस तेज को धारण कर सकता है। उसे वहाँ बिना किसी शङ्का (ननु न च) को छोड़ दो।" इस प्रकार सुनकर गङ्गा द्वारा शरों के वन में यह डाल दिया गया। इस वीर्य को पाकर वह शरकानन शीघ्र ही दिन-रात लहलहा कर बढ़ा; अब समय बीतने पर उस वीर्य ने उत्तम कुमारात्मक रूप ग्रहण कर लिया। सर्वप्रथम ब्रह्मा ने वहाँ जाकर कुमाररूपवाले उत्तम उस वीर्य को देखा; अनन्तर बाद में फिर अन्य लोग भी आये ॥४५-५०॥

वहां उन सबने महाअद्भुत रूपादिवाले कुमार को देखा; स्वर्ण की उज्ज्वल आभावाले कोटिसूर्यों के तेज को

विशालनेत्रं विपुलदीर्घवक्षःकराऽम्बुजम् । कोटिकन्दर्पलावण्यसमाक्षेपाऽतिसुन्दरम् ॥५२॥
दृष्ट्वा वैश्वानरः प्राह मत्पुत्र इति भार्गव । अथ प्रोक्तं गङ्गयाऽपि ममाऽयं तनुजस्त्विति ॥५३॥
शिवः पर्वतजायुक्तस्तमपश्यत् कुमारकम् । मत्वाऽऽत्मजं सुसन्तुष्टौ पार्वतीपरमेश्वरौ ॥५४॥
चक्रे विधाता नामानि कुमारस्याऽस्य हेतुतः । अग्निभूरेष गाङ्गेयः पार्वतीनन्दनोऽपि च ॥५५॥
स्कन्दवीर्यसमुद्भूतो यस्मात् स्कन्दस्ततो भवेत् ।
कृत्वैवं तस्य नामानि धात्री काऽस्य भविष्यति ॥५६॥
विचार्य कृत्तिकास्तत्र जगद्धाता न्ययोजयत् ।
पुत्रं स्वानान्तु तं कृत्वा स्तन्यं पाययितुं यदा ॥५७॥
अहम्पूर्विकयाऽन्योन्यमुपतस्थुः कुमारकम् । कुमारः कृत्तिका दृष्ट्वा स्पर्धमानाः परस्परम् ॥५८॥
युगपत् षण्मुखो भूत्वा स्तन्यं तासां पपौ द्रुतम् । तेन षण्मुखतां यातः कार्त्तिकेयत्वमप्युत ॥५९॥
पीत्वा स्तन्यं कृत्तिकानां ववृधे निमिषाऽर्धतः । पर्वतः षट्शृङ्ग इव तं दृष्ट्वा देवतादयः ॥६०॥

लज्जित करने वाले, विशाल नेत्रधारी, आयत दीर्घवक्षःस्थल और कराम्बुज वाले, करोड़ों कामदेव के सौन्दर्य को तिरस्कृत करने वाले, अत्यन्त सुन्दर उस कुमार को देख अग्नि ने कहा 'यह मेरा पुत्र है।' हे भार्गव ! गङ्गा ने भी 'मेरा पुत्र है' यह कहा। पार्वती सहित सदा शिव ने कुमार को देखा उसे अपना आत्मज मान कर भगवती पार्वती और परमेश्वर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥ ५१-५४ ॥

विधाता ने इस कुमार के नामों को हेतु सहित (सार्थक कारणों से) नामकरण किया; यही अग्निभू गङ्गापुत्र और पार्वतीनन्दन भी है, स्कन्दवीर्य से उत्पन्न होने के कारण स्कन्द है। इस प्रकार उसके नामकरण करके इसकी धाय कौन बनेगी ? जगद्धाताने विचार कर कृत्तिकाओं को उस कार्य के लिये नियुक्त किया। उसे अपना-अपना पुत्र मानकर कृत्तिकायें दुग्ध पिलाने के लिये 'अब पहले मैं दूध पिलाऊँ' 'मैं पिलाऊँ' 'इसप्रकार कहती वे एक साथ कुमार के आगे आयी तो आपस में एक दूसरी से होडकरने लगी। एक साथ कुमार ने छै मुखवाला होकर उनका दूध शीघ्र पी लिया इससे 'षण्मुखता' को प्राप्त 'षडानन' तथा 'कार्तिकेय' यह भी नाम हुआ ॥ ५५-५९ ॥

कृत्तिकाओं का दूध पीकर आधे निमेष में ही कुमार बढ़ा, छै शिखरों वाले पर्वत के समान उसे देख

विस्मयं परमं प्राप्तस्ततः सर्वान्निशाम्य सः ।
स्कन्दः प्राह बलिं सर्वे मेऽर्पयन्तु स्वशक्तितः॥६१॥
अथ ब्रह्माऽर्पयत्तस्मै स्वीयामक्षस्रजं तथा ।
शिवः शूलं शक्तिमग्निश्चक्रं विष्णुस्तथाऽङ्कुशम् ॥६२॥
मारुतो वरुणः पाशं यमो दण्डं धनेश्वरः । गदां समुद्रो रत्नानां भूषणानि समन्ततः॥६३॥
छत्रं त्वष्टा पादुके च चामरेऽतिसुनिर्मले । ददौ पूजां सर्वदेवाश्चक्रुस्तस्य नतास्तदा ॥६४॥
शक्रं दृष्ट्वा स्तब्धधियमनम्रं मन्युना वृतः । स्कन्दः समाह्वयद्योद्धुं धृष्टं दृष्ट्वा पुरन्दरम् ॥६५॥
अथाऽभवन्महायुद्धं स्कन्दवासवयोस्तदा । शिवपार्षदसंयुक्तः स्कन्दः शक्रः सुरैर्वृतः॥६६॥
महासत्त्वं तमालक्ष्य युद्धे तेन प्रपीडितः । शक्रः पलायनपरः क्रौञ्चाऽभ्यन्तरमाययौ ॥६७॥
दृष्ट्वा पुरस्थितं क्रौञ्चगिरिं परमकोपनः । शरैर्विदारयामास पर्वतं सर्वतो दिशम् ॥६८॥
अथ स्कन्दशरैर्नुन्नः क्रौञ्चः शिथिलबन्धनः । भग्नाऽसंख्यातशिखरो ब्रह्माणं शरणं ययौ ॥६९॥

देवगण अत्यन्त विस्मित हुए तब सबको देखकर वह स्कन्द बोला कि सब लोग अपनी शक्तियों से मुझे उपहार दें ॥ ६०-६१ ॥

अनन्तर श्रीब्रह्मा ने अपनी अक्षमाला दी, शिव ने शूल, अग्नि ने शक्ति, विष्णु ने चक्र, मारुत ने अङ्कुश, वरुणने पाश, यमराज ने दण्ड, धनपति कुबेर ने गदा, समुद्र ने चारों ओर से रत्नों के आभूषण, त्वष्टा ने छत्र और अत्यन्त निर्मल पादुकायें प्रदान की । तब सब देवगणने नत हो उसकी पूजा की । स्तब्धबुद्धिवाले नम्रतारहित इन्द्र को देख स्कन्द ने क्रुद्ध हो धृष्ट देवराज को युद्ध करने के लिये ललकारा । अनन्तर स्कन्द और इन्द्र का महायुद्ध हुआ । शिव के पार्षदों से संयुक्त स्कन्द और देवगण के सहित इन्द्र आया । महाबल पराक्रमशील उसे देख युद्ध में उसके द्वारा अत्यन्त पीड़ित हो शक्र भागने लगा और क्रौञ्च गिरि के अन्दर आ गया ॥ ६२-६७ ॥

अपने सामने क्रौञ्च गिरि को खड़ा देख अत्यन्त क्रुद्ध स्कन्द ने सब ओर से बाणों से उसे बेंध दिया ॥६८॥ अनन्तर स्कन्द के बाणों से विंधा हुआ शिथिलबंधनवाला और असंख्यात टूटे शिखरों सहित क्रौञ्च श्रीब्रह्मा की शरण में आया ॥ ६९ ॥

ब्रह्मणा संस्तुत्य तदा शामितः शङ्करात्मजः । प्रपन्नमिन्द्रं सङ्गम्य हृतां त्रिभुवनश्रियम् ॥७०॥
प्रत्यर्पयत्तेन वृतः सेनापत्यमविन्दत । देवसेनापतिर्भूत्वा शक्राद्यैरभिसंवृतः ॥७१॥
युयोध तारकाख्येन शूरपद्माऽसुरेण च । अष्टादशाऽण्डाधिपत्यलक्ष्म्या प्रख्यातकीर्तिना ॥७२॥
अनेकाऽसुरसङ्घानां कोटिकोटिमहाऽर्बुदैः । युतेन युद्ध्वा सुचिरं प्रदर्श्याऽऽत्मपराक्रमम् ॥७३॥
जघान समरे स स्कन्दः शूरपद्मञ्च तारकम् । तत्तदण्डेषु शक्रादींस्त्रैलोक्यैश्वर्यसंयुतान् ॥७४॥
कृत्वाऽसुराणां नाशेन त्रैलोक्यज्वरनाशनः ।
लोकानानन्दितांश्चक्रे स्कन्दः स्वामी षडाननः ॥७५॥
एवं श्रुत्वाऽवधूतेशमुखात् स्कन्दकथां शुभाम् ।
पप्रच्छ भार्गवो रामः पुनः कुतुकिताऽन्तरः ॥७६॥
भगवन्नद्भुतमिदं श्रुतमेतत्कथाऽमृतम् । सन्देहो मे महान् जातः पृच्छामि ब्रूहि तन्मम ॥७७॥
कथमेष महाभागः स्कन्दस्तमसुरेश्वरम् । जितवान् शिवविष्ण्वन्द्रदुर्जेयमपि संयुगे ॥७८॥

ब्रह्मा द्वारा स्तुत हो शङ्करका पुत्र कार्त्तिकेय शान्त हुआ । शरणमें आये इन्द्रने मिलकर अपनी हरण की हुई तीनोंकी भुवनों लक्ष्मी उसे अर्पितकर दी । उससे वरण किया जाकर स्कन्दने सेनापतित्व (प्राप्त किया)। स्कन्दने तब देव सेनापति होकर शतक्रतु आदि के साथ तारक और शूरपद्म नामक असुर जो अठारह ब्रह्माण्डों का स्वामी बन लक्ष्मी भोगने वाला विश्वमें प्रख्यातकीर्ति था, जिसके सैन्यदलमें कोटि-कोटि महा अर्बुद संख्यामें अनेक असुर गण के सङ्घ सम्मिलित थे उनके महारथियों से युद्ध किया । उसके साथ दीर्घ समय तक युद्ध कर अपना प्रबल पराक्रम दिखाकर उस स्कन्द ने युद्ध में शूरपद्म और तारक का वध कर दिया । त्रिलोकी के ज्वर (इन दैत्यों) का नाश करने वाले देव सेनापति स्वामी षडानन स्कन्द ने असुरों के नाश से खाली हुए उन उन ब्रह्माण्डों में शक्र आदि देवगणको त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से समृद्ध बना नियुक्त करके लोकों को अत्यन्त आनन्दित बनाया ।" इस प्रकार अवधूत श्री दत्तात्रेय के मुख से स्कन्द की कथा को सुनकर परशुराम ने फिर कुतूहलवश पूछा ॥ ७०-७६ ॥

"हे भगवन् ! यह सब कथारूपी अमृत मैंने अद्भुत ही सुना, इसमें मुझे बड़ा सन्देह हो गया; जिसे मैं पूछता हूँ आप कृपया बतलावें । शिव, विष्णु, और इन्द्र इन प्रबल देवगण से भी अत्यन्त कठिनता से जीते जाने वाले कुछ

एतन्मे वद सम्प्रश्नं श्रोतुमुत्कण्ठितोऽस्म्यहम् । अथ प्राह दत्तगुरुर्भार्गवं प्रति प्रीतितः ॥७६॥
शृणु भार्गव यत् पृष्टं गुह्यमेतत् पुरातनम् । सनत्कुमारो भगवान् सर्वसत्त्वात्मकः शुभः ॥८०॥
पराऽवरज्ञः सर्वस्य स्वात्मभूतः शमाश्रयः । पर्वते ऋषभाऽऽख्याने निवसत् स्वात्मनन्दनः ॥८१॥
अथ तत्र लोकधाता प्राप्तो द्रष्टुं स्वमात्मजम् ।
दृष्ट्वा प्राप्तं स्वजनकं प्रत्युथायाऽऽसनादिभिः ॥८२॥
सम्पूज्य प्रह्वभावेन प्राह किञ्चिन्मनोगतम् । ब्रह्मन् ! मे हृदये किञ्चित् प्रष्टुं विपरिवर्तते ॥८३॥
पृच्छाम्यनुज्ञां तत् प्रष्टुमित्युक्त्वा तेन प्रेरितः ।
प्राह ब्रह्मन् मया पूर्वरात्रौ दृष्टं महाऽद्भुतम् ॥८४॥
युद्धमासीन्महाभीममसुराणां तथाऽमरैः । तत्र सर्वे मया युद्धे निहता बलवत्तराः ॥८५॥
असुरास्तत् कथमिदं निर्हेतुकमभूद्वद । सनत्कुमारेण पृष्टः प्राह ब्रह्मा प्रजापतिः ॥८६॥
शृणु पुत्र! पुरा विप्रस्त्वं जन्माऽन्तरगोचरः । ब्रह्मविद्याऽभ्यासपरः श्रुतवानसुरैः सह ॥८७॥

राक्षसाधिपतियों को यह महाभाग स्कन्द युद्ध में कैसे जीत गया ? इस प्रश्न का प्रत्युत्तर मुझे कहें, मैं सुनने को अत्यन्त लालायित हूँ।" अनन्तर गुरुवर्य दत्तात्रेय ने भृगुनन्दन परशुराम को प्रेम से कहा, "हे भार्गव ! सुन जो तू ने पूछा है यह पुरातन गूढ रहस्य है। सर्वसत्त्व प्राणियों में आत्मदर्शन करनेवाले, मङ्गलकारी, परावरज्ञ, सर्वब्रह्म के आत्मभूत, शमपरायण, आत्मानन्दी भगवान् सनत्कुमार ऋषभ नामक पर्वत में निवास करते थे ॥७७-८१॥

अनन्तर लोकों के विधाता श्रीब्रह्मा अपने पुत्र को देखने वहां आये। अपने पितुःश्री को आया देख उठकर आसनादि से अभिनन्दन कर कुछ अपने मन के भावों को कहते हुए सनत्कुमार ने विनम्रभावसे पूछा, "हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदयमें कुछ पूछने योग्य बात उठती है उसे पूछने की आज्ञा दें तो आपसे पूछूँ।" यह कह कर उनसे प्रेरित सनत्कुमार ने कहा, "हे पितामह ! मैंने पूर्वरात्रि में दत्यगण का अमरों के साथ अत्यन्त अद्भुत महाभयङ्कर घोर संग्राम हुआ देखा है; उसमें सभी बलपराक्रमशील असुर लोग मेरे द्वारा मारे गए यह सब बिना कारणके क्यों हुआ? उसे बतलावें।" सनत्कुमार द्वारा पूछे जाने पर लोकप्रजापति श्री ब्रह्मा बोले, "हे पुत्र ! सुन, प्राचीन कालमें तू जन्म-जन्मान्तरकी बातें जानने वाला ब्रह्मविद्या में लगा हुआ ब्राह्मण था; तूने देवों का असुरों के साथ युद्ध वृत्तान्त सुना; वहां तुमने संकल्प

देवानां युद्धवृत्तान्तं तत्र सङ्कल्पितं त्वया ।
अहं जित्वाऽसुरान् सर्वान् देवताभ्यः श्रियं पुनः ॥८८॥
दास्यामीति ततो वैश्वानरोपासनतत्परः । कालधर्ममनुप्राप्तस्तेन ब्रह्मत्वमेव ते ॥८९॥
भवितव्यं तथाऽपि त्वं खण्डोपासनकारणात् । मत्पुत्रत्वमनुप्राप्तः सा जन्मान्तरवासना ॥९०॥
स्वप्नात्मना त्वया दृष्टा भविष्यति च तत्तथा । श्रुत्वेत्थं ब्रह्मवचनं पुनः पप्रच्छ सादरात् ॥९१॥
भगवन् तत् कथं भाविजन्म मे नाऽस्ति सर्वथा । पराऽवरज्ञस्य कुतो भवेत्तद्ब्रूहि पृच्छते ॥९२॥
अथ ब्रह्मा प्राह पुत्रं शृण्वित्यामन्त्र्य तं प्रति ।
स्वेच्छयैव हि ते जन्मद्वारा सर्वमिदं भवेत् ॥९३॥
इत्युक्त्वा पूजितस्तेन ययौ स्वं भवनं विधिः ।
अथ कालाऽन्तरे शम्भुर्वृषाऽऽरूढः शिवायुतः ॥९४॥
पश्यन् जगद्विलासं स प्राप्तस्तस्याऽऽश्रमं प्रति ।
ददर्श तत्र गिरिजा निषण्णं विधिनन्दनम् ॥९५॥
प्रसन्नवदनं शान्तं सुखं सर्वाऽङ्गशीतलम् । उपलक्ष्य मुनिं तादृग्विधं पप्रच्छ शङ्करम् ॥९६॥

किया कि मैं सब असुरों को जीत कर फिर देवगण को लक्ष्मी दूँगा । तब वैश्वानर विद्या की उपासना में तत्पर हो तू कालगति को प्राप्त हो गया । इससे फिर से तेरा ब्रह्मत्व ही होना निर्बाध रहा ॥८२-८९॥

फिर भी तू खण्ड उपासना के कारण से मेरा पुत्र बना वह तेरी जन्मान्तर की वासना स्वप्नके रूप में तेरे द्वारा देखी गई होगी उसी से तूने ऐसा स्वप्नरूप से दृश्य देखा ।" इस प्रकार ब्रह्मा के वचन सुनकर फिर सनत्कुमार ने आदरपूर्वक पूछा, "हे भगवन् ! तो परावर को जानने वाले मेरा भविष्य में जन्म सर्वथा क्यों नहीं होगा ? उसका कारण पूछने वाले मुझे बतावें ।" अनन्तर श्रीब्रह्मा ने कहा, "हे पुत्र ! सुन" इसप्रकार सम्बोधन कर "स्वेच्छा से ही तेरे जन्म द्वारा यह सब होगा" ॥९०-९३॥

इस प्रकार कह कर सनत्कुमार द्वारा पूजित श्रीब्रह्मा अपने भवन को चले गये । अत्यधिक समय के बीत जाने पर एकबार भगवती पार्वती के सहित भगवान् शङ्कर अपने वृष (बैल) पर आरूढ हो संसार की विलास-रचना देखते

महेश सर्वलोकेषु नैवं कश्चन लक्षितः । निश्चिन्तः सर्वतः शीतः कोऽयमद्भुतदर्शनः ॥९७॥
एवं पृष्टो गिरिजया प्राह देवो वृषध्वजः । सनत्कुमारः ख्यातोऽयं ब्रह्मपुत्रः सुशान्तधीः ॥९८॥
ब्रह्मभूतः परानन्दमग्नो नित्यसुनिर्वृतः । कृतकृत्यस्ततो नाऽस्ति क्लेशलेशोऽप्रवृत्तितः ॥९९॥
प्रवृत्तिरेव क्लेशस्य मूलं सर्वत्र पार्वति ! । इति श्रुत्वा ततः प्राह गौरी शङ्करमम्बिका ॥१००॥
एवञ्चेत्तत्र गच्छावस्तेन संभाष्य वै ततः । व्रजावोऽन्यत्र देवेश ममाऽत्र प्रीतिरुत्तमा ॥१०१॥
पार्वतीं प्राह तत्पश्चाच्छिवस्तत्कालसम्मितम् । प्रिये शृणु न गन्तव्यमकार्ये न विना फलम् ॥१०२॥
अकृत्येषु तथा गच्छन् सर्वथा परिभूयते । इत्युक्ताऽपि तत्र गन्तुमौत्सुक्यं वीक्ष्य शङ्करः ॥१०३॥
जगाम तत्सन्निधानं पार्वतीसहितः शिवः । अवतीर्य वृषात्तत्र जग्मतुर्योगिराट्पुरः ॥१०४॥

हुए उसके आश्रम में पधारे । वहां भगवती गिरिजा ने विधिनन्दन श्रीसनत्कुमार को बैठे देखा; वह प्रसन्नवदन, शान्त, सुखानुभव में तन्मय और सम्पूर्ण अङ्गों में सौम्य भाव से आसीन था ऐसे मुनि को देख भगवती ने शङ्कर से पूछा, 'हे प्राणेश्वर ! सम्पूर्ण लोकों में ऐसा सुनिश्चिन्त (चिन्तारहित) सब प्रकार से सौम्य भाव धारण किए शान्तमूर्त्ति कोई भी नहीं दीख पड़ा, यह अत्यन्त अद्भुत दर्शन वाला पुरुष कौन है ?" ॥९४-९७॥

भगवती गिरिजा द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर शंकर भगवान् ने कहा, "यह श्रीब्रह्मा का पुत्र अत्यन्त शान्त बुद्धिवाला, ब्रह्मविचारपरायण, (अद्वैत का प्रत्यक्ष स्वरूप) । परतत्त्व के आनन्द में निमग्न सदैव सब सांसारिक विषयों से भली प्रकार निर्वृत, सनत्कुमार नाम से प्रसिद्ध मुनि है । क्लेश की लेशमात्र भी प्रवृत्ति न होने से यह सब ओर से कृतकृत्य है (इससे ऊंची भूमिका अन्य व्यक्ति की नहीं हो सकती) हे पार्वति ! सर्वत्र संसार में प्रवृत्त होना ही क्लेश का मूल है ।" तदनन्तर इसप्रकार सुनकर गौरी अम्बिकाने शंकर को कहा, "यदि यह इसप्रकारकी बात है तो आइए अपन चलें और उससे वार्ता करके फिर अन्यत्र चला जाय; हे देवेश ! इस विषय में मेरी अत्यधिक प्रीति हो रही है" ॥९८-१०१॥

तत्पश्चात् श्रीशिवने समय के अत्यन्त उपयोगी वचन पार्वती के प्रति कहे, 'हे प्रिये ! सुन अकार्य में विना फल के नहीं जाना चाहिए; न करने के कार्यों में जानेवाला सदैव ही नीचा देखता है ।" इतना कहने पर भी वहां जाने की उत्कण्ठा जब भगवती की देखी तो साक्षात् शंकरस्वरूप भगवान् शिव पार्वती सहित वहां उसके सन्निकट पधारे । दोनों वृष से नीचे उतर कर योगिराज सनत्कुमार के सामने आए॥१०२-१०४॥

ज्ञात्वाऽऽशयं न तौ तत्र प्रेक्षाञ्चक्रेनभीप्सितः।पार्वतीशङ्करौ तस्य सम्मुखे चिरमास्थितौ ॥१०५॥
अप्रेक्षणाद्यैश्चाऽवज्ञां प्राप्य देवः पिनाकभृत्। परीक्षितुं तद्धृदयपरिपाकं महेश्वरः ॥१०६॥
क्रुद्धः प्राह विधेः सूनुमाहूय प्रतिबोध्य च। अनार्याणामिदं वृत्तं प्राप्तवानसि दुर्मते! ॥१०७॥
अवज्ञानं सतां लोके सद्यो हन्ति स्ववैभवम्।
मया सकृत् क्षान्तस्तवाऽनयः ब्रह्मपुत्रोऽसीति ॥१०८॥
मादृशे त्वमवज्ञां नो भूयः कर्तुमिहाऽर्हसि। श्रुत्वेत्थं शम्भुवचनं प्रोवाच ब्रह्मणः सुतः ॥१०९॥
न विभीषयितुं शक्यः शिवोऽहमकुतोभयः। भयहेतुं भक्षयित्वा स्वं स्वकीयाऽभिसम्मतौ ॥११०॥
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः कृते विन्यस्य दृश्यकम्।
शापानां कोटिभिर्नो मे वराणां वाऽपि कोटिभिः ॥१११॥
विशेषो वाऽविशेषो वा कदाचित् कुत्रचिद्भवेत्।
अशेषाणां विशेषाणामाश्रयो न ह्युपाश्रयः ॥११२॥
एधस्यां पावक इव विशेषानुपशेषकः। शापे न वाऽनुग्रहे वा स्यात्तुष्टिर्येन ते भव! ॥११३॥

किसी प्रकारकी इच्छा न होनेके कारण उसने अभिप्राय जानकर उनकी ओर (शंकर एवं पार्वती को) दृष्टि नहीं की। शङ्कर और पार्वती उस (महापुरुष) के सामने दीर्घ समय तक स्थित रहे। न देखने और न अभिवादन आदि करने से अपनी अवज्ञा समझकर पिनाकधारी भगवान् शम्भु श्रीमहेश्वर ने उसके हृदय के पूर्ण परिपाक होने की परीक्षा करने के लिए क्रुद्ध हो, श्रीब्रह्माके पुत्र को पुकार कर और उसे भलीप्रकार जगाकर कहा, "हे मूढबुद्धे! क्या तू अनार्य (नीच) लोगों के आचरण को प्राप्त हो गया है? लोक में सत्पुरुषों की अवज्ञा तत्क्षण अपने वैभव को नष्ट कर देती है। तू ब्रह्माका पुत्र है इसलिए मैंने तेरी यह अनीति भी क्षमा की है। देख, कान खोल सुन मेरे जैसे पुरुष की (भविष्य में) फिर कभी अवज्ञा मत करना।" इसप्रकार श्रीशिव के वचन सुन ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार बोला, "मैं भय के कारणों से सर्वथा अतीत शिव हूँ, मैं ऐसे रूपमें डराया नहीं जा सकता; अपने भयके हेतु इस संसार प्रपञ्च को सर्वथा भक्षण कर मैं अपने स्वभाव (आत्मलीनता) में रचपच गया हूँ। सारे करणीयविश्व में दृश्यको छोड़ कर अब मैं सन्देहसे रहित हूँ; न तो मेरे लिये कोटि शापों से और न करोड़ों वरों के द्वारा विशेष अथवा अविशेष कभी भी व कहीं भी कुछ नहीं हो सकता। सम्पूर्ण विशेषों का आश्रय हूँ उपाश्रय नहीं; बढ़ती हुई अग्निकी शिखामें कोई वस्तु शेष होती है तो भस्मके रूप में ही

अशङ्कितस्तन्मयि त्वं प्रतिक्षिप सुसत्वरम् । अहो महानुग्रहोऽयं मयि ते प्रकटीकृतः ॥११४॥
अयत्नेनैव सन्तुष्टः सन्तोष्यो बहुसाधनैः । सनत्कुमार उक्त्वैवं विरराम वचो विधेः ॥११५॥
श्रुत्वैवं तस्य वचनं दृष्ट्वा चाऽविकृताऽऽत्मताम् । प्रसन्नः प्राह भूतेशो ब्रह्मपुत्र नमोऽस्तु ते ॥११६॥
तुष्टोऽस्मि निष्ठया चाऽतिदृढया तव सुव्रत ! ।
याचस्वाऽभिमतं यत्ते दास्याम्यप्राप्यमप्युत ॥११७॥
श्रुत्वा विहस्य विधिजः प्राह शम्भुमशङ्कितः ।
साधयस्व महादेव एष मे काङ्क्षितो वरः ॥११८॥
मायाविनां महेशान नाऽहं वेपयितुं क्षमः ।
महावातैरिवाऽऽकाशो ब्रूहि ते यदि वाञ्छितम् ॥११९॥
तथाप्यकम्प्यं मत्वा तमोमित्याह महेश्वरः । यदि दास्यसि मे कामं प्रतीच्छ मम पुत्रताम् ॥१२०॥

उसी प्रकार गुण रहित मैं स्थित हूँ । हे भव ! लोकाभ्युदय के लिए सनातन सत्तात्मक ! शाप अथवा अनुग्रह किसी आपकी तुष्टि है तो आप विना किसी शङ्का के अतिशीघ्र मुझे शाप दें । अहो ! मेरे लिए आप यह अनुग्रह प्रकट किया गया कि (बहुत प्रकार के साधनों यज्ञादि दैवी और उपासनाओं से सन्तुष्ट होने वाले) आप विना किसी प्रयत्न के ही मुझ पर स्वयं सन्तुष्ट (प्रसन्न) हो गये हैं ।" इस प्रकार श्रीब्रह्मा के सुपुत्र सनत्कुमार कह कर मौन हो गये ॥१०५-११५॥

इस प्रकार उसके अभयवचन सुन और उसकी विकाररहित अवस्था को देख भगवान् भूतनाथ प्रसन्न हो बोले, "हे ब्रह्मपुत्र ! तुम्हें नमस्कार है । हे सुव्रत ! मैं तेरी अत्यन्त दृढ निष्ठा से सुप्रसन्न हूँ, तुझे जो अभीष्ट हो सो मांग चाहे वह अप्राप्य भी होगा तो मैं अवश्य वर दूंगा" ॥ ११६-११७ ॥

ब्रह्मपुत्र सनत्कुमार ने विना किसी शङ्का के भगवान् शम्भु को हँसकर कहा, "हे महादेव ! आप ही साधन का फल लीजिये यही अपना आकांक्षित वर मैं मांगता हूँ । मैं मायावी लोगों द्वारा कभी भी कम्पित नहीं किया जा सकता जैसे भारी प्रभञ्जनोंसे आकाशको कुछ भी विकृति नहीं आती ठीक वही मेरी स्थिति है । अतः आपको कोई वाञ्छित हो तो मुझसे वर मांगिये" ॥ ११८-११९ ॥

इतने पर भी अपने निश्चय में स्थिर है (बात का पक्का है) यह मानकर महेश्वर ने "हाँ" भरी, "तुम मेरी पुत्रता को स्वीकार करो" ॥ १२० ॥ "तथास्तु" यह कहकर फिर उसने कहा आपने निश्चय ही बहुत अल्प ही वर

तथेत्युक्त्वा पुनः प्राह नन्वल्पं तव याचितम् । पुत्रोऽहमेव सर्वेषां तिरश्चामपि शङ्कर ॥१२१॥
किमत्र दुष्करं यत्ते पुत्रः स्यामिति शंस मे । तवैव पुत्रो भविता न पार्वत्याः कथञ्चन ॥१२२॥
त्वयैवाऽहं वृतोऽत्राऽर्थे तन्निसृष्टो वरो मया । अथ सा पार्वती देवी प्राह तं मुनिपुङ्गवम् ॥१२३॥
ब्रह्मपुत्र प्रार्थितोऽसि मयाऽपि ननु सर्वथा । समाङ्गौ दम्पती यस्मात्तन्मे पुत्रत्वमर्हसि ॥१२४॥
अभ्यागतानां साम्येन पूजनं हि सतां व्रतम् । तत्र देवः प्राप्तवरो रिक्ताऽहं तत् कथं व्रजे ॥१२५॥
वैषम्यं न तु सद्धर्म इति प्राहुर्मनीषिणः । श्रुत्वेत्थं पार्वतीवाक्यं पुनराह विधातृजः ॥१२६॥
देवि ते पुत्रतां यामि प्रसिद्ध्या न तु देहजः । एतन्मम व्रतं गुह्यमयोनौ भवनं क्वचित् ॥१२७॥
इति श्रुत्वा पुनः प्राह पार्वती मुनिपुङ्गवम् । न स्त्रीणां देहसम्बन्धमृते पुत्रसुखं भवेत् ॥१२८॥
तस्माद्देहेन सम्बन्धं काङ्क्षामि तव सर्वथा । इत्युक्तः स मुनिः किञ्चिद्विमृश्योवाच शङ्करीम् ॥१२९॥
देवि किं मोहयस्येवं वचनैः प्राकृतैरिव । त्वं सर्वलोकजननी प्राप्तकामाऽपि सर्वथा ॥१३०॥

मांगा, "हे शंकर जी मैं सभी योनियों का स्वात्मरूप से (यहां तक कि) पक्षियों तक का पुत्र हूँ इस विषय में जो आपका पुत्र बनूँ तो क्या वस्तु कठिन है ! यह मुझे बताइये । मैं आपका ही पुत्र बनूँगा, भगवती पार्वतीजी का तो किसी रूप में नहीं ॥ १२१-१२२ ॥

आपने ही इस पुत्र बनने के प्रयोजन के लिये मुझ से वर मांगा है उसे मैंने स्वीकार किया ।" अनन्तर भगवती पार्वती देवी ने उस मुनि-श्रेष्ठ (सत्कुमार) से कहा, "हे ब्रह्मपुत्र ! मैंने भी तुमसे सर्वथा प्रार्थना की है । हम दोनों पति पत्नी समान अधिकार के भागी हैं; इसी से तू मेरे पुत्र होने योग्य हो ॥१२३-१२४॥ आये हुए अभ्यागतों (अतिथिगण) का पूजन बराबरी के नाते (समभाव से) करना सज्जन पुरुषों का व्रत (प्रण) है उस विषय में मेरे पतिदेव भगवान् शङ्कर वर पा गये (और) मैं बिना प्राप्त किये (रिक्त हाथ से) कैसे जाऊँ ? ॥ १२५ ॥

किसी को छोड़ा और किसी को निहाल कर दिया इस प्रकार ऊँचा नीचा स्तर रखना कभी सज्जन व्यक्तियों द्वारा सेवित धर्म नहीं है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ।" इस प्रकार विधाता श्रीब्रह्मा के पुत्र (सनत्कुमार) ने पार्वती की वाणी सुनकर कहा, "हे देवि ! मैं आपका प्रसिद्धि से पुत्र बन जाऊँगा, आपके देह से उत्पन्न हुआ कदापि नहीं । यह मेरा अत्यन्त रहस्यमय व्रत है कि अयोनि में ही उत्पन्न होता हूँ ।" इस प्रकार सुन फिर पार्वती ने कहा, "स्त्रियों के देह सम्बन्ध को छोड़ पुत्र का सुख नहीं होता है (नियमतः) इसलिये तेरा अपने देहके साथ

शृणु तथ्यं वदाम्यम्ब व्रतमेतन्ममेहितम् । तस्मात् पूर्वतनो देहो विशीर्णः पर्वताऽन्तरे ॥१३१॥
तारात्मना स्वर्णमयं वनं तत्र महेश्वरि । भवामि पूर्वदेहेन सम्बन्धात्ते सुखञ्च तत् ॥१३२॥
इत्युक्तौ प्रणतौ देवौ जग्मतुः स्वमभीप्सितम् । सनत्कुमारोऽपि मुनिर्ज्ञाननिष्ठामहित्वतः ॥१३३॥
ब्रह्माद्यखिलदेवानां दैत्यादीनाञ्च सर्वतः । प्राप्ताऽऽत्मभावः सर्वेषां बलेन परिबृंहितः ॥१३४॥
अजयत्तारकादींस्तानसुरान् सर्वतोऽधिकान् । एतत्तेऽभिहितं वृत्तं कुमारप्रभवाऽऽश्रयम् ॥१३५॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये कामोपाख्यानान्तर्गतगौर्युपाख्याने स्कन्दाविर्भावपुरःसरं तत्पूर्वजन्मवृत्तान्तवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०७२॥

कार्य मैं चाहती हूँ।" इस प्रकार कहे जाने पर उस मुनि ने कुछ सोचकर भगवती पार्वती से कहा, 'हे देवि ! आप क्या मुझे इस प्रकार सर्वसाधारण लोगों के वचनों के समान ही मोहित करती हैं ? आप सम्पूर्ण लोकों को उद्भवकरने वाली माता है और सर्वथा सम्पूर्ण कामनाओं को अपने अधिकार में रखती है। हे अम्बे ! मुझे जो अभीप्सित है उसे मैं कहता हूँ जिस कारण से (आपका) पूर्वभव का शरीर दूसरे पर्वत पर जीर्ण हो गया उस शरों के रूपवाले स्वर्णमय वन में मैं उत्पन्न होऊँगा। हे महेश्वरी ! पूर्व देह के सम्बन्ध से वही आपका पुत्र होगा" ॥१२६-१३२॥

इस प्रकार कहे जाने पर दोनों देवताओं को सनत्कुमार द्वारा प्रणाम करने पर वे अपने अभीष्ट स्थान को चले गये। सनत्कुमार मुनि भी अपने ज्ञान की निष्ठा के प्रभाव की गरिमा से ब्रह्मादि सम्पूर्ण देवगणों तथा दैत्यों के आत्मभाव को सर्वथा प्राप्त हुआ सभी के बलसे युक्त हो सब से अधिक धन, जन और बल में बढे हुए तारकादि दैत्यों को मार विजयी बना। यह तुझे कुमार के आविर्भाव को लेकर प्रचलित हुए सब वृत्तान्त को वर्णन कर दिया ॥१३३-१३५॥

इस प्रकार श्री सम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में कुमारसम्भवनात्मक प्रखण्ड में उसके पूर्वजन्म के विवरण नाम का सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

दत्तभार्गवसम्वादे सावित्रीवृत्तान्तवर्णनम्

शृणु ते सम्प्रवक्ष्यामि भृगुवंशविभूषण । भारत्याः सत्प्रभावं वै महाश्चर्यकरं परम् ॥१॥
भारती या पुरा प्रोक्ता शङ्कराऽवरजा शिवा । वर्णत्रयं त्राति सूक्ष्मा सावित्री तत ईरिता ॥२॥
सा धातृपत्नी प्रागेव विवाहः सुनिरूपितः । कदाचित् सत्यलोके सा ब्रह्मणः सविधे स्थिता ॥३॥
सभायां सिद्धदेवर्षिसमेतायां भृगूद्वह । संस्तुता सिद्धऋषिभिर्विविधैः संस्तवैः पृथक् ॥४॥
अनादरपरो धाता तत्स्त वेप्रहसन् स्थितः । दृष्ट्वा सा ब्रह्मणः स्वस्मिन्नवज्ञानं चुकोप हि ॥५॥
उवाच लोकधातारं रोषाऽरुणितलोचना । न ते युक्तमवज्ञानं मयि सर्वात्मना यतः ॥६॥
अपारयन् सृष्टिकृत्ये यत्नेनाऽऽसादिता त्वया । स्मर तत्प्राक्तनं वृत्तं यदा नाऽहं स्थिता तव ॥७॥

अड़तीसवां अध्याय

"हे भृगुवंश के विभूषण परशुराम ! सुन तुझे अत्यन्त श्रेष्ठ महा आश्चर्यकारी भगवती सरस्वती के सत्यप्रभाव को कहूँगा। जो मङ्गलमयी भारती पहले शङ्कर की छोटी बहन बताई गई है वह द्विजाति की रक्षा करनेवाली सूक्ष्मा (साररूपा) है इसी से सावित्री कही गई है। वह पहले भली प्रकार बताए गए विवाह के अनुसार परमेष्ठी श्रीब्रह्मा की पत्नी है। भृगुकुलोत्पन्न परशुराम ! सिद्ध देवर्षि गण समेत जुटी हुई सभा में वह एक बार सत्यलोक में विधाता के निकट बैठी हुई थी, सिद्ध ऋषिगण पृथक्-पृथक् विविध स्तुतियों से पराभगवती की स्तुति करते थे। उनकी स्तुति होने के समय श्रीब्रह्मा उपेक्षाबुद्धि से वहां हँसते हुए विराजमान थे। वह अपने लिए की गई स्तुति में ब्रह्माके द्वारा की गई अवगणना (उपेक्षा) को देख अति कुपित हुई ॥१-५॥

लोकसर्जक श्रीब्रह्मा से क्रोध से लाल नेत्र करती हुई बोली, "आपको मेरे लिए किए जा रहे स्तोत्रपाठ में सब प्रकार से उपेक्षा का भाव करना उचित नहीं, क्योंकि जब सृष्टि के सर्जन कार्य में सफलता न मिलती देखी तो आपने बहुत प्रयत्न करके मुझे प्राप्त किया। आप अपने पूर्व के वृत्तान्त को स्मरण करें जब मैं आपके यहां नहीं थी।

दीनः सामर्थ्यविकलः शरणं जननीं गतः ।

श्रुत्वा प्रोक्तन्तु सावित्र्या विधिः प्राह ज्वलन् क्रुधा ॥८॥

नैवं त्वं वक्तुमर्हा मां स्त्रीणां भर्ता हि दैवतम् । भर्तुरग्रे पूज्यभावः पत्नीनां प्रविदूषितः ॥९॥

अजानती सतीवृत्तमधिक्षिपसि मां वृथा । न मे पत्नीत्वयोग्याऽसि सच्चारित्रविदूषिणी ॥१०॥

न त्वं क्रतुविधानेषु मया सह भविष्यसि । इति शप्ता तु सावित्री पुनरत्यन्तकोपिता ॥११॥

प्रतिशापं ददौ धात्रे ज्वलन्तीव सुमन्युना । यदि नाऽर्हा यज्ञविधौ भवामि शृणु तर्हि ते ॥१२॥

भवित्र्यभीरकुलजा पत्नी यज्ञविधौ तव । प्रतिशापं निशम्याऽजः पुनः प्रकुपितोऽभवत् ॥१३॥

अथ देवादयः सर्वे दृष्ट्वा क्रुद्धं पितामहम् । सावित्रीमपि संक्रुद्धां तुष्टुवुः परिवारिताः ॥१४॥

तयोः क्रोधेन जगती चकम्पेऽतीव सर्वथा । ततो नारायणशिवौ तत्राऽऽजग्मतुरञ्जसा ॥१५॥

श्रुत्वा विधिञ्च सावित्रीं क्षामयामासतुस्तदा । विधे नैवं समुचितं त्रिपुरायाः कलोद्भवा ॥१६

(जब) आप शक्तिहीन अत्यन्त दीन हो भगवती त्रिपुरा माता की शरण में गये ।" सावित्री के कथनको सुनकर क्रोधाग्नि से लाल आंखें करते हुए ब्रह्मा बोले, "हे सावित्रि ! मुझे तुम्हारे द्वारा इसप्रकार कहना कभी उचित नहीं क्योंकिस्त्रियों का पति ही देवता है वही दिव्यगुणसम्पन्न आराध्य है । अपने पतिके आगे पत्नियोंका पूज्यभाव दिखाना अत्यन्त दोष-युक्त है । सती के वृत्तान्त को बिना जाने मुझे (व्यर्थ क्यों) जो झिड़कती है सो सदाचरण को दूषित करनेवाली तू मेरी पत्नी होने के योग्य नहीं है । तू यज्ञविधानों में मेरे साथ नहीं रहेगी ।" इस प्रकार शाप दिए जाने पर क्रोध से जलती हुई सी सावित्री ने फिर अत्यन्त क्रुद्ध हो विधाता को प्रतिरोधी शाप दिया, "यदि यज्ञविधान में मैं आपके साथ नहीं बैठूंगी, तो सुनिये तब आपकी ग्वालकुल की उत्पन्न पत्नी यज्ञविधि में आपके साथ रहेगी ।" प्रतिशाप को सुनकर अज श्रीब्रह्मा फिर अत्यन्त प्रकुपित हुए ॥६-१३॥

अनन्तर सभी देवगण ने भगवान् श्रीब्रह्मा को कोपावेष्टित और सावित्री को भी अत्यन्त क्रुद्ध देख दोनों से लितसम्मि रूप में प्रार्थना की । उनके क्रोधसे जगत् अत्यन्त ही कम्पायमान हुआ; अनन्तर श्रीनारायण और शिव दोनों तत्क्षण वहां आगये । ब्रह्मा और सावित्री को (दोनों पक्ष की बातों को) सुन कर उन्हें क्षमा करने का (दोनों ने) अनुरोध किया । (वह बोले,) "हे ब्रह्मन् ! यह आपके लिये समुचित नहीं जो त्रिपुरा की कला से आविर्भूत देवी

या तेऽपमानिता देवी सावित्री तन्न शोभनम्। शृणु देवि त्वयाप्येतच्छापदानमचिन्तितम् ॥१७॥
न तद्योग्यं प्रतिकृतिरावाभ्यामुच्यते यथा। यज्ञाऽनर्हेति यत्प्रोक्तं धात्रा रुष्टेन यत्त्वया ॥१८॥
अभीरजा भवेत् पत्नी चेति तत्र विनिश्चितम्। त्वमेव स्वांऽशतोऽभीरकुलजा यज्ञकर्मणि ॥१९॥
उपयोक्ष्यसि नाऽनेन देहेन यज्ञभागिनी। श्रुत्वैवं विष्णुशिवयोरुक्तं धाता च भारती ॥२०॥
शेषतुः कोपशेषेण पुनस्तत्रेतरेतरम्। विधिराहाऽभीरजैषा भूयात् पत्नी सवे मम ॥२१॥
यतोऽविचारपरमा मां शशाप रुषाऽन्विता। ततोंऽशेनाऽपि सज्ञातां स्मृतिरेनां प्रहास्यति ॥२२॥
श्रुत्वा शापं पुनर्दत्तं भारती चाऽतिकोपिता।
विधिं प्रति शशापाऽऽशु यतस्तेन विमर्शनम् ॥२३॥
ततोंऽविमृश्य चाऽकाम्या कामुकस्त्वं भविष्यसि।
पुनर्विसृष्टशापौ तौ दृष्ट्वा क्रुद्धौ हरीश्वरौ ॥२४॥
चक्रतुः संस्तवं तत्र बहुधा प्रार्थ्य क्षामितौ। अथ कालेन महता ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२५॥

सावित्री आपसे अपमानितकी गई यह अच्छा काम नहीं हुआ।' फिर सावित्रीसे बोले, "हे देवि! सुन तूने भी जो शाप दिया वह विना ही सोचे समझे किया। आप दोनों के लिए (इस भांति परस्पर शाप देना) अनुचित है। यह (ब्रह्मा)जैसे हम दोनों ही के साथ इसकी प्रतिकृति (ठीक तद्रूप होकर बोले) है। जो श्रीब्रह्माने रुष्ट हो कहा कि तू यज्ञके अयोग्य होगी और तू ने भी जो शाप दिया कि तुम्हारी धर्मपत्नी ग्वालकन्या होगी उस विषय में यह निश्चित किया गया है कि तू ही यज्ञ कार्य में (विधाता के साथ) अपने अंश से अभीरकन्या बन उपयोगिनी होगी, अपने इस देह से यज्ञ में भाग नहीं ले पावेगी।" इस प्रकार विष्णु एवं शिव की उक्ति को सुनकर ब्रह्मा और भारती ने फिर परस्पर क्रुद्ध हो शाप दिया। ब्रह्मा बोले, "यह अभीर (गोप) कन्या यज्ञ में मेरी पत्नी हो क्यों कि बिना विचार किये क्रुद्ध होकर इसने मुझे शाप दिया इसलिए अपने अंश से होकर भी इसे सब स्मृति नहीं रहेगी" ॥१४-२३॥

फिर दिए गए शाप को सुन अत्यन्त कोपित हुई भगवती भारती ने शीघ्र ही ब्रह्मा को शाप दिया, "आपने विचार किए विना यह सब कहा इसलिए कामना किए विना ही कामुक बन जाओगे।" दोनों को फिर शाप देते देख श्रीविष्णु अत्यन्त क्रुद्ध हुए और बहुत क्षमा प्रार्थना करने पर वे शान्त हो गये। अनन्तर बहुत दीर्घ काल के बाद

पुष्कराख्ये महातीर्थे यष्टुं व्यवसितोऽभवत् । आज्ञापद्यज्ञशालानिर्माणे देवशिल्पिनम् ॥२६॥
स चकार यज्ञशालां सर्वतः समलङ्कृताम् । कृत्स्नसम्भारसर्वस्वां वेदीं कुण्डादिमण्डिताम् ॥२७॥
नवरत्नसमाकीर्णां सर्वर्तुगुणशोभिताम् । सौवर्णभाण्डनिचयामन्नपानसमाकुलाम् ॥२८॥
तत्र विप्रा याजकाज्या भृगुकश्यपकर्दमाः । वसिष्ठपुलहाऽगस्त्यपुलस्त्यक्रतुमुख्यकाः ॥२९॥
याजमुः सर्वतः श्रेष्ठाश्चाऽन्येऽपि मुनिपुङ्गवाः । श्रौतविद्यासु कुशलाः सर्वविद्याविशारदाः ॥३०॥
शक्रप्रमुखा देवा गन्धर्वाश्चाऽप्सरोगणाः । विद्याधराः किंपुरुषाः सकिन्नरमहोरगाः ॥३१॥
यातुधानाऽसुरगणाः मनुष्याश्च समन्ततः । अभ्यागमन् यज्ञवाटं पुष्करे सर्वतो दिशम् ॥३२॥
गन्धर्वपतयो ननन्दुश्चाप्सरोगणाः । वन्दिनो विधिमुख्यानामपठन् विविधाः स्तुतीः ॥३३॥
अथ कालेऽतिकल्याणे सुनक्षत्रग्रहैर्युते । यक्ष्यमाणः प्रियां पत्नीमाह्वयज्जगतीपतिः ॥३४॥
इन्द्रादिभिः समाहूता देवि !देवश्चतुर्मुखः । यक्ष्यमाणः शुभे काले चिरात्त्वां सम्प्रतीक्षते ॥३५॥

पितामह श्रीब्रह्मा ने महातीर्थ पुष्करराज में यज्ञ करने का प्रयत्न किया। उन्होंने देवशिल्पी विश्वकर्मा को यज्ञशाला बनाने के लिए आदेश दिया। उसने चारों ओर से अत्यन्त सुन्दरता से वेष्टित सब प्रकार के साज सामान से पूर्ण कुण्डादि से सजी हुई वेदीवाली यज्ञशाला बनाई ॥२४-२७॥

नवीन रत्नों से जटित, सम्पूर्ण ऋतुओं के गुण से शोभित (तत्तद् ऋतु के अनुसार सुख सुविधा की पूरी व्यवस्था से युक्त), सुवर्णमय पात्रों के समूहसे परिपूर्ण, अन्नपान से खूब भरी यज्ञ शाला का (उसने निर्माण किया)। उस महायज्ञमें भृगु, कश्यप, कर्दम, वसिष्ठ, पुलह, अगस्त्य, पुलस्त्य, क्रतु प्रमुख महर्षिगण याजकोंमें अग्रगण्य सब ओर से आए; साथ ही अन्य ऋषिश्रेष्ठ जो श्रोतविद्याओं में कुशल (पारंगत), सम्पूर्ण विद्याओं में प्रवीण थे (वे भी आए), इन्द्र प्रमुख देवगण गन्धर्व और अप्सरायें, विद्याधर, किन्नर, महानागवृन्द, यातुधान, असुरगण और सभी दिशाओं से पुण्य लोग पुष्कर क्षेत्र में अवस्थित यज्ञशाला की सुपुण्य भूमि में एकत्र हुए ।.२८-३२॥

गन्धर्वपतियों ने गायन वाद्य किया, अप्सराओं ने खूब आनन्द उत्सव मनाया और वन्दीगण स्तुतिपाठक लोगों ने विधि आदि प्रमुख देवगण की विविध स्तुतियां की। अनन्तर अत्यन्त मङ्गलमय पावन सुन्दर नक्षत्र ग्रहों के सुयोग के समय यज्ञ आरम्भ करने [illegible] ब्रह्मा ने अपनी धर्मपत्नी भारती को बुलाया। इन्द्र आदि देवगण ने

व्रज तत्राऽचिरं देवि कालोऽयं वीक्षितः शुभः ।
नाऽतियायात् सर्वथैव प्रोक्ताऽप्येवं विधेः प्रिया ॥३६
अवश्यम्भाविभावेन सावित्री न समागता । विलम्बयन्ती तां ज्ञात्वा मुहूर्तः समतिक्रमेत् ॥३७
इति क्रुद्धो विधिर्विष्णुं प्रोवाच पुरतः स्थितम् । हरे प्रयाहि पत्नीं मे सरूपामपरां द्रुतम् ॥३८
समानय मुहूर्तोऽयं यथा नाऽतिव्रजेत्तथा । समादिष्टो विधात्रैवं हरिरन्विष्य भूतले ॥३९॥
ब्राह्मणादिष्वलब्ध्वा तत्सरूपां गोपकन्यकाम् । दृष्ट्वा सरूपां सावित्र्या समानयत वै हरिः ॥४०
तामानीतां विलोक्याऽऽहुः शुभरूपगुणाऽन्विताम् ।
महान् शब्दः समभवत् साधु साध्विति सर्वतः ॥४१
परिणीय च तां पत्नीं यक्ष्यमाणो विधिस्तदा । सङ्कल्प्य क्रतुराजं तं प्रावर्तयत लोकपः ॥४२
अथाऽऽजगाम सावित्री यज्ञशालां सखीवृता । ददर्श ब्रह्मणः पार्श्वे गायत्रीं लोकसुन्दरीम् ॥४३
तच्छोभाऽऽक्षिप्तसौन्दर्या तारा राकेन्दुना यथा ।
आत्मानं जानती सभ्यैर्हसितेव विलज्जिता ॥४४

देवि ! आप शीघ्र जावें । यह समय शुभ देखा गया है इसका कहीं अति उल्लङ्घन न हो जाय ।" इसप्रकार कहने
भी ब्रह्मा की पत्नी सावित्री अत्यन्त आवश्यकीय भवितव्यता के कारण वहां नहीं पहुची । सावित्री को विलम्ब क
देख मुहूर्त न निकल जावे इस प्रकार क्रुद्ध हुए ब्रह्मा ने अपने सामने खड़े विष्णु से कहा, "हे हरे ! आप शीघ्र ज
मेरी उसी रूप की दूसरी पत्नी को ले आइए, जैसे यह मुहूर्त्त नहीं टले उसी प्रकार व्यवस्था करें ।" इसप्रकार श्री
द्वारा आदिष्ट हो श्रीहरि भूतल पर ब्रह्मपत्नी के समान रूपवाली स्त्री को खोजने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और
वर्ग में ऐसी न पाकर सावित्री के सरूपवाली गोपकन्या को ले आये ॥३६-४०॥

उस शुभ रूप गुणयुक्त गोपकन्या को लायी देख चारों ओर से सभी ने "साधु-साधु" इस
महान् शब्द किया । उससे विधिपूर्वक विवाह कर यज्ञ करने वाले लोकपति ब्रह्मा ने तब सङ्कल्प लेकर उस श्रेष्ठ
का सम्पादन किया । अनन्तर सावित्री अपनी सखियों के साथ यज्ञशाला में आई; उसने ब्रह्मा के पार्श्व भाग
लोकसुन्दरी गायत्री को देखा । उसकी शोभा से अत्यधिक सौन्दर्यसम्पन्ना सावित्री उसे अपना ही स्वरूप ज
हुई सभासदों से हंसती हुई सी विलज्जित हुई वैसे सुशोभन लगी जैसे तारागण रात्रि के चन्द्रमा से प्रकाशित हो

प्रालेयदर्शनात् पद्ममिव शुष्यन्मुखाऽम्बुजा । प्रविशन्तीव स्वाऽङ्गेषु लज्जाशैलभराऽऽवृता ॥४५॥
र्गां विसंज्ञेव तत्र लेख्यकर्मगतेव सा । स्थिता स्थाणुसमाऽऽघारा ततः सर्वं निशाम्य तत् ॥४६॥
विधेर्विचेष्टितञ्चाऽतितरां मन्युपरीवृता । प्रजज्वाल त्रिलोकीं सा कुर्वन्ती भस्मसादिव ॥४७॥
ाह प्रस्फुरमाणोष्ठी समाचीर्णं त्वया विधे ! ।

इत्युक्त्वा निर्ययौ तस्मात् सावित्री यज्ञदेशतः ॥४८॥

स्थिता शैलशृङ्गस्य मध्ये तस्याऽविदूरतः । अथ तस्याः क्रोधवह्निर्ज्वालामालापरीवृतः ॥४९॥
ादुरासीद्यज्ञशालां सऋत्विक्ससभासदाम् । सयज्वपत्नीसम्भारां दिधक्षन्निव सर्वतः ॥५०॥
वनुनाऽध्येधितो वह्निर्यदा दग्धुमुपाऽक्रमत् । तदा पलायिताः सर्वे सदस्या ऋत्विजस्तथा ॥५१॥
ेता गन्धर्वमुनयः सिद्धचारणकिन्नराः । अविचार्यैव चाऽन्योन्यं त्यक्तसर्वपरिग्रहाः ॥५२॥
दिशो दशाऽभिपेतुस्ते क्रोशन्तो भयकम्पिताः । भूश्चकम्पे महावायुवेपिताऽऽश्वत्थपर्णवत् ॥५३॥

से पाला पड़ने पर कमल सूख जाता है उसी प्रकार मुरझाये मुखकमलवाली वह अत्यन्त लज्जारूपी पर्वत के ार से अपने अङ्गों में सिमटी हुई, यज्ञ मण्डप में प्रविष्ट होते ही एक क्षण अचेत सी हो गई और चित्रलिखित के ान अचल प्रस्तर की न्यांई खड़ी रह गई । तदनन्तर उस सारे घटना चक्र को और ब्रह्मा के क्रियाकलाप को देखकर ल्प क्रोध से आविष्ट हो वह सारे त्रैलोक्य को भस्मीभूत सी करती हुई अति मात्रा में उद्वेलित हुई अपनी त्यधिक क्रोधपूर्ण अवस्था में ओष्ठ फड़काती हुई बोली, "हे विधातः ! आपने यह किया हैं ।" यह कह उस यज्ञ ान से सावित्री निकल आई ॥४१-४८॥

उस पर्वत-शृङ्ग के बीच में जा वह कुछ दूर ही स्थित हो गई । अनन्तर उसके क्रोध की अग्नि अत्यधिक ज्वालाकी लेसे भभकी हुई सम्पूर्ण ऋत्विग् लोग तथा सभासदों से भरी, यज्वा ब्रह्मा और उनकी धर्मपत्नी तथा यज्ञसामग्री से रिपूर्ण यज्ञशाला को चारों ओर से जलाती हुई प्रगट हुई । प्रबल वायु से प्रवर्द्धित अग्नि जैसे ही जलाने लगी तब सम्पूर्ण सभासद वृन्द, ऋत्विग् लोग और देव, गन्धर्व मुनिगण, सिद्ध, चारण और किन्नरवृन्द एक दूसरे की असु- विधा एवं दुःख का विचार किए विना ही सामग्री को छोड़ भागने लगे ॥४९-५२॥

भय से कम्पित हो दशों दिशाओं में हाहाकार करते हुए भागने लगे, जैसे प्रबल प्रचण्ड वायु के झोंकों

अन्धकारैर्दिशः क्रान्ता उद्वेलाः सर्वसागराः । राहुणेव दिवानाथस्तमसा ग्रसितोऽभवत् ॥५४
पर्वताश्च विदीर्यन्त कल्पान्तसमये इव । एवम्भूतेषु लोकेषु चोद्ध्वाऽधोभागवर्तिषु ॥५५॥
भीता ब्रह्मादयः सर्वे कर्तव्येष्वविनिश्चयाः । सावित्रीमनुसञ्जग्मुः प्रार्थितुं क्रमशस्तदा ॥५६
आदाविन्द्रो देवगणैर्युतस्तत्र जगाम ह । सावित्रीं प्रार्थितुं यत्र शैलशृङ्गे स्थिता हि सा ॥५७
तत्र गच्छन्नेव मार्गे तस्याः क्रोधसमुद्भवाः । शक्तयः कोटिशः क्रूरकरवालधरास्तदा ॥५८॥
सर्वान्नाशयितुं दिक्षु निर्गतास्ताभिरेव सः । गृहीतः पाशनिर्बद्धो निक्षिप्तः शैलकन्दरे ॥५९
एवं यमोऽग्निर्वरुणः कुबेरो नैर्ऋतो मरुत् । रुद्राश्च वसवो विश्वेदेवाद्या बन्धनं गताः ॥६०
एवं बद्धेषु देवेषु शक्तिसङ्घैः समन्ततः । विष्णुर्विचारयामास शिवेन विधिसन्निधौ ॥६१॥
सावित्र्याः क्रोधदावाग्निर्निर्दग्धं स्याज्जगत्त्रयम् ।
देवा बद्धाः सर्व एव किं कृत्वा नः शुभं भवेत् ॥६२

से पीपल के पत्ते हिलने लगते है उसी प्रकार भूमि कम्पायमान होने लगी । सारी दिशायें अन्धकार से पूर्ण हो गई सम्पूर्ण सागर मर्यादा को छोड़ (प्रलय के काल के समान) हिलोरें मारने लगे । सूर्य राहुकाल की वेला में जै ग्रसित हो जाता है वैसे सारे ब्रह्माण्ड अन्धकारपूरित हो गए एवं पर्वत जैसे प्रलय के अन्त में चूर-चूर हो जा हैं उसी प्रकार विदीर्ण होने लगे । इसप्रकार ऊपर व नीचे के भागों में रहने वाले लोकों की स्थिति हो जाने पर सभ ब्रह्मादि देवगण क्या करना चाहिए इस विषय में पूर्ण निर्णय न करने के कारण भयभीत हो तब सावित्री के पा क्रमशः प्रार्थना करने को गए ॥५३-५६॥

सब से प्रथम इन्द्र देवगण के साथ वहां प्रार्थना के लिये गया जहां सावित्री शैल के शिखर पर स्थित थी। वह मार्ग में जाते हुए ही उसे भगवती सावित्री के क्रोध से उत्पन्न अति प्रचण्ड रूपवाली, हाथ में तलवार धारण की हु कोटि संख्या में शक्तियों ने जो सबको नाश करने के लिए नाना दिशाओं में निकल गई थी, पकड़ लिया और पाश (रस्सी) से बांध कर पर्वत की कन्दरा में डाल दिया । इस प्रकार यम, अग्नि, वरुण, कुबेर नैर्ऋत, मरुत्, रुद्र वसु और विश्वेदेव आदि देवगण बांध लिए गए । एवम्प्रकारेण शक्तिसङ्घों द्वारा चारोंओर से देवगण के बांध लिए जाने पर विष्णु ने ब्रह्मा की सन्निधि में शिव के साथ विचार-विमर्श किया ॥५७-६१॥

"सावित्री के क्रोधरूपी दावानल द्वारा तीनों जगत् (निस्सन्देह) जल जावेंगे; सभी देवगण बांध लिये

इति दीर्घं विचिन्त्याऽथ पार्वतीञ्च रमामपि । प्रेषयामास सावित्र्याः संशमाय हरिस्तदा ॥६३॥
त्वा गत्वा क्रोधशक्तीस्ताः सन्निवर्त्य समन्ततः । भारतीं प्राप्य मधुरवाक्यं प्रोचतुरञ्जसा ॥६४॥
भ्यां बहु प्रार्थिताऽपि न शान्तिमगमद्यदा ।
तदा विधिहरीशाना जग्मुर्यत्राऽस्ति भारती ॥६५॥
दृदर्श विधातारं सावित्री सम्मुखाऽऽगतम् ।
ईषच्छान्ताऽपि च पुनः प्रजज्वाल सुमन्युना ॥६६॥
ज्वलन्त्याः क्रोधवशाद्रूपं तस्या महाऽद्भुतम् । भीमं समभवत्तस्या नेत्राभ्यां वह्निरुद्गतः ॥६७॥
ल्पाग्निकल्पेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । समाक्रान्ता दाववह्निनेव मत्तेभयूथपाः ॥६८॥
मानांस्तु तान् दृष्ट्वा हरिकान्ता च पार्वती ।
तुष्टाव त्रिपुरामाद्यां नाऽन्यस्त्रातेति निश्चयात् ॥६९॥
स्तुता महादेवी तत्राऽऽविरभवत् परा । कामकोटयधिलावण्यसन्दोहाऽऽनन्दसुन्दरी ॥७०॥

है (ऐसी स्थिति में) किस उपाय द्वारा हमारा कल्याणमार्ग प्रशस्त हो।" इस विषय पर बहुत समय तक
कर करके बाद में श्रीविष्णु ने पार्वती और लक्ष्मी को भी सावित्री के क्रोध को शान्त करने के लिए भेजा।
जाकर उन क्रोधमयी शक्तियों को चारों ओर से लौटा कर भारती के पास जाकर तत्क्षण मधुर वाणी में
) कहा ॥६२-६४॥

उन दोनों पार्वती और लक्ष्मी के द्वारा बहुत अनुनय-प्रार्थना करने पर भी जब वह शान्त नहीं हुई तब
, विष्णु और महेश वहाँ पहुंचे जहां भारती विराजमान थी। (उस घटना की प्रमुख पात्र) वह सावित्री ब्रह्मा
को सम्मुख आए देख कुछ-कुछ शान्त होकर भी फिर प्रचण्ड क्रोध से भभक गयी। क्रोधवश जलती हुई उस
सावित्री का रूप अत्यन्त अद्भुत भीषण हो गया उसके नेत्रों से अग्नि आविर्भूत हुई। उस कल्प (प्रलय)
की अग्नि के समान विनाशपरायण ज्वाला से ब्रह्मा, विष्णु और महेश इस प्रकार घिर गए जैसे वन की दावाग्नि से
हाथियों के यूथपति घिर जाते हैं ॥६५-६८॥

उन्हें जलते देख विष्णुकी पत्नी लक्ष्मी और शंकरपत्नी पार्वती ने "भगवती परा को छोड़ अन्य कोई भी हमारा
करनेवाला नहीं" इस प्रकार निश्चय कर आद्या भगवती त्रिपुरा की स्तुति की। स्तुति सुन कर वहां परा महादेवी

रत्नचित्राऽम्बराकल्पधरां मुकुटशोभिनीम् । चतुर्भुजाऽऽत्तसहजाऽऽयुधसम्बन्धुबन्धुराम् ॥७१॥
दृष्ट्वा प्रणमनं चक्रुर्गौर्याद्या भक्तिनिर्भराः । तस्याः सन्निधिमात्रेण तमोराशिरिवाऽरुणे ॥७२॥
विलयं प्रोदितेऽगच्छत् क्रोधाग्निः सर्वतः स्थितः । अथ तां भारतीं प्राह त्रिपुरा हसिताऽऽनना ॥७३॥
अलं वत्सेति क्रोधेन लोकनाशनहेतुना । उपसंहर शक्तीस्ता यास्ते क्रोधसमुद्भवाः ॥७४॥
भवन्तु विज्वरा लोकाः पश्येमान् शान्तया दृशा।
इत्युक्ता भारती देव्या लज्जिता क्रोधसम्भवा ॥७५॥
विलापिताः स्वके देहे शान्तिं प्राप्ता च भारती। अथ तां त्रिपुरां देवीं सावित्री प्रणता सती ॥७६॥
विविधैः संस्तवैश्चित्रैस्तुष्टाव परभक्तितः । क्षमस्व मेऽनयाद्य देवि ! त्रिपुरे क्रोधसम्भवात् ॥७७॥
स्थिताऽस्मि शासने मातस्तव शाधि स्वकिङ्करीम्। अथ श्रीमातृकरुणाऽऽलोकतः सहसोत्थिताः ॥७८॥
धातृविष्णुशिवास्तद्वन्मुक्ता देवाश्च बन्धतः । सावित्रीं पुनरप्याह शान्तिं वत्से ! समाप्नुहि॥७९॥

प्रगट हुई; करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता से अत्यधिक लावण्य के भार और आनन्द से अत्यन्त अनिन्द्य शोभाधारी हु सुन्दरी, नाना चित्र विचित्र रत्नवस्त्रों को धारण की हुई, मुकुट से शोभित चारों भुजाओं में सहजात आयुधों को ले हुई (वह प्रगट हुई) उसे देख गौरी आदि ने भक्तिविनम्र हो प्रणाम किया । उसकी सन्निधिमात्र से ही जैसे अरुण के उदय होने पर रात्रि के अन्धकारकी राशि विलीन हो जाती हैं वैसे ही सब ओर की क्रोधरूपी अग्नि शान्त हो गई । अनन्तर भगवती त्रिपुरा ने हंसते हुए भारती से कहा "हे बेटी ! क्रोध, जो लोक के नाश का हेतु है, उससे तू बस कर, जो क्रोधसे उद्भूत तेरी शक्तियां हैं उन्हें समेट ले ॥६६-७४॥

सब लोक बाधारहित हों निर्भय हो जांय, इन्हें तू शान्त दृष्टि से देख ।" श्रीदेवी के इस प्रकार कहते ही भारती लज्जित हुई उसने अपने क्रोध से उत्पन्न सब शक्तियों को अपने में विलीन कर लिया और स्वयं शान्त हो गई । अनन्तर सती सावित्री ने त्रिपुरा देवी को प्रणाम कर नाना सुन्दर चित्र-विचित्र स्तुतियों से अत्यन्त भक्तिपूर्वक स्तुति की । "हे देवि ! त्रिपुरे ! आप क्रोध से उत्पन्न हुए इस अनीति पूर्ण कार्यके लिए मुझे क्षमा करें, हे मातः ! मैं आप की आज्ञा में स्थित हूँ । आप मुझ किङ्करी को स्वयं उपदेश दीजिए ।" अनन्तर श्रीमाता ने करुणापूर्ण दृष्टि से धाता, विष्णु और शिव को देखा जिससे वे सहसा ही उठ बैठे तथा देवगण भी उसी प्रकार पाशबन्धन से छोड़ दिए गए । फिर भगवती ने कहा "हे वत्से ! तू शान्ति प्राप्त कर" ॥७५-७९॥

तवास्त्वयतु भूतेशो यज्ञं भूयस्त्वया युतः । इति श्रुत्वा वचो देव्याः सावित्री प्रणता सती ॥८०॥
पुनरुदाऽऽञ्जलिपुटा प्राह मातर्नाऽहं स्वयम्भुवा । इच्छामि सङ्गतिं भूयः स्थास्याम्यत्रैव सर्वदा ॥८१॥
तव पादाऽम्बुजध्यानपरमाऽऽनन्दसम्प्लुता । नाऽत्र माममब भूयस्त्वं सन्निरोद्धुं समर्हसि ॥८२॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे भारत्युपाख्याने ब्रह्मणो यज्ञे सावित्री-कृतविघ्न-विधौ त्रिपुराकृपया शान्तिस्थापनं नामाष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१५४॥

तेरे साथ भूतों के अधिपति ब्रह्मा फिर यज्ञ करे।" देवी के इस वचन को सुन कर सती सावित्री प्रणाम कर हाथ जोड़े बोली, "हे मातः ! मैं फिर ब्रह्मा के साथ रहना नहीं चाहती; सदा ही यहां रहूँगी। आपके चरणकमलों का ध्यान लगा परम आनन्द में मग्न रहूँगी इस विषय में आप फिर मुझे विशेष रूप से बाधा नहीं दें" ॥८०-८२॥

इस प्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड के भारती के उपाख्यान में ब्रह्मा के यज्ञ में गोपकन्या के साथ विवाह कर बैठने से क्रुद्ध सावित्री द्वारा यज्ञ में विघ्न और देवगण का पाशबन्धन फिर त्रिदेव द्वारा त्रिपुरा की प्रार्थना से शान्तिस्थापन नाम का अड़तीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

त्रिपुरादर्शनमनु ब्रह्मणो जिज्ञासाशान्त्यै गोपकन्यायाः पूर्वजन्मवृत्तकथनवर्णनम्

ततः प्राह विधिर्देवीं स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः ।
महेश्वरि ! तवाऽऽज्ञायां स्थितोऽस्मि निखिलात्मना ॥१॥
तवाज्ञामन्तरा लोके कः समर्थो विचेष्टितुम्। विज्ञापयामि किञ्चित्त्वां मातस्तत् कृपया शृणु ॥२॥
सावित्री यदि न शान्ता भविष्यति तदा कथम् । भवेत् क्रतुर्मम शिवे लोकं वा नीरुजं तथा ॥३॥
पुराऽनया महादेव्या शप्तः क्रोधेन हेतुना । अकाम्यां कामयेत्येवमथैषा यज्ञकर्मणि ॥४॥
पत्नीत्वेन कृता या सा हीनजातिसमुद्भवा । तत्रर्षिवर्यैर्ब्रह्मेष्टैर्वाच्यो जातोऽस्मि तत्कथम् ॥५॥
प्रसीद श्रीमहाराज्ञि ! सर्वमेतत् समं कुरु । प्रार्थिता लोकधात्रैवं श्रीपरा त्रिपुरेश्वरी ॥६॥
प्राह देवा मद्वचनं देव्यः शृणुत सादरम् । येयं विधातुर्यज्ञस्य पत्नी सर्वमनोहरा ॥७॥

उनचालीसवां अध्याय

तत्पश्चात् ब्रह्माने देवी को बार-बार स्तुति और प्रणाम कर कहा, "हे महेश्वरि मैं सर्वात्मभाव से (पूर्णतया) आपकी आज्ञामें स्थित हूँ, आपकी आज्ञाके विना कौन व्यक्ति क्या कुछ भी करने में समर्थ है ? मैं आपको कुछ कहना चाहता हूँ, हे मातः ! आप कृपा करके सुनिये । हे शिवे ! सावित्री यदि शान्त नहीं होगी तो मेरा यज्ञ कैसे होगा और किस प्रकार लोकमें स्वस्थता होगी ? प्राचीन कालमें इसी महादेवी ने क्रोध के कारण मुझे शाप दिया कि "अकाम्य भार्या की कामना कर यज्ञकार्य का सम्पादन कर ।" इस प्रकार अब यह जो हीनजाति की स्त्री मेरी पत्नी के रूप में है उस विषय में ऋषिगण और वेदवेत्ता गण से मैं निन्दित कैसे हूँ ? इसलिए हे श्रीमहामहिषि ! आप प्रसन्न हों और मेरे लिए सब प्रकार मंगल का मार्ग प्रशस्त करें ।" इसप्रकार लोक के सर्जक ब्रह्मा द्वारा प्रार्थित होकर श्रीपरा त्रिपुरेश्वरी ने कहा, "हे देवगण और देवियो ! तुम लोग मेरा वचन आदरपूर्वक सुनो; जो यह ब्रह्मा की

वोत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि महाविभववित्स्ताराम् ।

कश्चित् पुरा ब्राह्मणाऽग्र्यः कौशिको लोकविश्रुतः ॥८॥

ता विद्यया चैव हर्यक्षाऽऽख्यो महाशयः । तपस्तेपे सुपार्श्वाख्यपर्वते लोकपूजिते ॥९॥

सुतपसा देवीं सावित्रीं समतोषयत् । प्रसन्ना तस्य सावित्री तद्दर्शनपथं गता ॥१०॥

हे ब्राह्मण! तुष्टाऽस्मि तपसा महता तव । ईप्सितं ते साधयामि नाऽदेयं तव विद्यते ॥११॥

न्द्रत्वमुतेन्दुत्वं धनेशत्वं त्वमिच्छसि । तपसा ते जितं सर्वं प्राजापत्याऽऽचरस्थितम् ॥१२॥

त्रिया वचनं श्रुत्वा हर्यक्षः पुनराह यत् । तच्छृणुध्वं विधात्राद्याः प्रणम्य सुकृताञ्जलिः ॥१३॥

ं नाऽहं वृणेन्द्रत्वं चन्द्रत्वं वा धनेशताम् । पुराऽहं स्वाश्रमे स्थाने कदाचित्तपसि स्थितः ॥१४॥

विद्गोपवधूस्तत्र चारयन्ती गवाङ्गणम् । मदक्षिपथमापन्ना तस्याः सौन्दर्यविभ्रमात् ॥१५॥

हितस्तामन्वगममनङ्गशरपीडितः । प्रार्थिता सा मया भूयो नाऽभ्यमन्यत मद्वचः ॥१६॥

सोहर यज्ञ में वृत की गई पत्नी है महावैभव के विस्तारवाली उसकी उत्पत्ति को बताती हूँ।" प्राचीन काल में के नाम का लोक में प्रसिद्ध, ब्राह्मणों में अग्रणी, तपस्या और विद्या में उदार आशयवाले हर्यक्ष नामक विप्र ने पूजित सुपार्श्वनामक पर्वत पर तपस्या की ॥१-९॥

(उसने) अत्यन्त कठिन तपस्या से देवी सावित्री को प्रसन्न कर लिया; सन्तुष्ट हो सावित्री ने उसे दर्शन हे ब्राह्मण! तेरी अत्यन्त उग्र तपस्या से मैं प्रसन्न हूँ, तू वर मांग; मैं तेरा अभीप्सित सिद्ध करूंगी। तेरे लिये कुछ भी न देने योग्य (अदेय) नहीं है। तू क्या इन्द्र का पद या चन्द्रत्व अथवा धनेश की पदवी चाहता ने तप के प्रभाव से जो ब्रह्मलोक से चर सृष्टि तक स्थित है वह सब जीत लिया है" ॥१०-१२॥

सावित्रीका वचन सुनकर हर्यक्ष प्रणामकर हाथ जोड़े फिर जो कुछ बोला उसे हे ब्रह्माआदि प्रमुख देवगण! तुम लोग हे देवि! न तो मैं इन्द्र का पद, न चन्द्रलोक का अधिपतित्व और न धनेश की पदवी का वर मांगता हूँ। काल में मैं अपने आश्रम में एक बार तपस्या में लीन था वहां कोई ग्वालिन गायों के समूह को चराती हुई के सम्मुख आई। उसके सौन्दर्य के आकर्षण से मैं कामबाण से पीडित हो मोहित हुआ उसके पीछे बारम्बार उससे प्रार्थना की तब भी उसने मेरा अनुरोध नहीं माना ॥१३-१६॥

तदा बलात्परामृष्टा क्रोशन्ती गोपकन्यका ।
समानीयाऽऽश्रमवरे स्वाङ्कैराक्रम्य तां बलात् ॥१७॥
द्वन्द्वधर्ममनुप्राप्तो मन्मथेन प्रपीडितः । अथ तत्राऽभ्याजगाम नारदो मुनिपुङ्गवः ॥१८॥
निशाम्य तां गोपवधूं मयाऽक्रान्तां बलीयसा । क्रोशन्तीं मुञ्च मुञ्चेति प्राह मां प्रति रोषितः ॥१९॥
अहं कामेन मूढात्मा नामुञ्चं मैथुने रतः । तदा क्रुद्धो नारदो मां शशाप शृण्वतो मम ॥२०॥
ब्राह्मणाऽधम दुर्बुद्धे ! नैषा काम्या तु कामिनी ।
यतः कामविमूढात्मा बलादेनां समाविशः ॥२१॥
नीचेन कर्मणाऽनेन नीचत्वं प्राप्स्यसि द्रुतम् । यतो गोपवधूसक्तस्ततो गोपो भविष्यसि ॥२२॥
ततोऽहं शापभयतः शापान्तं नारदं प्रति । जिज्ञासुर्बहुधा नत्वा समपृच्छं पुनः पुनः ॥२३॥
नोवाच क्रोधवशतस्ततः सम्प्रार्थितो दृढम् । सावित्री शापतस्त्वां वै मोचयिष्यति तोषिता ॥२४॥
उपतिष्ठ महादेवीमित्युक्त्वाऽन्तर्हितो बभौ । तदहं त्वां महादेवीमुपसंस्थो महेश्वरि ! ॥२५॥

तब मैंने बलात् बाहुपाश में ले विलोप करती हुई उस गोपवधू को अपने श्रेष्ठ आश्रम में लाकर अत्यधिक कामपीडित हो उसके साथ मिथुनभाव कर लिया (अपनी कामवासना तृप्त कर ली)। अनन्तर ऋषिश्रेष्ठ नारद जी वहां आ गये। बलसम्पन्न मेरे द्वारा उस गोपवधू को आक्रान्त देख "इसे छोड़" "इसे छोड़" इस प्रकार मुझे रुष्टहुए देवर्षि ने कहा। मूढात्मा मैंने कामवासना के वशीभूत हो रतिक्रीड़ा में रत उसे नहीं छोड़ा तब क्रुद्ध नारद ने मुझे सुनाते हुए शाप दिया ॥॥१७-२०॥

"हे ब्राह्मणाधम ! दुर्बुद्धे ! यह कामिनी तेरी कामना के योग्य नहीं थी क्योंकि तूने कामविमूढ हो बलपूर्वक इसके शील का अपहरण किया है। इस नीच कर्म से तू शीघ्र ही नीचपदवी को प्राप्त करेगा। क्योंकि तू गोपवधू से रमण करता है तो गोप (ग्वाल) बनेगा" ॥२१-२२॥ तदनन्तर मैंने शाप के भय से इसके अन्त होने की अवधि की जिज्ञासाके लिए श्रीदेवर्षि नारद को प्रणाम कर बार-बार पूछा ॥२३॥ क्रोधावेश में उन्होंने कुछ नहीं कहा; फिर विशेष बल देकर प्रार्थना करने पर वह बोले, "सावित्री सन्तुष्ट की जाने पर वह तुम्हें शाप से छुटकारा दिलावेगी तू महादेवी की उपासना कर।" यह कह वह अदृश्य हो गया। इस लिये हे महेश्वरि ! मैं आपकी उपासना करता हूँ।

ब्धिमग्नं मां शीघ्रमभ्युद्धर महेश्वरि ।

इत्युक्ता सा ब्राह्मणेन शापाऽन्तं प्राहतं प्रति ॥२६॥

श्रृणु मद्वाक्यं शापाऽन्तं प्रब्रवीमि ते । गोपयोनिषु ते जन्म भविष्यति न संशयः ॥२७॥

न्मनि श्रृणु भविष्याम्यहमंशतः । कन्या तव ततो विष्णोः प्राप्य श्रेष्ठं वरं पुनः ॥२८॥

नारायणं पुत्रं प्रयास्यसि परं पदम् । उक्त्वैवमन्तर्धानं सा जगामेयं तव प्रिया ॥२९॥

दंशसम्भूता तव शापादयोनिजा । अनिन्द्येयं सर्वजनैरग्रजैः समुपासिता ॥३०॥

सूतिर्गायत्री गायन्तं त्राति सर्वतः । वेदसारमयी ब्रह्मविद्याख्यातिं गमिष्यति ॥३१॥

त्रि ! पश्य वत्से त्वं निजांशप्रभवामिमाम् ।

शापेन नैषा विज्ञाता त्वमेवैषा द्विधा स्थिता ॥३२॥

त्रिपुरावाक्यं गायत्री स्वात्मरूपिणी ।

प्रत्यचेष्टत सावित्री प्रतिबिम्बं यथाऽऽत्मनः ॥३३॥

महेश्वरि ! आप शापरूपी समुद्र में डूबे हुए मेरा शीघ्र उद्धार करें ।" इस तरह ब्राह्मण द्वारा कहने पर
उसने शापके अन्त होनेकी बात कही, "हेहर्यक्ष ! मेरे वचन सुन, तेरे शापके समाप्त होनेकी अवधि बताती हूँ ।
गोप की जाति (योनियों) में तेरा जन्म होगा; वहां एक जन्म में मैं अपने अंश से तेरी कन्या बनूंगी। अनन्तर
श्रेष्ठ वर को प्राप्त कर नारायण रूप अपने पुत्र को पाकर तू परम पद को प्राप्त करेगा" । इस प्रकार कह
अन्तर्धान कर गई। वही यह उस देवी के अंश से उत्पन्न तेरे शाप से अयोनिज है; यह सर्वथा श्रेष्ठ है, सभी
द्वारा उपासिता है, छन्दों की जननी गायत्री है, जो सब प्रकार स्तुति करनेवाले (गायन्तं त्राति)को त्राण-रक्षा
यह वेदसाररूपवाली ब्रह्मविद्या की प्रसिद्धि प्राप्त करेगी ॥२४-३१॥ हे सावित्रि ! (सम्पूर्ण कामनाओं और वरों
देने वाली) वत्से ! देख तू अपने अंश से उत्पन्न इसे शाप के कारण नहीं जान पायी; तू ही यह
हो गई" ॥३२॥ इस प्रकार भगवती त्रिपुरा के वचन सुन कर सावित्री ने गायत्री अपने आत्मस्वरूप
प्रकार जैसे अपना ही उसे प्रतिबिम्ब समझा । श्रीदेवी की कृपा से शाप से खोई हुई

अनुग्रहेण श्रीदेव्या लब्ध्वा शापहतां स्मृतिम् ।

सन्तुष्टाऽभवदत्यन्तं शान्तां प्रकृतिमास्थिता ॥३४॥

अथोवाच महादेवी त्रिपुरा विधिमुख्यकान् । गायत्रीयं मदुद्भूता मद्वाग्रूपा परा यतः ॥३५॥

एनां वर्णमयीं सर्वे मुखबाहूरुजा जनाः । प्राप्य जाताः पुनस्तेन भूयासुर्द्विजसंज्ञया ॥३६॥

अथाऽह लोकधातारं शृणु ब्रह्मन्मयेरितम् ।

अकाम्याकामुकत्वं यत् सावित्रीशापतः स्थितम् ॥३७॥

तत्राऽपीयं वेदमयी तव वाचा विनिर्गता । आत्मजा तत्र ते कामो भविष्यत्यपदे ततः ॥३८॥

वाणीरूपा च सावित्री सर्वाऽऽराध्या भविष्यति ।

श्रोतव्यं मद्वचः सर्वैर्गायत्रीयं मदात्मजा ॥३९॥

अहमेव न सन्देहो निशाम्येनां ममाऽत्मजाम् । चक्षुष्मन्तः प्रपश्यन्तु प्रणिगद्यैवमम्बिका ॥४०॥

समाविवेश गायत्र्यां स्वर्धुनीव यमाऽनुजाम् । तदद्भुतं तत्र विधिमुखा सर्वे दृष्ट्वा समक्षतः ॥४१॥

विस्मिता जयशब्देन वर्धयामासुरम्बिकाम् ।

अथाऽपश्यन् तत्र सर्वे गायत्रीं त्रिपुरात्मिकाम् ॥४२॥

स्मृति को प्राप्त कर अत्यन्त सन्तुष्ट हो पूर्ववत् स्वस्थ हो सावित्री ने शान्त स्वरूप धारण कर लिया ॥३३-३४॥

अनन्तर त्रिपुरा महादेवी ने ब्रह्मा प्रमुख देवगण को कहा, "यह गायत्री मेरे से उत्पन्न है, मेरी वाणीरूपा है इसलिये परा है, इस वर्णमयी को सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यगण फिर उसी के प्रभाव से 'द्विज' संज्ञा को प्राप्त हों (द्वाभ्यां जन्म-संस्काराभ्यां जायते) प्रथम मातृगर्भ से द्वितीय गायत्री की गुरुदीक्षा से दो बार जन्म होना शास्त्र बताते हैं ॥ ३५-३६ ॥

अनन्तर लोकधाता ब्रह्मासे वह बोली, "हे ब्रह्मन् ! मेरे कहे हुए वचन सुन, अकाम्य स्त्री के साथ कामुक होने की जो बात सावित्री के शापसे रही वह तदवस्थ स्थित है, उस विषयमें भी यह वेदमयी तेरी वाणीसे निकली पुत्री होगी वहाँ तेरी उन्मुक्तकामना असमयमें होगी । तदनन्तर वाणीरूपा सावित्री सभी लोगोंकी आराध्या देवी होगी । तुम सभी लोग मेरी वाणी को सुनो यह गायत्री मेरी आत्मजा है; मैं ही साक्षात् हूँ । इस मेरी पुत्री को ज्ञाननेत्रधारी लोग

चन्द्रचूडां त्रिनेत्रां कुङ्कुमप्रभाम् । पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणप्रसूनशरसंयुताम् ॥४३॥
सुन्दरीं तुर्यां सर्वभूषणभूषिताम् । प्रणेमुर्विधिमुख्यास्ते जयशब्दप्रपूर्वकम् ॥४४॥
प्राह पुनर्देवी सर्वे शृण्वन्तु मद्वचः । अहमेव हि गायत्री न मत्तोऽन्या कथञ्चन ॥४५॥
समष्टिमयी चाऽहं सर्वे पश्यन्तु मां तथा। दर्शनं दिव्यमासाद्य प्रसन्ना वो दिशामि तत् ॥४६॥
त्वा प्रादिशत्तेषां दिव्यं लोचनमम्बिका । ददृशुः सर्व एवैते गायत्रीं त्रिपुराम्बिकाम् ॥४७॥
शरूपिणीं यत्र व्याप्य सर्वं समास्थिताम् । मातृकार्णकॢप्तदेहां परामादौ सुधामयीम् ॥४८॥
क्तां पञ्चवर्गकॢप्तबाहुपदोदराम् । अन्तःस्थाऽऽत्मतदूर्ध्वाङ्गहृन्मूलपरिशेषिकाम् ॥४९॥
त्तिमध्यमानाभिहृदयां वक्त्रवैखरीम् । मध्यमाबुद्धिसहितां पश्यन्तीहृदयान्विताम् ॥५०॥
वैखरी वर्णवक्त्रां पदहृदात्मिकाम् । वाक्योदरां घोषसूक्ष्मां वर्णस्थूलस्वरूपिणीम् ॥५१॥

ये" इसप्रकार कह कर अम्बिका भगवतीने गायत्री में इस प्रकार समावेश किया जैसे दिव्य गंगा यमुनामें प्रविष्ट
। उस अद्भुत कार्य को श्रीब्रह्मप्रमुख देवगणने अपने ही समक्ष देख विस्मितभाव से 'जय' शब्द कहकर भगवती
का वर्णन किया। अनन्तर सबने वहाँ त्रिपुरारूपिणी गायत्री को चतुर्भुजावाला, चन्द्रका जूड़ा धारणकी हुई,
वाली, कुङ्कुम की आभावाली, पाश, अंकुश, धनुष, बाण, पुष्प बाण से युक्त, त्रिभुवन सुन्दरी, तुरीय रूपवाली
आभूषणों से भूषित देखा। उन सब ब्रह्मा प्रमुख देवगण ने जय जय कहते हुए उसे प्रणाम किया ॥३७-४४॥

सब देवी ने फिर कहा, "देवगण तुम सब मेरे वचन सुनो; मैं ही गायत्री हूँ, मेरे से अन्य वह किसी रूप में
है। समष्टिरूपा वाणी मैं हूँ उसी रूप में सब मुझे देखो; मेरे दिव्य दर्शनों को पाकर प्रसन्न हुई मैं तुम्हें
देती हूँ" ॥ ४५-४६॥

यह कह कर अम्बिका ने उन्हें दिव्यनेत्र प्रदान किये । सभी ने गायत्री को आकाशरूपिणी त्रिपुराम्बा देखा
जो यह सबको व्याप्तकर स्थित है, उसका शरीर मातृका अक्षरोंसे निर्मित है; परा (अति परम सत्तावाली) आदि-
म्बका, जिसके स्वर ही मुख हैं, कवर्ग आदि पवर्ग तक पांच वर्ग से बाहु, पाद और उदर का सम्बन्ध है। यरलव
ग उसके ऊपर के अङ्ग हैं, हृदय के मूल में परिशेषवाली है, पश्यन्ता तथा मध्यमा की नाभि एवं हृदय प्रदेश
ी मध्या है; मुखमें वैखरीरूपा वाणी है, मध्यमा बुद्धिसहित, पश्यन्ती हृदययुक्त, वैखरी मुखसे उद्भूतवचनवाली;

अशेषाऽऽगममूर्धाढ्यां ज्योतिर्नेत्रां महेश्वरीम् ।
वक्त्रव्याकरणां छन्दोवाणीं शिक्षादिकन्धराम् ॥५२॥
कल्पकर्णां सामहृदं ऋग्यजूरूपसुस्तनीम् । अथ वर्णोदरां सांख्ययोगपार्श्वयुतां शुभाम् ॥५३॥
कर्माऽऽगमकरां तर्कजघन्याऽङ्घ्रीं परात्पराम् । उपवेदपृष्ठदेशां पुराणाऽऽलोकशोभिनीम् ॥५४॥
काव्याऽलङ्कारहसितामात्मविद्यात्मकाऽऽशयाम् ।
बौद्धजैनाऽऽद्यागमाऽऽत्मनखलोमविराजिताम् ॥५५॥
दृष्ट्वैवं त्रिदशाद्यास्ते प्रणेमुर्दण्डवद्भुवि । अथ बद्धाञ्जलिपुटास्तुष्टुवुः परमेश्वरीम् ॥५६॥
अथ तुष्टा जगन्माता पूजिता सुरमुख्यकैः । एतस्मिन्नन्तरे तत्र समाजग्मुः सहस्रशः ॥५७॥
आभीरा धृतदण्डास्ते नत्वा प्रोचुर्विधिं तदा । ब्रह्मन्नः शृणु वाक्यानि लोका ब्रह्मविनिर्मिताः ॥५८॥
नियत्या नियतास्तत्र तव वाग्रूपया ननु । तत्र स्त्री न स्वतन्त्राऽस्ति त्रिषु स्थानेष्वपीश्वरी ॥५९॥

वर्ण मुखवाली, पद हृदयवाली, वाक्य ही उदर है ऐसी घोष नादसे सूक्ष्मा (ध्यानयुक्त योगिजनोंको हृदयंगम होने वाली) तथा वर्णों से स्थूल स्वरूपवाली, सम्पूर्ण आगमों की मूर्धाभिषिक्त ज्योतिः (ज्योतिष) स्वरूप नेत्रवाली, व्याकरण मुखवाली, छन्द वाणी शिक्षा आदिसे कन्धाप्रदेशवाली, कल्परूपी कानों वाली, सामवाणी हृदयवाली, ऋग् और यजु इन दो सुन्दर स्तनों को धारणकी हुई और उदरमें वर्णरूपा, सांख्य और योग पार्श्व भागमें स्थित वाली, शुभमङ्गलकारिणी, कर्म, योग और आगम हाथों में लिये, तर्कसे जघन्य अङ्गवाली (तर्क कर्कश व्यक्तिके लिये इसका साक्षात्कार दुर्लभ है) परात्परा, उपवेदोंको पृष्ठ देश पर धारण किये, पुराणके आलोकसे अत्यन्त शोभा सम्पन्न, काव्य, अलङ्कार जिसका हसित (हास्य) है, आत्मविद्यारूप अन्तर अभिप्रायवाली, बौद्ध, जैन आदि आगम जिसके स्वकीय नख लोम में विराजमान हैं (ऐसी त्रिपुरा स्वरूपिणी गायत्री को उन देवगण ने देखा) ॥४७-५५॥

इस भांति उसे देखकर उन देवगण आदि ने भूमि में दण्डवत् प्रणाम किया । अनन्तर हाथ जोड़कर परमेश्वरी की स्तुति की । अब उन प्रमुख देवगण से पूजित हो जगन्माता अत्यन्त प्रसन्न हुई । इसके बाद वहाँ हजारों गोपगण दण्ड लेकर आ गये; उन्होंने तब नमस्कार कर ब्रह्मा से कहा, "हे ब्रह्माजी ! आप हमारे वचन सुनिये; आपके बनाये हुए लोक अपने-अपने कार्य में नियति के द्वारा नियत रूप से रत हैं वह आपकी ही वाणीरूपाआज्ञा है उसमें भी

कन्याऽऽप्तौ जनको द्वारमथवा भ्रातृमुख्यकाः ।
न स्वतन्त्रस्ततो भोक्ता चैवं सर्गात् प्रवर्तितम् ॥६०॥
तदेष सेतुर्भग्नोऽद्य बली तां भजते यदि । परस्परं नाशमीयुः सामिषश्येनपक्षिवत् ॥६१॥
तद्ब्रूह्यत्र समाधानं नश्येदत्र जगत्त्रयम् । श्रुत्वेत्थं गोपभूपालवचनं प्राह लोकस्रट् ॥६२॥
नियतिर्न विलङ्घ्याऽस्ति दैवी सर्वोपरिस्थिता ।
दृष्ट एवं विधिरपि तस्मात्त्वं शान्तिमाप्नुहि ॥६३॥
पश्याऽऽत्मजां तव पराशक्तिरूपामिमां पुरः । दृष्ट्वा विधिवचो गोपपतिस्तां समवैक्षत ॥६४॥
आत्मजामेव तां दृष्ट्वा सर्वदेवप्रपूजिताम् । पराशक्तिं विदित्वाऽथ नत्वा सम्प्रार्थयत्तदा ॥६५॥
देव्यहं वञ्चितो मूढो मायया तव शङ्करि । नाऽविदं त्वां मद्गृहस्थां पराशक्तिं महेश्वरीम् ॥६६॥
तत् कृपां कुरु देवेशि पुनर्मद्गृहमाविश । प्रार्थितैवं पराशक्तिः प्रोवाचाऽऽभीरभूपतिम् ॥६७॥

ईश्वरी होनेपर भी स्त्री तीन स्थानोंमें स्वतन्त्र नहीं है। कन्याकी प्राप्ति करनेमें जनक-पिताही द्वार है अथवा उसके भाई लोग जो प्रधान हों वे हैं इसी कारणसे स्त्रीका भोक्ता स्वतन्त्र नहीं है। इस प्रकार सृष्टि केआरम्भसे ही यह प्रथा प्रचलित है। इसलिये अब तक जो मर्यादाका सेतु था वह यदि बली उस कन्याको भोगता है तो नष्ट हो गया और जिस प्रकार मांस के पिण्ड को लेकर श्येन (बाज) पक्षी सबके ऊपर बली हो जाता है उसी तरह लोग परस्पर नाशको प्राप्त होंगे। इसलिये आप इसका समाधान कहिये नहीं तो तीनों जगत् का नाश हो जायगा।" इस प्रकार गोपों के अधिपति (राजा) के वचन सुनकर लोकसर्जक ब्रह्मा बोले, "कभी भी दैवी नियति का उल्लङ्घन नहीं हो सकता, वह सबके ऊपर स्थित है; इसी प्रकार ब्रह्मा भी उसी के द्वारा चलाया जाता देखा जाता है, इसलिये अपने मन को शान्त कर। तेरी पुत्री को अपने ही सामने इस पराशक्ति के रूप में देख।" ब्रह्मा की वाणी सुनकर गोपपति ने उसे गायत्री रूप में देखा ॥५६-६४॥

अपनी पुत्री को ही सब देवगण से पूजी गई देख उसे पराशक्ति जानकर अब वह प्रणाम कर प्रार्थना करने लगा, "हे देवि ! शङ्करि ! मैं मूढ आपकी माया से ठगा गया। मेरे घर में स्थित आप महेश्वरी पराशक्ति को मैं नहीं जान पाया। इसलिये हे देवस्वामिनि ! कृपा करें आप फिर मेरे घर में आइये।" इसप्रकार प्रार्थना किये जाने पर

शृणु गोपकुलाऽधीश मां पराऽऽकाशरूपिणीम् ।
जानीहि त्रिविधाऽऽकारां सावित्र्याद्यात्मना स्थिताम् ॥६८॥
तत्राऽहं भारतीरूपा तोषिता तव वेश्मनि । सम्भूताऽस्मि पुनश्चाऽपि गौर्यंशेन समुद्भवा ॥६९॥
सृष्ट्यन्तरे भविष्यामि सह भ्रात्रा च विष्णुना । नन्दगोपस्त्वं भविता सर्वोत्तममहीपतिः ॥७०॥
तत्राऽहं भविता कन्या कात्यायन्यभिविश्रुता ।
एषोऽनुजो मम भवेत् साक्षान्नारायणः परः ॥७१॥
आहरिष्यति ते कीर्तिं त्रिलोकविततां शिवाम् ।
अहं विन्ध्याऽद्रिनिलया भूत्वा कलियुगे ततः ॥७२॥
जनान् दुःखपरान् सर्वानुद्धरामि पुनः पुनः । गोपीभिःपूजिता तत्र मासं ते विषये शिवा ॥७३॥
अभीष्टं सर्वलोकानां दुर्लभं प्रदिशाम्यहम् । इति प्राप्य वरं तस्यास्तुष्टा गोपा अशेषतः ॥७४॥
जग्मुः स्वनिलयानेव नत्वा देवीं सुरानपि । अथ सा परमेशानी जगामाऽन्तर्द्धिमम्बिका ॥७५॥

पराशक्ति ने गोपों के राजा से कहा, "हे गोपकुल के अधिपते ! सुन, मुझे तू सर्वोच्च आकाशरूपा सावित्री आदि रूप में स्थित त्रिविध आकृति धारण की हुई जान । उस विषय में भारतीरूप से प्रसन्न को गई तेरे घर में मैं फिर गौरी के अंश से उद्भूत हो आई हूँ ॥६५-६९॥

अन्य सृष्टि काल (द्वापर)में मैं अपने भाई विष्णुके साथ उत्पन्न होऊँगी और तू गोपकुलमें सबसे उत्तम महीपतिनन्द बनोगे । उस समय मैं 'कात्यायनो' नामसे विख्यात होऊँगो; यह मेरा छोटा भाई परात्मक साक्षात् नारायण है वह तेरी मङ्गलमयी त्रैलोक्य में विस्तृत कीर्ति को फैलायेगा । मैं विन्ध्याचल पर्वत में निवास कर तत्पश्चात् कलियुग में सभी दुःखमें पड़े लोगों का बार-बार उद्धार करूँगो । तेरे प्रदेशसे ग्वालिनें आ मुझ शिवाका पूजन एक मास तक करेंगी तब सम्पूर्ण लोकोंकी दुर्लभ अभीष्ट कामना पूर्ण करूँगो ।" इसप्रकार देवी से वरदान प्राप्त कर सभी गोप अत्यन्त सन्तुष्ट हो भगवती देवी और देवगण को प्रणाम कर अपने-अपने निवासस्थानों को चले गये । तदनन्तर वह परमेशानी अम्बिका वहीं पर अन्तर्हित (अदृश्य) हो गई ॥ ७०-७५ ॥

सावित्री पर्वत पर विराजमान रही और गायत्री के सहित ब्रह्माने तीर्थों के शिरोमणि पुष्कर राज में फिर यज्ञकार्य

सावित्री पर्वतस्थाना गायत्र्या सहितो विधिः । समाहरत् क्रतुं भूयः पुष्करे तीर्थशेखरे ॥७६॥
इत्येतत्ते समाख्यातं सावित्र्याख्यानमद्भुतम् । शृण्वतां पापशमनं भूयःकिं श्रोतुमिच्छति ॥७७॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे भारत्युपाख्याने ब्रह्मणो यज्ञे गायत्री-त्रिपुरांशत्ववर्णनपूर्वकमागमिनि द्वापरे नन्दगोपगृहे समाविर्भाववर्णनं नामेकोनचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥३२३०॥

निष्पन्न किया। इस प्रकार यह तुझे मैंने सावित्री का अद्भुत आख्यान सुनाया इसे सुननेवालों के सम्पूर्ण पाप शमन होते हैं और फिर क्या सुनना चाहते हो ?" ॥७६-७७॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में भारती के उपाख्यान प्रकरण में गोप लोगों को भगवती का वर प्रदान और त्रिपुरास्वरूपा सावित्री का आख्यान नामक उनतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

दत्तभार्गवसम्वादे द्वापरे गोपगृहे विन्ध्यवासिन्या अवतारवृत्तान्तवर्णनम्

एवं दत्तात्रेयगीतां कथामाकर्ण्य भार्गवः । उत्सुकः श्रवणे भूयः कथां पप्रच्छ सादरम् ॥१॥
न तृप्तिर्लेशतोऽप्यत्र कथारसनिषेवणात् । पानात् काम्यरसस्येव भूयस्तत् पातुमुत्सहे ॥२॥
गायत्रीसङ्गतां देवीं बीजाऽवयवशोभिनीम् । अभिष्टुवन् विधिमुखा यथा तन्मे समीरय ॥३॥
अथाऽपि सा जगन्माता पुनर्गोपगृहे कथम् । नारायणेन सहिता भविष्यति कदा कुतः ॥४॥
कथं वा नन्दगोपालो विततां कीर्तिमाप्तवान् ।
कथं कात्यायनी साऽऽसीद्गोप्यः किं प्रापुरीप्सितम् ॥५॥
एतन्मे ब्रूहि विततं शिष्याय श्रोतुमिच्छते । इति पृष्टो दत्तगुरुः प्रसन्नः प्राह भार्गवम् ॥६॥
कथाप्रसङ्गयोग्योऽसि यत्ते तृप्तिर्न विद्यते । जामदग्न्य महादेवीशक्तिविद्धोऽसि सर्वथा ॥७॥

चालीसवां अध्याय

भार्गव परशुराम इस प्रकार दत्तात्रेय द्वारा कही गई कथा सुनने को (और अधिक) उत्सुक हो फिर आदरपूर्वक आख्यान पूछने लगे ॥१॥ "(मुझे) आपके द्वारा कही गई कथा के रस के बारम्बार पान करते रहने से जैसे काम्य मधुररसके पान करने से मन नहीं अघाता उसी प्रकार उस कथारसको पीनेकी उत्कट इच्छा बनी हुई है। गायत्री के साथ बीजके अङ्गों से शोभित देवी को जसे श्रीब्रह्मादि प्रमुख देवगण ने जो स्तुति की वह मुझे बतलाइये; और आगे भी वह जगन्माता फिर गोप के घर में श्रीनारायण भगवान् के साथ क्यों, कब और किस कारण से हुई ? किस प्रकार नन्दगोप ने अत्यन्त विस्तृत कीर्ति प्राप्त की ? वह कात्यायनी क्यों हुई ? गोपियों ने क्या अभीष्ट सिद्धि प्राप्त की ? ॥ २-५ ॥

यह सब सुनने की इच्छा रखने वाले मुझ शिष्य को आप विस्तारपूर्वक बतावें।" यह पूछने पर दत्तगुरु ने प्रसन्न हो परशुराम से कहा, "हे जमदग्नि के पुत्र ! जो तुझे तृप्ति का आनन्द आता जाता है उससे तू कथा के प्रसङ्ग को सुनने के लिये उपयुक्त अधिकारी बन गया है। सत्य ही महादेवी की शक्ति से वेधन होने का लाभ तुझे सर्वथा

अहो भाग्यमिदं लोके दुर्लभं विषयाऽऽत्मनाम् । यच्छ्रीदेव्याः कथासारसमुत्सुकितचित्तता ॥८॥
शृणु भार्गव ! वक्ष्यामि यथा सा त्रिपुरेश्वरी । संस्तुता वागात्ममयी विधिविष्णुमुखैस्तदा ॥९॥
दृष्ट्वा तां सर्वविद्यात्ममातृकावर्णरूपिणीम् । जयेत्युद्घुष्य प्रणताः स्तवञ्चक्रुरनुत्तमम् ॥१०॥
जय जय देवि परापररूपिणि ! जय जय जगतां जनयित्रि !
जय जय लीलाभासितसकले ! जय जय सर्वाऽऽश्रयरूपे ! ।
जय जय सर्वप्रलयविभाविनि! जय जय सर्वाऽन्तररूपे !
जय जय विद्याविलसितदेहे ! जय जय शङ्करि ! नः पाहि॥११॥
निर्गतगुणकृतिजातिविभेदे ! चित्सुखसान्द्रसुधाजलधे !
परिहृतपरिमितिपरवाग्रूपिणि ! मूलविलासिनि ! मुक्तिमयि ! ।
स्वातन्त्र्येण समीहितभावे ! मणिपुरवासिनि ! पश्यन्ति !

मिल गया; अहो ! विषयों में फँसे लोगों का यह दुर्लभ सौभाग्य है कि जो श्रीदेवी के कथा के अत्यन्त मथे हुए सारमय तत्त्व के प्रति उत्सुक चित्त की तेरी भावना बन चुकी है ॥६-८॥

हे भृगुनन्दन ! सुन वह वाग्रूपा त्रिपुरेश्वरी जिस प्रकार ब्रह्मा विष्णु आदि प्रमुख देवगण द्वारा स्तुति की गई वह तुझे कहूँगा । सम्पूर्ण विद्यारूप मातृका वर्ण रूपों की स्थिति वाली उस भगवती को देखकर (समुपस्थित देवगण ने) प्रणाम कर जयघोष कर अत्यन्त श्रेष्ठ स्तुति की ॥ ९-१० ॥

हे परापररूपे देवि ! आपकी जय हो, जय हो (सबसे उत्कृष्ट रूप से आप विराजमान हैं), हे जगत् के नाना रूपों का उत्पादन करनेवाली, अपनी लीला से ही सब प्रपञ्च को कलासम्पन्नकरने वाली भगवति ! आपका उत्कृष्ट स्वरूप सर्वदा विराजमान हो, सबके आश्रयरूपवाली आपकी जय हो; जय हो; सम्पूर्ण प्रलय का विभावनकरनेवाली आपकी जय हो, जय हो । हे सबके अन्तरात्मस्वरूपे ! हम आपका जयघोष करते हैं । हे विद्या के द्वारा विलसित-देहवाली हम आपकी जय मनाते हैं, हे शङ्कर की अर्धाङ्गिनि ! मङ्गलदात्रि ! आपकी जय हो सदैव सर्वोत्कर्ष से आप सतत विद्यमान हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

हे गुण, कृति और जाति विभेदसे रहिते ! निर्मल अभेदस्वरूपे ! चिदानन्द के सर्वाप्लुत अमृतसागररूपे ! इयत्ता परिच्छेदको हटाकर निस्सीम परावाग् रूपवाली, मूलाधारकी अधिष्ठानवाली, हे मुक्तिमयि ! स्वातन्त्र्यकी महिमासे इच्छामय

जय जय विद्याविलसितदेहे ! जय जय शङ्करि ! नः पाहि ॥१२॥

तदनु ज्ञानमयाऽऽत्मविभक्तान्मध्यमभावान् कलयन्ती

मध्यमरूपाऽनाहतवासिनि ! मिश्रितरूपे ! बुद्धिमयि ! ।

वसुविधशक्तिबहिष्कृतभावे पीठविभेदे वि (?) चित्रकृते

जय जय विद्याविलसितदेहे ! जय जय शङ्करि ! नः पाहि ।१३।

अद्वयसंविन्मात्रशरीरं सद्वयभावं कलयन्ती, जाताऽनुत्तरमुखशरकिरणैर्मिथुनविभेदादपि दशधा ।

आद्या तत्परपरसंयोगाद्भूयश्चापि चतुर्विधता

जय जय विद्याविलसितदेहे ! जय जय शङ्करि ! नः पाहि ॥१४॥

अन्ते भेदाऽभेदविभेदादपि नृपसंख्यस्वररूपा पञ्चविधं तत्पञ्चकमाद्यं व्यत्यययोगाद्वेदविधा ।

तदनु चतुर्धा मध्यमहीना मिथुनद्वितयं कलयन्ती

भाववाली, मणिपुर में निवास करने वाली, नाभिप्रदेश में स्थित पश्यन्तीस्वरूपिणी देवि ! हम आपकी जय-जयकार मनाते हैं; हे विद्या से विलसित शरीर की कान्तिधारणकरनेवाली शङ्करि ! आपकी जय हो, जय हो, आप हमारी रक्षा करें ॥१२॥

उसके अनन्तर ज्ञानमय आत्मा से विभक्त किये गये मध्यम भावों को प्रसारित करती हुई, हे मध्यमरूपवाली अनाहत नाद में निवास करनेवाली ! मिश्रितरूपवाली ! बुद्धिमयि ! आठ प्रकार की शक्तियों से उपरितन बाह्य भावों का प्रसार करनेवाली, उड्डीयान पीठ, जालन्धर और कामगिरि पीठों के विभेदसे नाना विचित्रताओं को रचनेवाली, हे विद्या से विलसित शरीरवाली ! आपकी जय हो; हे शङ्करि ! हम जयकार मनाते हैं आप हमारी रक्षा करें ॥१३॥

सर्वत्र एकाकी शिव के अभेदरूपसे संविद् मात्र ही सामरस्यधारण करने वाली, फिर द्वैत भाव को दिखलाती हुई स्वयं अनुत्तरपदमयी (जिसके पर कुछ भी नहीं है), तत्पश्चात् उस मिथुनभाव के होने से भी दशविध और षोडश (१६) रूप से नाना भेदवाली महाविद्यास्वरूपा आद्या अकार से जो प्राप्त आप हैं तब भी उस पर से पर तत्त्व और उस परके संयोग से फिर चार विधाओं में दीख पड़ने वाली हेविद्याविलसितदेहमयी भगवति शंकरि ! आप उत्कृष्ट रूप से सबके ऊपर विराजमान हैं, हमारी रक्षा कीजिए ॥१४॥

अन्त में भेद और अभेदसे भी दश विध तथा पञ्चदश (१५) भेदवाली, पञ्च प्रकार के आदिभूत उस पांचरूपों के समूह के साथ व्यत्ययके साथ योग होने से चोर विधरूपों में प्रगट होने वाली अनन्तर चतुःप्रकार से परा, पश्यन्ती,

जय जय विद्याविलसितदेहे ! जय जय शङ्करि ! नः पाहि ॥१५॥

एवं भूशरमितभेदाढ्या विद्याराज्ञी माता त्वं तत्सम्भेदादखिलंभिन्नं भावयसि त्वं शब्दमयि ।
त्वत्कलया यदि नो सम्भिन्नं गगनमयं स्यादखिलमिदं

जय जय विद्याविलसितदेहे ! जय जय शङ्करि ! नः पाहि ॥१६॥

स्थानत्रयमपि कलया हीनं तव यदि मातर्नो

किञ्चित् परमश्चाऽपि पदं विकलं चेच्छपथो योऽयं नेतरथा ।
तत्त्वं प्रत्याहृतकलया तद्रूपं व्याप्य सदा स्फुरसि

जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि ॥१७॥

वयमिह लोके सर्जनमुख्ये कृत्ये युक्तास्त्वद्भीत्या, त्वत्पदपद्मप्रभवाः काले सीदन्तस्त्वामविदन्तः ।

मध्यमा और वैखरी रूपवाली, मध्यम पद से अदृश्य, मिथुन द्वय शिव=प्रकाश तथा शक्ति=विमर्श को प्रगटकरनेवाली हे विद्या से विलासमय शरीरवाली आप सबसे उत्कृष्टतासे विराजित हैं, आपकी जय हो ॥१५॥

इसप्रकार ५१ भेदों से आढय (समृद्ध), विद्याओं में श्रीराजमहिषी (श्रेष्ठा) मातः आप उसके सम्भेद से हे शब्दमयि ! अपने जागतिक विलास (चित्र दर्पणवत्) अखिल प्रपञ्च से ही भासित होती हैं, आपकी कला से यदि सब प्रपञ्च ओतप्रोत न हो तो यह सब शब्दगुणवाला गगनमय ही बन जाय, हे विद्याविलासपूर्ण देहमयि ! आप सर्वोत्कर्षमय रूपमें विराजमान हो, हे शङ्करि ! जय हो, आप हमारी रक्षा करें ॥ १६ ॥

हे मातः ! तीनों ही स्थान जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति=विश्व, तैजस और प्राज्ञ आपकी संवित् कला से हीन हों तो परमपदकी प्राप्तिका मार्ग ही विकल (कलाहीन अथवा अङ्गहीन) हो जाय यह सत्य ही शपथ है यह कथा अन्य प्रकार से नहीं। इसलिये आप अपनी उन्मेष कला द्वारा उस स्वरूपको व्याप्त कर सदा स्पन्दरूप से स्फुरण करती हैं ऐसी त्रिपुरा भगवती हे श्रीविद्या द्वारा विलसित शरीरवाली ! आप सबसे उत्कृष्टरूपमें विराजमान हैं, आपकी सतत जय हो, हे शङ्कर के अर्धदेहवाली आप हमारी रक्षा करें ॥१७॥

लोकमें इस सर्जनप्रधान कृत्यमें हम आपके भयसे ही सतत कार्यरत हैं, आपके सन्तत विद्यमान होने की बात से आपकी कृतिशक्ति मायारूपिणी कृपा के द्वारा आवृत बन अनभिज्ञ होने से आपके चरण-कमलों से उत्पन्न होकर भी

काले काले पादप्रणतानन् भीतान् मूढानतिदीनान्

जय जय विद्याविलसितदेहे जय जय शङ्करि नः पाहि ॥१८॥

मेधा वाणी भारती त्वं विद्या माता सरस्वती । ब्राह्मी माया वर्णमयी पराऽऽद्या कृतिरव्यया ॥१९॥

विकल्पा निर्विकल्पाऽजा कला नादमयी क्रिया । कालशक्तिः सर्वरूपा शिवा श्रुतिरनुत्तरा ॥२०॥

रक्षाऽस्मांस्त्वं महादेवि सर्वलोकमहेश्वरि । पतितांस्त्वच्चरणयो रक्ष देवि नमोऽस्तु ते ॥२१॥

इति स्तुता सा परमा मातृका विश्वरूपिणी । प्राह देवान् विधिमुखान् प्रसन्ना तत्कृताऽर्चना ॥२२॥

शृणुध्वं विधिमुख्या मे वचोऽभिलषिताऽऽस्पदम् ।

स्तवेनाऽनेन तुष्टाऽस्मि श्रेष्ठे यं मत्स्तुतिः कृता ॥२३॥

गुह्यार्थगर्भिता चेयं मातृकावर्णसम्भवा । मातृकास्तुतिरित्येषा विख्याताऽस्तु समन्ततः ॥२४॥

समय पर कष्ट पाते हैं ! हे विद्यामय शरीरवाली (ऊपरसे नीचे तक समग्र शरीरसे विद्यामयि)! आपकी जय हो; हेशङ्करि ! सतत सर्वोत्कृष्टतया विराजमान हैं, हम लोग संसारके इस प्रपञ्च से भयभीत मूढ एवं अति दीनहीन हो आपके चरण-कमलों नतमस्तक हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥ १८ ॥

आप मेधा (धारणा बुद्धि) वाणी=भाषा, भारती=सरस्वती,श्रीविद्या, माता,सरस्वती, ब्राह्मी, माया, वर्णमयी-रचना प्रसारवती, परा (सर्वोत्कृष्ट), आदिशक्ति, कृतिरूपा, अच्युता, विकल्पसहिता, निर्विकल्पा, अजा (जन्मरहिता), कला, नादमयी, क्रिया, कालशक्ति, सर्वरूपा, शिवा (कल्याणमयी), श्रुति (वेदरूपा) और अनुत्तरा (जिसके बाद ज्ञातव्य शेष ही नहीं रहता) हैं ॥१९-२०॥

हे महादेवि ! हे सर्व लोकों की महेश्वरि! आप हमारी रक्षा कीजिये, आपके चरणोंमें प्रणत हुए हमें बचाइये; हम आपको सादर प्रणाम करते हैं।" इस प्रकार स्तुति की गई भगवती परमा मातृकास्वरूप से विश्वरूपिणी ब्रह्मा आदि प्रमुख देवगण की आराधना से प्रसन्न हो उनसे बोली ॥२१-२२॥

"हे विधिप्रमुख देववृन्द ! तुम अपनी अभिलषित प्रतिष्ठाप्राप्त करनेवाले मेरे वचन सुनो; तुम लोगों ने मेरी यह श्रेष्ठ स्तुति की है उस स्तोत्र से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ ॥२३॥ यह गुह्य (अत्यन्त रहस्यपूर्ण) अर्थ से परिपूर्ण है; मातृका वर्णों से रचित है, इसकी सब ओर "मातृकास्तुति" नाम से विश्वमें प्रसिद्धि हो । जो इस मन्त्रगर्भवालीस्तुति को तीनों कालकी सन्ध्याओं में पठन करता है उस व्यक्तिके हृदयमें वाङ्मयी मैं काव्यादिरूपा कवित्वशक्तिके विलास आदिसे विद्या-

त्रिसन्ध्यं यः पठेदेना तस्याऽहं वाङ्मयी हृदि। प्रादुर्भवामि काव्यादिमयी विद्यास्वरूपिणी ॥२५॥
एनां स्तुतिं प्रपठतो न हि विद्या विहीयते। समो वाक्पतिना भूयाद्वादेषु विजया तथा॥२६॥
चतुर्विंशतिनामानि भवद्भिः पठितानि तु। प्रत्यहं त्रिषु कालेषु पठेद्वेदाऽक्षिवारकम् ॥२७॥
ततो धारयति श्लोकसहस्रमपि प्रत्यहम्। बुद्धिः कुशाऽग्रसदृशी सूक्ष्माऽर्थप्रविभेदिनी ॥२८॥
जयते नाऽत्र सन्देहः सत्यमेतन्मयेरितम्। विधिविष्णुविरूपाक्षाः शृणुध्वं वचनं मम ॥२९॥
न भूयः शक्तयश्चेमाः परिभाव्याः कथञ्चन। क्रुद्धा जगद्भक्षयेयुर्विधिविष्णुशताऽऽवृतम् ॥३०॥
मदंशभूता भवतामाश्रया माननोचिताः। इत्युक्त्वा सा महादेवी स्वं रूपं प्रतिपद्यत ॥३१॥
एतद्भृगुकुलाऽऽराध्यं प्रोक्तं स्तोत्रं पुरा कृतम्। शृणु वक्ष्यामि सा भूयो यथा गोपकुलोद्भवा ॥३२॥
युगेऽष्टाविंशतितमे दैत्या मर्त्यस्वरूपिणः। भूलोकं पीडयिष्यन्ति हीनचर्यापरायणाः ॥३३॥

स्वरूपिणी स्वयं साक्षात् प्रादुर्भूत होती हूँ। जो व्यक्ति इसका सतत अभ्यास करता है, वह कभी विद्या से विहीन नहीं होता। वह अपनी विद्या में वाणी के पति बृहस्पति के समान होगा तथा शास्त्रों के सारगर्भित विवादों में विजयलाभ करेगा। तुम लोगों ने जिन चौबीस नामों का पाठ किया है, उनका जो व्यक्ति प्रतिदिन तीनों काल चौबीस बार (अङ्कानां वामतो गतिः) पाठ करता है तो उसको प्रतिदिन एक हजार श्लोक कण्ठस्थ करने की धारणाशक्ति हो जाती है। उस व्यक्तिकी बुद्धि अत्यन्त कुशाग्र (तीक्ष्ण) और अत्यन्त सूक्ष्म अर्थका विशेषरूपसे परिष्कार करनेवाली बन जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं। मैंने यह सब सत्य-सत्य कहा है। हे ब्रह्मन्! विष्णो! और विरूपाक्ष (शङ्कर)! तुम लोग मेरे वचन सुनो। भविष्यमें फिर कभी भी इन शक्तियों को परिभावित न करना (मत बुलाना)। ये क्रुद्ध होकर सैकड़ों ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रों से आवृत होने वाले (अत्यन्त सुरक्षित) जगत् का भी भक्षण कर सकती हैं, ये मेरे अंश से आविर्भूत हैं; तुम लोगों की परमाश्रयभूता हैं और सर्वदा ही तुम्हारे द्वारा सम्मान दी जाने के योग्य हैं।" इस प्रकार कहकर भगवती महादेवी ने अपना स्वरूप दिखलाया ॥२४-३१॥

(दत्तात्रेय बोले) भृगुकुल के द्वारा सर्वथा आराध्य देवगण द्वारा पूर्वकाल में किये गये इस स्तोत्र को मैंने सुनाया। अब फिर जैसे वह भगवती त्रिपुरा गोपकुल में उत्पन्न हुई, उस वृत्तान्त को तुझे बताता हूँ, सुन ॥ ३२ ॥

"अट्ठाईसवें मन्वन्तरकालमें मानवदेह धारण किये हुए दैत्यलोग वैदिक आचारको लुप्तकर भ्रष्ट आचरणशील हो

कालिन्द्यास्तटसंस्थाना मथुराख्या तु या पुरी। साम्प्रतं लवणाख्येन दैत्येनाऽधिष्ठिता हि सा ॥३४॥
तस्यां चन्द्राऽन्वयजनिर्भविष्यति नृपोत्तमः। उग्रसेन इति ख्यातो भोजवंशविवर्धनः ॥३५॥
तस्याऽऽत्मजः सर्वभीमः कालनेमिर्महासुरः। क्रूरः कंसः इति ख्यातः सर्वलोकप्रपीडकः ॥३६॥
शिशुपालश्चेदिषु च हिरण्यकशिपुः स्वयम्। हिरण्याक्षो दन्तवक्रः शाल्वः सौभपतिस्तथा ॥३७॥
नरकः प्राग्ज्योतिषजो जरासन्धश्च मागधः। इत्याद्या मानुषाऽऽत्मानो दैत्या धर्मप्रहिंसकाः॥३८॥
अनेककोटिसेनाभिः प्रत्येकं परिवारिताः। अप्रधृष्या महासत्त्वाः सर्वशस्त्राऽस्त्रकोविदाः ॥३९॥
तेष्वग्रगण्यः कंसो वै देवब्राह्मणसज्जनान्। प्रहिंसन् सर्वदा भूमावुद्भटः स(?)सम्भविष्यति॥४०॥
अथाऽधर्मभराक्रान्ता भूमिर्ब्रह्माणमेष्यति। असहन्ती महाभारमधर्मिष्ठजनोद्भवम् ॥४१॥
विधिर्देवगणोपेतो भूम्या च हरिमेष्यति। तत्राऽऽयातः शिवो ध्यातो न तद्रक्ष्येति चोत्तरम्॥४२॥

भूलोक का उत्पीडन करेंगे। कालिन्दी (यमुना नदी) के तट पर स्थित मथुरा नाम की जो नगरी है, अभी जहाँ लवण नामक दैत्य निवास करता है, उसमें चन्द्रवंशी नृपश्रेष्ठ उग्रसेन भोजवंश की वृद्धि करनेवाला होगा; उसका पुत्र सबसे प्रबलपराक्रमसम्पन्न कालनेमि (काल पर अधिकार रखने वाला) पूर्व समयमें जो कालनेमि महासुर था, वही अत्यन्त निर्दयी "कंस" नामसे विख्यात सम्पूर्ण प्रजा पर अत्याचार करनेवाला उत्पन्न होगा। स्वयं हिरण्यकशिपु का रूप चेदिवंशवालों में शिशुपाल होगा; हिरण्याक्ष दन्तवक्रके रूपमें एवं सौभदेश का स्वामी शाल्व, प्राग्ज्योतिष जनपद का राजा नरकासुर तथा मागध देश का जरासन्ध ऐसे अन्य सभी मनुष्यदेहरूपमें धर्म की विशेष हानि करने वाले दैत्यस्वभाव के पुरुष होंगे ॥ ३३-३८ ॥

इनमें प्रत्येक राज़ा अनेक कोटि सेनाओं से युक्त होंगे; ये किसी से भी युद्धमें पराजय स्वीकार न करने वाले होंगे, महाप्रबल बलशाली एवं सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों को चलाने में अत्यन्त कुशलता प्राप्तकरनेवाले होंगे ॥३९॥ उनमें सबसे अग्रणी कंस होगा जो देव, ब्राह्मण तथा सत्पुरुषों का अधिकाधिक उत्पीड़न करनेवाला एवं भूमि पर अत्यन्त दुर्धर्षरूपसे उद्भट (महारथ) पराक्रमसम्पन्न होगा, अनन्तर भीषण अत्याचारोंके अधिकाधिक पापोंसे त्रस्त हो भूमि अधर्मी पुरुषों के अत्यन्त अधर्मके भारको न सहती हुई ब्रह्माके पास जावेगी ॥४०-४१॥ ब्रह्मा पृथ्वी सहित देवगण को साथ लेकर विष्णुके पास जावेंगे। वहां जब सब (श्रीविष्णुसे विमर्श कर) ध्यान कर शिवकी प्रार्थनाकरेंगे तथा ध्यान करनेसे वह आयेंगे

अथ त्रिमूर्तिभिर्ध्याता त्रिपुरा परमेश्वरी । आविर्भविष्यति सुरैः प्रणता पूजिता च तैः ॥४३॥
प्रार्थिता भूभारहत्यै प्रवक्ष्यति बुधेश्वरान् । दुरुद्धरो ह्ययं भारः सर्वैरपि सुरेश्वरैः ॥४४॥
दैत्यास्तपोवीर्ययुता महाबलपराक्रमाः । न ते शक्या विजेतुं वो कालवीर्यप्रभावतः ॥४५॥
तस्माद्भवन्तः सर्वेऽत्र भूमौ मानुषजन्मतः । सम्भवन्त्वहमप्यत्र अं(चां?) शेनाऽवतराम्यनु ॥४६॥
शापदग्धं करोम्यादौ कंसमेष हरिस्ततः । हनिष्यति मयाऽऽविष्टः सर्वानपि तथाऽसुरान् ॥४७॥
मत्तः प्राप्तवरो गोपो नन्दः परमशोभनः । साम्प्रतं भुवि कालिन्दीमनुगोव्रजनायकः ॥४८॥
तस्याऽहं सम्भविष्यामि पत्न्यामेष हरिः स्वयम् ।
देवक्यां वसुदेवेन भूत्वा नन्दगृहात्तु माम् ॥४९॥
कंसाऽन्तिकं प्रापयतु ततस्तं नाशयाम्यहम् । एवं प्रोक्ता महादेव्या देवाः सर्वे महीतले ॥५०॥
द्विजेषु जाताः स्वस्वांऽशैः भाराऽवतरणोद्यताः ।
नारायणोऽपि देवक्यां भविष्यत्यखिलांऽशतः ॥५१॥

तो "भूमि की रक्षा नही की जा सकती" यह उत्तर देंगे ॥४२-४३॥ इसके बाद त्रिपुरा परमेश्वरी भगवती का ध्यान ये तीनों साथ में लिए हुए देवगण सहित करेंगे । उन देवता लोगों से प्रणत और पूजित हो भूमिके भारको हरण करने की प्रार्थना करने पर वह भगवती उन्हें आश्वासन देगी, "हे देवगण ! तुम सब लोगों से इन दुष्टों के प्रतिरोध का भार सम्हालने में नहीं आवेगा । वे सब दैत्यगण तपस्याके प्रभावसे युक्त एवं महाबल-पराक्रम-सम्पन्न हैं, उन्हें तुम काल एवं वीर्य के प्रभाव से जीत नहीं सकोगे । इसलिये तुम सभी देवगण इस भूमि पर मनुष्यजन्म के द्वारा अवतरण करो और मैं भी तुम सबके पीछे अवतार लूँगी । सबसे प्रथम, मैं उस कंस को शाप दूंगी फिर मेरे से अनुभावित हो यह विष्णु सम्पूर्णअसुरों को मार डालेगा । मेरे से वर पाया हुआ अत्यन्त सदाचारी सत्पुरुष नन्द नामक गोप है जो अभी पृथ्वी पर यमुना के सन्निकट गौओं का पालक और व्रजभूमि के प्रदेश का अधिपति है । उसकी पत्नी में मैं जन्म ग्रहणकर आऊंगी और यह साक्षात् विष्णु वसुदेवकी पत्नी देवकी में उसके सकाश से उत्पन्न होकर अवतार लेगा । अदला बदली से नन्दगोप के घर से मुझे लाकर कंस के निकट पहुंचा देना; तब मैं उसे नष्ट करूँगी ।" इस प्रकार महादेवी त्रिपुरा के कहने पर वे सम्पूर्ण देवगण पृथ्वी पर वहां छाये पाप के भार को दूर करने को उद्युक्त (तैयार) हो अपने अपने अंशों से द्विजकुलों में आविर्भूत हुए । श्रीनारायण भी वसुदेव के

वसुदेवेन वृष्णीनां कुले परमशोभने । निशीथे तमसा वीते भगवान् स्वस्वरूपतः ॥५२॥
आविर्भविष्यति ततो वसुदेवेन संस्तुतः । बालभावं समेत्याऽथ वसुदेवं प्रवक्ष्यति ॥५३॥
नारदोक्त्या स्वसुर्गर्भाद्विदित्वा स्वात्मनो मृतिम् । एष कंसो मातुलो मे जागर्त्यतितरां भिया ॥५४॥
सम्प्रति श्रीमहादेव्या मोहिन्या मोहितो हि माम् ।
जातं मृत्युं न जानाति यावत्तावद्द्रुतं हि माम् ॥५५॥
नय नन्दगोपगृहं तत्र सा परमेश्वरी । सम्भूताऽऽस्ति तयाऽऽविष्टोऽहं जेष्यामि समेधितः ॥५६॥
जेतुं न शक्यः कंसोऽयमधुनाऽतिबली यतः । नय मां नन्दसदनं तत्र निक्षिप्यतामनु ॥५७॥
समाहराऽत्र तत्पश्चात् साऽस्य वीर्यं हरिष्यति । स्मर तां सर्वजननीं प्रतिरोधो न ते भवेत्॥५८॥
विदित्वा परमां शक्तिं विष्णोर्वाक्यात् स्मृता हि सा । प्रभुं करिष्यति गतौ ततस्तं शिशुरूपिणम् ॥५९॥

सकाश से देवकी में सम्पूर्ण कलाओं समेत अवतार लेगा। यादवों के उस अत्यन्त सुन्दर कुल में अन्धकारपूर्ण अर्धरात्रि के बीतने पर विष्णु भगवान् अपने स्वरूप से आविर्भाव करेगा तब वसुदेव से स्तुति कियाजाकर बालकरूप धारण कर उसे कहेगा ॥ ४४-५३ ॥

"देवर्षि नारद के कहने से अपनी बहन के गर्भ से उत्पन्न सन्तान से अपना मरण जानकर यह मेरा मामा कंस अत्यन्त भयभीत होकर बराबर जागरूक रहता है। इस समय भगवती महादेवी मोहिनी की माया से मोहित हो मेरे जन्मके रूप में आई अपनी मृत्यु को वह न जान पावे तब तक अतिशीघ्र मुझे नन्द गोप के घर में ले चलो। वहाँ उस परमेश्वरी ने जन्म लिया है उसकी कृपा से आविष्ट हो मैं बड़ा होकर उसे जीतूँगा ॥ ५४-५६ ॥

अभी क्योंकि यह महामहिम कंस अत्यन्त बलशाली है, जीता नहीं जा सकेगा। अतः मुझे नन्द के भवन में ले चलो और वहां पहुंचाने के बाद उसे यहां ले आना तत्पश्चात् वही इस (कंस) के बल को हर लेगी। तू सम्पूर्ण चराचर की जननी उस त्रिपुरा का स्मरण करना तेरा कहीं भी प्रतिरोध (रुकावट, बाधा) नहीं होगा" ॥ ५७-५८॥

विष्णु के कहने से परमा शक्ति को जानकर उसके स्मरणमात्र से ही अत्यन्त दुस्तर कार्यमें भी सब प्रकारसे गति कर देगी इसे समझ वसुदेव उस शिशुरूपी बालकको लेकर निर्भय हो गोकुल ले जायगा। उस घोर अन्धकारसे पूर्ण रात्रि

समादाय यास्यति स गोकुलं प्रति निर्भयः । महादेवीं स्मरन्नेव निशीथेऽतितमोवृते ॥६०॥
प्रकाशितमहामार्गः कालिन्दीमपि सन्तरत् । अथ गत्वा नन्दगृहं मोहग्रस्तजनाऽऽकुलम् ॥६१॥
यशोदाशयनेऽपश्यद्देवीं तां जनितां तदा । कोटिसूर्यसमाभासां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ॥६२॥
शूलाऽसिखड्गपरशुपानपात्रकमण्डलून् । चर्मपाशावष्टभुजैर्दधानां भीमरूपिणीम् ॥६३॥
कालरात्रिं शिशुं न्यस्य प्रणम्याऽऽनकदुन्दुभिः । बद्धाञ्जलिपुटस्तावत् प्राप्तो ब्रह्मा च शङ्करः ॥६४॥
नारायणोऽपि नत्वा तामस्तवीत्त्रिपुरां शिवाम् । प्रसन्ना तान् समाधाय वसुदेवं प्रतीश्वरी ॥६५॥
नय मां त्वद्गृहमिति वदिष्यति ततस्तु ताम् । यावन्नीत्वा गृहे न्यस्यत्तावत् पालैश्च सर्वतः ॥६६॥
विदित्वा तत्र संयास्यत्येवक्ष्य शिशुरूपिणीम् ।
समादायाऽऽत्ममृत्युं तां स्वस्रा भूयो निवारितः ॥६७॥
हन्तुमेव मनो यावत्तावद्गुरुतरां तु ताम् । मत्वा समर्थस्तां वोढुं प्रक्षेप्स्यति महीतले ॥६८॥

में महादेवी का स्मरण करता हुआ वसुदेव अपने जाने के मार्ग को भली-भांति प्रकाशित देख बिना बाधा के यमुना को पार कर गया। (उसने) मोह से ग्रस्त (अत्यन्त प्रगाढ़ निद्रा में सोये) लोगों से पूर्ण नन्दगोप के घर यशोदा के शयनागार में उस भगवती जनिता (सब की मूलभूता) देवी का दर्शन किया। करोड़ों सूर्यों की भास्वर कान्तिवाली, तीननेत्र धारण किये, चन्द्रमा को मुकुट में धारण किये, शूल, तलवार, खड्ग, परशु, पानपात्र, कमण्डलु, चर्म (मृगचर्म) और पाश इन्हें आठों भुजाओंमें धारण किये, अतिभीमरूपवाली कालरात्रिको कन्यारूपमें देखा, उस समय वसुदेवने साथवाले शिशु को रख भगवती को प्रणाम किया ही था कि तभी ब्रह्मा, शङ्कर और नारायणने भी आकर त्रिपुरा भगवती शिवा की स्तुति की। प्रसन्न हो उन देवगणकी मनकी शङ्का का समाधान कर ईश्वरी भगवती वसुदेवसे कहने लगी, "तुम मुझे अपने घर ले चलो।" तत्पश्चात् जैसे वह उसे ले जाकर घरमें देवकीके पास रख आया ठीक वैसे ही द्वारपाल लोगों द्वारा चारों ओर से शिशु हुआ जानकर शिशु रूपवाली उस कन्या को देख कंस अपनी मृत्यु को लेकर वारम्वार बहन देवकी के वारण करते रहने पर भी मारने को ही मन करता रहा तभी उसे उठाने में अधिक गुरुतर भार अनुभव कर ले चलने में असमर्थ हो तुरन्त भूमि पर गिरा दिया ॥ ५९-६८ ॥

अथ प्राप्य नभोमार्गं प्राग्रूपा तं प्रवक्ष्यति । मूढ कंस !न जानासि स्वमृत्युं विषयस्थितम् ॥६६॥
अचिरेण समेत्य त्वां पातयिष्यति भूतले । हृतं ते बलसर्वस्वं मया सद्यो विभावय ॥७०॥
इत्युक्त्वाऽन्तर्हिता देवी भविष्यति महेश्वरी । तस्मिन्ननुप्रविष्टा सा भविष्यति सुबृंहणी ॥७१॥
अथ कृष्णस्तया देव्या च बृंहितोऽतिदुर्हृदान् । हत्वा कंसं रङ्गतले हनिष्यति सुलीलया ॥७२॥
नन्दस्तत्कृपया विष्णुं प्राप्य पुत्रं जगद्गुरुम् । त्रिलोकविशदां कीर्तिं प्राप्स्यत्यखिलपूजिताम् ॥७३॥
अथ तत्र गोपकन्या रूपलावण्यसंश्रयाः । नारायणं कृष्णमिति ज्ञात्वा तद्गतमानसाः ॥७४॥
तत्समागमसम्प्राप्त्यै तपस्यन्तं नदीमनु । कात्यायनं मुनिं सर्वास्तोषयिष्यन्ति सेवया ॥७५॥
स प्रसन्नो विमृश्याऽथ ता वक्ष्यति कुमारिकाः । असाध्यं वः प्रेप्सितं यन्नारायणसुसङ्गताः ॥७६॥
तुष्टोऽहं साधयिष्यामि सर्वथा तन्न संशयः । विदित्वा नन्दसदनभवां तां कृष्णसंश्रयाम् ॥७७॥

अनन्तर (वहाँ से छूटकर) अपने अव्यक्त पूर्वरूप को ही प्राप्तकर आकाशमार्ग में जाती हुई उसे बोली, "हे मूढ कंस ! तेरे ही निकटवर्ती क्षेत्र में स्थित अपनी मृत्यु को भी तू नहीं जानता; वह अति स्वल्प समय में ही आकर तुझे भूमि पर मार गिरायेगा । देख, मैंने तत्काल तेरा सारा बल हरलिया" ॥६६-७०॥

यह कहकर महेश्वरी भगवती अन्तर्धानकर गई । तत्पश्चात् वह महादेवी नन्दगोपके यहां उस बालकमें प्रवेश कर उसे वर्धनशील करने लगी । अनन्तर उस देवी द्वारा वर्द्धित हो उस बालकने अत्यन्त दुराधर्ष बलवान् राक्षसों को मारकर खेल खेलमें ही कंसको रङ्ग भूमि में मार गिराया । गोपाधिपति नन्द भी उस महामहिमशालिनी त्रिपुरा की कृपासे जगद्गुरु विष्णु को पुत्ररूप में प्राप्तकर सम्पूर्ण लोगों द्वारा वन्दित तीनों लोकों में प्रसार कीगई अतुल कीर्ति को प्राप्त किया ॥७३॥ रूप और लावण्य से युक्त गोप बालिकायें कृष्णको साक्षात् नारायण जान कर उसमें ही मन एवं प्राण लगाकर उसके साथ समागम हो; इसके लिये नदी के निकटवर्ती तट पर तपस्या करते हुए कात्यायन मुनिकी सेवा द्वारा उसे सन्तुष्ट कर लेंगी ॥७१-७५॥ अनन्तर प्रसन्न हो वह ऋषिश्रेष्ठ विचार कर उन कुमारियों से कहने लगे, "हे गोपकन्याओ ! जो तुम नारायण से मिलना चाहती हो वह तुम्हारा ईप्सित कार्य अत्यन्त असाध्य है उसे मैं प्रसन्न हुआ सर्वप्रकार से साध दूंगा इसमें कोई सन्देह मत समझो ।" वह कात्यायन इस नन्दके भवन में आविर्भूत कृष्णकी आश्रयाको जानकर अपनी इष्टदेवता त्रिपुरामयी भगवती की शुद्धभक्ति से आराधना करेगा । अब वह कालरात्रि उस मुनि से भलीभांति

उपस्थास्यति सद्भक्त्या स्वोपास्यामेव तन्मयीम् ।अथसा कालरात्रिर्वैं प्रसन्ना तेन संस्तुता ॥७८॥
आविर्भविष्यति शिवा भक्तमानसपूरणी । सा प्रवक्ष्यति तुष्टा तं विप्रवर्यं समीहितम् ॥७९॥
किन्ते तद्ब्रूहि मत्तस्त्वं मा चिरं समवाप्नुहि । अथ तां वक्ष्यति नतं इमा गोपकुमारिकाः ॥८०॥
विष्णुनांऽशावतीर्णेन प्राप्स्यन्त्यचिरसङ्गतम् । तत् प्रसधाय देवेशि एतन्मे काङ्क्षितं भवेत् ॥८१॥
अहं चिरं सेवितः सन् आभिः सर्वाऽऽत्मभावतः ।
दिशाम्यभीप्सितमिति सन्तुष्टोऽब्रुवमञ्जसा ॥८२॥
तन्मे मृषा न हि भवेत् कृपया तव शङ्करि । एवं कात्यायनवचः श्रुत्वा त्रिजगदीश्वरी ॥८३॥
विप्रं वक्ष्यति पुनरस्तु तत्ते द्विजोत्तम । परन्त्वत्र महान् काम एष तासां मनोगतः ॥८४॥
तन्मे व्रतं चरन्त्वेता मासेऽस्मिन्नाग्रहायणे । तव नाम्ना प्रसिद्धायाः कात्यायन्या यथाविधि ॥८५॥
ततः कामं दिशाम्युक्तमित्युक्त्वाऽन्तर्द्धिमेष्यति । ततस्ता वचनात्तस्य व्रतं कृत्वा यथाविधि ॥८६॥

आराधित प्रसन्न शिवा भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली आविर्भूत होगी । वह प्रसन्न हो उस विप्रश्रेष्ठ की अभीष्ट कामना को पूर्ण कर कहेगी, "हे भक्तवर ! तेरा क्या अभीष्ट है वह मुझे बता, मैं अतिशीघ्र तेरा काम पूर्ण करूँगी ।" वह भक्ति-श्रद्धा सहित प्रणाम कर भगवती से अनुरोध करेगा । हे भगवती ! ये गोपकन्यायें विष्णु भगवान् जो कृष्ण के रूप में अवतार लेकर आया है उससे शीघ्र ही मिलन करें उसे हेदेवगण की स्वामिनि ! आप पूरा करें यही मेरी अभिलषित कामना है ॥७६-८१॥ इन सबने सर्वसमर्पणमयी बुद्धि से मेरी पूर्ण रूप से सेवा की है; मैंने प्रसन्न होकर इन्हें कहा कि मैं तुम्हारी सब कामना पूरी करूंगा । हे शङ्करपत्नी कल्याणमयी आपकी कृपा से मेरा कथन मिथ्या न हो (ऐसी उपाय कीजिये) ।" तीनों लोकों की ईश्वरी भगवती आद्या त्रिपुरा इस प्रकार कात्यायन मुनि के वचन सुन कर उसे कहेगी, "हे द्विजश्रेष्ठ ! 'तथास्तु' परन्तु इस विषय में उन सब गोपबालाओं के मन में सङ्कल्पित जो कामना है उसकी पूर्ति के लिये इस आग्रहायण (मार्गशीर्ष) मास में मेरा व्रत करें जो मैं तेरे नामसे प्रसिद्ध कात्यायनी हूँ उसके कहने से व्रतका विधिपूर्वक पालन करने से तत्पश्चात् उनकी अभिलषित इच्छा को मैं पूर्ण करूंगी ।" यह कह वह अदृश्य हो गयी । तदनन्तर वे गोपालबालायें उस मुनि के कहने से उस व्रतको विधिसमेत सम्पन्न कर अपने मन से वरे गये प्रिय पति पुरुषोत्तम कृष्ण को प्राप्त करेंगी ।" इस तरह इस कथा

प्रियं कृष्णं मनःकान्तं प्राप्स्यन्ति पुरुषोत्तमम् । इति श्रुत्वा कथां तत्र दत्तात्रेयं भृगूद्वहः ॥८७॥
पप्रच्छ भूयः सोत्साहो भगवन् करुणानिधे ।
व्रतं तत् किंविधं ब्रूहि आचरिष्यन्ति ताः कथम् ।८८।
कथं कात्यायनी प्रीता ताभामिष्टं प्रदास्यति । पृष्ट एवं दत्तगुरुर्जामदग्न्येन हर्षितः ॥८९॥
शृणु वत्सेत्युपाऽऽमन्त्र्य व्रतस्याऽऽह विधिं परम् ।
शृणु भार्गव वक्ष्यामि जानाम्य (नेऽहम ?) खिलाऽऽगमम ॥९०॥
मार्गशीर्षस्याऽद्य तिथिं समारभ्य व्रतञ्चरेत् ।
कात्यायन्याः पूर्णिमान्तं स्त्रीणामत्राऽधिकारिता ।९१।
स्नात्वोषसि नदीतीरे शुक्लवस्त्रादिभूषिताः ।
सैकतीं प्रतिमां कृत्वा कात्यायन्या यथाविधि ।९२॥
तत्र ध्यात्वा प्रोक्तवर्त्तां शुक्लमाल्याऽक्षतादिभिः । नवनीतप्रधानं वै नैवेद्यं विविधं भवेत् ॥९३॥
एवं सम्पूज्य संस्तुत्य गीतनृत्यैश्च तोषयेत् । उद्वास्य सैकतीं मूर्तिं नद्यां निक्षिप्य भार्गव !॥९४॥

को सुनकर भृगुवंशोत्पन्न परशुराम ने दत्तात्रेय भगवान् को उत्साहपूर्ण हो पुनः पूछा, "हे करुणानिधे भगवन् ! वह व्रत किस प्रकार का है ? उन्होंने उसे कैसे पालन किया ? यह सब मुझे बताइये ॥८२-८८॥

कात्यायनी भगवती किस प्रकार सन्तुष्ट हो उन्हें इष्ट वरदान दिया ?" इस प्रकार परशुराम के पूछने पर गुरुदेव दत्तात्रेय ने प्रसन्न हो, "हे वत्स ! सुन" यह सम्बोधन कर व्रत की श्रेष्ठ विधि बतलाई। "हे भार्गव ! सुन, मैं आगमोंसे प्रतिपाद्य सब विधान जानता हूँ। कात्यायनी के व्रत को मार्गशीर्ष की आद्या प्रतिपदा तिथि से आरम्भ कर पूर्णिमा तक करे; स्त्रियों को ही इस व्रत के करने का अधिकार है ॥ ८९-९१ ॥

प्रातःकाल ऊषा काल में नदी के तीर पर स्नान कर शुक्ल (श्वेत) वस्त्रादि से परिधान कर (पहन कर) भगवती कात्यायनी की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर विधिपूर्वक उपर्युक्त कहे ध्यान के अनुसार वे आवाहन आदि कर श्वेत माला, अक्षत आदि से पूजकर नवनीतकी प्रधानता वाले नैवेद्यके लिये विविध व्यञ्जनों को बना कर भलीभांति पूजन एवं स्तुति कर गीत नृत्य द्वारा सन्तुष्ट करें। हे भार्गव ! मिट्टी की मूर्त्ति का उद्वासन कर

मालवी सहदेवा च नन्दा भद्रा सुनन्दिनी ।
पद्मा विशाला गोदाम्नी श्रीदेवी देवमालवी ॥९५॥
श्यामा सुपेशा शालाङ्गी मानवी मानदाऽमृता ।
इति गोपकुमारीणां प्रधानाः षोडशेरिताः ॥९६॥
पूजाऽन्ते संस्मरेदेताः पूजासम्पूर्तिहेतवे । गोपीप्रिय नमस्तुभ्यं गोपाल गोव्रजेश्वर ॥९७॥
गोपीवस्त्राऽपहरण गोगोपालनिषेवित । मातः कात्यायनि ! नमो नन्दगोपकुमारिके ! ॥९८॥
कंसवीर्यहरे ! कृष्णवीर्ये ! विन्ध्याऽद्रिवासिनि ! ।
इति देवीं कृष्णमपि नत्वा गां वत्ससंयुताम् ॥९९॥
प्रदक्षिणीकृत्य दूर्वामुष्टिं तस्यै निवेदयेत् । हविष्यान्नं समश्नीयान्मासमात्रं समाहिता ॥१००॥
मासाऽन्ते शक्तितोऽभ्यर्च्य विशेषेण महेश्वरीम् ।
ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या नवनीतप्रधानतः ॥१०१॥

नदो में विसर्जन करते समय पूजा के अन्त में 'मालवी, सहदेवा, नन्दा, भद्रा, सुनन्दिनी, पद्मा, विशाला, गोदाम्नी श्रीदेवी, देवमालवी, श्यामा, सुपेशा, शालाङ्गी मानवी, मानदा और अमृता', इस प्रकार गोपकुमारियों में सोलह प्रधान कही गई हैं इनका स्मरण पूजा की सम्पूर्णरूप से सफलता की सिद्धि के लिये करे। फिर हे गोपीप्रिय गोपाल, गोव्रजेश्वर, गोपियों के वस्त्रहरण करनेवाले, गौ और गोपालवृन्द द्वारा निषेवित ! तुम्हें हम प्रणाम करती हैं; हे मातः कात्यायनि ! नन्दगोपकुमारिके ! कंस के बल को हरने वाली, कृष्णको बल देने वाली, विन्ध्याचल वासिनि ! आपको सादर नमस्कार है।" इस प्रकार देवी और कृष्ण को भी प्रणाम कर बछड़ेवाली गौ की परिक्रमा कर मुट्ठीभर दूर्वा का भार उसे भेंट करे। वह स्त्री कात्यायनी भगवती की खूब ध्यानपूर्वक भक्ति करती हुई एक मास तक गोदुग्ध से बने आहार का ही सेवन करे ! एक मास के अन्त में अपनी विशेष शक्ति भर महेश्वरी की विधिविधान से पूजन कर नवनीत (मक्खन) की प्रधानतावाले नाना व्यञ्जनों से ब्राह्मणों को अपनी वित्त की शक्ति भर और श्रद्धा भक्ति पूर्वक भोजन करावे ॥ ९२-१०१ ॥

इस प्रकार व्रत का पालन करने से स्त्री अपने सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त कर लेती है। कुमारी सब

एवं व्रताऽऽचरणतो वाञ्छितं प्राप्यतेऽखिलम् । कुमारी लभते श्रेष्ठं पतिं सर्वसुखावहम् ॥१०२॥
तरुणी लभते पुत्रं पौत्रं पुत्रवती तथा । सौभाग्यं सर्वसौख्यानि लभते नाऽत्र संशयः ॥१०३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कात्याननीचरिते सकृष्णजन्मवर्णनं त्रिपुरायाः कात्यायनीस्वरूपेण गोपीभिस्तपःकरणं कात्यायनीव्रतविधान नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥३३३॥

सुख देने वाले श्रेष्ठ पति को प्राप्त करती है, युवती पुत्र को एवं पुत्रवाली पौत्र को तथा सौभाग्य तथा सब समृद्धियाँ और सुखों को पा जाती है इसमें कोई सन्देह नहीं है।" ॥१०२-१०३॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहास श्रेष्ठ त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में कात्यायनीचरित्र में कात्यायनी के व्रत का विधान नामक चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

दत्तभार्गवसम्वादे द्वापरे कात्यायनीदेव्या विन्ध्यवासिनीत्वरूपेणावतारवृत्तान्तवर्णनम्

भगवन्नद्भुततमा श्रुता कात्यायनीकथा । मनागपि न तृप्यामि कथाऽमृतनिषेवणात् ॥१॥
भूय इच्छाम्यहं श्रोतुं कथं विन्ध्यनिवासिनी । जाता कात्यायनी देवी तन्मे वद दयानिधे। २॥
रामेणैवं समापृष्टो दत्तात्रेयोऽवदद्गुरुः । शृणु राम ! प्रब्रवीमि भविष्यं परमाऽद्भुतम् ॥३॥
यदा कृष्णो मातुलं स्वं कसं हत्वा च तत्पितुः । राज्यं निवेद्य पित्रादीन् यादवांस्तोषयिष्यति ॥४॥
तदा कंसस्य श्वशुरः पुत्रीप्रियचिकीर्षया । कालयिष्यति भूयो वै यादवान्मथुरास्थितान् ॥५॥
तदा मागधसामीप्यान्नाशं मत्वा रमापतिः । यादवैः सहितः प्रत्यक्सागरे द्वारकां विशेत् ॥६॥
अथ कृष्णं दूरगतं ज्ञात्वाऽघासुरसोदरौ । महाबलपरीवारौ निशुम्भशुम्भसंज्ञकौ ॥७॥

इकतालीसवां अध्याय

"हे भगवन् ! आपसे मैंने अत्यन्त अद्भुत कात्यायनीव्रत की कथा सुनी। इस कथा-रूपी अमृत का पान करने से मैं थोड़ा भी अपने को तृप्त नहीं समझता हूँ (मन उत्कण्ठित है कि इस कथा को सुनते ही जाऊँ) ॥१॥ पुनः हे दयानिधे ! वह परमाराध्या कात्यायनी देवी विन्ध्यवासिनी कैसे हुई ? उसे मैं सुनना चाहता हूँ आप (कृपा कर) बतलाइये " ॥२॥

श्रीपरशुराम ने जब इस प्रकार सद्गुरुदेव भगवान् दत्तात्रेय से पूछा तो वह बोले, "हे परशुराम ! सुन तुझे अत्यन्त अद्भुत भविष्य का आख्यान कहता हूँ, जब श्रीकृष्ण अपने मामा कंस को मार कर उसके पिता उग्रसेन को राज्य सौंप अपने पिता आदि यादवगण के लोगों को सन्तुष्ट कर देगा तब कंस का श्वशुर अपनी पुत्री को प्रसन्न करने की इच्छा से फिर मथुरा में बसे हुए यादवों को कष्ट पहुंचायेगा। उस समय मागध देश के समीप होने से रमापति विष्णुके अंशरूप श्रीकृष्ण यादवों के सहित समुद्रके निकट द्वारकामें रहेंगे ॥३-६॥ अनन्तर कृष्ण के वैरी निशुम्भ एवं शुम्भ नाम वाले अघासुर के सगे भाई दैत्यराज सहित सेना के साथ उस शत्रुता के सम्बन्ध

कृष्णशत्रू दैत्यराजौ तत्सम्बन्धेन गोकुलम् । समेत्य क्रूरचरितावशङ्कं नाशयिष्यतः ॥८॥
नेष्यतो नन्दनृपतिं बध्वा गोपकुमारिकाः । तथा धनानि गावश्च तदा नन्दप्रिया सती ॥९॥
कृष्णाऽनुरक्तगोपीभिः कात्यायनमुपेष्यति ।
आर्ता प्रपन्नां तां विप्रः कात्यायन्याः समुद्भवम् ॥१०॥
प्रवक्ष्यति च सम्बन्धं ज्ञात्वा तां तनुजां स्वकाम् ।
यशोदा विस्मिता देवीमुपस्थास्यति भक्तितः ॥११॥
ततः प्रसन्नाऽऽविर्भूता तत्र कात्यायनी परा । मातरं तां समाश्वास्य सिंहवाहनमास्थिता ।
अनुयास्यति तौ दैत्यनाथौ शुम्भनिशुम्भकौ ॥१२॥
भविष्यति ततो युद्धं सुभीमं दैत्यनाशनम् । यमुनाकूलमासाद्य दिनानि त्रीणि पञ्च च ॥१३॥
मोचयित्वा नन्दमुखान् गोपकन्याश्च सर्वतः । अनुयास्यति तान् हन्तुं दैत्यान् बलसुदर्पितान् ॥१४॥
देवीवीर्येण सन्त्रस्ताः पलायिष्यन्ति तेऽसुराः । तदा देवी प्रार्थिता सा मातरेते महासुराः ॥१५॥
नार्हन्त्युपेक्षां हनने यतः कलियुगे जनाः । हीनसत्त्वा भविष्यन्ति तानेकोऽप्येषु नाशयेत् ॥१६॥

से गोकुल जाकर बहुत निर्दयतासे वहां निःशंक होकर उत्पात कर उस जनपदका विध्वंस मचाना आरम्भ करेंगे ॥७-८॥ वे नन्दराजाको और गोपकन्याओं को बांधकर धन और गायों को लेजायेंगे । तब सती नन्दकी स्त्री यशोदा एवं कृष्णमें प्रेमरससे पली गोंपियों के साथ कात्यायन मुनि के पास जावेंगी । वह विप्र आर्त्त एवं शरण में आई उन्हें कात्यायनी के आविर्भावका वृत्तान्त कहेगा; उसके सम्बन्धमें अपनी जन्मी हुई पुत्री जानकर यशोदा विस्मित हुई भक्तिपूर्वक देवी की आराधनामें लगेगी ॥९-११॥ तब प्रसन्न होकर परमा देवी कात्यायनी वहां आविर्भूत हो उस मां यशोदाको पूरी तरह आश्वासन देकर सिंह के वाहन पर आरूढ हो उन दोनों दैत्यनाथ शुम्भ और निशुम्भ का यमुनातट पर पीछा कर तब आठ दिन तक दैत्यों को नष्ट करने वाला घोर युद्ध करेगी । नन्द प्रमुख गोपों और गोपबालाओं को बन्धन से छुड़ाकर उन्हें अपने बलसे अत्यन्त अभिमानमें भरे दैत्योंको मारने को तैयार होगी ॥१२-१४॥ देवीके पराक्रमसे अत्यन्त सन्त्रास पाकर वे दैत्य लोग भागने लगेंगे । तब उन सब के द्वारा देवी की प्रार्थना की गई, "हे मातः ! ये महाप्रबल दैत्य वध करने के लिये उपेक्षाके योग्य नहीं हैं; क्योंकि कलियुगमें लोग अत्यन्त निर्बल होंगे उन्हें, इनमें से कोई सा भी उनको नष्ट कर सकेगा तब हे महेश्वरि ! इन दैत्यों को मारने को आप ही सर्वथा समर्थ हैं । इनमें एक भी बचा

ततो हन्तुमिमान् दैत्यान् समर्हसि महेश्वरि!।
एकोऽप्यत्राऽवशेषश्चेत् प्रवृत्तिर्न कलौ भवेत् ॥१७॥
तस्मान्निःशेषतस्त्वेनानविचार्य हनिष्यसि। प्रार्थितैवं दैत्यगणान् हन्तुमेव प्रयास्यति ॥१८॥
ततो निशुम्भः स्वं स्थानं विन्ध्यकन्दरसंस्थितम्। देवखातं महाभीमं निविशिष्यति वै तथा ॥१९॥
शुम्भो यास्यति जाह्नव्यां दरीमन्यामनीकिनीम्। एवं त्रिधा विद्रुतेषु दैत्येष्वथ महेश्वरी ॥२०॥
कात्यायनी त्रिधा भूत्वा दैत्याननुद्रविष्यति। प्रविश्य देवकी तन्तु निशुम्भं निहनिष्यति ॥२१॥
कालीरूपेण तत्सेनां भक्षयिष्यति चाऽपरा। शुम्भं हनिष्यति परा विन्ध्याऽग्रे गाङ्गरोधसि ॥२२॥
एवं दैत्यान् त्रिरूपेण हत्वा कात्यायनी परा। त्रिरूपेण स्थिता तत्र लोके रक्षणहेतवे ॥२३॥
अथ देवाः समागत्य स्तोष्यन्ति विविधैः स्तवैः। भविष्यति प्रसन्ना सा देवानां वरदा तदा ॥२४॥
महेश्वरि! त्रिधैव त्वमेषु स्थानेषु सुस्थिरा। तिष्ठ भूयः कलियुगे दैत्यबाधाविमुक्तये ॥२५॥

रह जायगा तो कलियुग में धर्म की प्रवृत्ति नही होने पायेगी इसलिये इनका पूर्ण रूप से विना विचारे ही वध कर दीजिये।" इस प्रकार प्रार्थना करने पर दैत्य लोगों को मारने को भगवती कात्यायनी जावेगी ॥१५-१८॥ तदनन्तर निशुम्भ बड़ी विशाल देवगुफा जो विंध्याचल की कन्दराओं में स्थत है वहां चला जायगा और शुम्भ गंगा प्रदेशकी अवस्थित अपनी दूसरी सेनाको लेकर घाटी में चला जायगा। इसप्रकार इन उपद्रवी दैत्यों के तीन ओर भाग निकलने पर महेश्वरी कात्यायनी तीनों रूपों को बनाकर दैत्यों का पीछा करेगी। देवकी में प्रविष्ट होकर भगवती परा निशुम्भको मारेगी; अन्यरूप से काली बन उसकी सेना को खा जायगी। अपना पररूप बनाकर विन्ध्याचल के आगे गंगा के तट पर शुम्भ को मार डालेगी। इस प्रकार सर्वोत्तम भगवती कात्यायनी तीन रूपों से दैत्यों को मारकर इस लोक में प्राणीमात्रकी रक्षाके निमित्त तीन स्वरूपों में स्थित होंगी (रहेगी) ॥१९-२३॥ अनन्तर देवगण आकर विविध स्तोत्रों से भगवती का स्तवन करेंगे तब वह भगवती अत्यत सन्तुष्ट हो देवगण को वर देगी ॥२४॥

"हे महेश्वरि! आप तीनरूपों को धारणकर इन स्थानों में सतत स्थिरतया विराजमान हों; फिर कलियुग में दैत्यों के उपद्रवों से मुक्ति देने के लिये आप स्थित रहें। दैत्यों का विनाश करने वाली आप को देखकर असुर लोग कभी

त्वां दैत्यनाशिनीं दृष्ट्वा प्रभविष्यन्ति नाऽसुराः । वयं भुवि समागत्य पूजयामः सुपर्वसु ॥२६॥
कलौ काममया लोका दम्भाऽनृतपरायणाः । पिशुनाः पापनिरता नास्तिका धर्मबाधकाः ॥२७॥
कामुकास्तत्र पुरुषा गमिष्यन्त्यपि मातरम् ।
स्नुषां तनूजां भगिनीं कामयिष्यन्ति कामुकाः ॥२८॥
स्त्रियः पतिविरोधिन्यः प्रत्यास्यन्त्यन्त्यजानपि ।
भार्योपजीव्या भर्तारः कन्याजीव्याश्च मातरः ॥२९॥
विक्रयिण्यः स्त्रियो योनेः पण्यस्येव यथाऽऽपणे। अन्त्यजाऽध्यापका विप्रा वृथा पशुविहिंसकाः ॥३०॥
धनार्थमविधानेन याजयिष्यन्त्यवैदिकान् । धनार्थं मातरं पुत्रं पितरं पतिमेव च ॥३१॥
गुरुं मित्रञ्च विश्वस्तमपि घ्नन्ति परस्परम् । धर्मवार्तां ज्ञानवार्तां वदिष्यन्ति गृहे गृहे ॥३२॥
आचरिष्यन्त्यविहितं ज्ञाननिष्ठासमीरणाः । तान्त्रिकाभासमार्गाणि संश्रित्य द्विजबन्धवः ॥३३॥

साहस नहीं कर पावेंगे । हमलोग सुन्दर पर्वों पर पृथ्वीलोक में आकर आपकी पूजा करेंगे ॥२५-२६॥

कलियुग में सभी लोग पाखण्ड और मिथ्या को ही प्रधानता देंगे, सभी कामवासना के वशीभूत होंगे, पिशुन (झूठी चुगली करने वाले) पापकर्मकरनेवाले पापशील एवं धर्ममें विघ्न करनेवाले होंगे । (यहांतक वे कामवासना के वशीभूत होंगे) कामुक लोग जो पांच पूज्य वर्ग की मातायें स्त्रियां हैं उनसे भी स्वेच्छापूर्वक सहवास करेंगे; ये कामवासनाके कीट अपनी पुत्रवधू, पुत्री और बहिन के लिए भी बुरी कामुक वासनाभरी दृष्टि रक्खेंगे ॥२७-२८॥

स्त्रियां पति की विरोधिनी होंगी, वे नीचे कुल के अन्त्यज लोगों के साथ भी सहवास करेंगी । पति लोग अपनी भार्या की कमाई से जीवन निर्वाह करेंगे; साथ ही मातायें कन्याओं के ऊपर आजीविका चलावेंगी । जिस प्रकार बाजार में पैसे से वस्तुओं का क्रय होता है वैसे ही स्त्रियां अपने गुप्त अङ्गों को बेचेंगी । नीच वर्ण के लोग अध्यापक बनकर पढ़ायेंगे । विप्र लोग देवताओं के निमित्त के पूजा-उपहार को वर्जित कर व्यर्थ पशुहिंसक होंगे । वे लोग धन की प्राप्ति के लिए विना विधान ही अवैदिक (वेदाचार से शून्य) लोगों को यज्ञ करवायेंगे । धन के लिए माता, पुत्र, पिता एवं पति, गुरु, मित्र, और अपने विश्वासी लोगों को परस्पर मारेंगे । घर घर में सभी लोग धर्म की वार्ता और ज्ञान की चर्चा करेंगे । ज्ञाननिष्ठ होने का व्याज (बहाना) बनाकर द्विज कहलाने का दम्भभरनेवाले तन्त्र विद्याके आभास (मिथ्या बहाने) के मार्गों का आश्रय लेकर विधिरहित आचरण करेंगे ॥२९-३३॥

दूषयिष्यन्ति सन्मार्गं वेदागमसमाश्रयम् । अविधानेन यास्यन्ति क्रतुभेदेषु ब्राह्मणाः ॥३४॥
सोमं सुराश्च मांसानि भक्षयिष्यन्ति तर्षया । शास्त्राणि कल्पयिष्यन्ति स्वस्वाऽभिमतसम्मितम् ।३५।
प्रायः सर्वे खलाः स्तब्धा वञ्चकाः सर्वदूषकाः । हीनवर्णा उत्तमानां गुरवश्चोपदेशकाः ॥३६॥
तपःपरायणाः शूद्रा ब्राह्मणाश्च श्ववृत्तयः । स्त्रीजीवना नृपतयो वैश्याश्चौर्यपरायणाः ॥३७॥
शासिष्यन्ति महीमेतामन्त्यजाताश्च भूयशः । आगमाभासमाश्रित्य द्विजमुख्या अपीश्वरि॥३८॥
पास्यन्ति मदिरां कामाद्वच्छन्त्यखिलयोनिषु । वेदागमप्रविहितं हित्वा कामपरायणाः ॥३९॥
बौद्धाऽऽर्हतम्लेच्छमार्गान् संश्रयिष्यन्ति सर्वशः । एवंविधानामत्यन्तकामिनां कामपूर्तितः॥४०॥
त्वद्दर्शनादेव गतिर्भवेन्नह्यन्यथा क्वचित् । एवं सुरैः प्रार्थिता सा त्रिरूपा विन्ध्यवासिनी ॥४१॥

ये (उत्पथगामी) द्विजबन्धुगण वेदों और आगमों के प्रतिपाद्य सन्मार्गको सब प्रकारसे भ्रष्ट करेंगे; ब्राह्मण लोग यज्ञ की प्रकृतियों एवं विकृतियों को जाने विना ही विधिहीन यज्ञों में जावेंगे। तृष्णा के वशीभूत हो (ये इतने नीच कर्मों पर उतर जावेंगे) कि सोमपान और सुरापान का प्रयोग एवं मांस का भक्षण धडल्ले से करेंगें। अपने स्वार्थ को प्रश्रय देने के अभिप्रायसे ही शास्त्रों के प्राप्त वाक्योंका निजस्वार्थमय भाव निकालेंगे। प्रायः सभी (ऊपरसे लेकर नीचे तक), लोग खल (दूसरोंके प्रति अपकार करने को ही धर्म मानने वाले), स्तब्ध (दुराग्रही), वञ्चक (ठगने वाले), सभी में दुर्गुण निकालने वाले हो जायेंगे एवं हीन जाति में उत्पन्न होकर भी अपने से उत्तम वर्ण के लोगों के गुरु बनेंगे और उन्हें उपदेश देंगे ॥३४-३६॥

शूद्र जाति के लोग तपस्यापरायण बनेंगे और ब्राह्मण लोग सेवावृत्ति को धारण करेंगे। राजा लोग स्त्रियों में ही रमण कर जीवन बिता धन्य होंगे; और वैश्यलोग चोर कर्मों में पारङ्गत होंगे। इस पृथ्वी को वारम्वार अन्त्यज लोग ही शासन द्वारा चलावेंगे। हे महेश्वरि ! प्रमुख द्विजगण भी आगमों के वचनों का आभास पाकर अत्यन्त उन्मुक्त रूप से मदिरापान करेंगे और सम्पूर्ण योनियों में उन्मुक्त अपनी कामवासना को शान्त करेंगे। ऐसे काम-वासना-परायण लोग वेदों और तन्त्रों में प्रतिपादित विधिविधानों को सर्वथा छोड़ देंगे ॥३७-३९॥

सभी लोग सब ओर से बौद्ध, आर्हत और म्लेच्छ मार्गों के ही अनुयायी होंगे; इस प्रकार की कामपूर्त्ति से ही जीवन को सब भाँति स्वार्थपरायण करने वाले अत्यधिक कामुक लोगों की आपके दर्शनों से ही मुक्ति होगी, अन्य

लोकान् सर्वान् समुद्धर्तुं संस्थास्यति महीतले । एतत्तेऽभिहितं देव्या भूयः शुम्भनिषूदनम् ॥४२॥
श्रुत्वैतत् सर्वपापेभ्यो मुच्यते वाञ्छितं लभेत्। इति तेऽभिहितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥४३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे कात्यायनीचरिते दैत्यानांनाशाय भगवत्यास्त्रिधारूपवर्णनपूर्वकं कलौ भाविन्यादुरवस्थायाश्चित्रनिरूपणं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३३७६॥

किसी मार्ग से कहीं भी निस्तार नहीं पावेंगे।" इसप्रकार देवगण द्वारा प्रार्थना की गई वह विन्ध्यवासिनी भगवती कात्यायनी तीन रूप धारण कर सम्पूर्ण लोगों का उद्धार करने के लिए भूमण्डल पर विराजमान रहेगी। यह तुझे फिर देवी के द्वारा शुम्भ के दलन का वृत्तान्त बताया; इसे सुनकर व्यक्ति सब पापों से छुटकारा पाजाता है और अभीष्ट वाञ्छितार्थ पा लेता है। इसप्रकार तुझे सब, जो पूछा गया, बता दियो है। आगे फिर और क्या सुनना चाहता है? ॥४०-४३॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में कात्यायनीचरित्रप्रकरण में दैत्यों के वधार्थ महदेवी का तीन रूप धारण एवं भविष्य के कथन द्वारा कलिके लोगों के उद्धार के उपाय का वर्णन नामक एकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

दत्तभार्गवसम्वादे चण्डिकामाहात्म्यवर्णनम्

ामदग्न्यः प्राह ततः श्रुत्वा कात्यायनीकथाम् । कथारसाऽऽकृष्टचेताः प्रमोदितशुभाऽन्तरः ॥१॥
गवन्नाथ करुणामूर्ते त्वत्कीर्तितां कथाम्। भूयो मे शृण्वतो नाऽस्ति तृप्तिः स्वल्पाऽपि कुत्रचित् ॥२॥
दहं श्रोतुमिच्छामि वृत्तं शुम्भनिशुम्भयोः । अतीतमपि तौ यद्वद्धतौ किंबलपौरुषौ ॥३॥
या मूर्त्या कथं युद्धमभूत् सर्वमशेषतः । वद मे भगवन्नाऽन्यो वक्ताऽस्य सुलभो भुवि ॥४॥
वधूतगुरुस्त्वेवं पृष्टो रामेण तां कथाम् । प्राह क्रमेण शिष्याय प्रीतः प्रीत्या कथाश्रुतौ ॥५॥
ामदग्न्या शृणु कथामेतां परमपावनीम् । चण्डिकामहिमायुक्तां सर्वसिद्धिप्रदायिनीम् ॥६॥
मेधसा ब्राह्मणेन सम्प्रोक्तां सुरथाय वै । मधुकैटभनामानावादिदैत्यौ महाबलौ ॥७॥

बयालीसवां अध्याय

सुसम्बद्ध प्रकरणसे भागवती कात्ययायनीकी कथा सुनकर श्रीदेवी परमभक्त भागवत श्रीपरशुराम भगवती की कथाके रस रससे बहुत अधिक प्रभावित हो देवी की ओर आकृष्ट होगया। (सुनते-सुनते) उसके अन्तःकरण में आनन्दका पारावार हा। वह बोला, "हे भगवन् ! हे नाथ ! हे करुणामूर्त्तिरूप आपके द्वारा वर्णनकी गई कथाओं को बारम्बार सुनते हुए झे कहीं अल्प भी तृप्ति नहीं होती (मन करता है कि अत्यन्त संरम्भ से इष्टदेवता की प्रशस्ति सुनता ही जाऊँ)। सलिए मैं शुम्भ और निशुम्भ का बीता हुआ वृत्तान्तभी सुनना चाहता हूँ, वे दोनों तो अतिपराक्रमशाली थे; किस कार मारे गए ? किस मूर्त्ति द्वारा उनका उद्धार हुआ ? और किस प्रकार युद्ध हुआ ? इस सब विवरणको आप पूर्णरूप से मुझे कहिये। हे भगवन् ! (आपको छोड़ कर) इस विशिष्ट विवरण को बताने वाला अन्य व्यक्ति भूमण्डल में सुलभ नहीं है !" अवधूत गुरु श्रीदत्तात्रेय को श्रीपरशुराम द्वारा पूछे जाने पर कथा सुनने में अत्यन्त हर्षित अपने शिष्य को उन्होंने सुप्रसन्न हो क्रमशः भगवती की कथा सुनाई ॥१-५॥

"हे जमदग्नि महर्षिके पुत्र ! चण्डिका भगवती की महिमासे मण्डित सम्पूर्ण सिद्धियों को देनेवाली, पढ़ने व सुनने

युयोध याभ्यां श्रीविष्णुर्वर्षसहस्रपञ्चकम् । छलेन तेन निहतौ मेदिनीयं यतोऽभवत् ॥८॥
मेदिनी मेदसा व्याप्ता तयोर्देहस्य वै ततः । तयोर्वंशे समभवन्निशुम्भः शुम्भ एव च ॥९॥
चेरतुस्तप अत्युग्रं वर्षाणामयुताऽष्टकम् । ततो विधिः प्रसन्नोऽभूत्तयोर्वरचिकीर्षया ॥१०॥
तौ वव्राते वरं स्वेष्टं सर्वलोकभयावहम् । सर्वाऽजेयत्वमथ तज्ज्ञात्वा लोकविधिस्तदा ॥११॥
पुरुषैस्त्वमजेयोऽसीत्युक्त्वा शुम्भं परं तथा । अन्तर्धानं ययौ तेन वरेण दैत्यपुङ्गवौ ॥१२॥
अजेयौ सर्वलोकानां दैत्यौ तौ सम्बभूवतुः । विजित्य लोकांस्त्रीन् दैत्यौ त्रैलोक्यश्रियमापतुः ॥१३॥
शुम्भोऽभवत् स्वर्गपतिर्निशुम्भो भूपतिर्बभौ । कौबेरमथ याम्यञ्च वारुणं नैऋतं पदम् ॥१४॥
आग्नेयं वायवीयञ्च पदं शुम्भो ददौ क्रमात् । दैत्यानामेव भ्रातॄणां पुत्राणाञ्च विभागतः ॥१५॥
एवं दैत्यहृतैश्वर्या देवा दैन्यं समागताः । दुर्गेषु वनराजीषु चेरुर्भीताः सुरेश्वराः ॥१६॥

वालों को परम पवित्र करने वाली इस कथा को तू सुन ! इसे सुमेधा ब्राह्मण ने सुरथ राजा को कहा था। महाबल-पराक्रमशाली मधु एवं कैटभ नाम के आदि दैत्य हो गये हैं; उनके साथ श्रीविष्णु ने पांच हजार वर्षों तक युद्ध किया। उन्हें छलकर उसने (श्रीविष्णु ने) मार दिया उनके मेद से यह पृथ्वी बनी ॥६-८॥

उनके देह की मेद से यह सारी पृथ्वी व्याप्त हो गई। उन्हों के वंश में निशुम्भ एवं शुम्भ ने आठ हजार वर्षों तक अति उग्र तपस्या की। तत्पश्चात् श्रीब्रह्मा उन्हें वर देने की इच्छा से उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो प्रगट हुये। उन दोनों ने सम्पूर्ण लोगों को भय देनेवाला अपना अभीष्ट वर मांगा कि सब से अजेय रहनो (उन्हें कोई भी जीत न सके)। इस वर की कामना जानकर तब लोकपितामह श्रीब्रह्मा ने उसे पुरुषों द्वारा अजेय होने का हीं (न जीते जानेका) वरदान दिया और शुम्भको भी यही वर दिया। फिर वह अन्तर्धान कर गए। उस वरसे वे दैत्यों में श्रेष्ठ दोनों राक्षसराज सम्पूर्ण लोगों के अजेय बन गये। उन्होंने तीनों लोकों को जीत कर त्रैलोक्य की लक्ष्मी प्राप्त की ॥९-१३॥

शुम्भ स्वर्ग का राजा बन गया और निशुम्भ पृथ्वी का स्वामी हुआ। शुम्भ ने कौबेर पद (कुबेर का पद), यम का अधिकार, वरुण पद की सेवा, नैर्ऋत, आग्नेय, वायवीय आदि सभी देवों के अधिकारों को अपने ही दैत्यों, भाइयों तथा पुत्रों में ही विभक्त कर दिया। इस प्रकार दैत्यगण द्वारा ऐश्वर्य छीन लिए जाने के कारण देवतालोग दीनहीन दशा को प्राप्त होगये। दैत्यलोगों के भयसे डर कर वे सुरेश्वरवृन्द गहन दुर्गों और वनप्रदेशों में छिपे वेषों में

एवं ते स्वपदभ्रष्टाः सुरा दैन्यं समाश्रिताः । मर्त्यलोकेषु दैत्येभ्यो भीता गुप्तस्वरूपिणः ॥१७॥
मनुष्यवेषैराच्छन्नाः कन्दराऽन्तर्वनेष्वपि । तापसं वेषमाश्रित्य जटावल्कलचीरिणः ॥१८॥
इन्द्रादयः समभवंस्तथाऽन्ये पक्षिरूपिणः । एवं वर्षाऽयुतशतं देवाः स्वस्वपदच्युताः ॥१९॥
शासन्ति दैत्या जगतीं सर्वतः शुम्भपालिताः । हविर्भागानप्सरसोऽमृतकल्पमहीरुहान् ॥२०॥
ऐरावतं नन्दनादीनाच्छिद्य बुभुजुर्बलात् । आददुः सर्वरत्नानि लोकत्रयगतान्यपि ॥२१॥
मर्त्यलोके न कुत्रापि देवयज्ञः प्रवर्तते । आसुराः क्रतवः सर्वे शुम्भशासनतोऽभवन् ॥२२॥
शुम्भः प्रावर्तयद्वेदान् साङ्गान् विद्यासमन्वितान् । पुराणं कल्पसूत्रञ्च धर्मशास्त्रमशेषतः ॥२३॥
तथा तत्फलदान् लोकानुत्तमाऽधममध्यमान् । स्वर्गांश्च नरकांश्चैव शासति स्वमतेन सः ॥२४॥
तदाऽतिक्लेशिता देवाः शक्रमुख्याः समेत्य ते । ययुः शतधृतेर्लोकमसुरैरविलक्षिताः ॥२५॥

भटकने लगे। ऐसे वे देवता अपने लोकसे भ्रष्ट होकर बहुत अधिक दीन दशाको प्राप्त हो गये, व मर्त्य लोगों में आकर दैत्यों से डर छिप गये तथा अत्यधिक दुर्दशाग्रस्त हो गये। ॥१४-१७॥

इन्द्र आदि सुरेश्वरगण मनुष्यों का वेष बदल कर कन्दराओं और बड़े-बड़े बनों के अन्तर्भाग में अपनी जटायें बढ़ा कर वल्कल (वृक्षों की छाल) के वस्त्र पहन कर तपस्वी बने। साथ ही कई अन्य देवगण पक्षियों के नाना रूप बना एक लाख वर्ष तक सब ही अपने-अपने अधिकार और पद से च्युत बना दिये गये। शुम्भकी अध्यक्षतामें ही सब ओर दैत्यगण जगत् पर शासन करने लगे। दैत्यवृन्द यज्ञके नाना भागों को, अप्सरागण, अमृत, कल्पवृक्ष, ऐरावत हाथी, नन्दनकानन (वन) आदि को देवताओं तथा देवपतिसे बलपूर्वक छीनकर भोगने लगे। तीनों लोकों के सम्पूर्ण रत्नों को भी उन्होंने ले लिया; (उस समय) मर्त्यलोक में कहीं पर भी देवयज्ञ नहीं होता था, शुम्भके आदेश से सभी यज्ञ आसुर भावों की विधियों से पूर्ण होते थे ॥१८-२२॥

शुम्भने अपने स्वार्थके अनुरूप सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त छैअङ्गों समेत वेदों, समग्र पुराणों, कल्पसूत्रों और सम्पूर्ण धर्मशास्त्रोंका अपनी नवीन रीतिसे प्रचलन किया और उनसे प्राप्तहोनेवाले फलदायक उत्तम, मध्यम और निकृष्ट लोकों तथा स्वर्ग, और नरक इन सब के लिए अपने मत के अनुसार आदेश निकाल कर शासन किया। उस समय इन्द्र के नेतृत्व में देवगण मिलकर अत्यन्त दुःखित हो दैत्यों से दृष्टि बचा कर ब्रह्माजी के लोक में गये। वहां अत्यन्त तेजोमय

अथ तत्र समासीनं धातारं सिद्धसेवितम् । प्रज्वलद्वह्निकूटाभं विष्वक्तेजोभिरावृतम् ॥२६॥
चतुर्भिर्मुकुटैर्युक्तं चतुःशृङ्गमहीधरवत् । मूर्तिमद्भिः श्रुतिगणैर्विद्याभिः सेवितं विभुम् ॥२७॥
दूरादेवाऽमराः सर्वे दण्डवत्प्रणतास्तदा । उत्थाय मूर्ध्नि विन्यस्याऽञ्जलिबन्धं प्रतुष्टुवुः ॥२८॥
दृष्ट्वाऽमरान् स्तुतिपरान् दीनानपहृतश्रियः । प्राह शक्रमभिप्रेक्ष्य विधिः सर्वविभावनः ॥२९॥
देवेश ब्रूहि किं तेऽद्य कारणं समुपागमे । इति पृष्टः शतमुखः कृताञ्जलिरुवाच तम् ॥३०॥
धातः शुम्भनिशुम्भाभ्यां बलिभ्यां वरदानतः । हृतं त्रिभुवनेशित्वं वयमेव निराकृताः ॥३१॥
बद्धाः कथञ्चिन्निर्मुक्ताश्छन्नरूपा वनाऽद्रिषु । हतश्रियो हतबलाः कृपणाः प्राकृता इव ॥३२॥
इन्द्रचन्द्रकुबेरेशवरुणाऽग्निमरुत्पदम् । आच्छिद्य दानवैः सर्वं भुज्यते तत्तु नित्यशः ॥३३॥
तद्ब्रूहि नः कृत्यतमं शुम्भं प्रकृतिदं पुनः। दीनानां नो विपत्त्राणे नास्त्यन्यस्त्वदृते क्वचित् ॥३४॥

अग्नि के शिखर के समान चारों ओर से विशेष आभा से घिरे, सिद्ध गण से सेवित, चार शृङ्ग के पर्वत के समान चारों मुकुटों से शोभित चतुःशिरोंवाले सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्मा को, जो मूर्तिमान् श्रुतिरूपी विद्याओं से सेवित थे, सब देवगण ने दूर से ही दण्डवत् प्रणाम किया और उठ कर हाथ जोड़ मस्तक नवाकर उनकी स्तुति की ॥२३-२८॥

सर्वविभावन (सर्वज्ञ) ब्रह्माने लक्ष्मीसे हीन एवं दीन दशा को प्राप्त देवगणको स्तुति करते देख इन्द्रको लक्ष्य कर कहा, "हे देवेश ! अपने आने का क्या कारण है ? सो बताओ ।"इस प्रकार शतक्रतु इन्द्रसे पूछने पर उसने हाथ जोड़ कर ब्रह्माजी से कहा, "हे धातः ! पराक्रमी शुम्भ और निशुम्भ ने वरदान के प्रभाव से तीनों लोको के प्रभुत्व को ले लिया जिससे हम अधिकारहीन हो गए । हम लोग बन्दी बना दिए गए परन्तु किसी प्रकार निर्मुक्त होकर वनों और पर्वतों में अपना वेष छिपाये श्रीविहीन व पराक्रमरहित हो स्वभाव से कृपण व्यक्तियों के समान अभावग्रस्त जीवन बिता रहे हैं । इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, ईश, वरुण, अग्नि और मरुत् के पद का अधिकार दानवगण द्वारा बलपूर्वक छीन जाकर स्वयं अपने आप भोगा जाता है । इसलिए आप हम लोगों के लिये उचित करने योग्य शुम्भको प्रकृतिस्थ रखने का मार्ग बताइए; दीन व्यक्तियों की विपत्ति में रक्षा करने में आपको छोड़ और कोई व्यक्ति समर्थ नहीं है" ॥२९-३४॥

इति श्रुत्वा शक्रवचो विधिः क्षणमचिन्तयत् । ततः प्राह सुरेशं तं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥३५॥
निशम्यतां देवपते यदत्राऽनन्तरं भवेत् । नेमौ वध्यौ विष्णुमुखैरपि पुंभिः कदाचन ॥३६॥
न योषिदपरा काचिदस्त्यस्य प्रतिविक्रमा । त्रिपुरां परमेशानीं प्रभवेत विनाऽत्र का ॥३७॥
तद्वयं हरिणा युक्ता हरेण च सुसंयताः । प्रसादयामस्तां देवीं जगद्यात्राप्रसिद्धये ॥३८॥
इत्युक्त्वा शिवविष्णुभ्यां देवैरपि युतो विधिः । गत्वा त्रिपथगातीरं हिमवच्छृङ्गमद्भुतम् ॥३९॥
प्रणताः परमेशानीं देवास्त्रिभुवनेश्वराः । बद्धाञ्जलिपुटा भक्त्या तुष्टुवुर्विश्वभावनीम् ॥४०॥
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥४१॥
इत्यादिविविधैः स्तोत्रैरस्तुवन् भक्तिभावनाः । अथ प्रसन्ना परमा त्रिपुरेशी महेश्वरी ॥४२॥
भवानीं प्राहिणोत्तत्र देवानां सुकृतेच्छया । एवं सा प्रहिता देव्या पार्वती सखिभिर्वृता ॥४३॥

इस प्रकार इन्द्र की बात सुनकर ब्रह्मा ने एक क्षण विचार किया लोकपितामह फिर देवराज से बोले, "हे देवपते ! जो इसके बाद होगा वह सुनो । ये दोनों दैत्य विष्णु आदि प्रमुख पुरुषों से कभी मारे जाने वाले नहीं हैं; न इस दैत्ययुगल के विपक्ष में प्रतिस्पर्धावाली समपराक्रमसम्पन्न अन्य स्त्री ही है । भगवती त्रिपुरा परमेशानी के विना और कौन इनसे सलटने में (नष्ट करने में) समर्थ हो सकता है ? ॥३५-३७॥

इसलिए हमलोग श्रीहरि और श्रीशङ्कर के सहित जगत् की सारी क्रियायें विना बाधाके भली प्रकार चलाने के लिए परमेशानी त्रिपुरा भगवती को खूब संयत मन से प्रसन्न करें ।" इस प्रकार कहकर शिव, विष्णु एवं देवगण सहित ब्रह्मा गङ्गा के तीर पर हिमवान् के अद्भुत शिखर पर जाकर त्रिभुवन के ईश्वरों ने परमेश्वरी विश्वजननी त्रिपुरा की नतमस्तक हो हाथ जोड़ कर विनम्र स्तुति की; वे बोले, "देवी को साष्टाङ्ग नमस्कार है, महादेवी को हमलोग प्रणाम करते हैं । सतत मङ्गलदायिनी शिवा को हमारा प्रणाम है । सृष्टिशक्तिरूपा प्रकृति को सादर प्रणाम है; स्थितिशक्ति रूपवाली भद्राको प्रणाम और हम सब लोग एकाग्र चित्तसे उस महाशक्तिको बार-बार प्रणाम करते हैं ।" इस प्रकार से भक्तियुक्त चित्त हो उन सबने नाना स्तोत्रों से भगवती की स्तुति की । अब भगवती परमा महेश्वरी त्रिपुरेशानी ने प्रसन्न हो देवगण के सुकृत की इच्छा (कल्याण-कामना) से भवानी को भेजा । इस प्रकार

ययौ स्नातुमिवाऽऽरात्तान् देवान् दृष्ट्वाऽऽब्रवीद्वचः। अविदन्तीव के यूयं किमर्थमिह सङ्गताः ॥४४॥
एवं पृष्टाः सुराः प्राहुः शुम्भैदैत्यनिराकृताः। वयं देवा इह प्राप्ता देवीं तां शरणाऽऽगताः ॥४५॥
श्रुत्वा पुनः प्राह गौरी भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का। इति चण्डक्रोधयुता ज्वलदग्निशिखोपमा ॥४६॥
भिन्ननीलमणिप्रख्या काली क्रोधेन साऽभवत्।
अथ तस्याः शरीरात्तु निर्गता त्रिपुरांऽशतः ॥४७॥
रूपमत्युत्तमं कृत्वा शक्तिः शुम्भवधेहया। प्राह गौरीं सुरगणैः स्तुताऽहं शुम्भपीडितैः ॥४८॥
नाशयिष्यामि तौ शुम्भनिशुम्भौ दानवेश्वरौ।
सहिताऽहं त्वया कालि देवानां प्रियकारिणि ॥४९॥
भाषन्तीमिति तां देवीं विधातृप्रमुखाः सुराः। उच्चैर्जयेति शब्देन वर्धयामासुरम्बिकाम् ॥५०॥
अथ ब्रह्मा प्राह परां स्तुत्वा नत्वा पुनः पुनः। पार्वत्याः क्रोधयुक्ताया देहाद्यस्मात्समुद्गता ॥५१॥
चण्डिकेति ततो लोके नाम तेऽस्तु महेश्वरि तन्मध्ये शुम्भदैत्यस्य मन्त्रिणावसुराऽधिपौ ॥५२॥

भेजी गई पार्वती अपनी सहेलियों के साथ तत्काल ही स्नान के लिए गई; चारों ओर उन देवगण को देख उन्हें न जानती हुई अपरिचित सी बोली, "तुम लोग कौन हो ? किसलिए यहाँ एकत्र हुए हो ?" ॥३८-४४॥

"इस प्रकार पूछने पर उन देवगण ने कहा, शुम्भ दैत्य से अपने यहां से निकाले हुए हम देवतालोग यहां उस दिव्यरूपा भगवती की शरणमें आये हैं।" सुन कर फिर गौरी बोली "आप किस की स्तुति करते हैं ?" इसप्रकार उग्र क्रोधवाली ज्वालासे प्रचण्ड जलती अग्निकी उठती हुई लपटों के समान तेजवाली, भिन्न नीलमणि की कान्तधारणकी हुई वह गौरी क्रोध से काली हो गई। अब उसके शरीर से त्रिपुराके अंशसे शुम्भके वध की इच्छा से अति उत्तम स्वरूप बनाई हुई शक्ति का आविर्भाव हुआ वह गौरी से बोली, "हे देवगण का प्रिय करने वाली कालिके ! शुम्भ के द्वारा त्रस्त देवगण द्वारा मेरीस्तुति की गई है; मैं उन दानवों के अधिपति शुम्भ और निशुम्भ को तेरे साथ मारूंगी।" इस प्रकार कहती हुई उस भगवती के प्रति विधाता, विष्णु और शंकर आदि देवगण ने जय-जयकार के ऊंचे घोष (से अम्बिका को साधुवाद दिये) बधाईयां दी ॥४५-५०॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा ने परा की बार-बार स्तुति कर उसे प्रणाम कर कहा, "हे महेश्वरि ! क्योंकि आप क्रोध-युक्त पार्वती के देह से निकली हैं इसलिए आपका नाम "चण्डिका" इसप्रकार लोक में प्रसिद्ध हो।" उसी समय में

चण्डमुण्डाविति ख्यातौ मृगयातत्परौ वने । जयशब्दं समाकर्ण्य तद्विज्ञातुं समागतौ ॥५३॥
दृष्ट्वा तावसुरावुग्रौ भीताः शक्रमुखाः सुराः । निलिल्युर्वृक्षखण्डेषु कन्दरेषु जलेषु च ॥५४॥
अथ चण्डः समालोक्य चण्डिकां लोकमोहिनीम् ।
मुण्डश्च कामसन्तप्तौ ग्रहीतुं तामुपेयतुः ॥५५॥
का त्वं पद्मपलाशाक्षि! वनेऽस्मिन् विजने स्थिता ।
मां वा ममाऽनुजं वाऽपि स्वीकुरुष्व यथेप्सितम् ॥५६॥
तारुण्यलावण्यपूर्णहृतं मे मानसं त्वया । ईक्षामात्रेण सर्वाङ्गसुन्दरि ! त्वमुपैहि माम् ॥५७॥
अहं त्रिभुवनेशस्य शुम्भस्याऽमात्य उत्तमः ।
मां भज प्रीतिसंयुक्ता नोचेन्नेष्यामि त्वां बलात् ॥५८॥
इत्युक्त्याऽभिससाराऽऽशु ग्रहीतुं तां करे द्रुतम् ।
तावत्काली चण्डिकया दृष्टा तौ जगृहे बलात् ॥५९॥
शिरो गृहीत्वा हस्ताभ्यां तयोः काली बलीयसी ।
घातयामास चाऽन्योन्यं ततस्तौ मूर्च्छितौ भुवि ॥६०॥

शुम्भ के दो मन्त्री चण्ड और मुण्ड नामक असुराधिपति वन में मृगया (शिकार) करने को उद्यत जय जयकार शब्द को सुन इसके सारे वृत्तान्त को जानने के लिए वहां आ गये। उन अत्यन्त प्रचण्ड दैत्यों को देखकर शक्र की प्रमुखता वाले देवगण डर कर वृक्षों, कन्दराओं और जल में जाकर छिप गये। अनन्तर लोकों को मोहित करनेवाली चण्डिका को देख कर चण्ड और मुण्ड दोनों ही कामवासनासे पीडित हो उसे ग्रहण करने को आगे बढ़े। "हे कमल-दल-लोचने ! इस निर्जन वनमें स्थित तू कौन है ? तेरी जैसी इच्छा हो वैसे ही तू मुझे अथवा मेरे छोटे भाई को स्वीकार कर ॥५१-५६॥

तैने अपने यौवन के सौन्दर्य द्वारा केवल देखने मात्र से ही मेरे मन को चुरा लिया है। हे सर्वाङ्गसुन्दरि ! तू मुझे प्राप्त हो जा। मैं त्रिभुवन के स्वामी शुम्भ का श्रेष्ठ मन्त्री हूँ। तू खूब प्रेम से मुझे वर ले; नहीं तो मैं तुझे बलात्कार से ले जाऊँगा।" इस प्रकार कहकर वह शीघ्र ही हाथ से पकड़ने को चला ही था कि काली ने चण्डिका के देखनेमात्रसे उन दोनों को तत्क्षण बलपूर्वक पकड़ लिया। उन दोनों के शिरों को अतिशय बलवती काली ने हाथसे पकड़कर एक दूसरे के साथ भिड़ा दिया। तदनन्तर वे दोनों ही फूटे शिरसे भूतल पर खून बहाते मूर्च्छित हो गिर पड़े।

पेततुर्भिन्नमूर्धाना शोणितोक्षितभूतले । प्राह देवी कालिकेमौ हन्तव्यौ न कथञ्चन ॥६१॥
प्रवृत्तिं प्राप्य चैताभ्यां तावुभावागमिष्यतः । अथ तौ मूर्च्छया मुक्तौ लज्जितौ भयकातरौ ॥६२॥
अपसृत्य ततः शुम्भं समेत्य प्राहतुर्नतौ । महाराजाऽसुरपते ! काऽपि त्रैलोक्यसुन्दरी ॥६३॥
प्रालेयाद्रिं समाश्रित्य दीपयन्ती दिशः स्थिता।
मन्यावहे स्त्रीषु रत्नभूतां तां सर्वतोऽधिकाम् ॥६४॥
उर्वशी पूर्वचित्तिश्च रम्भा चाऽपि तिलोतमा ।
मेनका च त्वां भजन्ति सदेमा मिलिता अपि ॥६५॥
तस्याः पादनखस्याऽपि सौन्दर्यस्य कलासमाः। भवेयुर्न भवेयुर्वा इति मे निश्चिता मतिः ॥६६॥
शचीलक्ष्मीमुखाभिः सा सेव्यमाना मनोहरा। तां विना ते त्रिजगतीविभुत्वं व्यर्थतामियात्॥६७॥
सर्वलोकपतिस्त्वञ्चेद्रत्नभूतामपीदृशीम् । नाऽऽसादयसि तन्नैव जीवितं सफलं भवेत् ॥६८॥
आवाभ्यां तां समादातुं त्वदर्थं प्रसमीहितम् ।
यावत्तावत्तस्य काचित् काली विकटरूपिणी ॥६९॥

तब कालिका देवी ने कहा, "इन दोनों को किसी प्रकार भी न मारो और इन से मेरे लिये प्रेरणा पाकर वे दोनों दैत्य शुम्भ निशुम्भ यहां आवेंगे" ॥५७-६१॥

अनन्तर मूर्च्छा छूट जाने पर वे दोनों लज्जित और भयकातर हो वहां से चलकर शुम्भ के पास आकर सिर नवाकर बोले "हे असुरों के स्वामी महाराज ! में हिमालय कोई अज्ञात त्रैलोक्यसुन्दरी अपनी दीप्तिसे सब दिशाओं को प्रकाशित करती हुई स्थित है। हमारी मान्यता है कि वह स्त्रियों में रत्नभूता सबसे अधिक श्रेष्ठ ललना है (अत्यधिक सुन्दर रमणी है)। उर्वशी, पूर्वचित्ति, रम्भा, तिलोत्तमा और मेनका आपकी सदा ही सेवा करती हैं परन्तु ये सब मिलकर भी उसके पैरों के नख के सौन्दर्य की कला के समान भी पासङ्ग में रहें या न रहें यह हमारी निश्चित धारणा है। उस मनोहर स्वरूपवाली स्त्री की शची (इन्द्राणी) और लक्ष्मी जैसी प्रमुख देवियों द्वारा सेवा की जाती है उसके विना आपका तीनों लोकों पर प्रभुत्व ही व्यर्थ हो जायगा ॥६२-६७॥

सम्पूर्ण लोकों के अधिपति आप हैं और ऐसी रत्नभूता ललनाललाम को आप नहीं प्राप्त करते हैं तो जीवन सफल नहीं (कहा जा सकता) है। हम दोनों ने आपके लिये उस सुन्दरी को जैसे ही लाने की चेष्टा की। वैसे ही विकटरूपवाली किसी काली ने आकर हम लोगों को बलात् पकड़ लिया, उससे हमने किसी प्रकार छुटकारा पा

प्रेष्याऽऽवां जगृहे क्षिप्रं लीलयेव बलीयसी। तस्याः कथञ्चिन्निर्मुक्तौ पश्य भिन्नं शिरो मम ॥७०॥
अद्य ते निहतो दर्पः स्त्रिया प्रतिहतो बत। पुनस्तां कालिकां हत्वा प्राप्य तां लोकसुन्दरीम् ॥७१॥
प्रवर्तय प्रतिहतां कीर्तिमाश्वसुरेश्वर। एवं तयोर्वचः श्रुत्वा शुम्भः कामातुरोऽभवत् ॥७२॥
आहूय दूतं सुग्रीवं प्रेषयामास तां प्रति। दूत काचिद्धिमगिरावबला लोकसुन्दरी ॥७३॥
आस्ते तां सर्वथोपायैरानेतुं त्वमिहाऽर्हसि। यद्युपायैस्त्रिभिश्चाऽपि मत्पार्श्वं नोपयास्यति॥७४॥
आनयामोऽथ तुर्येण गच्छ शीघ्रं सुसाधय। अथ तत्र ययौ दूतस्तां ददर्श च संस्थिताम् ॥७५॥
प्रणम्य प्राह देवि त्वामाह त्रिजगतीश्वरः। शुम्भाऽसुरो रत्नभूतां मत्वा त्वां स्त्रीषु सर्वतः ॥७६॥
अहं हि सर्वरत्नानां पतिस्तस्माद्भजस्व माम्। साम्येन नोचेद्वैषम्यं प्राप्ताऽप्येष्यसि मद्वशम्॥७७॥
का त्वं कस्य कुतो भूता किं चिकीर्षसि भामिनि। ब्रूहि सर्वमशेषेण जिज्ञासत्यसुरेश्वरः ॥७८॥
अथाऽऽह देवी तं दूतं सस्मयं मृदुभाषिणी। अहं चण्डीति विख्याता नाऽन्यस्याऽद्यावधि क्वचित्।७९।

लिया। देखिए, फूटा हुआ मेरा शिर। अहो ! खेद है कि आज आपका दर्प (घमण्ड) क्षीण हो गया और उसका मर्दन भी किसी स्त्री ने किया। हे असुरेश्वर ! फिर उस काली को मारकर तथा लोकसुन्दरी को पाकर आप अपनी खोई हुई कीर्त्ति को फिर से पाने में शीघ्रता करें।" इस प्रकार उन दोनों की वार्ता सुन कर दैत्यराज शुम्भ कामवासना से आतुर हो गया ॥६८-७२॥

अपने दूत सुग्रीव को बुला कर उसके पास इस प्रकार सन्देश देकर भेजा, "हे दूत ! हिमगिरि पर कोई लोकसुन्दरी अबला है, उसे तू साम, दान, दण्ड आदि किसी भी उपाय से यहां ले आ। यदि वह तीनों उपायों से मेरे पास नहीं आवेगी तो हम चौथे उपाय, भेदसे ले आवेंगे। अब शीघ्र जा और कार्यको बना।" तदनन्तर वह दूत वहां गया और हिमालय के शिखर पर उसे स्थित देख प्रणाम कर बोला, "हे देवि ! त्रिलोकी के ईश्वर शुम्भासुर ने तुम्हें सब स्त्रियों में रत्नभूता समझ कर यह सन्देश भेजा है। "मैं सब रत्नों का अधिपति (मालिक) हूँ, इस लिए मेरे पास आजा। यदि तू सौम्यरूप से आती है तो ठीक है, नहीं तो विषमता (कठिनाई) से भी मेरे वश में आजायेगी। हे भामिनि ! तू कौन है ? किसकी बेटी है ? क्यों उत्पन्न हुई है ? और क्या करना चाहती है ? इस सबको पूर्णरूप से बता। असुराधिपति शुम्भ इसे जानना चाहता है" ॥७३-७८॥

तदनन्तर स्वभावसे ही मृदु वचन बोलनेवाली देवी ने हँसते हुए दूतसे कहा, "मैं चण्डी नामसे विख्यात हूँ, कहीं पर किसी से भी उत्पन्न नहीं हूँ; मैं प्रकृति से देवताओं के द्वेषी असुरों को मारने के लिए अवतीर्ण हुई हूँ। संग्राममें

निसर्गतोऽथ सम्प्राप्ता हन्तुं देवद्विषो ननु । संग्रामे ह्यजिता न स्यां वशे कस्याऽपि कुत्रचित् ॥८०॥
ब्रूहि गत्वा सुरपतिं जित्वा नयतु मां वशम् । दूतस्तयेत्थमादिष्टः शुम्भाय प्रतिवेदयत् ॥८१॥
श्रुत्वा शुम्भः प्रकुपितः पार्श्वस्थं धूम्रलोचनम् । समादिशत् प्रयाहीति गत्वा जित्वा च तां लघु ॥८२॥
बद्ध्वा समानय क्षिप्रमित्युक्तो धूम्रलोचनः । दैत्यसेनापरिवृतः प्रययौ योद्धुमम्बिकाम् ॥८३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे चण्डिकाचरिते त्रिदेवैःसह देवराजादिभिः प्रार्थनया त्रिपुरानुग्रहेण गौर्याद्याविर्भावपुरःसरं चण्डमुण्डयोः काल्या शिरोभञ्जनं तद्वृत्त-सूचनया शम्भस्य पूर्वं सुग्रीवदूतप्रेषणं देव्याअजेयत्वसम्वादश्रवणमनु तत्पराजयार्थं धूम्रलोचनस्य च प्रेषणं नाम द्विचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥३४५६॥

मुझे कोई हरा नहीं सकता, कहीं पर भी किसी के वश में नहीं हूँ । असुरपति को जाकर बोल दे कि जीत कर मुझे वशमें कर ले ।" इसप्रकार देवी द्वारा दूत को कहने पर वह शुम्भ से जाकर सब वर्णन कर आया । यह सुन शुम्भ बहुत क्रुद्ध हुआ अपने निकट खड़े धूम्रलोचनको उसने आदेश दिया, "तू जा और शीघ्र ही उसे जीत कर ले आ ऐसे नहीं आवे तो बलपूर्वक बांध कर ही सही ।" इस प्रकार कहे जाने पर धूम्रलोचन दैत्य सेना को साथ लेकर अम्बिका से युद्ध करने चला गया ॥७६-८३॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासश्रेष्ठ त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में भगवती चण्डिका के माहात्म्य में गौरी की आज्ञा से काली द्वारा चण्ड और मुण्ड का शिरोभञ्जन और उस घटना से क्रुद्ध शुम्भ का सुग्रीव को भेज सन्देश कहलाना प्रत्युत्तर में देवी की अजेयता सुन गौरी को बांधकर पकड़लाने को दैत्यसेना समेत धूम्रलोचन को भेजने के वर्णन विषयक नामक बयालीसवां अध्याय समाप्त ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

धूम्रलोचनचण्डमुण्डरक्तबीजरक्षसां वधमनु देवीपराजयार्थं क्रुद्धस्य शुम्भस्य स्वसेनया समागमनवर्णनम्

आसाद्य तां धूम्रनेत्रो दैत्यसेनासमावृतः । ववर्ष शरवर्षेण प्राह देवीं रुषाऽन्वितः ॥१॥
मूढे दैत्येश्वरं याहि दैत्यैः सम्मानिता द्रुतम् । नोचेद्बद्धा यास्यसि त्वं मानहीना मया द्रुतम् ॥२॥
सेनापतेर्वचः श्रुत्वा सस्मयं प्राह चण्डिका । नय मामबलां दैत्य जित्वा युद्धेन मा चिरम् ॥३॥
इत्युक्त्वा शरवर्षेण ववर्षाऽसुरपुङ्गवम् । अथ देवाः समालोक्य भूमिष्ठां चण्डिकां पराम् ॥४॥
रथस्थं धूम्रनेत्रञ्च विषमं बुबुधुस्ततः । वाहनार्थे हरिं देवाः प्रार्थयामासुरञ्जसा ॥५॥
अथ विष्णुर्मृगपतिर्भूत्वा पर्वतसन्निभः । अवहच्चण्डिकां युद्धे त्रासयन् दैत्यमण्डलम् ॥६॥
अथ युद्ध्वाऽचिरं देव्या धूम्राक्षो दैत्यनायकः । समुत्पतद्ग्रहीतुं तां करेण द्रुतमम्बिकाम् ॥७॥

तैंतालीसवां अध्याय

दैत्यसेना के साथ धूम्रनेत्र भगवती के पास आकर बाणों की वर्षा की और क्रोध से बोला। "हे मूढ़े! तू शीघ्र ही दैत्यों द्वारा सम्मानित हो कर दैत्यों के ईश्वर के पास चल, नहीं तो मैं तुझे मानहीन बना उसके पास बांध कर ले जाऊँगा। सेनापति की बात सुन कर मन्दमुस्कान करती हुई चण्डिका बोली, "हे दैत्य तू मुझ अबला को शीघ्र युद्ध में जीत कर ले जा।" इस प्रकार कह कर भगवती ने असुरश्रेष्ठ पर बाणों की वर्षा की। अनन्तर देवताओं ने पराभगवती चण्डिका को भूमि पर खड़ी हुई और धूम्रनेत्र को रथ में आरूढ देख इसे अनुचित समझा; उन्होंने तत्क्षण (देवी के) वाहन के लिए भगवान् विष्णु की प्रार्थना की ॥१-५॥

अब विष्णु पर्वत के आकार का विशाल सिंह बन समराङ्गण में दैत्य लोगों के मण्डल को त्रस्त करता हुआ चण्डिका को अपने ऊपर चढ़ा कर ले चला। तदनन्तर दैत्यसेनापति धूम्राक्ष कुछ समय तक भगवती के साथ युद्ध कर अति शीघ्र वेगपूर्वक उसे हाथ से पकड़ने के लिए झपटा ॥६-७॥

दृष्ट्वाऽऽयान्तं धूम्रनेत्रं हुङ्कारमकरोत् परा । हुङ्कारसहनिर्गच्छद्वक्त्रज्वालापरीवृतः ॥८॥
पतङ्गवद्भस्मशेषीभवत् स निमिषाऽर्धतः । अथ सेनां दैत्यपतेरुद्वेलमिव सागरम् ॥९॥
शासयामास निमिषाद्धरिर्हरिवपुर्धरः । अथ श्रुत्वा हतं सैन्यं शुम्भो धूम्राक्षसंयुतम् ॥१०॥
क्रुद्धः प्राह पार्श्वगतौ चण्डमुण्डौ महाऽसुरौ ।
युवाभ्यामविलम्बं सा ससेनाभ्यां विजित्य तु ॥११॥
समानेया हरिं तञ्च बद्ध्वा हत्वाऽपि वा भृशम् ।
आनीयतामिति तदा श्रुत्वा शुम्भस्य भाषितम् ॥१२॥
भीतौ तावाहतुः शुम्भं महाराज वचः शृणु । आवाभ्यां न विजेया सा सर्वथाऽसुरभूपते ॥१३॥
यतो हतो धूम्रचक्षुर्निमेषाद्देवतापनः । सन्धिर्हि रोचते मेऽत्र बलीयस्यां विशेषतः ॥१४॥
श्रुत्वा तयोरिति वचः क्रुद्धः शुम्भोऽब्रवीत्तु तौ ।
उद्भाव्य विग्रहं भूयो युवां सन्धिं समीहतः ॥१५॥
कातर्यमूलमेतद्वां मत्पिण्डस्याऽविनिर्जयम् । शङ्के पक्षान्तरगतावित्यपीह मनीषया ॥१६॥

परा चण्डिका ने धूम्रनेत्र को आते देखकर हुङ्कार की। हुङ्कार के साथ ही देवी के मुख से निकली अग्नि की ज्वाला से घिरा हुआ वह धूम्रनेत्र आधी निमेष में ही पतङ्ग के समान जल कर राख हो गया। बाद में दैत्यराज की सेना में समुद्र की उत्ताल तरङ्गों के समान भारी हड़कम्प मची जिसे पर्वतशरीरधारी श्रीविष्णुने निमिष में ही अपने अधिकार में कर लिया। इस घटना के अनन्तर शुम्भ ने धूम्राक्ष के सहित सेना को नाश सुन अत्यन्त क्रुद्ध होकर पासमें खड़े चण्ड और मुण्ड महासुरोंसे कहा, "तुम दोनों ही बिना विलम्ब अपनीसेनाओंके सहित उस स्त्री को जीत कर ले आओ और उस विष्णु को चाहे बांध कर अथवा मार कर जिस प्रकार तुम्हें ठीक लगे पकड़ लाओ।" इस प्रकार शुम्भ का कथन सुनकर भय से डरे हुए उन दोनों ने दैत्यराज से कहा, "हे महाराज ! हमारी बात सुनिये, हे असुरराज ! वह हम दोनों से जीती नहीं जायगी क्यों कि उसके द्वारा देवताओं को कष्ट देने वाला धूम्रनेत्र एक पल में ही मारा गया। विशेष रूपसे ऐसे समय जब प्रतिपक्ष में कोई ऐसी बलशालिनी शक्ति हो तोह में इसमें सन्धि करना ठीक जचता है।" उन दोनों के प्रस्ताव को सुन कर शुम्भ ने क्रुद्ध होकर कहा, "पहले युद्ध आरम्भ कर अब फिर तुम सन्धि करना चाहते हो यह सब तुम्हारी कायरता का चिन्ह है। मेरे शरीर की पराजय कभी हो ही नहीं सकती। मुझे शङ्का होती है कि तुम लोग अपनी बुद्धि से शत्रु के पक्ष के बन गये हो" ॥८-१६॥

श्रुत्वा शुम्भवचश्चण्डो मुण्डश्चाऽपि विनिर्ययौ। विपर्ययाऽवसायं तं ज्ञात्वाऽपचितिमात्मनः ॥१७॥
महत्या सेनया युक्तौ चण्डमुण्डौ समागतौ। ददृशतुः सिंहसंस्थां मेरुशृङ्गस्थसूर्यवत् ॥१८॥
तां समादातुमुद्युक्तौ दैत्यसेनासमावृतौ। क्षिपन्तौ शस्त्रजालानि ततश्चुक्रोध चण्डिका ॥१९॥
क्रोधभ्रूकुटिकाऽऽज्ञप्ता काली सा भीमरूपिणी।
दैत्यसेनां समासाद्याऽसुरान् सर्वानभक्षयत् ॥२०॥
विनाश्याऽसुरसेनां सा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
छित्त्वा खड्गेन चादाय चण्डिकायै निवेदयत् ॥२१॥
अथ तौ निहतौ ज्ञात्वा शुम्भः क्रोधसमाकुलः। सर्वसैन्यसमायुक्तो निशुम्भाद्यैश्च संयुतः ॥२२॥
योद्धुमभ्याययौ देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्। देवी समीक्षत तदा सैन्यमसुरभूपतेः ॥२३॥
अपारं सागरमिव रथोत्तुङ्गतरङ्गकम्। नृत्यत्तुरङ्गभङ्गाढ्यं गजग्राहसमाकुलम् ॥२४॥
खेटकूर्मयुतं वेल्लत्करवालतिमिङ्गिलम्। श्वेतच्छत्रमहाफेनं महावादित्रनिस्वनम् ॥२५॥

शुम्भ का वचन सुन कर चण्ड और मुण्ड दोनों ही चले गए, उन्होंने यदि कोई विपरीत बात हो गई तो अपना अपमान होगा यह निश्चय कर बहुत विशाल सेना लेकर (भगवती से लड़ने आ गये) सिंह पर आरूढ़ चण्डिका को मेरु के शिखर पर विराजमान सूर्य के समान देखा। दैत्य सेना से युक्त वे दोनों उसे पकड़ने को तैयार हो शस्त्रों का जाल चलाने लगे तब चण्डिका ने क्रोध किया। क्रोध की भौंहें करने के इङ्गितमात्र से आज्ञा पाकर भयानकरूपवाली काली ने दैत्यसेना में जाकर सब असुरों को खा डाला ॥१७-२०॥

असुर सेना को नष्ट कर वह महादैत्य चण्ड और मुण्ड को तलवार से काट कर चण्डिका के सामने ले आई। उन दोनों चण्ड और मुण्ड की मृत्यु का वृत्तान्त जान कर अत्यन्त क्रुद्ध शुम्भ सारी सेना को लेकर निशुम्भ आदि के साथ तुहिनाचल (हिमालय) में स्थित देवी से लड़ने को आया। देवी ने असुरराज की सेना देखी। ऐसा लगता था मानों अपार सागर लहराता हो जिसमें रथों की पंक्तियां ही उठती हुई उत्ताल तरंगे हैं; नाचते हुए घोड़े बीच-बीच में लहरों में भंवरसे दीखते हैं, वहां हाथी ही ग्राह बने हुए हैं। दैत्यवीरों की ढालें (खेट) कछुवे हैं, चमकती तलवारें ही

गजघण्टाझणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम् । एवं सेनामपारां तां दृष्ट्वा देवीं सुरास्तदा ॥२६॥
एकाकिनीं चिन्तयानाः कथमेतद्भवेदिति । ज्ञात्वा विषादं देवानामसृजन्मातृकागणम् ॥२७॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वैष्णवी शिखिवाहिनी । वाराही नारसिंही चाऽऽग्नेयी चैव वारुणी॥२८॥
एवं सुरेशशक्तीस्ताः शक्तिसङ्घसमावृताः । तत्तद्देवसमाकारा ययुर्वस्त्रायुधोज्ज्वलाः ॥२९॥
असङ्ख्यं तच्छक्तिसैन्यमसुरानभिसंययौ । तयोः समभवद्युद्धं सेनयोरुभयोरपि ॥३०॥
खड्गैः परश्वधैर्भिन्दिपालैः परशुपट्टिशैः । त्रिशूलचक्रपरिघदण्डतोमरमुद्गरैः ॥३१॥
अन्यैरुच्चावचाकारैरायुधैस्तुमुलो रणः । अभवच्छक्तिसेनाभिरसुराणां भयङ्करः ॥३२॥
असृङ्मय्यो ववुर्नद्यः फेनिला भीरुभीतिदाः । तदन्तरे दैत्यसैन्यं दृष्ट्वा क्षीणन्तु शक्तिभिः॥३३॥
रक्तबीजाभिधो दैत्यो योद्धुमभ्याययौ रणे । युयोध शक्तिसेनाभिः स दैत्यो रक्तबीजकः॥३४॥

तिमिङ्गल-बड़ी मछलियां हैं। श्वेत छत्र ही जल के फेन (झाग) हैं, बड़े २ युद्ध के बाजों का ध्वनिशब्द ही समुद्र की गर्जना है। हाथियों के घण्टों की झङ्कार से सब ओर की दिशाओं को बधिर (बहरा) बना दिया गया है। इस प्रकार अपार सेना को एक तरफ और दूसरी ओर अकेली देवी को देखकर देवगण चिन्ता करने लगे कि यह कैसे इस युद्ध में विजय पावेगी। इस तरह देवगण के विषाद का कारण जान कर भगवती ने मातृकागण की रचना की ॥२१-२७॥

ब्राह्मी, माहेश्वरी, ऐन्द्री, वैष्णवी, शिखिवाहिनी, वाराही, नारसिंही, आग्नेयी और वारुणी, इसप्रकार सुरेश्वरों की ये शक्तियां शक्तिसंघ से युक्त हो उन-उन देवों का ही आकार धारणकी हुई उनके ही जैसे वस्त्र एवं समान आयुधों से सुशोभित थीं। वह असंख्य शक्तियों की सेना असुरों की ओर लपकी। उन दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ। असुर लोगों का शक्ति की सेनाओं के साथ तलवारों परश्वध, भिन्दिपाल (गुफाना) फरसा, पट्टिश, (तीक्ष्ण नोंकों का भाला), त्रिशूल, चक्र, परिघ (मूठ), दण्ड, तोमर (बर्छी, सांग) और मुद्गर एवं आकाश में ऊंचे फेंके जाने और नीचे भूमि पर प्रहार करने योग्य आयुधों से तुमुल युद्ध हुआ ॥२८-३२॥

(इस भयङ्कर युद्ध के परिणामस्वरूप) रक्तमयी नदियां बहुत अधिक फेनयुक्त हो बहने लगीं, जिन्हें देख कर भीरु लोग डर के मारे भागने लगे। इसके अनन्तर शक्तियों के साथ युद्ध करती हुई दैत्य सेना के बलका ह्रास देख कर

युध्यतस्तस्य रुधिरबिन्दवस्तत्र भूतले । यावन्तः पतितास्तेभ्यः पुरुषा वीर्यवत्तराः ॥३५॥
तत्समा अभवन्नन्ये तेभ्यश्चान्ये ततोऽपरे । रक्तबीजसमाः सर्वे रूपबुद्धिपराक्रमैः ॥३६॥
अनेकाऽर्बुदसंख्यातैर्व्याप्तं तैः सर्वभूतलम् । दृष्ट्वैतदद्भुतं देवा भीताः किन्नु भवेदिति ॥३७॥
अथ सा चण्डिका दृष्ट्वा रक्तबीजसमुद्भवम् । कालीं पार्श्वस्थितां प्राह युक्तियुक्ततरं वचः ॥३८॥
कालिके विस्तृतं वक्त्रं कृत्वाऽस्रङ्कृतसम्भवम् । रक्तबीजस्य समरे भक्षती चर सर्वतः ॥३९॥
तथेति सा विस्तृताऽऽस्या चरमाणा रणाऽजिरे ।
भक्षयन्ती शोणितानि दैत्यानां त्रासकारिणी ॥४०॥
एवं तस्यां भक्षयन्त्यां क्षयं जग्मुर्महाऽसुराः । मातृकाशस्त्रसंछिन्नाः क्षीणरक्ताश्च भूयशः ॥४१॥
एवं नष्टे रक्तबीजे निशुम्भो दैत्यशेखरः । योद्धुमभ्याययौ देवीं चण्डिकामसुरैर्वृतः ॥४२॥
शरवर्षं ववर्षोच्चैश्चण्डिकां प्रति कोपितः । अथ साऽनाशयच्छीघ्रं तं वर्षं प्रतिवर्षतः ॥४३॥

रक्तबीज नामक दैत्य युद्धमें लड़नेके लिए आया । वह रक्तबीज शक्ति दैत्य सेनाओं के साथ लड़ा । युद्ध करते हुए उसके शरीर से जितने रक्तकी बूंदें पड़तीं उनसे और अत्यधिक बली उसके समान ही राक्षसगण उत्पन्न हो जाते और उनके रक्तके बिन्दुओं से अन्य स्वरूपों, बुद्धि और वीरतामें पूर्ण सभी रक्तबीजके समान और उससे भी अधिक बलशाली राक्षस उत्पन्न होते गए । अनेक अरबों की संख्यामें उन रक्तबीज के बिन्दुओं से बने दैत्यों से सम्पूर्ण भूमण्डल छा गया इस अद्भुत वृत्तान्त को देखकर देवगण डरे कि अब क्या उपाय हो । अनन्तर चण्डिका ने रक्तबीज के रक्त की बूदों से बने दैत्यों की सैन्य को देख पास में खड़ी कालो को युक्ति-युक्त वाणी में कहा, ॥३३-३८॥

"हे कालिके ! रक्तबीज के रक्त के पड़ने से उत्पन्न हुए इस दैत्यसैन्य को युद्ध में खाती हुई सब ओर घूम आ ।" "ऐसा ही होगा" यह कहकर वह अपना मुंह खोले युद्धक्षेत्रमें दैत्यों के खून को पीती हुई उन्हें त्रासदेने-वाली वह काली फिरने लगी । इसप्रकार विपक्षयों को उसके खा लेने पर सभी महाअसुरगण क्षय को प्राप्त हो गये । वे क्रमशः मातृकाओं के शस्त्रों से नष्ट हुए और बारम्बार काली के रक्त पीने से बार-बार क्षीणरक्त हो गये । इस प्रकार रक्तबीज के नष्ट होने पर दैत्यशेखर निशुम्भ देवी से लड़ने के लिए अपने प्रधान असुरों सहित आया । उसने अत्यन्त कोप से चण्डिका को लक्ष्य कर बाणों की प्रचण्ड वर्षा की उसे भगवती ने प्रतिरोधी शस्त्रों से शीघ्र नष्ट कर डाला ॥३९-४३॥

शक्तिभिर्दैत्यसेना च युयोधाऽतिबलीयसी । शक्तिभिर्मृगराजेन काल्या च निहतां चमूम् ॥४४॥
दृष्ट्वा निशुम्भः सङ्क्रुद्धः चण्डिकाऽभिमुखो ययौ ।
अथाऽऽयान्तं दैत्यपतिं शस्त्रवर्षैरवाकिरत् ॥४५॥
अस्तं तं शस्त्रवर्षेण दैत्या हाहेति चुक्रुशुः । क्षणेन शस्त्रवर्षन्तं विधूय शरवर्षतः ॥४६॥
निर्जगाम शस्त्रमेघात् निशुम्भो दिनकृद्यथा ।
अथ देव्यै प्रचिक्षेप शक्तिं सर्वाऽऽयसीं क्रुधा ॥४७॥
तां मध्ये सायकैस्त्रेधा चिच्छेद चण्डिकाऽम्बरे । परिघं परशुं शूलं गदां प्रासादिकं तथा ॥४८॥
क्षिप्रं क्षिप्तं निशुम्भेन चिच्छेद सायकैर्मुहुः । अथ खड्गं समादाय निशुम्भश्चण्डिकां प्रति ॥४९॥
अभ्यधावदतिक्रोधात्तिष्ठ तिष्ठेति तां वदन् । देवीसमीपं सम्प्राप्तं कालान्तकयमोपमम् ॥५०॥
दृष्ट्वा बिभ्युर्देवगणाः स्वस्तीत्याहुर्महर्षयः । तदन्तरे समायातं बलेनाऽऽक्रम्य तं परा ॥५१॥
खड्गेनाऽभ्यहरत्तस्य मस्तकं निमिषाऽर्धतः ।
अथ सिंहः कालिका च शक्तयो दैत्यवाहिनीम् ॥५२॥

अति बलवान् दैत्यों की उस सेना ने शक्तियों से युद्ध किया। देवी, शक्तियों, सिंह और काली द्वारा अपनी सेना को मारते तथा नष्ट करते देख शुम्भ अति क्रोध से चण्डिका के सामने आया। अब आये हुये दैत्यपति पर चण्डिका ने शस्त्रों की प्रभूत वर्षा की। शस्त्रों की वर्षासे घिरे दैत्यराजको देख दैत्यगण हाहाकार करने लगे। एक क्षणमात्र में ही उस शस्त्रवर्षा को अपने शस्त्रों से काट कर निशुम्भ देवी के शस्त्रोंरूपी बादलों से सूर्य के समान निकल आया। उसने क्रोध करके देवी को लक्ष्य कर लौहमयी शक्ति छोड़ी ॥४४-४७॥

उसे भगवती चण्डिका ने बीच में आकाश में ही तीन स्थानों पर टुकड़े-टुकड़े कर छिन्न-भिन्न कर दिया। परिघ (मूठ) परशु, शूल, गदा और प्रासोदिक (भाला) जो निशुम्भने चलाए थे उन्हें बारम्बार प्रतिषेधक प्रत्यस्त्रों से देवी ने नष्टकर दिया। अब निशुम्भ हाथमें खड्ग लेकर चण्डिका की ओर क्रोध से लाल आंखें कर दौड़ा उसे "ठहर-ठहर" कहता हुआ मृत्युकारी भय के समान देवी के समीप आ गया। उसे इस प्रकार (भीषण आकृति धारण किए) देख देवगण बहुत डरे एवं महर्षिगणने देवी के प्रति 'स्वस्ति' कल्याणपूर्ण वचन कहे। उसके बाद पराम्बाने उसे आते

चक्रुर्निःशेषितां क्रोधान्मुहूर्तेन समन्ततः । शुम्भो निशम्य निहतं भ्रातरं खिन्नमानसः ॥५३॥
सेनां तथा विनिहतां रोषमाहारयत् परम् । सिंहं जघान खड्गेन मूर्ध्नि शुम्भोऽसुरेश्वरः ॥५४॥
युद्ध्वा चिरं शक्तिभिश्च कालिकामभिसंययौ । तया समभवद्युद्धं शुम्भस्य परमाद्भुतम् ॥५५॥
शस्त्राभिज्ञत्वतस्तस्य बलेन विक्रमेण च । लाघवेनाऽपि सा काली विस्मयं परमं गता ॥५६॥
देवाश्च ऋषयः सर्वे साधु साध्वित्यपूजयन् । दृष्ट्वा तं चण्डिकाऽत्युग्रं धृत्या विक्रमणेन च ॥५७॥
अतिक्रमन्तं तां कालीमाससादाऽसुरेश्वरम् ।
आयान्तीं चण्डिकां दृष्ट्वा हसन्नुच्चैरुवाच ताम् ॥५८॥
शृणु दुष्टे यदि मया युद्धश्रद्धा तवाऽस्ति चेत् । तिष्ठन्त्विमाः सर्वतस्ते मुहूर्तं पश्य मे बलम् ॥५९॥
स्त्रीषु कारुणिको भाव इति मे समुपेक्षिताः । अतस्त्वमेका समरे मां प्राप्य न भविष्यति ॥६०॥
श्रुत्वेत्थं दानववचो विनिवर्त्याऽखिला अपि । सिंहाधिपं समारूढा शुम्भेन युयुधे मृधे ॥६१॥

देख अतिपराक्रम से युद्ध कर एक आधे निमिष में ही खड्ग से उसका मस्तक काट दिया। उसके अनन्तर सिंह, काली और शक्तियों ने चारों ओर खड़ी दैत्य सेनाको क्रुद्ध होकर एक मुहूर्त भर में ही मार गिराया। शुम्भ अपने भाई को मरा देख बहुत खिन्न हुआ साथ ही सेना को नष्ट सुनकर अत्यधिक क्रुद्ध भी। असुरेश्वर शुम्भने सिंहको शिर के उपरितन भाग पर खूब जोर से प्रहार किया॥४८-५४॥

बहुत दीर्घ समय तक शक्तियों से युद्धकर वह कालिका के सामने गया। भगवती काली से शुम्भ का अत्यन्त विलक्षण युद्ध हुआ। उसके शस्त्र-अस्त्रों के चलाने की पूर्णदक्षतावाले ज्ञानसे, बल और पराक्रम तथा युद्ध कौशलसे भी काली बहुत अधिक विस्मय करने लगी। सभी देवगण और ऋषियों ने साधु-साधु इस प्रकार कह दैत्य की भगवती के साथ प्रशंसा की। चण्डिकाने उस दैत्य को धैर्य और विक्रमसे अत्यन्त उग्र देख जब वह आक्रमण करने को उद्यत हुआ तो उसके पास प्रयाण किया। आती हुई चण्डिका को देखकर हंसते हुए उसने जोर से पुकारा, "हे दुष्टे! सुन, यदि मेरे साथ युद्ध करने की तेरी शक्ति है तो एक क्षण तक ये शक्तियां यथावत् खड़ी रहें और फिर मेरा बल देख॥५५-५९॥

स्त्रियों के प्रति सदा ही करुणाका भाव रहना चाहिए इसलिए मैंने अब तक तेरी उपेक्षाकी। अतः युद्धमें मेरे साथ अकेली सामने आ; फिर देखेगी कि यह युद्ध ही नहीं होगा।" इस प्रकार महादानवराज की वाणी सुन कर गौरी देवी ने अपनी सभी शक्तियों को लौटा समेट लिया और अकेली ही वह सिंहराज पर चढ़कर शुम्भ के साथ

शरनीहारसंछन्नां चक्रे तां क्षणमात्रतः । शुम्भबाणाब्धिनिर्मग्नां दृष्ट्वा देवीं सुरेश्वराः ॥६२॥
हा हेति चुक्रुशुर्भीत्या जहृषुर्दैत्यसैनिकाः । प्रशशंसुः साधुशब्दैर्जयशब्दैरवर्धयन् ॥६३॥
तदन्तरे चण्डिकाऽपि वातैरिव शरोत्करैः । निर्भिद्य शरनीहारमुद्गच्छद्भानुमानिव ॥६४॥
उद्गतामस्त्रजालेन भूयो भूयः समाक्षिपत् ।
साऽपि प्रत्यस्त्रतो भूयो निरस्याऽस्त्राणि सम्बभौ ॥६५॥
अथ तामजयामस्त्रैर्मत्वा शुम्भः प्रतापवान् ।
उत्पत्याऽऽदाय तां देवीमाक्रमद्गगनाऽन्तरम् ॥६६॥
अथ तां दैत्यराजेन हृतां दृष्ट्वाऽमरेश्वराः । दुःखिता अस्तुवन्नाद्यां त्रिपुरां परमेश्वरीम् ॥६७॥
स दैत्यस्तां समादाय ययौ निमिषमात्रतः । योजनानां सहस्राणि दशसप्तत्रयोदश ॥६८॥
यान्तं गृहीत्वा स्वात्मानं चण्डिकाऽवेत्य सत्वरम् । खड्गेन प्राहरन्मूर्ध्नि वज्रकल्पेन दानवम् ॥६९॥
स हतो बलवन्मूर्ध्नि किञ्चित्कश्मलमाविशत् । अमुञ्चत्तां ततः सोऽपि युयुधे गगनाऽङ्गणे ॥७०॥

युद्ध करने को आयी। उस दैत्य ने देवी को अपने बाणों के अगाध कोहरे से छायीहुई एक क्षणभर में कर दिया। शुम्भ के बाणों समुद्र रूपी में डूबी देवी को देख कर देवगण भय से हाहाकार करने लगे और दैत्यसैनिकों ने प्रसन्नता मनायी। वे लोग दैत्यको साधु-साधु कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे और जयजयकारों से उसका उत्साह बढाने लगे। उसके बाद चण्डिका भी अपने तीक्ष्ण बाणरूपी वायु के झोकों के द्वारा दैत्य के बाणरूपी कोहरे को हटा कर सूर्य के समान बाहर निकली ॥६०-६४॥

अस्त्रों के जालसे निकली हुई देवी को बारम्बार वह दैत्य अस्त्रोंसे छाने लगा; सामने से वह भी निवारणकरनेवाले प्रति अस्त्रों से दैत्यके अस्त्रों को छिन्नकर शोभित हुई ॥६५॥ प्रतापी शुम्भ उसे (भगवती को) अस्त्रों से जीती नहीं जा सकती यह मानकर भूमि से ऊपर उछल कर देवी को आकाश के अन्तराल में लेगया। अब दैत्यराज के द्वारा उस देवी को हरी गई देखकर अमरेश्वर लोग अत्यधिक दुःखी हुए और त्रिपुरा परमेश्वरी की स्तुति करने लगे ॥६६-६७॥वह दैत्य उसे उठाकर निमेष के झपकने मात्र में ही तीस हजार योजन दूर लेगया ॥६८॥ अपने को दैत्यद्वारा पकड़ कर ले जाते (दानव को) देख जानकर चण्डिका ने शीघ्र ही अपने वज्रोपम खड्ग से दानव के शिर पर प्रहार किया। अत्यन्त बल से किये आघात से आहत वह कुछ विकल हुआ। देवी को अब उसने छोड़ दिया। फिर वह भी गगनाङ्गण में युद्ध करने लगा ॥६९-७०॥

चिरं युद्ध्वा तेन सह गदाहस्तं महासुरम् । प्रहर्तुमुत्पतन्तं ते पादे जग्राह चण्डिका ॥७१॥
भ्रामयित्वा बहुगुणं क्षितौ वेगादपोथयत् । भूमावास्फालितो दैत्य उद्वमन् रुधिरं बहु ॥७२॥
मूर्च्छामवाप निमेषं यावत्पुनरुदञ्चति । तावत्पादेन हृदये समाक्रम्य च चण्डिका ॥७३॥
शूलेन कन्धरे तस्य विव्याध परमा क्रुधा । छिन्नोत्तमाङ्गो दैत्येशो निष्प्राणः समपद्यत ॥७४॥
ततोऽसुरगणाः सर्वे शेषिता दिक्षु विद्रुताः । दिशो वितिमिरा आसन् हते शुम्भे महासुरे ॥७५॥
शान्ता वाता ववुः सूर्यः सप्रभः सागराः स्थिराः । एवं देव्या विनिहतं शुम्भं दैत्यगणेश्वरम् ॥७६॥
देवा निशम्य जहृषुरस्तुवंश्चाप्यनेकशः । तुष्टाव विष्णुस्तां देवीं चण्डिकां प्रीतमानसः ॥७७॥
जयति सुरवरेण्या शङ्करी शुम्भहन्त्री परशिवपरशक्तिः पश्यतां पापहन्त्री ।
निजपदयुगभक्तव्रातसन्तापहन्त्री परिचितनिजभावस्वान्तविभ्रान्तिहन्त्री ॥७८॥
यदि खलु पदपद्मं संस्मृतश्चेत्कदाचित् कथमपि जनिमद्भिः संस्तावेकवारम् ।

दीर्घकाल तक गदाधारी उसके साथ लड़ चण्डिका देवीने प्रहारकरने को आते हुए महाबली असुरराजके दोनों पैर पकड़ उसे बहुत बार घुमाकर भूमि पर पटक मारा । दैत्यने भूमि पर गिरते ही अधिकमात्रामें रक्तका वमन किया और वह मूर्च्छित हो गया । एक निमेष मात्र में ही वह जैसे उठ खड़ा हुआ वैसे ही भगवती चण्डिकाने (उसके) हृदय पर पैर रख कर अत्यन्त रोष से शूल से दैत्यके कन्धर (गर्दन) प्रदेशको छांग दिया । अपना उत्तमाङ्ग छिन्न होते ही दैत्यराज निष्प्राण हो भूमि में गिर गया । तब बचे हुए असुर लोग नाना दिशाओं में (भयभीत हो) भाग खड़े हुए । महाअसुर शुम्भ के वध कर देने पर सब दिशायें अन्धकाररहित प्रशान्त बन गयी; सर्वत्र शान्त वायु चलने लगी; सूर्य की कान्ति प्रभायुक्त हो गयी, तथा अशान्त सागर स्थिर बन गये । इसप्रकार देवीद्वारा दैत्यगण के अधिपति शुम्भको मृत देख देवगण प्रसन्न हुए और नानाप्रकार की स्तुतियों से उन्होंने कृतज्ञतापूर्वक भगवती का गुणानुवाद गाया । श्रीविष्णु ने अत्यन्त प्रसन्नमन से इस प्रकार चण्डिका भगवती की स्तुति की ॥७१-७७॥

"मङ्गलकारिणी, देवगण की वरेण्य (वरणीय), शुम्भका हनन करने वाली, परशिव की परमा शक्तिस्वरूपा, दर्शन करनेवालों के पापों का नाशकारिणि ! आपकी जय हो । आप अपने चरणयुगल भक्तिकरनेवाले पुरुषों के प्रभूत सन्तापहरनेवाली हैं, अपने सहज स्वभाव से ही आपके प्रभाव से परिचित व्यक्तियों के अन्तःकरण की भ्रान्ति मिटाने वाली हैं; हम आपकी जय जयकार मनाते हैं । यदि जन्म लेने वाले लोग सृष्टिमें एकबार भी किसी प्रकार कदीकदास आपके पादकमलों को भलीप्रकार सधे मनसे स्मरणकर लेते हैं तो फिर ऐसे भक्तजनों को यह संसार दुःखक्लेशसन्ताप

पुनरपि कथमेषां स्यात् स्तुतिर्दुःखदात्री मरुसलिलसमाना सन्निकर्षस्थितीनाम् ॥७९॥
तव जननि ! परो यो वैभवोऽनन्तपारः कथमहमहिराट् त्वं प्राप्य तञ्च प्रवक्ष्ये ।
अपि नभसि कदाचिद्रेणवः पार्थिवाः स्युर्गणनपरिसमाप्ता नैव ते तस्य संख्या ॥८०॥
जगति जनितदुःखं हंसि यत्तन्न चित्रं भवति ननु निजोऽयं तोकके मातृभावः ।
न हि जगति समर्थो भ्रान्तिमांश्चापि कश्चिन्निजगृहमभिनश्येत् प्रेक्ष्य कुर्यादुपेक्षाम् ॥८१॥
वचननिचयसारां सुन्दरीं कोऽपि लोके वचनरसविलासैस्तोषमानेतुमीहेत् ।
स खलु मधुपृषत्कैर्नेतुमीष्टेऽमृताब्धिं मधुरससमभावं देवि ! तत्ते स्तुतिः का ॥८२॥
इति स्तुत्वा हरिर्देवीं नमश्चक्रे च दण्डवत् । विधिमुख्या अपि सुरा भक्तिनिर्भरिताऽन्तराः ॥८३॥
एवं स्तुता चण्डिका साऽसुरान् हत्वा सुरार्तिदान् । देवताभ्यो वरं दत्त्वा चाऽन्तर्धानं समाययौ ॥८४॥

किसी प्रकार भी नहीं दे सकता क्योंकि आपके स्मरण मात्र से ही उन्हें आपकी सन्निधि मिल जाती है और मरुस्थलमें जैसे किसी जलस्रोतके कारण ही पिपासाशान्तिका उपाय होता है वैसे ही प्रभूत फलदेनेवाला एक बार का आपका स्मरण है । हे जननि ! आपका कभी अन्त न होने वाला (अनन्तपार) जो यह महावैभव हैं उसे आपको प्राप्त कर मैं, सर्पराज शेषनाग (सहस्र फणों से) भी उसे कह पायेंगे इसमें सन्देह है । भले ही आकाश में पृथ्वी के अगणित रजःकणों की संख्या गिनी भी जाय परन्तु तबभी उससे आपके अनन्त वैभव की गिनती नहीं की जा सकती ॥७८-८०॥

इस जगत् में उत्पन्न हुए जो भी प्रतिक्षण गतिशील प्राणीमात्र हैं, उनके दुःख क्लेशको आप मिटाती हैं इसमें कोई विचित्रता नहीं; निश्चय ही तुच्छ से तुच्छ इन प्राणियों के लिए भी आपके हृदय में मातृभाव है । देखिये, संसारमें कोई भी ऐसा भ्रान्तिरखनेवाला समर्थ व्यक्ति नहीं है जो अपने घरको नष्ट हुआ देखकर उसकी अवहेलना (उपेक्षा) करता हो । वाणी के समूह का सार ही जिसका महावैभव है उस सुन्दरी भगवती को कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जो निजवाणी के मधुर रसविलाससे सन्तुष्ट करने की इच्छा न करता हो, उसका ऐसा प्रयास तो मधुर रससे ऊपर तक परिपूर्ण (भरे पूरे) अमृत समुद्र में मधुके कणबिन्दुओं को लेजाना मात्र ही कहा जायगा ।" एवम्प्रकारेण श्रीविष्णु ने तथा भक्तिनिर्भर अन्तःकरणसे विधिप्रमुख देवगणने भी भगवती देवी की स्तुति कर दण्डवत् प्रणाम किया । इसप्रकार देवगण को कष्ट देने वाले अत्याचारी असुरों को मारकर देवताओं से स्तुत होकर चण्डिका उन्हें वरदान देकर अदृश्य हो गई ॥८१-८४॥

एवं राम पुरा देवी निजघान महाऽसुरान् । शुम्भादीन् वीर्यबलवत्तरान् लोकविनाशनान् ॥८५॥
एवं सा जगतां धात्री त्रिपुरा लोकभावनी । यदा यदा विधिमुखैरापन्नैरसुरादिभिः ॥८६॥
आराधिता तदा देवकार्यसाधनहेतवे । रक्षणाय च लोकानामवतीर्णा निजांऽशतः ॥८७॥
नारायणादयश्चान्ये प्राप्यैवाऽस्याः कलालवम् । जगद्रक्षादिकं कर्तुमवतेरुरनेकधा ॥८८॥
एनां विहाय जगति स्पन्देताऽपि कथं तृणम् । यथा तरङ्गा जलधिमृते भार्गव सर्वथा ॥८९॥

तस्मात् परात्परमयीं प्रणताऽघहन्त्रीं भक्त्या भजेत परिहृत्य समस्तकृत्यम् ।
नो चेद् नन्तभववारिधिमध्यमग्नो यास्यत्यगाधतलमात्मविनाशहेतुम् ॥९०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे चण्डिकाचरिते समुद्धतदैत्यानां-
नाशाय गौरीदेव्या शुम्भनिशुम्भवधनिरूपणं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३५४९॥

हे परशुराम ! इस तरह से पुराकल्प में देवी ने उन लोकविनाशकारी, वीर्य (मानसिक) एवं बल (शारीरिक) में महापराक्रमी महादैत्य शुम्भ आदि को मारा । इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों का धारण करनेवाली त्रिपुरा लोकभावनी (लोकजननी) है; जब जब ब्रह्मा प्रमुख देवादिलोग विपत्तिग्रस्त हो कर उनकी आराधना करते हैं तब दिव्य कार्य (जगत्का मङ्गल करने) को साधने के कारण लोकों की रक्षा करने के लिये अपने अंश से पृथ्वी पर अवतार धारण करती है ॥८६॥ नारायण, ब्रह्मा, शंकर आदि इसी के कलाके लव (अंशांश) को प्राप्त कर जगत् की रक्षा, पालन संहार, लय और अनुग्रह करने के लिये अनेक रूपों में अवतार लेते हैं ॥८८॥ इस भगवती को छोड़कर जगत् में एक तिनका भी कैसे हिले ? हे भार्गव ! जैसे समुद्रके बिना तरङ्गकी स्थिति सर्वथा नहीं वैसे ही इस पराम्बाके बिना किसी की भी स्थिति असम्भव है ॥ ८९ ॥ इसलिये सम्पूर्ण कृत्य को छोड़ कर परात्परमयी प्रणत (भक्ति करने वाले) भक्त लोगों के पापों का समूल नाशकरनेवाली परमदेवता की भक्तिपूर्वक मनुष्य समाहित चित्तसे भक्ति करे; यदि ऐसा नहीं करेगा तो अनन्त (भव) संसाररूपी समुद्र के बीच डूबा हुआ अपने जीवन को पतन की ओर ले जाकर विनाश के कारण उसके अगाधतल में समा जायगा ॥ ९० ॥

इसप्रकार इतिहासोत्तम श्रीसम्पन्न त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्डमें चण्डिका चरित्रमें देवी गौरीद्वारा शुम्भ एवं निशुम्भके वधपूर्वक विष्णुद्वारा स्तुति और देवगण को भगवती के वरदान का आख्यान नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

दत्तभार्गवसम्वादे कालिकाचरित्रवर्णनम्

निशम्य चण्डिकाऽऽख्यानं रामो भृगुकुलोद्वहः । कथामधुसमास्वादमाद्यन्मधुकराऽन्तरम् ॥१॥
त्रिपुरावैभवस्फारश्रवणाऽऽनन्दनन्दितः । न वेद स्वान्तरं बाह्यं क्षणं लिखितवत् स्थितः ॥२॥
अथ स्मृत्वा प्रकृतकं विस्मितः प्राह सादरम् । भगवन् करुणासिन्धो भवताऽहं समुद्धृतः ॥३॥
अपाराऽगाधसंसारमध्यमग्नोऽतिविह्वलः । धन्योऽहं भगवत्पादपोतमाश्रित्य निर्भयः ॥४॥
भवाम्भोधिं महाभीमं सन्तरिष्येऽचिरेण वै । अनुग्रहात्ते भीतिर्मे मृत्यूद्भूता न शिष्यति ॥५॥
तस्याः श्रीत्रिपुरादेव्याः प्रसङ्गात् कथिता त्वया । कात्यायनीचण्डिकयोः कथा सुमहिमोन्नता ॥६॥
अंशावतारात्मिकयोरधुनाऽन्यत् समुच्यताम् । न वितृप्यामि लेशेनाऽप्यहं श्रीचरितश्रुतेः ॥७॥

चवांलीसवां अध्याय

भृगुकुल के वंशज श्रीपराशुराम भगवती पराम्बा की कला चण्डिका का आख्यान सुन कर रस से परिपूर्ण कथा के मधुर आस्वाद से मस्त हुए अन्तःकरण हो त्रिपुरा के वैभव के परिष्कारपूर्ण कथा के श्रवण से आनन्दित हो क्षण भर के लिये अपने अन्तरङ्ग और बाह्य रूप की स्थिति को नहीं जान पोया और चित्रलिखित सा रह गया ॥१-२॥

अब प्रस्तुत प्रकरण को स्मरण कर उसने विस्मित हो सादर कहा, "हे भगवन् ! करुणा के समुद्र ! अगाधसंसार के मध्य मग्न मैं अति त्रस्त होकर आपके द्वारा उद्धार किया गया हूँ । संसारयात्रा से स्वयं व्याकुल होकर आपके पाद कमलरूपी समुद्रयान (जहाज)को पाकर धन्य बन निर्भय हो गया हूँ॥३-४॥ मैं अब शीघ्र ही महाभीषण संसाररूपी समुद्र को पार कर जाऊँगा । आपके कृपाप्रसाद से मुझे मृत्यु से उत्पन्न होनेवाले भय का लेशमात्र भी डर नहीं है ॥ ५ ॥ आपने उस श्रीत्रिपुरा देवी के प्रसङ्ग से कात्यायनी और चण्डिका की अत्यन्त महिमामण्डित कथा कही ॥ ६ ॥ भगवती की अंशावतार देवियां हैं; अब आप अन्य प्रकरण सुनाइये । श्रीदेवी के चरित्रको सुनते हुए मैं लेशमात्र भी तृप्ति अनुभव नहीं करता अर्थात् मन करता है कि श्रीदेवी के चरित्र को उत्कण्ठा से सुनता ही चलूँ ॥ ७ ॥

चेतनः को नु तृप्येत श्रीकथामृतसेवनात् । विना मुमूर्षोर्मृत्युघ्नादामयीव महौषधात् ॥८॥
श्रुत्वैवं जामदग्न्यस्य वाक्यमत्रिसुनन्दनः । हृष्टः प्राह पराशक्तिकथातत्परतां विदन् ॥९॥
निशम्यतां भृगुकुलतिलकाद्भुतसत्कथाम् । त्रिपुराक्रोधजातायाः कालिकाया विचित्रिताम्॥१०॥
पुरा दितिसुता दैत्याः कालखञ्जा इति श्रुताः । सहस्रमभवंस्तेऽत्र भ्रातरो बलवत्तराः ॥११॥
तपश्चक्रुर्वत्सराणामर्बुदानां त्रयोदश । तदा तत्तपसा सर्वलोको व्याकुलितोऽभवत् ॥१२॥
इन्द्रासनं प्रचलितं देवांश्च भयमाविशत् । देवैः सम्प्रार्थितो वेधाः समागत्य जगाद तान् ॥१३॥
दैत्या वरं ब्रूत किं वो मतं मत्तः समाप्स्यथ । तपसाऽलं सर्वलोकनाशनेनेति ते ततः ॥१४॥
प्रणम्य प्राहुरत्यन्तमभयं मृत्युतोऽस्तु नः । श्रुत्वा दैत्येरितं वेधा ज्ञात्वा सर्वभयावहम् ॥१५॥
स्त्रीभ्योऽन्यत्राऽमरत्वं वो भवेदिति समाह तान् ।
विमृश्य तेऽपि चाऽन्योन्यमब्रुवन् चतुराननम् ॥१६॥

कौन ऐसा चेतन प्राणी होगा जो श्रीकथा रूपी अमृत के सेवन से तृप्त होता हो ? मरणासन्न व्यक्तिके लिये मृत्युको दूरकरनेवाले महौषधके सेवन किये विना व्याधिसे पीड़ित उसे कौन बचा सकता है ?" इसप्रकार जमदग्निके पुत्र श्रीपरशुराम के वाक्य को सुनकर अत्रि के सुपुत्र दत्तात्रेयने अपने शिष्य की पराशक्ति के विषय की कथाकी तत्परता की भावना को जानकर भृगुकुलतिलक परशुरामको उस त्रिपुरा के क्रोध से आविर्भूत कालिका की विचित्रताओं से पूर्ण अद्भुत सत्कथाओं के विषय में प्रशंसा को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा ॥८-१०॥

"प्राचीन काल में दिति के पुत्र कालखञ्ज इस नाम से प्रसिद्ध महाबली हजारों भाई हुए ॥ ११ ॥ उन्होंने तेरह अरब वर्षों तक तपस्याकी जिससे सम्पूर्णलोक व्याकुल हो गये ॥१२॥ इन्द्रासन डुलने लगा एवं देवगणको भय होने लगा। देवगण ने ब्रह्मा के पास जाकर प्रार्थना की। ब्रह्मा ने आकर उन (दैत्यों) से कहा ॥१३॥ "हे दैत्यगण ! तुम मेरे से जो वर पाना चाहते हो, वह मांगो सम्पूर्ण लोकों को नाश करनेवाले अपने इस तप को समाप्त करो।" बाद में वे प्रणाम कर बोले, "हमें मृत्यु से अत्यन्त अभय प्राप्त हो।" दैत्यों के कथन को सुनकर ब्रह्मा ने उसे सब के लिये भयावह जानकर उन्हें "स्त्रियों से अन्य स्थान पर तुमलोग अमर होजाओ" यह कहा। उन्होंने भी परस्पर में विचार विमर्श कर भगवान् चतुर्मुख ब्रह्मा से कहा, "वर्तमान प्राकृत सांसारिक साधारण जीवन बितानेवाली

वर्तमानचरित्राभ्यः स्त्रीभ्योऽप्यमरताऽस्तु नः। अस्त्वित्युक्त्वा जगाम खं चतुर्वक्त्रो निवेशनम् ॥१७॥
अथ दैत्याः कालखञ्जा महाबलपराक्रमाः । जित्वाऽमरान् महेन्द्रादीन् जहुस्त्रिभुवनश्रियम् ॥१८॥
हविर्भागानप्सरसो दिक्पालसदनानि च । ततो गत्वाऽधिपैर्देवाः स्वपदादवरोपिताः ॥१९॥
धात्रादिभिः सुसङ्गम्य प्रार्थयामासुरात्मनाम्। पराभवात् कालखञ्जैरुद्धारः स्यात् कथन्त्विति।२०।
प्रार्थितो ध्यानमाश्रित्य भविष्यं समचष्टत । विज्ञाय तेषामुदयं बभाषे तांश्चतुर्मुखः ॥२१॥
भो देवा अत्र नाऽन्यस्य कृत्यं समवशिष्यते । न तेषां पुरुषैर्मृत्युः स्त्रीभिर्वा प्रकृतात्मभिः॥२२।
या स्याल्लोकचरित्रातिरिक्ता तेषां मृतिस्ततः ।
तादृशी नाऽस्ति लोकेषु योषित् काचित् क्वचित् सुराः ! ॥२३॥
लोकातिरिक्तशीला या तस्मादेतद्धि दुष्करम् । तदत्र त्रिपुरेशानीं राधयामोऽर्थसिद्धये ॥२४॥
इत्युक्त्वा मेरुशिखरमासाद्य विधिमुख्यकाः । त्रिपुरां तुष्टुवुर्देवीं लोकयात्राविधायिनीम् ॥२५॥

स्त्रियों से हमारा अमरता हो।" इस पर ब्रह्मा ने "तथास्तु" कह कर अन्तरिक्ष में स्वब्रह्मलोक को प्रयाण किया ॥१४-१७॥

अब उन महाबल पराक्रमशील कालखञ्ज दैत्यों ने महेन्द्र आदि देवतागण को जीत कर त्रिभुवन की लक्ष्मी-देवगण का यज्ञ भाग, अप्सराओं, दिक्पालों के लोकों को हर लिया ॥ १८ ॥ फिर उनके अधिपतियों द्वारा देवगण को अपने स्थान से हटा दिया गया ॥१९॥ देवगण ने ब्रह्मा आदि के पास जा मन्त्रणाकर 'कालखञ्जों से अपने पराभव से उद्धार कैसे हो ?" इसप्रकार प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्माने ध्यान लगाकर आगे आनेवाले भविष्य को देखा; उनका उदय जानकर ब्रह्मा ने देवगणसे कहा ॥२०-२१॥ "हे देवगण ! यहाँ इस विषय में (इन कालखञ्जों के मारने में) अन्य किसी के द्वारा करनेयोग्य कृत्य अवशिष्ट नहीं है; उनकी मृत्यु न तो संसारी पुरुषों और न स्त्रियों से सम्भव है ॥२२॥

जो लोकके चरित्रसे अतिरिक्त दिव्यचरित्रवाली साक्षात् पराम्बाहै उस महिमामयी से उनकी मृत्यु है। हे देवगण ! ऐसी ललना लोकोंमें कहीं पर कोई भी नहीं है जो लोकके प्राकृतिक नियमोंसे बंधे आचरणसे ऊपर उठे हुए चरित्रोंवाली हो। आओ, यह बहुत ही कठिन कार्य है। अतः इस विषयमें अपने प्रयोजनको सिद्धकरने के लिए त्रिपुरेशानी की प्रार्थना हम लोग प्रार्थना करें।" इसप्रकार कहकर विधिप्रमुख देवतालोग मेरुपर्वत के शिखर पर जाकर संसार की रक्षा का यथा-तथ्य रूप से संचालन करनेवाली त्रिपुरा देवी की स्तुति करने लगे। उसके अनन्तर कालखञ्ज दैत्यों ने अपने गुरुदेव

तदन्तरे कालखञ्जा ज्ञात्वाऽमरविचेष्टितम् । भार्गवोक्ताद्ययुस्तत्र विहन्तुममरक्रियाः ॥२६॥
बध्यतां हन्यतां शीघ्रं गत्वेत्याहुः सुराऽरयः । दृष्ट्वा देवाः कालखञ्जानागतान् भीतमानसाः ॥२७॥
उच्चैर्विचुक्रुशुर्देवीं शरणीकृतभावनाः । त्राहि त्राहि महेशानि बध्यमानान् सुराऽरिभिः ॥२८॥
देवान् शरण्ये त्रिपुरे आपन्नान् भक्तवत्सले । विक्रोशत्स्वतिभीतेषु दैत्येभ्यस्त्रिपुराम्बिका ॥२९॥
आविरासीत् सुरगणानार्तां स्त्रातुं महाभयात् । अथाऽभवन्महाशब्दः प्रागुदीच्यां भयावहः ॥३०॥
प्रजज्वाल महातेजः खं दिशं व्याप्य सर्वतः । तेन शब्देन महता तेजसा चाऽमरारयः ॥३१॥
निपेतुर्मूर्च्छितास्तत्र मत्वा ब्रह्माण्डभेदनम् । आविर्बभूवाऽथ परा त्रिपुरा परमेश्वरी ॥३२॥
तां दृष्ट्वा त्रिपुरां देवाः सौन्दर्यजलधिं दिशम् । कोटिकन्दर्पसौन्दर्यसन्दोहतनुसुन्दराम् ॥३३॥
विद्युल्लतामिव तनुत्विषा लोकाऽक्षिसम्मुषम् । समानतुलिताऽशेषाऽवयवन्यासशोभिताम् ॥३४॥

आचार्य शुक्र के प्रेरक वाक्यों से अमरदेवगण के कृत्य को जानकर उनके प्रयत्न को विफल बनाने के लिये वहां पदार्पण किया ॥२३-२६॥

वे असुर लोग "शीघ्रतया बांध लो" "मारो" इस प्रकार बोले। कालखञ्ज दैत्यों को आया देख भयभीत हो देवतालोग शरणापन्न की भावना कर देवी की जोर-जोर से आर्त हो स्तुति करने लगे। "हे महेशानि ! हे शरणदेनेवाली ! हे त्रिपुरे ! हे भक्तों पर वात्सल्यकरनेवाली ! देवगण के शत्रु दैत्यगण द्वारा बांधे जा रहे हम लोगों की रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए।" दैत्यों के भय से अत्यन्त त्रस्त खूब आर्त वाणी से पुकार करने पर त्रिपुराम्बिका दुःख से आर्त हुए सुन देवताओं को महाभीषण भय से बचाने के लिए आविर्भूत हुई। तदनन्तर सर्वप्रथम उत्तर दिशा में भयङ्कर महाशब्द हुआ फिर आंखों को चकाचौंध करनेवाला महातेज अन्तरिक्ष और सब दिशाओं को चारों ओर से व्याप्त कर प्रज्वलित हुआ। उस भीषण शब्द के विस्फोट से और महातेज के प्रक्रान्त तेजसे देवगणके शत्रुपक्षवाले राक्षसलोग ब्रह्माण्डका भेदन मानकर मूर्च्छित होकर वहां गिर गए। अब परा भगवती त्रिपुरा परमेश्वरी स्वयं आविभूत हुई ॥२७-३२॥

अपार सौन्दर्यसमुद्र की साक्षात् प्रतिमा, सब दिशाओं में मूर्त्तिमन्त करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्यों के समूह से अत्यधिक शरीर की कमनीय कान्तिवाली, विद्युत्पंक्ति के समान शरीर की अत्यधिक लावण्ययुक्त विलासमयी कान्ति से देखने वाले लोगों की आंखों को चौंधियानेवाली, समान रूप से सन्तुलित सम्पूर्ण अंग प्रत्यङ्ग के कमनीय विन्यास से शोभित उस त्रिपुरा को देख कर देवगण ने दण्डवत् प्रणाम किया। चन्द्रमा को

चन्द्रचूडां त्रिनयनां पाशाऽङ्कुशधनुःशरान् । दधानां पाणिकमलैर्दीर्घविद्रुमनालजैः ॥३५॥
मुखेन्दुसौन्दर्यसरित्फुल्लेन्दीवरलोचनाम् । मुखलावण्यजलधिं मुक्ताविन्दुमदच्छदाम् ॥३६॥
मुखेन्दून्मेषचकितयुतकोककुचद्वयीम् । अङ्गप्रवाललतिकानिर्गमद्बाहुशाखिकाम् ॥३७॥
पाणिप्रवालशाखाऽग्रकोरकाऽङ्गुलिशोभिनीम् ।
माणिक्यकदलीकाण्डसूक्ष्मच्छदसमांऽशुकाम् ॥३८॥
जङ्घानिषङ्गनिक्षिप्तमदनेषुनिभाऽङ्गुलाम् । विद्युल्लतापरिक्षिप्ततारांऽऽभाकल्पभूषिताम् ॥३९॥
मुखेन्दूदयनिर्गच्छद्दूर्ध्वसन्तमसाऽलकाम् । दण्डवत्प्रणता देवा वदन्तस्त्राहि मामिति ॥४०॥
तदन्तरे सुराः केचिदुत्थिता विस्मृतेस्तदा । शस्त्रहस्ताऽमरगणान् जिघांसन्तोऽभिसङ्गताः ॥४१॥
दृष्ट्वा तानसुरान् क्रुद्धा हुङ्कारमकरोत्तदा । तद्धुङ्कारान्महाशक्तिः प्रादुर्भूता चतुर्भुजा ॥४२॥

अपने चूडा (शिरोभाग) में धारण की हुई, तीन नेत्र वाली, लम्बे मूंगे की साख की नलिका के समान अपने लम्बे पाणिकमल में पाश, अङ्कुश, धनुष और बाण कोधा रण की हुई, मुखरूपी चन्द्रकी सौन्दर्यसरितासे खिले हुए कमलनेत्र-वाली, मुखरूपी सौन्दर्यके समुद्रमें मोतियों की लड़ियों से स्वच्छ शोभाको धारणकी हुई, स्वमुखरूपी चन्द्रमाके उन्मेषसे चकित हुए मानो चक्रवाकरूपी देवी के दोनों स्तन ऊपर की ओर उठे हुए उसे देखते से हैं; अङ्गों की प्रवालरूपीलता से निकली हुई मूंगा के रंग की भुजायें मानों शाखायें हो; हस्तप्रवाल के शाखाके आगे कलिकारूपमें अङ्गुलियों की शोभावाली, माणिक्यकदली के काण्ड की सूक्ष्म अङ्गवेष्टन वेशभूषा के समान वस्त्रों को पहनी हुई। जङ्घारूपी तूणीर (बाणोंके रखने का स्थान) में रक्खे हुए मदनके धनुषके समान अङ्गुलीयक पहनने वाली (सर्वत्र महार्घ रत्नों से), विद्युत्पंक्तिसे घिरे तारों की शोभासे विभूषित और मुखरूपी चन्द्रके उदय होने से ऊपरकी ओर उठाया गया अन्धकार ही मानों भगवती के केश अत्यन्त कृष्ण के वर्ण हैं ऐसी अनुपम शोभाधारिणी देवी को देवगण ने दण्डवत् प्रणाम किया और "त्राहि माम्" "त्राहि माम्" इसप्रकार कहा ॥३३-४०॥

उसके बाद कई देवगण तब विस्मृति की दशा से चेतना में आ गये। जब शस्त्र लिये अमरगण को मारने को उद्यत दैत्य लोग वहां पहुंचे तो उन असुरों को देख कर भगवती ने क्रुद्ध होकर हुङ्कार किया। उस हुङ्कारगर्जन से महाशक्ति चारभुजा वाली प्रादुर्भूत हुई ॥४१-४२॥

भिन्नाऽञ्जनचयाऽऽभासा मुक्तकेशी दिगम्बरी ।
हृष्ट्वा करालवदना लम्बजिह्वाऽतिभीषणा ॥४३॥
तां प्राह त्रिपुरेशानी संहरेमान् दितेः सुतान् । आज्ञप्तैवं महादेव्याः कालीक्रोधसमुद्भवा ॥४४॥
अतिशीला समभवल्लोकवृत्तविपर्ययात् । मग्नोन्मुक्तदीर्घकचा घोररूपा भयङ्करी ॥४५॥
दंष्ट्रोल्लसल्लम्बजिह्वा करवालकरा परा । निहत्य दैत्यांस्तां कांश्चिन्मुण्डैः कचनिबन्धनैः ॥४६॥
आपादलम्बिनीं मालां तथा तत्करपङ्क्तिभिः । दधार निर्मितां काञ्चीमेवं लोकाऽतिकारिणी ॥४७॥
वारुणीं मदिरां भूयो भूयः पीत्वाऽतिभीषणी । असुरान् भक्षयन्ती सा स्रक्कणीस्रुतशोणिता ॥४८॥
समेत्य त्रिपुरां देवीं कामुकीं मैथुनेच्छया । देवि मे दिश भर्तारमनुरूपं सुखावहम् ॥४९॥
नो चेत् कामपराधीना दैत्यान् हन्तुं न पारये । प्रार्थितैवं कालिकया त्रिपुरा परमेश्वरी ॥५०॥
देवं सदाशिवं प्राह भव भर्ताऽनुरूपतः । इत्याज्ञप्तोऽभवत्तस्यास्तुल्यरूपः सदाशिवः ॥५१॥

भिन्न अञ्जन (काजल) के समूहके आभासवाली, खुले बालवाली, दिगम्बस्त्र धारण की हुई, विकराल मुखवाली, अपनी लम्बी जीभ निकाले, अति भीषण अट्टहासकर (आविर्भूत हुई)। त्रिपुरेशानी ने उसे कहा, "इन दैत्यों को मार।" इसप्रकार महादेवी से उत्पन्न काली क्रोध समुद्भूत होकर लोकके आचरण में विपरीता सी हो स्त्रियों के समुचित शील सदाचारको अतिक्रान्त कर नग्नस्वरूपमें खुले बालों और स्तनवाली, घोररूपा, अत्यन्त भयङ्कर आकारधारणकी हुई, दाढ़ों से उल्लसित लम्बी जीभ निकाली हुई, हाथमें तलवार लिये सर्वोत्तम वह भगवती उन दैत्यों को मारकर किन्हीं के मुण्ड को पकड़ कर, किन्हीं के सिरके बाल खींचकर, उनके हाथों से मालाकी बनी हुई काञ्ची-करधनी और उन्हीं की मुण्ड मालासे पैरों तक लम्बी बनी मालाको धारण कर लिया। इसप्रकार लोकों को अति भयभीत करनेवाली वारुणी मदिरा को बार-बार पीकर अतिभीषण आकारवाली वह देवी उन्हें खाती हुई मुंहके कोनोंमें से टपकाने खूनवाली वह कालिका त्रिपुराके पास आकर अपने जैसे ही पुरुषों से मिथुनीभावको प्राप्त करने की कामुक इच्छासे बोली, "हे देवि ! मुझे अपने अनुरूप सुखदायक भर्ता (पति) को दो, नहीं तो काम के वशीभूता हो मैं दैत्यों को मार नहीं सकूंगी।" इस प्रकार कालिका द्वारा पति के लिए प्रार्थना की हुई भगवती परमेश्वरी त्रिपुरा ने सदाशिव से कहा, "तू इसके अनुरूप पति बन।" इसप्रकार आज्ञा पाकर सदाशिव कालिका के तुल्य रूप (समानरूपवाला) ही हो गया ॥४३-५१॥

दृष्ट्वा तं कालिका तुल्यं नाम चक्रे महेश्वरी ।
प्रतीच्छाऽमुं महाकालं भर्तारं कालिके समम् ॥५२॥
दृष्ट्वा प्रसन्ना सा काली महाकालेन सङ्गता । ययौ दैत्यान्नाशयितुं तदङ्गाऽसङ्गहर्षिता ॥५३॥
अत्यन्तकामुकी तेन महाकालेन क्रीडितुम् । समारेभे ततः सोऽपि पपौ भूयः सुरां बहु ॥५४॥
मत्तेन मिथुनीभावं प्रयाता कालिका तदा । उन्मत्तमतिमत्तं तं काली कामवशाऽऽकुला ॥५५॥
कृत्वाऽधस्तं महाकालं मदव्याकुलितं द्रुतम् । विपरीतरतिञ्चक्रेऽवितृप्ता कामचारतः ॥५६॥
रत्यासक्तां महाकालीं चिरं दैत्याः समुत्थिताः । दृष्ट्वा देवान् हन्तुमैच्छन् तदा देवैरभिष्टुता ॥५७॥
विपरीतरतादाशु विरता सुरसङ्घकम् । योधयामास चण्डाऽट्टहासा काली भयङ्करी ॥५८॥
आक्रम्य रोदसी खड्गप्रहारेण महासुरान् । हत्वा हत्वा प्रचिक्षेप मुखे भक्षणतत्परा ॥५९॥
एवं तानसुरान् काली भक्षयन्ती रणाऽजिरे । चचार दैत्यदावाग्निः सर्वलोकभयङ्करी ॥६०॥

महेश्वरी ने उसे देख कालिकाके ही समान महाकाल नामसे सम्बोधनकर वह बोली, "हे कालिके! इस महाकालको बराबरका भर्ता बना। उसे देख वह काली प्रसन्न हो महाकालसे मिली। उसके अङ्गस्पर्शसे प्रसन्न हो दैत्यगण को नष्ट करने को उद्यत हो गई। उस महाकालसे क्रीड़ा करने के लिये अत्यन्त कामवशगा हो मैथुन करना आरम्भ किया। बादमें उस महाकाल ने भी बार-बार बहुत अधिक सुरापान किया। मत्त हुए महेश्वर के साथ कालिका ने एक साथ अङ्ग-सङ्ग किया। अत्यधिक सुरापान से उन्मत्त और अत्यन्त मदविह्वल महेश्वर को काली काम के वशीभूत अत्यन्त व्याकुल हो मदसे अत्यन्त व्याकुल महाकाल को नीचे कर के कामचार (पशुभाव) से विपरीत रति की। रतिमें आसक्त महाकाली को दीर्घ समय तक रतिमग्न देख कर दैत्य उठ खड़े हुए और देवगणको मारने के लिये उन्होने इच्छा की। तब देवगणसे स्तुति की हुई काली विपरीत रति से अतिशीघ्र विरत हो असुरसङ्घ से लड़ने लगी। प्रचण्ड अट्टहासवाली अतिभयंकर रूपवाली काली ने पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष को आक्रान्त कर खड्ग के आघात से महाबली दैत्यों को मार-मार कर खाने को तत्पर हो मुख में डालना आरम्भ किया ॥५१-५९॥

इस प्रकार रणक्षेत्र में काली उन असुरों को खाती हुई दैत्यरूपी वन के लिये दावाग्निरूपा हो सम्पूर्ण लोकों

तस्या दैत्यांश्चर्वयन्त्याः सफेनं रुधिरं बहु । स्रुक्कणीभ्यां प्रसुस्राव गिरिश्रृङ्गाद्यथा झरः ॥६१॥
एवं तानसुरान् सर्वान् भक्षयित्वा मुहूर्ततः । रक्तपानेन तेषां सा सुरापानादपीश्वरी ॥६२॥
प्रोन्मत्ता ताण्डवं चक्रे भिन्नाऽञ्जनचयोपमा । यथा संवर्तवातेन नीलाद्रिः प्रतिसञ्चरेत् ॥६३॥
एवं नृत्ये समारब्धे तया ब्रह्माण्डमण्डपे । चकम्पे विश्वमखिलं वायुनेव महातरुः ॥६४॥
पदनिक्षेपनिष्पिष्टचूर्णशेषमहीधरम् । विभ्रमद्बाहुसङ्घट्टत्रोटिताऽशेषलोककम् ॥६५॥
करवालाग्रसंछिन्नताराग्रहमहापथम् । निश्वासधूतजीमूततत्तिचूर्णितदिक्तटम् ॥६६॥
विलोक्य नाशाऽभिमुखं ब्रह्माण्डभवविह्वलाः । कृताञ्जलिपुटा धातृमुखाः कालीमुपस्थिताः ॥६७॥
अस्तुवन्निस्तुलवचोगुम्फनैरर्थगुम्फितैः । महर्षिसिद्धविद्याध्रयक्षगन्धर्वसंयुताः ॥६८॥
काली करालवदना करवालधारा नीताऽन्तकालमसुरारिगणा महेशी ।

के लिये अत्यन्त भयंकर स्वरूपवाली वह घूमने लगी । दैत्यों को चबाती हुई उसके मुख से फेनयुक्त अत्यधिक रुधिर दोनों ओष्ठप्रान्तों से बहने लगा जिस प्रकार गिरि शिखर से जलस्रोत निकलता है । उन सब असुरों को खाकर उन के रक्तपान से सुरापान कर के भी वह ईश्वरी अत्यधिक मद से उन्मत्त हो पोते हुए कज्जल के ढेर के समान काली आकृतिवाली ताण्डव नृत्य करने लगी जैसे सम्वर्त वायु से नीलपर्वत कांपने लगता है ॥६०-६३॥

इसप्रकार ब्रह्माण्डमण्डप पर भगवती के नृत्य आरम्भ करने पर सारा विश्व इस प्रकार प्रकम्पित हुआ जैसे वायु के झञ्झावातसे महाविशाल वृक्ष कांपता है ॥६४॥ उसके पैरों के प्रहारसे पीसे हुए पर्वत चूर्ण-विचूर्ण होगये; उसके अपने प्रबल वेग से घुमाये हाथों की द्रुतगतिसे सम्पूर्ण लोक टूट गये (उनका गुरुत्वाकर्षण क्षीण हो गया); उसकी तलवार के अग्रभागसे तारागण तथा ग्रहों का महापथ भी छिन्न-भिन्न हो गया । निःश्वाससे निकले प्रबल वायुसमूहसे दिशाओं की सीमायें नष्टभ्रष्ट होगई । इस प्रकार सब ओर विनाश की लीला देखकर ब्रह्माण्डों के नाश से भय से व्याकुल हो ब्रह्माप्रमुख देवगण काली के सामने हाथ जोड़ उपस्थित हुए ॥६५-६७॥

(उन्होंने) भगवती की अर्थगाम्भीर्य से परिपूर्ण अप्रतिम वाणी की रचनाओं से अत्यन्त सुललित प्रार्थना (स्तुति) की; उनके साथ महर्षि, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष और गन्धर्व भी सम्मिलित रहे । अपने कलन

लोकाऽर्तिनाशनविधानविलासवेषा पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥६९॥
सम्भिन्ननीलमणिशैलनिभा नितान्तपादाऽन्तसङ्गतविमुक्तकचप्रताना ।
देवारिमुण्डकृतकुण्डलमण्डिताऽऽस्या पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥७०॥
दैत्यप्रतानपरिचर्वणवक्त्रपार्श्वप्रस्यन्दिरक्तमयसंस्तुतिशोभिताङ्गी ।
निर्गत्सु रक्तरसनाऽन्तरितस्तनाढ्या पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥७१॥
मुण्डं महासिमभयं वरदं दधाना दीर्घैर्महाहिनिभपाणिभिरुग्ररूपैः ।
देवारिनाशनविलासविलोलचित्ता पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥७२॥
सद्यो निकृत्तदितिजोऽत्तनुमूर्द्धकलृप्ताऽऽ पादप्रलम्बिरुचिरस्रगलङ्कृताङ्गी ।
तद्बाहुनिर्मितकटीरशनानिबद्धा पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥७३॥

द्वारा संसार की रचनाकरनेवाली, अत्यन्त भीषण मुखवाली, हाथ में तीक्ष्ण करवाल को धारण करनेवाली, देवगण के शत्रुपक्षवाले असुरों का अन्तकालकरारिणा, महेशी, लोकों के दुःखों के नाश करने की विधि की लीला करने में इतना लीलामय वेष धारिणी आप इस अत्यधिक घोर आपत्तियों के समुद्र में गिरे हमलोगों को बचावे। प्रोज्ज्वल नीलमणि के पर्वतकी आभावाली, अपने बिखरे हुए बालों को पैरों तक छुआती हुई देवशत्रु दानवों के शिरो-मुण्ड से बने कुण्डलों से शोभित मुखाकृतिवाली, काली भगवती इस आपत्समुद्रके मार्ग में गिरे हुए हमें बचावें। दैत्यगण के प्रकृष्टरूपसे फैलाये हुए सैन्यको परिचर्वण करने से मुख के दोनों ओर के पार्श्वभागसे झरते हुए रक्त से पूर्ण शोभा प्राप्त अङ्गोंवाली, मुख में लपलपाती जिह्वा जिसमें से दैत्यगण के रक्तपानके चूने से सारे स्तनप्रान्तर अत्यधिक शोभा धारण किये हैं ऐसी भगवती काली अपाय रूपी समुद्र में पड़े हम लोगों की रक्षा करे। नरमुण्ड, महा खड्ग, अभय मुद्रा तथा वरदहस्त को धारण किये साथ ही दीर्घ महासर्पों के समान सचिक्कण समान रूप से शोभित उग्र बाहुओं से युक्त, देवशत्रु राक्षसों के विनाश करने की लीलाविलास से युक्त अत्यन्त चञ्चल चित्तवाली भगवती काली इस महाविघ्नसमूह के समुद्र में पड़े हुये हमलोगों की रक्षा करे ॥६८-७२॥

तत्काल करवाल की धारा से काटे गये राक्षसगण के मुण्डों से बनी पैरों तक लटकी हुई, रुचिर माला से अलंकृत अङ्गोंवाली उनके बाहुओं से निर्मित कटिप्रदेश की तागड़ी बांधे हुई देवी काली आपत्ति के समुद्र में पड़े हम लोगों की रक्षा करे ॥७३॥ निरन्तर नृत्य के द्वारा हिलते हुए अत्यन्त उन्नत और मांसल (मोटे) अतिमात्र स्तनोंवाली, अपने आघात से सुमेरु के पर्वतशिखरों को चूर-चूर करने वाली, दिगम्बरधारिणी, पैरों के नखाग्र से धरती को फोड़नेवाली, भगवती आप इस विघ्नों के समुद्र में गिरे हम लोगों की रक्षा करें।

नृत्यप्रकम्पितसमुन्नतपीवराऽतिमात्रस्तनाऽऽहतिविशीर्णसुमेरुशृङ्गा ।
आशाऽम्बरा पदनखक्षतदारितक्ष्मा पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥७४॥
क्रोधोद्भवात्ममपि दैत्यविनाशहेतोर्घोरं स्वरूपमवभासयसि महिम्ना ।
न स्याद्यतो विषमिहाऽऽमृततोयराशेः पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥७५॥
यत्रेदमित्थमखिलं प्रतिभाति घोरं मायादृशां न च यथार्थदृशां कदाचित् ।
तत्त्वं पराऽमृतसुखप्रतिभानरूपा पायादपायजलधेः पतितान् पदेऽस्मात् ॥७६॥
इति स्तुत्वा विधिमुखा दण्डवत्प्रणता भुवि। शृण्वन्त्यपि स्तुतिं काली नाऽबुध्यत मदोत्कटा ॥७७॥
अथ विष्णुर्महाकालं प्रार्थयामास सन्नतः। शान्तये कालिकादेव्याः स्तुत्वा स्तुतिभिरुत्तमैः ॥७८॥
उपसृत्य महाकालः पानमत्तां शनैः शनैः । पादमूले कालिकायाः शयानोऽथ दिगम्बरः ॥७९॥
सा तं समारुह्य हृदि ननर्त विगतस्मृतिः । तदङ्गसंस्पर्शमात्रात् प्रत्यबुध्यत वै पतिम् ॥८०॥

आप भी दैत्यों के विनश करने के लिये क्रोध से उत्पन्न हुई हैं; अपनी गौरव वृद्धि से अपने घोर भयंकर स्वरूप को प्रगट करती हैं। इस अमृतसमुद्र में जैसे विष न हो जाय इस प्रकार भगवती काली इस घोर आपत्ति-रूपीविघ्नों के समुद्र में गिरे हमारा उद्धार करे ॥७४-७५॥

जहां यह सम्पूर्ण प्रपञ्च इसप्रकार घोर रूपमें दीखता है वह मायादृष्टि से देखनेवाले लोगों के लिये ही है और सत्यदृष्टिरखनेवाले लोगों के लिये नहीं; परा, अमृत सुख ही जिसका प्रतिभासमान रूप हो ऐसी सम्वित्तत्त्ववाली आप आपत्तिरूपी समुद्र में गिरे हम लोगों की रक्षा करें।" इस प्रकार ब्रह्मादि प्रमुख देवगण ने स्तुतिकर दण्डवत् प्रणाम किया। (परन्तु) काली स्तुति को सुनती हुई भी मद से उन्मत्त हो कुछ भी न जान पाई। तदनन्तर श्रीविष्णु ने श्रद्धानत हो श्राकालिका देवी की शान्ति के लिये भगवान् महाकाल की उत्तम-उत्तम स्तुतियों से प्रार्थना की। महाकाल मधुपान से अत्यधिक मत्त हो काली के निकट धीरे-धीरे जाकर उस कालिका के पैरों के नीचे स्वयं दिगम्बर हो सोगया ॥७६-७९॥

वह अपनी प्राकृत स्मृति खोई हुई मद्यपानसे मदछकी मतवोली महाकाल के हृदय प्रदेश पर आरूढ़ होकर नाची; उसने पतिके अङ्गके स्पर्श हो जाने से ही उसे पहचान लिया। ताण्डव नृत्यको बन्दकर उसने अपने सामने उपस्थित देवगण

निवृत्ततांण्डवा भूत्वा प्राह देवान् पुरः स्थितान्।
प्रसन्नाऽस्मि सुराः किं वो वाञ्छितं तत् प्रतीच्छथ ॥८१॥
इति प्रोक्ताः कालिकया विधिमुख्याः समब्रुवन्। सम्पन्नं कालिके सर्वं कृपया ते वयं सुराः॥८२॥
सर्वथा स्मो हतरिपुगणा विगतसाध्वसाः। त्वमेवं रमणी भर्त्रा सह लोकशिवङ्करी ॥८३॥
जनान् पातु गिरावस्मिन् स्थिरीभव महेश्वरि। प्रार्थितैवं देवगणैः काली प्राह प्रसादिता॥८४॥
गिरौ वसामि भो देवा रूपेणाऽनेन सर्वदा। प्रदात्री वाञ्छितार्थानां मत्पराणां विशेषतः॥८५॥
यो मामेवंविधां लोके भावयेद्भक्तिनिर्भरः। स्थापयेदपि मन्मूर्तिं पूजयेत् पिशिताऽऽसवैः॥८६॥
बलिभिः कामभोगैश्च द्वन्द्वभावसमुद्भवैः। निर्विकल्पः सर्वसिद्धिं साधयामि न संशयः॥८७॥
इति तेऽभिहितं राम कालिकाचरितं महत्। एवं सा कालिका भूत्वा चकार लोकरक्षणम्॥८८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे देवैः कालीस्तुतिवर्णनपूर्वकं महाकाल-माध्यमेन तस्याःप्रसादीकरणं वरदानञ्चेति कालिकाचरित्रवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६३७॥

से कहा, "हे सुरगण ! तुम लोगों पर मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हें जो अभीष्ट हो सो मांग लो।"कालिका द्वारा इसप्रकार कहने पर ब्रह्मा देवगणको प्रमुख देवगणने कहा, "हे कालिके ! आपकी कृपासे हमारा सब कुछ कार्य हो गयो। हम देवगण शत्रुओं के सब मारे जाने से भय से मुक्त हैं, आप संसार का मङ्गल करनेवाली अपने पतिदेव के साथ रमण करनेवाली हे महेश्वरि ! सतत सब लोगों की रक्षा करें और इस पर्वत में स्थिररूप से निवास करें।" ॥८०-८३॥

इस प्रकार देवगणसे प्रार्थित हो काली प्रसन्न हो बोली, "हे देवगण ! मैं सर्वदा इसी रूप से पर्वत में निवास करती हूँ; सदैव मेरे भक्तों के विशेषरूप से वाञ्छित फलों कों प्रदान करती हूँ। जो इस प्रकार की रूपधारिणी मुझे भक्तिभाव से पूर्ण हो भजेगा, मेरी मूर्त्ति की स्थापना भी करेगा; मांस से और मद्य से पूजा करेगा अथवा द्वन्द्वभाव से उत्पन्न कामभोगों, बली उपहारों से सन्तुष्ट करेगा ऐसा वह सर्वथा निर्विकल्प सङ्कल्पपूर्वक एक ध्यान से आराधना में लगेगा उसको सब अभीष्ट सिद्धियों को मैं पूर्ण करूंगी इसमें कोई सन्देह नहीं जानना।" इस प्रकार हे परशुराम ! तुझे मैंने महापरा कालिकाने जिस प्रकार से लोकों की संरक्षाकी सो यथावत् बतलाया ॥८४-८८॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासश्रेष्ठ त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में देवी कालिका के देवगणद्वारा स्तवन करने पर भी सम्भव उपायों से प्रसन्न न होने से महाकाल द्वारा प्रसन्न कर वर लेना, कालीचरित्र नामक चवालीसवां अध्याय सम्पूर्ण।

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

दुर्गाचरित्रे पतिव्रतामाहात्म्यवर्णनम्

जामदग्न्याऽथ ते वक्ष्ये दुर्गामाहात्म्यमद्भुतम् । यच्छ्रुत्वा पातकेभ्योऽपि मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥१॥
त्रिपुरांऽशसमुद्भूता दुर्गा देवी महेश्वरी । देवानां दुर्गतेस्त्राणाद्दुर्गेति परिकीर्तिता ॥२॥
दुरितं गच्छति स्मृत्या तस्माद्दुर्गा समीरिता । तस्या माहात्म्यमनघं पुराणेषु समीरितम् ॥३॥
पुरा देवपतिः शक्रः श्रियौन्नत्यात् स्मयं गतः । ऐरावतं समारूढो गन्धर्वाऽप्सरसां गणैः ॥४॥
सेवितो विन्ध्यशिखरे शृङ्गं प्राप्तः कुतूहलात् । तत्र कश्यपदायादः सुनेत्रो मुनिसत्तमः ॥५॥
तपश्चचार विपुलं तेजसा समभिज्वलन् । तस्य पत्नी गौतमजा सुमित्राख्या पतिव्रता ॥६॥
स्नातुं समाययौ नद्यां नर्मदायां समीपतः । दृष्ट्वेन्द्रस्तां स्थूलतनुं कृष्णवर्णां विरूपिणीम् ॥७॥

पतालीसवां अध्याय

हे जमदग्नि के पुत्र ! अब तुझे अद्भुत दुर्गामाहात्म्य सुनाता हूँ जिसे सुन कर व्यक्ति नाना पातकों से भी छूट जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं । त्रिपुरा भगवती के अंश से उत्पन्न हुई महेश्वरी दुर्गादेवी देवगण को दुर्गतियों से रक्षा करने के कारण दुर्गा कहलायी । उसके स्मरण करने से ही दुरित (पाप) गमन (पलायन कर दूर हट जाते हैं) कर जाते है इसलिये दुर्गा कही गई है । उसका अति पवित्र माहात्म्य (गौरवकथा) पुराणों में गाया गया है । प्राचीन काल में देवगण के अधिपति इन्द्र के पास लक्ष्मी की वृद्धि होने से वह बहुत अधिक दर्प एवं अभिमान में मत्त हो गन्धर्वगण तथा अप्सराओं समेत कुतूहल से विन्ध्याचल पर्वत के शृङ्ग पर ऐरावत हाथी पर आसीन होकर गया । वहां कश्यपजी के पुत्र मुनियों में श्रेष्ठ सुनेत्र महर्षि ने अपने अत्यधिक ब्रह्मतेजसे चमकते हुए दीर्घ तपस्या की । उनकी धर्मपत्नी गौतम ऋषि की पुत्री पतिव्रता सुमित्रा समीपवर्त्ती नर्मदा नदी में स्नान करने को आई । इन्द्र ने अत्यन्त स्थूल शरीरवाली रंग में काली और आकृति में कुरूप उसे देख कर अत्यन्त गर्वपूर्ण में जोर-जोर हंस कर उसके पास जाकर अत्यधिक

जहासोच्चैः स्मयन्नतस्तामुपव्रज्य हेलया । प्रोवाच प्रहसन् वाक्यमात्मपातं विमूढधीः ॥८॥
काऽसि कस्याऽसि सुभगे ! महिषी प्रतिभासि मे । कतरं विपुलं लोके महिषं जनयिष्यसि ॥९॥
श्रुत्वाऽवहेलनं क्रुद्धा सुमित्रा पतिदेवता । प्राह शक्रं सुनिर्भर्त्स्य निःश्वसन्ती रुषान्विता ॥१०॥
दुर्मते ते दर्पहरो महिषो भविता द्रुतम् । शची ते महिषी भूत्वा जनयिष्यति तं रिपुम् ॥११॥
विसृष्टे तु महाशापे भीतो देवपतिस्तदा । दण्डवत् प्रणतो देवीं त्राहि त्राहीत्यवोचत ॥१२॥
ययौ स्वमाश्रमं स्नात्वा सुमित्राऽतिसुरोषिता । अनुवव्राज देवेन्द्रः शचीयुक्तो भयाऽऽतुरः ॥१३॥
दृष्ट्वा सुनेत्रमासीनं ज्वलन्तमिव पावकम् । प्रसादयामास शक्रः शचीयुक्तः पुनः पुनः ॥१४॥
ज्ञात्वा सोऽप्यपचारं तं दृष्ट्वाऽतिरुषितां प्रियाम् । भीतः सुनेत्रः प्राहेदमिन्द्रं पत्नीं सुतोषयत् ॥१५॥
देवेन्द्र शृणु वक्ष्यामि न श्रुतं किं त्वया पुरा । पतिव्रतानां माहात्म्यं सर्वलोकविशेषितम् ॥१६॥

रूक्षतापूर्वक परिहास किया । उस मूढ़बुद्धि इन्द्र ने अपने पतन का निमन्त्रण देने वाले वाक्य हंसते हुए कहे ॥१-८॥

"हे सुभगे ! आप कौन है ? किस की हैं ? मुझे तो आप महिषी मालूम होती हैं । इस जगत् में आप किस महिषी के बेटे (पाडे) को जन्म देंगी ?" अपने पतिको ही इष्टदेव माननेवाली सुमित्रा ने इस प्रकार असमयकी अपमान जनक बातें सुन भर्त्सनापूर्वक क्रोध से रुष्ट हो दीर्घ निःश्वास ले इन्द्र को कहा, "हे दुर्मते ! तेरा अभिमान चूर्ण करने वाला महिष शीघ्र ही उत्पन्न होगा (और) तेरी स्त्री इन्द्राणी महिषी (भैंस) बन कर उस शत्रु को जन्म देगी ।" तब सुनेत्रपत्नी द्वारा महाशाप के देते ही देवराज इन्द्र बहुत डरा हुआ दण्डवत् प्रणाम कर "मुझे बचाइये बचाइये" इस प्रकार बोला ॥९-१२॥

अत्यन्त क्रोध रोष से आकुल हो सुमित्रा स्नान कर अपने आश्रम में चली गई, अत्यधिक भयकातर हो शची के साथ इन्द्र भी उसके पीछे-पीछे गया । अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि के समान तेजोयुक्त महर्षि सुनेत्र को बैठा देख इन्द्र ने अपनी पत्नी शची के साथ बार-बार प्रार्थना की । ऋषि भी उस सब कुत्सितवृत्त को जानकर और अपनी धर्मपत्नी को अत्यन्त क्रुद्ध देख सुनेत्रने डरकर पत्नी को सन्तोष दिया और इन्द्रसे कहा, "हे देवराज ! मैं कहता हूँ, सुन ! क्या तूने पूर्व कालमें सम्पूर्ण लोकों में विशेषता पाये हुए पतिव्रताओं के माहात्म्यको नहीं सुना? यदि वे क्रुद्ध हो जाती हैं तो क्षणभर में

पतिव्रता यदि क्रुद्धा ब्रह्माण्डं नाशयेत् क्षणात्। प्रसन्ना विसृजेद्भूयो ब्रह्माण्डं सचराचरम् ॥१७॥
पतिव्रताया माहात्म्यात् स्तब्धः सूर्यश्चिरं ननु । पुरा दाक्षायणी मूर्तिर्यज्ञपत्नी पतिव्रता ॥१८॥
चकार प्रलयं लोके माहत्म्यात्तपसो ननु । तत् प्रसादय तामेव गत्वा नत्वा शचीयुतः ॥१९॥
न मे शक्तिः प्रतीकारे सर्वथा देवभूपते । पुराऽभून्मुद्गलो नाम तपोराशिर्द्विजोत्तमः॥२०॥
तस्य भार्या सानुमती सुन्दरी लोकपूजिता । तां वायुर्ददृशे नद्यां विगाहन्तीं सुमध्यमाम् ॥२१॥
सौन्दर्यसम्पदा तस्याः कामबाणप्रपीडितः । जघनं प्रविवेशाऽऽशु वस्त्रोत्क्षेपणहेतवे ॥२२॥
विज्ञाय वायोर्दौरात्म्यमूरुभ्यां तमकर्षत । संहृत्य स्वोरुमध्ये तं रुरोध तपसा हि सा॥२३॥
रुद्धो वायुर्यदा जातस्तया सर्वे जडीकृताः । लोकाः क्षणं तद्विचार्य लोकनाशमकारणात् ॥२४॥
तत्याज देहव्यापारहेतुं वायुं पतिव्रता । तदन्यं वायुमखिलमूरुमध्ये निरोधयत् ॥२५॥
अथ लोका मरुद्धीना विह्वला अभवन्मुहुः । न वाति जगति क्वाऽपि मारुतो लयमागतः॥२६॥

ब्रह्माण्ड का नाश कर देती हैं; प्रसन्न होकर फिर सचराचर (स्थावर जङ्गम प्राणी मात्र सहित) उस ब्रह्माण्ड को फिर पूर्ववत् सञ्जीवन प्रदान कर देती है। प्राचीन काल में यज्ञपत्नी पतिव्रता दाक्षोयणी मूर्त्ति ने तपस्या के प्रभाव की महिमा से लोक में प्रलय मचा दिया। इसलिये तू अपनी पत्नी शची को साथ ले प्रणामपूर्वक उसे ही प्रसन्न कर। हे देवराज! इसके प्रतीकार करनेमें सर्वथा ही मेरा सामर्थ्य नहीं है। प्राचीन कालमें तपःपुञ्ज मुद्गल नामक ब्राह्मण-श्रेष्ठ हो गया; उसकी सुन्दरी लोकसे पूजित सानुमती नामवाली पत्नी थी, उस सुमध्यमा नताङ्गी को वायु ने नदी में स्नान करते हुए देख लिया। उसकी सौन्दर्यसम्पत्ति से विमोहित हो कामदेवके बाणोंसे बहुत अधिक पीड़ित हो वायु उस ललनाके वस्त्रको उतारने के लिये जघन प्रदेश पर बहने लगा। वायुकी कुटिलता जान सती ने अपने दोनों जांघों के बीच उसे दबा दिया। इसप्रकार उसे दोनों उरु (जांघों) के बीच में रख अपनी तपस्यासे उस साध्वी ने रोके रक्खा। जब वायु रोक ली गई तो उससे सभी लोग एक साथ क्षण में ही निष्प्राण से जडवत् हो गये। बिना किसी कारण ही लोकनाश को विचार कर देहों के व्यापारके कारण प्राण नामक वायु को पतिव्रता ने छोड़ दिया और उससे इतर सम्पूर्ण वायु रूपों को अपनी जांघों के बीच में रोक रक्खा ॥१३-२५॥

फिर सभी लोग वायु से हीन होकर बहुत विकल हुए। जगत् में वायु नहीं बहता कहीं भी लय हो गया है;

वायुलोकेऽपि लुप्तं तं ज्ञात्वा तल्लोकवासिनः । निवेदयन् वायुनाशं देवेशस्य समीपतः ॥२७॥
निशम्य नाशं मरुतः शक्रोऽन्विष्याऽखिलं जगत्। विधातारमुपेत्याऽथ प्रणम्याऽतिसुदुःखितः ॥२८॥
भगवन् मरुता हीनो लोको नाशमुपैष्यति । न वर्धते तृणमपि निःसत्वं भुवनत्रयम् ॥२९॥
नेषत्तस्मै विप्रकृतं केनचित् क्रोधहेतवे । कुतो विलयनं प्राप्तो न जाने मारुतो बली ॥३०॥
श्रुत्वेन्द्रवचनं वेधाः ध्यात्वा तत्समचेष्टत । अवगत्याऽऽह हर्यश्वं शृणु शक्रा मरुद्गतिम् ॥३१॥
कुरुक्षेत्रे मुद्गलस्य मुनेर्भार्या पतिव्रता । तयोपसंहृतो वायुरपचाराल्लयं गतः ॥३२॥
ऊरुमध्ये कृशीभूतो लुप्तशक्तिः सुदुःखितः । पतिव्रता सानुमती तपस्तेजःसुसम्भृता ॥३३॥
प्रार्थिता सा विमुञ्चेत्तमुपायेन सुरेश्वर! । न त्वं साक्षात् प्रार्थय तां क्रुद्धा भस्मीकरिष्यति॥३४॥
मुद्गलं शरणं याहि स ते श्रेयो विधास्यति । श्रुत्वैवं धातृवचनं जगाम मुद्गलाऽऽश्रमम् ॥३५॥

वायुलोक के निवासीगणने भी अपने लोक में उसे लुप्त जान वायु के नाश के विलय में देवेश इन्द्र से आकर कहा। वायुका विलय सुन इन्द्रने सम्पूर्ण जगत्में उसे खोजकर लोकपितामह ब्रह्माके पास प्रणाम कर अत्यन्त दुःखित हो कहा "हे भगवन् ! वायुसे हीन लोक नष्ट हो जायगा; अभी एक तिनका भी नहीं बढ़ता, सारा त्रिभुवन प्राणहीन हो गया है। किसी ने क्रोधहेतु से तो उसका विलयन नहीं कर दिया है ? अत्यन्त बलवान् वायु क्यों विलुप्त हो गया हमें यह पता नहीं चला ?" ॥२६-३०॥

इन्द्र का कथन सुन कर ब्रह्मा ने ध्यान कर उसके विषय में पता लगायो। सब बातें जान कर इन्द्र को ब्रह्मा ने कहा, "हे इन्द्र ! मरुत् की गति कहां है सो सुन। कुरुक्षेत्र में मुद्गल ऋषि की धर्मपत्नी अतिपवित्र जीवन बितानेवाली पतिव्रता स्त्री है उसने वायु के अपचार (असदाचरण) से उसे लीन कर दिया। उसकी जांघोंके बीचमें दबा वह बहुत दुर्बल, खोई हुई शक्तिवाला अत्यन्त दुःखी है। हे सुरेश्वर ! तपस्याके तेजसे देदीप्यमान पतिव्रता सानुमती के पास उपाय सहित जा; प्रार्थना करने से वह उसे छोड़ सकती है। तू साक्षात् जाकर प्रार्थना मत करना, क्रुद्ध हो कहीं तुझे भस्म न कर दे। महर्षि मुद्गलकी शरणमें जा वह तेरा कल्याण करेगा।" वह इसप्रकार श्रीब्रह्माके वचन सुनकर देवगण सहित इन्द्र ऋषिकी पूजा आदि करने के लिये मुद्गल के आश्रम में गया। वह वनमें विराजे ऋषिके पास जाकर और उस पतिव्रतासे निरन्तर डरता हुआ प्रणामकर मारुतको छोड़ देनेके लिये प्रार्थना करने लगा। तब मुदगल ने देवेन्द्रको

सुरैः परिवृतः शक्रः पूजाद्याहृतिहेतवे । वने स्थितं तं समेत्य भीतस्तस्या निरन्तरे ॥३६॥
प्रणम्य प्रार्थयामास मारुतस्य विमुक्तये । मुद्गलः प्राह देवेन्द्रं मधुरं वचनं तदा ॥३७॥
देवेन्द्र शृणु सत्यं ते ब्रवीमि सुरसंयुतः । नाऽहं समर्थस्तां वक्तुं मारुतं विसृजेति वै ॥३८॥
मयैतद्विदितं पूर्वं तपसा सर्वमेव तत् । अपराधयुतं ते चेद्वक्ष्यामि विसृजेति ताम् ॥३९॥
मां साश्रमं सलोकं वा भस्मीकुर्यात् क्षणेन सा ।
तद्युक्तिं तेऽभिधास्यामि कुबेरवरुणाऽग्निभिः ॥४०॥
ब्रह्मचर्यसमाच्छन्नो निवसंस्त्वं समाहितः । सेवाभिः तोषय तां तुष्टां कुर्यात् समीहितम् ॥४१॥
ओमित्युक्त्वा देवपतिः कुबेरवरुणाग्निभिः । ब्रह्मचर्यं प्रतिच्छन्नो निवसंस्तत्र संयतः ॥४२॥
श्रद्धया तां सानुमतीं परिचेतः समन्ततः । तस्या प्रियतमा गावस्तत्सेवायां शतक्रतुः ॥४३॥
धनेशः फलमूलानामाहृतौ नित्यसंयतः । जलाऽऽहरणवस्त्रादिक्षालने वरुणोऽन्वहम् ॥४४॥
अग्निहोत्रस्य सम्पत्तावग्निस्तस्थे नु संयतः । देवेन्द्रो गा दुहन् दुग्धं प्रत्यहं समवर्धयत् ॥४५॥
अत्यन्तमधुरं दुग्धं स्नेहोत्कर्षमभूत्तदा । कुबेरोऽभ्याहरत् स्वादुफलमूलानि चाऽन्वहम् ॥४६॥

मधुर वचन कहे, "हे देवराज ! सुन तू देवगण सहित आया है तुझे सत्य कहता हूँ मैं उसे यह कहने में समर्थ नहीं कि "तू मारुत को छोड़।" मैंने तपस्या के द्वारा इस सब को पहले से ही जान लिया, अब अपराध किये हुए वायु को तू छोड़ इस प्रकार उसे कहूँ तो वह लोक और आश्रम समेत मुझे क्षण मात्र में ही भस्म कर देगी अतः तुझे युक्ति बताता हूँ। कुबेर, वरुण और अग्नि के साथ ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर पूर्ण तपस्या में मन लगा सेवा से उस पतिव्रता को सन्तुष्ट कर वह प्रसन्न होकर तेरा अभीष्ट पूरा करेगी।" ॥३१-४१॥

देवराज इन्द्र ने "हां" कह कर कुबेर, वरुण और अग्नि के साथ ब्रह्मचर्यतत्पर हो संयमपूर्वक वहां रहते हुये श्रद्धासहित उस सानुमती की सब प्रकार से सेवा की। इन्द्र उसकी अत्यधिक प्यारी गौओं की सेवा में लगा; कुबेर नित्य समाहित मन से फल तथा कन्दमूल लाने में नियुक्त हुआ। प्रतिदिन जल ढोने व वस्त्र आदि के धोने में वरुण लग गया। अग्निहोत्रसम्पन्न करने लिये अग्नि ने संयत होकर सेवा की। देवराज प्रतिदिन गायों को दूहता हुआ

वरुणः स्वादुभूतं वै तोयमानयतीप्सितम् । एवं तैरनिशं देवी सेव्यमाना सुतोषिता ॥४७॥
प्रसन्ना प्राह भर्तारमेकान्ते समुपस्थितम् । एते विद्यार्थिनो देवपरिचर्यापरायणाः ॥४७॥
सम्प्रत्यनुग्रहे योग्या इति मे भाति सत्यतः । विशेषतस्तु मामेव सेवमानाः कुतस्त्विमे ॥४९॥
अत्र त्वया चाऽनुमतास्तत्र हेतुं वद प्रभो । पृष्ट एवं मुद्गलस्तु स्मितपूर्वमभाषत ॥५०॥
शृणु भद्रे ! क्षमायुक्ता न रोषं कर्तुमर्हसि । क्रोधेन नश्यति तपस्तस्मात् क्षान्ता सदा भव ॥५१॥
त्वयाऽपचारी संरुद्धो मारुतो जघनाऽन्तरे । तेन हीनेन लोकोऽयमवसादमुखं गतः ॥५२॥
तस्याऽद्य वायोरुद्धस्य चाऽतीयुर्दशवत्सराः । तं विमोचयितुं चैते शक्राऽग्निजलयक्षपाः ॥५३॥
भीतास्त्वत्सेवनपराः प्रसादं कर्तुमर्हसि । तदन्तरे प्रसन्नां तां ज्ञात्वा शक्रमुखाः सुराः ॥५४॥
कृताञ्जलिपुटा नत्वा प्रसादायोपसंस्थिताः ।
तान् दृष्ट्वाऽतिप्रसन्ना सा मुमोच मारुतं तदा ॥५५॥

उनके दूध को बढ़ाने लगा जो दुग्ध अत्यन्त मधुर और सचिक्कण हो गया । कुबेर प्रतिदिन स्वादिष्ट कन्द मूल और फल लाने लगा। वरुण अत्यन्त मधुर इच्छित स्वादु जल लाता था । इसप्रकार उन्होंने साध्वी(सानुमती) की सेवा कर उसे प्रसन्न कर लिया ॥४२-४७॥ प्रसन्न हो उसने एकान्त में उपस्थित अपने पति से कहा, "ये विद्यार्थीगण देवपरिचर्या में पूर्ण तत्पर हैं। अब ये अनुग्रह करने के योग्य हो चुके है यह मुझे सत्य ही प्रतीत होता है। विशेष रूप से ये मेरी ही सेवा क्यों करते हैं ? इस विषय में आपने उन्हें अनुमति दी है सो हे प्रभो ! कारण बताइये।" इस प्रकार पूछने पर मुद्गल कुछ स्मितहास्य करताहुआ बोला ॥४८-५०॥

"हे कल्याणि ! तू क्षमायुक्त है, तुझे कभी क्रोध नही करना चाहिये। क्रोध से तप का नाश होता है इसलिये सदा ही क्षमाशील रह ॥ ५१ ॥ तू ने अपकार्य करने वाले मारुत को अपने जघन प्रदेश में रोक रक्खा है ; उसके बिना यह सारा लोक दुःखी हो गया है। आज इस वायुको उस स्थान में बन्द किये दश वर्ष का समय बीत गया उसे छुड़ाने के लिये ये इन्द्र , अग्नि , वरुण और यक्षाधिपति कुबेर डर कर तुम्हारी सेवा में तत्पर हैं अब उन पर अनुग्रह करो।' इसके बाद इन्द्र प्रमुख देवगण उसे प्रसन्न जानकर हाथ जोड़ विनत हो अनुग्रह पाने के लिये सम्मुख आगये। तब उन्हें देख अत्यन्त प्रसन्न हो (सती ने) मारुत को छोड़ दिया ॥ ५१-५५ ॥

समीरो निर्गतो रोधाल्लज्जितः प्रणिपत्य ताम् । ययौ शक्रादिसंयुक्तः नत्वा मुद्गलमेव च ॥५६॥
एवं पुरातनं वृत्तं स्वारोचिषसमुद्भवम् । तस्मात्त्वमिन्द्रस्तार्त्तीयो रैवताऽन्तरसंस्थितः ॥५७॥
प्रसादयाऽत्र तामेव नाऽन्यथाऽभयसंक्षयः । श्रुत्वा मुनेर्वचस्त्वेवं सुमित्रामभिजग्मतुः ॥५८॥
शची तां प्रार्थयामास भूयो दैत्यमुपाश्रिता । ततः सा शक्रमहिषीमब्रवीत् कृपयाऽन्विता ॥५९॥
गच्छ भद्रे प्रसूयाऽऽशु महिषं शापतश्च्युता ।
इन्द्रोऽपि भ्रष्टसर्वस्वो देवीमाराध्य सत्वरम् ॥६०॥
देव्या हतरिपुर्भूत्वा पुनरेष्यति तं पदम् । एवं सम्प्राप्य शापान्तमाश्रमात्तौ विनिर्गतौ ॥६१॥
अथेन्द्राणी क्षणेनैव महिषी समजायत । गिरिशृङ्गनिभा घाऽतिविकटा घोररूपिणी ॥६२॥
भूत्वा सैवं तु महिषी प्राविशद्वनमुत्तमम् । निघ्नन्ती व्याघ्रसिंहेभान् दारयन्ती गिरेर्गणान् ॥६३॥
प्रविवेश महारण्यं दुर्गं प्राणिविवर्जितम् । तत्राऽऽदिदैत्यराजस्य कैटभस्य महौजसः ॥६४॥
कृत्स्नं वीर्यं पर्वताभं तृणैरन्तर्हितं स्थितम् । महिषी तत्तृणं जग्धुं प्रवृत्ताऽतिक्षुधाऽन्विता ॥६५॥

अवरोध से निकल कर वायु ने लज्जित होकर उस पतिव्रता को प्रणाम कर और मुद्गल महर्षि को नमस्कार कर इन्द्रादि के साथ चला गया ॥५६॥ "यह पहले स्वारोचिष मन्वन्तर की घटी हुई घटना है। तू रैवत मन्वन्तर में स्थित तृतीय इन्द्र है उसे ही प्रसन्न कर नहीं तो तेरे अभय होने का कोई ठीक नहीं।" इस प्रकार मुनि का वचन सुन कर दोनों सुमित्राके पास चले गये। शची ने दैत्य के साथ ही उस पतिव्रताकी प्रार्थना की। तब उसने कृपान्वित हो शक्र भार्या इन्द्राणी से कहा, "भद्रे ! शीघ्र ही महिष को उत्पन्न कर तू शापसे छूट जा। इन्द्र भी अपनी सर्वस्व खोया हुआ देवी की आराधना कर देवी द्वारा शत्रु के मारे जाने पर फिर उसी पद को प्राप्त कर लेगा। इस प्रकार शाप के अन्त का उपाय पाकर वे दोनों आश्रम से चले गये। अनन्तर इन्द्राणी एक क्षणभर में ही महिषी (भैंस) बन गई। पर्वत के शिखर के समान बहुत अधिक विकट अति कुरूप हो वह महिषी इस प्रकार वन में घुसी। (मार्ग में) व्याघ्र, सिंह और हाथियों को मारती हुई गिरि पर्वतों को विदीर्ण करती वह अत्यन्त निर्जन और प्राणिरहित अत्यन्त दुर्गम महा वनमें चली गई। उसमें आदि दैत्यराज महातेजस्वी कैटभका पर्वतके समान वीर्य तिनकों से छाया हुआ पड़ा था वह महिषी अत्यन्त भूख से व्याकुल हुई उस तृणसमूह को खाने लगी ॥ ५७-६५ ॥

शीतेन तद्घनीभूतं स्फटिकाऽद्रिरिव स्थितम्। निश्वासोष्मसमाक्रान्त्या द्रवीभूतं क्रमेण तत्॥६६॥
भक्षितं तत्तृणयुतमशेषं यर्हि चाऽभवत्। तदा सा गर्भिणी भूत्वा महिषं समजीजनत् ॥६७॥
प्रसूय महिषं शापान्मुक्तेन्द्राणी दिवं ययौ। वने तस्मिन् स महिषः कालेन समवर्धत ॥६८॥
महागिरिप्रमाणोऽसौ शृङ्गाभ्यां पर्वतान् बली।
चिक्षेप लीलया भूयः खुरैः पृथ्वीं व्यदारयन् ॥६९॥
अथाऽसुरास्तं समेत्य दैत्यराज्ये न्यवेशयन्। स प्राप्य दैत्यराजत्वं युयोधाऽसुरचोदितः ॥७०॥
देवैः शक्रादिभिर्भूयो यममग्निं धनेश्वरम्। जित्वाऽधिकारमकरोत् स्वयमेव महासुरः ॥७१॥
शक्रञ्च वरुणं सोमं जित्वा श्रियमुपाऽहरत्। त्रिलोकीशासनपरः महिषः समजायत ॥७२॥
एवं निराकृतास्तेन महिषेण दुरात्मना। शक्रादिदेवाः सञ्जग्मुः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ॥७३॥
तस्मै निवेदयामासुर्महिषेण पराभवम्। भगवन् महिषाऽऽख्येन वयं सर्वे विनिर्जिताः ॥७४॥

शीत के कारण वह अत्यन्त गाढा हुआ स्फटिक पर्वत के समान स्थित था उस महिषी के नथुनों से निकले श्वां की ऊष्मा (गरमी) से धीरे-धीरे गलने लगा जब वह सब तृणों के साथ मिल गया तो उसे सम्पूर्णतया महिषी खा लिया। तभी उसने गर्भिणी होकर महिषशावक को जन्म दिया ॥ ६६-६७ ॥

इन्द्राणी उस महिषको उत्पन्नकर शापसे छुटकारा पाकर स्वर्ग लोकमें चली गई। उस प्राणीरहित निर्जन वनमें महिष समय के साथ बढने लगा। आकार में विशाल पर्वत के समान वह बलवान् महिष अपने दोनों सींगों से पर्व को उखाड़कर उछालकर फेंक देता; बारम्बार पृथ्वी को अपने खुरों से फाड़ता। अनन्तर असुरगणने मिलकर उसे दैत्य का राजा बना दिया। दैत्यराज होकर उसने असुरवृन्द से प्रेरणा पाकर इन्द्र आदि देवगण के स युद्ध किया। फिर यमराज, अग्नि तथा कुबेर को स्वयं जीतकर अपना अधिकार कर लिया ॥६८-७१॥

इन्द्र, वरुण तथा सोमको जीतकर उनसे लक्ष्मी को बलात् छीन लिया। महिषने (इसप्रकार) तीनों लोकों शासन कर लिया ॥७२॥ इस प्रकार दुष्ट आत्मा उस महिष द्वारा निकाले गये इन्द्र आदि देवगण पद्मयोनि भगव ब्रह्मा के पास गये। उनसे महिष के द्वारा अपने पराजय का वर्णन किया, " हे भगवन्! महिष नामक दैत्य द्वारा ह सभी जीत लिये गये हैं। हम लोगों के पद (अधिकार) तथा सर्वस्व छिन जाने के कारण पृथ्वी पर मनुष्यों के समा

हृताऽधिकारसर्वस्वाश्चरामो भुवि मर्त्यवत्। विचिन्तयाऽत्रोपायं रक्षाऽस्मान् शरणागतान् ॥७५॥
निशम्य शक्रादिवचो ध्यात्वा लोकपितामहः। मत्वा गुरुतरं कर्म दध्यौ विष्णुञ्च शङ्करम् ॥७६॥
अथ तौ समनुप्राप्तावुत्थाय बिधिरादरात्। गृहीत्वा तावासनयोर्विनिवेश्याऽभ्यपूजयत् ॥७७॥
अथ देवैः शक्रमुखैः प्रणतौ हरिशङ्करौ। निशम्य दैत्यराजस्य चेष्टां विधिमवोचतुः ॥७८॥
नैतदल्पं विजानीहि महद्भयमुपस्थितम्। तपसा सर्वदेवानामवध्योऽयं महाऽसुरः ॥७९॥
त्वत्तः प्राप्तवरः पूर्वं महिषोऽसुरनायकः। न देवैर्नाऽसुरैर्मर्त्यैर्न तिर्यग्भिर्भवेन्मृतिः ॥८०॥
प्रत्येकं मिलितैर्वापि पुरुषैर्न पराजयः। न कदाचिदिमं जेतुं योषित् काऽपि भविष्यति ॥८१॥
नाऽपि देवगणाऽन्येन क्वचित्तस्य पराजयः। एवं पुरा प्राप्तवरो विषमं समुपस्थितम् ॥८२॥
नाऽत्र किञ्चित् ध्यातुमपि शक्यते तस्य वै वधे।
नाऽस्माभिर्वध्यता चाऽस्य नान्येभ्योऽपि च वध्यता ॥८३॥
तस्मादत्र महादेवीं त्रिपुरां परमेश्वरीम्। उपस्थास्याम एवाऽऽशु साऽस्माकं शं विधास्यति ॥८४॥

घूमते हैं। इस विषय में कोई उपाय बतावें। हम आपकी शरण में आये हैं, हमारी रक्षा कीजिये।" ॥ ७३-७५ ॥

इन्द्रप्रभृति देवगण की वाणी छोड़कर लोक पितामह ब्रह्मा ने इसे बड़ा गुरुतर कार्य मान कर विष्णु और शंकर का ध्यान किया ॥७६॥ अनन्तर जब वे दोनों आगये तो ब्रह्मा ने उठकर आदरपूर्वक उनका अभिवादन कर आसन पर बिठाकर भलीभांति पूजाकी ॥७७॥ तत्पश्चात् इन्द्रप्रमुख देवगण द्वारा प्रणाम किये गये विष्णु और शंकर देवों द्वारा सारा(देवोंद्वारा सारा दुःख वर्णन करने पर)ने दैत्यराजकी सारी चेष्टाको सुनकर ब्रह्मा से कहा ॥७८॥ "आप इसे छोटा स्वल्प मत समझना अभी बड़ा भय का कारण उपस्थित है। अपनी तपस्या से यह महादैत्य सभी देवगण से अवध्य है (नहीं मारा जा सकता)। पूर्वकालमें आपसे ही असुरों के अधिपति महिषने वरदान मांगा था; 'न देवों से,न दैत्यों से,न ही मर्त्य लोगों से तथा न पशु पक्षियों से मेरी मृत्यु हो।' इनमें से न प्रत्येक और न सब मिलकर ही उसकी पराजय कर सकेंगे। न कभी इसे जीतने को कोई स्त्री समर्थ होगी, न किसी अन्य देवगणसे इतर किसी व्यक्ति द्वारा इसका पराजय होगा। इस प्रकार यह प्राचीन समय में वर पाया हुआ है। अब विषम परिस्थिति उपस्थित होगई है। इस विषय में उसका वध करने को कुछ भी ध्यान में नहीं आता। न तो यह हम लोगों से वध्य हो सकेगा और न किन्हीं अन्यों से इसका वध किया जायगा। इसलिये इस विषय में भगवती महादेवी त्रिपुरा परमेश्वरी की प्रार्थना करेंगे वह शीघ्र ही हमलोगों का कल्याणसाधन करेगी।" ॥७९-८४॥

इति निश्चित्य वैकुण्ठमुखास्तां तुष्टुवुः पराम् । दुर्गतस्तारयेत्येवमुच्चैर्देवगणैर्वृतोः ॥८५॥
विदित्वैतद्वैकृत्यं महिषस्य चमूपतिः । विडालाक्षोऽसुरैर्युक्तो हन्तुं देवान् समाययौ ॥८६॥
बिभ्युर्देवाः समालोक्य दैत्यं योद्धुं समागतम् । हरिश्चुक्रोध शम्भुश्च क्रुद्धाद्धरिमुखात्तदा ॥८७॥
शम्भोर्मुखाद्विधिमुखाच्छक्रादिसुरवक्त्रतः । निर्गत्य सुमहत्तेजः क्षणेनैकीभवत्तदा ॥८८॥
तत्तेजःपुञ्जमतुलं सर्वदेवविनिर्गतम् । नारीरूपमभूत् कान्त्या त्रिलोकीं व्याप्य संस्थितम् ॥८९॥
तां पप्रच्छुर्हरिमुखा नत्वा का त्वमितीश्वरीम् । सा प्राह विष्णुप्रमुखान्मेघगम्भीरया गिरा ॥९०॥
स्मृता दुर्गतिनाशाय दुर्गाऽहममरैर्ननु । प्रसन्ना भवतां दैत्यानरीन् हन्मि भवत्स्तुता ॥९१॥
श्रुत्वा देवीवचो विष्णुर्दुर्गे हंसि रिपुं कथम् । न सुरैर्न तु तद्भिन्नैर्हतः स्यात् सोऽसुरः क्वचित् ॥९२॥
अथ दुर्गा प्राह हरिं भयं त्यज हरे द्रुतम् । न भिन्ना नाऽपि चाऽभिन्ना सर्वदेवसमुद्भवा ॥९३॥
निहन्मि दैत्यं महिषमायुधानि च वाहनम् । कल्पयन्तु सुराः सर्वे युधि जेष्यामि वो रिपुम् ॥९४॥

यह निश्चय कर विष्णु प्रमुख देवगण ने भगवती परा की स्तुति की। उन्होंने दुर्गम इस दैत्य से हमें उद्धार कीजिये" इस प्रकार ऊंचे स्वर से देवगणसहित प्रार्थना की। देवता लोगों के इस प्रार्थनाकृत्य को जानकर महिष का सेनापति विडालाक्ष दैत्य असुरों के साथ देवगण को मारने के लिये आगया। दैत्य को युद्ध करने के लिये आया देख देवता लोग डरे। विष्णु और शङ्कर दोनों ने क्रोध किया। क्रुद्ध विष्णु, शम्भु, विधाता और इन्द्रादि देवगण के मुख से बहुत महान् दीप्तिमान् तेज निकल क्षणमात्र में ही एकाकार होगया। सम्पूर्ण देवगणके शरीर से निकला वह अतुलनीय तेजःपुञ्ज नारीस्वरूप में स्थिर हो गया स्वकान्ति से सारी त्रिलोकी में व्याप्त हो स्थित हुआ ॥ ८५-८९ ॥

विष्णु प्रमुख देवगण ने उस ईश्वरी को प्रणाम कर पूछा, "आप कौन हैं ?" उसने मेघगम्भीर वाणी में विष्णु प्रभृति सुरवृन्द से कहा, "देवगण द्वारा उनकी दुर्गति नाश करने को मैं निश्चय ही दुर्गा हूँ तुम लोगों की स्तुति से प्रसन्न हो तुम्हारे शत्रुगण दैत्यों को मैं मार गिराऊँगी।" ॥९०-९१॥

विष्णु ने देवी की वाणी सुन कहा, "हे दुर्गे ! तू शत्रु को कैसे मारेगी ? वह असुर न तो देवगण से एवं उनसे भिन्न किसी प्राणी से ही कहीं भी नहींमारा जायगा।" ॥९२॥ दुर्गा ने विष्णुको कहा, "हे हरे ! तू शीघ्र भयको छोड़, सम्पूर्ण देवगण के तेज से प्रादुर्भूत हो मैं न भिन्न हूँ और न अभिन्न हूँ। मैं युद्ध में इस महिष दैत्य को मारूंगी। सभी देवतागण अपने अपने अस्त्रों और वाहन सज्जितकर तैयार हो जाओ। निश्चय ही मैं तुम्हारे शत्रु को जीतूंगी।" ॥९३-९४॥

एवमुक्ता दुर्गया ते स्वायुधेभ्योऽमरा द्रुतम् । निर्यान्त्यायुधजालानि ददुर्देव्यै पृथक् पृथक् ॥९५॥
हिमाद्रिर्वाहनं सिंहं स्वात्वसारं ददौ तदा । विश्वकर्मा भूषणानि समुद्रो रत्नमालिकाम् ॥९६॥
वरुणो वारुणीपात्रमानन्दरससम्भृतम् । अथ सा सिंहमारूढा भूषिताऽऽयुधसंयुता ॥९७॥
त्रिलोकीमभिसंव्याप्य काशयन्ती स्वतेजसा । स्तूयमाना स्थिता तत्र दैत्यान् हन्तुं कृतोद्यमा ॥९८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दुर्गोपाख्याने देव्या प्रसन्नया महिषवधाय देवीसमुद्भवनेन देवतेजःसम्भूतरूपया विचित्रशस्त्रैः सज्जीभवनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३७३५॥

दुर्गा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवगण ने अपने आयुधों से निकले अस्त्र समूह को पृथक्-पृथक् देवी को शीघ्र दिया। तब हिमाचल ने सिंह वाहन और अपना अश्मसार (वज्र का) अस्त्र दिया; विश्वकर्मा ने आभूषण, समुद्र ने रत्नों की माला तथा वरुणदेव ने आनन्दरस से पूर्ण वारुणीपात्र दिया। अनन्तर सिंह पर आरूढ होकर नाना आभूषणों तथा आयुधों से युक्त हो सम्पूर्ण त्रिभुवन को व्याप्त कर अपने तेज से प्रकाशित करती हुई देवगण से स्तुति की जाकर भगवती त्रिपुरा वहां दैत्यगण को मार वध करने के लिये तत्पर हो गई ॥९५-९८॥

इसप्रकार इतिहासोत्तम श्रीसम्पन्न त्रिपुरारहस्यके माहात्म्यखण्डमें दुर्गाके उपाख्यान प्रकरण में विष्णु और शिवके सविशेष परामर्श से देवों द्वारा त्रिपुरा की तपस्या एवं स्तुति और देवी के दर्शनों से कृतकृत्य हो उन्हीं के तेज से रूप-धारण करने पर नाना शस्त्रों से सज्जित हो दैत्य महिषके वधकी तैयारी नामक पैंतालीसवां अध्याय समाप्त।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

देव्या महिषसैन्यपराजयमनु महिषवधेन स्वस्थतांगतैर्देवगणैर्भगवतीस्तुति पुरःसरं देवीपूजनवर्णनम्

अथ सा सिंहसंस्थाना कोटिसूर्यसमद्युतिः । विविधाऽऽयुधसंराजत्सहस्रभुजशोभिनी ॥१॥
किरीटकोटिसंक्रान्तसूर्यमार्गा त्रिलोचना । कनकाऽम्बरसंवीता रत्नभूषणभूषिता ॥२॥
समुद्रदत्तं जलजं पूरयामास हर्षिता । सिंहो जगर्ज तमनुजगुर्देवा जयेति ताम् ॥३॥
जयसिंहध्वनिभ्यां स शङ्खनादोऽतिभैरवः । स मूर्च्छितस्त्रिभुवनं दारयन्निव सम्बभौ ॥४॥
तेन शब्देन वित्रस्तो विडालाक्षः पलायितः । शब्दश्रुतिसमुद्भूतरोषो महिषदानवः ॥५॥
ससेनोऽभ्याययौ शब्दमनुलक्ष्याऽतिवेगितः । विडालाक्षेण संश्रुत्य देव्या परमवैभवम् ॥६॥
क्रोधसंमूर्च्छितोऽभ्यागान्महिषो दैत्यसंवृतः । उदग्रश्चिक्षुरश्चाऽसिलोमा दीर्घहनुर्बली ॥७॥

छियालीसवां अध्याय

सब देवगण द्वारा भगवती को विविध शस्त्रास्त्र और पानपात्र आदि उपहार में दिये जाने के अनन्तर सिंह पर आरूढ हो करोड़ों सूर्यों की समानकान्तिवाली, विविध अस्त्रों से शोभित हजार भुजाधारिणी किरीटमें जटित रत्नप्रभा भासित सूर्यकी आलोकसम्पन्न दीप्ति जिसका अनुकरण करती है ऐसी तीन नेत्रधारिणी अत्यन्त सुवर्णमयकान्तिवाले वस्त्रों वेष्टित वह भगवती समुद्र के द्वारा दिये गये शंख को अतीव हर्षित हो बजाने लगी । उस महादेवी के पीछे सिंह ने गर्जना की और देवगण ने जयनाद किया ॥१-३॥ जय-जयकार के शब्दघोष तथा सिंहगर्जन दोनों के साथ भगवती का शङ्खनाद अत्यन्त भीषण भैरवरूप था और वह विडालाक्ष उस त्रिभुवन को विदीर्णकरनेवाले जैसे नाद को सुन मूर्च्छित हो गया । उस शब्द से विशेष त्रस्त हो विडालाक्ष भाग गया । वह दानव महिष तीनों नादों के घोष की ध्वनि सुन अत्यन्त क्रुद्ध शब्द का लक्ष्य वेधकर (सूध बांधकर) अत्यन्त वेग से देवी के उत्कृष्ट वैभव को विडालाक्ष से सुनकर क्रोध से अत्यन्त चेतना खोकर (सन्तुलन रहित हो) दत्यगण के सहित आगे आया । महिष के (उस सेनामें) बलशाली उदग्र, चिक्षुर, असिलोमा, दीर्घहनु और विडालाक्ष ये पांच सैनिक दैत्यों की अनेक कोटियां (श्रेणियाँ)

बिडालाक्षश्चेति पञ्च सैनिका महिषस्य ते । अनेककोटिदैत्यानां सेनाभिः परिवारिताः ॥८॥
उग्रवीर्यस्तथोग्राऽऽस्यः प्रलम्बश्च प्रभञ्जनः । सारणः कृकलासश्च काकवक्त्रो विशङ्कटः ॥९॥
महिषस्य सुता ह्येते महावीर्यपराक्रमाः । योद्धुमभ्याययुर्देवीं धृतशस्त्राः प्रकोपनाः ॥१०॥
भेरुण्डः काकतुण्डश्च कुरण्डश्चण्डविक्रमः । भाण्डीरडिम्भौ क्रकचः काचकान्तः कटोत्कटः ॥११॥
नवैते मन्त्रिणस्तस्य योद्धुं देवीं समाययुः । सेनाभिः कोटिसंख्याभिः प्रत्येकमभिसंवृताः ॥१२॥
अथाऽभवन्महायुद्धं दैत्यानां त्रिदशैः सह । शस्त्रोऽस्त्रवर्षणं भीरुहृदयस्य विदारणम् ॥१३॥
शस्त्रास्त्रैर्दैत्यसेनां तां जघ्नुर्देवाः समन्ततः । दैत्याश्च देवान् संजघ्नुरेवं युद्धमभूत्तयोः ॥१४॥
ततो भेरुण्डप्रमुखाः समेत्याऽमरपुङ्गवान् । शस्त्रास्त्रैर्ववृषुस्तैस्ते सञ्जाता हीनवर्चसः ॥१५॥
दृष्ट्वाऽमरपराभूतिं दुर्गा सिंहमचोदयत् । दुर्गयाऽधिष्ठितः सिंहः प्रोड्डीय गगनाऽन्तरम् ॥१६॥

लेकर अपने सैन्यदलके साथ उपस्थित थे। उग्रवीर्य, उग्रास्य, प्रलम्ब, प्रभञ्जन, सारण, कृकलास, काकवक्त्र तथा विशङ्कट ये महिष के पुत्र महावीर्यसम्पन्न और पराक्रमशाली विशेष क्रोधयुक्त होकर देवी भगवती से लड़ने को अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हो आये ॥४-८॥

भेरुण्ड, काकतुण्ड, कुरण्ड, चण्डविक्रम, भाण्डीर, डिम्भ, क्रकच,काचकान्त एवं कटोत्कट ये नौ ही उसके मन्त्रीगण देवी के साथ युद्ध करने आये। प्रत्येक कोटि संख्यावाली सेनाओं के प्रधान ये अध्यक्ष थे। दैत्यगण का देवगण के साथ महायुद्ध हुआ। (इनमें जो लड़ाई छिड़ी कि) शस्त्रों और अस्त्रों की वर्षा कायर पुरुषके हृदयविदीर्ण करनेवाली थी। देवगण ने शस्त्रों और अस्त्रों से दैत्य सेना को चारों ओर से मार गिराया और दोनों पक्षों के योद्धाओं ने अत्यन्त दारुण युद्ध किया। दैत्यों ने देवगण को पीछे हटाया इस प्रकार देवासुरसंग्राम चला। इसके अनन्तर भेरुण्ड प्रमुख दैत्यगण ने एक साथ मिल कर देवगण पर अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार किया जिससे वे सब अत्यन्त निर्बल बन गये ॥९-१५॥

देवगण को पराजित होते देख भगवती ने सिंह को प्रेरित किया। दुर्गा से अधिष्ठित सिंह आकाश के अन्तराल में उठ कर दैत्यों की सेनाओं पर इतने प्रबल वेग से झपटा जैसे गरुड सर्पों पर झपटता है। किन्हीं राक्षसों

न्यपतद्दैत्यसेनासु गरुत्मान् पन्नगेष्विव ।

नखैः कांश्चिन्मुखैः कांश्चित् कांश्चिल्लाङ्गूलविभ्रमात् ॥१७॥

सटाविक्षेपतः कांश्चिदुरसा वेगतोऽपि च । दैत्यान् विनाशयामास गरुत्मानिव पन्नगान् ॥१८॥

हृतगण्डकर्णपार्श्वनासाहृत्करपादकाः । क्रोडकुक्षिशिरोहीना दैत्याः सिंहेन चाऽभवन् ॥१९॥

दैत्यारण्ये महावह्निरिव जातो मृगाऽधिपः । क्षणेन नाशितप्रायं सैन्यं दृष्ट्वा च सैनिकाः ॥२०॥

उदग्राऽऽद्याः शस्त्रधराः सिंहं हन्तुं प्रचक्रमुः ।

सिंहोऽपि तान् युयोधैको दुर्गाया ह्यभिरक्षितः ॥२१॥

नखैर्ददार गात्राणि तेषां वज्रसमानि वै । अथोत्पत्य नभो वेगान्निपत्योदग्रमूर्धनि ॥२२॥

पिपेष सिंह उरसा दैत्यानाञ्च प्रपश्यतः । दृष्ट्वा तादृक् तस्य वीर्यं प्रशंसुर्देवदानवाः ॥२३॥

पुनर्निमेषेण जवाद्युगपच्चिक्षुरादिकान् । उत्पपात गृहीत्वा खं पादैर्गृध्र इवाऽऽमिषम् ॥२४॥

को नखों से, किन्हीं को मुखों से और कितनों को अपने पूँछ की लपेट में ले कर तथा कइयों को अपने अयाल के फटकारने से व औरों को अपनी छाती के जोरसे अति प्रबल वेग करके भी दैत्यगणको इस प्रकार नष्ट करने लगा जैसे सर्पों को गरुड पक्षी अनायास हसिमान करता है ॥१६-१८॥

सिंह के द्वारा दैत्यलोगों के कपोलों, कान के पास के भागों, नाक, हृदय, हाथ और पैरों का हरण कर दिया गया व उन्हें पेट, कोख, तथा शिर से रहित बना दिया गया। दैत्यों के वन में सिंह ने महा-दावानल के समान रूप धारण कर क्षण मात्र में ही दैत्यप्रधानसैनिकों ने विनष्ट हुई दैत्यसेना को देखउदग्र आदि महाअसुरगण शस्त्रों को लेकर सिंह को मारनेके लिये दौड़े। एकाकी सिंह भी भगवती दुर्गा के संरक्षण में उन सबसे लड़ने लगा ॥१९-२१॥

उनके वज्र के समान अभेद्य शरीरों को सिंह ने दैत्यगण के देखते-देखते (सामने ही) आकाश में ऊपर छलांग मारकर उदग्र के शिर पर गिरकर उसे अपनी छाती से पीस दिया। उसके इसप्रकार के पराक्रमको देखकर देवगण तथा दानवों ने (भूरि-भूरि) प्रशंसा की ॥२२-२३॥

फिर वह एक निमिषमात्र में ही वेग से चिक्षुर आदि को पैरों से थाम कर आकाश में उड़ गया

उदरं पाटयामास हरिणानां वृको यथा । ते पाटितोदराः सर्वेऽपतन् भूमौ गताऽसवः ॥२५॥
हत्वेवं सैनिकान् पञ्च भूयः सेनामनाशयत्। हतान् सेनापतीन् दृष्ट्वा भेरुण्डाद्यास्तु मन्त्रिणः ॥२६॥
सकृदभ्याययुः सिंहं हन्तुं ते बलिनो नव । नवभिस्तैश्चिरं युद्ध्वा कुरण्डं चण्डविक्रमम् ॥२७॥
तलप्रहारेण सकृन्नाशयामास वै क्षणात् । भेरुण्डं भक्षयामास भाण्डीरञ्च व्यदारयत् ॥२८॥
पातयन् डिम्भमुरसा क्रकचञ्च कचोत्कटम् ।
लाङ्गूलेनाऽऽहरत्काचकान्तस्याऽऽशु शिरो महत् ॥२९॥
चपेटया काकतुण्डमनयद्यमसादनम् । एवं मन्त्रिगणं हत्वा स सिंहो धुतकेसरः ॥३०॥
प्रावृड्जलदवद्भीममभुञ्चन्निनदं तदा । निशाम्य निहतान् सैन्यपतीन् शूरांश्च मन्त्रिणः ॥३१॥
महिषस्य सुता ह्यष्टौ महाबलपराक्रमाः । योद्धुमभ्याययुर्वीं युद्धशस्त्राऽस्त्रकोविदाः ॥३२॥
उग्रवीर्यो गदाहस्तो योधयामास तं हरिम् । युद्ध्वा चिरं तलहतः पपात भुवि मूर्च्छितः ॥३३॥

जैसे गीध मांस को उठालेता है ॥२४॥ जैसे भेड़िया मृगों का पेट फाड़ डालता है वैसे ही उसने उनके पेट चीर डाले। वे फटेपेटवाले राक्षस पृथ्वी पर मृतक हो गिर पड़े। इस प्रकार इन पांच सैनिकों को मारकर फिर वह दैत्यसेना को नष्ट करने लगा। सेनापतियों को मारे गये देख भेरुण्ड आदि नौ बलवान् मन्त्रीगण सिंह को मारने को तत्काल आये। उन नवों से दीर्घ समय तक युद्धकर उसने प्रचण्ड विक्रमवाले कुरण्ड को अपने पैरों के तलवों से प्रहार कर एक वार ही क्षण भर में मार डाला। भेरुण्ड को वह खागया और भाण्डीर को चीर डाला। सामने की छाती से डिम्भ, क्रकच और कचोत्कट को मारडाला। अपनी पूँछ से काचकान्त का विशाल सिर काट दिया। अपने पञ्जे की थाप से काकतुण्ड को मृत्यु के घाट पहुंचा दिया। इस प्रकार मन्त्री लोगों को मारकर उस सिंह ने अपने अयाल फटकारते हुये वर्षा के गम्भीर मेघ के समान बहुत भीम रूपसे सिंह गर्जन किया। वीरवर सेनापतियों और मन्त्रियों को मारेगये देखकर महिषके आठ महाबलशाली एवं पराक्रमी युद्धविद्या और अस्त्र-शस्त्रों में अत्यन्त प्रवीण पुत्रों ने युद्ध में आगमन किया। उग्रवीज ने हाथ में गदा लेकर उस सिंह से युद्ध किया। बहुत काल तक युद्ध कर सिंह के तलवों के आघात से मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ा ॥२५-३३॥

उग्राऽऽस्यश्च प्रलम्बश्च प्रभञ्जनः स सारणः । चत्वार एते हरिणा युयुधुर्बलशालिनः ॥३४॥
त्रिशूलपरिघप्रासकरवालकरैस्तु सः । हरिर्युयोध चैकोऽपि कालोऽन्तकयमोपमैः ॥३५॥
तावन्मूर्च्छाविनिर्मुक्त उग्रवीर्योऽतिकोपनः । गदामादाय वेगेन संभ्राम्य हरिमूर्धनि ॥३६॥
चिक्षेप सा हरिशिरः प्राप्याऽशनिदृढं तदा । उत्पपाताऽतिवेगेन क्षितेः कन्दुकवत् क्षणात् ॥३७॥
तया पतन्त्या निहतः सारणश्चूर्णिताऽङ्गकः । अथ सिंहः समाक्षिप्य चोग्रवीर्यं प्रकोपनः ॥३८॥
ददार नखवज्रेण पर्वतं वृत्रहा यथा । दारिताङ्गश्चोग्रवीर्यो ममार पतितो भुवि ॥३९॥
अथाऽवशिष्टाः षट् पुत्रा महिषस्य बलोत्कटाः । मत्वा हरिमजेयं तं युगपद्योद्धुमाययुः ॥४०॥
तैर्युध्यमानं बलिनमालक्ष्य हरिपुङ्गवम् । दुर्गा श्रान्तं चिरं युद्धान्मत्वा सिंहमुवाच ह ॥४१॥
साधु साधु हरिश्रेष्ठ ! प्रसन्ना तव विक्रमात् । एतैर्नियोद्धुमिच्छामि विरम त्वमितः परम् ॥४२॥

उग्रास्य, प्रलम्ब, प्रभञ्जन और सारण इन चारों बलशाली योद्धागण ने त्रिशूल, परिघ, प्रास और तलवार हाथ में लेकर सिंह से लड़ने की चेष्टा की। अन्तक (यम) के समान इन चारों से एकाकी होकर भी सिंह इनका काल बनकर लड़ने लगा। इतने में ही मूर्च्छा से उठकर उग्रवीर्य ने अत्यन्त क्रुद्ध हो गदा को सम्हाल कर खूब वेग से घुमाकर सिंह के शिर में आघात किया। तब वह वज्र से अधिक कठोर सिंह के सिर से टक्कर लेकर अत्यन्त वेग से क्षणमात्र में ही इस प्रकार गिरी जैसे धरती से टकराककर गेन्द गिरती है ॥३४-३७॥

उसके गिरते ही अपने अङ्गों के चूर-चूर हो जाने से सारण मरगया। अब क्रुद्ध सिंह ने उग्रवीर्य को फेंक कर अपने तीक्ष्ण नखवज्र से चीरा जैसे इन्द्रने पर्वतों को विदीर्ण किया। सिंहके नखों द्वारा फाड़े गये अङ्गों वाला उग्रवीर्य पृथ्वी पर गिरकर मर गया ॥३८-३९॥

अनन्तर महिष के बल से उत्कट (बलशाली) बाकी बचे छै पुत्र सिंह को अजेय समझकर उससे युद्ध करने एक साथ आगये ॥४०॥ उनसे युद्ध करते हुए बली सिंह को दीर्घकाल से लड़ते अत्यधिक श्रान्त (थका) समझ सिंह से भगवती बोली, "हे हरिश्रेष्ठ ! तैने बहुत सुन्दर कार्य किया मैं तेरे पराक्रम से प्रसन्न हूँ। मैं इनसे लड़ना चाहती हूँ इसके बाद तू विश्राम कर।" ॥४१-४२॥

श्रुत्वैवमम्बिका वाक्यं विरराम महाऽऽहवात् । अथ दुर्गा तैर्युयोध मुहूर्तं घोरविक्रमैः ॥४३॥
ततः शूलेन सर्वां स्ताननयद्यमसादनम् । हतान् पुत्रान् मन्त्रिणश्च सैनिकानपि वीक्ष्य सः ॥४४॥
अल्पाऽवशिष्टां सेनाञ्च क्रोधसंरक्तलोचनः । योद्धुमभ्याययौ दुर्गां महिषः शैलराडिव ॥४५॥
खुरक्षेपैर्दारयन्तं महीं श्वासैर्घनाऽऽवलिम् । नाशयन्तं पातयन्तं तारकाः पुच्छवेगतः ॥४६॥
गर्जन्तं सांवर्तकवद्भ्रमन्तं पावकं मुखात् । मेहन्तं मूत्रयन्तञ्च नृत्यन्तं वक्रकन्धरम् ॥४७॥
दृष्ट्वा समाह्वयद्दुर्गा मेघगम्भीरभाषिणी । एहि दुष्ट महादैत्य मुहूर्तं समरे स्थिरः ॥४८॥
युद्ध्वा मया पितृगणान् प्रपश्यसि ततो द्रुतम् । इत्युक्त्वा शरवर्षेण ववर्ष महिषाऽसुरम् ॥४९॥
नीलाद्रिमिव जीमूतः प्रावृष्यासारपङ्क्तिभिः । सा वृष्टिः सायकौघस्य पर्वते जलवृष्टिवत् ॥५०॥
नेषद्व्रुजं समकरोन्महिषस्य तनौ तदा । मोघं दृष्ट्वा बाणवर्षं शूलखड्गपरश्वधैः ॥५१॥
तोमरप्रासपरिघशक्तिपट्टिशमुद्गरैः । जघान तानि शस्त्राणि मोघान्येव तदाऽभवन् ॥५२॥

इस प्रकार अम्बिका के वचन सुनकर सिंह युद्ध से विरत हो गया । अत्यन्त भयङ्कर बलशाली उन पाचों से दुर्गा ने एक मुहूर्त तक लड़ाई की; तदनन्तर अपने शूल से उन्हें यमलोक पहुंचा दिया । अपने पुत्रों, मन्त्रियों तथा सैनिकों को भी मरा हुआ देख वह महिष अत्यन्त क्रोध से लाल आंख कर थोड़ी बची हुई सेना को लेकर दुर्गा से लड़ने आया जैसे पर्वतराज आया हो ॥४३-४५॥

अपने खुरों के आघात से पृथ्वी का विदारण करते निःश्वास द्वारा बादलों की पंक्ति को चूर-चूर करते, अपने पूँछ के वेग से तारागण को नष्ट करते और गिराते प्रलय के सम्वर्त मेघ के समान भीषण गर्जन करता नाचते टेढे कन्धरवाले अग्नि उगलते भ्रमण करते अत्यन्त भीषण उसे देख भगवती दुर्गा ने मेघ गम्भीर गिरासे उसे पुकारा, "हे दुष्ट! महादैत्य! आ, समराङ्गणमें स्थिर हो मेरे से युद्धकर तब शीघ्र अपने पितरों को देख लेना ।" यह कहकर दुर्गाने महिषासुर पर बाणों की वर्षा की । वर्षा काल में मेघ अजस्र वर्षा के वर्षण करते रहने पर भी जैसे नील पर्वत का कुछ नहीं बिगाड़ सकता वैसे ही उन विशाल बाणों के समूह की वृष्टि पर्वत में जलवृष्टि के समान महिष के शरीर में थोड़ी सी भी अस्वस्थता नहीं कर सकी । अपने बाणों को वर्षा को व्यर्थ देख कर भगवती दुर्गा ने शूल, तलवार, परश्वध (फरसा), तोमर (बर्छी), प्रास (लम्बाभाला), परिघ (लौहदण्ड), शक्ति (अस्त्र), पट्टिश (पैनीनोकवाला भाला) और मुद्गरके आघात से प्रहार किया; तब भी वे शस्त्र उस पर व्यर्थ हो गये ॥४६-५२॥

तदङ्गं प्राप्य शस्त्राणि चूर्णीभूतानि वै क्षणात् । करकावर्षवद्गण्डशैलमासाद्य तत्क्षणात् ॥५३॥
अथ मत्वा महासारवर्ष्माणमसुरेश्वरम् । बबन्ध पाशैः सुदृढैः शाक्तैर्मन्त्राऽभिमन्त्रितैः ॥५४॥
बध्यमानः क्षणेनैव सिंहो भूत्वा युयोध ताम् ।
शक्त्या हतः सिंहतनुं त्यक्त्वा निमेषमात्रतः ॥५५॥
सहस्रसिंहसुवहं रथमास्थाय दंशितः । योद्धुमभ्याययौ यत्र पौरुषं रूपमास्थितः ॥५६॥
महागिरिनिभो दैत्यः सहस्रवदनेक्षणः । सहस्रहस्ताऽघ्रियुतो नानाप्रहरणोद्यतः ॥५७॥
युयोध दुर्गां परमामस्त्रशस्त्रप्रवर्षणः । निमेषेणैव तं वर्षं शरवर्षैर्महेश्वरी ॥५८॥
निवार्य मारुतेनेव जघानाऽऽकर्णपूरितैः । विद्धस्तेनेषुणा गाढं क्षणं मूर्च्छामवाप्य च ॥५९॥
पुनर्मायामुपाश्रित्य युयोधाऽतिबलो तदा । प्रादुश्चकाराऽश्मवर्षमतिमात्रं यदाऽसुरः ॥६०॥
तदा दुर्गा शिलावृष्ट्या समाक्रान्ताऽभिजायत ।
दृष्ट्वाऽश्मवर्षसंछन्नां देवा हा हेति चुक्रुशुः ॥६१॥

उसके अङ्ग के लगते ही शस्त्र क्षण भर में ही चूर्ण होते गये जैसे गण्डशैल के ऊपर ओलों की वर्षा का प्रभाव व्यर्थ है उसी प्रकार उन अस्त्रों का कोई प्रभाव नहीं। अब असुरेश्वर को अत्यन्त अमेद्य वज्र के शरीरवाला समझ भगवती ने शक्तिमय मन्त्रों से अभिमन्त्रित सुदृढ़ पाशों से उसे बांधा। बंधते ही उसने क्षण भरमें ही सिंह होकर दुर्गा से युद्ध किया। शक्ति से आहत हो वह सिंह के अपने शरीर को छोड़ कर हजारों सिंहों से सुवह (खींचकर चलने वाले) रथ पर चढ़ कर बहुत क्षत विक्षत हुआ पुरुष का रूप धारण कर युद्ध करने आया। बड़े विशाल पर्वत के समान दैत्य हजार मुख और नेत्रों वाला, हजारों हाथ पैरों के साथ नाना अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हो सर्वश्रेष्ठ भगवती दुर्गा से खूब अस्त्रशस्त्रों की भारी झड़ी बांध कर लड़ने लगा। एक निमेष में ही महेश्वरी ने उसके बाणों की वर्षा का अपने बाणों से निवारण कर अपने कानों तक धनुष की प्रत्यञ्चा चढा कर वायुवेग के समान आक्रमण किया। उस एक बाण से बींधा हुआ अत्यन्त प्रगाढ मूर्छा पाकर फिर माया रच कर अत्यन्त बलशाली वह दैत्य लड़ा। जब असुर ने अत्यधिक रूप में पाषाण (अश्म) वर्षा की तब दुर्गा शिलावृष्टि से पाट दी गई। भगवती को शिलावृष्टि से घिरी देख देवगण ने हा-हाकारपूर्वक विलाप किया ॥५७-६१॥

ततः सा मारुताऽस्त्रेण वर्षन्तं नाशयत् परा। एतस्मिन्नन्तरे सिंहो वहन् दुर्गां महाबलः ॥६२॥
पक्षीवोड्डीय दैत्यस्य निपपात महारथे। तावज्ज्ञात्वाऽऽत्मनो मृत्युं गदया हरिपुङ्गवम् ॥६३॥
निहत्य मूर्ध्नि दैत्योऽपि रथात्तस्मादवप्लुतः। सिंहप्रतापवेगेन ससिंहौघो महारथः ॥६४॥
चूर्णीकृतोऽथ सा देवी तं पाशेनाऽनुपाशयत्। तावद्दैत्योऽप्यभूच्छैलः सुमेरुरिव चोन्नतः ॥६५॥
अथ सा कुलिशाऽस्त्रेण बिभेद गिरिरूपिणम्।
भिद्यमानो नगात्तस्माद्गजो भूत्वा युयोध ताम् ॥६६॥
सिंहेन सह तां शीघ्रं करेणोत्क्षेप्तुमुद्यतः। तावद्देवी तस्य करं चिच्छेद करवालतः ॥६७॥
अथ भूयो भवद्दैत्यः पूर्ववन्महिषाऽऽकृतिः। शृङ्गाभ्यां शैलशृङ्गाणि चिक्षेप समरेऽनु ताम् ॥६८॥
अथ सिंहः खमुत्पत्य निपपाताऽसुरोपरि। हरिणा तं समाक्रान्तं दुर्गा दृष्ट्वा महासुरम् ॥६९॥
महाखड्गेन चिच्छेद महिषस्याऽऽशु संयुगे। शिरो महागिरिनिभं ततस्तस्मान्महासुरः ॥७०॥

तब उस भगवती परा ने मारुत अस्त्र से उस पाषाण की वर्षा का नाश कर दिया। इस बीच में महाबलवान् सिंह ने दुर्गा को पीठ पर बिठा पक्षी के समान आकाश में ऊपर उठ कर दैत्य के बड़े विशाल रथ पर आक्रमण किया। तब ही दैत्यराज महिष ने अपनी मृत्यु (का बुलावा) जान कर सिंहश्रेष्ठ के शिर पर गदा का आघात किया। दैत्य भी उस रथ से नीचे कूद पड़ा। सिंह के प्रताप के वेग भार से आक्रान्त हो रथ चूर्ण-चूर्ण हो गया। अनन्तर दैत्य भी सुमेरु पर्वत के समान ऊंचा बन गया ॥६२-६५॥

तत्पश्चात् उस दुर्गा ने वज्रअस्त्र से पर्वत (गिरि) रूपधारी दैत्य के ऊपर प्रहार किया। उस आघात से भिद्यमान हो वह पर्वताकार से हाथी का रूप बनाकर भगवती से लड़ा। सिंह सहित भगवती को वह अपनी सूण्ड से उठाने को तैयार हुआ, तभी देवी ने अपनी तलवार से उसकी सूण्ड को काट डाला। इसके पश्चात् फिर वह दैत्य पहले के समान ही महिष (भैंसे) के आकार में उपस्थित हो गया। अपने दोनों सींगों से पर्वत के शिखरों को ला युद्ध में भगवती पर फेंकने लगा। अनन्तर सिंह आकाश में ऊपर छलांग मार कर दैत्य के ऊपर गिर गया। केसरी द्वारा उस महा असुर को आक्रान्त देख दुर्गा ने युद्ध में शीघ्रतया महिषासुर का महाविशाल पर्वत के समान शिर काट डाला। तदनन्तर वह महादैत्य अपने दोनों हाथों में खेट (मूसल) और निस्त्रिंश (खड्ग) को धारण कर

कराभ्यां खेटनिस्त्रिंशौ दधानो निर्जगाम ह । तं निर्गच्छन्तमेवाऽऽशु दुर्गा पाशेन दानवम् ॥७१॥
बद्ध्वा जघान खड्गेन युध्यमानं महासुरम् । स छिन्नमूर्धा खड्गेन निपपात गताऽऽयुषः॥७२॥
एवं दैत्ये वितिहते महिषे शेषदानवाः । भीता ययुर्भूमितलं दिशो वितिमिराऽभवन् ॥७३॥
ववौ वायुः सुखस्पर्शो जज्वलुः शान्तपावकाः । ववर्ष दुर्गां पर्जन्यः पुष्पवर्षैः सुमोदनैः ॥७४॥
अवर्धयन् जयेत्युच्चैर्देवा विधिमुखास्तदा । एवं दैत्ये हते लोकवत्रौ श्रीजगदम्बिकाम् ॥७५॥
प्रणम्य विबुधा दुर्गां ब्रह्मविष्णु शिवादयः ।
संहृष्टाः चाऽस्तुवन् भक्त्या परां तां त्रिपुराकलाम् ॥७६॥
नमो नमस्ते जगतां विधात्रि संहर्त्रि सर्वाऽन्तरसत्यरूपे ! ।
प्रपन्नलोकाद्यविनाशहेतुदयाऽम्बुराशे ! परिपाहि दुर्गे ! ॥७७॥
महाभयाद्दानवराजरूपात् त्वया समस्तं जगदेतदद्य ।
त्रातं यथा क्रूरमहाऽहिग्रस्तं भेकं तथाऽस्मात् परिपाहि दुर्गे ! ॥७८॥

उस महिषरूप से बाहर निकल आया । उसके निकलने के साथ ही भगवती दुर्गा ने अपने पाश बंधन से बांध कर लड़ते दानव के ऊपर खड्ग से प्रहार किया । वह खड्ग के भीषण आघातसे कटा शिरवाला राक्षस मरकर गिर गया । इस प्रकार महिष के मार दिये जाने पर बाकी अवशिष्ट दैत्यगण भय के मारे भूमि तल पर भाग छुटे । इस विजय से दिशायें प्रकाशमान हो गईं, अत्यन्त आनन्ददायक पवन बहने लगा; शान्त रूपसेअग्नि ज्वाला जलने लगीं; मेघ वर्षा करने लगे । ब्रह्मा प्रमुख देवगण ने अत्यन्त सुगन्धित दिव्य पुष्पों की वर्षा कर भगवती की जयकार मनाई । जिसप्रकार लोक-वैरी दैत्य के मरने पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभृति देवतागण अत्यन्त प्रसन्न हुए उसी तरह श्रीजगदम्बिका भगवती दुर्गा को प्रणाम कर अत्यन्त हृष्टमना हो भगवती त्रिपुरा की कला रूपा उस परमेश्वरी की भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे ॥६२-७६ ॥

"हे जगत् की विधायिके और संहारकारिणि ! सम्पूर्ण चराचर के अन्तर में सत्यस्वरूपे ! हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं । शरण में आये हुये लोक आदि के सतत रक्षण के लिये दया की समुद्रराशि दुर्गे मातः ! हमारी रक्षा करें । दानवराज के रूप में उपस्थित इस महाभयसे आज आपने सारे जगत् की वैसे ही रक्षा की जैसे निर्दयी महासर्प ग्रस्त कोई मेण्ढक बचाया जाता है वैसे ही हे भगवति दुर्गे ! सदैव आप जगत्प्राणियों का उद्धार कीजिये । जब हम

यदा वयं दुर्विषहाऽऽपदोघैर्ग्रस्तास्तदा त्वं जगतां विधात्री ।
लीलावपुः प्राप्य विमृष्टमात्रा विपन्निमग्नान् परिपाहि दुर्गे! ॥७९॥
यत्तेऽखिलं लोकवितानमेतत्तनोः कलांऽशप्रविभक्तसंस्थम् ।
तदन्तरे दर्शयसि स्वरूपं माया तवैतत् परिपाहि दुर्गे ! ॥८०॥
मायात्मिका त्वं निजनिर्मलेऽम्ब! यतो जगच्चित्रमुदीर्यसेऽङ्गे ।
विचित्ररूपाऽपि चिदेकरूपाऽविभाव्यशक्तिः परिपाहि दुर्ग ! ॥८१॥
यत्ते पदाब्जैकसमाश्रयास्ते विचित्रकृत्या विधिविष्णुमुख्याः ।
तत्ते विचित्राऽऽकृतिरत्र का स्यात् स्तुमः कथं त्वां परिपाहि दुर्गे ! ॥८२॥
दुर्गेषु नित्यं भवसङ्कटेषु दुरन्तचिन्ताऽहिनिगीर्यमाणान् ।
शरण्यहीनाञ्छरणाऽऽगतार्तिनिवारिणी त्वं परिपाहि दुर्गे! ॥८३॥

लोग अत्यन्त भीषण आपत्तियों के जाल से चारों ओर से घिरे हों तब जागतिक सृष्टियों की विधायिका हे मातः ! केवल स्मरणमात्र से लीलामय शरीर धारणकर आप विपत्ति में पड़े हुए हम सभी को बचाइये ॥७७-७९॥

जो यह सम्पूर्ण दृश्य लोकों का प्रपञ्च फैला है वह आपकी कलाके यश से सर्व ओर से अनुविद्ध है और ऐसा प्रतीत होता है कि नाना रूप विभिन्न विभक्त अवस्थायें आप ही उन सब के अन्तराल में अपना स्वस्वरूप दिखाती हो यह आपकी माया है; हे दुर्गे ! इससे आप रक्षा कीजिये । हे अम्बे ! आप मायास्वरूपा होकर अपने निर्मल शुद्ध अङ्ग में नाना चित्र विचित्र जगत्का स्फुरण करती हैं; अहो ! यह सब विचित्र रूपवाली होकर भी स्वप्रकाशमयी आप चिति ही एकान्त स्वरूपभूता हैं; आपकी अविभाव्य शक्ति इन लौकिक नेत्रों से देखने में नहीं आती । हे दुर्गे ! आप हमारी रक्षा करें । जो विचित्र कृत्य सम्पादनकरनेवाले कारणशरीरधारी ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रमुख देववृन्द (सर्वसमर्थ होने पर भी) आपके चरण-कमलों के अनन्य आश्रय में रहते हैं । इसलिये आपही इन सब विचित्र आकृतियों की विधायिका होने से कौनसा इदमित्थंरूप हो (यह हमें सन्देह होता है), आपकी हम कैसे स्तुति करें ? हे दुर्गे आप हमारा उद्धार कीजिये । आप इस संसार के दुर्गम सृष्टिसङ्कटों में कभी भी अन्त न होनेवाले चिन्तारूपी सर्प से निगले गये शरण्यहीन शरण आये हमलोगों के दुःखों को दूर करनेवाली हैं हे दुर्गे ! आप हमारी रक्षा करें ॥८०-८३॥

एवं ब्रह्ममुखा देवाः स्तुत्वा दुर्गां महेश्वरीम्। पुष्पाद्यैः पूजयामासुर्विविधैरर्हणैः शिवाम् ॥८४॥
ततः प्रसन्ना तान् प्राह दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।
भवद्भिः पूजिता देवाः प्रसन्ना वोऽभिवाञ्छितम् ॥८५॥
प्रतीच्छध्वं दिशाम्यद्य दुष्प्रापमपि सर्वथा। निशम्य दुर्गया प्रोक्तमूचुर्देवा महेश्वराः ॥८६॥
भगवत्या हतः शत्रुरस्माकं महिषाऽसुरः। त्रैलोक्यकण्टकः सर्वं जगज्जातं निरामयम् ॥८७॥
वयं स्वस्वपदं प्राप्ता भगवत्याः प्रसादतः। नास्ति वाञ्छितशेषो नो यत्त्वां कल्पद्रुमाश्रिताः ॥८८॥
अथाऽपि त्वां सुपृच्छामो जगद्रक्षणहेतवे। विपन्नं त्वं कथं शीघ्रं प्रसन्ना रक्षसीश्वरी ॥८९॥
एतन्नो ब्रूहि देवेशि रहस्यमपि सर्वथा। प्रार्थितैवं सुरगणैः प्राह दुर्गा दयाऽन्विता ॥९०॥
देवाः शृणुध्वमेतत्तु गोप्यमत्यन्तदुर्लभम्। द्वात्रिंशन्नाममाला मे सर्वाऽऽपत्प्रविनाशनी ॥९१॥
नाऽस्ति तत्सदृशी काचित्स्तुतिस्त्रैलोक्यमण्डले। रहस्यरूपा सर्वत्र शृणुध्वं तां ब्रवीमि वः ॥९२॥

इसप्रकार ब्रह्मादि प्रमुख देवगण ने स्तुतिकर कल्याणी महेश्वरी दुर्गा की पुष्प आदि विविध पूजन सामग्रियों से पूजा की। तब प्रसन्न होकर दुर्गम कष्टों को काटनेवाली दुर्गाने उनसे कहा, "हे देवगण ! तुम लोगों से पूजित हो मैं प्रसन्न हो गयी, अपना अभीष्ट मुझे बताओ; यदि वह सर्वथा दुष्प्राप भी होगा तो मैं उसे तुम्हें प्रदानकरूंगी।" दुर्गा के कथन को सुनकर महेश्वरशक्तिसम्पन्न देवगण बोले, "आप भगवती ने त्रिभुवन के कण्टक हमारे शत्रु महिषासुर का वध किया, (इससे) सम्पूर्ण जगत् में कुशल हो गया, कहीं विघ्न-बाधायें नहीं रही। हमने आपकी कृपा से अपने-अपने स्थानों को प्राप्त कर लिया। अब हमारे अन्तःकरण में कुछ भी अभीष्टप्राप्ति की इच्छा नहीं बची; क्योंकि आप जैसे कल्पवृक्ष का हमें आश्रय मिल गया। इस पर भी हम जगत् की रक्षा के लियेआप से पूछते हैं कि विपत्ति में पड़े व्यक्तिको शीघ्र ही ईश्वरी आप कैसे रक्षा करती हैं ? हे देवेशि ! यह हमें बतलाइये, भले ही वह सर्वथा रहस्यमय ही क्यों न हो ?" इस प्रकार देवगण द्वारा प्रार्थित हो दयामयी हो भगवती दुर्गा ने कहा ॥८४-९०॥

"हे देवगण ! यह अत्यन्त दुर्लभ रहस्य गोपनीय होने पर भी सुनो; मेरे बत्तीस नामों की माला सम्पूर्ण आपदाओं का नाश करनेवाली है, इसके समान त्रैलोक्यमण्डल में भी दूसरी अन्य कोई स्तुति नहीं है। यह सर्वत्र रहस्यरूप है, गोपनीय है; इसे सुनो, मैं तुम्हें बताती हूँ ॥९१-९२॥

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गाऽऽपद्विनिवारिणी । दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी ॥९३॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमाऽपहा । दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला ॥९४॥
दुर्गमा दुर्गमाऽऽलोका दुर्गगाऽऽत्मस्वरूपिणी । दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता ॥९५॥
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी । दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमाऽर्थस्वरूपिणी ॥९६॥
दुर्गमाऽसुरसंहन्त्रीं दुर्गमाऽऽयुधधारिणी । दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी ॥९७॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी । नामाऽऽवलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः ॥९८॥
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः । शत्रुभिः पीड्यमानो वा दुर्गबन्धगतोऽपि वा॥९९॥

भगवती का द्वात्रिंशन्नाममाला स्तोत्रःदुर्गा (दुरधिगमरूपसे प्राप्त होनेवाली), दुर्गार्तिशमनी (अत्यन्त कठिन दुर्गम कष्टों को मिटाने वाली), दुर्गापद्विनिवारिणी (अत्यन्त दुर्गम कार्यों को सरल बनानेवाली), दुर्गमच्छेदिनी (अति दुष्कर कार्यों का छेदन करनेवाली), दुर्गसाधिनी (दुर्गति को नष्ट करनेवाली) दुर्गनाशिनी (दुर्गतिदायिनी आपत्तियों का निवारण करनेवाली), दुर्गतोद्धारिणी (अत्यन्त कष्ट में पड़े हुए जनों का उद्धारकरनेवाली, उबारनेवाली), दुर्गनिहन्त्री (दुर्गराक्षस का हनन करने वाली), दुर्गमापहा (दुर्गति का अपहरण करने वाली), दुर्गमज्ञानदा (सर्वश्रेष्ठ आत्म-ज्ञान को प्रदानकरनेवाली), दुर्गदैत्यलोकदवानला (मायावी दैत्यों के अभेद्यलोकरूपी वन को नष्ट करने में दावानल स्वरूपा), दुर्गमा, (अत्यन्त संरम्भपूर्वक साधना से प्राप्त इसीलिये दुःखेनगमा), दुर्गमाऽऽलोका (अत्यन्त दुर्गमप्रकाशयुक्ता), दुर्गगाऽऽत्मस्वरूपिणी (अत्यन्तकष्टकर साधन से योगिध्येय आत्मस्वरूपवाली), दुर्गमार्गप्रदा द्वादशान्तके दुर्गम शिवज्ञान के मार्ग को देनेवाली), दुर्गमविद्या (अति कठिन विद्यास्वरूपा), दुर्गमाश्रिता (कुण्डलिनी प्रक्रिया को आश्रित करने वाली), दुर्गमज्ञानसंस्थाना (विशिष्ट अभेद ज्ञानकी स्थितिवाली विज्ञानरूपिणी) दुर्गमध्यान-भासिनी (अत्यन्त कृच्छ्रतर ध्यानयोग द्वारा आभास देनेवाली), दुर्गमोहा (दुर्गरूपी अज्ञान को मोहनेवाली), दुर्गमगा (दुर्गमरूपसे प्राप्त होनेवाली), दुर्गमार्थस्वरूपिणी (योगियों को भी ध्यानगम्य न होनेवाली), दुर्गमासुरसंहन्त्री (दुर्गम असुरका संहार करनेवाली), दुर्गमाऽऽयुधधारिणी (अत्यन्त विलक्षण अस्त्र धारणकरनेवाली), दुर्गमाङ्गी (अत्यन्त अनिवार्य शरीरकान्तिधारणी), दुर्गमता (साक्षात् दुर्गमरूपा), दुर्गम्या (तुरीया तत्व के सारवस्तु की रूपवाली), दुर्गमेश्वरी (जो दुर्गम अभेदज्ञान है उसकी सर्वेश्वरी), दुर्गभीमा (अत्यन्त दुष्कर साधना से प्राप्त होने के कारण भीमरूपवाली), दुर्गभामा (शिवप्रिया), दुर्गभा (अनिर्वाच्य शोभावाली), दुर्गदारिणी (दुर्गका विदारण करनेवाली)। मेरी दुर्गा की इस नामावलि को जो पढ़ता है, वह मानव सब भय से मुक्त हो जायगा इस में कोई सन्देह नही। शत्रुओं से कष्ट पानेवाला अथवा दुर्गम राज्य के बन्दी शिविर में बन्धन में भी आ गया हो तो दुर्गा द्वात्रिंशत् नामके

द्वात्रिंशन्नामपाठेन मुच्यते नाऽत्र संशयः । राज्ञा वधाय चाऽऽज्ञप्तः क्रुद्धेन दण्डनाय च ॥१००॥
युद्धे शत्रुभिराक्रान्तो व्याघ्राद्यैर्वा तथा वने । मुच्यते सर्वभीतिभ्यः पठन्नष्टोत्तरं शतम् ॥१०१॥
आपत्सु नैतत्सदृशमन्यदस्ति भयाऽपहम् । एतत् प्रपठतां देवा न किञ्चिद्धीयते क्वचित् ॥१०२॥
नैतद्देयमभक्ताय नास्तिकाय शठाय च । देयं भक्ताय शान्ताय गुरुदेवरताय च ॥१०३॥
प्राप्तो महापदं यस्तु पठेन्नामावलीमिमाम् । सहस्रवारमयुतवारं वा लक्षमेव वा ॥१०४॥
ब्राह्मणैर्वा स्वयं वाऽपि मुच्यते सकलाऽऽपदः । संसिद्धेऽग्नौ हुनेदेभिर्नामभिर्लक्षसंख्यया ॥१०५॥
तिलैः शुक्लैस्त्रिमध्वक्तैर्मुच्यते चाऽऽपदांगणैः । अयुतत्रयमेतस्य पुरश्चरणमुच्यते ॥१०६॥
पुरश्चरणपूर्वन्तु सर्वकार्याणि साधयेत् । मन्मूर्तिं मृण्मयीं कृत्वा शुभ्राममष्टभुजाऽन्विताम् ॥१०७॥
गदाखड्गत्रिशूलेषुचापाऽब्जखेटमुद्गरान् । दधानां चन्द्रचूडालां त्रिनेत्रां लोहिताऽम्बराम् ॥१०८॥
सिंहारूढां विनिघ्नन्तीं शूलेन महिषाऽसुरम् । प्रपूज्य तत्र मां भक्त्या विविधैरुपहारकैः ॥१०९॥

से ही छुटकारा पा जाता है, इस में संशय मत करना। क्रुद्ध हुए राजा द्वारा वध करने की जिसे आज्ञा हो गई हो और दण्ड दिया गया हो; युद्ध में शत्रुओं से आक्रान्त हो तथा वन में व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओं से घिर गया हो तो एकसौ आठ वार इस नाममालाका पाठ करता हुआ मनुष्य सब प्रकार के भयों से मुक्ति पा जाता है ॥९१-१०१॥

आपत्तियोंमें इसके सदृश भयको नष्ट करनेवाला अन्य कोई साधन नहीं। हे देवगण ! इसके पाठ करनेवालेको कभी कुछ भी हानि नहीं उठानी पड़ती। इसे भक्तिरहित, नास्तिक, और मूर्ख को नहीं देना चाहिये। इसे भक्त, शान्त और गुरुकी सेवामें रत और देवता की भक्ति करनेवाले साधक को ही देना। जो व्यक्ति इस नामावलिको पढ़ता है वह महाउच्चपदको पा जाता है। इसका एक हजार वार, दसहजार वार, एक लाख वार ब्राह्मण द्वारा अथवा स्वयं ही पाठ कर मनुष्य सम्पूर्ण आपत्तियों से छूट जाता है। विधिपूर्वक सिद्धकी गई यज्ञ की अग्नि में एकलाख संख्या से इन नामों का हवन तीन मधुओं (शर्करा, आज्य और मधु) से मिश्रित सफेद तिलों से हवन करता है, वह आपदाओं के समूह से मुक्त हो जाता है। इसकी तीस हजार वार आवृत्ति करना पुरश्चरण कहलाता है (कलिकाल में चार गुना संख्याओं का विधान तन्त्रों में आदिष्ट है) ॥१०२-१०६॥

पुरश्चरण के पहले ही सब कार्यों को भली प्रकार सुसम्पन्न करे। श्वेत रंग की आठ भुजाओं वाली गदा; खड्ग, त्रिशूल, धनुष, बाण, कमल, खेट, और मुद्गर भुजाओं में धारण किये, चन्द्रमा को चूड़े (जूड़े) में सजाये, तीन नेत्र धारिणी, रक्तवस्त्राभूषित, सिंहवाहना, महिषासुर को शूलसे मारती हुई ऐसी मृण्मयी मेरी प्रतिमा

नामभिः पूजयेत् पुष्पैः शतवारं हयाऽरिभिः । रक्तैर्हुनेदपूपैश्च मन्मन्त्रजपपूर्वकम् ॥११०॥
निवेदयेत् सुभक्ष्यैश्च विविधैः पिशिताऽऽसवैः । एवं मण्डलमात्रेण असाध्यमपि साधयेत् ॥१११॥
यो नित्यं मां भजेन्मर्त्यः स क्वचिन्नापदं व्रजेत् । इत्युक्त्वा साऽमरांस्तत्र ययावन्तर्धिमम्बिका ॥११२॥
एतद्दुर्गामहाऽऽख्यानं शृण्वतामापदो न हि । इति राम ! समाख्यातं दुर्गाचरितमद्भुतम् ॥११३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दुर्गोपाख्याने
महिषवधमनुदेवगणस्तुतिप्रसन्नया दुर्गया स्वद्वात्रिंशन्नाममा-
लोपदेशवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥३८४८॥

बना कर दिव्यभाव से भक्तिपूर्वक नाना प्रकार की सामग्री-उपहारों द्वारा पूजा कर नामों के साथ लालकनेर के पुष्पों से सौ वार पूजन करे; मालपुओं से मेरे मन्त्र का जप करते हुए हवन करे। नाना भक्ष्य-भोज्य अन्न, मांस एवं आसव आदि भक्तिपूर्वक मुझे निवेदन करे । इस प्रकार मण्डलविधान करने से असाध्य कार्य भी व्यक्ति सिद्ध कर लेता है ॥१०७-१११॥

जो मनुष्य मेरा नित्य इन नामों से भजन पूजन करता है वह कहीं भी आपत्तियों में नहीं पड़ता।" देवगण को यह कह कर अम्बिका भगवती अदृश्य हो गई। इस दुर्गाके महाआख्यानके सुनने वाले व्यक्तियों को कभी आपदायें नहीं आती। हे परशुराम ! यह तुझे अद्भुत दुर्गाचरित सुनाया ॥११२-११३॥

इस प्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड के दुर्गा द्वारा महिष के वध के अनन्तर सुहृष्टमना
देवगण द्वारा भगवती की स्तुति तथा दुर्गोपाख्यान में द्वात्रिंशन्नाममाला का विधान और
फलश्रुतिवर्णन नामक छियालीसवां अध्याय समाप्त ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

कामस्य पुनरुद्भवकथानकवर्णनम्

भगवन्नवधूतेश करुणाऽपारवारिधे ! । कृपयोक्तमुपाख्यानं दुर्गायाः परमाऽद्भुतम् ॥१॥
धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि त्वत्कृपाविषयो यतः । दुर्लभं मर्त्यलोकेऽस्मिन् त्वत्कृपाऽऽलोकनं ननु ॥२॥
तव वक्त्रेन्दुसम्भूतं त्रिपुरामहिमाऽमृतम् । पिबतां नृचकोराणामानन्दः केन सम्मितः ॥३॥
पिबतस्त्वन्मुखाम्भोजकथामधुरसं पुनः । न मे तृप्तिर्यथा कामिजनस्य स्त्रीसुखादिव ॥४॥
तच्छ्रोतुमभिवाञ्छामि कामस्य पुनरुद्भवम् । पुरा श्रीत्रिपुरादेव्या लीनो नेत्रेषु मन्मथः॥५ ॥
देहः शिवक्रोधवह्निभस्मीभूत इति श्रुतम् । प्राणप्रियेण रहिता रतिः परमदुःखिता ॥६॥
कथं पुनः प्रियं प्राप्ता तन्मे शंस महामते । इति पृष्टो भार्गवेण दत्तात्रेयो मुनीश्वरः ॥७॥

सैंतालीसवां अध्याय

"हे अवधूतों के स्वामिन् ! करुणा के अपारसमुद्र ! भगवन् ! आपने कृपाकर भगवती दुर्गा का अत्यन्त अद्भुत उपाख्यान बताया; मैं आपकी कृपा का पात्र होनेसे धन्य हो गया हूँ, सर्वथा कृत-कृत्य बन गया हूँ, अवश्य ही इस मर्त्यलोकमें आपकी कृपादृष्टिका होना सर्वथा दुर्लभ है। आपके मुखरूपी चन्द्रमासे निकले भगवती त्रिपुराका गुणगौरव के गायनरूपी अमृतका पान करनेवाले मनुष्यरूपी चक्रवाक पक्षियों के आनन्द का किस अतुल दिव्य भावसे जोड़ा है ? अर्थात् अतुलनीय है। कामी पुरुष को स्त्रीसुख की अतृप्ति के समान ही आपके मुखकमलसे स्रावित कथाके मधुर रस को पीते हुए मैं नहीं अघाता। अतः फिर कामदेवके उद्भव को सुनना चाहता हूँ। प्राचीन कालमें श्रीमती भगवती त्रिपुरा देवी के नेत्रों में कामदेव विलीन हो गया; उसका देह श्रीशिवके क्रोधरूपी अग्नि में भस्म हो गया, यह सुना था। अपने प्राणप्रिय पति से वियुक्त हो अत्यन्त दुःखित हुई रति ने किस प्रकार फिर अपने प्रियतम को प्राप्त किया ? उसे हे महामते ! आप बताइये।" इसप्रकार भार्गव परशुराम द्वारा मुनीश्वर दत्तात्रेय को पूछे जाने पर वह अत्यन्त हर्ष

अत्यन्तं हर्षजलधावभवन्मग्नमानसः । पुलकाऽङ्गरुहो नेत्रस्रुताऽऽनन्दाऽऽस्रवाऽऽविलः ॥८॥
मुहुर्तमात्रमभवद्गतबह्यान्तरस्मृतिः । अथ स्मृतिं समासाद्य हर्षगद्गदया गिरा ॥९॥
जामदग्नेत्युपामन्त्र्य प्राह रामं तपोनिधिः । जामदग्न्य धन्यतमस्त्वं यस्मात्त्रिपुराकथाम् ॥१०।
शृण्वन्नपि स्वल्पमपि नैषि तृप्तिं कथाश्रुतेः । एतन्महाभाग्यमिह यच्छ्रीदेवीकथामृते ॥११॥
शुश्रूषुत्वमन्त्यजन्मभवं यल्लोकदुर्लभम् । धन्योऽहं स्मारितो यत्ते त्रिपुरामहिमोन्नतिम् ॥१२॥
यत्प्रसङ्गाल्लोकतन्त्रत्रोटनक्षमता भवेत् । प्रसङ्गात् प्राकृताल्लोके चन्द्रेन्द्रादिकथा शुभा ॥१३॥
ततो विरिञ्चिक्रौञ्चाऽरिगणपाऽऽदिकथोत्तमा । ततो विष्णोस्ततः शम्भोर्महिमा लोकपावनः ॥१४॥
ततो मुख्यं रमागौरीभारत्यादिसुवैभवम् । सर्वोत्तमं पराशक्तेस्त्रिपुरायाः कथानकम् ॥१५॥
वर्ण्यते महिमा तस्याः केन वा पृथिवीतले । तारागणाश्च नभसि वर्षधारास्तथाऽम्बरे ॥१६॥

समुद्रमें निमग्नमना बन अत्यन्त पुलकितरोमा हो गये तथा उनके नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की झरी धारा बहने लगी। एक मुहूर्त तक उन्हें बाहर और अन्तर की स्मृति नहीं रही। अनन्तर फिर स्मृति होने पर हर्ष से गद्गद वाणी में 'हे जामदन्य" यह सम्बोधन कर वह तपोनिधि परशुराम से बोले ॥१-९॥

"हे जमदग्निपुत्र ! तू धन्यतम है क्योंकि भगवती त्रिपुरा की कथा को सुनते हुए भी कथाश्रवण से थोड़ी भी तृप्ति नहीं पाता है (सुनते-सुनते और अधिक हर्षप्रमोद से सुनने का मन करता है)। इसे महाभाग्यवत्ता हो संसारमें समझनी चाहिये कि श्री देवीकथाको छोड़ अन्य किसी ओर की बाहरी वार्त्ता सुनने की इच्छा ही नहीं होती यह पूर्व जन्म के सुपुण्यों का लोकदुर्लभ बड़ा सौभाग्य है। मैं धन्य हूँ कि त्रिपुरा भगवती के माहात्म्य की उत्तरोत्तर वृद्धिगत कथा के लिये मुझे याद दिलाया जाता है जिसके आख्यान के प्रसङ्ग से इस प्रपञ्चजाल को नष्ट करने की क्षमता आजाती है। इस संसारमें प्राकृतिक (प्रकृति को जड़ वस्तुओं की लौकिक) कथाओंसे चन्द्र, इन्द्र आदि की कथा शुभजनक है; उससे उत्तम ब्रह्मा क्रौञ्चरिपु गणेश आदि की कथा अधिकाधिक पुण्य लाभकरनेवाली हैं, उससे और ऊँची श्रीविष्णु की महिमा है उससे भी उत्तम शम्भु भगवान्का माहात्म्य लोगों को पवित्र करनेवाला हैं; उससे ऊपर रमा, गौरी और भारती आदि का सुवर्णित वैभव है तथा सबसे श्रेष्ठ पराशक्ति त्रिपुराका स्वनामधन्य अलौकिक कथानक है। इस पृथ्वी पर किस व्यक्ति द्वारा उस की महिमा कही जा सकती है ? आकाशमें ताराओं, अम्बरमें वर्षा की धाराओं और भूमि पर

भूम्यां रजाँसि यत्नेन मितानि स्युः कथञ्चन। न तस्यास्त्रि पुरादेव्या महिम्नोऽन्तोऽस्ति भार्गव ॥१७॥
मुख्याऽवतारचरितं संक्षेपेण निरूपितम्। पूर्णस्वरूपा या देवी तां वक्तुं न हि कश्चन ॥१८॥
समर्थोऽस्मिन् प्रभवति लोके साक्षान्महेश्वरः। वेदशास्त्रपुराणानि तन्त्राण्यपि च सर्वशः ॥१९॥
तस्याः स्वरूपमप्राप्य स्थितान्यर्वाक्पदे सदा। यथेन्द्रियाणां स्वतनौ वह्वे र्वा नो गतिः क्वचित्॥२०॥
वायोः प्रस्तरगर्भाऽन्त स्तद्रूपे निखिलाऽऽगमाः। तत्स्वरूपबलात्सिद्धं भातं सर्वं तदाश्रयात् ॥२१॥
चितिशक्तिस्तथारूपा त्रितयात् पूर्वभाविनी।
त्रिपुराख्या समाख्याता व्याख्याऽऽख्यानविवर्जिता ॥२२॥
अनादिमध्यनिधना सा स्ववैभवनिर्भरात्। विचित्राऽऽभासरूपेण सृष्ट्याद्याख्यां सदा गता ॥२३॥
तद्वैभवभवभरोत्थेऽस्मिन्निमित्तेऽस्य विनिर्मिते। स्वनिर्मितस्थितिविधौ दृश्यतामभिपद्यते॥२४॥
तत्र तेऽभिहितं पूर्वं चरित्रं त्रिपुराऽऽस्पदम्। कुमार्याद्यंशसम्भूतं विचित्रविभवोन्नतम् ॥२५॥

रजके कणों को यत्नपूर्वक किसी प्रकार गिना भी जा सके (परन्तु) हे परशुराम ! उस भगवती श्रीत्रिपुरा देवी की महिमा का इदमित्थं प्रकार से वर्णन करने का कोई पार नहीं हैं ॥१०-१७॥

भगवती के मुख्य अवतारोंके चरित्र संक्षेप से वर्णन किये गये हैं। पूर्वप्रतिपादित स्वरूपवाली जो देवी (त्रिपुरा) है उसके विषयका वर्णन पूर्णरूपसे इस लोकमें साक्षात् महेश्वर भगवान् भी नहीं कह पाते। वेद, शास्त्र, पुराण औरसब प्रकार से तन्त्र भी उसके स्वरूपको न प्राप्तकर सदा ही चाकचिक्यसे एक ओर ही चकितसे खड़े हैं जैसे इन्द्रियों की अपने शरीर में अथवा अग्नि की कहीं गति नहीं अथ च वायु की प्रस्तर गर्भ के अन्दर गति है। वैसे ही उसके रूपमें सम्पूर्ण आगम समाये हुए हैं। उसके स्वरूपके बलसे ही सब सिद्ध है, उसके आश्रयसे ही सब भान होता है। अचिन्त्य महिमासम्पन्न रूपवाली है चिति शक्ति है ज्ञानादि तीनोंसे पूर्व स्थित रहने वाली है। इदमित्थं स्वरूपके (तुरीया) व्याख्या द्वारा अव्याकृता और आख्यान से विवर्जित है अतः इसे त्रिपुरा नाम से कहा जाता है। वह अपने वैभवविलास के प्रसार से अनादि मध्यनिधना (आदि अन्त रहित) है, विचित्र आभासके रूपसे सृष्टि, पोषण, संहार और आदि की आख्या सदा प्राप्त करती है। अपने वैभवके विलास से इस संसारके निमित्त बनने पर अपनी बनाई हुई स्थितिविधि में दृश्यता (दृष्टि में आने का) को प्राप्त होती है। उस विषय में तुझे त्रिपुरा के विषय का चरित्र वैभव अत्यन्त सुविस्तर रूप से पहले मैंने कहा है जिसमें विचित्र वैभव से अत्यन्त समुज्ज्वल कुमारी आदि अंश रूपों वाली देवियों से परिपूर्ण आख्यान वर्णित हैं ॥१८-२५॥

इदानीं तेऽभिधास्यामि त्रिपुरायाः परात्परम् ।
यद्रूपं तस्य माहात्म्यं येन कामो विभावितः ॥२६॥
सा मूर्तिर्ललितेत्युक्ता सर्वेषु ललनात् सदा । अस्या विचित्रं चरितं भण्डदैत्यनिबर्हणम् ॥२७॥
अतिवीर्यबलज्ञानक्रियाचरितचित्रितम् । पुरा भण्ड इति ख्यातस्तपोवीर्यबलाऽन्वितः ॥२८॥
ससर्जाऽण्डान्यनेकानि ब्रह्मविष्णुशिवानपि । पराजितास्तेन देवास्त्रिपुरां परमेश्वरीम् ॥२९॥
प्रसादयामासुरलं साऽग्निकुण्डसमुद्भवा । ललिता त्रिपुरामूर्त्तिर्देवानां प्रीतिहेतवे ॥३०॥
निहत्य भण्डं सगणमकरोन्नीरुजं जगत् ।
तदा विष्णुमुखा देवाः स्तुत्वा तां ललिताऽम्बिकाम् ॥३१॥
कामस्योत्पत्तये देवीं प्रार्थयामासुरानताः । रतिमानीय कृत्वाऽग्रे श्रीदेवीपादपद्मयोः ॥३२॥
मातः कामस्य दयिता रतिरेषाऽतिदुःखिता । विधवा प्रियवैधुर्यशोकाऽग्निज्वलिता सदा ॥३३॥
कृशीभूताऽतिमलिना छिन्ननालाऽब्जिनी यथा । इमामुद्धर शोकाब्धौ मज्जन्तीं कृपया द्रुतम् ॥३४॥

अब मैं तुझे त्रिपुरा का पर से पर (स्वरूपभूत) जो रूप है उसका माहात्म्य कहूँगा । जिसके देखने से कामदेव फिर उज्जीवन पागया; सदा सब में ललनशील होने से वह मूर्ति "ललिता" इस नाम से कही जाती है । इसका विचित्र चरित्र भण्डदैत्य के आख्यान से सम्बन्धित अत्यन्त वीर्य, बल, ज्ञान, क्रिया और चरित्र से मण्डित है । प्राचीन समय में तपस्या, वार्य और बल से संयुक्त भण्ड इस नाम से प्रसिद्ध दैत्य होगया । उसने अनेक ब्रह्माण्डों को रचा साथ ही उसने ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवताओं को जीत लिया । उससे पराजित हो देवगण ने परमेश्वरी त्रिपुरा को भलीप्रकार आराधना से प्रसन्न कर लिया । वह देवगण की प्रीति के लिये अग्निकुण्ड से आविर्भूत त्रिपुरा की मूर्त्ति 'ललिता' हुई । उसने भण्डदैत्य को सब गणसहित मारकर जगत् को सब उपद्रवों से रहित (स्वस्थ) बना दिया । तब विष्णु प्रमुखदेवगण ने ललिताम्बिका की स्तुति कर श्रद्धा से विनम्र हो कामदेवके पुनः आविर्भावके लिये देवी की प्रार्थना की । उन्होंने रतिको लाकर उसे आगे कर श्रीमती परादेवी के चरणकमलोंमें (निवेदन किया ।) "हे मातः ! कामकी भार्या यह रति स्वामिरहित अत्यन्त दुःखित है; सदा ही प्रियके विरहसे

भक्तमूर्धन्यभूतस्य नोचितं ते पराभवम् । त्रिनेत्रणेति मन्यामस्तदम्बाऽस्यां दयां कुरु ॥३५॥
निशम्य प्रार्थनां देवी देवानां प्राह सुस्मिता । देवाः शृणुध्वं सत्यं तन्मद्भक्तस्य पराभवः ॥३६॥
न भवेत् कुत्रचिल्लोके न कामोऽपि पराकृतः । शापस्य गौरवाद्गौर्या मद्भक्ताया विशेषतः ॥३७॥
देह एव पराभूतो न कामो भस्मतां गतः । नेत्रे मम वसत्येषः कामो मद्भक्तशेखरः ॥३८॥
एषा मद्भक्तिपरमा रतिः कामप्रिया सती । वैधव्यं कथमीयेत दिनं ध्वान्तगणं यथा ॥३९॥
मयैष पुनरुद्भूतो मदनो रतिमेष्यति । पश्यध्वं क्षण एवैष रतेर्दुःखनिकृन्तनः ॥४०॥
इत्युक्त्वा ललिता देवी कामेशं परमेश्वरम् । सुन्दराऽपाङ्गपीयूषवर्षणैरभ्यषेचयत् ॥४१॥
अपाङ्गाद् हृदयं प्राप्य कामेशस्य स मन्मथः । शरीरं प्राप्य तद्देहात् कन्दर्पो निर्जगाम ह ॥४२॥
सुप्तोत्थितमिवाऽऽत्मानममंसत स मन्मथः । प्रणनाम महादेवीं भक्तिक्षीराऽब्धिसम्प्लुतः ॥४३॥

उत्पन्न शोकरूपी अग्नि से जली हुई अत्यन्त कृश शरीर और बहुत मलिन वस्त्रों में जैसे कमलिनी नाल से टूटी हुई मुरझा जाती है वैसी ही दशामें स्थित है। शोकरूपी समुद्र में डूबती हुई इसे आप कृपा करके शीघ्र उबारिये। आप भक्तों के सर्वोच्च स्थान पर आसीन है आपके लिये इसे दुर्गति की अवस्था में रखना (उपेक्षणीय करना) उचित नहीं। हमलोग आपको त्रिनेत्रा मानते हैं इस लिये हे अम्ब ! आप इस पर दया कीजिये।" ॥२६-३६॥

देवगण की प्रार्थना को सुनकर देवी सुस्मित हास्यकर बोली, "हे देवगण ! सुनो यह सत्य है कि मेरे भक्त का पराजय संसार में कहीं नहीं हो एतावता काम भी किसी रूपमें पराजित नहीं हुआ। मेरी भक्तिमती गौरी के माहात्म्य से विशेषरूप से उसके देहका पराभव होगया काम कभी भस्म नहीं हुआ। यह (देखो) मेरे भक्तोंका शिखामणि काम मेरे नेत्र में निवास करता है। मेरी भक्ति में अत्यन्त परायण सती यह काम की भार्या रति जिस प्रकार दिन अन्धकार समूह से प्रभावित नहीं होता उसी प्रकार कैसे विधवा हो सकती है ? मेरे द्वारा यह काम फिर उद्भूत किया जाकर रति को प्राप्त करेगा। इसी क्षण रतिके दुःखको हरनेवाले काम को तुम लोग देखो।" इस प्रकार कह कर ललितादेवी ने परमेश्वर कामेश को अपने नेत्रों की कटाक्षरूपा अमृतवर्षा से सिञ्चित किया ॥३७-४२॥

कामेश के आँखों के कोने से हृदयको पाकर उसके शरीर से देह प्राप्तकर कामदेव आविर्भूत हो निकला। उस

मातरं पितरं देवान्नत्वा सर्वानवस्थितः । तुष्टाव ललितेशानीं विविधैरुत्तमैः स्तवैः ॥४४॥
अथ मात्रा रमादेव्या श्रुत्वा स्वतनुनाशनम् । पुनर्नेत्रादुद्भवञ्च प्रार्थयामास तां शिवाम् ॥४५॥
जगदम्ब न वाञ्छामि देहमत्यन्तनश्वरम् । विदेह एव तिष्ठामि नाशभीतिर्न मे भवेत् ॥४६॥
नाऽहं जीवितुमर्हामि महेश्वरपराजितः । यदि देवस्त्रिनयनः परिभूयान्मया हतः ॥४७॥
तदा मे जीवितेनाऽर्थः सत्यं प्रतिश्रृणोमि ते ।
तन्नेत्राऽग्निं समासाद्य भस्मीभूतः पतङ्गवत् ॥४८॥
त्वत्पादसंश्रयोऽप्यम्ब न मे जीवनजं फलम् । तदलं देवि देहेन जीवितेन च सर्वथा ॥४९॥
देहं नैवाऽहमिच्छामि दयां मयि समावह । धिङ् मां रमासुतो भूत्वा श्रीदेवीपादसंश्रयः॥५०॥
परिभूतो वीरगोष्ठ्यां पुनर्जीवाम्यनार्यवत् । श्रुत्वैवं मन्मथवचः प्राह श्रीललिताऽम्बिका ॥५१॥
वत्स कन्दर्प मा खेदं गच्छ त्वमरिमर्दन । मत्पादसंश्रयाणां तु नास्ति क्वाऽपि पराभवः ॥५२॥

काम ने अपने को सोये से जागे हुए के समान माना । भक्ति के क्षीरसागर से अतिमात्रामें पूर्ण उसने महादेवी को प्रणाम किया ॥४३-४४॥

माता (लक्ष्मी) पिता (विष्णु) और सब देवगण को प्रणाम कर खड़े हो उसने ललितेशानी भगवती की उत्तम स्तोत्रों से स्तुति की । अनन्तर उसने माता रमादेवी से अपने शरीर के नाश होने और फिर आँखों से उत्पन्न होने का वर्णन सुन बाद में भगवती शिवा (कल्याणमयी) की प्रार्थना की; "हे जगदम्बे ! मैं इस अत्यन्त विनाशशील (नाश होनेवाले) शरीर को नहीं चाहता । मै विदेह ही रहना चाहता हूँ । जिससे मुझे कभी नष्ट होने का भय न रहे । महेश्वर से पराजय पाया मैं जीवितरहनेयोग्य नहीं हूँ । यदि त्रिनेत्र भगवान् शिव मेरे आघात से पराजित हों तब तो मेरे जीवित रहने का प्रयोजन है; सत्य ही यह मैं आपके सामने शपथ लेता हूँ । मै उसके नेत्ररूपी अग्नि में पतिङ्गे के समान जलगया । हे अम्ब ! आपके चरणोंका अवलम्ब लेनेवाले मुझे जीवन का लाभप्रद कोई फल नहीं । हे देवि ! इस लिये मेरे जीवित देह से अलं कीजिये । मैं देह की कामना नहीं करता मेरे ऊपर दया करें । श्रीदेवी के चरणकमलों का आश्रय लिया हुआ साक्षात् रमा का पुत्र वीरों की श्रेणी में हार गया; मैं फिर अधम लोगों के समान जीऊँ ? धिक्कार है मुझे ।" इस प्रकार काम के वचन

मन्नेत्रयोः संस्थितस्त्वं सुषुप्त इव पूरुषः । गौरीशापविनिर्दग्धो देहो भस्मत्वमागतः ॥५३॥
त्वद्देहसम्भवाः कामा असंख्यास्त्वत्समौजसः । जयन्ति सर्वलोकांस्ते तेषां त्वमीश्वरो भव ॥५४॥
अथ कामान् देहभवानाहूयाऽम्बाऽब्रवीद्वचः । कामाः शास्तैष वो देवः कामराजो मम प्रियः ।
शासनेऽस्य सदा स्थेयं भवद्भिर्देहसम्भवैः ॥५५॥
यच्छ काम पुनर्देहं शिवं जहि निमेषतः । देवैः सम्प्रार्थितः पुत्रसमुत्पादनकर्मणि ॥५६॥
आस्ते निष्काम एवाऽसौ समुद्रः स्तिमितो यथा । न त्वयाभिहतो नूनं विवशो विह्वलेन्द्रियः ॥५७॥
समेष्यत्यद्रिजां शीघ्रं मोहिनीं विष्णुमप्युत । तनुं नेच्छस्थलं यत्ते तनुमन्यो न पश्यति ॥५८॥
रतिं विना त्रिलोकेऽपि गच्छ देवं द्रुतं जहि । इत्याज्ञप्तो ययौ कामः सन्नद्धः शङ्करं प्रति ॥५९॥
अदृश्य एव बाणेन जघान स्वरिपुं शिवम् । हतः कामेन चाऽत्यन्तं देवैरपि शिवोऽर्थितः ॥६०॥
अनुगच्छन् पर्वतजां कामबाणपीडितः । ततो जातो गुहस्तेन हतास्तारकमुख्यकाः ॥६१॥

सुनकर श्रीललिताम्बिका बोली, "हे वत्स ! शत्रु के गर्वको मर्दन करने वाले काम ! तू इस प्रकार खिन्न मत हो। मे चरणों के आश्रय लेनेवालों का कहीं भी पराजय नहीं होता। जिस प्रकार सुषुप्त (सोये) पुरुष की स्थिति वैसा ही तू मेरे दोनों नेत्रों में स्थित था। भगवती गौरी के शाप से भस्म हुआ तेरा शरीर ही जला था तेरे शरीर से उत्पन्न तेरे सामने ही ओजस्वी असंख्य कामदेव सब लोकों में अत्यन्त उत्कर्ष रूप से रहते हैं उनक तू स्वामी बन।" ॥४५-५५॥

अनन्तर अम्बा ने देहधारी कामदेवों को बुलाकर कहा, "हे कामदेव ! यह मेरा प्यारा कामरा दिव्यरूपधारी तुम्हारा शासनकर्ता है। तुम इसके देह से उत्पन्न सब इसी के आदेश में रहना। हे काम ! फिर देह पाकर, जा निमेष में ही शिव को पराजित कर। पुत्र उत्पन्न करने के कार्य के लिये देवगण ने उसकी प्रार्थना व है जैसे समुद्र गम्भीर अचल है वैसे शंकर निष्काम ही है। जब तू आक्रमणकर घात करेगा तो वह विवश और चञ्च इन्द्रियोंवाला होकर मोहित बन पर्वतपुत्री गिरिजा से शीघ्र मिलेगा और विष्णु को भी मोहनीरूप से प्राप्त करेग जैसे तू स्थूल शरीर को नहीं चाहता तो तेरी भार्या रति को छोड़ त्रिलोकीमें अन्य कोई तेरे शरीर को नहीं देर पायेगा। अब जा, शीघ्र ही शंकर को कामयुद्धमें पराजित कर।" इस प्रकार आज्ञापाकर काम शङ्करके पास सभीत

दैत्याः सखायो भण्डस्य महावीर्यपराक्रमाः । अथ कालान्तरे शम्भुर्मोहिनीदर्शनादलम् ॥६२॥
कामास्त्रविद्धहृदयो बभूव स्खलितेन्द्रियः । एतत्ते सर्वमाख्यातं कामस्य जननं पुनः ॥६३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे भगवतीत्रिपुराकृपया दुर्गोपाख्याने कामोज्जीवनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६११॥

सज्जित हो गया। अपने शत्रु शिवको अदृश्य ही कामने बाणसे आघात किया। काम द्वारा अत्यन्त प्रलोडित और देवगण द्वारा अत्यधिक प्रार्थित शिव कामदेवके बाणों से आकुल हो पर्वतपुत्री गौरी से मिले। उस सम्बन्ध से देव सेनापति स्कन्द का आविर्भाव हुआ, जिसने तारकादि प्रमुख दैत्य जो भण्डके महावीर्यशाली पराक्रमी मित्रगण थे, वे पराजित हुए। अनन्तर समय बीतजाने पर मोहिनी के दर्शनमात्रसे ही कामदेव के अस्त्र पञ्चबाणों से पीड़ित हृदय ही शम्भु स्खलितवीर्य हो गये। तुझे फिर काम के पुनर्जन्म का यह सब आख्यान सुनाया।

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य का दुर्गा के उपाख्यान में पुनः कामकाउज्जीवन नामक सैंतालीसवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

दत्तभार्गवसम्वादे त्रिपुरोपासनया विष्णुना मोहिनीरूपेणशिवमोहनवर्णनम्

श्रुत्वा कामपुनर्भूतिं जामदग्न्योऽतिकौतुकी । दत्तात्रेयं पुनरपि पप्रच्छ विनयाऽन्वितः ॥१॥
भगवन् श्रोतुमिच्छामि कथं निष्काम ईश्वरः । मोहिन्या मोहितो जातस्तन्मे शंस दयानिधे ॥२॥
भार्गवेणैवमापृष्टो दत्तः प्रोवाच योगिराट् । शृणु रामाऽभिधास्यामि कथां परमपावनीम् ॥३॥
पुरा देवाऽसुरे युद्धे क्षीरसागरसम्भवम् । दैत्या जह्रुः सुधाकुम्भं तदा विष्णुर्महासुरान् ॥४॥
मोहिनीरूपमासाद्य सुधाकुम्भं समाहरत् । वञ्चयित्वा दितिसुतान् देवेभ्यो बिभजत् सुधाम् ॥५॥
श्रुत्वैतच्छङ्करो वृत्तं विष्णुना सङ्गतः क्वचित् । प्रोवाच विष्णो रूपं ते मोहिन्याख्यं प्रदर्शय ॥६॥
जगाद विष्णुः श्रीकण्ठं तद्रूपमतिमोहनम् । दृष्ट्वा त्वं मोहितः सद्यो मुक्तवीर्यो भविष्यसि ॥७॥

अडतालीसवां अध्याय

कामदेव के फिर से हुए जननोद्भव को सुनकर श्रीपरशुराम ने अत्यन्त कुतूहल अनुभव करते हुए फिरभी श्रीदत्तात्रेय से विनयी बनकर पूछा, "हे भगवन् ! निष्काम (कामनारहित) सर्वसमर्थ भगवान् शिव किस प्रकार मोहनी से मोहित हुए सो हे दयानिधे ! आप मुझे बताइये"॥१-२॥

इसप्रकार भार्गव परशुराम द्वारा पूछने पर योगिराज दत्तात्रेय बोले,"हे परशुराम ! तुझे अतिपवित्र कथा सुनाऊँगा। प्राचीन कालमें देवासुर-संग्राममें क्षीरसागर से उत्पन्न हुए अमृत के कलश को दैत्योंने बलपूर्वक हर लिया; तब मोहिनी रूप बनाकर विष्णुने महाबली असुरों को छलकर अमृत ले लिया और देवगण को बांट दिया ॥२-५॥ इस सब घटना को सुन श्रीशङ्कर किसी स्थानपर श्रीविष्णु से मिले। वह बोले, "हे विष्णो ! अपना मोहनीनामक रूप मुझे दिखाओ।" श्रीशिवको श्रीविष्णुने कहा, "वह रूप अत्यन्त मोहक है आप उसे देख शीघ्र स्खलितवीर्य हो जायेंगे"। इसे सुनकर शङ्कर खूब हंसे फिर बोले, "हे विष्णो ! मैं उन दैत्यों की तरह शीघ्र मोहित किये जाने वाला नहीं हूँ जो तुम्हारे द्वारा

श्रुत्वा जहास सुतरामब्रवीद्वचनं पुनः । नाहं दैत्यसमो विष्णो ये त्वया मोहिता भृशम् ॥८॥
न मेरुशिखरे वात्या वीर्यं मूर्च्छति कुत्रचित् । आस्ते मोहमयी वृत्तिर्यन्मां मोहयितुं क्षमः ॥९॥
हरिरेवमधिक्षिप्तो दर्शयिष्यामि कालतः । इत्याभाष्य गतौ विष्णुशङ्करौ स्वं स्वमालयम् ॥१०॥
एवं शिवेनाऽधिक्षिप्तो विष्णुः स्वस्मिन् व्यचिन्तयत् ।
नूनं शिवो महातेजा ऊर्ध्वरेता यताऽऽत्मवान् ॥११॥
साक्षात् कामोऽपि नाऽशक्यं मोहयितुमीश्वरम् । तं कथं मोहयिष्यामि येन कामो हतः क्षणात् ।१२।
नूनं यास्यामि लघुतां प्रदर्श्य मोहिनीतनुम् । यं सा पर्वतजा गौरी भगिनी लोकसुन्दरी ॥१३॥
त्रिपुरांऽशसमुद्भूता सदा सन्निहिता सती । न समर्था मोहयितुं स्पर्शदर्शपराऽप्यलम् ॥१४॥
तत्कथं मोहिनीवेषं कृत्वाऽहं मोहयामि तम् । इति चिन्तापरो भूत्वा विमृश्य तदनन्तरम् ॥१५॥
नूनमत्र विना देव्यास्त्रिपुरायाः प्रसादनम् । न सेत्स्यति मतं तस्मात्तां समाराधयाम्यहम् ॥१६॥
इति निश्चित्योपतस्थौ त्रिपुरां लोकसुन्दरीम् । षष्टिवर्षसहस्राणि तां समाराधयद्धरिः ॥१७॥

अधिकाधिक मोहित किये गये। मेरुपर्वत के शिखर पर कहीं भी वायु से वीर्य को मूर्च्छित करने वाली मोह से भरी कोई भी वृत्ति नहीं जो मुझे मोहित करने की क्षमता रखती हो।" ॥५-९॥

इस प्रकार शंकर से स्वनिंदा सुन हरि ने 'समय आने पर दिखाऊंगा' यह कहकर दोनों अपने-अपने लोकों में चले गये। इस रूप में शिव द्वारा निन्दा सुन विष्णु ने अपने मन में सोचा "अवश्य ही शिव महातेजस्वी ऊर्ध्वरेता संयतआत्मा महानुभाव हैं उस महेश्वर को साक्षात् कामदेव भी मोहित न कर सका (तब) मैं उन्हें कैसे मोहवश करूंगा जिसने क्षणमें काम को भस्मकर मारडाला। निश्चय ही मोहिनी का शरीर दिखाकर मैं छोटा ही बन जाऊंगा। जिस शिव के साथ त्रिपुरा भगवती के अंशसे उत्पन्न लोकों में सुन्दरीगण में श्रेष्ठा मेरी बहन सती पार्वती सदा सन्निकट विराजती है वह भी स्पर्शकरने से एवं रूपदृष्टि से उसे मोहित करने में जब समर्थ नहीं तब मैं मोहिनीवेष धरकर किस प्रकार उसे मोहित करूंगा?" इसप्रकार चिन्तित हो विचारकर विष्णु उसके बाद "अवश्य ही त्रिपुरादेवी को प्रसन्न किये विना यह सब मन का विचारा संकल्प सिद्ध नहीं होगा; इसलिये उसी की आराधना करता हूँ।" यह निश्चय कर हरि ने लोकसुन्दरी भगवती त्रिपुरा की साठ हजार वर्षों तक आराधना की ॥१०-१७॥

अथ प्रसन्ना त्रिपुरा प्रादुर्भूता महेश्वरी । प्रोवाच विष्णुं वत्सेति सम्बोध्य परमेश्वरी ॥१८॥
वरं वरय ते ऽभीष्टं यत्तद्दास्ये रमापते । नाऽदेयं विद्यते तुभ्यं चिरमाराधिता यतः ॥१९॥
एवं नियुक्तः श्रीदेव्या नमस्कृत्य परां हरि : । प्राह देवि महेशानं कामारिमपि मोहितुम्॥२०॥
मोहिनीरूपमिच्छामि यच्छिवस्याऽपि मोहकम् ।
श्रुत्वा विष्णोः प्रार्थितं तत् प्रोवाच त्रिपुरेश्वरी ॥२१॥
पुरुषं वाऽपि स्त्रीरूपं सर्वलोकैकमोहनम् । यदेच्छसि तदा तेऽस्तु गच्छ मन्मथसंयुतः ॥२२॥
दृष्ट्वा त्वां मन्मथाऽऽविद्धो गिरिशो मोहमेष्यति ।
ऊर्ध्वरेताः शम्भुरयं योगीशो जितमन्मथः ॥२३॥
तदर्थं ते ददाम्यंशं मत्सौन्दर्यस्य तेन तम् । मोहयिष्यस्यतितरां लोके ख्यातिश्च यास्यसि॥२४॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा कामेन पुरुषोत्तमः । ययौ कैलासशैलेन्द्रं यत्र देवः स्थितः शिवः ॥२५॥
पार्वत्या सहितस्तस्मादविदूरे मनोहरे । सुरसिन्धुतटे फुल्लवने शुकपिकाऽऽकुले ॥२६॥

तत्पश्चात् प्रसन्न हुई महेश्वरी त्रिपुरा ने आविर्भूत हो विष्णु से "वत्स" यह सम्बोधनकर कहा, "हे रमापते! जो तुझे अभीष्ट हो सो वर मांग मैं वही दूंगी; तुझे कुछ अदेय नहीं क्योंकि तूने दीर्घ समय तक मेरी आराधना की है।" इस प्रकार श्रीदेवीके कहे जानेपर श्रीविष्णु ने भगवती परा को प्रणाम कर कहा, "हे देवनशीले भगवति ! महेश्वर काम के शत्रु को भी मोहने के लिये मैं मोहनी रूप की कामना करता हूँ जो शिव को भी मोहित करनेवाला हो।" विष्णु के उस प्रार्थित वचनको सुन त्रिपुरेश्वरी बोली,"सम्पूर्ण लोकों में श्रेष्ठ आत्यन्तिकरूप जो भी जब तू चाहे तभी तुझे प्राप्त हो जायगा। कामदेव के साथ तू चला जाना तुझे देख काम के वशीभूत हो शंकर मोहको प्राप्त होगा। यह शंकर ऊर्ध्वरेता योगीश और कामदेव को जीता हुआ है उसके लिये मैं अपने सौन्दर्य का अंश तुम्हें देती हूँ; उससे तू उसे सर्वप्रकारसे मोहित करलेगा और संसारभर में प्रसिद्धि पावेगा ॥१८-२४॥

इस प्रकार वर पाकर पुरुषोत्तम विष्णु कामदेव के साथ कैलाश पर्वतराज पर गया जहां दिव्यगुण सम्पन्न शिव पार्वतीसहित स्थित थे। उसके अत्यन्त निकट मनोहर सुरसिन्धु (मानसरोवर) के तट पर

मोहिनीरूपमास्थाय विचचार समन्मथः । समानसर्वाऽवयवं सर्वसौन्दर्यसंश्रयम् ॥२७॥
तप्तहेमाऽऽभसुतनुं पूर्णचन्द्रनिभाऽऽननम् । कस्तूरिकातिलकिकाकलङ्कच्छविलाञ्छनम् ॥२८॥
घननीलकबन्धान्तमध्योद्यन्मुखचन्द्रकम् । मन्दहासक्षीरनिधिफुल्लेन्दीवरनेत्रकम् ॥२९॥
नासाचम्पकवित्रस्तनिवृत्ताऽलिविशेषकम् । मुखसौन्दर्याऽब्धिवलन्मीनचञ्चललोचनम् ॥३०॥
कुन्दकोरकपङ्क्त्याऽऽभद्विजपङ्क्त्युपशोभितम् ।
गण्डाऽऽभोगस्फुरद्रत्नकुण्डलश्रीमनोहरम् ॥३१॥
कन्दुकाऽऽभकुचद्वन्द्वसतीर्थीकृतकोककम् । प्रवाललतिकाभोगशोभाजित्पाणियुग्मकम् ॥३२॥
रत्नाङ्गदोर्मिवलयशोभाद्विगुणसुन्दरम् । प्रवाललतिकोदञ्चत्करास्बुजविराजितम् ॥३३॥
तनुवल्लीबाहुशाखाप्रान्तकोरकिताऽङ्गुलिम् । पृथुवक्षःस्थलीन्युब्जदुन्दुभिद्वयसुस्तनम् ॥३४॥
चर्मबन्धनसुग्रन्थिनिमग्नाऽसितचूचुकम् । नाभीविलोद्गमद्रोमलतातनुभुजङ्गकम् ॥३५॥

अवस्थित शुकों तथा पिकों (कोकिल)से परिपूर्ण, अत्यन्त सुरभि पुष्पोंवाले द्रुमों से पुष्पित सघन वनमें मोहिनीरूप बना कामदेवके साथ घूमने लगे। उस सुन्दरी के सम्पूर्ण अवयव समानरूप से कमनीय थे, मानो जिसमें समूची सुन्दरता एक साथ ही समा गई हो; अत्यन्त प्रदीप्तसुवर्णकी आभासे युक्त अत्यन्त मनोहर शरीर, पूर्णिमा के सोलह कलाधारी चन्द्रमा के समान कान्तिवाला मुख उस पर कस्तूरी के तिलक से कुछ चिन्हित कालिमा से शोभा धारण किये, अत्यन्त घने काले बाल शरीर के उत्तमाङ्ग के ऊपर उभरे मुख चन्द्रकी शोभाधारणकरनेवाला, नासिका रूपी चम्पकपुष्प से त्रस्त हो भ्रमरपंक्ति मानो हटगई हो, मुख के सौन्दर्यसागर में अत्यधिक गोते लगाती मछली के समान चञ्चल लोचनवाला, शरत्कालके कुड्मल-कलिकाओं की श्रेणी से शोभित अपने दन्तपंक्ति से विराजित, गण्डस्थल से लटकती रत्नकुण्डलों की शोभासे अत्यन्त कमनीयसुन्दरतावाले, गेन्दके समान उठे हुए दोनों स्तनों से कोक (चक्रवाक) को सतीर्थ करनेवाले, प्रवाल (मूँगे) की लता के समान शोभाधायक दोनों हाथवाले, रत्न के बाजुबन्द के पहनने से रेखावाले कङ्कण की शोभासे दुगुना सौन्दर्यधारी, प्रवाल (मूँगे) की लतासे उभरे हुए करकमलों से अतिरमणीय, शरीररूपी लता में भुजाओं को शाखारूपी भागमें खिली हुई कलियों के रूपमें अङ्गुलियों के आभूषण पहने, सुविस्तृत वक्षःस्थल पर उलटी हुए ढक्का के समान दोनों स्तनवाले, शरीररूपीचर्मसे बन्धनप्राप्त भलीप्रकार गांठ से निमग्न कृष्णवर्ण के चूचूकों को धारण किये,

ऊर्ध्वाङ्गाधारतोन्नेयमध्यभागसमाश्रयम् । नाभीह्रदस्वर्णतटसोपानत्रिवलीयुतम् ॥३६॥
कौसुम्भांऽशुकसंवीतिनितम्बलघुतायुतम् । काञ्चीमणिप्रविततिप्रभाद्विगुणिताऽरुणम् ॥३७॥
रत्ननूपुरविन्यस्तकिङ्किणीस्वनसुन्दरम् । मन्दयानाऽतिसौन्दर्यपराकृतमरालकम् ॥३८॥
एवं सुमोहिनीरूपं कृत्वा यज्ञपतिर्हरिः ॥३९॥
व्यहरत्कन्दुकक्रीडापरः फुल्लवनाऽऽलिषु । मधुरं सुस्वरं गायन् शिवस्य पुरतस्तदा ॥४०॥
शिवः श्रुत्वा गीतरवमपश्यत्तां पुरो वने । गौरि पश्याऽतिसुभगां कन्दुकक्रीडने रताम् ॥४१॥
भज्यमानामिव लतां तडिल्लेखेव भासुराम् । कन्दुकक्रीडनाऽऽलोलहारवल्गत्पृथुस्तनीम् ॥४२॥
स्वेदार्द्रांऽशुकसुव्यक्तस्तनश्रोण्यूरुमण्डलाम् । स्तनभारनमन्मध्यां नृत्यत्कुचसुकुड्मलाम् ॥४३॥
कन्दुकोत्पातसंलग्नकरनेत्राऽम्बुजद्वयीम् । उपयावोऽतिकुतुकाऽऽलोकाय द्रुतमद्रिजे! ॥४४॥

नाभिविलसे निकली रोमलतासे अत्यन्त पतली सर्पाकृतिधारण किये, ऊपरके अङ्गोंको आधारित करनेवाले ऊँचे उठे मध्य भागके साथ नाभिस्थित सरोवरके सुवर्णमय तटपर सोपान (सीढी) रूपमें तीनवलियों (पंक्तियों) को धारण किये, अत्यन्त महीन कौसुम्भ (केसरिया) रंग के वस्त्र में लिपटे नितम्ब भाग अत्यन्त निम्नभावको प्राप्त किये, करधनी में लगी मणियों की फैलती हुई कान्ति से द्विगुणित अरुण रंग की शोभा धारण किये, रत्नों के पायलके साथ होनेवाले घूँघुरों के अभिराम शब्द से संयुत, मन्दगमन से अतिसौन्दर्य युक्त हो मराल (हंस) की गति को तिरस्कृत करनेवली गति से गमनशील इसप्रकारके सुन्दर मोहनीरूपको बना यज्ञपति श्रीविष्णु सुन्दर सुपुष्पित वन में जहां भ्रमर गुंजार करते रहे वहां कन्दुक (गेंद) खेलते हुए उस समय कर्णमधुर सुन्दर स्वर से शिव के सामने गाते हुए विहार करने लगे ॥२५-४०॥

(विवश हो) शिवने अपने सामने गीत की मधुर ध्वनि को सुनकर उस ललनाको देखा (वह भगवती पार्वती से बोले) "हे गिरिजे ! अत्यन्त सुन्दर कमनीय कान्तिवाली कन्दुक के साथ खेलने में लगी, विकसित लता के समान विद्युत् की रेखा सी अत्यन्त तड़क-भडक वाली (चमकीली) गेन्द (कन्दुक) से खेल करने से हिलने वाले हार से शोभित पीवरस्तनोंवाली, ऐसे परिप्रेक्ष्यमें परिश्रम से पसीने से तर होने से अत्यन्त महीन वस्त्रों में उसके स्तन, श्रोणी और जघन प्रदेश भली प्रकार दीख पड़ते हैं ऐसी, अपने स्तनों के भार से उसका कटि प्रदेश अत्यन्त कृश हो गया है जिस पर चञ्चल कुचरूपी कुड्मल (कलिका) खिली हुई हों। गेन्द के उठने को ओर अपने हाथ और नेत्रकमलों की दृष्टि लगायी हुई इस अनिन्द्य सुन्दरीन्द्यरमणी को देख। हे गिरिजे ! तुम हम दोनों अत्यन्त कौतुक से देखने के लिये शीघ्र चलें ॥४१-४४॥

अथ तामुपयान्तं तं मन्मथोऽप्यविदूरतः । जघान पुष्पविशिखैर्हृदि देवस्य शूलिनः ॥४५॥
विद्धो मन्मथबाणेन दृष्ट्वा तां मोहिनीं पुरः । कामाग्निज्वलितात्माऽसौ हित्वा गौरीं द्रुतं ययौ ॥४६॥
क्षुब्धेन्द्रियगणो देवस्तामासाद्य समीपतः । काऽसि सुन्दरि मां पश्य कुतस्त्विह समागता ॥४७॥
मनो हरसि मे बाले पृच्छामि त्वां शिवोऽहम् । अनादृत्यैव तद्वाक्यं सा क्रीडनपरा पुनः ॥४८॥
मन्मथाऽऽविद्धहृदयो गाढव्याकुलिताऽन्तरः । अनुव्रज्य करं तस्या जग्राहेऽतिविमोहितः ॥४९॥
तदङ्गस्पर्शनोद्भूतसुखक्षुब्धेन्द्रियः शिवः ॥५०॥
मुमोच वीर्यमत्यन्तं प्राकृतः पुरुषो यथा । अथ विष्णुर्निजं रूपं दधार शिवसन्निधौ ॥५१॥
ज्ञात्वा शिवोऽप्यतिक्षुब्धहृदयो ह्रियमावहत् । हरिस्त्रिलोचनं प्राह दर्शितं शिव ते मया ॥५२॥
यन्मे दिदृक्षितं रूपं मोहिन्याख्यं सुमोहनम् । श्रुत्वा हरिवचः शम्भुर्लज्जयाऽवनताऽऽननः ॥५३॥
एवं पुरा स कामारिर्मोहिनीरूपदर्शनात् । नष्टवीर्यः समभवदत्यन्तं क्षुभितेन्द्रियः ॥५४॥

अब उसके पास आते हुए शंकर की ओर कामदेवने अत्यन्त सन्निकट से स्थित हो उस दिव्यविभूतिसम्पन्न त्रिशूलधारी के हृदय में अपने पंच बाणों से आघात किया। कामदेव के बाण से व्यथित शंकर उस मोहिनी को सामने देख कामरूपी अग्नि से अत्यन्त पीडित हो भगवती गौरी को पीछे छोड़ शीघ्र आगे बढ़े। उस कामदेव के प्रभावसे शिव की सब इन्द्रियां अत्यन्त चञ्चल और विकारग्रस्त हो गयी तब शिव उसके समीप आकर बोले, "हे सुभगे! तू कौन है? मुझे देख; यहां क्यों आई है?" हे बाले! तू बलात् मेरे मनको हरती है, इसी से पूछता हूँ। यह मैं शिव तेरे सामने हूँ।" श्रीशिवके कथन को अनसुनासा करके ही वह फिर गेन्द खेलने में लगी रही। कामदेवके प्रहारसे बिंधे हृदयवाले अत्यधिक व्याकुलचित्त शंकर ने अत्यन्त विमोहित हो सुन्दरी के पीछे-पीछे जाकर उसके हाथ को पकड़ लिया ॥४५-४९॥

उसके अङ्ग के स्पर्शमात्र के आनन्द से ही उनकी इन्द्रियां विकारग्रस्त हो गयी तब शिवने जैसे साधारण व्यक्ति कामाकुल हो वीर्यपात कर देता है उसी के समान अपने स्खलित वीर्यको छोड़ा। अनन्तर श्रीविष्णुने शिव के सामने अपना पूर्वरूप धारणकर लिया। शिव इसे जानकर अत्यन्त क्षुब्धहृदय हो लज्जित हुए। श्रीविष्णुने त्रिलोचन शंकर से कहा, "हे शिव! मैंने जो मोहिनीनामवाले अत्यन्त मोहनीयरूप को दिखाने की इच्छा की थी वह आपको दिखा दिया।" श्रीविष्णु का कथन सुन कर शम्भु ने लज्जासे अपने मुख नीचे झुका लिया ॥५०-५३॥

प्राचीन समय में इस प्रकार कामदेव के शत्रु शिव मोहिनीरूप के दर्शन से अत्यन्तकामासक्ति से विचलित-

त्रिपुरायाः कृपाप्राप्तौ न किञ्चिद् दुर्लभं भवेत् । एवं विष्णुविरिञ्च्याद्या स्त्रिपुरां परमेश्वरीम् ॥५५॥
समाराध्य प्राप्तकृपा व्यदधुर्दुर्घटान्यलम् । एवं ब्रह्मादयः सर्वे त्रिपुराया उपासकाः ॥५६॥
आराधयन्ति तामेव तद्विद्यां प्रजपन्ति च । तेषु सर्वोत्तमः कामो भक्तलोकैकशेखरः ॥५७॥
विद्याप्रवर्तकश्चैवमन्येऽप्यस्याः कृपावशात् । जाता विद्येश्वरास्तेषु मुख्यास्ते द्वादश स्मृताः ॥५८॥
तानहं ते प्रवक्ष्यामि शृणु भार्गव संयतः । मनुश्चन्द्रः कुबेरश्च लोपामुद्रा च मन्मथः ॥५९॥
अगस्तिरग्निः सूर्यश्च इन्द्रः स्कन्दः शिवस्तथा । क्रोधभट्टारको देव्या द्वादशाऽमी उपासकाः ॥६०॥
एतान् प्रातः स्मरन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते । एते प्राप्तप्रसादा यत्तस्या देव्यास्ततोऽन्वहम् ॥६१॥
स्मरणात्सर्वसौभाग्यफलप्राप्तिर्भवेदिह । त्रिपुरोपासका ये वै तैः स्मर्त्तव्या विशेषतः ॥६२॥
ततस्तस्याः सुभक्तिः स्याद्भवपाशनिकृन्तनी । जगत्सृष्टिमोषधीनाममृतांऽशुनिषेचनम् ॥६३॥
धनेशत्वञ्च सौभाग्यं शिवस्य विजयं तथा । समुद्रशोषणाद्यञ्च देवतामुखतां तथा ॥६४॥

इन्द्रिय हो स्खलितवीर्य हो गये । देख, भगवती त्रिपुरा की कृपा प्राप्त होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता । इस तरह विष्णु व ब्रह्मा आदि देवतागण भगवती त्रिपुरा परमेश्वरी की आराधनाकरकृपा प्रसाद प्राप्त किये हुए अत्यन्त दुर्घट कार्यों को करने में समर्थ होते हैं । इस प्रकार सभी श्रीत्रिपुरा के उपासक ब्रह्मा आदि उसकी आराधना करते हैं एवं उसकी विद्या को जपते हैं । उन सबमें सब से श्रेष्ठ भक्त लोगों का अद्वितीय शिखामणि कामदेव श्रीविद्यासम्प्रदाय का प्रवर्तक है, एवम्प्रकारेण अन्य भी इस की कृपा के कारण विद्येश्वर हुए हैं उनमें ये बारह मुख्य कहे गये हैं (माने जाते हैं), उन्हें मैं तुझे बताता हूँ हे भार्गव ! सावधानमन से सुन । मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, कामदेव, अगस्त्य, अग्नि, सूर्य, इन्द्र, स्कन्द, शिव और क्रोधभट्टारक श्रीदुर्वासा ये श्रीदेवी के उपासक हैं; नित्य इन्हें प्रातःकाल स्मरण करता हुआ व्यक्ति सब पापों से छुटकारा पा जाता है । ये जैसे भगवती के कृपापात्र हैं उससे प्रतिदिन इन्हें स्मरण करने से सम्पूर्ण सौभाग्यों के फल की प्राप्ति इस लोक में होती है । त्रिपुरा भगवती के जो उपासक हैं उन्हें विशेषरूप से स्मरण करना चाहिये । इससे संसार के पाशको काटनेवाली उस त्रिपुरा में सद्भक्ति होती है । हे राम ! जगत्की सृष्टि रचनेवाली शक्ति (मनु प्रजापति) औषधियों में अमृत कलाका निषेचन (सोम-चन्द्र), धनाधीश बनना (कुबेर) सदा सुहागिनबनी रहना (लोपामुद्रा), शिव की विजय (काम) समुद्रशोषण आदि कार्य (अगस्त्य) देवताओं में प्रमुख स्थान

लोकप्रकाशकत्वञ्च देवेशत्वमनुत्तमम् । मृत्योर्जयं क्रौञ्चजयं योगीशत्वञ्च भार्गव ! ॥६५॥
त्रिपुरायाः प्रसादेन प्राप्ता एते हि साधकाः । एते समस्तविद्येशा अन्ये बीजाद्युपासकाः॥६६॥
तत्र मुख्यास्त्रिगुरवो लोके सर्वत्र पूजिताः । मित्रीशषष्ठीशोड्डीशा आद्याऽऽचार्याः शिवाऽङ्गजाः ॥६७॥
कूटोपासनसम्प्राप्तमहेश्वरपदा इमे । एवं सा त्रिपुरेशानी कृत्वा विविधरूपकम् ॥६८॥
चक्रे जगद्रक्षणं सा कलया विश्वमास्थिता । पूर्वसागरतीरे तु कामगिर्यात्मना स्थिता ॥६९॥
मेरुसानौ स्थिता सैव जालन्धरस्थानरूपतः । पूर्णगिर्यात्मना प्रत्यक् समुद्रप्रान्ततः स्थिता ॥७०॥
एवं त्रिधा संस्थिताऽपि पुनर्बहुविधा स्थिता । काञ्चीपुरे तु कामाक्षी मलये भ्रामरी तथा ॥७१॥
केरले तु कुमारी सा ह्यम्बाऽऽनर्तेषु संस्थिता । करवीरे महालक्ष्मीः कालिका मालवेषु सा ॥७२॥
प्रयागे ललिता देवी विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी । वाराणस्यां विशालाक्षी गयायां मङ्गलावती ॥७३॥
वङ्गेषु सुन्दरी देवी नेपाले गुह्यकेश्वरी । इति द्वादशरूपेण संस्थिता भारते शिवा ॥७४॥

(अग्नि), लोकों को प्रकाशित करना (सूर्य), अनुत्तम (श्रेष्ठ) देवों का स्वामित्व (इन्द्र), मृत्यु पर विजय (दुर्वासा) क्रौञ्च पर विजय (गणेशाग्रजस्कन्द) तथा योगीशत्व प्राप्ति (शिव) इन साधकों ने भगवती त्रिपुरा की कृपा से ये सब उपलब्धियां प्राप्त की। ये सभी विद्येश हैं और अन्य लोग बीजादि के उपासक ॥५४-६६॥

इस विषयमें प्रधान रूपसे तीन गुरु लोक में सर्वत्र पूजे जाते हैं; मित्रीश, षष्ठीश और उड्डीश; ये शिवके अङ्गसे उत्पन्न आद्य आचार्य हैं। इन्होंने कूट (भगवती चिदग्निसमुद्भूत त्रिपुरा)की उपासना से महेश्वर पद प्राप्त किया है। इस प्रकार उस भगवती त्रिपुरेशानीने विविधरूप बनाकर इस विश्वकी रक्षाको। यह अपनी कलासे विश्वमें अणुअणुमें व्याप्त है। पूर्व समुद्रके तट पर कामगिरिरूपमें, मेरुपर्वतमें जालन्धर स्थानमें स्वस्वरूपसे विराजी है और पश्चिम समुद्रतट पर पूर्णगिरि रूपसे स्थित है इस भांति तीन रूपमें होकर भी श्रीदेवी फिर बहुत रूपोंमें स्थित है। कांचीपुर में कामाक्षी, मलय में भ्रामरी, केरल प्रदेश में कुमारी, आनर्त (विदर्भप्रान्त) में अम्बा, करवीर (पश्चिम समुद्रतटवर्त्ती प्रदेश) में महालक्ष्मी, वही मालवप्रदेशमें कालिका है; प्रयाग में ललितादेवी, विन्ध्य क्षेत्र में विन्ध्यनिवासिनी, वाराणसी में विशालाक्षी, गयाक्षेत्र में मङ्गलावती, वङ्गदेशमें सुन्दरी तथा नेपालमें गुह्यकेश्वरी इन बारहरूपों से शिवा भारतवर्षमें प्रत्यक्षतः स्थित है ॥६७-७४॥

एतासां दर्शनादेव सर्वपापैः प्रमुच्यते । अशक्तो दर्शने नित्यं स्मरेत् प्रातः समाहितः ॥७५॥
तथाप्युपासकः सर्वैरपराधैर्विमुच्यते । एवमन्यानि रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ॥७६॥
कृत्वा भुवि स्थिता देवी जनानुद्धर्तुमिच्छया । इति ते राम सम्प्रोक्तं मोहिन्याः शिवमोहनम् ॥७७॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दुर्गोपाख्याने मोहिन्युपाख्यान-
वर्णनं नामाऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३६८८॥

इनके दर्शनमात्रसे ही मनुष्य कलिके सब पापों से छूट जाता है । इन सबके दर्शनमें व्यक्ति यदि असमर्थ हो तो प्रातःकाल नित्य भलीप्रकार सावधानमनसे स्मरण करे तो भी उपासक सब अपराधों से छुटकारा पाजाता है । इसप्रकार भगवती अन्य सैकड़ों और हजारों तरह के (नाना रूपों) रूप बना कर जनता के उद्धार करने की कामना से स्थित है । इस प्रकार हे परशुराम ! तुझे मोहिनी के शिवमोहन रूप को मैने बताया ॥७५-७७॥

इसप्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य खण्डके दुर्गोपाख्यानमें मोहिनीरूप से विष्णु द्वारा शिव का मोहन और कामजय के मान का मर्दन और भगवती के प्रमुख द्वादश पीठों के विषय वर्णन नामक अड़तालीसवां अध्याय समाप्त ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ललितामाहात्म्ये भण्डासुरप्रतापवर्णनम्

एवं श्रुत्वा जामदग्न्यो माहात्म्यश्रुतिकौतुकी । पप्रच्छाऽत्रिसुतं देवमवधूतकुलेश्वरम् ॥१॥
भगवन्नधुना तस्यास्त्रिपुराया महाद्भुतम् । ललितारूपधारिण्या माहात्म्यं वद विस्तृतम् ॥२॥
कथं वा सा जगद्धात्री प्रार्थिताऽऽविर्बभूव ह । किमाकारा कथं युद्धमासीद्भण्डेन संयुगे ॥३॥
किम्प्रभावः स दैत्येन्द्रः कस्य पुत्रः कथं सुरान् । अजयत् सर्वमाख्याहि शिष्यायाऽनुरताय मे ॥४॥
न हि शिष्येण सम्पृष्टा गुरवो दीनवत्सलाः । समियन्ति क्लेशमिह त्रिपुरायाः कथारसात् ॥५॥
त्वद्वक्त्रविकसत्पद्मजातादत्यन्तमोदनात् । नैव जातु वितृप्यामि चिरं जक्षन् द्विरेफवत् ॥६॥

उनचालीसवां अध्याय

(अपने गुरुदेव के मुख से इस प्रकार भगवती त्रिपुरा के प्रसाद से विष्णुद्वारा श्रीशिव के मोहने के सम्बन्ध का आख्यान को) श्रीपरशुराम सुन श्रीत्रिपुरा के माहात्म्य के सुनने में अत्यन्त कुतूहल (उत्कट उत्कण्ठा) रख कर अवधूत कुलके स्वामी महर्षिप्रवर अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय गुरुदेव से पूछने लगे ॥१॥ "हे भगवन् ! अब उस ललितारूपधारिणी भगवती त्रिपुरा के अत्यन्त आश्चर्यकारी माहात्म्य को विस्तार से सुनाइये । कैसे वह जगद्धात्री देवगण से प्रार्थित हो आविर्भूत हुयी ? किस प्रकारके आकारवाली है ? उसका भण्डके साथ संग्राम भूमि में युद्ध कैसे हुआ ? वह दैत्येन्द्र कितने अधिक प्रभाववाला था ? वह किसका पुत्र था और कैसे उसने देवगणको जीता ? यह सब आपके चरणों में अतिश्रद्धालु मुझ शिष्यको बताइये ॥२-४॥

दीनों पर वात्सल्य रखनेवाले गुरुजन शिष्यको पूछने पर त्रिपुराके कथारसके बताने में कभी क्लेश नहीं प्राप्त करते; दयालु गुरु शिष्यवत्सल होते हैं, उन्हें परमार्थतत्त्व बताते हुए कभी किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता । आपके मुखसे उत्पन्न अत्यन्त प्रसन्नकरनेवाले भगवती त्रिपुराके कथारसको दीर्घसमय तक पान करते रहने पर भी मैं तृप्तिपूर्वक अघाता नहीं जैसे भौंरा पुष्प-मधु के आस्वादन से स्वयं तृप्त अनुभव नहीं करता।" ॥५-६॥

पृष्ट एवं जामदग्न्याद्दत्तात्रेयो मुनीश्वरः । निशाम्य श्रवणोत्साहं तस्य प्राह प्रमोदितः ॥७॥
शृणु राम ! प्रवक्ष्यामि साक्षाच्छ्रीललितिाकथाम् ।
या हि साक्षान्महेशान्यास्त्रिपुरायाः कलात्मिका ॥८॥
त्रिपुरा परमेशानी सर्वकारणकारणम् । सर्वाऽऽश्रया चितिः प्रत्यक्प्रकाशाऽऽनन्दनिर्भरा ॥९।
शिवः सर्वजगद्धाता संविदानन्दविग्रहः । तस्याः संविदियं शक्तिश्चिच्छक्तिरभिधीयते ॥१०॥
या चितिः परमेशस्य क्रियास्फूर्तिः सुखाऽऽत्मना । सा शक्तिः परमेशस्य विमर्शाऽऽख्या महत्तरा ॥११।
महाकाशात्मिका यस्यां जगदेतद्धि राजते ।
सा त्रिधा भाति रूपैश्च त्रिपुराख्या प्रकीर्तिता ॥१२॥
समुद्रस्य जलमिव सूर्यस्य किरणा इव । धरण्या मृत्तिकेवेयं शिवस्य शक्तिरीरिता ॥१३॥
न तया विद्यते देवो विना काऽपि कथञ्चन । जलं विनेव जलधिर्विनेवाऽर्को गभस्तिभिः ॥१४॥
ललिता तस्य वै मूर्तिः स्ववैभवभराऽऽत्मिका । चिच्छक्तेः स्थूलतरवद्देहः सा पूर्णरूपिणी ॥१५॥

श्रीपरशुराम से इस प्रकार पूछे जाने पर मुनीश्वर श्रीदत्तात्रेय ने उसके सुनने के अत्यधिक समुत्साह को देख अत्यन्त प्रसन्न हो कहा, "हे राम ! अब तुझे साक्षात् भगवती श्रीललिताकी कथाको बताऊंगा जो भगवती महेश्वरी त्रिपुरा की कलात्मिका विभूति है। त्रिपुरा परमेशानी सम्पूर्ण कारणेश्वरों की कारण है; वह सम्पूर्ण प्राणीमात्र के आश्रयभूत (ब्रह्म) का आश्रयस्थान है; सर्वभावेन प्रकाश एवं आनन्द से परिपूर्ण है ॥७-९॥

सम्पूर्ण जगत् के धाता विधाता शिव सम्विद् और आनन्द वपु है उसकी यह संवित् शक्ति चिच्छक्ति (चिति-रूपाशक्ति) कहलाती है। जो परमेशकी चिति क्रिया स्पन्दरूपा सुखात्मरूपा है वह परमेश की शक्ति महत्तर विमर्श नाम को है वह महाकाशरूपिणी है जिसमें यह सारा जगत् दीप्त है। कारणभूतरूप प्रकाश, क्रिया और विमर्शरूपा तीन प्रकारके रूपों द्वारा भात होती है जो त्रिपुराख्या से प्रकीर्त्तित है ॥१०-१२॥ जैसे समुद्र का जल, सूर्य की किरणें एवं धरणी की मिट्टी वैसे ही शिवकी अभिन्नरूपा यह शक्ति कही गई है। उस शक्ति के विना शक्तिमान् देव शिव कहीं भी किसी प्रकार स्थित नहीं हैं। जैसे जलके विना समुद्र की और किरणों के विना सूर्य की स्थिति नहीं वैसे ही शिवएवं शक्ति एक है। ललिता भगवती उस शिवकी अपने वैभवसे परिपूर्ण रूपवाली चितिशक्ति का देह स्थूलतर जैसा

अन्याः सर्वाः शिरोबाहुपादवत् स्युर्निरूपिताः ।

कुमार्याद्याः शक्तयोऽनया ललिता सर्वतोऽधिका ॥१६॥

पुरा कुम्भोद्भवमुनिर्लोकान् दुःखपरायणान् । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन दृष्ट्वा कारुण्यमागतः ॥१७॥

काञ्चीपुरे महाविष्णुं तोषयामास भूयसा । तपसा सोऽपि सन्तुष्टस्तस्मै स वरदोऽभवत् ॥१८॥

जगदुद्धरणे हेतुं पृष्टः स प्राह तं मुनिम् । त्रिपुरायाः स्थूलमूर्तेर्माहात्म्यमतिचित्रितम् ॥१९॥

ललिताया महादेव्या भण्डासुरवधादिकम् । तत्ते ब्रवीमि विततं शृणु भार्गव ! संयतः ॥२०॥

संक्षिप्योक्त्वा महाविष्णुर्विस्तरं श्रोतुमिच्छते । स्वांऽशं मुनिं हयग्रीवं नियोज्य प्रययौ हरिः॥२१॥

अथ स्वाश्रममागत्य पूजयित्वा हयाऽऽननम् । मुनिं पप्रच्छ ललिताविभवं परमाद्भुतम् ॥२२॥

अश्वानन! महाप्राज्ञ! कथं सा त्रिपुरा परा । आविर्भूता भण्डदैत्यं नाशयामास संयुगे ॥२३॥

वैसे ही वह पूर्णरूपधारिणी है । भगवती त्रिपुरा की अन्य शक्तियाँ कुमारी, बाला माहेश्वरी, वैष्णवी और कौमारी आदि जो शिर, बाहुओं और पैरों के समान निरूपित हैं। यह ललिता उस महादेवी की सबसे उत्कृष्ट शक्ति है ॥१३-१५॥

प्राचीन कालमें तीर्थयात्रा करते हुए अगस्त्य मुनि दुःखमें निमज्जित लोगों को देख करुणाद्र हो गये। काञ्चीपुर में भगवान् महाविष्णुको अत्यधिक तपस्या कर प्रसन्न किया । उसकी महती तपस्यासे वह अत्यन्त सन्तुष्ट हो वर देने को तयार हो गये। जगत् को उबारने के लिये कारण पूछने पर महाविष्णु ने उस मुनि को कहा, "त्रिपुरा की स्थूलमूर्त्ति महादेवी ललिताका माहात्म्य अत्यन्त चित्र विचित्र आख्यानों से परिपूर्ण है, जिसमें भण्डासुर आदि का वध है, उसे मैं विस्तारपूर्वक तुम्हें बताता हूँ; हे भार्गव ! तू सावधान मन से सुन ।"॥१६-२०॥ महाविष्णु संक्षेप से कहकर विस्तारपूर्वक सुनने की इच्छा करनेवाले अगस्त्य को भगवान् अपने अंशभूत हयग्रीव मुनि को सम्हलाकर अपने वैकुण्ठधाम को चले गये। अनन्तर मुनिराज अगस्त्य ने अपने आश्रममें आकर हयग्रीव ऋषि की पूजा कर उससे पूछा, "हे महा-प्रज्ञाशील हयग्रीव ! किस प्रकार उस परा भगवती त्रिपुरा ने आविर्भूत हो भण्ड दैत्य का युद्ध में नाश किया ? इसे मैं सुनना चाहता हूँ आप कृपा कर मुझे बताइये" । इस प्रकार ललिता के विषय में भक्तों के शिरोमणि हयग्रीव से अगस्त्य

एतदीहे श्रोतुमहं कृपया वक्तुमर्हसि। इति पृष्टो हयग्रीवो ललिताभक्तशेखरः ॥२४॥
स्मृत्वा श्रीललितादेव्या माहात्म्यं हर्षनिर्भरः।आनन्दाऽश्रुपरीताक्षः पुलकाङ्गरुहो मुनिः ॥२५॥
हर्षगद्गदया वाचा प्रवक्तुमुपचक्रमे। धन्योऽसि कुम्भसम्भूते ! जन्मान्तरशताऽर्जितम् ॥२६॥
फलितं सुकृतं तेऽद्य धीर्जाता तव चेदृशी। नाऽल्पपुण्यफलं ह्येतच्छ्रीकथाश्रवणार्हणम् ॥२७॥
ललितामाहात्म्यसुधां यः पातुमभिवाञ्छति। तं जानीयान्मृत्युभयमुक्तं पुरुषसत्तमम् ॥२८॥
एतत्सारं मर्त्यलोके ललितायाः कथाश्रुतिः। भक्तिसंजननद्वारा यया तत्पदमाप्नुयात् ॥२९॥
न यावत् संश्रुतं ह्येतल्ललिताचरितं नृभिः। तावत्सर्वं कृतं व्यर्थं भस्मनि प्रहुतं यथा ।३०॥
त्रिपुरोपासनायुक्तैः श्रोतव्यं सर्वथा त्विदम्। अशृण्वन्नाप्नुयात् किञ्चिदुपासनफलं यतः ॥३१॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं देवतापरैः। शृणुयाद्वाचयेद्वापि पुण्यव्रतदिनाऽऽदिषु ॥३२॥
देवताप्रीतिमाप्नोति त्रिपुरा परमेश्वरी। आसीत् पुरा भण्ड इति दानवोऽतिमहाबली ॥३३॥

के द्वारा पूछने पर श्रीललिता देवी के माहात्म्यको स्मरण कर हर्षसे पुलकित हो आंखों में आनन्दके आंसुओं की झड़ी ब;ध अत्यन्त रोमाञ्चित शरीर हो मुनि हयानन अत्यन्त उत्फुल्ल गद्‌गदवाणी में कथा कहने लगे। "हे कुम्भसम्भव अगस्त्य ! तू धन्य है तेरे नाना सौ जन्मोंके कमाये हुए सुकृत आज फलीभूत हुए जिससे तेरी इसप्रकार पवित्र कथा को सुनने की उत्कट उत्कण्ठापूर्ण बुद्धि हुई। इस श्रीदेवी कथाको सुनने की क्षमतादेनेवाला यह कोई थोड़े से पुण्यका फल नहीं है। जो व्यक्ति ललिता भगवती के माहात्म्यरूपी अमृत का पान करना चाहता है उसे मृत्यु के भय से छुटकारा पाया हुआ पुरुषश्रेष्ठ जानना चाहिये। इस विनाशशील मर्त्यलोक में ललिता देवी की कथा को भक्तिपूर्वक सुनना यही एकमेवसार है जिससे उस अमृत पद की प्राप्ति कर ली जाती है ॥२१-२९॥ जब तक मनुष्यों ने इस ललिताके (पवित्र) चरित्रको नहीं सुना तबतक भस्ममें हवन किये के समान उनका जीवनमें किया कराया सब व्यर्थ है। त्रिपुराकी उपासना करने वालों को तो सर्वथा इसे सुनना चाहिये क्यों कि न सुनने से किसी प्रकार के उपासनका फल नहीं मिलता। इस लिये सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक परदेवता के परम भक्तों को इसे सुनना चाहिये। पुण्य पर्वतिथियों और व्रत के दिनों में इसे सुने अथवा पढे; इससे इष्टदेवता भगवती त्रिपुरा परमेश्वरी प्रसन्न होती है। प्राचीन काल में भण्ड नामक अत्यन्त महाबली दानव हुआ था। उसने दिव्य भगवान् शिव का आराधन कर उनसे अत्यधिक दुर्लभ वर

आराध्य स शिवं देवं वरं लेभेऽतिदुर्लभम् ।

अथाऽभयं प्राप्य दैत्यः सर्वेभ्योऽपि जगत्त्रयम् ॥३४॥

जित्वा शशास बलवान् यथा विष्णुर्जगत्पतिः ।

पराजितास्तेन युद्धे इन्द्राद्या विबुधास्तदा ॥३५॥

हृतैश्वर्या दीनतरा विचेरुर्भुवि मर्त्यवत् । हविर्भागानप्सरसो नन्दनञ्च भयानकम् ॥३६॥

कल्पवृक्षञ्च बुभुजुर्दैत्या भण्डसमाश्रयाः । प्रेक्ष्येन्द्राणीं भण्डदैत्यस्तदा श्रीरिव रूपिणीम् ॥३७॥

साम्नाऽभिवाञ्छताऽऽहर्तुं यावत्तावच्छची स्वयम् ।

पित्रा पुलोम्ना सहिता ययौ दैत्यैरलक्षिता ॥३८॥

कैलासपर्वते देवीं गौरीमाश्रित्य चाऽवसत् । एवमिन्द्रं कुबेरञ्च वरुणं वायुमेव च ॥३९॥

अग्निं यमं सोममपि जित्वा दैत्यैरशासत ।

स्वर्गं स्थितः स्वयं भूमौ विशुक्रं स न्यवेशयत् ॥४०॥

पातालेषु विषङ्गञ्च त्रिलोकीमनुशासत । बद्ध्वा शक्रादिदिक्पालांश्चक्रे भारस्य वाहकान्॥४१॥

प्राप्त किया । अनन्तर सम्पूर्ण प्राणियों से अभय पाकर बलवान् दैत्य ने तीनों लोकों को जीतकर जगत् के स्वामी विष्णु के समान राज्य करना आरम्भ किया। उसने युद्ध में इन्द्र आदि देवगण को पराजित कर दिया।।३०-३५।।

उनके सब ऐश्वर्य हर लिये गये। वे देवगण पृथ्वी में दीनतर दशा प्राप्तकर मनुष्यों के समान विचरण करने लगे। भण्ड के आश्रय में रहने वाले दैत्यलोग यज्ञ के भागों; अप्सराओं, विशिष्टनन्दनवन, ऐरावत और कल्पवृक्ष को भयानक रूप से भोगने लगे। एक बार भण्ड दैत्य श्रीके समान रूपविलासवाली इन्द्राणी को देखकर साम उपायसे उसे अपने लिये लेने की इच्छा करने ही वाला था कि तब तक शची स्वयं अपने पिता पुलोमाके साथ दैत्यगण के विना देखे ही चली गई और कैलास पर्वत में भगवती गौरी देवी के आश्रय में रहने लगी। इस प्रकार इन्द्र, कुबेर, वरुण और वायुको तथा अग्नि, यम एवं सोमको भी जीत कर वह दैत्यगणके सहित शासन करने लगा। भण्ड अपने आप स्वर्ग में रहा, विशुक्रको भूमि पर नियुक्त किया तथा पाताललोक में विषङ्गको रक्खा। (इस रूप में) उसने त्रिलोकी पर राज्य किया। शक्र आदि दशों

अथ कालेन तद्दृष्ट्वा गुरुरौशनसः कविः । मोचयामास तान् देवानेवंदेवानबाधत ॥४२॥
बोधितोऽसुरसङ्घैः स कदाचिद्भण्डदानवः । दैत्यानां शोणितपुरं नाशितं प्राक्सुरोत्तमैः ॥४३॥
मयमाहूय शिल्पेशमाज्ञापयत तद्विभौ । अथाऽऽज्ञप्तो मयश्चक्रे शोणिताख्यं पुरं तदा ॥४४॥
स्वर्गादप्यधिकं सर्वशोभनं सुमनोहरम् । आलोक्य भण्डदैत्येशः स्वर्गं सर्वं व्यनाशयत् ॥४५॥
सुधर्मानन्दनश्चाऽपि निन्ये तस्मिन् पुरोत्तमे । स्वर्गं चक्रे शोणपुरं सर्वसम्पत्समृद्धिमत् ॥४६॥
तत्र दैत्येश्वरः स्थित्वा स्वयं राज्यमशासत । दिक्पतीनपि दैतेयांश्चक्रे भण्डमहासुरः ॥४७॥
सृष्ट्वा तत्तत्समान्दैत्यांस्तेजोवीर्यपराक्रमैः । एवं सर्वं समाक्रान्तं भण्डदैत्येश्वरेण वै ॥४८॥
तदाऽतिदीप्ततेजस्वी भण्डो लोकानशासत ।
शोणिताऽऽख्यपुरस्याऽपि शून्यकं नाम कल्पयत् ॥४९॥
एवं तपोवीर्ययुतो भण्डो दैत्यपुरेश्वरः । ब्रह्माण्डं तद्विभिद्यैव ब्रह्माण्डानि समाक्रमत् ॥५०॥

दिक्पालों को बांध कर उन्हें अपनी पालकी के वाहक (लेकर चलनेवाले) बना लिया। अनन्तर समय आने पर भृगुकुलोत्पन्न दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ने उस अन्याय को देख उन देवगण को छुडाया। इसप्रकार देवगण को उसने अत्यधिक त्रस्त किया ॥३६-४२॥

एक वार उस दानवराज भण्ड ने असुरसङ्घ द्वारा कहने पर पूर्व में देवगण द्वारा दैत्यों के (जिस) शोणितपुर को नष्ट कर दिया था शिल्पाचार्य मय को उसे पुनर्निर्माण करने का आदेश दिया। अनन्तर आज्ञा पाकर मय ने शोणित नामक पुर को तब स्वर्ग से भी अधिक सर्वशोभासम्पन्न और अत्यन्त सुन्दर बनाया। उसे देख दैत्यराज भण्ड ने सारे स्वर्ग का ध्वंस करवाडाला। उस श्रेष्ठ नगर में सुधर्मा तथा नन्दन वन को भी लिवा ले गया। उसी शोणपुर को सम्पूर्ण समृद्धि और वैभव सामग्री से पूर्ण स्वर्ग बना दिया। दैत्येश्वर स्वयं वहां रह कर राज्य का शासन चलाता। महादानव भण्डने दिक्पाल भी दैत्यों को ही बनाया ॥४३-४७॥ उसने दशों दिक्पालों के समान तेज बल और पराक्रम में पूर्ण दैत्यों को रचकर दिक्पति का पद दे दिया। इस प्रकार सब ओर भण्ड दैत्येश्वर की सत्ता ही फैल गई ॥४८॥ तब प्रदीप्त अति तेजस्वी भण्ड ने लोकों पर अधिकार जमाया; शोणितपुर का नाम भी शून्यक रख दिया। इस प्रकार तप एवं वीर्य से दैत्यपुराधिपति भण्ड ने ब्रह्माण्ड का नानारूपों में भेदन करके ही ब्रह्माण्डों पर

ब्रह्माण्डानां शतं पञ्च भण्डश्चक्रे स्वयं वशे । पञ्चोत्तरशताऽण्डानामधिपः समजायत ॥५१॥
सर्वत्राण्डेषु तस्याऽऽज्ञा जाताऽप्रतिहता तदा। एवं देवान्निराकृत्य समस्ताण्डान्यशासत ॥५२।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये भण्डप्रताप-वर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४०४०॥

आक्रमण किया। उसने स्वयं एक सौ पांच ब्रह्माण्डों को अपने अधीन कर दिया और वह उन पञ्चोत्तर शतब्रह्माण्डों का अधिपति बन गया। सब ओर ब्रह्माण्डों में उसकी बिना किसी बाधा के अप्रतिहत आज्ञा (दुहाई) हो गई। इसप्रकार देवगण को निकाल कर उसने समस्त ब्रह्माण्डों पर राज्य किया ॥४७-५२॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के ललितामाहात्म्यप्रकरण में भण्डका प्रताप वर्णन नामक उनचासवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

तपाप्रभावेण वृद्धिंगतस्य भण्डस्य क्रमशः प्रतापवर्णनम्

एवं श्रुत्वा हयग्रीवकथितं कुम्भसम्भवः । विस्मितस्तं पुनरपि पर्यपृच्छत भार्गवः ॥१॥
हयग्रीव दयासिन्धो प्रोक्तमेतद्विचित्रितम् । एवंवीर्यो भण्डदैत्यः कस्मात्सम्भूतिमागतः ॥२॥
सामर्थ्यं वा कथञ्चैव तपसा वा स्वभावतः । कथं देवान् समजयत् ब्रह्मादीन्नाजयत् कुतः ॥३॥
एतन्मे ब्रूहि तत्त्वेन श्रोतुमुत्कण्ठितं मनः । एवं पृष्टः कुम्भजेन प्राह तुष्टो हयाननः ॥४॥
शृणु कुम्भोद्भव! कथां प्राचीनां भण्डसंश्रयाम् । यदा शिवस्य क्रोधेन कामो भस्मत्वमागतः ॥५॥
तदा तद्भसितं लेख (ख्य?) गणेशो बालभावतः । पुञ्जीकृत्य तेन नराकृतिश्चक्रेऽतिपेशलाम् ॥६॥
तां भस्मप्रकृतिं दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गशोभनाम् । प्रदर्शयामास गौर्यै गणेशो मातृनन्दनः ॥७॥

पचासवां अध्याय

भृगुवंशी श्रीअगस्त्य ने इस प्रकार श्रीहयग्रीव मुनि के कहे हुए आख्यान को सुनकर विस्मित हो फिर भी पूछा, "हे दयाके सागर ! आपने यह सब विचित्र कथाओं से पूर्ण आख्यान कहा; इसप्रकार अप्रतिमबलशाली भण्ड दैत्य किस प्रकार उत्पन्न हुआ ? उसकी ऐसी क्षमता क्यों हुई ? क्या तपस्या द्वारा वह इस रूप में अपनी अपनी उन्नति कर पाया अथवा स्वभावसे ही ? उसने देवगण को क्यों जीता ? ब्रह्मा आदि कारणदेवगण को क्यों नहीं पराजित किया ? मुझे यह आप यथार्थ रूप से बतलाइये, इसे सुनने के लिये मेरा मन बहुत लालायित है।" ॥१-४॥

इस प्रकार अगस्त्य द्वारा पूछने पर हयग्रीवमुनि ने प्रसन्न हो कहा, " हे घटोद्भव अगस्त्य ! भण्ड के विषय की प्राचीन कथा को सुन। जब श्रीशिव के क्रोध से कामदेव भस्म हो गया तब उसके भस्म को देख गणेश ने बालसुलभ चपलतावश भस्मको एकत्र कर के उससे अति सुन्दर मनुष्य की आकृति बना ली। उस भस्म प्रकृतिवाली अत्यन्त रुचिर सम्पूर्ण अङ्गों से सुन्दर मूर्ति को देख माता के प्रिय पुत्र गणेश ने उसे अपनी माता गौरी को दिखाया। उसने भी देख कर गणेश को प्रसन्न करने की इच्छा से श्रीशिव से कहा, 'हे आर्यपुत्र !

दृष्ट्वा साऽपि शिवं प्राह गणेशप्रीतिकाम्यया । जीवयैनं महाभाग गणेशप्रियपूरुषम् ॥८॥
क्रीडत्वनेन सहितो गणेशो मे प्रियः सुतः । पार्वत्या प्रहितः शम्भुर्भवितव्यस्य गौरवात् ॥९॥
दृष्ट्वाऽमृतांशुवर्षिण्या निरीक्ष्य तमजीवयत् ।
स जीवितोतिऽसौन्दर्यववपुः कामांऽशसम्भवम् ॥१०॥
हरक्रोधसमायोगादसुरस्तामसोऽभवत् । गणेशस्य प्रियसखा तेनैव सह क्रीडति ॥११॥
तदन्तरे कदाचिद्वै दिक्पालास्तत्र संययुः । तान् दृष्ट्वाऽपृच्छदसुरो गणेशं क इमे इति ॥१२॥
महर्द्धिमन्तः केनेमे प्राप्ता ईदृग्विधां श्रियम् । एवं पृष्टो गजमुखः प्राह तं प्रियमात्मनः ॥१३॥
सखे शृणु ब्रवीम्येते दिक्पाला लोकपूजिताः । तपसा तोषयित्वेशं महादेवं दिगीश्वराः॥१४॥
इमां विभूतिं सम्प्राप्तास्तपसा तोषिते शिवे ।
दुर्लभं न हि किञ्चित् स्याद्यथा प्राप्ते सुरद्रुमे ॥१५॥
श्रुत्वा विघ्नेश्वरवचस्तपस्ये मनो दधे । अनुज्ञातो गणेशन स्वर्धुनीतीरसंश्रयः ॥१६॥

महाभाग ! गणेश के प्रियपात्र इस पुरुष को आप जिला दीजिये (जिससे) इसके साथ मेरा प्यारा (लाडला) पुत्र गणेश खेले ।" पार्वती से कहे जाने पर शम्भु भगवान् ने भावी काल में होनेवाले घटनाचक्र का माहात्म्य बढाने को अपनी अमृत कला को बरसाने वाली दृष्टि से देख कर कामदेव के अंश से उत्पन्न उसे जीवित कर दिया । वह जीवित हो कर अपने में कामांश भूतसे ही सम्भव, अत्यन्त सुन्दरतायुक्त शरीरवाला वह असुर शिवके क्रोध के संयोगके कारण तामस प्रकृति का बना । वह गणेश का प्यारा मित्र उसी के साथ खेला करता था । उसके कुछ समय बाद एक दिन दिक्पाल वहां शिवलोक में आ गये । उन्हें देख कर असुर ने गणेश को पूछा, "ये कौन हैं ?" महान् ऐश्वर्यों से सम्पन्न ये लोग किस के द्वारा इस प्रकार की लक्ष्मी को प्राप्त कर सके ?" इस प्रकार पूछे जाने पर गणेश ने अपने प्रिय मित्र (असुर) से कहा, "हे सखे ! सुन, बताता हूँ । ये लोकपूजित दिशाओं के स्वामी हैं, अपनी तपस्या से ईश्वर महादेव को सन्तुष्ट कर इन दिगीश्वरों ने यह लक्ष्मी प्राप्त की है । जैसे कल्पवृक्ष के प्राप्त होने पर संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं उसी प्रकार शंकरके संतुष्ट होने से सब कुछ सुलभ है ।" ॥६-१५॥ विघ्नविनायक श्रीगणेशके वचन सुनकर उसने तपस्या करने का ही दृढ सङ्कल्प करलिया । उसने गणेशसे अनुज्ञा लेकर देवगङ्गाके किनारे दश हजार वर्षों तक अति

तपश्चक्रेऽतिविपुलं दशवर्षसहस्रकम् । महादेवं समुद्दिश्य फलाहारो यताऽऽत्मवान् ॥१७॥
अथ प्रीतो महादेवो वरदस्तस्य चाऽग्रतः । ब्रूहि वत्स ! तेऽभिमतं प्रीतो दातुं समागतः ॥१८॥
एवं महादेववचो निशम्य सोऽसुरोऽवदत् । प्रणम्य देवमीशानमयाचत कृताञ्जलिः ॥१९॥
देवाऽहं सर्वजगतां शास्ता सर्वजयी तथा । सृजामि दैत्यान् देवांश्च दैत्यान् लोकाननेकधा ॥२०॥
शस्त्राण्यस्त्राणि शास्त्राणि विद्या मायास्तथैव च ।
वशे भवन्तु मे देवा ब्रह्माद्या अपि नित्यशः ॥२१॥
अभयं सर्वतो मेऽस्तु मृत्युर्मे माऽस्तु कुत्रचित् । इति श्रुत्वा तस्य वचः प्राह देवः पिनाकभृत् ॥२२॥
नाऽर्हस्त्वमेवम्भूतानां वराणामिति शङ्करः । निगद्याऽन्तर्हितिमगादथ दैत्योऽपि दुःखितः ॥२३॥
पुनस्तपश्चकारोग्रं दश अयुतवत्सरान् । धूमाऽऽहारोऽम्बरे संस्थः शीताऽऽतपसहस्तदा ॥२४॥
ततः पुनर्महादेवः सन्निधिं प्राप्य चाऽवदत् । तपसा घोरसङ्काशान्निवर्तस्व महामते ! ॥२५॥

विपुल तपस्या की । महादेव को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से वह फल का आहार करता हुआ भगवान् अपने मन को संयमित कर उग्र तप में लगा रहा । तत्पश्चात् परम प्रसन्न हो महादेव उसके सामने वर देने को आये, "हे वत्स ! तू अपना अभीष्ट बता । मैं सन्तुष्ट हो तुझे वरदान देने आया हूँ" ॥१६-१८॥

इसप्रकार महादेव के वचन सुन ईशान भगवान् को प्रणामकर हाथ जोड़े उस असुरने यह वर मांगा, "हे देव ! मैं सम्पूर्ण लोगों का शासन करनेवाला और सर्व प्राणियों पर विजयी बनूँ तथा दैत्यों, देवों, दानवों और अनेक प्रकार के लोकों, शस्त्रों व अस्त्रों और शास्त्रों, विद्याओं और मायाओं की रचूँ और ब्रह्मा आदि देवगण भी नित्य ही मेरे वश में रहें, मुझे सब ओर से निर्भयता हो कहीं पर भी मेरी मृत्यु न आवे ।" इस प्रकार उस असुर की वाणी सुनकर भगवान् दिव्यविभूति सम्पन्न पिनाकधारी शंकरने कहा, "तू इस तरहके वरों को पाने का योग्य अधिकारी नहीं है ।" इस प्रकार शङ्कर कह अन्तर्धान कर गये । अनन्तर दैत्य ने भी दुःखित हो फिर एक लाख वर्षों तक तप किया; तब उसने धूम (धुआँ) का आहार किया; अधर में स्थित रह शीत एवं ताप को सहा ॥१९-२४॥

अनन्तर महादेव ने फिर दैत्य के निकट उपस्थित हो कहा, "हे महामते ! इस अति उग्र भीषण तप से बस कर

त्रिलोकीशासको भूयाः सुराऽसुरजयी तथा ।

स्रृज मर्त्याऽसुरसुरान् लोकान् शास्त्रादिकान्यपि ॥२६॥

देवमर्त्याऽसुरेभ्यस्ते भूयादभयमेव च । न ते वशे भविष्यन्ति ब्रह्माद्याश्चाऽमृतिर्न च ॥२७॥

इति दत्त्वा वरं तस्मै शिवोऽन्तर्धानमागमत् । शिवेऽन्तर्धानमायाते दैत्यः पुनरचिन्तयत् ॥२८॥

किं मे वरैरभिमतैरमरत्वमृते भवेत् । पुनस्तपश्चराम्येव यावन्मे वरदः शिवः ॥२९॥

इति निश्चित्य भूयोऽपि तप उग्रं चचार सः ।

ऊर्द्ध्वपाद अधो मूर्धा निरुच्छ्वासो निरीहकः ॥३०॥

तरोः स्कन्धे लम्बमानः प्रज्वाल्याऽग्निमधो भुवि ।

तज्ज्वालाप्लुष्टसर्वाङ्गः सन्नियम्येन्द्रियाण्यलम् ॥३१॥

विंशतिप्रयुतं तस्य वत्सराणां तपस्यतः । ययौ तदा तस्य मुनेरोमकूपेभ्य उद्गमत् ॥३२॥

धूमस्तेन च त्रैलोक्यं व्याप्तमासीत् समन्ततः । इन्द्रासनं प्रचलितं देवा मोहं समाययुः ॥३३॥

तू त्रिलोकी का शासक हो और देव तथा असुरों पर विजयी बन; मनुष्यों, असुरों और देवगण, शास्त्र आदिको भी रच देव-मर्त्य और असुरों से तुझे अभय हो (परन्तु) तेरे वश में ब्रह्मा आदि कारणदेव नहीं होंगे और तू अमरणधर्मा नहीं होगा।" इस प्रकार उसे वर देकर शिव अदृश्य हो गये। शिव के अन्तर्धान करने पर दैत्य ने फिर सोचा ॥ २५-२८ ॥

"अमरताकी प्राप्ति के विना मेरे अभीष्ट वर निस्सार हैं मैं इनसे क्या करूं ? जब तक शंकर भगवान् मुझे अभीष्ट वरदान न दें तब तक फिर तपस्या ही करता हूँ।" इसप्रकार निश्चय कर उसने फिर भी अत्यन्त उग्र तपस्या की। (इस बार) वह ऊपर पैर किये, नीचे शिर लटकाये उच्छ्वासरहित, बिना किसी कामना के (निरीह हो), वृक्षके तने से लटका, भूमि पर नीचे अग्नि को जलाकर शुभ तपस्या में लगा। यह अग्नि की ज्वाला उसके सारे अङ्गों में व्याप्त हो गई और वह अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों का दमन कर दो करोड़ वर्षों तक तपस्या करता रहा। (जब इतना दीर्घकाल बीता) मुनिजीवन बितानेवाले उस राक्षस के रोमकूपों से धुआं उठने लगा जिससे सम्पूर्ण त्रिलोकी चारों ओर से व्याप्त हो गई। इन्द्र का आसन डोलने लगा और देवगण सम्मोहित हो गये। सभी देवगण के हृदय में अत्यधिक सन्ताप

सन्तापः सर्वदेवानामभवद्धृदि साध्वसम् । भूश्चकम्पे समुद्राश्च वेलामत्यागमंस्तदा ॥३४॥
दिशः प्रजज्वलुर्नद्यः कालुष्यं सन्दधुस्ततः । देवा इन्द्रमुखास्त्रस्ताः प्रार्थयामासुरात्मजम् ॥३५॥
विधिर्विचार्य हरिणा ययौ देवं त्रिलोचनम् । मन्त्रयित्वा चिरं तत्र शिवं प्राह विधिस्तदा ॥३६॥
महादेवाऽसुराय त्वं वरं दातुं समर्हसि । अमरत्वमृते तस्य देहि सर्वं समीहितम् ॥३७॥
नोचेद्भस्मत्वमायान्ति लोकास्तस्य तपोऽग्निना । एवं विधिमुखैः शम्भुः प्रेरितस्तत्र संययौ ॥३८॥
दृष्ट्वा दैत्यं तपस्यन्तं क्षामाऽङ्गं धमनीततम् । एकाऽग्रचित्तं तपसा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥३९॥
तपसा ते दैत्य ! तुष्टः प्राप्तोऽहं वरदः शिवः । ब्रूहि यत्ते स्वाऽभिमतं प्राप्स्यस्यखिलमीहितम् ॥४०॥
इतीरितः शिवेनाऽथ दृष्ट्वा देवं समागतम् ।
प्रणम्य दण्डवत् स्तुत्वा वाक्यं प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥४१॥
देव पूर्वं त्वया दत्तं सर्वं ह्यमरतां विना । तन्मे भूयाद्विधात्रादीनपि जेष्यामि संयुगे ॥४२॥

हुआ, भूमि कम्पायमान हो चली और समुद्र मर्यादाओं को छोड़ हिलोरे मारने लगे। उस समय दिशायें जलने लगीं एवं नदियों का जल काला हो गया। तब बहुत त्रस्त हो इन्द्र प्रमुख आदि देवगण ने पितामह श्रीब्रह्मा की प्रार्थना की ॥२९-३५॥

श्रीब्रह्मा विचार कर श्रीविष्णु के साथ भगवान् त्रिलोचन शंकर के पास गये। शिवलोक में मन्त्रणा कर ब्रह्मा ने शिव से कहा, "हे महादेव ! आप असुर को वर देने में समर्थ हैं; अमरता को छोड़ उसे अभीष्ट वर दीजिये, नहीं तो उसकी तपस्या की अग्नि के प्रचण्ड प्रताप से सब लोक जल जायेंगे।" इस प्रकार विधिप्रमुख देवगण से प्रेरणा पाकर शम्भु, जहां असुर तपस्या में लीन था वहां गये। धूसरवर्णके अङ्गवाले पृथ्वी से लगे हुए (केवल श्वास ही शेष हुए), एकाग्रमन किये, तपस्यासे अत्यन्त उज्जल तेजोमय अग्निके समान तपस्यारत उस दैत्य को देख कर वह बोले, "हे असुरश्रेष्ठ ! तेरी तपस्यासे सन्तुष्ट हो मैं साक्षात् तुझे शिव वर देने आया हूँ। जो तेरा अभीष्ट हो सो मुझे बता। अवश्य ही तेरा सङ्कल्प तुझे प्राप्त होगा" ॥३६-४०॥

इसप्रकार शिव द्वारा कहे जाने पर उस दैत्य ने भगवान् को सामने आये देख दण्डवत् प्रणाम कर हाथ जोड़े स्तुति कर कहा, 'हे देव ! आपने पहले अमरत्व के बिना जो सब दिया था वह मेरा पूर्ण हो, मैं विधाता आदि

ब्रह्माण्डभेदने शक्तिरपि चाऽस्तु महेश्वर !। श्रुत्वैवमासुरं वाक्यमाचष्टे तं महेश्वरः ॥४३॥
शृणु मे भाषितं दैत्य! देवाऽसुरनरैर्न ते। मृत्युर्भवेद्योनिजातान्मानसान्न च कुत्रचित् ॥४४॥
तरुभ्यः पर्वतेभ्यश्च मृगाः सर्पाश्च पक्षिणः। कृमिकीटपतङ्गाद्या यक्षविद्याधरकिन्नराः ॥४५॥
पिशाचाः किंपुरुषाश्च राक्षसाश्च त्रिमूर्तयः। शस्त्राणि च तथाऽस्त्राणि प्रसिद्धानीह यानि वै ॥४६॥
नाऽस्ति ते मृत्युरेतेभ्यः सर्वथाऽसुर संशृणु। अन्यच्च सर्वं ते प्रोक्तं भविष्यति न संशयः ॥४७॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै शिवोऽन्तर्धानमाययौ। अथ दैत्यो विमृशत न मे मृत्युः सुरादिभिः ॥४८॥
यदि तर्हि कुतो मृत्युर्जातोऽहं सर्वथाऽमरः। इति मत्वा कृतार्थं स्वं ययौ कैलासपर्वतम् ॥४९॥
गणेशेन स्वसुहृदा मिलित्वा प्राह चाऽखिलम्। अथाऽद्रिजां नमस्कृत्य गणेशेन युतोऽसुरः ॥५०॥
समाचष्टे वरप्राप्तिं श्रुत्वा साऽप्यभिनन्दत। प्राहाऽसुरं गिरिसुता वत्स! प्राप्तो वरो महान् ॥५१॥
देवेषु नाऽपराद्ध्व्यमन्यथा भीतिमाप्स्यसि। देवद्विजप्रजाद्रोहान्नष्टा दैत्याश्च दानवाः ॥५२॥

को भी युद्ध में जीतूं। हे महेश्वर ! ब्रह्माण्डों को भेदने में भी मेरी शक्ति हो।" इस प्रकार उस असुर की वाणी सुन महेश्वर उससे बोले, "हे दैत्य ! मेरा कथन सुन। देवगण, असुरवृन्द और मनुष्यों से तेरी मृत्यु नहीं होगी। कहीं पर योनिज प्राणी से तथा मानसी सृष्टिवाले जन्तु से तेरी मृत्यु नहीं हो, वृक्षों और पर्वतों से, मृग, सर्प, पक्षीगण, कृमि, कीट और पतिङ्गों आदिसे तथा यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, पिशाच, किम्पुरुष, राक्षस और त्रिमूर्त्ति (ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश), सुप्रसिद्ध शस्त्र-अस्त्र और जो भी अन्य महत्त्वके ज्ञान-विज्ञान हैं उनसे सर्वथा तेरी मृत्यु न हो। हे असुर ! इसे तू भलीप्रकार सुन और जो तेरा कहा हुआ है वह सब होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।" ॥४१-४७॥

भगवान् शिव इस प्रकार उसे वरदान देकर अदृश्य हो गये। तदनन्तर वरदान पाकर दैत्य विचार करनेलगा, "मेरी मृत्यु देवगण आदि से नहीं है। यदि ऐसी बात है तब तो मेरा मरना कहां ? मैं तो सर्वथा अमर बन गया हूँ।" इस प्रकार मान कर कृतकृत्य हो वह कैलास पर्वत पर गया। उसने अपने मित्र गणेश से मिल उसे सब वार्त्ता कही। अनन्तर गणेश को साथ लेकर गौरी को नमस्कार कर उसने वरप्राप्ति का वर्णन किया। इसे सुनकर भगवती गिरिसुता ने राक्षस को बधाई दी और कहा "हे वत्स ! तू ने महान् वरदान पा लिया। देवगणसे कभी द्वेष मत करना नहीं तो भय प्राप्त करेगा। भूतकाल में देवगण, द्विज और प्रजासे द्वेष करने वाले सभी दैत्य और दानवगण नष्ट हो

दैत्यदानवसंसर्गं परित्यज सुदूरतः । सङ्गाद्बुद्धेः प्रणाशः स्याद्याहि पाताललोककम् ॥५३॥
स्वर्गादपि विशिष्टं तं धर्मतः परिपालय । तथेत्युक्त्वा प्रणम्याऽथ लोकं पातालमन्वगात् ॥५४॥
तत्र दैत्यैर्दानवैश्च पातालान्यन्वशासत । अथ तैर्दानवाऽधीशैर्भूयो भूयः प्रबोधितः ॥५५॥
त्रिलोकीं जेतुमारब्धो दैत्यसेनासमावृतः । तत्रोत्तरकुरुष्वासीद्युद्धं सुमहदद्भुतम् ॥५६॥
तस्य युद्धसमारम्भं दृष्ट्वा लोकपितामहः । निवारयत् सामवाक्यैर्न ते दैत्येश साम्प्रतम् ॥५७॥
योद्धुं ते करदा देवा भविष्यन्तीह सर्वथा । पातालानां भूतलस्य त्वं राजा भव सर्वतः ॥५८॥
सन्तु स्वर्गादिषु सुरा विरोधो माऽस्तु तेऽमरैः । श्रुत्वेत्थं ब्रह्मवचनं मन्त्रयित्वा सुरैस्तदा ॥५९॥
इन्द्राणीं नन्दनं रम्भामुखाः करमयाचत । श्रुत्वाऽयुक्तं वचस्तस्य दैत्यं क्रुद्धोऽब्रवीद्विधिः ॥६०॥
भण्डस्त्वमसि दुर्बुद्ध इत्युक्त्वाऽन्तरधीयत । अथ देवैः समेतास्ते भण्डाद्या दैत्यदानवाः ॥६१॥

गये । दैत्य एवं दानवों के संसर्ग को दूर से ही अधिकाधिक वर्जित करना । दुष्ट संग से बुद्धि का बहुत विनाश होता है । स्वर्ग से भी बहुत बढ़े चढे (विशिष्ट) पाताल लोक में जा, उसके निवासियों को धर्मपूर्वक पालन कर । "हां, आपकी जो आज्ञा" कह कर वह दैत्य भगवती को प्रणाम कर पाताललोक में चला गया ॥४८-५४॥

वहां दैत्यों तथा दानवों के साथ पाताल में शासन करने लगा । अनन्तर उन दानवों के सेनाध्यक्षों द्वारा वारंवार प्रेरणा पाकर दैत्यसेना को साथ में लेकर वह त्रिलोकी पर विजय-अभियान करने लगा । इस विषय में उत्तरकुरुदेश में अदभुत भीषण लोमहर्षक युद्ध हुआ ॥५५-५६॥

युद्ध के (शुभारम्भ में) सज्जित उपकरणों को देख कर लोकपितामह ब्रह्मा ने सामनीति के वचन कह कर दत्यको मना किया, "हे राक्षसराज ! तुझे युद्ध करना उचित नहीं, ये देवगण तुझे करदेनेवाले सर्वथा तेरे अधीन होंगे। तू सब ओर से सातों पातालों और भूलोक का अधिपति बन। स्वर्ग आदि में देवगण निवास करें; तेरा इन सुरों से कोई वैर-विरोध न हो ।" इसप्रकार ब्रह्माजी के वचन सुन कर सुरगण से मन्त्रणा कर तब इन्द्राणी, नन्दन, रम्भा प्रमुख अप्सरागण को कर के रूप में उसने याचना की । उसके सर्वथा अनुपयुक्त वचन सुन क्रुद्ध हो लोकपितामह ब्रह्मा बोले, "हे भण्ड ! तू दुष्टबुद्धिवाला है ।" यह कहकर वह अदृश्य हो गये। तत्पश्चात् उन भण्ड आदि अत्यन्त

युयुधुर्दारुणतरं कुरुष्वत्यन्तदुर्मदाः । जित्वा बबन्धुरिन्द्रादीन् योजयन् भारवाहने ॥६२॥
एवं जित्वा त्रिलोकीं स भण्डदैत्योऽतिदर्पितः । स्वपार्श्वाभ्यां समसृजद्विषङ्गञ्च विशुक्रकम् ॥६३॥
पुत्रपौत्रशतैर्युक्तो महैश्वर्यविराजितः । चक्रेऽण्डानां शतं पञ्च स्ववशे भण्डदानवः ॥६४॥
वीर्योद्रिक्तं भण्डदैत्यं दृष्ट्वा तं तारकाऽसुरः । सख्यत्वमाययौ तस्य तस्मै प्रीतश्च सोऽभवत् ॥६५॥
अष्टादशानामण्डानामाधिपत्यं समादिशत् ।

चतस्रः स्वाऽनुजाः कान्ताः श्रीरिवाऽत्यन्तरूपिणीः ॥६६॥
सम्मोहिनी सुन्दरी च चित्राङ्गी कुमुदोत्करा । इति तस्मै ददौ भार्याहेतवे तारकाऽसुरः ॥६७॥
उग्रकर्माऽग्रधन्वा च विद्युन्माली विभीषणः । इन्द्रशत्रुरमित्रघ्नो विजयो विश्वतापनः ॥६८॥
एते तस्याऽभवन् दैत्याः प्रियाः प्राज्ञाः सुमन्त्रिणः । तेभ्यो ददौ दिक्पतित्वं प्रसन्नो भण्डदानवः ॥६९॥
एवं वैभवसम्प्राप्त्या मत्तः कालेन सोऽभवत् । सृष्टिं स्थितिञ्च सहारं स्वयमेवाऽकरोत्तदा ॥७०॥

अभिमानी दुर्दमनीय दैत्य दानवों ने देवगण से दारुणतर घोर युद्ध कुरुदेश में किया । उसने इन्द्रादि देवताओं को जीतकर कैदकर लिया और उन्हें भार उठाने के काम में लगा दिया ॥५७-६२॥

इसप्रकार त्रिलोकी को जीत कर बहुत अधिक अभिमान मद से गर्वित हो भण्ड दैत्य ने अपने दोनों ओर के पार्श्वस्थानों से विषङ्ग और विशुक्र को बनाया । अपने प्रभूत ऐश्वर्य से परिपूर्ण उस भण्ड दानव ने सैकड़ों पुत्र और पौत्रों के सहित एकसौ पांच ब्रह्माण्डों को अपने वश में कर लिया । तारकाअसुर ने अतिवीर्य के अहंमद से उद्दण्ड भण्ड दैत्यको देख उससे मित्रता कर ली और उसने अत्यन्त प्रसन्न हो अठारह ब्रह्माण्डों के अधिपति का पद उसे दे दिया । तारकासुर ने अपनी चार छोटी बहनों को जो श्री के समान अत्यन्त रूपवती और कान्तिमती थी; जिनके नाम सम्मोहिनी, सुन्दरी, चित्राङ्गी और कुमुदोत्करा थे, उन्हें भार्या के रूप में भण्ड को दे दिया ॥६३-६७॥

उग्रकर्मा, उग्रधन्वा, विद्युन्माली, विभीषण, इन्द्रशत्रु, अमित्रघ्न, विजय और विश्वतापन ये दैत्यलोग उसके प्रियपात्र प्रकृष्ट बुद्धिसम्पन्न सुमन्त्रीगण थे; उन्हें प्रसन्न होकर भण्ड दानव ने नये दिक्पति बनाया । इस प्रकार वैभव को पाकर समय आने पर वह मदोन्मत्त हो गया । तब उसने स्वयं सर्जन, पालन और संहार किया । खोटी मन्त्रणा देनेवाले मन्त्रियों से मन्त्रणा किया गया वह अनन्तर

दुर्मन्त्रिभिर्मन्त्रितोऽथ जेतुं लोकपितामहम् । सत्यलोकं ययौ दृप्तस्तत्र यावदयं गतः ॥७१॥
विज्ञाय लोकधाताऽपि सलोको दर्शनं गतः । वैकुण्ठेऽप्येवमभवत् कैलासमथ संययौ ॥७२॥
श्रुत्वा गणेशस्तं प्राप्तं प्रीत्या प्रमथसंवृतः । अगात्तं पूर्वसुहृदं मार्गए सुसङ्गतः ॥७३॥
दृष्ट्वा गणेशस्तं मत्तं भण्डं सन्त्यक्तसौहृदम् । रुरोध युक्तं दैत्येन्द्रैः प्रमथाऽनीकसंवृतः ॥७४॥
भण्डेनाऽथ समाज्ञप्तः प्राह दैत्यो विभीषणः। रे गजास्य! द्रुतं गत्वा ब्रूह्यात्मपितरं शिवम् ॥७५॥
दैत्येश्वरोऽत्र संयातो द्रुतं तं शरणीकुरु । नो चेद्युध्यस्व शौर्येण ततः प्राप्स्यसि तत्फलम् ॥७६॥
पलायनपरो मा भूर्यदि शूरोऽसि संयुगे । अथाऽपि मातरं ब्रूयाः शची त्वां समुपाऽऽश्रिता ॥७७॥
तां वाञ्छत्येष दैत्येशस्तत्समर्पय मा चिरम् । अन्यथा केशपाशेषु परामृष्टा तया सह ॥७८॥
दैत्यैर्हृता मत्समीपं मानहीना भविष्यसि । ब्रूहीत्थं गच्छ मूढेह मा मृत्युवशमन्वगाः ॥७९॥
श्रुत्वेत्थं दैत्यवचनं गणेशः क्रोधमूर्च्छितः । तलप्रहारेण शिरः पातयामास तत्क्षणात् ॥८०॥

लोकपितामह ब्रह्मा को जीतने के लिये जैसे ही सत्यलोक में गया तो लोकों के सर्जक भी उसको दुश्चेष्टा जानकर अपने लोक सहित अदृश्य हो गये। वैकुण्ठ में भी जब विजय के लिये गया तो वही हुआ। बाद में कैलासमें गया ॥६८-७२॥

श्रीगणेश उसे आया सुनकर प्रथम पार्षदगण के साथ अपने पूर्वकाल के मित्र (का स्वागत करने) से प्रेम से मिलने गया; मार्ग में ही वह मिला। गणेशने अत्यन्त अभिमानमें उन्मत्त पूर्वकालकी मैत्री को छोड़नेवाले उस भण्डको देख दैत्याधिपतियों के साथ अपने प्रमथगण की सेना से रोक दिया। अनन्तर भण्ड से आज्ञा पाया हुआ विभीषण दैत्य बोला,"अरे गजानन ! शीघ्र जाकर अपने पिता शिवको कह दे कि "दैत्येश्वर यहां आया है, वह अतिशीघ्र उसकी शरण आ जावे; नहीं तो पराक्रम से युद्ध कर तत्पश्चात् उसका फल पायेगा। अब यदि वह शूरवीर है तो युद्ध में से भाग मत जाना। और भी (कहना), तेरी मां को कहना "इन्द्रकी पत्नी शची तुम्हारे यहां आश्रयमें ठहरी हुई है उसे यह दैत्यराज चाहता है इसे विना विलम्ब उसे सम्हला दे, नहीं तो केशपाश पकड़कर उस इन्द्राणी के साथ तू भी दैत्यों द्वारा मेरे पास लायी हुई सम्मानहीन होगी।" जा इस प्रकार कह दे, "हे मूढ ! मृत्यु के वशमें न हो।" ॥७३-७९॥

दैत्यके अत्यन्त दर्पसे उद्धतवचन इसप्रकार सुन क्रोधसे तिलमिलाये गणेशने अपने पादतलसे उस अभिमानी दैत्यके सिर पर आघात कर तत्क्षण उसे नीचे गिरा दिया। इधर प्रमथगणने भी उसके आगे-आगे चलनेवाले दैत्यों को मारा।

निजघ्नुः प्रमथाश्चाऽपि दैत्यांस्तस्य पुरःसरान् । अथाऽभवन्महद्युद्धं दैत्यप्रमथयोर्भृशम् ॥८१॥
निजघ्नुः सर्वतो दैत्यान् प्रमथा बलवत्तराः । तदन्तरे दैत्यगणैर्युद्धं श्रुत्वाऽथ पार्वती ॥८२॥
वात्सल्याद्रक्षितुं पुत्रं गणेशं तत्र संययौ । शक्तीनां कोटिभिर्युक्ता संयुगे समचेष्टत ॥८३॥
घोरं प्रमथदैत्यानां युद्धं तद्वीक्ष्य पार्वती । प्रमथान् हीयमानांस्तु ज्ञात्वा शक्तिगणाऽऽवृता ॥८४॥
युयोध दैत्यैः सा देवी मुहूर्तं तत उल्बणम् । युद्धमासीच्छक्तिगणैर्दैत्यानां प्रमथैः सह ॥८५॥
शक्तिभिः प्रमथैश्चैव बलवद्भिर्दृढं हताः । दैत्या न सेहुरार्तिं तां पलायनपराऽभवन् ॥८६॥
छिन्नाङ्गाश्छिन्नमूर्द्धानश्चूर्णीकृतकलेवराः । निहता भक्षिताश्चान्ये प्रमथैः शक्तिभिस्तथा ॥८७॥
एवं स्वसैन्यविध्वंसं दृष्ट्वा भण्डासुरस्तदा । योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रथसंस्थोऽतिभीषणः॥८८॥
रुरोध तं गणेशोऽपि भण्डं निर्भर्त्स्य वेगतः । गदाहस्तो विन्ध्य इव गङ्गां त्रिपथगां भुवि ॥८९॥
तयोरथाऽभवद्युद्धं भण्डदैत्यगणेशयोः । वज्रनिष्पेषणं घोरं विष्णुकैटभयोरिव ॥९०॥
उभावपि रणश्लाघ्यावुभावपि मदोत्कटौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौ वने गन्धद्विपाविव ॥९१॥

तत्पश्चात् दैत्यों तथा प्रमथों का अति भयंकर युद्ध हुआ। बाद में इस अन्तराल में पार्वती दैत्यगण से गणेश और प्रमथगण के युद्ध की बात सुनकर वात्सल्यभाव से अपने पुत्र गणेश की रक्षा के लिये भगवती वहां आ गई। उसने शक्तियों की अपनी कोटियों के साथ युद्ध में सम्मिलित होने का प्रयत्न किया। पार्वती ने प्रमथ और दैत्यगण के घोर युद्धको देखकर तथा प्रमथगणकी शक्ति घटी हुई जानकर अपनी शक्तियों के गण से आवृत हो दैत्यों से युद्ध किया। तब मुहूर्तमें ही अत्यन्त दारुणरूपसे दैत्यों के और प्रमथों के बीच युद्ध छिड़ा। शक्तियों तथा बलवान् प्रमथलोगों द्वारा दैत्य गण बुरी तरह खदेड़ दिये गये। उनके कष्टकर आघातों को दैत्यलोग नहीं सह पाये और युद्ध क्षेत्रसे भाग निकले। कई राक्षसगण छिन्न अङ्गवाले, कई मस्तक कटे हुए और बहुत से शरीरों के क्षत-विक्षत होने से बुरी तरह घायल हो गये। अन्य राक्षसगण मार डाले गये और प्रमथों तथा शक्तियों ने अन्य दूसरे शत्रुपक्षके राक्षसों को खा लिया ॥८०-८७॥

इस प्रकार अपनी सेना के विनाश को देखकर तब क्रुद्ध अति भयंकर भण्डासुर रथ पर आरूढ हो युद्ध करने को आगया। उस भण्डको गणेशने अपनी गदा हाथ में लेकर जैसे त्रिपथगामिनी गङ्गा को विन्ध्य पर्वत दक्षिणा पथ भूमि पर आगे बढने से रोकता है वैसे भर्त्सनाकर अत्यन्त सम्पूर्ण शक्ति लगा युद्धमें रोक रक्खा। अनन्तर भण्ड दैत्य और गणेश दोनों में वज्रों को भी चूर-चूर करने वाला मधु-कैटभ के युद्धके समान बहुत भीषण रण छिड़ा। दोनों ही युद्ध विद्यामें अत्यन्त प्रवीण एवं गर्वसे अत्यन्त उन्मत्त एक दूसरे से जमकर लड़ने लगे जैसे वन में दो बलवान् मत्तहस्ती लड़ते हैं ॥८८-९१॥

अथ क्रुद्धो गणपतिर्गदामुद्यम्य वेगतः । प्राक्षिपद्भण्डदैत्याय वज्रं शक्रो नगेष्विव ॥९२॥
तया तस्य रथं साऽश्वसूतध्वजपरिष्कृतम् । क्षणेन भस्मतां नीतं पुनः शीघ्रं गणेश्वरः ॥९३॥
तयैव ताडयामास गदया वज्रकल्पया । अथाऽऽहतोऽतिवेगेन कृत्तमूलद्रुमो यथा ॥९४॥
मूर्च्छया निपतद्भूमौ महोल्केवाऽतिसञ्चरे । हा हेति चुक्रुशुर्दैत्यास्तुष्टाः प्रमथशक्तयः ॥९५॥
साधुशब्दैर्गणेशानं पूजयामासुरुच्चकैः । मूर्च्छामुक्तः क्षणेनैव भण्डः प्रोत्थाय सत्त्वरम् ॥९६॥
अङ्कुशेनाऽहनन्मूर्ध्नि बलेन बलिनां वरः । गजाऽऽस्यस्ताडितो मूर्ध्नि तीक्ष्णेन स्तृणिना तदा ॥९७॥
भिन्नकुम्भः पपातोर्व्यां शैलो वज्राऽऽहतो यथा ।
प्रमथाः शक्तिभिश्चाऽपि हा हेत्युच्चुक्रुशुर्भृशम् ॥९८॥
तदन्तरे भण्डदैत्यं जिघृक्षन्तं गणेश्वरम् । पार्वती स्तम्भयामास हुङ्कारेण रुषाऽन्विता ॥९९॥
दैत्यं बद्ध्वाऽथ पाशेन शूलेनाऽऽहन्तुमुद्यता । तावद्विधिः समागत्य प्रार्थयामास पार्वतीम् ॥१००॥

अनन्तर क्रुद्ध गणेशने अपनी गदा लेकर अति वेग से भण्ड दैत्य पर आक्रमण किया जैसे इन्द्र पर्वतों पर प्रहार करता है। उस क्रियासे उसके घोड़े, सारथि और ध्वजासहित रथ क्षण में ही भस्म (नष्ट) हो गये। फिर गणेशने शीघ्र वज्र के समान आघात करनेवाली उस गदा से दैत्य पर प्रहार किया उससे प्रताड़ित हो राक्षसराज भण्ड जैसे जड़मूल से काटा गया वृक्ष गिरता है उसी के समान बड़े विशाल उल्का तारे की तरह मूर्च्छित अवस्था में धराशायी हो गया। दैत्यगण ने हाहाकार कर विलाप किया और प्रमथों तथा शक्तियों ने ऊंचे स्वर में गणेश को साधुवाद देकर उसकी प्रशंसा की। क्षणमात्र में ही मूर्च्छा से मुक्त हो भण्ड ने अतिशीघ्र उठ कर अपने अङ्कुश से अत्यन्त बल से गणेशके शिर पर प्रहार किया। उस अत्यन्त तीक्ष्ण अस्त्र से प्रताडित हो गणेश के शिरोभाग में आघात हो जाने से वज्र की चोट से आहत पर्वत के समान वह भूमि पर गिरा। शक्तियों के सहित प्रमथ लोगों ने भी हाहाकार मचा बहुत अधिक दुःख मनाया। इसी बीच पार्वतीने गणेश्वर को मारने की इच्छा करनेवाले भण्ड दैत्य को क्रोधित हो हुङ्कार भर से स्तम्भित कर दिया। तदनन्तर दैत्य को रज्जुपाश से बांध कर शूल से वह मारने को जैसे तैयार हुई कि बीचमें श्रीब्रह्मा आकर पार्वती से प्रार्थना करने लगे ॥९२--१००॥

देवि नाऽयं त्वया वध्यः शङ्करस्य वरान्ननु । युद्धान्निवर्तस्व ततो गच्छत्वेषोऽसुरो भुवम् ॥१०१॥
इत्युक्ता पार्वती ज्ञात्वा वरं तस्य महत्तरम् । गच्छ दैत्याऽधम! भुवं मुक्तोऽस्यद्य पुनर्न हि॥१०२॥
इदं स्थानं प्रवेशाऽर्हं मेरुशृङ्गं कदाऽपि ते । भूयात् प्रविष्टस्य शिरः शतधा नाऽस्ति संशयः॥१०३॥
एवं शप्त्वा शक्तिसङ्घैः प्रमथैरपि दानवान्। भण्डादीन् प्राक्षिपद्भूमौ वायुस्तालफलान् यथा॥१०४॥
एवं भण्डो जितो गौर्या विमना दैत्यसंवृतः। अभ्याययौ शून्यकं स्वं विषण्णो दीनमानसः॥१०५॥
एवं भण्डस्य वीर्यं ते प्रोक्तं तत्तपसा भृतम् । गौरीशापवशादेव ब्रह्माद्यास्त्वपराजिताः ॥१०६॥
एवं भण्डासुरो लोकान् विजित्याऽसुरनायकः । बबाधे सुरलोकांश्च नगरेषु वृको यथा ॥१०७॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखडे ललितोपाख्याने भगवत्या गौर्या
भण्डपराभवसहितं शापदानवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४१४७॥

"हे देवि ! भगवान् शङ्कर के वर से यह राक्षसराज आपके द्वारा निश्चय ही वधकरने के योग्य नहीं है। आप युद्ध से हटें तब यह असुर भूमि पर लौट जायगा।" इस प्रकार कहने पर पार्वती उसके महत्तर वर को जानकर बोली, "हे दैत्यों में नीच ! भूमि पर जा, आज तू छोड़ दिया गया है फिर इस मेरुपर्वत के शिखर पर कभी प्रवेश मत करना । यदि आयेगा तो तेरे शिर के सौ सौ टुकड़े होजायंगे इसमें कोई संशय नहीं समझना।" ॥१०१-१०३॥

इस प्रकार शाप देकर शक्तिसङ्घों और प्रमथगण सहित भगवती ने दैत्यराज भण्ड आदि दानवों को इस प्रकार भूमि पर गिरा दिया जैसे ताल के फल को वायु गिरा देता है एवं प्रकारेण भगवती गौरीद्वारा जीता हुआ भण्ड दैत्यों के सहित निराश और अत्यन्त खिन्न होकर अपने नगर शून्यकपुर में लौट आया। इस प्रकार तुझे भण्ड की तपस्यासे प्राप्त उसके वीर्यपराक्रमको बताया, गौरी के शाप के कारण ही ब्रह्मा आदि देवगण भी उससे नहीं हारे। इस प्रकार असुरों के नेता भण्डासुर ने लोकों को जीत कर देवलोकों को उपद्रवों से अशान्त किया जैसे भेडिया नगरों में उत्पात करता है ॥१०४-१०७॥

इसप्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड के ललितोपाख्यानप्रकरण में प्रतापगर्वोन्नत भण्ड का गणेश से युद्ध, पार्वती द्वारा भण्ड का पराभव और मेरुपर्वत पर आने से शिर के शतखण्ड होने का शाप-वर्णन नामक पचासवां अध्याय समाप्त ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ललितामाहात्म्ये यागन तुष्टायाः श्रीदेव्याःसमाविर्भावपुरःसरं तदद्भुतरूपवर्णनम्

श्रृणु कुम्भज !तेनैवं निरस्ताः सर्वतोऽमराः । दुःखिताः काननेष्वद्रिदरीष्वन्तर्गुहासु च ॥१॥
नदीकुञ्जेषु दैत्येशत्रस्ता दैत्यैरलक्षिताः । ऊषुर्दीर्घतमं कालं क्वचिद्दैत्यैर्विलक्षिताः ॥२॥
आकृष्टास्ताडिताः सेवां कुर्युर्भृत्या यथा तथा । एवं वर्षसहस्राणामतीतं द्विसहस्रकम् ॥३॥
तदा क्वचित्तु देवेन्द्रो ददर्शाऽऽङ्गिरसं गुरुम् । प्रणम्य तं प्राह शक्रः बद्धाऽञ्जलिपुटस्तदा ॥४॥
गुरो ! मां पश्य शोचन्तं देवेशं त्वत्समाश्रयम् । चिराय परिदृष्टोऽसि शिष्ये मयि दयां कुरु ॥५॥
नाऽहं सोढुमितः शक्तः कष्टमेवंविधं विभो । पुरा विधिः प्रार्थितोऽपि मया भूयः स्वयं जगौ ॥६॥
नाऽधुनाऽस्य प्रतीकारे कालो देवपते शृणु । प्रतीक्ष कालं कालेन विना नो सिध्यतीहितम् ॥७॥

इक्यावनवां अध्याय

हे कुम्भसम्भव ! सुन, इसप्रकार उस दैत्यराजने सब ओर से देवगण को निकाल दिया तो वे दैत्येशसे संताडित होकर दुःखित हो वनों, पर्वतोंकी गुफाओं और भूमिगर्भके स्थानों एवं नदियों पर प्रकृतिसे बने गहन कुञ्जों में दैत्यों से छिपकर बहुत अधिक समय तक निवास करते रहे । कभी जब वे दैत्यगण द्वारा देख लिये जाते तो बलात् घसीटकर उन्हें ताडना दी जाती और जैसे सेवक लोग सेवा करते हैं वैसे उन देवों से सेवा कराते । इसप्रकार दीर्घ वर्षों के समयमें दो हजारवर्ष बीतगये; तब एक दिन किसी स्थानमें देवेन्द्र ने अपने गुरुदेव आङ्गिरस बृहस्पति को देखा । तत्पश्चात् उन्हें प्रणाम कर इन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा, "हे गुरुवर्य ! आप की शरण में आये अत्यधिक शोक में डूबे मुझे देखिये । बहुत दीर्घकाल से आपके दर्शन हुए हैं । मुझ शिष्य पर कृपा कीजिये । हे विभो ! अब और अधिक समय तक इस प्रकार के कष्टको सहने की क्षमता मेरे में नहीं है ।" तब बृहस्पति बोले, " प्राचीन कालमें मेरे द्वारा प्रार्थना किये जाने पर ब्रह्माजी स्वयं उसके लिये गये । अब देवपते ! इस दानवपति से सामना कर प्रतिरोध का समय नहीं । तुम समय की प्रतीक्षा करो बिना काल को देखे कोई भी अभीष्ट कार्य सफल नहीं होता" ॥१-७॥

तस्याऽद्य वत्सरा वृत्ता असंख्येया युगात्मकाः । न तं कालं प्रपश्यामि लेशतोऽपि सुखावहम् ॥८॥
पश्य मां मलिनं दीनं क्षामाऽङ्गं सर्वतो भयम् । एष कुञ्जः कण्टकितः स्वर्गो नन्दनमेव च ॥९॥
सुधर्मा चाऽत्र मशका गन्धर्वाः स्वरमण्डलाः । वन्दिनः करटा एते शालूराः स्तुतिवाचनाः ॥१०॥
रम्भाद्याः खद्योतगणा हंसतूलं शिलातलम् । उपधानं गुल्मपादो मन्त्राऽऽह्वानं शिवाध्वनिः ॥११॥
परिषद्बककङ्काद्याः पटवासो महीरजः । चामराः कण्टकितरुशाखा वात्याप्रवेपिताः ॥१२॥
एवं समाचारयुतं पश्यंस्तेन द्रुतं मनः । नूनं भाग्यं ममैवैतदित्युक्त्वा मूर्च्छितोऽभवत् ॥१३॥
तं दुःखमूर्च्छितं दृष्ट्वा गुरुः कारुण्यमागतः । समाश्वास्याऽमरपतिः प्रोवाचाऽऽङ्गिरसो वचः ॥१४॥
शृणु देवर्षभ! बुधा नाऽनुशोचन्ति कुत्रचित् । आपत्सु हर्षकलिताः सम्पत्सु समतां गताः ॥१५॥

तत्पश्चात् इन्द्र ने कहा, "तब से आज तक असंख्य वर्षों के युग बीत गये परन्तु लेशमात्र भी सुखकारक समय अभी सन्निकट भविष्य में आवे ऐसा मुझे नहीं दीख पड़ता। आप मलिन, दीनहीन और धूलिधूसरित अङ्गवाले सब ओर से भयभीत दयनीय परिस्थितिमें मुझे देखिये यह सुन्दरकुञ्ज अब कण्टकों से पूर्ण है, स्वर्ग और नन्दनकानन उसी दीनदशामें (उपेक्षित) है। सुधर्मा उद्यानका भी वही वृत्तान्त है यहां मच्छरों के द्वारा ही गन्धर्वगणकी सी स्वरसाधना होती है। ये करट (कौवे) ही वन्दीगण का काम करते हैं। स्तुतिपाठकरनेवालों का स्थान मण्डूकों ने ले लिया है। रम्भा आदि अप्सरायें ही मानो रात्रिमें एकान्तमें उड़नेवाले जुगनुओं का समूह है ही। सुन्दर गद्दों के हंसासन मानो शिलाओं के तल बने हैं। मसनद (तोषक)का काम पेड़ों की निकली हुई जड़ें दे रही हैं। पहले सब ओरसे मन्त्रों द्वारा हमारा आवाहन होता था वह कार्य शृगालियों की अमङ्गलध्वनि से निकलता है। देवगण की परिषद् बगुले, गृद्धों एवं बड़े गरुड पक्षियों के सहयोगसे जुटती है; भूमिकी रज ही लज्जानिवारणके वस्त्र का काम करती है। चँवर डुलाने का कार्य कांटेदार वृक्षों की शाखा-प्रशाखायें सम्पन्न करती हैं, जब वे हवाके झोकों से इधर उधर हिलती डुलती रहती हैं। इसप्रकार की बहुत हीनदशावाले मुझे देखते हुए आप का मन द्रवित हुआ है अवश्य ही मेरा ऐसा ही भाग्य है।" यह कह कर देवपति मूर्च्छित हो गया ॥८-१३॥

उसे दुःख से व्याकुल देख बृहस्पति करुणार्द्र हो गया। अमरों के गुरुदेव आङ्गिरस बृहस्पति ने आश्वासन देकर कहा ॥१४॥ "हे देवश्रेष्ठ सु! न, विद्वान् लोग कहीं पर किसी भी दशा में सोच नहीं करते; आपत्तियों में हर्ष

सज्जना विकृतिं नैव गच्छन्ति विशदाऽऽशयाः । शोकं जित्वा विमर्शेन सन्धैर्येण महाजनाः ॥१६॥
प्रभवन्ति शुभायैव कालमात्रप्रतीक्षकाः । शृणु तेऽत्राऽभिधास्यामि व्यवसायं फलावहम् ॥१७॥
तपसा तोष्य भूतेशं प्राप्तवान् सर्वतोऽभयम् । न योनिजैर्मानसैर्वा मृत्युस्तस्य शिवेरितः ॥१८॥
द्वैविध्यमन्तरा लोके नाऽस्ति कश्चन कुत्रचित् । देवाद्यैः पुरुषैश्चाऽपि नाऽस्य मृत्युरुदीरितः ॥१९॥
अतोऽमरगणैर्युक्तस्त्रिपुरां परमेश्वरीम् । प्रयाहि शरणं नाऽस्ति रक्षकोऽन्यः कथञ्चन ॥२०॥
इत्युक्त्वा मारुतं देवं दध्यौ देवगुरुस्तदा । ध्यातमात्रो जगत्प्राणः प्रणम्य समुपस्थितः ॥२१॥
वाचस्पतिस्तमाहाऽथ शृणु मारुत ! मे वचः । त्वं सर्वदागतिः सर्वप्राणश्चाऽपि महाबलः ॥२२॥
नय शक्रं हिमगिरेः शिखरं व्योममार्गतः । शीघ्रमन्यान् सुरान् सर्वान् पावकप्रमुखानपि ॥२३॥
ततस्ततो दैत्यगणैरानयाऽलक्षितो भृशम् । तत्र पौरुषयोगेन साध्यं सर्वसमीहितम् ॥२४॥

से प्रफुल्लित और सम्पत्तियों में सम भावका पालन ही इष्ट है क्योंकि सज्जनगण उदारप्रकृति के होते हैं। वे कभी भी चिन्ता से व्याकुल विकारग्रस्त नहीं बनते। शोक को जीतकर भली प्रकार आगे और पीछे का विचार कर सम्यक् प्रकार धैर्यधारण से ऐसे महापुरुष केवल समय की अनुकूल स्थिति की प्रतीक्षा में शुभ फल को प्राप्तकरने में सफल होते हैं। हे देवराज ! तुम्हें इस विषय में फलदायक शुभ प्रयत्न को बताता हूँ, सुनो। तपस्या द्वारा भगवान् भूतनाथ को प्रसन्न कर उस दैत्यराजने सब ओर से अभय वरदान प्राप्त कर लिया। 'न योनिसे उत्पन्न और न मानसी सृष्टि के प्राणियों से उसकी मृत्य होगी, यह शिवजी ने कहा है। दो प्रकारकी सृष्टिके अतिरिक्त लोक में कहीं पर कोई है भी नहीं। देवता आदि और पुरुषों द्वारा भी इस को मृत्यु नहीं बताई। इस लिये देवगण के साथ भगवती त्रिपुरा परमेश्वरी की शरण में जाओ अन्य कोई भी सत्ता-सम्पन्न व्यक्ति किसी प्रकार से तुम्हारा रक्षक नहीं हो सकता है" ॥१५-२०॥

यह कहकर देवगुरु ने तब दिव्यशरीर धारी मारुत का ध्यान किया; ध्यान करते ही जगत् के प्राणमारुत देवगुरुको प्रणाम कर उपस्थित हो गये। बृहस्पतिने उससे कहा "हे पवन ! मेरी वाणी सुन, तू सब समय गतिशील सबका प्राण तथा महाबली भी है, आकाशमार्ग से अन्य अग्नि प्रमुख सब देवगण को भी शीघ्र ही हिमालय पर्वत के शिखर पर लेजा। इसबातका भला ध्यान रखना जहां तहां से भी देवगण मिलें उन्हें भी बहुत अधिक ध्यानपूर्वक असुरोंकी दृष्टिसे

ओमित्युक्त्वा निमेषेण देवान् सर्वान् समानयत्। समेता हिमवच्छृङ्गे शक्राद्याः सर्वतोऽमराः ॥२५॥
अथ वायुं प्रेषयित्वा चाऽऽनिनाय गुणेश्वरान्। निश्चित्य भण्डदैत्यस्य विजयाय समीहितम् ॥२६॥
त्रिपुरां परमेशानीं विना नेह गतिः क्वचित्। एवं विधिमुखा देवास्त्रिपुरां परमेश्वरीम् ॥२७॥
दध्युः सर्वजगद्धात्रीं निगृहीताऽक्षमारुताः। एवं तेषामगाद्ध्याननिष्ठानां वत्सरं शतम् ॥२८॥
अथ देवा मन्त्रयित्वा त्रिपुराप्रीतिहेतवे। महायागेन त्रिपुरामयजन् तन्त्रमार्गतः ॥२९॥
समाप्तेऽथ महायागे मन्त्रद्रव्यसुसम्भृते। यत्र ब्रह्माऽभवद्ब्रह्मा आचार्यो गुरुरेव च ॥३०॥
ऋत्विजः शिवविष्ण्वाद्या यागे तस्मिंस्तदाऽभवन्। प्राप्तेऽन्त्यदिवसे तस्मिंश्चिद्भावप्रविभाविते ।३१।
यागवन्हौ चिदाकारे महाकुण्डसमेधिते। अयजत् पूर्णयाऽऽहुत्या गुरुर्ध्यायन् पराम्बिकाम् ॥३२॥
तदा भक्त्या संस्तुवत्सु देवेषु त्रिपुराम्बिका। प्रादुरासीत् कुण्डमध्याच्चिदग्नेर्ज्वलतोऽन्तरात् ॥३३॥

बचाकर ले आना। इस विषय में तेरा सारा पुरुषार्थ सम्पूर्ण अभीष्ट कार्य सिद्ध करने में उपयुक्त होगा" ॥२१-२४॥

'हाँ' भरकर वायु सब देवगण को निमिषमात्र में ही ले आया। सब दिशाओं से हिमवान् पर्वत के शिखर पर एकत्र हो इन्द्र आदि देवगण समवेत हो गये ॥२५॥ अनन्तर उन्होंने वायु को भेज कर गुणेश्वर ब्रह्मा, विष्णु और शिव को बुलवाया। सबने निश्चय कर भण्ड दैत्य पर विजय करने का उद्देश्य विचार किया कि परमेशानी त्रिपुरा के बिना इस विषय में कहीं पर भी कोई गति नहीं। इस प्रकार विधिप्रमुख देवगण ने सम्पूर्ण जगत् की धात्री परमेश्वरी का पूर्ण इन्द्रियनिग्रह पूर्वक तथा प्राणों को रोक कर ध्यान किया। ऐसा ध्यान करते हुए उनके सौ वर्ष व्यतीत हो गये। ॥२६-२८॥

अनन्तर देवगणने आपस में मन्त्रणा कर त्रिपुरा की प्रीति के लिये तन्त्रमार्ग से महायाग द्वारा परमेश्वरी का यजन किया; अनन्तर मन्त्रों और यज्ञकी प्रचुर सामग्री से उस महायागके आरम्भ होने पर तब श्रीब्रह्माने स्वयं ब्रह्माका पद लिया एवं बृहस्पति ही आचार्य बने; शिव, विष्णु, इन्द्र और अन्य देवतादि उस यागमें ऋत्विग्गण थे। अन्तिम दिवस प्राप्त होते ही चितिभाव से विशेषरूपसे भावना किये गये उस चिदाकृतिवाले विशाल कुण्डमें से उठती हुए ज्वालावाले यज्ञ की अग्नि में गुरु ने उस पराम्बिका का ध्यान करते हुए पूर्णाहुतिसे यजन किया। भक्तिपूर्वक प्रार्थना करते हुए देवगण के समक्ष उस समय कुण्ड में से जलते चितिरूपी अग्नि के अन्तराल से भगवती त्रिपुराम्बिका प्रगट हुई ॥२९-३३॥

पूर्णाऽऽहुत्यां हुतायां वै कुण्डे जज्वाल पावकः ।
योजनैकसमुच्छ्राया ज्वालाऽत्यन्तं व्यवर्धत ॥३४॥
तत्राऽभवन्महाशब्दः पर्वतस्येव भिद्यतः ।
शताऽशनिनिपातात्मा भिन्दंच्छ्रोत्राणि नाकिनाम् ॥३५॥
ततोऽमराणां चक्षूंषि मुष्णन् प्रौढेन तेजसा । सकृत् सौदामिनीकोटिसङ्घट्टसदृशच्छविः ॥३६॥
महाप्रकाश उदभूद्वह्निज्वालाऽन्तरे तदा । महता ध्वनिना तद्वत्तेजसा च बुधास्तदा ॥३७॥
बधिराऽन्धीकृताः सर्वे मूर्च्छिता आपतन् भुवि। विना गुरुं त्रिमूर्तिभ्यः पतिताः सर्व एव ते ॥३८॥
तत्तेजोमध्यतः प्रादुरासीच्छ्रीत्रिपुराऽम्बिका । तरुणाऽरुणपुञ्जाऽङ्गसम्प्रदायतनुच्छविः ॥३९॥
विद्युल्लतेव विद्योतत्तनूद्यत्तनुवल्लरी । विद्युल्लताविकसितापूर्णचन्द्राऽम्बुजाऽऽनना ॥४०॥
कवरीतिमिरौघोद्यत्सिन्दूराऽरुणसुप्रभा । तारकाजालवद्व्योमकवरीरत्नभूषणा ॥४१॥

कुण्ड में पूर्णाहुति करते ही अग्नि ज्वलनशील हुआ और एक योजन की ऊँचाई तक ज्वाला अत्यधिक बढ़ी । वहां पर्वत के भेदन होने के समान महाशब्द हुआ । सौ वज्रों के एक साथ गिरने की सी हुई उसकी ध्वनि हुई जो देवगण के कानों को भी भेदन कर गई (उनके कान भी उस शब्दध्वनि को न सह सके) । तदनन्तर देवतालोगों की आँखों को अत्यन्त प्रौढ तेज से चाकचिक्य पूर्ण (चकाचौंध में डालते हुए) करते हुए एक साथ ही करोड़ों बिजलियों के समूह के समान कान्तिवाला महाप्रकाश अग्निकी ज्वाला से निकला जिससे उस समय सभी देवगण बहिरे और उस दिव्यज्योति को न देख पाने के कारण अन्धे जैसे बन मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े । तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव और गुरु को छोड़कर सभी देवगण (सत्त्वहीन हो) पड़ गये ॥३४-३८॥

उस तेज में से श्रीत्रिपुराम्बिका का प्रादुर्भाव हुआ । प्रातःकाल के बालसूर्य की किरणोंके अत्यन्त रक्तिम वर्णके सुयोगसे उसके सारे अङ्गोंकी कान्ति अरुणाभापूर्ण हो रही है । विद्युत्पंक्तिके समान अत्यन्त महोज्जल प्रकाशसे सम्पूर्ण शरीर की शोभा अंगों की सुचारु संघटनासे घटित है । विद्युल्लता की आभाको प्रकाशित करनेवाले स्वरूपवाली, पूर्ण चन्द्रमाके समान कमलरूपी मुखखिला हुआ है, भगवतीकेशपाशरूपी कालिमाके समूहको सिन्दूर लगी अरुण सुप्रभा अधिकाधिक विच्छित्तिसे पूर्णकर रही है। जैसे अनन्त तारों की पंक्ति अन्तरिक्षमें शोभित है वैसे केशपाशमें लगे रत्नों से प्रकाशकी

दीर्घवेणीभोगिवक्त्रनिर्यत्सीमन्तजिह्विका । सिन्दूराऽरुणलोहित्याऽऽक्षिप्तकेशनभोऽङ्गणा ॥४२॥
विपर्यस्ताऽर्धचन्द्राऽङ्कफाले राजद्विशेषिका । कुन्तलाऽलिगणाऽऽकीर्णविकसद्वदनाऽम्बुजा ॥४३॥
मुखसौन्दर्यसरसीनीलाऽम्बुजनिभेक्षणा । कन्दर्पकोटिजननमन्त्राऽऽकूतसमीक्षणा ॥४४॥
क्षीराऽब्धिकोटिलहरीसम्भवाऽपाङ्गसुन्दरा । चाम्पेयकलिकासम्पत्प्रपोषकसुनासिका ॥४५॥
कुरुविन्दाऽऽदर्शशोभाप्रोल्लसद्गण्डमण्डला । अपाङ्गसरिदुन्मज्जत्ताटङ्कमणिनीरजा ॥४६॥
ताटङ्काऽम्बुजसंस्थानमुक्ताऽऽवलिमरालिका । कर्णभूषाकान्तिचापकटाक्षशरसन्ततिः ॥४७॥
पक्वदाडिमबीजात्मदन्तलौहित्यदच्छदा । विकसद्रक्तकुमुदाऽऽन्तरकिञ्जल्कदच्छविः ॥४८॥
प्रवालदच्छदोदञ्चद्दन्तकुन्दसुकोरका । मन्दहंसक्षीरनिधिप्रवालरदनच्छदा ॥४९॥
मुखमाणिक्यकमलवृन्ताऽऽभचिबुकोज्ज्वला । मणिग्रैवेयकाकल्पलसद्गीवाऽब्जसुन्दरा ॥५०॥
पाणिरत्नमृणालोद्यत्पद्मकोशस्तनद्वयी । माणिक्यदेहलतिकास्तनस्तवकशोभिनी ॥५१॥

प्रभा मानोअत्यन्त विकसित होती हो । शिरकी लम्बी वेणी ही सर्परूपकी उद्भासित हो, सुन्दर तिलक मानों मुखसे जिह्वाकी उपमाको प्राप्त कर रहा । अपने मस्तकमें लगी सिन्दूरकी बेंदी तथा मुख और शरीरकी अरुण लालिमासे केशरूपी नभ का अति विस्तृत प्राङ्गण अत्यधिक प्रकाशित हो रहा है; भालमें विपर्यस्त अर्धचन्द्रके अङ्क-चिन्हसे कमनीय शोभा विशिष्ट बन रही है। शिर के घने काले केशरूपी भौंरों से घिरे अत्यन्त विकसित मुखकमलवाली, उसकी सुन्दरतारूपी सरसी (छोटी पुष्करिणी-तलैया) में फूले नील कमल के समान अति सुन्दर आंखोंवाली, करोड़ों कामदेवों को उत्पन्नकरनेकी मन्त्रणा के भाव को सम्यक् प्रकार से अपनी आंखों द्वारा प्रकटकरनेवाली, क्षीरसमुद्र की कोटि लहरियों के समान उत्पन्न चञ्चलता से भरे हुए नेत्र के कोयों से अतिशय सुन्दर, लालरत्नों के दर्पण में प्रतिविम्बित होनेवाली उस शोभा की छटा (झांई) गालों के प्रदेशको अत्यधिक मनोहर बनानेवाली है; चम्पकपुष्प की कलिका की नांई सुमधुर विच्छित्ति से भलीप्रकार सुभूषित नाकवाली, अपने नेत्रप्रान्त की कनखियों को नदी में से निकले कान केवल आभूषण की मणिरूपी कमलकी शोभाको धारी हुई हो । ताटङ्क (कानके बाले) रूपी कमलमें रहनेवाले मोतियों की पंक्तिके लिये हंसी के समान सहज शोभा धारणकी हुई । कर्णाभरणकी आभारूपी धनुषमें कटाक्ष (तिरछे नेत्रों से देखनेकी भङ्गिमा) रूपी बाणोंको उत्पन्न सी करती हुई; पकी अनार के दानों के समान अपने रक्त वर्णकी आभासे अत्यन्त शोभायुक्त दन्तपंक्ति

मुखचन्द्रप्रभाभीतिनिलीनकुचकोकिका । मन्दस्मितसरित्पूरखेलत्कुचमरालिका ॥५२॥
तनुवल्लीशाखिकोद्यत्पाणिपल्लवलोहिता । करप्रवालाऽग्रजपाकोरकाऽङ्गुलिमण्डिता ॥५३॥
सृणिपाशधनुर्बाणैर्लसद्बाहुचतुष्टया । वलयाऽङ्गदरत्नोर्मिकूर्पासविलसद्भुजा ॥५४॥
मुखपद्ममृणालाऽऽभमुक्ताहारलतोज्ज्वला । रोमाऽऽलितनुनालोद्यत्कुचद्वन्द्वाऽब्जकुड्मला ॥५५॥
रोमाऽऽलिवल्लरीमूलनाभिनिम्नाऽऽलवालिनी । नाभिसरोन्नीतरोमलताशैवालवल्लिका ॥५६॥
कौसुम्भरत्नवसनसमाच्छन्ननितम्बिनी । ऊर्ध्वाऽङ्गधारणामात्रनिमित्तप्राप्तमध्यमा ॥५७॥
सूक्ष्माऽभ्राऽऽभांऽशुकाऽन्तस्थदृश्यतारकभूषणा । माणिक्यकदलीकाण्डपारिभाव्यूरुमण्डला ।५८।
पद्मरागनिषङ्गाऽऽभजङ्घायुगसुमण्डिता । कमठीपृष्ठविभवसूचनप्रपदाऽन्विता ॥५९॥
मणिनूपुरसंराजत्किङ्किणीचारुसिञ्जिता । विकसत्पद्मसौभाग्यवदान्यपदपङ्कजा ॥६०॥

धारण की हुई; विकसित रक्तकमल के अन्दरके किंजल्क (रेशे) की कोमलताको तिरस्कार करनेवाली शोभा दन्ताधरों में में धारण किये, मूंगा के रंगसे उभरनेवाले दन्तरूपी कुन्द की कलिकाकी छवि धारण किये क्षीरनिधि में मन्द गमनशील हंस की गतिवाली, प्रावल की कान्तिवाले ओष्ठवाली, मुख, माणिक्यरूपी कमल के वृन्त (दल) की आभा से पूरित ठोडी वाली, मणियों के ग्रीवाहार से सुगठित ग्रीवारूपी कमलसे सुन्दर शोभाधारिणी, माणिक्यके लावण्यसे देहलतिका के स्तनरूपी पुष्पगुच्छ से शोभित, उनके आवरण में छिपे कुचरूपी चक्रवाकपक्षी ही मुखरूपी चन्द्रमा की अत्यन्त प्रकाशमयी आभा से डर कर मानों यहां छिपसे गये हों। ऐसा प्रतीत हाता है कि मुखके मंदहास्यरूपी सरिताके जलसे भरे उच्छलत्सरोवर में कुचरूपी मराल मानों खेल रहे हों। अत्यन्त सुकोमल पतली कमरवालीशरीररूपी लता में से कोमल शाखाके समान उद्भूत हस्तरूपी पल्लवों (अङ्कुरों) से रक्तवर्ण की कान्तिवाली, करप्रवालके अग्रभागमें लाल जपाकुसुमकी कलिके समान अंगुलियों से शोभित, चारों हाथों अङ्कुश, पाश, धनुष और बाणको में धारणकी हुई भगवती अपने कंकण बाजुबन्दोंमें जटित रत्नों के प्रकाशसे कोहनी और भुजाओंसे अत्यन्त शोभित है। मुखरूपी कमल के डण्ठल समान स्वच्छ मुक्ताहार शरीर पर धारण करने से अत्यन्त देदीप्यमान, रोमावलिसे कमनीय शरीर के नालमें से उठे हुए दोनों कुच मानों कमलकी खिली कलियां जैसी लगती हों। रोमावलिकी लताका मूलस्थान नाभि प्रदेश ही मानों नीचे की आलवाल का रूपधारणकिये हों नाभिरूपी सरोवरसे निकली रोमलतासे घिरी शैवाल(सिवारों)की छोटी बेलको धारणकी हुई सी; रत्नों से जड़े केसरिया वस्त्रसे ढके कमरके नीचे के नितंब भागवाली ऊपरके अङ्गों के भारको धारण करने से प्रकृतिसेही अपने

पादाम्बुजप्रविलसन्मणिहंसकमण्डिता । नखचन्द्रसुधास्यन्दहृतसन्नततप्तता ॥६१॥
मरालीमन्दगमनकुलाऽऽचार्यपदद्वयी । भक्तवाञ्छावितरणपदमन्दारपल्लवा ॥६२॥
एवमाविर्भवन्तीं तां दृष्ट्वा ब्रह्मादयस्तदा । दण्डवत् प्रणता भूत्वा जय देवीति तां जगुः ॥६३॥
तत्र वाचस्पतिर्नत्वा भूयः प्रोत्थाय तां पराम् । पश्यंस्तद्दर्शनोद्भूतहर्षवारिधिसम्प्लुतः ॥६४॥
उत्तंसितकरद्वन्द्वसम्पुटोद्यत्सरोरुहः । नेत्राऽम्बुजस्रवद्धर्षवारिपूरपरिप्लुतः ॥६५॥
अस्तौषीदतिसुप्रेमभरगद्गदमन्थरः । रचनाचातुरीमोदैर्मोदयंस्त्रिपुराम्बिकाम् ॥६६॥

शरीर के पतले मध्यभागको बतानेवाली, हल्के झीने मेघों की आभावाले अपने सुन्दर ऊर्ध्व वस्त्रों को धारण करने पर भी उसमें से दीखनेवाली आभूषणों की छटा से तारागणकी कान्तिको भी तिरस्कृत करनेवाली; माणिक्यकी आभा से दीप्त अङ्गवाली, केले के स्तम्भ की शोभा दूर बिठानेवाले नितम्ब जघन प्रदेशवाली, पद्मराग (लाल) से (तूणीर) के समान दोनों जङ्घाओं से अतिशोभित, कच्छपी के पीठके वैभव की सूचना देनेवाले पैरोंके अग्रभाग में कान्तिधारणकरनेवाली; मणियों के पायलों में सम्यक् प्रकार से लगे हुए घुंघुरों की बहुत अधिक कर्णमधुर छमछमाहट की ध्वनिवाली, खिलते हुए अमल कमल की शोभाके अनुरूप अति सुन्दर पदपङ्कजवाली, चरणकमलों में पहने हुए मणिजटित आभूषणों से मानों हंसों के बच्चों जैसे सुशोभित हों, भगवती के नखरूपी चन्द्र से टपकनेवाले अमृत के निरन्तर स्रावसे भक्तजन के हृदयों की तपन हरण करनेवाली, हंसी के समान मन्द मन्द गमन से कुल और आचार्य दोनों के पदों की प्रतिकरानेवाली, भक्तगण की मनोरथ कामनाको प्रदान करने में मन्दार (कल्पवृक्ष) के पल्लवस्वरूपा ऐसी श्रीललिताम्बा आविर्भूत हुई। उसे इसप्रकार प्रत्यक्ष प्राप्त हुई देख ब्रह्मादि देवगण ने तब दण्डवत् की एवं प्रणत होकर "हे देवि ! आपकी जय हो" यह कहा ॥३८-६३॥

फिर वहां वाणी के पति देवगुरु बृहस्पति ने उठकर प्रणाम पूर्वक उस परा के दर्शन से उत्पन्न हर्ष सागर में अधिकाधिक स्नान किये हुए (दर्शन से अत्यन्त हर्ष भरित) अपने दोनों हाथ मिलाकर सम्पुट किये गये सरोरुह की भावना वाले (श्रद्धानम्र हो अंजलिबांध) नेत्रकमल से हर्ष गद्गद आनन्दाश्रुओं से भीगे (परिप्लुत) अत्यन्त सुन्दर भक्तिपूर्ण हृदय से गद्गद हो मन्द गीति एवं लय से रचना चातुर्य के आनन्द से श्रीत्रिपुरा अम्बिका को सुप्रसन्न करते हुए स्तुति की ॥६४-६६॥

तव विभवविलासं वर्णितुं मे न शक्तिर्यदिदमपि मयोक्तं तावकी नैव शक्तिः ।
न हि भवति ततो मे वाक्पतित्वस्य हानिर्यदि भवति तदा स्यात्त्वत्प्रसादस्य हानिः ॥६७॥
सुरगुरुरहमेवं वच्मि यत्तत्त्वमेव त्वमहमिदमितीयत्सर्वमम्ब त्वमेव ।
तत इह न हि मेस्तो हानिलाभौ तरङ्गे मधुरकटुरसौ वा क्षीरसिन्धोरिवाऽन्यौ ॥६८॥
यदिह विविधभेदं प्रेक्षते मूढदृष्टिर्मुकुरतलविराजच्चित्रवद्भासमानम्।
यदिदमिह पुरस्ताद्दर्शितं दिव्यरूपं तदपि च कृपया नः पूर्ववन्मायययैव ॥६९॥
विबुधसमुदयानां स्वं वरं मन्यमानो जननि तव विलासैर्मोहितो मूढबुद्धिः ।
तव निरवधिशक्तिं वर्णितुं दृश्यभेदं यतति विहततर्कैस्तैर्थिकस्त्वामजानन् ॥७०॥
विविधवचनजालैरस्ति नास्तीति पक्षैर्विवदनपरमाणां याति कालो वृथैव ।

"आपके अत्यन्त विलक्षण वैभव को वर्णन करने की मेरी शक्ति नहीं है; जो मैं कुछ कहता हूँ वह आपकी ही सामर्थ्य है। इस प्रसङ्ग में मै वर्णन करने में समर्थ न होऊँ तो मेरे वाणी के पति (वृंहण करने योग्य वाणी के स्वामी) बने रहनेवाली भावनाकी हानि नहीं होगी। परन्तु यदि आपके कृपा प्रसादकी जब प्राप्ति मुझे नहीं होगी तभी वह अपूरणीय हानि है। 'मैं' सुरगुरु बृहस्पति इसप्रकार कहलाता हूँ वह मैं भी आप ही हैं "तू" मैं और "इदम्" यह सब हे अम्ब ! आपही तो हैं। तदनन्तर इस संसारमें मेरे हानि-लाभ कुछभी नहीं हैं, जैसे क्षीर समुद्रके मधुर तथा कटु रस दोनों उससे अन्य नहीं होते; जैसे दर्पण के अन्दर चित्र परछाया से भासमान होता है; उसी प्रकार आप की सत्ता से व्याप्त जगत् को जो विविध भेदवाला मूढदृष्टिवाला व्यक्ति है, वह ही देखता है। जो यह दिव्यरूप आपने हमारे सम्मुख दिखलाया है वह आपकी हमलोगोंपर कृपा है; यह सब पूर्व के समान ही आपकी मायाशक्ति से विजृम्भित है ॥६७-६९॥

हे जननि ! मैं मंदबुद्धि इन देवगण के अत्यन्त उत्कर्ष का वर मांगता हुआ आपके विलासों कार्यकलापों से मोहित हूँ। आपकी निरवधिक शक्तिसामर्थ्य को दृश्य-भेद रूप में वर्णन करने के लिये नये सम्प्रदाय का मत अवलम्बन करनेवाला तैर्थिक (बौद्धसाधु) अत्यधिक व्यर्थ तर्कजालों से अन्यथा ही वर्णन करने की चेष्टा करता है। आपकी व्यापक सत्ता है अथवा नहीं हैं इसको लेकर पक्ष और विपक्ष का ग्रहणकर विवादकरनेवाले लोग वृथा ही काल व्यतीत करते हैं। हे जगदम्ब ! आपकी चिन्मयी कला को एक क्षणमात्र भी जो सत्पुरुष अपने हृदय में तथ्य पूर्ण

क्षणमपि जगदम्ब त्वत्कलां चिन्मयीं ये निजहृदि विमृशन्तः संस्थितास्ते हि धन्याः ॥७१॥
विगतविषयतृष्णावासने स्वाऽन्तरङ्गे विमलमुकुरतुल्ये निश्चले स्वात्मनैव ।
तव जननि कलां तां योगिनः प्रेक्षमाणाः परमसुखपदस्थास्ते हि धन्या जयन्ति ॥७२॥
इति चिरतरकालं त्वत्स्वरूपं विमृश्याऽऽन्तरभुवि दृढभावाः स्युर्निसर्गस्वभावाः ।
तदनु बहिरशेषं त्वत्स्वरूपं मृशन्तः त्वयि परमविलासास्ते हि योगीन्द्रपूज्याः ॥७३॥
अहमपि ललिते त्वत्पादपद्मस्य कश्चित् परिचयमभिगम्याऽन्तः सदा सर्वतोऽपि ।
वचनविरचनानां चिन्तनानामपि त्वामणु किमपि विना नाऽवैमि तत्त्वां नतोऽस्मि ॥७४॥
इति स्तुत्वाऽमरगुरुः प्रणतो दण्डवद्भुवि । गुणभूता विधिमुखा अपि तुष्टुवुरम्बिकाम् ॥७५॥
जय जय जननि जगल्लयपालनसर्जनविभवे समचितिरूपे ।
सर्वाऽऽभासनतनुरपि विततां संविदनुत्तरमात्रशरीरा ॥७६॥

अनुसंधान कर देखते हैं, वे व्यक्ति ही धन्य हैं। हे जननि ! विषयों की तृष्णामयी वासनाको मिटाये हुए अपने अन्तः-करणमें जो ही आत्मा द्वारा विशेष रूपसे शुद्ध परिष्कृत दर्पण के समान निश्चल हो आपकी कला को योगीगण देखते हुए परमसुखमयधाममें स्थित होते हैं हे अतिशय सुन्दरि ! ऐसे महापुरुष ही जयलाभ करते हैं। इसप्रकार आपके स्वरूप को यथावस्थित तत्त्व के अनुसंधानपूर्वक विचार करके अन्तःकरण भूमि में पूर्ण दृढ भावना बना। अपने स्वभावमें स्थित होने वाले तत्पश्चात् बाह्य सम्पूर्ण प्रपञ्चजालको आपका ही स्वरूप यथार्थरूप से अनुसन्धान करने वाले योगी लोगों में श्रेष्ठ महानुभाव आपमें ही आत्यन्तिकरमण करते हैं ऐसे योगिजन व्यक्ति धन्य हैं। हे ललिते! मैं भी आपके चरणकमलों का थोड़ा सा परिचय पाकर अन्तःकरण में सब प्रकार सदैव वाणीविलासपूर्ण चिन्तनों के करते रहने पर भी आपकी कृपा के बिना आपके स्वरूप को अणुमात्र भी इदमित्थंरूप से नहीं जानता हूँ, ऐसी महिमामयी आपको मैं नमस्कार करता हूँ। इसप्रकार स्तुति करने के अनन्तर देवगुरु बृहस्पति ने भूमिमें दण्डवत् हो प्रणाम किया। गुणों के अधिष्ठाता विधिप्रमुखदेवगण ने भी देवी अम्बिका की स्तुति की ॥७०-७५॥

"हे जगत् के लय, पालन एवं सर्जन की शक्तिरूप के वैभववाली समानचितिरूपधारिणि ! मातः ! आपकी जय हो जय हो। फैले हुए सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्च का आभासन ही आपका शरीर होने पर भी आप अपरिच्छन्नरूपा हैं, जिसके उत्तर में (बाद में) कोई सत्ता नहीं है, स्वयं तुरीयरूप से विराजमान है वह आप ही सम्विद्रूपा हैं ॥७६॥

नैपुण्यमेतद्दर्पणसदृशं बाह्यनिरोधेऽप्यतिचित्रं ते ।
विजयत्येतत्तव दुर्घटनाघटनाशक्तिर्महती सत्ता ॥७७॥
स्वं रूपं तद्विततमपीश्वरि दुर्घटशक्त्या परिमितरूपम् ।
कृत्वा दर्शनदृश्यविभेदान् विविधान् सर्वान् परिभासयसि ॥७८॥
एवं स्वीयं रूपमनेकं परिमितरूपा पश्यन्ती त्वम् ।
बन्धकं चित्परिमृश्याऽन्तर्यत्नाद्भूयो भासि यथावत् ॥७९॥
स्वात्माऽऽदर्शे प्रविततलीलां भावयसीत्थं स्वातन्त्र्यात्त्वम् ।
दृष्ट्वा कल्पितमेतत्स्वीयं नन्दस्यनिशं देवि ! नमस्ते ॥८०॥
सन्ततलीलामिति यः कश्चन शक्त्या भिन्नस्तव जानीयात् ।
स च लोकानां त्वमिव महेश्वरि ! लीलाद्रष्टा नन्दति देवः ॥८१॥
गूढं रूपं तव सविलासं द्रष्टुं शक्ता न हि ये दीनाः ।
तेषामेतत्परमं रूपं प्रकटितमक्ष्णोः फलसंजननम् ॥८२॥

आपकी सत्ता जगत्‌रूपी दर्पणके अन्दर स्पष्ट परिलक्षित होती है, बाह्य दृश्यप्रपञ्च के निरोध (रोक रखने) होने से अत्यन्त चित्रविचित्र शक्तिसत्तावाली, अत्यन्त कठिनता से करने योग्य अघटनघटनाघटित करने की शक्ति से सम्पन्न होने से आपकी बहुत बड़ी सत्ता है वह त्रिकाल में विशेष रूप से विजय स्थिति में है। हे ईश्वरि ! (सर्वसमर्थे) आपकी दुर्घटशक्ति से (माया से) अपना व्यापनशील रूप भी परिच्छिन्नता में बंधा (सीमित) होता है, आप स्वसत्तामात्रसे ही सभी नानाविध दर्शन दृश्य भेदों को भासित करती हैं। इस प्रकार आपका स्वकीयरूप अनेक विध होता है। आप ही परिमितरूपवाली हैं, नाभिसंस्थानमें आप पश्यन्ती हैं जिसे चितिका परामर्शकर पूर्ण प्रयत्नसे जान लेने पर यथावत् पूर्वरूप आभास करती हैं। आप अपने स्वातन्त्र्यभर सत्ता सामर्थ्य से इस प्रकार आत्मरूपी दर्पण में लीलाविलास करती दिखाती हैं कि उस स्वात्मभावित इस सब दृश्य प्रपञ्च को देख कर सतत आप "स ऐक्षत् बहुस्यां प्रजायेय" प्रसन्न होत हैं। इस अविरल नित्य लीला को जो कोई आपकी शक्ति से अभिन्न जानता मानता है तत्त्वरूप से यथार्थ समझत है। इन दृश्यप्रमाताओं को आपका ही लीलाविलास आपके समान देखनेवाला लोकों में दिव्यभावसे आनन्द लाभ करता है। आपके लीलाविलाससे विलसित अत्यन्त गूढ रहस्यमयरूप को जो दीन-हीन असाधन (साधनों से हीन) व्यक्ति नहीं देख सकते उनके अपने नेत्रों के लिये ही फलदायी आपका यह अत्यन्त श्रेष्ठ रूप प्रकट हुआ है। कुङ्कुमके समान

कुङ्कुमशोणं गुरुकुचनम्रं चन्द्रकलाढ्यं सुलिलतरूपम् ।
स्तृणिशरचापान् पाशं बिभ्रद्वयमिह भूयः प्रणमामस्तत् ॥८३॥
स्तुत्वैवमपि ब्रह्माद्याः प्रणेमुः पादसन्निधौ । अथ तान् प्राह परमा वत्सा उत्तिष्ठत द्रुतम् ॥८४॥
एषाऽहं कृतसन्नाहा प्राप्ता शत्रुवधाय वः । किं वोऽभिलषितं भूयः प्रतीच्छध्वं गुणेश्वराः ॥८५॥
त्वमप्याङ्गिरस ब्रूहि वाञ्छितं किं ददामि ते । निशम्यैवं वचो देव्याः प्रोचुर्ब्रह्मादयस्ततः ॥८६॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुररहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये भगवती-ललिताऽऽविर्भाववर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४२३३॥

अरुण रंगवाला, उभरे हुए स्तन प्रान्त से झुका हुआ चन्द्रकलासे भी अधिक विकासमान आपका सुन्दर मनोहर ललित स्वरूप जो शूल बाण धनुष और पाशको धारण किया हुआ सम्मुख प्रत्यक्ष है हम पुनः उसे सादर प्रणाम करते हैं" ॥७७-८३॥

इस प्रकार स्तुति कर ब्रह्मा आदि देवगण ने भगवती के चरणों में प्रणाम किया । अनन्तर उस परमा ने देवों से कहा "हे वत्सगण ! शीघ्र उठो मैं अब अपने रूप से तुम्हारे शत्रुओं के वध के लिये उपस्थित हूँ (आगई हूँ) । हे गुणेश्वरो! ब्रह्मन्, विष्णो और महेश ! तुम्हें क्या अभीष्ट है? उसे मांगो मैं दूँगी । हे अङ्गिराके पुत्र बृहस्पते ! तू भी अपना क्या वाञ्छित वर है सो मांग, मैं दूँगी ।" इस प्रकार देवी के वचन सुनकर तब ब्रह्मा आदि देवगण बोले ॥८४-८६॥

इसप्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुररहस्य के माहात्म्यखण्ड के ललितोपाख्यानप्रकरण में प्रतापगर्वोन्नत भण्ड के द्वारा त्रस्त देवगण की तपःसाधना से भगवती ललिता का चिदग्निकुण्डसे आविर्भाव तथा सुरगुरु बृहस्पति एवं ब्रह्मादि देवगण द्वारा देवीस्तुतिपूर्वक श्रीदेवीद्वारा अभीष्टवरदान का आश्वासन नामक इक्यावनवां अध्याय समाप्त ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

देवेभ्यः समाश्वस्तेभ्यो बृहस्पत्यनुरोधेन देव्या स्वरूपदर्शनार्थं श्रीसूक्तजपविधानवर्णनपुरःसरं मन्त्रिभिः सह मन्त्रणमनुभण्डद्वारा देवगणत्रासाय ससज्जीभवनं त्रिपुराविर्भाववर्णनम्

श्रृणु कुम्भोद्भव ! मुने ! ब्रह्मादीनां वचस्ततः । प्राहुर्ब्रह्ममुखा देवीं भक्तिनम्रसुमूर्तयः ॥१॥
भूय एवं महापत्सु जगतां रक्षणोद्यता । विधेयममराऽरीणां शत्रूणां प्रविहिंसनम् ॥२॥
मातः ! श्रृणु कथं भण्डदैत्यो भूयस्त्वया हतः । नूनं त्रिलोचनेनाऽसौ सर्वतोऽमरतां गतः ॥३॥
कथं वाऽमरकार्यं स्यात् कथं चाऽसुरघातनम् । श्रुत्वैवं धातृमुख्यानां वचः सा प्राह शङ्करी ॥४॥
मा कृथाः पद्मयोने त्वं शङ्कामत्राऽसुराऽऽहतौ । माऽहं योनिसमुद्भूता मनसा वाऽपि कस्यचित् ॥५॥
अग्निकुण्डसमुद्भूता स्त्रीस्वरूपाऽस्म्यलौकिकी । अप्रसिद्धेन चाऽस्त्रेण निहन्म्येनं महासुरम् ॥६॥
श्रुत्वैवं ललितावाक्यं जहुश्चिन्तां गुणेश्वराः । अथोवाचाऽमरगुरुः पराशक्तिं कृताञ्जलिः ॥७॥
देवि ! त्वां सर्वजननीमेवंरूपां महेश्वरीम् । पश्यन्तु शक्रप्रमुखा भूयासुस्तेन पाविताः ॥८॥

बावनवां अध्याय

हे मुनिवर्य अगस्त्य ! ब्रह्मादि कारण देवों के वचन सुन । तदनन्तर ब्रह्मा प्रमुख देवतागण ने भक्ति विनम्र हो सौम्यरूप बन देवी से अनुरोध किया, "फिर इस प्रकार उग्रसे उग्र महाआपत्तियों में जगत् की रक्षा करने को परायण हो देवगणके शत्रु राक्षसों और अन्य रिपुओं का आप भली प्रकार वध करें । हे मातः ! सुनिये, फिर आप दैत्यराज भण्डको कैसे मारेंगी ? अवश्य ही वह त्रिलोचन शङ्कर द्वारा सब प्रकार से अमर पदवी को पाचुका है । देवगण का कार्य कैसे होगा और असुरराज का वध क्यों कर होगा ।" इसप्रकार विशेष ब्रह्मादि प्रमुखों देवगण की वाणी सुन उस शङ्करी ने कहा, "हे ब्रह्मन् ! इन दैत्यों के वध के विषय में तुम शंका मत करो; मैं न तो किसी योनि (उत्पत्ति स्थान) से उत्पन्न हूँ और न किसी के मन से रची हुई हूँ; अग्निकुण्ड से आविर्भूत स्त्रीस्वरूपधारिणी अलौकिक शक्ति हूँ; अत्यन्त अप्रसिद्ध अस्त्र से इस महासुर को मारूँगी ।" ॥१-६॥

इस प्रकार भगवती ललिता की वाणी सुनकर गुणेश्वरों ने अपनी चिन्ता छोड़ स्वस्थता अनुभव की । तदनन्तर अमरगुरु बृहस्पति ने हाथ जोड़े पराशक्ति से कहा, हे देवि ! सम्पूर्ण जगत् की जन्म देनेवाली महेश्वरि ! "आपको इस रूपमें इन्द्र प्रमुख देवगण देखें यह अनुग्रह अवश्य कीजिये, जिससे वे पवित्र हों" ॥७-८॥

तिशम्याऽऽङ्गिरसवचः प्राह सा त्रिपुरेश्वरी । शृणु जीवशक्रमुखा नैवं शक्तिमयीं तनुम् ॥९॥
ममैते द्रष्टुमप्यर्हा नाऽन्यैर्दृष्टमिदं वपुः । न हि साधारणः कश्चिदेवंरूपां प्रपश्यति ॥१०॥
यूयं मेऽस्यास्तनोर्भक्ताश्चैतद्ध्यानपराः सदा । अतो वो दर्शितं चैतन्नान्यैर्दृष्टं कदाचन ॥११॥
रूपान्तरं परिमितं तत् प्रपश्यतु वज्रभृत् । अथ भूयोऽपि बहुधा प्रार्थयामास तां गुरुः ॥१२॥
प्रदर्श्यतच्छक्राय चेति सा गुरुमब्रवीत् । यदि मामीदृशीं शक्रः पश्येत्तच्छृणु वच्मि ते ॥१३॥
मां समाराधयतु स श्रीसूक्तविधिना ततः । दर्शयिष्यामि तस्मै स्वमिदं रूपं न संशयः ॥१४॥
इत्युक्त्वा मूर्च्छितान् देवान् सुधादृष्ट्या प्रबोध्य सा । अन्तर्धानं ययौ तत्र ब्रह्मादीनां प्रपश्यताम् ॥१५॥
अथोत्थिताः शक्रमुखा देवाः सर्वे बृहस्पतेः । श्रुत्वा श्रीत्रिपुरादेव्या आविर्भावं ततो वृषा ॥१६॥
देवैः समेतो गुरुणा विज्ञातोपासनक्रमः । लक्ष्मीसूक्तविधानेन भक्तिश्रद्धाऽतिनिर्भरः ॥१७॥
आराधयामास परां त्रिपुरां परमेश्वरीम् । एवं तस्याऽऽराधयतो मासाः षट् पञ्च चाऽत्ययुः ॥१८॥

बृहस्पतिका कथन सुनकर उस भगवती त्रिपुरेश्वरी ने कहा, "हे देवगुरो ! एवं हे इन्द्रप्रमुखदेवगण ! मेरी शक्तिमयी तनुको तुम लोग ऐसे नहीं देख सकते कहीं पर भी अन्य कोई व्यक्तियों ने इस दिव्य शरीरको कभी नहीं देखा है, कोई साधारणजन इसरूप में मुझे नहीं देख सकता । तुम मेरे इस शरीरके भक्त हो; सदैव इसी ध्यानमें तत्पर रहते हो इसलिये तुम्हें यह रूप दिखाया गया है (यह) अन्य किन्हीं लोगों से कभी भी नहीं देखा गया । उस दूसरे सीमितरूप को ही इन्द्र देख पायेगा ।" अनन्तर देवगुरु बृहस्पतिने फिर कई वार उस पराम्बा की भक्ति विह्वल हो प्रार्थना की । "आप इसी रूप का इन्द्र को दर्शन दें" यह कहने पर भगवती ने गुरुसे कहा, "यदि इसी रूप के जैसे शरीर में इन्द्र मुझे देखना चाहे तो मैं तुम्हें बताती हूँ, सुनो । वह श्रीसूक्त की विधिसे मेरी आराधना करे तत्पश्चात् मैं उसे अपना यह स्वरूप दिखाऊंगी, इसमें कोई संशय मत समझना ।" ॥९-१४॥

यह कहकर मूर्च्छित देवगणको अमृतदृष्टिसे प्रबोधन कर वह देवी ब्रह्मादि के देखते देखते वहीं की वहीं अदृश्य हो गयी । अब सब शक्रप्रमुख देवगण उठ खड़े हुए । तत्पश्चात् बृहस्पतिसे श्रीत्रिपुरादेवीका आविर्भाव सुनकर इन्द्रने सम्पूर्ण देवगण के सहित बृहस्पति से उपासना के विधान को जानकर लक्ष्मीसूक्त की विधिसे अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रद्धापरायण होकर परा श्रीत्रिपुरा परमेश्वरी का आराधन किया । इस प्रकार आराधना करते हुए उसे तीस मास व्यतीत हो गये ॥१५-१८॥

तदन्तरे दैत्यगुरुर्ज्ञात्वाऽमरविचेष्टितम् । भण्डासुराय तद्वृत्तं ज्ञापयामास सर्वशः ॥१९॥
शृणु दैत्यपते शत्रुः सुरेशो हिमवद्गिरौ । साम्प्रतं परमां शक्तिमुपतिष्ठति भक्तितः ॥२०॥
सा प्रसन्ना क्षणेनैव त्वां सपुत्रं सबान्धवम् । ध्वंसयिष्यति दावाग्निस्तृणदारुचयं यथा ॥२१॥
यतस्व तावदेव त्वं यावन्नाशं न यास्यसि ।
नाऽत्रोपास्यो दृश्यतेऽन्यः साम्नो बलवदाश्रिते ॥२२॥
दिवं भुवं समर्प्याऽऽशु सधनं सपरिच्छदम् । इन्द्राय पातालमात्रराज्यस्तां जगदीश्वरीम् ॥२३॥
प्रयाहि शरणं देवीमन्यथा नाशमेष्यसि । इत्युक्त्वा पूजितस्तेन जगामाऽभिमतां गतिम् ॥२४॥
अथ भण्डासुरो दैत्यो मन्त्रिभिर्मन्त्रशिक्षणैः । मन्त्रयामास दैत्योऽसौ सेवितः शून्यके पुरे ॥२५॥
राज्ञाऽऽज्ञप्ता मन्त्रिणस्ते प्रोचुः स्वस्वमताऽनुगम् । कश्चित् साम भेदमन्यः परो दानमुवाच ह ॥२६॥
दण्डमाहुस्तथा केचिदेवं व्याकुलिता सभा । तदन्तरे विशुक्रस्य पुत्रः शुक्रसमो मतः ॥२७॥

इसी अवधि में दैत्यों के गुरु शुक्राचार्यने देवगण की तपस्याचेष्टाओं को जानकर भण्डासुरको वह सब वृत्तान्त यथाविधि सुनाया (बताया), "हे दैत्यपते ! सुन। तुम्हारा शत्रु देवराज इन्द्र हिमालय पर्वत में इस समय परमाशक्ति को भक्तिपूर्वक आराधना करता है। वह प्रसन्न हुई क्षणमात्र में ही तुझे पुत्रों तथा बन्धुजन सहित मार डालेगी जैसे वन की दावाग्नि तृणकाष्ठ के ढेर को जला डालता है। इस अवधि में तू ऐसा प्रयत्न कर जिससे तेरा नाश न हो, बलवान् के आश्रय लिये होने वाले शत्रु से सामनीतिको छोड़ अन्य उपाय काम में लाने योग्य हुआ करते। अन्तरिक्ष और भूमि के राज्यको धन और सामग्री सहित अतिशीघ्र इन्द्र को सम्हला और पाताल में अपना राज्यशासन कर उस जगदीश्वरी देवी की शरणमें चला जा, नहीं तो तेरा नाश हो जायगा।" यह कहकर उस दानवराज से पूजित हो दैत्यगुरु अपने अभिमत स्थान पर चले गये। ॥१९-२४॥

भण्डासुर दैत्य ने मन्त्रणा करने में सब भांति दक्ष अपने मन्त्रीगण से सेवित शून्यक नगर में गुप्त मन्त्रणा की। राजाकी आज्ञा पाकर वे मन्त्रीलोग अपने अपने मतानुसार कहने लगे। किसी ने सामका समर्थन तो किसी ने भेद का प्रतिपादन किया;दूसरे मन्त्रीने दानका तथा अन्य मन्त्रियोंने दण्डका पक्ष लिया। इसप्रकार सभामें बड़ी बिकलता उत्पन्न होगयी। तत्पश्चात् शुक्राचार्य के समान (नीतिज्ञ) विशुक्रदैत्यका पुत्र श्रुतवर्मा नाम से प्रसिद्ध दानव असुरराजभण्ड

श्रुतवर्मेति विख्यातः प्राह नत्वा सुरेश्वरम् । शृणु राजन्नर्थशास्त्रमर्यादासहितं वचः ॥२८॥
बाह्यदृष्टिर्दोषवती निसर्गेणैव चञ्चला । दृष्ट्या बुद्ध्याख्यया सत्त्वरूपया विमृशेत् कृतिम् ॥२९॥
अविमृश्यकरो वह्नौ पतङ्ग इव नश्यति । सुविमृश्यकरो यस्तु तं सम्पत् प्रवृणोत्यलम् ॥३०॥
मन्त्री वृथाऽभिनिवेशः स्फुटदृष्टिर्द्रुतग्रहः । राजाऽभिमतवक्ता च सततं स्वार्थतत्परः ॥३१॥
नाशयेद्राज्यसहितं राजानं नाऽत्र संशयः । यथा नौरासनच्छिद्रा सपान्थं नाविकं जले ॥३२॥
तस्माद्दुर्मन्त्रिणस्त्याज्या राज्ञा राज्यं बुभूषता ।
शृण्वहं तेऽभिधास्यामि कर्तव्याऽनन्तरक्रियाम् ॥३३॥
महाराज! त्वया देवात्तपसा तोषितात् पुरा । अप्राप्तमभयं स्त्रीभ्यो मत्वाऽल्पमिति ते मुधा ॥३४॥
तत्र न हि विस्रम्भः पुरा महिषदानवः । राज्यं त्रिभुवने प्राप्य स्त्रिया विनिहतो बली ॥३५॥
पुरा शुम्भनिशुम्भौ च बलिनावतिविक्रमौ । हतौ युद्धे चण्डिकया सबलाविति नः श्रुतम् ॥३६॥

ी प्रणाम कर बोला । "हे राजन् ! अर्थशास्त्र की मर्यादाके अनुरूप वचन सुनिये । (आप जानते हैं) बाह्य दृष्टि सदा दोषपूर्ण एवं प्रकृति से ही चञ्चल होती है; सत्त्वप्रधान बुद्धि की दृष्टि से अपने कार्य का विना विचार विमर्श किये ाम करने वाला व्यक्ति अग्नि में पतङ्ग के समान जलभुनकर नष्ट हो जाता है। जो पूर्वापरके लक्ष्य का विचार करनेवाला है, उसे सम्पत्ति वरण करने में समर्थ होती है। जो व्यर्थकी वितण्डा की नीतिवाला, स्थूल ष्टिवाला (सूक्ष्म दृष्टि से विपरीत), शीघ्रता करनेवाला, राजा के दृष्टिकोण के अनुसार ही अपना चाटुकरितापूर्ण मत हनेवाला और सदैव स्वार्थपरायण होता है, वह मन्त्री निस्सन्देह राज्य के सहित राजा को वैसे ही नष्ट करता है जैसे लमें छेदवाली नौका अपने पर सवार यात्रियों के सहित नाविक तकको जलमें डुबो देती है । इसलिये राजाको चाहिये ा राज्य की गौरववृद्धि के लिये दुष्टमन्त्रणा करनेवाले सचिवगण का साथ छोड़ दे । मैं इसके बाद कर्तव्य के सार ाकी क्रियाको बताऊँगा, सो सुनिये । हे महाराज ! प्राचीनकाल में आपने प्रसन्नहुए महादेवजी से स्त्रियों से अभय ा नहीं किया था क्योंकि आपने उन्हें अत्यन्त तुच्छ समझा सो वह आपका मत निस्सार था इसमें कोई तथ्य न समझें । प्राचीन समयमें बलवान् महिष दानव ही त्रिभुवन पर राज्य प्राप्त करके भी स्त्री के द्वारा मारा गया ॥२५-३५॥

बहुत समय पूर्व अत्यन्त विक्रमशाली बली शुम्भ और निशुम्भ दोनों को सम्पूर्ण सेना सहित चण्डिकाने युद्ध में

जये लिङ्गं न हेतुः स्यान्निमित्तं बुद्धिविक्रमौ। अन्यच्च तेऽभिधास्यामि चिरमेतद्धि संस्थितम् ॥३७॥
दैत्यदानवरक्षःसु यो यः शुभतरो ह्यभूत्। तं तमुद्धरते विष्णुर्मार्गस्थमिव कण्टकम् ॥३८॥
तं नः श्रुतं तेन दैत्यरिपुणा हरिणा खलु। तोषिता परमाशक्तिराविर्भूता वधाय ते। ३९॥
होमाऽग्निकुण्डाद्यद्योनिमनोभ्यां न च साऽभवत्।
अमानसा योनिजेभ्यो नाऽमरत्वं त्वया वृतम् ॥४०॥
आचार्यो भगवान् शुक्रः सर्वबुद्धिमतां वरः। स यदाह न चाऽल्पं तद्विद्धि दैत्यगणेश्वर! ॥४१॥
तस्माद्गुरूक्तमेवेह युक्तं मे प्रतिभासते। मनीषिणा सर्वयत्नैर्निरस्यं कालजं भयम् ॥४२॥
अभये विक्रमो वर्यः शान्तिरेव भयाऽऽगमे। सर्वथा मूलनाशो हि शक्त्याऽपोह्यः प्रजानता॥४३॥
कृत्ते मूले फलाशा का मूलगोपे फलोदयः। अत्र मेऽभिमतं राजन् शृणु बुद्ध्या विचारितम्॥४४॥

मार गिराया था; ऐसा हमने सुना है। युद्धमें विजयकी प्राप्तिके लिये कोई स्त्री अथवा पुरुषका होना कारण नहीं रहता, वहां तो बुद्धि एवं पराक्रम ही निमित्त होते हैं। और भी जो दीर्घकाल से घटी घटनायें चली हैं मैं उन्हें बताऊंगा। दैत्यों, दानवों और राक्षसों में जो जो व्यक्ति कुशल कार्यनिपुण और प्रसिद्ध हुआ उसे ही देवों के मार्गमें कण्टकके समान समझ विष्णु ही हटाया करता है, इसे हमने ऐतिहासिकों से सुना है। दैत्यों के शत्रु उसी विष्णु द्वारा परमाशक्ति की आराधना कर सन्तुष्ट कर लिया गया है, जो वह होम के अग्निकुण्ड से आपके वध करने के लिये आविर्भूत हुई है; उसका जन्म न तो योनि (उत्पत्ति स्थान) से हुआ है और न ही मानसी सृष्टि से; वह अमानसा है। अयोनिज प्राणियों से आपने अमर रहने का वर नही मांगा। भगवान् शुक्राचार्य सम्पूर्ण बुद्धिमान् व्यक्तियों में श्रेष्ठ हैं। वह जो बोले हैं वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हे दैत्यगणेश्वर! जो दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने कहा है वह मुझे युक्तिसंगत ही लगता है। बुद्धिमान् व्यक्ति को काल से उत्पन्न होनेवाले भय को सब प्रकार से प्रयत्न कर हटा देना चाहिये। अभयकी प्राप्तिमें विशिष्ट पराक्रम वरण करने योग्य है; भय उपस्थित होने पर शान्ति का मार्ग ही उचित है और भली प्रकार जाननेवाले व्यक्ति के लिये मूलके नाशको बचाकर सर्वभांति ही उसकी रक्षा उपयुक्त है। मूलके न रहने पर फल की आशा कैसी? मूल की रक्षा होने से ही फल की प्राप्ति होती है। हे राजन्! इस विषय में अपनी बुद्धि से विचार किया हुआ मेरा अभीष्ट मत सुनिये। गुरु के कथन के अनुसार भलीभांति सर्वथा शान्ति स्थापित कर प्रकृत प्रसङ्ग में (देवगण के पराजय कार्य में) फिर तपस्या द्वारा पहलेके समान उनके प्रति अपने रोष और भयको भी देवगणसे हटाकर फिर अत्यधिक पराक्रमसम्पन्न हो तीनों लोकोंको वशमें कीजिये। यह मैंने आपको मनन करने योग्य मन्त्रणा बताई इस

गुरुक्रीत्या संशान्ति सम्पाद्य प्रकृते पुनः । तपसा पूर्ववद्देवान् शेषं भयमपोह्य च ॥४५॥
ततो भूयस्त्रिजगतीं वशे कुरु सुविक्रमः । इति तेऽभिहितो मन्त्रो नाऽतः क्षेमं भवेत् क्वचित् ॥४६॥
विमृश्य यदभीष्टं ते तदाचर न ते चिरम् । श्रुतवर्मवचः श्रुत्वा भण्डो दैत्यपतिर्वचः ॥४७॥
प्राह तं दूषयन्नेव पक्षं दैत्यसभागतः । मर्तुकामस्याऽगदवन्न तत्तस्य ह्यरोचत ॥४८॥
तदन्तरे मदोन्मत्तो दैत्यः प्रोवाच भूपतिम् । दैत्येश्वर मया प्रोक्तं शृण्वत्राऽतिसुखावहम् ॥४९॥
न प्रवेश्या मन्त्रगोष्ठ्यां बालाः कातरतां गताः । एष बालस्तव भुजबलं नो वेत्ति किञ्चन ॥५०॥
भीरोर्विप्रस्योशनसो वाक्यादतितरामयम् । राज्ञां युद्धप्रसङ्गेषु का विप्रस्य भवेन्मतिः ॥५१॥
विप्रा वैतानधिषणा वेदविद्याविचक्षणाः । निमन्त्रणविधानज्ञास्तेषां युद्धेषु का गतिः ॥५२॥
सधीतेस्तीक्ष्णधाराज्ञाः शूराः कुशसमित्स्तृतौ । न खड्गधारां जानन्ति न शूराः शरसंस्तृतौ ॥५३॥

के अन्य मार्गका अवलम्बन करने से कहीं भी कोई हितसाधन नहीं होगा। इसे भलीभांति विचार कर जो आपको इष्ट हो उसे अतिशीघ्र आचरण द्वारा क्रियात्मक रूप दीजिये।" श्रुतवर्मा की वाणी सुन कर दैत्यराज भण्डने दैत्यों की सभाके मय घ्उठकर उसके पक्ष के दूषण (बुराईयां) बताते हुए विरोध प्रगट किया। जैसे मृत्यु के मुख में जानेवाले व्यक्ति को औषध अच्छी नहीं लगती उसी तरह श्रुतवर्मा की मन्त्रणा उसे रुचिकर नहीं हुई ॥३७-४८॥

तत्पश्चात् मदोन्मत्त नामक दैत्यने भूपति भण्ड से कहा, "हे दैत्येश्वर ! इस विषयमें अत्यन्त सुखको बढानेवाले मेरे द्वारा कथित वचनों को सुनिये। अपनी गुप्त मन्त्रणा में अत्यन्त अपक्वबुद्धिवाले कातरभावको प्राप्त लोगों को कभी सम्मिलित नहीं करना चाहिये, यह सर्वथा सब नीतियों से अज्ञ बालवत् श्रुतवर्मा आपके बाहुबल से अजितशौर्य और पराक्रम को किञ्चिन्मात्र भी नहीं जानता। डरपोक ब्राह्मण उशना (शुक्र) के वाक्य से यह अत्यधिक ही प्रभावित है। राजा लोगों के युद्ध के प्रसङ्गों के उपस्थित होने पर विप्र की बुद्धि क्या काम कर सकती है (सत्य ही कुछ भी नहीं) ? ॥४९-५१॥

विप्रलोग नाना परोक्ष कार्यों में कुशलबुद्धिसम्पन्न होते हैं, वेदविद्यामें उनकी सदा विचक्षणता रहती है, और वे यज्ञ तथा भोजन आदि के निमन्त्रणों के विधानको जाननेवाले होते हैं उनकी युद्धमें पैठ कैसी ? वे अपने पढे और जाने हुए

हन्त विप्रैरपि यदि युद्धं मन्त्रेण जीयते । ग्रामसिंहविभीषितैस्तदेभा मूत्रमुत्सृजुः ॥५४॥
यदि विप्रा युद्धकृत्यमपि जानीयुरुद्धतम् । तर्हि मत्तेभकुम्भस्य विपाटो जम्बुकैः कृतः ॥५५॥
उत्तिष्ठैष क्षणो राजन्न विश्रान्ति समर्हति । योषिद्वा पुरुषो वापि नोपेक्ष्यः शत्रुतां गतः ॥५६॥
हन्ताऽद्य योषिद्दैत्येन्द्र मेरुन्मूलनविक्रमम् । विजेष्यति प्रतापाऽर्कसन्तापितजगत्त्रयम् ॥५७॥
तदा नीलोत्पलदलैर्निर्भिद्येत महीधरः । कुशाग्रैरपि विद्धः स्याल्लोहशैलो निरन्तरः ॥५८॥
अथ वा त्वमिहैवाऽऽस्व कामभोगपरः सुखम् । मामाऽऽज्ञापय ते भृत्यं गत्वाऽहं तान्निमेषतः ॥५९॥
ब्रह्मादींस्तां च बद्ध्वा वा हत्वा वोपहरामि ते । श्रुत्वैवं दैत्यवचनं प्रहृष्टो भण्डदानवः ॥६०॥
प्रहस्य श्रुतवर्माणं प्राह कालवशं गतः । वत्स ! किं युद्धवार्ताभिरेव भीतोऽसि वै मुधा ॥६१॥

शास्त्रों के विवादविषयक सिद्धान्तों की नाना तीक्ष्ण धाराओं के ज्ञाता रहते हैं; कुश के समित् (समिधा) को (हवनकुण्ड में) फेंकने में ये शूरवीर हैं; ये युद्धक्षेत्र में बाणों की वर्षा होने पर तलवार की तीक्ष्णधारा के प्रयोग को क्या जानें ? अहो ! खेद का विषय है कि यदि विप्रगण द्वारा मन्त्रणा लेकर युद्ध में विजय प्राप्त की जावे जो ग्राम के सिंहों, कुत्तों से डरते रहते हों तो हाथी भी उन्हें देख (कुत्तों से डर कर) मूत्र करने लगे। यदि ब्राह्मण लोग भी अत्यन्त दुर्द्धर्ष युद्धकार्य को जान जांयें तब तो निश्चय ही मत्त गजराज के गण्डस्थल को शृगाल खण्डित कर दे सकते हैं। हे राजन् ! उठिये (तैयार होइये), इस क्षणमें विश्राम करना समुचित नहीं। शत्रुभाव को प्राप्त हुआ जो कोई भी चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष उसकी उपेक्षा करना कभी उपयुक्त नहीं। हे दैत्येन्द्र ! आज ही उस स्त्रीको मार डालिये। आपके पराक्रम की सामर्थ्य है कि आप मेरुपर्वत को उखाड़ सकते हैं और आपके प्रताप-रूपी सूर्य से तीनों लोक अत्यन्त उत्पीडित हैं तब इस स्त्रीरूपा अबला को तो अवश्य ही जीतेंगे। जब आपके द्वारा प्रयुक्त नीलकमल पुष्प की पङ्खड़ियों से भी पर्वतों का भेदन हो सकता है; कुश अग्रभाग (नोक) से भी लोहे का पर्वत बिंध सकता है तो यह कौन सा बड़ा दुस्तर कार्य है ? ॥५२-५८॥

अथवा (यह काम करें) आप कामभोगों में परायण हों यहीं आनन्दसे समय बतावें; आपके भृत्य (सेवक) मुझे आज्ञा दें। मैं जाकर एक निमिष में उन ब्रह्मा आदि देवगणको बांध कर अथवा मारकर आपको भेंट करूंगा ?" इसप्रकार दैत्य का कथन सुन कर भण्ड दैत्यपति अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपनी मृत्यु के गाल के वशीभूत उसने

नैवमस्मत्कुले कश्चिज्जातो वा भविताऽपि वा । यः स्त्रियो युद्धवार्ताभिरेव भीतो नपुंसकः॥६२॥

बालोऽसि गच्छ कान्ताभिश्चाटुभाषणमर्हसि ।

धिङ्मां यस्त्वादृशं चक्रे मन्त्रिणं मन्त्रनाशकम् ॥६३॥

धीराणामपि धैर्याऽद्रिवज्रवाक्कौशलं खलम् ।

इत्युक्त्वा प्रोत्थितः खड्गहस्तो देवान् विहिंसितुम् ॥६४॥

कोटिकोट्यसुरैर्युक्तः शूरैश्चित्राऽऽयुधैर्ययौ । यत्र शक्रमुखा देवास्त्रिपुरां समुपस्थिताः ॥६५॥

आगतं भण्डदैत्येशं श्रुत्वा शक्रमुखाः सुराः । अत्यन्तभीता देवेशीमुच्चैः पाहीति संजगुः ॥६६॥

भीतान् विदित्वा त्रिपुरा प्राह नित्यां चतुर्दशीम् ।

गच्छ ज्वालामालिनि त्वं रक्ष भीतान् सुरान् द्रुतम् ॥६७॥

आज्ञप्तैवं यतो दैत्या आयान्त्यमरहिंसकाः ।

ज्वालया तान् रुरोधोच्चैर्ज्वालामालिनिका शिवा ॥६८॥

श्रुतवर्मा को हंस कर कहा, "हे वत्स ! केवल युद्ध करने की बातों से ही तू व्यर्थ ही डर गया क्या ? हमारे कुल में न तो कोई हुआ अथवा न होगा ही जो पुँस्त्वहीन व्यक्ति कभी स्त्री की युद्ध के सम्बन्ध की वार्ताओं से डरता हो अरे तू बालक जैसा अत्यन्त निर्बुद्धि है, जा, स्त्रियों के साथ ही चाटुकारिताकी बातें करने में तू अधिक उपयुक्त है । धिक्कार है मुझे जिसने तेरे समान मन्त्रणा को नष्ट करनेवाले मन्त्री को मैंने बनाया (नियुक्त किया) जो तू धैर्यशाली लोगों के धैर्यरूपीपर्वत के लिये वज्रपातसदृश वाणी के प्रयोगमें ही कुशलता रखता है, इसीलिये तो दुष्ट है ।" यह (वह दैत्यराज भण्ड) कहकर हाथ में खड्ग लेकर देवगण को मारने के लिये उठ खड़ा हुआ । उसके साथ नाना चित्र-विचित्र अस्त्र-शस्त्रों को धारणकिये कोटिकोटि संख्यक शूरवीर असुर योद्धागण हो गये । वह इन्द्रप्रमुख देवगण जहां भगवती त्रिपुराकी आराधना करते थे वहां जा पहुंचा ॥५९-६५॥

दैत्यराज भण्ड को आया हुआ सुनकर इन्द्र प्रमुख देवताओं ने अत्यधिक भयाकुल हो श्रीदेवेशी से ऊंचे स्वर में प्रार्थना की "रक्षा कीजिये" । देवगण को भयसे अत्यन्त त्रस्त देख त्रिपुराने नित्या चतुर्दशी देवी को कहा, "हे ज्वालामालिनिके ! जा, तू अतिशीघ्र भयभीत देवगण की रक्षा कर ।" ॥६६-६७॥

इस प्रकार आज्ञा पाकर उसे ज्वालामालिनिका शिवा (कल्याणी) ने जहा से देवों (अमरों) के हिंसक दैत्यलोग

दृष्ट्वा ज्वालावृतं देशं मत्वा दावाग्निसम्प्लुतान् । हतान् देवान् प्रहर्षेण भण्डदैत्यः पुनर्ययौ ॥६९॥
देवाश्च दैत्यसेनानां श्रुत्वा कोलाहलं भृशम् । वित्रस्ता मर्तुकामास्ते छित्त्वाऽङ्गानि समन्ततः ॥७०॥
अग्निकुण्डे देवतायाः प्रीतये जुहवुः पृथक् । अशेषाऽङ्गानि हुत्वैवं पूर्णाहुतितया तनुम् ॥७१॥
विशिष्टां होतुकामास्ते पेटुर्मन्त्रानुपांशुतः । तदन्तरे सा त्रिपुरा भक्तरक्षापरायणा ॥७२॥
कुण्डमध्यादाविरासीत्तडित्कोटिसमप्रभा । जातश्चटचटाशब्दः कुण्डमध्यान्महोन्नतः ॥७३॥
ज्वाला व्यवर्धताऽतीव वह्नेस्ते ददृशुः सुराः । ज्वालामध्ये महादेवीं सर्वसौन्दर्यसन्ततिम् ॥७४॥
हृष्टा जय जयेत्युच्चैरवोचुर्दण्डवन्नताः । अथोत्थाय शक्रमुखास्तुष्टुवुस्तां महेश्वरीम् ॥७५॥
आजग्मुर्ब्रह्मविष्ण्वाद्या मुनयश्चर्षयस्तथा । पुष्पवृष्टिरभूद्व्योम्नो नेदुर्दुन्दुभयोऽपि च ॥७६॥
ववुर्वाताः सुखस्पर्शाः सुगन्धा मृदुसञ्चराः । ब्रह्माद्याः सर्वतस्तस्याः पूजां चक्रुर्यथाविधि ॥७७॥

आरहे थे वहां ज्वाला द्वारा उनके बढ़ने के मार्ग को रोक दिया। अग्नि की ज्वालाओं से घिरे उस प्रदेश को देखकर देवगण को दावाग्नि से जला दिये गये और मारे गये मानकर हर्ष से वह राक्षसराज भण्ड फिर स्वदेश को लौट गया ॥६८-६९॥

इसके साथ ही दैत्यसेनाओं के भागने कोलाहल को सुनकर अत्यन्त भयत्रस्त हो अपने स्वयं मरने की तैयारी करते हुए देवगणने अपने अङ्गों को सब ओर से काट काटकर अग्निकुण्डमें भगवती को प्रसन्न करनेके लिये पृथक् पृथक् उनको आहुतियां दी। इस प्रकार सारे अंगों की आहुतियां देकर पूर्णाहुति के रूपमें सम्पूर्ण विशिष्ट शरीरको होमने की इच्छा से उन्होंने उपांशु विधि से (मन ही मन जप) मन्त्रपाठ किया। इसी बीच में भक्तों की रक्षा के लिये ही व्रत धारण की हुई, करोड़ों विद्युत्प्रभाओं की कान्तिको भी तिरस्कृतकरनेवाली, आभामयी वह त्रिपुरा भगवती कुण्ड में से आविर्भूत हुई। अग्नि कुण्डके बीचों बीच खूब ऊंचे स्वरका चटचटा शब्द हुआ। जब अग्निसे ज्वालामालायें अत्यधिक बढ़ी तो उन देवगणने सम्पूर्ण सुन्दरता का उत्कृष्टमूर्त्ति महादेवी को ज्वाला के बीच में (प्रकट हुई) देखा। उन्होंने प्रसन्न हो दण्डवत् प्रणाम कर "(आपकी) जय हो" "जय हो" इस प्रकार उच्च स्वर में कहा। प्रकट होने के अनन्तर शक्रप्रमुख देवगण ने महेश्वरी भगवती की स्तुति की। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि कारणदेव मुनिगण और महर्षिलोग आ गये; आकाशसे पुष्पवर्षा हुई और दुन्दुभियां बजने लगीं, अङ्गों को स्पर्श सुखदायी आनन्दकारी वायु बहने लगा; वहां एकत्र उसमें मन्द-मन्द शीतलसुगन्धका सञ्चार होने लगा। सब ओरसे ब्रह्मा आदिदेवोंने विधिपूर्वक उस परा भगवती की पूजा

महोपचारमाल्याद्यैरुपहारैर्विशेषतः । विविधैर्भक्ष्यभोज्याद्यैरासवैः पिशितैरपि ॥७८॥

एवं सम्पूज्य देवेशीं तोषयामासुरुच्चकैः । गायनैर्नृत्यवाद्याद्यैरुत्सवैरपि भूरिशः ॥७९॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितोपाख्याने देवानामार्त्तप्रार्थनया त्रिपुराविर्भाववर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४३१२॥

की; विशेषरूपसे महाउपचारों (सामग्रियों) तथा माला आदि सुन्दर उपहारों से विविध भक्ष्य और भोज्य के पदार्थों तथा से आसवों और मांसों से भगवती को उन्होंने भेंट चढ़ाई ॥७७-७८॥

इस प्रकार उन्होंने उच्च स्वर से गायनों, नृत्यों, वाद्यों और उत्साहसम्पन्न अधिकाधिक उत्सवों से देवों की ईश्वरी का भक्तिपूर्वक पूजन कर उसे प्रसन्न किया ॥७९॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में ललिता के उपाख्यान में देवगण की आर्त्त प्रार्थना पर श्रीत्रिपुरा का आविर्भाव नामक बावनवां अध्याय समाप्त ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ललितामाहात्म्ये यागेन तुष्टायाः श्रीदेव्याःसर्वदेवदर्शनार्थं श्रीमेरुपर्वते स्वाधिष्ठानस्थापनवर्णनम्

अथ शक्रमुखा देवा दृष्ट्वा तां परमेश्वरीम् । विधातृमुख्यानूचुस्ते देव्याः संस्थानहेतवे ॥१॥
श्रुत्वाऽमरवचो ब्रह्ममुखास्तां जगदीश्वरीम् । प्रणम्य प्रार्थयामासुर्यत्तच्छृणु घटोद्भव !॥२॥
परमेश्वरि! शक्राद्यैस्तव संस्थानमीहितम् । अस्यां जगत्यां यन्नित्यं पश्यामस्त्वां महेश्वरीम् ॥३॥
वयं गुणेश्वरा नित्यं त्वत्कृपाऽऽत्तमहित्वतः । प्राप्य त्वदीयं ते लोकं पश्यामस्त्वत्पदाम्बुजम् ॥४॥
एते शक्रादयो देवा नियत्या नियतास्तव । ब्रह्माण्डभेदं नाऽर्हन्ति तत्त्वां द्रष्टुमभीप्सवः ॥५॥
तदत्र लोकं निर्माय निवासं कर्तुमर्हसि । प्रार्थितेत्थं ब्रह्ममुखैस्त्रिपुराम्बा महेश्वरी ॥६॥
मेरुशृङ्गे विश्वकर्मनिर्मिते नगरे शुभे । अवसत् सपरीवारा यथा लोके स्वके तथा ॥७॥

तिरपनवां अध्याय

अग्निकुण्ड से प्रादुर्भाव के अनन्तर इन्द्रप्रमुख देवगण ने उस परमेश्वरी को देखकर विधाता विष्णु और महेश्वर आदि मुख्य देवताओंसे देवी के संस्थानमन्दिरके लिये कहा । हे कुम्भयोने अगस्त्य ! सुरसमुदायकी वाणी सुनकर ब्रह्मादि-प्रमुख देवगण ने जगदीश्वरी की प्रणाम कर प्रार्थना को, उसे तुम सुनो वह बोले, "हे परमेश्वरि ! इन्द्र आदि देवगण ने इस जगत् में आपके नित्यस्थान की कामना की है जहां हम लोग सदैव आपको देख सकें । आपकी कृपा से प्राप्त महिमासम्पन्न होने से हम लोग गुणेश्वर नित्य आपके उसलोक में जाकर आपके चरण कमलों के दर्शन करें । ये इन्द्र आदि देवगण आपके नियतिचक्र में बंधी मर्यादामें आबद्ध हैं, ब्रह्माण्डों का भेदन करने की सामर्थ्य इनमें नहीं है इसलिये आपके दर्शनकी निरन्तर अभिलाषा करते हैं । इसलिये यहां अपना नित्य लोक बनाकर निवास करें ।" इसप्रकार ब्रह्माप्रभृति प्रमुख देवगण से प्रार्थना की जाने पर महेश्वरी त्रिपुरा ने मेरुपर्वत के शिखरपर द्वारा कल्याणकारी नगर में सम्पूर्ण पार्षदगण सहित जैसे वह अपने लोक में निवास करती है वैसे तद्रूपा ही विश्वकर्मा विराजमान हो सदा के लिये स्थित हो गई ॥१-७॥

अथाऽर्थिता निजाऽर्धांशविभागपरिकल्पितम् । कामेश्वरं पतिं चक्रे समूढाऽभवदम्बिका ॥८॥
इत्थं हयाऽऽस्यगदितं निशम्य घटसम्भवः । पप्रच्छ विभवश्रुत्यां परायां जातकौतुकः ॥९॥
हयग्रीव! दयासिन्धो! कुत्र संस्थं हि तत्पुरम् । कीदृशं किं प्रमाणञ्च यस्मिन् वसति सा परा ॥१०॥
इन्द्रादीनामप्रवेश्यं विश्वशिल्पिः कथं नु तम्। ज्ञातवान्नाम किं तस्य संस्थानञ्चाऽपि कीदृशम् ॥११॥
अथाऽपि शक्रप्रमुखैः श्रीसूक्तविधिना ननु । आराधिता सा त्रिपुरा प्रसन्नाऽभवदम्बिका ॥१२॥
विधानं कीदृशं तस्य सूक्तञ्चाऽपि कथंविधम्। किं माहात्म्यं भवेत् सूक्तमेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥१३॥
भक्तस्य तव शिष्यस्य कृपां कुरु हयानन ! । इत्थं पर्यनुयुक्तः स हयास्यो मुनिसत्तमः ॥१४॥
मत्वा योग्यं हि तच्छ्रुत्वा निजगाद स हर्षितः । शृणु कुम्भज वक्ष्यामि भक्तिश्रद्धायुतो ह्यसि ॥१५॥
नैतदश्रद्दधानाय चाऽभक्ताय शठाय च । वक्तुमर्हं सर्वथैव धन्योऽसि त्वं महीतले ॥१६॥

अनन्तर प्रार्थना करने पर अपने आधे भागके विभाजन के लिये परिकल्पित कामेश्वर भगवान् को अपना पति बनाया। भगवती अम्बिका समूलत (निश्चल) बन गई। इसप्रकार हयग्रीव द्वारा वर्णन की हुई वार्ता सुनकर कुम्भसम्भव अगस्त्य ने परा देवी के वैभवको सुनने के लिये अत्यन्त उत्सुक हो पूछा, "हे दयासिन्धो ! हयग्रीव महर्षे ! वह देवी का पुर कहां है ? कैसा है (किस तरह का है) ? जिसमें वह परा निवास करती है उसका प्रमाण क्या है ? इन्द्रादि दिव्यविभूतिवाले देवगण जहां प्रवेश अधिकार नहीं रखते उसे विश्वशिल्पी विश्वकर्मा कैसे जान पाया ? उसका नाम क्या है ? उसका संस्थान (बनावट) किस प्रकार का है ? और भी (आपने कहा कि) इन्द्र प्रमुख देवगण ने श्रीसूक्त के विधान से आराधना की जिससे निश्चय हा भगवती त्रिपुरा अम्बिका प्रसन्न हुई, सो उस सूक्त की कैसी विधि है ? वह सूक्त किस प्रकार का है ? उसका माहात्म्य क्या है ? यह सब आप मुझे बतलावें। हे हयग्रीव महाराज ! आप मुझ भक्त शिष्य पर कृपा कीजिये।" इसप्रकार पूछने पर मुनिश्रेष्ठ हयग्रीव ने अगस्त्य को अधिकारी (योग्य) समझकर उस के प्रश्नों को सुन अत्यन्त प्रसन्न हो कहा, "हे घटोद्भव ! सुन, तू भक्त और श्रद्धावाला है इससे तुझे बताता हूँ, यह सब वर्णन अश्रद्धालु, भक्तिरहित और शठ (कृतघ्न) व्यक्ति को नहीं कहना चाहिये; तू सर्वथा ही इस भूमितल पर धन्य है कि तेरा इस अलौकिक पराम्बा के कथाख्यान के सुनने में इस प्रकार का उत्साह दिखलाई पड़ता

यत्कथाश्रवणोत्साह ईदृशस्तव दृश्यते । एतस्य कारणं वेद्मि नैतदल्पफलं मुने ! ॥१७॥
गुणमूर्तिषु सर्वेषां भक्तिः साधारणी भवेत् । त्रिपुरापादभक्तिस्तु दुर्लभा सर्वतो भवेत् ॥१८॥
यत्र स्यात् त्रिपुराभक्तिस्तज्जन्म चरमं भवेत् । शिवविष्ण्वादिभक्तिस्तु द्वारमत्र प्रकीर्तितम् ॥१९॥
क्रमेणाऽऽराध्य विष्ण्वादीन् प्राप्य श्रीपादसेवनम् ।
मुच्यते सर्वथा जन्तुर्नान्यथा कल्पकोटिभिः ॥२०॥
अत्रोपपत्तिं वक्ष्यामि संशयस्ते भवेन्न हि । लोके साम्राज्ययुक्तस्य येऽनुगास्तारतम्यतः ॥२१॥
मुख्या मध्यास्तथा हीनास्ते तुष्टाः स्वपदं प्रति ।
अनिरोधं स्वोपरिस्थप्राप्तौ मार्गं दिशन्ति च ॥२२॥
यथाऽऽदौ द्वारिकस्तुष्टो द्वारेष्वप्रतिबन्धनम् । प्राङ्गणेशप्राप्तिमाप दिशत्येव घटोद्भव ! ॥२३॥
ब्रह्माद्या गुणसम्भूतास्तत्समाराधका इति । न सन्देहस्तव भवेत् सुप्रसिद्धतयैव च ॥२४॥

है; मैं इसका कारण जानता हूँ । हे मुने ! यह तेरा प्रभूत सुपुण्यों का फल है । गुणमूर्त्ति (उनके अधिष्ठाता; सत्त्वप्रधान विष्णु, रजःप्रधान ब्रह्मा तथा तमःप्रधान शिव) देवगण में सभी की भक्ति एक समान होती है त्रिपुरा भगवती के चरणों में भक्ति तो सब ओर से बहुत दुर्लभ है । जिस जन्म में त्रिपुराम्बा के प्रति भक्ति होती है, वह अन्तिम होता है । ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवताओं में भक्ति होने को तो उसका द्वार कहा गया है । क्रमशः विष्णु आदि की आराधना करके परा श्रीत्रिपुरा के पादसेवन को प्राप्त कर प्राणी सर्वथा संसार बंधन से छुटकारा पा जाता है अन्यथा तो करोड़ों कल्पों तक भी मुक्ति नहीं होती । ॥८-२०॥

इस विषय में तुम्हें सुन्दर युक्ति बताऊँगा, जिससे तुम्हें संदेह न हो; लोक में साम्राज्य के अधिपति के जो ऊँचे एवं नीचे के अनुचर अधिकारी हैं वे मुख्य, मध्य और हीन व्यक्ति अपने पदको पा प्रसन्न हो जब अपने से ऊपरवाले अधिकारी के पास जाने में किसी व्यक्तिको बाधा नहीं करते और उसे आगे का मार्ग बताते हैं । हे कुम्भज ! जैसे किसी को सबसे प्रथम द्वारपाल प्रसन्न हुआ द्वारों से आगे बढ़ाकर प्राङ्गण के रक्षक के पास जाने का निर्देश देता है, उसी प्रकार यह भगवती के चरणों की प्राप्ति का क्रम है । गुणसे प्रसूत ब्रह्मा आदि देवगण उसी पराम्बा के आराधक हैं यह बात सुप्रसिद्ध होने से तुम्हें किसी रूप में सन्देह नहीं होना चाहिये । अन्ततः अद्वैत वस्तु में लौकिक दृष्टि से मुख्य

तस्यद्वैतेऽपि लौकिक्या दृष्ट्या तन्नियतेः स्फुटम् । मुख्यगौणप्रभेदश्च यथा देहेषु वै शिरः ॥२५॥
नाऽऽऽस्वासो दुष्कृतिनामन्धानाञ्च प्रपश्यताम् । ये च पादभवा देवाः सदा सेवनतत्पराः ॥२६॥
वं महाभाग्यवान् ब्रह्मन् प्राप्तो यच्छ्रीपरारतिम् । एतत् सङ्गस्य माहात्म्यमहो भाग्यमहो तपः ॥२७॥
शृणु ब्रह्मं स्तव परापादभक्तिप्रयोजकम् । यत्ते प्रिया सती लोपामुद्राऽऽख्या राजकन्यका ॥२८॥
पुरा सा पितृगेहस्था प्राप भक्तिं परापदे । तद्धेतुं ते प्रवक्ष्यामि न तज्जानाति कश्चन ॥२९॥
त्रिपुरामुख्यशक्तिस्तु भगमालिनिकाऽभिधा । तत्सेवनपरो राजा सर्वदा सर्वभावतः ॥३०॥
बाल्यादियं शुद्धचित्ता पितृसेवापरायणा । पितुर्दृष्ट्वोपासनायाः क्रमं देव्या यथाक्रमम् ॥३१॥
राज्यकर्म करे तस्मिंस्तां समाराधयत्यसौ । एवं चिराऽऽराधनेन भक्त्या भावनयाऽपि च ॥३२॥
तुतोष सा भगवती वरेण समच्छन्दयत् । वव्रे चाऽसौ सर्वजगत्पूज्यायाः पादसेवनम् ॥३३॥

और गौणका प्रभेद नियति के विधानसे स्पष्ट ही है । जैसे देहों (शरीरों) में शिर प्रधान अङ्ग है उसी प्रकार त्रिपुराका मत सबसे मूर्धन्यस्थानीय है । इस भगवती त्रिपुराके आराधनमें दुष्कृतकर्म (पाप) करने वाले, आँखें होने पर भी अन्धों समान आचरणकरनेवाले लोगों को पूरा निश्चय ही नहीं होता है । जो पादभव (अंशसे उत्पन्न) देवगण सदा इसकी सेवा करने को तत्पर रहते हैं । हे ब्रह्मन् ! तू वास्तव में महा भाग्यशाली पुरुष है कि श्री पराम्बा की भक्ति तुझे मली है । यह सत्सङ्ग की महिमा है अहो ! तेरे भाग्य की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है और उसी प्रकार तेरी तपस्या की भी ॥२१-२७॥

हे ब्रह्मन् ! पराम्बा के चरणों में भक्ति के विषयमें जिज्ञासाके प्रयोजनमें तेरा जो प्रयत्न है उसे सुन, यह सब तेरी पत्नी भार्या राजपुत्री लोपामुद्रा के ही कारण है । अत्यन्त प्राचीन काल में जब अपने पितृगृह में थी तभी वह पराम्बा के चरणों में भक्ति प्राप्तकर चुकी थी ! उसका कारण मैं तुम्हें बताता हूँ अन्य कोई भी उसे नहीं जानता ॥२८-२९॥

त्रिपुरा भगवती की मुख्य शक्ति भगमालिनी नामवाली है उसकी सब भाव से भक्ति करता हुआ राजा सर्वदा स्थित रहता था । यह (लोपामुद्रा) बाल्यकाल से शुद्ध अन्तःकरणवाली पिता की सेवा में तत्पर रहती । देवी की आराधना में रत पिता के क्रम को देखकर कि राज्य कर्म करते हुए भी वह उस पराम्बाकी आराधना में तत्पर है (यह उसने देखा) । इस प्रकार भक्ति और अत्यन्त भावनापूर्वक दीर्घकाल तक आराधन करने से उस भगवती ने प्रसन्न हो उसको वरदान मांगने के लिये कहा । उस नरेशने वररूपमें सम्पूर्ण लोकों में पूज्यतमा भगवती के चरणकमलों की ही

प्रसन्ना साऽपि सद्विद्यां त्रैपुरीं समलक्षयत् ।

लक्षिता चाऽपि तां विद्यां वाक्समुद्रपरिप्लुताम् ।३४॥

समुद्धरद्रत्नमिव ततस्तस्य प्रसादनात् । विद्या ऋषित्वं सम्प्राप्ता तन्नाम्ना सा स्फुटङ्गता॥३५॥

तस्याः सङ्गप्रभावेण तव भक्तिसमुद्गमः । इति श्रुत्वा कुम्भभवः पत्न्या विभवविस्तरम् ॥३६॥

प्रसन्नः पूजयामास पत्नीं श्रीपादतत्पराम् । अथाऽवदद्धयास्योऽपि प्रसन्नः कुम्भजन्मने ॥३७॥

शृणु ते सम्प्रवक्ष्यामि कलशीसुत ! संयतः । श्रीसूक्तस्य विधानं यत्पृष्टं परमपावनम् ॥३८॥

न वक्तव्यमभक्ताय नाऽन्यदेवपराय च । विद्येवैतद्गोपितव्यं सर्वत्राऽतिसुगोपितम् ॥३९॥

श्रीसूक्तं षोडशर्चं तदादि वेदसमुद्भवम् । पुरा श्रिया सुदृष्टं तद्वेदाऽब्धेः सम्यगुद्धृतम् ॥४०॥

तेनाऽऽराध्य परां शक्तिं त्रिपुरां सुविधानतः । सम्प्राप्ता लोकमातृत्वं सर्वपूज्यत्वमागता ॥४१॥

आराधिता वत्सराणामर्बुदान्येकविंशतिः । प्रसन्ना छन्दयामास वरेण त्रिपुरा परा ॥४२॥

भक्ति मांगी । उसने भी प्रसन्न होकर त्रिपुरा सम्बन्धिनी सद्विद्याका उपदेश लोमामुद्रा को दिया । श्रीविद्याको लक्षित करने पर भी उसने वाणीरूपी समुद्र से परिपूर्ण उस सद्विद्या को उस पराम्बाकी कृपासे समुद्रमें से रत्नों को निकालने के समान उद्धार किया । उस मन्त्र को और मन्त्र का ऋषित्व (दर्शन करने) प्राप्तकर उसी के नामसे वह विद्या स्फुट हुई । उसी सती भार्या लोपामुद्रा के सत्सङ्गके प्रभाव से तेरी भक्ति का उद्भव हुआ है । इस प्रकार अगस्त्य अपनी धर्मपत्नी श्रीविद्या के प्राप्तिरूपीवैभव की कथा सुनकर श्रीविद्या के चरणों में भक्तिमती उस लोपामुद्रा की प्रशंसा की । तदनन्तर हयग्रीव भी घटयोनि अगस्त्य पर प्रसन्न हो बोले, "हे कुम्भसम्भव ! खूब मनका संयमकर सुन, तुझे श्रीसूक्तका परम पवित्र विधान जो तूने पूछा सो बताता हू । इसे अभक्त को एवं जो दूसरे देव का आराधन करनेवाला हो, उसे नहीं कहना चाहिये । साक्षात् श्रीविद्या के समान ही यह अत्यन्त सुगोपित (भली प्रकार सुरक्षित) सर्वत्र ही गोपन करने योग्य है । यह श्रीसूक्त सोलह ऋचाओं वाला श्रीविद्या के आदि में प्रतिपाद्य है; वेद से सम्यक् प्रकार से उद्भूत है । आदि काल में भगवती श्रीलक्ष्मी द्वारा देखा गया यह वेदरूपी समुद्र से उद्धृत है, उससे परा शक्ति भगवती त्रिपुरा की सुन्दर विधि से आराधना कर वह लोकमाता के परम गौरवपूर्ण पद और सब के द्वारा पूज्य भाव को प्राप्त हो गई । इक्कीस अरब वर्षों तक आराधना की जाने पर परा त्रिपुरा ने प्रसन्न हो लक्ष्मी से वर मांगने को कहा ॥३०-४२॥

तया वृतश्च सायुज्यं ततः प्राह पराम्बिका । वत्से ! त्वया विना विष्णुरप्रभुः परिपालने ॥४३॥
अपालितं तेन चैतद्विशीर्येत निमेषतः । ततो मे नियतेर्भङ्ग एव नाऽर्हसि सम्प्रति ॥४४॥
तत् साम्प्रतं दिशाम्येवं त्वदाख्यां सर्वदाऽप्यहम् ।
धारयामि स्वरूपञ्च तत्ते वक्ष्यामि श्रूयताम् ॥४५॥
श्रीविद्येत्यहमाख्याता श्रीपुरं मे पुरं भवेत् । श्रीचक्रं मे भवेच्चक्रं श्रीक्रमः स्यान्मम क्रमः ॥४६॥
श्रीसूक्तमेतद्भूयान्मे विद्या श्रीषोडशी भवेत्। महालक्ष्मीत्यहं ख्याता त्वत्तादात्म्येन संस्थिता ॥४७॥
त्वं चतुर्धा मत्समीपे पूजां प्राप्स्यसि संस्थिता । यद्यत्तव प्रियं लोके तन्ममाऽपि प्रियं भवेत् ॥४८॥
पूज्यसे भार्गवे वारे भक्तैस्त्वं सुविधानतः । तत्राऽहमपि पूज्या स्यां भक्तैरपि विशेषतः ॥४९॥
तत्र सूक्तभवैर्मन्त्रैः पूजिता ह्युपचारकैः । हुताऽपि विविधैर्द्रव्यैः प्रसन्ना वाञ्छिताऽर्थदा ॥५०॥
अभिषिक्ता च सलिलैर्दुग्धाद्यैः फलजैरसैः । सर्वकामप्रदा तस्य यन्त्रे मूर्त्यादिकेऽपि वा ॥५१॥

उसने सायुज्य (एकीभाव) प्राप्ति का वर मांगा । तदनन्तर पराम्बिका ने कहा, "हे वत्से ! तेरे विना विष्णु सृष्टि के पालन करने में असमर्थ है उसके पालन न करने से यह जगत् निमिषत्रमात्र में ही छिन्न विच्छिन्न हो जायगा।इससे मेरे नियति चक्र में भङ्ग पड़ जायगा अब तुम्हें सायुज्य का वर नहीं मांगना चाहिये। तेरे नाम से मैं श्रीविद्या नाम की संज्ञा देती हूँ। इस मन्त्र से प्रसन्न हो मैं जो अपने स्वरूप को धारण करती हूँ उसे बताती हूँ, तू ध्यानपूर्वक सुन ॥४३-४५॥

श्रीविद्या इस प्रकार मेरी प्रसिद्धि हो, श्रीपुर मेरा नगर हो, श्रीचक्र मेरा चक्र और श्रीयन्त्र का पूजा-विधान मेरा पूजाविधान हो, और यह श्रीसूक्त मेरी श्रीषोडशी विद्या नाम से अभिहित हो, तेरे साथ तादात्म्य (ऐक्यभाव) से संस्थित मैं महालक्ष्मी इसरूप में प्रसिद्ध होऊँगी। तू मेरे समीप स्थित हो चार प्रकार से पूजन अर्चन प्राप्त करेगी। लोकमें जो जो तुझे प्रिय हो वह मुझे भी प्रिय रहे, शुक्रवार के दिन भक्तगण द्वारा जहां भक्तिपूर्वक सुन्दर विधान से तेरी पूजा की जाय वहां मैं ही भक्तगण द्वारा विशेषतया पूजी जाऊँगी। उसमें श्रीसूक्त में प्रतिपादित मंत्रों द्वारा षोडश उपचारों से पूजित हो विधिपूर्वक नाना द्रव्यों से हवन करने से प्रसन्न हो वाञ्छित अभीष्ट प्रयोजन पूर्ण करूँगी। जल, दुग्ध और दधि आदि पञ्चामृतों एवं फलों के रसों से मेरा

नित्ये नैमित्तिके काम्ये पूजनेऽन्यत्र चाऽपि मे। लक्ष्मीसूक्तं षोडशर्चं देव्याः स्नानविधौ पठेत् ॥५२॥
सकृदावर्तनाल्लक्ष्मीः सदा तस्य गृहे वसेत्। पूजाऽशक्तौ केवलं वा सूक्तन्ते यः पठेत् सदा ॥५३॥
तस्याऽखिलं कृतं पूर्णं भवेत्तुष्टा भवाम्यहम्। विद्याऽपि त्वत्समायोगाद्भविष्यति मम प्रिया ॥५४॥
अहं विद्यात्मिका यत्तद्बीजं ते सर्वशोभनम्। पूर्णा तेन समादिष्टा महाश्रीषोडशाक्षरी ॥५५॥
उपचारेषु पूजाया मन्त्रान् सूक्तभवान् पठेत्। सा पूजा स्यान्महापूजा प्रसन्नाऽहं ततो द्रुतम्॥५६॥
सूक्तेऽर्थरूपा गुप्ताऽहं मद्बीजञ्चाऽपि गोपितम्। पूर्णरूपा प्रार्थिताऽहं ऋषिभिः पावकात् पितुः॥५७
नाऽन्यत् प्रियतरं लोके त्वत्सूक्ताद्भवति क्वचित्। त्वमहं देव्यहं त्वञ्च नावयोरन्तरं भवेत् ॥५८॥
ईक्षते योऽन्तरं तस्य भवेयुः परमापदः। इति दत्त्वा वरं तस्यै रमायै त्रिपुरा परा ॥५९॥
जगाम व्योमतां सद्यः प्रोक्तमेतद्घटोद्भव। श्रीसूक्तस्य महित्वं तेनैतद्ब्रूयाः कथञ्चन ॥६०॥

महाभिषेक होने पर मैं सभी कामनाओं की पूर्तिकर देनेवाली बनूंगी। साधकभक्त श्रीविद्यायन्त्र में अथवा मूर्त्ति आदि में एवं मेरे नित्य, नैमित्तिक और काम्य पूजन में तथा अन्य स्थान में सोलह ऋचाओंवाले लक्ष्मीसूक्त को देवी को स्नान कराने के विधान में पढ़े। एक वार भी पाठ करने से लक्ष्मी सदा उसके घरमें निवास करेगी। अथवा, पूजा करने में असमर्थ हो तो जो केवल तेरे सूक्त की ही आवृत्ति सदा करेगी उसका किया हुआ सम्पूर्ण अनुष्ठान पूर्ण होगा मैं उसपर प्रसन्न रहती हूँ। यह श्रीविद्यामन्त्र भी तेरे समायोग से मेरा अत्यन्त प्रिय है। मैं साक्षात् ही; श्राविद्यारूपा हूँ। तेरा जो लक्ष्मीबीज है वह सर्वप्रकारेण सुन्दर है; इसी के साथ यह पूर्ण महाषोडशाक्षरी कही गई है ॥४६-५५॥

पूजाके उपचारों (सामग्रियों)में श्रीसूक्तमें पढ़े गये मन्त्रों का पाठ करनेसे तो वह पूजा महापूजा कही जावे और मैं उस पूजक पर अतिशीघ्र प्रसन्न होऊँगी। श्रीसूक्त में अर्थरूपवाली मैं गुप्त हूँ मेरा बीज भी गोपित (छिपाया हुआ) है; ऋषियों द्वारा पूर्णरूपा मैं ही प्रार्थना की जाती हूँ। जो मैं अपने पिता अग्नि से उद्भूत हूँ वह मेरा स्वरूप है; उसके द्वारा (चिदग्निकुण्ड सम्भूता) मुझे तेरे श्रीसूक्तसे अधिक प्रिय वस्तु अन्य कुछ नहीं लगती। तू मैं देवी हूँ और मैं ही तू है हम दोनों में कोई भेद नहीं होगा। जो तेरे और मेरे बीच भेद देखे उसे बड़ी (परम) आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। इसप्रकार भगवती परा त्रिपुरा लक्ष्मीको वरदान देकर आकाशरूपिणी हो अदृश्य हो गई। हे अगस्त्य!

भक्तेषु शठेष्वन्तःश्रद्धाविरहितेषु च । अथ वक्ष्ये श्रीपुरस्य वृत्तं लोकोत्तरं शृणु ॥६१॥
स्य श्रवणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते । यदा सा परमा देवी प्रार्थिता विधिमुख्यकैः ॥६२॥
क्रादीनां दर्शनार्थं स्थितिं कुर्विति कुम्भज ! । अङ्गीचकार संस्थानं लीलाविग्रहधारिणी॥६३॥
तस्त्वष्टारमाहूय मेरुशृङ्गे महोन्नते । आज्ञापयद्विधिर्देव्याः श्रीपुरस्य विनिर्मितौ ॥६४॥
श्वकर्मा तथाऽऽज्ञप्तः प्रणम्य प्रपितामहम् । भगवन्न मया ज्ञातं तत्पुरं कुत्र संस्थितम् ॥६५॥
प्रमाणं किमाकारं किन्नां किंविधं स्थितम् ।
एतन्मे शंस भगवन् विधास्येऽहं निशम्य तत् ॥६६॥
थ प्राह जगत्स्रष्टा शृणु विश्वकृते ब्रुवे । श्रीपुरस्य प्रमाणञ्च संस्थानं प्रकृतिं तथा ॥६७॥
पश्चाऽपि स्फुटतरं सावधानमनाः शृणु । यच्छ्रुत्वा त्रिपुरापादभक्तिमासादयेच्छुभाम् ॥६८॥
नकाद्रिः सुमेर्वाख्यो जगच्चित्रकलेवरः । तस्य मध्ये महाशृङ्गो यश्चतुःशतयोजनः ॥६९॥

ने तुझे श्रीसूक्तकी महिमा बताई; इसे भक्तिरहित लोगों, शठों तथा अन्तःकरणमें श्रद्धाहीन व्यक्तियों को किसी रूप में उपदेश मत देना। अब तुझे श्रीपुर का अत्यन्त लोकोत्तर (उत्तमोत्तम) वृत्तान्त कहूँगा, सो सुन, जिसके सुनने से सम्पूर्ण पापों से छुटकारा हो जाता है। जब ब्रह्मादि प्रमुख देवगण द्वारा वह परमा देवी प्रार्थित हुई "हे मातः ! ब्रह्मादि के दर्शनों के लिये आप अपने स्वरूपमें स्थित हों" तो हे घटोद्भव अगस्त्य ! लीलामात्र से शरीर धारणकरने-वाली त्रिपुरा ने निज स्वरूप संस्थान को स्वीकार कर लिया ॥५६-६३॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने त्वष्टा को बुलाकर बहुत ऊंचे मेरु के पर्वत शिखर पर देवी के श्रीपुर के विशिष्ट निर्माण के लिये आदेश दिया। विश्वकर्माने वैसी आज्ञा पाकर प्रपितामह को प्रणाम कर पूछा, "हे भगवन् ! मैं नहीं जान पाया कि वह पुर कहां है ? उसका क्या विस्तार है ? क्या आकार-प्रकार है ? किस वस्तु का बना है ? और किस प्रकार से स्थित है ? हे प्रभो ! आप मुझे बतलावें जिसे सुनकर मैं उसे बनाऊं।" ॥६४-६६॥

जगत्कर्त्ता ब्रह्माने कहा, "हे विश्वकर्मन् ! देख, श्रीपुर का प्रकार, उसकी संस्थिति तथा प्रकृति अधिकाधिक स्पष्ट रूपसे तुझे बताता हूं; तू सावधान मन से सुन, जिसे सुनकर मनुष्य कल्याणदात्री त्रिपुरा के चरणकमलों की भक्ति को प्राप्त करता है। सुमेरु नामक स्वर्ण का पर्वत जो जगत् की विचित्र शरीरकी आकृतिवाला है, उसके बीच में

तत्र श्रीत्रिपुरादेव्याः पुरं कुरु जगत्कृते । श्रुत्वा मया यथाप्रोक्तं कर्तव्यं सुविधानतः ॥७०॥
मनोहरं चारुतरं वप्रभेदसुशोभितम् । यथा जगत्प्रतिकृतिस्तन्मे निगदतः शृणु ॥७१॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे हयग्रीवागस्त्यसम्वादे
श्रीसूक्तविधानपुरःसरं श्रीचक्रसंस्थानविधिवर्णनं
नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४३८३॥

विशाल शिखर चार सौ योजन ऊंचा है; वहां तू जगत् के हितसाधन के लिये श्रीत्रिपुरा देवी के पुरका निर्माण करना। इसे मेरे कथन के अनुसार सुन्दर विधान से बनाना जो मन को अतीव हरनेवाले अतिभव्यतर नाना प्रकोष्ठों के भेदों से सुशोभित हो जैसो जगत् की ही प्रतिकृति है उसे मैं बताता हूँ, सुन।" ॥७०-७१॥

इसप्रकार इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में लक्ष्मीसूक्त के विधान तथा माहात्म्य का प्रतिपादन तथा श्रीब्रह्माजी द्वारा मेरुपर्वत श्रीपर देवी के संस्थान के निर्माण का विश्वकर्मा को आदेश नामक तिरपनवां अध्याय समाप्त ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीपुरवर्णनम्

नेककोटिसङ्ख्यानां ब्रह्माण्डानां बहिःस्थितः । ऊर्ध्वतोऽनन्तसङ्ख्याकः सुधासिन्धुर्जगत्कृते ॥१॥
मेरुसदृशोन्नम्रनृत्यद्वीचितरङ्गकः । तस्य मध्ये मणिद्वीपः प्रभाक्षिप्ततमस्ततिः ॥२॥
योजनानां कोटिशतैर्विस्तृतोऽतिमनोहरः । कल्पद्रुमवनैश्चित्रैश्चित्रिता परितः स्थली ॥३॥
तत्र स्थितं पुरं तस्याः सर्वरत्नसमुज्ज्वलम् । योजनानां चतुर्लक्षैर्दीर्घायामसुविस्तृतम् ॥४॥
तावन्मितस्तस्य सालो लोहसारमयस्थितः । चतुरस्रः सर्वभद्रः समुज्ज्वलितदिक्तटः ॥५॥
तुःसहस्रमुन्नम्रो योजनानां सवप्रकः । चतुर्द्वारयुतो बाह्ये परिखेण विराजितः ॥६॥
तुङ्गः सप्तसाहस्रयोजनाऽन्तरितः स्थितः । प्राकारः कांस्यरचितः प्रोक्तमानोऽतिभासुरः ॥७॥

चौवनवां अध्याय

अनेक कोटि संख्यावाले ब्रह्माण्डों के बाहर स्थित ऊपर की ओर से जगत्कृति में अनन्त संख्यावाले सुधासिन्धु हैं; में सुमेरु के शिखर के समान ऊंची उठनेवाली लहरें और तरङ्गें हिलोरे लेती हैं, उसके मध्य में शतकोटि योजनों में ला हुआ, अत्यन्त मनोहर निज प्रभा से अन्धकार समूह को हटाने वाले सर्वसुन्दर मणिद्वीप की स्थिति है। उसके ों ओर चित्र-विचित्र कल्पवृक्षों के वनों से शोभित स्थली है। उस स्थान में उस भगवती का पुर सम्पूर्ण रत्नों की ति से भी अत्यधिक चारों आर विचित्र उज्ज्वल, चार लाख योजनमें लम्बा चौड़ा फैला हुआ सुविस्तृत है; उतना ही माण का लोहसारमय से बना हुआ मणिपुर का घेरा है जो चारों ओर से एक समान सर्वप्रकार से देखने में सुन्दर है हां सभी दिशाओं में उसकी ओभा फैलती है उसकी वप्रपंक्ति (चोटियों)की ऊँचाई चार हजार योजन की है। चारों कार से आर (कोनों) से युक्त है बाहर की ओर परिखा (खाई) से शोभित है। उसके अन्दर का विस्तार ात हजार योजनों का है परकोटा कांस्य (कांसे) का बना है ऊपर बताये गए प्रमाण (लम्बाई-चौड़ाई)

तदन्तरे कल्पवृक्षवाटीगणशताऽऽकुले । दशयोजनविस्तीर्णवापीशतविराजिते ॥८॥
शतयोजनविस्तीर्णप्रफुल्लकमलाऽऽकरैः । दिक्ष्वष्टसु युतेस्वर्वायस्मयाऽर्धबहिर्भुवि (???) ॥९॥
कांस्यक्लृप्ताऽन्तरभुवि नानापक्षिमृगैर्युते । कमलाऽऽकराऽन्तर्भुवि क्लृप्तकांस्यगृहाष्टके ॥१०॥
अनेकचित्ररचिते पञ्चाऽवरणराजिते । शतयोजनविस्तारसमुन्नम्रे सुशोभिते ॥११॥
महासने महाकालः कालीसंश्लिष्टविग्रहः । त्रिपुराम्बापादसेवाप्राप्तसौभाग्यनिर्भरः ॥१२॥
आत्मानमष्टधा कृत्वा स्थितो गेहाष्टके पृथक् । असंख्यपरिवारौघैः सेवितः सततं स्थितः ॥१३॥
अन्तःकांस्यमयाद्वप्रात् प्रोक्तयोजनदूरतः । प्राकारस्ताम्ररचितस्तरुणाऽरुणसम्प्रभः ॥१४॥
प्रोक्तमानद्वारवापापद्मिनीगृहमध्यभूः । बहिरन्तः कांस्यताम्रमयस्थलयुताऽन्तरः ॥१५॥
तदन्तरं प्रोक्तवत्तु कल्पवृक्षवनैर्युतम् । गृहेषु राजते तेषु वसन्तर्तुः सुपेशलः ॥१६॥
मधुमाधवशक्तिभ्यां सेवमानः पराम्बिकाम् । संयुतः स्वपरीवारैः समेधते निजश्रिया ॥१७॥

का है जो अति कान्तियुक्त है। उसके अन्दर सौ कल्पवृक्षवाटिकायें हैं, जिसकी दशयोजन के विस्तार की सौ बावड़ियां हैं, जहां सौ योजन लम्बा चौड़ा अत्यन्त खिले कमलों के समूह से परिपूर्ण महासरोवर हैं जो आठों दिशाओं में स्वर्णनदी के जल से पूरित हो, आधा बाहर की भूमि पर है। अन्दर के कांसे की परिधि के भूमि-स्थान में विविध पक्षीगण और वन्य मृग विश्राम करते, कमलाकरों के अन्तर्भूमि में कांस्य के बने आठ घरों वाले स्थान में विविध विचित्र शोभाओं से युक्त पांच आवरणों से शोभित एक सौ योजन के विस्तारवाले अत्यधिक ऊंचाई पर शोभित महासिंहासन पर कालिका से आलिङ्गित शरीरवाले महाकाल त्रिपुरा भगवती के पाद सेवन करने में रत अत्यधिक सौभाग्य प्राप्त कर अपने रूप को आठ रूपों में बना आठों घरों में पृथक् पृथक् स्थित हैं ॥१-१३॥

अन्दरसे कांसे के कथित योजनों की दूरी से ताम्रका बना तरुण अरुण के समान लाल शोभा धारण किया प्राकार है। ऊपर वर्णित प्रमाणवाले द्वार और वापी की पद्मिनीयुक्त गृह के मध्य की भूमि है जहां बाहर और भीतर से कांसे एवं ताम्र से निर्मित स्थल वाला अन्दर का भाग है, जिसमें ऊपर बताया हुआ कल्पवृक्षके वनों से युक्त स्थान है। उन गृहों में वहां अत्यन्त मधुर वसन्त ऋतु उद्भासित हो रही है। यह वसन्त चैत्र (मधु), वैशाख (माधव), शक्तियों से पराम्बिका की सेवा करता अपने स्वपरिजनों के सहित अपनी शोभा से स्थित है। साल के प्रमाणवाले द्वार पर भी

तमानं द्वारमपि वापिकाः पद्मिनीभुवः । प्रोक्तरीत्यैव विज्ञेया विशेषः प्रोच्यते क्रमात्॥१८॥
सीसमयः सालः सन्तानवनमण्डितः । ग्रीष्मर्तुः संस्थितः शुक्रशुचिशक्तिपरीवृतः ॥१९॥
कूटमयो वप्रो हरिचन्दनवाटिकः । नभोनभस्यशक्तिभ्यां वर्षर्तुस्तत्र शोभते ॥२०॥
लोहमयः सालो मन्दारवनमण्डितः । शरदृतुरिषोर्जा(?)भ्यां शक्तिभ्यां तत्र राजते ॥२१॥
राजतसालो वै पारिजातवनाऽऽवृतः । सहस्सहस्यशक्तिभ्यां हेमन्तस्तत्र राजते ॥२२॥
यमयस्सालो बालसूर्यशतप्रभः । कदम्बविपिनं तत्र हालाऽऽमोदसुमेदुरम् ॥२३॥
सङ्गीतमधुरं लास्यगीतर्द्धिसङ्कुलम् । कीरमण्डलचाटूक्तिमधुरध्वनिसुन्दरम् ॥२४॥
सा मन्त्रिणी देवी संस्थिता लोकमोहनी । सङ्गीतमातृका देवी मातङ्गीत्यभिविश्रुता ॥२५॥
द्याश्यामला चान्या शारिकाद्या हसन्तिका । वीणावेणुमुखा तद्वच्छ्यामला लघुपूर्विका ॥२६॥

नी पुष्पों को उपजानेवाली बावड़ियां हैं; इनका वर्णन उपर्युक्त रीति से ही जानना चाहिये। उनके विषयमें बताया
ा है। सीसेवाला साल कल्प वृक्षों के वन से शोभित है; जहां ग्रीष्म ऋतु अपनी शुक्र (ज्येष्ठ) शुचि (आषाढ)
क्ति शक्तियों सहित उपस्थित है। आगे पीतल का वप्र हरिचन्दन (केसर) की वाटिकासे सुशोभित है वहां वर्षा
तु श्रावण तथा भाद्रपद शक्तियों से शोभित है। पंच लोहमय (ताम्र, पीतल, रांगा, सीसा और लोहा) से
वेष्टित साल मन्दार (पारिजात) के वृक्षों से भूषित है जहां शरद् ऋतु अपने इषऊर्ज (आश्विन तथा कार्तिक)
ी शक्तियों से वहां विराजमान है। तत्पश्चात् चांदीका साल स्थित है जो पारिजात वन से घिरा है, हेमन्त
तु मार्ग व पौष इन दो शक्तियों से वह शोभित है। स्वर्णमय साल अरुण रंग का सौ बाल-सूर्य की कान्ति के
मान प्रभावाला है; वहां कदम्बों का बन हाला की सुगन्ध से सुमधुर रूपसे सुगन्धों से परिपूर्ण है, भौरों के
ङ्कारपूर्ण सङ्गीत से अत्यन्त मधुर लास्य के गीत की समृद्धि से भरा हुआ है जो पक्षियों के विविध कलकलरूपी
टूत्कारितापूर्ण मधुरध्वनि से अत्यन्त सुन्दर लगता है। उस स्थान में मन्त्रिणीदेवी लोकों को मोहनेवाली स्थित
। वह सङ्गीतमातृकादेवी मातङ्गी इस प्रसिद्धि से विख्यात है। शुकाद्या, श्यामला और अन्य शारिकादि हसन्तिका
ी वीणा वेणु आदि वाद्यों की सुमधुर ध्वनि का अनुकरण करनेवाली पक्षीजातियां हैं उसीप्रकार स्वकीय सुन्दर मीठी
ाषा को धीरे धीरे गाती हुई लघुश्यामला देवी शोभित है ॥१४-२६॥

श्यामला राजपूर्वा स्यात् स्वयं या मन्त्रिणी मता ।
श्रीमातृका तत्प्रियाऽन्या (इ?) चेत्येवमष्टदिक्स्थिताः ॥२७॥
मातङ्गकन्याकोटीनां कोटिभिः परिवारिता । अथ वप्रः पुष्परागमयः पूर्वोक्तवत् स्थितः ॥२८॥
सिद्धेशः सिद्धसंवीतस्तत्र ध्यायति तां पराम् । पद्मरागमयो वप्रस्तदन्तोऽग्निशिखाऽरुणः ॥२९॥
चारणस्त्रिपुराभक्ता वसन्ति युवतीयुताः । सालो गोमेदमणिजस्तत्र भैरवनायकैः॥३०॥
कालसङ्कर्षिणी देवी बटुकौघसमावृता । कराला कालमेघाभा करवालकृताऽऽयुधा ॥३१॥
अष्टकोटिभैरवाणां नाथैरष्टसुभैरवैः । द्वात्रिंशत्कोटिबटुकयुतैः संसेविता सदा ॥३२॥
महाराज्ञीपादपद्मं ध्यायन्ती सुविराजते । ततो वज्रमयः सालस्तत्र वज्रा नदी स्थिता ॥३३॥
परिखावद्वेष्टयित्वा सुधासिन्धुप्रवेशिनी । तटाभ्यां गोमेदवज्रमयाभ्यां प्रविभासिनी ॥३४॥
तत्र वज्रेश्वरी देवी वज्रभूषा समुज्ज्वला । वज्रप्रदानसन्तुष्टा वज्रिप्रमुखपूजिता ॥३५॥

श्यामला राज पूर्वा है (राजश्यामला) जो स्वयं मन्त्रिणी मानी जाती है । श्रीमातृका तथा उसकी प्रिया अन्य सभी विराजमान हैं जो इस प्रकार आठों दिशाओं में स्थित हैं। ये मातङ्ग कन्या की श्रेणियों की कोटियों से परिवारित (घिरी हुई) स्थित हैं ॥२७-२८॥

अनन्तर पूर्व में कथित के समान ही पुष्परागमय (लालमणियोंवाला)वप्र (ऊँचा टीला) स्थित है। जहां सिद्धों से घिरे सिद्धेश उस परा का ध्यान करते हैं। इसके अन्तरमें अग्निकी सी ज्वालावाले लालकान्तियुक्त पद्मरागमय माणिक्य का वप्र है; यहां युवतियों से युक्त त्रिपुरा के भक्त चारणगण निवास करते हैं। आगे गोमेदमणियों से बना साल है जहां सङ्कर्षिणी देवी अपने भैरवनायकों सहित बटुकौघ (बटुकसमूह) से घिरी हुई है। वह कराला (अत्यन्त भयानका) देवी काले मेघ की कान्तिवाली करवाल का आयुध धारण किये हुए है। आठ कोटि भैरवों के नाथ, बत्तीस कोटि बटुकों से युक्त आठ सुभैरवों से वह सदा अनुसेवित है। वह महाराज्ञी श्रीत्रिपुरा के चरणकमल का ध्यान करती सम्यक्प्रकार से विराजमान है। तदनन्तर वज्रमय साल (घेरा) है वहां वज्रा नदी है; खाई के समान घुमावदार घेरे करती वह सुधासमुद्र में प्रवेश करनेवाली है। उसके दोनों ओर गोमेदमय और वज्रमय तट हैं जिनसे वह प्रकृष्टरूप से आभायुक्त है ॥२९-३४॥

उसमें वज्रेश्वरी देवी वज्रभूषणों से अत्यन्त समुज्ज्वल वज्रप्रदानकरने में सन्तुष्ट रहनेवाली इन्द्रप्रमुख वज्रधारी

वैदूर्यसालस्तस्यान्तस्तत्र नागा दितेः सुताः । निरन्तरं ध्यायमानाः पराम्बापादपङ्कजम् ॥३६॥
अथेन्द्रनीलसालःस्यात् तत्र मर्त्याः समास्थिताः ।
मुक्तावप्रस्तदन्तस्था दिक्पाला दिक्षु वै क्रमात् ॥३७॥
अथ सालो मारकतः स्वर्णतालवनैर्युतः । तालद्रुस्यन्ददत्यन्तहालासौरभसम्भृतः ॥३८॥
तत्र श्रीदण्डिनी देवी स्वप्ने स्यादेभिरावृता । अपराधिजनान् दण्डे योजयन्ती सुसंस्थिता ॥३९॥
मधुसेवोन्मिषत्स्वान्तराऽऽनन्दाब्धिपरिप्लुता । ततो विद्रुमसालः स्याद्वप्रात्तत्राऽन्तरे स्थितः ॥४०॥
अनेकसिद्धमुनिभिर्योगिभिश्च समावृतः । नवरत्नकृतो वप्रस्ततोऽतिरुचिरः शुभः ॥४१॥
तत्र विष्णुः पार्षदादिसेविताऽङ्घ्रिर्विराजते । ततोऽप्यनेकरत्नौघमयो वप्रोऽतिभासुरः ॥४२॥
शिवः प्रमथसंसेव्यस्तत्राऽध्यास्ते त्रिलोचनः । ततो मनोमयः सालोऽरुणोरुणसमच्छविः ॥४३॥

देवगण से पूजित है। वैडुर्यमय साल उसके अन्तर में है वहां दिति के पुत्र नागगण पराम्बा के चरणकमल का निरन्तर ध्यान लगाये विराजमान हैं ॥३५-३६॥

अनन्तर इन्द्रनील मणियों का साल है वहां मर्त्यलोग विराजे हैं उसके अन्दर मुक्ताका वप्र है जहां दिशाओं में क्रम से दिक्पाल स्थित हैं। उसके आगे मरकतमणियों का साल है जो सुवर्णमय ताल (ताड़) वन से युक्त है, वह ताल वृक्ष से झरकर निकलने वाली अत्यन्त विलक्षण माध्वीक के सौरभ से पूर्ण है। वहां श्रीदण्डिनी देवी स्वप्न में इनसे घिरी रहती है जो अपराधियों को दण्ड देती हुई सम्यक्प्रकार से विराजित है। यह दण्डिनी देवी मदिरापान से अत्यन्त खुले नेत्रवाली हो पूर्ण मस्ती से अन्तर में आनन्द समुद्र से परिप्लुत है। उस वप्र से कुछ अन्तर में ही विद्रुममय साल है जहां अनेक सिद्ध, मुनि तथा योगीलोग उस स्थान को घेरे हुए स्थित हैं। नौ रत्नों का बना वप्र उससे आगे अत्यन्त सुन्दर और शुभप्रद है। जहां अपने पार्षदलोगों से सेवित चरणकमलोंवाले श्रीविष्णु विराजमान हैं। वहां से अनेक रत्नों के समूह से जटित अत्यन्त प्रभादीप्त वप्र (प्रकोष्ठ) है जहां प्रमथ गणों के आराध्य उनसे सेवा लेनेवाले त्रिलोचन शिव स्थित हैं। तदनन्तर मनोमय रक्ताभ अरुण की सी रक्तिम कान्तिवाला साल है उसके मध्यभाग में चारों ओर परिखा खाई के आकार वाली अमृत की बावड़ी है जो प्रफुल्ल कमलों से पूर्ण तीन भाग में भूमि के मध्य में स्थित है जहां हंस, कारण्डव (बतक) कोयल एवं सारस इन पक्षियों से सुन्दररूपसे शोभित है। उसके मध्य में नवों रत्नों से सजी हुई नौका में अत्यन्त सुन्दर पद्मासन पर भक्तगण को तारनेवाली भगवती तारा आसीन है

तन्मध्येऽमृतवापी स्यात् परितः परिखाऽऽकृतिः । प्रफुल्लपद्मसङ्कीर्णा त्र्यंशे मध्यभुवः स्थिता ॥४४॥
हंसैः कारण्डवैः कोकैः सारसैः सुविराजिता । तन्मध्ये नवरत्नाढ्यनौकायां सुविराजिते ॥४५॥
पद्माऽऽसने समासीना तारा भक्तौघतारिणी । असंख्यरत्नपोतस्थशक्तिभिः परिवारिता ॥४६॥
दण्डिन्याज्ञां विना कश्चिन्न सन्तारयति क्वचित् । अथ बुद्धिमयः सालो विशदश्चन्द्रबिम्बवत् ॥४७॥
आनन्दवापिका तत्र प्रोक्तवत्सर्वशोभना । तत्राऽमृतेशी तरणिसंस्थाना शक्तिभिर्वृता ॥४८॥
सुरानन्दमयी तस्यामामोदभरिताऽन्तरा । आज्ञां विनाऽमृतेशान्या नैनत् पिबति कश्चन ॥४९॥
न सन्तरेद्वापिकाञ्चाऽमृतैश्वर्याभिरक्षिताम् । अहङ्कारमयस्तस्माद्वरणः श्यामलाऽऽकृतिः ॥५०॥
नीलमेघप्रतीकाशस्तदन्तर्वापिकाऽपि च । विमर्शाऽऽख्या ज्ञानरसवहनिश्चलशीतला ॥५१॥
तत्र नौकास्थिता देवी कुरुकुल्ला महेश्वरी । तदाज्ञामन्तरा तत्र नैषत् प्राप्नोति तद्रसम् ॥५२॥
पीत्वा तल्लेशकमपि समस्ताऽज्ञानसम्भवम् । त्यजन्ति तापं पश्यन्ति जगत्तत्त्वमनावृतम् ॥५३॥
अथ सूर्यात्मकः सालः प्रकाशनिकरः स्थितः । तत्राऽन्तरे समासीनः सूर्यो जलजविष्टरे ॥५४॥

जो अगणित रत्नों से निर्मित जलयानमें स्थित स्वशक्तियों से युक्त है । दण्डिनी की आज्ञा के विना कहीं भी किसी को यह नहीं तारती । उसके आगे बुद्धिमय साल स्थित है । वह चन्द्र के बिम्ब के समान सुविस्तृत है । उस स्थानमें ऊपर की वर्णित सम्पूर्ण दृश्यावलि से शोभित आनन्दवापिका (आनन्दकी स्रोतस्विनी) है वहां अमृतेशी देवी तरणि (नौका) में स्थित शक्तियों से घिरी हुई है । उसमें आमोदभरित अन्तःकरणवाली सुरानन्दमयी देवी है जोअमृतेशानी की आज्ञा के विना इस सुरा को किसी को भी नहीं पीने देती । कोई भी अमृतैश्वर्य से अत्यन्त गोपनीय इस वापिका को पार नहीं कर पाता । उससे आगे अहङ्कारमय वरण है, वह कालीआकृति को धारे हुए नीलमेघ के समान प्रकृष्ट शोभावाला है उसमें अन्तर्वापिका भी है; जो ज्ञानरूपी रस के निरन्तर प्रवाहित होने से अत्यन्त 'शान्त और शीतल विमर्श' इस नाम से प्रसिद्ध है । वहां नौका में स्थित महेश्वरी कुरुकुल्ला देवी विराजती है, उसकी आज्ञा के विना वहां उस रस को थोड़ासा भी कोई नहीं पासकता । उस विमर्शरूपी रस का लेशमात्र भी पान करने वाले व्यक्तियों को समस्त अज्ञान से उत्पन्न ताप छोड़ देते हैं और जगत्तत्त्व को वह अनावृत (खुला) देखते हैं ॥३७-५३॥

अब आगे सूर्यात्मक साल (प्रकोष्ठ) जो प्रकाश के समूहरूपवाला है, वह स्थित है । वहीं पर अन्दर में सूर्य

मार्तण्डभैरवाद्यैश्च रविभिर्द्वादशात्मभिः । समेतः सूर्यसदृशदेहैर्भक्तैरभिष्टुतः ॥५५॥

ततः शशाङ्काऽऽवरणः कोटिचन्द्रसमप्रभः । तत्र सोमः स्थितो राजा किरंस्तत्र सुधांऽशुभिः ॥५६॥

तदन्तरे तु शृङ्गारसालोऽत्यन्तविचित्रितः । कौस्तुभाऽऽख्यमणित्रातनिर्मितो रुचिराऽऽकृतिः ॥५७॥

तन्मध्ये परिघा स्वच्छशृङ्गाररससम्भृता । तत्र कौस्तुभसङ्कलृप्तपोते शृङ्गारनामके ॥५८॥

कन्दर्पैः संस्थितो रत्या प्रीत्या सम्मिलितः स्वयम् । अनेककोटिकन्दर्पैरतिप्रीतिगणैरपि ॥५९॥

सेव्यमानो मोदते श्रीत्रिपुराभक्तशेखरः । तत्पारे तु महापद्मवनमामोदमेदुरम् ॥६०॥

स्थलपद्मवनं तेषां काण्डाः पत्राणि केसराः । कर्णिकाश्चापि चाऽत्यन्तदीर्घास्तत्ते ब्रवीम्यहम् ॥६१॥

सहस्रयोजनाऽऽयामाः काण्डा गव्यूतिपीवराः । विंशतिर्योजनानान्तु पत्राऽऽयामः प्रकीर्तितः ॥६२॥

त्रिंशद्योजनदीर्घाणि पत्राणि कलशीसुत ! । योजनानां पञ्चदश केसराणाञ्च दीर्घता ॥६३॥

कर्णिका योजनदशविस्ताराः सम्प्रकीर्तिताः । तत्र भृङ्गा मणिनिभाः शैलशृङ्गमिताः स्थिताः ॥६४॥

कमल के शुभासन पर बारह रूपोंवाले मार्तण्डभैरवादि रविगण के समेत आसीन हैं जिनकी देह सूर्य के समान तेजःप्रकाशमय है ऐसे मार्तण्डभैरव स्वभक्तों द्वारा निरन्तर पूजित हैं ॥५४-५५॥

तदनन्तर कोटि चन्द्रमाओं की सी कान्तिवाला चन्द्रमाका आवरण है; वहां अमृत किरणों से प्रकाश बिखेरता हुआ राजा सोम स्थित है । उसके अन्तर में शृङ्गार प्रकोष्ठ अत्यन्त नाना विचित्रताओं से पूर्ण है जो कौस्तुभ-नामक मणियों के समूहों से बना सुन्दर आकारवाला है ॥५६-५७॥

उसके बीच में अत्यन्त निर्मल शृंगाररस भरी पूरी परिघा (अर्गला) है वहां कौस्तुममणियों से जटित जलयान में जिसका शृंगार नाम है उसमें कामदेव अत्यन्त प्रीतिसे रतिके साथ मिला हुआ अवस्थित है । अपने अत्यन्त प्रीतिपात्र कन्दर्पगण जो नाना कोटिवाले कन्दर्पों से सेवित वह त्रिपुराके भक्तों का शिरोमणि काम विशेष आनन्दपूर्वक स्थित है । उसके पार करने पर सुगन्ध से पूर्ण महापद्मों का वन स्थलपद्मवन है; जिनके नाल दण्डपत्र, केसर और कर्णिकायें भी अत्यन्त दीर्घ (लम्बी) हैं उसे मैं तुम्हे बताता हूँ ॥५८-६१॥

उसके काण्ड हजार योजन के विस्तार (लम्बे चौड़े) के और कोशभर की मोटाई के हैं; पत्रों का आयाम बीस योजनों का कहा जाता है । हे कुम्भसम्भव ! तीस योजन लम्बे पत्ते हैं, केसरों की दीर्घता पन्द्रह योजन की है कर्णिकायें (पद्मबीज) दश योजन की लम्बाई चौड़ाईवाली कही गयी हैं । पर्वत के शिखर के प्रमाण के मणि के समान चमकनेवाले भौंरें वहां स्थित हैं ॥६२-६४॥

गृहं श्रीत्रिपुरादेव्यास्तदन्तरतिभासुरम् । चिन्तामणिप्रवेकाऽतिरचितं चित्रचित्रितम् ॥६५॥
चतुर्द्वारयुतं तत्र दिव्याऽऽधारसुसम्भृतम् । वह्निमूर्तिमयाऽऽधारो वर्तुलस्तत्कलायुतः ॥६६॥
योजनानां पञ्चशतं विस्तारेऽर्धं समुन्नतौ । तत्र सूर्यात्मकं पात्रं कलाद्वादशसंयुतम् ॥६७॥
योजनानां सहस्रन्तु विस्तारे सार्धमुन्नते । तत्राऽमृताऽऽसवः पूर्णः स्वाद्यो मञ्जुलसौरभः॥६८॥
सुधांशुरूपः संयुक्तः कलाभिः परितो विधुः । तत्र पोतस्थितः खेलंस्तरङ्गेष्वासवाऽमृते ॥६९॥
श्रीचक्रस्थाः शक्तयो यास्तासां पानाय कल्पितम् ।
महापद्माऽटवीसंस्थाश्चाऽपि याः शक्तयोऽमलाः ॥७०॥
मुख्यशक्तिप्रसादन्तु प्राप्य मोदन्ति सन्ततम्। तत्राऽग्नेयं महाकुण्डं चिदग्निज्वालमालितम् ॥७१॥
सहस्रयोजनाऽऽयामं तथा निम्नं त्रिमेखलम् । शतयोजनमुन्नम्रा विस्तृता मेखलाः पृथक् ॥७२॥
तत्र श्रीत्रिपुरादेव्या जनकश्चिन्मयाऽनलः । द्विसहस्रयोजनोन्नतज्वालामालयाऽऽवृतः ॥७३॥

श्रीत्रिपुरादेवी का गृह उसके अन्दर अत्यन्त भासुर उज्ज्वलरूप से प्रभायुक्त है जो चिन्तामणियों के समूह से रचा हुआ शोभायुक्त चित्र-विचित्र बना है। वह दिव्य आधार से परिपुष्ट चार द्वारों से युक्त है। अग्निमूर्तिमय आधारयुक्त उसी भगवती की कला से सम्पन्न कान्तिमणिखचित गोलाकार गृह है। पांच सौ योजन के विस्तार में और ऊंचाई में आधा (दो सौ पचास योजन) वहां सूर्यरूपमय बारह कलाओं से युक्त पात्र है। एक हजार योजन के विस्तारवाला और पांच सौ योजन ऊंचा वहां अमृत आसव से पूर्ण, सुस्वाद के योग्य, अत्यन्त मञ्जुल सुगन्धवाला चारों ओर से कलाओं से संयुक्त सुधामयी किरणोंवाला चन्द्रमा है जो आसवामृत की तरङ्गों में खेलता हुआ जलयान में स्थित है। ये श्रीचक्रस्थित शक्तियां हैं उन किरणों के पान के लिये कल्पित हैं। महापद्मके गहन वनमें स्थित जो अत्यन्त विमल शक्तियां हैं वे मुख्य शक्तिकी कृपाके प्रसादको पाकर सतत आनन्दनिर्भर रहती हैं। वहां आत्मचिदग्निकी ज्वालासे सुशोभित अग्निका महाकुण्ड है; जिसका विस्तार एकहजार योजन का है तथा निम्न भाग में तीन मेखलाओंवाला है, ये खूब विस्तृत मेखलायें सौ योजन की ऊंचाईवाली हैं, उनका यह सौ योजन का मान पृथक् पृथक् है ॥६५-७२॥

वहां श्रीत्रिपुरादेवी के पिता चिन्मय अग्नि का स्थान है वह दो हजार योजन की ऊंची उठनेवाली ज्वालाओं के समूह से घिरा हुआ है ॥७३॥

गृहस्य पश्चिमदिशि स्थितश्चक्रात्मको रथः । नानामणिगणाऽऽकीर्णः सहस्रयोजनाऽऽयतः ॥७४॥
चतुर्गुणोन्नतो भूमिनवकेनाऽतिसुन्दरः । दशेन्द्रियहयोपेतो मनःसारथिसंयुतः ॥७५॥
आम्नायचक्रश्चाऽङ्गारो योगरश्मिर्मरुध्वजः । नभो वितानः सुमहान् सर्वलोकमयः स्थितः ॥७६॥
चिन्तामणिगृहे तस्मिन्मध्ये श्रीचक्रनायकः । नवाऽऽवरणदेवीभिर्युतः परमशोभनः ॥७७॥
तन्मध्ये त्रिपुरा देवी पञ्चब्रह्मात्ममञ्चके । कामेश्वराऽङ्कसंस्थाना ज्योतीरूपा विराजते ॥७८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीत्रिपुरापाख्याने
श्रीपुरवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥४४६१॥

गोलाकार गृह के पश्चिम दिशा में चक्ररूपवाला रथ अनेकविध मणियों के समूह से परिपूर्ण एक हजार योजन के विस्तार का है जो चार गुनी ऊंचाईवाला है और नौ भूमियों से युक्त अत्यन्त सुन्दर है। इसमें दश (इन्द्रियांरूपी) घोड़े लगे हुए हैं तथा मनरूपी सारथि साथ में है तथा आम्नाय का चक्र ही अग्नि है जो योगराश्म से सम्पन्न, मरुत्ध्वजावाला है। अन्तरिक्षका विशाल चन्दवा छाया हुआ है जो सर्वलोकों को अपने में समाये हुए स्थित है। उस चिन्तामणि गृह के मध्य श्रीचक्रनायक नौ आवरणस्थित देवियों के सहित अत्यन्त शोभायुक्त हो विराजमान है। उसके बीच में पञ्च ब्रह्मरूप मञ्च (पर्यङ्क) पर श्रीकामेश्वर की गोद में स्थित त्रिपुरा देवी ज्योतिःस्वरूप से विराजी हुई है ॥७४-८४॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में त्रिपुरोपाख्यान में श्रीपुर का
वर्णन नामक चौवनवां अध्याय समाप्त ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मविश्वकर्मसम्वादे श्रीदेव्या व्यक्तस्वरूपारम्भवर्णनम्

श्रुत्वैवमद्भुतं वृत्तं विश्वकर्माऽतिविस्मितः । पप्रच्छाऽनन्तरं वाक्यं सर्वलोकपितामहम् ॥१॥
पितामहाऽत्र सन्देहो भगवन् बहुधा मम । हृदि तत् परिपृच्छामि वक्तुं तन्मे त्वमर्हसि ॥२॥
केनेदं निर्मितं स्थानं कदा केन च हेतुना । न गतिस्तत्र चाऽन्येषां गुणज्येभ्य इति श्रुतम् ॥३॥
पुनस्तत्राऽमरा मर्त्या नागाद्याश्चाऽपि वर्णिताः । कथमेतत् स्थितं देव कृपां कुरु मयीश्वर ॥४॥
आपृष्ट एवं लोकेशः प्राह तं विश्वशिल्पिनम् । त्वष्टः ! शृणु समाख्यास्ये चैतद्वृत्तं सुगोपितम् ॥५॥
पुरा वयं गुणमया विश्वशक्त्या विनिर्मिताः । ब्रह्मादयो लोकसृष्टिस्थितिसंहृतये ननु ॥६॥
तदा वयं सृष्टिमुखक्रियाकृतिपरायणाः । सदा समाकुलस्वान्तैस्तोषिताऽस्माभिरम्बिका ॥७॥

पचपनवां अध्याय

इस प्रकार अद्भुत वृत्तान्त को सुनकर विश्वकर्मा अत्यन्त विस्मयभावापन्न हो गया। तदनन्तर उसने सम्पूर्ण लोकों के पितामह श्रीब्रह्मासे पूछा, "हे पितामह ! इस विषयमें मेरे हृदयमें नाना प्रकार का सन्देह है इसलिये मैं आप से पूछता हूँ, उसे बतलावें। यह स्थान किसने, कब और किस हेतु से बनाया ? वहां गुणेश्वर देवगण से अन्य लोगों की पहुंच नहीं है यह (सत्प्रमाणों द्वारा) सुन रक्खा है। फिर वहां देवता, अमर, मर्त्य, नाग आदि भी वर्णित हैं। यह सब कैसे स्थित है ? हे देव ! ईश्वर ! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये।" ॥१-४॥

इस प्रकार पूछे जाने पर लोकेश ब्रह्मा ने उस विश्वशिल्पी से कहा "हे त्वष्टः ! तुझे सम्यक् प्रकार यह अत्यन्त रहस्यपूर्ण वृत्त बताऊंगा, सुन। आदिकाल में विश्वशक्ति के द्वारा गुणमय ब्रह्मा आदि हमलोग अवश्य ही सभी लोकों के सर्जन, पालन और संहार के लिये बनाये गये। जब हम सर्ग पालन और अपने दिये हुए उद्दिष्ट कार्यों में तत्पर थे तो हम सदा मन से अत्यन्त आकुल रहने लगे। हमने भगवती अम्बिका की आराधना की ॥५-७॥

त्रिपुरा परमाशक्तिः केवला चितिरूपिणी । निष्कलाऽऽकाशरूपेण केवलं वाङ्मयी शिवा ॥८॥
ताहाऽशरीरिणी वत्साः किं वः समभिवाञ्छितम् ।
संश्रुत्वैवं परां वाचं नत्वाऽस्माभिः समीरितम् ॥९॥
तुत्वा तां विविधैस्तोत्रैर्बद्धाऽञ्जलिभिरादरात् । महादेवि वयञ्चाऽस्मिन् जगत्कृत्ये निरन्तरम् ॥१०॥
त्वया विनियुक्ता वै नैषद्विन्दामहे रतिम् । त्वत्स्वरूपस्थितिं त्यक्त्वा न किञ्चिदभिरोचते ॥११॥
धारसाऽऽस्वादनानां यथा क्षारोदसेवने । तत्कृपां कुरु देवेशि ! न रमामोऽत्र कर्मसु ॥१२॥
त्युक्ता ब्रह्ममुखैस्त्रिपुरा प्राह नः पुनः । विधिमुख्याः साम्प्रतं नो भवेदेतत् कथञ्चन ॥१३॥
नियतिर्मेऽतिदुर्वारा सङ्कल्पा प्राङ्मयैव सा ।
चिन्तितुं नाऽर्हथैवं वो दास्येऽन्यदभिवाञ्छितम् ॥१४॥
तोऽस्माभिः प्रार्थिता सा त्रिपुरा लोकभावनी । यद्येवमम्ब तत्त्वञ्च गुणमूर्तिर्महेश्वरी ॥१५॥

त्रिपुरा भगवती परमाशक्ति केवल चितिरूपा है, आकाशरूप से वह निष्कल (सर्वगुणातीत), केवल ब्दमयी शिवा (कल्याणप्रदा) है । उस अशरीरिणी महाशक्ति ने कहा, "हे पुत्रो ! तुम्हें क्या अभीष्ट है ?" स प्रकार परावाणी को सुनकर हमने आदरपूर्वक विविध स्तोत्रों द्वारा हाथजोड़कर स्तुति कर कहा, "हे महादेवि ! म लोग इस जगत् की कार्य-प्रणाली में निरन्तर आपके द्वारा लगे हुए हैं; इसमें हमें किञ्चन्मात्र भी आनन्द नहीं नुभव होता । हमें आपकी स्वरूपावस्था को छोड़ कुछ भी वैसे अच्छा नहीं लगता जैसे सुधा (अमृत) रस के आस्वाद नेवालों को नमक से मिला जल रुचिकर नहीं होता है । इसलिये हे देवेशि ! आप कृपा कीजिये हम इन कर्मों में शेष आनन्द अनुभव नहीं करते ।"॥७-१२॥

इसप्रकार श्रीब्रह्माप्रमुख कारणदेवगण द्वारा कही जाने पर भगवती त्रिपुरा ने फिर हमें कहा, "हे ब्रह्मप्रमुख देवगण ! यह सब अब तो किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं हो सकता । मेरे द्वारा बनाया नियतिका चक्र दुर्वार है । किसी भी प्रकार अन्यथा नहीं होता, यह मैंने पहले से ही बना रक्खा है; इस के विषय में तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये । अतः मैं तुम्हें कोई दूसरा अभीष्ट वर दूंगी ।" ॥१३-१४॥

तदनन्तर लोकों को उत्पन्न करनेवाली वह परा त्रिपुरा हम लोगों द्वारा इस भांति प्रार्थना की गई " जो यह

राजराजेश्वरी भूत्वाऽखिलाऽण्डानां प्रशासने । कुरु तत्र वयं नित्यं त्वन्मूर्त्तेरभिषेवणात् ॥१६॥
प्राप्स्यामोऽत्र रतिं लोके त्वदाज्ञापालनादपि । इत्यस्मदीरितं श्रुत्वा प्राह सा त्रिपुरा परा॥१७॥
अस्त्वेवं वो हितार्थाय दृश्यमूर्तिर्भवाम्यहम् ।
नाऽत्राऽण्डेषु स्थितिं प्राप्स्ये किन्त्वशेषाऽण्डवर्तिनाम् ॥१८॥
साधारणं सुधाऽम्भोधौ रत्नद्वीपं सृजाम्यहम् । तत्र मां भक्तिभावेन यजन्तु जगदीश्वराः॥१९॥
तत्र कुण्डे समिध्याऽग्निं चिन्मयं ज्वलिते शुचौ ।
यथेप्सितं ध्यायत मां स्त्रीपुम्प्रकृतितः शुभाम्॥२०॥
ध्यानाऽनुरूपा वो भूत्वा प्रशासिष्येऽण्डसन्ततिम् ।
तत्राऽखिलाऽण्डसंस्थानां ब्रह्मादीनां निरन्तरम् ॥२१॥
दिशामि दर्शनं स्वीयं स्थूलभावस्य संस्थिता । इत्युक्त्वाऽस्मान् विधिमुखानन्तर्धानं जगाम सा ॥२२॥
अथ तस्या वचनतो ब्रह्माण्डान्निर्गता वयम् । पीयूषाऽब्धिं समासाद्य रत्नद्वीपं समन्ततः ॥२३॥

बात है तो हे मातः ! आप गुणमूर्ति महेश्वरी बन सम्पूर्ण भूलोकादि समस्त ब्रह्माण्डों के प्रकृष्ट शासन में राजराजेश्वरी होकर स्थित हों, वहां हमलोग नित्य ही आपके स्वरूप का सबभांति सेवन कर उत्तम आनन्द प्राप्त करेंगे और आपके आज्ञापालन से भी हमें किसी प्रकार की अरुचि का प्रश्न उपस्थित नहीं होगा ।" इसप्रकार हमारे कथन को सुन कर परा भगवती त्रिपुरा ने कहा, "ऐसा ही हो; मैं तुम लोगों के कल्याण के लिये दृश्य स्वरूप धारण करती हूँ, वह इस ब्रह्माण्ड में नहीं अपितु समस्त ब्रह्माण्डों में स्थित सभी के लिये सर्वदृश्य सुधासमुद्र में रत्नद्वीप की रचना करती हूँ; वहां अत्यन्त भक्तिभाव से जगत् के ईश्वरगण मेरा अर्चन यजन करें। वहां शुद्ध कुण्ड में चिन्मय अग्नि को भलीप्रकार प्रज्वलित करके यथेच्छ भावना से मङ्गलमयी स्त्रीरूप में तथा पुरुषप्रकृति रूप में मेरी सेवा करना। तुम्हारे ध्यानानुसार ही अपना रूप बना मैं ब्रह्माण्डों के सकल प्राणियों की सन्मार्ग में प्रवृत्ति के लिये प्रशासन करूंगी। वहां सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में स्थित ब्रह्माआदि कारणदेवों को अपने स्थूलस्वरूप में स्थित हो दर्शन दूंगी ।" इसप्रकार हम ब्रह्मादि प्रमुख देवों को कह वह परास्वा अन्तर्धान कर गई ॥१५-२२॥

अब हम उसके कथनानुसार ब्रह्माण्डों से निकले क्रमशः चारों ओर सुधा के समुद्र को प्राप्त कर रत्नद्वीप को

विचिन्वतश्चिरेणाऽथ मणिद्वीपोऽनुसादितः । नवरत्नमयः स्वीयच्छविव्याप्तदिगन्तरः ॥२४॥
तत्र गत्वा विनिर्माय कुण्डं परमशोभनम् । प्रोक्तमानं तत्र वह्नियोजनं स्यात्कथन्त्विति ॥२५॥
चिन्तां प्राप्ता वयं तत्र नाऽग्निरस्ति नचेन्धनम् ।

अथ देवः शिवः कुण्डे स्वाक्ष्णोऽग्निमनुकल्पयत् ॥२६॥
प्रेन्धनन्तु तं दृष्ट्वा प्रशमाऽभिमुखं शुचिम् । विष्णुः स्वयं स्वचेतोंऽशैरेधांसि समकल्पयत् ॥२७॥
अथ प्रज्वलिते वह्नौ विधिस्त्वं समकल्पयम् । मनःपशुं बुद्धिमाज्यमहङ्कारं हविस्तथा ॥२८॥
करणानि च पात्राणि तद्धोतुं देवतां पराम् । अभिध्यायमहं स्वाऽन्तर्वह्नौ स्त्रीमूर्तिमीदृशीम् ॥२९॥
ध्यात्वा हविर्हुतं यावत्तावत् सा परमेश्वरी । कुण्डवह्नेः समुदभूत् ध्यानरूपाऽनुसारिणी ॥३०॥
तच्छक्तिरियं तत्र ततोऽस्माभिरभिष्टुता । निर्ययौ पावकात्तस्माद्बहिस्त्रैलोक्यसुन्दरी ॥३१॥
माऽवदन्मां परमा काऽऽसनं मे विनिर्दिश । आदिष्ट एवं परममासनं कल्पितं मया ॥३२॥

मयमय से खोजते हुए उसे पा गये। जो वह नवरत्नमय है तथा अपनी आभा से दिग्दिगन्तरों को व्याप्त
स्थित है॥२३-२४॥

वहां जाकर परम शोभन आकार का कुण्ड बनाकर बताये जानेवाले अग्नि का संयोजन किस प्रकार हो इस के लिये
त्त चिन्तित हुए; न तो वहां अग्नि थी और न ही इन्धन था। अनन्तर अत्यन्त दिव्य शिव ने अपने नेत्रसे अग्नि का
निधि बिठाया। उस पवित्र अग्नि को कुण्ड में लकड़ी आदि के इन्धन के बिना शान्त होते देख विष्णु ने
चित्त के अंशों से जलाने की लकड़ी बनाई। अब अग्नि को प्रज्वलित कर मैंने अपने ब्रह्मत्व को उसके लिये
त किया; मनरूपी पशु, बुद्धिरूपी आज्य (घृत) एवं अहंकाररूपी हवि तथा समस्त इन्द्रियगण पात्ररूप में उस अग्नि
न करने के लिये प्रस्तुत किये। परा देवता को अपने अन्तर में प्रज्वाल्यमान अग्निमें ऐसी स्त्री मूर्त्तिके रूप में मैंने
किया। मैंने ध्यानकर जैसे ही अहङ्काररूपी हवि को हवन कुण्डमें होमा वैसे ही वह परमेश्वरी मेरे द्वारा किये गये
रूप के अनुसार उस चिदग्निकुण्ड की अग्नि में से आविर्भूत होगई ॥२५-३०॥

वहां प्रगट हुई साक्षात् पराशक्ति तत्पश्चात् हमलोगों से स्तुति की गई, वह त्रैलोक्यसुन्दरी परमा महेशी
ग्नि से बाहर आ प्रगट हो गई। तदनन्तर परमा शक्ति ने मुझसे पूछा, "मेरा आसन कहां है? मुझे बता।"

स्पर्शमात्राद्विशीर्णं तदासनं भूय एव तत् । कल्पितं विविधं सारं स्पर्शाच्छीर्णं बभौ क्षणात्॥३३॥
सर्वसामर्थ्यविहितान्यासनान्यपि तानि मे । परःशतं विशीर्णानि तदाऽहं लज्जितोऽभवम् ॥३४॥
अथाऽऽविरासीन्निमिषात् सर्वदेवः सदाशिवः । तदिच्छयैव तुर्यश्च तौ तां देवीं प्रणेमतुः ॥३५॥
तावब्रवीत् परा देवी सा कल्पयतमासनम् । दध्यौ सदाशिवः श्रुत्वा वाक्यं तस्याः क्षणादथ ॥३६॥
अनेककोटिसंख्याता आययुर्गुणमूर्तयः । सदाशिवा ईश्वराश्च तेभ्यः सर्वेभ्य एव च ॥३७॥
सारं समाकृष्य पञ्चमूर्तीश्चक्रेऽतिसुन्दरीः । सदाशिवांऽशेन तत्र सिन्दूरनिचयाऽरुणम् ॥३८॥
फलकं कल्पयत्तस्य मूर्त्या सङ्घटितं शुभम् । ईशरुद्रहरिविधिशक्तिसङ्घचतुष्टयैः ॥३९॥
पादांस्तन्मूर्तिघटितान्निर्ममे स सदाशिवः । अशेषपृथिवीसारसम्भृताऽऽस्तरणं ततः ॥४०॥
हंसतूलसंहतिवत् कोमलं तस्य मूर्धनि । आस्तृतं मेरुशिखरिसमुदायसुसाधितम् ॥४१॥
उपधानं विरचयद्देवदेवः सदाशिवः । प्रणम्य प्राह तां देवीं सिद्धमम्ब ! समारुह ॥४२॥

इस प्रकार आदेश पाकर मैंने परम उच्च आसन तैयार किया। वह आसन स्पर्श करते ही विशीर्ण हो गया फिर नाना सारों से युक्त आसन बनाया, वह भी स्पर्शमात्र से क्षणमें ही अस्तव्यस्त हो गया । मेरे वे सम्पूर्ण सामर्थ्यसम्पन्न आसन भी सैकड़ों बार बनाये गये और विशीर्ण हो गये, तब मैं अत्यन्त लज्जित हुआ ॥३१-३४॥

अनन्तर सम्पूर्ण देवमय सदाशिव भगवान् निमिषमात्र में आ प्रगटे। उनकी इच्छा से ही तुर्यतत्त्व भी प्रादुर्भूत हुआ; उन दोनों ने उस देवी को प्रणाम किया। उन परा दिव्यगुणसम्पन्ना भगवती ने उन दोनों से कहा "तुम आसन बनाओ।" भगवती के वचन सुन कर सदाशिव ने ध्यान किया अब क्षणमात्र में ही उनके समानही कोटि संख्यावाले गुणमूर्ति से सम्पन्न सदाशिव और ईश्वर आगये। सदाशिव ने उस सब से ही सार लेकर अत्यन्त सुन्दररूपवाली पांच मूर्त्तियां की। वहां सिन्दूर के समूह जैसे अत्यन्त अरुण पट्ट (तख्ता) उस मूर्त्ति के सहित शुभकारक रचा गया। ईश,रुद्र, हरि और ब्रह्माकी चारों शक्तियोंकेसङ्घसे उस सदाशिवने उन मूर्त्तियों से घटित पायोंकी रचनाकी। तब सम्पूर्ण पृथिवी के सार से पूर्ण बिछौना बनाया, उसके ऊपर हंस के निर्मल रंगवाली श्वेत रूई की संहति (ढेरी) से कोमल मेरु शिखरवाले पर्वत के समुदाय के समान सुन्दररूप से तकिया (उपधान) देवाधिदेव सदाशिव ने उस स्थान पर प्रस्तुत किया। उस देवी को प्रणामकर वह बोले, "हे अम्ब! आपके लिये आसन तैयार है, आप विराजिये" ॥३५-४२॥

तस्मिन्मध्ये तं गुणेशानां नमस्कृत्य सदाशिवम् । प्रोचुर्देव नौपयिकं पीठमेतद्धि मन्दिरम् ॥४३॥
आकाशसंश्रयं तस्मान्मन्दिरं कुरु सुन्दरम् । सदाशिवोऽपि युक्तं तन्मत्वा चक्रे गृहं शुभम् ॥४४॥
चिन्तामणिगणैः कीर्णं नानारत्नोपभूषितम् । योजनानां द्वे सहस्रे विस्तृतौ गृहराजकः ॥४५॥
चतुर्द्वारश्चतुर्वेदमय आम्नायमण्डितः । नभोमयवितानेन महताऽतिविराजितः ॥४६॥
कृत्वा गृहं तदाऽऽकाशेन मनोहरमुत्तमम् । ससर्ज तस्य परितो महपद्मवनं शुभम् ॥४७॥
तत्प्रोक्तलक्षणं तेन मन्दिरं तद्व्यराजत । एवं तन्मन्दिरे रत्नसिंहासनमधीश्वरी ॥४८॥
समारुहत् सा त्रिपुरा भासयन्ती समन्ततः । रत्नसिंहासने तस्मिन् संस्थिता सा महेश्वरी ॥४९॥
असंख्यैर्विधिविष्ण्वीशतुर्यमूर्तिसदाशिवैः । संस्तुता बहुधा प्राह सदाशिवमधीश्वरी ॥५०॥
सदाशिव ममाऽख्यानमनाख्यायाऽद्भुतं कुरु ।
आख्याताऽहं येन लोके भवामि विदिताऽऽकृतिः ॥५१॥
एवं तया नियुक्तोऽथ देवदेवः सदाशिवः । यावत्तस्याः समाख्यानं चिन्तयामास मानसे ॥५२॥

इसी बीच में गुणेश्वरों ने हाथ जोड़ कर उस सदाशिवसे कहा, "हे देव ! यह पीठ समुचित नहीं हुआ इसे मन्दिर होना है। इसलिये इसे आकाश से संश्रित अत्यन्त सुन्दर बनाइये।" सदाशिवने भी इसे उचित मान चक्रमें शुभ गृह तैयार किया जो चिन्तामणियों के समूहों से पूर्ण नाना रत्नों से शोभित था; दो हजार योजन के विस्तार में यह गृहराज चतुर्वेदमय, चार द्वारों से वेष्टित एवं आम्नायसे महिमामण्डित रहा जो अतिविस्तृत आकाशमय वितान(चन्दवे) से अतिशय सज्जित था। आकाश में व्याप्त उस अत्यन्त श्रेष्ठ मनोहर गृहको जान कर उस के चारों ओर मङ्गलकारी महापद्मवनकी रचनाकी जिसके साथ ऊपर वर्णन किया गया वह मन्दिर शोभायमान हो रहा था। इसप्रकार अधीश्वरी भगवती उस मन्दिर में रत्नसिंहासन पर सब दिशाओं को भासमान करती हुई श्रीत्रिपुरा आरूढ हो गई। उस रत्नसिंहासन में विराजी वह महेश्वरी उन असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, ईश, तुर्यमूर्त्ति और सदाशिवों द्वारा बहुविध स्तुति की गई। (तब) अधीश्वरी ने सदाशिव से कहा, "हे सदाशिव ! मेरे अनाख्य आख्यान को तुम अद्भुत रूप से प्रसिद्ध करो, जिससे मेरी अपनी गुणमहिमा की ख्याति हो तथा मैं प्रख्यात स्वरूपवाली बन जाऊं।" ॥४३-५१॥

अनन्तर इस प्रकार उस देवी द्वारा नियुक्त देवाधिदेव सदाशिव ने जैसे ही अपने मन में उस

तावद्ब्रह्मविष्णुरुद्रमुखैः सम्प्रार्थितोऽभवत् । देव नौपयिकं ह्येतद्भासते नः पराम्बिका ॥५३॥
चितिर्द्रष्टृमयी नित्या सदसद्रूपकारणम् । ध्यानाऽनुरोधवपुषा दयया दृश्यतां गता ॥५४॥
योषिद्रूपधरा देवी विना पुरुषसंश्रयम् । नाऽत्यर्थं शोभते लोकविगानादिति मन्महे ॥५५॥
न क्वचिल्लोकवितते नारी नरसमाश्रयम् । ऋते सम्भवते वल्ली तरुहीना यथा भुवि ॥५६॥
तदेतस्या जगद्धात्र्या अनुरूपं पतिं शुभम् । परं कल्पय यन्नः स्यात् सर्वेषामभिवाञ्छितम्॥५७॥
श्रुत्वैवं गुणमूर्तीनामुक्तं देवः सदाशिवः । चिन्तयित्वा चिरं वाक्यं प्राह व्यवसिताऽन्तरः ॥५८॥
शृण्वन्तु गुणजाता मे वाक्यमेतत् समाहिताः । इयं परात्परा देवी सच्चिन्मात्रस्वरूपिणी ॥५९॥
एकाऽऽसीत् सर्वपुरतः स्वातन्त्र्याऽऽत्मविधायिनी ।
न सन्नाऽसदभिन्नं वा विभिन्नं किमपि ह्यभूत् ॥६०॥
सा स्वस्वभावविभवभरेणैवाऽवभासयत् । एतज्जगच्चक्रचित्रं स्वात्मन्यादर्शलीलया ॥६१॥

पराम्बा के लिये नामकरण करने का विचार किया तभी ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रप्रमुख देवगण ने सदाशिव की प्रार्थना की, "हे देव ! यह हमारे लिये उपयुक्त प्रतीत नहीं होता; पराम्बिका चिति द्रष्टृमयी नित्या है सत् और असत् रूपों का कारण है। वह ध्यान के अनुसार स्वरूपधारण कर कृपाकर के दर्शनदेनेयोग्य हुई है। यह स्त्रीरूपधारिणी देवी विना पुरुष का आश्रय लिये अत्यधिक शोभा नहीं प्राप्त करेगी क्योंकि लोग निन्दा करेंगे ऐसा हमारा मत है। कहीं पर भी इतनी विशाल लोकसृष्टि में स्त्री निज पुरुष का आश्रय लिये विना नहीं रहती, जैसे पृथ्वी में वृक्ष के आश्रय के विना लता नहीं टिकती। इसलिये आप इस जगत् की धात्री के अनुरूप ही (मङ्गलदायक) उसका परमपति बनावें जिससे हम सब लोगों का अभिलषित इष्ट पूर्ण हो।" ॥५२-५७॥

इस प्रकार सदाशिव देव ने गुणमूर्त्तियों का कथन सुन कर दीर्घ समय तक विचार कर ध्यानावस्थित हो कहा, "हे गुणमय देवगण ! तुम लोग ध्यान लगाकर मेरे इस वाक्य को सुनो; यह परात्परा सच्चिन्मात्रस्वरूपिणी देवी सबके आदि में निज स्वातन्त्र्यभरतासे अपना रूप बनानेवाली एक ही थी, न सत्, न असत् और अभिन्न अथवा विभिन्न कुछ भी अनिर्वचनीय रूपवाली वह अपने स्वरूपस्थित वैभवके प्रभावसे ही इस जगत् के चक्ररूपी चित्र को दर्पणवत् निज

स्याः सदृशः कोऽपि कुत एवाऽधिको भवेत् । सदस्याः सर्वलोकैकमातुर्भर्ताऽत्र को भवेत् ॥६२॥
हि मेऽत्र भवेच्छक्तिः कर्तुं स्यात् खलु किञ्चन । वदत्येवं सदा पूर्वे शिवेऽस्माकं प्रपश्यताम् ॥६३॥
त्वाऽस्मरं श्मीहां सा त्रिपुरा परमेश्वरी । ईषत् स्मितं कृतवती कोटिपूर्णेन्दुभासनम् ॥६४॥
ाऽभवन्महाशब्दो ब्रह्माण्डौघविभेदनः । विदलन् श्रोत्रजालानि बधिरीकृतदिक्तटः ॥६५॥
ाल महातेजः सर्वदिङ्मण्डलाऽदनम् । तडित्कोट्युदयाऽऽभासं सर्वचक्षुःप्रमोषणम् ॥६६॥
शब्देन महता तेजसा च समन्ततः । बधिराऽन्धीकृताः किं तदित्याश्चर्यं समागताः ॥६७॥
ऽस्माभिः क्षणेनैव ततः सा परमेश्वरी । समानसुन्दराऽङ्गस्य पर्यङ्कमणिशोभिनी ॥६८॥
ूतसंस्थाना प्रतिबिम्बं श्रिता यथा । दृष्ट्वा समानपुरुषवामाऽङ्कसुविराजिताम् ॥६९॥
तुलं प्राप्ताः स्वेष्टसिद्धेर्जगद्विधे । स्वाऽङ्गसौन्दर्यलालित्यभरणेनैव परस्परम् ॥७०॥

में अवभासित करती है। इसके समान कोई भी प्राणिमात्रमें नहीं है; इस से अधिक तो कहाँ से होगा? लोकों की एकमात्र जननी त्रिकाल में सद्रूपधारिणी इसका पति कौन हो? भगवती के पति बनाने के विषय कुछ भी करने की निश्चय ही मेरी कोई शक्ति नहीं है।" इस प्रकार सदाशिव के कहने पर हमलोगों देखते उस त्रिपुरा परमेश्वरी ने हमलोगों की आन्तरिक अभिलाषा को जानकर करोड़ों पूर्णचन्द्रों की को भासित करने वाला अपना मन्दहास्य किया ॥५८-६४॥

दनन्तर ब्रह्माण्डों के समूह को भेदन करनेवाला कानों के पर्दों को दलन करताहुआ सब दिशाओं के प्रान्तदेश दिर बनानेवाला महाशब्द हुआ। साथ ही सम्पूर्ण दिशाओं के समूह में व्याप्त होनेवाला, करोड़ों विद्युत्समूहों काश का कारण, समस्त लोगों की आंखों को चौंधियानेवाला महातेज प्रज्वलित हुआ। चारोंओर व्याप्त महाशब्द की ध्वनि और विशिष्ट अद्भुत तेजोराशि से हम सभी बहरे और अन्धे से होगये; इस तरह अत्यन्त चकित हुए यह क्या है? तत्पश्चात् क्षणभरमें ही हमने उस परमेश्वरी को देखा। एक जैसे ही आकारवाले, के अङ्गों की कान्तिवाली पर्यङ्कमणियों से शोभित, युगलस्वरूप संस्थित जैसे वह प्रतिबिम्ब को प्राप्त हो गई हो रूप में प्रगट हुई। समानशीलवाले शरीरधारी पुरुष के वामपार्श्ववर्त्ती गोद में भलीप्रकार विराजमान उसे देख आनन्द के विधान में अपनी इष्टसिद्धि की सफलता से हम सब अत्यधिक प्रसन्न हुए। अपने अङ्गों की सुन्दरता के प्रकार से परस्पर विलसित दोनों भगवती एवं भगवान् सनातन शिवका मिथुनरूप एक दूसरे से समालिङ्गनजन्य

क्षिपन्निव तन्मिथुनं परीरम्भसुखोल्वणम् । अथाऽब्रवीन्नः परमा देवा वः सिद्धमीप्सितम् ॥७१॥
अहं द्विधा हि सञ्जाता भवदीप्सितहेतवे । वदन्त्वावयोर्नामनि (?)र्यावः ख्यातिं यतस्त्विह॥७२॥
श्रुत्वा सदाशिवो देवः प्रेक्षाऽस्मान्नाम कर्मणि। विमूढानाह नत्वा तां देव्यस्मत्कामपूरणात्॥७३॥
कामेश्वरी त्वं देवश्च भवेत् कामेश्वरस्तथा । राजराजात्मनां नस्त्वमीशनाच्चाऽपि साम्प्रतम्॥७४॥
राजराजेश्वरी त्वं वै राजराजेश्वरस्त्वयम् । त्वं वै त्रिपुरसुन्दरी चैष त्रिपुरसुन्दरः ॥७५॥
अथ धातृमुखाः स्तुत्वा वयं तां परमेश्वरीम्। अप्रार्थयन्त भूयस्तां मत्वा तत्रैकलां स्थिताम्।७६॥
मातस्त्वं परिवारेण स्थातुमत्राऽर्हसीश्वरि । दृष्ट्वैकलां त्वां न वयं हृष्यामोऽतितरां शिवे ॥७७॥
एवं सा प्रार्थिताऽस्माभिः स्वदेहात् क्षणमात्रतः।परां स्वसदृशीं शक्तिमसृजत् प्रतिबिम्बवत् ॥७८॥
इत्याह्वयत तां शक्तिं महात्रिपुरसुन्दरीम् । इति सृज शक्तिचक्रं ममाऽनुगुणमुत्तमम् ॥७९॥
सर्वलोकेप्सितकरं परिवारं मदंशतः । ओमित्युक्त्वा च सा देवी शक्तिचक्रं महाऽद्भुतम् ॥८०॥

अत्यधिक सुख का विस्तार सा करते शोभित थे। अब परमा भगवती ने हमें कहा "हे देवगण ! अब तुम्हारा अभीष्ट बन गया; तुम लोगों के अभीप्सित फल की इष्टसिद्धि के लिये मैंने अपने दो प्रकार के रूप बना लिये। अब तुमलोग हम दोनों के नाम बताओ जिससे हम इस लोक में प्रसिद्ध हों।" ॥६५-७२॥

भगवान् सदाशिव ने यह सुनकर हमें नामकरण के कार्य में विमूढसा देख देवी का हम लोगों की कामनापूर्ण करने के हेतु प्रणाम कर कहा, "हे मातः ! आप कामेश्वरी और यह देव कामेश्वर नाम से ख्याति लाभ करें। आप हम लोगों पर राजराजरूपवाली और ईशन (सबसे प्रकृष्टतम शासन) करने से भी राजराजेश्वरी और यह देव राजराजेश्वर नामवाले विख्यात हों। आप 'त्रिपुरसुन्दरी' और यह 'त्रिपुरसुन्दर' कहलावें।" ॥७३-७५॥

तदनन्तर विधाता आदि प्रमुख हम सब देवगण ने उस परमेश्वरी की स्तुति कर फिर उसे एकाकिनी स्थित मानकर प्रार्थना की, "हे ईश्वरि ! हे मातः ! आप अपने परिवार सहित यहां निवास करें। हे शिवे ! आपको अकेली देख कर हमलोग अतिशय रूप में हर्षित नहीं होते।" ॥७६-७८॥

इसप्रकार हमलोगों से प्रार्थित हो उस पराम्बा भगवती ने क्षणमात्रमें ही अपने देह से अपने ही अनुरूप एक सी प्रतिबिम्ब के समान शक्ति को रच दिया। महात्रिपुरसुन्दरी ने इस प्रकार उस शक्ति को सम्बोधन किया, "तू मेरे गुणों के अनुसार अत्यन्त उत्तम (उदात्त) शक्तिचक्र को,जो सम्पूर्ण लोकों का अभीष्ट सिद्ध करनेवाला मेरे अंशसे परिवार

वं श्रीमहादेव्याः शक्त्याऽऽवरणमद्भुतम् । तावन्मध्ये महादेवी स्वयं षोडशधाऽभवत् ॥८१॥
व ततोऽतिरिक्ताऽभूद्देवी सप्तदशी तदा । एतस्मिन्नन्तरे साऽपि महात्रिपुरसुन्दरी ॥८२॥
क्तीः ससर्जाऽङ्गात् सृष्ट्वा सा प्राह ताः प्रति। पृथक् सृजेथाः स्वस्वाऽनुरूपाः शक्तीर्मनोहराः।८३॥
सुन्दर्येति चोक्ताः ससृजुस्ताः पृथक् पृथक् । एवं सृष्टपरीवारा महाश्रीत्रिपुराऽम्बिका ॥८४॥
तं तासां जगच्चक्रमयं निर्माय सत्वरम्। तत्तत्स्थानस्थिताभिः सा शक्तिभिः सेविताऽभवत् ॥८५॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये ब्रह्म-विश्वकर्म्मसम्वादे श्रीपुरे कामेश्वरीकामेश्वरयुतं शक्तिचक्रसंस्थानवर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४५४६॥

त।" 'ओम् (हां)' कह कर उस देवी ने श्रीमहादेवी के शक्तियों के आवरणों का अद्भुत अत्यन्त
ा शक्तिचक्र बनाया। उस समय ही भगवती कामेश्वरी सोलह प्रकार की हो गई। तब वह स्वयं उस
रूप के अतिरिक्त सप्तदशी बन गई। इसी के अन्तराल में महात्रिपुरसुन्दरी ने अपने अङ्गों से नौ शक्तियों की
की। उन्हें रचकर वह बोली, "तुमलोग पृथक् पृथक् अपने अपने अनुगतरूपों से युक्त मनोहर शाक्तयों को
ो।" महात्रिपुरसुन्दरी द्वारा कहे जाने पर उन शक्तियोंने पृथक् पृथक् उनकी भी रचना करदी। इसप्रकार अपने
की रचना के अनन्तर महाश्रीत्रिपुराम्बिका उन सब का जगद्रूपी चक्रमय स्थान निश्चितकर अतिशीघ्र उन उन
ों पर स्थित अपनी उन शक्तियों से अनुसेवित हो गयी ॥७६-८५॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के ललितामाहात्म्यप्रकरण में ब्रह्मा तथा विश्वकर्मा के सम्वाद को लेकर श्रीपुर में कामेश्वरी कामेश्वर के सहित शक्तिचक्रसंस्थान-का वर्णन नामक पचपनवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मविश्वकर्म्मसम्वादेश्रीचक्रदेवतानिरूपणवर्णनम्

श्रुत्वेत्थमद्भुतं वृत्तं विश्कर्मा जगद्विधिः । पप्रच्छ भूयः प्रणतस्तच्छ्रुतावतिकौतुकी ॥१॥
भगवन् शक्तयो देव्या सृष्टा यास्त्रिपुराम्बया । नृपसंख्या नाम तासां रूपं स्थानञ्च मे वद ॥२॥
महात्रिपुरसुन्दर्या सृष्टा यास्ताः समीरय । किंरूपाः कति संख्याकास्तत्सृष्टाश्चाऽपि वर्णय ॥३॥
स्थानञ्चाऽपि जगच्चक्रप्रतिरूपं किमात्मकम् । सृष्टं श्रीत्रिपुराशक्त्या कुत्र काः शक्तयः स्थिताः ॥४॥
एतन्मे सर्वमाख्याहि श्रोतुं मे प्रसमीहितम् । इति पृष्टो विश्वकृता प्रीतः प्राह चतुर्मुखः ॥५॥
शृणु त्वष्टर्गुह्यतमं सावधानेन चेतसा । एवमादौ विसृष्टा सा महात्रिपुरसुन्दरी ॥६॥
नवशक्तीरसृजत शक्त्यौघस्य विसर्जने । समाज्ञप्तास्तया तास्तु प्राहुस्त्रिपुरसुन्दरीम् ॥७॥

छप्पनवां अध्याय

इस प्रकार अद्भुत वृत्तान्त को सुन कर जगत् के सर्जन करने वाले विश्वकर्मा ने फिर प्रणाम कर उस पराम्बा के चरित्रों के सुनने में अत्यन्त जिज्ञासुभाव से कुतूहल दिखाते हुए पूछा ॥१॥

"हे भगवन् ! आप भगवती त्रिपुराम्बा देवी द्वारा जो षोडश संख्यावाली शक्तियां रची गई उनके नाम और स्थान मुझे बतावें । महात्रिपुरसुन्दरी ने जिन-जिन शक्तियों की सृष्टिको उनके नाम कहिये । उनका क्या स्वरूप है एवं कितनी संख्या में उन्हें रचा गया ? उसका भी वर्णन करें । श्रीत्रिपुरा शक्ति से जगत् का चक्र प्रतिरूपकवाला जो स्थान है उसे भी कहिये ? वह किस प्रकार का है ? श्रीदेवी की शक्तियां कहां और कौन कौन रूप में स्थित हैं ? इस सबको ही कहिये; मुझे यह सुनना अभीष्ट है ।" इस प्रकार विश्वकर्म्मा द्वारा पूछने पर प्रसन्न हो चतुर्मुख ब्रह्मा ने कहा, "हे त्वष्टः ! यह सब अत्यन्त गुह्यतम रहस्य है, इसे सावधान मनसे सुन । सबसे आदि में इसप्रकार उस महात्रिपुरसुन्दरी ने अपने शक्तिसमूह का विसर्जन करने में नौ शक्तियों की रचना की । भगवती द्वारा आज्ञा पाकर

कथं वयं सृजामोऽम्ब शक्तीस्ते समुदीरिताः । श्रुत्वेति प्राह सा भूयो महात्रिपुरसुन्दरी ॥८॥
आत्मयोगं समाश्रित्य द्रुतं सृजथ मा चिरम् । इत्युक्त्वाऽद्या समसृजद्दशशक्तीःसुलोहिताः ॥९॥
ताश्चाऽणिमादिसिद्धीनां प्रदा लोकेऽभवन्नथ। पाशाऽब्जाऽङ्कुशपाणयःशशिखण्डशिखण्डकाः।१०।
अणिमा लघिमा चैव महिमेशित्विका ततः ।
वशित्वा प्राकाम्यका च भुक्तीच्छाप्राप्तयः क्रमात् ॥११॥
सर्वकामा च सिद्ध्यन्ता दश देव्यः समुद्गताः । अथ ता नवशक्तयस्तु प्राहुर्देवीं स्वमातरम् ॥१२॥
नाम नः प्रदिशाऽम्बाऽऽशु ततः शक्तीः सृजामहे। श्रुत्वाऽऽह ता महाशक्तीर्महात्रिपुरसुन्दरी॥१३॥
योगेन सर्जनाद्यूयं योगिन्यस्तु भविष्यथ । अथाऽद्या प्रार्थयामास त्रिपुरेशीं प्रणम्य तु॥१४॥
मातः स्थानं कल्पयाऽऽशु शक्तीनां समवस्थितेः ।
प्रार्थितैवं पराशक्तिः ससर्ज स्थानमद्भुतम् ॥१५॥
चतुरस्रा वेदिकैका योजनद्वितयोन्नता । द्विशतं योजनानान्तु विस्तारेण विनिर्मिता ॥१६॥
तस्योपरि चतुर्दिक्षु योजनानां चतुष्टयम् । बहिर्विहाय तस्यान्तश्चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१७॥

उन्होंने त्रिपुरसुन्दरी से कहा, "हे अम्ब ! हम किस प्रकार उन शक्तियों की रचना करें जिनके विषय में आपने बताया है ?" यह सुन कर उस महात्रिपुरसुन्दरी ने फिर कहा, "आत्मयोग का आश्रय लेकर शीघ्र ही उन्हें रच डालो; विलम्ब मत करो।" यह कह कर आद्या ने दश अत्यन्त लोहित (लाल) रङ्ग की शक्तियों की रचना की। लोक में वे अणिमा महिमा आदि सिद्धियों की देनेवाली हुईं। अनन्तर पाश, कमल, अङ्कुश हाथों में धारण किये तथा शशिकला का मुकुट पहने अणिमा, लघिमा, महिमा, ईशित्विका, वशित्वा, प्राकाम्यका, भुक्ति,इच्छा और प्राप्ति तथा सर्वकामा सिद्धि तक क्रमशः दश देवियां प्रगट हुईं। अनन्तर उन नवों शक्तियों ने मातासे कहा, "हे मातः ! आप हमें अपने २ नामकरण से कृतार्थ करें, तत्पश्चात् हम शक्तियों की रचना करेंगी।" इसे सुनकर महात्रिपुरसुन्दरी ने उन महाशक्तियों से कहा, "हे शक्तियों ! योग द्वारा सर्जन कार्य करने से तुम योगिनी बनोगी।" अनन्तर आद्याने भगवती त्रिपुरेशी को प्रणामकर कहा, "हे मातः ! इन शक्तियों के रहने के स्थान शीघ्र बताइये।" इस प्रकार प्रार्थित हो पराशक्ति ने अत्यन्त अद्भुत स्थान की रचना की ॥२-१५॥

एक सम चौरस वेदी दो योजन की ऊंचाईवाली और विस्तार में दो सौ योजन की लम्बाई और चौड़ाईवाली बनायी। उसके ऊपर चारों दिशाओं में चार चार योजन का बाहर का स्थान खाली छोड़कर उसके

योजनानान्तु विंशत्या विस्तृतं सुमनोहरम् । षट्योजनसुदीर्घञ्च तत्सम्बद्धा तदन्ततः ॥१८॥
योजनद्वयमुन्नम्रा चतुरस्रसुभूमिका । द्वियोजना ततोऽन्तस्तु योजनोच्चा तथा पुनः ॥१९॥
एवं भूमित्रयं तस्य चाऽन्तः षोडशयोजने । भूमिका योजनोन्नम्रा षोडशच्छदसन्निभा ॥२०॥
तदन्तर्योजनोन्नम्रा वसुपत्रसमाकृतिः । योजनानान्तु विंशत्या भूमिकाऽतिमनोहरा ॥२१॥
आदित्ययोजनाऽऽयामा तदन्तर्योजनोन्नता । भूमिका शक्रकोणाभा तदन्तश्चाऽपि तावती ॥२२॥
भूमिका दशकोणाभा तस्याऽन्तः शिवयोजना । योजनोच्चा पूर्ववत्तु दशकोणसमप्रभा ॥२३॥
अन्तरे दशसंख्यातयोजनाऽऽयामतः स्थिता । वसुकोणात्मिका भूमिर्योजनोच्छ्रायशोभिनी ॥२४॥
तस्याऽन्तस्त्र्यस्रभूमिस्तु रसयोजनसम्मिता । योजनोच्चा वदूर्ध्वस्था तावदुच्छ्रायशोभिनी ॥२५॥
योजनाऽऽयतविस्तारा बिन्दुभूमिः सुवर्तुला । प्रकल्प्य स्थानमेवं सा वृत्तभूमौ स्वयं स्थिता ॥२६॥
पञ्चब्रह्मासनाऽऽसीनकामेशोत्सङ्गशोभिनी ।

अन्दर की ओर चार प्रकार के सुशोभन कोनेवाला स्थान रचा। अत्यन्त सुन्दर बीस योजन के विस्तारका अत्यन्त मनोहर छै योजनों की दीर्घतावाला स्थान बनाया उससे सम्बद्ध ही उसके बादमें दो योजनों की ऊँचाईवाली समचौरस सुन्दर वेदी रची। फिर उसमें दो योजन विस्तारवाली एक योजन ऊँची भूमि वेदी के लिये रची इस प्रकार तीन भूमियां हुई। अन्दर सोलह योजन में एक योजन की ऊँचाईवाली षोडश पत्रों के समान भूमिका रही उसके अन्दर एक योजन की ऊँचाईवाली अष्टपत्र के समान आकारवाली बीस योजन को अत्यन्त मनोहर भूमिका बनाई गई ॥१६-२१॥

उसमें बारह योजन के विस्तारवाली अति मनोहर भूमिका एक योजन की ऊंचाईवाली ऐन्द्रो (पूर्व) दिशा के कोणकी आभावाली उसके भीतर उतनी ही भूमि दश कोणवाली थी; उसके अन्तरमें स्थित प्रदेशमें प्रकृष्ट कल्याणवाली ग्यारह योजन को एक योजन ऊंची पहले के समान ही दश कोण के समान प्रभावाली निर्मित की। उसके अन्दर दश संख्या वाले योजनों के विस्तार कीभूमि स्थित थी। फिर आठ कोणवाली एक योजन उन्नताकार में शोभित भूमि थी जिसके अन्दर तीन सम चौरस भूमि छै योजन विस्तारवाली, एक योजन ऊंची उसी के ऊपर स्थित उतनी ही ऊंचाई से शोभित थी। एक योजन की लम्बाई चौड़ाईवाली बिन्दु भूमि अत्यन्त गोलाकार स्वरूप में थी। इसप्रकार स्थान को भलीप्रकार बना वह स्वयं वृत्तवाली भूमि में स्थित हुई ॥२२-२६॥

पञ्च ब्रह्मके आसन पर आसीन हो वह कामेश भगवान् के वामाङ्क में शोभित थी। अपने अङ्गों से उद्भूत जो

स्वाङ्गोद्भूताः शक्तयो याः स्वसमा नृपसंख्यकाः ॥२७॥
ताः स्वभूमेरधस्त्र्यस्रभूमौ संवेशिताः क्रमात् । इन्दोः कलामयः पक्षदिनाऽधिष्ठातृदेवताः ॥२८॥
नित्याऽऽख्याः कारणेनाऽऽसां नामानि च वदामि ते ।
आद्या कामेश्वरी नित्या द्वितीया भगमालिनी ॥२९॥
नित्यक्लिन्ना च भेरुण्डा ततः स्याद्वह्निवासिनी । महाविद्येश्वरी षश्चाच्छिवदूती ततः परम् ॥३०॥
त्वरिता कुलसुन्दरी नित्या नीलपताकिका । विजया सर्वमङ्गला ज्वालामाला ततः परम् ॥३१॥
चित्रेति नाम क्रमतो वामे पृष्ठे च दक्षिणे । पञ्चकक्रमयोगेन त्र्यस्रभूमौ निवेशिताः ॥३२॥
स्वयं सप्तदशी नित्या षोडशी या पुरोदिता । सा तपोवीर्यसंयोगात् सायुज्यं समुपागता ।३३।
सृष्टादौ तत्र या देवी महात्रिपुरसुन्दरी । तां बिन्दुभूम्यधिष्ठात्रीं कृत्वा स्वाग्रे निवेशयत् ॥३४॥
योगिन्योऽपि तया सृष्टा नवसंख्याः पुरोदिताः ।ताभिश्चाऽपि पृथक्कृत्यैर्नाम प्राप्तं यथाक्रमम् ।३५।

शक्तियां अपने ही समान गुणरूपवाली जो संख्या में सोलह थी, उन्हें अपनी भूमि के नीचे तीन सम आकार की भूमिमें क्रमशः आसन दे स्थित किया । ये इन्दु (चन्द्र) की कलावाली पक्षके दिनों की अधिष्ठात्री नित्यानामक देवियां हैं कारण सहित इनका नाम तुम्हें बताता हूँ । आद्या कामेश्वरी नित्या, द्वितीया भगमालिनी, नित्यक्लिन्ना तृतीया, भेरुण्डा चतुर्थी तत्पश्चात् वह्निवासिनी पञ्चमी, महाविद्येश्वरी षष्ठी तदनन्तर शिवदूती सप्तमी और उसके बाद त्वरिता अष्टमी, कुलसुन्दरी नवमी, नित्या दशमी, नीलपताकिका एकादशी, विजया द्वादशी, सर्वमङ्गला तेरहवीं उसके बाद ज्वालामाला चौदहवीं तथा चित्रा पन्द्रहवीं इस क्रमसे वाम भाग में पृष्ठ देशमें और दक्षिण पार्श्व में पांच २ के क्रम को लेकर उस सम चौरस भूमि में निवेशित कर दी गईं । स्वयं षोडशी जो पहले बताई गई है वह सप्तदशी नित्या बन उस महामहिमामयी के तप और वीर्य के संयोग से अभिन्न हो गई (इस प्रकार मिल गई मानों अभेदभाव हो) ॥२७-३३॥

जो आरम्भ में महात्रिपुरसुन्दरी देवी रचा गई उसे देवी ने बिन्दु भूमि की अधिष्ठात्री बना कर अपने आगे स्थापित कर दिया । उसके द्वारा नौ संख्या में योगिनियां जो पहले वर्णित हैं उनके साथ भी पृथक् पृथक् कृत्यों के दायित्व देने के प्रति यथाक्रम नाम दिया गया ॥३४-३५॥

प्रकटा च ततो गुप्ता तथा गुप्ततरा परा । सम्प्रदायाऽकुलोत्तीर्णा निर्भगा च रहस्यका ॥३६॥
तथैवाऽतिरहस्याख्या पराऽपररहस्यका । निवेशिताः क्रमेणैता देव्या चक्रेषु तच्छृणु ॥३७॥
चतुरस्त्रे नृपदले नागपत्रे ततः परम् । मनुदिग्दिङ्नागवह्निकोणेषूर्ध्वे पृथक् पृथक् ॥३८॥
ततः सा प्रकटाऽऽख्याना योगिनी स्वविनिर्मिताः । दशशक्तीरधो भूम्यां क्रमेण विनिवेशयत् ॥३९॥
पुनः सृष्टाऽष्टशक्तीस्तु ब्राह्म्याकीर्मातृकाऽऽत्मिकाः ।
वर्गशक्तीर्द्वितीयस्यां भूमिकायां निवेशयत् ॥४०॥
ततः ससर्ज शक्तीनां दशकं प्रकटाऽभिधा । तृतीयभूनिकायां ताः क्रमेणाऽभिनिवेशयत् ॥४१॥
अथ गुप्ताऽभिधानाऽपि दृष्ट्वा नृपनिवेशनम् । असृजत्तावतीः शक्तीरथ गुप्ततराऽभिधा ॥४२॥
सम्प्रदायाऽकुलोत्तीर्णा निर्भगाच पृथक्पृथक् ।
स्वस्संस्थानसम्मित्याऽसृजच्छक्तीर्विचित्रिताः ॥४३॥
शक्तीर्विभावयामास रहस्याः सप्तसङ्ख्यकाः । रहस्यतरनाम्नी च शक्तिमेकां ससर्ज ह ॥४४॥

प्रकटा (१) फिर गुप्ता (२), तथा परा गुप्ततरा (३) सम्प्रदाया (४) अकुलोत्तीर्णा (५) निर्भगा (६) रहस्यका (७) अतिरहस्या नामक (८) तथा परापररहस्या (९) ये देवियां क्रम से चक्रों में निविष्ट की गई उसे सुन ॥३६-३७॥

चतुरस्त्र नृप (सोलह) दल में अष्ट पत्र में फिर चतुर्दश दश, सत्रह और चारों कोणों में ऊपर पृथक् पृथक् उसने प्रकटा नामवाली अपनी बनाई हुई योगिनियों को दशशक्तियों के अधः प्रदेश की भूमि में क्रम से निविष्ट किया ॥३८-३७॥

फिर ब्राह्मी आदि मातृका रूपवाली अष्ट शक्तियों को बना कर वर्ग की इन शक्तियों का द्वितीयभूमिका में सन्निवेश कर दिया । तदनन्तर प्रकटाभिधा (प्रकटा नामवाली आद्या) ने दश शक्तियों की रचना की । उन्हें तीसरी भूमिका में क्रमशः अभिनिविष्ट कर दिया ॥४०-४१॥

अनन्तर गुप्ता नामवाली शक्ति ने षोडश शक्तियों के निवेशन को देख कर उतनी ही गुप्ततर शक्तियों का सर्जन भगवती ने किया । सम्प्रदायाकुलोत्तीर्णा और निर्भगा ने पृथक् पृथक् अपने अपने स्थानों की सम्यक्प्रकार से मान के अनुसार विचित्र शक्तियों को बनाया । उन्होंने रहस्यमयी सात संख्याकी शक्तियों की विभावना (रचना)की । रहस्यतरा नाम की एक शक्ति को रचा ॥४२-४४॥

अणिमाद्या अपि पृथक् ससृजुः शतशोंऽशतः। शक्तीः स्वस्वसमाकाराऽऽयुधवस्त्रविभूषणाः॥४५॥
विन्दुचक्रेश्वरी या सा महात्रिपुरसुन्दरी। विनियुक्ता मूलदेव्या शक्तीनामभिधाऽऽकृतौ ॥४६॥
चकार तत्तत्कर्माऽनुरूपं नाम पृथक् पृथक्। तृतीयभूमिकादेव्यो याः सृष्टा दशसङ्ख्यकाः॥४७॥
मुद्रातत्त्वविधानज्ञाः सर्वमुद्रात्ममूर्तयः। आहरन्ति मुदं देव्यस्तस्मान्मुद्रासमाऽऽह्वयाः ॥४८॥
मुदमुत्पाद्य या लोकान् क्षोभयन्त्यतिमात्रकम्। द्रावयत्याकर्षयति वशयेन्मादयत्यपि ॥४९॥
बीजयत्यङ्कुरयति चारयत्यपि खे तथा। त्रिखण्डयति योन्यात्मभावमानयतीश्वरी ॥५०॥
इति मुद्रा वीर्यवत्यः ख्याताः सङ्क्षोभिणीति च। विद्राविण्याकर्षणी च ततः पश्चाद्वशङ्करी ॥५१॥
उन्मादिनी महाङ्कुशा त्रिखण्डा खेचरी तथा। बीजा योनिः क्रमादेता दिक्षु कोणेष्वधोर्ध्वयोः॥५२॥
भूमिकात्रितयेऽप्येवं ब्राह्मी माहेश्वरी तथा। कौमारी वैष्णवी वाराही माहेन्द्री ततः परम्॥५३॥
चामुण्डा च महालक्ष्मी(:) एवमाद्ये स्थिता इमाः।
ब्रह्मादीनां समानाङ्गाऽऽयुधाऽऽभरणवाससः ॥५४॥

अणिमा आदि ने भी पृथक्-पृथक् अंशसे सैकड़ों ही शक्तियों को अपने अपने समान आकृति (रूप) आयुध, वस्त्र और विशिष्ट आभूषणोंवाली देवियों को रचा। विन्दुचक्रेश्वरी जो महात्रिपुरसुन्दरी है वह मूलदेवी द्वारा इन शक्तियों के नाम और स्वरूप के निश्चय करने को नियुक्त की गई। उसने उन सबके कर्मों के अनुरूप ही उनका पृथक् पृथक् नामकरण कर दिया। तृतीय भूमिकाकी देवियां दश संख्यामें रची गयी जो मुद्रातत्त्व के विधान को भली प्रकार जाननेवाली, सम्पूर्ण मुद्रारूपों की ही साक्षात् मूर्त्तियां हैं वे अत्यन्त आनन्दका आहरण (पूर्त्ति) करती हैं इसलिये मुद्रासमनामवाली हैं। हर्ष-मुद उत्पादन करके जो लोकों को अत्यधिक मात्रा में क्षुभित करती हैं, द्रावण करती (पिघलाती) आकर्षण करती, वशीभूत करती और मादन भी करती, बीज का वयन करती है, अङ्कुरित करती हैं तथा अन्तरिक्ष में ऊंचे घुमाती है; तीन खण्ड (इच्छा, ज्ञान क्रिया रूप में) करती है वही ईश्वरी योनिरूप (उत्पत्ति) भाव को प्राप्त कराती है। इसप्रकार वीर्यसम्पन्न ये मुद्रानामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुईं। संक्षोभिणी, विद्राविणी, आकर्षणा सत्यत्वात् वशंकरी, उन्मादिनी, महाङ्कुशा, त्रिखण्डा एवं खेचरी, बीजा और योनि इस क्रम से दिशाओं में, नानाकोणों में नीचे और ऊपर की ओर निविष्ट हैं। तीसरी भूमिका में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही माहेन्द्री तदनन्तर चामुण्डा और महालक्ष्मी ये आद्यचक्र में स्थित है। ये सभी ब्रह्मा आदि देवगण के समान ही अङ्गधारिणी, अनुरूप आयुधों, आभरणों और वस्त्रों को पहनी हुई हैं ॥४५-५४॥

मुद्रास्तु लोहिताऽऽभासाः पाशमुद्राऽङ्कुशैर्युताः ।
लोहिताऽङ्कुशधारिण्यः पद्मरागसुभूषणाः ॥५५॥
अथ गुप्ताऽऽख्यया सृष्टा भक्तेष्टाकर्षणात्तथा ।
कामाकर्षिणिकाऽऽद्या स्याद् बुद्ध्याकर्षिणिका परा ॥५६॥
अहङ्काराऽऽकर्षिणी च शब्दाऽऽकर्षिणिका तथा ।
स्पर्शाऽऽकर्षिणिका तद्वद्रूपाऽऽकर्षिणिका ततः ॥५७॥
रसाऽऽकर्षिणिका गन्धाऽऽकर्षिणी चित्तपूर्विका । आकर्षिणी धैर्यपूर्वा कर्षिणी स्मृतिपूर्विका ॥५८॥
नामपूर्वाऽऽकर्षिणी च बीजाऽऽकर्षिणिका परा । आत्माऽऽकर्षिणिका तद्वदमृताऽऽकर्षिणी ततः॥५९
शरीराऽऽकर्षिणीत्येवं षोडशच्छदशक्तयः । भाविता गुप्तयोगिन्याऽग्रपत्राद्वामतः स्थिताः ॥६०॥
शुभ्राःशुभ्रांऽशुककल्पाः पूर्णतारुण्यशोभिताः ।
पाशदानसुधाकुम्भाऽङ्कुशाऽऽयुधपरिष्कृताः ॥६१॥
अनङ्गकुसुमाऽनङ्गमेखलाऽनङ्गपूर्विका । मदनाऽनङ्गमदनाऽऽतुराऽनङ्गाऽऽख्यरेखिका ॥६२॥
अनङ्गवेशिन्यनङ्गाऽङ्कुशाऽनङ्गाऽऽख्यमालिनी । एता गुप्ततराऽऽख्योत्था नागच्छदनिवेशनाः ॥६३॥

ये मुद्रायें लोहित (रक्त) आभासम्पन्न पाश, मुद्रा एवं अङ्कुशसे युक्त तथा लाल अङ्कुश धारण की हुई पद्मरागमणि के सुन्दर आभूषणों को धारी हुई हैं। अब और भक्त के इष्ट का आकर्षण करने से जो गुप्ता नाम की हैं; वे आद्या कामाकर्षिणिका, परा बुद्ध्याकर्षिणी, अहङ्काराकर्षिणी एवं शब्दाकर्षिणी स्पर्शाकर्षिणी, उसीप्रकार बाद में रूपाकर्षिणी, रसाकर्षिणा, गन्धाकर्षिणी, चित्ताकर्षिणी, धैर्याकर्षिणी, स्मृत्याकर्षिणी, नामाकर्षिणी; बीजाकर्षिणी, आत्माकर्षिणी, उसीप्रकार अमृताकर्षिणी और शरीराकर्षिणी इसप्रकार षोडश गुप्त शक्तियां है। ये गुप्त योगिनी द्वारा भावित की गई अग्रदल से वामपार्श्व में स्थित हैं ॥५५-६०॥

शुभ्रवर्णमयी, शुभ्रकिरण चन्द्रमाके समान दीप्तिसम्पन्न पूर्ण यौवनवती, पाश, अभय, सुधापूर्णकुम्भ, और अङ्कुश आयुध से परिष्कृत अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना, अनङ्गमदनातुरा, अनङ्गरेखा, अनङ्गवेशिनी, अनङ्गाङ्कुशा, अनङ्गमालिनी ये नागसंख्यावाले अष्टदलपर विराजमान गुप्ततरानामक शक्तियां हैं ॥६१-६३॥

ांऽशुककल्पा दिक्कोणक्रमतः स्थिताः । पाशं नीलोत्पलं पात्रमङ्कुशं पाणिषु स्थितम् ॥६४॥
ीक्षिणी विद्राविणी चाऽऽकर्षिणी चाऽऽह्लादिनी ।
सम्मोहिनी स्तम्भिनी च जृम्भिणी च वशङ्करी ॥६५॥
नी चोन्मादिनी च ततश्चैवाऽर्थसाधिनी । सम्पत्तिपूरणी मन्त्रमयी द्वन्द्वक्षयङ्करी ॥६६॥
दायोद्भाविता मनुकोणेषु संस्थिताः । अग्राद्वामक्रमेणैव रक्ताभांऽशुकभूषणाः ॥६७॥
ऽमृतघटाऽऽदर्शाऽङ्कुशशोभिचतुर्भुजाः । सिद्धिप्रदा सम्पत्प्रदा ततः पश्चात्प्रियङ्करी ॥६८॥
ाऽऽज्ञाकारिणी च ततः कामप्रदा स्मृता । दुःखाद्विमोचनी तद्वन्मृत्युप्रशमनी ततः ॥६९॥
विघ्नवारिणी चाऽङ्गसुन्दरी तदनन्तरम् ।
सौभाग्यदायिनी पङ्क्तिकोणे प्राग्वत् समास्थिताः ॥७०॥
भूषणपेटीश्चाऽङ्कुशं पाणिचतुष्टयैः । दधाना विशदाऽऽकारांऽशुकभूषणभूषिताः ॥७१॥
र्णाः समुदिताः शक्तयो यौवनाऽन्विताः । ज्ञानशक्तिरैश्वर्यप्रदा ततो ज्ञानमयी स्मृता ॥७२॥
व्याधिविनाशिनी चाऽऽधाराद्यास्वरूपिका । ततः पापहराऽऽनन्दमयी रक्षास्वरूपिणी ॥७३॥

र्णकी किरणों के सदृश रंगवाली दशों दिशाओं के कोणों के क्रम से स्थित पाश, नील कमल, पात्र (कमण्डलु)
ा हाथोंमें धारण किये, संक्षोभिणी, विद्राविणी, आकर्षिणी, आह्लादिनी, सम्मोहिनी, स्तम्भिनी, जृम्भिणी,
वं रञ्जिनी, उन्मादिनी, अर्थसाधिनी, सम्पत्तिपूरणी, मन्त्रमयी, द्वन्द्वक्षयङ्करी सम्प्रदाय की उद्भाविता ये चतुर्दश
स्थित हैं। अग्र प्रस्तार से वामक्रम से रक्त आभावाले वस्त्र और आभूषण धारण किये हुए पाश, अमृतघट,
ङ्कुश आयुधके सहित चारों भुजायें शोभित हैं। सिद्धिप्रदा, सम्पत्प्रदा, तत्पश्चात् प्रियङ्करी, मङ्गलकारिणी,
पवं दुःखविमोचनी है, उसीप्रकार मृत्युप्रशमनी, विघ्ननिवारिणी, अङ्गसुन्दरी तथा सौभाग्यदायिनी प्रोक्त
कोण में पहले के समान समास्थित (विराजमान) हैं ॥६४-७०॥

ास्त्र, आभूषण, पेटी तथा अङ्कुश चारों हाथों में धारण किये हुए विस्तृत आकारवाले वस्त्रों और आभूषणों
हैं। ऐसी यौवन से सम्पूर्ण कुलोत्तीर्णा नामक शक्तियां पूर्ण उत्कर्षवाली कही गई हैं। तदनन्तर ज्ञान-शक्तिरूपी
ली ज्ञानमयी कही गई है। तदनन्तर आधाराद्यास्वरूपवाली व्याधिविनाशिनी है तत्पश्चात् पापहरा,

ईप्सिताद्याप्रदा चेति दशारे पूर्ववत् स्थिताः । पाशदानज्ञानटङ्ककरा रक्ताङ्गभूषणाः ॥७४॥
निगर्भाख्या भावितास्तु तरुण्यः शक्तयोऽमलाः । वशिनी मोदिनी तद्वद्विमला चाऽरुणा ततः ॥७५॥
जयिनी सर्वेश्वरी च कौलिनी चेति शक्तयः । रहस्ययोगिनीजाताः पद्मरागसमप्रभाः ॥७६॥
चापदानपुस्तकेषुकरा लोहितभूषणाः । नागकोणेषु पूर्वोक्तक्रमेण सुविराजिताः ॥७७॥
शक्तिरेका चाऽतिरहस्याऽऽख्योत्थो दक्षकोणके । एवं ताः शक्तयश्चक्रे सृष्टाः प्रकृतिशक्तिभिः ॥७८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललितामाहात्म्ये
श्रीचक्रदेवतानिरूपणं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४६२४॥

आनन्दमयी, रक्षास्वरूपिणी हैं तथा ईप्सिताद्याप्रदा दशार चक्रमें पूर्ववत् संस्थित हैं। पाश, अभय व ज्ञानमुद्रायें तथ कुदाली, निज हाथों में धारण की हुई रक्त अङ्गों की कान्तिवाली और रक्त आभूषणधारण की हुई निगर्भानामवाल तरुणी अत्यन्त विमल शक्तियां भावित की हुई हैं। वशिनी, मोदिनी, उसी प्रकार विमला तदन्तर अरुणा, तब जयिनी सर्वेश्वरी और कौलिनी ये शक्तियां रहस्ययोगिनी से समुत्पन्न हैं। ये पद्मराग मणि के समान कान्तिवाली हैं; धनु अभयदानमुद्रा, पुस्तक तथा बाण अपने करों में धारण की हुई हैं; उन्होंने लोहित वर्ण के भूषण धारणकर रक्ख हैं, न एकादश कोणों में पूर्व में कहे गये क्रम से सुष्ठु प्रकारेण विराजित हैं। एक अतिरहस्या नामक शक्ति दक्षिण को में स्थित है। इस प्रकार चक्र में वे प्रकृतिशक्तियों के सहित देवीशक्तियां रची गईं ॥७१-७८॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में ललिताख्यानस्थ श्रीचक्रान्तर्गता गुप्ता आदि से अतिरहस्या तक शक्तियों का निरूपण नामक छप्पनवां अध्याय समाप्त ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीचक्रदेवतानिरूपणवर्णनम्

श्रुत्वात्वष्टेरितं धातुः पुनः पप्रच्छ सादरम् । पितामह श्रुतश्चैतच्छ्रीचक्रं शक्तिमण्डलम् ॥१॥
शक्तीनां नाम सम्पत्तिहेतुं मे पृच्छते वद । तथाऽष्टाऽऽरे त्रिकोणे च कुतः स्थानं विशक्तिकम् ॥२॥
षोडशी स महानित्या केन सायुज्यमागमत् । एवं त्वष्टाऽनुयुक्तोऽथ प्रीतः प्राह चतुर्मुखः ॥३॥
विश्वकर्तः शृणु महागुह्यमेतन्निगूहितम् । महाश्रीत्रिपुरेशान्या सृष्टास्त्रि(नि ?)त्यास्तु षोडश ॥४॥
महात्रिपुरसुन्दर्या सृष्टास्त्वन्यास्तु शक्तयः । (?) नाम तासां पृथक्स्वीयक्रिययैव निरूपितम् ॥५॥
या सा शक्तिर्महादेवी त्रिपुराऽऽख्या महत्तरा । तस्याः सदा विलसितं जगदेतच्चराऽचरम् ॥६॥
ब्रह्मादिमूर्तिष्वंशेन संस्थिता सा महेश्वरी । जगच्चक्रक्रियाकाण्डं निर्वाहयति चिन्मयी ॥७॥

सत्तावनवां अध्याय

विधाता के कथन को सुनकर विश्वकर्मा ने फिर आदरपूर्वक पूछा, "हे पितामह ! मैंने शक्तियों के मण्डल स्प श्रीचक्र का वर्णन सुना, अब शक्तियों के नाम और सम्पत्ति हेतु को आप मुझ जिज्ञासु को बताइये और अष्टार (आठ आरे वाले) त्रिकोण में विशक्तिक (शक्ति से विशिष्ट) स्थान क्यों हैं ? षोडशी वह महानित्या किसके साथ अभिन्नरूप से मिली ?" इसप्रकार विश्वकर्मा द्वारा पूछे जाने पर श्रीब्रह्मा परमप्रसन्न हो बोले, "हे विश्वकर्तः ! यह अति गूढतम तत्त्व महा गोपनीय है, इसे सुन । महात्रिपुरेशानी ने षोडशी नित्या बनायी । महात्रिपुरसुन्दरी द्वारा अन्य शक्तियों की रचना की गयी । उनके नाम उन उन सबको पृथक् अपनी क्रियाओं द्वारा ही निरूपित हैं । जो वह शक्ति महादेवी महत्तरा त्रिपुरा नामवाली है उसका ही यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विलासमात्र है । ब्रह्मादि की मूर्त्तियों में यह महेश्वरी अपने अंश से संस्थित हो जगत्रूपी चक्र के सारे क्रियाकलाप का सञ्चालन करती है । वह अखण्ड-सत्-आनन्दमयी भी अम्बा चितिमात्रशरीरवाली, अपने स्वातन्त्र्यभर महिमा से अवभासित होनेवाली अनेक रूप

साऽखण्डैकरसाप्यम्बा चितिमात्रशरीरिणी । अनेकधाऽपि भवति स्वस्वातन्त्र्याऽवभासिनी ॥८॥
यथा सहस्ररश्मीनां पिण्डो हंसो नभोमणिः ।
एकोऽप्येनकधाप्यास्ते यथा वा वार्निधिः स्थितः ॥९॥
तरङ्गोर्मिफेनमय एकोऽनेकात्मना तथा । दर्पणः प्रतिबिम्बानां सहस्रेण यथा स्थितः ॥१०॥
तथैषा परमा चाऽपि भेदाऽभेदमयी स्थिता ।
शक्तयोंऽशात्मिकास्तस्या अणिमाद्याः प्रकीर्तिताः ॥११॥
तस्याः स्वातन्त्र्यवशतः स्थूलाऽऽकारपरिग्रहः। या शक्तिर्यत्क्रियाहेतुर्नाम तस्यास्तथास्थितम्॥१२॥
एवं सृष्टाः शक्तयस्ता महामायाविमोहिताः। स्पर्धाश्चक्रुः संस्थितिषु स्थाननाचोच्चभावतः॥१३॥
दृष्ट्वा तच्छक्तिचक्रेषु कश्मलं समुपस्थितम् । महादेव्याज्ञया प्राह महात्रिपुरसुन्दरी ॥१४॥
शृणुध्वं शक्तयः सर्वा मम वाक्यं हि साम्प्रतम् । स्पर्धाक्रोधात्मनामत्र स्थानं देवीसमीपतः ॥१५॥
दुर्लभं तत्तपोयोगात् स्थानं विन्दथ नाऽन्यथा। इत्युक्त्वाऽऽदौ स्वयञ्चक्रे तपः सुमहदद्भुतम्॥१६॥

धारण करती है। जैसे सहस्र किरणों का समूह सतत गमनशील हंस रूप गगनमणि सूर्य नानाविध प्रतिबिम्बों में भासता है और जैसे समुद्र एक होकर भी विविधरूपों में स्थित है तरङ्ग (विशाल लहरें) ऊर्मि (लोल लहरें) और झागों के रूप से एकही अनेक रूपसे है (वैसे ही यह भगवती नानारूपों में स्थित है)। जैसे दर्पण एक हो हजारों प्रतिबिम्बों के सहित है वैसे यह परमा देवी भी भेदरूपा और अभेदरूपा है। उसकी अंशरूपा शक्तियां अणिमादि कही गयी हैं ॥१-११॥

उसके स्वातन्त्र्यभर के कारण स्थूल रूपका धारण होता हैं जो शक्ति जिस जिस क्रिया का कारण है उसका नामकरण भी उसीप्रकार का है ॥१२॥

इसप्रकार रची गई उन शक्तियों ने महामाया के प्रभाव से विमोहित हो नीचे और ऊँचे भाव से स्वस्थान की प्राप्ति के लिये परस्पर स्पर्धा (होड़) की। उन शक्तिचक्रों में परस्पर में विग्रह उपस्थित देख महादेवी की आज्ञा से त्रिपुरसुन्दरी ने कहा, "हे शक्तियो ! अब तुम सब मेरा कथन सुनो, स्पर्धा तथा क्रोध करने वाली तुम देवियों के लिये यहां देवी के समीप स्थान दुर्लभ है; इसलिये अपनी तपस्या के द्वारा समुचित स्थान प्राप्त करो अन्यथा

दृष्ट्वा तपस्यभिरतां महात्रिपुरसुन्दरीम् । अन्याः सर्वा अपि तपश्चक्रुर्नियतमानसाः ॥१७॥
एवं शक्तिगणे तत्र तपस्यभिरते सति । अगात् कालो दीर्घतमस्तदा तुष्टाऽवदत् परा ॥१८॥
वत्सास्तुष्टाऽस्मि तपसा स्थानं योग्यं दिशामि वः। इत्युक्त्वा स्थानमदिशन्महात्रिपुरसुन्दरी ॥१९॥
परा तस्यै सर्वचक्राणामीश्वरीत्वं ददौ परा। अथ नित्याऽऽत्मशक्तीनां त्र्यस्त्रभूमौ निवेशनम् ॥२०॥
प्रतिपार्श्वं पञ्चकस्य चाऽथ नित्या तु षोडशी । प्रदिष्टसम्मुखस्थानाऽप्यमन्यत न तद्बहु॥२१॥
पुनरातिष्ठदत्यन्तं तपः परमदुष्करम् । एवं कामेश्वरी तद्वद्भगमालिनिकाऽपि च ॥२२॥
न तत्स्थानमलं मत्वा तपश्चक्रतुरुत्तमम् । एवं तपस्यभिरते शक्तिमण्डलके शिवा ॥२३॥
एकाकिनीं स्वामपश्यन्न तत् सम्यगमन्यत। तावद्विज्ञायाऽभिमतं महात्रिपुरसुन्दरी ॥२४॥
त्रिपुराऽङ्गायुधेभ्यश्च दशशक्तीर्विसर्जयत् । ता विसृष्टाः स्थितेः स्थानं महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥२५॥
पप्रच्छुः प्राह ता देवी तपसा स्थानमीक्षथ। इत्युक्त्वा तप एवोच्चैश्चक्रुः प्राक् शक्तिभिः सह॥२६॥

रहीं।" यह कहकर सबसे प्रथम उसीने भलीप्रकार अत्यन्त अद्भुत तप किया। महात्रिपुरसुन्दरी को तपस्या में लीन देख कर अन्य सभी शक्तियों ने खूब मन का निग्रह कर तपस्या की ॥१३-१७॥

इसप्रकार वहां शक्तिगण के तप करते करते बहुत अधिक दीर्घ समय बीत गया तब परा भगवती ने प्रसन्न हो कहा, "हे पुत्रियो ! मैं तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट हूँ; तुम्हें अपने योग्य स्थान देती हूँ।" यह कह कर महात्रिपुरसुन्दरी ने उनके लिये स्थान बता दिये ॥१८-१९॥

परा ने महात्रिपुरसुन्दरी है को सम्पूर्ण चक्रों के ऊपर स्वामित्व दिया। अनन्तर उन नित्य आत्मशक्तियों को त्रिकोणवाली भूमि पर पांचों के लिये प्रत्येक पार्श्वमें स्थान प्रदान किया। नित्या षोडशी ने सम्मुख स्थान देनेपर भी उसे अपनी इच्छानुसार अधिक नहीं माना। फिर उसने परम कठिन तप किया। इसीप्रकार कामेश्वरी और वैसे ही भगमालिनी ने भी अपने दिये स्थान को उपयुक्त न मान उत्तम तपस्या की। इसप्रकार शक्तिमण्डल की इन देवियों द्वारा पूजन करने पर शिवा ने अपने को अकेली देख उसे उचित नहीं माना। तभी महात्रिपुरसुन्दरी ने भगवती परा के अभिप्राय को जानकर भगवती त्रिपुरा के अङ्गों तथा आयुधों से दश शक्तियां छोड़ी। उन्होंने छूटते ही महात्रिपुरसुन्दरी से अपने रहने का स्थान पूछा। तब देवी ने कहा, "तुम सब तपस्या द्वारा अपने स्वस्थानको खोजो।" यह कह पहले कही गई शक्तियों के साथ हो वे तपस्या करने लगी ॥२०-२६॥

पुनर्देवी स्वपरितो मत्वैकामवलोकयत्। अवलोकनतो जाताः शक्तयो वेदसङ्ख्यकाः ॥२७॥
काञ्चनाऽऽभाः पद्मधराः शुभ्रवस्त्रविभूषणाः। दृष्ट्वा शक्तिगणं सर्वं तपस्यभिरतं सदा ॥२८॥
मनो दधुस्तपस्येव त्वष्टस्ता अपि संययुः। भूयो ददर्श परितो जातं शक्तिचतुष्टयम् ॥२९॥
पाशाऽभयवरस्तृणिधरा रक्ताङ्गभूषणाः। त्रिणेत्राश्च तपस्येव रता दृष्ट्वा च पूर्वजाः ॥३०॥
पुनः सृष्टास्तथाऽन्याश्च पाशपुस्तकमालिकाः। दधाना अङ्कुशाश्चापि रक्तवर्णविभूषणाः॥३१॥
पुनः सृष्टाश्शक्तयश्च तावत्यः स्फटिकप्रभाः। पाशाभयवरस्तृणिधराश्च तप आस्थिताः ॥३२॥
सृष्टाः पुनश्च तावत्यो रक्ताऽऽकारविभूषणाः। तपस्येव रतास्ताश्च दृष्ट्वा शक्तीः पुरः स्थिताः ॥३३॥
अथ दृष्ट्वा तपः प्रौढ़ं प्राह तां त्रिपुरेश्वरी। नित्यां षोडशिकां वत्से वरं ब्रूह्यभिवाञ्छितम्। ॥३४॥
सायुज्यमेव सा वव्रे सर्वां मत्वाऽल्पिकां स्थितिम्। प्राप्ता च परया तत्र सायुज्यं षोडशी परा॥३५॥

फिर देवी ने स्वयं चारों ओर अपने को अकेली मानकर देखा। देखने से चार शक्तियां आविर्भूत हो गईं। सभी सुवर्ण की आभासम्पन्न, पद्म धारण की हुई, अत्यन्त शुभ्र वस्त्र और जगमगाते आभूषणों से सजी थी। हे विश्वकर्मन्! सब शक्तिसमूह को तपस्या करते देख वे भी तपस्या में मन लगाने चली गयी। परा ने चारों ओर फिर देखा तो चार शक्तियां आविर्भूत हो गयी, ये पाश, अभय तथा वर मुद्रायें और अङ्कुश धारणकी हुई रक्तवर्ण के अङ्गोंवाली तथा आभूषण धारण की हुई त्रिनेत्रा (तीन नेत्रधारिणी) थीं। अपने से पहले आविर्भूत शक्तियों को तपस्या में ही संलग्न देख कर वे भी तपस्या करने लगीं। तब फिर अन्य शक्तियों की रचना परा ने की ये पाश, पुस्तक, माला और अङ्कुश धारी हुई रक्तवर्ण के आभूषणों से विशेषतया सजी हुई थी। फिर पराम्बा ने स्फटिक की कान्तिवाली उतनी ही शक्तियां बनायी। पाश, अभय एवं वरमुद्रायें तथा अङ्कुशधारिणी इन्होंने तप में स्वयं को लगाया ॥२७-३२॥

फिर उतनी ही रक्तवर्ण की आकृतिवाली और विभूषणधारिणी थी। उन्होंने भी अपने सामने शक्तियों को तपस्या करते देख तप में ही रत होना निश्चित किया। उन सब की पूर्ण प्रौढता को प्राप्त हुई तपस्या को देख त्रिपुरेश्वरी ने उस नित्या षोडशिका से कहा, "हे वत्से! तू अपना अभीष्ट वर मांग।" उसने अन्य सब स्थिति को बहुत ही अल्प समझ सायुज्य (एकरूपता) प्राप्ति ही मांगी। वहां परषोडशी ने उस पराम्बा भगवती के साथ सायुज्य प्राप्त कर लिया ।३३-३५॥

जाताः स्वाङ्गतो देव्याश्चतस्रः पञ्चधा च ताः ।

स्वयन्तु पञ्चमी भूत्वा तासां तुष्टा समास्थिता ॥३६॥

पञ्चकतां तेन प्रापुस्ता नामपञ्चकम्। रत्नेश्वरीत्वमाद्यानां कामधुक्त्वं ततः परम् ॥३७॥

कल्पलतेशित्वं ततः कोशेश्वरीपदम्। लक्ष्मीश्वरीत्वमन्त्यानां शक्तिवृन्दाऽऽसने स्थितिम् ॥३८॥

कश्च ददौ शक्तिसहस्रेश्वरतां शिवा । रत्नाः कामदघाः कल्पलताकोशाऽभिधायुताः ॥३९॥

क्ष्मीसमाख्यास्ताः शक्तीस्त्वष्टर्जानीहि ताः पृथक् ।

पञ्चविंशतिसाहस्रसंख्यास्तास्तु पृथक्पृथक् ॥४०॥

नाः स्वस्वनाथं प्रत्येकन्तुसहस्रकम् । पञ्चसाहस्र ससंख्याका मूलदेव्यास्तु शक्तयः॥४१॥

लक्ष्मीस्तत्र चाऽऽद्या राजमातङ्गिनी परा । तृतीया भुवनेशानी तुर्या वाराहिका मता ॥४२॥

स्वर्य इमाः प्रोक्तास्ततः कामदुघाः शृणु ।

सुधापीठेश्वरी चाऽऽद्या सुधासूश्च ततः परा ॥४३॥

जो देवी के अपने अङ्ग से चार शक्तियां हुई वे पांच प्रकार की उदित शक्तियां बनी उनमें स्वयं पांचवीं बनकर उन सब पर सन्तुष्ट हो विराजमान आस्थित हो गई। उन्हें पांच पांच के क्रम श्रेणीबद्धता से पांच नामों द्वारा पृथक् पृथक् संज्ञा दी गयी । आद्यशक्तियों में प्रथम रत्नेश्वरी का पद उसके बाद देखुता फिर कल्पलतेशी फिर कामेश्वरीपद व अन्तवाली शक्तिको लक्ष्मीश्वरी नाम दिया और शक्तिवृन्द के आसन उन्हें स्थिति बता दी । प्रत्येक को शिवाने शक्तिसहस्रों की ईश्वरता देदी । वे रत्ना, कामदुघा, कल्पलता, कोशा की आख्या एवं लक्ष्मीसमाख्यावाली शक्तियां थी । हे विश्वकर्मन् ! उन्हें पृथक् पृथक् जानो । पांच हजार संख्या में पृथक् पृथक् अपने अपने गणनाथ की सेवामें परायण वे प्रत्येक के साथ एक हजार संख्या वाली थी। मूलदेवी की शक्तियां पांच हजार संख्या में है ॥३६-४१॥

आद्या सिद्धलक्ष्मी, अपरा राजमातङ्गिनी, तृतीया भुवनेशानी और चतुर्थी वाराही मानी गयी है; ये रत्नेश्वरी नाम वाली गयी हैं। तत्पश्चात् कामदुघा शक्तियों को सुनो, आद्या सुधापीठेश्वरी, तब दूसरी सुधाप्रसू, तृतीया

तृतीया चाऽमृतेशानी तुर्या चाऽन्नप्रपूरणी । अथ कल्पलतास्तत्र पञ्चकामा ततः परा ॥४४॥
पारिजातेश्वरी चाऽपि कुमारी च ततः परा । पञ्चबाणेश्वरी चाऽथ परंज्योतिस्ततः परा ॥४५॥
परा निष्कलशाम्भवी चाऽजपा मातृका परा ।
इति कोशेश्वरीः प्रोक्ताः शृणु लक्ष्मीश्वरीस्ततः ॥४६॥
लक्ष्मीश्चाऽथ महालक्ष्मीस्त्रिशक्त्याद्या ततः परा। साम्राज्यलक्ष्मीश्च रमा चेति पञ्चकदेवताः ॥४७॥
एवं पञ्चकदेवीनां तपसा परितोषिता । ददौ समीपसंस्थानं बिन्दुचक्रोपरि क्रमात् ॥४८॥
आग्नेयादिषु कोणेषु तपसस्तु प्रकर्षतः । मातङ्गिन्याश्च वाराह्या ददावतुलसम्पदम् ॥४९॥
मन्त्रिणीत्वं सर्वलोककार्यमन्त्रणहेतुताम् । वाराह्या दण्डिनीत्वञ्च दुष्टदण्डनेहतुताम् ॥५०॥
ततः कालान्तरे हेमहरिन्मणिसुवप्रयोः । मध्यं स्थानं ददौ देवी प्रसन्ना परिसेवनात् ॥५१॥
एवं तपोविशेषेण तुष्टा स्थानं पुनर्ददौ। कामेश्वरी च वज्रेशी भगमालिनिका च या ॥५२

अमृतेशानी और चौथी अन्नपूर्णा है। अब कल्पलता शक्तियों को गिनो; उसमें पञ्चकामा, फिर पारिजातेश्वरी तत्पश्चात् कुमारी तब पञ्चबाणेश्वरी और आगे परा ज्योति फिर परा निष्कलशाम्भवी तब परा अजपा फिर मातृका ये कोशेश्वरी शक्तियां कहलाती हैं। तत्पश्चात् लक्ष्मीश्वरी शक्तियों की गणना सुनो; लक्ष्मी, महालक्ष्मी, त्रिशक्तियों की आदिभूता (त्रिशक्त्याद्या), फिर साम्राज्यलक्ष्मी और रमा ये पांच देवियां हैं ॥४२-४७॥

एवम्प्रकारेण पांचों देवियों की तपस्या से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर भगवती नित्याने बिन्दुचक्र के ऊपरवाला समीप का स्थान क्रम क्रम से उन्हें प्रदान किया। भगवती ने आग्नेय आदि कोणों में उन दोनों मातङ्गिनी और वाराही देवियों की तपस्या अत्यधिक प्रकृष्टता से उन्हें अतुल सम्पत्ति दी। सम्पूर्ण लोककार्य की मन्त्रणा के हेतुभूता 'मन्त्रिणी' का पद और वाराही के लिये दुष्टजन के दण्ड देने के हेतुरूप 'दण्डिनी' पद प्रदान किया ॥४८-५०॥

तत्पश्चात् कालान्तर में सुवर्ण और हरिन्मणि (पन्ना) के सुन्दर तट प्रान्तों के बीचवाले प्रान्त में उनकी सेवा से प्रसन्न होकर देवी भगवती ने स्थान दिया। आद्या ने इस प्रकार उनके तप की विशेषता होने से अति परितुष्ट हो फिर सुयोग्य स्थान प्रदान किया। जो कामेश्वरी, वज्रेश्वरी तथा भगमालिनी हैं उन्हें समयदेवा का पद

समयदेवीत्वं दत्त्वा स्वाऽग्रे च पृष्ठतः। वामे च दक्षिणे पार्श्वे स्थानं देव्यभिकल्पयत् ॥५३॥
विता तु या देवी रहस्यतरनाम या। सा प्राप तपसोत्कर्षाद्वज्रसालाऽन्तरे भुवि ॥५४॥
धिपत्यं वज्रनदीतीरे मन्दिरसंस्थितिम्। वज्ररत्नेश्वरीत्वञ्च तेन वज्रेश्वरी मता ॥५५॥
त्रिकोणकोणेषु स्थानं कामेश्वरीमुखाः। प्रापुस्तपस आधिक्यात्तथा कामेश्वरी पुनः ॥५६॥
ऽष्टेषु द्वितीयञ्च स्थानं प्राप्ता तपोबलात्। तथाऽन्या अपि शक्तिस्तु महात्रिपुरसुन्दरी ॥५७॥
ा तया च स्थानेषु क्रमेण विनिवेश्यत्। एवं नवसु चक्रेषु विभज्य विनिवे य च ॥५८॥
तत्तदधिष्ठात्री नवधा समजायत। त्रिपुरा त्रिपुरेशी च तथा त्रिपुरसुन्दरी ॥५९॥
त्रिपुरवासिनी त्रिपुराश्रीस्ततः परा। त्रिपुरमालिनी त्रिपुरा सिद्धा त्रिपुराऽम्बिका ॥६०॥
ी च स्वयं तन्त्र महात्रिपुरसुन्दरी। तत्तदावरणाऽऽद्याऽग्रे स्थिता तत्सदृशाऽऽकृतिः ॥६१॥
व्याऽभिमुख्येन संस्थिताः सर्वशक्तयः। तथा ब्रह्मादिभिर्दृष्ट्वा सर्वं शक्तिगणाऽऽवृतम् ॥६२॥
न तत् सम्यगिति कामेशः प्रार्थितोऽभवत्। कामेश भगवन् देव त्वमपि सृज स्वांऽशतः ॥६३॥

देवी ने अपने आगे और पीठ के पीछे वाम और दक्षिण पार्श्व में उनका स्थान निश्चित किया। जो देवी
नामवाली उद्भावित की गई उसने (वज्रसाल वज्र की चाहार दीवारी) के अन्दर की भूमि में अधिपतित्व और
ी के तीर पर अपने निवासलोक को प्राप्त किया; वज्ररत्नेश्वरी का पद देने से ही वह 'वज्रेश्वरी' कही
५-५५॥

फिर त्रिकोण के कोनो में कामेश्वरी प्रमुख शक्तियों ने अपनी अपनी तपस्या की अधिकता से स्थान प्राप्त
और फिर कामेश्वरी ने अष्टार (आठ कोनेवाले स्थान) में तपस्या के बल से द्वितीय स्थान पाया। तथा अन्य
ों को भी महात्रिपुरसुन्दरी द्वारा स्थान दिया गया। उस देवी ने क्रमशः उन उन स्थानों पर उन्हें विराजमान
इसप्रकार देवीवृन्द को नवों चक्रों में विभाग और विशेष स्थान देकर वह स्वयं उन उन की अधिष्ठात्री बनकर
में हो गई। त्रिपुरा, और त्रिपुरेशी तथा त्रिपुरसुन्दरी तदनन्तर त्रिपुरवासिनी, त्रिपुराश्रा फिर त्रिपुरमालिनी;
सिद्धा, त्रिपुराम्बिका और नवमी वहां स्वयं महात्रिपुरसुन्दरी उन उन आवरण देवियों के आदिअग्र
उन उन की समान आकृतिवाली स्थित हो गई। ये सभी शक्तियां मूलदेवी की ओर सम्मुखीन हो स्थित हैं।

परिवारं शिवाकारं नैतदौपयिकं यतः । मन्यामहे शक्तिगणं केवलं विषमन्त्विति ॥६४॥
अथ कामेश्वरो देवः स्वांऽशाच्छक्त्यंशतोऽपि च ।
उभयांऽशात्तदन्यस्मादसृजद्वे दसङ्ख्यकान् ॥६५॥
मित्रीशषष्टीशौड्डीशचर्यानाथाऽभिधास्ततः । पुस्तकाऽभीतिवरचिह्नधानान् स्फटिकप्रभान् ॥६६॥
श्वेतवस्त्राऽऽकल्पयुतांस्त्रिणेत्रान् रक्तशक्तिकान् । पद्माऽऽसनसमासीनान् प्रसन्नवदनेक्षणान् ॥६७॥
तान् गुरून् शक्तिमन्त्राणामकरोच्छान्तविग्रहान् ।
पृथग्विद्यागुरून् यूयं सृजध्वमिति चाऽब्रवीत् ॥६८॥
अथाऽऽद्यास्तत्र दिव्याख्यान् सिद्धाख्यानपरस्तथा ।
तृतीयो मानवाऽऽख्यांस्तु गणानसृजत क्रमात् ॥६९॥
मुनिवेदनागसंख्यान् सर्वविद्यागुरूनथ । नाथान्नवाऽसृजत्तुर्यः कालमूर्तीन्महाप्रभान् ॥७०॥

अनन्तर ब्रह्मादि ने सम्पूर्ण श्रीचक्र को शक्तिगणों से आवृत देख कर इसे उचित न मानकर भगवान् दिव्यरूप कामेश से प्रार्थना की, "हे देव ! षडैश्वर्य सम्पन्न कामेश ! आप भी अपने अंश से शिवाकार परिवार रचिये क्योंकि इसे हम समुचित नहीं मानते कि केवलमात्र शक्तिगण की स्थिति हो, जो असमीचीन है ॥५६-६४॥

अनन्तर कामेश्वर देव ने अपने अंश से और शक्ति के अंश से दोनों के समानांश से चार मित्रीश, षष्ठीश, उड्डीश एवं चर्यानाथ नामक देवगणकी रचना की । ये स्फटिकके समान स्फीत आभावाले, पुस्तक, अभय, वर और ज्ञान मुद्राधारी, स्वशरीर पर श्वेतवस्त्र धारण किये, तीन नेत्रवाले, रक्तवर्ण की शक्तियों सहित, सभी पद्मासन से समानरूप से आसीन प्रसन्नमुखमुद्रा धारण किये और नेत्रों में प्रसन्नताके भाव दरसाये स्वरूपसे सम्पन्न थे । कामेशने उन शक्तिमन्त्रों के गुरुजनों को शान्त शरीरधारी बनाया । उन्हें कामश्वर ने कहा कि तुम पृथक् पृथक् विद्या के गुरुओं को रचो । अनन्तर आद्य ईश्वर ने दिव्यनाम वाले, द्वितीय ने सिद्ध नामक और तृतीय ने मानवाख्यगणों की क्रम से रचना की ॥६५-६९॥

सात, चार और नौ संख्यावाले सर्वविद्यागुरु एवं नौ नाथों को जो कालमूर्त्ति महाप्रभासम्पन्न थे, उन्हें चतुर्थ ईशने रचा । इस प्रकार गुरुमण्डल की क्रमिक रचना हुई । आगे त्वरिता ने भी उग्रतर तपस्याकर पृष्ठभाग

पाण्डलमेवन्तु सृष्टमुग्रतरं तपः । तप्त्वा प्राप स्थानमपि त्वरिता पृष्ठभागके ॥७१॥
त्रिपङ्क्तिरूपेण मन्दिराणि क्रमेण तु । दिव्यसिद्धमानवौघगुरूणां संस्थितानि हि ॥७२॥
स्थानं प्राप्नुवन्ति त्रिपुरां परमेश्वरीम् । पूर्णोपासनयोगेनोपास्य शास्त्रोक्तमार्गतः ॥७३॥
भिर्बोधिताः पश्चात् प्रयान्ति परमं पदम् । इति ते पृष्टमाख्यातं रहस्यं परमं महत् ॥७४॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये श्रीचक्रे दिव्यौघादिदेवतानिरूपणवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४६८६॥

स्थान प्राप्त किया, वहां तीन पंक्तियों में दिव्य, सिद्ध और मानवौघ गुरुओं के मन्दिर स्थित हैं। वहां पूर्ण उपासना योग से शास्त्रों में प्रतिपादित विधिके अनुसार त्रिपुरा परमेश्वरी की आधराना कर साधकगण उस आत्यन्तिक परमेश्वर पदको प्राप्त करते हैं। इस प्रक्रिया में आचार्य गुरुगण द्वारा भलीप्रकार बोध पाकर साधकगण सबके बाद परम पद के अधिकारी होते हैं। इसप्रकार तुझे जो अत्यन्त महागूढतम रहस्य पूछा गया था, उसे बताया ॥७०-७५॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के ललितामाहात्म्यप्रकरण में ब्रह्मा तथा विश्वकर्मा के सम्वाद के प्रकरण में श्रीपुर में कामेश्वरीकामेश्वरद्वारा देवी-देवगणके नाना शक्तिचक्र-संस्थानस्थापन का वर्णन नामक सत्तावनवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

श्रीपुरवर्णनम्

अथ भूयश्चतुर्वक्त्रं त्वष्टा पप्रच्छ सादरम् । जगद्विधे ! त्वां पृच्छामि गुरवस्त्वौघरूपिणः ॥१॥
कुतः समानसङ्ख्याका नाऽभवंस्तन्ममेरय । नाम तेषाञ्च सर्वेषामथाऽग्नेः कुण्डमीरितम् ॥२॥
तत्राऽग्निश्चिन्मयः केन जातस्तदपि वर्णय । तत्र कुण्डे भवद्भिश्च स्त्रीरूपा केन हेतुना ॥३॥
विचिन्तिता पराशक्तिर्वदैतत् कारणं विभो । न तृप्याम्यद्भुतकथां संशृण्वन्नपि भूरिशः ॥४॥
को नु तृप्येत्पराशक्तेः स्वात्ममूर्तेः कथाऽमृतम् । पिबन्नपि चिरं दैवहतं स्थाणुमृते क्वचित् ॥५॥
तन्मे प्रब्रूहि भगवन् श्रोतव्यं यदि मे भवेत् । श्रुत्वा विश्वकृतोक्तं तत् प्रसन्नः प्रपितामहः ॥६॥
समाहितः शृणु कथां त्वष्टश्चित्रां पुरातनीम् । पार्वतीं सर्वतो गुप्तां प्रसन्नः प्रब्रुवे तव ॥७॥

अट्ठावनवां अध्याय

अब ब्रह्मा को विश्वकर्मा ने फिर पूछा, "हे जगद्विधातः ! मैं आप से पूछता हूँ कि ओघरूपधारी गुरुगण क्यों समान संख्यामें नहीं हुए वह मुझे कहिये; उनके नाम और आगे अग्नि का कुण्ड आपने बताया, उसमें चिन्मय अग्नि का किसके द्वारा प्रादुर्भाव हुआ उसे भी बतायें। उस कुण्डमें आपने पराशक्तिको किस हेतुसे स्त्रीरूपमें भावना कर ध्यान पूर्वक देखा ? हे विभो ! आप उसका कारण समझावें। मैं अद्भुत कथा को बारम्बार सुनता हुआ भी तृप्ति अनुभव नहीं करता, यह सत्य है कि कौन व्यक्ति अपनी आत्ममूर्त्ति पराशक्तिके कथारूपी अमृत पान से अघाता हो ? केवल वही पुरुष जो दैव का मारा और जडबुद्धि के समान ठूंठ है उसे छोड़ अन्य कोई भी इस दिव्यगुणसम्पन्ना भगवती के महती कथारूपी अमृत पान से तृप्त नहीं होता ॥१-५॥

इसलिये हे भगवन् ! यदि मेरे सुनने योग्य हो तो आप विशेषरूप से मुझे बतलाइये।" विश्वकर्मा के उस कथन को सुनकर प्रपितामह ने प्रसन्न हो आदेश दिया, "हे त्वष्टः ! खूब सावधान होकर नाना चित्रविचित्र आख्यानों वाली पुरातन कथा को सुन, जिसे श्री शंकरजी ने पार्वती को सब ओर से गुप्तरूपमें रखकर कहा था, उसे मैं प्रसन्न हो

त्राद्यास्तु ये सृष्टा राजराजेश्वरेण ते । वाग्विद्यागुरवः सर्वे स्वच्छसंवित्तिरूपिणः ॥८॥
न्ती मध्यमा चेति वैखरी च परा तथा । चतुर्विधा शब्दमयी पराशक्तिर्विजृम्भते ॥९॥
क्रमं ते प्रवक्ष्यामि सर्वत्रैव सुगोपितम्। त्रिपुराख्या हि या शक्तिः स्वच्छसंवेदनामयी ॥१०॥
त्र वागिन्द्रियाणि मनो वाऽप्यस्ति सर्वथा। सर्वास्तिसारभूताऽऽत्मरूपिणी परमेश्वरी ॥११॥
र्मो धर्मवान् वाऽपि सर्वधर्मविवर्जनात् । सर्वाऽऽश्रयचितिः स्वच्छा केवला वागगोचरा॥१२॥
चैतन्यमात्मेति न ततो विद्यतेऽधिकम् । तदेव सर्वस्वातन्त्र्यमतो मायाख्यमीरितम् ॥१३॥
र्वाऽपर्यनुयोज्यमाहात्म्यमखिलाऽऽश्रयम् । स्वयं स्वात्मानममलं विकल्पयति भूरिशः ॥१४॥
व सर्वजगज्जालमेष समीरतः । विकल्प एव शब्दात्मा स्थूलमध्यविभेदतः ॥१५॥
कारणभेदाभ्यां चतुर्विधमिति स्थितम् । तत्र स्थूलन्तु यद्रूपं वैखरीति प्रकीर्तितम् ॥१६॥

कहता हूँ। मित्रीशआदि जो राजराजेश्वर कामेश्वर भगवान् द्वारा रचे गये वे स्वच्छ स्फटिक संवित्तिरूपवाले वाणी विद्यागुरु हैं । पराशक्ति ही पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी और परारूप में चतुर्विध प्रकार हो शब्दमयी जती है ॥६-९॥

उस क्रमको मैं तुझे बताऊंगा जो भलीप्रकार से गोपित है (रहस्यमय रूपसे गूढ हैं)। त्रिपुरा नामकी जो शक्ति ह स्वच्छ सम्वेदनामयी है; वहां न तो वाणी और न अन्य चक्षु आदि इन्द्रियां और न मन ही वहां पहुंच पाता है। ी अस्तित्वों की सारभूत आत्मरूपा वह परमेश्वरी है। उसमें अनिर्वचनीयता है, वहां न धर्म है, न धर्मवान् है धर्मों के विवर्जन होने से सम्पूर्ण तत्त्वों का आश्रय चिति स्वच्छ अद्वितीया और वाणी से अगोचर है। उसका स्वरूप आत्मा है; उससे अधिक अन्य कुछ नहीं है; वही सर्वस्वातन्त्र्यभरतावाली है। अतः माया नाम से ी गई है। यह अतर्क्य और अपर्यनुयोज्य (मन वाणी से इत्थंभूत प्रतिपाद्य न होनेवाली) माहात्म्यवाली अखिल ाश्रय है, वह स्वयं अमल आत्मा स्वरूपा ही बहुविधप्रकार से विशेष रूप से रचना करती है; स्वलीलामात्र से ी जगज्जाल को बनाती है। यह समीर (वायु-मारुत) चलने से विकल्प शब्दात्मा स्थूल और मध्य के विभेद ा सूक्ष्म तथा कारणभेदों से चार प्रकार का है। उसमें जो स्थूलरूप है, वह वैखरी कहलाता ९-१६॥

तत्र ध्वन्यात्मकोऽव्यक्तो वर्णात्मा व्यक्त ईरितः ।
तल्लौकिकऽलौकिकत्वाद्विधा सर्वत्र संस्थितः ॥१७॥
तत्राऽव्यक्तः सप्तविधो नादब्रह्माङ्कुरात्मकः । षड्जर्षभौ च गान्धारमध्यपञ्चमधैवताः ॥१८॥
निषाद इति सप्तैते तन्त्रीकण्ठादिजाः स्वराः ।
रागाऽब्धिभूताऽग्निदस्रनागसंख्याविभेदिनः ॥१९॥
एवं तु भूयो भेदेन न सङ्ख्येया भवन्ति ते । तदेतद्देवसंस्थानं गुरवः सप्तसङ्ख्यकाः ॥२०॥
दिव्यौघास्तेन सम्प्रोक्ता मित्रीशेन प्रभाविताः ।
व्यक्तस्त्वलौकिको विद्यामयः कूटचतुष्टम् ॥२१॥
तदाश्रयाः सिद्धगणास्तेनैते वेदसङ्ख्यकाः । सिद्धौघगुरवः प्रोक्ताः षष्टीशप्रतिभाविताः ॥२२॥
लौकिको मातृकाऽऽत्मा स्यादष्टकूटेश्वरीमयः । तत्संश्रया मानवाः स्युरतस्ता वसुसंख्यकाः ॥२३॥
एकोनविंशतिमिता एवमोघत्रयस्थिताः । औड्डीशप्रभवा एते वसुसंख्यास्तु मानवाः ॥२४॥

उसमें ध्वनिरूपवाला अव्यक्त है; वर्णात्मक व्यक्त कहलाता है वह लौकिक और अलौकिक होनेसे द्विविध प्रकार से सर्वत्र स्थित है । उसमें नादस्वरूप ब्रह्मके अङ्कुरवाला उक्त ध्वनि सात प्रकार का है:- षड्ज, ऋषभ, गन्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ये सात वीणा और कण्ठ आदि से उत्पन्न स्वर हैं; इनकी षट्, सप्त, पञ्च, चार और नव संख्या के भेद से विभिन्नविविधतायें हैं ॥१७-१९॥

इस प्रकार फिर वारम्वार भेद होने से इनकी इदमित्थं संख्या में गिनने के योग्यरूप नहीं हैं । यह देवसंस्थान ही सात संख्यावाले गुरु हैं, उसी से दिव्यौघ कहे जाते हैं; ये मित्रीश से प्रभावित हैं । व्यक्तरूप अलौकिक विद्यामय है; चार कूटवाला है; उसके आश्रय में रहनेवाले सिद्धगण वेद(चार) संख्या वाले हैं; ये सिद्धौघ कहलाते हैं एवं षष्ठीश के द्वारा प्रभावित हैं ॥२०-२२॥

लौकिक मातृकारूपवाले मन्त्रमय आठ कूटेश्वरीमय हैं उनके आश्रय में मानव हैं अतः वे आठ संख्या वाले है उन्नीस परिमित संख्या में ये तीन वर्ग के ओघों में स्थित हैं । औडडीश भगवान् से उत्पन्न ये आठ संख्या में मानवौघ हैं ॥२३-२४॥

कालमयः सर्वो मात्रात्रयपराऽवधिः । ध्वनिराशिः समायुक्तो वर्णराड्यष्टकेन च ॥२५॥
नवनाथा वै चर्यानाथसमुद्भवाः । कालस्याऽवच्छेदकास्ते तुरीयपदसंश्रयाः ॥२६॥
ताऽथ विमर्शाख्योऽथाऽऽनन्दो ज्ञानसंज्ञकः ।
सत्यः पूर्णः स्वभावाऽऽख्यः प्रतिभः सुभगाऽभिधः ॥२७॥
मे नवनाथास्तु ओघानामधिनायकाः । ओघश्चतुर्विधो विद्याविभेदाद्युगभेदतः ॥२८॥
तत्वाच्छक्तिमिश्रा गुरवः संव्यवस्थिताः । ओघस्तु पञ्चमोऽपि स्याद्गुरुविद्याप्रवर्तकः ॥२९॥
कादशरसमितास्ते चक्रबाह्यगाः । वयं दिव्यभावाः सिद्धाः कुमाराद्याश्च मानवाः ॥३०॥
नृसिंहा इति प्रोक्ता गुरवस्त्वोघसम्भवाः । अथाऽग्नेश्चिन्मयत्वं ते वर्णयामि क्रमाच्छृणु॥३१॥
णौ तृतीयो यो महादेवो महेश्वरः । तमःक्रियः सत्त्वमूर्तिर्विकसच्चिन्मयाऽन्तरः॥३२॥
ां देहमध्यस्थं मार्गत्रयमनामयम् । दक्षवाममध्यसंस्थं पिङ्गलेडासुषुम्णकम् ॥३३॥

सब शब्द कालमय है, तीन मात्राओं की परमअवधिवाला ध्वनिराशि से युक्त एवं वर्ण आदि आठ वर्ग से
ई उसी चर्यानाथ से उत्पन्न हुए ये नवनाथ हैं। काल के अवच्छिन्न (लव, तुटि आदि) करनेवाले तुरीय पद के
में रहते हैं। ॥२५-२६॥

प्रकाश और विमर्श, आनन्द, ज्ञानसंज्ञावाला, सत्य, पूर्ण, स्वभावकी आख्यावाला, प्रतिभ, सुभग और नामके ये
के अधिनायक मेरे नवनाथ हैं। विद्याविभेदसे, व युगभेदसे ओघ चार प्रकार के हैं। मिश्रित होने से शक्तिमिश्र
कथित हैं। गुरुविद्याप्रवर्त्तक पांचवां ओघ भी है। द्वादश, एकादश और रस (षट् संख्या) मित वे चक्र के
त हैं। हम दिव्यभाववाले, कुमार आदि सिद्धौघके एवं नृसिंह आदि मानव ओघसम्भव गुरु कहे जाते हैं।
के की चिन्मयता तुझे बताता हूँ उसे क्रमशः सुनो। गुणमूर्त्ति देवगण में जो तृतीय महादेव महेश्वर है वह
विकासमान है, परन्तु सत्त्वमूर्त्ति है, चिन्मयशक्ति उसके अन्तर में
विकासमान है, के शरीर में अनामय मार्गत्रय है, जो दक्ष, वाम और मध्य संस्थ है, पिङ्गला इडा तथा सुषुम्णा नाडियोंवाला
के ही इच्छा, क्रिया और ज्ञानमय हैं। उसमें दो पिंगला एवं इडा भिन्न भिन्न रूप में स्थित हैं,

इच्छाक्रियाज्ञानमयं तत्र भिन्नं द्वयं स्थितम्। बद्धं मध्यं ज्ञानमार्गं विद्वांसः प्राहुरार्यकाः ॥३४॥
चित्स्पन्दरूपिणी रुद्धा पार्श्वाभ्यामूर्ध्वनिर्गता। क्रियामिच्छां चेतयति मर्त्यास्तेन हि चेतनाः ॥३५॥
क्रियेच्छामात्रसंयुक्ता ज्ञानमार्गस्य रोधतः। आश्रयीभूतचिन्मात्रस्योर्ध्ववाहाच्च चेतनाः ॥३६॥
तिरश्चामूर्ध्वमार्गाणां संरोधात्तिर्यगा स्थितेः। न चेतयन्ति ते भूतं भव्यञ्च क्वचिदात्मनि ॥३७॥
तेनाऽचेतनतुल्यास्ते तिर्यञ्चः सर्व एव हि। एवं स्थिते महादेवो यस्त्रिनेत्रस्ततोऽधिकः ॥३८॥
अस्माकमन्तःसम्भिन्ना मध्यनाडी चिदास्पदा। तेनाऽन्तरस्मद्विज्ञानं पूर्णं समुपलक्ष्यते ॥३९॥
महादेवस्याऽन्तरे तु ज्ञानोद्रेकात्तदूर्ध्वतः। फालदेशे विनिर्भिन्ना मध्यनाडी चिदात्मिका ॥४०॥
अन्तस्तमोद्रेकभावाच्चिदेवाऽग्नितया स्थिता। तस्मात्तन्नेत्रसम्भूतश्चिदग्निरिति विश्रुतः ॥४१॥
अथ तत्तेऽभिधास्यामि स्त्रीरूपा चिन्तिता यतः। शृणु लोके विश्वकर्मन् यत्सुखं तच्चिदात्मकम्॥४२॥

बीचवाला जो सुषुम्णा नाड़ी का ज्ञानमार्ग है, वह बद्ध (गुप्तरूप) से है इस तथ्य को श्रेष्ठ विद्वद्वृन्द कहते हैं ॥२७-३४॥

चित्स्पन्दरूपिणी दोनों पार्श्वों से रुद्ध(रुकी) हुई ऊपर की ओर निकली है; वही क्रिया और इच्छा को प्रेरणा प्रदान करती है, इसीलिये मर्त्यप्राणी चेतन कहलाते है। क्रिया और इच्छामात्रसे युक्त ज्ञानमार्ग के रुकने से आश्रयी-भूत चिन्मात्रके ऊर्ध्ववाहके कारण उनके चेतननाम अन्वर्थ हैं। ऊर्ध्वमार्गवाले तिर्यग्गतिसम्पन्न प्राणियों के सम्यक्प्रकार के रोध से तिर्यगा स्थिति के कारण वे अन्तःसज्ञा (बाह्यरूप से मूकवत्) रहते हैं इसलिये आत्मा में भूत (बीता) और भव्य (भविष्य) को वे चेतना नहीं करते हैं। इसीलिये सभी तिर्यक् प्राणी अचेतनतुल्य ही हैं। ऐसी स्थिति होने पर जो त्रिनेत्र महादेव है वह उनसे अधिक कलासम्पन्न है। हम लोगों के अन्तर में व्याप्त मध्यनाडी चिति का स्थान है उससे अन्तःस्थित हमारा विज्ञान पूर्णतया समुपलक्षित होता है। महादेव के अन्तर में ज्ञान का अधिक विस्तार होने से उसके ऊर्ध्वभाग से भाल प्रदेश में चिदात्मिका मध्यनाडी विशेषरूपसे फैली चली गई है। अन्तःस्तब्ध तमोद्रेक भाव से चिति ही अग्निरूप से स्थित है; इसलिये उस नेत्र से उत्पन्न "चिदग्नि" रूप में यह प्रसिद्ध है ॥३५-४१॥

अब मैं किस प्रकार इस चिदग्नि की स्त्रीरूपा भावना चिन्तित की गई उसे कहूँगा, हे विश्वकर्मन्! सुन। लोक में जो सुख है वह चिदात्मक है अतएव सुख में पशुओं (घृणा, लज्जा आदि आठ पाशों में बद्धमनुष्यों) की

सुखे पशूनाञ्च प्रीतिः सर्वात्मना स्थिता। सुखावहं सुन्दरञ्च लोके प्रत्यक्षभावनात् ॥४३॥
रूपं सुन्दरञ्च तस्माल्लोके जनैः सदा । प्रेक्ष्यते योषितां रूपं सुखसाधनभावतः ॥४४॥
त्वेऽभिधास्यामि सा या चिद्रूपिणी परा ।

स्ववैभवात्मकं विश्वं स्वातन्त्र्येण प्रकाशितम् ॥४५॥
या स्वाऽऽत्मनः शक्त्या नियतं सर्वमेव हि। अभिमानो वृथा मोहादहं कर्तेति संस्थितः ॥४६॥
कर्ता स्वयं स्याच्चेत् कुतोऽन्यत् प्रसमीक्ष्यते । तथाऽप्यसम्मतप्राप्तिर्भवेद्वा कथमीरय ॥४७॥
तत् सृष्ट्यादिकं किञ्चित् सर्वं तस्या विजृम्भितम् ।

तस्माद्योषिन्मयध्यानं तयैव प्रविभावितम् ॥४८॥
विश्वस्य वैचित्र्यं तत्स्वातन्त्र्यनिबन्धनम् । एवं स्थिता महाराज्ञी चिन्तामणिगृहे तदा ॥४९॥
दृष्ट्वनाऽन्तःस्थं वीक्ष्य तद्गृहराजकम् । मत्वा तदपि नो सम्यङ्महादेवः सदाशिवः ॥५०॥
व्याज्ञांसमादाय निर्ममे प्रोक्तवत्पुरम् । ब्रह्माण्डेषु स्थिता देवा दैत्या मर्त्यादयोऽपि ये ॥५१॥

क प्रीति ही सर्वात्मभाव से स्थित है। लोक में प्रत्यक्ष भावना से देखा गया है कि सुखदायक और सुन्दर की
ीतिकामना करते है। स्त्री का रूप कमनीयतया सुन्दर है, इसलिये मनुष्यगण सदा सुखसाधन के भाव से स्त्रियों
को देखते हैं ॥४२-४४॥

तुझे एक और युक्ति भी बताऊंगा, जो परा चिद्रूपिणी है वही सर्वाधिष्ठानभूता है, जो अपने वैभवविस्तार से
ी अपनी स्वातन्त्र्यभरता से प्रकाशित करती है। उसने अपनी आत्मशक्ति नियति द्वारा सबको ही अपने
में नियतकर रक्खा है, 'मोह के कारण' 'मैं कर्त्ता हूँ' मैं भोक्ता हूँ आदि अभिमान वृथा है। यदि कर्ता स्वयं हो
प्रकार से फलादि क्यों देखा जाता है ? फिर भी असम्मत प्राप्ति होती है (जो अपना अभीष्ट है उससे
मिलता है) वह क्यों ? सो बता ॥४५-४७॥

इसलिये सृष्टि आदि जो कुछ है वह सब ही उसका विजृम्भणमात्र (लीलाविलास) है। इसलिये योषिद्रूपका
उससे प्रकृष्टरूप से विभावित (उद्घाटित) किया गया है। सम्पूर्ण विश्वका वैचित्र्यमय जो विधान है वह सब
स्वातन्त्र्यमहिमा का निबन्धन (क्रियाकलाप) है। इस प्रकार चिन्तामणि गृह में स्थित महाराज्ञी है। तब महा-
में अन्तःस्थित उस गृहराज को देख कर महादेव सदाशिव ने उसे भलीप्रकार समुचित न मानकर श्रीदेवी की
कर पूर्व में कहे गये पुरका निर्माण किया। ब्रह्माण्डों में स्थित जो देव, दैत्य और मर्त्य आदि प्राणिगण हैं, वे

उपास्य त्रिपुरेशानीं सालोक्यां मुक्तिमाययुः । ते तत्र तत्तत्स्थानेषु निवसन्ति पृथक् पृथक्॥५२॥
इन्द्रब्रह्मादयोऽप्येवं निवसन्ति चिरं पुरे । तत्तद्वप्रान्तरभुवि स्वाम्यं प्राप्य सुनिर्मलम् ॥५३॥
तत्तत्कालप्रमाणस्य नियुतं प्रोष्य वै ततः । विशन्ति परमं भावमवाङ्मनसगोचरम् ॥५४॥
तदन्तरे तु सम्प्राप्ता विधीन्द्रेन्दुमुखादयः । पूर्वं संस्थितसायुज्यं लब्ध्वा तिष्ठन्ति सर्वतः ॥५५॥
साम्प्रतं यो विधिस्तत्र विद्यते तेन संयुताः । ब्रह्माण्डान्तरसम्प्राप्ताः षष्टिसाहस्रसंख्यकाः ॥५६॥

भगवती त्रिपुरेशानी की उपासना कर I सालोक्य (आत्मेष्टदेवता के लोक की प्राप्तिरूपा) मुक्ति को प्राप्त हो गये। वह लोग उन उन स्थानों में पृथक् पृथक् निवास करते हैं। इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवगण भी इसी प्रकार उन उन वप्र (दलों) की अन्तर्भूमिकाओं में दीर्घ कालतक उस पुर में रहते हैं। वे सब उस उस स्वान्तर भूमि में अत्यन्त निर्मल स्वामित्व प्राप्तकर अपने अपने बँधे नियुक्त काल को नियतक्रिया द्वारा सम्पादन कर फिर वाणी तथा मन से गोचर न होनेवाले परम भाव में प्रवेश कर जाते हैं। उसके बाद ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र प्रमुख आदि देवगण पूर्व में कथित स्थित सायुज्य (अभेद प्राप्ति) को पाकर सब ओर निवास करते हैं ॥४८-५५॥

अभी जो ब्रह्मा वहां विद्यमान है उसके साथ अन्य ब्रह्माण्डों को प्राप्त हो साठ हजार संख्या में छ सो तिरसठ ये देवगण ब्रह्माके साथ II सायुज्यपदवी को प्राप्त हो गये हैं। यह तुझे श्रीपुर के विषय का सम्पूर्ण मान बताया। इसी

I साधक के उपेयभूत परब्रह्मस्वरूपिणी भगवती के साक्षात्काररूपी चमत्कार में 'सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य' नामक चार प्रकार होते हैं। 'सालोक्य' जगत्क्षेत्र, सातों गिरिक्षेत्र, नव कमलरूप षोडश क्षेत्र के मध्य स्थित श्रीभगवती परा के नगरों में विविधवृक्षों के महोद्यान से आरम्भ कर जो चिन्तामणि मन्दिर है वह जैसे जैसे साधक की तपस्या के परिपाक के कारण बीच बीच में अन्तर कक्षाओं से युक्त नाना चित्रविचित्र मणि आदि से खचित विविध वृक्ष सरोवर से आवेष्टित भूमिका में स्थित देवताओं के सहित भगवती का जो सम्पूर्ण लोक है; उसमें वह प्रवेश करता है। भगवती के उपासक को भी इष्ट देवता के समान लोकत्व प्राप्ति यह प्रथमा सिद्धि है।

II सार्ष्टि (सलोकता) की सिद्धि के अनन्तर साधक की भगवती के चरणारविन्दका सादर ध्यान करते करते अभ्यासवश से तैलधाराके समान इष्टदेवताके महान्तःपुरस्थ चिन्तामणि गृहराजके बाह्यमञ्च, वितर्दिका का वास करता है जो 'सामीप्यसिद्धि' होती है; उससे आगे अखिल लोकमातृकाओं के उपसंख्यानपूर्वक 'सारूप्यसिद्धि' क्रमशः प्राप्त होती है। इसमें जो भगवती का अत्यन्त त्रैलोक्य अभिराम रूप है, उसका आत्मा में धारण होता है निरन्तर मध्य मध्य में इसीभावका संरम्भपूर्वक अनुसंधान करते रहने से साधक को 'सारूप्य' की प्राप्ति कही गयी है। अन्ततः चतुर्थी सिद्धिका क्रम आता है। इसमें सर्वप्रकार से भेदाकारवृत्ति का त्याग कर आराध्य इष्ट तथा साधक के बीच 'यह मेरी स्वामिनी और मैं इसका दास' इत्यादि भेद की मलिनता होकर एकाकार वृत्ति की तरह विश्लेषकथा से अनभिज्ञ परमानंद से परिपूर्ण निस्तरंग समुद्र की प्रख्यावाली, वायुरहितनिष्कम्पदीपक की शिखा के आकारवाली भावना का निरन्तर बोध होना "सायुज्य" पद है। ज्योतिर्मयी स्फुरत्ता का अखण्ड प्रवाह से सत्ता और स्फूर्ति, प्रकाश एवं चिन्मयता की अभिव्यक्ति (भावना) आत्मा तथा परा के भेद को हटाकर जल में जल के समान, क्षीर में क्षीरवत् एकाकार रूप में सम्पद्यमान होने से साधक काल के और देश अन्तर को पारकर अखण्ड रूप से इस अनिर्वचनीय मधुमती भूमिका में स्थित हो हजारों एवं लाखों ही वर्षों की अवधि तक अखण्ड चिन्मयानन्द में निमग्न रहता है।

द्वशतञ्च त्रिषष्टिश्च सायुज्यं ब्रह्मणा गताः । इति ते सर्वमाख्यातं मानं श्रीपुरसंस्थितम् ॥५७॥
अब मेरौ प्रोक्तरीत्या पुरं रचय सुन्दरम् । यत्र श्रीपुरसाम्राज्ञी त्रिपुराम्बा भविष्यति ॥५८॥
यत्र स्थितां नित्यं पश्यामो नेत्रसुन्दरीम्। इति धातृवचः श्रुत्वा विश्वकर्माऽतिविस्मितः ॥५९॥
निर्मातुं श्रीपुरं देव्या मेरुशृङ्गे मनो दधे । विभावयन् विधिप्रोक्तं हर्षनिर्भरिताऽन्तरः ॥६०॥
इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललितामाहात्म्ये श्रीपुरवर्णनपूर्वकं
सायुज्यपदवीपर्यन्तंसिद्धिप्राप्तिवर्णनं नामाऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४७४९॥

अब पूर्वोक्त रीति से सुन्दर पुरकी रचना कर, जहां त्रिपुराम्बा श्रीपुरकी सम्राज्ञी होगी; वहां पर स्थित उस नेत्रसुन्दरी म्बा को नित्य देखते रहेंगे। इस प्रकार विधाता के वचन सुनकर विश्वकर्मा अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने ब्रह्माके नानुसार मेरु के शिखर पर श्रीपुर बनाने का हर्षोत्फुल्ल अन्तःकरण से निश्चय किया ॥५६-६०॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्डान्तर्गत ललिता के माहात्म्य के त्रिपुरोपाख्यान में श्रीत्रिपुरा की भक्ति से सालोक्यादि सिद्धियों का वर्णन नामक अट्ठावनवां अध्याय समाप्त ॥

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

हयग्रीवागस्त्यसम्वादे नारदेन भण्डसमुद्बोधनवर्णनम्

एवं श्रुत्वा हयग्रीववाक्यमत्यन्तसुन्दरम् । कुम्भोद्भवः प्राह भूयस्तत्कथाश्रवणोत्सुकः ॥१॥
भगवन्नश्ववदन भण्डदैत्यः समागतः । तपोविघ्नं निर्जराणां चिकीर्षन् वह्निनाऽऽवृतान् ॥२॥
देवान्निशाम्य विमुखः प्रयातः शून्यपत्तनम् । ततः किमकरोत्तत्र तन्मे वद सुविस्तरम् ॥३॥
संशृण्वन् ललितेशान्याः कथां कथयतस्तव । पुनः श्रोतुं समीहा मे वर्धतेऽतितरां ननु ॥४॥
एवं पृष्टः कुम्भजेन मुनिः प्राह हयाऽऽननः । शृणु कुम्भोद्भव कथां विचित्रां परमाऽद्भुताम्॥५॥
अपयाते भण्डदैत्ये देवर्षिरथ नारदः । शून्यकं प्रत्याजगाम शरदभ्रमिवाऽम्बरात् ॥६॥
तमायन्तं देवमुनिं भण्डदैत्यो विहायसि । ददर्श वृष्टमेघाभं वादयन् वल्लकीं शुभाम् ॥७॥

उनसठवां अध्याय

भगवती त्रिपुरा के श्रीपुर के वर्णन को हयग्रीव मुनि के वचनों से अत्यन्त सुन्दरता से प्रतिपादन किये गये इस प्रकार सुनकर उस परा की परम पवित्र कथा के सुनने को लालायित अगस्त्य ने फिर कहा, " हे भगवन् ! हयग्रीव ! देवगण के तप में विघ्न करने की इच्छा से भण्ड दैत्य आया था फिर उन्हें अग्नि से घिरे देख पुनः विमुख लौटकर शून्यकपुर में चला गया; तदनन्तर उसने क्या किया ? वह मुझे विस्तारपूर्वक बताइये। श्रीभगवती ललितेशानी की कथा आप के द्वारा कहने से सुनते हुए (मन नहीं अघाता) निश्चय ही वारंवार फिर अतिशय रूप में सुनने की इच्छा अत्यधिक बढती जाती है।" इसप्रकार अगस्त्य के द्वारा पूछने पर हयग्रीव मुनि बोले, "हे कुम्भसम्भव अगस्त्य ! परम अद्भुत विचित्र कथा सुन। भण्ड दैत्यराज के स्वनगर में चले जाने के अनन्तर देवर्षि नारद अम्बर से शरत्कालीन मेघ के समान आकाश मार्गसे शून्यकपुर में उतर आ गये। भण्ड दैत्यने वर्षा के बरसे हुए बादल की आभाके समान अपनी शुभ वीणा को बजाते हुए आकाशसे उतरते देवर्षि को देखा। उसने उठकर सादर अभिवादनपूर्वक स्वागत कर मुनि

मुद्यम्य समानीय मुनिं दैत्यः प्रपूजयत् । सम्पूज्य विधिना प्राह कृताञ्जलिरिदं वचः ॥८॥
देवर्षे स्वागतं नूनं चिरात्तेऽहं समीप्सितः । कृपया पश्य शिष्यं ते दुर्लभं ते कृपेक्षणम् ॥९॥
ब्रूहि कच्चिन्निर्जराणां प्रक्षीणानां स्थितिं स्थिराम् ।

प्रायो विप्रा भीरवो हि गुरुर्मे भयमोहितः ॥१०॥
मद्बाहुवीर्यमविदं देवाऽसुरभयावहम् । देवाः शक्तिमुपासीनाः प्रसन्ना यदि सा भवेत् ॥११॥
विजयस्ते ध्रुवं स्यात्तस्माद्विघ्नं समाचर । इत्युक्तोऽहं दैत्यगणैस्तत्राऽऽयातो जिघांसया ॥१२॥
वह्निज्वालाऽवलीढांस्तान् दृष्ट्वा देवान् सवासवान् ।

हृष्टः प्रत्यागतः स्थानं तत्र पृच्छामि प्रस्तुतम् ॥१३॥
किं दावाग्निना ग्रस्ता देवा भस्मत्वमाययुः । कश्चित्तत्र विमुक्तो वा तन्मे शंस मुनीश्वर ॥१४॥
इष्ट एवं देवमुनिः प्रहस्य प्राह दैत्यपम् । दैत्येश्वरेभ्योऽसूया मे न कर्तव्या कदाचन ॥१५॥
नाऽनृतं कुत्रचिद्ब्रूमो वयं सत्यैकसंश्रयाः । प्रभाषसे कथं मुग्ध इव त्वं पण्डितोऽपि सन् ॥१६॥

की पूजा की। विधिपूर्वक पूजाकर हाथ जोड़ इसप्रकार वह बोला, "हे देवर्षे! आपका स्वागत है; आपके दर्शन बहुत दीर्घ समयसे हुए। आप अपने शिष्य को कृपादृष्टि से भावित करें; अवश्य ही आपकी कृपादृष्टि सर्वदा दुर्लभ है। देवगण अत्यन्त निर्बलता की स्थिति में स्थित हैं कि नहीं सो मुझे बतावें ॥१-१०॥

ब्राह्मण प्रायः भीरुप्रकृति के होते हैं; मेरे गुरुदेव श्रीशुक्राचार्य भय से मोहित हैं। देवगण एवं असुरों को भी भयभीत करनेवाले अपने बाहुबलको मैंने प्राप्त किया है। 'देवतागण शक्ति की उपासना में लगे थे यदि वह प्रसन्न हो गयी तो तेरी हार अवश्य ही होगी इसलिये विघ्न करो' इसप्रकार कहेजाने पर मैं अपने दैत्यगण के साथ वहां उन्हें जीतने की कामना से गया। धधकती अग्नि की उठी अत्यन्त प्रबल ज्वालाओं में घिरे इन्द्रसमेत देवगण को देख कर अत्यन्त हर्षित हो निज शून्यकपुर लौट आया। मैं उसी विषय में प्रसङ्गकी बात आपसे पूछता हूँ। किसप्रकार दावाग्नि घिर कर देवगण भस्म हो गये? उनमें कोई सा सुरक्षित भी छुटकारा पा गया कि नहीं? सो हे मुनीश्वर! आप मुझे बताइये।" इसप्रकार पूछने पर देवर्षि नारदने हँसकर दैत्यराज से कहा, "हे दैत्येश्वर! इनसे तुझे कभी भी असूया (दूसरेके गुणोंमें दोष खोजने की वृत्ति) नहीं करनी चाहिये। हम लोग कभी कहीं भी असत्य नहीं कहते; सत्य को ही

विपरीतो ननु विधिर्यस्मात्ते बुद्धिरीदृशी । शोकस्थाने हर्षयुतो यतस्त्वं वीक्षितो मया ॥१७॥
सुसमृद्धाः शत्रवस्ते महादेवीसमाश्रयात् । आविर्भूता त्वद्वधाय तोषिता शक्रमुख्यकैः ॥१८॥
चिदग्निकुण्डान्निर्याता ललिता परमेश्वरी । सर्वलोकेश्वरी दिव्यरूपाऽद्भुतमहाबला ॥१९॥
सर्वाऽऽयुधसमुपेता शक्तिसङ्घैः परीवृता । समेष्यति त्वां निहन्तुं किं तुष्यसि हि मूढवत् ॥२०॥
श्रुत्वा नारदसम्प्रोक्तं प्रहस्य प्राह दैत्यराट् । नूनं मया पुरैवोक्तं विप्राः प्रकृतिभीरवः ॥२१॥
मुने जानासि नो मां त्वं साक्षान्मृत्योर्भयङ्करम् । विष्णुः सुरेष्वतिबली स युद्धे मे पराजितः॥२२॥
पञ्चोत्तरशताण्डानामधिपोऽहं पराक्रमी । देवासुरादिस्रष्टाऽहं लोकशस्त्राऽस्त्रसन्ततेः ॥२३॥
मम वशे स्थिता ब्रह्मविष्णुमुख्यपरम्पराः । कथं भीतोऽसि स्त्रीहेतोर्निसर्गादबलाः स्त्रियः ॥२४॥
तदन्तरे भण्डदैत्यपत्न्यः सम्मोहिनीमुखाः । देवर्षिमानयामासुरवरोधे सखीगणैः ॥२५॥

एकमात्र आधार मानते हैं। तू स्वयं सदसद्विवेकशील होता हुआ भी मुग्ध (स्वार्थ से व्यामूढ) के समान किसप्रकार भाषण करता है ? अवश्य ही तेरे विधि (विधाता) विपरीत है, इसीलिये तेरी ऐसी बुद्धि हो गई है; क्योंकि तुझे जहां शोक करना चाहिये तुम्हें मैं वहां हर्षित देखता हूँ। हे भण्ड ! भगवती महादेवी की शरण में जाने के कारण तेरे शत्रु देवता अत्यन्त समृद्ध बन गये हैं; वह देवी साक्षात् त्रिपुरा शक्रप्रमुख देवगण द्वारा आराधित हो आविर्भूत हुई, चिदग्निकुण्ड से निकली, ललिता परमेश्वरी सम्पूर्ण लोकों की ईश्वरी, दिव्यरूपसम्पन्ना और अद्भुत महाबलशालिनी है, वह सम्पूर्ण आयुधों से युक्त शक्तिसङ्घों से घिरी है, जो तुझे वध करने को आयेगी। तू मूढ के समान क्या प्रसन्न होता है ?" नारद के कथन को सुन कर दैत्यराज ने हँस कर कहा, "हे देवर्षे ! अवश्य ही मैंने पहले ही बताया कि विप्रगण प्रकृति से ही डरपोक होते हैं। हे मुनिवर्य ! आप मुझे नहीं जानते कि मैं साक्षात् मृत्यु से अधिक भयङ्कर हूँ। (देखिये) देवगण में विष्णु अत्यन्त बलवान् है वह मेरे से युद्ध में हराया गया। मैं एक सौ पांच ब्रह्माण्डों का अधिपति, अत्यन्त पराक्रमी देवता एवं असुर आदि का रचनेवाला, लोकों, शस्त्रों और अस्त्रों का प्रयोक्ता हूँ और ब्रह्मा विष्णु-प्रमुख परम्परावाले देवगण मेरे वश में हैं। आप उसके स्त्री हो जाने के कारण से ही क्यों डरते हैं ? प्रकृति से स्त्रियां अबला (निर्बल) होती हैं।" ॥११-२४॥

तत्पश्चात् भण्ड की पत्नियाँ सम्मोहिनी आदि प्रमुखरानियां निज सखीगण के साथ देवर्षि को अपने अन्तःपुरमें

तं मुनिशार्दूलं सम्पूज्याऽऽसनमुख्यकैः। पाद्याऽर्घ्यैः सुबलिद्रव्यैः प्रणम्य प्राहुरादरात् ॥२६॥
वत्प्रसादेन धन्यास्त्वद्दर्शनेन च। वयमस्मान्निरीक्षस्व दृष्ट्या करुणया भृशम् ॥२७॥
गुरुपत्नीभ्यः शुश्रुमोऽत्यन्तसाध्वसम्। उत्पन्ना ललिता देवी देवैः समभिपूजिता ॥२८॥
धाय नो देवसौख्याय परमेश्वरी। तद्बोधयाऽसुरपतिं यथा नाशं न चैष्यति ॥२९॥
त्वां प्रपन्नाःस्मो निमग्ना दुःखसागरे।

उद्धराऽस्मान् दुःखसिन्धोः पाहि नः परिचारिकाः ॥३०॥
त्वा चरणौ स्पृष्ट्वा रुरुदुर्दैत्ययोषितः। वीक्ष्य तासां प्ररुदितं करुणाऽऽक्रान्तमानसः ॥३१॥
प्य दैत्यराजं तं तत्र प्रोवाच नारदः। दैत्येश्वर! मदुक्तं त्वं शृणु वाक्यं सुधासमम् ॥३२॥
ोचयाऽबलाश्चेमा मा नाशाय च बान्धवान्। हितवक्ता हि लोकेषु जनः परमदुर्लभः ॥३३॥
वार्याऽऽगमाऽपायं मधुरं यः समक्षतः। वदेत्तमभिजानीयाच्छत्रुं मित्रस्वरूपिणम् ॥३४॥

ं। वे आये हुए मुनिशार्दूलकी आसनआदि प्रमुख उपचारों, पाद्य, अर्घ्य एवं सुन्दर उपहार द्रव्योंसे भलीप्रकार पूजा ामकर आदरपूर्वक बोलीं, "हे देवर्षे! हम सभी आपकी कृपा तथा दर्शन से धन्य हो गयी हैं; हमें आप अत्यन्त ृपा दृष्टि से देखें। हमने गुरुपत्नियों से अत्यन्त विश्वस्तरूप से सुना है कि देवगण द्वारा समन्तात् अभिपूजित देवी उत्पन्न हुई है। वह परमेश्वरी हमारे पतिदेव के वध के लिये और देवगण के सौख्यार्थ आविर्भूत हुई है, आप असुरराज को इस भांति समझावें जिससे वह नाश को प्राप्त न हो। हम दुःख के समुद्र में डूबी हुईं शरण में आयी हैं आपकी परिचारिकायें हैं, हमें दुःखके अगाध सागर से उद्धार कीजिये।" यह कह कर देवर्षि ों का स्पर्शकर वे दैत्यराज भण्ड की पत्नियां रोने लगीं। उनके अत्यधिक रुदन को देख करुणार्द्रहृदय हो नारदने उन्हें दैत्यराज के पास ले जाकर कहा, "हे दैत्येश्वर! मेरे कहे हुए अमृतोपम वचन सुन। इन अबला ो कोई प्रकार से शोकका कारण उपस्थित हो ऐसा मत कर तथा न नाश के लिये उद्युक्त अपने दैत्यबान्धवों ष्ट ही। लोगों में हितकारी वाक्य कहनेवाला मनुष्य अत्यन्त दुर्लभ है। आनेवाले कष्टों को विना ो सामने ही मीठी मीठी चिकनी चुपड़ी बातें करे, उस मित्रस्वरूपी व्यक्ति को शत्रु ही समझना ॥२५-३४॥

यो ब्रूयादागमाऽपायं विमृष्य परया धिया । कटुकं ह्यौषधसमं जानीयान्मित्रमेव तम् ॥३५॥
गुरुः काव्योऽत्यन्तधीरदीर्घाऽमर्शी प्रिये हितः । तदुक्तमत्यन्तपथ्यं रोगिणो भेषजं यथा ॥३६॥
गुरूक्तमपरित्यज्य सौभाग्यं परमाप्नुयात् । तदहं प्रब्रवीमि त्वां यत्तद्दैत्यपते शृणु ॥३७॥
मन्यसे यत्स्वमात्मानं सर्वेभ्यो बलवत्तरम् । तत्राऽपि शृणु वक्ष्यामि कैटभो दैत्यशेखरः ॥३८॥
यस्याऽभून्मेदसश्चेयं मेदिनी लोकधारिणी । विष्णुना निहतो युद्धेऽप्रतिमो बलपौरुषे ॥३९॥
स्त्रियं तामबलां यत्त्वं मन्यसे तत् पुरा श्रुतम् । शुम्भासुरनिशुम्भौ च महिषश्च बलोद्धतः ।
तोऽनयैव परया महासुरबलैर्वृतः ॥४०॥
अलं ते बलदर्पेण रिपुणा स्वाऽऽत्मघातिना । न किं स्मरसि गौर्या ते युद्धे पूर्वपराभवम् ॥४१॥
गौर्यादिभिर्विशिष्टेयं ललिता परमेश्वरी । सेव्यते याऽनेककोटिगौरीप्रमुखशक्तिभिः ॥४२॥

जो व्यक्ति आनेवाले अपाय (नाश) का सूक्ष्म बुद्धि से विश्लेषण कर कडवी औषधि के समान कठोर सत्य वाणी कहे तो उसे मित्र ही जानना अभीष्ट है । दैत्यगुरु औशनस शुक्राचार्य अत्यन्त धैर्यवान्, बहुत लम्बे भविष्य की सोचनेवाले, चारों ओर से अत्यन्त विचार विमर्श कर दीर्घदर्शी परिणाम पर पहुंचनेवाले, प्रिय कार्य में हित चाहनेवाले पुरुष हैं, अपने लिये उनके कथन को तू उतना ही आवश्यक कल्याणकारक समझना जैसे रोगी के लिये भेषज-औषध का पथ्यकारी विधान । गुरुदेवकी कही हितवार्ताको न छोड़कर तू परम सौभाग्य प्राप्त करेगा। इसलिये दैत्यपते ! मैं तुझे बताता हूँ उसे सुन । यदि तू अपने को सबसे अधिक बलशाली मानता है तो इस विषय में दैत्यशेखर कैटभ का आख्यान तुझे बताता हूँ, सुन; जिस की मेदा से यह लोकों को धारणकरनेवाली पृथ्वी 'मेदिनी' नाम से प्रसिद्ध है उस बल और विक्रम में अप्रतिम सामर्थ्यसम्पन्न दैत्य को युद्ध में विष्णु ने मारा था ॥३५-३९॥

जिसे तुम अबला स्त्री मानते हो उसका वह आख्यान अत्यन्त प्राचीन (इतिहास के बताने से) काल में सुना जाता है कि शुम्भासुर और निशुम्भ तथा बलसे गर्वित हुआ महिष दैत्य महान् असुरों की सेना सहित इस परा द्वारा ही मारे गये थे । तू अपने आत्मा को हनन करने वाले बल के अभिमान से बस कर । अरे ! क्या तू उस गौरी देवी के द्वारा युद्ध में प्राप्त हुए अपने पराजय को याद नहीं करता ? ॥४०-४१॥

उन्हीं गौरी आदि शक्तियों से विशिष्ट वह परमेश्वरी ललिता स्वयं अनेक कोटियों वाली गौरी प्रमुख शक्तियों

याः शक्तेः पादनखसमं ब्रह्माण्डमण्डलम् । यस्य प्रसादादेव त्वं मन्यसे बलिनां वरम् ॥४३॥
च तस्या महादेवः पीठपादांशसम्भवः । तदलं स्वाऽऽत्मसर्वार्थनाशनाऽभिनिवेशतः ॥४४॥
माः प्रियाः साध्वीः शोचन्तीर्दैन्यमागताः ।

अहं त्वां तत्र नेष्यामि पराशक्तेः पदान्तिकम् ॥४५॥
यामि च तां देवीं त्वदर्थं सर्वयत्नतः । राज्यं प्रसाधि पाताले दिवं शासतु वासवः ॥४६॥
क्षियपरीवारान् मा विनङ्क्षीः प्रियैः सह ।

न करिष्यसि मत्प्रोक्तं यदा तर्हि विनङ्क्ष्यसि ॥४७॥
किञ्चिन्मत्प्रोक्तं श्रुतं मनसि रोचते । धिया सात्त्विकया चैतद्विमृश स्वात्मरक्षणम् ॥४८॥
र्थं नारदवचो भण्डदैत्यः प्रहस्य च । हस्तेनाऽऽदाय देवर्षिं प्रारोहत् सौधशेखरम् ॥४९॥
हप्रतीकाशं काञ्चनं सौधशेखरे । वातायने मणिमये विवेश मृदुविष्टरे ॥५०॥

अनुसेवित है । इस महाशक्ति के पैरों के नख के समान ब्रह्माण्डों का समूह भी नहीं है ; जिस की कृपा से ही तू को बलशालियों में श्रेष्ठ मानता है वह महादेव भी उसके पीठपाद के अंश से उत्पन्न है; तब तो अपने आत्मा के र्थ को नष्ट करनेवाले मिथ्या अभिमान के गर्व से स्वयं को हटा ले (मिथ्या गर्व से बस कर)। तेरी इन ाध्वी धर्मपत्नियों को देख, ये बराकी तेरे लिये चिन्ता में घुली हुई दुर्दशाग्रस्त हैं। मैं तुझे पराशक्ति के की सन्निधि में ले जाऊंगा तथा सब प्रकार से प्रयत्न कर उस देवी को तुझे क्षमा करदे एतदर्थ मनाऊंगा। ना राज्य पाताललोक में भलीप्रकार कर तथा इन्द्र स्वर्ग का शासन करे । इसप्रकार अपने राक्षसपरिवारों की क्ष; स्वयं तू अपने प्रिय लोगों के साथ नष्ट मत हो । जब तू मेरे कहे हुए को नहीं करेगा तो नाश को प्राप्त । हे दैत्येश ! कहीं मेरे द्वारा कहे गये वाक्य तेरे मन को भाये कि नहीं ? सात्त्विक बुद्धिसे अपने इस आत्मा की के उपाय को भलीप्रकार विचार ले।" भण्डदैत्य इस प्रकार देवर्षि नारद के वचन सुन कर और हँस कर हाथ पकड़ कर अपने श्रेष्ठ भवन के ऊपर लेगया । वह भवन मेरुपर्वत के शिखर के समान ाता स्वर्णमय था; उसके वातायन (झरोखे) में मणिजटित अत्यन्त कोमल आसन लगे सौधशेखर में वह प्रविष्ट ॥४२-५०॥

सन्निवेश्याऽऽसने तत्र देवर्षिं मृदुतूलजे । देवर्ष मयि रोषं त्वं न शिष्ये कर्तुमर्हसि ॥५१॥
जानामि त्वां महाभक्तं पराशक्तेः पदाऽऽश्रयम् ।
यद्ब्रवीष्यखिलं तत्ते नाऽन्यथा विदितं मया ॥५२॥
जानासि सर्वं मे वृत्तं लीलयैवं ब्रवीषि माम् ॥५३॥
अहं ननु रमादेव्या दूतो माणिक्यशेखरः । कदाचित् सा तोषणाय त्रिपुराया महत्तपः ॥५४॥
चक्रेऽब्दानां त्रिनियुतं जाह्नवीतटसंश्रया । कदाचित् किन्नरी काचित्तारुण्याऽमृतपूरिता ॥५५॥
उन्मज्जन्ती निमज्जन्ती पतिता जाह्नवीजले ।
स्रोतोऽभिरुह्यमाना सा त्रातारं नाऽधिगच्छत ॥५६॥
दृष्ट्वा करुणयाऽऽविष्ट आप्लुतः स्वर्धुनीजले । तां पृष्ठतः समारोप्य तटमारुह्य सत्त्वरम् ॥५७॥
तां समावेशयं तत्र विज्वरा सा क्षणाद्बभौ । तदङ्गस्पर्शनाच्चाहं लावण्यस्य समीक्षणात् ॥५८॥
कामेन मोहितो जातस्तामवोचमिमां गिरम् । कल्याणि त्वं रक्षिताऽसि मया मृत्योर्मुखादिव॥५९॥

वहां अत्यन्त मृदु गुदगुदानेवाली रूईवाले आसन पर देवर्षि को विराजमान कर (वह बोला), हे देवर्षे ! "आप मुझ शिष्य पर क्रोध न करें ; मैं आपको पराशक्ति के चरणों में आश्रित परम भक्त जानता हूँ । जो आप बोलते हैं वह सब मैं अन्यथा नहीं मानता । आप मेरे सम्पूर्ण वृत्तान्त को जानते हैं; लीलारूप में ही मुझे यह सब बता रहे हैं । मैं पहले भगवती रमादेवी का दूत माणिक्यशेखर था । एक बार उसने भगवती त्रिपुरा को प्रसन्न करने के लिये गङ्गा नदी के तट पर रह कर तीस हजार वर्षों तक घोर महा तपस्या की । एक दिन यौवन के अमृत रस से पूरित कोई किन्नरी उस गङ्गा के जल में डूबती उराती हुई गिर गई, प्रवाह के सामने बहती वह अपनी रक्षा करनेवाले को न पा सकी । (उसे इस असहाय अवस्था में) देख कर मैं करुणा से द्रवित हो गङ्गाजल में कूद पड़ा, उसे अपनी पीठ पर धरकर अति शीघ्र मैंने तट पर लाकर बाहर निकाल दिया । वहां क्षणभर में वह स्वस्थ हो गई । मैं उसके अंगों के स्पर्श से और सौन्दर्य के देखने से काम से मोहित हो गया । (मैंने) उससे यह वाणी कही, "हे कल्याणि ! शोभने ! तू मेरे द्वारा मृत्यु के मुखसे जैसे बचायी गयी है, तेरे अङ्गों के स्पर्श (सङ्ग) से मैं कामवश आर्त हो गया हूँ; मेरी रक्षा कर ॥५१-५९॥

त्वदङ्गसङ्गात् कामार्तो जातोऽहं रक्ष मामिह । कृते प्रतिकृतिं कुर्याच्छक्तः सर्वात्मना स्वयम्॥६०॥
अकुर्वन् प्रत्युपकृतिं निहन्त्यात्मानमात्मना ।
तन्मां कामाग्निनाऽऽविष्टमार्तं ते शरणाऽऽगतम् ॥६१॥
रक्षाऽधुना स्वात्मदानान्नो चेत् प्राणान् जहाम्यहम् ।
श्रुत्वा मद्विपरीतोक्तिं साध्वी सा किन्नरी वचः ॥६२॥
अब्रवीदमृतस्यन्दि मधुरं गुणवत्तरम् । मा बुद्धिभ्रंशमागच्छ किन्नरी पतिदेवता ॥६३॥
तपस्यभिरतो भर्ता इतो मे क्रोशपञ्चके । आस्ते तस्य प्रिया चाऽस्मि तरुच्छायेव सङ्गता ॥६४॥
नाऽतिवर्ते पतिं क्वाऽपि शृण्वन् यदपि कारणम्।य आपद्भ्यः समुद्धर्ता यश्च बाल्यप्रपोषकः।६५।
स पिता धर्मतः शास्त्रे प्रोक्तस्तस्मात् पिता मम । त्वं ते सुता धर्मतोऽहं नैवं मां वक्तुमर्हसि ॥६६॥
पुरुषः स्वात्मनः शत्रुं मनो यच्छेदपस्थलात् । नाशयेत्तं मनः शीघ्रं मनो यस्य वशे न हि ॥६७॥
विमृश स्वच्छया बुद्ध्य धीरया लोकचेष्टितम् । स्त्रीसुखं सर्वतो ह्येकं न विशेषः पशुष्वपि ॥६८॥

जिसने उपकार किया है उसके साथ बदले में अपनी पूर्ण शक्ति भर प्रत्युपकार करना इष्ट है, जो प्रतिफल को नहीं चुकाता वह अपने द्वारा अपना आत्माका हनन करता है। इसलिये कामरूपी अग्नि से घिरे आर्त (पीड़ित) तेरी शरण में आये हुए मुझे अपना शरीर दान देकर बचा ले, नहीं तो मैं अपने प्राणों को छोड़ता हूँ।" मेरी धर्मविपरीत उक्ति को सुन कर वह सती किन्नरी अमृतरस में सने अधिकाधिक गुणवत्तर मधुर वाणी में बोली, "तू अपनी बुद्धि को मत बिगाड, मैं पति को सर्वस्व अर्पणकर देवता माननेवाली किन्नरी हूँ। इस स्थान से पांच कोश पर मेरे पतिदेव तपस्या करते हैं; मैं जैसे वृक्ष की छाया उसके आश्रय में रहती है वैसे पति की सेवा में स्थित हूँ। मैं कहीं भी पति के मन के विपरीत अतिवर्तन नहीं करती; इसका जो कारण है उसे भी सुनाती हूँ। जो आपत्तियों से छुटकारा कराता है और जो बाल्यावस्था में पोषण करता है वह शास्त्रों में धर्म से पिता कहा जाता है। इसलिये तू मेरा पिता है और धर्मतः मैं तेरी बेटी हूँ, मुझे इसप्रकार (कामवश कोई अन्यथा वचन) तुझे नहीं कहना चाहिये। तू पुरुष है, अपने शत्रु मन को निन्दित स्थान से दमनकर हटा ले। जिस व्यक्ति के मन वशीभूत नहीं होता वह उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता है। अपनी शुद्ध, धीर, निर्मल बुद्धि से विचार कर कि लोगों द्वारा अनुभव किया गया जो

तत् स्वकान्तास्वेव रतिं मनसा भर नाऽन्यतः। पतिव्रतानां क्रोधाग्निं प्राप्य मा भस्मतां व्रज॥६९॥
इत्यादिहितवाक्यानि वदन्ती बहुधाऽप्यहम्। काममोहपरीताऽऽत्मा परामर्ष्टुमुपद्रुत॥७०॥
सा क्रोशन्ती रमादेव्याश्चरणान्तिकमागता। वदन्ती रक्ष रक्षेति ततस्तस्यास्तु सम्मुखे॥७१॥
परामृष्टोत्तरीये सा मया कामान्धचक्षुषा। अथष्ट्वाऽनयं देवी रमा क्रुद्धा शशाप माम्॥७२॥
नैषा देवतनुर्मूढ! दुर्विनीत तवोचिता। कृत्यं तवाऽसुरं ह्येतत्ततस्त्वमसुरो भव॥७३॥
तं शापं घोररूपन्तु श्रुत्वा कामस्य वेगतः। प्रतिबुद्धः शोकसिन्धुनिमग्नोऽभवमञ्जसा॥७४॥
समाश्वस्ता किन्नरी सा नत्वा स्वभवनं ययौ। पुनः प्राह रमादेवी मां मग्नं शोकसागरे॥७५॥
धिगनार्य मत्समीपं न वस्तुं त्वमिहाऽर्हसि। शरीरं ते घोररूपं परदाराऽभिमर्शनम्॥७६॥
गच्छत्वदृश्यतां सद्यो भव वायुशरीरकः। एवं तया प्रशप्तोऽहं भीतो देवीश्रियं तदा॥७७॥

स्त्रीविषय का सुख है वह सबओर से एक समान ही है; वह पशुओं में भी विशेष नहीं है। इसलिये अपनी ही धर्मपत्नियों में मनोयोगपूर्वक रति कर, अन्य रूपमें नहीं। पतिव्रता नारियों के क्रोधरूपी अग्नि को प्राप्त होकर तू भस्म मत हो।" ॥६०-६९॥

इस प्रकार बहुत से कल्याणकारी वाक्यों को कहती हुई उस अबला किन्नरी को स्वकाममोह के वश में होने से विपरीत आचरणके लिये कटिबद्ध मैंने कई वार बलात्कार से भ्रष्ट करने का प्रयत्न किया। वह विशेष विलापपूर्ण रोदन करती हुई रमादेवी के चरणों में "मेरी रक्षा कीजिये" इसप्रकार कहती शरणागत हुई। तदनन्तर उसके सामने भी काम से अन्धे के समान नेत्रवाले मैंने उत्तरीयवस्त्र के आवरण में उसके साथ भोग किया। अब मेरी अनीतिको देख रमा देवीने क्रुद्ध हो मुझे शाप दिया, "हे दुर्विनीत! (अत्यन्त निर्लज्ज) मूढ! यह दिव्य शरीरवाली किन्नरी तेरे भोगनेयोग्य नहीं (देख) यह तेरा दुराचरण से पूर्ण आसुरभावापन्न कार्य है, जा इससे तू असुर बन जा।" ॥७०-७३॥

उस घोररूपवाले रमा के श्राप को सुन कर मैं काम के वेग से प्रतिबुद्ध (जगा) हुआ तत्क्षण शोकसमुद्र में निमग्न हो गया। वह किन्नरी स्त्री देवीद्वारा आश्वासन पाकर उन्हें प्रणाम कर अपने भवन को चली गयी। फिर रमा देवी ने शोकसागर में डूबे मुझे उद्बोधन कर कहा, "हे श्रेष्ठआचरण से हीन नीच दुष्ट! तुझे धिक्कार है। अब तू मेरे निकट रहने के योग्य नहीं। पराई स्त्रियों के साथ बलात्कार से भोग करनेवाला तेरा शरीर घोररूप

प्रसादयं बहुविधैः प्रार्थनैः सन्ननैरपि । एवं चिरेण भूयोऽपि प्रसन्नाऽभवदम्बिका ॥७८
मया शापविमोक्षाय प्रार्थिता साऽऽह मां तदा ।

माणिक्यशेखर ! कृतं त्वयाऽत्यन्तविनिन्दितम् ॥७९॥
नैतस्याऽपचितिं चान्यां पश्यामि स्वल्पमप्युत। नाऽन्यथा मे भवेच्छापः कृतं भोक्तव्यमेव ते ॥८०॥
नष्टदेहो वायुभूतश्चिरं स्थित्वाऽसुरो भव । किन्तु तां पतितां तोये दययोद्धृतवानसि ॥८१॥
तेन पुण्यप्रपाकेन विभवं सर्वतोऽधिकम् ।

प्राप्याऽनेकाऽण्डनाथत्वं भुक्त्वा भोगान यथेप्सितान् ॥८२॥
महादेव्या हतः सङ्ख्ये प्राप्य तल्लोकसंस्थितिम् । प्राप्य तत्र चिरं कालमसुरैः प्रतिपूजितः॥८३॥
अन्ते तत्पदमासाद्य न भूयः सम्भविष्यसि । श्रुत्वैतद्वचनं भूयो ह्यपृच्छं लोकमातरम् ॥८४॥
देवि ! का सा महादेवी निहतः स्यां यया मृधे ।

सा किं त्वत्तोऽधिका देवी नाऽहं जाने तवाऽधिकाम् ॥८५॥

का हो गया है। तू शीघ्र ही आंखों से अदृश्य हो वायु का शरीर धारण कर ले।" इस प्रकार इस भगवती रमा द्वारा शाप दिया हुआ मैं भयभीत हो नाना प्रकार की अत्यन्त विनम्र अनुनय भरी प्रार्थनाओं से भगवती को प्रसन्न करने लगा। इस रूप में दीर्घकाल तक प्रार्थना करते रहने से अम्बिका फिर प्रसन्न हुई ॥७४-८०॥

जब मैंने शाप से छुटकारा करने के लिये प्रार्थना की तो वह मुझ से बोली, "हे माणिक्यशेखर ! तू ने अत्यधिक निन्दित कलुषित दुष्ट कार्य किया है इसका कोई अन्य प्रायश्चित्त मैं थोड़ा सा भी नहीं देखती; मेरा शाप कभी मिथ्या नहीं होता, जो कुकर्म किया गया है उसका फल निश्चय ही भोगना पड़ता है। अपने प्रकृत देह के नष्ट होने से तू वायुभूत हो दीर्घकाल तक राक्षस बन। परन्तु तू ने जल में गिरी उस किन्नरी को दया करके निकाला उस पुण्य के भलीप्रकार परिपाक हो जाने (उदय होने) पर सब से अधिक वैभव और अनेक ब्रह्माण्डों के ऊपर आधिपत्य (प्रभुता) पाकर तू अपने अभीष्ट भोगों को भोगकर महादेवी द्वारा मारा जाकर उसीके लोक में सायुज्य पाकर वहां असुरों द्वारा दीर्घ समय तक पूजित हो अन्त में भगवती के परम धाम को पाकर फिर संसार में उत्पन्न नहीं होगा।" इस वचन को सुनकर मैंने फिर लोकमाता रमा देवी को कहा, "हे देवि !

ब्रूहि सा कतमा का च तस्याः किं वा महित्वकम् ।

इत्यापृष्टा मया देवी प्राह श्रीलोकमातृका ॥८६॥

माणिक्यशेखर शृणु सा देवी सर्वतः परा । महाचितिस्वरूपा सा यस्याः प्रकृतिधर्मतः ॥८७

ब्रह्मा विष्णुर्हरश्चैव प्रत्यण्डं गुणमूर्तयः । ईश्वरोऽपि तिरोधानकरस्त्रिगुणजेश्वरः ॥८८॥

तत्राऽप्यनुग्रहकरः सदाशिव इतीरितः । यस्या ईक्षणलेशेनाऽनुग्रहादखिलं सृजेत् ॥८०॥

अनादिकालतो मायापाशितानणुसङ्घकान् । अनुग्रहान्मोचयितुं सृजत्येष महेश्वरः ॥९०॥

न मुक्तिः प्रलयस्थानामणूनां शून्यभावतः । देहभावं समापन्ना सृष्टौ ज्ञातुं प्रभावितः ॥९१॥

सोऽपि तस्या अंशभूत इति सा साररूपिणी । सर्वाऽऽत्मरूपा परमा चितिशक्तिरुदीरिता॥९२॥

सैवाऽस्त्यत्र जगच्चित्रभित्तिदर्पणसम्मिता । सर्वाऽऽत्मना बृंहणेन ब्रह्मशब्देन शब्दिता ॥९३॥

न स्त्री न षण्ढो न पुमांस्त्रिपुरा चिच्छरीरिणी। अवाङ्मनसगम्या सा चेत्यनिर्मुक्तचिन्मयी ॥९४॥

वह महादेवी, जिससे मैं युद्ध में मारा जाऊंगा, कौन है ? क्या वह आपसे भी अधिक शक्तिशालिनी देवी है ? मैं तो आपसे अधिक ऊंची उसे किसी भी रूप में नहीं जानता । मुझे आप बतलावें कि वह कौनसी है ? कौन स्वरूपवाली है ? और उसका क्या गौरव है ?" इसप्रकार मेरे द्वारा पूछने पर श्रीलोकमातृका महादेवी ने कहा ॥८१-८६॥

"हे माणिक्यशेखर ! सुन, वह देवी सबसे उत्कृष्ट (परा) है । महाचिति ही उसका स्वरूप है, जिसके प्रकृतिधर्म से प्रत्येक ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा, विष्णु और हर की गुणमूर्त्तियां हैं । ईश्वर भी उसी की महिमा से तिरोधान की शक्तिवाला, तीनों गुणों का जनक ईशन करता है; वह भी अनुग्रह करनेवाला सदाशिव कहलाता है । जिसके देखने मात्र के अनुग्रह से अखिल जगत् की रचना ब्रह्मा करता है । अनादि काल से माया के पाश में बांधे गये अणुसंघों को अनुग्रह से मुक्ति दिलाने के लिये यह महेश्वर ही सर्जन करता है । प्रलय में स्थित अणुओं की शून्य में स्थिति होने के कारण मुक्ति नहीं है । सभी उस अव्यक्त से देहभाव को प्राप्त हुए सृष्टिकाल में जानने को प्रभावित होते हैं । वह कारणसृष्टि का विधाता ब्रह्मा भी उसका अंश रूप है । एतावता वही साररूपा सबकी आत्मरूपवाली परमा चिति शक्ति कही जाती है ॥८७-९२॥

वही दर्पणके समान जगत् की चित्र भित्तिरूपा है, सब प्रकार से बृंहण करने से 'ब्रह्म' शब्द से कही जाती है । न वह स्त्रीलिङ्गरूप है ,न नपुंसक है और न पुल्लिङ्गरूपा है; त्रिपुरा चित् शरीर की आकारवाली है, वह वाणी एवं मन से अगोचर है तथा चेत्यनिर्मुक्त चिन्मयी है ॥९३-९४॥

ा तु सप्तदशी नित्या परमेश्वरसंश्रया । द्वे कले तस्य नाथस्य कार्यता कर्तृतेति च ॥९५॥
र्यता स्यात् षोडशधा कर्तृता चैकरूपिणी । इन्द्रियाणान्तु दशकं भूतानां पञ्चकं तथा॥९६॥
न्तःकरणमित्येवं कार्यता षोडशाऽऽत्मिका ।

कर्तृता स्यात् सप्तदशी कला नित्या महेशितुः ॥९७॥
ा षोडशाऽऽश्रयीभूता संवित् सर्वस्य कारणम् ।

तां हित्वा न शिवः कश्चित् ब्रह्मा वाऽपि सदाशिवः ॥९८॥
ईश्वरः शिवविष्णू वा ब्रह्मा वा देवतागणः । नरा नार्यः प्राणिजातं जङ्गमं स्थावरं तथा ॥९९॥
प्राणवच्चाऽप्राणकं वा न किञ्चिदवशिष्यते । भूषणेषु स्वर्णमिव जलवत् सागरादिषु ॥१००॥
शून्यत्वमिव चाऽऽकाशे स्पर्शवत् स्यन्दवत्परे । तेजस्युष्णं यथा रूपं जले स्पन्दो रसो यथा॥१०१॥
पृथिव्यां गन्धकाठिन्ये इव सा सर्वतः स्थिता ।

सा स्वाऽऽभासितलीलाऽऽत्मलोकोद्धरणहेतुना ॥१०२॥
परश्रीचक्रनगरसाम्राज्ञीत्वमधिष्ठिता । जाता वयं तदङ्गेभ्यो वाक्श्रीगौरीसमाह्वयाः ॥१०३॥

ह षोडश देवियों से अतीत सप्तदशी नित्य परमेश्वर की आश्रया है। उसकी दो कलायें है : कार्यता और कर्तृता। र्यभाव सोलह प्रकार के रूपों का है और कर्तृत्वभाव एकरूपवाला है। दश इन्द्रियां (पांच कर्मेन्द्रियाँ ा पांच ज्ञानेन्द्रियाँ) पञ्च महाभूत (आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी) तथा अन्तःकरण इस भाव से कार्यता षोडशरूपोंवाली है। कर्तृता सत्रहवीं महेश भगवान् की नित्य कला है वह सोलह ो आश्रय देनेवाली संवित् (चिति) सम्पूर्ण जगत् का कारण है। उसे छोड़कर न कोई शिव है, न ब्रह्मा है, न दाशिव ही; ईश्वर, शिव, विष्णु, ब्रह्मा अथवा देवगण स्त्री, पुरुष, तथा सम्पूर्ण जङ्गम और स्थावर (चराचर) प्राणीगण ई जो प्राणवाले हैं अथवा अप्राण हैं उसके बिना कोई भी नहीं बचा है। आभूषणों में सुवर्ण के समान, सागरों देशों तथा वर्षा आदि में जलवत्, आकाश में शून्यता की नाई, वायु में स्पर्श और स्यन्दगति के समान, जैसे तेजमें ाला और रूप, जल में जैसे स्पन्द और रस तथा पृथिवी में जैसे गन्धवत्ता और काठिन्य है उसी के समान वह सब ा ही स्थित है। आत्मलोक के उद्धार हेतु से अपनी आभासित लीलावाली वह परश्रीचक्रनगर की साम्राज्ञी के ो अधिष्ठित करती है, वाणी, श्री तथा गौरी नामवाली हम सभी शक्तियां उसके अङ्गों से उत्पन्न हैं ॥९५-१०३॥

काली क्रोधात् समुत्पन्ना महाकालेन संयुता । वचनात्तु तथा जाता तारा भैरवसंयुता ॥१०४॥
पराक्रमात् समुद्भूता दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । क्रौर्यात् प्रत्यङ्गिरोद्भूता महाशरभसंयुता ॥१०५॥
शौर्याज्जाता शूलिनी च मालिनी वाक्समुद्भवा ।
चण्डिका चण्डशब्देन धूम्रा क्रूरेक्षणेन च ॥१०६॥
एवं सर्वास्तदङ्गोत्था न हि काचित्ततः परा । तस्या लीलाऽवतारेण ललिताऽऽख्येन सङ्गरे॥१०७॥
हतस्तल्लोकवसतिं चिरं प्राप्य विमोक्ष्यसे । इत्युक्तस्तु तया पश्चात् प्रार्थनं कृतवान् पुनः ॥१०८॥
एवश्चेदम्ब भवतु किञ्चित्त्वां प्रार्थये पुनः । आसुरत्वं भवेद्योनिसम्बन्धेन विना मम ॥१०९॥
पराशक्तेर्मुख्यभक्तशरीरान्मे जनिर्भवेत् । न जातु मामियं प्रज्ञा जहातु जगदम्बिके ! ॥११०॥
प्रार्थितैवं तथैवाऽस्तु तवेत्युक्तवती रमा । तदहं भक्तमूर्धन्यात् कामाऽङ्गाज्जनिमाप्तवान् ॥१११॥
पञ्चोत्तरशताऽण्डानामाधिपत्यं चिरं कृतम् । विषयानुत्तमान् भुक्त्वा नित्यश्च चिरकालतः॥११२॥
निर्विण्णो विषयेभ्योऽहं काङ्क्षे तस्या वधं स्वकम् ।
वस्तुं तस्याः समीपेऽहं तल्लोके कृतनिश्चयः ॥११३॥

उसके क्रोध से महाकाल से संयुक्त काली उत्पन्न हैं तथा वाणी से भैरव संयुत तारा उत्पन्न हुई है, पराक्रम से दुर्गतियों का नाशन करने वाली दुर्गा उद्भूत है, उसकी क्रूरता से महाशरभ (सिंहघाती) संयुत प्रत्यङ्गिरा उत्पन्न है शौर्य से शूलिनी तथा वाणी से उत्पन्न मालिनी, परा के प्रचण्ड शब्द से चण्डिका और क्रूर भ्रूकुटी के देखने से धूम्रा उद्भूत है । इसप्रकार सभी शक्तियां उसके नाना अङ्गों से उद्भूत हैं उससे पर कोई भी नहीं । तू युद्ध में उसके ललिता नामवाले लीला अवतार से मारा जाकर उस परा के लोक में दीर्घ समय तक निवास प्राप्त कर विमुक्ति को प्राप्त होगा ।" इस प्रकार गौरी के कहने के पश्चात् फिर उस माणिक्यशेखर दूत ने प्रार्थना की, "हे अम्ब ! इसप्रकार सब यथावत् हो,मैं फिर आप से कुछ प्रार्थना करता हूँ कि मुझे आसुरभाव की प्राप्ति योनि (उत्पत्ति) के सम्बन्ध के बिना ही हो । पराशक्ति के प्रमुख भक्त के शरीर से मेरा जन्म हो । हे जगदम्बिके ! मुझे यह बुद्धि (आपका स्मरणजनित ध्यान) कभी न छोड़े" इसप्रकार प्रार्थनाकी जाने पर भगवती रमाने 'तेरी जैसी इच्छा है, वही हो' यह कहा । इसलिये मैंने भक्तों के मूर्धन्य कामदेव के अङ्ग से जन्म प्राप्त किया तथा एकसौ पांच ब्रह्माण्डों को अधिपतित्व का भोग दीर्घकाल तक किया । अत्यन्त श्रेष्ठ विषयों को दीर्घ समय तक नित्य भोगकर अब विषयों से मुझे वैराग्य होकर, उस परा ललिता के हाथों अपने वध की कामना करता हूँ । अब मैंने उसी जगदम्बा के लोक में सन्निकट निवास करने की इच्छा से

या: पदाम्बुजं ध्यायन्नजस्रं परमेश्वरीम् ।

प्रतीक्षामि कदाऽऽगत्य वधिष्यति च मामिति ॥११४॥

पौत्रकलत्राद्यैर्निहतस्तु तया रणे । तल्लोके निवसाम्याशु इति मे त्वरते मनः ॥११५॥

त्वाऽऽश्वास्य मे भार्यां बोधयाऽऽश्वविवेकतः । इति श्रुत्वा भण्डवचो नारदो हृष्टमानसः ॥११६॥

श्लाघ्य भण्डदैत्येशं समाश्वास्य च तत्प्रियाम् । जगामाऽभिमतं स्थानं नारदो मुनिसत्तमः ॥११७॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये श्रीनारद-भण्ड-सम्वादे भण्ड द्वारा स्वपूर्वजन्मकृतकर्म्मविपाकात्परायाः कृपावशाद्वैधामप्राप्ति-वर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥४८७५॥

निश्चय कर लिया है; उस के चरण कमल का ध्यान करता हुआ सतत परमेश्वरी के आगमन की प्रतीक्षा करता कि कब वह आकर मेरा वध करेगी । अपने पुत्रों, पौत्रों और कलत्रादि के साथ में उसके द्वारा मारा गया मैं उसके लोक में शीघ्र निवास करूं इसप्रकार मेरा मन त्वरामें कार्य करने को उत्सुक है । इस प्रकार सब जानकर आप जाकर मेरी पत्नी को अविवेक (लोकदृष्टि) बुद्धि से ही समझावें ।" ॥१०४-११७॥

इसप्रकार भण्ड के वचनों को सुनकर प्रसन्न मन हो नारद उस दैत्यराज की श्लाघा (प्रशंसा) कर और की प्रिया रानियों को आश्वासन देकर वह मुनिश्रेष्ठ अपने अभीष्ट स्थान को चले गये ।

कार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्य-खण्ड में ललिताख्यानस्थ देवर्षि नारद और भण्ड के सम्वाद में भण्ड दैत्यद्वारा पूर्व में माणिक्यशेखर नामक लक्ष्मी के दूत के रूपमें किन्नरी के साथ बलात्कार के दोष से राक्षसयोनि की प्राप्ति का श्राप और उस जल में से सुरक्षित बचा लाने के लिये त्रैलोक्य-विजय के पराक्रम के सामर्थ्य का राक्षसराजरूप में भोग का अनुग्रहरूपकथन फिर परा के स्वस्वरूप में प्राप्ति का निरूपण नामक उनसठवां अध्याय समाप्त ॥

षष्टितमोऽध्यायः

नारदहारितायनसम्वादे भण्डासुरविचारवर्णनम्

इत्युदीरितमाकर्ण्य नारदो हारितायनम् । प्रसन्नः प्राह संहृष्टः स्वाऽनुभूतनिरूपणात् ॥१॥
हारितायन ! साधूक्तं त्वयैतच्चिरकालजम् । मानसं बाह्यमपि च ममाऽऽसीद्यत् पुरातनम् ॥२॥
तद्यथातथनिर्देशात् स्मृतं मे प्रोक्तवत्क्रमात् । चिरकालेनाऽन्तरितमप्यद्येव तवोक्तितः ॥३॥
भात्यन्तःकरणे सर्वं धन्यस्त्वमसि भूतले । यत्पराकृपया सर्वं विदितं बाह्यमान्तरम् ॥४॥
तत्त्वां पृच्छामि मे ब्रूहि संशयोऽन्तश्चिरात् स्थितः । अतीतमान्तरं बाह्यं कथं ते विदितं ह्यभूत् ॥५॥
अदृष्टमश्रुतं वाऽपि कथं जानासि सुव्रत । श्रुत्वेत्थं नारदवचः प्रहस्य हारितायनः ॥६॥
देवर्षे शृणु वक्ष्यामि बह्वल्पमिदमीरितम् । अत्रोपपत्तिरपरे खण्डे सम्यग्भविष्यति ॥७॥

साठवां अध्याय

श्रीनारद ने हारितायन के इसप्रकार कहे वचन सुनकर अपने अनुभूत निरूपण से अत्यन्त आनन्दमना हो सम्यक् प्रकारसे प्रहृष्ट हो कहा, "हे हारितायन ! जो यह चिरकालसे उत्पन्न मानस और बाह्य जो मेरा पुरातन आत्म भाव था उसे यथार्थ रूपसे कथन के समान ही मुझे स्मरण करवा दिया । यह तुम्हारी उक्ति से आज ही आविर्भूत के समान चिरकाल से अन्तःस्थित होने पर भी सब नित्य नवीन सा मेरे अन्तः करण में भात (प्रकाशमान) हो रहा है । भूतल में तू साक्षात् धन्य है कि परा की पूर्ण कृपा से सम्पूर्ण बाह्य और आभ्यन्तर का भेद भलीप्रकार जान गया । इसलिये मैं तुझे अपने एक सन्देह के विषय में पूछता हूं जो मेरे अन्तर में बहुत समय से स्थित है; हे सुव्रत ! इन्द्रियादि से अगोचर तत्त्व तथा उसी को सब ओर अतीत, आन्तर एवं बाह्य अभिव्यक्ति को तू कैसे जान गया ? यह अदृष्ट अथवा अश्रुत (दृष्टि द्वारा न देखा तथा कर्ण से न सुना जा सके) ऐसे तत्त्व को हे सुव्रत ! कैसे जानता है ?" इसप्रकार श्रीनारद का वचन सुन कर हारितायन ने हँस कर कहा, "हे देवर्षे ! सुनिये, मैं बताता हूँ, यह तो मैने बहुत ही अल्परूप में कहा है; इस विषय में साधक तथा बाधक प्रमाणों की युक्ति दूसरे ज्ञानखण्ड

नुभूतं स्मरति जन एवमहं ननु । वरेण ब्रह्मणः सर्वबाह्यं वाऽप्यान्तरं तथा ॥८॥
दादेन जिता सा मात्रेणैवाऽनुभूतवत् । संस्मराम्यविदग्धंनु श्रीदेव्याः सुप्रसादतः ॥९॥
दत्तगुरुः प्राह रामायैकाग्रचेतसे । शृणु भार्गव ! तत्पश्चाद्धयाऽऽस्यः कुम्भजन्मने ॥१०॥
युद्धकथां भण्डाऽसुरदेव्योर्महाद्भुताम् । शृणु कुम्भोद्भव मुने होमाऽग्निजनितां शिवाम् ॥११॥
तां सर्वलोकैकसुन्दरीं परमेश्वरीम् । दृष्ट्वा शक्रमुखा देवाश्चिन्तयामासुरान्तरे ॥१२॥
यं तरुणी सर्वलोकसौन्दर्यमन्दिरा । लतेवाऽऽलम्बरहिता भर्तृहीना न शोभते ॥१३॥
न्तां विदित्वैवं ब्रह्माद्या गुणमूर्तयः । दध्युः कामेश्वरं यावत्तावत्सोऽपि विनिर्गतः ॥१४॥
तस्या महादेव्याः समानाऽऽकारभूषणः । दृष्ट्वाऽनुरूप देव्यास्ते पतिरस्या वरो मतः ॥१५॥
द्विवाहः(स्त्व?)अनयोरित्याशंसनतत्पराः । तद्विज्ञाय विधिमुखाः प्रार्थ्य देवीं परात्पराम् ॥१६॥

प्रकार से वर्णित हागो । जिसप्रकार मनुष्य अनुभूत को स्मरण करता है वैसे ही भगवान् श्रीब्रह्माजी ने से सम्पूर्ण बाह्य और आभ्यन्तर तत्त्व को मैं अनुभूतिपूर्वक स्मृतिपटल में सुरक्षित रक्खा । साथ की कृपा से वह अनुभूत के समान ही मुझे दिव्यरूप में क्षण मात्र में उपस्थित हो गया जिसे श्रीदेवी के साद से भलीप्रकार स्मरण करता हूँ" ॥१-९॥

तब श्रीदत्तगुरु ने एकाग्रचित्त किये हुए श्रीपरशुराम से कहा, 'हे भार्गव ! सुन; तदनन्तर हयग्रीव ऋषि ने को श्रीललितादेवी और भण्डासुर दैत्य के बीच हुए युद्ध की अत्यन्त अद्भुत कथा कही । हे कुम्भोद्भव मुने ! की अग्निसे आविर्भूत शिवा सम्पूर्ण लोकों की अद्वितीय सुन्दरी परमेश्वरी ललिता को देख सारे इन्द्रप्रमुख ने अपने अन्तर में विचार किया 'अवश्य ही यह तरुणअवस्थावाली (युवती) सम्पूर्ण लोकों में सौन्दर्य की आवास (अपने अनिन्द्य सौन्दर्य से दर्शकों को मनोमुग्ध करनेवाली) है । यह लता के समान अवलम्ब रहित पति के विना शोभित नहीं होती ।" ॥१०-१३॥

इसप्रकार देवगण की चिन्ता को जानकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन गुणमूर्त्ति देवगण ने कामेश्वर भगवान् न किया । ध्यान करते ही वह भी उस महादेवी के शरीर के समान रूप से आकृति और मण्डन आभूषण धारण आविर्भूत हो गये । देवी के अनुरूप ही उसे देख उन्होंने "यह इस भगवती का पति माना जाय; इन दोनोंका यह निश्चय प्रगट किया । उसे जान कर विधिप्रमुख देवगण ने परात्परा देवी से प्रार्थना कर महोत्सव

महोत्सवविधानेन विवाहं समकल्पयन् । अथ देवैः प्रार्थिता सा ललिता परमेश्वरी ॥१७॥
वधाय भण्डदैत्यस्य परिवारानकल्पयत् । समस्ताऽऽवरणौघांश्च स्मरणात् समवाऽसृजत् ॥१८॥
तदन्तरे तु देवर्षिः प्राप्तो देव्याः पदाऽन्तिकम् । प्रणम्य दण्डवद्देवीं स्तुत्वा विविधसंस्तवैः॥१९॥
कृताञ्जलिर्वभाषे तां विनीतो नतकन्धरः । देव्यहं समनुप्राप्तो भण्डदैत्यस्य सन्निधे ॥२०॥
आगच्छति महासेनां विकर्षन् बलवत्तरः । तदहं प्रेषितस्तेन त्वामाहाऽसुरभूपतिः ॥२१॥
अबला त्वं कस्य बलान्मया योद्धुं हि वाञ्छसि ।
अज्ञात्वा मद्बलं मुग्धा विनाशं मा व्रजाऽधुना ॥२२॥
भव मत्पार्श्वगा शीघ्रं त्यज ब्रह्ममुखान् सुरान् ।
भूयः पराजितान्मत्तो मायामात्रसमाश्रितान् ॥२३॥
मया विरुध्य कोऽप्यत्र योषिद्वा पुरुषोऽपि वा । के यात् सुखं मृत्युमुखप्रविष्टमिव सर्वथा ॥२४॥
इत्युक्त्वा युद्धसन्नाहं परमं सम्यगादिशत् । मन्येऽहं त्वं जितप्राया तेन धीरेण साम्प्रतम्॥२५॥

विधि से विवाह की रचना की । अनन्तर देवगण द्वारा प्रार्थित हो भगवती ललिता परमेश्वरी ने भण्ड दैत्य के वध के लिये परिवारों की रचना की । उसने समस्त आवरणौघों (अपने श्रीपुरस्थ दिव्य, मानव एवं बटुकौघादि) को स्मरणमात्र से सर्जन कर दिया ॥१४-१८॥

तदनन्तर देवर्षि नारद देवी के सन्निकट आ गये और देवी को दण्डवत् प्रणाम कर विविध स्तुतियों से स्तुति कर अञ्जलि बांधे विनयपूर्वक मस्तक नवाकर बोले, "हे देवि ! मैं भण्ड दैत्य के पास से आया हूँ । वह बलशाली विशाल सेना को लेकर आरहा है, आगे उसने मुझे भेजा है । उसने तुझे यह कहलाया है "अबला (स्त्री) होकर तू किस के बल पर मेरे साथ युद्ध करना चाहती है ? मेरे बलको न जानकर मुग्ध हुई तू अब विनष्ट मत हो। मेरे पास शीघ्र आजा । ये मायामात्र के आश्रय में रहने वाले मेरे से वारम्बार पराजित किये गये जो ब्रह्माप्रमुखदेवगण हैं उन्हें छोड़ दे । मेरे विरोध में खड़ा रह कर कौन ऐसा पुरुष अथवा स्त्री है जो सर्वथा मृत्यु के मुख में गये हुए के समान ही सुखी हो सकता है ?" ॥१९-२४॥

यह कह कर उसने युद्ध के लिये विशाल सेनादल तैयार करने का भलीप्रकार आदेश दिया है । मैं मानता

ति देवि ! त्वां किञ्चिद्रहस्याज्ञापयाऽऽशु माम् ।

निशम्य नारदोक्तिं तां मन्त्रिणीं समवेक्षत ॥२६॥

त्वा देव्यभिप्रायमिङ्गितज्ञाऽथ मन्त्रिणी । करेणाऽऽदाय देवर्षिं रहसि प्राविशत् परा ॥२७॥

त्र समासीना प्राह तं मन्त्रनायिका । पृच्छ नारद ! प्रष्टव्यं यत्ते मनसि विद्यते ॥२८॥

मि त्वां परादेव्याः पादभक्तिपरायणम् ।

नूनं नाऽविदितं तेऽस्ति लोके श्रीपादसंश्रयात् ॥२९॥

पि पृच्छ तेऽभीष्टं छेद्मि संशयमाहितम् । आज्ञप्त एवं मन्त्रिण्या प्रणम्य सुरतापसः ॥३०॥

बद्धाञ्जलिपुटः प्रश्नशब्दान् सुपेशलान् ।

देवि ! भण्डासुरो दृष्टो मया सम्यक् परीक्षितः ॥३१॥

स सर्वभक्तानामस्माकं शेखरायितः । कथं युद्धे पराभूयात् परापादैकसंश्रयः ॥३२॥

ऽपि तेन सम्प्रोक्तमहं देव्या हतो युधि । चिरं निवस्य श्रीलोके ततो गच्छामि तत्पदम् ॥३३॥

अब उस धीर भण्ड के द्वारा तू जीती गई ही जान। हे देवि ! तुझे मैं एकान्त में कुछ पूछता हूँ मुझे शीघ्र दो।" श्रीदेवी ने नारद के कथन को सुनकर उस मन्त्रिणी को देखा। ॥२५-२६॥

इङ्गितमात्र सङ्केतमात्र को समझनेवाली परा मन्त्रिणी ने श्रीदेवी के अभिप्राय को जानकर देवर्षि के साथ उसका वह एकान्त स्थान में प्रवेश किया। अनन्तर (वहां एकान्त में नारद के उपस्थित होने पर) वहां उपस्थित मन्त्रिणी ने उससे पूछा, "हे नारद ! तेरे मन में जो पूछनेयोग्य बात है उसे पूछ। मैं परादेवी के चरणों में अनन्य भक्तितत्पर तुझे जानती हूँ। श्रीदेवी के चरण-कमलों के आश्रय में रहने के कारण तेरे से कुछ छिपी नहीं है फिर भी तू अपना अभीष्ट प्रश्न कर; मैं उसे तत्काल बता कर तेरा संदेह दूर करती हूँ।" इसके द्वारा इसप्रकार आज्ञा पाकर देवर्षि नारद ने प्रणामपूर्वक हाथजोड़ कर अत्यन्त विनम्र शब्दों में प्रश्न किया। हे देवि ! भण्डासुरको मैंने देखा तथा भलीप्रकार उसकी परीक्षा की। अवश्य ही वह हम सब आपके भक्तों में शेखर है। पराम्बा के चरणों में अनन्य (एकनिष्ठ) भक्तिकरनेवाला वह युद्ध में कैसे पराजित होगा ? उसने और कहा है 'युद्ध में देवी द्वारा मारे जाने पर भी मैं दीर्घकाल तक श्रीलोक में निवास कर फिर उस धाम को

तल्लोकबाधकः कस्माद्धीनाऽऽचारोऽपि मुच्यते। वयंकस्माल्लोकगतिं विन्दामस्तद्ब्रवीहि मे॥३४॥
पृष्टैनं श्यामला राज्ञी नारदं प्रत्युवाच ह । शृणु मे नारद ! वचो रहस्यमपि साम्प्रतम् ॥३५॥
श्रीपादसंश्रयः काऽपि हीयते न कदाचन । तस्योत्तमपदप्राप्तिः सर्वथा स्यान्न चाऽन्यथा॥३६॥
यथा बालस्याऽऽमयिनो माता पथ्यमपीच्छितम् । न यच्छति तथा पथ्यमौषधं ह्यनपेक्षितम्॥३७॥
ददाति बलतस्त्वेवं तत्प्रपोषणतत्परा । तं भक्तशेखरं हत्वा दुष्कृतं विततं कृतम् ॥३८॥
दर्शनाऽऽलापशस्त्राद्यैर्विनाऽस्य बलवत्तरम् । स्वपदं प्रापयत्याशु तथा शृणु ब्रवीम्यहम् ॥३९॥
यस्तु यं प्रार्थयत्यर्थमेकान्तेन स्वचेतसा । तस्मै तत्त्रिपुरा शीघ्रं प्रयच्छति न संशयः ॥४०॥
प्रतिकूलमभीष्टस्य यावन्नो नाशमृच्छति । तावदेव तस्य चिरं ततः स्वेष्टमवाप्नुयात् ॥४१॥
शृणु त्वं नित्यमुक्तोऽसि न ते मुक्तिः समीहिता ।
अज्ञस्य तत्समीहा स्यात् ज्ञस्य वै तत्कुतो भवेत् ॥४२॥

प्राप्त करूंगा।' उस परमधाम का (स्वदुष्कृत्यों द्वारा) बाधक, हीनआचरणवाला व्यक्ति भी इस संसृति के चक्र से मुक्त हो जाता है तो हम किस प्रकार उस परम धाम को प्राप्त हों ? सो मुझे बता ॥२७-३४॥

इसप्रकार पूछीजाने पर श्यामला राज्ञी ने नारद को प्रतिवचन कहा, "हे नारद ! अब मेरी रहस्यपूर्णवाणी सुन। श्रीदेवी के चरणों को आश्रयलेनेवाला कभी हीनगति को प्राप्त नहीं होता, उसे उत्तम गति ही प्राप्त होती है कदापि अन्यथा नहीं होती। जैसे रोगी बालक की माता उसकी इच्छा के अनुसार पथ्य नहीं देती और बालक को अनचाहा हितकर भोजन तथा औषध (रोग के शमनार्थ) बलपूर्वक दे उसे स्वस्थ बनाती हैं, इसी प्रकार वह भक्तगण (भण्डादि हीनाचारवालों) के पोषण में तत्पर रहती है। उस भक्तशेखर को मार कर उसके किये हुए विततं (विस्तृत) पापराशि को दर्शन देकर, आलाप (भाषण) से एवं शस्त्रों के आघात आदि से (विना तपस्या ही) नष्टकर बलवत्तर स्वपद को पहुंचा देती है। वह जैसे स्वधाम को ओर भक्ति की गति करती है उसे बताती हूँ ॥३५-३९॥

जो कोई भक्त अपने पूर्ण मनोयोग से भगवती का ध्यान लगा कर जिस अभीष्ट की प्रार्थना करता है उसे त्रिपुरा भगवती शीघ्र प्रदान करती है, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। अभीष्ट के प्रतिकूल विघ्नों का जबतक चिर समय के बाद नाश होता है तबतक उसको अपने चिरकाल के इष्ट की प्राप्ति हो जाती है ॥४०-४१॥

सुन तू नित्यमुक्त है, तुझे मुक्ति तो अभीष्ट नहीं है; न जाननेवाले को उसकी इच्छा रहती है और जाननेवाले

बद्धो हि मुक्तिं वाञ्छेत यथा भुक्तिं बुभुक्षितः ।
तृप्तः कथं भुक्तिमिच्छेत्त्वाऽन्यो भोजयेत् कथम् ॥४३॥
अप्राप्तस्य प्राप्तिरिष्टा का या प्राप्तस्य सम्भवेत् ।
आकाशस्येव पूर्णस्य किं प्राप्तिः स्यात् कथंवद ? ॥४४॥
तस्मादज्ञस्य प्राप्तव्यो मुक्तिस्ते ज्ञस्य सा कथम् । श्रुत्वेत्थं नारदो मन्त्रिणीप्रोक्तं हृष्टमानसः॥४५।
प्रणम्य ताञ्च त्रिपुरां जीवन्मुक्तो जगाम ह । अथ सा त्रिपुरा देवी भण्डाऽसुरवधं प्रति ॥४६॥
प्रार्थिता विधिविष्ण्वाद्यैर्निर्ययौ शक्तिसेनया । चक्रराजसमाकाररथे पर्वनवाऽऽत्मके ॥४७॥
ऊर्ध्वोर्ध्वभूमिकाऽऽकारसदृशे समलङ्कृते । ऊर्ध्वभूमौ स्थिता युद्धसम्भारौघसुसम्भृता ॥४८॥
अभेद्यकवच(द्यैश्च?)देशिताऽतिविभीषणी । शस्त्राऽस्त्रनिचयोपेता रोषाऽरुणितलोचना ॥४९॥
धनुर्वेदो मूर्तिधरः स्थितः पार्श्वे कृताञ्जलिः ।
शस्त्राण्यस्त्राणि च तथा मूर्तिमन्ति स्थितानि वै ॥५०॥

को कहां होती है ? बन्धन में पड़ा व्यक्ति अपना छुटकारा चाहता है जैसे भूखा आदमी भोजन से तृप्ति । तृप्त हुआ व्यक्ति भोजन की इच्छा कैसे करेगा ? तेरे से अतिरिक्त (तुझे छोड़) अन्य कौन तृप्ति करायेगा ? जो प्राप्त नहीं है उसीकी प्राप्ति इष्ट होती है; जो प्राप्त है उसके लिये क्या प्रयत्न किया जाय ? आकाश के समान पूर्ण को क्या प्राप्ति हो ? क्यों हो ? सो बता । इसलिये अज्ञ व्यक्ति को प्राप्त करने के योग्य (लक्ष्य) के लिये प्रयत्न करना है; ज्ञ (जाननेवाले) तेरे जैसे के लिये उसे क्यों लिया जाय ?" इस प्रकार मन्त्रिणी देवी के कहे वचन को सुन कर नारद हर्षित हुआ उस भगवती त्रिपुरा को प्रणाम कर वह जीवन्मुक्त देवर्षि चला गया । अनन्तर त्रिपुरा देवी भण्डासुर के वध के प्रति ब्रह्मा, विष्णु आदि के द्वारा प्रार्थित हुई शक्तियों की सेना के साथ बाहर निकली । भगवती नव पर्वों वाले ऊर्ध्व, ऊर्ध्व भूमिकाओं के आकृति की समतावाले भलीप्रकार अलङ्कृत सज्जित चक्रराज के समान आकारके रथमें युद्ध के उपकरणों की साज सज्जा से सज्जित होकर अभेद्य कवच को पहने, अत्यन्त विभीषण रूपधारी हुई नाना शस्त्रों और अस्त्रों के समूह से युक्त, क्रोध से अत्यन्त लाल नेत्रवाली भगवती ऊँची भूमि पर विराजमान थी ॥४२-४९॥

पास में ही धनुर्वेद हाथ जोड़े हुए मूर्तिमान् रूप में स्थित था और सारे शस्त्र और अस्त्र भी मूर्तिरूप धारण

अधोऽधः क्रमतः सर्वास्तथाऽऽवरणशक्तयः । देशिताश्चित्रकवचैः शस्त्राऽऽस्त्रैःसुपरिष्कृताः ॥५१॥
गुर्वौघा अपि सन्नद्धाः संस्थिता युद्धकाङ्क्षिणः । तद्दक्षिणे तु मन्त्रेशी सप्तपर्वविराजिते ॥५२॥
संस्थिता सपरीवारा सन्नद्धा युद्धकर्मणि । शुकादिश्यामलावर्गैः सेव्यमाना विनिर्ययौ ॥५३॥
दिव्यपानाऽऽमोदमदघूर्णनेत्राऽम्बुजद्वयी । तथाविधाऽऽसङ्ख्यकोटिमातङ्गतनयाऽऽवृता ॥५४॥
दानैर्वाद्यैर्नर्तनैश्च सोपहासपटूक्तिभिः । मन्त्रिणी तोषयन्त्यस्ता विलासैर्हास्यमिश्रितैः ॥५५॥
साऽपि श्रीललिताराज्ञीमन्त्रिणी मन्त्रकोविदा। तस्या मनोऽनुकूलेषु मन्त्रेषु नियतं स्थिता ।५६।
विशेषतो गीतवाद्यनर्मक्रीडासमुत्सुका । अथ तद्वामतो दण्डसाम्राज्ञी शूकराऽऽनना ॥५७॥
किरिचक्रे पञ्चपर्वयुते सर्वोर्ध्वतः स्थिता । परीवृता ह्यनेकाभिर्जम्भिन्यादिस्वशक्तिभिः ॥५८॥
क्रोधमूर्तिः क्रूरतरा क्षमापनपरप्रिया । अपराधपरान् सर्वान् दण्डयन्ती सदा स्थिता ॥५९॥

किये खड़े थे एवं नीचे नीचे क्रमपूर्वक सभी आवरण शक्तियां विचित्र कवच धारणकर शस्त्रों तथा अस्त्रोंसे पूर्ण सज्जित खड़ी थी । युद्ध की कामनावाले गुर्वौघ भी एकसाथ सन्नद्ध हो उपस्थित थे । उसके दक्षिण भाग में सात पर्वयुक्त विराजित रथ में युद्ध के कार्य में पूर्ण रूप से साजसज्जाओं से तैयार अपने परिकर सहित मन्त्रिणी देवी स्थित थी । वह शुकादि श्यामला देवी वर्ग से सेवित हो युद्धार्थ बाहर निकल आयी ॥५०-५३॥

दिव्यपान करने से हर्षपूरित मस्ती से रक्तिम दो नेत्रकमलवाली, उसी प्रकार की असंख्य कोटि की मातङ्ग-कन्यानामक देवीगण से घिरी हुई वह स्थित थी । गानों, वाद्यों तथा नृत्त नर्तन कार्यों, उपहासपूर्ण एवं चातुर्यपूर्ण सुन्दर वाक्यों से वे हास्यमिश्रित क्रीडापूर्ण हावभावों द्वारा मन्त्रिणी भगवती को सन्तुष्ट करती थीं ॥५४-५५॥

वह भी मन्त्रणा कार्य में सुदक्षा मन्त्रिणी उस दिव्यस्वरूपा ललिता राज्ञी के मन के अनुकूल मंत्रों में नियतरूप से स्थित थी; विशेषरूप से गीत, वाद्य, परिहासमय वचन और हास्य विलास की क्रीडाओं को सम्पन्न करने को उत्सुक थी । अनन्तर उसके वाम पार्श्व में दण्डसाम्राज्ञी शूकरमुखवाली किरिचक्र जो पांच पर्वों वाला है उसमें सबके ऊपर स्थित थी । वह अनेक जम्भिनी आदि स्वकीय शक्तियों के साथ अनुसेवित थी । क्रोधकी प्रत्यक्षमूर्त्ति अधिक क्रूरतर आकृति धारणकी हुई फिर भी क्षमापन (क्षमामांगने पर) कार्य के प्रति अत्यन्त प्रिय स्वरूपवाली, अपराध करने

महामहिषसिंहाभ्यां वाहनाभ्यां स्वपार्श्वयोः । स्थिताभ्यां सीरमुसलमुखशस्त्रैश्च शोभिनीम्॥६०॥
बटुकैर्योगिनीभिश्च कोटिभिः सा परीवृता । तथा श्रीललितादेश्या बाला त्रिपुरसुन्दरी ॥६१॥
कुमारी लघुचक्राख्यस्यन्दने समवस्थिता । निजावृत्तिमहाशक्तिगणैः परिसमावृता ॥६२॥
तस्या दक्षिणपार्श्वे तु प्राप्ता सम्पदधीश्वरी ।
रणकोलाहलाऽऽख्याने त्रिधा भिन्नेऽतिभीषणे ॥६३॥
वारणेन्द्रे विन्ध्यगिरिमहाशिखरसन्निभे । निसर्गमत्ते संरूढा महाङ्कुशविधारिणी ॥६४॥
तामन्वसंख्या मत्तेभाः कोटिकोट्यतिसङ्घचकाः ।
विन्ध्योद्भवा मलयजाः प्राग्ज्योतिषसमुद्भवाः ॥६५॥
सुशिक्षिता युद्धगतिपरिज्ञाः षष्टिहायनाः । प्रचेलुः सम्पदीशित्रीपरीवारसुशक्तिभिः ॥६६॥
शस्त्राऽस्त्रसमरज्ञाभिरधिरूढाः सुवेगिनः । तस्याः श्रिता वामभागमश्वारूढा महेश्वरी ॥६७॥
अपराजितसंज्ञानमश्वरत्नं महोन्नतम् । गन्धर्वजातिजं वायुजवनं समधिष्ठिता ॥६८॥

वाले सभी व्यक्तियोंको दण्डदेनेवाली विराजमान थी । अपने दोनों पार्श्वों में महामहिष और महासिंह अपने वाहनों को सज्जित रक्खे हल, लाङ्गल, मुसल प्रमुख शस्त्रों से युक्त शोभा धारणकीहुई थी । वह कोटिसंख्यक बटुकगण और योगिनीगण से सेवित है एवं श्रीललिता के द्वारा देश्य (आज्ञा देने योग्य) कुमारी बाला त्रिपुरसुन्दरी लघुचक्र नामक रथ में आसीन है, अपने आवरण को महाशक्तिगणों से वह चारों ओर से घिरी हुई है ॥५६-६२॥

उसके दक्षिण पार्श्वमें सम्पदधीश्वरी सुविराजित है, जो अत्यन्त भीषण तीन प्रकारसे भिन्न भिन्न रूपों से स्थित,रण कोलाहल के आख्यान (वर्धन करने में) में हस्तिराज जो विन्ध्यपर्वत के विशाल शिखर के समान बहुत ऊँचा है तथा प्रकृति से ही मत्त है उस पर महा अङ्कुश लिये विराजमान है । उसके पीछे कोटियों की कोटि को भी अतिक्रमण करने वाले विन्ध्यपर्वत के, मलय पर्वत के और प्राग्ज्योतिष प्रदेश (असम) के मत्त गजराज हैं जो युद्ध कार्य के लिये भलीप्रकार अनुशासन प्राप्त हैं, युद्ध गति के पूर्ण ज्ञाता हैं तथा साठ हायन (वर्षों) के वयवाले यौवनदशापन्न हैं । सम्पदीश्वरी को चारों ओर घेर कर रखने वाली, सुन्दर शक्तियां जो शस्त्र-अस्त्रों के चलाने में पूर्ण प्रावीण्य रखती हैं और युद्धकलामें कुशल हैं ऐसी देवियां जब उनपर आरूढ होतीं तब वे बड़े वेग से चलते । उसी के वाम भागमें

उच्चैःश्रवपरीभाविसर्वलक्षणमण्डितः । शुक्त्यर्धशुक्तिमणिभिर्देवस्वस्तिकपद्मकैः ॥६९॥
गण्डिकादिशुभैश्चिह्नैश्चिह्नितो हेमभासुरः । सूक्ष्माऽवधानतोऽप्यस्य न विदुः खुरसङ्गतिम् ॥७०॥
अभिज्ञः स्वामिचित्तस्य परागमविधानवित् । तामन्वश्वा असंख्येयाः सिन्धुटङ्कणसम्भवाः ॥७१॥
आरदाः पार्वतीयाश्च वार्वराश्च सुतेजनाः । शोणाः श्यामाः सिताः पीताः कपिलाः पाटलास्तथा ॥७२॥
हरिता धूम्रवर्णाश्च कल्माषा नीललोहिताः । विचित्राश्चारुसर्वाङ्गा घनकेसरमण्डनाः ॥७३॥
विचित्रशिक्षागतयो नृत्यज्ञा लयसङ्गताः । विचित्रशस्त्राऽस्त्रधरशक्तिभिः समधिष्ठिताः ॥७४॥
पुरः पतन्तः परितस्तरङ्गा इव वारिधेः । दारयन्तोऽवनिमिव खुरक्षेपैर्विनिर्ययुः ॥७५॥
खुरविक्षेपसम्भूतैश्चटच्चटरवैर्युतैः । ह्रेषितस्वनसङ्घातैर्गजचीत्कारमिश्रितैः ॥७६॥

भगवती अश्वारूढा महेश्वरी है, जो खूब महोन्नत गन्धर्वजाति समुत्पन्न, वायु के वेगवाले अपराजित नामक अश्वरत्न (श्रेष्ठअश्व) पर आसीन है। यह उच्चैःश्रवा अश्व को भी मात करने वाले सभी लक्षणों से युक्त है इसकी शुक्ति, अर्धशुक्ति (नानामणियों के भेद) मणियों तथा देव, स्वस्तिक और पद्म तथा गण्डिकादि शुभलक्षणवाले चिन्हों से युक्त होने से सुन्दरता में असीम है जो स्वर्ण समान कान्ति से युक्त है, बहुत सूक्ष्म ध्यान देकर भी इसके खुर कहां पड़ते हैं उसे अश्वशास्त्री नहीं जान सकते हैं। यह स्वामी के मन को बात ताड़नेवाला और वैरी के आगमन पर रक्षात्मक और प्रत्याक्रमणात्मक चालें कैसे चली जाती है इनकी विधि को पूर्णरूप से जाननेवाला है। उस अश्वारूढा के पीछे पीछे असंख्येय (अनगिनत) सिन्धु प्रदेशके आरद, पर्वतीय, बलख तथा बखारा देशके अत्यन्त तेज गतिवाले घोड़े जिनमें कुम्मेद (शोण), श्वेत, पीतवर्णवाला, गुलाबीरंगका, भूरा, हरित (हरे रंग का) चितकबरा, धूम्रवर्ण (बैंगनी), काले तथा लाल रंगके नाना विचित्रतावाले सुन्दर, सम्पूर्ण अङ्गों की सुगठनवाले, घने अयाल (ग्रीवा के बालों) से शोभित, विशेष चित्र विचित्र चालों की गति के लिये शिक्षित, नृत्य के ज्ञाता, युद्ध वाद्यों की लय पर चलने वाले, विचित्र शस्त्र, धारण करने वाली शक्तियोंद्वारा अधिष्ठित (सवारी किये गये) सेना के आगे ऐसे उछल कर कूदते हैं मानों समुद्र की तरङ्गें चारों ओर लहरारही हों ऐसे वे अश्व अपने टापों (खुरों के चलाने) से पृथ्वी को दारण करतेहुए आगे निकले ॥६३-७५॥

घोड़ों की टापों से चटचट शब्द का स्वर निकलता है, उसी के साथ उनके हिनहिनाहट के शब्दसमूह के साथ हाथियों की चिङ्घाड़ भी शक्तियों के युद्ध के समय के वीरों का गर्व स्फोटनकरनेवाले, अतिप्रचण्ड शब्द करने

शक्तीनां सिंहनादैश्च वीराऽऽस्फोटमहास्वनैः । जयभेरीरवैर्मृण्डमृदङ्गझल्लरीरवैः ॥७७॥
गोमुखाऽऽनकनिःसाणतालकाहलनिःस्वनैः । मिश्रितः श्रीचक्रराजरथनेमिगणोद्भवः ॥७८॥
महाध्वनिः सर्वदिशं पूरयन्निव सम्बभौ । श्रुत्वा श्रीललितादेव्या जैत्रयात्रामहास्वनम् ॥७९॥
दैत्याः साध्वसमत्यन्तं मृत्योरिव समाययुः । भण्डदैत्यः स्वात्मवधं चिराभिलषितं तया ॥८०॥
श्रुत्वा तं निनदं ह्याराद्ध्यवस्यत सर्वथा ।
अथ दैत्यान् समालोक्य त्रस्तान् शुष्यन्मुखाम्बुजान् ॥८१॥
कृपया परयाऽऽविष्ट इदं स्वान्तरचिन्तयत् । नूनं हीमे मम कृते विनश्यन्ति सबान्धवाः ॥८२॥
लोके मृत्योर्नातिरिक्तं भयमस्ति कदाचन । मत्कृते निहतानेतान् शोचिष्यन्ति प्रियात्मजाः॥८३।
भगिन्यो मातृमुख्याश्च हन्त वैशसमीदृशम् । तदहं पुरतो गत्वा युद्ध्वा श्रीललिताम्बया॥८४॥
तच्छस्त्राऽनलपूतात्मा प्रपद्येऽभिमतां गतिम् । शोचयामि कुतस्त्वेता वियोज्य स्वस्वबान्धवैः॥८५।

वाले, सिंहनादों से जयजयकार, भेरी के नाद, मृण्ड (युद्धवाद्य), मृदङ्ग (ढोलक) और झांझ के सम्मिलित शब्दों के साथ गोमुख, वाद्ययन्त्र, नौबत, निसान, मंजीरा तथा बड़े ढोल की ध्वनि से मिला श्रीचक्रराज के रथ की नेमिगण समूहों (चक्रपरिधि) से उत्पन्न महाशब्द सम्पूर्ण दिशाओं को व्याप्त करता हुआ सा प्रगट हुआ ॥७६-७८॥

श्रीललिता देवी के विजय यात्रा के उपलक्षमें हो रहे महा उच्च घोष को सुन कर अत्यन्त चौकन्ना हुए राक्षसगण मृत्यु के समान उपस्थित हो कर आगये। भण्ड दैत्यराज अपने वधको जो देवी के द्वारा किया जानेवाला है जिसकी उसे चिरकालसे अभिलाषा थी उस युद्धनिनाद को सुनकर सन्निकट ही सर्वथा रजोगुण से परिवर्त्तित सत्त्वगुणी वृत्तिवाला बन गया। अब दैत्यों को उनके उदास एवं त्रस्त मुंखकमलयुक्त देख कर अत्यन्त कृपाविष्ट (सहानुभूतिसे) हो वह अपने मन में वह सोचने लगा, "अवश्य ही ये सभी दैत्यगण अपने बन्धुबान्धवों सहित मेरे लिये ही विनष्ट होंगे। लोक में मृत्यु के अतिरिक्त कभी कहीं भी अन्य भय नहीं है। मेरे लिये मारेगये इन सब के लिये इनके प्रिय आत्मजगण (पुत्रादिवर्ग) शोक करेंगे। बहनें तथा मातायें आदि प्रमुख स्त्रियां अकारण मेरे लिये जीवन का त्याग करनेवाले इनका शोक करेंगी; आः ! इसप्रकार की विषमता मेरे सम्मुख आ गई। अहो! दुःख है यह सब वध (विनाश) ही ऐसा है। इसलिये मैं आगे जाकर श्रीललिताम्बा से युद्ध कर उसीके शस्त्ररूपी अग्नि से पवित्र आत्मा बनकर अपनी

तदलं घोरनिधनारोदनेन कृतेन मे । शक्तोऽरक्षन् स्वीयजनं शोकस्थानात् कथञ्चन ॥८६॥
बन्धुघ्नः स तु विज्ञेयः पुरुषादसमो जनैः । अथैवं मयि निर्गत्य प्राप्ते देव्या निजाऽत्ययम्॥८७॥
बन्धूनां शोक एवाऽस्मान्मया विरहिताऽऽत्मनाम् ।
कथं मयि हते देवत्रासना मम बान्धवाः ॥८८॥
महर्द्धिशोभना देवैः परीभूता हृतर्द्धयः । भविष्यन्ति शुचा हीना न चैतदपि सम्मतम् ॥८९॥
प्राप्य सर्वोच्छ्रयं कश्चिदभिभूतः कथं भवेत् । नूनं मयि हते देव्या भ्रातृपुत्रादिबान्धवाः ॥९०॥
शूरास्तु तत्क्षणे एव वीर्यक्रोधसमुच्छ्रिताः।युद्धाऽग्नौ स्वात्मशलभान् भस्मीकुर्युर्न संशयः ।९१।
अथ ये कातराः स्वल्पवीर्यास्तेऽवनिरन्ध्रगाः । देवा इव दैन्यभाजो वियुक्ताः स्त्रीसुतादिभिः ।९२।
शोचयन्तस्तथाऽन्योन्यं भवेयुर्वै मृताऽधिकाः । आरोदनन्तु बन्धूनां नास्तीति न कथञ्चन ॥९३॥

अभीष्ट गति को ही क्यों न प्राप्त होऊं। इन मातृकुल की स्त्रियों को अपने अपने बन्धु-बान्धवों से बिछुड़ा कर मैं क्यों शोक करवाऊं ? इसलिये इस भयंकर निधन से उठे हुए रोदन-विलाप की बात से मुझे बस करना उचित है। जो अपने स्वजन को शोक के स्थानसे किसी प्रकार न बचा सके वह बन्धुओं का हत्यारा है और लोगों द्वारा उसे मनुष्यभक्षी के समान कहा गया है। इसप्रकार मेरे निकल जाने पर देवी द्वारा अपना वध प्राप्त हो जाने से विरहितात्मा बन्धुगण को शोक होगा ही। मेरा वध होजाने पर देवगण को त्रासदेनेवाले मेरे बन्धु-बान्धव जो अब तक बृहत् वैभव से शोभित थे देवगण द्वारा उनकी ऋद्धियों के हरण हो जाने से पराजित हो जायेंगे, शोक रहेगा नहीं पर यह भी सब प्रकार से मुझे नहीं भाता॥७९-८९॥

अरे, सब प्रकार के उन्नतिपूर्ण साधन पाकर कोई किसी से हारे भी तो क्यों ? अवश्य ही देवी द्वारा मेरा वध कर दिये जाने पर भाई, पुत्र, आदि बान्धवगण जो शूरवीर हैं वे तो तत्क्षण ही बल और क्रोध के आवेश में आकर युद्धरूपी अग्नि में जैसे पतङ्गे जलभुनजाते हैं उन्हीं की तरह स्वयं को भस्म कर डालेंगे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥९०-९१॥

अब जो अत्यन्त अल्पबलवाले भीरु दैत्य हैं, वे देवगण के समान भूमण्डल पर गुफाओं एवं कन्दराओं में अत्यन्त दीन हों स्त्री पुत्र आदि से बिछुड़े हुए आपस में एक दूसरे के लिये शोक करते हुए मरेहुए लोगों से भीअधिक दुर्गति का अनुभव करेंगे। चाहे कोई सी स्थिति हो (पहले मैं मरूं अथवा मेरी सेना तथा बन्धु-बान्धव पुत्र पौत्रादि युद्ध में काम आवें) बन्धुओं का आरोदन तो किसी प्रकार भी नहीं है;

तद्वृथा किं चिन्तनेन मन्ये नाऽन्यदितो वरम् । आदौ देव्या हतेष्वेषु ततोऽहमभवं हतः ।१९४।
अयं श्रेयान् हि मे भाति सन्त्यत्र बहुशो गुणाः ।
पावनं देवताशस्त्रैः प्राप्तिर्लोकोत्तमस्य च ॥९५॥
परीभवाऽऽद्यसम्भावः कीर्तिर्लोके महत्तरा । अत्राऽपि मन्ये स्त्रीबालमुखानां न हि सम्भवम्।९६।
अप्रतीकार्यमेतत्तु दैवमत्र परायणम् । अथ वैतन्मया पूर्वं श्रुतमब्जासनान्मुखात् ॥९७॥
सा परा त्रिपुरा देवी भक्तवाञ्छाप्रपूरणी । इति तन्मे परीवारं न शोषयतु सा परा ॥९८॥
न मे चैतेनाऽहमेषां परमार्थस्वभावतः । जानानस्याऽपि मे देवी मोहमुत्पादयत्यलम् ॥९९॥
तन्मे विचिन्तनं व्यर्थं स्वप्नसारे जगत्स्थितौ । तत्तां सर्वेण भावेन शरणं प्राप्तवानहम् ॥१००॥
तन्मां नियोजयेद्यद्वन्नियुक्तोऽस्मि न चाऽन्यथा । पाहि मां परमेशानि शरण्ये! शरणागतम्।१०१।
मोहजालप्रबन्धान्मामभ्युद्धर्तुमिहाऽर्हसि । इति प्रार्थ्य महादेवीं त्रिपुरां भण्डदानवः ॥१०२॥
निशाम्य दैन्यमापन्नान् बन्धून् स्वपरितःस्थितान्। हर्षयन्निति होवाच पराक्रमयुतं वचः॥१०३॥

इसलिये अब व्यर्थ चिन्ताकरने से क्या लाभ है ? इससे अधिक हितकर का कोई दूसरा काम नहीं कि सब से प्रथम देवी द्वारा इन्हें मार दिये जाने पर फिर मैं मारा जाऊं; यही मुझे श्रेयस्कर लगता है, इसमें बहुत प्रकार के गुण हैं। देवतागण के शस्त्रों से पवित्र होना; उतमोत्तम लोककी प्राप्ति होना, पराजय के अपमान का अनुभव न होना तथा लोक में (वीरगति पाने से) महत्तर यशकी प्राप्ति होना ये लाभ हैं। इस विषय में स्त्रियां तथा बालकप्रमुख आदि फिर भी बचे रह जायेंगे। मुझे यही समझ में आता है कि दैवबल ही निर्णायक है यह सब अप्रतिकार्य है उनका प्रतिशोध नहीं हो सकता अथवा मैंने पहले ब्रह्माजी के मुख से ही सुना था कि वह परा त्रिपुरा भक्तगण की अभीष्ट इच्छा को पूर्ण करती है इससे वह परा मेरे इस विशाल परिकर का सन्त्रास कभी नहीं करेगी। परमार्थतः स्वभाव से न तो ये मेरे हैं और न मैं इनका हूँ; इसे जानते हुए भी मुझे श्रीदेवी मोह में डालती है ॥९२-९९॥

इसलिये स्वप्न के समान निःसार इस जगत् की स्थिति के विषय में मेरी चिन्ता करने की बात व्यर्थ है; अधिकं तु मैं सर्वभाव से उस परा की शरण में आया हूँ तब तो वह जैसे मुझे जहां नियुक्त करे वहीं मैं अपने आपको प्रवृत्त करूँगा, अन्य किसी भी रूप में नहीं। हे परमेशानि ! शरण में लेनेवाली मातः ! शरण में आये मुझे आप बचावें; मोह जाल के इस प्रकृष्ट बन्धन से मुझे आप उबारें।" इस प्रकार महादेवी त्रिपुरा की प्रार्थना कर भण्ड दानवराज ने चारों ओर खड़े हुए दुःखित (उदास) अपने बान्धवों को प्रसन्न करते हुए पराक्रमपूर्ण ओजस्वी

हे दानवा ! मम वचः शृणुध्वं श्रद्धया परम् । न मे मृत्युः कुतोऽप्यस्ति मृत्योर्मृत्युरहं यतः ॥१०४॥
शस्त्राणाञ्च तथाऽस्त्राणां महामायाविनामपि । सचराऽचरलोकानां स्रष्टाऽहं वः समक्षतः ।१०५॥
पञ्चोत्तरशताण्डानामीश्वरोऽहं महाबलः । तत्रेमामबलां ज्ञात्वा न शीघ्रं हन्तुमुत्सहे ॥१०६।
युद्धनिर्भरतामस्या दृष्ट्वा निर्जित्य लीलया ।स्वाऽन्तःपुरं समानीय महाऽऽनन्दमुपैम्यलम्॥१०७॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललितामाहात्म्ये श्रीदेव्या सह युद्ध-करणाय सज्जीभूतस्य भण्डासुरस्योहापोहवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥४६८३॥

वचन कहे, "हे दानवगण ! अत्यन्त श्रद्धा से मेरे हितकारी वचन सुनों; मेरी मृत्यु किसी से भी नहीं हैं क्योंकि मृत्यु का भी काल मैं ही हूँ। तुम्हारे सामने मैं शस्त्रों और अस्त्रों, महामायावी लोगों तथा चर एवं अचर लोकों समेत सबका रचने वाला रहा हूँ। मैं महाबलशाली एक सौ पांच ब्रह्माण्डों का अधीश्वर हूँ, उस विषय को लेकर इसे अबला नारी जानकर शीघ्र मारने का मेरा स्वयं कोई विचार नहीं है। इसकी युद्ध में निर्भरता को देखकर सरलता से इसे जीत कर अपने अन्तःपुर (निवास) में लाकर महान् आनन्द प्राप्त करूँगा ॥१००-१०७॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के ललितामाहात्म्यप्रकरण में नारद तथा हारितायन-सम्वाद के व्याज से भगवान् हयग्रीव और अगस्त्य के प्रश्नोत्तरपूर्वक भण्डद्वारा देवी की सेना को युद्धार्थ सज्जित देख भविष्य के पूर्वापर का विचार और देवी को जीतकर लाने का राक्षसगणको उद्बोधन वर्णन नामक साठवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

श्रीललितायाः सैन्यव्यवसायज्ञानाय दैत्यराजेन स्वदूतप्रेषणवर्णनम्

इत्युक्त्वा पार्श्वगं सूतं दीर्घग्रीवं महाऽसुरः । बभाषे क्रोधताम्राक्षो रथः संयुज्यतामिति ॥१॥
अथ सूतो निमेषण सन्नद्धं स्यन्दनोत्तमम् । निवेदयद्दैत्यनाथे प्रणम्याऽतिविनीतवत् ॥२॥
आरुरोह रथश्रेष्ठं भण्डदैत्यः प्रतापनः । गृहीत्वा सशरं चापं प्रचचालाऽतिरोषितः ॥३॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा च दैत्येशं व्रजन्तं युद्धकारणात् । दैत्या विनिर्ययुः शीघ्रं सन्नद्धाःक्रोधमूर्च्छिताः॥४॥
पुरतः पार्श्वयोः पृष्ठे सर्वतः परिवार्य तम् । निर्ययुर्दैत्यसुभटाः सङ्घशो धृतहेतयः ॥५॥
भण्डदैत्यसुताः सर्वे भण्डतुल्यपराक्रमाः । कुटिलाक्षोऽग्रजस्तेषाममेयबलविक्रमः ॥६॥
स्यन्दनस्थाः सुसन्नद्धाः समरेष्वनिवर्तिनः । अक्षौहिणीशतयुता भण्डदैत्याऽग्रतो ययुः ॥७॥

इकसठवां अध्याय

यह कहकर महादैत्य भण्ड ने अपने पार्श्व में स्थित दीर्घग्रीव सारथिको क्रोध से लाल आंख कर कहा "रथ को तैयार करो।" अब सारथि ने एक निमिषमात्र में ही सुन्दर श्रेष्ठ रथ को तैयार कर अत्यन्त विनीत हो कर दैत्यनाथ के पास आ प्रणामपूर्वक सज्जीभूत रथ की सूचना दी। वह प्रतापी दैत्यराज भण्ड श्रेष्ठ रथ पर आरूढ हो गया। अत्यन्त क्रुद्ध हो बाण सहित धनुष को सम्हाले हुए चलने लगा। दैत्यराज को युद्ध कारण से सन्नद्ध हुए देख और सुन दैत्यलोग अत्यन्त क्रुद्ध हो अस्त्रशस्त्रों से सजकर आगे, दायें, बायें, पार्श्व भाग में और पीठ पीछे उसे घेर कर हाथ में शस्त्रों को लेकर दैत्यों के सुयोधागण सङ्घबद्ध हो निकले। राक्षसराज भण्ड के सभी पुत्र उसके समान ही पराक्रमी थे। उनमें बड़ा पुत्र कुटिलाक्ष अमेय बलविक्रमशाली था। रथ पर सवारहो भलीप्रकार अस्त्रों से सुसज्जित और कभी युद्ध में पीठ न दिखानेवाले ये सब सौ अक्षौहिणी सेनाओं के समेत भण्ड दैत्य के आगे चले ॥१-७॥

अहम्पूर्विकया युद्धे ये संस्पर्धन्ति नित्यशः । पार्श्वयोर्दैत्यराजस्य विषङ्गश्च विशुक्रकः ॥८॥
चेलतुर्भ्रातरौ तस्य विष्णुतुल्यपराक्रमौ । रथस्थौ तौ महाचापौ क्रुधाऽरुणितलोचनौ ॥९॥
ग्रसन्ताविव सैन्यानि परेषां ययतुर्द्रुतम् । प्रत्येकमक्षौहिणीनां शतेन परिवारितौ ॥१०॥
उग्रकर्ममुखास्तस्य मन्त्रिणो भीमविक्रमाः । अनुजग्मुर्दैत्यपतिं शताऽक्षौहिणिसंयुताः ॥११॥
एवं प्रचलिते दैत्यनाथे समरकारणात् । रराज राजपथ्या तु प्रावृट्कालनदी यथा ॥१२॥
कूलङ्कषा दैत्यजला रथाऽऽवर्तसमाकुला । तुरङ्गभङ्गा द्विरदग्राहा खेटककच्छपी ॥१३॥
उन्मीषत्फेनपिण्डाऽऽढ्या पताकालहरीयुता । खड्गदीर्घमहासर्पा तूणीमत्स्यविचित्रिता ॥१४॥
दानवाऽऽस्याऽम्भोजततिस्तन्नेत्रशफरीगणा । विचित्रच्छत्रहंसादिपतत्रिततिमालिनी ॥१५॥
उच्छलत्तुरगोत्तुङ्गशिंशुमारकुलाऽऽविला । रथघोषमहाघोषा वाहिनी जलवाहिनी ॥१६॥

सदैव "आगे मैं होऊँ" इस प्रकार प्रथम आने की ये प्रतिस्पर्धा करते हैं। उस दैत्यराज भण्ड के दोनों भाई विष्णु के समान पराक्रमी विषङ्ग और विशुक्र थे। ये दोनों रथ में विराजमान हो महाधनुर्धारी क्रोध से लाल नेत्र किये शत्रुपक्ष की सेनाओं को जैसे ग्रसित करते हुए हों शीघ्र युद्ध करने चले। ये दोनों प्रत्येक सौ अक्षौहिणियों के साथ थे ॥८-१०॥

उसके भीषण पराक्रमशील, उग्रकर्मा आदि मन्त्रीगण दैत्यपति भण्ड के पीछे पीछे सौ अक्षौहिणियों के साथ चल रहे थे। इसप्रकार दैत्यराज के समरकारण से चलने पर दैत्यसैन्य से छाया हुआ राजमार्ग वर्षाकाल की वेगवती नदी के समान शोभित होता थे। दैत्यसमूह मानो नदी के जल का कूल (तट) बननेवाला दृश्य सा उपस्थित करता था; रथरूपी भंवरजाल से समाकुल व घोड़ों की पंक्तियाँ मानों उसमें लहरें चलती हों, हाथियों का समूह जैसे ग्राहदल बना हो और घोड़े मानों कच्छप ऐसे प्रतीत होते हैं एक के बाद एक उमड़ता दल ही फेनसमूह झागों का रूप लिये हुए है। सेना में विभिन्न पताका - ध्वजाओं का फहराना लहरें हैं, बड़ी तीक्ष्ण तलवारों की चमचमाहट ही महासर्पगण मानो उस नदी में तैर रहे हों सैनिकों के बाण रखने के तूणीर रूपी विचित्र मत्स्य आदि हैं। दानवगण के मुख ही उस सेनारूपी नदी में कमल समूह हैं; उनके नेत्र ही शफरी (मछलियों) के समूह हैं। विचित्र छत्र ही हंस आदि पक्षियों के समूह की पंक्तियाँ हैं, सैन्यदल में ऊँची छलांग लगानेवाले घोड़ों के समूह शिंशुमार (नक्र, मगरमच्छ) मानो जन्तुगण से परिपूर्ण हों, रथों के चलने

निर्गमत्तत्पुरद्वारान्महतो रत्नगोपुरात् । कुल्यामुखाज्जलं ह्याशु केदारे प्रसृतं यथा ॥१७॥
पुरद्वाराद्वाहिनी सा प्रसृताऽभूद्बहिः क्षणात् । तदन्तरे तु विजयः प्राप्य दैत्येश्वरं द्रुतम् ॥१८॥
मन्त्री प्रणम्य विन्यस्य मूर्ध्न्यञ्जलिपुटं स्थितः । प्राप्याऽऽज्ञामवदत्तं सुवचस्तत्कालसम्मतम्।१९।
दैत्येश्वर महाराज कीर्तिस्ते सर्वतस्तता । प्रतापतपनश्चोर्ध्वे ब्रह्माण्डानि तपत्यसौ ॥२०॥
बलवत्तर एषोऽत्र हरिरेको विभावितः । सोऽपि त्वत्सम्मुखं प्राप्य युद्धे भूयः पराजितः ॥२१॥
तत्त्वां युद्धे जयेत्कश्चिदिति मोघो हि निश्चयः । तथाऽपि मन्त्रिणा काले चार्थशास्त्रप्रमाणतः।२२।
विमृश्य राज्ञे वक्तव्यं हितमागमसम्मितम् । काले युक्तमनुक्त्वा तु न सुमन्त्रित्वमर्हति ॥२३॥
चत्वार एव सम्प्रोक्ता उपाया दण्डशासने । तत्रैकैकोऽपि स्वे काले सम्मतो बलवत्तरः ॥२४॥
अन्यकालेऽन्यमातिष्ठन्मूढदुर्मन्त्रिमन्त्रितः । नश्येदसदृशं भुक्त्वा ह्यामयीवाऽगदं नृपः ॥२५॥

के शब्द ही उस सेनारूपिणी जलवाहिनी प्रवाहमयी नदी का कलकल महाघोष हो रहा है। यह रत्नों के गोपुरवाले नगर के विशाल द्वार से जैसे छोटी नदी के मुहाने से जल अतीशीघ्र खेतों में फैल जाता है; उसी रूप में नगर के द्वार से वह सेना एक क्षण में ही बाहर आगयी। इसके अन्तराल में ही दैत्येश्वर भण्ड के पास शीघ्र उसका मंत्री विजय पहुंचकर प्रणाम कर अपने दोनों हाथों को जोड़ शिर नवा कर उपस्थित हो गया। दैत्यराज की आज्ञा पाकर उसने समयोचित वाणी कही, "हे दैत्येश्वर। महाराज आपकी कीर्त्ति सर्वत्र फैली है, आपका प्रतापरूपी सूर्य ऊर्ध्व में समग्र ब्रह्माण्डों को तपाता है। जो देवों में बलवत्तर विष्णु देखा जाता है वह भी आपके सामने आकर युद्ध में बारम्बार पराजित हो गया। इसलिये कोई आपको युद्ध में जीत ले ऐसा निश्चय करना व्यर्थ है। फिर भी मन्त्री को चाहिये कि समयानुकूल अर्थशास्त्र (नीतिशास्त्र) के प्रमाणानुसार भलीप्रकार विचारकर हित और आगमशास्त्र से युक्तिसम्मत वचन बोले। समय पर उपयुक्त बात कहे विना कोई भी व्यक्ति सुमन्त्री बनने के योग्य नहीं। दण्ड के प्रवर्त्तन में सामादि चार ही उपाय कहे गये हैं, उनमें एक एक भी अपने समय में एक दूसरे से अधिक प्रभावकारी बताया गया है। अन्य काल में मूर्ख कुमन्त्रियों की मन्त्रणा पाकर अन्य अनुकूल परिस्थिति के विपरीत कार्य करता हुआ राजा जैसे कोई कुपथ्यकरनेवाला रोगी रोग के उपद्रव को बढ़ाकर आरोग्यलाभ नहीं करता वैसे ही नष्ट हो जाता है। विद्वान् और बुद्धिमान् लोगों ने इस विषय में बताया

तत्राऽध्यसितं प्राज्ञैर्दूतचारदृशाऽखिलम्। दृष्ट्वा युद्धं प्रकुर्वीत तेन श्रेयःसमाप्नुयात् ॥२६॥
तत्सम्मतौ दूतचारौ परेषु प्रेषय द्रुतम्। तावत् सेनाऽपि सन्नद्धा भविष्यत्यविशङ्किता ॥२७॥
रक्षणं नगरस्याऽपि विहितं स्याद्यथाविधि। विज्ञप्तव्यमिदं काले मया ते स्वामिनः पुरः ॥२८॥
विज्ञापितं तद्भवता कर्तव्यं कालसम्मितम्। निशम्य मन्त्रिवाक्यं तद्युक्तं कुशलसम्मतम् ॥२९॥
समाधानाय बन्धूनामभिमन्यत मन्त्रणम्। निवेश्य सेनापतिभिः सेनां तत्र विभागशः ॥३०॥
पुररक्षाविधानाय कुटिलाक्षमवाऽसृजत्। अमित्रघ्नं मन्त्रिवर्यं प्राह भण्डमहाऽसुरः ॥३१॥
गच्छाऽमित्रघ्न मच्छास्त्या तां ब्रूहि ललिताऽभिधाम्।
नाऽहं त्वां सुन्दरीं देवीं सर्वथा संश्रयोचिताम् ॥३२॥
वाञ्छामि योद्धुं तत्कस्मान्मां योद्धुं त्वामिहागता। युद्धश्रद्धा तवेयं वै सम्मतं मम सर्वथा।३३।
न बिभेमि महायुद्धे तत्त्वद्युद्धे भयं कुतः। किन्त्वहं त्वां प्रियाकारां दृष्ट्वा द्रुतं मनोभवाम्॥३४॥

है कि राजा अपने दूत तथा गुप्तचर लोगों के द्वारा सम्पूर्ण शत्रुपक्ष की रक्षापंक्ति और आक्रमणात्मक साजसज्जा को जानकर युद्ध करे इससे वह अत्यधिक श्रेय प्राप्त करता है ॥११-२६॥

ऐसे कार्य में शत्रुपक्ष के अभिमत दूत और गुप्तचरों को शत्रुओं में भेजें जिससे आपकी सेना भी सबप्रकार से अविशङ्कित हो सज्जित हो जायगी तथा नगर की रक्षा भी विधिपूर्वक हो जायगी। मुझे स्वामी के सामने समय पर जो विशेष निवेदन करना उचित था सो आप से कह दिया। अब आप समयोचित सब कर्म करें।" मन्त्री के कथन में समयोपयुक्त वचन सुन और उसे बुद्धिमान् व्यक्तियों से समर्थित समझ कर बन्धुगण के समाधान के लिये मन्त्रणा करने का दैत्यराज भण्ड ने निश्चय किया। सेनापति के सहित सेनाओं का वहां विभाग कर के उन्हें विभिन्न कार्यों में नियुक्त कर पुरकी रक्षा के लिये उसने कुटिलाक्ष को छोड़ दिया। अब अमित्रघ्न नामक मन्त्रिश्रेष्ठ से भण्ड महादैत्यराज बोला ॥२७-३१॥

"हे अमित्रघ्न! तू जा और मेरे आदेश से उस ललितानामवाली ललना से कह दे कि सर्वथा निज आश्रय पाने के लिये उपयुक्त तुझ सुन्दरी देवी से मैं युद्धकरना नहीं चाहता; इसलिये तू क्यों मेरे से युद्ध करने यहाँ आयी है? यदि समर में लड़ने की तेरी उत्कट इच्छा है तो मुझे भी वह सर्वथा मान्य है। मैं महायुद्ध करने से कभी नहीं घबराता हूँ; तब तो तेरे साथ युद्ध करने में मुझे भय क्यों होगा? परन्तु सुन्दर स्वरूपवाली मनोभव कामरूपिणी तुझे देखकर मैं तुझे अवसर की सुविधा प्रदान करता हूँ कि देवगण के पक्ष को छोड़कर मेरी

तत्सुराणां परित्यज्य पक्षं मत्संश्रया भव ।
साम्ना युद्धेन वाऽपि त्वां करोम्यात्मसमाश्रयाम् ॥३५॥
मद्विरोधेन ते लोके हानिरेव न संशयः । विमृश्यैतद्द्रुततरं पक्षमेकतरं भज ॥३६॥
इति तां ब्रूहि साम्ना च ज्ञात्वा तस्याः समीहितम् ।
बलञ्च सर्वं तत्कृत्यं ज्ञात्वा याहि द्रुतं पुनः ॥३७॥
अथ मायाविनां श्रेष्ठं विद्युन्मालिनमाह सः । विद्युन्मालिन्महाप्राज्ञ मायाविकुलनायक ॥३८॥
परैरविदितो गत्वा देव्याः सेनामशेषतः । बलञ्च व्यवसायञ्च भेदच्छिद्राणि युक्तितः ॥३९॥
विचार्य शीघ्रमायाहि त्वमत्र कुशलो ह्यसि । आज्ञप्तावितरौ दैत्यौ ययतुः शक्तिवाहिनीम् ॥४०॥
अनन्तामम्बुधिप्रख्यामविगाह्य कथञ्चन । अमित्रघ्नो महासेनां विवेशाऽब्धिं यथा प्लवः ॥४१॥
उत्खातकरवालाभिः शक्तिभिः परिरक्षिताम् । प्रविष्टमात्रं शक्त्या स गृहीतो बलवत्तरः ॥४२॥
परिचारिकया दण्डनाथायाः काञ्चनाऽऽभया । चपेटया निहत्याऽऽशु गृहीत्वा तं गलेऽसुरम् ॥४३॥

ओर आजा, नहीं तो सामनीति से अथवा युद्ध द्वारा भी तुझे अपने अधिकार में कर लूँगा । मेरे साथ विरोध करने से लोक में निःसन्देह तेरी हानि ही होगी । इसे भली प्रकार सोचविचार कर शीघ्रतया एक ओर के पक्ष को ग्रहण कर ।" इस प्रकार उसे सामनीति से कहना और उस ललना के मन की अभीष्ट इच्छा जानकर उसकी सारी सेना तथा उसके सारे कार्य को भलीप्रकार देखकर फिर शीघ्र ही लौट आना" ॥३२-३७॥

अनन्तर उसने मायावी लोगों में श्रेष्ठ विद्युन्माली को कहा, "हे महाबुद्धिसम्पन्न ! मायावी लोगों के नायक ! विद्युन्मालिन् ! तू शत्रुपक्ष के लोगों के द्वारा विना जाने ही जाकर देवी की सेना को सम्पूर्णतया उसके बल और गम्भीर प्रयत्न तथा नाना प्रकार के छिद्रों को युक्तिपूर्वक देख और विचार कर शीघ्र आजाना क्योंकि सब प्रकार से तू कुशल व्यक्ति है ।" इस तरह इधर दोनों दैत्यों को आज्ञा मिलने पर वे शक्ति की सेनाओं में भेदलेने को चले गये । उसकी सेना अगाध समुद्र के समान थी उसे किसीप्रकार से किसी के देखे विना वह अमित्रघ्न देवी की महासेना में उसी प्रकार प्रविष्ट हुआ जैसे समुद्र में नौका । नङ्गी खींची तलवारों को धारण को हुई शक्तियों से वह सेना सब ओर से रक्षित थी । प्रवेश करते ही वह बलवान् दैत्य देवीशक्ति द्वारा पकड़ लिया गया । दण्डनाथा की परिचारिका काञ्चनाभा उसे एक चपत मार कर और शीघ्र गले से पकड़ कर क्रोधयुक्त

तर्जयामास वचनैः क्रोधयुक्तैर्भयङ्करैः । कस्त्वं सेनामिमां देव्या दण्डराज्ञीसुरक्षिताम् ॥४४॥
अविज्ञाप्य प्रविष्टोऽसि चाऽस्मत्प्रमुखवीक्षिताम् ।
आज्ञां विना दण्डराज्ञ्याः प्रविष्टो वाहिनीमिमाम् ॥४५॥
जीवन्नो यास्यसि पुनः साक्षान्मृत्युरपि स्वयम् । तदन्तरे तु सम्प्राप्ताः सैन्यरक्षानियोजिताः ॥४६॥
दण्डिन्याज्ञाप्रतीक्षिण्यः शक्तयः शतशः क्षणात् ।
प्रबलाभिः समाकृष्टो निहतो मूर्च्छितोऽभवत् ॥४७॥
श्रुत्वा तदन्तरे दण्डनाथा दैत्यस्य सङ्गतिम् । समक्षं ह्यानयामास स्वपरीचारशक्तिभिः ॥४८॥
पृष्ट्वा तं ह्यागतं दूतं ज्ञात्वा भण्डाऽसुरस्य हि । विज्ञाप्य मन्त्रिणी देव्याः समीपमानयत्ततः ।४९।
साऽपि विज्ञाप्य तं प्राप्तं ललितायाः समीपतः ।
नीत्वा पप्रच्छ दूतं तं कृत्यं तत्राऽऽगमस्य हि ॥५०॥
प्राह प्रणम्याऽमित्रघ्नः प्राप्तो भण्डनिदेशतः । दूतोऽहं तस्य दैत्यस्य तदुक्तं संब्रवीम्यहम् ॥५१॥

भयङ्कर वाणी से दैत्य को धिक्कारने लगी, "अरे दुष्ट ! भगवती दण्डराज्ञी द्वारा सुरक्षित हमारी जैसी प्रमुख शक्तियों द्वारा भलीप्रकार सम्हाली गई देवी की सेना में तू कौन है जो बिना सूचना दिये प्रविष्ट हुआ है ? दण्डराज्ञी भगवती की आज्ञा के बिना इस सेना में घुसकर तू जीवित नहीं जासकता । फिर चाहे साक्षात् मृत्यु भी क्यों न आयी हो ।" तत्काल ही वहां पर नियुक्त दण्डिनी की आज्ञा की प्रतीक्षाकरनेवाली सैकड़ों शक्तियां क्षणभर में एकत्र होकर गयीं । उन प्रबल शक्तियों के द्वारा घसीटा गया और आघात किया हुआ वह राक्षस मूर्च्छित हो गया ॥३८-४७॥

तत्पश्चात् देवी दण्डनाथा ने दैत्य के आगमनको सुनकर अपने सामने अपनी परिचारिका शक्तियों द्वारा उसे बुला भेजा । उसे पूछकर भण्डासुरका ही यह दूत है इसे जान सब भेद मन्त्रिणी को बतलाकर पश्चात् वह उसे देवी के समीप लेगयी । उसने भी पूर्वसूचना देकर ललिता के सन्निकट उसे लेजाकर दूत को और उसके आने के प्रयोजन सम्बन्धी कार्य के विषय में पूछा । अमित्रघ्न ने प्रणामकर कहा, "हे देवि ! मैं भण्ड की आज्ञा से यहां आया हूँ; उस दैत्यराज का दूत हूँ । उसने जो कहा है उसे आपको बताता हूँ, 'हम दोनों में परस्पर कोई विरोध नहीं है, तब क्यों तू युद्ध

आवयोर्न विरोधोऽस्ति कुतो योद्धुं समागता ।

युद्धवावाऽप्ययुद्धवावा वा देवि भूयास्त्वं मत्समाश्रया ॥५२॥

तत्वामात्मप्रियां हृद्यां योधयामि कथं वद ? तद्देवान् सम्परित्यज्य भव त्वं मत्समाश्रया ॥५३॥

वक्तव्येति त्वया गत्वा ज्ञेयं सेनाबलाऽबलम् ।

इत्यहं प्रेषितस्तेन दूतवध्या [धः] विनिन्दिता[नः] ॥५४॥

शास्त्रेषु दूतस्य वधं न वदन्ति विचक्षणाः । इति मत्वा प्रविष्टोऽहं लक्षितः सर्वशक्तिभिः ॥५५॥

प्रविष्टमात्रोऽभिमतो गृहीतस्तव शक्तिभिः । आनीतस्ते समक्षञ्चेत्येतत् सर्वं निरूपितम् ॥५६॥

अग्रे देव्येव शरणमयोग्यो मे वधो भवेत् । निशम्य दूतवचनं ललिताया मतं ततः ॥५७॥

विदित्वा मन्त्रिणी प्राह स्मेरमञ्जुलभाषिणी । माभैर्दैत्य व्रज सुखं हन्यसे न कदाचन ॥५८॥

ब्रूयास्तं भण्डदैत्येशं मयोक्तमवधार्य च । यदि ते जीवने श्रद्धा द्रुतमागत्य निर्भयः ॥५९॥

शरणीकुरु देवेशीं त्रिलोकीं सम्परित्यज । त्रिलोकेशो भवेदिन्द्र त्वं पाताले निवत्स्यसि ॥६०॥

के लिये आई है ? चाहे तू युद्धकर अथवा युद्ध बिना भी रह, हे देवि ! तू तो मेरे आश्रय में ही रहेगी। इसलिये मेरी आत्मप्रिया हृदय को प्रिय लगनेवाली तेरे साथ मैं क्यों युद्ध करूं ? इस कारण देवगण को छोड़ कर तू मेरी आश्रिता बन जा। यह तुझे वहां जाकर कहना चाहिये साथ ही जाकर तुझे देवी सेना के बल और छिद्रों को जानना चाहिये।' इसप्रकार मैं उसके द्वारा भेजा गया हूँ। विचक्षण लोग शास्त्रों में दूतका वध नहीं बताते हैं। इसे मानकर मैं सब शक्तियों के देखते देखते सेना में प्रविष्ट हुआ हूँ। प्रवेश करते ही मुझे दूत समझ आपकी शक्तियों ने पकड़ लिया और आपके समक्ष लाकर उपस्थित कर दिया; इसप्रकार यह सब मैंने बता दिया ॥४८-५६॥

आगे भगवती देवी आप ही शरण हैं, मेरा वध अयोग्य है।" दूत का वचन सुनकर तब ललिता के अभिप्राय को जानकर कुछ मन्दहास्य पूर्वक मधुरभाषण करनेवाली मन्त्रिणी बोली, "हे दैत्य ! तू डर मत, सुखपूर्वक जा; तुझे कदापि नहीं मारा जायेगा। तू भण्ड दैत्यराज को मेरे द्वारा कहा हुआ सब बता देना और उसे कहना कि सब बातें भलीप्रकार समझकर यदि तू अपने जीवन की अभिलाषा करता है तो अतिशीघ्र निर्भय होकर वार्त्ता कर; सारी त्रिलोकी की सम्पत्ति को छोड़कर देवेशी की शरण में चला जा। त्रिलोकी का अधिपति इन्द्र बने और तू

कुरु सख्यं गोत्रभिदा सपुत्रबलवाहनः। अन्यथा न विमोक्षस्ते जीवन् क्वाऽपि भविष्यति॥ ६१॥
नयैनं दण्डसाम्राज्ञि सेना दर्शय सर्वतः । दर्शयित्वा ततः सेनाबहिरेनं विसर्जय ॥ ६२ ॥
इत्याज्ञप्ता कोलमुखी प्रदर्श्य स्वामनीकिनीम् । व्यसर्जयत्तं दैतेयं बहिः सेनानिवेशनात् ॥ ६३ ॥
अथ मुक्तः पुनर्जातमात्मानं सममंसत । जगाम राजसविधं भयविह्वलिताऽन्तरः ॥ ६४ ॥
विद्युन्माली निशाम्यैनममित्रघ्नविहिंसितम्। भीतो रात्रौ महामायः कौशिकीं तनुमाश्रितः॥६५॥
विचरन्नाकाशमार्गे सेनां सर्वां निशामयत् । गणयित्वा सर्वसेनां व्रजन्तं गगनाऽध्वनः ॥६६॥
जग्राह काचिच्छक्तिस्तं खेचरी निशिरक्षिणी । गृहीतमात्रो मायावी प्रोड्डीय गगनोर्ध्वतः॥६७॥
पञ्चाशद्योजनादूर्ध्वं युयोध स तया भृशम्। चिरं युद्ध्वा शूलहतस्तया मुक्तः कथञ्चन ॥६८॥
जगाम दैत्यनृपतिमीषत्प्राणाऽवशेषितः । पपात पुरतस्तस्य सूर्यस्योदयनं प्रति ॥६९॥

पाताल में निवास करेगा। अपने पुत्रों, सेनाओं और सम्पूर्ण वाहनों समेत इन्द्र के साथ मित्रता कर ले, नहीं तो जीते जी तेरा भलीप्रकार छुटकारा कहीं भी नहीं होगा। हे दण्डसाम्राज्ञि! इसे ले जा और चारों ओर खड़ी सेना को बता दे और दिखाकर बाद में सेना के बाहरवाले क्षेत्र में इसे छोड़ देना" ॥५७-६२॥

इसप्रकार आदेश पाकर शूकरमुखी ने अपनी सेना को दिखाकर उस दत्य को शक्ति सेना के परिसर (खेमे) से बाहर छोड़ दिया। अब मुक्त होकर अपने को फिर नया जन्म मिला है यही मानता हुआ वह दैत्यराज भण्ड के पास भय से विह्वलचित्त होकर गया ॥६३-६४॥

मायावी विद्युन्माली इस अमित्रघ्न की बहुत अधिक दुर्दशा को सुन कर डरा हुआ रात्रि में महामायावी कौशिकी भगवती का शरीर धारणकर आकाशमार्ग में सारी सेना को देख पाया। सारी सेना को देख कर आकाश मार्ग से जाते हुए उसे खेचरी नामक रात्रि की रक्षिका किसी शक्ति ने पकड़ लिया। पकड़े जाने के साथ ही वह मायावी गगन से ऊपर भी पचास योजन की ऊंचाई पर उड़कर उसके साथ भीषण रूपसे लड़ा। दीर्घकाल तक युद्ध कर उस शक्ति के द्वारा शूल का आघात पा वह किसी प्रकार छोड़ दिया गया। वह येन केन प्रकारेण कुछ प्राणशेष रहते श्वास लेता हुआ दैत्यराज के सामने सूर्योदय के पूर्व ही भूमि पर आकर गिरा ॥६५-६९॥

दृष्ट्वाऽग्रपतितं दैत्यं म्रियमाणं भृशं हतम् । भण्डासुरो जपन्मन्त्रं पस्पर्शाऽङ्गेषु पाणिना ॥७०॥
मन्त्रस्पर्शनमात्रेण जीवितश्च गतव्यथः । उत्थाय प्रणनामाऽऽशु दैत्यराजं पुरःस्थितम् ॥७१॥
अथपृष्टः प्राह विद्युन्माली वृत्तं स्वकं क्रमात् । महाराज त्वत्समक्षं गतोऽमित्रघ्नसंयुतम् ॥ ७२ ॥
दृष्टवानस्मि तां सेनां प्रलयाम्बुधिसन्निभाम् । अथाऽमित्रघ्न एवाऽऽदौ प्रविवेश महाचमूम् ॥७३॥
पश्यतो मे क्षणेनैव गृहीतः शक्तिभिर्बलात् । मधुवन्मक्षिकाभिः स समाक्रान्तोऽथ शक्तिभिः ॥७४॥
क्षणेन विगतप्रज्ञः समभूद्बलवानपि । अशक्तः स्पन्दितुमपि क्व युद्धं क्व पलायनम् ॥७५॥
कथञ्चिदपि नो जीवेत् स इत्थं मम निश्चयः । तावद्भीतोऽप्यहं दूरात् पलायनपरोऽभवम् ॥७६॥
भवदाज्ञागौरवेण न निवृत्तोऽस्मि ते भयात् । ततो दिनाऽवसानेऽहं मायाघूकत्वमास्थितः ॥७७॥
उपर्युपरि सेनायाः सञ्चरंस्तां निशामयम् । सा सेना महती दृष्टा भीमा भीषणनादिनी ॥७८॥
संवर्तकालसंक्षुब्धमहोर्मिजलधिर्यथा । दर्शनादेव सेनाया यास्यन्ति मृतिमासुराः ॥७९॥

दैत्यराज भण्ड ने अपने हाथ से सामने पड़े हुए उसे अङ्गों में स्पर्श किया; उसके मन्त्रपूर्वक स्पर्श करने से ही वह जीवित और व्यथामुक्त हो उठ बैठा । उसने उठ कर सामने खड़े दैत्यराज को शीघ्र प्रणाम किया ॥७०-७१॥

(अब विद्युन्माली ने पूछने पर अपना सारा वृतान्त क्रम से कहा; "हे महाराज ! आपके सामने अमित्रघ्न के साथ ही मैं निकल गया था । प्रलय के समुद्र के समान उस शक्तिसेना को मैं देख आया हूँ । वहाँ पर पहुंचने के अनन्तर अमित्रघ्न ने ही पहले महासेना में प्रवेश किया । मेरे देखते देखते शक्तियों ने उसे क्षणभरमें बलपूर्वक पकड़ लिया । मक्षिकायें मधु को जैसे घेर लेती हैं वैसे ही उन शक्तियों ने मुझे आक्रान्त कर लिया ॥७२-७४॥

बलवान् होकर भी मैं क्षणभर में चेतनाहान हो गया; मैं इधर उधर हिलने चलने में भी असमर्थ रहा । कहां तो उनसे युद्ध करना तथा कहां अपनी रक्षा के लिये बच के निकल भागना । किसी प्रकार भी यह न ही जीवित रह पायेगा ऐसा मुझे निश्चय होने से मैं भय से व्याकुल होकर भी भागने को उद्यत हुआ । परन्तु आपका आदेश पालन आवश्यक था मैं आपके डरके मारे न लौटा । तब दिन बीतने पर मैंने मायाउलूक का रूप बनाकर सेनाके ऊपर उड़कर उसे देखा । वह सेना प्रलयकाल में सम्वर्त मेघों से अत्यन्त क्षुब्ध उत्तालतरंगोंवाले महासमुद्र के समान अत्यन्त बलवती और भीषणनाद करनेवाली मुझे दिखायी पड़ी । उस शक्तिसेना के देखनेमात्र से ही ये सब आसुरी सेनायें मृत्यु को प्राप्त हो जायंगी ॥७५-७९॥

तत्र सर्वा महाभीमाः शक्तयो भीमविक्रमाः । अहम्पूर्विकया युद्धं कर्तुमादौ समुत्सुकाः ॥८०॥
तत्र बाला कुमारी या ललितायाः प्रियाऽऽत्मजा। कुमारिभिः कोटिशतसंख्याभिः परिवारिता।८१।
शस्त्राऽस्त्रकौशलाऽभिज्ञा युद्धसन्नाहसम्भ्रमा। भण्डपुत्रान् निहन्मीति सा ब्रवीति पुनः पुनः॥८२॥
कुमार्योऽपि चता ब्रूयुर्भण्डपुत्रसुवाहिनीम् । नाशयामः क्षणेनाऽतिगर्जन्त्यः समरोत्सुकाः ॥८३॥
अथ सम्पत्करी चाऽश्वाऽऽरूढाख्या शक्तिनायिका ।
गजानश्वानसंख्यातान् महाशक्तिभिरास्थितान् ॥८४॥
कर्षन्त्यौ ते बलोद्यत्ते बालापार्श्वद्वयाऽऽश्रिते । अथ बाला पृष्ठतस्तु महारथनिवासिनी ॥ ८५ ॥
ललिता श्रीमहादेवी नवाऽऽवरणशक्तिभिः । अप्रमेयबलक्रौर्यशौर्ययुक्ताभिरावृता ॥ ८६ ॥
तस्याः पार्श्वद्वये मन्त्रनाथा दण्डधराऽऽस्थिता । प्रत्येकं रथमारूढा महाऽद्भुतपराक्रमा ॥८७॥
अनेककोटिमातङ्गकन्याभिः स्वसमाऽऽत्मभिः । चित्रवीर्याभिरभितः संवृता मन्त्रिणी स्थिता॥८८॥
वाराह्यपि महाभीमविकराऽऽकृतिनामभिः । शक्तिभिर्बटुकाद्यैश्च संयुताऽतिरुषान्विता ॥८९॥

महाभयंकर सभी शक्तियां "आगे मैं लड़ूंगी" "पहले मैं लड़ूँगी" इस प्रकार कहतीहुई सर्वप्रथम ही युद्ध करने को अत्यन्त उत्कण्ठित हो रही थी वहां ललिता की प्रिय आत्मजा (तनया) जो कुमारी बाला नाम की रही वह कोटि शत संख्याओंवाली कुमारियों से सेवित थी; वहां प्रचण्ड पराक्रम वाली शस्त्रों और अस्त्रों के चलाने में कुशल युद्ध में सेना के व्यूहों की रचना में अभिज्ञ देवी बाला 'भण्डपुत्रों को मैं मारूंगी।' इस प्रकार वारम्वार कहती थी। वे कुमारी शक्तियां युद्ध के लिये फुरफुरायमाणवदन उत्कण्ठित हो "हमलोग क्षणमात्र में ही सब का नाश करेंगी" इस तरह कहती हुई गरजती थी ॥८०-८३॥

अनन्तर सम्पत्करी और अश्वारूढा नामक शक्तिनायिकायें असंख्यात घोड़ों और हाथियों पर आरूढ महाशक्तियों के साथ बलके दर्प से उद्धत बालाके उस पार्श्ववर्त्ती दोनों ओर खड़ी हुई युद्ध करने के लिये सज्जित थी। अनन्तर बाला के पीठ पीछे महारथ पर विराजमान ललिता श्रीमहादेवी विराजमान थी। वह अप्रममेय बलवती क्रूरतायुक्त हृदयवाली और शौर्ययुक्त शक्तियों से युक्त थी। उसके दोनों पार्श्वों में मन्त्रनाथा तथा दण्डधरा स्थित थी वे दोनों ही प्रत्येक रथ पर आसीन महाअद्भुत पराक्रमसम्पन्न थी। मन्त्रिणी देवी अपने समान ही शक्तिवाली अनेक कोटि मातङ्गकन्याओं के साथ, जो विचित्र प्रकार के वीर्य एवं बल से सम्पन्न थी, आवृत हो विराजमान थी ॥८४-८८॥

महाभीम विकराल आकार एवं नामवाली शक्तियों और बटुकआदि पार्षदगण से युक्त अत्यन्त रोषधारण की

सर्वत्र शक्तिसेनासु न मया काऽपि लक्षितम् । यत्र ते वधवृत्तान्तसङ्कीर्तिर्न हि संस्तुता ॥९०॥
तत्रैकाऽप्यवरा शक्तिः सर्वमस्मद्बलं क्षणात् । नाशयेदिति मे बुद्धिर्व्यवसायं समास्थिता ॥९१॥
शतकोटिपरार्धानां कोट्यर्बुदशतात्मिका । सेनैवं शक्तिनिचिता दैत्यराज ! वदामि ते ॥९२॥
शक्तिरन्यमता तेषु बले वीर्ये च विक्रमे । सर्वान् दैत्यगणानस्मानतितिष्ठति सर्वथा ॥९३॥
इत्युक्त्वा दैत्यराजं तं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । विद्युन्माली समभवत्तूष्णी दैत्यसभागतः ॥९४॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुराहस्ये ललितामाहात्म्ये भण्डदूतस्यविद्युन्मालि-
नश्चारवाक्यं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५०७७ ॥

हुई वाराही देवी भी थी। सर्वत्र शक्ति सेनाओं में मुझे कोई भी स्थान ऐसा नही दीख पड़ा जहां आपके वधके सम्बन्ध की कथा का प्रकरण न चलता हो। उनमें से एक छोटीसी शक्ति भी हमारी सम्पूर्ण सेना को क्षणभर में नष्ट कर दे। मेरी बुद्धि इसी बात को दृढ निश्चय से मानती है। हे दैत्यराज! यह शक्ति सेना शतकोटि परार्धों में फैली हुई शतकोटि अर्बुद संख्यावाली है सो मैं आपको बताता हूँ। इन में एक भी शक्ति बल वीर्य और पराक्रम से हम दैत्यगण को अतिक्रमण करनेवाली है। (वह अकेली शक्ति और हमारी सम्पूर्ण सेना दोनों की समता नहीं है।)" यह कह कर उस दैत्यराज को प्रणाम कर हाथ जोड़े विद्युन्माली ने दैत्यसभा में उपस्थित हो मौनधारण किया ॥८९-९४॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य में ललितामाहात्म्य के प्रकरणवर्णन में दैत्यराज भण्ड को स्वराक्षस-दूतविद्युन्माली के द्वारा देवी के सारे बलाबल का कथन नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

राक्षसराजाय राक्षसगुप्तचरेणामित्रघ्नेन यथायथं देवीसन्नाहवर्णनम्

अथ क्षणादमित्रघ्नः प्राप्तो दैत्यसभान्तरम्। भण्डासुराऽङ्घ्र्योरपतद् भयविह्वलितान्तरम्॥१॥
आश्वस्तः प्राह सचिवैः पृष्टो वृत्तं प्रवेपितः। महाराज त्वदाज्ञप्तो गतः शक्तिमहाचमूम् ॥२॥
प्रविष्टः शक्तिभिस्ताभिर्गृहीतो बलवत्क्षणात्। न मे वीर्यं बलं वापि बभौ शक्त्यग्रतः क्वचित्॥३॥
रविप्रभानिमग्नस्य खद्योतस्येव सुप्रभा। क्षणेन तासां ग्रहणाद्विसंज्ञोऽभवमञ्जसा ॥४॥
अथ नीतो दण्डनाथासविधं मृतवत् स्थितः। सा कुलाद्रिरिवोन्नम्रा क्रोडास्या काञ्चनप्रभा॥५॥
क्रोधाग्निमुद्गिरन्तीव सुनेत्रैर्घर्घरारवा। तादृग्विधं शक्तिगणं तस्याः क्रोधप्रदीपितम् ॥६॥
दृष्ट्वाऽहमभवं भूयः श्वसितुञ्चाऽपि नो विभुः। तस्या नियोगान्नीतोऽहं शक्तिभिर्मन्त्रिणीपुरः ॥७॥

बासठवां अध्याय

देवी की सेना के सम्बन्ध में अपनी आंखों से देखा वर्णन जब विद्युन्माली ने भण्ड को सुनाया तदनन्तर क्षणभर में अमित्रघ्न दैत्यसभा में आगया। वह भय से व्याकुल मन से भण्डासुर के चरणों में गिर गया। जब भण्ड के सचिवों ने उसे आश्वासन दिया तो पूछने पर भय से काँपते हुए उसने सारा वृत्तान्त कहा, "हे महाराज। मैं आपके आदेश से शक्तियों की विशालसेना में गया। प्रवेश करतेही मुझे उन शक्तियों ने क्षणभर में बलपूर्वक ही पकड़ लिया। उन शक्तियों के सामने होने पर भी न तो मेरा वीर्य और न शारीरिक शक्ति काम कर सके। मैं जैसे सूर्य के प्रकाश में स्थित जुगनू की चमक की तुच्छता का सा अनुभव करते करते क्षणभर में उनके पकड़ने से चेतनाहीन हो गया ॥१-४॥

अनन्तर भगवती दण्डनाथा के सन्निकट जब मैं लेजाया गया तो मृतकवत् स्थित था। वह कुलपर्वत के समान उन्नम्र वराहमुखी सुवर्ण प्रभा धारी हुई अपने सुन्दर नेत्रों से क्रोधाग्नि को जैसे बाहर उगलती हुई सी घर्घरशब्दकरनेवाली विराजमान थी। उसके अनुरूप ही उसीप्रकार क्रोध से प्रदीपित शक्तियों का समूह था। उसे देखकर मै फिर श्वास भी न लेसका। उसकी आज्ञा से मैं शक्तियोंद्वारा मन्त्रिणी के सामने लेजाया गया ॥५-७॥

सा दृष्टा मन्त्रिणी देवी तापिच्छदलसन्निभा । सौन्दर्यकुलसारङ्गी पूर्णतारुण्यगर्विता ॥८॥
मन्दस्मितमुखी पानमदमाद्यद्विलासिनी । गीतहास्यपरा नित्यं वीणावादननिष्ठिता ॥९॥
तस्याः प्रसन्ननेत्राब्जाऽमृतवर्षाऽभिजीवितः । अन्ववेक्षमहं सर्वसौभाग्यैकसमाश्रयाम् ॥१०॥
तयाऽनुयुक्तो निखिलमवदं तव भाषितम् । तया नीतो महाराज्ञ्याः समक्षमहमाश्वथ ॥११॥
सा दृष्टा ललिताराज्ञी महाविभवसंश्रया । सन्देशं वाचयन्मह्यं यत्तत्ते मन्त्रिणीमुखात् ॥१२॥
वक्ष्यामि शृणु दैत्येश सावधानेन चेतसा । ब्रूयास्तं भण्डदैत्येशं जीवने यदि ते मतिः ॥१३॥
त्रिलोकीं विसृजेन्द्राय शरणीकुरु मातरम् । निवस त्वं परीवारयुतः पातालसद्मनि ॥१४॥
इन्द्रेण सङ्गतो भूयाः पुत्राऽमात्यादिसंयुतः । अकृत्वैवं न ते मोक्षो लोकाऽन्तरगतस्य च ॥१५॥
इन्द्रशत्रुमहं त्वां तु (?) स नेष्याम्यात्मसंश्रयम् । इति त्वया तत्र गत्वा वक्तव्यो भण्डदानवः॥१६॥
तदन्तरे शक्तिरेका श्यामा तुरगसंश्रया । करालकरवालोद्यत्करा तत्र समाययौ ॥ ॥१७।

वह मन्त्रिणी देवी तमालपत्र के समान कान्तिवाली, लावण्य के सम्पूर्ण सारभूत पदार्थों से युक्तसम्पूर्ण अङ्गोंवाली और पूर्णयौवन से गर्विता, मन्द हास्यवती, मधुपान के मद से उन्मुक्त विलासपूर्ण गमनवाली, गीत और हास्य में निरत तथा नित्य वीणावादन में परिनिष्ठित स्थित थी। मैंने उसके प्रसन्न नेत्रकमलों की अमृतवर्षा से जीवनदान पाकर सम्पूर्ण सौभाग्य की अद्वितीय आश्रय स्थान उस देवी को देखा। उसके आदेश को पाकर मैंने आपका कथन उसे सम्पूर्णरूप से यथावत् कह दिया। उसके द्वारा मैं शीघ्र ही महाराज्ञी के सामने ले जाया गया। अनन्तर महान् वैभव की आश्रयभूता ललिता राज्ञी ने आज्ञा देकर मन्त्रिणी के मुख से मुझे जो सन्देश कहलाया उसे मैं आपसे कहता हूँ सो हे दैत्यों के अधिपते! आप सावधान मन से सुनिये। "हे दूत! उस भण्ड दैत्यराज को कहना कि यदि तू जीवित रहना चाहता है तो इन्द्र के लिये त्रिलोकी के स्वामित्व को छोड़ दे; माता की शरण में चला जा तथा अपने परिकरसहित पाताललोक में निवास कर। तू अपने पुत्र तथा मन्त्रीगण आदि के सहित इन्द्र से मेल कर ले। ऐसा नहीं करने से तो मृत्यु के बाद लोकान्तर में भी तेरा कहीं मोक्ष नहीं। इन्द्र के शत्रु तुझे तो मैं अपने आश्रय में अवश्य ले लूँगी।" इस प्रकार तू जाकर भण्ड दानवराज को कहना। इसी के मध्य में अश्व

अवरुह्य स्ववाहनात् सा प्रणम्य ललिताऽम्बिकाम् ।
मन्त्रनाथाश्च वृत्तान्तं बभाषे साऽनुयोजिता ॥१८॥
प्रेषिता भण्डदैत्यस्य वाहिन्यां नगरेऽपि च । मद्भृत्याः शक्तयो गत्वा दृष्ट्वा सर्वं समागताः ॥१९॥
ताभिर्विभावितं सर्वं सैन्यं नगरमेव च । इति वृत्तं तया प्रोक्तं सर्वमस्मत्समाश्रयम् ॥२०॥
दैत्यानां सैनिकानाञ्च मन्त्रिणामायुधस्य च । संख्यानं वाहनानाञ्च कोशानां दुर्गरक्षिणाम् ।२१।
पुत्राणां ते तत्सुतानां तत्सुतानाञ्च सर्वशः ।
न तयाऽविदितं किञ्चिन्नाऽस्ति बाह्याऽन्तरेषु च ॥२२॥
स्त्रियः सर्वाः सुविदितास्तासाञ्चापि प्रभाषितम् ।
मन्त्रस्ते मन्त्रितोऽप्यत्र नाऽस्माभिर्विदितोऽपि यः ॥२३॥
तया प्रोक्तोऽथ वचनं वृत्तञ्चापि पृथक् पृथक् । चित्रं मन्ये चिरादत्र वसन्नविदितञ्च यत् ॥२४॥
तत् सर्वञ्च तया प्रोक्तं यद्यथा समवस्थितम् । यत्त्वयाऽप्यत्र नो ज्ञातं तत्त्वया कथितं ननु ॥२५॥

पर आरुढ एक श्यामा शक्ति अत्यन्त भीषण नग्न तलवार को अपने हाथ में लिये वहाँ आयी । अपने वाहन से उतर कर उस देवी ने भगवती ललिताम्बा को प्रणाम किया; उसकी आज्ञा पाकर मन्त्रनाथा को सारा वृत्तान्त कहा, "भण्डदैत्य की सेना में तथा नगर में भी भेजी हुई मेरी परिचारिका शक्तियां जाकर सब वृत्तान्त देख कर आगयी हैं, उसी ने हमारे यहां के समस्त वृत्तान्त को कह दिया ॥८-२०॥

उसने हमारी ओर के दैत्यों, सैनिकों, मन्त्रियों, सम्पूर्ण आयुधों, वाहनों तथा कोशोंदुर्गरक्षकों, आपके पुत्रों तथा उनके भी लड़कों और उनकी सन्तानों के विषय के सारे के सारे वृतान्त कहे । बाहर और भीतर प्रदेशों में कुछ भी ऐसा नहीं जो उससे छिपा हुआ हो । आपकेअन्तःपुरकी सभी स्त्रियोंको वह भलीप्रकार जानती थी एवं उनके मध्य हुए वार्तालाप भी उससे अज्ञात नहीं था । आपने जो यहां मन्त्रणा की, जिसके विषय में किसी को ज्ञान न था उसने सब यथार्थ रूप से बताया तथा पृथक् पृथक् वार्त्तालाप के वचन और वृत्तान्त स्पष्टतया कहे । मैं तो इसे अत्यन्त ही विचित्र बात मानता हूँ कि दीर्घकाल तक यहां रह कर भी मुझे जो अज्ञात है सो उसने विधिवत् सारी व्यवस्था कह डाली । जो आपको भी यहां ज्ञात नहीं वह भी उसने निश्चित रूप से बताया ।

मन्येऽहं तद्बलं देव्या अजेयं दैत्यपुङ्गवैः। एकाऽपि शक्तिरवरा सर्वान्नो नाशयेत् क्षणात्॥२६॥
दैत्येश्वराहं ते सैन्ये बलिष्ठनवरो ननु। इन्द्रादयोऽपि विजिता मया भूयः समागमे ॥२७॥
सोऽहं प्रविष्टमात्रोऽपि शक्त्या सामान्यया ननु। गृहीतो लीलयैवाऽऽशु हरिणा मृगशावकवत् ॥२८॥
यथा बालाः क्रीडनकमाच्छिद्याऽन्यकरस्थितम्। गृह्णन्त्यहं तथा ताभिर्गृहीतो बलवानपि ॥२९॥
न मेऽभूत् स्पन्दितुमपि शक्तिः क्व नु विमोक्षणे। अशक्यं सर्वथा दैत्यैर्जेतुं नास्त्यत्र संशयः॥३०॥
इत्युक्त्वा विरराभाऽथ दैत्यो दैत्येश्वराऽग्रतः। श्रुत्वेत्थं दैत्यवचनं भण्डः स्वाऽन्तरचिन्तयत् ॥३१॥
नूनं सा त्रिपुरेशानी कृपया मयि संश्रिते। प्रसादमकरोदद्य चिरकालाऽभिकाङ्क्षितम् ॥३२॥
यत्तया लोकमात्रोक्तं तदद्याऽवितथायितम्। धन्योऽहं त्रिपुरेशानीं दृष्ट्वा युद्धेऽनुभाष्य च ॥३३॥
तच्छस्त्राग्निमहाज्वालानिर्दग्धकलुषाऽङ्गकः। व्रजामि तल्लोकममुं महासुखसमाश्रयम् ॥३४॥
महापापसमुद्भूतो देहोऽयं पापसंश्रयः। दैत्यस्वभावविहितश्चिरभारायितो ननु ॥३५॥

मेरी मान्यता है कि देवी की वे शक्तियां आपके दैत्यपुङ्गवों से भी अजेय हैं। एक भी निम्नश्रेणी की शक्ति हम सब को क्षणमात्र में ही नाश कर डाले। हे दत्यश्वर! अवश्य ही आपकी सेना में मैं अधिकाधिक ऊँची श्रेणीवाला हूँ। मैंने बारम्बार इन्द्रादिदेवगण को युद्ध में जीता है, वही मैं प्रवेश करते ही एक साधारण सी शक्ति के द्वारा इस प्रकार अनायास ही पकड़ लिया गया जैसे सिंह मृग के छौने को पकड़ लेता है एवं जिस प्रकार बालकगण एक दूसरे से झपट कर गेंद को पकड़ते हैं उसी प्रकार बलसम्पन्न होने पर भी मैं उन शक्तियों द्वारा पकड़ लिया गया। मेरी हिलने-चलने की भी शक्ति नहीं हुई फिर छुड़ाने की तो बात ही क्या होती? दैत्य लोगों द्वारा उस देवी की सेनाका जोता जाना अशक्य है इस में कोई सन्देह का स्थान नहीं।" इस प्रकार दैत्य का वचन सुन कर भण्ड ने अपने मन में विचार किया, "अवश्य ही उस त्रिपुरेशानी ने मेरे ऊपर कृपाकर के दीर्घकाल से मेरा अभिलषित अनुग्रह ही किया है। जो उस लोकमाता ने कहा था वह आज सत्य होगया। मैं धन्य हूँ कि भगवती त्रिपुरेशानी को युद्ध में देख और उसके साथ बात कर उसके द्वारा छोड़े गये अस्त्रों की अग्नि की प्रचण्ड लपटों से अपने पापों के भस्म हो जाने से विशुद्ध शरीर हो महासुख के आस्पद उस माता के लोक को जाऊँगा। यह देह तो महापाप से उद्भूत है और सम्पूर्णतया पाप को ही इससे संग्रह किया गया है; अपने दैत्यस्वभाव से किये गये

यथाऽऽविष्टिगृहीतो हि भारं क्षिप्त्वा पलायति । तथाऽहं दुःखदं देहममुं भारं विसृज्य तु ॥३६॥
पलायिष्ये सुखस्थानं न मे खेदोऽत्र विद्यते । नूनं वर्षसहस्राणां नियुतैर्दह एष मे ॥३७।
सम्प्राप्तोऽत्यन्तसुखितामपि मे न हि रोचते। त एव भोगास्तद्राज्यं ताः स्त्रियस्तच्च सङ्गतम् ॥३८॥
अन्वहं सेवमानस्य सर्वं वैरस्यमागतम् । निर्विण्णोऽहं दृढतरमस्मात् पर्युषितात्मनः ॥३९॥
वाञ्छामि नाशं देहस्याऽऽमयं दीर्घाऽऽमयी यथा। परन्तु मे विरहिताः शोचिष्यन्ति प्रिया इमे॥४०॥
तथा तैरप्यहं हीनो न विन्दामि क्षणं सुखम् । आदौ वाऽनन्तरं वाऽपि दुःखदैव मृतिर्भवेत्।४१।
तदेतद्विषमं भाति कथं नार्तिर्भवेन्मम । एवं मे त्रिपुरा देवी कृपां कुर्यादभीप्सिताम् ॥४२॥
युगपद्यदि नो हन्यात् क्षेमं मे प्रतिभाति तत्। भक्तवाञ्छासमधिकफलदा सा निसर्गतः ॥४३॥
कुतो न पूरयेदिष्टं सा निजाङ्घ्र्याश्रयस्य मे। इत्थं विचिन्त्य मनसा नमस्कृत्य पराम्बिकाम् ॥४४॥

पापरूपी कुकर्मों के द्वारा दीर्घकाल से उन कुकृत्यों के भार से मैं अत्यधिक दबा हुआ हूँ । जैसे भूतादिक के आवेश से पीड़ित मनुष्य किसी भार को फेंक कर भाग जाता है वैसे ही मैं दुःखदायी इस देहरूपी भार को छोड़ कर अन्तिम गन्तव्य सुख के स्थान को चला जाऊंगा; इस विषय में मुझे किञ्चिन्मात्र भी खेद नहीं है । अवश्य ही हजारों नियुत वर्षों के दीर्घकाल से अत्यन्त सुखी अवस्था को प्राप्त कर भी इस देह से मुझे अब स्पृहा नहीं रही । सदा मिलने वाले वे ही भोग, वही राज्य, वे ही स्त्रियां और उनका सङ्ग भी मेरे लिये एक समान विरसता देनेवाला बन गया । प्रतिदिन इन्हें सेवन करते हुए मेरा मन ऊब गया है इस पर्युषित उबादेनेवाले जीवन से मैं बहुत अधिक दुःखी हूँ । जैसे दीर्घ समय से रोगार्त्त व्यक्ति अपने शरीर के नाश की प्रबल इच्छा करता है वैसे इस लौकिक देह का नाश हो ऐसी मेरी प्रबल आङ्काक्षा हो रही है। परन्तु मेरे से विरहित तो ये अपने प्रियजन शोक करेंगे और उसी प्रकार मैं भी इनसे विहीन होकर क्षण भर भी सुख नहीं पाऊँगा । आरम्भ में अथवा बाद में दुःखदेनेवाली मृत्यु अवश्य होगी ही । इसलिये यह सब मुझे विषम लगता है; मुझे कितना ही दुःख क्यों न हो ? इस प्रकार त्रिपुरा देवी अभीष्ट कृपा करे, हमें एक साथ मार डाले तो मुझे इसमें कुशल लगता है। वह स्वभाव से ही भक्त की इच्छा से भी सर्वप्रकार अधिक फलदेनेवाली है ॥२१-४३॥

अपने चरणों की शरण में पड़े मेरी अभीष्ट मनोकामना क्यों न पूर्ण करेगी?" इस प्रकार मन में विचार

नाट्ये नट इव स्वैरं क्रोधमाहारयत् परम् । धिगस्त्वधम दैतेय ! कथं मम समक्षतः ॥४५॥
अप्रियां परसंश्लाघां कुर्वन्नपि न लज्जसे । परसंश्लाघनं यत्तल्लोके कापुरुषव्रतम् ॥४६॥
परन्तु बलिनं ज्ञात्वा न शूरः श्लाघते क्वचित्। बली वाप्यबलो वाऽपि शूरास्तत्र न बिभ्यति ॥४७॥
इत्युक्त्वा खड्गमुद्यम्य क्रुद्धः कालमहाऽहिवत्। वमन्निव नेत्रमुखात् क्रोधकाकोलपावकम् ॥४८॥
निर्ययौ नगरद्वारान्महाविलमुखादिव । पश्यन्तु दैत्या ये भीताः तस्यामेति पराक्रमम् ॥४९॥
अद्य मां समरे प्राप्य पुनः सा न भविष्यति । वदन्तमेव दैत्येशं सूतः सरथमग्रतः ॥५०॥
अभ्याजगामाऽथ सोऽपि रथमारुह्य संययौ । तं मेनिरे जनाः कालं जगत्संहरणोद्यतम् ॥५१॥
नाऽस्य क्रोधाग्निमासाद्य जगद्भूयो भविष्यति। इत्यूचुः सहसा सर्वे भीताश्चाऽसुरपुङ्गवाः ॥५२॥
निर्ययुः स्वस्वसेनाभिः सेनाऽध्यक्षाश्च मन्त्रिणः। पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च भ्रातरः सर्व एव ते ॥५३॥
भीता निःशेषतः सेनां समादाय विनिर्ययुः। अथाऽऽज्ञप्तो विशुक्रेण कुटिलाक्षश्च भूपतिः ॥५४॥

कर पराम्बिका को प्रणाम कर नाटक में जैसे नट सब खेल रङ्गमञ्च में दिखाता है वैसे ही उसने अपने उत्कट क्रोध का नाट्य किया। वह बोला, "हे अधम दैतेय! तुझे धिक्कार है; तू मेरे सामने अत्यन्त अप्रिय दूसरों की प्रशंसा करते हुए भी लज्जित नहीं होता दूसरों की श्लाघा करना यह कायर पुरुषों का नियम है (कार्य है)। परन्तु किसी को बली जानकर वीरपुरुष कहीं भी उसकी प्रशंसा नहीं करता। बलवान् हो अथवा निर्बल शूरवीर कहीं भी नहीं डरते।" इस प्रकार कह कर अपने हाथ में तलवार लेकर क्रुद्ध हो भयानक महा कालरूपी नाग के समान अपने नेत्रद्वार से क्रोध की कल्पान्त अग्नि को उगलता सा नगर के विशाल द्वाररूपी बिल के मुख से मानो वह निकला। उसने उद्बोधन किया, "जो दैत्यगण भयभीत हो गये हैं, उन्हें साहस बटोर कर इस स्त्री का डट कर सामना करना है। आज युद्ध में मेरे सामने आकर वह फिर नहीं लौटेगी।" उसके इस प्रकार कहने पर सारथि रथसमेत आगे आया। तदनन्तर वह भी रथ पर आरुढ होकर चला गया। उसे लोगों ने जगत् के संहार के लिये उद्यत काल के समान ही माना। "इसके क्रोधरूपी अग्नि को पाकर अब जगत् नहीं टिक सकेगा।" इस प्रकार सभी दैत्यपुङ्गव लोग डर कर सहसा कहने लगे। अनन्तर सेनापति लोग अपनी अपनी सेनाओं के साथ युद्ध करने को निकले, साथ ही वे मन्त्रीगण, उसके सभी पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और भाई बन्धुगण भय से व्याकुल हो अपनी अपनी सम्पूर्ण सेनाओं को लेकर चले। अब विशुक्र के द्वारा आज्ञा पाकर

अक्षौहिणीपञ्चकेन चक्रे नगररक्षणम् । तन्निवेद्य विशुक्राय विकर्षन्महतीं चमूम् ॥५५॥
ययौ भण्डासुरस्याऽग्रे ग्रसन्निव ककुप्तटम् । एवं प्रचलिते दैत्यराजे निखिलसेनया ॥५६॥
अवादयंस्तु दैतेया रणभेरीः समन्ततः । पटहाऽऽनकभेरीणां वाद्यैर्दैत्यविगर्जनैः ॥५७॥
आस्फोटैर्नेमिघोषैश्च गजचीत्कारमिश्रितैः । वन्दिमागधसन्नादैर्हयह्रेषितबृंहितैः ॥५८॥
तुरङ्गखुरविक्षेपोन्मिषच्चटचटारवैः । हुङ्कृताऽऽह्वानसंरावैः संहतो हि महास्वनः ॥५९॥
बभौ जगत्पटीभेदप्रगल्भ इव पूरितः । सेनास्वनं समाकर्ण्य भण्डदैत्यसमागमम् ॥६०॥
विदित्वा चारमुखतो निश्चित्य महदुद्यमम्।दण्डिनी त्वरिता मन्त्रनाथां प्राप्य व्यजिज्ञपत्॥६१॥
सचिवेश्येष सम्प्राप्तो भण्डः सेनासमन्वितः । महासन्नाहसम्भारो युद्धं महदुपस्थितम् ॥६२॥
विज्ञाप्य ललितादेवीं समेता शक्तिभिर्वृता । संरक्षन्ती शक्तिगणैर्महाराज्ञया अनुव्रज ॥६३॥
अहं यास्ये तन्निरोद्धुं पुरतः सेनयाऽऽवृता । एष शब्दः श्रूयते वै गजवाजिसमाकुलः ॥६४॥

कुटिलाक्ष दैत्य भूपति ने पांच अक्षौहिणी सेनाओं के साथ नगर की रक्षा की। उसकी सूचना विशुक्र को देकर विशाल वाहिनी का सञ्चालन करता हुआ वह भण्डासुर के आगे आगे मानों दिशाओं को छाता हुआ सा बढ़ चला। सम्पूर्ण सेना के साथ इस प्रकार दैत्यराज के सन्नद्ध होने पर दैत्यों ने चारोंओर से रणभेरी का बजाना आरम्भ किया। पटह (ढक्का), आनक और भेरी वाद्यों के साथ दैत्यों के युद्धोन्मादी गर्जन-तर्जन से तथा घोड़ों की टापों ने भी पहियों की धुराओं के घोष (शब्दों) के साथ हाथियों की चिङ्घाड़ से मिश्रित हो स्तुतिपाठक मागध लोगों के जयनादों और घोड़ों की हिनहिनाहट का ध्वनि से युद्धकोलाहल में कई गुणा गम्भीरता आ गयी। घोड़ों के खुरों के भूमि से लगने से निकलने वाले चटचटाशब्द के और हुङ्कारगर्जन तथा युद्ध के लिये ललकारने की पुकारों से जगत् रूपी पटी के भदन करने में अति प्रगल्भ सब दिशाओं को पूरित करनेवाला शब्द एक साथ ही हुआ। सेना के घनगर्जन को और भण्डदैत्य के आगमन को सुनकर विशाल युद्धसज्जा की गई है इसे शत्रुपक्ष से लौटे अपने गुप्तचरों द्वारा जानकर दण्डिनी त्वरिता ने मन्त्रनाथा के पास जाकर कहा, "हे सचिवेशि ! सेनाके साथ भण्डदैत्य आ गया, उसके साथ विशाल युद्ध की सामग्री है। अब भीषण महायुद्ध का समय उपस्थित है। श्रीललिता देवी को बताकर सभी शक्तियों के सहित अपने शक्तिगण से रक्षा की गई उस श्रीमहाराज्ञी के पीछे

मन्ये बाला सम्प्रवृत्ता युद्धे युद्धसमुत्सुका । सम्पन्नाथाऽश्वनाथाभ्यां युता चित्रपराक्रमा ॥६५॥
एवं वदन्त्यां तस्यान्तु प्राप्ता सन्देशहारिणी । वर्धयित्वा दण्डनाथां मन्त्रिणीञ्चाऽप्यभाषत ॥६६॥
देवि प्रवृत्तं सुमहद्युद्धं बालाम्बया सह । दैत्यराजस्य सन्नाहो महान् युद्धसमुद्यमः ॥६७॥
भ्रातृपुत्रादिसहितसर्वसेनासमावृतः । समागतः क्रूरतरो युध्यति क्रूरविक्रमः ॥६८॥
इति विज्ञापनायाऽहं सम्पत्कर्या निरूपिता । किं वदामि पुनर्गत्वा तां देवीं गजवाहिनीम् ॥६९॥
श्रुत्वा सन्देशहारिण्या वाक्यं श्रीदण्डनायिका । प्राह तत्कालसदृशं वाक्यं विक्रमबृंहितम् ॥७०॥
गच्छेभसेनानेत्रीं तां ब्रूहि श्रुत्वा मदीरितम् । अप्रमत्ततया नूनं योद्धव्यं दैत्यपुङ्गवैः ॥७१॥
बाला कुमारिका नित्यं युद्धगोष्ठीसमुत्सुका । सर्वतः सा रक्षितव्या प्राप्ताऽस्म्यहमपि द्रुतम् ॥७२॥
यथा पलाय्य नो गच्छेन्मायया दैत्यपुङ्गवः । तथा संरुध्य योद्धव्यं यावन्मम समागमः ॥७३॥
ततोऽहं तस्य न चिरं युद्धश्रद्धां चिरन्तनीम् । नाशयामि क्षणेनैव तमः सूर्योदये यथा ॥७४॥

जा और मैं उसे रोकने के लिये सामने जाऊँगी । यह हाथी घोड़ों से समाकुलित बाला सुनायी पड़ता है । मैं सोचती हूँ कि युद्धकरने के लिये उत्कण्ठित बाला युद्ध में प्रवृत्त हो गयी है । उस विचित्रपराक्रमसम्पन्ना के साथ सम्पन्नाथा और अश्वनाथा दोनों शक्तियां हैं।" इस प्रकार उसके कहते ही सन्देशहारिणी पहुंच गयी । वह दण्डनाथा को अभिवादन कर मन्त्रिणी से बोली ॥४५-६६॥

"हे देवि ! बालाम्बा के साथ दैत्यों का महा भीषण युद्ध हुआ है । दैत्यराज की सेना और युद्ध की तैयारी विशाल और विपुल है । वह अपने भाई और पुत्र आदि परिवार के सहित सारी सेना को लेकर आया है; वह अत्यन्त पराक्रमसम्पन्न क्रूरतर युद्ध करता है । इसे कहने के लिये सम्पतकरी ने मुझे प्रेरणा दी है । फिर जाकर मैं उस गज पर आरूढ देवी को क्या कहूँ ?" श्रीदण्डनायिका देवी ने संदेशहारिणी के वचन सुन उस समय के सर्वथा उपयुक्त पराक्रमबृंहित (शौर्ययुक्त) वाणी में कहा, "तू हस्तीसेनानेत्री के पास चली जा; उसे मेरे कथन को सुनाकर कह दे; अवश्य ही प्रमादरहित हो (अत्यन्त सावधानता से) उन दैत्यपुङ्गवों से युद्ध करना; बाला कुमारिका सदैव युद्ध करने के लिये उत्कण्ठित रहती है, उसकी सब ओर से भलीप्रकार रक्षा करना, मैं भी शीघ्र ही आती हूँ । वह दैत्यश्रेष्ठ माया द्वारा जैसे युद्ध से भाग कर न चला जाय उसी प्रकार उसे रोक कर युद्ध करना तब तक मैं भी आती हूँ । उसके बाद जैसे सूर्योदय होने के साथ अन्धकार मिट जाता है वैसे उसकी दीर्घकाल से युद्ध के प्रति उत्सुकतापूर्ण श्रद्धा को शीघ्र ही क्षणभर में नष्ट कर दूँगी ॥६७-७४॥

गच्छ शीघ्रं समादाय सन्देशं गजवाहिनीम्। आज्ञप्तैव निर्गता सा शक्तिः सन्देशहारिणी ॥७५॥
ततः किरिरथारूढा दण्डिनी निर्ययौ द्रुतम्। असङ्ख्यशक्तिसेनाभिर्युता क्रोधसमाकुला ॥७६॥
निसर्गक्रोधना भूयो युद्धोपक्रमरोषिता। दिधक्षन्तीव लोकांश्च सर्वान् रोषाग्निना क्षणात् ॥७७॥
रथनेमिमहास्वनयुतः सेनामहारवः। परेषां हृदयं भिन्दन् श्रोत्रमार्गेण संविशन् ॥७८॥
प्रतिस्वानमहाघोषः प्रोच्चलद्भीषणाऽऽकृतिः। एवं श्रीदण्डसाम्राज्ञी जैत्रयात्रामुपाऽक्रमत् ॥७९॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये श्रीललितामाहात्म्ये भगवत्यास्तनूजया बालया युद्धोद्योगवर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥५१५६॥

गजवाहनवाली शक्ति के पास मेरा सन्देश लेकर तू शीघ्र चली जा।" इस प्रकार आज्ञा पाकर सह सन्देशवाहिका शक्ति चली। तब शूकर के रथ पर आरूढ दण्डिनी शीघ्र निकल आयी। वह असंख्य शक्तिसेनाओं से युक्त, क्रोध से रोषाविष्ट, स्वभाव से ही क्रुद्ध वह फिर युद्ध के लिये सज्जित होने के कारण से और अधिक क्रुद्धहुई ऐसी मालूम दी मानो अपने रोषरूपी अग्नि से समग्र लोकों को क्षणभर में जलाने जा रही हो। रथ की नेमि (धुरि) के महाशब्द से युक्त सेना का कोलाहल शत्रुपक्ष के कानों के द्वार से जाकर हृदयों को भेदन करता हुआ सामने खड़ी प्रति पक्षवाली सेना का महाघोष दैत्यों की भीषण आकृति से और भी भयङ्कर दृश्य उपस्थित करता था। इस प्रकार दण्डसाम्राज्ञी ने अपनी विजययात्रा आरम्भ की ॥७५-७९॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के ललितामाहात्म्यप्रकरण में भगवती की बालादिशक्तिसेना एवं भण्डदैत्य की सेना के बीच युद्ध के आरम्भ का वर्णन नामक बासठवां अध्याय सम्पूर्ण ॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

बालायाः समरपराक्रमवर्णनम्

भण्डासुरमहासेनाकोलाहलमहाध्वनिम् । निशम्य प्रैक्षदत्यन्तयुद्धोत्सुकतया दिशम् ॥१॥
प्रागुदीचीं कुमारी सा ललिताया मनःप्रिया । ददर्श दैत्यसेनायाः सम्मर्दजनितं रजः ॥२॥
प्रतिसञ्चरसम्भूतसांवर्तकसमूहवत् । ज्ञात्वा प्राप्तं दैत्यराजं सर्वसेनासमावृतम् ॥३॥
समरोत्सुकचित्ता सा बाला त्रिपुरसुन्दरी । लघुचक्ररथाऽऽरूढा रथनेत्रीमचोदयत् ॥४॥
श्रीमातुः प्रतिरोधं सा तर्कयन्त्यथ संयुगे । अदृष्ट्वैव महादेवीं मन्त्रिणीमभिसंययौ ॥५॥
सेनानेत्रीश्च सेनाश्चाऽप्याकाङ्क्षन्त्यतिसत्वरम् । दैत्यसेनाऽभिमुखतो वायुवेगेन संययौ ॥६॥
शरदीव महामेघ आकाशे वायुनेरितः । यथा पुरो निपतति तथा वेगाद्रथो ययौ ॥७॥

तिरसठवाँ अध्याय

भण्डासुर की विशाल सेना के कोलाहल की घोर शब्दध्वनि को सुनकर श्रीदण्डसम्राज्ञी ने अत्यन्त पराक्रमपूर्ण युद्ध करने की लालसा से पूर्व और उत्तर दिशा की ओर देखा। भूमि पर ललिता की मनःप्रिया कुमारी बाला ने दैत्यसेना के भूमि पर चलने से उठी हुई रज को मानों प्रतिसञ्चर (प्रलय में) उद्भूत सम्वर्तक मेघों के समूह के समान सम्पूर्ण सेना से युक्त सज्जित दैत्यराज को आया जान कर लघुचक्र रथ पर सवार होकर बाला त्रिपुरसुन्दरी ने समर में युद्धकौशल दिखाने को उत्कण्ठित चित्त से रथनेत्री को प्रेरणा की ॥१-४॥

'श्रीमाता का अवरोध भण्डासुर करेगा' इस प्रकार मन में तर्क वितर्क करती वह महादेवी को युद्ध में देखे विना ही मन्त्रिणी देवी के समीप गयी। अतिशीघ्रतया सेनानेत्री और सेना की कामना भी करती हुई दैत्यसेना के सामने वह सम्मुख आ गयी। शरत्काल में आकाश में जैसे वायु के झोके से महामेघ उड़ जाता है वैसे ही जो उसके सामने वायु के वेग से आता उसे ही पार कर उस बाला का रथ शीघ्र वेग से आगे चला जाता। बाला की उस

बालाया युद्धयात्रां तां विषमां वीक्ष्य सत्वरम् । अश्वारुढा द्रुततरं तामनु प्रतिसंययौ ॥८॥
तुरङ्गैस्तुङ्गभङ्गाभैः पयोधिरिव तच्चमूः । उपाद्रवज्जगज्ज्वालाप्लावनायेव सर्वतः ॥९॥
सम्पत्करी च तत्पश्चाद्रणकोलाहलस्थिता । अनेककोटिमातङ्गसेनासंवलिता द्रुतम् ॥१०॥
वेगादनुससारोच्चैर्बालारक्षणहेतवे । नोदिता शीघ्रसंयाने रथविद्याविशारदा ॥११॥
बालायाः सदृशाऽऽकारा वाहयत् स्यन्दनं जवात्। प्रावृण्नदीव जलधिं दैत्यसेनां व्यवगाहत ॥१२॥
सज्यं धनुर्विकर्षन्ती वर्षन्ती शरवर्षणम् । नदीवेगविभिन्नेऽब्धौ नौरिव स्यन्दनन्तु तत् ॥१३॥
विवेश दैत्यराजस्य शरौघदलितां चमूम् । कुटिलाक्षो दैत्यसेनामुखे कुञ्जरसंस्थितः ॥१४॥
महत्या सेनया बालां संरुरोध महाबली। दैत्यसेनापतिः सोऽपि दृष्ट्वा बालां कुमारिकाम्॥१५॥
सृजन्तीं शरवर्षाणि मेनेऽद्भुतपराक्रमम् । एकाकिनीं रथारूढां मृद्वङ्गीमष्टहायनाम् ॥१६॥

विषम युद्धयात्राको देखकर देवी अश्वारूढ़ा अति शीघ्र ही उसके पीछे गयी। ऊंची दौड़ लगाते हुए घोड़ों से सजी वह सेना मानों ऊंची लहरों के सदृश अगाध समुद्रके समान जगत्को चारोंओर से अपनी वेला में डुबोने के लिए उमड़ आयी हो और उसके पश्चात् सम्पत्करी रणके कोलाहलपूर्ण वातावरणमें स्थित हो अनेक कोटि मातङ्गसेनाओं के सहित वहां शीघ्र वेग से उस बाला त्रिपुरा की रक्षा करने के लिये पीछे पीछे अनुसरण करने लगी। रथचलाने की विद्या में अत्यन्त प्रवीण बाला के समान ही आकृतिवाली वह शीघ्र रथ को चलाने की आज्ञा पाकर अत्यधिक प्रबल वेग से रथ को हाँकने लगी। वर्षा की वेगधारवाली नदी जैसे समुद्र की ओर बड़े वेग से बहती है वैसे ही उसने दैत्यसेना को रौंदकर छान डाला ॥५-१२॥

वह बाण को धनुष पर खेंचे बाणों की वर्षा करती हुई नदी के वेग से स्पष्टतया विशेषरूप से भिन्नता बतानेवाले समुद्र में नौका के समान उसका रथ बाणों के समूह से उत्पीडित दैत्यराज की सेना में प्रविष्ट हुआ। दैत्य सेना के सामने महाबली कुटिलाक्षने हाथी पर चढ कर विशाल सेना के साथ बाला को रोका। उस दैत्यसेना के अधिपति ने कुमारिका बाला को बाणों की वर्षा करती देख कर उसका यह अद्भुत पराक्रम माना। अकेली रथ पर आरूढ़ कोमल अङ्गोंवाली आठ वर्ष की इस बाला कुमारी को देख उसने मन में आश्चर्य किया ॥१३-१६॥

अहो चित्रतमं ह्येतत् केयमेका कुमारिका। निर्भया योधयत्यस्मानिन्द्रादीनाश्च त्रासनान् ॥१७॥
मन्येऽहं ललितामेनां निमित्तैश्चारसंस्तुतैः। लक्षये सर्वचिह्नानि किन्त्वेषा तरुणी न च ॥१८॥
अप्येषा यस्य तनया भवेत् पूर्वं हि या श्रुता। कथं तत्तनया बाला सेनाविरहिता पुनः ॥१९॥
एकला युद्धसन्नद्धा समागच्छेन्मृधे क्वचित्। नूनमेषैव सर्वान्नो जेष्यतीव विभाति मे ॥२०॥
लक्षये न युधि स्थातुं सम्मुखेऽस्या भवेत् प्रभुः। विशुक्रो वा विषङ्गो वा राजा वाऽप्यहमेव वा॥२१॥
कुतो राजकुमाराद्याः प्रत्येकं मिलिताश्च वा। अस्मत्सेना यत्र यत्र निरीक्षति ततस्ततः ॥२२॥
शरजालेन शिथिलां करोति निमिषाऽर्धतः।
कोटिशो निहता दैत्यास्त्रासिताऽस्मन्महाचमूः ॥२३॥
एते विभिन्नबाह्वङ्घिहृदयक्रोडमस्तकाः। पतिताश्च मृताश्चाऽन्ये धावन्त्यन्ये महाभयात् ॥२४
शोणितप्रवहांतर्तुमशक्ता भयकम्पिताः। पतितास्तत्र शतशो निमग्ना रक्तसिन्धुषु ॥२५॥

"अहो ! यह अत्यधिक विचित्र बात है कि यह अकेली कुमारी बाला जो इन्द्र आदि समर्थ देवगण को भी त्रास देनेवाले हम लोगों से निर्भय हो लड़ती है, कौन है ? । मैं तो समझता हूँ कि चारगण के द्वारा स्तुति की जाने के चिह्नों से यह ललिता ही है, क्योंकि उसी के सभी चिन्ह मैं इसमें देखता हूँ परन्तु यह युवती नहीं। कहीं यह उसकी पुत्री हो सकती है ? जिसके विषयमें पहले सुना था। उस महादेवी की पुत्री बाला विना सेना ही कैसे आयी है ? फिर अकेली युद्ध के लिये पूर्ण सज्जित हो रणक्षेत्र में तो कहीं न आयी हो ? अवश्य ही यह हम सब लोगों को जीत लेगी यह मुझे जंचता है। इसके सम्मुख युद्ध में विशुक अथवा विषङ्ग या दैत्यराज भण्ड अथवा मैं भी युद्ध में लड़ने में समर्थ नहीं होंगे। फिर सब भण्ड के राजकुमार आदि एक साथ मिल कर अथवा प्रत्येक पृथक् पृथक् तो किस प्रकार इससे लड़पायेंगे ? हमारी सेना को जहां जहां यह देखती है वहां वहां अपने बाणों का जाल छोड़ कर आधे निमिष में ही सब को शिथिल बना देती है। इसने कोटिशः दैत्यों का वध किया तथा हमारी विशाल सेना का त्रास किया। ये बहुत से राक्षसगण बाहु, पाद, हृदय, गोद का पार्श्व भाग और मस्तक छिन्न भिन्नहुए, युद्ध में विकलाङ्ग हो काम आ गये, अन्य मर गये और कई लोग अत्यधिक भय के कारण भाग गये। बहुत से राक्षस लोग रक्त से परिपूर्ण इस युद्धभूमि को पार करने में भय से कम्पित हो अशक्त हो गये और सैकडों ही रक्त के समुद्र में डूब गये" ॥१७-२५॥

प्राप्तैषाऽस्मच्चमूं भित्त्वा प्रविशेत् क्षणमात्रतः । रोद्धव्येयं मया यत्नाद्धिङ्मामेवंविधं स्थितम् ॥२६॥
योषिद्बाला मत्समक्षं भित्त्वा सेनां प्रवेक्ष्यति । नैतदिन्द्रेण मरुता वायुनाऽपि कृतं पुरा ॥२७॥
विषमं भाति मे ह्येतदेषा जेयेति सर्वथा । इति निश्चत्य तां रोद्धुं महागजसमास्थितः ॥२८॥
ससार पुरतस्तस्याः शरजालान्यवाकिरत् । युयोधाऽतिबलो दैत्यः कुटिलाक्षस्तया सह ॥२९॥
बालया युद्धकुशलो मायाशस्त्राऽस्त्रकोविदः । ववर्ष शरवर्षेण बालां युद्धेऽग्रतः स्थिताम् ॥३०॥
उद्यन्तं भास्करमिव हिमसंहतिवर्षवत् । साऽपि बालाऽरुणाऽऽभाङ्गी शरतीक्ष्णतरांऽशुभिः॥३१॥
अनयन्नाशमत्यन्तं तं वर्षं निमिषाऽर्धतः । अर्दयामास दैत्यस्य सेनां निशितसायकैः ॥३२॥
अतिलाघवतस्तस्याः शरसन्धानमोक्षणम् । न वेद कश्चित्कुशलोऽप्यतिसूक्ष्मदृशाऽपि च ॥३३॥
अपश्यन् शरसङ्घातधारां चापविनिर्गताम् । प्रावृड्गिरिमुखात्तोयधारामिव निरन्तराम् ॥३४॥
विधूय तां महासेनां मुहूर्ताऽष्टमभागतः । कुटिलाक्षं समासाद्य जघान निशितैः शरैः ॥३५॥

"यह तो हमारी सेनाको भेदन कर क्षणमात्र में ही आकर प्रवेशकरनेवाली है । इसे मुझे अत्यन्त चेष्टापूर्वक रोकना चाहिये । मैं ऐसे ही निश्चेष्ट खड़ा हूँ, धिक्कार है मुझे ! यह बाला स्त्री मेरे सामने सेनाको भेद कर प्रवेश करेगी इसके पहले यह कार्य न तो इन्द्र ने, न मरुत् ने और न वायुने ही किया । यह मुझे सब अनुचित प्रतीत होता है; इसे सर्वथा ही जीतना चाहिये ।" यह निश्चय कर वह राक्षससेनापति उसे रोकने के लिये महागज पर आरूढ हो उसके सामने शनैः शनैः आनेलगा और बाणों के जाल छोड़ने लगा । अत्यन्त बली कुटिलाक्ष दैत्य उस बाला के साथ युद्ध करने लगा । युद्ध में कुशल माया के शस्त्रों और अस्त्रों के प्रयोग में निपुण उस दैत्यने सामने खड़ी हुई बाला पर बाणों की वर्षा की । जैसे उगते हुए सूर्य को कोहरे की वर्षा ढकदेती है वैसे ही उसने अपने बाणों से देवी को आच्छादित कर दिया । अरुणप्रभा की कान्ति के अङ्गोंवाली उस बाला ने भी आधे क्षण में ही बाणों के तीक्ष्ण अग्रभाग से अनवरत वर्षा कर राक्षस के बाण वर्षण का बहुत अधिक वेग से शीघ्रता से नाश किया एवं अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से दैत्य की सेना को दलित किया । बहुत अधिक अपने अत्यन्त चातुर्य से अपने धनुष पर बाणों को चढाने तथा छोड़ने की उसकी कोई भी कुशल व्यक्ति अत्यन्त सूक्ष्मदृष्टि से ध्यान देने पर भी न जान पाया । जैसे प्रवर्षण गिरि के शिखर से अजस्र जलधारा गिराता हो वैसे ही धनुष से बाणों के समूहों की धारा को वह एक शृंखलाबद्ध छोड़ती थी । उस दैत्यराज की महासेना को मुहूर्त्त के अष्टम भाग के स्वल्प समय में ही संहार कर कुटिलाक्ष को पाकर बाला ने उस पर अपने तीक्ष्ण बाणों से आघात किया । ॥२६-३५॥

युयोध सोऽपि बलवान् सर्वप्राणेन संयुगे । तस्य शस्त्राऽस्त्रजालानि प्रतिशस्त्राऽस्त्रवर्षतः ॥३६॥
मोघं कृत्वा शरैस्तीक्ष्णैः प्राहरद्दैत्यनायकम् । एकेन तीक्ष्णभल्लेन चापं तस्याऽच्छिनज्जवात्॥३७॥
ततश्चैकेन वाहस्य गजस्य प्राहरन्मुखे । इषुणा ताडितो वक्त्रे गिरिराजसमो गजः ॥३८॥
चीत्कुर्वन् विभ्रन् भूमौ गतासुरपतत् क्षणात् । मरिष्यन्तमिभं ज्ञात्वा कुटिलाक्षो गदाधरः ॥३९॥
क्रोधेनाऽभ्यद्रवद्धन्तुं बालां रथसमाश्रयाम् । ग्रसन्तमरुणं बालं राहुं द्रुतगतिं यथा ॥४०॥
अपश्यन् विबुधाः सिद्धा नभोमण्डलसंश्रयाः । आयान्तमतिवेगेन गदाहस्तं निशाम्य सा ॥४१॥
शरेणाऽऽकर्णपूर्णेन विव्याध हृदयाऽन्तरे । स विद्धस्तीक्ष्णबाणेन बहुशोणितमुद्गिरन् ॥४२॥
पपात मूर्च्छितो भूमौ वज्राऽऽहतमहीध्रवत् । अथ बाला प्राह सखीं रथनेत्रीं स्मिताऽऽनना ॥४३॥
सखि शीघ्रं नय रथं भण्डदैत्यसमीपतः । आयात्येषा पृष्ठतो मे दण्डिनी शूकरध्वजा ॥४४॥
उत्कण्ठिताऽस्मि दैत्येन योद्धुं भण्डेन सङ्गरे। मामासाद्य दण्डनाथा प्रतिरोत्स्यति वै ध्रुवम् ॥४५॥
यथा नाऽऽसादयेन्मां सा तथा वाहय सत्वरम्। इत्युक्ता रथनेत्री सा बालां प्रोचे सखी तदा ॥४६॥

वह बलवान् कुटिलाक्ष भी अपने प्राणपण से युद्ध में लड़ा। बाला ने उसके शस्त्रों और अस्त्रों के जालों को अपनी ओर से काटने को छोड़े प्रतिरोधी शस्त्रास्त्रों की वर्षा से व्यर्थ बना कर तीक्ष्णबाणों से दैत्यनायक पर प्रहार किया। एक तीखे भाले से उस दैत्य के धनुष को वेग से काट डाला। तत्पश्चात् देवी ने एक तीक्ष्णभाले से दैत्य के वाहन गज के मुख पर आघात किया। उसकी तीक्ष्ण नोक से प्रताडित हाथी चिङ्घाड़ता हुआ पर्वतराज के समान भूमि में लोटता हुआ प्राणहीन हो क्षणभर में ही गिर पड़ा। मरे हुए हाथी को देखकर कुटिलाक्ष ने क्रोध से गदा हाथ में धारणकर रथ में बैठी हुई बाला को मारने के लिये उसी प्रकार दौड़ा जैसे बाल सूर्य को राहु द्रुत गति से ग्रसता है इस दृश्य को देवगण एवं सिद्धों ने नभोमण्डल में स्थित होकर देखा। गदा को हाथ में लिये उसे अत्यन्त वेग से आया देख उस बाला ने अपने कानों तक धनुष की प्रत्यञ्चा खींच बाण को चढ़ाकर राक्षस के हृदय के भीतर घुसा दिया। वह तीक्ष्णबाण से बिंधा हुआ बहुत अधिक खून को वमी करता वज्र से आहत पर्वत के समान मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। अनन्तर बाला ने हँसते हुए रथनेत्री सखी से कहा, "हे सखि! मेरे रथ को शीघ्र भण्डदैत्य के पास ले चल; मेरे पीठ पीछे यह शूकरवाहनवाली दण्डनी अवश्य ही आ रही है। मैं भण्डदैत्य के साथ युद्ध में लड़ने को उत्कण्ठित हूँ। मेरे पास आकर दण्डनाथा अवश्य ही मुझे रोकेगी। वह जिस तरह मेरे पास न पहुंच सके उसी प्रकार अत्यधिक शीघ्रता से मेरे रथ को ले चल।" इसप्रकार कही जाने पर तब उस रथनेत्री सखी ने बाला

दैत्यसेनां मध्यतस्तु ध्वजो योऽयं महोन्नतः । दृश्यते काञ्चनमयो रथस्तस्यैष एव हि ॥४७॥
इतो दूरतरे स स्यान्महद्भिर्दैत्यपुङ्गवैः । महारथिभिरत्युग्रः संवृतो ननु दृश्यते ॥४८॥
विवरन्तु न पश्यामि रथं येन नयामि तत् । शस्त्रेण सृज मार्गं त्वं वाहयामि ततो रथम् ॥४९॥
इत्युक्ता लघुहस्ता सा बाला मार्गमकल्पयत् । शरवृष्ट्या निमेषेण दैत्यसेनासु मध्यतः ॥५०॥
सायकौघप्रवाहेण भग्नसेतुरिवाऽऽबभौ । सेनामुखं महाशूरैर्दैत्यैरुद्धमपि क्षणात् ॥५१॥
केचिद्भग्नरथाश्चाऽन्ये नष्टाऽश्वगजवाहनाः । असह्यां शरधारां तां प्राप्य दैत्याः प्रदुद्रुवुः ॥५२॥
अपरे छिन्नबाह्वक्षिचरणोदरमस्तकाः । तथाऽन्ये शस्त्रसङ्घातपातेन तिलशः कृताः ॥५३॥
ववुः शोणितवाहिन्यो भीरूणां सागरोपमाः । सुफेनिलास्तरङ्गाढ्या उष्णोदकवहा इव ॥५४॥
शरजालमहामेघच्छन्नसूर्यकरा दिशः । अन्धीभूता न विदिता दैत्यैर्विद्रावतत्परैः ॥५५॥
मेनिरे ते महामृत्युं प्राप्तं बालास्वरूपतः । पतन्ति सङ्घशस्तत्र दैत्यानां मस्तकान्यलम् ॥५६॥

से कहा, "दैत्यसेना के बीच में से जो बहुत ऊँचा ध्वज है, जहां सुवर्णमय रथ दीखता है; वह उसी का है। यहां से कुछ दूर स्थित प्रदेश में महान् धुरंधर श्रेष्ठ दैत्यवीर महारथियों सहित वह अति अभिमानी भण्ड राक्षस सन्नद्ध दीखता है। मुझे कोई पार्श्ववर्ती विशेष मार्ग तो नहीं दिखाई देता जिससे मैं रथ निकाल कर वहां तुम्हें ले चलूँ; तू शस्त्रों को चला कर मार्ग बना फिर मै रथ को खींच ले जाऊँगी।"॥३६-४९॥

यह कहने पर अस्त्र शस्त्रों के चलाने में निपुण उस बाला ने क्षण भर में दैत्यों की सेना के बीच में से अपने रथका मार्ग बाणों की वर्षा से बना लिया वह ऐसे लगा जैसे बाणसमूहों के प्रवाह से सेतु भग्न हो गया हो। सेना की अग्रिम पंक्ति में महाशूर दैत्यों ने मार्ग को रोका भी परन्तु क्षण में ही बाला की बाणवर्षा से कई दैत्यों के रथ छिन्नभिन्न कर दिये गये; अन्य राक्षसों के अश्व तथा गजवाहनसमूह नष्ट होगये। न सही जानेवाली बाणों की वर्षाधार से त्रस्त हो दैत्यगण रणभूमि से भाग छूटे ॥५०-५२॥

कई राक्षसों के अङ्ग-भुजायें, आँख, चरण, उदर और मस्तक छिन्न हो गये और अन्य दैत्यलोगों के अंग शस्त्र समूहों के आघात से तिल तिल कर खण्ड खण्ड बना दिये गये। कायर लोगों के क्षत विक्षत शरीरों से निकली हुई लहू की नदियां बहने लगी जो सागर के समान और फेनिल (झागवाली) तरंगों से पूर्ण, गर्म जल के प्रवाह वाली नदी के समान लगती थी। बाणों के जालरूपी महामेघ के छा जाने से सूर्य की किरणें जैसे ढक जाती हैं उससे दिशाओं में अन्धकार हो गया। किसी को भी दिशाओं का ज्ञान नहीं रहा। दैत्य लोग भागने की तैयारी करने लगे। उन्होंने बाला के स्वरूप में अपनी

तृणराजफलानीव पक्वानि प्रौढवायुना । हा तात पुत्र सुसखे भ्रातर्मित्र हतोऽस्म्यहम् ॥५७॥
इति घोषो महानासीद्दैत्यानां रणसङ्कटे । तदन्तरे मुखे भग्ने सेनायास्तस्य वेगतः ॥५८॥
प्रवेशयद्रथवरं रथनेत्री निमेषतः । विशुक्रदैत्योऽवरजो भण्डदैत्यस्य संयुगे ॥५९॥
दृष्ट्वा भित्त्वा स्वसेनाया मुखं बालां समागताम् । गच्छन्तीं दैत्यराजेन योद्धुमुत्सुकितां तदा ॥६०॥
ज्ञात्वा विचारयन्नूनमेषा बालाऽष्टहायना । निःसीमबलवीर्याऽऽढ्या युध्यत्यतिविचित्रितम् ॥६१॥
नैषा जेयाऽसुरैःकैश्चिद्बलवद्भिरपि क्वचित् । तथाऽपि समरे शूरैर्योद्धव्यं सर्वथा ननु ॥६२॥
एषैव नाशयेत् सर्वान् दैत्यानस्मान्न संशयः । किं करिष्यति सा देवी ललिता समरे पुनः ॥६३॥
सर्वप्राणेन योद्धव्यं दैवमत्र परायणम् । इति निश्चित्य नागेन्द्रमैरावतकुलोद्भवम् ॥६४॥
श्वेतं चतुर्दन्तयुतं रजताऽद्रिसमप्रभम् । विशुक्र आरुह्य जवात् शरान् धाराधरो यथा ॥६५॥
वर्षन् विरेजे कैलासाऽऽरूढ नीलाम्बुदोपमः । रुरोध बालां रथगां प्रविश्य दैत्यवाहिनीम् ॥६६॥

महामृत्यु का आगमन जाना । दैत्यों के मस्तक समूहरूप में एक साथ आ गिरने लगे ; जैसे पके हुए आम के फल झंझावाती वायुके झोंकेसे गिरते हैं । दैत्यों के रणसङ्कट उपस्थित हो जाने से, "हा तात", "हे पुत्र !","हे शुभमित्र !", "हे भ्रातः !", "हे मित्र !" मैं मारा गया हूँ इस प्रकार रणसङ्कट में महान् कोलाहल सुनाई देता था । तदनन्तर दैत्य की सेनावालो सामने की पंक्ति को बड़े वेग से भग्न होते देखकर दैत्यराज की सेना में रथनेत्री ने रथ को निमेषमात्र में ही प्रविष्ट करा दिया । भण्डदैत्य का छोटा भाई विशुक्रदैत्य युद्धभूमि में से अपनी सेना की अग्रिम पंक्ति भेदन कर आती हुई बाला को देख और उसे दैत्यराज के साथ युद्ध करने को उत्सुक जान विचार किया, "अवश्य ही यह आठवर्ष की बाला निःसीम बल-वीर्य से सम्पन्न अत्यन्त विचित्र रूप से युद्ध करती है । यह कैसे भी बलवान् किन्हीं असुरों से कहीं भी जीतीजानेवाली नहीं है । तब भी शूरवीरों को युद्ध में अवश्य ही लड़ना चाहिये । यही हम सब दैत्यगण को निस्सन्देह कष्ट करेगी; फिर वह ललिता देवी युद्ध में आकर क्या करेगी ? इसलिये पूर्ण प्राणपण से युद्ध करना चाहिये दैव ही इस में परम गति है ।" यह निश्चय कर चार दाँतवाले, चाँदी के पर्वत के समान, श्वेत ऐरावतकुल में उत्पन्न अपने गजराज पर आरूढ हो विशुक्र ने जलधार से पूर्ण मेघ जैसे वर्षा करता है उसी प्रकार कैलास के शिखर में आरूढ नीलाम्बुद मेघ के समान बाणों की वर्षा की । उसने रथ पर बैठी उस बाला को दैत्यवाहिनी में घुस कर आती देख रोक दिया ॥५३-६६॥

समायान्तीं जवेनाऽऽजौ चिन्वतीं दैत्यजीवितम् । संरुध्य शरवर्षेण सिंहनादमथाऽकरोत् ॥६७॥
आह्वानेन दैत्यसेनां विद्रुतां स न्यवर्तत । दैत्या नैतत्समं युद्धे कुलजानां पलायनम् ॥६८॥
भीत्या युद्धे विद्रुतन्तु धर्मश्चाऽर्थः प्रहास्यति । आहार्यं वीर्यं क्रोधञ्च निवर्तध्वं समन्ततः ॥६९॥
विनिर्जिताः स्त्रिया युद्धे पलाय्य सदनं गताः । किं वक्ष्यथ गृहे स्त्रीभिः पृष्टा युद्धान्निवर्तने ॥७०॥
मृतिरेव ततः श्रेयः स्त्रीकृतादपमानतः । विशुक्रवचनं श्रुत्वा परावृत्तास्ततस्तु ते ॥७१॥
आगत्य बालां त्रिपुरां परिवव्रुः समन्ततः । दैत्यसेनाभिराक्रान्ता सा बाला रथसंस्थिता ॥७२॥
परिवेषितबालार्क इव तत्र व्यराजत । अथ तां रथनेत्रीं सा सखी प्राह प्रियंवदा ॥७३॥
कुमारि! मन्ये दैत्यानां सेनाभारोऽतिदुःसहः । न ते पार्ष्णिग्रहा काचिच्चक्रगोप्त्र्यधिविद्यते ॥७४॥
अग्रे सेनाभरो भूयान् मन्यसे चेदहं द्रुतम् । रथं निवर्तयाम्येषा सेनायुक्ता पुनर्द्रुतम् ॥७५॥
आगत्य चैतान् दैत्येन्द्रान् यथेच्छं योधयिष्यसि । श्रुत्वा सखीवचः प्राह प्रहस्य मृदुभाषिणी ॥७६॥
भीताऽसि किं प्रिये युद्धे नैवं शतगुणा अपि । पर्याप्ता मे दैत्यसेना युध्यन्त्या युधि मे क्वचित् ॥७७॥

युद्धमें दैत्यों के जीवनको समाप्त करनेवाली बाण-वर्षा को रोककर सिंहनाद किया। अपनी ललकार से उस राक्षसराज ने भागती हुई दैत्यसेना को रोक रक्खा, " हे दैत्यगण ! सत्कुल में उत्पन्न लोगों को युद्ध छोड़ कर भाग जाना कदापि उचित नहीं, भय से युद्ध में भाग जाने से धर्म और पुरुषार्थ दोनों नष्ट होते हैं। अपने वीर्य और क्रोध को सञ्चित कर चारों ओर से शीघ्र लौट आवो । स्त्री द्वारा युद्ध में जीतेगये तुम लोग भाग कर अपने घरों में जाकर युद्ध से लौटने पर घर की स्त्रियों के पूछने पर क्या कहोगे ? स्त्री के द्वारा किये गये अपमान से तो मर जाना ही श्रेयस्कर है ।" दैत्यराज विशुक्र के वचनों को सुन कर तत्पश्चात् वे दैत्यगण पुनः लौट आये। उन्होंने आकर बाला त्रिपुरा को चारों ओर से घेर लिया; वह रथ में आरूढ बाला दैत्यों की सेना से घिरी हुई वहां परिवेषित प्रातःकाल के बाल सूर्य के समान शोभित हुई। वह प्रियम्वदा उस रथनेत्री सखी से बोली, " हे कुमारिके ! मै मानती हूँ दैत्य लोगों की सेना का भार अत्यन्त दुः सह (कष्ट से मर्षणहोनेयोग्य) है। न तो तेरे सन्निकट चक्र की रक्षा करने की कोई पार्श्व में रक्षाकरनेवाली सेना है तथा आगे विशाल सेना का जमघट है, जिसका सामना करना कठिन है। तू यदि ठीक समझती है तो मैं शीघ्र ही तेरे रथ को टाल देती हूँ । अपनी सेना के साथ आकर तू फिर शीघ्र इन दैत्येन्द्र राक्षसराज के साथ यथेच्छ लड़ेगी । " इसप्रकार सखी का वचन सुन कर मृदुभाषिणी वह बाला हँसकर बोली "हे प्रिये ! क्या तू युद्ध में डर गई ? इस प्रकार की सौगुनी दैत्यसेना भी युद्धकरती हुई मेरे सामने पूर्णतया

लीलयाऽहं विलम्बेन युध्यामि रणकौतुकी । मन्यसे चेदिमं पश्य क्षणं निर्दैत्यलोककम् ॥७८॥
इत्युक्ता सा पुनः प्राह सखी रथवहा तदा । देवि नास्त्येव मे भीतिः सैन्येऽपीतः शतोत्तरे ॥७९॥
तथाऽपि रथनाथाया ज्ञेयं चित्तं रणोद्यमे । शङ्के श्रीललितादेव्या यदाज्ञामन्तरा त्वया ॥८०॥
युद्धे विनिर्गता चाऽस्मि एतावत् साध्वसं मम । ब्रूहि शीघ्रं रथमहं क्व नयामि रणाऽवनौ ॥८१॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे श्रीत्रिपुराहस्ये माहात्म्यखण्डे ललिताचरित्रे देवीशक्तिगण-दैत्यसैन्ययुद्धोद्यमे बालापराक्रमवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽऽध्यायः ॥५२३७॥

युद्धक्षेत्र में ठहर नहीं सकती । मैं लीलया ही युद्ध में विलम्ब करती हूँ क्योंकि रण के देखने का मुझे कुतूहल है । यदि तू नहीं मानती है तो इसी क्षण में युद्धभूमि को दैत्यहीन बनाती हूँ ।" इस प्रकार कही जाने पर रथचलानेवाली सखी ने तब फिर कहा, "हे देवि ! मुझे तो इससे भी सौगुने अधिक सैन्यबल से भी भय नहीं है फिर भी रण के उद्यम में रथनाथा भगवती के मन की बात भी जान लेनी अपेक्षित है । मुझे तो शङ्का है कि मैं श्रीललिता देवी की आज्ञा के विना तेरे साथ युद्ध में आई हूँ यह मेरा इतना ही दुःसाहस है । मुझे शीघ्र बता कि मैं रणभूमि में रथ को कहाँ ले जाऊँ" ॥ ६७-८१॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में ललिताचरित्र के प्रकरण में बाला के पराक्रम का वर्णननामक तिरसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

विशुक्रदैत्येन साकं बालायुद्धकौशलवर्णनम्

सखीवचो निशम्याऽथ बाला संहृष्टमानसा । प्राह शीघ्रं नय रथं यत्राऽसौ गजसंश्रयः ॥१॥
स्तूयमानो बन्दिगणैर्विशुक्राख्यो महासुरः । इत्याज्ञप्ता क्षणादेव निनाय स्यन्दनोत्तमम् ॥२॥
बालाऽपि दैत्यसेनां तामपरां सागरप्रभाम् । शरसन्ततिधाराभिश्चक्रेऽतिशिथिलां तदा ॥३॥
पुनः क्षणाद्धनीभूतां दृष्ट्वा तां दैत्यवाहिनीम्। परिवार्य निजात्मानं जिघांसन्तीं विशङ्कटाम् ॥४॥
नाशयत् कुलिशास्त्रेण भस्मशेषत्वमानयत् । हतास्तत्र महादैत्याः कुलिशाऽस्त्रेण सर्वतः ॥५॥
भस्मशेषीकृताः केचित् केचिद्धतवराऽङ्गकाः । एकबाह्वक्षिचरणपार्श्वीभूतास्तथा परे ॥६॥
महाक्रन्दभीमरवां नष्टप्रायां चमूं निजाम् । निशाम्य प्राहिणोन्नागमैरावतकुलोद्भवम् ॥७॥

चौसठवां अध्याय

इसके आगे अपनी रथनेत्री सखी का वचन सुन बाला अत्यन्त प्रसन्नमन से बोली, "हे सखि तू शीघ्र मेरे रथ को ले चल जहाँ हाथी पर आरूढ, स्तुतिपाठक बन्दीगण से विविध विरुदावालियों से प्रशंसित वह विशुक्र नामका महादैत्य स्थित है।" इस प्रकार आज्ञापाकर वह रथनायिका क्षणभर में ही उस उत्तम रथ को निर्दिष्ट स्थान पर ले गयी। तब बाला ने भी सागर के समान विशाल अपार दैत्यसेना को बाणों की वर्षा से अत्यन्त शिथिल (तितरबितर) बना दिया। फिर क्षणमात्र में ही उस दैत्य-सेना को एकत्रितहुई देख अपना बचाव करती हुई उस व्यूह से पूर्ण सेना को मारती हुई कुलिश (वज्र) से भस्मीभूत कर नष्टकर दिया। युद्धभूमि में वज्रास्त्र के द्वारा सब ओर से महादैत्य मार डाले गये; कोई भस्मावशेष कर दिये गये; किन्हीं के सिर में भीषण आघात लगने से मूर्च्छित हो प्राण निकल गये और

योद्धुं विशुक्रस्तां बालां दृष्ट्वाऽद्भुतपराक्रमाम् । ववर्ष शरधाराभिर्मर्मणिशृङ्गमिवाऽम्बुदः ॥८॥
प्रतिवर्षं ववर्षाऽथ प्रतिदैत्यं शिलीमुखैः । शरवर्षं द्वयं तत्तु तमोभूतं रणाऽवनौ ॥९॥
तदन्तरे तु निशितशरेणाऽऽनतपर्वणा । जघानाऽऽकर्णपूर्णेन हस्ते तां रथवाहिनीम् ॥१०॥
सा गाढविद्धा बाणेन किञ्चित्कश्मलमागमत् । तद्दृष्ट्वा रोषताम्राक्षी गर्जन्तं दैत्यपुङ्गवम् ॥११॥
जघान तरसा भाले तीक्ष्णभल्लचतुष्टयैः । भल्लार्दितो गाढमूर्च्छां विशुक्रः प्राप तद्गतः ॥१२॥
पुनः क्षणेन चोत्थाय ववर्ष निशितान् शरान् । अथ बाला क्षणेनैव लघुहस्तक्रियाऽन्विता ॥१३॥
द्वाभ्यां चापञ्च छत्रञ्च चिच्छेद युगपन्मृधे । अथैकेनाऽऽकर्णपूर्णशरेण नतपर्वणा ॥१४॥
विव्याध वाहनगजमैरावतकुलोद्भवम् । इन्द्रायुधं गिरिमिव ददार स शरो गजम् ॥१५॥
कुम्भप्रदेशे निर्मग्नो जघनाभ्यां विनिर्गतः । संछिन्नः क्रकचेनेव महास्थाणुर्बभौ गजः ॥१६॥

अन्य राक्षसलोग अपने अंग एक भुजा, आंख और चरण पृथक् हो जाने से क्षतविक्षत हो गये। चीत्कारके महाक्रन्दनसे उठे भीषण शब्द करनेवाली नष्टप्रायः अपनी सेना को देख विशुक्र ने ऐरावतके कुल के हाथी को बुलव भेजा और उस अद्भुतपराक्रमसम्पन्न बाला को देख उस दैत्य ने बाणों की अजस्र वर्षाधारा से मर्मस्थानों पर जैसे मेघ पर्वत के शिखर पर वर्षा करता है वैसे उस पर आघात करने को उतर पड़ा। देवी ने प्रतिकारमें बाणों की वर्षा से उसकी सेना के एक एक दैत्य को बाणों के अग्रभाग से बेंध दिया और दोनों सेनाओं द्वारा छोड़े बाणों से रण-क्षेत्र में अन्धकार छा गया। उस कालमें दैत्य ने अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को कान तक खेंच कर वेग जो तीक्ष्ण बाण उस रथवाहिनी के हाथ पर छोड़ा कि वह बाला उससे आघात पाकर गाढविद्ध होकर कुछ मूर्च्छित सी होगयी। उस दैत्यपुङ्गव को गरजते देख देवी ने तीखे भाले से दैत्य के भालदेश में वेग-पूर्वक प्रहार किया। उस भाले से बुरी तरह आघात पाकर विशुक्र प्रगाढमूर्च्छित हो गिर पड़ा। फिर क्षणभर में उठ कर अपने तीक्ष्ण बाणों को देवी बाला पर छोड़ने लगा। अनन्तर एक क्षणभर में ही युद्धकला-कौशल में सुदक्षा बाला ने दो बाणों से उस दैत्य के धनुष और छत्र को एक साथ ही छिन्नभिन्न कर दिया। बाद में अपने कानों तक धनुष खेंचकर तीक्ष्ण बाण से ऐरावतकुलवाले उसके वाहन हाथी पर छोड़ा। उस बाण ने वैसे ही दैत्य के गज का विदारण किया जैसे इन्द्र का वज्र पर्वतों को चूर्ण-विचूर्ण कर देता है। उसके कुम्भप्रदेश से पार होकर बाण उसके दोनों जघनों से निकल कर आरे से छिन्न हुए विशाल स्थाणु के समान वह हाथी लगने लगा ॥ १-१६ ॥

तादृग्विधं गजपतिं व्यसुं वीक्ष्य स दैत्यराट् । खड्गहस्तः खमुत्पत्य तां प्रहर्तुमुपद्रुतः ॥१७॥
आयान्तमन्तकनिभं करवालकरोद्यतम् । लाघवेनैव सा बाला दूरादेकेन पत्रिणा ॥१८॥
करवालं द्विधा चक्रे तं मूर्ध्नि त्रिभिराहनत् । विशुक्रमूर्ध्नि तन्मग्नं किञ्चिद्बाणत्रयं यदा ॥१९॥
व्यराजत तदा दैत्यस्त्रिशृङ्गो नगराडिव । गाढविद्धोऽपि धैर्येण पक्षिराडिव वेगवान् ॥२०॥
आदाय बालां पाणिभ्यामुच्चचाल नभोऽङ्गणम् । निशाम्य ह्रियमाणां तां रथनेत्र्यब्रवीदिदम्॥२१
अलं बाले लीलया ते महाऽनर्थाऽवसानया । जहि वीर्येण दैतेयं यावद्दूरं न गच्छति ॥२२॥
श्रुत्वा सखिवचो बाला मत्वा कालसमं वचः । निर्वर्त्य मुष्टिं सुदृढां पातयत्तस्य मूर्धनि ॥२३॥
वज्रकल्पमुष्टिहतो भिन्नमूर्धा वमन्नसृक् । गाढमूर्च्छासमाविष्टो निपपात महीतले ॥२४॥
अथ बाला रथारूढा सखीं तामभिचोदयत् । प्रिये शीघ्रं नय रथमेषोऽग्रे दैत्यनायकः ॥२५॥
श्वेताऽऽतपत्रराजीभिश्चामरैरभिसेवितः । यथा नीलगिरिर्हंसैर्जलनिर्झरसंवृतः ॥२६॥

वह दैत्यराज इस प्रकार के प्राणहीन गजराज को देख कर हाथ में तलवार ले आकाश में ऊपर उछल कर उस देवी पर प्रहार करने को उद्यत हुआ। उस दैत्यपति को आता देख उस बाला ने कुशलतापूर्वक दूर से ही एक बाण से उसकी तलवार के दो टुकड़े कर दिये और उसके शिर पर तीन बाण छोड़े। जब विशुक्र के शिर पर तीनों बाण लगे तो वह दैत्य तीन शिखरोंवाले पर्वराज के समान शोभान्वित हुआ। अत्यधिक बाणों की वर्षा से गाढ़ा बिंधा हुआ भी धैर्य से वह दैत्य वेगसम्पन्न पक्षीराज गरुडके समान झपट कर बाला को अपने दोनों हाथों से उठाकर अन्तरिक्ष में उडगया। उसे लज्जित देख जब तक वह दूर नहीं चला तब उसकी सखी बोली, "हे बाले! महान् अनर्थ को पैदा करने वाली तेरी इस लीला से अब बस कर। अपनी पूर्ण शक्ति लगा कर बल से दैत्य से छुटकारा करले कहीं यह दूर न चला जाय।" इस प्रकार अपनी सखी के वचन सुन उस दैत्य को काल के समान मान बाला ने दृढ मुष्टिका बांधकर उसके शिर पर आक्रमण किया; तब आहत वह दैत्य मस्तक के फट जाने से रक्त की वमी करता हुआ अत्यन्त प्रगाढ मूर्च्छा में भूमि पर गिर पड़ा ॥१७-२४॥

अनन्तर रथ में बैठी बाला ने उस सखी से कहा, "हे प्रिये! रथ को शीघ्रतया ले चल, देख, आगे ही यह दैत्यनायक श्वेत छत्रों की पंक्तियों और चंवरों के डुलाने से राजशोभासम्पन्न दीखता है

आस्ते यथा राजतेऽयं नय तत्र रथं द्रुतम्। एषा प्राप्ता पृष्ठतो मे दण्डनाथा चमूवृता ॥२७॥
श्रूयते सिंहवाहस्य गर्जतो भैरवो रवः। अवश्यं मम युद्धस्य विहतिं सा करिष्यति ॥२८॥
तावद्द्रुतं योधयामि भण्डदैत्यं महाबलम्। उत्कण्ठिताऽस्मि तद्युद्धे सर्वथा नय मां द्रुतम्॥२९॥
श्रुत्वा तद्वदितं साऽपि सखी रथमचोदयत्। यावद्भण्डस्य पुरतस्तावद्रथवराऽऽश्रयः ॥३०॥
ज्ञात्वा सर्वं विषङ्गोऽपि मत्वाऽजेयां सुराऽसुरैः। अनया युद्ध्यमानस्य दैत्यराजस्य सर्वथा॥३१॥
जीवतो न विमोक्षोऽस्ति विजितस्त्वनया यदि। तदा चिरार्जिता कीर्तिर्व्यर्थं हीयेत सर्वथा ॥३२॥
यदि सा ललिता राज्ञी विजेष्यति समं हि तत्। तस्मादत्र यथाशक्त्या यतितव्यं भवेन्मया ॥३३॥
इति निश्चित्य बालाया निपपाताऽग्रतो बली। आयान्तं सम्मुखं दैत्यं दृष्ट्वा रथवरस्थितम्॥३४॥

जैसे नील गिरि पर्वत हंसों तथा जल के झरनों से युक्त हो। वह जहां है, वहां रथ शीघ्र लेजा। यह दण्डनाथा अपनी सेना के साथ मेरे पीछे पीछे आती है। उसके वाहन सिंह के गर्जन का भैरव शब्द सुनायी पड़ता है। वह अवश्य ही मेरे युद्ध के कलाप में विघ्न करेगी। इसलिये मैं शीघ्र उसके आने तक महाबली भण्डदैत्य के साथ युद्ध करती हूँ। उसके साथ युद्ध करने के लिये मैं बहुत उत्सुक हूँ इसलिये शीघ्र मुझे ले चल।" ॥२६-२९॥

बाला के उस कथन को सुन कर सखी ने रथ को आगे बढ़ाया। इतने में ही भण्ड के सामने श्रेष्ठ थ पर आरूढ हो विषङ्ग भी सब बात जान कर सब देवगण तथा असुरगण से भी उस बाला को अजेय मान इससे युद्ध करते हुए जीवित दैत्यराज का मोक्ष नहीं है। यदि कहीं इस अबला स्त्री के द्वारा सर्वथा वह ीत लिया गया तो उसकी दीर्घ समय की अर्जित कीर्ति व्यर्थ गवांयी जायगी। यदि ललिताराज्ञी जीत ायगी तब तो उचित ही है। इसलिये इस विषय में मुझे शक्तिभर प्राणपण से देवी को जीतने का प्रयत्न रन चाहिये।" ॥३०-३३॥

इसप्रकार निश्चय कर वह बलवान् बाला के सामने आगया। अपने रथश्रेष्ठ पर आसीन

भण्डयुद्धमहाविघ्नं मत्वा प्राह सखीं प्रति ।

प्रिये ! भण्डेन योद्धव्ये महान् विघ्नो ह्युपस्थितः ॥३५॥

पश्य मे लाघवञ्चैनं वारयामि सुदूरतः । इत्युक्त्वा निशितान् बाणांश्चतुरो विससर्ज ह ॥३६॥

तैस्तस्य वाहा निहताः प्रोन्नम्रा वातरंहसः । अथैकेन ध्वजं छित्त्वा सूतमेकेन पत्त्रिणा ॥३७॥

निजघानाऽथ दैतेयो विषङ्गोऽत्यन्तकोपितः।मोघं सोद्योगमालक्ष्य तुरङ्गाऽन्तरसंश्रयः ॥३८॥

आदाय परिघं घोरमभिदुद्राव वेगतः । तुरगेण समायान्तं वातनुन्नाऽभ्रखण्डवत् ॥३९॥

ववर्ष सायकौघेन प्रावृडब्द इवाऽचलम् । शरवर्षमगणयन्नायान्तमाभिमुख्यतः ॥४०॥

दृष्ट्वा बाला द्रुततरं शरेणैकेन कर्णिना । अकरोद्व्यसुमश्वं तं हताश्वोऽथ विषङ्गकः ॥४१॥

उद्यम्य परिघं घोरमुपाऽऽयान्तं सुभीषणम् । समुद्रमिव गर्जन्तं कालान्तकयमोपमम् ॥४२॥

सुपुङ्खेन शरेणाऽऽशु जघान बलवद्धृदि । स गाढविद्धो बाणेन भ्रमन्नुष्णमसृग्वमन् ॥४३॥

दैत्य को सामने आया देख उसे भण्ड के युद्ध करने में महाविघ्न समझकर सखी से बाला ने कहा, "हे प्रिये ! भण्डके साथ युद्ध करने में मेरे सामने भारी बाधा आगयी है। तू मेरे हस्तकौशल को देख; इसे बहुत दूरसे ही वारण कर देती हूँ।" यह कह कर उसी पर अत्यन्त तोक्ष्ण चार बाण छोड़े, उनसे ऊंचे उ नेवाले वातरंह (अधिकवेगवान्) घोड़े मार दिये गये। देवी ने एक बाणसे ध्वजा को काटकर एकसे सारथि को मारा। अनन्तर विषङ्ग क्रुद्ध हो अपने प्रयत्न में असफलता देख दूसरे घोड़े पर चढ़ा। वह घोर परिघ को लेकर अत्यन्त वेग से बाला की ओर दौड़ा। घोड़े पर चढ़े उसे आते देख वायु के झोकों से मेघखण्ड के समान बाला ने अपने बाणों से उस पर इस प्रकार वर्षा की मानो वर्षा पर्वत पर गिरती हो। बाणों को वर्षा की ओर कोई ध्यान न देकर सामने से ही आते राक्षस को देख बाला ने अत्यन्त शीघ्रता में एक बाण से उसके घोड़े को फिर मार गिराया। अनन्तर अपना घोड़ा नष्ट होने पर विषङ्ग ने जैसे ही परिघ (लौहदण्डास्त्र) को लेकर देवी की ओर प्रयाण ाकया वैसे ही दैत्यको सुभीषण कालान्तक उस समय यम के समान समुद्र की तरह गर्जते देख बाला ने शीघ्र उसके हृदय में तीक्ष्ण बाण से आघात किया। बाण से गाढा बेंधा गया वह चक्कर खाता तथा उष्ण रक्त का वमन करता

मूर्च्छितः प्रापतद्भूमौ कृत्तपक्षमहीध्रवत् । तदद्भुतं कर्म दृष्ट्वा दैत्या देवाश्च विस्मिताः ॥४४॥
अहो दैत्याऽधिपो ह्येषः पुरा शक्रमुखान् सुरान् । बहुधा ह्यजयद्युद्धे विष्णुतुल्यपराक्रमः॥४५॥
स एष बालया नूनं लीलयैव निपातितः । सर्वान् विजेष्यत्येषैव ललिता किं करिष्यति ॥४६॥
प्राहुरेवमथ पुनारथनेत्री रथं नयत् । भण्डासुरसमक्षं स्वं दृष्ट्वा बाला महासुरम् ॥४७॥
साधु प्रियं कृतं ह्यद्य चिराऽभिलषितं मम । अनेन युद्ध्वा सन्तुष्ये चिराभिलषितन्त्वतः ॥४८॥
इत्युक्त्वा शरवर्षेण ववर्षाऽसुरभूपतिम् । अथ भण्डासुरो दृष्ट्वा बालां सम्मुखसङ्गताम् ॥४९॥
जहृषे वाञ्छितं प्राप्य चिरायाऽभिमतं तदा । स काल एष सम्प्राप्तः श्रियोक्तश्चिरवाञ्छितः ॥५०॥
एषा दृष्टा महादेवी भक्तवाञ्छितपूरणी । नूनमेषः क्षणो मेऽद्य घोरदेहवियोजकः ॥५१॥
अनया निहतस्त्वत्र व्रजामि समलोकताम् । एषा श्रीललिताराज्ञ्याः कुमार्यद्भुतविक्रमा ॥५२॥

पंख कटे पर्वत के समान मूर्च्छित हो भूमि पर हुआ गिर गया। उस अद्भुत कर्म को देख सभी दैत्यगण और देवतालोग विस्मित हुए ॥३४-४४॥

"अहो ! विष्णुके तुल्य पराक्रमवाले इस दैत्यों के अधिपति ने पूर्वकाल में इन्द्रप्रमुख देवगण को बहुधा युद्ध में जीता है; वही यह महाबली बालाद्वारा अनायास ही मारा गया; अवश्य यह बाला ही सब को जीत लेगी, अब ललिता क्या करेगी ?" इस प्रकार सब बोलने लगे। अनन्तर रथनेत्री रथको पुनः भण्डासुर के समक्ष लेगयी। अपने समक्ष महासुर भण्ड को देख बाला बोली, " आज बहुत सुन्दर प्रिय कार्य बन गया; मेरा दीर्घकाल से अभिलषित कार्य पूरा हो गया। इस असुरराज के साथ युद्ध कर मैं अपनी सुदीर्घसमय की इच्छा की पूर्त्तिकर सन्तुष्ट होऊंगी" ॥४५-४८॥

बाला ने यह कह कर असुरभूपति पर बाणों की वर्षा की। अनन्तर भण्डासुर ने सामने आयी हुयी बाला को देखकर वाञ्छित चिरकाल का अभीष्ट भगवती का दर्शन पाकर अत्यधिक हर्ष अनुभव किया। उसे यह निश्चय हो गया कि "देवी लक्ष्मी ने जो बताया था वह दीर्घकाल से अभीप्सित समय अब सम्मुख उपस्थित है। मैंने भक्तकी इच्छाको पूर्णकरनेवाली इस महादेवी को देखा। आज अवश्य ही यह क्षण मेरे इस घोर देह का वियोग करनेवाला आ पहुंचा है। इसके द्वारा मेरा वध किये जाने से मैं सालोक्यमुक्ति प्राप्त करूँगा।

तस्या विम्बसमुद्भूतप्रतिबिम्बवदास्थिता । मां निहन्तुं साऽपि देवी रमावचनगौरवात् ॥५३॥
आयास्यति न सन्देहो रमोक्तं नाऽन्यथा भवेत् ।
भवत्वेनां पूजयामि तद्बिम्बादुत्थिताऽऽत्मिकाम् ॥५४॥
कालोपपन्नविधिना शरभूतप्रसाधनैः । इत्थं विचिन्त्य सशरं जग्राह सुदृढं धनुः ॥५५॥
जलाऽस्त्रमन्त्रितशरौ प्राक्षिपत्तस्याः पादयोः । अथाऽपरं पौष्पमन्त्रमन्त्रितं मूर्धनि क्षिपत् ॥५६॥
शरौ सिषिचतुः पादौ निर्मलैः शीतलैर्जलैः । शरोऽपरो मूर्ध्नि तस्या मालावर्षमवाऽकिरत् ॥५७॥
तदद्भुतं निशाम्याऽथ पप्रच्छ रथनायिका । कुमार्येतन्महच्चित्रं प्रपश्याम्यसुरेश्वरे ॥५८॥
तेनैव विहितं किं वा जातं स्यात्तव तेजसा । त्वयि वर्षं किरन्त्यां वै शराणामाहवाऽवनौ॥५९॥
एतस्य पूजनविधिः शरैः किमिव ते भवेत् । अहं संशययुक्ताऽस्मि तन्मे दूरीकुरु द्रुतम् ॥६०॥
पृष्टैवं प्राह सा बाला शृणु प्रेयसि मद्वचः । पुरा श्रुतं यल्ललिता प्रोक्तमत्यन्तगूहितम् ॥६१॥

यह श्रीललिता राज्ञी की कुमारी अद्भुतपराक्रमसम्पन्ना है; उसके बिम्ब से उत्पन्न प्रतिबिम्ब के समान स्थित है । मुझे मारने के लिये रमा के कथन के माहात्म्य से वह भी आवेगी इसमें सन्देह नहीं क्योंकि रमा का वचन अन्यथा नहीं होगा । अस्तु, जो हो, उस ललिता के बिम्बसे उत्थित तद्रूपा इस देवी की युद्धमें शस्त्रों के साधन से जुटायी विधि से बाणों के प्रसाधन से मैं श्रेष्ठ पूजन करूंगा ।" इसप्रकार विचार कर राक्षसराज ने बाण के सहित धनुष को दृढता से सम्हाल लिया और उसने जलास्त्र को मन्त्रित कर दो बाण देवी के पैरों में छोड़ें । अनन्तर दूसरा पुष्पमालासम्बन्धी बाण मन्त्र से अभिमन्त्रित कर देवी के शिर में भेंट किया । निर्मल शीतल जल से दो बाणों को छोड़कर उसके पैरों को धोया और दूसरे बाण से उसके मस्तक पर पुष्प-माला की वर्षा कर दी ॥ ४६-५७ ॥

यह अद्भुत कार्य देख कर रथनायिका ने पूछा, "हे कुमारिके ! मैं असुराधिपति भण्ड में यह अत्यन्त विचित्रता देखती हूँ; क्या यह उसी ने सब किया है अथवा तेरे तेज से सम्पन्न हुआ है ? युद्ध भूमि में बाणों की वर्षा तेरे ऊपर विना हानि किये होती है । बाणों से इसकी पूजनविधि का सम्पन्न होना तेरे प्रति किस प्रकार के भाव का द्योतक है ? मैं संशयग्रस्त होगयी हूँ इसलिये उस सन्देह को शीघ्र दूर कर ।" ॥५८-६०॥

इस प्रकार पूछी जाने पर बाला ने कहा, " हे प्रेयसि । मेरी वाणी सुन ! पूर्वकाल में ललिता ने जो अत्यन्त

एष लक्ष्म्या महादूतो नाम्ना माणिक्यशेखरः । शापेन दैत्यतां प्राप्तस्त्रिपुराभक्तशेखरः ॥६२॥
एष युद्धे विनिहतः श्रीपुरं प्रतिपत्स्यति । मां मत्वा ललितापुत्रीं पूजयामास सायकैः ॥६३॥
तमीक्ष मत्प्रतिकृतिमित्युक्त्वा शरमुत्सृजत् । स शरः पञ्चशाखात्मा पस्पर्श तस्य मूर्धनि ॥६४॥
कराम्बुजं मस्तके स्वे न्यस्तं मेने महासुरः । प्रसादमकरोद्देवी चेति संहृषितोऽभवत् ॥६५॥
तद्दृष्ट्वा विस्मिताऽत्यन्तं बालाया रथनायिका । अथाऽभवन्महायुद्धं कुमारीभण्डदैत्ययोः ॥६६॥
कृतप्रतिकृतोपेतं घोरं भीरुभयावहम् । द्वन्द्वभूतमनुपमं द्वैरथ्यं शरवर्षणम् ॥६७॥
भण्डासुरोऽपि भक्त्यैवाऽद्भुतैः स्वीयपराक्रमैः । देवीं सन्तोषयामीति युयोध बलवत्तरम् ॥६८॥
विकिरन्तौ शस्त्रगणान्मर्मप्रहरणोद्यमौ । ज्ञात्वाऽन्योन्यं शस्त्रयोगलाघवं श्लाघनापरौ ॥६९॥

रहस्यपूर्ण बात इसके विषय में बताई उसे सुनाती हूँ। त्रिपुरा के भक्तों का शिरोमणि यह लक्ष्मी का माणिक्यशेखर नाम महादूत है, उसके शाप के द्वारा दैत्यरूप को प्राप्त हुआ है। अब वध किया जाकर युद्ध में मारे जाने से यह श्रीपुर को प्राप्त करेगा। मुझे ललिताकी पुत्री मानकर अपने बाणों से भक्तिसहित इसने पूजा की है। अब मेरी ओर से कीजानेवाली प्रतिक्रिया को भी तू देख।" यह कहकर उसने बाण छोड़ा। पाँच शाखाओं वाले उस बाण ने उस के शिर में जा स्पर्श किया (इससे) महादैत्य ने भगवती के करपङ्कज अपने मस्तक परधरा गया है ऐसा माना और देवी ने उसपर कृपाप्रसाद का अनुग्रह किया है यह जान अत्यन्त हर्षित हुआ। इसे देख कर बाला की रथनायिका अत्यन्त विस्मित हुई। अनन्तर देवी कुमारी और भण्डदैत्य के बीच यहायुद्ध हुआ। बाणों के छोड़ने और उनके प्रतिरोध करनेवाले विपरीत दिशा से छोड़े गये अस्त्रों से संयुक्त, घोर कायर लोगों को भयदायक, दो के बीच होने वाला, अनुपम, दो रथों में स्थित, महावीरों का बाणों के द्वारा वर्षणवाला यह युद्ध हुआ। ॥६१-६७॥

भण्डासुर ने भी 'मैं भक्तिपूर्वक अपने अद्भुत पराक्रम से देवी को प्रसन्न करता हूँ' वह सोच कर खूब प्राणपण से युद्ध किया। दोनों पक्षों की ओर से देवी तथा भण्ड ने शस्त्रास्त्रों को छोड़ते हुए एक दूसरे के मर्म स्थानों पर आघात करने का प्रयत्न किया। परस्पर में शस्त्रास्त्र चलाने की दोनों पक्षों की ही दक्षता को जान कर प्रशंसा करने लगे, "हे रणश्लाघ्य! (रण में प्रशंसनीय) वीर तूने बहुत सुन्दर किया।" "हे महाबलसम्पन्ने

साधु शूर रणश्लाघ्य साधु देवि महाबले । इत्येवं युध्यतोस्तत्र कुमारीभण्डदैत्ययोः ॥७०॥
प्रावर्तन्त महास्त्राणि लोकमोहकराणि वै । कुलिशाऽस्त्रं पार्वतस्य नागाऽस्त्रस्य च गारुडम् ॥७१॥
आग्नेयस्य च पार्जन्यं तस्य मारुतनामकम् । तस्य सार्पं तस्य पुनर्नाकुलं तस्य चैव हि ॥७२॥
वैडालं कुक्कुरं तद्वद्बकं वैयाघ्रमेव च । महाव्याघ्रं मृगेन्द्रश्च तस्य शारभमस्त्रकम् ॥७३॥
गण्डमेरुण्डमित्येवं तथा याम्यश्च वारुणम् । कौबेरं नैऋतञ्चैन्द्रं रौद्रं मोहनमेव च ॥७४॥
पैनाकं वैष्णवं ब्राह्ममेवमस्त्रैस्तु सङ्कुलम् । युद्धमासीन्महाघोरं कुमारीभण्डदैत्ययोः ॥७५॥
तत्र दैत्याः शक्तयश्च सहायार्थं समागताः । प्रेक्षाश्चक्रुर्विचित्रेण युद्धेनाऽत्यन्तविस्मिताः ॥७६॥
एवं प्रवृत्ते समरे बालाया लाघवात्तु सः । हीयमानः समभवद्भण्डदैत्यो यदा तदा ॥७७॥
विषङ्गश्च विशुक्रश्च कुटिलाक्षश्च भूपतिः । संवृत्ता दैत्यसेनाभिः परिवार्य कुमारिकाम् ॥७८॥
युयुधुः शस्त्रसङ्घातैर्वर्मद्भिर्वह्निमुल्बणम् । बालापि तान् लीलयैव योधयामास सर्वतः ॥७९॥
एवंविधेद्धे महायु प्रवृत्ते बालया सह । सम्प्राप्ता दण्डसम्राज्ञी जित्वा दैत्यमहाचमूम् ॥८०॥

देवि ! शस्त्रास्त्र चलाने में बहुत अच्छा किया ।" इस प्रकार कुमारी तथा भण्डदैत्यके युद्ध करते समय लोकों को मोहन करने वाले महान् अस्त्रों का स्पष्टरूपसे प्रयोग हुआ । पार्वत अस्त्रके प्रतिरोधमें कुलिशास्त्र का, नागास्त्र के सामने गारुड़ का प्रयोग किया गया, आग्नेय का प्रतिरोधी पार्जन्य, उसका प्रतिरोधी मारुत नामक अस्त्र, उसका सार्प अस्त्र एवं उसका विरोधी फिर नाकुल, वैडाल, कुक्कुर, उसी प्रकार बक, वैयाघ्र महामहाव्याघ्र, मृगेन्द्र और उसका शरभास्त्र गण्ड, मेरुण्ड व इसीप्रकार याम्य, वारुण, कौबेर, नैर्ऋत, ऐन्द्र, रौद्र और सम्मोहन अस्त्रोंका प्रयोग किया गया। पैनाक, वैष्णव, ब्राह्म और अन्यान्य अस्त्रों से परिवारित कुमारी और भण्ड दैत्य का अतिघोर युद्ध हुआ । उस युद्धस्थल में दैत्यगण और शक्तियां सहायता करने के लिये आये । इस विचित्र युद्ध के द्वारा अत्यन्त विस्मयाविष्ट हो सभी दर्शक बनकर देखने लगे । इसप्रकार समर होने पर बालाके युद्ध कौशल से जब-जब वह भण्डदैत्य शक्तिहीन होता तब तब विषङ्ग, विशुक्र और कुटिलाक्ष भूपति दैत्यसेनाओं सहित कुमारी बाला को घेर कर अत्यन्त दारुण अग्नि को छोड़नेवाले शस्त्रों के समूहों से कुमारी से लड़ते थे । बाला भी अनायास ही सब ओर से उनसे युद्ध करती थी । इस प्रकार बाला के साथ भीषण युद्ध छिड़ने पर दण्डसम्राज्ञी दैत्यों की विशाल सेना पर विजय कर वहां पहुंची ॥६८-८०॥

भित्त्वा सेनामहाद्रिं तं दैत्यानामतिविस्तृतम्। मुसलात्ममहावज्राऽऽयुधेन क्रूरविक्रमा ॥८१॥
आससाद महायुद्धे बालां युद्धरसोत्सुकाम्। युध्यन्तीमेकलां दैत्यैः पश्यन्ती विस्मिता तदा॥८२॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललिताचरित्रे बालापराक्रम-वर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥५३१६॥

दैत्यों के अतिविस्तारवाले सेनारूपी महापर्वत को मुसलरूपी महावज्र के आयुध से भेदनकर अत्यन्त घोर पराक्रमसम्पन्ना दण्डनायिका युद्ध की वीरता में आनन्द लेने को उत्सुक बाला के पास आयी और वह अकेली बाला को दैत्यों से युद्ध करती देख अत्यन्त विस्मित हुई ॥ ८१-८२ ॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड के श्रीललिताचरित्र में बाला के पराक्रम का वर्णन नामक चौसठवां अध्याय समाप्त।

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

बालायाः समरपराक्रमवर्णनम्

अथ भण्डस्य सा सेना कोलवक्त्रापराक्रमात्। विशीर्णा पर्वत इव देवेन्द्राऽऽयुधगौरवात् ॥१॥
सेनायां दैत्यराजस्य वाराहीमुसलाऽऽहतेः। विशीर्णायामपश्यत् सा बालां दैत्यैः सुसङ्गताम्॥२॥
एकलां योधयन्तीं तान्महादैत्यान् समन्ततः। समरोत्सुकितां भूयो दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥३॥
अथ तां प्राह कोलास्या समासाद्य विशृण्वतीम्। अलं बाले साहसेन युद्धेन विषमेण ते ॥४॥
नैतदन्यत्र पश्यामि साहसं यत्त्वमेकला। दैत्यान्महाबलान् भीमान् संयुगे जितवत्यसि ॥५॥
त्वां निशम्यैकलां दैत्यैर्युध्यमानां महेश्वरीम्। श्रीदेवी वत्सला नूनं भवेद्व्याकुलितान्तरा ॥६॥
इमं क्षणं महाराज्ञीं द्रष्टुमर्हसि याहि तत्। इत्युक्ताऽऽज्ञापयच्छक्तिमश्वसेनाऽधिनायिकाम् ॥७॥

पैंसठवाँ अध्याय

बाला से युद्ध करते हुये भण्ड को देखने के अनन्तर उस वाराही ने भण्ड की सेना को जैसे देवराज स्ववज्रायुध के प्रभाव से पर्वत को विशीर्ण कर देता है वैसे ही विदीर्णकर डाला। वाराही के मुसलास्त्र के आघात से दैत्यराज की सेना के खदेड़ कर दिये जाने पर उसने दैत्यों से युद्ध में भिड़ीहुई, अकेली महादैत्यों से चारों ओर आघात प्रत्याघातमें व्यस्त युद्ध करने में अत्यन्त उत्कण्ठावाली वार वार कही हुई बात को अनसुनी सी करती बाला को देख विस्मय किया। अनन्तर उस के पास जाकर वह वाराही बोली, "हे बाले! तेरे इस विषम युद्धजनित दुस्साहस से अब विराम कर। मैंने ऐसा साहस अन्यत्र कहीं भी नहीं देखा कि तू अकेली ही युद्ध में महाबली भयङ्कर दैत्यों को जीत चुकी है ॥१-५॥

महेश्वरी तुझे दैत्यगण के साथ अकेली ही लड़ती सुन वत्सला श्रीललिता देवी अवश्य ही व्याकुलचित्त हुई होगी। तू इसी क्षण जाकर महाराज्ञी से मिल, इसलिये अब जा।" यह कह कर उसने अश्वसेना की

अश्वारूढे प्रयाह्येनां समादायाऽतिसत्वरा । महाराज्यै निवेद्यैनामागच्छ त्वरितं पुनः ॥८॥
अश्वारूढैवमाज्ञप्ता समरादनिवर्तिनीम् । बालाया रथआविश्य न्यवर्तयत तं रथम् ॥९॥
अथाऽऽऽगत्य महाराज्यै बालां तां विनिवेदयत् । मातरेषा युद्धभुवो बलात्कारान्निवर्तिता ॥१०॥
अतिसाहसचारित्राऽद्भुतवीर्यपराक्रमा । त्वदाज्ञया वयं यावदेनां युद्धान्निवर्तितुम् ॥११॥
प्रयातास्तावदेषा तु दैत्यसेनामहार्णवम् । प्रविष्टा तत्र दैत्यानां कोटयो बलवत्तराः ॥१२॥
निपातिता महायुद्धे भण्डदैत्या वरोद्भवौ । निर्जितौ भीमचारित्रौ तौ विशुक्रविषङ्गकौ ॥ १३॥
ततो भण्डं समादाय जितलोकेश्वराऽसुरम् । युद्ध्वा तेनाऽपि सुचिरं जितमायं चकार वै॥१४॥
कथञ्चिदेषा वाराह्या विक्रम्याऽऽसादिता भवेत् ।
इत्युक्त्वा निर्ययौ साऽपि युद्धाय तुरगाऽऽश्रया ॥१५॥

अधिनायिका शक्ति को आज्ञा दी, " हे अश्वारूढे ! इसे अति शीघ्रतया लेकर जा; इसे, महाराज्ञी को सम्हाल कर फिर शीघ्र ही चली आ ।" ॥ ६-८॥

अश्वारूढा इस प्रकार आज्ञापाकर समर से न लौटने का मन करनेवाली बाला को लेकर उसके रथपर आरूढ हो उस रथ को महाराज्ञी के पास लौटा लायी । अनन्तर आकर महाराज्ञी त्रिपुराम्बा को उस बाला को सम्हला दिया "हे मातः । यह बलपूर्वक युद्धक्षेत्र से लौटायी गयी है । यह अत्यन्त साहसपूर्ण चरित्रवाली अद्भुत वीर्य-पराक्रमवती है । जैसे ही आपकी आज्ञा से हम लोग इसे युद्ध से लौटाने को गयीं वैसे ही यह तो दैत्यसेनारूपी महासमुद्र में घुस पड़ी, वहाँ राक्षसों की सेना के बलवान्, भण्ड के दैत्यों को इसने महाभीषण युद्ध में मार गिराया । इसने वर से उद्भूत अत्यन्त भीम चरित्रवाले विशुक्र और विषङ्गक दैत्यों को जीत लिया । तत्पश्चात् लोकेश्वरों तथा असुरगण को जीतनेवाले भण्ड को लेकर उसके साथ दीर्घ समयतक युद्ध कर उसकी मायाको भी जीतगई । किसी प्रकार यह वाराही द्वारा क्रमण करके पहुंची जा सकी ।" यह कह कर वह भी युद्ध में लड़ने के लिये घोड़े पर आरूढ हो कर लौट गयी ॥९-१५॥

अथ बालां महाराज्ञी स्वाङ्कमानीय सत्वरम् ।
परिष्वज्याऽतिवात्सल्यान्मूर्ध्न्युपाजिघ्रदम्बिका ॥ १६ ॥
वत्से ! नैवं पुनः कार्यं क्वचित् साहसमात्रया । अनुक्त्वैव गता युद्धे नैतदौपयिकं तव ॥ १७ ॥
अथ प्राह कुमारी सा ललितां मातरं प्रति । एषाऽरुणितनेत्रान्ता निःश्वसन्ती पुनः पुनः ॥ १८ ॥
मातश्चिरादहं युद्धक्रीडाकौतुकिताऽन्तरा । शङ्कमाना त्वया तत्र विघ्नं नैतमवेदयम् ॥ १९ ॥
युद्धक्रीडारसभरादवितृप्तैव वारिता । तावक्या दण्डराज्ञ्याऽहं वृथैव समराङ्गणात् ॥ २० ॥
त्वत्तोऽतिभीतयाऽऽसाद्य मानिता रणसम्भ्रमे ।
अन्यथा साऽपि मद्युद्धं विमदा प्राप्य वै भवेत् ॥ २१ ॥
वदन्तीमिति तां बालां परिष्वज्य महेश्वरी । मैवं वत्से ! पुनर्ब्रूया इत्युक्त्वा सान्त्वयत् परा ॥ २२ ॥
अथ दण्डमहाराज्ञी किरिचक्रसमाश्रया । युयोध भण्डदैत्येन युतेन दैत्यसेनया ॥ २३ ॥

अनन्तर अम्बिका महाराज्ञी ने बाला को अपनी गोद में लेकर शीघ्र ही अत्यन्त वात्सल्य से गले लगा कर सिर से उसे सूंघा और बोली, "हे वत्से ! फिर कहीं पर भी साहसमात्र से इसप्रकार का कार्य बिना कहे मत करना, हमें बिना ही सूचना दिये जो तू युद्ध में गई वह तेरे लिये समुचित नहीं ।" ॥ १६-१७ ॥

अनन्तर यह अपने नेत्रोंको लाल किये-बारम्बार दीर्घ निःश्वास छोड़ती उस कुमारी ने माता ललिता को कहा, "हे मातः ! दीर्घ समय से युद्धक्रीडा के कुतूहल को मन में संजोयी हुई मैं आपके द्वारा किसी प्रकार के विघ्न से शङ्कमान हो आपसे आज्ञा न लेकर निकल गयी । मैं युद्ध क्रीडा के आनन्द से अपनी तृप्ति किये बिना ही रोक दी गयी । आपकी दण्डराज्ञी ने व्यर्थ ही समरभूमि से मुझे उठा यहां ला धकेला । आप से अत्यन्त भीत हो रण के सम्भ्रम में मनायी मैं लौट गयी, नहीं तो वह भी मेरे युद्ध से आज मदरहित हो जाती ।" ॥ १८--२१ ॥

इस प्रकार कहती हुई बाला को महेश्वरी ने खूब बांथ भर कर भुजभर गले लगा लिया । "हे वत्से ! फिर ऐसा मत बोलना ।" यह कह कर परालिता ने उसे सान्त्वना दी । अब दण्डमहाराज्ञी ने किरिचक्र पर आरूढ हो भण्डदैत्य से उसकी दैत्यसेना सहित युद्ध किया । दोनों शक्तिसेनायें एवं दैत्य-सेना परस्पर युद्ध करती हुई क्रोध के

शक्तिसेना दैत्यसेना युध्यमाना परस्परम् । क्रोधाऽऽवेशसमायुक्ता प्रविष्टाऽभूत्परस्परम् ॥२४॥
दैत्याः शक्तिगणान् घ्नन्ति मुसलप्रासतोमरैः । नाराचैर्भिन्दिपालैश्च खड्गशूलपरश्वधैः ॥२५॥
शक्तयोऽपि प्रहरणैर्विविधैर्दैत्यपुङ्गवान् । जघ्नुर्युद्धे महाभीमे मर्षिता बलवत्तराः ॥ २६ ॥
तत्र शक्तिगणाहतच्छिन्नबाहूरुनासिकाः । केचिद्द्विधा कृताःशस्त्रैः केचित्तु तिलशः कृताः॥२७॥
केचिन्महाभारशस्त्रैर्निष्पिष्टाऽशेषदेहकाः । क्रन्दन्तः पुत्र मित्रेति हा भ्रातस्तात इत्यपि ॥ २८ ॥
एवं शक्तिगणाऽस्त्राग्निभस्मशेषत्वमागताः । दैत्याः शिष्टाः सुवित्रस्ताः पलायनपरास्तदा ॥ २९ ॥
अभवन् सा युद्धभूमिरगम्याऽभवदञ्जसा । शोणितोदा ववुर्नद्यः फेनिला भीषणस्वनाः ॥ ३० ॥
प्रेतगोमायुकङ्काऽऽदिशवाऽऽहारमहोत्सवाः । एवं विनिहतप्रायां दैत्यसेनामुपद्रुताम् ॥ ३१ ॥
विशुक्रः स विषङ्गोऽथ निवार्याऽभ्याययौ मृधे । पुनस्तत्राऽभवद्युद्धं क्रूरं शक्तिगणैःसह ॥३२॥

आवेश से पूरित हो एक दूसरे से भिड़ गयी। शक्तिगण को दैत्यलोग शक्ति, प्रास (भाला) और तोमर (बर्छा), नाराच, भिन्दिपाल (लौहबाण) तलवार, शूल और फरशों से आघात करने लगे। शक्तियों ने भी बदले में विविध प्रहारक अस्त्रों से दैत्यपुङ्गवों को मारा; महाभीषण युद्ध में बलवत्तर दैत्यलोग अत्यधिक पराजितकर दिये गये । वहां युद्ध में शक्तियों द्वारा मारे गये दैत्यों की बाहुयें, जङ्घायें और नासिकायें छिन्न-भिन्न की गयीं। कोई शस्त्रों से दो टुकड़ों में विभक्त कर दिये गये, किन्हीं को छिन्नभिन्न कर दिया गया; कोई महाभारयुक्त शस्त्रों के प्रहार से सारे शरीर के दबा देने से पीस दिये गये। वे लोग 'हा पुत्र', 'हा मित्र' इसप्रकार और 'हा भ्रातः !' 'हा तात !' इसरूपमें भी करुण पुकार करते हुए (युद्ध में दुर्गति को प्राप्त हुए) दैत्य शक्तिगण के अस्त्रों की अग्नि से राख की ढेरी बना दिये गये। बाकी बचे हुए दैत्य बहुत अधिक त्रस्त होकर भागने लगे। युद्धभूमि एक साथ अगम्य हो गई (चलने योग्य न रही)। तब वह युद्धक्षेत्र रक्त जल से भरी नदियों से प्रवहमान था उसमें झाग उठते थे भीषण चीत्कार का शब्द होता था; वहां प्रेत, शृगाल और कङ्क (मांसाहारी भीमकाय गृद्ध) आदि मृतकों के देह के आहार से तृप्ति पानेको शब्द करते हुए महोत्सव मना रहे थे। इस प्रकार अत्यन्त उपद्रव के व्यसन में फँसी, प्रायः मारी गई दैत्यसेना को विशुक्र और विषङ्ग निवारण कर समरभूमि में आगये । फिर वहां शक्तिगण के साथ राक्षसी सेना का

मायया शक्तिसेनां तां विशुक्रो मोहयत् क्षणात् ।
ससर्ज मायया ध्वान्तं तत्र वर्षं शिलामयम् ॥ ३३ ॥
वह्निवायुसमोपेतं तेन शक्तिमहाचमूः । वित्रासिता मूर्च्छिता चाऽप्यभवद्भीमसंरवा ॥ ३४ ॥
तं दृष्ट्वाऽभ्याययौ सम्पत्करी गजसमाश्रया । विशुक्रेण महायुद्धे सङ्गताऽतिद्रुतं बभौ ॥ ३५ ॥
अश्वारुढाऽपि युयुधे विषङ्गेण महाबला । वाराही भण्डदैत्येन युयोधाऽतिरुषाऽन्विता ॥३६ ॥
रणकोलाहलाऽऽख्यानं गजमारुह्य वेगिनम् । असङ्ख्यगजसैन्येन युता सम्पत्करी परा ॥ ३७ ॥
विशुक्रं योधयामास महागजसमाश्रयम् । ववर्ष शरवर्षेण विशुक्रं मायया युतम् ॥ ३८ ॥
विमायाऽस्त्रेण हत्वा तन्मायामत्यन्तभीतिदाम् । प्रतिवर्षेण दैत्योऽपि ववर्ष विशिखात्मना ॥ ३९ ॥
एवं युद्ध्वा चिरं तस्य धनुश्चिच्छेद मध्यतः ।
सोऽप्यन्यदाददे चापंतञ्चाऽप्येषा समाच्छिनत् ॥४०॥
एवं धनुःशतं छिन्नं गृहीतन्तु पुनः पुनः । अथाऽतिक्रोधसंयुक्तो विशुक्रोऽद्भुतविक्रमः ॥४१॥

घोर युद्ध हुआ । विशुक्र ने माया से शक्तिसेना को क्षण भर में मोहित बना दिया । उसने अन्धकारपूर्ण वहां शिला के प्रस्तरों की वर्षा की अग्नि और वायु के साथ रचना माया द्वारा की । इससे शक्ति की विशाल सेना अत्यन्त त्रासित और मूर्च्छित हुई तथा सब ओर भयंकर नाद होने लगा ॥ २२-३४ ॥

उसे देख कर गज पर आरूढ हो सम्पत्करी आयी; विशुक्र के साथ अतिशीघ्रता से महायुद्ध में भिड़ती हुई वह शोभित हुई । महाबलशालिनी अश्वारूढा ने भी विषङ्ग दैत्य के साथ युद्ध किया । वाराही ने अत्यन्त रोष से क्रुद्ध हो भण्डदैत्य के साथ युद्ध किया । परा देवी सम्पत्करी अत्यन्त वेगवान् रणकोलाहल नामक हाथी पर सवार होकर असंख्य हाथियों की सेनाको साथ लेकर महागज पर बैठे विशुक्रके साथ लड़ने लगी । उसने मायाधारी विशुक्र पर बाणों की वर्षा की । उस भगवती ने अत्यन्त भीतिदेनेवाली उसकी माया को विमायास्त्र से नष्ट कर युद्ध किया । दैत्य ने विशिख नाम के प्रतिरोधी बाणों की वर्षा की । इसप्रकार दीर्घकाल तक युद्धकर देवी ने उसके धनुषको बीच में से काट डाला । वह भी दूसरे धनुष को लेकर सज्ज हो गया, उसे भी भगवती ने काट दिया । इस प्रकार सौ धनुष विशुक्रने हाथ में लिये और देवी ने बार बार काट डाले । अब अत्यन्त क्रोधयुक्त अद्भुत बलशाली विशुक्र ने भालों से उस

भल्लेन प्राहरत्तस्याः सम्पत्कर्या महाभुजे । भल्लाऽऽहतभुजात्तस्या न्यपतत्तन्महद्धनुः ॥४२॥
सम्पत्करी ततः क्रुद्धा प्राहिणोद्वाहनं गजम् । जगर्ज पतितं दृष्ट्वा हस्ताच्चापं महत्तरम् ॥४३॥
प्रहितस्सोऽपि करिराड् दैत्येभमनुसंययौ । तयोरभून्महद्युद्धं करिणोरगयोरिव ॥४४॥
करसंवेष्टनैः कुम्भसङ्घट्टैः पार्श्वधर्षणैः । दन्ताऽऽक्रमैर्महाशब्दैर्मुहूर्तमतिभीषणम् ॥४५॥
रणं कोलाहलश्चाऽथ बलवान् दैत्यवारणम् । आक्रम्य भूमौ वेगेन निपात्य रदनद्वयम् ॥४६॥
उदरे विनिवेश्योर्ध्वमुत्थाप्य प्राक्षिपद्रुषा । एवं निक्षिप्तमात्रस्तु चीत्कुर्वन् कुञ्जराधिपः ॥४७॥
अपतत्त्रिःपरिक्रम्य व्यसुः पर्वतशृङ्गवत् । पतन्तं वाहनेभन्तमालक्ष्य स महासुरः ॥४८॥
उत्पत्याऽङ्कुशमादाय रणकोलाहलं गजम् । प्राहरत् कुम्भयोर्मध्ये सर्वप्राणेन रोषितः ॥४९॥
हतोऽङ्कुशेन बलवत् स गजो भिन्नमस्तकः । अपाऽसरत् पञ्चधनुर्मात्रं चीत्कारभैरवः ॥५०॥
विशुक्रः पुनरुत्पत्य स्तृणिहस्तो महागजम् । तमेव वाहनं तस्या सम्पत्कर्या युयोध ह ॥५१॥

सम्पत्करी देवी के महा भुजवाहु पर प्रहार किया; दैत्य के भाले से आघात की हुई उसकी भुजा से बड़ा विशाल धनुष गिर गया ॥ ३५-४२ ॥

वह दैत्यराज हाथसे गिरे महत्तर धनुषको देख गर्जन-तर्जन करने लगा । तदनन्तर क्रुद्ध हो सम्पत्करीने अपने वाहन गजको भेजा । वह हस्तिराज भी भेजे जाने पर दैत्यके हाथी के पीछे पीछे गया । उन दोनों हाथियोंका दो गरुड पक्षी-राजों के समान युद्ध हुआ । अपनी सूण्ड़ों के आघातों, गण्डस्थल के सङ्घट्टों (प्रहार) तथा पार्श्वभागों पर घात-प्रत्याघात और दाँतों के आक्रमणों द्वारा अतिमहाशब्दोंसे युक्त कोलाहल से एकमुहूर्त्त तक अति भीषण युद्ध हुआ । अनन्तर बलवान् शक्ति के हाथी ने दैत्य के गजराज के ऊपर आक्रमण कर उसे भूमि पर वेग से पछाड़ अपने दोनों दाँतों को उसके उदर में गड़ा (चुभा) कर ऊपर उठा क्रोध से दूर फेंका । इस प्रकार फेंकते ही वह गजराज तीन वार चक्कर काट कर गतप्राण हो पर्वत के शिखर के समान गिर पड़ा । महाअसुर ने उस वाहन गज को गिरते देख उछल कर अङ्कुश लेकर रणकोलाहल हाथी पर शिर के ऊपर उठे हुए गण्डस्थल के बीच में पूरी शक्ति लगा क्रोधावेश से प्रहार किया । ॥ ४३-४९ ॥

अङ्कुश के आघात से ताड़ित हो भैरवचीत्कार करता हुआ वह गज भिन्नमस्तक हो, पांच पुरुष तक पीछे हट गया । फिर विशुक्र ने अङ्कुश हाथ में लेकर पुनः उसके वाहन महागज पर उछल कर सम्पत्करी से युद्ध किया ॥५०-५१॥

तस्याः करगतं चापमाच्छिद्य त्वरितं रुषा । बभञ्ज तद् द्विधा मध्ये समादायैकखण्डकम् ॥५२॥
प्राहरन्मूर्ध्नि बलवान् सम्पत्कर्याः सुवेगतः । एवं हता सा बलवदीषत्कश्मलमागता ॥५३॥
पुनर्मुष्टिं विनिर्वर्त्य वज्रसारां न्यपातयत् । मूर्ध्नि तस्य विशुक्रस्य रुषा सम्पतकरी बलात् ॥५४॥
मुष्टिपाताद्भिन्नमूर्धा वहद्रक्तोऽतिमूर्च्छितः । कृत्तपक्षः शैल इव पतात वसुधातले ॥५५॥
तावद्गजोऽपि सङ्क्रुद्धः पदाऽऽक्रान्तुं समुद्यतः । आलक्ष्य तद्भण्डसुतः युध्यमानः समीपतः ॥५६॥
मत्वा हतं पितृव्यं वै मायया तमपाऽवहत् । एवं पराजितः सम्पन्नाथया स महासुरः ॥५७॥
तथाऽश्वारूढया युद्ध्यद्विषङ्गो वाजिवाहनः । विविधैरस्त्रशस्त्रैश्च युध्यन्तं तं महासुरम् ॥५८॥
अश्वाऽरूढाऽश्वसंस्थाना प्राहरद्गदयोरसि । ताडितो गदया चेषन्मूर्च्छां प्राप्य पुनर्जवात् ॥५९॥
पदासिकां खेटकञ्च शतचन्द्रमनुत्तमम् । समादायाऽश्वसेनासु विचचाराऽन्तकोपमः ॥६०॥

उस बलवान् दानव ने उसके हाथ में थामे धनुष को क्रोध से शीघ्र काट कर उसे बीच में तोड़ कर एक टुकड़े को लेकर सम्पत्करी के शिर में वेग से प्रहार किया। इस प्रकार खूब बलपूर्वक आघात पाकर भगवती कुछ उदास हुई। ॥ ५२-५३ ॥

फिर उस सम्पत्करी ने वज्रसार मुट्ठी बांध कर उस विशुक्र के शिर पर बलपूर्वक प्रहार किया। मुष्टिका की मार से फूटे शिरवाले उस दैत्य के रक्त निकलने लगा और वह अत्यन्त मूर्च्छित हो परकटे पर्वत के समान भूमितल पर पड़ गया ॥ ५४-५५ ॥

तबतक गजराज भी अत्यन्त रुष्ट हो अपने पैरों से उसे रौंदने को तैयार हुआ। भण्ड का पुत्र जो समीप ही युद्ध कर रहा था, यह वृत्तान्त देख अपने चाचा को मरा समझ माया से उसे उठा कर ले गया। इस प्रकार सम्पन्नाथा द्वारा वह महादैत्य पराजित हुआ ॥ ५६-५७ ॥

साथ ही घोड़े पर आरूढ हो युद्ध करता हुआ विषङ्ग भगवती अश्वारूढा से जूझ गया। विविध अस्त्रों एवं शस्त्रों द्वारा युद्ध करते हुए उस महादैत्य को अश्वारूढा ने अपने वाहन अश्व पर आसन लगाये ही गदा से राक्षसराज के वक्षःस्थल पर प्रहार किया। गदा के आघात से वह कुछ मूर्च्छित होकर फिर वेग से पदासिका (वज्र) अङ्कुश और श्रेष्ठ शतचन्द्र (शतचन्द्राङ्कित ढाल), लेकर वह दैत्य अश्वसेनाओं में यमराज के समान विचरण करने लगा। बड़ी

पट्टासिप्रान्तसंछिन्नास्तुरगाः शक्तयोऽपि च । छिन्नमूर्धाङ्घ्रिचरणाः प्रपेतुः सङ्घसङ्घशः ॥६१॥
एवं शक्तीर्विनिघ्नन्तमश्वाऽऽरूढाऽतिकोपिता । बद्ध्वा पाशेन गदया साऽश्वं हन्तुं समुद्यता ॥६२॥
अथ सोऽपि महादैत्यो मत्वा स्वात्मपराभवम् । अन्तर्धानं ययौ साश्वो मायया मायिनां गुरुः ॥६३॥
एवं पलायितो युद्धे विषङ्गो वाजिनाथया । दण्डनाथा च भण्डेन युयोध बलसम्भृता ॥६४॥
विहत्याऽस्त्राणि चाऽस्त्रौघैः शस्त्रैः शस्त्राणि सर्वशः । पराक्रमेणाऽऽक्रमत भण्डं कोलमुखी युधि॥६५॥
खड्गयुद्धे गदायुद्धे धनुःपरशुयुद्धयोः । मुष्टियुद्धे च दैत्येशमत्यरिच्यत दण्डिनी ॥६६॥
एवं पराजितः शस्त्रयुद्धेषु विमृशंस्ततः । मायां प्रादुश्चकारोच्चैर्मायिनां शेखरोऽसुरः ॥६७॥
अन्धकारं महावायुं विद्युद्वर्षं महारवम् । शिलावर्षं सर्पवर्षं शतवर्षञ्च पावकम् ॥६८॥
सारमेयान् वृकान् व्याघ्रांस्तरक्षून् राक्षसानपि । सिंहांश्च शरभानाण्डभेरुण्डानसृजद्युधि ॥६९॥
एवं तेन महामायां सृज्यमानां पुनः पुनः । प्रतिक्रियाऽस्त्रसन्धानैर्नाशयामास सर्वतः ॥७०॥

तीक्ष्णधारा से अङ्गों के छिन्न-भिन्न होने से घोड़े एवं शक्तियाँ भी अपने सिर, नाना अङ्गों तथा चरणों के विच्छिन्न हो जाने से संघबद्ध दलों में गिरने लगीं। इस प्रकार शक्तियों को मारते देख अत्यन्त क्रुद्ध हो अश्वारूढा ने दैत्य के अश्व को पाश से बांधकर अपनी गदा से मारने की तैयारी की ॥ ५८-६२ ॥

तदनन्तर मायावीलोगों का गुरु वह महादैत्य भी अपनी पराजय जानकर अपनी माया से अश्वसहित अन्तर्धान कर गया। इस प्रकार विषङ्ग अश्वनाथा के साथ युद्ध से भाग गया। बल (सेना) से युक्त दण्डनाथा भण्ड से लड़ने लगी। युद्ध में अस्त्रों के समूहों से अस्त्रोंको और शस्त्रों से शस्त्रों को काटकर सर्वप्रकारेण वाराही ने भण्ड पर पराक्रमपूर्ण आक्रमण किया। खड्गयुद्ध में गदायुद्ध में धनुष और फरसों के युद्धों में तथा मुष्टिकायुद्ध में दण्डिनी ने दैत्य से कहीं अधिक बढ़चढ़ कर शौर्य दिखाया ॥ ६३-६६ ॥

इस प्रकार शस्त्रों के युद्धों में हारा हुआ वह विचार करते हुए उस मायावी लोगों के शिरोमणि दैत्यराज ने महाविशाल माया रची। अन्धकार, महावायु, बिजलीकी वर्षा, खूब घनघोर शब्द, पत्थरों की वर्षा, सर्पोंकी वर्षा, मृतक शवों की वर्षा, अग्निवर्षण, श्वान (कुत्ते), भेड़ियें, व्याघ्र, सेई (कांटेदार पर्वतस्थलों में बिल का जन्तु) और राक्षसों को, सिंहों, शरभों (आठपैरोंवाला पुराणवर्णित जन्तु) आण्ड, भेरुण्ड (शरगल) आदि को युद्ध में माया से बनाया। इस प्रकार उसके द्वारा बनायी गयी महामायाको बारम्बार प्रतिरोधी अस्त्रों के प्रयोग से सब ओर से नष्ट कर दिया ॥६७-७०॥

अथ दण्डमहाराज्ञीशस्त्रतेजोभिरर्दितः । नभस्यन्तर्हितो भूत्वा युयोध सरथोऽसुरः ॥७१॥
प्रादुश्चकाराऽश्मवर्षमतिभीमं महारवम् । शस्त्राऽशनिगणोपेतं शक्तिसेनाभयंकरम् ॥७२॥
तेन वर्षेण महता पीडिता शक्तिवाहिनी । भिन्नसेतूदकमिव विलुप्ताऽभूत् समन्ततः ॥७३॥
दृष्ट्वा तदक्रमं दण्डराज्ञी चण्डप्रकोपना । उत्पपाताऽतिवेगेन सायुधा नभसोऽङ्गणम् ॥७४॥
वर्षं पतन्तं तदाविश्य शिलामयमतिद्रुतम् । मृगयामास दैत्येशं नभस्यन्धतमोवृते ॥७५॥
निजाऽङ्गकान्त्या कुर्वन्ती नभोदेशंसुभास्वरम् । अपहृत्य महामायामाससाद महासुरम् ॥७६
रथसंस्थं शैलनिभं सृजन्तं शैलवर्षणम् । गदयाऽभ्याहनन्मूर्ध्नि वज्राऽऽहत इवाऽद्विराट् ॥७७॥
पपात मूर्च्छितो भूमौ स्रोतःकृततटो यथा । पुनः सा गदयैवाऽऽशु रथमश्वांश्च सारथिम् ॥७८॥
विनाशयद्दण्डनाथा क्रोधेन महताऽऽवृता । तावन्मूर्च्छाविनिर्मुक्तो गदाहस्तो हासुरः ॥७९॥
उत्पपात नभो वेगाद्योद्धुं किरिनिभाऽऽननाम् । अथाऽभवन्महायुद्धं वाराहीदैत्यराजयोः ॥८०॥

अनन्तर दण्डमहाराज्ञी के शस्त्रोंके तेजसे अत्यधिक त्रस्त हो आकाश में अन्तर्हित हो (अदृश्य बन) रथसहित असुर प्रगट हा शिलावर्षणवाला अतिभयानक महाराव करने लगा । शस्त्रों एवं अशनिगण से युक्त शक्तिसेना के लिये भयङ्कर उस शिलावर्षण से शक्तियों की सेना अत्यन्त पीडित हुई । जैसे टूटे सेतु का जल में विलय हो जाता है उसी प्रकार चारों ओर शक्तिसेना विलुप्त हो गयी। इस प्रकार युद्ध में अनुचित कार्य को देख कर अत्यन्त प्रचण्ड कोपवाली दण्डराज्ञी ने अपने आयुधों के सहित अत्यन्त वेग से आकाश प्रांगण में ऊपर की ओर गमन किया। देवी ने शिलामयवर्षण से गिरते प्रस्तरमय वातावरण में घोर अन्धतम अंधकार से आवृत आकाश में उस महासुर को खोजा । अपने अंगों की कान्ति से अन्तरिक्ष के देश को अत्यन्त प्रकाशयुक्त करती हुई उसने महादैत्य की महामाया का अपहरण कर उसे पकड़ लिया ॥७१-७६॥

रथ में स्थित माया से शैल की वर्षा करते हुए उसे भगवती ने शिर में गदा का प्रहार किया और वज्र से आहत पर्वतराज के समान वह मूर्च्छित हो भूमि में स्रोत से काटे तट के समान यह गिर पड़ा । पुनः उस दण्ड-नाथा ने गदा से शीघ्र ही उसके रथ, अश्व (घोड़ों) और सारथि को अत्यन्त क्रुद्ध हो मार गिराया तब तक मूर्च्छा से विनिर्मुक्त (सचेत) हो वह महाअसुर अपनी गदा हाथ में लेकर वेग से अन्तरिक्ष में युद्ध करने के लिये वाराही पर झपटा । अब वाराही और दैत्यराज का महायुद्ध हुआ ॥ ७७-८० ॥

गदाप्रहारतुमुलं वज्रपातमहारवम् । मुहूर्तमात्रं युद्ध्वैवं बलोत्सिक्तं महासुरम् ॥८१॥
मत्वा चकर्ष सीरेण मुसलोद्यन्महाभुजा । तावन्मत्वा निजात्मानं हतं मुसलघाततः ॥८२॥
चिन्तयद्भण्डदैत्येशः पुरा लक्ष्मीप्रभाषितम् । नूनं प्रोक्तं रमादेव्या यत् पुरा न तदन्यथा ॥८३
भवेत् मुसलघातेनाऽमोघेन स्यां कथं हतः । त्रिपुरा सा महादेवी भक्तवाञ्छितपूरणी ॥८४॥
मां हन्यात् समरे साक्षादेतन्मेऽभिमतं चिरात् । दैत्ये विचिन्तयत्येवमभवन्नाभसं वचः ॥८५॥
दण्डनाथे ! नैष वध्यस्तव युद्धे कथञ्चन । अमोघो मुसलस्तेऽयं सन्निवर्तय वै द्रुतम् ॥८६॥
श्रुत्वेत्थं नाभसवचश्चण्डिका दण्डनायिका । मोचयत्तं सीरगर्भान्मत्वाऽवध्यं सुरेश्वरम् ॥८७॥
अथ सोऽन्तर्हितो दैत्यो निर्जितो दण्डनाथया । दैत्यसेनाशक्तिगणैर्गाढविद्धा पलायिता ॥८८॥
दृष्ट्वा भग्नां दैत्यसेनां जयभेरीमवादयत् । शक्तयो विविधांश्चापि वाद्यान् जयविधौ मतान् ॥८९॥
अथ द्रुतं प्रेषयित्वा जयाऽऽख्या नाथदण्डिनी । ललितायै शक्तिसेनां समवाप्याऽभितः स्थिताम्॥९०॥

जो गदाओं के प्रहारों से तुमुल और वज्र गिराने से महानादवाला था। इस प्रकार एक मुहूर्त तक युद्ध करके भण्डदैत्य को अति दुर्धर्ष बली जानकर मुसल हाथ में ली हुई देवी ने वज्र से आघात किया। अपने को मुसल के प्रहार से घातित मानकर भण्ड दैत्यपति प्राचीन काल में श्रीलक्ष्मी के कथन के विषय में विचार करने लगा, "अवश्य ही रमादेवी ने जो पूर्व काल में कहा था, वह कदापि अन्यथा नहीं हो सकता, नहीं तो मैं अमोघ मुसल के घात से क्यों चोट खाता ? वह महादेवी त्रिपुरा भक्त के अभीष्ट मनोवाञ्छित को पूर्ण करने वाली है, मुझे युद्ध में साक्षात् वह मारे यही मेरी दीर्घकाल से कामना रही है।" दैत्य के इस प्रकार सोच विचार करने पर गगन में आकाश-वाणी हुई। "हे दण्डनाथे ! युद्ध में यह तेरे से किसी प्रकार भी वध के योग्य नहीं है। यह तेरा मुसल अमोघ है इसे जल्दी हटा ले" इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर चण्डिका दण्डनायिका ने सीरके गर्भ से उस सुरेश्वर को अवध्य मान कर अपना प्रयत्न छोड़ दिया। अब अदृश्य हुआ वह दैत्य दण्डनाथा द्वारा जीत लिया गया। शक्तिगण से बहुत बुरी तरह से आघात पाकर दैत्यसेना छिन्नभिन्न हो भाग गई। भग्न दैत्यसेना को देख देवीसेना में जयभेरी बजने लगीं। शक्तियों ने इस जयघोष में समुचित बजने वाले विविध वाद्यों को काम में लिया। अनन्तर जया नामक नाथदण्डिनी ने सामने खड़ी शक्ति सेना को ललिता के लिये सन्देश पहुंचाने को शीघ्र भेजकर विजय की सूचना दी। शस्त्रास्त्रों से

क्षता हताः शक्तयो या अमृतेशी च ता द्रुतम्। अजीवयद्विरुजयत् ततो हृष्टाश्च तां चमूम्॥९१॥
संनह्य स्वरथाऽऽरूढा सम्पद्देव्याऽनुसङ्गता। पुरोऽव्रजदश्वनाथा सेनया दण्डनायिका ॥९२॥
द्रष्टुं तां ललितादेवीं ययौ द्रुततरं मुदा। गजवादित्रशब्दौघैः ख्यापयन्ती स्वकं जयम् ॥९३॥
इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललिताचरित्रे
भण्डासुरपराभवो नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥५४१२॥

बहुत घायल हो जो क्षत विक्षत हुई शक्तियां थीं उन्हें अमृतेशी ने शीघ्र संजीवित कर दिया। तत्पश्चात् वह अत्यन्त प्रहृष्ट उस सेना को एकत्र संघबद्ध कर अपने रथ पर आरूढ हो सम्पद् देवी के पीछे पीछे साथ ही चली गयी। आगे अश्वनाथा दण्डनायिका सेना के साथ चली। वह उस भगवती पराम्बा ललिता देवी को देखने के लिये अत्यन्त हर्ष से गजों पर रक्खे वादित्रों निशान नगाड़ों के शब्दों के समूह से अपनी विजय की घोषणा करती हुई अतिशीघ्रता से चली ॥८१-९३॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम श्रीत्रिपुरारहस्य के ललितामाहात्म्यप्रकरण में भण्डासुर की पराजय नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

सम्पत्कर्यश्वारूढाभ्यां दुर्मदवधवर्णनम्

अथ गत्वा दण्डनाथा शक्तिभिर्विविधैर्युता । आसाद्य मन्त्रिणीं देवीं प्रणम्य जयमादिशत् ॥१॥
साऽपि प्रीता परिष्वङ्गं तस्यै मानेन संददौ । अथ गत्वा तया सार्धं महाराज्ञीं प्रणम्य च ॥२॥
जयवृत्तं समाचख्यौ शक्तिचक्रप्रहर्षदम् । भण्डासुरोऽपि दैत्यानां सेनया नष्टशेषया ॥३॥
ययौ बहिःखिन्नतया हृष्टश्चाऽन्तरभीप्सितात् । शून्यकं नगरं प्राप्य जगामाऽन्तःपुरं स्वकम् ॥३॥
ततः प्रियाः सममेत्य भण्डं सम्मोहिनीमुखाः । ब्रूयुर्नाथ किमद्य त्वां पश्यामः कृपणं यथा ॥५॥
नारदेन पुरोक्तं यत्तदन्यथयितं कथम् । प्राह पत्नीवचः श्रुत्वा ज्ञात्वा स्वाऽभिमतं शुभम् ॥६॥
नारदोक्त्याऽभिविदितमाभिः सर्वात्मनेत्यथ । अभवत् प्रकटस्तासु प्रियाः शृणुत मे वचः ॥७॥

छासठवाँ अध्याय

भण्ड की पराजय के अनन्तर भगवती दण्डनाथा ने विविध शक्तियों के सहित मन्त्रिणी देवी के यहां आकर प्रणाम कर विजय का वृत्तान्त कहा। उसने भी परम प्रसन्न हो उसे सम्मान से हृदय से लगा लिया। अनन्तर उस (मन्त्रिणी) के साथ जाकर महाराज्ञी को दण्डनाथा ने प्रणाम कर शक्तिचक्र को प्रकृष्ट हर्षप्रदायक विजय का समाचार बतलाया। (इधर) भण्डासुर भी नष्ट होने से बची सेना के साथ देवी द्वारा भविष्य के वधकियेजानेवाले भावी परिणाम से (जो उसकी) अभीप्सित इच्छा है उसके कारण बाहर से खिन्न सा परन्तु हृदय में हर्षित हुआ लौट गया। वह शून्यक नगर जाकर अपने अन्तःपुर (रनिवास) में गया ॥१-३॥

तदनन्तर सम्मोहिनीप्रमुख प्रियरानियाँ उसके पास जाकर इस प्रकार कहने लगीं, "हे प्राणनाथ! हम आज आपकी स्थिति कृपण व्यक्ति के समान क्यों देखती हैं? देवर्षि नारद ने जो पुरा काल में कहा था वह अन्यथा (मिथ्या) कैसे हुआ?" अपनी रानियों की बातें सुन कर अपने शुभ अभिमत को जान कर कि नारद जी के कथन से इन्हें भी सर्वात्मना सारा वृत्तान्त ज्ञात है यह समझ उनके सम्मुख प्रकट रूप से

कथमिष्टार्थलाभेषु खिन्नः स्यामतिमुग्धवत् । विदितं ते नारदोक्तेः सर्वं मे समभीप्सितम् ॥८॥
अचिरादेव तल्लोकं प्राप्स्यामि परया हतः । किन्तु दैत्येषु स्वरूपं निगूहितुमिति स्थितिः ॥९॥
अथ प्राहुः पुनर्दारा नाथ त्र्यूनोऽभिवाञ्छितम्। यदि ते निश्चयो युद्धे हता यास्यामः तत्स्थितम्॥१०॥
इति चेद्वै त्वदेकान्ता नयाऽस्मान् सहभावतः । तत्ते मार्गः प्रविदितो वदाऽस्माकं कथं गतिः ॥११॥
भक्ता हातुमयोग्यास्ते वयं छायेव सङ्गताः । श्रुत्वा प्रोक्तं प्रियाभिस्तत् प्राह हर्षसुनिर्भरः ॥१२॥
शृणुध्वं मद्वचस्तथ्यं मयेतच्चिन्तितं पुरः । न भवेदन्यथा ह्येतत् सर्वथा कारणं ब्रुवे ॥१३॥
रमादेव्याः प्रसादेन स्मरामि प्राक् समुद्भवम् । नूनं सा मेऽब्रवीदेवं त्रिपुराऽस्मत्समाश्रया ॥१४
संश्रितानां सुभक्तानां वाञ्छितं सा हि सर्वथा ।
दिशत्यसाध्यमपि च ततो नः स्यात् समीहितम् ।१५।
मयाऽभिवाञ्छितं यामि भवतीभिः सहेति वै । तल्लोकं तद्भवेदेवं सर्वथाऽपि न संशयः ॥१६॥

बोला, "हे प्राणप्रियाओ ! मेरा कथन सुनो, अपने अभीष्ट प्रयोजन की प्राप्ति में मैं खिन्न क्यों होऊँ ? मैं तो मुग्धवत् स्थित हूँ (आनेवाले भावि विधानको सोचकर अत्यन्त प्रमोद अनुभव करता हूँ)। मेरा सब अभिलषित तुम्हें देवर्षि नारद के कथन से ज्ञात ही है । मैं पराम्बा द्वारा वध किया जा कर शीघ्र ही उस देवीलोक को प्राप्त करूँगा । किन्तु दैत्यगणमें अपना वास्तविक रूपको छिपानेके लिये ऐसी स्थिति बनाकर बैठा हूँ ।" अनन्तर फिर उसकी रानियोंने कहा, "हे प्राणनाथ ! हम अपनी अभिवाञ्छित इच्छा बतलाती हैं; यदि आपका निश्चय ठीक है कि युद्धमें मारे जानेसे देवी-लोक को आप जावेंगे तब तो आपकी अनन्य सहधर्मिणी हमें भी साथ में रखना होगा । आपको तो मार्ग भली प्रकार ज्ञात है । कहिये, हमारी गति कैसे होगी? आपके प्रति सहज भक्ति रखने वाली हम छायाके समान अनुगामिनी हैं; हमें छोड़ना समुचित नहीं ।" अपनी प्राणप्यारी रानियों द्वारा कही वार्त्ता सुन भण्ड हर्षनिर्भर हो बोला' "तुम लोग मेरी सत्य सत्य बातें सुनो, मैंने पहले से यह सोच रक्खा है, यह किसी प्रकार अन्यथा नहीं हो सकता इसका तुम्हें कारण बताता हूँ ॥४-१३॥

रमादेवी की कृपा से मैं पहले के जन्म की बात स्मरण करता हूँ । उसने मुझे ऐसे कहा कि अवश्य ही त्रिपुरा हम सब की एकान्ततः आश्रय है, अपने आश्रय में रहनेवाले सद्भक्तों का वह असाध्य

अथाऽपि मे समीहाऽन्या चाऽस्ति(?)पुत्रादिभिः सह। गन्तव्यमिति तत्रापि भवेदेव तथाऽप्यहम्।१७।
चिन्तयाम्यक्रमेणैव भवेत्तस्याः कृपावशात्। नूनं लोके सुहृद्बन्धुवैधुर्यं जातु वै क्षणम् ॥१८॥
सोढुं न योग्यं वै यत्र त्रुटिः कल्पगणायते। एतावत् प्रार्थ्यते नूनं न भवेत् सक्षणः क्वचित्॥१९॥
तस्माद्युष्माभिरप्येतत् प्रार्थनीयमहर्निशम्। सा साधयति भक्तानामसाध्यमपि वाञ्छितम् ॥२०॥
एतदन्यैर्न विज्ञेयमित्यहं शुच्यवस्थितः। शोकं जहथ राज्ञ्योऽत्र प्राप्तोऽभ्युदय उच्छ्रितः ॥२१॥
इत्युक्त्वाऽस्तङ्गते सूर्य विवेश महतीं सभाम्। अथाऽऽगता विशुक्राद्या भ्रातरो मन्त्रिणस्तथा ॥२२॥
पुत्रा भृत्याः सभास्ताराः सभामध्येऽतिभास्वरे। प्रणम्याऽसुरभूपालं विविशुः स्वस्वविष्टरे ॥२३॥
विशुक्रः प्रेक्ष्य राजानं शोचन्तमिव संस्थितम्। कृताऽञ्जलिः प्रणम्याऽऽह वर्धयित्वाऽद्भुतं वचः ॥२४॥
श्रीदेव्या भण्डदैत्येशवाञ्छितार्थसमीहया। नाशिताऽखिलदैत्यानां बुद्धिर्नीतिसमानुगा ॥२५॥

अभीष्ट भी पूर्ण करती है तब उससे ही हमाराइच्छित कार्य होगा मेरे द्वारा ईप्सित यही है कि मैं तुम सब रानियों के साथ उस देवी के दिव्यधाम में जाऊँ वह मेरा दीर्घ काल का अभीष्टपूर्ण होगा ही इसमें कोई सन्देह नहीं। आगे मेरी और अन्यभी इच्छा है कि पुत्र आदिको साथ लेकर मुझे जाना है,सो वह भी होगी ही; फिर भी में सोचता हूँ कि अक्रम (एक साथ ही) से ही उसकी कृपा के प्रभाव से सब होगा। अवश्य ही इस लोक में मित्रगणों के बन्धु-बान्धव लोगों का वियोग (बिछुड़ना) कभी भी एक क्षण के लिए भी सहा नहीं जाता; जहाँ त्रुटि भी कल्पों के समूह जैसी होती है। मेरे द्वारा यही प्रार्थना की जाती है कि जीवन में वह वियोग का क्षण कभी न आवे। इसलिए दिन रात यही प्रार्थना करनी चाहिये। वह भक्तों के वाञ्छित असाध्य कार्य को भी साध देती है। इसे दूसरे नहीं जान पाते; इसलिये में शोकमग्न हूँ। हे रानियो ! तुम शोक छोड़ दो। सब प्रकार से अपना सबका महान् अभ्युदय प्राप्त है।" इस प्रकार उन्हें कह कर सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर वह महती सभा में गया। अनन्तर अत्यन्त उज्जवल (सजे हुए) सभा-कक्ष में विशुक्र आदि भाई लोग तथा मन्त्रीगण, पुत्र, सेवक एवं सभासद आगये, उन्होंने असुरराज को प्रणाम कर अपने अपने आसन ग्रहण किये ॥१४-२३॥

विशुक्र ने राजा को शोकमग्न देख हाथ जोड़े प्रणाम कर राजा की जयकार करते हुए अद्भुत वचन कहे। (हयग्रीव मुनि ने अगस्त्य को कहा)— "श्रीदेवी जो भण्ड दैत्यराज के अभिलषित प्रयोजन को पूर्ण करनेवाली है, उसने समस्त दैत्यलोगों की नीतिसंयुक्त बुद्धि का नाश कर दिया।

योऽतिबुद्धिमतां श्रेष्ठो विचारे शुक्रसम्मितः । विशुक्रः सोऽपि विमतं प्राह स्वार्थविपर्ययम् ॥२६॥
अगस्त्यैतावदेवेह कृत्यं कालस्य भावितम् । भाव्यर्थस्याऽनुरोधेन बुद्धिमुन्मेषयत्यलम् ॥ २७ ॥
महाराज लक्ष्यसे मे शोचन्निव सभास्थितः । जीवत्स्वस्मासु दैत्येषु पश्याम्येतदसाम्प्रतम् ॥२८॥
इत्युक्तःपुनरूचे स दैत्येशो दैत्यमण्डले । विशुक्र किं वदाम्यद्य कालस्यैवं विपर्यये ॥ २९ ॥
योऽहं पञ्चोत्तरशतब्रह्माण्डानां प्रशासकः । यस्य युद्धे विष्णुमुखा भूयो जाताः पराङ्मुखाः॥३०॥
यस्य नाम्नाऽपि वृत्रघ्नो निद्रामप्येति नो क्वचित् । सोऽद्याऽहमबलासङ्घैर्व्यर्थं युद्धे कदर्थितः॥३१॥
किं तादृशं पृच्छसि मां शोचसीति मृतप्रभम् । काले मृतिःश्लाघ्यतमा नेदृशस्य कदर्थना ॥३२॥
विशुक्र इति तद्वाक्यं श्रुत्वा प्राह ततो वचः । दैत्येशैवं नाऽर्हसि त्वं भाषितुं करुणंवचः॥३३॥
अबला योषिदित्येवं कारुण्यं नाऽऽप्नुयात्तु कः । नैसर्गिकस्ते धर्मोऽयं स्त्रीषु शास्त्रपरावृतिः॥३४॥

जो बुद्धिमान् मनुष्यों में अत्यधिक श्रेष्ठ तथा विचार में शुक्र के समान विशुक्र है उसने भी अपने स्वार्थ के विपरीत विरुद्धमतवाला विचार व्यक्त किया । "हे अगस्त्य ! काल की विचित्र गति है कि उससे भावित कृत्य भविष्य के फल के अनुसार ही बुद्धि का स्फुरण करने में समर्थ होते हैं" ॥२४-२७॥

वह बोला, "हे महाराज ! आप सभा में विराजमान होकर शोकमग्न से दिखलाई पड़ते हैं । हम दैत्यगण के जीते जी आपका इस प्रकार चिन्तावस्था में निमग्न होना मैं अनुचित देखता हूँ ।" इसप्रकार कहने पर फिर दैत्येश्वर ने दैत्यमण्डल में कहा, "हे विशुक्र ! मैं इस प्रकार की समय की विपरीतता में क्या कहूँ, जो मैं एक सौ पांच ब्रह्माण्डों का उत्कृष्ट शासन करनेवाला रहा हूँ, जिसके युद्ध में विष्णुप्रमुख देवगण तक वारम्वार पराङ्मुख हो गये और जिसके नाम से भी वृत्रासुर का वध करनेवाला इन्द्र कहीं भी सुख से निद्रा नहीं लेता, वही मैं अबला स्त्रियों के सङ्घ द्वारा वृथा युद्ध में कदर्य (हीनस्थितिवाला) बना दिया गया । ऐसे मृतक व्यक्ति के समान मुझे क्या पूछते हो कि मैं शोक से क्यों व्याकुल हूँ ? समय पर मृत्यु प्रशस्ततम है परन्तु मनस्वी के लिये इस प्रकार के अपमान की स्थिति कभी भी उचित नहीं ।" ॥२८-३२॥

विशुक्र ने उसके ये वाक्य सुन फिर कहा, "हे दैत्येश ! आपके लिये इस प्रकार करुणापूर्ण शब्द कहना समुचित नहीं । 'स्त्री अबला है' इस प्रकार कहने से किस आदमी को करुणा (घृणा) नहीं आती

अलं त्वया मया वाऽपि राजपुत्रादिभिस्तथा । दैत्येष्ववन्यतमोऽप्येकस्त्वयाऽऽज्ञप्तो मुहूर्ततः॥३५॥
हन्याच्छक्तिगणं सर्वमत्र पादौ स्पृशामि ते । त्वं तिष्ठाऽन्तःपुरे क्रीढन् सुरवारगणैः सह ॥३६॥
गतोऽहं तां विजित्यैव पादौ पश्यामि ते पुनः । इत्युक्त्वा पार्श्वतः प्रैक्षत् कुटिलाक्षं चमूपतिम् ॥३७॥
तावत् सोऽपि प्रणम्यैनं कृताञ्जलिरभाषत । युवराज किमेवं त्वं ब्रवीषि मयि जीवति ॥३८॥
राज्ञा सह विषङ्गेण राजपुत्रैरुपाविश । सेनासेनाधिपैः साकं गत्वाऽहं साधयामि ताम् ॥३९॥
अन्यथा नाऽऽगमिष्यामि सत्यं प्रतिश्रृणोमि ते । इत्युक्त्वा प्रणिपत्यैतान्निर्ययौ नगराद्बहिः ॥४०॥
अनेकाऽक्षौहिणीसेनायुक्तः सेनाऽधिपैः सह । अथाऽऽगत्य दुर्मदाऽऽख्यो वाहिनीपो महाबलः॥४१॥
दशाऽक्षौहिणिकायुक्त उष्ट्राऽऽरोहो गदाधरः । प्राहाऽहङ्कारशैलस्थः प्रणम्याऽऽत्मचमूपतिम् ॥४२॥
सेनाधीश ! त्वमत्रैव तिष्ठ सेनासमावृतः । अबलाविजयेनैव प्रयाणं वः सुसम्मतम् ॥४३॥

आपका तो यह स्वाभाविक धर्म है कि स्त्री को देख शस्त्रों को पीछे हटा ले जाते हैं। आप, मैं अथवा राजपुत्र आदि भी रहने दे, इन दैत्यों में से कोई सा भी एक आप से आज्ञा पाकर मुहूर्त मात्र में सब शक्तिगण का वध कर दे सकता है। मैं आपके चरणों का स्पर्श करता हूँ (शपथ लेता हूँ) कि आप अन्तःपुर (रनिवास) में देवगण की अप्सरागण के साथ क्रीडाविलास करते रहें मैं जाते ही शक्ति को जोतकर आपके चरणों को फिर देखता हूँ (देखूंगा)।" यह कह कर अपने पार्श्व में स्थित सेनापति कुटिलाक्ष को विशुक्र ने कनखियों से झांका। तब तक वह भी प्रणाम कर दैत्यराज विशुक्र को प्रणाम कर बोला, "हे युवराज ! मेरे जीते जी आप इस प्रकार क्या कहते हैं ? राजा विषङ्ग के साथ आप राजपुत्रों सहित यहीं विराजिये; सेना और सेनापतिवृन्द के साथ जाकर मैं उसे साध लूँगा (देवी के साथ युद्ध कर विजयलाभ करूँगा) नहीं तो मैं आऊँगा ही नहीं मैं आपके सामने यह सत्य प्रतिज्ञा करता हूं।" यह कहकर वह उन्हें प्रणामकर नगर के बाहर अनेक अक्षौहिणी सेनाओं एवं सेनाध्यक्षों के साथ चला गया ॥३३-४०॥

अनन्तर महाबली दुर्मद नामक सेनापति ने दश अक्षौहिणी सेना के सहित ऊंट पर सवार होकर गदा धारण कर स्वकीय सेना के अध्यक्ष को प्रणाम कर अहङ्काररूपी पर्वत पर स्थित हो बोला, 'हे सेनाध्यक्ष ! आप यहीं सेना के साथ ठहरिये। अबला को पराजित करके ही हमलोगों का यहां से आगे प्रयाण करना सुस-

आनेष्यामि मुहूर्तेन बद्ध्वा तामबलाधिपाम् । मुहूर्तमात्राद्यदि तां नाऽऽनेष्यामि ततस्त्वया ॥४४॥
यतितव्यञ्च गन्तव्यमित्युक्त्वा निर्ययौ जवात् । वादयन् जैत्रयात्राऽङ्गवादित्राणि मुहुर्मुहुः ॥४५॥
ययौ शक्तिचमूवक्त्रं सूर्यस्योदयनं प्रति । दैत्यसेनासमारम्भकोलाहलमहारवम् ॥४६॥
श्रुत्वा सम्पत्करी देवी चाऽश्वारूढा महाबला ।
गत्वा श्रीमातरं नत्वा मन्त्रिणी दण्डिनीमपि ॥४७॥
विज्ञाप्य दैत्यसन्नाहमनुज्ञातेऽतिमोदिते । ययतुः शक्तिसेनाभिरसङ्ख्याभिः समायुते ॥४८॥
तत्र सम्पत्करी देवी समारुह्य महागजम् । रणकोलाहलाऽऽख्यानं प्रालेयाऽद्रिरिवोन्नतम् ॥४९॥
सुवर्ण भा जपाऽऽरक्तवासोरत्नविभूषणा । तारुण्याम्भोधिलहरी लावण्यौघसमुद्रिका ॥५०॥
विकर्षन्ती मणिमयं चापमिन्द्रधनुष्प्रभम् । दैत्याम्बुधेः शोषणाय शरान् भानुकरोपमान् ॥५१॥
किरन्ती निर्ययौ सूर्य उदयाऽद्रिगतो यथा ।
असङ्ख्या वारणाऽऽरूढा शक्तयश्चाऽपि तादृशाः ॥५२॥

म्मत है। मैं मुहूर्त में अबलाओं की स्वामिनी उस देवी को बाँध कर लाता हूँ, यदि मैं मुहूर्त में भी न लाऊँ तो फिर आप प्रयत्न करें और आगे बढ़ें।" यह कह कर वह अति वेग से निकल गया। वह विजयार्थ युद्धयात्रा के अङ्गभूत वाद्ययन्त्रों को बारम्बार बजाते हुए शक्तिसेना की अग्रिम रक्षापंक्ति के सामने सूर्योदय के साथ पहुंच गया। दैत्यसेना के पक्ष की युद्धसाजसज्जा के कोलाहल के विशाल शब्द को सुन कर सम्पत्करी देवी और महाबलवती अश्वारूढा ने श्री माता के पास जाकर उसे नमस्कार कर मन्त्रिणी एवं दण्डिनी को भी सूचना देकर दैत्यसेना के एकत्र होने की बात बतला कर और अत्यन्त मुदित होकर असंख्य शक्तिसेनाओं को साथ ले युद्ध करने को प्रस्थान किया ॥४१-४८॥

वहां सम्पत्करी देवी रणकोलाहल नामक प्रलय के पर्वत के समान अति उच्च महागज पर आरूढ होकर सुवर्ण की कान्तिवाली, जावाफूल के समान समन्तात् रक्त (लाल) वस्त्रों, रत्नों और विभूषणों को धारण की हुई; यौवन रूपी समुद्र की लहर सी (युवावस्था की तरुणाई में उन्मत्त); सौन्दर्यसमूह की गम्भीरसमुद्ररूपा, इन्द्रधनुष के समान मणिमय धनुष को ताने हुई, दैत्यरूपी समुद्र को सोखने के लिये बिखेरती सूर्यकिरणों से उदग्र बाणों को छोड़ती

परिवार्य ययुर्बाणान् विकिरन्त्यः समन्ततः । प्रत्येकं तादृशी शक्तिर्गर्जने त्र्यङ्कुशग्रहा ॥५३॥
गजग्रीवासमारूढा नयती शत्रुवाहिनीम् । कस्मिंश्चिदेका संरूढाऽनेकाश्चाऽन्येषु संस्थिताः॥५४॥
इत्यसङ्ख्येभसेनाभिः समेता सम्पदीश्वरी । ग्रसन्तीव दैत्यसेनां व्याप्य भूमिमुपाऽऽययौ ॥५५॥
निसर्गभिन्नगण्डास्ते गजाः पर्वतसन्निभाः । दैत्यसेनां समासेदुस्ते युद्धेष्वनिवर्तिनः ॥५६॥
अथ वादित्रनिस्वानः सेनयोरुभयोरभूत् । प्रवृत्तः शस्त्रपातोऽपि प्राणचोरमहारवः ॥५७॥
दैत्या रथेभतुरगखरोष्ट्रमृगरोहिणः । गृध्रकाककङ्कघूकभासकेक्यधिसंश्रयाः ॥५८॥
अन्ये मार्जारनकुलसरटप्रेतवाहनाः । चण्डशूलखड्गचक्रभिन्दिपालधराः परे ॥५९॥
तोमरप्रासपरिघभुशुण्डीलगुडाऽऽयुधाः । एवंविधैर्दैत्यगणैः समेता शक्तिवाहिनी ॥६०॥
युयुधे प्रौढसंरम्भा क्रोधसंरक्तलोचना । परस्परं क्षिपन्तस्ते वाक्यैः कटुरसोदयैः ॥६१॥

हुई जैसे उदयाचल पर सूर्य उदय होता है वैसे ही आयी। उसी के आकारवाली असंख्य शक्तियां हाथियों पर आरूढ़ हो उसे घेर कर चारों ओर से शत्रुओं पर बाणों को छोड़ती हुई चलीं। प्रत्येक शक्ति के साथ गर्जन में उन्हीं की समान आकृतिवाली त्र्यङ्कुश हाथ में ली हुई, हाथियों की ग्रीवा पर चढ़ी हुई शक्तियां शत्रुसेना को आगे भगाती हुई जाती थी। उनमें से किसी हाथी पर कोई एक संरूढ थी और अनेक अन्य हाथियों पर बैठी हुई थी। इस प्रकार असंख्य हाथियों पर विराजी शक्तिसेनाओं के साथ सम्पदीश्वरी देवी दैत्यसेनाको घेरकर ग्रसती हुई सी रणभूमि में एकत्र हो आ गयी। प्रकृति से ही उन्नत गण्डस्थलवाले पर्वत के समान ऊँचाई वाले एवं युद्ध से कभी विमुख हो न लौटनेवाले वे गजराज दैत्यसेना में प्रविष्ट होगये अनन्तर दोनों सेनाओं में युद्ध के बाजों के बजाने का भीषण नाद हुआ, इसके साथ ही प्राणों को हरण करनेवाला तुमुल घोषयुक्त अस्त्रशस्त्रों का प्रयोग भी हुआ ॥४६-५७॥

दैत्यगण रथों, घोड़ों गधों, ऊँटों, और मृगों पर सवार थे। कई राक्षस लोग गृध्र, कौवे, कङ्क (पक्षिविशेष), उल्लू, भास या मोर पर आरूढ थे। अन्य विडाल, नेवला, सरट (गिरगिट) और प्रेतवाहन पर बैठे थे। अन्य राक्षसगण प्रचण्ड शूल और तलवार, चक्र और छोटी बर्छी लिये हुये थे और दूसरे दैत्य क्षेप्यास्त्र, भाला, लोहदण्ड तथा लगुड आयुध लेकर युद्ध के लिये सन्नद्ध थे। इस प्रकार दैत्यगण के साथ शक्तिसेना रोष से लाल नेत्र किये अत्यन्त प्रौढसज्जा से युक्त युद्धरत थी। दोनों दल परस्पर कठोर वचन

हतोऽसि तिष्ठ शौर्येण पृष्ठं स्वं न प्रदर्शय । इत्यादिबहुवाक्यानि वदन्त्यः शक्तयो रणे ॥६२॥
जघ्नुर्दैत्यांस्तेऽपि तद्वन्निजघ्नुः शक्तिवाहिनीम् । एवं प्रवृत्ते समरे प्राणद्यूते भयङ्करे ॥६३॥
छिन्नबाह्वङ्घ्रिमूर्धानः पाटिताऽर्धाऽर्धदेहिनः । एवंविधाः शक्तयोऽपि दैत्यहेतिभिराहताः ॥६४॥
पाटिताऽङ्गा अपि दृढं क्रोधात् सन्दष्टदच्छदाः । जघ्नुः प्रत्यर्थिनां वृन्दं शस्त्रैर्दन्तैश्च मुष्टिभिः॥६५॥
नष्टशस्त्राः परकराच्छस्त्रमाच्छिद्य वै बलात् । अन्ये भग्नैरथाङ्गैश्च हेतिभिर्युयुधुर्भृशम् ॥६६॥
एवं प्रवृत्ते समरे घोरे संहृतिसन्निभे । ववुर्नद्यो लोहितौघाः सफेनिलतरङ्गिकाः ॥६७॥
शक्तिभिर्गजरोहाभिर्दैत्यसैन्यं विनाशितम् । पलायितं गाढविद्धं दशाऽक्षौहिणिशेषितम् ॥६८॥
दृष्ट्वा दुर्मद एवं स्वां भग्नां सेनां समन्ततः । उष्ट्राऽऽरूढो गदाहस्तः कालाऽन्तकयमोपमः॥६९॥
दशतालसमुन्नम्रं करभं पिङ्गलाऽऽकृतिम् । प्राहिणोच्छक्तिसेनासु महावेगं महाबलम् ॥७०॥

बोलते हुए भिड़ गये; "अभी मारा जाता है," "ठहर", "वीरता पूर्वक खड़ा रह," "अपनी पीठ मत दिखा" आदि-आदि बहुविध वाक्यों को कहते हुए शक्तियों ने दैत्यों का वध किया । इसी प्रकार उन्होंने भी शक्तिसेना पर भीषण प्रहार कर युद्धभूमि में उन्हें मारा। इस प्रकार प्राणों की बाजी लगे भयङ्कर युद्ध के चालू होने पर अपनी भुजा, पैर और मस्तक कटे हुए आधी आधी देह से बीच में चीरे हुए दैत्य लोग आहत एवं हत हुए; इसी प्रकार शक्तियां भी दैत्यों के शक्तिप्रहारों से घायल हुई। दोनों ओर से दैत्यों-दानवों और शक्तियों के भी अङ्ग विशेषरूप से क्षत-विक्षत होने पर भी क्रोधपूर्वक दाँतों को किटकिटाकर अपने से विपक्षी सैनिकों के समूह को शस्त्रों, दन्तों और मुष्टिकाओं से प्रहार कर मारा। जब किन्हीं के शस्त्र टूट जाते तो वे लोग बलपूर्वक दूसरे के हाथ से उन्हें छीन कर तथा अन्य कई टूटे अस्त्रवाले भग्न हुए (गिरे) अङ्गों को लेकर तथा लम्बे भालों से भीषण युद्ध करते थे। इस प्रकार महासंहार के समान घोर महायुद्ध के चलते मारे गये वीर दैत्यों के एवं मृत शक्तियों की रक्त की भरी झाग तथा तरंगों वाली नदियां बही। गज पर आरूढ शक्तियों ने दैत्यसेना का नाश किया। दश अक्षौहिणी सेनाओं में से जो अवशिष्ट बचे वह क्षत-विक्षत हो भाग गये। दुर्मद ने इसप्रकार अपनी सेना का चारों ओर से विनाश देखकर ऊँट पर चढकर गदा हाथमें लिये कालान्तक यम के समान दश ताल ऊँचे पिंगल (चितकबरे) आकारवाले करभ (उष्ट्र) को जो महावेगधारी और बलवान् था शक्तिसेना में युद्ध करने को भेजा। ॥५८-७० ॥

अथ प्रविष्टः शक्तीनां सेनासूष्ट्रोऽतिवेगवान्। स्रक्किणीप्रान्तविगलन्मांसपिण्डाऽऽभजिह्वकः ॥७१॥
समुद्रमथनोदश्वन्महाशब्दप्रतिस्वनः । फेनपिण्डानुद्गिरंश्च मूत्रयन् पृष्ठतो बहु ॥७२॥
उरसा पादविक्षेपैस्तुण्डाऽऽघातैः करिव्रजम् । नाशयन् दशनैश्चैव व्यचरच्छक्तिसैन्यके ॥७३॥
दुर्मदोऽपि गदाऽऽघातैरिभांच्छक्तीश्च नाशयन् । शक्तिसेनाऽन्तक इव कदनं प्रकरोद्रुषा ॥७४॥
तद्दृष्ट्वा शक्तिसेनाया नाशनं सम्पदीश्वरी । रणकोलाहलं तस्य नाशाय समचोदयत् ॥७५॥
अथेभराज आसाद्य करभं दैत्यवाहनम् । अयुध्यत विषाणाऽग्रकुम्भाऽऽघातैर्मुहुर्मुहुः ॥७६॥
सोऽपि दन्तैर्मूर्धघातैः पदक्षेपैरयुध्यत । एवं युद्धं समभवत्तुमुलं करभेभयोः ॥७७॥
अथेभराजः करभं प्रसह्यापातयद्भुवि । निपात्य पादेनाऽऽक्रम्याऽकरोत्तं करभं व्यसुम् ॥७८॥
मरिष्यन्तं विदित्वोष्ट्रं गदाहस्तः खमाप्लुतः । संभ्राम्य पातयन्मूर्ध्नि गदां वारणकुम्भयोः ॥७९॥

अनन्त शक्तियों की सेनाओं में प्रविष्ट हो अतिवेगवान् वह उष्ट्र अपने ओष्ठप्रान्त में विगलितहुए मांसपिण्ड के समान जिह्वावाला, समुद्रमथन के समय उठे हुए महाशब्द का प्रतिद्वन्द्वी भयङ्कर नाद करता हुआ मुँह से झाग के समूह को निकालता हुआ, पीछे से वारम्वार मूत्र करता हुआ तथा छाती और अपने पैरों की फटकार की मार से और लम्बी ग्रीवा के आघात से तथा दाँतों से हाथियों के झुण्ड को नष्ट करता हुआ शक्तिसेना में विचरण करने लगा ॥ ७१-७३ ॥

इधर दुर्मदने भी अपनी गदा के प्रहार से देवी की सेना के हाथियों को तथा शक्तियों को नष्ट करते हुए शक्तिसेना के अन्त करने में यम के समान क्रुद्ध होकर भीषण मारकाट की । शक्तिसेना के विनाश को देख सम्पदधीश्वरी ने रण कोलाहल नामक अपने हाथी को उसके नाश के लिये प्रेरित किया । अनन्तर उस गजराज ने दैत्य के वाहन करभ को प्राप्तकर विषाण से (सूँड के अग्रभाग से) तथा अपने कुम्भप्रदेश के आघात से वारम्वार प्रहार किया । वह भी दाँतों से शिर की टक्करें मारकर आघातों और पैरों के प्रहार से लड़ा । इस प्रकार करभ का रणकोलाहल गजराज से तुमुल युद्ध हुआ । ॥ ७४-७७ ॥

अनन्तर गजराज ने ऊँट को बुरी तरह से पछाड़ कर भूमि पर गिरा दिया और उसे नीचे गिरा पैरों से रौंद कर प्राणहीन बना दिया । उष्ट्र को मृत जान दुर्मद दैत्य ने गदा हाथ में लेकर आकाश में ऊँचे उछल कर रणकोलाहल हाथी के शिरःप्रदेश में दोनों कुम्भस्थलों पर गदा घुमा कर चोट मारी । गदा के प्रहार से

गदयाऽभिहतो हस्ती भिन्नमूर्धा भ्रमन्नुरः । जानुभ्यां विकलो भूमिं प्राप्तः शोणितमुद्गिरन् ॥८०॥
तावत् सम्पदधीश्याऽपि शरेणोरसि ताडितः । जहौ प्राणान् दुर्मदोऽपि द्विधोरसि विपाटितः ॥८१॥
हतं सेनाधिपं दृष्ट्वा विद्रुता दैत्यसैनिकाः । अदृष्ट्वा पृष्ठतो यान्तीः शक्तीर्जीवितहेतवे ॥८२॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललितामाहात्म्ये
दुर्मदवधो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥५४६४॥

व्याकुल हो हाथी मस्तक पर आघात लगने से पार्श्व से चक्कर काटता हुआ घुटने टेककर विकल हो खून का वमन करता हुआ भूमि पर गिर पड़ा ॥७८-८०॥

तब ही सम्पदधीश्वरी ने भी बाण से उसकी छाती पर प्रहार किया; अब तो दुर्मद भी अपनी छाती के दो भाग में चीरे जाने से गतप्राण हो गया। सेना के अधिपति को मरा देख दैत्य सैनिकगण बड़े वेग से प्राण बचाने के लिये अपने पीछे आती हुई शक्तियों को विना देखे ही (भयभीत हो) वेग से युद्ध क्षेत्र से भाग निकले ॥८१-८२॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में श्रीललितामाहात्म्य के प्रकरण में दुर्मदवध नामक छासठवाँ अध्याय समाप्त ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

नकुलीपराक्रमे करङ्कादिवधवर्णनम्

दुर्मदं निहतं श्रुत्वा कुरण्डो दुर्मदाऽग्रजः । क्रुद्ध आज्ञां समादाय कुटिलाक्षान् महाबलः ॥ १ ॥
विंशत्यक्षौहिणीयुक्तो योद्धुमभ्याययौ जवात्। विलोक्य पुनरायान्तीं दैत्यसेनां नभोनिभाम्॥२॥
अश्वारूढाऽश्वसेनाभिरपाराभिरभिव्रजत् । तुरङ्गा विविधास्तुङ्गास्तरङ्गा इव रेजिरे ॥ ३ ॥
पृथग्वर्णा सङ्घशः सा सेनाऽत्यन्तं व्यराजत । फेनपिण्डनिभानश्वानारूढाः कनकप्रभाः ॥ ४ ॥
नीलांऽशुकाः खड्गखेटधरास्तारुण्यगर्विताः । अपराः कालजीमूतनिभवाजिसमाश्रयाः ॥ ५ ॥
चन्द्रकान्तिसमाऽऽभासः शोणाऽऽभरणवाससः । धनुर्बाणधरा नीलरत्नकोटीरशोभिताः ॥ ६ ॥
अन्या गारुत्मतनिभानश्वानारुह्य वेगिनः । कुरुविन्दसमानाङ्ग्यः पाटलांऽशुकभूषणाः ॥ ७ ॥

सड़सठवाँ अध्याय

दुर्मद के वध को सुनकर उसका बड़ा भाई महाबलशाली कुरण्ड क्रुद्ध हो आज्ञा लेकर कुटिलाक्षों को साथ ले बीस अक्षौहिणी सेना के सहित अत्यन्त वेग से युद्ध करने को आ धमका। आकाश के समान सर्वतः व्याप्त फिर आता हुई दैत्यसेना को देख कर अश्वारूढा अपार अश्वसेनारूढ शक्तियों को साथ में ले लड़ने आयी। ये विभिन्न प्रकार के अत्यन्त ऊंचे घोड़े (अश्व) उत्ताल तरङ्गों के समान शोभित हुए। एक सङ्घबद्ध वह सेना नानाविधवर्णों वाले घोड़ों के सहित विशेषतया शोभा दे रही थी। उनमें झागों के समूह के (फेनपिण्ड के) समान श्वेत घोड़ों पर आरूढ, स्वर्ण की कान्तिधारिणी, नीलवस्त्र पहने, करवाल और शूल धारण की हुई, यौवन के उभार से मस्ती में झूमती शक्तियां थी; अन्य शक्तियां कालमेघ के समान घोड़ों पर आरूढ थी। वे चन्द्रमा के वर्ण की कान्तिवाली, रक्तवर्ण के आभूषण और वस्त्र परिधान की हुई, धनुष तथा बाणधारण की हुई, नीलरत्नों के कोटीरों (मुकुट) से शोभित थी। इसके साथ ही दूसरी शक्तियां गरुडके समान वेगवाले अत्यन्त वेग से दौड़नेवाले

क्वचित् समानाऽङ्गभूषांऽशुकाऽश्वाः शक्तयो ययुः ।
एवं विचित्राऽभ्रयुतसन्ध्याऽऽकाशनिभा चमूः ॥ ८ ॥
अतिवेलाऽम्बुधिनिभा ग्रसद्दैत्यचमूं द्रुतम्। भेरीकाहलगोशृङ्गपटहाऽऽनकनिस्वनः ॥ ९ ॥
तुरङ्गखुरकुद्दालतालनिस्वनमिश्रितः । हुङ्काराऽऽह्वानविक्षेपाऽऽस्फोटसंरावमांसलः ॥ १० ॥
द्यावापृथिव्यन्तरालमापूर्याऽधिव्यरोचत । अथ प्रवृत्तः समरः करालोऽसुविकर्षणः ॥ ११ ॥
हेतिपातमहाशब्दबधिरीकृतदिङ्मुखः । तुरङ्गखुरविक्षेपविधूतरजसां गणः ॥ १२ ॥
सांवर्तकमहामेघसङ्घवत् खं समाक्रमत् । क्षणं कुहूनिशीथाऽऽभं जातं हीनाऽवलोकनम् ॥ १३ ॥
ततो हेतिप्रपतनोच्छलच्छोणितवृष्टिभिः । रजोऽन्धकारः संशान्तः पुनरासीन्महारणः ॥ १४ ॥
परस्परं प्राणहरः शक्तिसैन्यस्य चाऽसुरैः । बलीयसीभिर्दैत्यानां शक्तिभिस्तेज आहृतम् ॥ १५ ॥

घोड़ों पर आरूढ होकर लालों (रत्नों) के समान अङ्गों की कान्तिवाली, पाटल (सुवर्ण) रंग के वस्त्र तथा आभूषण पहनी हुई थी; कहीं कहीं पर समानअंगोंवाली, एक जैसे आभूषण और वस्त्र पहनी हुई तथा घोड़ों पर चढ़ी हुई शक्तियां चल रही थी। इस तरह विचित्र मेघों से युक्त सन्ध्याकाल के आकाश के समान वह शक्तिसेना युद्धभूमि में शोभित थी । जैसे प्रकार उत्ताल तरंगोंवाला समुद्र अपनी सीमा का अतिक्रमण कर जाता है वैसे ही शक्तिसेना शीघ्रतया सेना का विनाश करतो हुई भेरी, झाँझ, नरसिंगा, ढक्का और नौबत-निशान के शब्दों के साथ तुरंगों के खुरों की टाप से उठनेवाली ताल के स्वर से मिश्रित हो दोनों पक्षों के हुङ्कार भरे जो उत्साहपूर्ण दकाल (आह्वान) के साथ आस्फोट के घोष से अधिक घना बना हुआ युद्धभूमि का कोलाहल आकाश और पृथ्वी के बीच व्याप्त होकर अधिकाधिक वीरदर्पोचित उत्साह की प्रेरणा करता था । अब (दोनों ओर से दैत्यों तथा शक्तियों द्वारा पूर्ण सज्जित होने पर) प्राणहरनेवाला भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ जो सांगों (शस्त्रों) के के प्रहार करने के महाशब्द से बधिरकी गई सारी दिशाओंवाला, घोड़े के खुरों के आघात से उठी हुई धूलि से से भरा हुआ साम्वर्तक प्रलयकाल के महामेघ के समान सारो अन्तरिक्ष को छा गया; वह क्षणभर अमावास्या की रात्रि के समान घोर अन्धकारयुक्त हो आंखों में धुंधलापन पैदा करने लगा ॥ १-१४ ॥

तत्पश्चात् हेति (प्रक्षेपास्त्र) शस्त्रों के प्रहारों से क्षतविक्षत हुये शरीरों में से रक्त की निकलनेवाली धाराओं से उस उठी हुई रज के अंबार का अंधकार शान्त हुआ और फिर शक्तिसेना का दैत्यसेना के साथ

भग्नाऽभवद्दैत्यसेना शक्तिभिर्गाढमर्दिता । छिन्नपादकरश्रोत्रकुक्षिपृष्ठा महासुराः ॥ १६ ॥
प्रास्य शस्त्राणि परितो विधुन्वन्तः करान्मुहुः। वदन्तो हा हतास्मेति त्वक्त्वा युद्धं विदुद्रुवुः॥१७॥
निशाम्य सेनां स्वां भग्नां कुरण्डः क्रोधमूर्च्छितः । अश्वारूढो महच्चापं विकर्षन् सायकान् क्षिपन्॥१८।
शक्तिसेनां समाविश्य नाशयत्ताः सहस्रशः । शरवर्षैः कुरण्डाऽब्दनिर्मुक्तैः शक्तिवाहिनी॥ १९ ॥
भग्ना सेतुरिवोन्नम्रा महाजलसमागमात् । भग्नायां शक्तिसेनायामश्वारूढां समासदत्॥२०॥
अपराजितनामानं वाजिनं समधिष्ठिताम् । तप्तहेमनिभामच्छदुकूलाऽऽभरणोज्ज्वलाम् ॥२१॥
पाशाऽङ्कुशधनुर्बाणधरां दृष्ट्वाऽब्रवीद्वचः । दुष्टेऽवलिप्ताऽसि चिरं मोचयाम्यवलेपकम्॥२२॥
यन्मे त्वया हतो भ्राता तत्फलं प्राप्स्यसि द्रुतम्। त्वां निहत्य रणे पश्चान्मुक्तः स्यां भ्रातृदोषतः॥२३॥
मयि प्रदर्शयाऽऽदौ ते वीर्यं यच्चिरसम्भृतम् । एवं प्रोक्ता रोषिताऽश्वारूढा तीक्ष्णैः शरैस्त्रिभिः

प्राणहरण करने वाला परस्पर महायुद्ध हुआ । बलवती शक्तियों ने दैत्यों के तेज को हर लिया ॥१५-१६॥

शक्तिसेना द्वारा दैत्यसेना का बहुत अधिक मर्दन कर देने से वह अधिकाधिक क्षीणशक्तिवाली हो चली । महादैत्यगण अपने पाद, हाथ, कान, उदर, कुक्षिप्रदेश और पीठ के छिन्नभिन्न हो जाने से शस्त्रों को फेंककर बारम्बार हाथों को मींजते हुए "हाय ! मारे गये ।" इस प्रकार बोलते हुए युद्ध को छोड़ कर भाग गये ॥ १७-१८ ॥

अपनी सेना की बुरी तरह से भग्नदशा को देखकर दैत्यपति कुरण्ड क्रोध से अत्यन्त विकल हो गया और अपने घोड़े पर आरूढ होकर अपने भारी धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचता हुआ बाणों की वर्षा करते हुए शक्तिसेना में घुस कर हजारों की संख्या में उन्हें विनष्ट करने लगा । कुरण्ड के धनुष से छूटे बाणों की वर्षा से शक्तिसेना महाजल (भीषण जल) की बाढ आ जाने से सेतुके समान ऊपर उठ कर भग्नप्रायः हो गई। शक्तिसेनाके नष्ट होते ही वह दैत्य अश्वारूढ़ा के पास पहुंच गया ॥१९-२१॥

वह अपराजित नामक घोड़े पर सवार थी; अत्यन्त विशुद्ध सोने की कान्तिवाली, स्वच्छ रेशमीवस्त्र दुकूल एवं आभूषणसे उज्ज्वल कान्तिवाली, पाश, अङ्कुश, धनुष और बाणको लिये हुई थी । उसे देख वह बोला, "हे दुष्टे ! तू अभिमान से पूर्ण है, देख, तेरे घमण्ड को अभी छुड़ाता हूँ । जो तूने हमारे भाई को मारा है उसका फल शीघ्र ही पावेगी । तुझे युद्ध में मारकर बाद में मैं अपने भाई के साथ किये गये दोष से छुटकारा पाऊँगा । सबसे प्रथम तू मेरे ऊपर अपना दीर्घकाल से संग्रह किया हुआ जो बल है उसे दिखा ।" इस प्रकार

विव्याध तत्र चैकेन वाहस्य शिर आच्छिनत्। द्वितीयेन च कोटीरं पातयामास भूतले ॥२५॥
तृतीयेन तस्य वक्षो दारयामास वेगतः। हताऽश्वो भ्रष्टमुकुटो विहतो बलवद्बृदि ॥२६॥
मूर्च्छितः कृत्तमूलस्य पपातेव महासुरः। क्षणेन मूर्च्छानिर्मुक्तः प्राह तां रणमूर्धनि ॥२७॥
रणश्लाघ्या हि साधुत्वं सम्मताऽसि रणे मम। श्रुत्वेत्याह पुनर्देवी धिक्त्वं जीवसि दैत्यक! ॥२८॥
यत्नान्मया भाषितुं त्वं जीवशेषीकृतो ह्यसि। पश्येमं तं जीवहरं शरं शत्रुमदाऽपहम् ॥२९॥
श्रुत्वा देवीवचो दैत्यः क्रोधाग्निज्वलिताऽऽकृतिः। देव्याश्चापं प्रचिच्छेद शरेणाऽऽनतपर्वणा॥३०॥
चिच्छेद साऽपि खड्गेन धनुर्दैत्यकरस्थितम्। अथ दैत्योऽपि खड्गेन तस्याः खड्गं द्विधाऽकरोत्॥३१॥
पुनर्जघान तुरगं खड्गेनैवाऽतिवेगतः। खड्गप्रहारनिर्भिन्नमस्तकोऽश्वो ह्यपाऽक्रमत् ॥३२॥
तावद्देव्यपि संक्रुद्धा बद्ध्वा पाशेन वै दृढम्। आकृष्य प्राहरन्मूर्ध्नि स्तृणिना दीप्ततेजसा॥३३॥

कही जाने पर रोषित हुई अश्वारूढा ने तीन अत्यन्त तीक्ष्णधार के बाणों से उसे बेंध दिया। उसने एकसे दैत्य वाहन अश्व का सिर काट दिया, दूसरे से उसके मुकुट को भूमि पर गिरा दिया एवं तीसरे से उसके वक्षःस्थल को प्रबल वेग से विदीर्ण कर दिया। मारे गये अश्ववाल; मुकुटहीन बहुत बलपूर्वक किये और गये आघात से मूर्च्छित वह महादैत्य मूल कटे वृक्ष के समान गिरा। क्षणभर में चेतना पाकर युद्ध के अग्रभाग में स्थित उससे (देवी को) बोला, "युद्ध में रणलाघव में प्रशंसनीय कार्य करनेवाली तुम्हें मैं साधुवाद देता हूँ।" यह सुन फिर देवी ने कहा, "हे अधमदैत्य! तुझे धिक्कार है कि अब तक भी तू जीवित है। बहुत यत्नपूर्वक तू मुझसे बोलेगा इसलिये तुझे कुछ प्राणशेष रखकर मैंने छोड़ दिया है। यह ले, शत्रु के मद को चूर-चूर कर देनेवाले तेरे प्राणहारक मेरे इस बाण का देख।" देवी के इन वचनों को सुन दैत्य ने क्रोधरूपी अग्नि के समान तमतमाये मुख की भीषण आकृति बनाकर खूब खींच कर तानी प्रत्यञ्चा पर चढ़े बाण से देवी के धनुष को तोड़ दिया। उस (देवी) ने भी खड्ग से दैत्य के हाथ में धारण किये धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तदनन्तर दैत्य ने उसकी तलवार के दो भाग कर दिये फिर उसने अत्यन्त वेग से अपने खड्ग से घोड़े के ऊपर प्रहार किया। खड्ग के आघात से छिन्नमस्तक हुआ घोड़ा चक्कर खाने लगा। तबतक देवी ने भी अत्यन्त रुष्ट हो अपने पाश से उसे खूब कस कर बांध अपनी ओर खींचकर अत्यन्त तेजधारवाले स्तृणि (अङ्कुश) द्वारा शिर पर प्रहार किया ॥२२-३३॥

तेनाऽङ्कुशेन निर्भिन्नमूर्धा दैत्यो ममार ह । एवं कुरण्डं निहतं श्रुत्वा सेनाऽधिपो रुषा ॥३४॥
पार्श्वस्थान् प्रेक्ष्य सेनेशान् करङ्कप्रमुखांस्तदा । कुटिलाक्षः प्राह सेनाधीशोऽरुणितलोचनः ॥३५॥
हे हे करङ्कप्रमुखाः पञ्च यूयं स्वसेनया । युता गत्वा द्रुतं हत्वा बद्ध्वा तां वारणे द्रुतम् ॥३६॥
समानयध्वं वः शक्तिरस्ति मायामयी ननु । सर्पिण्याख्या तया सर्वे नन्वजेयाः सुराऽसुरैः॥३७॥
इत्याज्ञप्ताः करङ्काद्या नत्वा सेनाधिपेश्वरम् । विंशत्यक्षौहिणीयुताः प्रत्येकं योद्धुमाययुः ॥३८॥
करङ्को गर्द्दभरथे करभे वज्रदन्तकः । वज्रलोमा गृध्ररथे गजे काकमुखस्तथा ॥ ३९ ॥
वज्रवक्त्रः खरवरे संरूढा भीमदर्शनाः । युद्धसंरम्भदैत्यानां निशम्याऽतिमहाध्वनिम् ॥ ४० ॥
अश्वारूढा च सम्पत्तिदेवी सेनामयूयुजत् । अथ सम्मुखमासाद्य सेने ते शक्तिदैत्ययोः ॥ ४१ ॥
विचित्रवादित्ररवे हेतिसञ्चलनोज्ज्वले । चक्राते शरवर्षाणि दूरान्मेघतती इव ॥ ४२ ॥

उस अङ्कुश से मस्तक फूटने से दैत्य मर गया । इस प्रकार कुरण्ड को मारा गाया सुनकर सेनापति कुटिलाक्षने क्रुद्ध हो लाल आंखें कर पार्श्ववर्ती सेना के अधिपति करङ्क प्रमुख दैत्यों को कहा, "अरे हे करङ्कप्रमुख सेनापतियो ! तुम पांचों महारथी अपनी सेनासमेत जाकर उस देवी को मार कर व बांध कर शीघ्र हाथी पर ले ओओ । अवश्य ही तुम्हारी मायामयी शक्ति है । उस सर्पिणी नामक शक्ति के साथ तुमलोग सभी देव और राक्षसों द्वारा भी अजेय ही हो ।" इसप्रकार आज्ञा पाकर करङ्क आदि सेनाधिपेश्वर कुटिलाक्ष को प्रणाम कर प्रत्येक बीस अक्षौहिणी सेनाओं को लेकर युद्धकरने आ जुटे ॥३४-३९॥

करङ्क दैत्यराज गधे के रथ पर, वज्रदन्तक ऊँट पर, वज्रलोमा गृध्र के रथ पर एवं काकमुख हाथी पर तथा वज्रवक्त्र खच्चर पर आरूढ हुए सब ही अत्यन्त भयंकर दीखते थे । युद्ध के साज से सज्जित उन दैत्यों के हुंकारों एवं शस्त्रों के शब्दों की महाध्वनि को सुन कर अश्वारूढा और सम्पत्तिदेवी ने शक्तिसेना को युद्ध करने के लिये आदेश दिया । अनन्तर शक्तियों तथा दैत्यों की दोनों सेनायें विचित्र युद्ध के बाजों की ध्वनियांकरने लगी, दोनों ओर से हेतियां (भाले) निकाले, चमचमाहट से उज्ज्वल, दूर से मेघों के समूह के समान बाणों की वर्षा करने लगी । ॥ ४०-४२ ॥

अथ सेनाद्वयं श्लिष्टं विनिघ्नदितरेतरम् । क्रोधदष्टदच्छदाढ्यं भ्रुकुटीकुटिलाननम् ॥ ४३ ॥
पाटितं सितखड्गेन प्रोतं भल्लेषु प्रांशुषु । छिद्रितं शरजालेन परिघोत्पातपेषितम् ॥ ४४ ॥
शस्त्रैरुच्चावचैरेव परस्परमनाशयत् । गजवाजिमहासेना शक्तीनामतिरोषिता ॥ ४५ ॥
मुहूर्तेनैव निःशेषाञ्चक्रे दैत्येन्द्रवाहनीम् । दृष्ट्वा सेनां हतप्रायां करङ्काद्या महासुराः ॥ ४६ ॥
प्रविश्य शक्तिसेनां तां नाशयामासुरोजसा । कालयमानां दैत्यवरैः सेनां दृष्ट्वा पराहताम् ॥४७॥
अश्वारूढा तथा सम्पत्करी दैत्यानयुध्यत । ताभ्यां भग्ना युधि तदा करङ्काद्या महासुराः ॥४८॥
निर्ममुस्तां महामायां सर्पिणीं सर्पभूषणाम् । भीमरूपां चण्डरवां विविधं सर्पमण्डलम् ॥ ४९ ॥
सृजमानां शक्तिसेनानाशाय समराऽवनौ । अथ सा मुखनेत्रादिसम्भूतैः सर्पमण्डलैः ॥ ५० ॥
नाशयामास शक्तीनां सेनामर्धमुहूर्ततः । तद्वैशसमतीवोग्रं दृष्ट्वा काश्चन शक्तयः ॥ ५१ ॥

अब दोनों पक्षों की सेनायें एक दूसरी पर आघात प्रत्याघात करती हुई जुट गयी (भिड़गई)। अत्यन्त टेढी भ्रुकुटियोंवाले, वीरगण ने क्रोध से दाँतों को किट-किटाते हुए तीक्ष्ण करवालों से शत्रुपक्ष को विदीर्ण करते हुए अत्यन्त नोकदार भालों से पिरोते हुए, अपने बाणों की वर्षा से सब ओर छिद्र करते, परिघ (वज्र) के प्रहार से दबा कर, पीस कर विपक्ष की सेना से भिड़न्त की। ऊँचे और नीचे की ओर शस्त्रों के घात करने से परस्पर सेनाओं का नाश हुआ। शक्तियों की हाथी और घोड़ों की महासेना ने अत्यन्त क्रुद्ध हो एक मुहूर्त में ही दैत्येन्द्र की सेना को युद्ध में मार गिराया। अपनी सेना को हतप्रायः (मारी हुई) देख करङ्क आदि महादैत्यों ने शक्तिसेना के अन्दर प्रवेश कर अतिवेग से उसे नष्ट करना आरम्भ किया। दैत्यश्रेष्ठ उन सेनापतियों द्वारा अपनी देवी सेना को पराहत-काल का ग्रास बनाते देख अश्वारूढा और सम्पत्करी ने दैत्यों से युद्ध किया। उन दोनों देवियों द्वारा भलीप्रकार प्रहार खाकर करङ्क आदि महादैत्यगण ने युद्ध में घायल हो उस सर्पों के आभूषणोंवाली सर्पिणी महामाया को बनाया जो भीमरूपवाली और प्रचण्ड शब्दकरनेवाली नाना भाँति के सर्पमण्डल की रचना करनेवाली युद्धभूमि में शक्तिसेना के नाश के लिये उन दैत्यों द्वारा रची गयी थी। अब वह मुख एवं नेत्र आदि से सम्भूत (उत्पन्न) सर्पमण्डलों द्वारा एक आधे मुहूर्त में शक्तियों की सेना का नाश कर चुकी। उसके बाद इस अत्यन्त भीषण उपद्रव को देख कर कई शक्तियाँ दण्डराज्ञी को सारा वृत्तान्त कहने के लिये शीघ्र भागी गयी ॥४३-५१॥

पलायिताः समाख्यातुं दण्डराज्ञै द्रुतं ययुः । प्राप्य तां कोलवदनां श्रीमातृसविधे स्थिताम् ॥५२॥
प्रणम्य मन्त्रिणीश्चाऽपि प्रोचुर्दैत्याश्च हा भयम् । दण्डनाथे वयं याताः सम्पद्देव्या सहाऽसुरैः ॥५३॥
तत्र युद्धं समभवद्घोरं प्राणहरं परम् । दुर्मदो निहतो युद्धे सम्पदीश्या कुरण्डकः ॥५४॥
नीतोऽश्वारूढया कीर्तिशेषं सेनाऽपि भूयसी । नाशिताऽस्माभिरत्युग्रा एवं दैत्या विनिर्जिताः॥५५॥
करङ्काद्यैः पञ्चसेनानायकैर्हतपत्तिभिः । प्रवर्तिता महामाया सर्पिण्याख्या हि साम्प्रतम् ॥५६॥
नेत्राद्यक्षैः सृजन्ती साऽसङ्ख्यान् सर्पगणान्मुहुः । तैः सर्पैर्निहता दष्टा बद्धा भस्मीकृता परा ॥५७
शक्तिसेना मृतप्राया सञ्जाता ननु सर्वशः । देव्यौ ते शरवर्षेण सर्पान् घ्नन्त्यौ मुहुर्मुहुः ॥५८॥
न सर्पवशतां याते चाऽन्याः सर्वा विहिंसिताः । इति तासां वचः श्रुत्वा क्रुद्धा कोलमुखी तदा ॥५९॥
हन्तुं दैत्यान् सुभीमेन मुसलेन विनिर्ययौ । निवार्य तां मन्त्रनाथा ज्ञात्वाऽमोघाञ्च सर्पिणीम् ॥६०॥

श्रीमाता के समीपमें विराजो उस वाराही के पास जाकर और मन्त्रिणो को भी प्रणाम कर दण्डिनी को कहा, "हे दण्डनाथे! दैत्यगण ने महाभीषण भय उपस्थित कर रक्खा है। हमलोग सम्पद्देवी के साथ दैत्यों से युद्ध करने गई। वहां अत्यधिक भीषण प्राणहरणकरनेवाला युद्ध हुआ। सम्पदीशी ने दुर्मद दैत्य को मार डाला एवं अत्यन्त बलवती अश्वारूढा ने कुरण्डक को मार उसका नामशेष कर दिया एवं दैत्यों की बहुत बड़ी सेना भी हमने नष्ट कर दी। इस प्रकार दैत्य जीत लिये गये। अब करङ्क आदि पांच सेनानायक जिनकी सेनायें मार दा गयी हैं उनके द्वारा सर्पिणी नामक महामाया रची गयी है; वह अपने नेत्र आदि इन्द्रियों के द्वारा असंख्य सर्पगण को रचती हुई स्थित है। उन सर्पों द्वारा शक्तिसेना मार दी गई, डसी गई, बांध दी गई और बड़ीमात्रा में फुँफकार से भस्म कर दी गयी है; जिससे सब प्रकार से अपनी सेना मृतप्राय हो चुकी है। दोनों देवियाँ सर्पों को बारम्बार मारते हुए भी सर्पो के वश में नहीं आयी हैं। अपनी सारी की सारी अन्य शक्तिसेनायें उनके द्वारा विशेषरूप से नष्ट की गयी है।" इस प्रकार उनका वचन सुन कर कोलमुखी (वाराही) देवी क्रुद्ध हो उन दैत्यगण को मारने के लिये खूब मोटे भारी मुसल को लेकर युद्ध के लिये आयी ॥५२-५९॥

मन्त्रनाथा ने उसे बीच में ही रोक कर सर्पिणी अमोघ है ऐसा मानकर उसके वृत्तान्त को झटिति जान कर स्वयं श्रीदेवी से सारी स्थिति बतायी। अनन्तर अम्बा ने एक क्षण भर ध्यान लगा

तद्वृत्तं तरसा गत्वा स्वयं देव्यै व्यजिज्ञपत्। अथ ध्यात्वा क्षणेनाऽम्बा जृम्भमाणा मुखाऽम्बुजम्।६१।
विकाशयत्तद्वक्त्रात्तु निर्जगामाऽतिवेगतः। कनकाभा महाशक्तिर्देवीतालुसमुद्भवा ॥ ६२ ॥
सुपर्णसंस्था नकुली वाग्देवी रत्नभूषणा। तां प्रणम्य स्थितामग्रे प्राह श्रीललितेश्वरी ॥ ६३ ॥
गच्छ वत्से सर्पिणीं तां नाशयाऽऽशु स्वतेजसा। इत्युक्ता सा क्षणेनैव सम्प्राप्ताऽऽहवमण्डलम्॥६४॥
सुपर्णपक्षवातेन सर्वे सर्पाः पलायिताः। सर्पबन्धविनिर्मुक्ताः शक्तयःप्रोत्थितास्ततः ॥ ६५ ॥
भूयः ससर्ज सर्पान् सा नाशितुं शक्तिमण्डलम्। तद्दृष्ट्वा सर्पनिवहव्याप्तं शक्तिगणं मुहुः ॥६६॥
ससर्ज नकुलान् स्वीयरोमभ्योऽतिबलान् क्षणात्। नकुलास्ते महावेगाश्चित्रवर्णाः सुरोषिताः।६७।
स्तब्धरोमवालधयो वज्रदन्ता दृढाऽङ्गकाः।
ते सृष्टा नकुलाः शीघ्रं तान् सर्पान् सर्वतः स्थितान् ॥६८॥
ददंशुर्वज्ररदनैः खण्डश्चक्रुर्द्विधा त्रिधा। नकुलस्तादृशैः सर्पाः खण्डिता भक्षिता अपि ॥६९॥

अपने मुखकमल से जम्भाई (भरी)। उसके मुख के खोलने से अत्यन्त वेग से देवी तालु से उत्पन्न, कनक के समान, आभावाली महाशक्ति गरुड वाहन पर आसीन हो वाग्देवी रत्नों का आभूषण धारण की हुई नकुली देवी प्रगट हो निकली। अपने सामने ही स्थित उसके प्रणाम कर लेने पर श्रीललितेश्वरी ने कहा, "हे वत्से ! जा, तू अपने तेज से उस सर्पिणी का शीघ्र नाश कर।" इस प्रकार कही जाने पर क्षणभर में ही वह नकुली युद्धक्षेत्र में पहुंच गयी। उस देवी के गरुड के पंखों की हवा लगने भर का विलम्ब था कि सभी सर्प भाग गये। तब सांपों के बन्धनजाल से छुटकारा पाकर शक्तियां उठ बैठी। फिर उस दैत्यमहामाया सर्पिणी ने शक्तिमण्डल का नाश करने को और सर्पों की रचना की। उस शक्तिगण को सर्पों के समूह से व्याप्त देख भगवती ने क्षणभर में अपने रोमकूपों से अत्यन्त बलशाली नेवलों को बनाया। वे नेवले विचित्र रंगोंवाले, अत्यन्त वेगशील एवं अत्यन्त क्रुद्धप्रकृतिके थे; उनके रोम और पूंछ स्तब्ध थे; उनके दांत वज्रके समान थे और वे अत्यन्त दृढ पुष्ट अङ्गोंवाले थे। अब देवी द्वारा बनाये गये नेवलों ने शीघ्र ही उन चारों ओर स्थित साँपों को अपने कठोर वज्रों के से दाँतों से दो-दो तथा तीन-तीन टुकड़ों में काट डाला। इन नेवलों ने उनके टुकड़े ही नहीं कर दिये बल्कि उन्हें खा भी लिया ॥६०-६९॥

निःशेषिताः शक्तिसेना नाशकामा यथोत्थिताः। अथ ते नकुलाः सर्पान् विनाश्याऽपरिशेषतः॥७०।
ददंशुः सर्पभूषाढ्यां सर्पिणीमपि सर्वतः। सर्पिण्यान्तु प्रणष्टायां करङ्काद्या महासुराः॥७१॥
युयुधुर्नकुला देव्या शस्त्राऽप्यस्त्रैरनेकशः। ततस्तेषाञ्च शस्त्राणि वाहनान्यपि सर्वतः॥७२॥
प्रणाश्य युगपत्तेषां खड्गेन शिर आच्छिनत्। खड्गच्छिन्नोत्तमाङ्गास्ते निपेतुर्विगताऽसवः॥७३॥
तावत् सेनापि संशिष्टा भीता दिक्षु प्रविद्रुता। जयशब्दैर्वर्ध्यमानान्नकुलीनकुलान् हि तान्॥७४॥
साऽङ्के संहृत्य वाराहीं मन्त्रिणीं ललितेश्वरीम्। प्रणम्य जयवृत्तान्तमाचख्यौ विधृताऽञ्जलिः।७५।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललिताचरित्रे
नकुलीपराक्रमे करङ्कादिवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥५५७०॥

इस पर निश्शेषित हुई शक्तिसेना फिर जैसे शत्रु के नाशकरने को इच्छा की हुई हो वैसे उठ खड़ी हुई। अब उन नेवलों ने पूर्णरूप से सर्पों का नाश करके सर्प भूषणोंवाली सर्पिणी को भी काटना शुरू किया। सर्पिणी के नष्ट किये जाने पर करङ्क आदि महादैत्यों ने देवी के नेवलों के साथ अनेक प्रकारके शस्त्रों और अस्त्रों से युद्ध किया। तब देवी ने नानाविध उपायों से सब शस्त्रों और अस्त्रों का प्रयोग कर उन राक्षसों के अस्त्रों तथा वाहनों का नाश कर एक साथ ही उन पाँचों का सिर काट डाला। खड्ग से पृथक् किये गये शिरवाले वे दैत्य प्राण निकल जाने से भूमि पर गिर पड़े। तब तक बची अवशिष्ट दैत्यों की सेना भी डर कर विभिन्न दिशाओं में दौड़ गयी। नकुली ने अपनी ओर से जय शब्द का उच्चारण कर नकुलों को अपने अङ्गों में ही समेट वाराही, मन्त्रिणी तथा ललितेश्वरी को प्रणाम कर हाथ जोड़े शक्तिसेना के विशिष्ट विजय का वृत्तान्त निवेदन किया॥७०-७५॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम श्रीललितामाहात्म्य का नकुली के पराक्रम और करङ्क आदि दैत्यों का वध नामक सड़सठवाँ अध्याय समाप्त।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

कुटिलाक्षविषङ्गसम्वादे देवीपराजयार्थंयुक्तिविमर्शवर्णनम्

अथ दैत्यैर्विदित्वा तान् करङ्कप्रमुखान् हतान्। कुटिलाक्षो विनिःश्वस्य चिन्तामाप महत्तराम् ॥१॥
नूनमेषा महाशक्तिरविजेयेव भाति मे। दुर्मदश्च कुरण्डश्च बलिनौ निहतौ रणे ॥२॥
अस्तु तन्न विचिन्त्यं स्याज्जयस्याऽनियतस्थितेः। एते करङ्कप्रमुखाः सर्पिण्यामोघया युताः॥३॥
अजेया देवदैत्यानां कथं युद्धे निपातिताः। या श्रूयते शक्तिगणनायिका ललिताऽभिधा ॥४॥
सा स्थितैव परीवारशक्तिभिर्निहतं बलम्। अहो! किं न भवेल्लोके विपरीते विधौ ननु ॥५॥
आश्चर्यमेतन्निहता करङ्काद्याश्च योषिता। बलं क्षीणं चतुर्थांऽशं सैन्येशा बलिनो हताः ॥६॥
न हता शक्तिसेनायां मुख्यैकाऽपि कथं भवेत्। प्रतिज्ञाय शक्तिजयं राज्ञेऽहं कथमद्य वै ॥७॥

अड़सठवाँ अध्याय

अनन्तर करङ्कप्रमुख दैत्यों के वध का वृत्तान्त दैत्यगण से जान कर कुटिलाक्ष दीर्घ निःश्वास छोड़कर अत्यधिक चिन्तत हुआ। 'अवश्य ही यह महाशक्ति अविजेय सी मुझे प्रतीत होती है जो इसके द्वारा महान् बलशाली दुर्मद और कुरण्ड युद्ध में मारे गये। अस्तु, उसे विशेष चिन्तनीय नहीं समझना चाहिये क्योंकि विजय का प्राप्त होना नियत स्थिति का निश्चायक नहीं। करङ्क प्रमुख दैत्य अव्यर्थ सर्पिणी माया से युक्त देवगण एवं दैत्यों के अजेय थे ऐसे दैत्य भी युद्ध में क्यों मारे गये? जो शक्तिगण की नायिका ललिता नामवाली है वह तो निश्चल भाव से स्थित ही रही, पार्षद शक्तियों ने ही दैत्यसेना को मार दिया। अहो! निश्चय ही विधि के विपरीत होने पर क्या नहीं होता? आश्चर्य की बात है कि स्त्री के द्वारा ये करङ्क आदि दैत्यगण मार डाले गये। दैत्यों का चतुर्थांश बल क्षीण हो गया और बलवान् सेनाधिपति मार दिये गये। शक्तिसेना में मुख्य यह अकेली भी क्यों नहीं मारी गयी? शक्ति के ऊपर विजय प्राप्त करने की प्रतिज्ञा कर उसे जीतना अशक्य सा है वही मैं अब पुनः कायरपुरुष के समान आज राजा के सामने जाकर कैसे कहूँगा?" ॥१-७॥

अशक्यमिति वक्ष्यामि पुनः कापुरुषो यथा । एवं चिन्तासमाक्रान्ते कुटिलाक्षे चमूपतौ ॥८॥
आजगाम विषङ्गोऽपि विशुक्रेण प्रयोजितः ।दृष्ट्वा विषङ्गं सेनेशः कुटिलाक्षः समुत्थितः ॥९॥
आसनाद्यैः पूजयित्वा निषसादाऽऽसने स्वके ।
अथ दृष्ट्वा विषण्णाऽस्यं विषङ्गः सैन्यनायकम् ॥१०॥
अब्रवीत्तं भण्डदैत्यप्रार्थितं या समीहति । तया भक्तेष्टदायिन्या मोहितो दैत्यपुङ्गवः ॥११॥
कुटिलाक्ष! विषीदन्तमिव पश्यामि ते मुखम्। तद्वदाऽऽशु किं निमित्तं समं सर्वं करोम्यहम् ॥१२॥
श्रुत्वा प्रोचे सोऽपि सर्वं दैत्यनाशं हत्तरम् । अविनाशञ्च शक्तीनां महाभयमुपस्थितम् ॥१३॥
श्रुत्वा जहास दैतेयं आ मोह इति संवदन्।मोहितो मायया देव्या बभाषे बुद्धिमानिव ॥१४॥
शृणु सेनापते! सर्वं विदित्वैवाऽहमागतः । विना युक्त्या न जीयेत महाबलवता परः॥१५॥
जयो युक्तौ सर्वथैव स्थितिः सा बुद्धिसंश्रया।मया शक्तिजयो प्रायो निश्चितः सूक्ष्मबुद्धिना॥१६॥

इस प्रकार चमूपति कुटिलाक्ष के चिन्तापन्न होने पर विषङ्ग भी विशुक्र से प्रेरित हो आगया। विषङ्ग को देख कर सेनापति कुटिलाक्ष उठ खड़ा हुआ। आसन अभिवादन अर्घ्य आदि से उसकी अर्हणा (पूजा) से सम्मान देकर वह अपने आसन पर बैठ गया। अनन्तर सेनानायक को अत्यन्त म्लानमुख देख विषङ्ग ने भण्ड दैत्य की आन्तरिक प्रार्थना बतायी, जो भगवती दैत्य की सब प्रार्थना पूर्ण करती है उस भक्त के इष्ट को देनेवाली देवी द्वारा दैत्यश्रेष्ठ मोहित हो काचु है। ॥८-११॥

हे कुटिलाक्ष! तेरे मुख को मैं उदास सा देखता हूँ। इसलिये शीघ्र बता कि तेरे लिये ऐसा क्या निमित्त बनाऊँ कि सब अनुकूल बन जाय।" यह सुन कर उसने भी सम्पूर्ण महत्तर दैत्यसेना के तथा दैत्यपुङ्गवों के विनाश को बताया और बोला कि शक्तियों का कोई नाश नहीं हुआ; इसलिये भीषण भय उपस्थित हो गया है।" यह सुन कर उसने राक्षस का उपहास किया, "अहो! मोह की विडम्बना" इसे कहकर देवी की माया से मोहित हो उसने बुद्धिमान् के समान वचन कहे, "हे सेनापते! सुन, सब कुछ जान कर ही मैं आया हूँ; महाबलवान् के द्वारा कोई युक्ति किये बिना शत्रु नहीं जीता जाता। युक्ति में विजय सर्वथा ही होती है वह युक्ति बुद्धि के अधीन है। मैंने सूक्ष्मबुद्धि से विचार कर शक्तियों पर विजय प्राप्त करना प्रायः निश्चित कर रक्खा है। तू अपने शोकरूपी अन्धकार को मेरी

जहि शोकाऽन्धकारं त्वं मद्युक्तेरविसंश्रयः । अहं मन्ये हताः शक्तिगणा इत्येव युक्तितः ॥१७॥
शृणु ते तत् प्रवक्ष्यामि यन्मया निश्चितं जये । कूटेनैव विजेया सा तत्क्रमं निश्चितं ब्रुवे ॥१८॥
अद्यैव चरमे भागे दिनस्य दैत्यसेनया । महत्या दंशिताः सर्वे विशुक्रेणाऽपि संवृताः ॥१९॥
युद्धाय पुरतो यान्तु राजपुत्रैश्च संयुताः । गन्तव्यमेव युद्धाय यथा शक्तिगणा अपि ॥२०॥
निःशेषेणैव युध्यन्ति ललितैकाकिका भवेत् । तावद्रात्रावन्धकारैर्दैत्यैर्बहुभिरावृतः ॥२१॥
निर्गम्य पार्श्वभागेन पृष्ठदेशं समाश्रयन् । तस्या रथं समारुह्य तत्रत्या अपि काश्चन ॥२२॥
शक्तीर्हत्वा ग्रहीष्यामि जीवग्राहं बलादहम्।ललितामबलां दुष्टां शक्तिसङ्घशिफात्मिकाम्॥२३॥
न जीवग्रहणं याति चेद्धन्मि गदया भृशम् ।
तस्यां हतायां बद्धायामपि वा शक्तिवाहिनीम् ॥२४॥
नष्टप्रायामवेहि त्वं भवद्भिर्नाश्यतेऽपि च । या तु सा ललिता राज्ञीसुकुमारकराङ्घ्रिका ॥२५॥

युक्तिरूपी सूर्य के प्रकाश में दूर हटा दे । "मै मानता हूँ कि शक्ति समूह मारा गया" यह भी युक्ति से ही । इसलिये मैंने जो देवी पर विजय के लिये उपा॰ निश्चित किया है वह कहता हूँ, सो सुन । वह छल के द्वारा ही जीती जाने योग्य है उसके निश्चित क्रम को बताता हूँ । ॥ १२-१८ ॥

आज ही दिन के अन्तिम भाग में विशाल दैत्यसेना द्वारा शक्तियों की सेनाओं को क्षत-विक्षत करना है । विशुक्र सहित सभी राक्षसगण और राजपुत्रों के साथ युद्ध करने को आगे बढ़ जावें । जैसे ही शक्तियाँ सारी की सारी युद्ध में लड़ेगी तब ललिता एकाकिनी रह जायगी । तभी रात्रि में अन्धकारपूर्ण वातावरण में अत्यधिक दैत्यों के सहित मैं पार्श्व भाग से निकल कर पीछे की ओर स्थित हुआ उसके रथ पर चढ़कर वहां पर नियुक्त जो कोई सी भी शक्तियाँ होंगी उन्हें भी मार कर बलपूर्वक शक्तिसंघ की मूलभूता उस दुष्ट अबला ललिता को जान से मार डालूंगा । यदि तब भी वह नहीं मरेगी तो भारी गदा का प्रहारकर उसे मारूंगा । उस दुष्टा के वध कर दिये जाने पर अथवा बांध दिये जाने पर भी शक्तिसेनाको तू नष्टप्रायः ही जानना; भले ही वे तुम लोगों से मारी भी जाय । जो ललिता राज्ञी अत्यन्त कोमल हाथ पैरोंवाली है वह मेरे साथ युद्ध नहीं करसकेगी, यह मुझे चिरकाल से ज्ञात है । इस प्रकार मैने अत्यन्त प्रगल्भ (सुविचारित) बुद्धि से निश्चित किया कर लिया है । हे सखे ! तेरा

न समर्था मया योद्धुं विदितं मे चिरादिदम्। एवं मया व्यवसितं बुद्ध्याऽत्यन्तप्रगल्भया॥२६॥
सखे कच्चित्तव मतं दोषभेदविवर्जितम्। श्रुत्वा विषङ्गवचनं कुटिलाक्षश्च भूपतिः॥ २७॥
त्रिपुरामायया मूढो जितां तामभिमन्यत। प्रहृष्ट उत्थाय च तं द्रुतं स परिषस्वजे॥२८॥
साधु दैत्यकुलश्लाघ्य वेद्मि त्वां बुद्धिमत्तमम्। काले जयवहा बुद्धिर्दुर्लभा सर्वथा ननु॥ २९॥
नैवंविधा ह्यौशनसी बुद्धिराङ्गिरसी तथा। चिरं जीव राजकार्यसाधकस्त्वं मतो मम॥ ३०॥
तत् प्रयाह्यचिरं राज्ञे निवेद्याऽऽदाय मन्त्रिणः। राजपुत्रान् विशुक्रञ्चाऽऽयाहि युद्धाय सर्वथा॥३१॥
लम्बत्येष दिवानाथो प्रयातुं सलिलाऽर्णवम्। वयं यदा शक्तिसेनां नियुध्यामस्तदा द्रुतम्॥३२॥
साधयिष्यसि तत्कार्यं बुद्ध्या वीर्येण संवृतः। इत्युक्ते कुटिलाक्षेऽथ विषङ्गो नगरं ययौ॥३३॥
तत्र राज्ञे विशुक्राय चाऽपि संवेद्य सर्वशः। मायाविमूढैर्दैत्येशैः सम्मतः संययौ द्रुतम्॥ ३४॥
राजपुत्रैर्विशुक्रेण मन्त्रिभिश्चाऽभिसंवृतः। कुटिलाक्षेण सङ्गम्य सर्वसेनासमावृतः॥ ३५॥

दोष और भेद से विवर्जित विशुद्ध मत हो सो बता।" भगवती त्रिपुरा की माया से मोहित सेनापति कुटिलाक्ष और दैत्यराज ने विषङ्ग की वाणी सुनकर उस भगवती को उसने जीत लिया है यही समझा। अत्यन्त प्रसन्न हो उठकर शीघ्र उसने विषङ्ग को छाती से लगाया॥१६-२८॥

(वह बोला), "हे दैत्यकुल के प्रशंसनीय! तुझे अनेकानेक साधुवाद हैं, मैं तुझे बुद्धिमानों में श्रेष्ठतम मानता हूँ, अवश्य ही समय पर विजय प्रदानकरनेवाली बुद्धि सर्वथा ही दुर्लभ होती है। तू बुद्धिकार्य में बहुत बढ़ा चढ़ा है; तेरी जैसी बुद्धि न तो शुक्राचार्य की है और न बृहस्पति की ही। तू दीर्घायुष्य प्राप्त कर; मैं सफलतापूर्वक राजकार्य को साधनेवाला तुझे मानता हूँ। इसलिये शीघ्र जा, राजा को निवेदन कर मन्त्रियों, राजपुत्रों तथा विशुक्र को साथ में लेकर युद्ध करने के लिये सर्वथा सज्जित हो आजा। यह दिनपति सूर्य समुद्र में प्रवेश करने को लम्बमान हो रहा है। इधर हम लोग जब तक शक्तिसेना से युद्ध करते हैं तब तक तू शीघ्र बुद्धि और सैन्यबल से युक्त बनकर उस कार्य को सम्पन्न करेगा।" कुटिलाक्ष के यह कहने पर विषङ्ग शून्यकनगर में गया, वहां राजा तथा विशुक्र को सारी बातें बता कर माया से विमूढ उन दैत्याधिपतियों द्वारा सर्वसम्मत पक्ष जानकर राजपुत्रों, विशुक्र तथा मन्त्रियों के सहित शीघ्र उपस्थित हो गया और सम्पूर्ण सेना के साथ कुटिलाक्ष से मिल कर वहां युद्ध करने को आया जहां शक्तियों की विशाल सेना स्थित थी।

योद्धुमभ्याययौ तत्र यत्र शक्तिमहाचमूः । विदित्वा दैत्यराजस्य सन्नाहमतिसंवृतम् ॥३६॥
सर्वसैन्यदैत्यवरसङ्गमं चारवक्त्रतः । मन्त्रिणी ललितादेवीं नत्वा वृत्तं व्यजिज्ञपत् ॥ ३७ ॥
आज्ञप्ता ललितादेव्या मन्त्रिणी प्राह दण्डिनीम्। वत्से भण्डासुरस्याऽयं संरम्भो दृश्यते महान्॥३८॥
एकं दैत्येश्वरं मुक्त्वा सर्वे युद्धाय सङ्गताः । अस्माभिरपि गन्तव्यं निःशेषेण द्रुतन्तु तत् ॥३९॥
कुरु सैन्यस्य सन्नाहं शक्तीनां प्रविशेषतः । इत्याज्ञप्ता कोलमुखी सर्वशक्तिचमूवृता ॥४०॥
मन्त्रिण्या च समायुक्ता देवीं नत्वा ययौ मृधे । निर्गता शक्तिसेना सा गजवाजिरथाऽऽकुला ॥४१॥
समुद्र इव लोकानां प्लावकः प्रतिसञ्चरे । युद्धवादित्रनिनदैर्गजवाजिरथस्वनैः ॥४२॥
मिश्रितः सिंहनादो वै शक्तीनामभिवर्धत । तं भीमं लोकदलनं श्रुत्वा दैत्या महास्वनम् ॥४३॥
व्यसृञ्चन् प्रतिरावं ते ततोऽतिविपुलं तदा । स घोषः सेनयोर्मिश्रो व्यरुचद्रोदसीगतः ॥४४॥
भीरूणां प्राणहरणः पल्वलानां प्रशोषणः । अथाऽभवन्महायुद्धं सेनयोः शक्तिदैत्ययोः ॥४५॥

अत्यन्त विशाल दैत्यराज की युद्ध की तैयारियों को गुप्तचरों द्वारा सम्पूर्ण सेनाओं और दैत्यराजों के सम्मिलित होने का वृत्तान्त मन्त्रिणी ने ललिता देवी को प्रणाम कर कहा ॥ २६-३७ ॥

ललिता देवी से आज्ञा पाकर मन्त्रिणी ने दण्डिनी को कहा, "हे वत्से ! भण्डासुर की यह युद्ध साज-सज्जा बहुत व्यापक दीखती है, एक दैत्येश्वर भण्ड को छोड़ कर सभी युद्ध के लिये सङ्गठित एकत्र हुए हैं। हम सभी को शीघ्र ही चलना चाहिये। सैन्य को सन्नद्ध करो, विशेषरूपसे शक्तियों को साथ में सज्जित करो।" इस प्रकार आज्ञा पाकर कोलमुखी वाराही देवी सम्पूर्ण शक्तिसेना को साथ में ले मन्त्रिणी के सहित देवी को प्रणाम कर युद्ध में पहुंची। हाथी, घोड़ों तथा रथों से परिपूर्ण यह शक्तियों की सेना युद्ध के लिये जैसे प्रलयकाल में लोकों को जलाप्लुत करने (जल में डुबाने के) के लिये समुद्र का मर्यादोल्लङ्घन होता है वैसे निकली। युद्ध के बाजों के भीषण शब्दों और हाथियों, घोड़ों तथा रथों के गम्भीर नाद से मिश्रित शक्तियों का सिंहनाद अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुआ। उस लोकों के कम्पा देनेवाले भयङ्कर महाशब्द को सुन कर दैत्यों ने भी प्रतिरोधक उसी प्रकार से अतिविपुल वाद्य आदि घोष किया। दोनों सेनाओं का वह सम्मिश्रित नाद सभी दिशाओं में व्याप्त हो गया ॥३८-४४॥

दोनों सेनाओं का वह तुमुलनाद भीरू लोगों के प्राण हरनेवाला तथा पल्वलों (जलस्थानों) को सुखानेवाला

जघ्नुर्दैत्याः शक्तिगणं विचित्रैरायुधैः पृथक् । तथा दैत्यान् शक्तयोऽपि ममर्दुर्हेतिपातनैः ॥४६॥
शरप्रहारैस्तिलशः केचित्तत्र कृता रणे । केचित् कृपाणिना मध्ये पाटिताः शकलीकृताः ॥४७॥
केचिच्छक्तिषु भल्लेषु प्रोताः शूलेषु मध्यतः । केचिच्चक्रेण संच्छिन्नकन्धरोदरबाहवः ॥४८॥
पेषिताः परिघैः केचिच्छतघ्नीमुद्गरादिभिः । अमोघपाशैः परितः पाशिताः केचिदञ्जसा ॥४९॥
केचित् कुठारपरशुप्रमुखैर्मूर्ध्नि भेदिताः । विक्षताः केचिदुरसि तोमराऽङ्कुशसारणैः ॥५०॥
एवं युद्धं बभौ तत्र मुहूर्तं समभावतः । अथशक्तिगणैर्भग्ना दैत्यसेना प्रविद्रुता ॥५१॥
क्रन्दमाना हताःस्मो वै हा हेति च दृढं हताः । अनुद्रुताः शक्तिगणैः शरणं प्रेप्सवोऽभितः ॥५२॥
असृग्वहा ववुस्तत्र क्रव्यादशुभदर्शनाः । तरङ्गैः कङ्कालगणान् वाहयन्त्यः समेधिताः ॥५३॥
केचित्तासु प्रपतिता नीता दूरं निमेषतः । एवं दैत्यप्रविद्रावं दृष्ट्वा भण्डाऽनुजस्तदा ॥५४॥
विशुक्रः प्राह पार्श्वस्थान् बलाहकमुखाऽसुरान् । प्रोवाचाऽऽहूय विज्ञाय तानमेयपराक्रमान् ॥५५॥

था। अनन्तर शक्ति और दैत्यों की सेनाओं में तुमुल महायुद्ध हुआ। दैत्यगण ने विचित्र आयुधों से पृथक् पृथक् शक्तियों के समूह को मारा। उसी प्रकार शक्तियों ने दैत्यों के अङ्कुश चला कर त्रस्त किया। उन्होंने कई दैत्यों को अपने बाणों के प्रहार से तिल तिलकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर दिये; कई कृपाणधारियोंसे बीच में खण्ड-खण्डकर दिये गये। शक्तियों के द्वारा चक्रसे ग्रीवा तथा उदर और बाहुओं को पृथक्-पृथक् किये जाने से कई दैत्यलोग घायल होगये। कई वज्र के प्रहारसे पीस दिये गये; कई एक तोपों और मुद्गरों से मारे गये, दूसरे अनायास ही चारों ओर से अमोघ पाशों से बांध दिये गये एवं अन्य कुल्हाड़ी व फरशा जैसे प्रमुख अस्त्रों से अपने शिरों पर प्रहार करने से क्षत-विक्षत हो विकल बना दिये गये। कई दैत्य वक्षःस्थल पर तोमर (बर्छी), अङ्कुश और सारण (अस्त्रविशेष) के प्रहारों से विच्छिन्न कर दिये गये ॥४५-५०॥

इस प्रकार वहां एक मुहूर्तपर्यन्त समानभाव से युद्ध चला (कभी दैत्यों द्वारा शक्तियाँ प्रताडित हुई तो कभी शक्तियों द्वारा दैत्यलोग दलित किये गये)। अनन्तर शक्तियों के गण से दैत्यसेना बुरी तरह प्रहारों की चोटें खाकर भाग छूटी। दैत्यलोग इस तरह से विक्रन्दन करते थे "अरे मारे गये! हाय हाय! बुरी तरह से घायल हो गये।" शक्तिगणों द्वारा जब शस्त्रप्रहारों से उनका पीछा किया गया तो वे इधर उधर चारों ओर भागकर शरण खोजने लगे, वहां युद्धभूमि में रक्त की नदियां बहने के कारण पिशाचों के लिये शुभ दर्शनवाली, प्रतिक्षण तरङ्गों के बहाव से ढेर के

हे बलाहक! पश्येमान् दैत्यान् शक्तिगणैर्हतान्। अनाथानिव युद्धेषु काल्यमानान् समन्ततः ॥५६॥
गच्छ त्वं भ्रातृभिर्युक्तो नाशय प्रत्यरीनिमान्। तपसा भवतां नेत्रे सूर्यः स्वांऽशं ददौ किल ॥५७॥
गत्वाऽवलोकनेनेमा भवन्तो निर्दहन्तु वै। इत्याज्ञप्तो भ्रातृयुतो ययौ शक्तीर्विहिंसितुम् ॥५८॥
बलाहकः कालमुखो विकर्णो विकटाऽऽननः। सूचीमुखः करालाक्षः करटश्चेति सप्त ते ॥५९॥
भ्रातरोऽतिक्रूरबला यमीक्षन्त्यतिरोषतः। स सन्तप्तोऽतितर्षेण प्रयाति निधनं द्रुतम् ॥६०॥
तैरुपास्य दिवानाथं प्राप्तमेवंविधं बलम्। एवंविधास्ते सेनायां प्रविश्य युगपत्तदा ॥६१॥
विनिघ्नन्तः शक्तिगणं ददृशुः क्रूरचक्षुषा। अथ ताः शक्तयः सर्वा दैत्यानामवलोकनात् ६२॥
महत्या तृषया व्याप्ताः सन्तापेनाऽखिलाऽङ्गकैः। एवमत्यन्तसन्तापतृषाभ्यां समभिप्लुतम् ॥६३॥
अवसन्नं शक्तिगणं सङ्घशः समराऽवनौ। मन्त्रिणीं दण्डिनीं त्यक्त्वा सर्वं शक्तिगणं यदा ॥६४॥
गजाऽश्ववाहनोपेतं पतितं तापहेतुतः। तन्नेत्रवीर्यं न तयोः प्रवृत्तं तन्महित्वतः ॥ ६५ ॥

ढर कङ्कालोंको बहाती हुई आगे बढती चलती थी। कई दैत्य उन धाराओं में गिरकर निमिषमात्रमें ही दूर ले जाये गये। इस प्रकार दैत्यगण को दुर्दशा देख भण्डासुर का छोटा भाई विशुक्र अपने पार्श्ववर्त्ती बलाहक प्रमुख दैत्यगण को अपरिमेय बलविक्रम से सम्पन्न जान उन्हें बुलाकर बोला, "हे बलाहक! तू शक्तियों के गणों द्वारा मारे गये इन दैत्यगण को देख ये अनाथ के समान काल के ग्रास बने हुए चारों ओर पड़े हैं। तू अपने भाइयों के सहित जा और विरोधी शत्रुओं का नाश कर। तुम लोगों को तपस्या के प्रभाव से नेत्रों में सूर्य भगवान् ने अपना अंश प्रदान किया है; युद्ध में तुम लोग सभी जाकर के इन शक्तियों को निश्चय ही जल भून डालो।" इस प्रकार आज्ञा पाकर बलाहक अपने भाइयों के सहित शक्तियों का विनाश करने को गया। बलाहक, कालमुख, विकर्ण, विकटानन, सूचीमुख, करालाक्ष और करट ये सातों भाई अत्यन्त क्रूर और बलसम्पन्न रहे, ये लोग जिसे अतिरोष से देखते वही शक्ति अत्यन्त तृषासे सन्तप्त हो शीघ्र मर जाती ॥५१-६१॥

उन्होंने दिवानाथ सूर्य की उपासना कर इस प्रकार का बल प्राप्त किया था। इस प्रकार शक्तिसम्पन्न वे जब सेना में एक साथ प्रवेश कर क्रूर नेत्रों से शक्तिगण को मारते हुए देखते तो वे सभी शक्तियां दैत्यों के देखने से ही भारी प्यास से व्याकुल हो जातीं जिससे सारे के सारे अङ्गों में वह त्रास व्याप्त हो जाता। इस प्रकार अत्यन्त सन्ताप तथा तृषा द्वारा व्याकुल शक्तिगण सङ्घबद्ध युद्धभूमि में अत्यन्त त्रस्त हुआ। मन्त्रिणी और दण्डिनी

निशाम्य तद्दण्डनाथा मन्त्रिण्यै संन्यवेदयत् । विचार्य मन्त्रिणी चाऽपि विदित्वा रव्यनुग्रहम् ६६
श्रीदेवीचक्ररक्षार्थं या नाऽऽयाता महायुधि । सस्मार मनसा शक्तिं तिरस्करणिकाऽभिधाम् ॥६७॥
सा प्राप्ता स्मृतिमात्रेण कालाञ्जननिभे हये । समारूढा नीलवपुर्नीलांशुकविभूषणा ॥६८॥
नीलमाल्यधरा गाढध्वान्तसन्तमसा वृता । स्वसमाकारशक्तीनां कोटिभिः परिवारिता ॥६९॥
न तदिच्छां विना कोऽपि पश्येत्तां जगतीतले । आगत्य मन्त्रिणीं नत्वा प्राह किं संस्मृतेति वै ।७०।
पृष्टैवमुक्त्वा दैत्यानां बलं तन्नाशनाय ताम् । विसर्जयामास पुनः शक्तीनां शान्तिहेतवे ॥७१॥
अमृतेशीं सुधासिन्धुमाज्ञापयदनुद्रुतम् । आज्ञप्तैवं समारुह्याऽदृश्यवाहनमुत्तमम् ॥ ७२ ॥
तिरस्कृतिरदृश्याङ्गी तादृक्शक्तिगणावृता । नाशयामास दैत्यानां सेनां शस्त्रनिपातनैः ॥७३॥
तिरस्कृतिः ससर्जाऽस्त्रमन्धाख्यं तेन तेऽसुराः । अन्धीभूताः किञ्चिदपि ददृशुर्नो कथञ्चन ॥७४॥
तथापि युध्यमानांस्तान् बलवीर्येण सम्भृतान् । चिरं युद्धैर्विनिर्जित्य तिरस्करणिका ततः ॥७५॥

को छोड़ कर जब हाथियों तथा घोड़ों के वाहनों के सहित सारा ही शक्तिसमूह उस ताप के कारण विकल हो गिरने लगा उन राक्षसों के नेत्र की शक्ति का प्रभाव उन दोनों को प्रभावित न कर पाया क्योंकि उनके गौरवकी महिमा ही ऐसी थी। उसे देख दण्डनाथाने मन्त्रिणी से कहा। मन्त्रिणी देवी ने विचार कर इसे सूर्य की कृपा जानकर श्रीदेवी को रक्षा के लिये नियुक्त जो देवी इस महायुद्ध में नहीं आई उस तिरस्करिणीनामक शक्ति को उसने मन से ध्यान कर स्मरण किया ॥६२-६७॥

स्मरण करते ही वह नीले घोड़े पर चढ कर नीले शरीरवाली उसी प्रकार के नीले रंग के आभूषणों से सजी, नीले वर्ण की मालाधारीहुई, अत्यन्त घने अन्धकारके स्तब्ध वातावरण से घिरी हुई, अपने समान आकृतिवाली शक्तियों की कोटियों से परिवारित हो उपस्थित हुई। उसकी इच्छा के विना कोई भी इस पृथ्वीतल पर उसे कहीं भी देख नहीं सकता। उसने आकर मन्त्रिणी को प्रणामपूर्वक कहा, "हे मातः ! मुझे क्यों स्मरण किया गया ? ॥६८-७०॥

इस प्रकार पूछने पर मन्त्रिणी ने दैत्यगण के बल को नाश करने के लिये उसे छोड़ दिया। फिर शक्तियों की शान्ति के लिये अमृतेशी को शीघ्र ही सुधासिन्धु को लाने की आज्ञा दी। इस प्रकार आज्ञा पाकर तिरस्करिणी देवी अदृश्य अंगोंवाली बन उसी प्रकार की शक्तिसमूह से युक्त सर्वश्रेष्ठ अदृश्य वाहन अश्व पर आरूढ होकर दैत्यों की सेना को शस्त्रों के प्रहार से नष्ट करने पर तुल गयी। उसने अन्धनामक अस्त्र बनाया जिससे वे दैत्यगण अन्धे से

खड्गेन युगपत्तेषामाहरन्मस्तकं रुषा । हते बलाहकमुखे तिरस्करणिकां सुराः ॥ ७६ ॥
अवर्षन् दिव्यकुसुमैर्वादयन्तश्च दुन्दुभीन् । जहृषुर्देवतामुख्या लोककण्टकनाशनात् ॥ ७७ ॥
अमृतेश्यमृताऽऽसारैर्मृताः शक्तीरजीवयत् । एवं तिरस्कृतिर्जित्वा दैत्यांस्तपनलोचनान् ॥७८॥
मन्त्रिणीं दण्डिनीं नत्वा प्रोवाच विजयं स्वकम् । आलिङ्ग्य ते कृतं कृत्यमसाध्यं सर्वथा त्वया७९
इत्यूचतुस्तुष्टुवतुर्मन्त्रिणीदण्डनायिके । एवं बलाहकमुखे हते सूर्योऽस्तमाययौ ॥८०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललितामाहात्म्ये
तिरस्करणिकायुद्धे बलाहकादिवधो नामाऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥५६५०॥

होकर कुछ भी न देख पाये। फिर भी बलवीर्य से भरपूर युद्ध करते हुए उन्हें भगवती तिरस्करिणी ने दीर्घकाल तक युद्धों से जीत कर अपने खड्ग से उन दैत्यगण के मस्तकों को क्रोध से उडा दिया। बलाहकप्रमुख दैत्यगण के मार दिये जाने पर देवगण ने तिरस्करिणी पर दिव्यपुष्प बरसाये और दुन्दुभियां बजाते हुए इन लोकों के कण्टक-समूहरूपी सप्त राक्षसगण के नाश से सत्त्वगुणी देवप्रमुखगण प्रसन्न हुए ॥७१-७७॥

अमृतेशी ने अमृत के सारतत्वों की वर्षाधारा से मृतशक्तियों को जीवित कर दिया। इस प्रकार तिरस्करिणी ने बलवान् सूर्य के प्रभावी नेत्रोंवाले उन राक्षसों को जीत कर मन्त्रिणी और दण्डिनी देवी को नमस्कार कर अपने विजय की सूचना दी। उन्होंने प्रेमपूर्वक उसे हृदय से लगा कर "तू ने सर्वथा असाध्य कार्य को सम्पन्न कर दिया।" इस प्रकार मन्त्रिणी तथा दण्डनायिका ने कह साधुवाद दिया और उसकी प्रशंसा की। इस प्रकार बलाहकप्रमुख सात राक्षसों के वध करने पर सूर्य अस्ताचलगामी होगया ॥७८-८०॥

इस प्रकार श्रीसम्पन्न इतिहाससोत्तम त्रिपुरारहस्य के ललितामाहात्म्य में तिरस्करिणी के साथ युद्ध करते हुए बलाहकआदि दैत्यों का वध नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

विषङ्गच्छलयुद्धवर्णनम्

एवं तपननेत्रेषु तिरस्कृत्याऽऽहतेष्वपि । त्रिपुरामायया मूढाः सङ्कल्पजयहर्षिताः ॥ १ ॥
विशुक्रकुटिलाक्षाद्या विषङ्गमसुरैर्वृतम् । पार्ष्णिग्रहविधानाय प्रेषयित्वा विधानतः ॥ २ ॥
युयुधुः शक्तिसेनाभिराहूताऽत्यन्तविक्रमाः । विशुक्रो मन्त्रिणीं दण्डराज्ञीं सेनापतिः स्वयम्॥३॥
बालां भण्डसुताश्चाऽपि मन्त्रिणश्च तिरस्कृतिम् । उलूकजित्प्रभृतयो गजवाजिवहे तथा ॥ ४ ॥
दैत्यसेनाःशक्तीसेनां योधयामास सङ्गताः । अस्तं याते सवितरि सर्वतस्तमसाऽऽवृते ॥ ५ ॥
प्रवृत्तः समरोऽत्यन्तदारुणः शक्तिदैत्ययोः । मुहूर्तमात्रं(तत्?)सन्ध्याप्रकाशैरभवद्रणः ॥ ६ ॥
ततो गाढेऽन्धतमसि प्रवृत्ते सर्वतो दिशम् । अभवद्दारुणं युद्धं शक्तिदानवसेनयोः ॥७ ॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

इस प्रकार तिरस्करिणी द्वारा सूर्य के द्वारा प्रदत्त उत्कृष्ट नेत्रशक्तिवाले उन बलाहक आदि राक्षसों के वध किये जाने पर भी अपने मनोरथ के अनुसार भावी विजयप्राप्ति से हर्षित त्रिपुरा की माया से विमूढ हो विशुक्र तथा कुटिलाक्षआदि दैत्यगण ने असुरों के सहित विषङ्गको पार्ष्णिग्राह करने के लिये पीछे की पंक्ति की रक्षाकरनेवाली सेना के साथ विधिपूर्वक भेज कर अत्यन्तबल तथा पराक्रम को संचितकियेहुए वे दैत्य लड़े; विशुक्र मन्त्रिणी के साथ, स्वयं सेनापति दण्डराज्ञी से लड़ा, भण्डके पुत्रगण बाला और मन्त्रिगण तिरस्करिणी के सामने आये। उलूकजित्प्रभृति दैत्यगण अपने अपने हाथियों और घोड़ों पर चढ़े रण में आ गये। दैत्यसेना अब शक्तिसेना से भिड़ कर युद्ध करने लगी। एक मुहूर्त वेला तक सन्ध्या के अरुण प्रकाश में युद्ध हुआ। तदनन्तर अत्यधिक प्रगाढ अन्धकारके सब ओर से दिशाओं में व्याप्त होने पर शक्तिसेनाओं तथा दानवसेनाओं के बीच अत्यन्त भीषण घोर युद्ध हुआ। वे दैत्यपुङ्गव तारागण के

ताराज्योतिः समूहेन शब्देन च परस्परम् । युयुधुः शस्त्रजालैस्ते शक्तिभिर्दैत्यपुङ्गवाः ॥८॥
अथाऽतिसम्मर्दवशात् सेनयो रज उत्थितम् । आच्छादयन्नभोभागं तारकागणसंवृतम् ॥ ९ ॥
अन्धकारसमाविष्टा भूयो रोषाऽन्धतां गताः । युयुधुः शक्तिदैत्यानां गणाश्चाऽक्रमयोगतः ॥१०॥
केचित्तत्राऽऽह्वयाश्चक्रुरन्ये ताननुसंययुः । शस्त्राण्यन्येषु युञ्जन्ति तान्यन्यान् घातयन्ति हि ॥११॥
शब्दवेधमहायुद्धमभवद्भृशदारुणम् । तत्र दैत्यैर्हता दैत्याः शक्तिभिः शक्तयस्तथा ॥१२॥
एवमत्यन्तवीभत्सं युद्धमाक्रन्दभीषणम् । केच्छिस्त्रैर्विनिहताः परे रथविघर्षिताः ॥ १३ ॥
अश्वैरास्फालिताश्चाऽन्ये गजाऽऽक्रामैः सुपेषिताः । एवं महत्तरे तत्र सम्मर्दे सति वैशसे ॥१४॥
न केऽपि संविदुः स्वीयां तथा सेनां परामपि । अन्तं मध्यमथाऽऽदिं वा सेनायाः केऽपि नो विदुः॥१५॥
निशाम्यैतन्मन्त्रनाथा मत्वा तं विषमं रणम् । ज्वालामुखीं महादेवीं सस्मार त्रिपुरांशजाम् ॥ १६ ॥

प्रकाश समूह से और अस्त्रों तथा शस्त्रों के साथ किलकारियों के तुमुलनादों के सामने प्रतिशब्द करतेहुए परस्पर युद्ध करने लगे ॥१-८॥

अब दोनों सेनाओं के एक साथ युद्ध करने के परिणामस्वरूप इस अत्यन्त भीम सम्मर्द के कारण आकाश में धूलि उड़ी जिससे तारोगण सहित सारा नभोमण्डल छा गया, एक तो सर्वत्र अन्धकार छाया ही था फिर रोष से अन्धे हो शक्तिसेना और दैत्यों के गण कोई किसी को विना पहचाने क्रमरहित युद्ध करने में लगे थे। कोई कोई युद्ध के लिये ललकार करते थे। अन्य लोग उनके पीछे चलते थे तथा और योद्धागण अन्य लोगों को मारने को शस्त्रों को छोड़ते थे और प्रहार करते थे । इस प्रकार शब्दवेधी (शब्द के ऊपर ही लक्ष्यकर प्रहार की योजनावाला) महायुद्ध अत्यन्त दारुण रूप से हुआ । उसमें दैत्यों द्वारा दैत्य ही मारे गये तथा शक्तियों द्वारा शक्तियों का विनाश किया गया। इस प्रकार भीषण चीत्कारों तथा पुकारों से पूर्ण अत्यन्त बीभत्स युद्ध हुआ। कोई शस्त्रों से मारे गये, इधर कई लोग रथों के नीचे दबा दिये गये; कई घोड़ों के नीचे रौंदे गये और दूसरे वीरलोग हाथियों के पैरों तले कुचल डाले गये। इस प्रकार वहां भारी उत्पात के साथ युद्ध होने पर दोनों सेनाओं में कोई भी अपनी और दूसरे की सेना को नहीं पहचान पाये, इसके साथ ही सेना का अन्त और मध्य तथा आदि का सिरा भी कोई नहीं जान सके ॥ ९-१५ ॥

मन्त्रनाथा ने इस अस्तव्यस्ता को देख इसे विषम युद्ध जानकर त्रिपुरा के अंश से उत्पन्न ज्वालामुखी महादेवी का

स्मृतमात्रैव सा देवी प्रादुरासीद्रणाऽजिरे। ज्वलत्पर्वतसङ्काशा ज्वालाव्याप्तदिगन्तरा ॥ १७ ॥
तस्या अङ्गप्रभापूरैर्नाशितं निखिलं तमः। तदा दैत्याः शक्तयोऽपि युयुधुः क्रमसङ्गताः ॥१८॥
एवं पुनः क्रमाद्युद्धे प्रवृत्ते निशि कुम्भज ! । बाला भण्डसुतैर्युद्धं विचित्रमतनोद्भृशम् ॥१९॥
चतुर्बाहुमुखा भण्डसूनवो विष्णुविक्रमाः। त्रिंशत्संख्या एककालं युयुधुर्बालया दृढम् ॥२०॥
रथाऽऽरूढा विचित्रेषून् किरन्तः सर्वतो दिशम्। बालां समाच्छदुः शस्त्रैर्दिनेशं स्तुहिनैरिव॥२१॥
अथ बालाऽपि शस्त्रौघान्निजशस्त्रस्य तेजसा। नाशयामास वेगेन तमः सूर्योदयो यथा ॥२२॥
ततोऽतिद्रुतसन्धानाच्चतुर्भिर्निशितैः शरैः। प्रत्येकं भण्डतनुजरथाश्वानकरोन्मृतान् ॥ २३॥
रथनेतॄंस्तथैकेन धनूंष्येकेन चाऽच्छिनत्। तथैकेन पुनस्तेषां हृदि विव्याध लीलया ॥२४॥

स्मरण किया। स्मरणकरने मात्रसे ही वह देवी युद्ध के प्राङ्गण में प्रादुर्भूत हुई; वह जलते हुए पर्वत के सदृश थी और अपनी ज्वालाओं से समूचे दिग्दिगन्तर को प्रकाशयुक्त बना रही थी। उसके अंगों में व्याप्त प्रभा के प्रकाश से सम्पूर्ण अन्धकार विलीन कर दिया गया। उस समय दैत्यगण और शक्तियां भी अपने अपने पक्ष में आकर शत्रुपक्ष पर क्रम संगत युद्ध करने में लग गये ॥१६-१८॥

हे अगस्त्य ! इसप्रकार रात्रि में विधिपूर्वक युद्ध के चलने पर बाला ने भण्ड के पुत्रों के साथ अद्भुत युद्ध किया। विष्णु के समान पराक्रमी, चार भुजाओं और मुख वाले, वे तीस भण्डपुत्र वीरोचित कौशल से एक ही समय में बाला के साथ जमकर युद्ध करने लगे। रथों पर आरूढ हो उन भण्डपुत्रों ने विचित्र प्रकार के बाणों को सब दिशाओं में छोड़ते हुए जैसे सूर्य तुहिन (कोहरे) से ढका जाता है वैसे ही बाला को शस्त्रों से पाट दिया। ॥ १९-२१॥

अब भण्डपुत्रों के द्वारा छोड़े गये शस्त्रों के समूह को बाला ने भी अपने शस्त्र के तेज से अत्यन्त वेग से छोड़ कर जैसे सूर्योदय अन्धकार को दूर कर देता है, वैसे नष्टकर दिया। तदनन्तर बाला ने अत्यन्त वेगवान् सन्धान से चार तीक्ष्ण बाणों से प्रत्येक भण्डपुत्रके रथके अश्वों को मार गिराया; एक बाण चढाकर रथके सारथियों को बाणों का लक्ष्य बनाया और एक से उनके धनुषों को छिन्नभिन्न कर दिया तथा फिर एक बाण उनके हृदयों में एक साथ ही अनायास बेंध दिया। जिनके अश्व मार दिये गये और शस्त्र नष्ट कर दिये गये ऐसे वे भण्डपुत्र वक्षःस्थल में लगे बाणों से

हताऽश्वा नष्टशस्त्रास्ते विद्धा बाणेन वक्षसि । मृतप्रायाः समभवन् व्यथया गाढमूर्च्छिताः ॥२५॥
उलूकजित्प्रभृतयो भण्डस्य भगिनीसुताः । ते षष्टिसङ्ख्या युद्धेषु भीमवीर्याः सुयोधिनः ॥२६॥
तैर्युयोध हयारूढा सम्पद्देवी च सायकैः । विचित्रयुद्धं तन्वाते द्रष्टृविस्मापनं परम् ॥ २७ ॥
पृथग्युद्धं समभवत्त्रिंशत्सङ्ख्यैर्द्विधा स्थितैः । युद्ध्वा चिरं हयारूढा बद्ध्वा पाशेन तान् क्रमात्॥२८॥
चिच्छेद सितधारेण शिरः खड्गेन रोषिता । सम्पन्नाथाऽपि तैर्युद्ध्वा भूयो भल्लेन तान् क्रमात्॥२९॥
हृदि विद्ध्वाऽन्तकपुरं प्रेषयामास सत्वरम् । उग्रकर्मप्रभृतयो युयुधुस्तत्र संयुगे ॥ ३० ॥
तिरस्करणिकादेव्या शस्त्रैरस्त्रैरनेकशः । युद्ध्वैवं मन्त्रिभिः साऽपि क्रुद्धा खड्गेन पातयत् ॥३१॥
शिरः कायादुग्रकर्ममुखानामतिवेगतः । युयोध कुटिलाक्षेण दण्डनाथा रथस्थिता ॥ ३२ ॥
परस्परं ववृषतुः शरैः स्वर्णविचित्रितैः । परस्परप्रयुक्तानि नानाशस्त्राणि चिच्छिदुः ॥ ३३ ॥
रथस्थो भण्डसेनेशः कुटिलाक्षः प्रकोपनः । प्रसह्य कोलवदनां युयोधाऽतिसुशिक्षितः ॥ ३४ ॥

बिंधकर मर्मान्तकपीड़ा से अत्यन्त व्याकुल बन अचेत हो मृतप्रायः हो गये ॥२२-२५॥

भण्ड के भागिनेय (भानजे) उलूकजित्प्रभृति दैत्यलोग जो साठ संख्या में थे, ये सब ही युद्धकला में दक्ष प्रबल पराक्रमी और सुयोद्धा थे। उनके साथ घोड़े पर आरूढ सम्पदेवीसे युद्ध किया। अपने विचित्र बाणोंसे भगवतीने दर्शकों को विस्मय में डालनेवाला अत्यन्त विचित्र युद्ध किया। उन तीस वीरों ने अपने दो विभाग कर पृथक् पृथक् देवी से युद्ध किया। दीर्घ समय तक घोड़े पर आरूढ होकर उन्हें क्रमशः पाश से बांधकर अत्यन्त तीक्ष्णधारवाले खड्ग से क्रोधित हो भगवती ने दैत्यों के शिर काट डाले। फिर भाले से सम्पन्नाथा ने भी उनसे युद्ध कर क्रम से उनके हृदयों पर आघात कर शीघ्र ही उन्हें यमपुर भेज दिया। वहां युद्ध में उग्रकर्मा आदि दैत्यों ने अनेकविध अस्त्रों और अस्त्रों से तिरस्करिणी देवी के साथ युद्ध किया। इस प्रकार मन्त्रियों से युद्ध कर उस देवी ने भी क्रोध से खड्ग सम्हालकर अतिवेग से उग्रकर्माआदि प्रमुख दैत्यों के शिर शरीर से पृथक् कर दिये। रथ पर बैठी हुई दण्डनाथा ने कुटिलाक्ष के साथ लड़ाई की। उन्होंने दोनों ओर से स्वर्णरूपवाले चमकीले विचित्र बाणों की वर्षा की; वे परस्पर में प्रयुक्त किये गये नानाविध अस्त्रों को छोड़ एक दूसरे के विरोधी शस्त्रों को काटते रहे ॥ २६-३३ ॥

भण्ड की सेना का अध्यक्ष जो अपने वैरियों के लिये भीषणरूप से हड़कम्प मचानेवाला, रथ में बैठा

युद्ध्वैवं कोलवदना वाजिनस्तस्य पत्रिभिः । निष्प्राणानकरोदष्टौ कर्णाऽऽकृष्टैर्धनुश्च्युतैः ॥३५॥
एकेन सारथिं हत्वा निचखानाऽपरं हृदि । शरेणोरसि संविद्ध ईषत् निष्प्रज्ञतां गतः ॥३६॥
पुनर्मूर्च्छाविनिर्मुक्तो गदां प्रादाय चोत्प्लुतः । किरिचक्रथाऽऽबद्धसिंहमूर्ध्नि प्रपातयत् ॥३७॥
गदां सर्वाऽऽयसीं वज्रकल्पां सर्वबलेन सः । तथा जगर्ज करिणं हत्वेव हरिलोचनः ॥३८॥
सिंहोऽपि गदया विद्धो मूर्च्छां प्राप्य निमेषतः । पुनः प्रज्ञां प्राप्य रुषा दृष्ट्वा दैत्यं पुरः स्थितम्॥३९॥
तलेन वक्षस्यहनद्धतो हरितलेन सः । पाटितोरःस्थलो रक्तधारां मुञ्चदनेकधा ॥ ४० ॥
पुनरास्फुत्य वाराहीरथं दितिकुलोद्भवः । परिवारशक्तिगणः कदनं कल्ययद्रुषा ॥ ४१ ॥
एवं तं रथमारुह्य युध्यमानं महासुरम् । वाराह्या वृत्तिमुख्या या जम्भिनी शक्तिरुत्तमा ॥४२॥
साऽयुध्यत् कुटिलाक्षेण चिरं पश्चादतीव तम् । युध्यमानं शरेणाऽऽस्ये निजघान महाबला ॥४३॥

प्रकुपित कुटिलाक्ष दैत्य, जो युद्धकला में अत्यन्त सुकुशल था, वह बलात् भगवती वाराही से लड़ा । इस प्रकार युद्ध कर कोलवदना ने अपने धनुष की डोरी खूब तान कर छोड़े गये आठ बाणों से उसके घोड़ों को मार गिराया । देवी ने एक से सारथि को मार कर दूसरे से हृदय में प्रहार किया । बाण के वक्षःस्थल पर लगने से वह कुछ विचेतन हुआ फिर मूर्च्छा से छुटकारा पाकर वह गदा लेकर वेग से उछला तथा किरीचक्र के रथ से लगे सिंह के सिर पर गदाका प्रहार मारा । उसने वज्र के समान सर्व प्रकार से लोहेवाली भारी गदा से पूरा बल लगा कर आघात किया । हाथी को मार कर जिस प्रकार सिंह गर्जन करता है वैसे ही वह सिंह गरजा । सिंह ने भी गदा का प्रहार पाकर एक निमिष तक मूर्च्छित होकर फिर चेत कर दैत्य को सामने खड़ा देख अपने पादतल से दैत्य की छाती पर आघात किया । सिंह के पादतल से मारा गया दैत्य का उरःस्थल फट गया और अनेक स्थानों से रक्त की धारायें छूटने लगी । ॥३४-४०॥

फिर उस दैत्य ने वाराही के रथ पर उछल कर उसके चारों ओर खड़े शक्तियों के गण में क्रोधपूर्वक प्रहार कर विनाश करना शुरू किया । इस प्रकार युद्ध करतेहुए महादैत्य को वाराही देवी की वृत्तिमुख्या उत्तमशक्ति जम्भिनी ने कुटिलाक्ष के साथ रथ पर आरूढ हो चिरकाल तक युद्ध किया । फिर युद्ध करते हुए उसके मुँह पर बाण से अत्यन्त वेग से उस महाबलवती देवी ने प्रहार किया । बाण के द्वारा मुख पर तीक्ष्ण आघात पाकर वह अति पीडा से

हतो गाढं शरेणाऽऽस्ये क्षणं स्तब्धोऽतिपीडया । पुनरुत्प्लुत्य गदया तां मूर्ध्नि प्राहरद्रुषा ॥४४॥
अथ सा गाढसंविद्धा रथोपस्थे उपाऽविशत् । एवंविधां शक्तिगणा दृष्ट्वा हा हेति चुक्रुशुः । ४५॥
तावत्तस्या धनुर्दैत्यो वभञ्जाऽऽच्छिद्य सत्वरम् ।उत्थिता जम्भिनी भूयो दृष्ट्वा भग्नं निजं धनुः॥४६॥
रुषा ज्वलन्ती महतीं गदां स्वीयां पराऽमृशत् । अथाऽभवद्गदायुद्धं भीमं त्वाष्ट्रेन्द्रसन्निभम् ॥४७॥
जम्भिनीदैत्ययोर्दृष्ट्वा विस्मिता देवदानवाः । मत्वा रथं सङ्कुचितंभूमौ ताभ्यामभूत् कृतम्॥४८॥
गदायुद्धं सुविपुलं भीरुहृत्कम्पकारकम् । परस्परगदापातप्रादुर्भूतमहारवम् ॥ ४९ ॥
गदासङ्घट्टनोद्भवत्पावकौघप्रवर्षणम् । विचित्राऽऽक्रमणोत्प्लावचित्रसंस्थानसुन्दरम् ॥५०॥
तत उत्प्लुत्य वेगेन हन्तुं तामभिचक्रमत् । यावत्तावत्तया मूर्ध्नि बलवद्गदया हतः ॥ ५१॥
प्रस्फुटद्दृग्जुहावक्त्रादुच्छलद्रक्तधारया । वर्षंस्तां पतितो भूमौ शीर्णसर्वाऽङ्गबन्धनः ॥ ५२ ॥
गदामालिङ्ग्य तरसा मुमोचाऽसून् लुठन् भुवि । हतं वीक्ष्य चमूनाथं दैत्या भीताः पलायिताः५३

एक क्षणभर विकल-स्तब्ध हो गया, फिर उछल कर दैत्य ने उसके सिर पर क्रोध से अपनी गदा से आघात किया ॥४१-४४॥

अनन्तर वह गहरी चोट खाकर रथके पिछले भागमें बैठ गयी । शक्तिगण ने उसे इसप्रकार की स्थिति में देख हाहाकार करते हुए विलाप किया । तब तक दैत्य ने शीघ्रता से उसके धनुष को अपने बाणों से ढक कर काट डाला । फिर जम्भिनी उठी और अपने खण्डित धनुष को देख कर क्रोध से लाल नेत्र करती हुई अपनी भारी गदा उसके सामने घुमाने लगी । अब जम्भिनी और दैत्य दोनों के बीच वृत्रासुर और इन्द्र के युद्ध के समान भयङ्कर गदायुद्ध छिडा,जिसे देखकर देव तथा दानवगण अत्यन्त विस्मित हुए, रथों को सीमित स्थान मान उनसे उतरकर भूमि पर उन दोनों का गदा युद्ध चला जो अत्यन्त विपुल, कायर पुरुषों के हृदयों को दहलानेवाला था । दोनों ओर से परस्पर गदाओं के चलाने से महाशब्दवाला, गदाओं के संघर्षण से उछले अग्नि के स्फुलिङ्ग के समूह को बरसानेवाला, विचित्र प्रकार के गदा के चलने में अत्यन्त वेगवान् उसे उछालने और प्रहार से बचने को रक्षात्मक उपायों के ताने बाने में विचित्र दक्षतायुक्त अपने-अपने स्थान से अत्यन्त सुन्दर गदायुद्ध हुआ । तत्पश्चात् वह दैत्य वेगपूर्वक ज्योंही उछल कर उसे मारने दौड़ा त्योंही देवी के द्वारा बलवती गदा के प्रहार से दैत्य बहुत बुरी तरह मारा गया। आंखों की पुतली निकाले, मुँह से उछलती बहनेवाली रक्तधाराके साथ भूमि पर अपने सम्पूर्ण अंगों के बन्धन से शिथिल देह होकर वह गिरा एवं अपनी गदा को साथ पकड़े शीघ्र ही भूमि पर लुढकता हुआ प्राणहीन हो गया। उस सेनापति को मरा देख दैत्यलोग भयभीत हो भाग गये ॥ ४५-५३ ॥

देवताः शक्तयश्चाऽपि जहृषुः शत्रुनाशनात् ।
एवं दैत्यं निहत्याऽऽशु जम्भिनी दण्डनायिकाम् ॥५४॥
प्रणम्य संश्रिता पार्श्वं दण्डिनी च प्रहर्षिता । ददौ तस्यै परीरम्भं प्रेम्णा तां प्रसमीक्षत ॥५५॥
विशुक्रेण युयोधोच्चैर्मन्त्रिणी वीर्यवत्तरा । विशुक्रोऽपि महाशूरो युवराजोऽतिवीर्यवान् ॥५६॥
विचित्रमकरोद्द्व्या रणमाश्चर्यकारणम् । परस्परस्य शस्त्राणि प्रतिशस्त्रैर्विनाशयन् ॥५७॥
अस्त्रैरस्त्राण्यपि तथा नाशयन्तौ परस्परम् । एवं चिरं नियुध्यन्तमत्यद्भुतपराक्रमम् ॥ ५८ ॥
दृष्ट्वा मन्त्रमहाराज्ञी दर्शयन्ती स्वचातुरीम् । युगपच्छरसङ्घेन रथमश्वांश्च सारथिम् ॥ ५९ ॥
धनुर्मुकुटकं केतुं चिच्छेद निमिषाऽर्धतः । एवं युद्धे परीभूतो विशुक्रो मन्युना ज्वलन् ॥ ६० ॥
जगृहे खेटनिस्त्रिंशौ हन्तुं देवीं मनो दधे । अथाऽऽयान्तं खड्गकरं दूरादेकेन पत्रिणा ॥ ६१ ॥
करवालं द्विधा कृत्वा खेटमन्येन भेदयत् । छिन्नखेटकनिस्त्रिंशमायान्तं बद्धमुष्टिकम् ॥ ६२ ॥

देवगण तथा शक्तियां भी शत्रु के नष्ट किये जाने से प्रसन्न हुए । इसप्रकार जम्भिनी ने शीघ्र ही दैत्य को मारकर दण्डनायिका को प्रणाम कर उसके पार्श्व में स्थान ग्रहण किया और दण्डिनी देवी ने प्रसन्न हो उसे हृदय से लगाया और प्रेमपूर्वक उसकी ओर देखा ॥ ५४-५५ ॥

प्रकृष्टवीर्यशालिनी मन्त्रिणी ने विशुक्र के साथ युद्ध किया । महाशूरवीर अत्यन्त पराक्रमी युवराज विशुक्र ने भी देवी के साथ अत्यन्त आश्चर्यका कारण अद्भुत युद्ध किया । उसने परस्पर आदान प्रदान किये गये शस्त्रोंका प्रतिरोधक अस्त्रोंसे नष्ट करते हुए (पराक्रम दिखाया) । वे दोनों आपस में एक दूसरे के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से नष्ट करते हुए स्थित थे । इस प्रकार चिरकाल तक अद्भुत पराक्रमशाली उस विशुक्र दैत्य को देख मन्त्रमहाराज्ञी ने अपना रणकौशल प्रदर्शित करते हुए आधे निमिष में ही दैत्यके रथ, घोड़ों, सारथि, धनुष, मुकुट तथा पताका को एक साथ बाणसमूह से नष्टकरदिया । इस प्रकार युद्ध चलने पर युद्ध से विकल हो विशुक्र ने क्रोध से लाल आंखे करते हुए खेट (भाला) और निस्त्रिंश (तलवार) सम्हाले तथा देवी को मारने का निश्चय किया । अब देवी ने हाथ में तलवार लिये दैत्यको देख दूर से एक ही बाण से करवाल के दो टुकड़े कर दूसरे से खेटका भेदन किया । अपने करवाल और खेटक दोनों के टूट जाने पर वह दैत्य मुट्ठी बांध कर आया तो खूब भारी एवं तेज भाले से देवी ने उसकी छाती पर आघात किया । भाले की चोट से घायल हुआ विशुक्र भी झागों के सहित रुधिर का वमन करता हुआ आंखे फाड़े चक्कर काटता

जघानोरसि भल्लेन निशितेन गरीयसा । भल्लाहतो विशुक्रोऽपि सफेनं रुधिरं वमन् ॥ ६३ ॥
घूर्णितो विभ्रमन् क्रोशद्वये वेगेन पातितः ।अवशः संवर्तकेन वायुनेव महागिरिः ॥ ६४ ॥
गाढमूर्च्छामुपगतो यथा लोकान्तरात् कृती । एवं विशुक्रेऽभिहते दैत्यसेना ह्यभिद्रुता ॥ ६५ ॥
निक्षिप्य हेतीन् सन्त्यज्य वाहनानि दिशो दश । विशुक्रं मूर्च्छितं दैत्याः समादाय पुरं ययुः॥६६।
विशुक्रादिषु युध्यत्सु निःशेषशक्तिसेनया । विदित्वा ललितां चक्ररथस्थामेकलां तदा ॥ ६७ ॥
कतिचित्परिवाराऽऽत्मशक्तिसङ्घैकसंश्रयाम् । जेतुं शक्येति संहृष्टो ययौ तत्राऽसुरो द्रुतम्॥६८।
दमनाद्यैः पञ्चदशाऽक्षौहिणीपैः सुसंवृतः । अल्पसेनापरीवारः शस्त्रास्त्रबहुसङ्कुलः ॥ ६९ ॥
प्रयाणे पादसङ्घातशब्दमालक्ष्य सोऽसुरः । गजारूढैर्युतो मत्तगजमारुह्य संययौ ॥ ७० ॥
सर्वे नीलांऽशकधरा नीलाभरणभूषिताः । समेत्य संविदं कृत्वा पृथङ्नागैश्च सङ्घशः ॥ ७१॥

हुआ दो क्रोशकी दूरी पर वेग से गिरा देवो द्वारा मार दिया गया। वह बिलकुल अवश (विवश) था जैसे सम्वर्तक वायु के द्वारा बड़े पर्वत गिरा दिये जाते हैं वैसे उसका गिरना हुआ। गाढ़ मूर्च्छा में पड़े पड़े ही वह लोकान्तरमें चला गया (मरगया) । इस प्रकार विशुक्र के मारे जाने पर दैत्यसेना भाग गयी। उन्होंने हेतियों को फेंक कर और वाहनों को छोड़ दशों दिशाओं में भागकर अपनो रक्षा की। मूर्च्छित विशुक्र को लेकर दैत्यगण शून्यपुर चले गये। सम्पूर्ण शक्तिसेना के साथ विशुक्र आदि दैत्यगण के लड़ने के लिये सन्नद्ध होने पर चक्ररथ रथमें बैठी ललिता को अकेली देख वह दैत्य विचार करने लगा "जो नाना परिजन आत्मरूप शक्तिसङ्घों की आश्रयभूता है उस देवी को मैं अब सरलता से जीत लूंगा।" इसप्रकार प्रसन्नमन से वह मायावी असुर शीघ्र चक्रस्थित उस देवी के निकट पहुंचा। उसके साथ पन्द्रह अक्षौहिणी सेनाओं के सेनापति थे; सेना तो स्वल्प ही था परन्तु शस्त्रों तथा अस्त्रों का सम्भार प्रभूत मात्रा में था। चलने में पैरों के भूमि पर पड़ने का शब्द होता देख वह असुर अपने गजारूढ दैत्यों के साथ मदोन्मत्त हाथी पर सवार हो कर चला ॥ ५६-७० ॥

सभी दैत्यलोग नीलवस्त्र पहने, नीलआभूषणों से भूषित हो एक साथ मिल सब योजना गढ़कर पृथक्-पृथक् हाथियों पर सङ्घबद्ध दैत्यसेना के पिछले भाग में दो योजन की दूरी तक गये। तत्पश्चात् कई दलों में बँटकर वे शक्तिसेना को वामभाग से चक्कर काटकर था अन्य दैत्यलोग दक्षिण भाग से परिक्रमा कर उधर आ गये। मध्य में दो योजन

ययुर्दैत्यचमूपृष्ठे योजनद्वयतः परम् । ततः केचिच्छक्तिसेनां वामतोऽन्ये च दक्षतः ॥ ७२ ॥
परिक्रम्य ययुर्मध्ये हित्वा योजनयुग्मकम् । एवं पृथक् सङ्घशस्ते ययुर्दस्युर्यथा ततः ॥ ७३ ॥
चक्रराजशताऽङ्गस्य क्रोशदूरे हि पृष्ठतः । मिलितास्ते सर्व एव ततो निमिषमात्रतः ॥ ७४ ॥
समासेदुः पृष्ठभागं विषङ्गप्रमुखाऽसुराः । विद्यामयी श्रीललिता ज्ञात्वाऽप्यसुरसम्मतम् ॥७५ ॥
तत्राऽऽचख्यौ लीलयैव स्थिता ज्ञातेव तत्र सा । शक्तयो युद्धसन्देशंश्रुत्वा दूरे सुनिर्भयाः॥७६॥
सुष्वपुः सर्व एवैताः स्वस्थानेषु रथोत्तमे । सुसशक्तिगणोपेतं प्रज्वलद्दीपसङ्घकम् ॥७७॥
दीपप्रभामूर्च्छनेन समेधितमणिप्रभम् । सङ्घैर्मणिगणैर्द्योतमानं समन्ततम् ॥७८॥
दृष्ट्वा समेत्य दैतेया दूरादेकप्रपाततः । आरोढुं रथराजन्तं समीपमभिसंययुः ॥७९॥
उत्खातकरवालासु सहस्रमितशक्तिषु । रथस्य परितो गुप्त्यै प्राक्रमत् सुविशेषतः ॥८०॥

की दूरी का अन्तर छोड़कर सब चक्ररथ को घेरा लगाने को पहुंचे। इसप्रकार वे पृथक्-पृथक् दल बना जैसे दस्यु लोग बिना देखे आते हैं वैसे चक्रराज में विराजी भगवती श्रीललिता के पास पहुंचे। चक्रराजके शत अङ्गों से सुरक्षित होने पर भी उसके पीछे में कोश भर की दूरी से वे सब मिल कर विषङ्ग प्रमुख दैत्यगण निमिषमात्र में पृष्ठभागमें प्रविष्ट हुये विद्यामयी श्रीललिता ने असुरगण के इस समस्त षडयन्त्र को जान कर भी वहां लीला में ही न जानने की स्थिति बना ली तथा सारी शक्तियों का आवाहन किया जिससे कई एकत्र होगयी। उसने असुरों की प्रगति का ध्यान कर लिया और स्थिरचित्त सी स्थित हो गयी। शक्तियाँ युद्ध के सन्देश को सुन दूर से ही अत्यन्त निर्भय हो सभी अपने अपने स्थानों में स्थित रथों में सो गयी। श्रीचक्र सोयी हुई शक्तिसङ्घों से युक्त, प्रज्वलित हुए दीपसङ्घोंवाले दीपकों की प्रभा को भी अत्यधिक मूर्च्छित करनेवाला, बढ़े हुए माणियों के प्रकाश से दीप्त दीपकसङ्घों तथा मणिगण से चारों ओर प्रकृष्ट रूप से जगमगा रहा था ॥ ७१-७८ ॥

दैत्यलोग एकत्र होकर दूर से एक साथ ही आक्रमण से रथराज के ऊपर चढ़ने के लिये सन्निकट आने लगे। तभी हजारों संख्यावाली शक्तियाँ अपनी चमचमाती तलवारों को सम्हाल कर रथ के चारों ओर रक्षा करने के लिये विशेषरूप से उसे घेर कर स्थित हुई। किन्हीं शक्तियों ने दैत्यों के सङ्घों को चारों ओर से हाथियों पर आरूढ देखा; उन्होंने दैत्यों को सावधान बना आह्वान करते हुये महाशब्द

काश्चिद्दृष्ट्वादैत्यसङ्घं गजारूढः समन्ततः । कृत्वाऽऽह्वानमहाशब्दं प्रविशुर्दैत्यवाहिनीम् ॥८१॥
खड्गेन जघ्नुर्दैत्यांस्तानाक्षिपन्त्यो वचोगणैः । तदा दैत्यैः शक्तिभिश्च युद्धमासीत्सुभैरवम् ।८२।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललिताचरित्रे
शक्तिचक्रोपरिदैत्यप्रहारवर्णनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥५७३२॥

कर ललकारें की और उस दैत्यों की सेना में प्रवेश कर आक्रमण किया । शक्तियों ने दैत्यों को धिक्कारपूर्ण वचन से आक्षेप करते हुए खड्ग से प्रहोर किया तब दैत्यगणों तथा शक्तियों का अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ ॥७९-८२॥

इस प्रकार इतिहासोत्तम श्रीसम्पन्न श्रीत्रिपुरारहस्य के ललितामाहात्म्य का विषङ्ग द्वारा छलकपट से श्रीदेवी के श्रीचक्रस्थपर सङ्घर्ष करने का आख्यान नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

सप्ततितमोऽध्यायः

विषङ्गपराजयवर्णनम्

अथ शक्तिसमाह्वानं श्रुत्वाऽऽवरणशक्तयः । विज्ञाय दैत्याऽऽगमनमणिमाप्रमुखास्तदा ॥ १ ॥
स्वस्ववाहसमारूढाः शस्त्रास्त्रैरभिसंवृताः । युयुधुर्दैत्यसेनाभिः समेत्य बलवत्तरम् ॥ २ ॥
शुश्रुवुः क्रमशः सर्वाः शक्तयो रथसंस्थिताः । व्यजिज्ञपुस्तच्छ्रीदेव्यै नित्याः कामेश्वरीमुखाः ॥ ३ ॥
तस्याऽऽज्ञयाऽथ ता नित्या ययुर्युद्धायदंशिताः । तत्राऽन्धकारे युद्धं तन्मत्वाऽत्यन्तसुदुःखदम् ॥ ४ ॥
कामेश्वर्याज्ञया ज्वालामालिनी या चतुर्दशी । नित्या सा पर्वताऽऽकारवपुषा ज्वालयाऽऽवृता ॥ ५ ॥
जज्वाल तज्ज्वालया हि परितो योजनाऽऽयतम् । प्रकाशितमभूत्तत्र युयुधुः शक्तयोऽसुरैः ॥ ६ ॥
जघ्नुर्विविधशस्त्रैस्तान् दैत्यान् युद्धसमागतान् । एवं तानसुरान् युद्ध्वा निन्युर्यमपुरं द्रुतम् ॥ ७ ॥

सत्तरवाँ अध्याय

उन शक्तियों द्वारा तिरस्कारमय वचनों से खड्ग द्वारा दैत्यगण से भिड़न्त करने के अनन्तर शक्तियों के आवाहन को सुन आवरण शक्ति अणिमादिप्रमुख सिद्धियों ने दैत्यों के इस धूर्त्तगामितापूर्ण आगमन को जानकर तब अपने अपने वाहनों पर सवार हो शस्त्रों और अस्त्रों से सज्जित हो दैत्यसेना से भिड़कर बलवत्तर वेग से युद्ध किया । क्रमशः रथ में बैठी सभी शक्तियों ने इस तुमुल युद्धनाद को सुना । कामेश्वरीप्रमुख नित्या देवयों ने श्रीदेवी को सारा वृत्तान्त कहा । ॥ १-३ ॥

अब वे नित्यायें श्रीदेवी की आज्ञा से शस्त्रों और अस्त्रों से सज्जित हो युद्ध के लिये चली । वहां अन्धकार में उस युद्ध को अत्यन्त कष्टकर और दुःखदायक मान कर कामेश्वरी भगवती की आज्ञासे जो ज्वालामालिनी चतुर्दशी नित्या है, उसने पर्वताकार शरीरधारणकर ज्वालाओं से घिरी वह प्रज्वलित होगयी । जब ज्वाला द्वारा चारों ओर एक योजना की दूरी तक फैला हुआ भूमिभाग प्रकाशित हो गया; तब वहां शक्तियों ने असुर गण के साथ युद्ध किया ॥ ४-६ ॥

शक्तियों ने युद्ध में आये हुए दैत्यों को विविध शस्त्रों से प्रहार कर मार भगाया । इस प्रकार उन असुरों

अथ शिष्टा दैत्यगणाः पलायनपराऽभवन् । ते शक्तिभिः परिवृता नाऽलभन्निर्गमं क्वचित् ॥८॥
हन्यमानाः शक्तिगणैर्हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः । तद्दृष्ट्वा दैत्यनिधनं दमनाद्या महासुराः ॥ ९ ॥
विकिरन्तः शरैः शक्तीर्न्यरुन्धन् सर्वतोभृशम् । उच्चावचैः शस्त्रगणैर्जघ्नुः शक्तीः समन्ततः ॥१०॥
एवं दैत्यैर्हता गाढं शक्तयोऽपि निजाऽऽयुधैः । ववृषुर्गिरिशृङ्गाणि घना घनगणा इव ॥ ११ ॥
मुहूर्तमभवद्युद्धं शक्तीनां दमनादिभिः । तावत्ते दैत्यसेनेशा दमनाद्या महाबलाः ॥ १२ ॥
चक्रुर्व्याकुलितं शक्तिगणं शस्त्राऽस्त्रवर्षणैः । नष्टवाहा नष्टशस्त्रा नष्टाऽङ्गा नष्टजीविताः ॥ १३ ॥
न सेहुर्दैत्यशस्त्राणां प्रपातं प्राणकर्षणम् । मूर्च्छिताः शक्तयः काश्चित् काश्चित् प्राणान् जहुः पराः १४
संछिन्नाः खण्डशश्चाऽन्या पाटिताऽङ्ग्यो गताऽऽयुषः । दृष्ट्वैवं निहतं शक्तिगणंकामेश्वरीमुखाः १५
तिथिदेव्यो रथारूढाश्चुक्रुधुर्बलवत्तराः । दमनाद्यैस्तिथिमितैः सङ्गताः समसङ्ख्यकाः ॥ १६ ॥

को युद्ध कर शीघ्र ही यमलोक पहुंचा दिया। अब अवशिष्ट बचे दैत्यगण भागने लगे। वे शक्तियों से घिरे हुए कहीं भी वे निकलने का मार्ग न पा सके। शक्तियों के गणों द्वारा मारे गये वे दैत्य हाहाकारपूर्ण क्रन्दन विलपन करने लगे। दमनादि महादैत्यों ने उस भीषण दैत्यवध को अपनी आँखों से देख कर बाणों द्वारा वर्षा करते हुए शक्तियों को चारों ओर से अत्यधिक रोके रक्खा। उन्होंने ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर छोड़े जानेवाला अस्त्रों से शक्तियों पर चारों ओर से प्रहार किया ॥ ७-१० ॥

इस प्रकार दैत्यगण द्वारा सङ्घबद्ध प्रकर्षरूप से घना प्रहार शक्तियों पर किये जाने से उन्होंने भी अपने शस्त्रों से गिरिशिखरों पर घने बादल जैसे बरसातें हैं उसी प्रकार शस्त्रों की वर्षा की। शक्तियों का दमन आदि के साथ एक मुहूर्त्त तक युद्ध हुआ, तब तक दैत्यसेनापति बलवान् दमन आदि दैत्यगण ने विविध शस्त्रों तथा अस्त्रों के वर्षण से शक्तियों को अत्यन्त विकल बना दिया। नष्ट वाहनोंवाली, नष्ट शस्त्रोंवाली, नष्ट अंगोंवाली और प्राणहीन हुई वे शक्तियाँ दैत्यशस्त्रों के प्राण लेनेवाले आघात को नहीं सह सकी; कई शक्तियां मूर्च्छित हो गई, कई शक्तियों ने अपने प्राण त्याग दिये; बहुत सी अनेक शस्त्रों से खण्ड खण्ड हो अंग-भंगवाली कर दी गयी तथा अन्य शक्तियां विदीर्ण अङ्ग हो निष्प्राण बन गयी। इस प्रकार शक्तिगण को बहुत अधिक संख्या में युद्ध में मृत देखकर कामेश्वरी प्रमुख बलवत्तर तिथिदेवियों ने रथ पर सवार हो अत्यन्त क्रोध किया। दमनादि पन्द्रह राक्षसों के साथ युद्ध करती हुई शक्तियाँ अपनी समानसंख्या में युद्ध से लड़ने के लिये

युयुधुः शस्त्रनिचयैर्बलवीर्यसुसम्भृताः । शस्त्राणि प्रतिशस्त्रैस्ता अस्त्राण्यस्त्रैर्विनाश्य तान् ॥१७॥
जघ्नुर्लाघवयोगेन दैत्यान् मर्मसु सायकैः । एवं ताभिर्हन्यमाना दैत्याः क्रोधं परं ययुः ॥ १८॥
चक्रुरत्यद्भुतं युद्धं वीर्यसाहससंयुतम् । वडवेव धनुर्वक्त्रादुद्गिरन्तः शराऽर्चिषः ॥ १९ ॥
लोकान् दिधक्षन्त इव व्यराजन्त रणाऽजिरे । अथ तांस्तिथिदेव्यस्ता युद्ध्वाऽद्भुतपराक्रमान् ॥२०॥
अश्वान् रथं सारथिञ्च ध्वजं छित्त्वा क्रमेण तान् ।
भङ्क्त्वा चापं तीक्ष्णभल्लैः शिरश्चिच्छिदुरोजसा ॥२१॥
अथ तेषु प्रणष्टेषु दैत्येषु दमनाऽऽदिषु । विद्रुता दैत्यसुभटाः शिष्टा भीत्या दिशो दश ॥२२॥
विषङ्गो गजसंरूढो युयोध तिथिशक्तिभिः । बहुभिर्बलवानेको युयोधाऽतिरुषाऽन्वितः ॥२३॥
युध्यन्तमतिधैर्येण परिवार्य समन्ततः । जघ्नुः कामेश्वरिमुखा नित्याः सायकवर्षणैः ॥ २४ ॥

भिड़ पड़ीं। बलवीर्य से परिपूर्ण उन्होंने शस्त्रों के समूहों से प्रबल युद्ध किया। शत्रुओं द्वारा शस्त्रों के प्रयोग करने पर प्रतिरोधी शस्त्रों द्वारा अस्त्रों को काटकर अत्यन्त रणकौशल से दैत्यगण के ऊपर तीक्ष्ण बाणों से मर्मस्थानों पर आघात किया। इस प्रकार उन शक्तियों से बुरी तरह प्रताडित हो दैत्यगण बहुत क्रुद्ध हुए, उन्होंने वीरता और साहस के साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध किया। उन्होंने जैसे वडवानल से अग्नि की ज्वालायें निकलती हैं वैसे धनुष के अग्रमुखों से बाणरूपी अर्चियाँ (ज्वालायें) निकालते हुए तुमुल युद्ध किया। इस प्रकार लोकों को दहन करती हुई सी वे शक्तियाँ युद्धप्रांगण में शोभित हुईं। अनन्तर वे तिथिदेवियां उन अद्भुत पराक्रमशील राक्षसों, घोड़ों, रथों, सारथियों तथा पताकाओं को छिन्न-भिन्न कर क्रम क्रम से उनके धनुष को काटकर भयङ्कर तीक्ष्ण भालों द्वारा तीव्र वेग से दैत्यों के शिर काट लिये। ॥११-२१॥

अब युद्ध में दमनादिक दैत्यों के नष्ट हो जाने पर दैत्यों में सुभट जो बच गये थे वे भय से दशों दिशाओं में भागने लगे। हाथियों पर सवार होकर विषंग राक्षस सेना को लेकर पन्द्रह शक्तियों के साथ लड़ा। अत्यन्त रोषाविष्ट हो वह बलवान् अकेला ही पर क्रम से अनेकविध शक्तियों से लड़ा। ॥२२-२३॥

अत्यन्त धैर्य से युद्ध करते हुए उसे चारों ओर से घेरकर कामेश्वरी आदिप्रमुख नित्याओं ने बाणों की वर्षा कर दैत्यसेना पर आघात किया। अब कामेश्वरी ने युद्ध में भिड़े हुए विषंग को कहा, "हे दुष्ट दैत्याधम! तेरे

अथ कामेश्वरी प्राह विषङ्गं युद्धसङ्गतम् । दैत्याऽधमाऽलं युद्धेन प्राणान्तकरणेन ते ॥ २५ ॥
शस्त्रं त्यक्त्वा पादचारो गच्छ शीघ्रं यथासुखम् । विषमं बहुभिर्युद्धमेकस्य प्रतिभाति ते ॥२६॥
श्रुत्वा कामेश्वरी वाक्यं जहासोच्चैर्महासुरः । किं कत्थसि वृथा दुष्टे हित्वा लज्जां सुदूरतः ॥२७॥
अहमेकः क्षणेनैव सर्वां शक्तिं चमूमिमाम् । हत्वा वो ललितां देवीं बद्ध्वा जीवग्रहेण वै॥२८॥
नेष्याम्यत्र न सन्देहः शस्त्रं ते पुर आलभे । स्त्रीषु कारुणिकत्वं मे सर्वथा तेन वै चिरम् ॥२९॥
इत्युक्त्वा निशितैर्भल्लैः प्रत्येकं ता जघान ह। तच्छ्रुत्वा प्राह नित्याऽऽद्या एवं चेदस्तु वै रणः॥३०॥
एकैकया मया साकं समभावेन सत्वरम् । इत्युक्त्वा दैत्यराजं तं प्राह भूयो महेश्वरी ॥३१॥
भगमालिनिमुख्या हे मद्वाक्यं शृणुताऽऽदरात् । अहमेनं योधयामि यूयमेनं हि रक्षथ ॥ ३२॥
यथा पलाय्य नो गच्छेत् सावधानेन सर्वतः । इत्युक्त्वा दृढबाणेन विद्ध्वा दैत्यमुवाच ह ॥३३॥
रे मूढ दैत्य मयि त्वं दयां त्यक्त्वा हि सर्वथा । युध्यस्व सर्ववीर्येण पश्यामि तव पौरुषम् ॥३४॥

प्राणान्तकारी युद्ध से बस कर, अब बहुत हो चुका; शस्त्रों को यहीं छोड़ कर पैदल हो सुखपूर्वक शीघ्र पीठ दिखाकर चला जा। तेरे अकेले द्वारा बहुत शक्तियों से युद्ध करना अनुचित लगता है।" कामेश्वरी का वचन सुनकर वह महादैत्य अत्यन्त ठट्ठा मार कर जोर से हंसी में बोला, " हे दुष्टे ! तू व्यर्थ ही क्यों बढ़ बढ़ कर बातें बनाती है; लगता है, लज्जा को तो कहीं दूर ही छोड़ कर आयी है। मैं अकेला क्षणभर में शक्तियों की इस सारी सेना को मार कर ललिता को बांध कर प्राणहीन बना ले जाऊँगा, और शस्त्रों को तेरे सामने से ले जाऊँगा। इसमें कोई सन्देह मत समझना। स्त्रियों पर सर्वथा करुणा करना मेरा स्वभाव है इससे दीर्घ काल तक मैंने तेरे सामने शस्त्र का प्रयोग नहीं किया।" यह कह कर उसने अत्यन्त तीक्ष्ण भालों से उन शक्तियों में से प्रत्येकको पृथक् पृथक् मारा। इसे सुनकर आद्या नित्या बोली,"ऐसी बात ही है तो मुझ अकेली के साथ तेरा बराबरी के सम्बन्ध का शीघ्र युद्ध हो।" उस दैत्यराज को इस प्रकार कह कर फिर महेश्वरी ने कहा, "हे भगमालिनीप्रमुख देवियो ! मेरी बात खूब ध्यान से सुनो; मैं इस राक्षस से लड़ती हूँ। तुमलोग जैसे यह भाग कर न जाने पावे वैसे ही सब ओर से सावधान होकर इसकी रक्षा में तत्पर रहना।" यह कह कर दृढ बाणसे दैत्य को बेंधकर भगवती ने कहा, " अरे मूढ दैत्य ! तू मेरे ऊपर दया के भाव का सर्वथा त्याग कर अपनी सम्पूर्ण शक्तिभर

यदि त्वं पुरुषस्तर्हि अपलाय्य व्रजिष्यसि । अहं त्वां नव हिंस्यामि कुर्य्यां त्वां हि पलायितम्॥३५॥
श्रुत्वा पुरुषभावेन युध्यस्व विगतत्रपः । इत्युक्त्वा निशितान् भल्लान् देहे तस्य समाक्षिपत्॥३६॥
युयुधे सोऽपि कामेश्या बलमाहार्य रोषतः । अथ कर्णान्तपूर्णेन शरेण तस्य वाहनम् ॥३७॥
जघान कुम्भयोर्मध्ये तेन बाणेन स द्विपः । द्विधा विदलितो भूमौ पपात व्यसुरद्रिवत् ॥३८॥
हतवाहो विषङ्गोऽपि गृहीत्वा सशरं धनुः । योद्धुमभ्यायौ क्रोधाद्भ्रुकुटीकुटिलाऽऽननः॥३९॥
अथ त्रिभिः शरैर्देवी धनुस्तूणीरमेव च । मुकुटञ्चाऽपि चिच्छेद कामेशी क्षणमात्रतः ॥४०॥
ततः करालं विपुलमादाय करवालकम् । उपधावद्यावदसौ तावत्तीक्ष्णेषुणा पुनः ॥ ४१ ॥
त्रिधा छित्त्वा महाखड्गं स्मितपूर्वमुवाच तम् । दैत्य ! शूरतमस्त्वं वै कथमेवं नियुध्यसि ॥४२॥
शस्त्रं न खलु कस्मान्मे पातितं किञ्चिदङ्गके । किं दया ते सुमहती जातः कस्मान्निरायुधः ॥ ४३ ॥
कथं तां ललितां बद्ध्वाऽस्मान् जित्वा नेष्यसीरय । उपलब्धं त्वया शस्त्रं व्यर्थं विजयहेतवे॥४४॥

लड़, मैं तेरे पुरुषार्थ को देखती हूँ । तू वास्तव में पुरुष है तो विना भागे मत चले जाना । मैं तेरा वध नहीं करूँगी, तुझे युद्ध से ही भगाऊँगी । इसे पुरुषोचित भावनासे सुनकर लज्जाहीन हो युद्ध कर ।" इस प्रकार कह कर आद्याने उसके देह में तीक्ष्ण भालों से प्रहार किये ॥ २४-३६ ॥

वह भी रोष से खूब बलकरके कामेश्वरी भगवती से लड़ा । अनन्तर देवी ने अपने कानों तक धनुष की प्रत्यञ्चा खेंचकर बाणसे उसके वाहन हाथी के कुम्भस्थल पर छोड़ा । उस बाणसे वह हाथी दो भागों में टुकड़े टुकड़े होकर भूमि पर पर्वत के समान निष्प्राण होकर गिर पड़ा । अपने वाहन के मारे जाने पर विषङ्ग भी बाणसहित धनुष को लेकर क्रोध से भृकुटी चढा अत्यन्त कुटिल मुख कर युद्ध करने को आ धमका । अब कामेशी ने क्षणभर में तीन बाणों से दैत्य के धनुष, तरकस और मुकुट को छिन्नभिन्न कर दिया । तब विशाल कराल करवाल (तलवार) को लेकर वह दौड़ा तब तक देवी ने तीक्ष्ण बाण से उस दैत्य के महाखड्ग को तीन स्थानों पर काट कर कुछ मन्द हास्य कर कहा, "हे दैत्य ! तू शूरों में सर्वश्रेष्ठ है; इस प्रकार कैसे युद्ध करता है ? मेरे अंग में तेरा अस्त्र क्यों नहीं लगता ? क्या तुझे अब अत्यधिक दया ने घेर लिया ? तू विना अस्त्रों शस्त्रोंवाला क्यों होगया ? क्यों तू उस ललिता को बांध कर हमें जीत कर नहीं ले जाता ? जरा बता तो सही ! तूने व्यर्थ ही विजयप्राप्ति के उद्देश्य से शस्त्र

पलाय्य वा गच्छ मम पुरतो यदि पौरुषम् । श्रुत्वा कामेश्वरीवाक्यं कटुकं सोपहासकम् ॥४५॥
मुष्टिमुद्यम्य तां हन्तुं प्रययौ सम्मुखे तदा । तदा त्रिभिः शरैर्भूयो विव्याधाऽतिबलेन तम् ॥४६॥
पादहृन्मुष्टिषु तथाऽऽहतस्थानत्रयाऽऽतुरः । पदान्न चलितुं द्रष्टुं मुष्टिश्च विनिवर्तितुम् ॥४७॥
असमर्थो लज्जितोऽथ गतोऽन्तर्धानमाशु वै । तावत् कामेश्वरी देवी शरजालैश्च सर्वतः ॥४८॥
रुरोध मार्गं दैत्यस्य तद्भुतामिवाऽभवत् । रुद्धोऽथ सर्वतो मार्गे मायां दैत्यो वितानयत् ॥४९॥
शस्त्राऽश्मरुधिराऽग्नीनां पांशवङ्गारमयीभृताम् । वृष्टिञ्चके महभूतान् राक्षसप्रेतसङ्घकान् ॥ ५० ॥
प्रादुश्चकार विविधां मायामतिभयाक्हाम् । सृष्टां सृष्टाञ्च तां मायां दैत्यस्यास्त्रैरपाऽकरोत्॥५१॥
अथोन्मत्तो महामूर्तिः करालः कृष्णपिङ्गलः । सहस्रवक्त्रो नियुतहस्तपादोऽतिवेगवान् ॥ ५२ ॥
भूत्वा जगाम तां हन्तुं व्यात्ताऽऽस्यः पावकं वमन्। दृष्ट्वा भीतं शक्तिगणं तं योजनमितोन्नतम्॥५३॥
दृष्ट्वाऽसुरस्य सा मायां निर्मायाऽस्त्रमवाऽसृजत् । तेनाऽस्त्रेण क्षणादेव मायाः सर्वा व्यनीनशत्

पाये हैं । यदि अब भी तेरे में विक्रम शेष है तो भागकर मेरे आगे से चला जा ।" कटु तथा उपहास से भरे कामेश्वरी के वचन को सुन वह दैत्य मुष्टिका बांधकर देवी को मारने के लिये जैसे ही चला वैसे ही फिर देवी ने तीन बाणों से अत्यन्त बलपूर्वक उस दैत्य को बेंध दिया ॥३७-४६॥

अपने पैर, हृदय और मुट्ठी में आघात पाकर व्याकुल हुआ वह दैत्य न तो एक पैर आगे चल सका न देख पाया और न मुट्ठी ही बांध सका । अब तो सबभांति असमर्थ हुआ लज्जित हो वह शीघ्र अन्तर्धान कर गया । तब तक कामेश्वरी देवी ने बाणों के जाल से सब ओर से दैत्य के मार्ग को रोके रक्खा जो अत्यन्त ही अद्भुत घटना हुई । सब ओर से मार्ग रोके गये उस दैत्य ने अपनी माया को फैलाया । उसने शस्त्रों से पत्थर, रुधिर से पूर्ण अग्नि और पर्वतों की वृष्टि की, साथ ही महाभूत राक्षसों, प्रेतों के सङ्घों को प्रगट किया । जैसे जैसे दैत्यकी अतिभयदायिनी तथा विकलता उत्पन्नकरनेवाली विविध माया बनती जाती वैसे वैसे देवी उसे अस्त्रों से मिटा देती ॥४७-५१॥

अनन्तर वह अत्यन्त कराल, उन्मत्त बृहदाकार धारणकिये, काले पीले हजार मुंहवाला, दश हजार हाथों तथा परों को लगाकर अतिवेग धारण कर अपना मुँह बाये हुए अग्नि का वमन करता देवी को मारने गया । उस एक योजन तक फैले दैत्य को देखने से डरे हुए शक्तिसमूह को और असुर की माया को देख उस भगवती ने उस पर निर्माय अस्त्र छोड़ा । उस निर्माय (माया को संहार करने वाले) अस्त्र से क्षणमात्र में ही दैत्य की सारी माया नष्ट हो गयी ।

अथाऽप्यन्तर्हितं दैत्यं कामेशी मन्त्रपाशतः । बद्ध्वा निपातयामास स्वपुरः क्षणमात्रतः ॥५५॥
स दैत्यः पाशसम्बद्धः पतितः पादसन्निधौ । लज्जितो नम्रवदनो मृतवन्मीलितेक्षणः ॥ ५६ ॥
बद्धमेवं विषङ्गं तं चक्रराज रथाऽन्तिकम् ।
आनयध्वं शक्तिगणा नित्यासा (प्यवदत्तदा) हि सा (?) ॥५७॥
ययौ नित्या परिवृता श्रीदेवीपादसन्निधिम् । गत्वा रथंसमारुह्य प्रणेमुर्ललिताऽम्बिकाम् ॥५८॥
आचख्युर्विजयश्चाऽपि तावता मन्त्रिणीमुखाः । समाजग्मुर्विजित्याऽरीन्नत्वा प्रोचुर्जयं रणे ५९
श्रुत्वा सा मन्त्रिणी मुख्या दैत्यानां कैतवोद्यमम्। विस्मितास्तत्र सुराश्चाऽपि दैत्यानां शठतां प्रति
अथाऽऽनीतं शक्तिगणैर्बद्धं दैत्याऽनुजं तदा । निशाम्य शक्तयः प्रोचुरतिक्रोधतयाऽऽकुलाः॥६१॥
वध्यतां हन्यताश्चैव छिद्यतां भिद्यतामिति ।
श्रुत्वा दण्डाऽधिसम्राज्ञी वधं तस्य व्यचिन्तयत् ॥६२॥

इसके अनन्तर कामेश्वरी ने अन्तर्धान किये दैत्य को मन्त्र के पाश से बाँध कर क्षण भर में अपने सामने गिरा दिया ॥५२-५५॥

वह पाश से जकड़ा हुआ दैत्य भगवती की पादसन्निधि में अत्यन्त लज्जित हो शिर झुकाये मृतक के समान बन्द आंख किये गिरा । चक्रराज रथ के सन्निकट ही विषङ्ग को इसप्रकार बंधे देखकर नित्या बोली, "इसे ले चलो ।" नित्या सब शक्तिगण के सहित श्रीदेवी के चरणों को सन्निधि में जाने को तत्पर हो गयी । सबने रथ पर चढ़ कर वहां पहुंच भगवती ललिताम्बिकाको प्रणाम किया और सबने भगवती की विजय का वृत्तान्त सुनाया । तभी मन्त्रिणी प्रमुख देवियां वहां शत्रुओं को जीत कर आयीं । उन्होंने भी प्रणाम कर अपने विजय का समाचार बताया ॥५६-५९॥

वह मन्त्रिणी मुख्य दैत्यों के छलकपटपूर्ण प्रयत्नों को सुनकर वहां स्थित देवगण भी दैत्यों की शठता (दुष्टता) के प्रति विस्मय करने लगे । अब शक्तिगण द्वारा बांधे गये दैत्य के छोटे भाई को लाया हुआ देख शक्तियों ने अति क्रोध से लाल आँखें कर कहा " वध करो, मारो, इसे काट डालो और अंग भंगकर दो ।" यह सुनकर दण्डसम्राज्ञी ने उसके वध का उपाय सोचा । अनन्तर श्रीमाता की सम्मति से मन्त्रिणी ने कहा, "बंधे हुए का वध ठीक नहीं है क्योंकि बन्धी दशा में वह मृततुल्य ही कहा गया है । अपनी दशा को दैत्यराजभण्डको कहने के लिये यहदैत्य उसके

अथ श्रीमातृसम्मत्या मन्त्रिणी प्रब्रवीद्वचः । वधो न युक्तो बद्धस्य मृततुल्यो हि स स्मृतः॥६३॥
गच्छत्वेष समाख्यातुं दैत्यराजाय स्वां दशाम् । इत्युक्त्वा मोचयामास प्राह तं मन्त्रिणी तदा॥६४॥
रे दैत्य भूयो मैवं त्वमकार्षीः शूरगर्हितम् । श्रुत्वैवं मन्त्रिणीवाक्यं लज्जितो दैत्यपुङ्गवः ॥६५॥
नताऽऽननो ययौ शीघ्रमपश्यन् पृष्ठदः पुनः । अथ तत्र शक्तिगणं समेतं ललिताऽम्बया ॥६६॥
परस्परं युद्धवृत्तं प्रोवाचाऽत्यद्भुतंतदा । तदा प्राह दण्डराज्ञी मन्त्रिणीं प्रतिमन्त्रणे ॥ ६७ ॥
देवि वृत्तं महायुद्धमद्य दैत्यैः सुभीषणम् । रात्रिरल्पावशेषाऽस्ति पुनः सूर्योदयं प्रति ॥ ६८ ॥
भवेद्युद्धमतीवोग्रं दैत्या कपटयोधिनः । तदस्माभिः पुनर्युद्धे गन्तव्यं सर्वसेनया ॥ ६९॥
पुनरत्र चक्रराजरथस्तिष्ठेत चैकलः । यद्यपि श्रीमहादेव्या महिम्नो नाऽस्ति दुर्घटम् ॥ ७० ॥
तथाप्यसाम्प्रतञ्चैतद्भाति तत्र कथं भवेत् । विमृश्य मन्त्रं बुद्ध्यैतद्युक्तं ज्ञात्वा समीकुरु ॥७१॥
इति वाक्यं समाकर्ण्य दण्डिन्या मन्त्रिणी स्वयम् । अमंसताऽथ तद्युक्तं विचार्य शुद्धया धिया॥७२॥

के पास जाय ।" यह कह कर श्रीदेवी ने उसे छोड़ दिया । तब मन्त्रिणी ने उससे कहा, "अरे दैत्य ! फिर इस प्रकार के वीरों द्वारा कुत्सित (निन्दायोग्य) कार्य को मत करना !" इस प्रकार मन्त्रिणी के कथन को सुनकर वह दैत्यपुङ्गव लज्जित हो सिर नीचा झुकाये पीठ देकर फिर पीछे न देखते हुए शीघ्र चला गया । अनन्तर ललिताम्बा के साथ एकत्र हुए शक्तिगण ने राक्षस के साथ हुए परस्पर अत्यन्त अद्भुत युद्ध के वृत्तान्त को कहा । तब दण्डराज्ञी ने मन्त्रिणी को प्रतिमन्त्रणा करने के लिये कहा, " हे देवि ! दैत्यों के साथ आज अत्यन्त भीषण महायुद्ध हुआ, अब रात्रि थोड़ी सी बची है फिर सूर्योदय होते होते अत्यन्त उग्र युद्ध हो सकता है; ये दैत्यलोग कपटपूर्ण युद्ध करने वाले हैं । इसलिये हम सब को फिर युद्ध में सम्पूर्ण सेना सहित चलना चाहिये; तब फिर यहां चक्रराज रथ अकेला ही रह जायगा । यद्यपि महादेवी के महिमा से कोई दुर्घट कार्य नहीं होगी तब भी यह अनुचित लगता है । तब किस प्रकार व्यवस्था की जाय ? इस प्रकार विचार कर बुद्धिपूर्वक समझ कर जो समुचित हो सो जानकर यथायुक्त करो ॥६०-७१॥

इस प्रकार दण्डिनी के वाक्य सुन मन्त्रिणी ने स्वयं उसे उपयुक्त माना; अब शुद्ध बुद्धि से सोचकर ललिता भगवती को प्रणाम कर वह बोली, "हे मातः ! मेरे वचन सुन; जो वाराही ने कहा कि सूर्योदय के साथ ही हम सब को शक्ति

ललितां प्रणिपत्याऽऽह मातराचक्ष्व मे वचः। वदत्येषा वराहाऽऽस्या सूर्यस्योदयनं प्रति ॥७३॥
पुनर्युद्धाय गन्तव्यस्माभिः शक्तिसेनया। अकोशे सेनया हीने रथ एष तवाऽऽश्रयः ॥ ७४ ॥
न शोभते ह्यनौचित्यादथ शक्तिगणोऽखिलः। नियुद्धश्रान्तिमभ्येत्य रात्रौ विश्रान्तिमेष्यति ॥७५॥
अद्य संवृत्तयुद्धेन कैतवेन विशङ्किताः। न स्वस्थहृदया भूयो विश्रामं नोपयन्ति वै ॥७६॥
मन्यसे यदि तत्राऽलमनुजानीहि मां पुनः। प्रवृत्तिं भावयिष्यामि शत्रूणामप्रधर्षिणीम् ॥७७॥
इति विज्ञापिता देवी प्रवृत्तौ तां समादिशत्। अथ सा तिथिर्नित्यासु या तत्राऽस्ति चतुर्दशी ॥७८॥
आज्ञापयत्तां हि सालनिर्माणे शत्रुरोधने। आज्ञामात्रेण सा देवी ज्वालामालिनिकाऽभिधा ॥७९॥
वह्निज्वालामहासालं निर्ममेऽसुररोधनम्। वलयीकृत्य शक्तीनां सेनां सालः समास्थितः ॥८०॥
अनुल्लङ्घ्योन्नम्रमूर्तिर्बहिर्ज्वालोऽतिभीषणः। अन्तः शीतलयन् शक्तीर्बहिर्योजनदूरगम् ॥ ८१ ॥

यों की सेना को साथ लेकर फिर युद्ध करने को चलना चाहिये। कोश (गुप्तता) से रहित तथा सेना से हीन यह रथ ही आपका आश्रय स्थान है परन्तु ऐसा होना अनौचित्यके कारण शोभा नहीं देता है। अब सारा ही शक्तिगण युद्ध से अत्यन्त थकित हो रात्रि में विश्राम करेगा। आज के सञ्चालित युद्धकी दैत्यों की कपटपूर्ण छलनीति से विशङ्कित हो वे स्वयं स्वस्थहृदय नहीं हैं इसी से देवियाँ फिर विश्राम न लेंगी। आप यदि मुझे अपने को वहां पर्याप्त समझती हैं तो मुझे फिर आज्ञा दीजिये, मैं शत्रुओं की प्रवृत्ति को रोकने में प्रयत्नशील बनूँ। सम्यक् प्रकार से शक्तियों की अप्रधर्षिणी (किसी से न दबायीजानेवाली) प्रवृत्ति को प्रचलित करूंगी।" इस प्रकार विज्ञापन दिये जाने पर देवी ने उस तरह की प्रवृत्ति के लिये मन्त्रिणी को आदेश दे दिया। नित्याओं में उस पञ्चदशी ने जहां चतुर्दशी थी उसे आदेश दिया, "शत्रु को रोकने के लिये साल (परिखा) बनाओ।" आज्ञा प्राप्त करते ही उस देवी ज्वालामालिनी ने असुरगण को बाधा करनेवाले, अग्नि की ज्वालाओं से परिपूर्ण महासाल को बनाया। वहां शक्तियों की सेना का घेरा डालकर साल को सुरक्षित कर दिया। अनुल्लङ्घनीय, उन्नम्र आकारवाला, बाह्यदेश में ज्वालायुक्त अत्यन्त भीषण, अन्तर में शक्तियों को शीतल करता हुआ बाहर की ओर एक योजन तक सुविस्तृत ज्वाला से पूर्ण एवं योजन तक के विस्तार से मध्यवाले द्वारवाला वह साल विशेष शोभायमान हुआ। इसप्रकार साल को देख कर शक्तियाँ पूर्ण आश्वस्त हो गयी

दहन् योजनविस्तारमध्यद्वारो व्यराजत । अथैवं सालमालोक्य शक्तयो गतसाध्वसाः ॥ ८२ ॥
सुष्वपुः सौख्यतस्तत्र युद्धश्रान्ता हि शक्तयः । सहस्रसङ्ख्या रक्षार्थं मन्त्रनाथा समादिशत् ॥८३॥
एवं ज्वालासालमध्ये स्थिता श्रीललिताम्बिका ॥८४॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललिताचरित्रे
विषङ्गपराजयवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥५८१६॥

कि अब रथ को किसी प्रकार का भय नहीं है । वहां जो युद्ध से थकी हुई शक्तियाँ थीं वे खूब सुखनिर्भर हो सो गयी । मन्त्रनाथा ने एक हजार शक्तिदेवियों को वहां रक्षा करने का आदेश दिया । इस प्रकार श्री ललिताम्बिका ज्वालापूर्ण साल के बीच में विराजी स्थित हुई ॥७२-८४॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्ययखण्ड में श्रीललिता-चरित्र के प्रकरणान्तर्गत विषङ्ग की पराजय नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीचक्रनाशाय विशुक्रेण विघ्नयन्त्रप्रयोगवर्णनम्

बन्धमुक्तो विषङ्गोऽथ ययौ दैत्यचमूं प्रति । दुःखितोऽतितरां दीनो हतोत्सहोऽतिनिःश्वसन् ॥१॥
एकलो विजने क्वाऽपि निविष्टो हीनवर्चसः । तत्र शुश्राव सेनेशं कुटिलाक्षञ्च मन्त्रिणः ॥ २ ॥
हतांस्ततोऽपि दुःखाब्धौ निर्मग्नः समजायत । तावद्विशुक्रोऽभिययौ राजपुत्रसमावृतः ॥ ३ ॥
ददर्शाऽतिविषण्णाऽऽस्यं विषङ्गमनुजं स्थितम् । पप्रच्छ वत्स किं तेऽद्य पश्यामि मलिनं मुखम्
पार्ष्णियुद्धे किमासीत्ते वद मे तदशेषतः। श्रुत्वैवं भ्रातृवचनं निःश्वसन् प्राह सोऽनुजः ॥५॥
भ्रातः किं तेऽभिवक्ष्यामि नाऽऽसीदेवं कदापि मे। जानामि दैत्यनाशाय काल एषोऽप्रदक्षिणः ।६।
अहोऽतिचित्रं दैत्यानां विष्णुवीर्याऽतियोधिनाम् । पराभवोऽबलासङ्घैर्मृगेशस्यैवजम्बुकैः । ७॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

अनन्तर बन्धनमुक्त होकर विषङ्ग दैत्यसेना की ओर अत्यन्त दुःखित हतोत्साह और अतिदीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ अकेला राक्षससेनामें कहीं पर हीनतेजवाला सा निविष्ट हुआ । वहाँ जब उसने सेनेश, कुटिलाक्ष और मन्त्रियों को मरा हुआ सुना तो उससे और भी अधिक दुःखसमुद्र में डूब गया । तब तक विशुक्र भी राजपुत्रों के सहित आ गया, उसने अपने छोटे भाई विषङ्ग को अत्यन्त विषण्णवदन (उदास मुख) देखा । उसने पूछा, "हे वत्स ! आज मैं तुझे मलिन मुख क्यों देखता हूँ ? तुझे सेना के पृष्ठभाग में युद्ध करने को नियुक्त किया गया था, तेरा क्या हुआ ? सो मुझे सारी बातें बता ।" इस प्रकार भाई के वचन सुन वह छोटा भाई निःश्वास छोड़ते हुए बोला, "हे भ्रातः ! मैं तुम्हें क्या कहूँ ? इसप्रकार तो मेरे साथ कभी भी नहीं हुआ । मैं जान गया हूँ कि यह दैत्यों के नाश के लिये अत्यन्त बुरा समय आगया । अहो ! अत्यन्त विचित्र बात है कि विष्णु के साथ पराक्रम से भीषण रण करनेवाले अति योद्धा इन दैत्यगण का अबलाओं के द्वारा पराजय होना शृगाल से सिंह का पराभव होने जैसा ही है ।

एवंदशाऽभिपन्नस्य न युक्तं जीवितं मम । तत् किं करोमि नासीन्मे मृत्युर्युद्धेषु सर्वथा ॥ ८ ॥
अहो धन्या ये मृतास्ते कुटिलाक्षादयोऽसुराः। न तैःस्वात्मा परीभूतो दृष्टो दुःखाय कुत्रचित् ॥९॥
भर्तृपिण्डविनियोगं कृत्वोत्तमतमां गतिम् ।
ख्यातिश्च सङ्गतास्तेऽस्मिन् लोकेऽमुष्मिन्नपि ध्रुवाम् ॥१०॥
धिङ् मामेवंविधं दैत्यं न जीवन्तञ्च नो मृतम् । भ्रातः किं बहुनोक्तेन सारं शृणु वदामि ते॥११
दैत्यानामेष सम्प्राप्तः कालोऽत्यन्तमदक्षिणः । तस्मादहं न जीविष्ये स्त्रीभिर्युद्धे पराजितः॥१२॥
इतो दैत्यैः समेतोऽहं प्रयातः क्षणदामुखे । पार्ष्णियुद्धे तां विजेतुं समयस्याऽनुरोधतः ॥ १३ ॥
तद्रथस्य पार्ष्णिभागे वयं सर्वे हि सङ्गताः । यावद्रथं समारुह्य तां ग्रहीतुमभीप्सवः ॥ १४ ॥
तावत् प्राप्ताः शक्तिगणा रथरक्षाविधौ स्थिताः। तं रथं परिवर्तन्त्यो धृतोद्वातकृपाणिकाः॥१५॥
अस्माभिस्तर्जयन्त्यस्ता युयुधुर्बलवत्तराः । अनालोके प्रस्खलन्त्यस्तमिस्रायान्तु सर्वतः ॥ १६ ॥

इसप्रकार की हीन दशाको प्राप्त मेरा जीवित रहना अब उचित नहीं; इसलिये मैं क्या करूं? मेरी मृत्यु युद्धों में सर्वथा ही नहीं हुई। अहो ! धन्य हैं कुटिलाक्ष आदि दैत्यगण जो युद्ध में लड़ते लड़ते मर गये। उन्होंने दुःख के लिये अपनी आत्मा कहीं भी पराजित नहीं देखी। उन्होंने अपने स्वामी के लिये शरीर का विशिष्टरूप से नियोग (सदुपयोग) कर इस लोक में स्थायी ख्याति और परलोक में सर्वश्रेष्ठ गति प्राप्त की। मेरे जैसे दैत्य को धिक्कार है कि जो न जीवित है और न मरा ही, हे भ्रातः ! अधिक वर्णन करने से क्या जो सार है वह तुम्हें बताता हूँ। ॥ १-११ ॥

वर्तमान में दैत्यगण का समय अत्यन्त बुरा आगया है; इसलिये स्त्रियों द्वारा युद्ध में पराजित मैं अब नहीं जीऊंगा। इधर दैत्यों के सहित मैं रात्रि के आरम्भ काल में समय के अनुरोध से शक्ति को पृष्ठ भाग से युद्ध में जीतने के लिये गया। उसके रथ के पृष्ठभागमें हम सब समेत (एकत्र) हुए। जैसे ही रथ पर चढ हम उसे पकड़नेवाले ही थे कि तभी रथ की रक्षा करने में स्थित शक्तियाँ वहां आ गयीं; उस रथ को घेर कर हाथ में खड्ग कृपाण ली हुई नाना प्रकार से तर्जन गर्जन करती हुई, उन बलिष्ठ शक्तियों ने हम लोगों का खूब डट कर प्रतिरोध किया, जैसे ही अन्धकार-अप्रकाश में और अन्धकारमयी रात्रि की घड़ियों में चारों ओर वे पद पद पर गिरती लड़खड़ाती

तावत्तस्या रथश्रेष्ठान्निर्गतास्तिथिसङ्ख्यकाः । निर्ममुर्ज्वलितं शैलमन्धकारनिवारणम् ॥ १७ ॥
परिवव्रुः समेत्याऽस्मान् वर्षन्त्यः शरसन्ततीः । क्षणेन दमानाद्यांस्ता हत्वा मामभिसंययुः ॥१८॥
तासु मुख्या शक्तिरेका कामेश्यद्भुतविक्रमा । द्वन्द्वे मामभिसङ्गम्य बबन्धाऽर्धनिमेषतः ॥१९॥
न तस्यां मे विक्रमोऽभूद्वीर्यं मायाबलं तथा । बद्धो नीतः पातितोऽथ ललिताचरणान्तिके ॥२०॥
तस्या या सचिवेशानी तमालदलसच्छविः । सौन्दर्यसारसुतनुर्मधुराऽऽलापपेशला ॥ २१ ॥
तयाऽहं बन्धनान्मुक्तो दयमानस्वभावया । ततो मे जीवतो नार्थो हतकीर्तेर्हतौजसः ॥ २२॥
श्रुत्वैवं लपितं तस्य विशुक्रः प्राह सस्मितम् । भण्डाऽभिमतसिद्ध्यर्थहतधीर्ललिताऽम्बया ॥२३॥
वत्स त्वं न विजानासि नीतिं युद्धजयाऽऽवहाम् । युद्धे महान्तः शूराश्च क्वचिदल्पैर्जिता ननु ॥२४॥
भवन्त्येव न तच्चित्रं फलं वा शूरसम्मतम् ।
गच्छन्हि पादवान् भूमौ दिवाऽपि स्खलति क्वचित् ॥२५॥

चलती जाती थी वैसे ही उसके चक्ररथ श्रेष्ठ में से तिथिसंख्यक पन्द्रह देवियाँ निकली। उन्होंने अन्धकार को हटाने-वाले अत्यन्त प्रकाशमय शैल को बनाया। एकत्र हो उन्होंने वही हमें घेर लिया और बाणसमूह की वर्षा करती हुई क्षणभर में दमनादि असुरों को मार कर मेरी ओर आ गयी। उनमें मुख्य एकशक्ति कामेशी अद्भुत पराक्रम-शालिनी थी। उसने द्वन्द्वयुद्ध में मुझे पकड़ आधी निमिष में बांध लिया। उस पर मेरा पराक्रम, वीर्य और माया का बल कुछ भी काम न कर पाया। मैं बांध कर ललिताके चरणों में ले जाया गया और गिरा दिया गया। उसकी जो सचिवेशी है वह तमालपत्र के समान हरे रंग की है, सुन्दरता के सारभूत तत्त्वों से उसके शरीर का गठन बना है, अत्यन्त मधुर भाषण से उसका निखार और अधिक मुखरित हुआ है। उस दयालु स्वभाववाली देवी ने मुझे बन्धन से छुड़ाया; इसी से खोई हुई कीर्तिवाले और अब निस्तेज मेरे जीवित रहने का कुछ भी प्रयोजन नहीं।" ॥१२-२२॥

इसप्रकार उसकी उक्ति को सुनकर विशुक्र ने हंसते हुए कहा, "भण्ड के अभिमत को पूर्ण करने के लिये ललिताम्बा से लड़ने के लिये नष्टबुद्धिवाला हे वत्स! तू युद्ध के अन्दर जय प्राप्तकरानेवाली नीति को तू नहीं जानता। युद्धमें महान् और सभी दृष्टियों से शूरवीर पुरुष कभी-कभी कहीं पर अल्प बलशाली और न्यून व्यक्तियों से जीते जाते हैं।

न स्खलन्ति क्वचिदपि स्थावराः किं ततो भवेत् ।
जयाऽजयौ युद्ध विधावनिर्देश्यौ कथञ्चन ॥२६॥
परन्तु जय एवैष यः पर्यवसितो भवेत् । नाऽन्यो जयो जयः प्रोक्तस्त्वन्तरा संविभावितः ॥२७॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं किं वदाम्यहमद्य ते । विचारो धैर्यसहितो मन्त्रयुक्तो जयावहः ॥२८॥
विरमैवं विपर्यासाभावात् सर्वार्थनाशनात् । शृणु मे मन्त्रितं सद्यस्तव दुःखविनाशनम् ॥२९॥
येनोपायेन विबुधाः शक्रमुख्या विनिर्जिताः । पुरा भूयो विस्मृतं ते तदहं शृणु यद्ब्रुवे ॥३०॥
प्रत्यरिप्रत्यूहकरमाभिचारात्मकन्तु तत् । यन्त्रं शत्रुप्रतीघातं विदितं भार्गवान्मया ॥३१॥
तदद्य रचयाम्याशु विधिदृष्टेन वर्त्मना । तत्प्रयोगाद्भवेदेवं निहतं शक्तिसैनकिम् ॥ ३२ ॥
लिखित्वाऽहं शिलापदे तुभ्यं दास्यामि सम्प्रति ।
त्वं युक्त्या शक्तिसेनासु प्रक्षिप्याऽऽगच्छ सत्वरम् ॥३३॥
ततस्ताः शक्तयो नष्टवीर्योद्योगास्ततो वयम् । गत्वा दैत्यचमूयुक्ता अनायासेन सत्वरम् ॥३४॥

इसमें कोई विचित्र फल या शूरवीरों के अनुरूप बात मत समझना, क्योंकि पैरोंवाला व्यक्ति भूमिपर पर चलतेचलते दिन में भी कहीं लड़खड़ा कर गिर जाता है, स्थावर (न चलने वाले) वृक्ष आदि कहीं भी नहीं गिरते उससे तुम्हें क्या लेना है ? युद्धकी विधि में जय और पराजय इदमित्थं स्पष्टतया नहीं कहे जा सकते । परन्तु जो जय पर्यवसायी(अन्तिम) हो वह विजय ही वास्तविक (सम्यक्प्रकार से विभावित ही जय) है अन्य नहीं । अहो ! मोह की महिमा ! मैं तुझे आज क्या बताऊँ ? धैर्यपूर्वक मन्त्रणावाला विचार ही जयलाभ करवाता है। तू इसप्रकार के विपर्यासवाले (कुविचारपूर्ण) सर्व अनर्थों के मूल कारणवाली बातों से हट जा; तेरे दुःख को तत्काल नष्ट करनेवाली मेरी मन्त्रणा सुन । जिस उपाय से इन्द्रप्रमुख देवगण पूर्वकाल में जीत लिये गये उसे तू फिर भूल गया है इस लिये वह मैं बताता हूँ । वैरियों के प्रत्येक कार्य में विघ्न उपस्थितकरनेवाला अभिचारकारक जो शत्रु का अहितकारी यन्त्र है मैं भार्गव से सीखकर सम्यक् प्रकार से जानता हूँ; उसे तू सुन उसे आज मैं विधि के विधानपूर्ण मार्ग से बनाता हूँ उसके प्रयोग से शक्तिसेना अवश्य ही मारी जायेगी; अभी मैं शिलास्थान में लिखकर तुझे दूँगा । तू युक्तिपूर्वक उसे शत्रु की सेना में फेंककर अतिशीघ्र आजाना, जिससे उन शक्तियों का बल और पराक्रम नष्ट हो जायगा ।

नाशयावः शक्तिगणं नाऽत्र संशयमाप्नुहि । उत्तिष्ठ जहि सन्तापं शोकजं वीर्यनाशनम् ॥३५॥
श्रुत्वेत्थं भ्रातृकथितं महामायाविमोहितः । जितमित्येव निश्चित्य हर्षमाहारयत् परम् ॥३६॥
तुष्टाव भ्रातरं भ्राता संश्लाघन् बुद्धिकौशलम् । अथैतद्दैत्यराजाय मन्त्रमावेद्य सम्मतः ॥३७॥
निर्ममे तद्विघ्नकरं यन्त्रं दार्षदपट्टके । स्नात्वा शुचिविधानेन यन्त्रमालिख्य तद्द्रुतम् ॥३८॥
सम्पूज्य तत्र देवीं तामासुरीं विघ्नकारिणीम् । सुरामांसोपहाराद्यैर्निवेद्य विविधैस्तदा ॥३९॥
स्वयं दिग्वसनो भूत्वा श्मशानभसिताऽऽश्रयः । पपौ सुरां करोटीस्थां वाममार्गसमाश्रयः ॥४०॥
जजाप जप्यं कैकस्या मालया दक्षदिङ्मुखः । समन्तान्नग्नयुवतीगणेन परिवारितः ॥४१॥
एवं संसाध्य तद्यन्त्रं विषङ्गाय ददौ तदा । वत्सैतच्छक्तिसेनाया मध्येऽभिमुखभावतः ॥४२॥
ललितारथराजस्य निक्षिप्याऽऽयाहि सत्वरम् । अमोघं विघ्नयन्त्रं तदादाय तत्र संययौ ॥४३॥

तब हम दैत्यसेना को साथ में ले जाकर विना प्रयास के ही (सरलता से) अतिशीघ्र शक्तिगण को नष्ट कर देगें इसमें कोई सन्देह मत कर। जा, उठ, शोक से उत्पन्न हुए, बल को नष्ट करनेवाले सन्ताप को अब छोड़।" ॥ २३-३५ ॥

इस प्रकार भाई के कथन को सुन कर महामाया से विमोहित युद्धमें शक्तिगण पराजित ही होगयी है ऐसा निश्चय कर वह अत्यधिक हर्षित हुआ। छोटा भाई अपने भाई के बुद्धिकौशल की प्रशंसा करता हुआ उसकी स्तुति करने लगा। अनन्तर दैत्यराज भण्ड को विशुक्र ने यह मन्त्रणा बतायी उससे अनुमति पाकर उस विघ्नकरनेवाले यन्त्र को शिलापट्ट पर बनाया। स्नान कर अतयन्त पवित्र विधान से उस यन्त्र को शीघ्र लिख वहां विघ्नकारिणी आसुरी देवी का भलीप्रकार पूजन कर सुरा तथा मांस के नानाविध उपहारादिकों से नैवेद्य लगा स्वयं नग्न होकर श्मशान की चिता का भस्म लगा। वाममार्गी बन कपाल में रखी सुरा पीकर राक्षसी विधान की माला से दक्षिण दिशा की ओर मुख कर चारों ओर से नग्न युवतियों से घिरा वह आसन पर बैठा जपमन्त्र जाप करने लगा ॥ ३६-४१ ॥

उसने इस प्रकार उस यन्त्र को सुष्ठुप्रकार से सिद्ध कर विषङ्ग को दिया और कहा, " हे वत्स ! शक्तिसेना के बीच में उनकी ओर मुख करके ललिता के रथराज की ओर फेंक कर शीघ्र चले आना।" उस अमोघ विघ्नयन्त्र को लेकर वह वहां गया। रात्रि के शेष होने पर विषङ्ग ने ज्वालासाल (ज्वालामय प्राकार) को देखा। उसे अपने

रात्रिशेषे विषङ्गोऽथ ज्वालासालं ददर्श ह । अधृष्यं तं समालक्ष्य द्वारे शक्तिगणं तथा ॥४४॥
न तत्समीपं गतवान् भीत्या दूरे समास्थितः । विचार्य खमवप्लुत्य सालं तमतिवर्तितुम् ॥४५॥
असमर्थो बलेनाऽन्तः प्रक्षिप्य प्रययौ पुनः । मत्वा कृतार्थमात्मानमाचख्यावग्रजाय तत् ॥४६॥
विघ्नयन्त्रेण विहताः शक्तयः स्युरतो द्रुतम् । यस्मादमोघं तद्यन्त्रमापूर्य समधिष्ठितम् ॥४७॥
इति मत्वा युद्धविधावुद्योगं विदधेऽसुरः । विशुक्रः सर्वदैत्यानां सेनया भ्रातृसंयुतः ॥४८॥
राजपुत्रैश्च राज्ञा च निर्ययौ नगराद्बहिः। योषित्स्थविरबालांश्च वर्जयित्वाऽखिलाऽसुराः ॥४९॥
रक्षणार्थं शून्यकस्य निक्षिप्याऽक्षौहिणीमिताम् ।
निर्ययुः सर्व एवैते दैत्या युद्धाय दंशिताः ॥५०॥
आजग्मुरग्निसालस्य समीपमतिवेगतः । दृष्ट्वाऽप्रधृष्यन्तं सालं भेत्तुं ते मन आदधुः ॥५१॥
विशुक्रप्रमुखा दैत्या अस्त्राणि ससृजुस्ततः । वायव्यं पार्वतं चान्द्रं शैशिरं पार्थिवं तथा ॥५२॥
सामुद्रं वारुणं वार्षं पार्जन्यप्रमुखानि च । विसृष्टं सालमभितो मन्त्रसन्धानसन्धितम् ॥५३॥

द्वारा अमर्षणीय जान तथा द्वार पर शक्तिगण को रक्षा करते देख उसे अप्रधृष्य मानकर उसके सन्निकट नहीं गया व स्वयं भय से दूर पर ही खड़ा रह गया। विचार कर आकाश में उड़ कर साल को पार करने में असमर्थ हुआ वह अपना पूरा बल लगाकर उसे अन्दर फेंककर आ गया; फिर अपने को कृतकृत्य मान अपने बड़े भाई से कहा, 'विघ्नयन्त्र से प्रभावित वे सम्पूर्ण शक्तियां अवश्य मारी जायेंगी।" अतः शीघ्र उस अमोघ यन्त्र का प्रभाव चारों ओर स्थित ही है यह मान कर असुर ने शक्तियों से युद्ध करने का प्रयत्न किया। विशुक्र सब दैत्यों की सेना सहित भाई के साथ राजपुत्रों और राजा को लेकर शून्यकनगर से बाहर आया। स्त्रीगण, वृद्ध और बालकों को छोड़कर सभी असुर लोग शून्यकनगर के रक्षणार्थ एक अक्षौहिणी सेना को नियुक्त कर युद्ध के लिये तैयार हो निकले ॥४२-५०॥

वे लोग अत्यन्त वेग से अग्निज्वाला परिपूर्ण साल के समीप प्रबल वेग से आये। उस न टूटनेवाले अमोघ साल को उन्होंने तोड़ने का निश्चय किया। तब विशुक्र प्रमुख दैत्यगण ने ये अस्त्र छोड़े, वायवीय, पार्वत्य, चान्द्र, शैशिर, पार्थिव, सामुद्र, वारुण, वार्ष तथा पार्जन्य प्रमुख पृथक्-पृथक् अस्त्र मन्त्रसन्धानसे अभिमन्त्रित कर इसप्रकार छोड़े कि संवर्तक प्रलयकी अग्नि के समान उस साल को तृणवत् जला डाले। तब भी उस

संवर्ताऽग्निस्तृणमिव सालो निःशेषतां नयत्। मत्वाऽभेद्यन्तु तं सालं विशुक्रप्रमुखाऽसुराः ॥५४॥
उत्प्लुत्य यातुमन्तस्ते मन उच्चैः समादधुः। उत्प्लुत्य यावद्यो दैत्यो गन्तुमन्तः समीप्सति ॥५५॥
ततोऽधिकतरं तत्र प्राकारः समवर्धत। तदप्यशक्यं मत्वा ते प्रवेष्टुं द्वारमाययुः ॥५६॥
प्रविशन्तं ततोऽप्यग्निः क्षणाद्भस्मीकरोत्यलम्। मत्वाऽन्तर्गमनं तस्य दुर्घटं द्वारदेशगाः ॥५७॥
शस्त्राणि द्वारमार्गेण चाऽस्त्राण्यलमवाऽसृजुः। विदित्वा दैत्यसेनायाः सन्नाहं द्वाररोधनम् ॥५८॥
दण्डराज्ञी शक्तिसेनासज्जनार्थं समादिशत्। विघ्नयन्त्रेण विहताः शक्तयः सर्वतः स्थिताः ॥५९॥
आलस्योपहताश्चाऽन्या निद्रामोहसमाकुलाः। दण्डराज्ञीसमादेशं न किञ्चिन्मानयन्ति ताः ॥६०॥
किन्नः कृत्यं युद्धविधौ दैत्यानां घातनं कुतः। न नोपराद्धं दैतेयैः कथं तैर्विग्रहो मतः ॥६१॥
कुतो वध्या दैत्यगणा देवानामिष्टसिद्धये। दैत्येष्टसिद्धये कस्मान्न वध्या देवतागणाः ॥६२॥

साल को अभेद्य मान विशुक्र प्रमुख दैत्यगण ने उसमें जाने के लिये कई युक्तियाँ मनोवेग से तैयार की; आकाश में उड़ कर जैसे ही कोई दैत्य उस साल में अन्दर जाने की चेष्टा करता उसके छलांग मारने की ऊंचाई से भी अधिक वह बढता गया। उसे भी अपनी शक्ति के बाहर अशक्य समझ वे प्रवेश पाने के लिये द्वार के निकट आये; उसमें प्रवेश करते समय क्षणभर में ही अग्नि भस्म कर देता। द्वार देश पर गये हुए वे दैत्यगण उसके अन्दर प्रवेश करना अत्यन्त दुर्घट (कठिन) जान शस्त्रों और अस्त्रों को द्वार मार्ग से छोड़ने लगे। दैत्य-सेना के द्वारा द्वार को रोक रखने का प्रयत्न देख कर दण्डराज्ञी ने शक्तिसेना को उद्यत होने के लिये आदेश दिया। विघ्नयन्त्र की शक्ति से प्रभावित हो शक्तियां सबओर से इतस्ततः आलस्य से हाथ पर हाथ धरे स्थित थी, अन्य निद्रा और मोह से आकुल थी; वे कोई भी दण्डराज्ञी के आदेश को कुछ भी नहीं मान रही थी। (विघ्नयन्त्र के प्रभाव से शक्तिसेनायें इस भांति सोचने लगी) "रणक्षेत्र में युद्ध के लिये हमें कुछ कार्य नहीं करना है, इन दैत्यों को क्यों मारा जाय? इन दितिपुत्रों ने कोई अपराध तो नहीं किया; इनके साथ युद्ध क्यों माना जाय? देवगण के अभीष्टकार्य को सिद्ध करने के लिये दैत्यगण का वध क्यों इष्ट है? दैत्यगणकी इष्टप्राप्ति के हेतु देवतालोगों को ही क्यों न मारा जाय? ॥५१-६२॥

वह दण्डराज्ञी प्रकृति सेही क्रोध वाली है साथ में मन्त्रिणी मद्यपान की अधिकता से मतवाली हो मद में चूर है

प्रकृत्या कोपना दण्डराज्ञी सा मन्त्रिणी तथा। पानप्रकर्षतो मत्ता विचारः स्यात्तयोः कुतः ॥६३॥
महाराज्ञ्यपि कामेशविलासपरमा तदा । युक्ताऽयुक्तविचारेण स्वतो हीना तु सर्वदा ॥६४॥
मन्त्रिण्या मत्तया प्रोक्तं मनुते सर्वथा हितम् ।
बालायाः को विचारः स्यात् क्रीडासक्ता हि सा सदा ॥६५॥
अहो मोहस्य माहात्म्यं किमर्थमसुरा हताः । व्यर्थहिंसाऽपराधेन प्राप्स्यामो नाशमञ्जसा ॥६६॥
इतो निर्गत्य तीर्थेषु गत्वा विहितमार्गतः । दैत्यहिंसनदोषस्य कुर्मो निष्कृतिमादरात् ॥६७॥
काश्चिदाहुर्वृथा युद्धादलं नो दुःखवर्धनात्। गत्वा स्थानेषु तपसा साधयामः समीहितम् ॥६८॥
अन्या ऊचुरलं युद्धैर्दुःखदैर्देहनाशनैः । अनुरूपं पतिं प्राप्य क्रीडामोऽविरतं सुखम् ॥६९॥
वदन्त्य इत्यादि बहुपृथङ मतसमाश्रयाः । न युध्यामो वयं व्यर्थं तवाऽऽज्ञायां न च स्थिताः ॥७०॥
क्रोधं करिष्यसि यदि युध्यामस्तर्हि वै त्वया। वृथाऽभिमानं माकार्षीर्मन्त्रिण्या मत्तया सह ॥७१॥

उन दोनों से मिलकर ही क्यों विचार किया जाय ? इधर महाराज्ञी भी कामेश्वर के साथ सदा स्वलीलाविलास में ही परमलीन रहती है। क्या उचित है तथा क्या अनुचित है इसका विचार करने की स्वयं उसमें शक्ति ही नहीं है; वह तो सदा मन्त्रिणी के कहे वचन को ही सर्वप्रकार से हितकर मानती है। बाला का क्या विचार हो ? वह तो सदा खेल में लगी रहती है। अहो ! मोह का माहात्म्य भी क्या है ? इन असुरों को किसलिये मारा गया ? हम लोग तो वृथा हिंसा के अपराध से अति शीघ्र नष्ट हो जावेंगी। इन सबझंझटों से निकल कर तीर्थों में जाकर विधिविधान से दैत्यों को मारने के दोष का अत्यन्त आदरपूर्वक निस्तार करेंगी।" इसके साथ ही (विघ्नयन्त्र के चक्कर में चढी हुई) दूसरी शक्तियां कहने लगीं, "हमलोगों के दुःखों के बढानेवाले इस व्यर्थ के युद्ध से विरत होना ही उचित है; एकान्त स्थानों में जाकर तपस्या से अभीष्ट फल की हमें प्राप्ति करनी चाहिये ॥" ॥६३-६८॥

अपर शक्तियां बोली, "देहका विनाशकरनेवाले, कष्टप्रद इन युद्धों से अब बस करना चाहिये; अपने समान उम्र के तथा रूपवाले अनुकूल पति प्राप्तकर हम अविराम सुखपूर्वक क्रीडा का उपभोग करेंगी।" आदि आदि बोलती हुई वे बहुतप्रकार के पृथक् नाना मतों का अनुसरण करती हुई देवी दण्डिनी से कहने लगी, "हम लोग व्यर्थ युद्ध नहीं करेंगी और तुम्हारी आज्ञा में हम नहीं है । यदि तू क्रोध करेगी तो हम लोग तुम्हारे साथ लड़ेंगी। मत्त हुई मन्त्रिणी के साथ वृथा

अस्मान् युद्धे समासाद्य विमदा शीघ्रमेष्यसि ।
तत्रोचुरन्याः संक्रुद्धाः शूकरास्ये सदा हि नः ॥७२॥
कुतः क्रुध्यसि नेत्राणि करालान्यवमुञ्चसि । व्रज शीघ्रमितो नो चेदक्षीणि विनिपातये ॥७३॥
न निर्लज्जा शूकरास्या त्वत्समा भवति क्वचित् ।
अन्याऽब्रवीत् खड्गकरा निपत्याऽभिमुखे ततः ॥७४॥
किं बलास्यति मे वाक्यं शृणु कोलाऽऽनने यदि ।
दर्पोऽस्ति चेन्मया युद्धे वीर्याद्बुद्धिं समीकुरु ॥ ७५ ॥
जीवितं हास्यसि मुधा युद्ध्वा शस्त्रहता मया । इति दृष्ट्वा शक्तिगणं दण्डिन्यत्यन्तविस्मिता ॥७६॥
कुत एतदकाण्डे वै शक्तीनां बुद्धिनाशनम् । इति मत्वा द्रुतं गत्वा मन्त्रिण्यै तन्निवेदयत् ॥७७॥
मन्त्रिण्यपि च शक्तीनां बुद्धिनाशं निशाम्य तु । विस्मिता श्रीमहाराज्ञीमासाद्य प्रणताब्रवीत् ॥७८॥
मातरत्यद्भुतो विघ्नो नन्वस्माकमुपस्थितः । नूनं भवेत्तु दुष्टानां दैत्यानामेव चेष्टितम् ॥७९॥
शक्तीनां बुद्धिनाशोऽत्र दृश्यतेऽतिभयङ्करः । दैत्याः सालमुखप्रान्ते सन्नद्धाः समुपस्थिताः ॥८०॥

अभिमान मत करना । हम लोगों से लड़ कर शीघ्र ही तुम्हारा मद विगत हो जायगा । उस विषय में अन्य शक्तियाँ बोली, "हे शूकरास्ये ! तू सदा ही हमलोगों पर क्रोध करती रही हो, क्यों कराल नेत्रों को कर भीषण आकृति बनाती हो और क्रोध करती हो ? यहां से जल्दी चली जाओ । नहीं तो हम तुम्हारी आखें निकाल लेंगी ? वराहकेसे मुखवाली तेरे समान क्या कहीं कोई भी निर्लज्ज स्त्री होगी ? तब वाराही के सामने आकर तलवार हाथ में ली हुई अन्य शक्ति बोली, "हे कोलमुखि ! तुम बल दिखाओगी तो मेरी बात सुनो । यदि तुम्हें अभिमान है तो मेरे से युद्ध करने के पूर्व बल द्वारा अपनी बुद्धि को ठीक बनालेना । कहीं मेरे साथ युद्ध कर अपने जीवन से व्यर्थ ही हाथ न धो बैठोगी ।" इसप्रकार शक्तिगण को देखकर दण्डिनी अत्यन्त विस्मित हुई ॥६६-७६॥

"असमय में यह शक्तियों की बुद्धि का अत्यन्त विनाश कैसे हुआ ?" यह सोचकर शीघ्र ही मन्त्रिणी को सारा वृत्तान्त उसने जा सुनाया । मन्त्रिणी ने भी शक्तियों के बुद्धिनाश की बात सुनकर विस्मित होकर श्रीमहाराज्ञी के निकट जाकर प्रणामपूर्वक कहा, "हे मातः ! निश्चय ही हम लोगों के सम्मुख अत्यन्त अद्भुत विघ्न उपस्थित है; वह अवश्य ही इन दुष्ट दैत्यों का ही प्रयत्न है, युद्ध भूमि में इस समय इन शक्तियों का अत्यन्त ही भीषण रूप से बुद्धि का नाश हुआ देखा जाता है; दैत्यगण प्राकार के आगे के भाग में युद्धार्थ सज्जित उपस्थित हैं । दण्डिनी और मुझे

दण्डिनीं मा च चक्रस्थशक्तीर्हित्वा ह्यशेषतः। भिन्नस्वभावाः सम्भूताः शक्तयो रोषभाषणाः॥८१॥
द्रुतं विधेहि यत्कृत्यं नाऽर्हः कालो विलम्बने। यद्यप्यखिलदैत्याश्च तव भ्रूभङ्गमात्रतः ॥८२॥
न भवेयुस्तथाप्येतन्नाऽस्माकं सम्मतं भवेत्। अस्मासु दयया मातर्द्रुतं प्रतिविधत्स्व तत् ॥८३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललिताचरित्रे शक्तिसेनासु विघ्नयन्त्रप्रयोगजनितविघ्नकरणवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥५८९८॥

चक्रस्थित सब शक्तियों को छोड़कर सारी की सारी शक्तियां ही एक साथ विपरीत स्वाभाववाली होकर क्रोध की भाषा में बातें करती हैं। जो करने का कार्य है, उसे अत्यन्त शीघ्र कीजिये अब विलम्ब करने का समय नहीं है। यद्यपि अखिल दैत्यगण आपकी भ्रूभङ्गिमा के निक्षेपमात्र से ही कुछ बिगाड़ नहीं सकते तो भी हमें यह समुचित प्रतीत नहीं होता। आप हम लोगों पर दया करके जो प्रतिविधान (उपाय) है उसे कहिये।" ॥ ७७-८३ ॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में ललिताचरित्र में दैत्यों द्वारा विघ्नयन्त्रप्रयोग द्वारा शक्तिसंघ की बुद्धिविषमता नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

सर्वसेनासमागमवर्णनम्

प्रार्थितैवं श्यामलया श्रीमाता परमेश्वरी । लीलां वितन्वती शीघ्रं संस्मितप्रेमभावतः ॥१॥
कोटीन्दुकिरणाऽऽभासान् शृङ्गाराऽमृतवर्षणान्। कटाक्षान् कामेशमुखसौन्दर्याब्धावमूर्च्छयत्॥२॥
अथो देवी स्मिताऽऽलोककामेशमुखसङ्गतेः। गणनाथः समुदभूदिभास्योऽरुणसम्प्रभः ॥३॥
गदां शूलं शङ्खमब्जं विषाणं दक्षबाहुभिः । मातुलुङ्गं धनुश्चक्रं पाशं धान्यस्य मञ्जरीम् ॥४॥
वहन् वामकरैः शुण्डासमात्तमणिभाजनः । रक्तकौशेयवसनो दिव्यमाल्यविभूषणः ॥५॥
त्रिनेत्रश्चन्द्रचूडालो मणिकोटीरमण्डितः । शक्त्या समाश्लिष्टदेहो गलन्मदजलाऽऽविलः ॥६॥
प्रणम्य ललितां देवीं बद्धाञ्जलिपुटोऽब्रवीत् । देवि ब्रूहि मया यत्तत्कृत्यमत्र रणोद्यमे ॥७॥

बहत्तरवाँ अध्याय

श्यामला द्वारा इस प्रकार प्रार्थना की जाने पर श्रीमाता परमेश्वरी सम्यक्प्रकार से स्मित और प्रेमभाव से लीला करती हुई, कोटि चन्द्रों की किरणों की सी आभासवाले, शृङ्गाररूपी अमृत की वर्षाकरनेवाले कामकटाक्षों को भगवान् श्रीकामेश के मुख के सौन्दर्यरूपी समुद्र पर छोड़ने लगी। अनन्तर देवी के स्मितहास्य के प्रकाश में कामेश्वर के मुख के सम्मिलन से हाथी के मुंह वाले लाल वर्ण की कान्तिवाले गणनाथ का आविर्भाव हुआ। जो दक्षिण की भुजाओं में गदा, शूल, शंख, कमल और विषाण (सींग) तथा वाम हस्तों में बिजौरा, धनुष, चक्र, पाश और धान्य की मञ्जरी धारण किये शुण्डादण्ड (सूण्ड) में मणियों के भूषणों से भूषित, लाल रेशमी वस्त्र धारण किये, दिव्यमाला से आभूषित, तीननेत्रधारी, चन्द्रमा को अपने केशों में धारणकिये, मणिमुकुट से मण्डित स्वशक्ति से सामरस्यप्राप्तदेहवाला और गण्डस्थल से बराबर मदजल टपकाते हुए विराजमान गणनाथ शोभित हुआ ॥१-६॥

ललिता देवी को प्रणाम कर हाथ जोड़ कर वह बोला, "हे देवि! इस युद्ध में मेरे लिये जो

तत्ते कृपावशादेव साधयाम्यतिदुःशकम् । श्रुत्वैवं प्राह गणपं ललिताम्बा महेश्वरी ॥८॥
गच्छ वत्स दैत्यकृतमभिचारं विनाशाय । एवं तया समाज्ञप्तो गणेशो धूनयन् करम् ॥९॥
विचिन्वन्नभितस्तत्र क्षणाद्यन्त्रं समासदत् । आसाद्य विघ्नयन्त्रं तच्छक्तिसङ्घस्य पश्यतः ॥१०॥
वज्रसारमपि क्रोधाद्विभेद रदघाततः । निमिषात्तच्चूर्णयित्वा तिलशस्तदनन्तरम् ॥११॥
ज्वलत्सालद्वारभागान्निर्ययौ योद्धुमुत्सुकः । निविश्य दैत्यसेनां तां युयुधे दैत्यपुङ्गवैः ॥१२॥
पिपेष गदया कांश्चित् कांश्चिच्चिच्छेद चक्रतः । शूलेन दारयच्चान्यान् शरैरन्यान् विभेद च॥१३॥
अमारयद्विषाणेन दैत्यानन्यान् सहस्रशः । एवं दैत्यपतीन् भूयो गणेशः क्षयमानयत् ॥१४॥
कर्णतालमहावायुविधूता दैत्यवाहिनी । नासावायुमहावेगविकृष्टाः सङ्घशोऽसुराः ॥१५॥
अवशा विवशुः शीघ्रं शुण्डासुषिरमार्गतः। शुण्डाऽन्तर्भागसङ्घट्टान्मृताश्छिन्नाऽङ्गबन्धनाः॥१६॥

कृत्य है उसे बताइये सो मैं अत्यन्त कठिनता से भी करने योग्य होगा तो भी आपकी कृपा से सम्पन्न करूंगा।" इस प्रकार गणेश को कहते सुनकर महेश्वरी ललिताम्बा बोली, "हे वत्स ! जा; दैत्यों द्वारा जो आभिचारिक प्रयोग किया गया है, उसे नष्ट कर।" इस प्रकार भगवती द्वारा आदेश पाकर गणेश अपने हाथ को मींजता हुआ चारों ओर देखता हुआ वहां क्षणभर में विघ्नयन्त्र को पा गया। विघ्नयन्त्र को प्राप्त कर उन शक्तिगणों के देखते देखते वज्रसारभूत भी उस यन्त्र को अपने दांतों के तले दबा कर निमेष में ही उसे चूर्ण कर किरचा किरचा बनाकर क्रोध से नष्ट कर दिया। उस अत्यन्त प्रज्वलित साल के द्वारभाग से युद्ध करने को उत्सुक वह निकला और दैत्यों की उस सेना में घुस दैत्यपुङ्गवों से लड़ने लगा। ॥ ७-१२ ॥

उसने किन्हीं दैत्यों को गदा से पीस दिया, कोई को चक्रसे काट डाला, अन्य दैत्योंको शूलसे छिन्न भिन्न किया, कई को बाणों से बेंध दिया और सहस्रों को विषाणास्त्र से मार गिराया। इस प्रकार गणेश ने दैत्यपतियों का बारबार नाश किया ॥ १३-१४ ॥

भगवान् गणनाथ के कर्णताल की महावायु से उड़ायी गयी राक्षसी सेना नष्ट हो गयी। उसके शुण्डाग्रभाग की नासा से निकली वायु के महावेग से खिचे हुए समूहों में विवश हो सूण्ड के छिद्रमार्ग से शीघ्र घुस गये। वे लोग सूण्ड के अन्तर्भाग में टक्कर खाने से अङ्गबन्धन सब ढीले हो जाने के कारण मृतक होगये।

केचिन्मूर्च्छामनुप्राप्ता निश्वासाद्भुवि पोथिताः ।
प्राणान् जहुस्तथाऽन्ये चाऽक्षताः श्रोत्रविलायनात् ॥१७॥
विनिर्गताः कर्णतालाऽऽस्फालिता जीवितं जहुः । एवं विनाशयन् दैत्यांस्तत्सेनायां गणेश्वरः ।१८।
भण्डपुत्रान् समादाय गदापापैरपातयत् । विषङ्गं हृदि दन्तेन चकराऽत्यन्तविक्षतम् ॥१९॥
विषङ्गो राजपुत्राश्च यदा मूर्च्छामुपाऽऽययुः । तदा दृष्ट्वा दैत्यगणा मत्वा प्रत्यक्षमन्तकम् ॥२०॥
हा हेति भीताः समरं त्यक्त्वा दूरं पलायिताः ।दृष्ट्वैवं विद्रुतं सैन्यं विशुक्रोऽतिरुषान्वितः॥२१॥
आययौ रथसंस्थानो युध्यन्तं विघ्ननायकम् । अथाऽभवन्महायुद्धं विशुक्रगजवक्त्रयोः ॥२२॥
शस्त्राऽस्त्रवर्षणं घोरं परस्परजयैषणम् । अथेभवक्त्रः सङ्क्रुद्धो गदापातेन तद्रथम् ॥२३॥
साऽश्वं ससारथिं शीघ्रं चूर्णयामास संयुगे । अथ क्रुद्धो विशुक्रोऽपि गदामुद्यम्य वेगतः॥२४॥
प्राहरत् कुम्भयोस्तस्य सर्वप्राणेन मन्युना । गदाप्रहारसम्भिन्नकुम्भदेशाद्गणेशितुः ॥२५॥
बहु सुस्राव रुधिरमथ क्रुद्धो गणाधिपः । जघान शूलेन हृदि विशुक्रस्याऽतिवेगतः ॥२६॥

कई उसके निःश्वासवायु से मूर्च्छित हो भूमि पर ढेर हो गये, कोई निःश्वास से बाहर निकल गये, कई कानों को हिलाने से विना चोट ही निकलभागे तथा कईयों ने उसके कर्णतालों के चपेट में आकर अपने प्राण छोड़ दिये। गणेश्वर ने इस प्रकार उक्त दैत्यसेना के असुरों का नाश करते हुये भण्डपुत्रों को गदा के प्रहार से गिरा दिया। अपने दांत से विषङ्ग के हृदय को विदीर्ण कर उसे अत्यन्त क्षत-विक्षत कर दिया ॥१५-१९॥

जब विषङ्ग और राजपुत्र मूर्च्छित होगये तब दैत्यगण ने इस सारे कार्यकलाप को देखकर गणेश को प्रत्यक्ष में ही अन्त करनेवाला मान कर हाहाकार कर डर कर उस युद्ध को छोड़कर दूर भागने का उपक्रम किया। इस प्रकार सेना में हड़बड़ी देख अत्यन्त क्रुद्ध होकर रथ पर चढ़ कर विशुक्र युद्ध करतेहुए विघ्ननायक के सामने आया। अब विशुक्र और गजवदन गणनाथ के बीच महायुद्ध हुआ। यह शस्त्रास्त्रों का वर्षणकरनेवाला तथा परस्पर में विजय की इच्छा को बढ़ानेवाला घोर युद्ध था। अनन्तर गजमुख गणनायक ने क्रुद्ध हो युद्ध में उसके सारथि तथा अश्व समेत रथ को चूर्णविचूर्ण कर दिया। अब क्रुद्ध हो विशुक्र ने भी गदा लेकर प्रबल वेग से उसके कुम्भ (गण्डस्थल) भाग में पूरी शक्ति से क्रोध कर प्रहार किया। गणेश के गदा प्रहार से आहत कुम्भप्रदेश से रुधिर बहुत निकला। तत्पश्चात् गणाधिप ने अत्यन्त रोषाविष्ट हो विशुक्र के हृदय में अत्यन्त वेग से शूल द्वारा प्रहार किया ॥२०-२६॥

शूलनिर्भिन्नहृदयो विशुक्रो मूर्च्छितोऽपतत् । एवं विशुक्रं निर्जित्य ययौ भण्डरथं प्रति ॥२७॥
दृष्ट्वाऽऽयान्तं नियुद्धाय गणेशं स्वात्मना सह । विचारयत् स्वान्तरङ्गे तमजेयं विभावयन्॥२८॥
एष योद्धुं समायाति सिन्धुरास्यो मया सह । अजेयोऽयं महावीर्यः सर्वैर्देवासुरैरपि ॥२९॥
मम सङ्कल्प एषोऽस्ति तदा श्रीललिताऽम्बया । शस्त्रैर्हत इमं देहं त्यक्त्वा तल्लोकमाप्नुयाम्।३०।
तत्र विघ्नमिमं मन्ये कथं मे स्यात् समीहितम् । नूनमेष पुरा युद्धं चक्रे येन महौजसा ॥३१॥
द्विपाऽसुरेण तं स्रक्ष्ये तेनैष समियाद्रणे । ततोऽहं तां समायास्ये योद्धुं श्रीललिताम्बिकाम्३२
इति निश्चित्य ससृजे गजदैत्यं महाद्भुतम् । पर्वताऽऽभं महाभीमं परिघोद्यत्सुपुष्करम् ॥३३॥
अभिद्रवद्गणपतिं स दैत्यो भण्डदेशितः । आसाद्य गजदैत्यं तं युयोध गणनायकः ॥३४॥
एवं युध्यति नागास्ये विघ्नयन्त्रस्य नाशनात् । शक्तयः प्रकृतिं प्राप्य निर्ययुर्युद्धहेतवे ॥३५॥

शूल का आघात दानव के हृदयप्रदेश को भेद गया जिससे विशुक्र मूर्च्छित हो गिर गया। इसप्रकार विशुक्र को जीतकर वह भण्ड के रथ की ओर गया। गणेश को अपने साथ युद्ध करने के लिये आते देख उसे अजेय मानते हुए भण्ड ने अपने मन में विचार किया, "यह गजवदन गणनाथ मेरे साथ युद्ध करने को आता है, सभा देवगण और असुरों द्वारा भी यह महापराक्रमी अजेय है। मेरा सङ्कल्प यह है कि श्रीललिताम्बा द्वारा शस्त्रों से वध किया गया मैं इस देह को छोड़ उसके धाम को प्राप्त करूँ। उस विषय में मैं इसे विघ्न मानता हूँ, मेरी दीर्घकाल से अभिलाषित इच्छा कैसे पूर्ण हो? अवश्य ही इसने पहले जिस महातेजस्वी 'द्विप' नामक असुर से युद्ध किया था उसे मैं बनाऊँगा जिससे यह उससे युद्ध में लगा रहे। तदनन्तर मैं श्रीललिताम्बा से युद्ध करने जाऊँगा।"॥२७-३२॥

इस प्रकार निश्चय कर उसने महाअद्भुत पर्वत के सदृश, महाभीमकाय बड़े सुन्दरकमल के समान लौहगदा को धारे हुए, द्विप दैत्यको बनाया; वह भण्ड के आदेश को पाकर गणपति की ओर दौडा। गणनायक ने गजदैत्य के निकट आने पर उससे युद्ध किया ॥३३-३४॥

इसप्रकार उस गजानन के युद्ध करते रहने के समय विघ्नयन्त्र के नाश से शक्तियाँ पूर्ववत् प्रकृतिगत स्वस्थ बन

आलक्ष्य युद्धसन्नाहं भण्डदैत्यस्य सर्वथा । अशेषदैत्यसेनानां मन्त्रिणी दण्डिनीयुता ॥३६॥
मन्त्रयित्वा महाराज्ञी स्वयं युद्धाय निर्ययौ । अशेषशक्तिसेनाभिर्दंशिताभिः परिवृता ॥३७॥
आदौ सम्पत्करी देवी रणकोलाहलाऽभिधे। समारुह्य भसेनाभिर्निर्जगामाऽतिसम्भ्रमात् ॥३८॥
अथाऽपराजिताऽश्वस्था निर्ययौ परमेश्वरी । अश्वारूढाऽश्वसेनाभिरावृता युद्धसम्भ्रमात्॥३९॥
तन्मध्ये श्रीमहाराज्ञया प्रतिरुद्धा रणोत्सुका । बाला प्रणम्य ललितां प्राह मञ्जुलया गिरा।४०।
मातर्मामनुजानीहि युद्धाय कृतनिश्चयाम् । सदा युद्धविधानाय समुत्सुकितमानसाम् ॥ ४१ ॥
त्वयाऽहं प्रतिरुद्धाऽस्मि प्रसक्तेऽपि महारणे । पादौ मूर्ध्ना स्पृशाम्येषा देह्याज्ञां समराय मे॥४२॥
चिरादुत्कण्ठिता युद्धे निर्गमं नो लभाम्यहम् ।
आद्ये दिनेऽपि मे युद्धं नाऽऽसीन्मानसपूरणम् ॥४३॥

युद्ध के लिये आगयों । भण्डदैत्य की सम्पूर्ण दैत्यसेनाओं के युद्ध में सर्वथा उपस्थित होने पर युद्ध के सज्जा-सम्भार को देख मन्त्रिणी तथा दण्डिनी के साथ महाराज्ञी ने मन्त्रणा कर स्वयं युद्ध के लिये प्रस्थान किया । उसके साथ सम्पूर्ण शक्तिसेनायें भलीप्रकार युद्धसाज से सज्जित थीं । सब के आदि में सम्पत्करी रणकोलाहल नामक अपने वाहन गजपर आरूढ हो हाथियों पर सवार शक्तिसेनाओं के साथ खूब सजधज से शोभयमान हो निकली ॥३५-३८॥

अनन्तर परमेश्वरी अपराजिता अश्व पर आरूढ हो आयी । उसके साथ युद्धसज्जा से सज्जित अश्वारूढ शक्तियाँ थी । उनके बीच में श्रीमहाराज्ञी द्वारा रोकी हुई रण करने के लिये अत्यन्त उत्सुक बाला थी; उसने ललिता भगवती को प्रणाम कर मधुर वाणी में कहा, "हे मातः ! आप मुझे युद्ध करने को पूर्ण सङ्कल्प ली हुई समझें; मैं सदा ही युद्ध करने को उत्साहपूर्वक इच्छा करती रही हूँ । इस महायुद्ध के चलने पर भी आपके द्वारा मुझे टाला ही गया है मैं आपके चरणों में शिर नवा कर प्रणाम करती हूँ परन्तु मुझे युद्ध करने के लिये आज्ञा दीजिये । बहुत दीर्घ समयसे युद्ध के लिये मैं फुरफुरायमाण वदन से उत्कण्ठित हूँ; खेद है कि मुझे युद्धका आदेश नहीं मिलता । प्रथम दिवस भी मेरे मन की अभिलाषा को पूर्ण करनेवाला युद्ध नहीं हुआ; बीचमें उस वाराही ने मेरे लिये व्यर्थ विघ्न कर दिया ।

मध्ये तया कोलमुख्या विहता युधि वै मुधा ।

अद्य मे पूरयस्वाऽऽशां चिरायुद्धाय सम्भृताम् ॥४४॥

इति बालावचः श्रुत्वा ललिता श्रीपराम्बिका । प्रहसन्ती मन्त्रनाथामुखं समवलोकयत् ॥४५॥

देव्याशयं विदित्वा सा कुमारीं प्राह मन्त्रिणी ।

कुमारि ! शृणु मे वाक्यं यदि त्वं योद्धुमिच्छसि ॥४६॥

तत्त्वया समन्येनैव योद्धव्यं यदि मन्यसे । एकेन सह युध्यस्व दण्डिन्या च मया सह ॥४७॥

युद्धे नौ न परित्यज्य दैत्यसेनासु चैकला । प्रवेष्टव्यं क्वचिद्वाऽपि तवाऽऽवां पक्षसंश्रये ॥४८॥

भवावस्तद्वदत्रैव केन युद्धं हि वाञ्छसि । श्रुत्वैवं मन्त्रिणीवाक्यं प्राह बालाऽम्बिका पुनः ॥४९॥

युध्याम्यहं भण्डपुत्रैर्न तेष्वन्या कथञ्चन । सर्वथा बाणमेकं वा विसृजेदहमेकला ॥५०॥

युद्ध्वा तैस्तान्निहन्म्येव न तद्वाहा रथा अपि ।

आयुधादीनि नाश्यानि अन्याभिर्जातु कुत्रचित् ॥५१॥

आज आप मेरी दीर्घकाल से सँजोयी युद्धकरने की अभिलाषा की आशा को पूर्ण करें ।" ॥३९-४४॥

इसप्रकार के बाला के वचनको सुनकर श्रीपराम्बिका भगवती ललिता हँसती हुई मन्त्रनाथा के मुख को जोहने लगी । देवी के आन्तरिक अभिप्राय को जानकर वह मन्त्रिणी देवी कुमारी से बोली,"हे बाले ! तू मेरा वचन सुन, यदि तू युद्ध लड़ना चाहती है और तेरे समान ही बल, वीर्य तथा पराक्रमवाले के साथ तुझे युद्ध करना है ऐसा ही मानती है तो एकके साथ सहयोगकर लड़; चाहे तो दण्डिनी के साथ अथवा मेरे साथ चली जा, या तुम्हें युद्धमें हमें छोड़कर दैत्यों की सेना में अकेली कहीं भी नहीं जाना होगा । तेरे पक्षमें हम दोनों में से कोई एक अवश्य रहेगी । उसी प्रकार तू किस के साथ जाकर दैत्यों से युद्ध करना चाहती है ?" इस प्रकार मन्त्रिणी का वाक्य सुनकर बालाम्बिका ने फिर कहा, "उन दैत्यसेना के वीरों में मैं भण्ड के पुत्रों के साथ ही लड़ूँगी, अन्य से नहीं । सर्वथा मैं अकेली ही एक बाण को छोड़ूँगी । उनसे युद्ध कर उन्हें मारूँगी; न उनके सारथियों को और न वाहनों को ही नष्ट करूँगी । अन्य किन्हीं देवियों द्वारा किसी भी रूप में कहीं आयुध आदि के नष्ट करने की आवश्यकता ही नहीं है ।" ॥४५-५१॥

श्रुत्वा बालावचो भूयो मन्त्रिणी तामुवाच ह। एकेन युध्यस्व रणे देव्यादिष्टे कथंत्वया ॥५२॥
त्रिंशद्भिर्व्रियते युद्धं नेदमौपयिकं तव । भण्डपुत्रा महाशूरा भण्डतुल्यपराक्रमाः ॥५३॥
भीमसंहननाः सर्वे कूटयुद्धविशारदाः । एकेन तेषु युध्यस्व येन योद्धुं समीप्सितम् ॥५४॥
इति वाक्यं श्यामलायाः श्रुत्वा बालाऽम्बिका ततः ।
प्रणम्य भूयस्तैर्युद्धमयाचत कृताऽञ्जलिः ॥५५॥
याचतीं तां समालोक्य प्रीता सा ललिताम्बिका । ददावनुज्ञां समरे आश्लिष्य प्रीतिपूर्वकम्५६
अथ प्राह पुनर्देवीं बाला श्रीत्रिपुरां तदा । मातरन्यच्छृणु वचो दण्डिन्येषा मया सह ॥५७॥
न तिष्ठतु युद्धभुवि भूय एषा पुरा मम । व्यनाशयद्युद्धरसं यद्यागच्छेन्मया सह ॥५८॥
पृष्ठतस्तिष्ठतु न तु विघ्नं भूयः करिष्यति । यदि युद्धे पुनर्विघ्नं करिष्यति तदा शृणु ॥५९॥
मया पराहतां युद्धे द्रुतमेनां प्रपश्यसि । एवं वदन्तीं बालां तां मत्वा रुष्टाश्च पोत्रिणी ॥६०॥

इस प्रकार बाला के वचन सुनकर मन्त्रिणी ने फिर उसे कहा, "देवी के द्वारा आदिष्ट होने पर कि रण में एक के साथ युद्ध करना तो तीस के साथ तू ने लड़ना क्यों चुना ? यह तेरे लिये समुचित नहीं। भण्ड के पुत्र महाबली शूरवीर हैं। पराक्रम में भण्ड के तुल्य हैं, वे बहुत भीषणरूप से युद्ध में पराक्रम दिखाते हैं; सभी कूटयुद्ध लड़ने में बहुत प्रवीण हैं। उन में से किसी एक के साथ जिससे तुझे युद्ध करने की इच्छा है, तू लड़।"॥५२-५४॥

श्यामला के ये वाक्य सुन कर तत्पश्चात् बालाम्बिका ने पुनः ललिता को प्रणामकर अञ्जलिबांध (हाथ जोड़े) युद्ध में भाग लेने के लिये मांग की। उसे याचना करते देख ललिता ने अत्यन्त प्रसन्न हो प्रभूत स्नेह से गाढ आलिङ्गन कर युद्ध के लिए आदेश दे दिया। आगे तब फिर बाला ने श्रीत्रिपुरा को कहा, "हे मातः ! आप मेरी और भी एक बात सुन लें; मेरे साथ युद्धक्षेत्र में यह दण्डिनी फिर नहीं रहनी चाहिये। पूर्व अवसर पर इसने जैसे मेरे युद्ध के आनन्द में बोधा कर दी थी वैसे इस बार भी मेरे साथ रहकर (वही बर्ताव करेगी।) मेरे पीठ पीछे भले ही रहे फिर मेरे युद्धके कार्य में विघ्न नहीं करेगी। यदि फिर भी युद्ध में विघ्न करेगी तो सुनिये। मेरे द्वारा ही इसे अत्यन्त पराहत हुई आप देखेंगी।" इसप्रकार कहती हुई उस बाला को रुष्ट जान वाराही ने उसे अत्यन्त

नत्वा तां सान्त्वयामास मृदुवाक्यैः सुपेशलैः । देवि शङ्कां त्यज मयि आगच्छामि त्वया सह ॥६१॥
निशामयामि ते युद्धं करोमि तव यत्प्रियम् । तवाऽऽज्ञामनुरुध्यैव पुरतः पृष्ठतोऽपि वा ॥६२॥
स्थास्यामि न हि विघ्नं मे भविष्यति च ते युधि ।
इति श्रुत्वा दण्डिनीं सा मोदादाश्लिष्य सत्वरम् ॥६३॥
रथमारुह्य तरसा निर्ययौ समरोत्सुका । मन्त्रिणी दण्डनाथा च स्वस्वस्यन्दनसंस्थिते ॥६४॥
ययतुः पार्श्वयोस्तस्याः शक्तिसेनासमावृते । अथ श्रीचक्रराजाख्यरथमारुह्य सत्वरम् ॥६५॥
युद्धाय निर्ययौ देवी वीरसन्नाहसन्नता । तत्पृष्ठतः समारुह्य तिमिरस्तोमसम्प्रभम् ॥६६॥
तुरगं मारुतजवं निर्ययौ सा तिरस्कृतिः । विकर्षन्ती शक्तिसेनाममेयां सागरोपमाम् ॥६७॥
अथ सेनाद्वयमुखमभूद्भीमं सुसङ्गतम् । युद्धवाद्यचित्ररवो नेमिघोषाऽतिमांसलः ॥६८॥
वीरास्फोटैर्हुङ्कृतैश्च गजमण्डलचीत्कृतैः । हयह्रेषितसंरावैर्वृर्वर्धेऽतितरां तदा ॥६९॥

कोमल मधुर वाणी से समझाया, "हे देवि ! मेरे लिये रञ्चमात्र भी शङ्का मत कर। मैं तेरे साथ आतो हूँ, तेरा युद्ध देखती हूँ और तेरे लिये जो प्रिय कार्य होगा वही करूँगी। तेरी आज्ञा के अनुसार चलकर ही आगे अथवा पीठ पीछे उपस्थित रहूँगी। तेरे युद्ध में मेरे द्वारा कोई विघ्न नहीं होगा।" यह सुन कर उस बाला ने अत्यन्त मोद से उसे शीघ्र आलिंगन कर रथपर चढ़ कर युद्ध करने को उत्सुक होकर प्रस्थान किया। मन्त्रिणी और दण्डनाथा अपने अपने रथों पर चढ शक्तिसेना को साथ लेकर उसके पार्श्व भागों में खड़ी होगयी। अब श्रीचक्रराज नामक रथ पर आरूढ होकर श्रीललिता देवी भी वीर शक्तियों की सेना के द्वारा सादर प्रणति की हुई अतिशीघ्र युद्ध के लिये आगयी। उसके पीछे अन्धकार के पुञ्ज को दूर करने को अत्यन्त प्रकाशमयी, अतिशय वायु वेगवाले घोड़े पर आरूढ हो वह तिरस्करिणी अमेय सागर के समान गम्भीर शक्तिसेना का आधिपत्य करती हुई स्वयं आ पहुंची। अब दोनों सेनाओं की अग्रिम पंक्तियाँ भीषणरूपसे आमने सामने खड़ी हो सन्निकट आगयी। युद्ध के बाजों का विचित्र शब्द, रथ के पहियों की नेमि से उठनेवाली ध्वनि से मिलकर अत्यन्त गम्भीर होता था, वीरगण के तर्जन-गर्जन और हुंकारों से, हाथियों की चिङ्घाड़ों तथा घोड़ों की हिनहिनाटों से तब वह शब्द और भी अधिक प्रबलरूप से बढ़ने लगा ॥५५-६९॥

अथ शस्त्रप्रपातोऽभूच्चटच्चटरवोद्धतैः । लोहितानां महाऽऽसारवर्षणोऽतिभयङ्करः ॥७०॥
हतोऽसि हंस्यसे शीं तिष्ठ मा विद्रुतिं त्यज । द्रुतं वीर्यं दर्शय ते पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥७१॥
एवं वचांसि बहुधा श्रूयन्ते तत्र सङ्गरे । शिथिलाङ्गाः शरैः केचित् केचित् परशुदारिताः ॥७२॥
शूलेष्वन्येऽभिसम्प्रोताः परे खड्गैर्विपाटिताः । निष्पिष्टाः परिघैरन्ये चक्रैश्छिन्नगलाः परे ॥७३॥
तोमरैर्भेदिताः केचिद्विक्षताः प्रासपट्टिशैः । भिन्दिपालैः शकलिता गदाभिर्भिन्नमस्तकाः ॥७४॥
दैत्या अभूवन् समरे शक्तिभिर्गाढसंहताः । सरितः शोणितवहा ववुस्तत्र सहस्रशः ॥७५॥
एवं शक्तिभिरत्यन्तमर्दिता दैत्यवाहिनी । पलायिता क्रन्दमाना शक्तिशस्त्राऽतिवेधिता ॥७६॥
असहन्ती शक्तिसेना सम्मर्दबलवत्तरम् । जलाशयाच्छिन्नबन्धात्तोयानीव क्षयं गता ॥७७॥
तदृष्ट्वा विहतां सेनां दैत्यानां भण्डसूनवः । चतुर्बाहुमुखास्त्रिंशत्सङ्ख्याश्चित्रपराक्रमाः ॥७८॥

आगे चटचटशब्दों से मिलकर लोहित अग्नियों के समान महाआसारवर्षणकरनेवाले अत्यन्त भयङ्कर शस्त्रों का प्रयोग होने लगा। 'अरे मारा गया', 'शीघ्र मारा जायगा', 'शीघ्रता मतकर', 'अपने पराक्रम को शीघ्र दिखा' और 'मेरा पराक्रम भी आज देख' इस प्रकार बहुत बार नानाप्रकार की युद्धोन्मादकरा वाणियां रणक्षेत्र में सुनाई देने लगीं। कोई दैत्य बाणों से शिथिल अंग हो भूमि पर मरणासन्न पड़े थे, कोई कोई फरशों से काट डाले गये, अन्य राक्षसगण शूलों में पिरो दिये गये; दूसरों को तलवारों के आघातसे क्षतविक्षत कर दिया गया, परिघों (लौहजटितदण्डास्त्रों) द्वारा दैत्य पीस दिये गये, अन्य दैत्यों के गले चक्रों से काट दिये गये, तोमरों से बहुत से हत होगये। प्रासपट्टिशों (बरछियों व तीक्ष्ण नोकदार भालों) से कई घायल कर दिये गये भिन्दिपालों (फेंककर मारने के दण्डों) द्वारा कई राक्षसों के टुकड़े टुकड़े बना दिये गये। कई राक्षसगण गदाओं से मस्तक तोड़े जाने से लोटपोट हो भूमिपर ढेर हो गिरे। इसप्रकार दैत्यगण शक्तियों द्वारा अत्यन्त कसकर प्रहार किये गये और विकल हुए। अत्यधिक मात्रा में रक्तबहानेवाली हजारों ही सरितायें बहने लगी। इस प्रकार शक्तियों की सेना के शस्त्रों के प्रहारों तथा आघातों से त्रस्त हो दैत्यसेना बहुत अधिक क्रन्दन (चीत्कारें) करती हुई भाग गयी। शक्तिसेना का एक साथ आक्रमण करना दैत्यों के लिये असह्य हो गया। जलाशय के बांध के टूट जाने पर जल के एकसाथ निकलने के समान उनकी शक्ति क्रमशः क्षीण होती चली गई। दैत्यराजभण्ड के पुत्रों ने सेना के इस आशातीत संहार को देख चार बाहुओं और मुखों वाले विचित्र पराक्रमशील उन तीस संख्यावाले भण्ड के ही समान बलशाली, शस्त्रों और अस्त्रों के चलाने में पूर्ण निपुण, युद्धमें प्रहार करने पर विपक्षी को खाली न लौटाने

भण्डतुल्यबलाः शस्त्रास्त्राऽभिज्ञा युद्धदुःसहाः। रथाऽऽरूढाः शक्तिसेनां जघ्नुः सायकवृष्टिभिः ॥७९॥
तैः कलितमभूच्छक्तिसैन्यं समरतापनैः। शस्त्राऽस्त्रतेजो दैत्यानामसह्यं प्राप्य सर्वतः ॥८०॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललिताचरित्रे सर्वसेनासमागमवर्णनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥५९७८॥

वाले इसीलिये युद्ध में जो दुःसह हैं (जिनके प्रहार न सहे जाँय) वे भण्डपुत्र शक्तियों की सेना से लड़ने को रथों पर सवार हो आगे आकर बाणों की वृष्टि कर शक्तिसेना पर आघात करने लगे। उन युद्ध में प्रतिपक्षियों के लिये पीडास्वरूप भण्ड के पुत्रों से शक्तिसेना दैत्यों के प्रबल शस्त्रों और अस्त्रों के प्रहार से प्राप्त तेज को चारों ओर से असह्य पाकर बहुत अधिक त्रस्त और हसिमान होने लगी ॥७०-८०॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्डस्थ ललिताचरित्र में सम्पूर्ण दैत्यों तथा शक्तियों की सेनाओं का समागमपूर्वक युद्धवर्णन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

त्रिसप्ततिमोऽध्यायः

महावीरभण्डपुत्रवधवर्णनम्

एवं युद्धकथां श्रुत्वा प्राह कुम्भभवो मुनिः । हयाऽऽनन ! महाश्चर्यमाख्यानं सम्यगीरितम् ॥१॥
गणनाथस्य कथितो गजाऽसुरसमागमः । युद्धं तयोः कथमभूत्तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ॥२॥
इति पृष्टः कुम्भभवमुनिना तुरगाऽऽननः । गणनाथमहायुद्धं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३॥
अगस्त्य शृणु वक्ष्यामि कथामत्यद्भुतां तव । गणनाथमहावीर्यसम्भृतां संयुतां रसैः ॥४॥
भण्डसृष्टेन दैत्येन युयोध स गणेश्वरः । मुहूर्तमात्रमभवत्तयोर्युद्धं सुदुःसहम् ॥५॥
अथ दैत्यः ससर्जाऽन्यान् दैत्यानात्मपराक्रमान् । तुल्यरूपांस्तुल्यजवांस्तुल्यसाहसविक्रमान् ॥६॥
तानेकान् युध्यमानान् दृष्ट्वा क्रुद्धो गणेश्वरः । ससर्ज स्वात्मनस्तुल्यान् गणेशानपि कोटिशः ॥७॥

तिहत्तरवां अध्याय

इसप्रकार युद्ध की कथा को सुनकर कुम्भसम्भव अगस्त्य मुनि बोले, "हे हयग्रीव मुने ! आपने मुझे अत्यन्त आश्चर्यकारक महाख्यान सम्यक् प्रकार से सुनाया कि किस तरह गणनाथ का गजनामक असुर के साथ सामना हुआ। अब किस प्रकार उनका युद्ध हुआ उसे आप मुझ जिज्ञासु को बतावें।" इसप्रकार अगस्त्य मुनि के द्वारा पूछे जाने पर हयग्रीव मुनि ने गणनाथ के महायुद्ध का वर्णन आरम्भ किया, "हे महर्षे अगस्त्य ! सुनो, मैं अत्यन्त अद्भुत कथा तुम्हें सुनाऊँगा, जो गणनाथ के महावीर्य से परिपूर्ण है तथा वीर अद्भुत भयानक आदि नाना रसों से सरस है। भण्ड के रचे हुए गजदैत्य से वह गणेश्वर लड़ा, उनदोनों का एक मुहूर्त्तमात्र तक अत्यन्त दुःसह युद्ध हुआ। अनन्तर दैत्य ने अपने ही समान पराक्रमवाले तुल्यरूपधारी समान वेगवान् एवं समान साहस और विक्रमवाले अन्य दैत्यों को रचा ॥१-६॥

उन्हें अनेक संख्याओं में लड़ते देख क्रुद्ध गणनाथ ने अपने समान कोटि संख्या में गणेश तैयार किये। जहाँ

तत्रैकैकेन दैत्येन प्रत्येकं गणनायकाः । युयुधुश्चित्रशस्त्रास्त्रैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥८॥
दैत्याः शक्तिगणाश्चापि तयोर्युद्धं महाद्भुतम् । ददृशुः प्रेक्षका भूत्वा युद्धसंरम्भविस्मृतेः ॥९॥
अथ ते गणनाथास्तु जघ्नुर्विक्रम्य हेतिभिः । कश्चिच्छूलाहतः कश्चिच्चक्रेण शकलीकृतः ॥१०॥
कश्चिद्गदाभग्नतुण्डः कश्चिद्दन्तविदारितः । कश्चिन्निघृष्ट उरसा कश्चित्पादप्रपेषितः ॥११॥
कश्चित् कुम्भाऽऽहतेर्भिन्नकुम्भः प्राणान् जहौ युधि ।
एवं ते नाशिता दैत्या दैत्यस्रष्टा गजाननैः ॥१२॥
अथैकलः समभवत् पुनर्गजमहासुरः । युयोध बलवांस्तत्र गणेशेनाऽतिसाहसी ॥१३॥
महागणेशोऽपि दृष्ट्वा दैत्यं पूर्ववदेकलम् । सञ्जहार गणपतीन् स्वाङ्गे निमिषमात्रतः ॥१४॥
अथाऽभवन्महायुद्धं तयोर्विक्रमतोर्युधि । अनेकशस्त्राऽस्त्रगणैः सङ्कुलं सुभयङ्करम् ॥१५॥
अथ सोऽपि महादैत्यो मायया ऽभून्महोन्नतः । सहस्राऽऽस्यस्तद्द्विगुणभुजश्चित्राऽऽयुधैर्वृतः ॥१६॥

एक-एक दैत्यके साथ प्रत्येक गणनायकों ने नाना विचित्र अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध किया जो अदभुत सा हुआ। दैत्यों और शक्तिगण ने भी उन दोनों के युद्ध को दर्शक बनकर रणकला की नानाविध द्रुतगतिवाली हस्तलाघव की क्रियाओं में विस्मृत से हो देखा जो महान् आश्चर्यकारक था। अनन्तर उन गणनाथों ने हेति (भाला) शस्त्र से प्रहार कर राक्षसों को मारा; कोई शूल से घायल हुआ तो किसी के चक्र से टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। किसी का गदा से मुँह टूट गया, किसी को दाँतों से विदारित किया गया। किसी की छाती में प्रहार लगा, किसी का पैर शस्त्र के आघात से टूट कर पिस गया। कोई अपने कुम्भस्थलपर आघात से टूटी ठोढी के कारण युद्ध में निष्प्राण हो पड़ गया। इस प्रकार दैत्यों और दैत्य के रचे गये गजसुरों को गजाननों ने नष्ट कर दिया ॥७-१२॥

अब महादैत्य गज अकेला हो गया, उस महाबलवान् अतिसाहसी असुर ने गणेश के साथ युद्ध किया। महागणेश ने भी पूर्ववत् दैत्य को अकेला देखकर सब गणपतियों को एक निमेषमात्र में ही अपने में समेट लिया। अब उन पराक्रम दिखानेवाले दोनों का युद्ध अत्यन्त भीषण रूप से चला। यह भयङ्कर सङ्घर्ष अनेक शस्त्र और अस्त्रों के प्रचुरता से किये गये प्रयोगों के साथ आरम्भ हुआ ॥१३-१५॥

अब वह महादैत्य भी मायासे बहुत ऊँचा हो गया, हजार मुखोंवाला उनसे दूने दो हजारहाथोंवाला, चित्र-विचित्र

क्षणे क्षणे च शस्त्राणां सहस्रं स ससर्ज ह । सृष्टं सृष्टं शस्त्रगणं नाशयद्द गणनायकः ॥१७॥
दृष्ट्वा दैत्यस्य मायां तां गणेशोऽतिरुषाऽन्वितः । चिच्छेद युगपत्तस्य धृतं शस्त्रसहस्रकम् ॥१८॥
अथाऽभवद्गदायुद्धं गणेशगजदैत्ययोः । महत्या गदया नूनं निघ्नतोरितरेतरम् ॥१९॥
तदा गणेशगदया ताडिता तस्य सा गदा । शकलीभूय पतिता ततो दैत्यो निरायुधः ॥२०॥
मुष्टिमुद्यम्य गणपं हन्तुमायान्महासुरः । दृष्ट्वाऽऽयान्तं दैत्यवरं गणेशः प्राक्षिपद्गदाम् ॥२१॥
सा गदा प्राप्य तद्देहं नैषद्भुजमुदावहत् । गदाप्रतिहताऽङ्केन पपात भुवि सा वृथा ॥२२॥
अथ चक्रं त्रिशूलञ्च परिघं शक्तिमेव च । क्षिप्तं क्षिप्तं वृथा भूमावपतद्देहसङ्गतः ॥२३॥
उपलानां वृष्टिरिव गण्डशैल इवाऽभवत् । दृष्ट्वा दैत्यं सर्वशस्त्रैरजेयं स गणाधिपः ॥२४॥
चिन्ताकुलः समभवत्तावन्मुष्ट्या जघान सः । अथाऽभवत्तयोर्मुष्टियुद्धमत्यन्तदारुणम् ॥२५॥

आयुधों को लिये हुए वह क्षण-क्षण में एक हजार शस्त्रों को बनाने लगा । राक्षस के द्वारा शस्त्रसमूह को बनाते-बनाते ही गणनायक उसे नष्ट कर देता । दैत्य की उस माया को देखकर गणनाथ बहुत क्रुद्ध हुआ; उसने एक साथ दैत्य के अपने धारण किये हुए एक हजार शस्त्रों को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥१६-१८॥

अब गणेश और गजदैत्य का गदायुद्ध हुआ; उन दोनों का एक दूसरे के साथ बड़ी विशाल गदा लिये आघातों एवं प्रत्याघातों द्वारा द्वन्द्व चला, जब गणेश की गदा से उस गजास्य की गजा तोड़ दी गयी तो वह टुकड़े-टुकड़े हो गिर पड़ी तब दैत्य बिना आयुध के रह गया । तब वह महाअसुर गणपति को मारने के लिए मुट्ठी बांध कर दौड़ा आया; गणेश ने दैत्यवर को सामने आते देख कर उसकी ओर गदा फेंकी । वह गदा उसके देह पर थोड़ा सा भी आघात न कर पायी अङ्ग से टकराकर वह व्यर्थ हो भूमि पर गिरी (गणेश का प्रहार वृथा गया) ॥१९-२२॥

अब गणेश की ओर से चक्र, त्रिशूल, वज्रास्त्र और शक्ति को भी बारम्बार फेंका गया परन्तु गजासुर से टकरा कर सब भूमि पर ही व्यर्थ गिर गये । ओलों की वृष्टि के समान वह स्थिर गण्डशैल के समान खड़ा रहा । वह गणाधिप उस दैत्य को सभी शस्त्रों से अजेय देखकर चिन्ताकुल हो गया, तभी उसने मुष्टिका बांध कर अपना आघात किया । अब उनका अत्यन्त निदारुण मुट्ठी बांधे युद्ध आरम्भ हुआ ॥२३-२५॥

मुष्टिसंहननोदञ्चदग्निवर्षणसंयुतम् । तं ततो बाहुबन्धेन बद्ध्वा दैत्यं निपातयत् ॥२६॥
निपात्य पादेनाऽऽक्रम्य हृदि दन्तेन दारयत् । एवं विदारितो दैत्यो जहौ प्राणांस्तदा रणे ॥२७॥
हत्वैवमिभदैत्यं तं पुनर्भण्डासुरं प्रति । युद्धायाऽभ्याजगामाऽऽशु गणेशोऽद्भुतविक्रमः ॥२८॥
तदाऽऽयान्तं गणपतिं दृष्ट्वा भण्डमहासुरः । चिन्तयल्ललितां देवीं भीतस्तस्य पराक्रमात् ॥२९॥
मातस्त्वयाऽयं समरे हतो देहो विनश्यतु । इति पूरय मद्वाञ्छां प्रपन्नस्त्वत्पदाऽम्बुजम् ॥३०॥
तद्विदित्वा भक्तवाञ्छापूरणाय महेश्वरी । सस्मार सिन्धुरमुखं चक्रराजरथस्थिता ॥३१॥
विदित्वा संस्मृतिं देव्या आजगाम गजाननः ।
प्रणम्य प्राह मातः किं स्मृतो युद्धविधौ स्थितः ॥३२॥
प्राह श्रुत्वा वचस्तस्य ललिता परमेश्वरी । वत्साऽलं युद्धविधिना तिष्ठ मत्पार्श्ववर्तोऽधुना ॥३३॥
एता युद्धोत्सुका देव्यो युध्यन्त्वसुरसेनया । इत्याज्ञप्तो गणेशानो विरराम नियुद्धतः ॥३४॥

मुष्टिकाओं के परस्पर सङ्घट्टन (रगड़) उदञ्चन (मुष्टि के आघात करने) से अग्निप्रज्वलन की वर्षा से युक्त वह युद्ध चला । गणेश ने तब उस दैत्य को अपने बाहुओं में कसकर पकड के भूमि पर पछाड मारा । गणेश ने उसे गिरा कर पैरों से रौंद कर हृदय पर दन्त से दारण कर दिया (चीर दिया) । इस प्रकार चीरागया दैत्य तब युद्धभूमि में प्राणहीन हो गिरा ॥२६-२७॥

इस प्रकार गजासुर को मार कर पुनः अद्भुत पराक्रमशील गणेश युद्ध करनेको गजासुर को ओर शीघ्र बढ़ चला । आते हुए गणपति को देख कर भण्ड महाअसुर ने ललिता देवी का स्मरण करते हुए उसके पराकम से भयभीत हो स्तुति की,"हे मातः ! आपके द्वारा युद्ध में वध किया हुआ मेरा यह देह विनष्ट हो इस मेरी अभिलाषा को आप पूर्ण करें; मैं आपके चरणकमलों की शरण में आया हूँ ।" यह जानकर महेश्वरी ने भक्त की वाञ्छा को पूर्ण करने के लिये श्रीचक्रराज रथ पर आरुढ हो गजवदन को स्मरण किया । गजानन अपने को देवी के द्वारा स्मरण किया जान कर लौट आया और प्रणाम कर बोला, "हे मातः ! युद्ध में व्यस्त मुझे क्यों याद किया गया ?" उसके वचन सुन कर परमेश्वरी ललिता ने कहा,"हे वत्स ! बहुत हो गया, अब युद्ध से विराम कर; तू मेरे पार्श्ववर्त्ती बन कर रह । ये युद्ध के लिये उत्कण्ठारखनेवाली देवियां असुरसेना के साथ लड़ती रहें ।" इस प्रकार आज्ञा पाकर गणेश ने युद्ध से विश्राम ले लिया । ॥२८-३४॥

अथ भण्डसुतैः शक्तिसेनां दृष्ट्वाऽतिविक्षताम् ।
तान् सायकैः किरन्ती सा बाला युद्धे समासदत् ॥३५॥
असङ्ख्यादैत्यसेनाभिर्यता दैत्येशसूनवः । अत्यद्भुतक्रियां युद्धे बालां वव्रूणाऽजिरे ॥३६॥
कोटिशो दैत्यसुभटा विचित्राऽऽयुधवर्षणैः । बालां रथस्थां ववृषुर्गर्जन्तो युद्धदुर्मदाः ॥३७॥
अथ शक्तिगणं प्राह दण्डिनी परमं वचः । शृणुध्वं शक्तयः सर्वा बालाम्बाज्ञां ब्रवीमि वः ॥३८॥
एषा यैर्युध्यति युधि न तेषु सहसा क्वचित्। प्रयोक्तव्यं शस्त्रगणं दण्ड्या सा मेऽन्यथा भवेत्३९
प्रेक्षध्वमस्याः समरं न योद्धव्यं कथञ्चन। इति सङ्घोष्य सेनासु मन्त्रिण्या सहिता स्वयम्॥४०॥
पार्श्वं समाश्रितवती तस्याः समरवैभवे । अथ श्रुत्वा दण्डराज्ञ्याः शासनं मुदिता हि सा ॥४१॥
असङ्ख्यैर्दैत्यसुभटैरेकला युयुधेऽद्भुतम्। सिद्धर्षिदेवतामुख्याः पश्यन्त्याऽऽकाशमाश्रिताः ।४२।
युध्यन्तीं बहुभिश्चैकां कुमारीं विस्मिताऽभवन् । अथ दैत्योत्सृष्टशस्त्रवृन्दैराच्छादिताऽभवत् ।४३।

अनन्तर भण्ड के पुत्रों द्वारा शक्तियों की सेना को शस्त्रास्त्रों से अत्यन्त क्षतविक्षत देख कर उन्हें बाणों से बेंधती हुई वह बाला युद्ध में आ पहुंची। अगणित दैत्यसेना से युक्त हो दैत्यराज भण्ड के पुत्रों ने युद्धभूमि पर चल रहे समर में अत्यन्त विचित्र क्रियाकलापों से बाला को घेर लिया। युद्ध से दुर्मद कोटि-कोटि महारथी दैत्यगण विचित्र आयुधों की वर्षा कर रथ में स्थित बाला को गर्जते हुए छा दिया। ॥३५-३७॥

तदनन्तर दण्डिनी देवी ने शक्तिगण को अतिसारयुक्त वचन कहे, "हे शक्तियो! सुनो, तुम सब को बालाम्बा की आज्ञा बताती हूँ;यह जिन दैत्यों के साथ युद्ध में भिड़े उन के प्रति कहीं भी अकस्मात् शस्त्रों का प्रयोग मत करना नहीं तो वह मेरी दण्डनीय होगी। तुम सब शक्तियां इस का युद्धकौशल देखो, किसी भी रूप में तुम लोग युद्ध मत करना।" इसप्रकार अपनी सेनामें घोषणाकर स्वयं दण्डिनी मन्त्रिणी के सहित उस बालाके युद्धवैभव में दर्शकरूप से सन्निकट ही स्थित रही। दण्डराज्ञी के आदेश को सुनकर बाला प्रसन्न हुई। अकेली ही उसने असंख्य दैत्यमहावीरों के साथ अद्भुत युद्ध किया। उसे सिद्ध एवं ऋषि-देवताप्रमुखगण आकाशमार्ग में स्थित हो देखने लगे। जब उन्होंने बहुसंख्यक दैत्यों से युद्ध करती एकाकिनी कुमारी को देखा तो आश्चर्यचकित रह गये। अनन्तर दैत्यों के छोड़े हुए अस्त्रों के समूह से बाला पाट दी गयी। जैसे प्रातः कालीन तरुण सूर्य को मेघों का पटल

बालसूर्योऽभ्रपटलैरिव सा सर्वतो दिशम् । दृष्ट्वा छन्नां शस्त्रगणैर्विमताः शक्तयोऽभवत् ।४४।
ततः क्षणेनैव बाला प्रतिशस्त्राऽभिवर्षणैः । विनाश्य तां शस्त्रवृष्टिं भूयः सर्वान् जघान ह ।४५।
अथ तेषामसङ्ख्यानां युगपल्लघुविक्रमा । आयुधानि वाहनानि नाशयच्चित्रविक्रमा ॥४६॥
भूयो गृहीतमात्राणि शस्त्राण्यपि समाच्छिनत् । अथ तीक्ष्णैः शरैर्दैत्यान्नाशयत् साऽतिवेगतः ॥४७॥
शराऽऽदानञ्च सन्धानं पूरणञ्च विसर्जनम् । न लक्ष्यतेऽतिनिपुणदृशा केनाऽपि सर्वथा ॥४८॥
किन्तु तस्या धनुर्मध्याद्भूविलाच्छलभा इव । प्रसरन्ति शरास्तीक्ष्णा दिक्ष्वन्तरविहीनतः॥४९॥
सङ्घशो दैत्यमूर्धानः पतन्ति तृणराजतः । फलानीव सुपक्वानि चटच्चटमहारवाः ॥५०॥
केचिच्छिन्नकराऽङ्घ्रूरुवक्षःकुक्षिगलाः परे । निरन्तरतया विद्धाः सहस्राक्ष इवाऽभवन् ॥५१॥
अन्ये च खण्डिता दैत्यास्तिलशः कीर्णदेहकाः ।
केचिद्वक्षसि संविद्धा हृतप्राणाः स्थिरं स्थिताः ॥५२॥

ढक देता है वही स्थिति उसकी हुई। सब दिशाओं से उसे शस्त्रों से आच्छादित देख कर शक्तियां अत्यन्त उदास हुईं ॥३८-४४॥

तत्पश्चात् क्षणमात्र में ही बालाने प्रतिकार करने को विरोधी शस्त्रों को वर्षा से उस दैत्यों के शस्त्रों की वर्षा को नष्ट कर फिर सब दैत्यगण को मारा। अनन्तर उन असंख्य राक्षसों के आयुध और वाहनों को युद्धकला में अति विशारदा विचित्रपराक्रमशीला बालाने नष्ट कर दिया। फिर जैसे ही दैत्योंने हाथमें शस्त्रों को लिया वैसे ही बालाने उन्हें काट दिया। अब बालाने तीक्ष्ण बाणों से अत्यन्त वेगपूर्वक दैत्यों को नष्टकर दिया। उस बालाके द्वारा अपना हस्तकौशल, जैसे बाण को लेकर उसे सन्धान करना, उसे चढ़ाकर पूरणकरना और छोड़ना इन क्रियाओं से इतनी शीघ्रता से सम्पन्न होता कि किसी अत्यन्त निपुणदृष्टिवाले के लिये भी वह सब देखाजाना सर्वथा शक्य नहीं हो पाता था। परन्तु उसके धनुष के मध्यभाग से तीक्ष्ण बाणों का छोड़ना नाना दिशाओं में एक साथ ऐसा चलता था मानों भूमि के बिल में से शलभसमूह (पतंग) निकलते हों। एक सङ्घबद्ध ही दैत्य लोगों के सिर हरिततृणसमूहों से जैसे पके फल गिरते हैं वैसे ही चट-चट महाशब्द करते हुए गिरते। किन्हीं दैत्यों के हाथ, पैर, जांघ, वक्षःस्थल, पेट और गले कट गये थे। दूसरे दैत्य संछन्नरूपसे बाणों से बिंधे जाकर इन्द्रके समान सहस्राक्ष ही बन गये। अन्य दैत्य तिलतिल करके बिखरे हुए देहकी दशा को प्राप्त हो गये। किन्हीं दैत्यों की छातियों में बाणों के लगने से खड़े खड़े ही वे प्राणहीन होने की स्थिति

धृतशस्त्राः प्रदृश्यन्ते लिखिताः सुभटा इव केचिच्छराऽऽहतेर्वेगान्नीयन्ते गतजीवनाः ॥५३॥
युद्धकातरभावेन पलायनपरा इव । एवं तया मुहूर्तेन कोटिशो दैत्यपुङ्गवाः ॥५४॥
गताऽसवोऽभवन् पेतुर्विक्षतास्ते शतोत्तराः । न तत्र दैत्यः शूरोऽपि कश्चित् स्वात्माऽवने विभुः ॥५५॥
क्व युद्धं क्व च वा शस्त्रपातनं कर्तुमर्हति । न दैत्या युद्धमत्यन्तमेकाकिन्या विदुः क्वचित् ॥५६॥
कोटिशः शक्तिसेनानां युद्धं जानीयुरञ्जसा । शक्तिसेना नभःसंस्था देवाद्याश्च समन्ततः ॥५७॥
दृष्ट्वा बालाविक्रमं तमाश्चर्यं परमङ्गताः । अथैवं निघ्नतीं बालां दृष्ट्वा दैत्याश्चमूङ्गताः ॥५८॥
भीताः शस्त्राणि निक्षिप्य पलायनपराऽभवन् । हा हताःस्मो न चेयं वै योषिद्बाला कुमारिका
प्रत्यक्षमन्तकः प्राप्त एवमस्मान् विहिंसितुम्। अद्य निःशेषितं सैन्यं दैत्यानां भवति क्षणात् ॥६०॥
वदन्त एवं क्रोशन्तो दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् । शस्त्रधारासुनिचिते मार्गमप्राप्य निर्गमे ॥६१॥
शरधाराशकलिताः पेतुदैत्यास्तु सङ्घशः । केचिद्भैः सुसंविद्धाः पतिताः शवराशिषु ॥६२॥

में हो गये। हाथ में शस्त्र लिये वे चित्रमें लिखे धनुर्धारी महावीरके समान प्रतीत होते थे। बालाके द्वारा बाणों के सन्धान करते करते ही किन्हीं दैत्यों के तत्काल प्राण निकल गये, मानों युद्धमें कदर्य (डरपोकपने) के कारण वे भागने को उद्यत हो रहे हों। इसप्रकार मुहूर्त में ही उस बाला द्वारा कोटि-कोटि दैत्यगण मार दिये गये। सैकड़ों की संख्या में वे विशेष घायल हो गिर गये। कोई भी शूरवीर राक्षस ऐसा न बच पाया जो अपनी रक्षाकर जीवन रक्षाकर सका हो। कहाँ युद्ध होता था और कहाँ वह राक्षस अपना अस्त्र छोड़ता था बडी विषम स्थिति थी? वे दैत्यगण किसीप्रकार भी उस एकाकिनी बाला के युद्धकौशल को किञ्चिन्मात्र भी न जान पाये। पूर्वकाल में कोटि-कोटि शक्ति सेनाओं के युद्धभेद को वे सरलता से अतिशीघ्र जान जाते थे। परन्तु स्वयं वे शक्तियों की सेना, आकाश में स्थित देवगण चारों ओर से दर्शक बन देखते हुए भी बाला के विक्रमपूर्ण युद्ध के चरित्र से आश्चयचकित हो गये। सेना में खड़े दैत्यगण ने शत्रुओं पर प्रहार करती बाला को देखकर भय के मारे शस्त्रों को फेंक कर भाग जाने का उपक्रम किया। 'हा! हमलोग मारे गये', 'यह बाला कुमारिका नहीं है यह तो हम लोगों को वध करने के लिये ही प्रत्यक्ष कालान्तक यमराज आकर उपस्थित है। आज क्षणभर में दैत्यों की सेना देखते देखते ही विनष्ट हो जाती है" ॥४५-६०॥

इसप्रकार कहते हुए वे भीषण हाहाकार कर सब दिशाओं में भागने लगे। शस्त्रों की सतत धारावर्षण से मार्ग के बराबर पाट दिये जाने से दैत्यों के निकलने का कोई उपाय न पाकर शस्त्रों की तीक्ष्ण धारा से अङ्ग-प्रत्यङ्ग

भीता निविश्य स्वात्मानमरक्षन्मृत्युभीतितः। एवं तदा दैत्यसैन्यं प्रायो नष्टं पलायितम्॥६३॥
शिष्टश्चाऽपि निशाम्याऽथ भण्डपुत्राः समाययुः। रथारूढाः सिंहवाहा महाचापधरा भृशम्॥६४॥
क्रुद्धा एकप्रपातेन बालां वव्रुः समन्ततः। महामेघा इव श्यामा गर्जन्ती मृगराजवत्॥६५॥
वर्षन्तः शरधाराभिर्बालां सूर्यमिवाऽम्बरे। तैरनेकैः कुमारी सा विष्णुतुल्यपराक्रमैः॥६६॥
सङ्गता युधि दृष्टाऽभूल्लीलया तान् युयोध च। मन्त्रिणीदण्डिनीमुख्या दृष्ट्वा बालापराक्रमम्॥६७॥
विस्मिताः श्रीपरादेव्यै समाचख्युर्महारणम्। देवि नूनं सा कुमारी न शेषयितुमर्हति॥६८॥
भण्डं तद्भ्रातरौ वाऽपि पुत्रान् सेनागतानपि। लीलयैवाऽद्य निःशेषं करिष्यति न संशयः॥६९॥
एवं युद्ध्वा क्षणं मन्दं भण्डपुत्रैः प्रतापनैः। तेषां वाहान् ध्वजं छत्रं युगपन्नाशयच्छरैः॥७०॥
तेषां सायकवृष्टिं तां विधूय प्रतिवृष्टिभिः। शरासनं क्रमात्तेषां चिच्छेद सुपतत्रिभिः॥७१॥

छिन्न हो जाने से वे सङ्गबद्ध खेत रहे। कई दैत्य बाणों से बहुत अधिक बेंधे जाकर मृतक देहों के ढेर में गिर पड़े; ये सब मृत्यु के भय से त्रस्त हो अपनी रक्षा न करते हुए उन मृतकों में ही शरणागत हुए। इस प्रकार तब दैत्यसेना नष्टप्रायः हो गयी जो इसमें अवशिष्ट बची उसके दैत्यलोग भाग खड़े हुए यह देखकर भण्ड के पुत्र रणभूमि में आ गये। इन सब ने रथों पर आरूढ हो सिंहों के वाहनोंपर आरूढ हो महाधनुष धारण किये अत्यधिक क्रुद्ध हो एकसाथ चारों ओर से महामेघों के समान बाला को घेर लिया। उन्होंने शरों की वर्षा से मृगराज के समान गर्जन करती बाला को इसप्रकार घेर लिया जैसे आकाश में सूर्य को काले महामेघ ढांक देते हैं। जब वह बालाम्बा उन विष्णु के समान पराक्रमसम्पन्न भण्ड के पुत्रों के साथ युद्ध में भिड़ी तो युद्ध में वह खेल-खेल में अनायास लड़ती हुई दीख पड़ी। उन दैत्यों से बाला ने खूब संघर्षपूर्वक युद्ध किया। मन्त्रिणी और दण्डिनीप्रमुख देवियों ने बाला के पराक्रम को देख कर विस्मित होकर श्रीपराललिताम्बा को महायुद्ध का सब वृत्तान्त निवेदन किया, "हे देवि! अवश्य ही वह कुमारी किसी दैत्य को अवशिष्ट न छोड़ेगी। भण्ड को व उसके दोनों भाइयों को तथा सेनासहित भण्डपुत्रों को भी आज वह अनायास ही निःशेष बना देगी इस में कोई भी सन्देह नहीं।" ॥६१-६९॥

प्रतापी भण्डपुत्रों के साथ मन्दरूप में क्षणभर युद्ध कर श्रीबाला ने उनके वाहन, ध्वज एवं छत्र को बाणों से एक साथ ही नष्टकर दिया। उन भण्डपुत्रों के बाणों की वर्षा के जाल के सामने बाला ने अपनी प्रतिरोधक बाण-वर्षा से उन्हें हटाकर उनके धनुषों को क्रम से तीक्ष्ण बाणों से काट गिराया ॥७०-७१॥

अथ ते रोषिताः खड्गगदाप्रमुखमायुधम् । परामृशुर्निहन्तुं तां यावत्तावदियं द्रुतम् ॥७२॥
आत्तमात्तं प्रचिच्छेद तदद्भुतमिवाऽभवत्। एवं निरायुधा दैत्या जातास्तस्याः पराक्रमम् ॥७३॥
अत्यद्भुतं मेनिरे ते चिन्ताश्चाऽऽपुर्महत्तराम्। एवं बालामहाकालग्रस्तान् युधि निशाम्य वै।७४।
विषङ्गश्च विशुक्रश्च महासैन्यपरीवृतौ । रक्षितुं तान् राजपुत्रानभ्याययतुराशु वै ॥७५॥
मा बिभ्याऽऽगतावावां वदन्ताविति सा शिवा । ददृशे शस्त्रवर्षाणि कुर्वन्तौ कालमेघवत् ॥७६॥
दृष्ट्वा बालाऽतिहर्षेण तां वृष्टिं शस्त्रसङ्कुलाम् । निवारयल्लीलयैव ततस्तां दैत्यवाहिनीम् ॥७७॥
क्षणेन वायव्याऽस्त्रेण महावायुर्घटनिव । नामशेषां कृतवती ततस्तावतिरोषितौ ॥७८॥
आयान्तावतिवेगेन गदाखड्गकरावुभौ । दृष्ट्वा शरैर्वाहनेभान् युद्धे ऽनाशयदञ्जसा ॥७९॥
अथैकेन पृथग्वक्षोदेशे बलवदाहतौ । मूर्च्छितौ पेततुर्भूमौ वज्राऽऽहतनगाविव ॥८०॥
तदन्तरे भण्डपुत्राः शस्त्रहेतोः परावृताः । तान्निवृत्तान् समालोक्य विरथानकरोत् क्षणात्॥८१॥

अनन्तर उन्होंने रुष्ट होकर उसे मारने को जब तक खड्ग, गदा आदि प्रमुख आयुधों को सम्हाला तब तक इस बाला ने शीघ्र ही आघात करने को प्रयुक्त किये उन राक्षसों के अस्त्रों को काट डाला जो अत्यन्त अद्भुत सी घटना हुई। इसप्रकार (बालाम्बाके साथ युद्धरत हो) वे भण्डपुत्र दैत्यगण निरायुध हो गये; उन्होंने उसके पराक्रम को अत्यन्त विलक्षण माना और सब अत्यधिक चिन्तामग्न हो गये। इसप्रकार युद्ध में बालारूपी महाकाल द्वारा ग्रसे दैत्यगण को देख कर विशाल सेना लेकर विषङ्ग और विशुक्र दोनों सेनापति उन राजपुत्रों के रक्षार्थ शीघ्र आ गये। ॥७२-७५॥

"तुम लोग डरो मत, अब हम दोनों आ गये हैं" इस प्रकार कहते हुए उन दोनों को कालमेघ के समान शस्त्रों की वर्षा करते हुए उस शिवा ने देखा। बाला ने दैत्यों की उस शस्त्रसङ्कुलवृष्टि को देखकर अत्यन्त हर्षपूर्वक प्रतिरोधी शस्त्रों द्वारा सरलता से निवारण कर दिया। तत्पश्चात् उस दैत्यसेना को जैसे महावायु बादलों को उडा ले जाती है उसी प्रकार एक क्षणभर में वायव्यास्त्र के द्वारा नष्ट कर दिया। तदनन्तर उन्हीं दोनों को अत्यन्त क्रुद्ध होकर हाथ में गदा एवं खड्ग लेकर अति वेग से आते देख देवी बालाम्बा ने एक बाण से झटितिवेग-पूर्वक उनके वाहन हाथियों को नष्ट कर दिया। अनन्तर एक बाण से पृथक्-पृथक् दोनों दैत्यों के वक्षःस्थल पर आघात किया। मूर्च्छित हो वे दोनों ही वज्र के आघात पाये दो पर्वतों के समान भूमि पर गिर पड़े। तदनन्तर भण्डपुत्र अपने शस्त्रों को लेने के लिये लौटे उन्हें पुनः लौटे हुए देख भगवती बालाम्बा ने उनके रथों को खण्डित कर

पादचारान्निहत्याऽऽशु जङ्घयोर्निशितैः शरैः। प्राह रे भण्डदायादाः शूराणां वः कथं त्विदम् ८२
दर्शनं युधि पृष्ठस्य योग्यं ब्रूत पलायताम्। श्रुत्वा कटुरसोदर्कं भाषितं तेऽतिमानिनः ॥८३॥
ब्रूयुर्मन्युज्वलन्नेत्रा निवृत्ताः सम्मुखे रणे। धिङ् मुग्धे बालिकां दृष्ट्वा दयमानस्वभावतः॥८४।
जीवस्यस्मान् समासाद्य मृत्युकल्पान् कथञ्चन। तत् पश्य सद्यस्त्वां कुर्मो विमदां तत् स्थिरीभव ॥८५॥
इत्युक्त्वा मुष्टिमुद्यम्य धावमानान् स्वसम्मुखे। प्रत्येकं निशितैर्भल्लैस्तच्छिरांसि चकर्त ह ॥८६॥
पक्वतालफलानीव पेतुस्तन्मस्तकान्यथ। हाहाकारः समुदभूद् दैत्यानां वाहिनीमुखे ॥८७॥
ववर्ष बालां कुसुमैः सुगन्धिभिः सुरेश्वरः। जयशब्दो महानासीच्छक्तिसेनासु सर्वतः ॥८८॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललिताचरित्रे भण्डपुत्रवध-
करणवर्णनं त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥६०६६॥

दिया। देवी ने पादचारी उनलोगों की जाङ्घों पर अति शीघ्रतया तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया। वह बोली "हे भण्डपुत्रो! तुम्हारे समान शूरवीर जो युद्ध में पीठ दिखाकर भागते हों उनकी गति ऐसी क्या सर्वथा उचित है बताओ तो सही।" इस कटु वाणी को सुनकर अत्यन्त अभिमानी वे भण्डपुत्र क्रोध से लाल आंखें कर रण में उसके सामने आ गये; वे बोले, "हे मुग्धे! तुझे धिक्कार है। हम लोगों ने तुम्हें बालिका देखकर दयमान होने की भावना रक्खी, मृत्यु के समान हम लोगों के पास भी आकर किसी प्रकार अपने को तू जीवित रख सकी, तो ले अब देख तेरे मद को हम चूर्णविचूर्ण करते हैं। इसलिये आ युद्धार्थ स्थिर हो जा।" ॥७६-८५॥

यह कह कर मुट्ठी बांधकर उन भण्डपुत्रों को बाला ने प्रबल वेग से सामने आते देख तीक्ष्ण भालों से प्रत्येक के शिरों को काट डाला। पके हुए ताल के फलों के समान उनके मस्तक गिर पड़े; अब दैत्यों की सेना की अग्रिम पंक्ति में हाहाकार मचा; सुरेश्वर इन्द्र ने बालाम्बा के ऊपर सुगन्धयुक्त पुष्पों से वृष्टि की तथा शक्तिसेनाओं में चारों ओर से जयजयकार की गम्भीर ध्वनि हुई ॥८६-८८॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में ललिताचरित्र में
बालाम्बाद्वारा भण्डपुत्रों का वध नामक तिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

उभयसेनासमागमवर्णनम्

एवं हतेषु भण्डस्य पुत्रेषु समरोत्सुकाम् । बालां भूयः समालक्ष्य मन्त्रिणीदण्डनायिके ॥१॥
ऊचतुर्देवि श्रीराज्ञीं दृष्ट्वा नत्वा निवेद्य च । अनुज्ञाता पुनर्युद्धं यास्यामः कर्तुमञ्जसा ॥२॥
तावद्दैत्याः समायान्तु समराय सुदंशिताः । त्वमसाध्यं कृतवती नैतदस्मच्छकं क्वचित् ॥३॥
इत्युक्त्वा तां समादाय गत्वा श्रीमातृसन्निधिम्। आरुह्य चक्रराजाख्यरथं नत्वा पराम्बिकाम्॥४॥
ऊचतुर्विक्रमं युद्धे बालाया अद्भुतं महत् । विजयश्च ततः श्रुत्वा तुष्टा श्रीललिताम्बिका ॥५॥
आश्लिष्य बालां सुप्रीत्या पार्श्वे च सुनिवेशयत्। भण्डपुत्रान् हतान् दृष्ट्वा हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः ६
पलायिताश्च परितः शुष्यद्वक्त्रा हतप्रभाः । पुत्रनाशं निशम्याऽथ भण्डदैत्योऽतिदुःखितः ॥७॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

इस प्रकार भण्ड के पुत्रों के वध कर देने के पश्चात् मन्त्रिणी और दण्डनायिका दोनों ने फिर बाला को युद्ध के लिये अत्यन्त उत्कण्ठायुक्त देख तथा श्रीराज्ञी की ओर अनुमत्यर्थ झाँक, प्रणामपूर्वक निवेदन कर कहा, "हे देवि बाले ! भगवती से आज्ञा पाकर फिर शीघ्र ही हम युद्ध करने को आ जायेंगी। तब तक दैत्यगण युद्ध के लिये सज्जित होकर आ जायेंगे। तू ने असाध्य कर दिया यह किसी प्रकार भी हमारे द्वारा होनेवाला नहीं था।" ॥ १-३ ॥

इसे कह कर उसे साथ लेकर श्रीमाता के सन्निकट जाकर चक्रराज नामक रथ पर चढ़ पराम्बिका को प्रणामकर उन दोनों देवियों ने युद्ध में किये गये बालाम्बा के अद्भुत अतिशय पराक्रम के विषय में और विजयप्राप्ति के सम्बन्ध में कहा। तदनन्तर इसे सुनकर श्रीललिताम्बिका अत्यन्त प्रसन्न हुई और बाला को छाती से लगाकर अत्यन्त प्रेम से अपने पास बिठाया। दैत्यपुत्रों को मार दिया गया है यह सुनकर दैत्यों ने हाहाकार कर ऊंचे स्वर से क्रन्दन

पुनर्विमृश्य सद्बुद्ध्या धैर्यमालम्ब्य सत्वरम् । अहो मे विपुलो मोहःस्मृतिभ्रंशः समुद्गतः ॥८॥
किं शोचामि वृथैवाऽहं देव्या मेऽभिमतं कृतम् । यथा यथा प्रार्थितं मे तत्तथैव कृतं तथा ॥९॥
नूनं मदर्थं शोचेयुरेते तस्मान्ममाऽग्रतः । यान्तु पञ्चत्वमथ वै तया देव्या रणे हताः ॥१०॥
प्राप्नोमि तल्लोकगतिं परीवारेण संयुतः । इति मे प्राग्व्यवसितं प्रार्थिता च पराम्बिका ॥११॥
अथ सा भक्तकामानां दोग्ध्री कामप्रपूरणम् । चक्रे तत्र महामोहो वृथा किं मामुपागतः ॥१२॥
तदलं मे विमोहेन देवि ! त्वां शरणागतः । तन्मेऽवशेषितं कामं पूरयाऽऽशु महेश्वरि! ॥१३॥
संहृत्य शिष्टां सेनां मे भ्रातृभ्यां सहितां ततः । मां सयोषिद्गणं शीघ्रं युद्धे शस्त्राग्निपावितम् ॥१४॥
विधाय स्वपदाम्भोजसविधं नेतुमर्हसि । कदाऽहं चन्द्रचूडालं नेत्रत्रयसुशोभनम् ॥१५॥
क्रोधारुणितनेत्रान्तसभ्रूकुटिलदर्शनम् । पश्यन् श्रीमातृवदनं दग्धस्तत्सायकाऽग्निना ॥१६॥

किया और सब त्रस्त, उदासमुख (म्लानमुख) एवं शोभाहीन हो इधर-उधर सब ओर भाग गये। पुत्रों के वध को सुनकर भण्ड दैत्यराज अत्यन्त दुःखी हुआ, फिर सद्बुद्धि से सुविचार कर शीघ्र धैर्य धारण कर सोचने लगा, "अहो ! मुझे बहुत बड़ा मोह और स्मृतिभ्रंश (स्मरणशक्ति का नाश) हो गया, मैं व्यर्थ ही क्या सोचा करता हूँ ? भगवती देवी ने तो मेरा अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध कर दिया। मैंने जैसे-जैसे प्रार्थना की वैसे ही उसने मेरा सब मनोरथ पूर्ण बनाया। 'अवश्य ही ये दैत्य मेरे लिये भी इसी प्रकार शोक करेंगे इसलिये मेरे ही सामने ये सब भी उस देवी द्वारा रण में वध किये जाकर मर जाँय। इस प्रकार मैं अपने सारे बन्धु-बान्धवों समेत उस देवी के धाम को प्राप्त करूँ।' यही मेरा पहले से सोचा हुआ उद्देश्य था और पराम्बिका से प्रार्थना की गई थी। अब भक्तों की कामनाओं की कामधेनु उस पराम्बा ने कामपूर्ति कर दी है इस विषय में मुझे महामोह व्यर्थ क्यों सताता है ? इसलिये मैं विमोह से अलं करता हूँ। हे देवि ! हे महेश्वरि ! मैं आपकी शरण में हूँ इसलिये मेरा अवशिष्ट काम आप शीघ्र पूर्ण करें। मेरी बची हुई सेना को दोनों भाइयों एवं मेरी रानियों के साथ मुझे युद्ध में निज शस्त्रों की अग्नि में पवित्रकर अपने चरणकमलों की सन्निधि में ले जावें। कब चन्द्रमा को जूडाकिये हुये तीन नेत्रों से अत्यन्त सुन्दर, क्रोध से लाल नेत्रभाग के कोरक से भ्रूभङ्गमात्र से देखनेवाले श्रीमाता के मुख को देखता हुआ उसके बाणरूपी अग्नि से जला मैं शोकरहित, नित्य, अमृत पद को प्राप्त करूँगा, जो योगियों

व्रजाम्यशोकममृतं स्थानं योगिसुदुर्लभम् । प्रार्थयन्निति तद्रूपं कोटिकन्दर्पसुन्दरम् ॥१७॥
ध्यायन् श्रीललितादेव्या निर्विकल्पोऽभवत् क्षणम् ।
तावत्तत्राऽऽजग्मतुस्तौ दैत्यराजस्य भ्रातरौ ॥१८॥
तं ददर्शतुरत्यन्तनिश्चेष्टं स्थाणुवत्स्थितम् । अमंसतुः पुत्रशोकभराक्रान्तं सुमूर्च्छितम् ॥१९॥
समाधानवचस्तत्र प्रोचतुः कालसम्मितम् । तयोः शमपरैः शब्दैर्ध्येयान्निर्गतमानसः ॥२०॥
उन्मील्य नेत्रे पुरतो ददर्श भ्रातरौ स्थितौ।स्वरूपगोपनार्थं स भ्रात्रोः सम्मुखतः स्थितः ॥२१॥
पुत्रान् शुशोच नितरां मनसा तौ हसंस्तदा । हा पुत्रा मां परित्यज्य पितरं दुःखसागरे ॥२२॥
मज्जन्तं दीनमत्यन्तं क्व यातास्त्यक्तसौहृदाः ।
मातरो वोऽतिवात्सल्यकातरा ईदृशीं दशाम् ॥२३॥
श्रुत्वा कथं भवेयुस्ता विदीर्णहृदया इव । इत्यादि विलपन्तं तं दृष्ट्वा तौ भ्रातरौ तदा॥२४॥
श्रीदेवीमायया मुग्धौ दैत्येशं प्रोचतुर्वचः । अलं दैत्येश ! शोकेन धैर्यवीर्याऽपहारिणा ॥२५॥

को भी अत्यन्त दुर्लभ है ?" इस प्रकार श्रीललिता देवी के करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्यों से अत्यधिक रमणीय उस स्वरूप का ध्यान करता हुआ एक क्षण विकल्परहित निःसंकल्प हो गया। तब तक वहां दैत्यराज के वे दोन भाई आ पहुंचे ॥४-१८॥

उन्होंने उसे अत्यन्त निश्चेष्ट सूखे स्थाणु (ठूंठ) के समान अचल देखा; उन्होंने समझा कि पुत्रों के वध से शोकाकुल यह प्रगाढ मूर्च्छा में है। दोनों ने दैत्यराज को समयोचित समाधानपूर्ण वचन कहे। उन दोनों के शब्दों से अपने ध्येय से ध्यान के टूट जाने से दैत्यराज ने आंखें खोलने पर सामने खड़े दोनों भाइयों को देखा। यद्यपि मन से वह उनके अज्ञान के प्रति हँसता था, तथापि अपनी अन्तर्दशा के वास्तविक रूप को छिपाने के लिये सान्त्वनाभरे भाइयों के सामने स्थित वह अपने पुत्रों का शोक करने लगा, "हाय पुत्रो ! तुम शोकसागर में डूबते हुए मुझ अत्यन्तदीन पिताको छोड़कर सारा प्रेमभाव त्याग कहाँ चले गये ? (जरा सोचो तो) तुम्हारी मातायें अत्यन्त वत्सलता से बहुत अधिक कातर हो तुम्हारी परलोकयात्रा की ऐसी दशा को सुनकर विदीर्णहृदय हुई सी कैसा अनुभव करेंगी ?" इसप्रकार उसे विलापकरते देख वे दोनों भाई तब श्रीदेवी की माया से मोहित हो दैत्यराज से बोले, "हे दैत्यपते ! धैर्य, वीर्य एवं पराक्रम को हरनेवाले इस शोक से आप बस कीजिये। असंख्येय भुवनों के अधिपति आप को इस

शोचन्तं त्वां समालोक्याऽसङ्ख्यातभुवनेश्वरम्। ज्वरो दहति नौ देहं करीषमिव पावकः ॥२६॥
मुहूर्तं धैर्यमालम्ब्य राजंस्त्वं सुस्थिरो भव। गत्वाऽऽवामेकपातेन तां हत्वा निशितैः शरैः ॥२७॥
पुत्रघ्नीं ललिताऽऽख्यातां मारीं दैत्येष्विवाऽऽगताम्।
जीवन्तीं वा मृतां वाऽपि बद्ध्वा नेष्याव आशु वै ॥२८॥
इत्युक्त्वा सशरं चापमादाय स्यन्दनाऽऽश्रयौ। युद्धार्थमभ्याययतुरतिवीर्यपराक्रमौ ॥२९॥
द्विशताऽक्षौहिणीसेनापरीवारौ सुदंशितौ। पृथक् शक्तिमहासेनापार्श्वभागे प्रपेततुः ॥३०॥
चक्रराजरथवरदक्षपार्श्वेऽतिवेगतः। शताऽक्षौहिणीसेनाभिर्विषङ्गः प्रापतद्बली ॥३१॥
विशुक्रश्चापि वामेन तथा न्यपतदञ्जसा। तृतीये युद्धदिवसे प्रातः सूर्योदयं प्रति ॥३२॥
अकस्माच्छक्तिसेनायाः पक्षयोः पतितौ यदा। तदाभवन्महाशब्दः शक्तिसेनासु पार्श्वयोः॥३३॥
तदा श्रुत्वा युद्धशब्दं मन्त्रिणीदण्डनायिके। अभूतां शङ्कितेऽत्यन्तमूचतुः श्रीपराम्बिकाम्॥३४॥
देवि दैत्यशक्तिसेनासमागममहाध्वनिः। श्रूयते भैरवतरो दैत्याः कपटयोधिनः ॥३५॥

प्रकार शोक करते देख हम दोनों के देह को जैसे अग्नि सूखे कण्डे को जलाता है वैसे चिन्ताज्वर दहन करता है; हे राजन्! आप क्षणभर धैर्य का आश्रय लेकर स्थिर होवें, हम दोनों जाकर एक साथ उस पुत्रघ्नी को तीक्ष्ण बाणों से मार कर ललितानामवाली दैत्यों में महामारी के समान आई हुई उसे जीवित अथवा मृतक को बांधकर शीघ्र आपके पास ले आवेंगे।" इसप्रकार अपने धनुषों को बाणसमेत सम्हाले रथ पर आरूढ़ हो वे दोनों अति वीर्यवान् और पराक्रमशाली करने को लिये आ धमके। वे दो सौ अक्षौहिणी सेना से युक्त भलीप्रकार कटिबद्ध हो पृथक्-पृथक् शक्ति सेना के पार्श्व भाग में आकर डट गये। चक्रराज रथश्रेष्ठ के दक्षिणपार्श्व में अत्यन्त वेग से सौ अक्षौहिणी सेना को लेकर बलवान् विषङ्ग आया। साथ ही विशुक्र भी वामपार्श्व में अतिवेग से आ धमका। तृतीय युद्ध-दिवस में प्रातः काल सूर्योदय के साथ जब अकस्मात् शक्तिसेना के दोनों पक्षों पर उन दैत्यों ने आक्रमण किया तो शक्तिसेना के सन्निकटवर्ती भागों में महागम्भीर शब्द हुआ। तब मन्त्रिणी तथा दण्डनायिका ने युद्ध के महाशब्द को लेकर पुनः अत्यन्त शङ्कितमन से श्री पराम्बिका से कहा, "हे देवि! दैत्यों की सेना तथा शक्तिसेना के समागमनसे उठी हुई महाध्वनि अधिकाधिक भैरवतररूप में सुनी जाती है, दैत्यगण कपटसे युद्ध करने वाले हैं; वे असमय में ही तैयार

युध्यन्त्यकाण्डे सन्नद्धा अकृत्वा संविदं पुरा । तद्याव आवामनुजानीहि शीघ्रं महेश्वरि ॥३६॥
अनुज्ञाते ततो नत्वा मन्त्रिणीदण्डनायिके । चेलतुः समरायाऽऽशु पृथक् शक्तिगणावृते ॥३७॥
देव्या दक्षिणपार्श्वस्था दण्डिनी चण्डविक्रमा । निर्ययौ श्रीचक्रराजरथदक्षिणद्वारतः ॥३८॥
किरिचक्रथं पञ्चपर्वशोऽभिसमुन्नतम् । महासिंहयुगं पार्श्वे सैरिभाग्र्यं तथा पुरः ॥३९॥
योजितं भैरवो यत्र रथनेता स्वयं स्थितः । तत्पार्श्वे सिंहसंवाहरथारूढे विचेलतुः ॥४०।
स्वप्नेश्वरी तथा कालसङ्कर्षा युद्धसम्भ्रमा । बटुकैः कालिकावृन्दैर्वराहमुखशक्तिभिः ॥४१॥
असङ्ख्याभिः परिक्रान्ता निर्ययौ कदनाय सा । एवं चक्रथद्वारादुत्तरस्माच्च मन्त्रिणी॥४२॥
विनिर्गत्य गेयचक्ररथराजे महोन्नते । सप्तपर्वयुते वेदहरिदश्वप्रचालिते ॥४३॥
हसन्ती श्यामला तत्र रथनेत्र्यभवत् परा । शुकाद्या सारिकाद्या च श्यामला दक्षपार्श्वगा॥४४॥
सङ्गीतसाहित्यपूर्वे श्यामले वामपार्श्वगे । लघुश्यामलिका पृष्ठे चैवमेता रथाऽऽश्रयाः ॥४५॥

हो विना कोई परामर्श किये जैसे पहले आये थे उसी प्रकार आ गये हैं। इसलिये हम दोनों जाती हैं। "हे महेश्वरि ! अतिशीघ्र आप हमें जाने की आज्ञा दीजिये।" ॥१६-३६॥

तदनन्तर देवी की आज्ञा पाकर मन्त्रिणी और दण्डनायिका दोनों उसे प्रणाम कर युद्ध के लिये पृथक्-पृथक् शक्तिसेना लेकर शीघ्र चलीं। देवी के दक्षिण पार्श्वभाग में स्थित अत्यन्त प्रचण्ड विक्रमवाली दण्डिनी थी जो श्रीचक्रराज रथ के दक्षिण द्वार से निकली। पांच पर्वों से शोभित अत्यन्त उन्नत किरिचक्र रथ था, पार्श्व में महासिंहों का जोड़ा तथा निकट सैरिभ (भैंसा) सामने था, जहाँ रथ का सारथी भैरव स्वयं स्थित था। उसके पार्श्व में सिंह के वाहनों द्वारा खींचे गये रथ पर आरूढ वे दोनों देवियां जो युद्ध के लिये फुरफुरायमाण वदन थी स्वप्नेश्वरी और कालसङ्कर्षा चलीं। वे बटुकों, कालिकागणों एवं वाराही शक्तियों जैसी असंख्य सेनाओं से परिवेष्टित हो लड़ने के लिए आ गयीं। इस प्रकार चक्ररथ के उत्तर द्वार से निकल कर महोन्नत गेय चक्ररथराज जो सात पर्वों से युक्त है, चार हरे घोडों द्वारा खींचा जाता है उस में हंसती हुई श्यामला देवी रथ की नेत्री बनी, शुकाद्या और सारिकाद्या श्यामला के दक्षिण पार्श्व में स्थित हुई। श्यामला के वामपार्श्व में संगीतश्यामला और साहित्यश्यामला स्थित हुई; लघु श्यामलिका पीठ पीछे बैठी। इस प्रकार ये रथ पर

परितो गेयचक्रात्मरथस्थाऽऽशु विनिर्ययुः। मन्त्रिण्यङ्गससुद्भूताः श्यामलाः कोटिकोटिशः ॥४६॥
रथाश्रयाः प्रचेलुर्वै युद्धसम्भारसम्भृताः। सर्वाः षोडशवार्षिक्यस्तारुण्यश्रीनिषेविताः ॥४७॥
रक्तकौशेयवसना नवरत्नविभूषणा। कटाक्षमन्दहासाभ्यां मोहयन्त्योऽखिलं जगत् ॥४८॥
कापिशायनपानोद्यन्मदघूर्णितलोचनाः। काव्याऽऽलापरसाऽभिज्ञा गीतवाद्यविनोदिताः ॥४९॥
नर्मक्रीडापराश्चाऽतिहास्यलीलापरायणाः। मन्त्रनाथा वाहिनी सा शुशुभेऽतितरां तदा ॥५०॥
तापिच्छवनमालेव विकसच्चारुमञ्जरी। अथाऽभवच्छक्तिसेनादैत्यसेनासमागमः ॥५१॥
उद्वेलयोः सागरयोरिव सङ्गमनं भुवि। अथ ध्वनद्युद्धवाद्यहुङ्काराऽऽस्फोटनिःस्वनः ॥५२॥
रथघोषतुरङ्गोच्चहेषागम्भीरमांसलः। सेनयोरुभयोस्तत्र बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥५३॥
शक्तिसङ्घमहामेघनिर्मुक्तेषुप्रवर्षणैः। दैत्यसेनामुखतटं विदीर्णं शतधाऽभवत् ॥५४॥

आरूढ हुई; गेय चक्रात्मक रथ को चारों ओर घेर कर बाहर आ गयी। मन्त्रिणी के अङ्ग से उत्पन्न कोटि-कोटि संख्या में श्यामलादेवियां रथ पर आरूढ हो युद्ध की पूर्ण साजसज्जा से सज्जित होकर आ पहुंची। ये सभी सोलहवर्षवयस्का (श्यामा) और यौवन की शोभा से परिपूर्ण, लालरेशमी वस्त्रधारण की हुई, नवरत्नों के आभूषणों से सजी हुई, अपने नेत्रप्रान्तरों से कटाक्ष तथा मन्दहास्य करती, सम्पूर्ण जगत् को मोहित करती हुई, विशेष प्रकार के कापिशायन (माधवी लता से बने) मद्यपान से मदभरे लाल नेत्रोंवाली, कविता के आलाप रस को पूर्ण रूप से जाननेवाली, गीतवाद्य के द्वारा अत्यन्त रमणीय विनोदमें प्रसन्न, हासपरिहास में सँल्लग्न और खूब अट्टहास्य में रंगी हुई उन देवियों से वह युद्धभूमि परिपूर्ण थी। अपनी उस वाहिनी से मन्त्रनाथा अत्यधिक शोभित हुई। तमालदल की वनमालाके समान खिली सुन्दर मंजरीवाली वह शोभाधायकरूपसे विराजमान हुई। अब शक्तिसेनाओं और दैत्यसेनाओं में परस्पर भिडन्त हुई। उस दृश्य से ऐसा लग रहा था मानो मर्यादा को लाङ्घे हुए दो सागर के तट भूमि पर मिलते हों। अनन्तर दोनों सेनाओं के निशानों के साथ युद्ध के बाजे बजने लगे जिसके साथयुद्धमें आये बीरों की हुंकार तथादोनों ओर से आस्फोटन अस्त्रों की फटकारों व पटाखों के छोडने के शब्द जिसे रथों के घोष और घोडों की ऊँची हिनहिनाहट के शब्द सहित गम्भीररूप से दीर्घ ध्वनिवाले घोरनाद से सब दिशायें मानों बहरी सी बना दी गयी। शक्तिसङ्घरूपी महामेघों से छोड़े गये बाणसमूहों रूपी वर्षा से मानो दैत्यसेना की अग्रिम पंक्ति शतधा विदीर्ण कर दी गयी। ॥३७-५४॥

दैत्यसेनाभिन्नमुखद्वारेण विविशुर्द्रुतम् । दैत्यसेनाह्रदं शक्तिसेनास्रोतः समन्ततः ॥५५॥
निविश्य दैत्यसेनां ताः शक्तयो बलवत्तराः । शस्त्राऽग्निभिर्दैत्यसेनावनं चक्रुर्हि भस्मसात् ॥५६॥
केचिच्छरैः सुनिचिताः केचित्परिघप्रोथिताः । अन्ये कृपाणिना च्छिन्ननिखिलाङ्गा गताऽसवः
परे चक्रविकृत्ताऽङ्गाः परशुछिन्नकन्धराः । इतरे शूलसूत्रेषु प्रोता मणिगणा इव ॥५८॥
अपरे शक्तिप्रमुखैर्भिन्नमूर्धोदराऽभवन् । एवं विनाश्यमानायां सेनायां शक्तिसेनया ॥५९॥
दृष्ट्वा विशुक्रोह्यत्यन्तं रोषाग्निज्वलितेक्षणः । रथेनाऽभ्यद्रवच्छक्तिवाहिनीं शस्त्रवर्षणैः ॥६०॥
जीमूत इव वर्षासु धाराः शरमयास्ततः । शक्तिसेनाऽपि युयुधे विशुक्रे च बलीयसी ॥६१॥
अथ पुत्रा विशुक्रस्य पितृतुल्यपराक्रमाः । जीमूतकायो देवारिः करम्भः शिखिभाषणः ॥६२॥
निविश्य शक्तिसेनाऽन्तर्जघ्नुस्ता बलवत्तराः । विशुक्रात्मजसञ्छिन्नां निशाम्य शक्तिवाहिनीम् ६३
चतुर्दिक्षु काल्यमानां शुकादिश्यामलामुखाः । विशुक्रपुत्रानासेदुर्वर्पन्त्य इषुसन्ततिम् ॥६४॥

जब दैत्यसेना की अग्रिम पंक्ति को भेदन कर दिया गया तो शक्तिसेना का उमडा हुआ स्रोतों का प्रवाह दैत्यसेनारूपी ह्रद (सरोवर) के भीतर शीघ्र चारों तरफ से प्रवेश कर गया। उस दैत्यसेना में प्रवेशकर बलशालिनी उन शक्तियों ने अपने शस्त्राग्नियों से दैत्यसेनारूपी बन को जला दिया ॥५५-५६॥

कई दैत्यगण तीक्ष्ण बाणों से बेंध दिये गये; कोई कोई वज्रों के प्रहारसे पिचक गये; और दूसरे दैत्यगण कृपाण के प्रहार से सारे अङ्ग छिन्नभिन्न किये जाकर प्राणहीन हो गये। यही नहीं बहुत से दैत्य चक्र से कटे अङ्ग हो छिन्नभिन्न होकर गिर गये; अन्यों के कन्धर (गले) काट दिये गये। इतर दैत्यगण शूलके तेज पर्वों के सूत्रों में इसप्रकार पिरो दिये गये जैसे मणियां सूत्र में पिरोयी जाती हैं। शक्तिप्रमुखों द्वारा अन्य दैत्यगण के सिर और उदर काट दिये गये। इसप्रकार शक्तिसेनाके द्वारा सेनाको नष्ट की हुई देखकर विशुक्र अत्यन्त रोषाग्नि से लाल लाल आखें कर रथ से शस्त्रों की वर्षा कर शक्तिसेना पर टूट पड़ा; वह बाणमयी धारा इस प्रकार लगती थी मानो वर्षाकालमें मेघ वर्षण करता हो। बलवती शक्तिसेना ने भी विशुक्र पर अस्त्रशस्त्रों से घातक प्रहार किया। अनन्तर विशुक्र के पुत्रगण जो पिताके समान ही पराक्रमी थे जिनमें जीमूतकाय, देवारि, करम्भ शिखिभाषण इन सब ने शक्तिसेना के अन्दर घुस कर उन बलवत्तर शक्तियों के ऊपर दारुण प्रहार किया। विशुक्र के पुत्रों द्वारा शस्त्रों के प्रहार से चारों ओर अत्यन्त विह्वल बनी

तत्र जीमूतकायेन युयोध शुकश्यामला । चिरं युद्ध्वा शरैस्तत्र रथं सूतं शरासनम् ॥६५॥
चिच्छेद निमिषार्धेन ततः प्रकुपितोऽसुरः । जघान तीक्ष्णधारेण खड्गेन रथवाहनम् ॥६६॥
तस्या रथाश्वो निहतः प्रस्खलद्भिन्नमस्तकः । तावच्छुकश्यामलिका अर्धचन्द्रेषुणा जवात्॥६७॥
अपातयच्छिरो देहात् पक्वतालफलं यथा । देवारिणा शारिकाख्या सङ्गता युद्धकर्मणि ॥६८॥
च्छिन्नध्वजरथाश्वं तं युध्यन्तं गदया दृढम् । स्वकीयगदयाऽऽप्लुत्य जघानाऽसुरमस्तके ॥६९॥
भिन्नमूर्ध निपतितो देवारिर्गतजीवनः । सङ्गीतश्यामला युद्धं करम्भेण चकार ह ॥७०॥
युद्ध्वा चिरं तेन सह खड्गेन शिर आच्छिनत्।साहित्यश्यामला युद्ध्वा बलिनं शिखिभाषणम् ।
शस्त्राऽस्त्रैस्तं विनिर्जित्य प्राक्षिपद्वक्षसि द्रुतम् । त्रिशूलं तेन दलितहृदयः प्राप तद्व्यसुः ॥७२॥
यावत्पुत्रा नियुध्यन्ति विशुक्रस्तावदाशु वै । छन्नरूपः श्यामलाया रथपार्ष्णिं समासदत् ॥७३॥
तत्र चोरवदायान्तं गदाहस्तं महाबलम् । दृष्ट्वा लघुश्यामलाख्या सन्निधानं समागतम् ॥७४॥

क्षीणशक्तिवाली शक्तिसेना को देखकर शुकश्यामलाप्रमुख देवियों ने प्रभूत बाणों की वर्षा कर विशुक्रपुत्रों को छा दिया। उस युद्ध में जीमूतकाय से शुकश्यामला लड़ी, दीर्घसमय तक बाणों से लड़कर वहां रथ, सारथि ओर धनुष को आधे निमिष में भेदन कर गिरा दिया। तदनन्तर प्रकुपित हो असुर ने तीक्ष्णधारवाले खड्ग से देवी के रथ के वाहन को मार दिया। उसके रथ का घोड़ा लुढकते हुए कटेमस्तक के सहित गिर पड़ा। तभी शुकश्यामला ने अर्धचन्द्रबाण से बड़े वेग से असुर के देह से शिर को उसी प्रकार काट गिराया जैसे पके ताड़ वृक्ष से उसका फल गिर जाता है। देवारि के साथ शारिकानामक देवी ने युद्ध में सामना किया। लड़ते हुए उस दैत्य के ध्वजा, रथ तथा घोडां को मार कर शुकसारिकाने असुर के मस्तक पर अपनी गदा से खूब कस कर प्रहार किया। शिर पर चोट लगने से देवारि गतप्राण हो गिर पडा। सङ्गीतश्यामला ने करम्भ के साथ युद्ध किया ॥५७-७०॥

चिरकाल तक उससे युद्ध कर देवी ने खडग से उसका सिर काट दिया। साहित्यश्यामला ने बलवान् शिखिभाषण से युद्ध कर शस्त्रों तथा अस्त्रों से उसे जीत कर छाती पर शीघ्र त्रिशूल मारा; जिससे हृदयप्रदेश दलित होकर असुर प्राणहीन हो गया। जब तक पुत्रलोग लड़ते रहे तभी विशुक्रने अतिशीघ्र वेष बदल कर श्यामला के रथ के पीछे के भाग पर अधिकार कर लिया वहां चोर के समान आए हुए हाथ में गदा लिये उस

मन्त्रेश्या रथवर्यन्तमारुरुक्षन्तमञ्जसा । जघान मूर्ध्नि तरसा खड्गेनाऽतिबलीयसा ॥७५॥
खड्गप्रपाततस्तस्य मुकुटं शकलीकृतम् । विशुक्रो भ्रष्टमुकुटः क्रोधारुणितलोचनः ॥७६॥
गदामादाय वेगेन हन्तुं तामभिसंययौ । तावच्छरेण दैत्यस्य गदां चिच्छेद सप्तधा ॥७७॥
निरायुधो विशुक्रोऽपि मुष्टिना रथवाजिनाम्। तस्या जघान तावत् सा प्राहरन्मूर्ध्नि सायकैः॥७८॥
सायकैर्विदलन्मूर्धा पपात भुवि मूर्च्छितः । ईषत्प्रज्ञस्तावदेनं ग्रहीतुं लघुश्यामला ॥७९॥
रथादवप्लुत्य शीघ्रं बाहुभ्यां तं परामृशत् । प्रतिबुद्धस्तावदसौ मत्वा स्वस्य हि बन्धनम् ॥८०॥
मुष्टिनाऽभ्यहनद्देवीं साऽपीषत्कश्मलं ययौ। तावज् ज्ञात्वा रथस्थानाः शक्तयो रिपुमन्तिके॥८१॥
कोटिशस्तं समुत्पेतुर्वाहिनी शक्तयोऽपि च । तावन्मत्वा शक्तिगणं दुःसहं दैत्यशेखरः ॥८२॥
उत्प्लुत्य स्वरथं प्राप्तो दैत्यसेनामुखस्थितम्। तत्र दृष्ट्वा मृतान् पुत्रान् शोकसंविग्नमानसः ॥८३॥
विलप्य किञ्चिदत्यन्तरोषारुणितलोचनः । प्रज्वलन् शक्तिसेनां तां विधमच्छरवर्षणैः ॥८४॥

महावीर को लघुश्यामला ने देखकर सन्निकट आया जान मन्त्रेशी के रथ पर चढने की चेष्टा करते हुए उसके शिर पर खड्ग से खूब दृढ़ वेगपूर्वक प्रहार कियो। खड्ग के आघात से उस के मुकट के टुकड़े-टुकड़े हो गये। अपने मुकुट के टूटने पर विशुक्र क्रोध से लाल आँखें किये गदा लेकर वेग से देवी का ओर लपका। तब ही देवी ने बाण से गदा के सात टुकड़े कर दिये। अब शस्त्रास्त्रहीन विशुक्र भी मुट्ठी बांध देवी के रथ के घोड़ों पर प्रहार करने चला तब तक तो देवी ने बाणों से मस्तक पर प्रहार किया। बाणों के आघात से क्षतमस्तक वह भूमिपर मूर्च्छित हो गिरा। जब थोड़ी संज्ञा में आया तो लघुश्यामला ने उसे पकड़ने के लिये रथ से कूदकर अपनी बाहुओं से उसे कस कर पकड़ लिया। अपनी मूर्च्छा खुलने पर उस राक्षसने अपने को ही बंधन में जान मुट्ठी से देवी पर आघात किया। वह भी इस से थोड़ी व्याकुल हुई। तभी रथ पर आरूढ देवियाँ शत्रु को निकट जान कर कोटिसंख्या में वाहिनी तथा शक्तियों सहित ही उस दैत्य पर टूट पड़ी। तबतक दैत्यों का शिरोमणि वह शक्तिगणको अत्यधिक दुष्प्रधर्ष जानकर बड़े वेग से कूदकर दैत्यसेना की अग्रपंक्ति में खड़े अपने रथ के पास पहुंच गया। वहां अपने पुत्रों को मृत देख शोकाकुल हो उस दैत्यने कुछ विलापकर अत्यन्त रोषपूर्ण रक्तलोचन किये अपने बाणों की वर्षासे शक्तिसेनाको अत्यधिक खदेड़ दिया। शक्तियों की सेना के प्राणहरनेवाले विशुक्र को देखकर मन्त्रिणी ने अपने धनुषरूपी वर्षा के

दृष्ट्वा विशुक्रं शक्तीनां सेनाप्राणाऽपहारिणम्। मन्त्रिणी सायकाऽऽसारैर्धनुर्जीमूतनिःसृतैः ॥८५॥
ववर्ष नीलशैलोच्चशृङ्गं पर्जन्यवद्भृशम् । तीक्ष्णसायकधाराभिर्विशुक्रोऽत्यन्तविक्षतः ॥८६॥
देहक्षतेभ्योऽतितरामसृग्धारां मुमोच वै । नीलाद्रिर्वृष्टिधाराभिर्गैरिकारसवत्क्षणम् ॥८७॥
मन्त्रिण्या गाढसंविद्धो रोषात् प्रज्वलिताऽऽकृतिः। विचित्रशस्त्रशलभैराच्छादयत मन्त्रिणीम्।८८।
विरेजे मन्त्रिणीच्छन्ना दैत्यशस्त्रमधुव्रतैः । तमालमञ्जरीवाऽतिमकरन्दसुबृंहिता ॥८९॥
क्षणेन दैत्यशस्त्राणि निवार्य शरवर्षणैः । आकर्णपूर्णभल्लेन धनुर्ज्यामाच्छिनद्द्रुतम् ॥९०॥
यावज्ज्यामपरां चापे निवेशयितुमीहते । तावत्तीक्ष्णपृषत्केन मुष्टिदेशे जघान तम् ॥९१॥
गाढविद्धदैत्यमुष्टेर्दैत्यस्य धनुरापतत् । पतितं धनुरादातुं यावन्नम्रो महासुरः ॥९२॥
तावदन्येनाऽभिहनत् पत्रिणा मूर्धि मन्त्रिणी । स तावदिषुणा भिन्नमूर्धा गाढसुमूर्च्छया ॥९३॥

बादलों से छूटी बाणवर्षा से जैसे नीलपर्वत के ऊँचे शिखर पर घनवर्षण होता है वैसे एकनिष्ठ ही बाण बरसाये। अत्यन्त तेज धारवाले बाणों की सतत वर्षा से विशुक्र का शरीर बहुत अधिक बिंध गया और सारा शरीर रक्तसे परिपूर्ण हो गया। देह में हुए क्षतों से अतिमात्रा में रक्त की धारा बहने लगी। जैसे नीलाचल वर्षा की धाराओं से गैरिक (गेरुआरंग) रस से छा जाता है उसी के समान क्षणभर में वह बाणों के क्षत से निकले रक्त से सन गया। मन्त्रिणी द्वारा वेगपूर्वक बाणों से छाये उसने रोष से मुख को लाल कर विचित्र शस्त्रोंरूपी शलभों (कीटपतङ्गों) से मन्त्रिणी को छा दिया। दैत्य के शस्त्ररूपी भौरों से मन्त्रिणी इसप्रकार आच्छादित हो रही थी मानो अतिशय पराग से आकृष्ट हो भ्रभरावलि से घिरी सुशोभित तमालमञ्जरी लगती हो ॥७१-८९॥

उसने क्षणमात्र में अपने बाणों की वर्षा से दैत्य के शस्त्रों का वारण कर अपने कानों तक भाले को खींचकर उससे धनुष की प्रत्यंचा को तुरन्त काट डाला। जैसे ही वह दूसरी प्रत्यंचा को धनुष में लगाने ही चला था कि देवी ने तीखे बाण से उसके मुष्टि भाग पर प्रहार किया। दैत्य की अतिमात्र क्षत हुई मुट्ठी से धनुष गिर पड़ा; गिरे धनुष को लेने को जैसे ही वह महादैत्य झुका वैसे ही मन्त्रिणी द्वारा एक अन्य बाण से उसके सिर पर आघात किया गया। तब बाण से अपने मस्तक पर आघात किये जाने से वह राक्षस गाढी मूर्च्छा पाकर अपने रथ के पीछे के भाग में इसप्रकार गिरा जैसे वज्र के प्रहार से पर्वतराज गिरता है। अब मन्त्रिणी ने क्षणमात्र में ही दैत्य के

अपतत् स्वरथोपस्थे वज्राहत इवाऽद्रिराट् । अथ क्षणेन मन्त्रिण्या नाशितं दैत्यवाहनम् ॥९४॥
सारथिश्छत्रमुकुटे शस्त्रसङ्घं शरैः पृथक् । तावन्मूर्च्छाविनिर्मुक्तो ददर्शाऽऽहवसाधनम् ॥९५॥
साकल्येन विनष्टं तत् क्रुद्ध उत्प्लुत्य तां रुषा । शीर्णं रथाङ्गमादाय निहन्तुमुपसंययौ ॥९६॥
तावद्दक्षभुजेऽत्यन्तवेगाच्छरमपातयत् । शरेणाऽभिहताद्धस्ताद्रथाङ्गं प्रापतत् क्षितौ ॥९७॥
ततो मुष्टिं समुद्यम्य रथ आप्लुत्य सत्वरम् । मन्त्रिणीहस्तगं चापंभङ्क्तुं यावत् समाच्छिनत्९८
तावत्तीक्ष्णाऽसिना कायाच्छिरस्तस्य निपातयत् । दृष्ट्वा विशुक्रं निहतं विद्रुता दैत्यवाहिनी ॥९९॥
परिशिष्टाऽतिवित्रस्ता शस्त्राण्युत्सृज्य सर्वतः । जयशब्दं शक्तिगणाश्चक्रुर्देवमुखा अपि ॥१००॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये
विशुक्रवधवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥६१६६॥

वाहन को नष्टकर दिया; उसके साथ ही सारथि, छत्र, मुकुट और शस्त्रों के समूह को पृथक्-पृथक् बाणों से मार गिराया तथा काट डाला जैसे ही मूर्च्छा से चेतना आने पर राक्षस ने युद्ध के साधन अपने रथ, अश्व और सारथि को खोजा तो उन सब ही को पूर्णतया नष्ट देख तब क्रुद्ध हो वह देवी पर झपटा। अब तो वह टूटे हुए रथ के पहिये को लेकर देवी को मारने चला। तब तक देवी ने राक्षसकी दक्षिण भुजा में अत्यन्त वेगपूर्वक बाण से आघात किया। बाण से छिन्न हुए दैत्य के हाथ से रथ का चक्का भूमि पर गिर पड़ा। तब दैत्य मुट्ठी बांध कर अति शीघ्र रथ पर चढकर मन्त्रिणी के हाथ में पकड़े धनुष को तोड़ने को जैसे वह तैयार हुआ तभी देवी ने अत्यन्त तीक्ष्ण करवाल से उसके शरीर से शिर को पृथक् कर दिया। विशुक्र को मृत देख दैत्य की वाहिनी भाग गयी। जो दैत्य अवशिष्ट बचे तो अत्यन्त त्रस्त होकर अपने अपने शस्त्रों को छोड़कर भाग गये। इस पर सब ओर से शक्तिगण ने तथा इन्द्रादि देवप्रमुखों ने भी जयजयकार किया ॥९०-१००॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में ललितामाहात्म्य का विशुक्रवध-
प्रकरणनामक चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥

पञ्चसप्ततिमोऽध्यायः

विषङ्गवधवर्णनम्

विषङ्गेनाऽपि वाराही सङ्गता समरे यदा । तदा दैत्यशक्तिचम्वोरभवद्भैरवो रणः ॥१॥
शक्तीनां खड्गचक्राऽसिपरिघप्रासतोमरैः । वटुकानां त्रिशूलाद्यैर्दैत्या भूयोऽभिविक्षताः ॥२॥
तिलशः छिन्नवर्ष्माणि जहुः प्राणान् रणाऽजिरे । दृष्ट्वा दैत्यचमूं शक्तिगणैः प्रायो विनाशिताम्
क्रुद्धाऽभिदुद्रुवुः शक्तिचमूं पर्वतसन्निभाः । विषङ्गपुत्राः प्रोद्दण्डविक्रमा वीर्यवत्तराः ॥४॥
करालवक्त्रो विशिखो विभाण्डो विकटेक्षणः । इन्द्रशत्रुः सुराऽरातिर्महाकुक्षिर्मदोद्धतः ॥५॥
एतेऽष्टौ भीमबलिनो शक्तीर्जघ्नुः समन्ततः । तैर्हन्यमानां तां शक्तिवाहिनीमभिवीक्ष्य तु ॥६॥
अभ्याययुस्तान्नियोद्धुं जम्भिनी स्तम्भिनी तथा। अन्धिनी मोहिनी चैव भैरवः कालकर्षिणी ॥७॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

जब वाराही विषङ्ग के साथ युद्ध में भिड़ी तब दैत्यों और शक्तियों की सेनाओं का परस्पर भीषण युद्ध हुआ। शक्तियों के खड्ग, चक्र, असि, वज्र अङ्कुश, प्रास (चन्द्रहास) और तोमर (दूरप्रक्षेप्यास्त्र) से तथा वटुकों के त्रिशूलआदि से दैत्यगण बहुत अधिक विकल एवं क्षतविक्षत किये गये। वे तिलतिल कर के छिन्न अङ्ग होकर युद्धप्राङ्गण में प्राणहीन बना दिये गये। शक्तिगण द्वारा दैत्यसेना को प्रायः नष्ट की हुई देख पर्वत के समान अत्यन्त उद्धत विक्रमवाले प्रबल वीरवर विषङ्ग के पुत्रगण शक्तिसेना में वेग से दौड़े। करालवक्त्र, विशिख, विभाण्ड, विकटेक्षण, इन्द्रशत्रु सुरारति, महाकुक्षि और मदोद्धत इन आठों प्रबल पराक्रमशील वीरों ने शक्तियों पर चारों ओर से आक्रमण किया। दैत्यगण द्वारा उस शक्तिसेना को बुरी तरह से परास्त करते देख अत्यन्त भीषणविक्रमसम्पन्न जम्भिनी, स्तम्भिनी, अन्धिनी, मोहिनी, भैरव और कालकर्षिणी,

स्वप्नेश्वरी च वटुक इत्यष्टौ सुविभीषणाः । करालवक्त्रेण युधि जम्भिनी सङ्गताऽभवत् ॥८॥
युद्ध्वा चिरं तया साकं शस्त्रास्त्रैर्दैत्यपुङ्गवः । गदयाऽभिजघानाऽऽशु वराहं शक्तिवाहनम् ॥९॥
ताडितो जम्भिनीवाहो शूकरो भिन्नमस्तकः । ईषत् पपात पुरतो जानुभ्यामवनिङ्गतः ॥१०॥
तावत्क्रुद्धा जम्भिनी च खड्गेन शिर आहरत् ।
विशिखः स्तम्भिनीं प्राप्य युयोधाऽतिबली दृढम् ॥११॥
स्तम्भिनी हरिणाऽऽरूढा विशिखैर्विशिखं त्रिभिः । जघान तैर्मूर्ध्नि लग्नैर्विशिखोऽतिव्यराजत
त्रिशृङ्ग इव दैत्येन्द्रः सुस्राव बहुशोणितम् । सोऽपि क्रुद्धोऽतिवेगेन तीक्ष्णधारेण कर्णिना ॥१३॥
धनुर्ज्यामाच्छिनद्भूयो विकीर्य निशितैः शरैः । तावत्क्रुद्धा स्तम्भिनी च गार्ध्रपत्रेण तेजिना
तद्वाहनोष्ट्रमनयच्छित्त्वाऽन्तकपुरं प्रति । अथ तस्य क्षणेनैव निशितैर्विशिखैस्त्रिभिः ॥१५॥
निषङ्गं मुकुटं चापं चिच्छेद युगपद्युधि । स छिन्नधन्वाऽतिरुषा त्रिशूलमतिभास्वरम् ॥१६॥

स्वप्नेश्वरी और वटुक इन आठों शक्तिगण की नायिका एवं नायकों ने युद्ध भूमि में प्रवेश किया । युद्ध में जम्भिनो ने करालवक्त्र के साथ भिड़न्त की ॥१-८॥

उसके साथ चिरकाल तक शस्त्रों और अस्त्रों से युद्ध कर उस दैत्यराज ने अतिशीघ्र शक्ति के वाहन वराह को गदा से मारा । जम्भिनी का वाहन शूकर आघात पाकर मस्तक फट जाने से देवी के सामने ही अपने घुटनों के टिक जाने पर गिर पड़ा । तभी जम्भिनी ने क्रुद्ध हो कर खड्ग से उसके शिर को काट डाला । बलवान् दैत्यराज विशिख स्तम्भिनी के पास आकर पराक्रमपूर्वक लड़ा । स्तम्भिनी ने सिंह पर सवार हो अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से विशिख के सिर पर आघात किया । उन बाणों के सिर पर लगने से दैत्येन्दु विशिख जैसे तीन शिखरोंवाला पर्वत शोभित होता है; वैसे लगता था । उसके सिर से बहुत अधिक रक्तधारा बहने लगी । उसने अधिकाधिक क्रुद्ध हो अत्यन्त वेगपूर्वक तीक्ष्ण धारवाले बाण से धनुष की डोरी को काट डाला । तीक्ष्ण बाणों से काट कर फिर क्रुद्ध हो स्तम्भिनी ने गार्ध्रपत्र (अत्यन्त तीक्ष्ण अन्त्रवेध बाण) को उसके वाहन ऊँट के ऊपर छोड़ उसे मार डाला । अनन्तर क्षणमात्रमें ही तीन अत्यन्त पैने बाणों से अपने तूणीर (तरकस), मुकुट एवं धनुष के टूट जाने पर अत्यन्त रुष्ट हो दैत्य ने अत्यन्त

स्तम्भिनीं प्रतिचिक्षेप तावत् सा लघुविक्रमा । छित्त्वा त्रिशूलं भल्लेन शिरो दैत्यस्य पातयत्
अन्धिन्या युयुधे तत्र विभाण्डो बलगर्वितः । शस्त्रैरस्त्रैरनेकैश्च कृतप्रतिकृतैररम् ॥१८॥
अन्धिनी महिषाऽऽरूढा विभाण्डः खरवाहनः। चिरं युद्ध्वा तेन तत्र कर्णान्ताऽऽकृष्टपत्रिणा।१९।
जघान दैत्यमुरसि तथा विद्धो विभाण्डकः ।पपात मूर्च्छितो गाढं छिन्नपक्ष इवाऽद्विराट्॥२०॥
अथ तद्वाहनः खरो पर्वताभोऽतिधूसरः । काशब्दं भीषणं कृत्वा समुन्नम्य च वालधिम् ॥२१॥
निविष्टः शक्तिसेनासु संस्तब्धाङ्गरुहो बली । काश्चित्प्रत्यक्पादघातैर्दशनैश्चाऽवधूननैः ॥२२॥
अन्याः स्वगतिवेगेन खरः शक्तीर्निपातयत् । एवं शक्तीर्विनिघ्नन्तं खरं दृष्ट्वाऽन्धिनी तदा ॥२३॥
शरेणाऽऽकर्णपूर्णेन जघानाऽतिरुषाऽन्विता । स विद्धस्तीक्ष्णबाणेन मूर्च्छितः प्रापतद्भुवि॥२४॥
तावन्मूर्च्छाविनिर्मुक्तो विभाण्डोऽत्यन्तरोषितः । वेगेन गदया तस्या वाहनं ताडयद्बली ॥२५॥
अन्धिनीवाहमहिषस्ताडितो गदया भृशम् । विद्रुत्य मन्युज्वलितस्तं शृङ्गाभ्यां समाक्षिपत्॥

तीक्ष्ण त्रिशूल को स्तम्भिनी की ओर अपनी प्रतिक्रियास्वरूप फेंका, तभी युद्धकौशल में प्रबल पराक्रमवती देवी ने भाले से त्रिशूल को बीच में काट कर दैत्य के शिर को गिरा दिया ॥१९-१७॥

बलसे दृप्त विभाण्डने अनेक प्रकार के प्रतिरोधी शस्त्रों से देवी के छोड़े शस्त्रों को काटकर उससे युद्ध किया। अन्धिनी महिष पर तथा विभाण्ड गधे पर आरूढ था। उससे दीर्घकाल तक युद्ध करके अन्धिनी ने अपने कानों तक तान कर चलाये बाण से दैत्य के वक्षःस्थल पर आक्रमण किया। उस प्रकार बाणों से बिंधे वक्षःस्थलवाला विभाण्डक काटेपक्षवाले पर्वतराज के समान अत्यन्त गाढ मूर्च्छा में गिर पड़ा। अब उसका वाहन गधा पर्वत के समान उन्नत अत्यन्त कृष्णरंगवाला जैसे ही भीषण रेंकने का शब्द करता हुआ अपनी पूंछ को ऊंची कर शक्तिसेना में घुसा तो सम्यक् प्रकारसे स्तब्ध अङ्गवाले उस बलवान् ने उनमें से कोई कोई को अपनी दुलत्तियां मार कर, किन्हीं को दातों से काट कर तथा किन्हीं को अपने पैरों तले रौंद कर एवं अन्य शक्तियों को अपनी दौड़ से मार गिराया। इसप्रकार तब अन्धिनी ने शक्तियों को मारते हुए खर को देख कर खूब खींचकर छोड़े बाण से अतिरोषपूर्वक क्रुद्ध हो उस पर आघात किया। वह तीक्ष्ण बाण से बिंधकर मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ा। तब तक अपनी मूर्च्छा से जागने से सुध बुध होते ही बली विभाण्ड ने अत्यन्त रुष्ट हो अतिवेग से गदा के द्वारा उसके वाहन को मारा। अन्धिनी का वाहन महिष ने गदा के भीषण प्रहार से प्रताडित होकर अत्यधिक रोष से झुंझलाते हुए

विभाण्डो महिषाऽऽक्षिप्त आकाशं प्राप्य वेगतः । परतो योजनाद्भूमौ पपात सुविमूर्च्छितः।२७।
तावद्भ्याययौ तस्य वाहो रासभशेखरः । मुञ्चन् सुशीघ्रं काशब्दं सघर्घरमहारवम् ॥२८॥
आगत्य महिषं भूयः परावृत्य सुवेगतः । पाश्चात्यपादघातेन सन्ताड्य बलवत्तरम् ॥२९॥
ददंश तं पुनः कण्ठे तावत् क्रुद्धः स सैरिभः । शृङ्गाभ्यां दारयत् कुक्षिं भूमावास्फाल्य वेगतः३०
निर्गताऽन्त्रः खरो मृत्युं प्राप निर्यातितेक्षणः । विमूर्च्छस्तावदभ्येत्य विभाण्डोऽभिहनत् पदा।३१।
महिषं तावदिषुणाऽन्धिनी दैत्यस्य मस्तकम् । अपाहरदतिक्रोधात् कृत्तमूर्द्धा ममार सः ॥३२॥
युयोध मोहिनी दैत्यं शस्त्रास्त्रैर्विकटेक्षणम् । मोहिनी गरुडारूढा गृध्रस्थो विकटेक्षणः ॥३३॥
सुपर्णगृध्रयोर्भीममासीद्युद्धं नभोऽङ्गणे । सपक्षयोः पर्वतयोरिवाऽत्यन्तविचित्रितम् ॥३४॥
तदा सुपर्णपक्षाभ्यां प्रोथितो गृध्रशेखरः । नखैस्तुण्डैर्दारिताङ्गो ममार पतितोऽवनौ ॥३५॥

अपने दोनों सींगों से उसे फेंक दिया। महिष द्वारा फेंका हुआ विभाण्ड आकाश में ऊँचा उछाला जाकर वेग से एक योजन भूमि की दूरी पर मूर्च्छित हो गिर पड़ा ॥१८-२७॥

तब तक उसका वाहन रासभशेखर (गर्दभराज) आगया; उसने आते ही रेंककर घर्घर शब्द करते हुए अति शीघ्र वेग से महिष को पीछे धकेल कर अपनी पिछली दुलत्तियों से खूब कसकर मारमारी तथा अपने दांतों से महिषके कण्ठ को काटा। तब तक तो क्रुद्ध उस महिष ने अपने दोनों सींगों से गधे के पेट में प्रहार कर भूमि पर बड़े वेग से उसे ऐसा फेंका कि उसकी आंते बाहर निकल आयी और अपनी आंखें खोले वह वहीं प्राणहीन ढेर हो गया। अपनी मूर्च्छा से स्वस्थ होकर विभाण्ड ने आकर महिष को पैर से प्रताडित किया; तभी अन्धिनी ने दैत्य के मस्तक पर बाण से अत्यन्त क्रोधपूर्वक प्रहार किया जिससे वह शिर कटा निष्प्राण हो मर गया ॥२८-३२॥

मोहिनी विकटेक्षण दैत्य के साथ अपने शस्त्रास्त्रों से युद्ध में भिड़ गयी। मोहिनी देवी गरुड पर सवार थी और विकटेक्षण दैत्य गृध्र पर आरूढ था। अन्तरिक्ष में पंखोंवाले पर्वत के समान गरुड और गीध दोनों का भयङ्कर सङ्घर्ष छिड़ा। उन्होंने अपने पंखों से अत्यन्त विचित्र युद्ध किया। तब गृध्रराज गरुड के पक्षों से अत्यधिक प्रताडित हुआ उसके नखों तथा चोंच से विदारितशरीरवाला व्याकुल हुआ भूमि पर गिर कर मर गया ॥३३-३५॥

विकटाक्षो हते वाहे क्रुद्धो युद्ध्वा चिरं तया । मोहिनीचक्रसंच्छिन्नगलो मृत्युमुपागतः ३६॥
इन्द्रशत्रुः सर्पसंस्थो भैरवेणाऽभिसङ्गतः । स्ववाहेनाऽतिभीमेन युयोधाऽत्यन्तसाहसी ॥३७॥
भैरवः कालमेघाभः स्वसमाकारभैरवैः । कोटिसङ्ख्यागणयुतैरष्टभिः सेवितोऽनिशम् ॥३८॥
सर्वे त्रिशूलदण्डाढ्यास्त्रिणेत्राश्चन्द्रशेखराः । कालमेघनिभाः सर्पभूषणाः कृत्तिवाससः ॥३९॥
इन्द्रशत्रोश्चमूं भीमां दशाक्षौहिणीसम्मिताम्। निविश्य ते निमेषेण निःशेषाश्चक्रुरोजसा ।४०॥
केचिच्छूलेषु सम्प्रोताः केचिद्दण्डैर्विदारिताः। केचिन्नखैः पाटिताङ्गाः केचिन्मुष्टिभिराहताः ॥४१॥
दधुर्दैत्याऽन्त्रमालां ते भैरवाणां गणास्तदा । एवं दृष्ट्वा प्रनष्टां स्वामिन्द्रशत्रुश्चमूं रुषा ॥४२॥
गदया भैरवगणं मर्दयामास सर्वतः । एवं गणानर्द्यमानान् वीक्ष्य दैत्येन संयुगे ॥४३॥
मन्थानाद्यपराह्वाना असिताङ्गादिभैरवाः । इन्द्रशत्रुं पर्वताभं युयुधुः सर्पवाहनम् ॥४४॥

अपने वाहन के मर जाने पर विकटाक्ष ने क्रुद्ध हो दीर्घकाल तक मोहिनी से संघर्ष किया; फिर मोहिनी के चक्र द्वारा उसके गले को काट दिये जाने पर मृत्यु को प्राप्त हो गया। सर्प पर आरूढ हो इन्द्रशत्रु वह दत्य भैरव से लडा;अत्यन्त साहसी वह दैत्य अपने अति भीषण वाहनके सहित शक्तियों से लड़ा। कालमेघके समान भैरव अपने समान आकृतिवाले आठ भैरवों के साथ अहर्निश कोटिसंख्यावाले गणों के सहित विराजमान था। वे सब त्रिशूल और दण्डधारी थे, तीन नेत्र और शिर में चन्द्र को धारण किये उनके सर्पों के आभूषण एवं व्याघ्रचर्म धारण किये हुए थे तथा कालमेघ के समान थे। भयङ्कर इन्द्र के शत्रु उस दैत्य की दश अक्षौहिणीवाली सेना में प्रवेश कर उन्होंने निमेषमात्र में अतिवेगपूर्वक राक्षसगण को मार गिराया। कई दैत्य उनकी शूलों में पिरो दिये गये, किन्हीं को दण्डों से पीटा गया; कोई कोई दैत्य तो नखों से विशेषरूप से अपने अङ्गों के चीरडालने से छिन्न शरीरवाले हो गये तथा किन्हों दैत्यों को मुष्टिकाओं के प्रहार से मारा गया ॥३६-४१॥

तब उन भैरवों के गणों ने मृत दैत्यों के अन्त्रों (आंतों) की माला पहनी। इस प्रकार अपनी सेना को नष्ट हुई देख वह इन्द्र का शत्रु दानवेन्द्र रोषाविष्ट हो अपनी गदा से भैरवगण को चारों ओर से प्रहार करते हुए ताडन करने लगा। इसप्रकार दैत्य द्वारा युद्धमें भैरवगण को पीड्यमान और त्रासमान देखकर मन्थान आदि विविध नामवाले असिताङ्ग आदि भैरवों ने पर्वत के समान भीषण सर्प पर आरूढ़ इन्द्र के शत्रु उस दैत्यराज से युद्ध किया। उन

तान् योधयामास दैत्यः सर्वानेको रणाऽजिरे । वज्रसंहननं तस्य शूलदण्डप्रपातनैः ॥४५॥
अक्षतं सर्वथा यद्वद्गण्डशैलः फलैर्हतः । तं दृष्ट्वा विरुजं दैत्यं भैरवाणां भयङ्करम् ॥४६॥
युयुधे तेन समरे भैरवाणामधीश्वरः । युद्ध्वा चिरमुत्पतन्तं गदया हन्तुमम्बरम् ॥४७॥
आविध्य हृदि शूलेन भुवि तं व्यसुमाक्षिपत् । युद्ध्वा सुराऽरातिरपि कालकर्षिणिकाऽऽह्वयाम्
काकसंस्थो बलायाऽधिरूढया सुचिरं बली । तच्छक्तिगणनिःशेषीकृतदैत्यमहागणः ॥४९॥
तदङ्कुशप्रहारेण भिन्नमूर्धा ममार ह । स्वप्नेश्या युयुधे दैत्यो महाकुक्षिर्वृकाश्रयः ॥५०॥
रथाधिरूढया सेना नाशिता शक्तिसङ्गकैः । चिरं योधयतस्तस्य महाकुक्षेर्बलीयसः ॥५१॥
विदार्य कुक्षिं खड्गेन नाशयद्व्यपुङ्गवम् । मदोद्धतोऽपि वटुकभैरवेण सुसङ्गतः ॥५२॥
वटुकैः स्वसमाकारैर्दशकोटिमितैस्तथा । महाकपालदण्डाढ्यैः सर्पभूषणसंयुतैः ॥५३॥

सबके साथ अकेले दैत्य ने युद्धक्षेत्रमें संघर्ष किया; उसके दण्ड के प्रहारों और शूलों से, वज्रसंहननसक्षम शरीर सर्वथा अक्षत ही रहा जैसे गण्डशैल पर फलों की चोट लगने से कोई प्रभाव नहीं होता। भैरवगण के लिये अति भयङ्कर उस दैत्यराज के प्रहारों से अप्रभावित देखकर भैरवों के अधीश्वरने उसके साथ युद्ध किया। दीर्घकाल तक लड़कर जैसे ही दैत्य गदाको लेकर प्रहार करने को आकाशमें उछला वैसे ही भैरवेश्वरने उसके हृदयमें शूल गड़ाकर उसे भूमि पर निष्प्राण डाल दिया। काक पर सवार होकर बलवान् सुरारति दैत्यने भी महिष पर आरूढ कालाकर्षिणिका नाम की देवी से बल-पूर्वक दीर्घकाल तक लड़ाई की। उस देवी की शक्तिगणों द्वारा दैत्यराज के राक्षसगण का विशाल संख्या में संहार कर देने पर भगवती के अङ्कुश के प्रहार से शिर के फूट जाने पर वह निष्प्राण हो गिर गया। भेड़िये पर आरूढ महाकुक्षि दैत्य ने स्वप्नेशी से युद्ध किया। रथ पर आरूढ देवी ने शक्तिसङ्ग के सहयोग से दैत्यसेना का नाश किया। उस बलवान् महाकुक्षि के लड़ते रहने पर स्वप्नेशी देवी ने तलवार से पेट को काटकर उस दैत्यपुङ्गव को नष्टकर दिया। मदोद्धत नामक राक्षस भी वटुकभैरवके साथ भिड़ा, अपने ही समान आकृतिवाले दश कोटिसंख्यावाले वटुकों के साथ वह दैत्य से लड़ रहा था। ये सब महाकपाल (खप्पर) और हाथ में दण्ड लिये, सर्पों का आभूषण धारण किये, पांच वर्ष के उम्रवाले, उन्मत्त, नग्न, अरुण नेत्रधारी, निविड अंधकार के समान काले वर्णवाले, चन्द्रमा का चूडा

पञ्चहायनकैर्मत्तैर्दिग्वस्त्रैररुणेक्षणैः । तमस्तोमनिभैश्चन्द्रचूडैर्युक्तेन सर्वतः ॥५४॥
दशाक्षौहिणिकायुक्तो युयोधाऽतितरां बली । वटुकानां गणाः क्रुद्धा निविश्याऽसुरवाहिनीम्
दण्डैर्निहित्य तरसा नाशं निन्युर्यथाऽऽशु नः । अथ क्रुद्धं दैत्यपतिं निपतन्तं गदाधरम् ॥५६॥
वटुकेशो जघानोच्चैर्मूर्ध्नि दण्डेन लीलया । दण्डाऽऽहत्या दलन्मूर्धा वमन् रक्तं सफेनिलम् ॥५७॥
पतित्वाऽऽशु विनिश्चेष्टो ममाराऽसुरशेखरः । एवं विषङ्गः पुत्रेषु नष्टेष्वत्यन्तदुःखितः ॥५८॥
क्रोधमाहारयत्तीव्रं विंशत्यक्षौहिणीयुतः । निपपातैकपातेन प्रलयाऽनिलवज्जवात् ॥५९॥
किरिचक्रोपरि तदा ध्वनद्वादित्रनिःस्वनः । शस्त्रधारां विमुञ्चन् वै कुर्वन् सतिमिरा दिशः ॥६०॥
ज्वलद्वह्निमहाकूटे शलभानां गणा इव । अथ जम्भिनिमुख्याभिर्नाशिता क्षणमात्रतः ॥६१॥
विषङ्गसैन्यं शस्त्राग्निज्वालाभिः शलभानिव । केचित्त्रिशूलस्फुटितहृदया जीवितं जहुः ॥६२॥
परे दण्डविकीर्णाङ्गा अन्ये परिघप्रोथिताः । अपरे सायकैश्छन्ना ततोऽन्ये मुष्टिदारिताः ॥६३॥

बनाये (वटुकलोग भैरव के साथ) थे। अपनी दश अक्षौहिणी सेना के साथ वह बली खूब घमासान सङ्घर्ष कर लडा। वटुकों के गण क्रुद्ध हो दैत्यसेना पर टूट पड़े; उन्होंने वेगपूर्वक दण्डों से उन्हें मार-मार कर शीघ्र नष्टकर दिया। अब गदा लेकर क्रुद्ध दैत्यपति जैसे ही अपना प्रहार करने को था वैसे ही वटुकेश ने अत्यन्त वेग से उसके सिर पर दण्ड से प्रहार किया। दण्ड की चोट से इसका सिर फूट गया और वह झागोंवाले खून की वमी करने लगा। भूमिपर गिर कर वह असुरशेखर संज्ञाहीन हो मर गया। इसप्रकार विषङ्ग अपने पुत्रों के नष्ट होने पर अत्यन्त दुःखित हुआ; उससे क्रुद्ध हुआ वह अपनी बीस अक्षौहिणी सेना के साथ अत्यन्त तीव्र वेग से एकसाथ ही देवी की शक्तियों पर प्रलय के प्रबल वायु के समान आक्रमण किया। तब युद्ध के बाजों के शब्द करते हुए उसने किरिचक्र पर युद्ध के बाजों की ध्वनि के बीच शस्त्रधारा छोड़ते हुए सब दिशाओं को विशेष अन्धकार युक्त कर दिया। वे सब ऐसे लगते थे मानो शलभों के गण प्रज्वलित अग्नि के महाकूट में एकत्र हो गये हों। अब जम्भिनी प्रमुख देवियों द्वारा क्षणमात्र में वह सेना नष्ट कर दी गई। शस्त्राग्नि की ज्वालाओं द्वारा जैसे शलभ नष्ट किये जाते हैं उसी प्रकार विषङ्ग की सेना नष्ट-भ्रष्टकर दी गई। त्रिशूल के प्रहार से हृदयप्रदेश के विदारित किये जाने से कई दैत्यों के प्राण निकल गये; अन्य राक्षसगण दण्डास्त्रों के प्रहार से विकलाङ्ग होगये, दूसरे राक्षस वज्रों से पीस दिये गये और इतर राक्षसों को बाणों से छेद दिया गया। तदनन्तर कई एक मुट्ठी से दलित कर

खड्गच्छिन्नाङ्घ्रिबाहूरुकन्धराद्या अपीतरे । केचिच्छस्त्रौघसम्पातशकलीकृतदेहकाः ॥६४॥
एवं विनष्टे सैन्ये स्वे विषङ्गः क्रोधमूर्च्छितः । निहत्य गदया शक्तिसेनां भित्त्वा ह्यशेषतः ॥६५॥
दण्डराज्ञीरथवहं महिषञ्च मृगाधिपौ । गदयैव हि सन्ताड्य रथराजं समारुहत् ॥६६॥
आरोहन्तं रथं वेगाद्विषङ्गं वीक्ष्य सर्वतः । शक्तिसेनासु समभूद्धाहाऽऽकारमहाध्वनिः ॥६७॥
रथपर्वस्थिताः शक्तीरपि सम्मर्द्य वेगतः । चतुर्थपर्वाऽन्तरालं प्राविशत् सत्वरं बली ॥६८॥
दण्डराज्ञयपि तं दृष्ट्वा दैत्यमायान्तमन्तिकम् । अवरुह्य युयोधोच्चैर्मुसलेन स्वपर्वतः ॥६९॥
तत्राऽभवन्महायुद्धं दण्डिनीदैत्यराजयोः । शस्त्रैर्विचित्रैरस्त्रैश्च सर्वलोकभयङ्करम् ॥७०॥
ज्ञात्वाऽजेयामस्त्रशस्त्रैर्दण्डिनीं दैत्यपुङ्गवः । मायां प्रादुश्चकारोच्चैः सर्वलोकभयावहम् ॥७१॥
अन्धकारं पांशुवर्षमश्मवर्षं महारवम् । अग्निवर्षं वज्रवर्षं रक्ताऽमेध्यादिवर्षणम् ॥७२॥

दिये गये अन्य बहुत से दैत्यों के खड्ग की धारा से पैर, हाथ, जांघ, और गल प्रदेश आदि छिन्नभिन्न कर दिये गये और भैरवके पार्षदों ने अपने शस्त्रों के समूह के आघात से सारे बाकी बचे हुए राक्षसगण के शरीरों के खण्डशः टुकड़े कर दिये ॥४२-६४॥

इसप्रकार अपने सैन्यदल के नष्ट किये जाने पर विषङ्ग क्रोधसे मूर्च्छित हो बाद में गदा अपनी सम्हाले शक्ति-सेना पर एक साथ टूट पड़ा। वह दण्डराज्ञी के रथ के सारथि, महिष और दोनों मृगाधिपों को गदा से आघात कर रथराज पर चढ़ गया। विषङ्ग को रथ पर वेग से चढ़ते देख शक्तिसेना में चारों ओर से हाहाकार का गम्भीर कोलाहल हुआ। वह बली दैत्यराज रथके पौरों के ऊपर स्थित शक्तियों को बड़े बेगसे गिराकर चतुर्थ पर्वके अन्दर शीघ्र ही घुसा। दण्डराज्ञी ने भी उस दैत्य को सन्निकट आया देख अपने पर्व से नीचे उतर कर मुसल को सम्हाल कर खूब घमासान युद्ध किया। दण्डिनी तथा दैत्यराज के बीच अत्यन्त चित्र-विचित्र अस्त्रों एवं शस्त्रों से सब लोकों को भयभीत करनेवाला घोर भीषण महायुद्ध हुआ। तब दैत्यपुङ्गव ने दण्डिनी को अस्त्रों और शस्त्रों द्वारा अजेय जान कर अपनी माया रची। उसने सम्पूर्ण लोकों को भयावह करनेवाले अन्धकार को फैलाया तथा धूलि की वर्षा, घनघोर शब्द, अग्निवर्षा, वज्रवर्षा, रक्त आदि अति अशुद्ध वस्तुओं की वर्षा और घोर मुण्डों की वर्षा की। अनन्तर उसने महाभीषण दैत्य महासेना को और अपने को हजार पादों, भुजाओं और मुखों सहित सैकड़ों रूपों से दिखाया।

मुण्डवृष्टिं महाभीमामथ दैत्यमहाचमूम् । सहस्रपादबाह्वास्यमात्मानं शतधाऽपि च ॥७३॥
तादृश्या मायया तस्य भीतास्ताः सर्वशक्तयः । भीताः शक्तीः समालोक्य दण्डिनी शरवृष्टिभिः ॥७४॥
व्यनाशयन्मायिकांस्तानथ भूयोऽपि दैत्यराट् । मायां ससर्ज महतीं ददृशुः सर्वशक्तयः ॥७५॥
चक्रराजरथं तत्र समायान्तं द्रुतं तथा । स्वयं वाहान्निहत्याऽऽशु रथं छित्त्वाऽप्यनेकधा ॥७६॥
जवेन देवीं ललितां केशपाशे परामृशत् । चुक्रुशुर्मायया तस्य हाहेत्युच्चैस्तु शक्तयः ॥७७॥
तावच्छ्रीभैरवो देवीं बभाषे रथनायकः । अलं दैत्येषु ते देवि लीलया भीतिदानया ॥७८॥
पश्य शक्तीर्भयाऽऽक्रान्ताः शोचन्तीः सर्वतः शिवे ।
निर्मायाऽस्त्रेण दैतेयं विमायं नाशय द्रुतम् ॥७९॥
सन्ध्या समभ्येति पुरस्तस्यां माया दुरत्यया । रथनेतुर्वचः श्रुत्वा मत्वा युक्तञ्च दण्डिनी ॥८०॥
निर्मायाऽस्त्रं समुत्सृज्य मायां तस्य व्यनाशयत् । वायुनेव च नीहारो नष्टा माया च सर्वतः ॥८१॥
तदा गदाधरो भूयो ददृशे सम्मुखागतम् । दृष्ट्वैव तं दण्डिनी सा क्रुद्धा खड्गेन तच्छिरः ॥८२॥

उस दैत्य की इस प्रकार की माया से सम्पूर्ण शक्तियां भयभीत हुईं । भय से डरी शक्तियों को देख कर दण्डिनीने बाणों की वर्षा से माया से बनी उन सब वस्तुओं का नाश कर दिया । अब दैत्यराज ने फिर भी महामाया को रचा जिसे सब शक्तियों ने देखा ॥६५-७५॥

चक्रराज रथकी ओर शीघ्र आते हुए स्वयं उन शक्तिवाहनों को अतिशीघ्रतया मारकर रथ के टुकड़े टुकड़े कर अत्यन्त वेग से श्रीललिता के केशपाश को पकड़ने चला । उसकी माया से शक्तिसेनायें तो हाहाकारशब्द करने लगी । तभी रथ का नायक सारथि श्रीभैरव देवी से बोला, "हे देवि ! अब दैत्यगण में भयदायिनी लीला से आप अलं कीजिये; हे शिवे ! भय से डरी सब ओर से शोक करती इन शक्तियों को देखिये । अब अस्त्र द्वारा इस दितिके पुत्रकी मिथ्या मायाको नष्टकर इसे शीघ्र विनष्टकर दीजिये । अधुना सन्ध्याकाल होता है;उसमें इसकी अत्यन्त कठिन माया पर विजय पाना दुःसाध्य कार्य होगा ।" रथ के सारथि भैरव के वचन सुन कर दण्डिनी ने उसे उचित मान अस्त्र बना कर उसे छोड़ दैत्य की माया नष्ट कर दी । जैसे वायु के द्वारा तुहिनकण नष्ट कर दिये जाते हैं वैसे ही भगवती के अस्त्रों से सब ओर से माया दैत्य दूर हटा दी गयी । तब दैत्यराज गदा लिये सामने दीख पड़ा; उसे सामने आये देख कर ही दण्डिनी ने क्रुद्ध हो खड्ग से उसके सिर को आधे निमिष में ही काट डाला । जैसे

चकर्त निमिषार्धेन वज्रेण त्वाष्ट्रकं यथा । एवं तस्मिन् विनिहते विषङ्गे भीमविक्रमे ॥८३॥
देवदुन्दुभयो नेदुरपतत्पुष्पवर्षणम् । दिशो वितिमिरा जाताः सुप्रभश्च दिवाकरः ॥८४॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये
विषङ्गवधवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥६२५०॥

इन्द्रने वज्र से वृत्रासुर के सिर को नष्ट कर दिया था । इस प्रकार प्रबल भीम पराक्रमशाली उस विषङ्ग के मार दिये जाने पर देवगण के पक्ष की दुन्दुभियां बजनेलगीं और पुष्पों की वर्षा हुई; सब ओर की दिशायें प्रकाशमयी बन गयों तथा सूर्यनारायण का प्रकाश प्रभासम्पन्न हो गया ॥७६-८४॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड के श्रीललिताचरित्र में
विषङ्गवधनामक पचहत्तरवां अध्याय समाप्त ॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

भण्डद्वारा स्वेष्टप्राप्त्या सन्तोषभाववर्णनम्

एवं विषङ्गे निहते जयशब्दो महानभूत् । मुदिताः शक्तयः सर्वास्तुष्टुवुर्दण्डनायिकाम् ॥१॥
भ्रातरौ सपरीवारौ श्रुत्वा युधि निपातितौ । शोककातरतां प्राप मोहेनेषन्महासुरः ॥२॥
विमृश्याऽथ शुचं हित्वा स्वमात्मानं हसन्निव। अहो मां किं वदामीह शोचन्तं मुक्तभावतः ॥३॥
यदर्थितं जगन्मात्रा चिरं तन्मे प्रपूरितम् । एवं सा पूरयेच्छेषमाशु नास्त्यत्र संशयः ॥४॥
तद्व्रजामि शेषगणैः श्रीमातुर्दृष्टिगोचरम् । विलम्बेन ममाऽत्राऽलं श्रेयो विघ्नैर्हि सङ्कुलम् ॥५॥
अहो लोके सर्वथैव एकान्तेनाऽभियाचितम्। दिशत्येव पराम्बा सा भावरूपा हि कामधुक् ॥६॥
एवं स्वान्तःसमासीनां वाञ्छाऽधिकफलप्रदाम् । परमानन्दजननीं हित्वा दैवहतो जनः ॥७॥

छिहत्तरवां अध्याय

इसप्रकार विषङ्ग के मरने पर शक्तिसेनामें जयघोष का महाशब्द हुआ । अत्यन्त हर्षित हो शक्तियों ने दण्ड-नायिका की स्तुति की । उस महाअसुर ने अपने दोनों भाइयों को सेनासमेत युद्ध में मृतक सुनकर मोहवश किञ्चित् शोकविह्वल होने का नाटक किया । अनन्तर वह विशेष विचार कर शोक को त्याग कर स्वयं हास्य करता हुआ सा बोला, "अहो ! मैं शोक करते हुए मुक्तभाव से अपने को क्या समझाऊँ; जिस कार्य के लिये दीर्घसमय से मैंने अभिलाषा की थी उसकी पूर्ति भगवती द्वारा कर दी गयी । इसप्रकार वह श्रीदेवी मेरी अवशिष्ट अभिलाषा शीघ्र पूर्ति करेगी इसमें कोई सन्देह नहीं । इसलिये मैं अवशिष्ट निजगणों को लेकर श्रीमाता के सामने जाता हूँ, मुझे विघ्नसमूह से दूर ही रहना चाहिये क्योंकि श्रेयस्कर कार्य विघ्नों से पूर्ण रहता है । अहो ! लोक में सर्वथा ही एकनिष्ठभाव से अभियाचित वस्तु पराम्बा पूर्णतया प्रदान करती है क्योंकि वह भावरूप बन कर ही कामधेनु के समान अभीष्ट पूर्णकरनेवाली है । " ॥१-६॥

"इसप्रकार अपने अन्तर में विराजी इच्छित वस्तु से भी अधिक फलदेनेवाली परमानन्द की

दुःखसाराऽल्पविषयप्रेप्सया भीमरूपया । नीयते व्यर्थमनिशं मृत्योर्भक्ष्योपसेकताम् ॥८॥
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं यच्छ्रीदेवीपदाम्बुजम् । समीक्षन् कश्मलममुं विमुच्य हतदेहकम् ॥९॥
विशोकं परमं स्थानं समुपैम्यविशङ्कितम् । इति सञ्चिन्त्य दैत्येन्द्रः स्वान्तरस्याऽभिगुप्तये ॥१०॥
भूत्वाऽत्यन्तं क्रुद्ध इव संयोज्याऽसुरवाहिनीम्। निःशेषां तरसा युक्तस्तया युद्धाय दंशितः ॥११॥
रथमारुह्य साहस्रसिंहवाहं महोन्नतम् । श्वेतमुक्ताऽऽतपत्रेण वीज्यमानश्च चामरैः ॥१२॥
युक्तः सेनेश्वरैः पञ्चाशत्सङ्ख्यार्कैर्बलोद्धतैः । नदद्वादित्रविपुलैरास्फोटाऽऽरवबृंहितैः ॥१३॥
रथनेमिनदीघोषैर्हेषितप्रायमांसलैः । रथवाहनसिहानां गर्जितैः पूरयन् जगत् ॥१४॥
निर्ययौ जैत्रयात्रार्थं चालयन्निव मेदिनीम् । अथाऽपश्यच्छक्तिसेना भण्डसेनामहार्णवम् ॥१५॥
अपारमप्रधृष्यञ्च भीमं गम्भीरनिःस्वनम् । तत्र मन्त्रमहाराज्ञी भण्डं युद्धाय सङ्गतम् ॥१६॥

जननी, श्रीदेवी को छोड़ कर कोई दैवकेमारे, अभाग्यशील पुरुष ही भीमरूपवाली दुःखही एकमात्र सार है ऐसे स्वल्प समयतक रहनेवाले विषयों को प्राप्त करने की इच्छा को लेकर दिनरात मृत्यु के ग्रास बनने को व्यर्थ ही समय बिताते हैं। मैं धन्यधन्य एवं सफलमनोरथ हूँ कि श्रीदेवी के चरणकमलों को देखता हुआ इस हतदेहवाले कश्मल (कार्मीय, मायीय तथा आणव मल) को छोड़ कर अविशङ्कित शोकरहित स्थान को प्राप्त करूंगा।" इस प्रकार चिन्ताधारा बना कर दैत्येन्द्र अपने अन्तःकरण के विचार छिपाने के लिये अत्यन्त क्रुद्ध हुआसा सम्पूर्ण असुरसेना को एकत्र कर और शीघ्र लेकर युद्ध के लिये देवी से लड़ने को सज्जित हो गया। अपने हजार सिंहों से खेंचेजानेवाले अत्यन्त ऊँचे रथ पर आरूढ होकर श्वेत मुक्ताओं से खचित छत्र के साथ तथा चँवरों से डुलाया, बल से अत्यन्त गर्वीले पच्चास सेनाधिपतियों के सहित युद्ध के विशेष वाद्य और ढोल तथा नगाड़ों आदि के बजने के शब्दों और शस्त्रअस्त्रों की खनखनाहट से चारों ओर गम्भीर ध्वनि युक्त, रथ के धुरों के घोष से पूर्ण घोड़ों के हिनहिनाहट से और अधिक तुमुल शब्दों से रथ के वाहन सिंहों की गर्जना से जगत्को आपूरित करते हुए विजययात्राके लिये भूमि को कम्पित करता हुआ सा वह दैत्यराज भण्ड स्वविजययात्रा के लिये चला। अब शक्तिसेनाने भण्डसेनारूपी अति विशाल महासमुद्रको देखा जो अपार,किसी प्रकार से भी मर्षणीय न होनेवाला, भीषण और गम्भीर शब्दगर्जन करता था। वहां मन्त्र महाराज्ञी ने भण्ड को युद्ध के लिये सज्जित देख श्रीमहाराज्ञी को प्रणाम कर सारा वृत्त कह सुनाया, "हे देवि ! भण्ड स्वयं अपनी विशाल सेना से युक्त हो

आलक्ष्य श्रीमहाराज्ञीं नत्वा वृत्तं व्यजिज्ञपत् । देवि भण्डः स्वयं प्राप्तो योद्धुमत्यन्तसंयुतः ।१७।
सर्वसेनासमायुक्तः सर्वसेनाधिपैरपि । जैत्रयात्रा भवत्याश्च युक्ताऽत्र यदि मन्यसे ॥१८॥
विज्ञापितैवं मन्त्रिण्या युक्तं तच्चाप्यमंसत । अथाऽभवच्छक्तिसेना सन्नद्धा निमिषाऽर्द्धतः ।१९।
अश्वारूढाऽश्वसेनाभिः सेनामुखमधिष्ठिताः ।
गजाऽनीकस्वामिनी सा तत्पश्चात् सम्पदीश्वरी ॥२०॥
ततो बाला रथाऽऽरूढा कुमारीगणसंवृताः । तदनु प्रचचालाऽऽजौ चक्रराजमहारथः ॥२१॥
नवपर्वसमायुक्तो ह्यणिमाद्याभिरावृतः । मुक्ताच्छत्रमहोन्नम्रः पद्मकेतुध्वजोच्छ्रयः ॥२२॥
नवरत्नसमाकीर्ण इन्द्रियात्माऽश्वयोजितः । वाहयन्ती तं रथेन्द्रं महात्रिपुरसुन्दरी ॥२३॥
चक्रेश्वरी विवेकात्मतोदहस्ता व्यराजत । चक्रराजशताऽङ्गस्य वामदक्षिणभागयोः ॥२४॥
किरिगेयचक्ररथौ व्यराजेतां महोन्नतौ । दण्डिनीमन्त्रिणीभ्यां तौ दंशिताभ्यामधिष्ठितौ ।

सम्पूर्ण सेनाधिपतियों को लेकर आया है। यदि आप समुचित मानती हैं तो अपनी विजययात्रा के लिये जैसा समझें वैसा ही कीजिये।" ॥८-१८॥

इसप्रकार मन्त्रिणी के द्वारा कहे जाने पर उस कथनको भगवती ने उपयुक्त माना। अनन्तर शक्तिसेना आधे निमिषमें ही सन्नद्ध होगयी; सेना की अग्रपंक्ति में अश्वसेनाओं के सहित अश्वसेनाधिष्ठात्री तत्पश्चात् हाथियों पर आरूढ शक्तियों की स्वामिनी सम्पदीश्वरी फिर कुमारीगण से युक्त स्वरथ पर आरूढ देवी बाला और उसके बाद युद्ध में चक्रराज का महारथ चला ॥१९-२१॥

वह नव खानों का अणिमाआदि से आवृत, मोतियों से पूरे हुए छत्र से अत्यन्त, पद्मकेतु की ध्वजा से ऊँचा, नवों रत्नों से पूरित, इन्द्रियरूपी अश्वों से जुता हुआ था; महात्रिपुरसुन्दरी उस रथराज को चलाती हुई चक्रेश्वरी अपने हाथ में विवेकरूपी चाबुक के साथ शोभायमान थी। चक्रराज के सौ पहियों के दाहिने तथा वाम पार्श्व में बहुत ऊँचे किरिचक्ररथ और गेयचक्ररथ दोनों विशेष शोभित थे, उन पर शस्त्रास्त्रों से सज्जित दण्डिनी और मन्त्रिणी क्रमशः आरूढ थी। वे दोनों ही अपनी अपनी शक्तिसेनाओं से युक्त और युद्ध की साजसज्जा से पूर्णतया सज्जित था। रथ के पीठपीछे के भाग में तिरस्करिणी विराजमान थी। वह अन्धकारसमूह के समान

स्वस्वसेनासमायुक्तौ युद्धसम्भारसम्भृतौ । तिरस्कृतिश्चक्रराजरथपृष्ठं समाश्रिता ॥२६॥
तिमिरौघनिभाऽत्युच्चतुरङ्गममधिष्ठिता । उत्खातवेल्लदत्यन्तकरालकरवालिनी ॥२७॥
स्वसमाकारशक्त्यौघमण्डलीकृतमण्डला । एवं श्रीललितादेवी सेनया सह निर्ययौ ॥२८॥
युद्धाय कृतसन्नाहा संस्तुता विबुधेश्वरैः । मिलितं सेनयोर्वक्त्रं व्यराजत विशेषतः ॥२९॥
समुद्रयोरिवोद्वेलं गतयोः प्रतिसञ्चरैः । सेनयोरुभयोरश्वरथेभपदचारिणाम् ॥३०॥
पादवेगाभिसङ्घातप्रांशुपांशुसुसंहतिः । जनयद्गाढतिमिरं दार्शनैशमिव क्षणात् ॥३१॥
सेनाभराऽऽक्रान्तमहीनिवेशात्तलसंस्थितम् । तमः स्यादुद्गतमिदं मही वा सैन्यमर्दिता ॥३२॥
क्लेशात् प्राप्ताऽतिकृशतां भीत्या नाथमुपेयुषी । तथा रजोमहासंघवेगोद्धर्वगतिहेतुतः ॥३३॥
भूम्यभावादधो वेगात् सेना यान्तीव लक्ष्यते। इत्यादि तर्कमापन्ना वैमानिकगणास्तदा ॥३४॥

नीले अति ऊँचे घोड़े पर आरूढ शत्रुपक्ष को क्षय करने को विकराल नग्न तलवार हाथ में ली हुई और अपने ही समान आकृतिवाली शक्तियों के सङ्घ से घिरे मण्डलवाली वह विराजी थी। इसप्रकार श्रीललितादेवी युद्ध के लिये सब प्रकार से सज्जित व देवगण द्वारा आराधित हो निज सेनासहित निकली। जब दोनों सेनाओं का अग्रभाग एक दूसरे के आमने सामने स्थित हुआ तो विशेष शोभाधायक बना। जैसे प्रलयकाल में अपनी मर्यादा छोड़े हुए समुद्रों का भीषण दृश्य रहता है उसीप्रकार दोनों सेनाओं की उपस्थिति व्यक्त करती थी। दोनों ओर की सेनाओं के अश्व, रथ, हाथी और पदचारियों के पादवेग से ऊपर उठी तथा छायी हुई धूलि क्षणाभर में ही अमा की रात्रि के भारसे अत्यन्त अन्धकार को फैलाती थी उससे ऐसा प्रतीत होता था मानो सेना के भार से आक्रान्त होने पर गाढ के भूमि के दबजाने पर त्रस्त हुआ यह तम निकला हो, अथवा सेनाओं द्वारा मर्दित की जाकर क्लेश से अत्यन्त कृश बनी भूमि अपने नाथ को प्राप्त करने जाती हो। इसके साथ ऐसा लगता था कि धूलि के महासंघ के वेग से ऊँचे आकाश में उठने की गति होने से भूमि के न दीखने से वेगपूर्वक सेना चलती हुई सी प्रतीत हो रही हो। इस रज के छा जाने से इस तरह के नानाविध तर्क-वितर्क आकाशास्थत वैमानिकगण करने लगे ॥२२-३४॥

अथाऽभवन्महद्युद्धं सेनयोः शक्तिदैत्ययोः । नदत्सु युद्धवाद्येषु युक्तेष्वास्फोटगर्जनैः ॥३५॥
शरशक्त्यृष्टिशूलाऽसिपट्टासिप्रासतोमरैः । गदाचक्रभिन्दिपालपरिघाङ्कुशयष्टिभिः ॥६६॥
निरन्तरमभूद्व्याप्त्या प्रयुक्तैः सैन्ययुग्मकम् ।
हताः स्मः सर्वथाऽस्माकं शोकः पुत्रादिनाशतः ॥३७॥
प्राप्तः किं जीवितेन स्याच्छत्रुभिर्निर्जिताऽऽत्मनाम् ।
विक्रम्य युधि जित्वेमाः शक्तीः प्राप्स्याम आशिषम् ॥३८॥
अन्यथा निहता युद्धे वसामो नन्दने वने । इति निश्चित्य ते दैत्या युयुधुर्बलवत्तरम् ॥३९॥
शक्तयोऽप्येष दैत्यानामवधिः सर्वथा त्विमान् । हत्वा जयं परमकं प्राप्स्यामोऽद्यैव सर्वथा॥४०॥
इति मत्वाऽतिवेगेन युयुधुर्वीर्यवत्तराः । एवं नियुध्यमानेषु शक्तिभिर्दितिजेष्वथ ॥४१॥
परस्परं शस्त्रहताः पेतुर्विगतजीवनाः । केचिज्जालीकृताऽङ्गास्तु शरजालैर्गताऽसवः ॥४२॥
युद्धव्रतस्येव सिद्ध्या सहस्राक्षात्मतां ययुः । केषाञ्चित् खड्गघातेन शिरश्चटिति चोत्पतत्॥४३॥

तब शक्तियों और दैत्यों की सेना के बीच महायुद्ध आरम्भ हुआ; युद्ध के बाजे बजने पर और वीरों द्वारा शस्त्रास्त्रों को सज्जित करते हुए आस्फोटन और गर्जन-तर्जन करने से बाणों, शक्तियों, ऋष्टि (तीक्ष्ण कटार) शूल, तलवार, भाला, तोक्ष्णक्षुरधार का लौहदण्ड, प्रास, तोमर, गदा, चक्र, भिन्दिपाल (छोटा भाला) वज्र, अङ्कुश और यष्टियों के दोनों सेनाओं की ओर से प्रयोग करने से महान् शब्द युद्धभूमि में व्याप्त होगया। "सर्वथा हमलोग मरे हुए हैं, हमलोगों को पुत्रादिके नष्ट होने से शोक प्राप्त है तब शत्रुओं से जीते जाकर हम लोगों के जीने से क्या लाभ है ? या तो इन शक्तियों को पराक्रम से जीत कर भेंट पावेंगे अन्यथा युद्ध में वध किये जाकर नन्दनवन में निवास करेंगे।" इसप्रकार निश्चय कर वे दैत्यगण खूब वीरतापूर्वक लड़े; शक्तियों ने भी 'यह समय दैत्यों के नाश की अन्तिम सीमा है इन्हें सर्वथा वध कर आजही परमोच्च विजय प्राप्त करेंगी।' इसप्रकार मानकर अत्यन्त वेग से शस्त्रों द्वारा वीरतापूर्वक लड़ाई की। एवं प्रकारेण शक्तियों तथा दैत्यगण द्वारा युद्ध करने पर आपस में शस्त्रों तथा अस्त्रों से दोनों पक्षों के वीरगण सविशेष मारे जाकर प्राणहीन हो धराशायी बन गये। किसी किसी के अङ्गों में शस्त्रास्त्रों का जाल सा विंध गया; अन्य लोग बाणों की वर्षा से निष्प्राण कर दिये गये। कोई युद्ध के

राहोः शिर इवाऽऽकाशे व्यात्ताऽऽस्यं ग्रसितुं रवेः । पेषिता मुद्गराघातैश्चक्रैर्मध्ये विदारिताः।४४।
प्रोता दीर्घेषु भल्लेषु सङ्घशस्तत्र केचन । शरैः शिरांसि कृत्तानि गगने यान्ति वेगतः ॥४५॥
प्रवृद्धकाकपक्षाणि चलत्पक्षिगणा इव । विकीर्णाङ्गैश्चिता युद्धे भूमिर्विरुरुचे तदा ॥४६॥
पटे विलिखितानीव प्रतिमाङ्गान्युपक्रमे । असृग्वहा ववौ तत्र चित्रकारप्रमादतः ॥४७॥
स्खलितो ह्यालक्तक इव क्वचिच्छोषं समागता । चित्रकारेण झटिति प्रमृष्ट इव भासते॥४८॥
शरविद्धा गतप्राणास्तस्थुः केचित् क्वचित् क्वचित् । समग्रलिखितानीव चित्राणि ददृशुर्ननु ४९
एवं मुहूर्तमात्रेण भण्डदैत्यमहाचमूः । ननाशाऽऽसाद्य शक्तीनां सेनाग्निं शलभो यथा ॥५०॥
अथ सेनाऽधिपास्तस्य क्रोधारुणितलोचनाः । शक्तिसेनां शस्त्रवर्षैरर्दयामासुरुच्चकैः ॥५१॥
दृष्ट्वा सेनाधिपैः सेनामर्दितामतिविह्वलाम् । मन्त्रिणी दण्डिनी चाऽश्वारूढा सम्पदधीश्वरी

व्रत के समान अस्त्रों से वह सारे शरीर में क्षत हो जाने से चालनी होकर सहस्राक्ष के रूप के समान होगये। किन्हीं दत्यों का सिर चटचटा कर गिर पड़ा वह ऐसा लगा मानों राहु का शिर आकाश में मुँह खोल कर सूर्य को ग्रस लेना चाहता हो। कई दैत्यगण मुद्गरों के प्रहार से पीस दिये गये; कई एक बीच में चक्रों द्वारा काट डाले गये एवं उस युद्धमें कई एक सङ्घबद्ध ही लम्बे भालों में पिरो दिये गये। जब बाणों से काटे गये शिर बड़े वेग से आकाशमें जाते तो बढ़े हुए काकपक्षवाले उड़नेवाले पक्षियों के समूह के समान प्रतीत होते रहे; युद्ध में टूट कर गिरे हुए अंगों से पाटी हुई सारी भूमि ऐसे शोभित है मानो चित्रपट पर आरम्भ में लिखी प्रतिमा के अंग बिखरे हो। जो रक्त बह निकला था वह चित्रकार के प्रमाद से मानों लालरंग गिरा हो फिर कुछ सूख जाने पर चित्रकार द्वारा उसे पोंछ दिया गया प्रतीत होता हो। कई दत्यगण बाणों से बिंधे हुए कहीं कहीं पड़े हैं मानो सम्पूर्ण लिखित चित्रों की प्रदर्शनी सी की गयी हो। इसप्रकार भण्ड दैत्यराज की विशाल सेना शक्तियों की सेनारूपी अग्नि को पाकर जैसे शलभ (पतिंगा भिनगे) जल जाते हैं वैसे ही नष्ट होगयी ॥ ३५-५० ॥

अब उसके सेनाधिपगण ने अत्यन्त क्रोध से रतनारे नयन कर शक्तिसेना को बाणों की वर्षा से बहुत अधिक प्रताड़ित किया। सेनाधिपतियों द्वारा मर्दित शक्तिसेना को अत्यन्त विह्वल देख मन्त्रिणी, दण्डिनी, अश्वारूढा

परिवारशक्तियुक्ता युयुधुर्मन्युदीपिताः । ता युद्ध्वा सुचिरं दैत्यैः सेनाधीशैर्महाबलैः ॥५३॥
प्रसह्य नाशयामासुः सर्वान् सेनापतीन् हि ताः ।
वक्राक्षं वामनं तालं दीर्घनसं (घोणं ?) सुबाहुकम् ॥५४॥
विद्युज्जिह्वश्च समरे नाशयत्तुरगाश्रया । सम्पत्करी तालजङ्घं कुटिलाक्षं रणोद्धतम् ॥५५॥
निशठं शम्बरं क्रूरं चकार व्यसुमाहवे । जम्भिनी क्रूरवदनं स्तम्भिनी सूचिकामुखम् ॥५६॥
अन्धिनी कण्ठककरं मृगवक्त्रश्च मोहिनी । कालकेयं भैरवोऽपि व्याघ्रास्यं कालकर्षिणी ॥५७॥
स्वप्नेशी मुण्डमूर्धानं वटुको भण्डभाषणम् । उल्लुकं करभाऽऽस्यश्च महाकुक्षिं शिवारवम् ॥५८॥
शोणिताऽक्षं तालकेतुं तालग्रवं महाहनुम् । गृध्रवाहं काकमुखं दण्डिनी नाशयद्युधि ॥५९॥
शुकश्यामा शारिकाऽऽख्या सङ्गीता लघुपूर्विका ।
साहित्यश्यामला चेति निकुम्भं कुम्भमस्तकम् ॥६०॥
चक्राक्षं दीर्घदंष्ट्रश्च नाशयामासुरुल्बणकम् । कटङ्कटं करञ्जाऽक्षं मुण्डं चण्डं कृकाऽऽननम् ॥६१॥
सालसीरं द्विशृङ्गश्च शुनकं सूर्पकर्णकम् । वक्रकुक्षिं वाममुखं कालकं कोटरं विटम् ॥६२॥

और सम्पदधीश्वरी अपने पार्श्वभागिनी परिवारवाली शक्तियों के सहित आकार क्रोध से रुष्ट हो युद्ध करने लगी । उन देवियों ने बहुत कालतक महाबलवान् सेनाधीशों से लड़ कर हठपूर्वक सब सेनापतियों को मार गिराया । युद्ध में तुरगाश्रया ने वक्राक्ष; वामन, ताल, दीर्घनस, सुबाहु और विद्युज्जिह्व को नष्ट किया । सम्पत्करी ने तालजङ्घ, कुटिलाक्ष, रणोद्धत, निशठ; शम्बर और क्रूर, को युद्ध में निष्प्राण बना दिया । जम्भिनी ने क्रूरवदन को, स्तम्भिनी ने सूचिकामुख को, अन्धिनी ने कण्ठककर को और मोहिनी ने मृगवक्त्र को मार डाला । भैरव ने भी कालकेय को, कालकर्षिणी ने व्याघ्रमुख को, स्वप्नेश्वरी ने मुण्डमूर्धा को, वटुक ने भण्डभाषण को और उल्लुक, करभास्य, महाकुक्षि, शिवारव, शोणितार्क्ष, तालकेतु, तालग्रीव, महाहनु गृध्रवाह और का मुख को दण्डिनी ने युद्ध में प्राणहीन कर दिया । शुकश्यामा शारिकाख्या, लघुश्यामला एवं साहित्यश्यामला ने क्रमशः निकुम्भ, चक्राक्ष, एवं दीर्घदंष्ट्र जैसे उद्धत राक्षसगण का संहार किया । मन्त्रिणी ने कटंकट, करञ्जाक्ष, मुण्ड, चण्ड, कृकानन, सालसीर, द्विशृङ्ग शुनक, सूर्पकर्णक, वक्रकुक्षि वाममुख, कालक, कोटर और विट को बलपूर्वक अपने शस्त्रों के आघातों

मन्त्रिणी नाशयामास बलादाक्रम्य दानवान् । एवं निःशेषतः सेनासेनपेषु हतेष्वथ ॥६३॥
भण्डो हृष्टमनाः प्राह सारथिं रथ आस्थितः । रथं प्रापय मे शीघ्रं सारथे शक्तिवाहिनीम् ।६४।
पश्याऽद्य मम वीर्यं त्वं विचित्रं रोमहर्षणम् । श्रुत्वा वाक्यं दैत्यपतेर्वाहयन् रथमाशु सः ॥६५॥
सन्दिहानो दैत्यपतिं पप्रच्छ प्रणतस्तदा । दैत्येश्वर ! त्वयाऽऽज्ञप्तः किञ्चित् प्रष्टुं समीहितम् ॥६६॥
तद्ददेहि प्रणताय त्वं सन्दिहानोऽस्मि सर्वथा । इति पृष्टेन चाज्ञप्तो प्राह दैत्येन सारथिः ॥६७॥
दैत्येश्वरैतां शक्तीनां सेनां मन्येऽपराजयाम्। विशुक्राद्या यया युद्धे हता लीलाविलासतः॥६८॥
अथ त्वामभिपश्यामि हतभ्रातृसुतादिकम् । हृष्टाऽन्तरं शोकलेशाऽस्पृष्टं प्रव्रजितं यथा ॥६९॥
बालया सह ते युद्धे पूर्वं समभिलक्षिता । भक्तिर्देव्यामतितरां तन्मे ब्रूहि यथातथम् ॥७०॥

से आक्रमण कर नष्ट कर दिया । इस प्रकार पूर्णतया सेनाधिपतियों के मारे जाने के अनन्तर प्रसन्न भण्ड रथ में बैठे-बैठे ही सारथि से बोला, "हे सारथे ! मेरे रथ को शीघ्र ही शक्तिसेना में ले चल । ॥५१-६४॥

आज तू मेरे विचित्र लोमहर्षक पराक्रम को देख ।" दैत्यपति के वचन सुनकर वह सारथि रथ को हाँकता सन्देह की दृष्टि से प्रणाम कर पूछने लगा, "हे दैत्येश्वर ! आप से आज्ञा लेकर मैं कुछ पूछना चाहता हूँ सो आप प्रणत मुझे बताइये; क्योंकि मैं सर्वथा असमञ्जस में हूँ ?" जब दैत्यराज ने सारथि को आज्ञा दी तो वह बोला, "हे दैत्येश्वर ! मैं इन शक्तियों की सेना को अजेय समझता हूँ क्योंकि जिसके लीलाविलासमात्र से ही विशुक्र आदि महाधुरन्धर बलशाली वीरगण भी युद्ध में अनायास ही मारे गये तो उसकी ये शक्तियां अजेय हैं । अब मैं आप को भाइओं व पुत्रों आदि के वध किये जाने से उनसे हीन देखता हूँ और जैसे सर्वस्व का परित्याग कर प्रव्रजन करनेवाला त्यागी अपने अन्तर में परम प्रसन्न साथ ही शोक से लेशमात्र भी स्पर्श नरखनेवाला अप्रभावित रहता है वैसे ही आप लगते हैं । जब बाला के साथ पूर्व में आपका जो युद्ध हुआ उसमें देवी के प्रति आपकी अगाध भक्ति देखी गई इसलिये अब मुझे यथार्थ बात समझावें । इसप्रकार अत्यन्त भयङ्कर दुःख के हेतु के लिये उपस्थित समय में न पराजय को, न शोक को तथा न भयको मैं आप में लेशमात्र भी देखता हूँ ।"॥६५-७०॥

एवं पराभवं दुःखहेतावतिभयङ्करे । न शोकं नाऽपि भीतिं वा लक्षये तव लेशतः ॥७१॥

इति भूयः सुपृच्छन्तं दैत्यं तं चिरसेविनम् ।

प्राह भण्डः स्मयन् किञ्चित्च्छृणु दैत्येत्युपाक्रमन् ॥७२॥

एषा या ललिता देवी सा परात्परमा शिवा ।

एतया निहतो युद्धे प्राप्स्याम्यत्युत्तमं फलम् ॥७३॥

तल्लोकं शोकरहितमभयं सर्वतः सुखम् । इमं लोकं सशोकं वै सभयं दुःखमात्रकम् ॥७४॥

मायया मोहितो जन्तुर्मन्यतेऽत्युत्तमं मुधा । तत्राऽप्यासुरलोको वै राजसोऽतिभयङ्करः ॥७५॥

इमं वरं यो मनुते समुग्धपशुकः स्मृतः । अहं श्रीपद्मसंस्थानो दूतो माणिक्यशेखरः ॥७६॥

स्वकर्मपाकवशत एतां प्राप्तोऽवरां दशाम् । तथाऽपि कृपया देव्या मां स्मृतिर्नो जहाति वै ।७७।

एषा सर्वेश्वरी देवी ब्रह्मादिजननी परा । एतया निहता युद्धे भ्रातरो मे सुता अपि ॥७८॥

शस्त्राग्निपाविताास्तस्या लोकं प्राप्ताः परात्परम् ।

मया सह त्वमप्याशु तल्लोकं प्राप्य भ्रातृभिः ॥७९॥

इसप्रकार दैत्य को चिरकाल तक सेवनकरनेवाले उस सारथि को भण्ड ने हँसते हुए कहा, "हे दैत्य ! सुनो।" इसप्रकार आरम्भ करते हुए "यह जो ललिता देवी है वह परात्परमा शिवा है। इसके द्वारा युद्ध में मारा गया मैं अति उत्तम फल को प्राप्त करूँगा। उसका लोक शोकरहित, अभय तथा चारों ओर से सुखधाम है, इस भूलोक को जो शोकपूर्ण, भयपूर्ण, और दुःखमात्र से परिपूर्ण है उसे माया से मोहित जन्तु वृथा ही उत्तम मानते हैं। उसमें भी असुरलोक तो राजस और अति भयङ्कर है। इसे जो श्रेष्ठ मानता है वह मुग्ध पशुके समान है। मैं श्रीपद्मालया का दूत माणिक्यशेखर हूँ, अपने कर्मपाक के अधीन हो इस निम्नगामी दशा को प्राप्त हुआ हूँ, फिर भी श्रीदेवी की कृपा से अपनी पूर्वस्मृति मुझे नहीं छोड़ती। यह सर्वेश्वरी देवी परमा ब्रह्मादि सभी की जननी है; इसके द्वारा युद्ध में मेरे भाई लोग और पुत्रगण भी मारे गये हैं। श्रीभगवती के शस्त्रों की अग्नि से परमशुद्ध किये गये वे सब लोग उसके परात्पर लोक को प्राप्त हो गये। तू भी मेरे साथ अतिशीघ्र उस परमाम्बा के लोक को प्राप्त कर भाइयों एवं पुत्रों के साथ मिलेगा फिर अमृत गति को पा जायगा।" इसप्रकार भण्ड का वचन सुनकर वह सारथि

पुत्रैः समेष्यसि पुनस्ततो यास्यमृताङ्गतिम्। इति श्रुत्वा भण्डवचो विस्मितोऽभूत् ससारथिः ८०
संश्लाघ्य दैत्यराजं तं जहौ शोकं स्वहृद्गतम्। दृष्ट्वा श्रीललितामग्रे नमश्चक्रे सुभक्तितः ॥८१॥

इति श्रीत्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे ललितामाहात्म्ये ललिताभण्डसमागमे दैत्यराजभण्ड-द्वारा श्रीदेवीभक्तिरहस्यप्रकटनं नामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥६३३१॥

आश्चर्यचकित हुआ; उसने ऐसे दैत्यराज की प्रशंसा कर अपने हृदय में उत्पन्न शोक को छोड़ दिया। अपने सामने भगवती श्रीललिता को देख अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार किया ॥७१-८१॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में ललिताचरित्रप्रकरण का ललिताभण्डसमागमपूर्वक दैत्यराज द्वारा स्वसारथि को अपनी अनन्यदेवीभक्ति का कथन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

भण्डासुरवधवर्णनम्

अथ युद्धे सम्पदीशीमश्वारूढाश्च दण्डिनीम्। मन्त्रिणीञ्च समासाद्य युद्धकौशलमुल्वणम् ॥१॥
प्रदर्श्य ताः सुसन्तोष्य क्रमात् प्रोवाच सङ्गरे। देव्यो वो युद्धचातुर्यविक्रमैस्तोषितोऽस्म्यहम्।२।
योद्धुमुत्कण्ठितं चित्तं स्वामिन्या च इमं क्षणम् यूयं समीक्षकाः सर्वास्तया मे युद्धकर्मणि ।३।
ममैष लज्जितो बाहुर्युद्धे चेटीगणैः सह। तस्याः पदं विनिर्जित्य युद्धे वोऽभिजयाम्यनु ॥४॥
तन्मे प्रयाचतोऽस्त्वेवं इति तस्य वचस्तदा। निशम्य देव्यो मत्वा चाऽजेयं स्वीयपराक्रमैः ॥५॥
उचितञ्च महादेव्या दैत्येशस्य पराजयम्। ददुर्मार्गं नियुद्धाय महाराज्ञ्याऽसुरस्य वै ॥६॥
अथ श्रीचक्रराजाख्यं रथमासाद्य सङ्गरे। समारभद्भण्डदैत्यो युद्धमत्यद्भुतं तदा ॥७॥

सतहत्तरवां अध्याय

अपने सारथि को दैत्यराज भण्ड ने श्रीदेवी के हाथ से अपने वध होने का निश्चित मत सुनाने के बाद युद्ध में सम्पदीशी, अश्वारूढा, दण्डिनी और मन्त्रिणी को पाकर अपना प्रभूत युद्धकौशल दिखा उन्हें भलीप्रकार सन्तुष्ट करके क्रमसे रणभूमि में कहा, "हे देवियो ! मैं तुम लोगों के युद्ध चातुर्यपराक्रम से सम्यक्प्रकार से मुझे संतोष हो गया हूँ, अब मै स्वामिनी श्रीललिता से युद्ध करने को उत्कण्ठित हूँ; इस क्षण आप लोग सभी भगवती के साथ मेरे युद्ध में समीक्षक रूप में रहेंगी। मेरा यह बाहु निम्नश्रेणी की चेटियों से युद्ध करते लज्जित होता है। उस भगवती धाम को प्राप्त कर बाद में मैं आपलोगों को युद्ध में जीतता हूँ। इसलिये याचना करनेवाले मुझे आप लोग "तथास्तु" कह दो। इसप्रकार उस दैत्यराजके वचन सुनकर देवियों ने अपने पराक्रम से उसे अजेय मान और दैत्यराज की महादेवी के हाथ से पराजय उचित है ऐसा सोचकर असुर को महाराज्ञी के साथ युद्ध करने को मार्ग दे दिया। अनन्तर श्रीचक्रराज नामक रथ पर जाकर भण्डासुर ने अत्यन्त अद्भुत युद्ध आरम्भ किया, उस में शक्तियों की महासेना, और सिद्ध-ऋषिगण के साथ युद्धसमीक्षक बनीं। वे देवगण वैमानिकों एवं सिद्धों तथा ऋषिगण के सहित देखने को

तत्र शक्तिमहासैन्यमभूद्युद्धसमीक्षकम् । वैमानिकैर्देवगणैः सिद्धैर्ऋषिगणैस्तथा ॥ ८ ॥
प्रेक्षणायाऽऽगतैः सर्वं व्याप्तमासीन्नभस्तदा । भण्ड आसाद्य ललितां पुरो दृष्ट्वाऽतिहर्षितः ॥ ९ ॥
मनसाऽभिनमश्चक्रे भक्त्या तदनुसत्वरम् । विव्याध पञ्चभिर्बाणैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ १० ॥
तत्र द्वयं सुकुसुमनिचयं पादयोः पतत् । तृतीयं कण्ठदेशेऽभून्मालिका फुल्लपाङ्कजी ॥ ११ ॥
ततः परं मूर्ध्न्यपतत्पुष्पवर्षणरूपतः । अन्त्यं रत्नमयं मूर्ध्नि भूषणं मुकुटे स्थितम् ॥ १२ ॥
एवं तद्विहितां पूजां दृष्ट्वा देव्यतिहर्षिता । देवादयोऽपि तद्दृष्ट्वा शङ्कितास्तत्र सर्वथा ॥ १३ ॥
नारदाद्भण्डदैत्यस्य श्रुत्वा भक्ताऽग्रगण्यताम् । देवेशोऽतितरां तत्र विस्मयं समपद्यत ॥ १४ ॥
अथाऽभवन्महद्युद्धं ललिताभण्डदैत्ययोः । चित्रशस्त्रास्त्रनिचयव्याप्ताऽऽकाशमहोदरम् ॥ १५ ॥
भण्डदैत्योऽपि वीर्येण निजेन परमेश्वरीम् । सन्तोषयितुमुद्युक्तो युयोध परमाऽस्त्रवित् ॥ १६ ॥

आये हुए दर्शकों से सारे आकाश में व्याप्त हो गये। दैत्यपति भण्ड अपनी इष्टदेवी श्रीललिता को पाकर अपने सामने उसे देख अत्यन्त हर्षित हुआ मन ही मन भक्तिपूर्वक उसे नमन किया; उसके बाद पांच बाणों को धनुष से छोड़ा जो अत्यन्त अद्भुत सा हुआ। उसमें दो सुन्दर सुगन्धितपुष्पों से युक्त बाण भगवती के चरणोंमें पड़े। तृतीय बाण से उसने अति प्रफुल्ल कमल की मालिका कण्ठदेश में पहना दी। तदनन्तर पुष्पवर्षा के रूप में छोड़ा गया चतुर्थ बाण शिर पर आ गया और अन्तिम पञ्चम बाण रत्नमय आभूषणवाला छोड़ा जो भगवती के मूर्ध प्रदेश में मुकुट में स्थित हो गया ॥१-१२॥

इस प्रकार उसके द्वारा रची गई पूजा को देखकर श्रीदेवी अत्यन्त हर्षित हुई। सभी देवगण आदि ने उसे देख सर्वथा शङ्कितमन से कई रूपों में विचार किया। 'भण्डदैत्य की भक्तों में अग्रगणना है' ऐसा नारद से सुनकर देवेश इन्द्र बहुत अधिक विस्मित हुआ। ॥१३-१४॥

अब ललिता और भण्डदैत्य का महायुद्ध हुआ, नानाविध चित्र विभिन्न शस्त्रों एवं अस्त्रों के समूह से आकाश का अन्तराल व्याप्त हो गया। परमअस्त्रों का प्रयोग जाननेवाला भण्ड दैत्यराज भी अपने पराक्रम से परमेश्वरी को सन्तुष्ट करने के लिये उद्यत हो युद्ध करने लगा ॥१५-१६॥

प्रणम्य मनसा देवीं सम्मुखं समुपागतम् । गूढाऽपदानवचनैरधिक्षेप्तुं प्रचक्रमे ॥ १७ ॥
ललिते शृणु मे वाक्यं त्वं नटीव विभासि मे । मृषाऽऽचाररता नित्यं स्त्रैणं पुरुषमाश्रिता ॥ १८॥
स्त्रीरूपधारिणीव त्वं स्त्रीस्वभावविवर्जिता । न स्त्रियं त्वामहं मन्ये न पुमांसमपि क्वचित् ॥ १९ ॥
लोकविद्विष्टचारित्रा लज्जाशङ्कादिवर्जिता । न त्वं सत्कुलसम्भूता कुलहीनेव भासि मे ॥ २० ॥
लोकनिन्दितमार्गस्थैः पुरुषैरविवेकिभिः । अपि त्वमभिमृष्टाऽसि सर्वथेति विभासि मे ॥ २१ ॥
अहो मे प्राक्कृतं ह्येवं यत्त्वामेवंविधामपि । अनर्हां दर्शने नूनं पश्यामि पुरतः स्थिताम्॥ २२ ॥
शृणु सत्येन वक्ष्यामि यद्यथाऽस्ति तथाऽस्तु तत् । मद्दृष्टिगोचरीभूता सम्प्रति त्वं कथञ्चन ॥ २३॥
मृषाऽऽचारञ्च मायाञ्च त्यक्त्वा मयि स्थिरीभव ।
आसादिता मया सद्यः पृष्ठं मे न प्रदर्शय ॥ २४॥
नाऽपि मां हि समक्षस्थं वञ्चयित्वा कथञ्चन । शक्यं ह्यदृश्यतां यातुं तस्मात्त्वं सुस्थिरीभव ॥ २५॥

सामने आई हुई देवी को मन से श्रद्धा सहित प्रणाम कर अत्यन्त गूढ रहस्य भरे वचनों से उसकी भर्त्सना आरम्भ की। "हे ललिते ! तू मेरी वाणी को सुन, मुझे तू नटी के समान मालूम देती है; मिथ्या अचारमें रत है; नित्य स्त्रैण (स्त्री के वश में रहनेवाले) पुरुष का आश्रय (आलम्बन) लिये हुई है। स्त्रीरूपधारिणी सी होकर भी स्त्री के स्वभाव से विशेषरूप से वर्जित है न तो मैं तुझे स्त्री मानता हूँ एवं न पुरुष ही। तू लोक के विद्विष्ट चरित्रोंवाली लज्जा शङ्का घृणा आदि आठ पाशों से अतीत है, तू सत्कुल सम्भूत नहीं है, कुलहीन के समान मुझे प्रतीत होती है। लोकनिन्दित मार्ग में स्थित अविवेकी पुरुषों द्वारा तू सर्वथा अभिमृष्ट है यह मुझे प्रतीत होता है। अहो ! मेरा पूर्व जन्मों के किये हुए सुकृतों का यह फल है कि मैं इस प्रकार की चरित्रोंवाली को जिसका दर्शन करने की अनर्हता है उसे ही साक्षात् अपने सामने उपस्थित देखता हूँ। हे देवि ! सुन, मैं सत्य शपथपूर्वक कहता हूँ कि तू जैसी है वैसीही रह; किसी प्रकार अब तुम मेरे सामने दृष्टिगोचर हो गयी है अपने दिखावटी आचरणों और माया को छोड़कर मेरे सामने स्थिर होजा। मुझे तू सद्यः प्राप्त हुई है, अब पीठ मत दिखाना। देखना कहीं सम्मुख खड़े मुझे ठगकर तू किसी प्रकार अदृश्य नहीं हो पावेगी। इसलिये स्थिर हो जा। मेरे एकनिष्ठ सुव्यवस्थित अभिप्राय को जान कर तथा मेरे पराक्रम को देखकर (अपने भक्त की वाञ्छाकल्पद्रुम तू मेरी आकांक्षा को पूर्ण कर) तथा तू अपने व्रत को

विदित्वा मदभिप्रायसेकान्तंसुव्यवस्थितम्। दृष्ट्वा मदीयवीर्यञ्च संसाधय निजं व्रतम् ॥२६॥
श्रुत्वा निगूढवाक्यं तत् प्रसन्ना ललिताऽम्बिका।
शृणु दैत्येश्वर वचो यदुक्तं ते तथैव तत् ॥२७॥
साधयामि तवाऽभीष्टं त्याजयामि मदादिकम्।
न हि मे दृष्टिविषयीभूय भूयो भवेत् क्वचित् ॥२८॥
युद्धश्रद्धादिसंशेषः तत् स्थिरीभव सर्वथा। इत्युक्त्वा शरवर्षेण ववर्ष दैत्यभूपतिम् ॥ २९ ॥
प्रतिवर्षं ववर्षाऽथ सोऽपि दैत्योऽतिवेगतः। शस्त्रप्रयोगविज्ञानसंश्लाघनपुरःसरम् ॥ ३० ॥
अभूत्तयोर्महद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्। एवं नियुध्य सुचिरं दैत्योऽस्त्राणि ससर्ज ह ॥ ३१ ॥
आग्नेयं वारुणं सौम्यं कौबेरं पार्वतं तथा। पार्जन्यमैन्द्रं वायव्यंब्राह्मं कौमारमेव च ॥ ३२ ॥
अस्त्राण्येवंविधान्याशु ललिता परमेश्वरी। प्रत्यस्त्रैर्नाशयामास तुहिनं दिनकृद्यथा ॥३३॥
तथा नूतनसृष्टानि प्रत्यस्त्रैर्नाशयत् क्षणात्। ससर्जाऽथ भण्डदैत्यो मधुं कैटभमेव च ॥३४॥

पूरा कर।" ॥१७-२६॥

इसप्रकार अत्यन्त निगूढ़ वाक्यों को सुनकर ललिताम्बिका प्रसन्न हुई वह बोली, "हे दैत्येश्वर! जोतू ने कहा वह तेरा अभीष्ट उसी प्रकार साधती हूँ; तेरे मद आदि को छुडा देती हूँ। मेरी दृष्टिके सामने आने पर फिर कहीं कोई जन्मादि ग्रहण नहीं करता और न युद्धश्रद्धा आदि का कोई प्रकार का संस्कार ही शेष रहता है। इसलिये आ, तू सर्वथा स्थिर होजा।" यह कहकर भगवती ने दैत्यराज भण्ड पर बाणों की वर्षा की। अब दैत्य भी अत्यन्त वेगसे प्रतिकाररूपमें बाणों से देवी पर अतिवेगसे बरस पड़ा। शस्त्रों के प्रयोग के सूक्ष्मविज्ञान को दोनों ओर से प्रशंसा करने के साथ साथ ही उन दोनों का तुमुल लोमहर्षक (रोमांचकारी) युद्ध हुआ। इसप्रकार दीर्घ समय तक युद्ध कर दैत्य ने अस्त्र बनाये, आग्नेय, वारुण, सौम्य (सोमदेवताक) कौबेर, पार्वत, पार्जन्य, ऐन्द्र, वायव्य, ब्राह्म और कौमार। इस तरह के अस्त्रों को ललितापरमेश्वरी ने अपने प्रतिसंहारकारी शस्त्रों से ऐसे नष्ट कर दिया जैसे तुहिन (कोहरे) को सूर्य नष्ट कर देता है। उसके नये बनाये गये अस्त्रों को श्रीदेवी ने क्षणभर में प्रतिरोधी शस्त्रों द्वारा नष्ट करदिया। अब भण्ड दैत्यराजने मधु, कैटभ, सोमक, हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपुको तथा बलि, हैहय सहस्रार्जुन, रावण, कुम्भकर्ण,

सोमकञ्च हिरण्याक्षं हिरण्यकशिपुं तथा । बलिमर्जुननामानं हैहयं रावणं तथा ॥३५॥
कुम्भकर्णं मुरं ग्राहं कंसं द्विविदमेव च ।
एवमादीन् विष्णुशत्रून् सर्वान् लोकप्रणाशनान् ॥ ३६ ॥
ते सृष्टा भण्डदैत्येन तत्स्वभावपराक्रमाः । उद्युक्ता लोकनाशार्थं तमोवृत्तिपरायणाः ॥३७॥
ललितेश्याऽपि नाशाय तेषां करनखात् पृथक् । नारायणाऽवताराणां ससर्ज दशकं तदा ॥३८॥
नाशितास्ते क्षणेनैव सृष्टैस्तैर्विष्णुमूर्तिभिः । अथ भूयोऽन्धकं मृत्युं कामं त्रिपुरमेव च ॥३९॥
महादेवरिपूनेवं निर्ममेऽसुरशेखरः । तान् दृष्ट्वा श्रीपरा देवी फालनेत्राद्विसर्जयत् ॥४०॥
महादेवं देवदेवं तेन ते नाशमाययुः । अथ दैत्यमहासेनामसङ्ख्यातां भयावहाम् ॥४१॥
उद्भावयन्निमेषेण शक्तिभिर्या पुरा हता । विषङ्गश्च विशुक्रश्च चतुर्बाहुमुखाः सुताः ॥४२॥
करङ्ककुटिलाक्षाद्या नष्टां सृष्टिमजो यथा । अथ ते युयुधुः शक्तिसेनाभिरतिमर्षिताः ॥४३॥
तद्दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे भण्डसामर्थ्यमद्भुतम् ।
भीताश्चाऽथ किं भवेद्वै इति देवाश्च शक्तयः ॥४४॥

मुर, ग्राह, कंस और द्विविद को बनाया इसप्रकार विष्णु के शत्रु और सम्पूर्ण लोकों को नष्ट करनेवाले दैत्यों को रचा। वे सब उन उन स्वभावके पराक्रमसहित भण्ड दैत्य द्वारा रचे गये थे तमोवृत्तिमें तत्पर हो लोकनाश करनेकेलिये ललितेशी ने भी उनके नाश करने के लिये अपने हाथ के नखसे पृथक्-पृथक् नारायण के दश अवतारों का सर्जन किया। उन विष्णुरूपी मूर्तियों द्वारा वे सब विरोधी दैत्य क्षणमात्र में ही मारडाले गये। अब फिर अन्धक, मृत्यु, काम और त्रिपुर को जो महादेव के शत्रु हैं उन्हे उस असुरशिरोमणि ने रचा। उन्हें देख महादेवी श्रीपरा ने स्वभालनेत्र से देवों के देव महादेव को छोड़ा जिससे वे नष्ट होगये। अब भण्ड दैत्यराजने असंख्यात भयङ्कर दैत्यसेना को जिसे शक्तियों ने पूर्व में मार डाला था निमेष में ही उद्भावन कर बना डाला। जैसे श्रीब्रह्मा सृष्टि को रचता है वैसे ही उसने विषङ्ग, विशुक्र तथा चार भुजाओं और मुखोंवाले भण्ड के पुत्र और करङ्क तथा कुटिलाक्ष आदि रच डाले। अब उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध हो शक्तिसेनाओं से युद्ध किया। उस भण्ड की सामर्थ्य को देख सब अत्यन्त विस्मित व आश्चर्यचकित हो गये। भण्डकी इस अद्भुत सामर्थ्यको देख देवगण तथा शक्तियां भयभीत हुए कि आगे क्या

तदाऽभवन्महद्युद्धं भूयश्चोपक्रमं यथा । हतं हतं तत्र दैत्यो भूयो भूयः ससर्ज ह ॥४५॥
तद्दृष्ट्वाऽत्यन्तवित्रस्ताः शक्तयो देवता अपि । तदा श्रीललितादेवीं तुष्टुवुर्विधिमुख्यकाः ॥४६॥
मन्त्रिणी च महादेवीमुपव्रज्य प्रणम्य च । कृताञ्जलिर्मधुरया प्रार्थयामास वै गिरा ॥४७॥
देवि दैत्यस्य विभवं मन्येऽहं सुभयावहम् । पश्य शक्तिगणं सर्वं शुष्यद्वक्त्रं समाकुलम् ॥४८॥
युध्यन्तीनामविश्रान्त्या चाऽत्यगात् प्रहरद्वयम्। हतं हतं शक्तिगणैर्भूयः सृजति वैक्षणात् ॥४९॥
चतुर्बाहुमुखास्तस्य सुता युधि निपातिताः । कुमार्या सप्तकृत्वस्ते भूयो युध्यन्ति सम्प्रति ॥५०॥
विषङ्गो दशधा तद्वद्विशुक्रो नवधाऽपि च । हतः पुनः सृष्ट एव भण्डदैत्येन युध्यति ॥५१॥
करङ्ककुटिलाक्षाद्या अप्येवं बहुधा हताः । युध्यन्त्येव पुनः सृष्टा नेतः साध्यमिदं हि नः ॥५२॥
भीताः श्रान्ताः सर्वतश्च पश्य शक्तीर्हतप्रभाः । रक्ष सर्वं लोकमिमं नोपेक्षां कर्तुमर्हसि ॥५३॥

होगा ? तब महायुद्ध हुआ जैसे जैसे बने हुए दैत्य मारे जाते वैसे वैसे वह वारम्वार उन्हें सर्जन करता जाता था ॥३७-४५॥

उसके कार्य को देख कर शक्तियाँ और देवगण भी अत्यन्त वित्रस्त हो गये। तब श्रीललितादेवी की विधिप्रमुख देवगण ने स्तुति की, एवं मन्त्रिणी ने महादेवी के पास जाकर प्रणाम कर हाथ जोड़ मधुर वाणी में प्रार्थना की ॥४६-४७॥

"हे देवि ! दैत्य का यह मायाका विभव मै अत्यन्त भयदायक मानती हूँ। आप देखिये, सारे शक्तिगण अत्यन्त म्लानवदन और व्याकुल हो गये हैं। इन देवियों को अविराम युद्ध करते हुए दो प्रहर का समय बीत चुका; शक्तिगण द्वारा मारे दैत्यों को फिर एक क्षणभर में ही वह रच देता है। चतुर्बाहुमुखवाले उसके पुत्र युद्ध में कुमारी बाला द्वारा सातवार नष्टकर दिये गये; फिर अब वे लड़ रहे हैं। विषङ्ग दश वार तथा विशुक्र नौवार मारा गया; फिर भण्डदैत्य के द्वारा रचा जाकर युद्ध करता है। करङ्क एवं कुटिलाक्ष आदि दैत्यगण बहुत वार मार दिये गये, फिर रच दिये जाने से युद्ध करते हैं। इस के ऊपर हमारे द्वारा करनेयोग्य कोई उपाय नहीं है। हे मातः ! भयभीत, थकी हुई और सब ओर से हतप्रभ शक्तियों को आप जरा देखिये तो सही। इस सम्पूर्ण लोक की आप रक्षा करें; इस दैत्यमाया की उपेक्षा न करें।" ॥४८--५३॥

इति सम्प्रार्थिता देवी स्मयित्वेषदुवाच ताम् । मा भैः पश्य क्षणेनैव नाशयाम्यसुरेश्वरम् ॥५४॥
इत्युक्त्वा कार्मुके शीघ्रं शरमेकं सुयोजयत् । तत्राऽऽवाह्य पाशुपतमस्त्रं लोकभयङ्करम् ॥५५॥
मुमोचाऽसुरसेनायामस्त्रं तन्निमिषार्धतः । भस्मीचकार दैत्यानां सेनां सागरसम्मिताम् ॥५६॥
भूयः शरं कार्मुके स्वे निवेशयदतिप्रभम् । तदा दिशोऽभितो ज्वालामालालीढाभवन् क्षणात्
चकम्पे भूः प्रक्षुभिताः सागरा भीः समाविशत् । चराचरं जगज्जालं पेतुरुल्काः सहस्रशः॥५८॥
भण्डासुरं मृगाद्याश्चाऽपसव्यमभिसंययुः ।
तावद्दृष्ट्वा विनष्टां स्वां सेनां सागरसन्निभाम् ॥५९॥
दध्यौ श्रीललितापादपङ्कजं निश्चलाऽन्तरः । ध्येयमात्रात्मतां यावत् प्राप्तो भण्डमहासुरः ॥६०॥
तावच्छ्रीललितादेवी कामेशाऽस्त्रेण योजितम् । शरं मुमोच भण्डाय स शरोऽतिभयङ्करः ॥६१॥
प्रलयानलवत् ज्वालां मुञ्चन् विष्वङ्महाप्रभः । चराचरं जगज्जालं दहन्निव निमेषतः ॥६२॥

इस प्रकार प्रार्थना की गई महादेवी ने कुछ स्मित हास्य कर मन्त्रिणी से कहा, "हे देवि ! डर मत एक क्षणभर में ही मैं असुरेश्वर को नष्ट करती हूँ।" यह कहकर धनुष में एक बाणको शीघ्र चढाया। वहां लोक भयङ्कर पाशुपत अस्त्र का आवाहन कर श्रीदेवी ने असुरसेना में अस्त्र को छोड़ा, जिससे आधे निमिष में ही सागर के समान विशाल सेना भस्म हो गई। फिर श्रीललिता ने अपने धनुष में अतिप्रभापूर्ण बाण को चढ़ाया तब सारी दिशायें चारों ओर ज्वालाओं की माला से क्षणभर में पूर्ण हो गयीं। भूमि कम्पित हो उठी, सागरों में क्षोभ से उत्तालतरंगे हिलोरें लेने लगीं, चराचर जगज्जालको भय समा गया तथा उल्का (पुच्छल तारे) सहस्रों की संख्या में गिरे। अपशुकुन के लिये मृग आदि भण्डासुर के वाम पार्श्व से होकर चले तब तक सागर के समान अपनी अतिविस्तृत सेना को विनष्ट देख निश्चल अन्तःकरण हो उसने श्रीदेवी के चरणकमलों का ध्यान किया; जब भण्डासुर ध्येयमात्र में अपनी एकात्मभावना कर चुका तो श्रीदेवीललिता ने कामेशास्त्र से जोड़ कर भण्ड के वध करने को बाण छोड़ा। वह अत्यन्त भयङ्कर बाण प्रलयकाल की अग्नि के समान ज्वाला बिखेरता सब ओर महाप्रभासम्पन्न हो चराचर जगतीतल को निमेषमात्र में ही जलाता हुआ सा चला। वह सब के नेत्रों को चौंधियाता हुआ जैसे तृण को दावानल जला देता है वैसे ही रथसहित भण्डासुर को और तथा

मुष्णंश्चक्षूंषि सर्वेषां तृणं दावानलो यथा । भण्डासुरश्च सरथं नगरं तस्य शून्यकम् ॥६३॥
सस्त्रीस्थविरबालश्च सस्थानप्राणिमण्डलम् । भस्मशेषीकरोत्तत्र तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥६४॥
ब्रह्मविष्णुमुखास्तत्र भण्डं वा तस्य वाहिनीम् । नगरं वा प्रहतस्य दैत्यार्भकमपि क्वचित् ॥६५॥
अदृष्ट्वा विस्मयं प्राप्ता जयशब्दमवाऽसृजुः ।
अभिजघ्नुः शक्तिगणा वादित्राणि सहस्रशः ॥६६॥
विनेदुर्देववाद्यानि जगुर्गन्धर्वनायकाः । लास्यं चक्रुर्देववारा उर्वश्याद्याः सुहर्षिताः ॥६७॥
स्तोत्राणि पेठुरृषयो सिद्धा जेपुः परां शिवाम् । दध्युर्मुनिगणा रूपं प्रणेमुरितरे जनाः ॥६८॥
ववृषुः पुष्पनिकरान् प्रफुल्लानतिसौरभान् । बलाहकाः सौम्यरूपा गर्जन्तोऽत्यन्तमन्थरम् ॥६९॥
सुगन्धतोयविन्दूंश्च यक्षकर्दमसंमिश्रितान् । मारुताः सौगन्ध्ययुतो ववुरानन्दनस्पृशः ॥७०॥
दिवानाथः सुप्रभोऽभून्नियतः सागरोऽपि च । सन्मनांसीव तोयानि समासन् सरितादिषु ॥७१॥

राक्षसपक्ष के स्त्रियों वृद्धों और बालकों समेत उस स्थान के सभी प्राणिवर्गके सहित उसके शून्यक नगरको वहां भस्मशेष कर दिया जो अत्यन्त अद्भुत सा हुआ । ब्रह्मा तथा विष्णुप्रमुख देवगण भण्ड को अथवा उसकी सेना को एवं नगर को बाण के प्रहार के द्वारा दैत्यबालक तक को भी कहीं न देख कर विस्मयान्वित हो जयजयकार करने लगे । शक्तिगण ने सहस्रों ही वाद्यों को बजाया तथा देवगण ने बाजे बजाये, गन्धर्वपतिगण गायन करने लगे, देवगण की अप्सरायें उर्वशी आदि अत्यन्त प्रसन्न हो आनन्द में मग्न हो लास्य नृत्त करने लगी; ऋषियोंने भगवती के स्तोत्रों का पाठ किया; सिद्धगण ने पराशिवा श्रीदेवी का मुक्तकण्ठ से जप किया, मुनियों ने रूप का ध्यान किया, इतर लोगों ने प्रणाम किया । अत्यन्त सुगन्धभरे प्रकृष्टरूप से फूले हुए पुष्पों की वर्षा की गयी उसके साथ ही उस पुण्यवेला में मेघों ने सौम्यरूप हो अत्यन्त मन्थरगतिसे गर्जते हुए सुगन्धित जलबिन्दुओं की वर्षा की, जिसमें यक्षकर्दम अष्टगन्धों के सीकर मिले अत्यन्त सुगन्ध दे रहे थे । तब आनन्दका स्पर्शकरनेवाले, सुगन्ध से पूर्ण, सुहावने वायु के झोंके चलने लगे । सूर्यनारायण का प्रकाश सुन्दर लगने लगा और सागरों का अतिवेल उपद्रव भी शान्त होकर उनका जल नियत मर्यादा में बंध गया । जैसे सज्जनगण के मन स्थिर होते हैं वैसे नदी आदि में जल समभाव को प्राप्त कर प्रकृतिस्थ हो गया । जब भण्डासुर मारा गया तब जैसे प्रलय के अन्त में जगत् फिर से रचा हुआ शोभायुक्त होता है

अभूज्जगत् पुनः सृष्टं प्रलयान्त इवोल्लसत् । निराकुलमसङ्कीर्णं तदा भण्डाऽसुरे हते ॥७२॥
एवं दैत्यं हतं दृष्ट्वा भण्डाख्यं लोककण्टकम् । देवा महर्षयः सिद्धाः सर्वे देवीमुपाययुः ॥७३॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे श्रीललिताचरित्रे
भण्डासुरवधवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥६४०४॥

वैसे अभिनवलावण्यपूर्ण और बधारहित तथा असंकीर्ण लगने लगा। सब ओर स्वस्थता तथा अत्यन्त सुप्रसन्नता का वातावरण फैल गया। इसप्रकार दैत्यराज भण्डासुर का जो लोकों के लिये कण्टक था, वध किया देख देवगण, महर्षि लोग और सिद्ध सभी देवी के पास (स्तुत्यर्थ) आये ॥५४-७२॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में श्रीललिताचरित्रप्रकरण में भण्डासुरवध नामक सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

श्रीललितास्तुतिपूर्वकं मेरुशृङ्गे प्रतिश्रीचक्रोपरि तदभिषेचनवर्णनम्

उपेत्य देवप्रमुखाः सर्वे तां ललितां पराम् । हर्षनिर्भरितस्वान्तास्तुष्टुवुर्विविधैः स्तवः ॥१॥

श्रीललिता-स्तुतिः

जय जय ललिताऽम्ब ! त्वत्पदाऽम्भोजसेवा फलमिह भजतां किं किन्न दद्यादभीष्टम् ।
विबुधविटपिमुख्यान् कामदान् स्वस्वभावानपि वितरति भूयः संश्रितेभ्योऽतिशीघ्रम् ॥२॥
वयमिह विपदार्त्ता भण्डदैत्यप्रतापाऽनलजटिलकरालज्वालया दग्धपक्षाः ।
अपरिमितभयाब्धौ यन्निमग्नाः समेता झटिति ननु तयैव प्रोद्धता व्योममार्गाः ॥३॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

सभी देवप्रमुख उस पराम्बा ललिता के निकट आकर हर्ष से उत्फुल्ल हृदय हो विविध स्तुतियों से श्रीदेवी की प्रार्थना करने लगे ॥१॥

श्रीभगवती ललिता की स्तुति

"हे ललिताम्ब ! आप सर्वोत्कृष्टरूप से विराजमान हैं, आप की जय हो । इस लोक में आपके चरणकमलों की सेवा भक्त लोगों की किस किस अभीष्ट सिद्धि को नहीं देती ? अर्थात् सभी मनोवाञ्छित कामनायें प्रदान करती है। अपने अपने स्वभाववाले, कामना को पूर्णकरनेवाले, देवगणरूपी कल्पवृक्ष प्रमुखों को भी आप की शरण में आनेवाले भक्तगण के लिये अतिशीघ्र अभीष्ट सिद्धिप्रदान करती हैं ॥२॥

भण्ड दैत्य के प्रतापरूपी अग्नि की दुरूह करालज्वाला से दग्ध पक्षवाले, हम लोग यहां विपत्ति में आर्त्त हुए, असीम भयरूपी समुद्र में जो निमग्न होगये थे, वे ही अब आपकी उस कृपा द्वारा पूर्ववत् ही प्रकर्षरूप से अभिमानकरनेवाले व्योममार्गचारी बनकर गौरव अनुभव करते हैं। यह आपके चरणरूपी कमलिनी जो

प्रणतजननितान्तस्वान्तसन्तापहन्त्री श्रितजनदुरिताऽलिप्रौढमायानियन्त्री ।
स्थिरचरनिखिलोद्यत्प्राणिनां जीवतन्त्री तव पदनलिनीयं प्रैधते लोकयन्त्री ॥४॥
तव जननि विलासः सर्वलोकाऽवभासः कुत इह तव भूयाद्दैत्ययुद्धे प्रयासः ।
भवतु सततमस्मन्मानसे नीरजस्के विशदविकचवृत्तौ वासिते वासनाभिः ॥५॥
(ननु विदितमिदं यद् देहभाजां त्वमेव शरणमभिमतानां श्रेयसां शुद्धहेतुः ।)
चिरजडमिलितानां यो विवेकैकहेतुर्भवति चरणहंसस्तावको ब्रह्मवाहः ॥६॥
इति स्तुत्वा दण्डवत्ते प्रणता विधिमुख्यकाः। भूयो भूयोऽपि विविधैः स्तवैस्तुष्टुवुरम्बिकाम् ॥७॥
तावद्ब्रह्माण्डकोटिभ्यो ब्रह्माद्याः कारणेश्वराः । आजग्मुर्भारतीमुख्यशक्तियुक्ता घटोद्भव !॥८॥
ते पाणिसम्पुटोत्तंसाः प्रणता भक्तिनिर्भराः । समीडललितामीड्यां प्राहुर्बद्धकराऽम्बुजाः ॥९॥

जीवों का विस्तार करती है और लोकों का नियन्त्रण करती है वास्तव में आपके भक्तजन के हृदयों के सन्ताप को नितान्त हरनेवाली है, आपके आश्रय में रहनेवाले लोगों के दुरितों (पापों) की पङ्क्ति को जो प्रकर्षरूप से ऊढ (दुरत्यय) माया के कारण करते हैं उसका नियन्त्रण करती है; यही स्थावर और जङ्गम संपूर्ण प्राणियों के जीवन का विस्तार करती है ऐसी आपकी चरणनलिनी प्रकर्षरूप से चमत्कारजनिका है। हे जननि ! सम्पूर्ण लोकों का अवभास होना आपका ही लीलाविलास है। तब इन लघु दैत्यों के साथ युद्ध में आपको क्यों कोई प्रयत्न करना हेाता है ? हम लोगों के विमल मानस में जो नाना जन्मान्तरों की वासनायें भरी हुई है यह चरणकमलिनी विशद विकचवृत्ति में सदा सुपुष्पित हो विराजमान रहे जिससे और और वासनायें न रहें। चिरकाल से जडमिश्रित मानवों का जो एकमात्र विवेक का कारण है वह आपका चरणरूपी हंस ब्रह्मप्राप्ति तक पहुंचाने में वाहन हो जाता है।" ॥ ३-६ ॥

इसप्रकार स्तुतिकर उन विधिप्रमुख देवगण ने दण्डवत्प्रणामकर वारम्वार विविध स्तोत्रों से श्रीललिता की स्तुति की। हे घटोद्भव ! तबतक ब्रह्माण्डकोटियों से चलकर ब्रह्मादि कारणेश्वर देवगण अपनी भारतीप्रमुख शक्तियों के सहित वहां आगये। उन्होंने अञ्जलि बांधे प्रणाम कर भक्तिभरित (पूर्ण) हो पूज्या भगवती श्रीललिता की पूजाकर अपने कररूपी कमलों को बांध कर विनम्र वाणी में कहा, "हे देवेशि ! आज दैत्यराज भण्ड के वध से एक सौ पांच ब्रह्माण्ड

देवेशि ! भण्डदैत्यस्थ वधादद्य सुरक्षितम् । ब्रह्माण्डानां शतं पञ्च चैषां स ह्यधिपोऽभवत् ॥१०॥
प्रोक्तेष्वण्डेषु शक्राद्या बद्धाः केचित् पलायिताः । लोकाऽधिपत्यं सर्वत्र दैत्यैरेव चकार सः॥११॥
प्रवर्तिता दैत्यवेदा दैत्ययज्ञाश्च सर्वतः । न क्वचिद्दैवयज्ञो वा ब्रह्मयज्ञोऽपि शङ्करि ! ॥१२॥
प्रवृत्तोऽभूद्ब्राह्मणादौ भण्डे राज्यं प्रशासति । तदद्य निहते दैत्ये त्वया युधि महेश्वरि ! ॥१३॥
पलायिता दैत्यगणा लोकपालाश्च संस्थिताः।स्वस्वाऽधिकारकृत्येषु जातं सर्वं निराकुलम् ॥१४॥
एवं वदत्सु देवेषु तत्राऽऽगत्य च विश्वकृत् । देवीं विधिमुखांश्चाऽपि प्रणम्य रचिताऽञ्जलिः ।१५
पितामहाऽहमाज्ञप्तस्त्वया यन्मेरुमूर्धनि । देव्याः श्रीपुरनिर्माणे तत्तथा रचितं मया ॥१६॥
द्रष्टुमर्हसि तच्छीघ्रं देव्या देवैश्च संयुतः । एवं त्वष्ट्रा प्रार्थितोऽजो देव्यै वृत्तंव्यजिज्ञपत् ॥१७॥
प्रार्थिता देवदेवेशैर्ललिता परमेश्वरी । शक्तिसेना देवगणैर्युता तत्र ययौ द्रुतम् ॥१८॥
ददृशुस्तत्पुरं चारुतरं त्वष्टृविनिर्मितम् । महाश्रीपुरराजस्य प्रतिबिम्बमिवाऽर्पितम् ॥१९॥

सुरक्षित होगये इन सबका वह अधिपति बन बैठा था । उपर्युक्त ब्रह्माण्डोंमें इन्द्र आदि देवता बांध लियेगये और कई एक देवगण भागगये । उसने दैत्यों के द्वाराही सर्वत्र लोकों का अधिपतित्व किया । उसने सब ओर दैत्यवेदों और दैत्ययज्ञों का प्रचलन किया । हे शङ्करि ! उस भण्ड के राज्यकाल में ब्राह्मण आदि प्रजाजन में न तो दैवयज्ञ हुआ एवं न ज्ञानयज्ञ ही, इसलिये हे महेश्वरि ! युद्ध में आप के द्वारा उस दैत्य के वध करदियेजाने पर दैत्यगण उन ब्रह्माण्डों से भाग निकले और उनके स्थान पर अपने अपने अधिकार कृत्यों में नियुक्त लोकपालगण स्थित हो गये हैं । इस प्रकार सब ओर कुशलतापूर्ण स्वस्थता का वातावरण बन गया है ।" ॥७-१४॥

एवम्प्रकारेण देवगण के कहने पर विश्वकर्माने आकर श्रीदेवी और विधि-प्रमुख देवगण को प्रणाम कर हाथ जोड़े कहा, "हे पितामह ! आपके द्वारा मेरुपर्वत के शिखर पर जो मुझे आज्ञा दीगई कि मैं देवी के श्रीपुर का निर्माण करूं सो मैंने आपके निर्देशानुसार सब रच दिया है। आप देवी और देवगण के साथ पधार कर उसे देखिये ।" इस प्रकार विश्वकर्मा द्वारा प्रार्थना किये जाने पर श्रीब्रह्मा ने देवी भगवती को सारा वृत्तान्त कहा । ब्रह्मादि देवगण और देवेश इन्द्रद्वारा ललिता परमेश्वरी की प्रार्थना करने पर वह शक्तियों की सेना और देवगण समेत वहाँ शीघ्रतया गयी ॥१५-१८॥

उन सब ने विश्वकर्मा द्वारा विशेषरूप से रचित उस अत्यन्त सुन्दर पुर को देखा जो महाश्रीपुर के राज

विस्मिताः सर्व एवैते देवाः शक्तिगणास्तथा । अथ तत्र निवसने देवाः श्रीललिताम्बिकाम्॥२०॥
प्रार्थयामासुरत्यन्तं प्रणताः सर्वभावतः । तत्सम्मतिं समादाय बुद्धीशप्रमुखास्तदा ॥२१॥
राज्याऽभिषेकसामग्रीं कल्पयामासुरुत्तमाम् । प्रकल्प्य सर्वसम्भारान् शुभलग्नमुहूर्तके ॥२२॥
ब्रह्मा मुनिगणोपेत आभिषेचनिकं विधिम् । चकाराऽऽगमदृष्टेन मार्गेणोत्तमकल्पतः ॥२३॥
वृन्दारका देवगणा मारुतो वसवोऽग्नयः । गन्धर्वा देवदूताश्च दिक्पाला यक्षगुह्यकाः ॥२४॥
यातुधानाः किंपुरुषाः किन्नरा उरगा अपि । विद्याधराः सिद्धमुनय ऋषयः पितरोऽसुराः ॥२५॥
ब्रह्मरुद्रहरीणाञ्च कोटयोऽण्डान्तरस्थिताः । सदाशिवेश्वरौ चाऽपि श्रीकण्ठोऽनन्त एव च ॥२६॥
सङ्गतास्तत्र ललितामहाराज्याऽभिषेचने । परिचेरुस्तत्र देवीं ललिताऽम्बां समन्ततः ॥२७॥
ब्रह्माणीकमलागौरीकोटयो भक्तिभावनाः । उपचारैः पृथग्भूतैः पूजयामासुरादरात् ॥२८॥
एवं कृत स्वस्त्ययनां मङ्गलाचारसंश्रयाम् । नदत्सु शुभवाद्येषु मूर्च्छयत्सु सुमूर्च्छनाम् ॥२९॥
अवरोहाऽऽरोहगतिलयश्रुतिसमीरणैः । गन्धर्वेषु प्रनृत्यत्सु देववेश्यासु सर्वतः ॥३०॥

प्रतिबिम्ब (छाया) के समान ही निर्मित किया गया था। वे सभी देवगण और शक्तिगण इसे देख अति विस्मित हुए। अब वहां निवास करने के लिये श्रीललिताम्बिका को देवगण ने सर्वभाव से अत्यन्त विनम्र हो प्रणामकर प्रार्थना की। भगवती की सम्मति लेकर तब बुद्धीशप्रमुख देवों ने उत्तम राज्याभिषेक की सामग्री का संग्रह किया। सम्पूर्ण सामग्रियों को भलीप्रकार सजाकर शुभलग्न एवं मुहूर्त्त में मुनियों के समेत श्रीब्रह्मा ने आगम प्रतिपादित मार्गानुसार उत्तम विधि से अभिषेकक्रिया का उपक्रम किया ॥१९-२३॥

वृन्दारक, देवगण, मारुत, आठ वसु, अग्नियां, गन्धर्वलोग, देवदूत, दिक्पाल, यक्ष और गुह्यक, यातुधान, किम्पुरुष, किन्नरजाति, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्धमुनिगण, ऋषि, पितर और असुर एवं ब्रह्मा, रुद्र और विष्णु इन कारण देवों की कोटियां जो अन्य ब्रह्माण्डों में स्थित थे, सदाशिव और ईश्वर, श्रीकण्ठ और अनन्त सभी श्रेष्ठ महानुभाव श्रीललिता भगवती के इस महाराज्याभिषेक में सम्मिलित हुए; सबने चारों ओर देवी श्रीललिताम्बा की सेवा की। भक्ति-भाव से पूर्ण ब्रह्माणी, कमला और गौरी की कोटियों ने आदरसहित विभिन्न उपचारों से भगवती का पूजन किया ॥२४-२८॥

मङ्गलाचारसंश्रय की हुई उस भगवती को स्वस्तिवाचनपूर्वक शुभ महासिंहासन पर ब्रह्मा ने बहुत महोत्सवपूर्वक अभिषिक्त किया। उस समय शुभवाद्यों की सुमधुर सप्तस्वर के आरोह-अवरोह, गति, लय और

जपत्सु मुनिवृन्देषु ऋषिषु प्रपठत्सु च । स्तुवत्सु विविधेषूच्चैः प्रेक्षत्सु प्राणिषूद्यमैः ॥३१॥
विधिरारोहयद्देवीं महासिंहासने शुभे । अथ मन्त्रप्रपूताऽद्भिर्नवरत्नविचित्रितैः ॥३२॥
कलशैः सम्भृतैश्चाऽपि नदीसागरसम्भवैः । अभ्यषिञ्चल्लोकधाता वशिष्ठप्रमुखैर्वृतः ॥३३॥
अभिषिच्य महादेवीमनर्घ्याऽऽभरणोज्ज्वलाम् । विचित्रदिव्यवसनां श्रीचक्राऽधिविराजिताम्३४
पञ्चब्रह्माकारमञ्चशोभिनीं ललिताम्बिकाम् । पूजयामासुरमरा विविधैः सुसमर्हणैः ॥३५॥
विधिविष्णुमहेशाद्याः पृथग्भक्तिसमाहिताः । स्तुत्वा विचित्रस्तवनैः प्रणेमुर्भुवि दण्डवत् ॥३६॥
एवं श्रीललिता देवी तत्र श्रीपुरशेखरे । सिंहासनेऽभिषिक्ता सा महाश्रीपुरवत्तदा ॥३७॥
मन्त्रिणीप्रमुखानां स्वस्थानानि प्रदिशत् पृथक् । एवं घटोद्भव मुने ! मेरुशृङ्गे महोन्नते ॥३८॥
समास्ते श्रीपुरे ब्रह्ममुखशासनतत्परा । देवशिल्पिस्वचातुर्यसर्वसारविनिर्मितम् ॥३९॥

मधुर श्रवणमिश्रित ध्वनि सहित गायन-वाद्य होने लगा; गन्धर्वलोग और देवों की अप्सरायें सब ओर नृत्यगान करने लगीं, सब मुनिवृन्द जप-तपमें प्रवृत्त हो गये, ऋषिलोग वेदोच्चारण और स्तुति पाठकर विविध प्रकार से स्तवनमें लगे। इसप्रकार सभी प्राणियों के देखते-देखते भगवती का सिंहासनारोहण महोत्सव अत्यन्त समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। अनन्तर लोकों के धाता श्रीब्रह्मा ने वशिष्ठप्रमुख महर्षिवृन्द के सहित नदियों एवं सागरों के पवित्र जल से परिपूर्ण, नवरत्नों से चित्रविचित्रशोभावाले एवं वेदमन्त्रों से अभिमन्त्रित कलशों द्वारा भगवती का अभिषेक किया। अमूल्य आभरणों से अत्यन्त विकसित कान्तिवाली, विचित्र दिव्यवस्त्रों को धारण की हुई, श्रीचक्र पर अधिष्ठान कर विराजी ब्रह्मा, विष्णु, महेश, ईशान और सदाशिवरूपी पञ्चब्रह्माकार के पायोंवाले मञ्चको शोभित करनेवाली श्रीललिताम्बिका को अभिषिक्त कर देवगण ने विविध उपचारों से भगवती का अर्चन-पूजन किया ॥२९-३५॥

विधाता, विष्णु और महेश प्रमुखकारणदेवों ने भक्तिभरित अन्तःकरण से पृथक् भगवती का विशेषरूप से विचित्र स्तुतियों से स्तवन कर भूमि पर दण्डवत् हो उसे प्रणाम किया। ॥३६॥

इसप्रकार श्रीललितादेवी वहाँ श्रीपुरशेखर में महासिंहासन पर अभिषिक्त हो जैसे देवी ने महाश्रीपुर में अपने शक्तिपार्षदों को स्थान दिया वैसे ही मन्त्रिणीप्रमुख शक्तिगण के लिये उनका अपना अपना स्थान निर्दिष्ट किया। इसप्रकार हे कुम्भसम्भव अगस्त्यमुने ! महोन्नत मेरु के शिखर पर स्थित श्रीपुर में ब्रह्मादिप्रमुख देवगण के शासन में तत्पर भगवती नित्य ही विराजमान रहती है। विधिप्रमुख देवगण द्वारा देवताओं के शिल्पी विश्वकर्मा

नगरं श्रीमहादेव्या भूषणं छत्रपादुके । प्रार्थिता विधिमुख्यैः सा स्वीकृत्य करुणावशात् ॥४०॥
चिदानन्दघनाऽपीत्थमास्ते लीलावपुर्धरा । इति श्रुत्वा हयग्रीवात् कथां परमपावनीम् ॥४१॥
अगस्त्यः सन्तुष्टमनाः पप्रच्छाऽतिविशङ्कितः । हयग्रीव दयासिन्धो! मेरावस्मिन् त्वयोदितम् ।४२।
नगरं श्रीमहादेव्यास्तन्मे चित्रं विभाति वै । न मे ह्यविदितं स्थानं ब्रह्माण्डान्तर्भवेत् क्वचित् ।
तत्राऽपि मेरावज्ञातं मया न स्यात् क्वचित् स्थलम् । मेरुर्भुवनचित्रस्य भित्तिवत्परिकल्पितः ।४४।
सन्त्यूर्द्ध्वं सप्तभुवनान्यधः सप्ततलानि वै । मेरुमूर्ध्नि ब्रह्मविष्णुशिवधामानि सन्ति वै ॥४५॥
तत्र मे नाऽस्त्यविदितो देशोऽपि द्व्यङ्गुलात्मकः । तत् कथं वर्णितं तत्र श्रीपुरं मे समीरय ॥४६॥
इति पृष्टः कुम्भजेन हयास्यः प्राह हर्षितः । शृणु कुम्भज ! वक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥४७॥
न हि तद्भवनं सर्वैर्द्रष्टुं शक्यं कथञ्चन । ये तु श्रीत्रिपुरां शक्तिं विधिना समुपासते ॥४८॥
तेषां प्राप्यं दृश्यमपि नाऽन्येषां तु कदाचन । तत्ते माहात्म्यसंश्रुत्या भक्तिर्हृदि समुद्गता ।४९।

द्वारा अपने निर्माण की दक्षता के सम्पूर्ण सारभूत अनुभवों से विशेषरूप से निर्मित श्रीनगर, भूषण, छत्र और पादुकाओं के लिये प्रार्थना की जाने पर करुणावश स्वीकारकर चिदानन्दघनीभूता अनिर्वाच्या भी भगवती इस प्रकार लीलाशरीर को धारणकरनेवाली है ।" इसप्रकार हयग्रीव ऋषि से भगवती की परम पावनी कथा को सुनकर अगस्त्य प्रसन्नहृदय हुआ फिर उसने अति विशङ्कित हो पूछा; "हे दयाके सागर ! हयग्रीव ! आपने जो कहा कि इस मेरु में श्रीमहादेवी का नगर है वह मुझे विचित्रसा लगता है; ब्रह्माण्डों के अन्तर्गत कहीं भी मेरे से अपरिचित स्थान नहीं होगा; उसमें भी पर्वतराज मेरु में तो मेरे से अज्ञात कोई स्थान हो यह असम्भव है; मेरु तो भुवनरूपी चित्र की भित्तिके समान परिकल्पित है, ऊर्ध्वभागमें सात भुवन हैं और अधोभागमें सातल (पाताल) हैं । मेरुके शिखर पर ब्रह्मा विष्णु और शिव के धाम हैं, वहाँ पर दो अंगुल स्थान भी मेरे से छिपा नहीं है । तब वहां श्रीपुर को आपने कैसे बताया ? इसे मुझे समझाइये ।" इसप्रकार अगस्त्य द्वारा पूछे जाने पर हयग्रीव मुनि ने अत्यन्त प्रसन्न हो कहा, "हे घटोद्भव ! तुम्हें यह उत्तम रहस्य बताऊँगा, सुनो । वह भवन सब कोई के द्वारा कभी भी नहीं देखा जा सकता । जो भक्तगण श्रीत्रिपुराशक्ति की विधिपूर्वक उपासना करते हैं उन्हें ही इस श्रीनगर तथा श्रीभगवती का दर्शन होता है, अन्य लोगों को तो त्रिकाल में भी संभव नहीं । इसलिये तुम्हारे हृदय में भगवती के गुण, रूप, लीला और धाम का माहात्म्य सुनने से भक्ति का आविर्भाव हो गया । अतः जिस व्यक्ति को परा की भक्ति सुलभ हो जाती है उसके लिये सब कुछ ही पानेयोग्य हो जाता हैं । जैसे रत्नों के खजाने को पाने के बाद किसी को भी रत्न की

प्राप्तायां तु पराभक्तौ नाऽप्राप्यं तस्य विद्यते । प्राप्ते रत्नाकरे यद्वद्भवेन्नो रत्नवाञ्छिता ॥५०॥
तदियं ते सती भार्या लोपामुद्रा परा प्रिया । तस्या दीक्षां समादाय चोपास्य विधिवत्पराम् ।५१
सिद्धस्तद्द्रक्ष्यसि पुरं नान्यथा तु कदाचन । एतत्ते कुम्भज! प्रोक्तं ललिताया महाद्भुतम्।५२।
विभवं शृण्वतां पुंसां सर्वपापप्रणाशनम् । कलौ मलीमसहृदां जनानां दुर्धियामिदम् ॥५३॥
माहात्म्यं त्रिपुरेशान्यास्त्यक्त्वा नाऽन्यत्परायणम् । वैदिकैः कर्मभिर्भूयो निराशीर्भिः कृतैर्भवेत्
उपासनेषु श्रद्धाऽन्यदेवताविषया ततः । विष्णौ शिवे शक्तिषु च सर्वान्ते परिपाकतः ॥५५॥
त्रिपुरामूर्तिसेवायां श्रद्धा भवति शाश्वती । एतदाराधनेनैव विदित्वा स्वाऽऽत्मरूपिणीम् ॥५६॥
चिदानन्दाऽद्वयमयीं सर्वलोकमहेश्वरीम् । अभिव्यक्तपरैश्वर्यो न पुनर्भवमृच्छति ॥५७॥
एवं स्वात्मपदप्राप्तौ सोपानं प्रथमन्त्विदम् । श्रवणं श्रीपराशक्तिमाहात्म्यविभवोन्नतेः ॥५८॥
तस्मादादौ सर्वथैव श्रोतव्यं श्रेय इच्छता । एतत् पापप्रशमनं सर्वाभीष्टफलावहम् ॥५९॥

इच्छा नहीं रहती वैसे ही इस भगवतीकी कृपा की बात समझो। अतः तेरी धर्मपत्नी सती लोपामुद्रा श्रीपरा की पूर्ण भक्ति-भावभरिता स्त्री है, उससे दीक्षा लेकर विधिपूर्वक पराकी उपासनाकर। सिद्ध बनने के बाद तू उस पुरको जानेगा अन्यथा तो कदापि नहीं। हे अगस्त्य मुने ! मैंने तुझे यह श्रीललितादेवी का महाअद्भुत गौरवपूर्ण वैभव बताया, जिसे सुननेवाले पुरुषों के सम्पूर्ण पापों का विनाश हो जाता है; विशेषरूपसे कलिकालमें कालुष्यपूर्ण हृदयवाले दुष्टबुद्धि पुरुषों के पापों का शमनकरनेवाला यह त्रिपुरेशानी का माहात्म्य अत्यन्त ही कल्याणकरनेवाला है, इसे छोड़कर अन्य कोई विधान नहीं। तुम्हें पता है कि वैदिक कर्मों से फलरहित (फलकी कामनाके विना ही) सब कलाप करना होता है। उपासनाओं में अन्यदेवताओं के विषय की श्रद्धा की जाती है, विष्णु, शिव और शक्तियों में उपासना का भाव इन सब के अन्त में परिपाक से बनता है। श्रीत्रिपुरामूर्ति की सेवा में श्रद्धा शाश्वत होती है (उन उन देवगण की आराधनाओं में फल का परिपाक हो जाने तक प्रभाव रहता है परन्तु त्रिपुरा की आराधना नित्य फलवती है)। इसके आराधन करने से ही स्वात्मरूपवाली चिदानन्दघना अद्वयमयी सम्पूर्णलोकों की महेश्वरी को जानकर भलीप्रकार अभिव्यक्त हुए परमैश्वर्यवाला भक्त फिर मातृगर्भ में जन्म ग्रहण नहीं करता ॥३७-५७॥

इस प्रकार अपने आत्मपद को प्राप्त करने में यह प्रथम सोपान (सीढी) है, जो श्रीपराशक्ति के माहात्म्य के वैभव की उन्नति का श्रवणस्वरूप है। इसलिये सर्वथा अपने श्रेय को चाहनेवाले मनुष्य को सबसे प्रथम भगवती के माहात्म्य को सुनना चाहिये। यह निश्चय ही पापों का शमनकरनेवाला, सम्पूर्ण अभीष्ट सत्फलों को प्राप्त

भक्तिमुत्पाद्य तरसा मोचयेत् परमाद्भयात् । इत्युक्त्वा कुम्भजमुनिपूजितोऽश्वाननो भृशम् ।६०।
आपृच्छ्य च निरगात् स्वीयामभीष्टां दिशमीश्वरः। इति ते कथिता राम ललितायाः कथा शुभा ।६१।

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे दत्तात्रेयपरशुरामसंवादे
श्रीललितामाहात्म्ये श्रीपुरे श्रीललिताभिषेकवर्णनं
नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥६४६५॥

करानेवाला है जो भगवती में भक्ति उत्पन्न करवा कर अनायास ही भवचक्रके परम भय से छुटकारा करा देता है ।" यह कहकर अगस्त्य के द्वारा अतिशय रूपमें पूजित हो उससे अच्छी प्रकार पूछ कर अपनी इष्ट दिशा को वह ईश्वरता को प्राप्त मुनिराज हयग्रीव विदा हो गये। हे परशुराम ! इस रूपमें यह तुझे भगवती श्रीत्रिपुराललिता की मङ्गलमयी कल्याणकारिणी कथा सुनायी ॥५८-६१॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम श्रीत्रिपुरारहस्यके माहात्म्यखण्ड में दत्तात्रेयपरशुरामसम्वाद
में श्रीपुर में श्रीललितादेवी के अभिषेक के निरूपणसहित श्रीत्रिपुरा की
भक्ति का सुफलवर्णन नामक अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

श्रीदत्तभार्गवसम्वादे आगमस्वरूपवर्णनम्

एवं श्रीललितादेव्या माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम् । जमदग्निसुतः श्रुत्वा हर्षाऽमृतनिषेचितः ॥१॥
भक्तिवारिधिनिर्मग्नो रोमाञ्चोदयपीवरः । निरन्तरस्रवद्धर्षनेत्रवारिपरिप्लुतः ॥२॥
विसंज्ञ इव सम्भूतः क्षणमासवमत्तवत् । बभाषे गद्गदश्रुत्या भूयो विरचिताऽञ्जलिः ॥३॥
भगवन्नहमत्यन्तं पावितो भवताऽधुना । पराकथातीर्थवारिधारानिवहसेचनैः ॥४॥
उद्धृतो दययाऽपारसंसारजलधेर्ननु । नमस्ते श्रीगुरो नाथ दुःखध्वान्तदिनाधिप ! ॥५॥
नमस्ये तं मुनिं शांतं संवर्तमकुतोभयम् । यो मे मार्गं निरदिशदन्धस्य भ्रमतो यथा ॥६॥
अद्य यावदहं लोके व्यर्थं कालमुपावहम् । शून्यकूपे भेक इव न स्वार्थमविदं क्वचित् ॥७॥

उन्नासीवाँ अध्याय

इसप्रकार श्रीललिता देवी के सब से उत्कृष्ट माहात्म्य को सुन कर महर्षि जमदग्नि के पुत्र श्रीपरशुराम हर्षरूपी अमृत से अत्यन्त तृप्त हुआ, भक्तिरूपी समुद्र में निर्मग्न होकर रोमाञ्च होजाने से अत्यधिक पुष्ट तथा उसी भक्ति के कारण सतत आनन्दाश्रुओं के निकलने से जलप्लावित नेत्रोंवाला एक क्षणभर में आसव को पान कर मत्त हुए व्यक्तिके समान बेसुध सा हो फिर अपने हाथों की अञ्जलि बांधे गद्गद वाणी में बोला, "हे भगवन् ! मैं अब आपके द्वारा भगवती परा की कथा के तीर्थरूपी जल की धाराओं के प्रभूत सिञ्चन द्वारा अत्यन्त पवित्र बना दिया गया हूँ; अवश्य ही अपार संसाररूपी समुद्र से मेरा उद्धार कर दिया गया है। हे दुःखरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्यस्वरूप ! श्रीगुरुदेव ! नाथ ! आपको प्रणाम करता हूँ; साथ हा उन शान्त, कहीं भी भयको स्थान न देनेवाले महर्षि श्रीसम्वर्त को प्रणाम करूँगा जिसने अन्धे के समान घूमते हुए मुझे शुभ मार्ग बताया । अब तक मैंने व्यर्थ में ही समय

धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं भवच्चरणसंश्रयात् । मोक्षलक्ष्मीमभिप्रेप्सुरभवं सर्वथा ननु ॥८॥
भगवन्मे संशयोऽत्र महान् हृदि समाहितः । तत् पृच्छामि भवन्तं यद्वक्तुं तन्मे समर्हसि ॥९॥
जानाम्यनुग्रहोऽत्यन्तं मयि ते करुणानिधेः । नाऽवक्तव्यं मयि भवेच्छिष्ये कारुणिकस्य ते॥१०॥
कथं कुम्भोद्भवमुनिः सर्वशास्त्रविशारदः । नोपासीत्तां पराशक्तिं सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥११॥
येनाऽदृश्यमभून्मेरौ श्रीदेव्या नगरोत्तमम् । कुतो वा वेदनिरते न हि स्यात्तस्य दर्शनम् ॥१२॥
भूयः कथं तेन दृष्टं तत्पुरं तद्ब्रवीहि मे । इत्यापृष्टो जामदग्न्यं प्राह दत्तगुरुर्मुनिः ॥१३॥
शृणु राम प्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम् । न ह्यत्र केवलं शास्त्रं प्रयोजकमुपेयते ॥१४॥
जनानां प्राक्समभ्यस्तवासनावासितात्मनाम् । वासनानां शतं चित्ते सञ्चितं प्राणिनां पृथक्
प्राप्योद्बोधं प्रसरति सत्सङ्गस्तस्य बोधकः । यावद्यत्सङ्गमाप्नोति तावत् तत् स्यान्न चाऽन्यथा

गँवाया । जल से शून्यकूपमें जैसे मेंढकको अपना स्वार्थ जलमें निवास नहीं मिल पाता वैसे मैं कहीं भी अपने अभिलषित पुरुषार्थ को न पा सका । मैं सचमुच धन्य हूँ व कृतकृत्य हूँ कि अवश्य आपके चरणों का अवलम्बन लेने से मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाला बनगया । हे भगवन् ! अब मेरे मनमें इस विषयको लेकर बड़ा सन्देह हो गया, आपसे पूछता हूँ, सो आप मुझे कहियेगा । मैं जानता हूँ कि करुणानिधि आपका मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह है, आप जैसे कारुणिक के लिये मुझ शिष्य के प्रति न कहने योग्य कुछ भी तो नहीं है । उस सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता कुम्भजन्मा अगस्त्य मुनि ने सम्पूर्ण लोकों की महेश्वरी पराशक्ति की उपासना पहले क्यों नहीं की, जिस के द्वारा-मेरुपर्वतस्थित श्रीदेवी का उत्तम नगर अदृश्य (विना देखे) रह गया ? अथवा क्यों वेदशास्त्रानुमोदित आचार को पालन करनेवाले, वेद में सर्वांश में निरत वह भगवती के श्रीचक्र को क्यों नहीं देख सका? फिर उसने वह नगर किस प्रकार देखा ? सो मुझे बताइये ।।" इसप्रकार पूछे जानेपर श्रीदत्तगुरुजी ने जामदग्न्य परशुराम से कहा, 'हे राम! सुन, मैं तुझे इस उत्तम रहस्य को बताऊँगा । इस विषयमें लोगों के पूर्व जन्मों की अभ्यस्तकी हुई वासनाओं से बनी हुई जो वृत्तियां हैं, उन्हें इसमें लगाने को केवल शास्त्र प्रयोजक नहीं बनते । प्राणियों के चित्तमें प्राग्जन्मकी सञ्चित सैकड़ों वासनायें रहती हैं । वे उद्बोध पाकर विकसित होती हैं;सत्सङ्ग उस सुरुचिका बोधक है । जब तक जिस का सत्सङ्ग प्राप्त होता है तब तक स्वेष्टदेवकी भक्तिका अवसर बनता है , अन्यथा नहीं । हयग्रीव को प्राप्त कर त्रिपुरा के वैभव

हयग्रीवं समागम्य त्रिपुरावैभवश्रुतेः । सञ्जातत्रिपुराभक्तिः पत्न्या दीक्षां समाददे ॥१७॥
यावद्दीक्षां न विन्देत त्रिपुरोपासकोऽपि सन्। न तावन्मोक्षसौधस्य सोपानाऽऽरोहणक्षमः ।१८।
विनोपनयनं यद्वद्द्विजानां सर्वकर्मसु । न योग्यता तथाऽत्रापि विना दीक्षां भृगूद्वह ॥१९॥
अप्राप्य सद्गुरोर्दीक्षामज्ञात्वा गुरुपद्धतिम्। स्वबुद्ध्या तु कृतं कर्म विधिना चसमन्वितम्॥२०॥
तथाऽपि साधकं शीघ्रं नाशयत्येव सर्वथा । सेवितारं यथा हन्ति चाऽपक्वन्तु रसायनम् ॥॥२१
मन्त्रं मन्त्रविधानञ्च स्वबुद्ध्यैव गुरुं विना। यः समासादयेत् स हि देवताद्रोहमाप्नुयात्॥२२॥
नेह लोकः परो वाऽपि विद्यते देवताद्रुहाम् । अज्ञो द्रोहकृतं दोषं नाशयेन्मानवः कथम् ॥२३॥
लोकदृष्टन्याय एष आज्ञाभङ्गकरं नरम् । योजयन्त्येव भूपाला महादण्डैः पृथग्विधैः ॥२४॥
नोपेक्षन्ते सर्वथैव नरमाज्ञाऽपकारिणम् । वेदवादैरेव न हि भवेदत्राऽधिकारिता ॥२५॥

को सुनने से भगवती त्रिपुरा में भक्ति को प्राप्त हुए उसने निज पत्नी से दीक्षा ली ॥ १-१७ ॥

त्रिपुरा का उपासक होकर भी कोई व्यक्ति तबतक मोक्षभवन के सोपान पर चढ़ने में सक्षम नहीं होता जब तक वह दीक्षा को न प्राप्त करे । जैसे उपनयन संस्कार किये विना द्विजगण का सब नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्मों में अधिकार नहीं, वैसेही हे भृगुवंशज राम ? यहां भी दीक्षा लिये विना किसीप्रकार मनुष्यकी योग्यता नहीं है । सद्गुरु से दीक्षा न लेकर गुरुपद्धति को न जान कर अपनी बुद्धि से किया हुआ कर्म विधिपूर्वक हो तो भी साधक को शीघ्र सर्वथा नष्ट ही करता है; उदाहरणार्थ, जैसे कच्चे रसायन को सेवन करनेवाले को वह मार देता है ।१८-२१॥

गुरु के विना जिसे मन्त्र और उस मन्त्र के विधान को जो व्यक्ति अपनी बुद्धि से प्राप्त करता है वह देवताद्रोह का भागी बनता है। देवताद्रोहियों का न तो यह लोक सुधरता है और न परलोक (भावीजन्म) ही। अज्ञ मानव देवता के द्रोह के दोष को कैसे नष्ट करेगा ? लोक में भी यह नीति देखी जाती है कि अपनी आज्ञा को भङ्गकरनेवाले अपराधी पुरुष को राजालोग विभिन्न प्रकार के महादण्डों से दण्डित करते हैं। वे अपनी आज्ञा के उल्लङ्घन करनेवाले मनुष्य की सर्वथा ही अवहेलना नहीं करते। वेद में प्रतिपादित विविधवादों के माध्यम से भी इस में अधिकार की योग्यता नहीं होती। उपासना का अधिकार प्राप्त हो इसलिये

उपासनाऽधिकारार्थं द्विजानां वैदिकक्रमः । पुरुषार्थो वेदविधौ सर्वथा न हि विद्यते ॥२६॥
यदि वेदविदां पुंसां मृषाफलाऽनुसन्धिनाम्। अणुमात्राऽऽत्मभूतानां पुरुषार्थाऽभिमानिनाम्।२७।
पुरुषार्थः परः स्याच्चेत् स्थाणूनां न कुतो भवेत् । वैदिका ह्यचलम्मन्याः फलं धूमसमुद्भवम्२८
क्व दृष्टं चलभूतेन ह्यचलं फलसम्मतम् । मितेषु दुःखभूतेषु फलेषु सुखबुद्धयः ॥२९॥
फलस्वरूपाऽनभिज्ञा ह्यफले फलशंसिनः । प्रवर्तितो गुणमयो वेदो धात्रा जगत्कृतिः ॥३०॥
जगद्यात्राप्रवृद्ध्यर्थं सुराणामभितृप्तये । मर्तुकामस्य विषवत् कामिनां कामनामयः ॥३१॥
परश्च भागः सङ्गूढो वेदे यस्तं विदुर्न ते । धात्रैव गोपनात्तस्य गुप्तभावेषु मोहिताः ॥३२॥
नयन्ति तमन्यथैव व्यासो नारायणः स्वयम् ।
जीवेषु दयया सम्यक् चित्ताऽऽरोहोपयोग्यया ॥ ३३ ॥
तमुपबृंहयद् भूयो परमार्थैकसाधनम् । अतोऽत्र त्यक्तकामानामधिकारो विधीयते ॥३४॥

द्विज के लिये वैदिकक्रम विधान है वेदविधि में मोक्ष पुरुषार्थ सर्वथा नहीं है। यदि वेदज्ञ मृषा (अनित्य) फल के अनुसन्धान करनेवाले अणुमात्र भी आत्मस्वरूप से वञ्चित हुये पुरुषार्थ (मोक्ष) का अभिमान करने वाले पुरुषों को पर में पुरुषार्थ (आत्मानुसन्धान रूप) हो जाता है तो सूखे वृक्ष के लकड़ों को क्यों नहीं होता ? वैदिकलोग अचलम्मन्य (अचल पदार्थ को माननेवाले) होते हैं; उन्हें यज्ञ करके धुएं से फल पाना होता है; भला बताओ तो सही चलायमान से फलसम्मत अचल कहां देखा गया है ? ऐसे लोग परिमित दुःख से पूर्ण फलों में ही सुखबुद्धि की कल्पना करते हैं, ये फल के स्वरूप को नहीं जानते; फलहीन में (अफल में)तो फल की आशा करते हैं। जगत्कृति के रूप में त्रिगुणमय वेद विधाता द्वारा प्रवर्तित है; लोकयात्रा चलाने के लिये और देवगण को परितृप्त करने के हेतु प्रचलित किया गया है। यह तो "स्वर्गकामो यजेत", "पुत्रकामो पुत्रेष्ट्या यजेत" इन विधिवाक्यों से सकामपुरुषों की कामनासिद्धि के लिये कामनाओं से पूर्ण है, जैसे मरते हुए को विष का प्रयोग है वैसे ही इसे भी समझो। वेद (उस) में चरम पुरुषार्थ का जो भाग अत्यन्त गूढरूपमें छिपा है, उसे वे लोग नहीं जान पाते। इसे विधाता ने जानकर ही गोपन किया हुआ है। इससे उनके गुप्तरहस्यों के प्रति वे लोग व्यामोहित हो उसे अन्य प्रकार से स्वार्थसिद्धि के हेतु काममें लेते हैं। श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव स्वयं नारायण हैं, भली प्रकार चित्तके आरोह के उपयुक्त (गूढरहस्यको) जो

सन्न्यासिनोऽपि चिच्छक्तेरुपासनमभीप्सितम्। अज्ञानान्मोहतो वाऽपि विद्योपास्तिं त्यजेत्तु यः स विशेदन्धतामिस्रं न तस्याऽस्ति पुनर्गतिः।

सन्न्यासिना तु त्यक्तव्यं सर्वं बन्धात्मना स्थितम् ॥३६॥

इदं मोक्षात्मकं राम श्रीविद्योपासनन्तु यत्। न(हि)त्यक्तुं समुचितं ब्राह्मण्यमिव वै यतेः ॥३७॥

महापराधस्त्यागो वै स्यादुपास्तेर्भयावहः। तामिस्रमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकमवीचिकम् ॥३८॥

प्रपद्यन्ते हि ते भूयो ह्यपराधपरा जनाः। दण्डराज्ञया समाज्ञप्ताः शक्तयोऽतिविभीषणाः ॥३९॥

सङ्कर्षिणी कर्षिणी च कालसङ्कर्षिणी तथा। उपास्तिमार्गसरुजानपराधपरान् जनान् ॥४०॥

योजयन्त्युक्तदुःखेषु स्थानेषु परमातृकाः। उपासनपरो मर्त्यः कैवल्यं पदमश्नुते ॥४१॥

कर्मिणस्तान्त्रिकस्याऽपि या भवेद्गतिरुत्तमा। वैदिकोपासकस्यैषा सर्वथा न हि विद्यते ॥४२॥

यतो हि वैदिकं कर्म सर्वथा हि बहिर्मुखम्। अनीश्वरं पौरुषं स्यादतः पशुफलोचितम् ॥४३॥

परमार्थ का एकान्तिक साधन है, उसे उन्होंने जीवों पर कृपा करने के लिये बढाया। अतः कामनाओं को छोड़े हुए लोगों का ही इस परम पुरुषार्थ में अधिकार है। संन्यासी को भी चितिशक्ति की उपासना अभीष्ट है। अज्ञानसे अथवा मोह से जोविद्योपासना का त्याग करते हैं वे अन्धतामिस्र नरक को प्राप्त होते हैं। उनकी फिर कल्पान्त तक अन्य कोई सुगति नहीं। सन्यासी को तो जो बन्धनरूपकाला है उस सबका ही त्याग करना चाहिये। हे परशुराम! यह जो श्रीविद्योपासना है वह मोक्षात्मक है इसलिये यति को ब्रह्मभाव के समान इसे छोड़ना उचित नहीं। उपासना का त्याग भयावह महान् अपराध हैं; ऐसे अपराधी जन तामिस्र, अन्धतामिस्र, कुम्भीपाक और अवीचि नामक नरकों को बारबार प्राप्त करते हैं। दण्डराज्ञी द्वारा आज्ञाप्राप्त अतिभीषण शक्तियां संकर्षिणी, कर्षिणी और कालसंकर्षिणी ये परमातृका हैं, वे उपासनामार्ग के त्यागरूपी अपराध करनेवाले लोगों को उक्त दुःखपूर्ण स्थानों में डाल देती हैं। उपासना में तत्पर मनुष्य ही कैवल्यपद का भागी होता है॥२२-४१॥

कर्मपरायण अथवा तान्त्रिक व्यक्ति की जो उत्तम गति होती है, सर्वथा वह वैदिक उपासक की नहीं। क्योंकि वैदिक कर्म सर्वथा बहिर्मुख फल का उद्देश बताता है; जो अनीश्वर पौरुष (पुरुषकर्मप्रद) है इसीलिये पशुफल के प्राप्त करने को ही समुचित है ॥४२-४३॥

तान्त्रिकन्त्वैश्वरं कर्म ज्ञानोपासनमिश्रितम् । मोचयत्याशु संसिद्ध्या श्रद्धाभक्तिसुवृंहितम्॥४४
यथोक्तकर्मणा चित्तशुद्धिमासाद्य विद्यया । प्राप्यतेऽत्रैव शिवता प्रबुद्धैः पौरुषेण हि ॥४५॥
अबुधा अपि मुच्यन्ते कर्म कृत्वा यथाक्रमात् । नाऽधिकारो विना दीक्षां कर्मणि ज्ञानसाधने
दीक्षावन्तस्तु देहान्ते प्राप्य लोकं परात्परम् । सदाशिवेन ते सम्यक् प्रबुद्धाः शिवरूपिणः ।४७।
कर्मिणोऽप्यप्रबुद्धा ये ते भवन्ति भृगूद्वह !। तस्मान्न वेदशास्त्राद्यैः शुष्कैः सद्गतिराप्यते ॥४८॥
विना श्रीत्रिपुरासेवां प्रवृत्तिर्वा कथं सती । न साधनं फलं वाऽपि प्रवृत्तिर्वाऽपि भार्गव !॥४९॥
विना श्रीत्रिपुरेशान्याः कृपया सम्भविष्यति ।

आराध्य शिवविष्ण्वादीनपि यत् प्राप्यते फलम् ॥५०॥
तच्चाऽपि तस्याः कृपया भवतीति विनिश्चयः । पूजनं सर्वदेवानां पराशक्तेः प्रपूजनम् ॥५१॥
शक्तिं विना न पूजाया ग्रहणं सम्भवेत् क्वचित् ।

तस्मात् पूजा तु शक्तेः स्यात् सर्वत्र विहिता जनैः ॥५२॥

अष्टपाशयुक्त मनुष्य पशु है वही फल एषणात्रय-लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा पशुफलदायक हैं। तान्त्रिककर्म ज्ञान और उपासना से संयुक्त है इसलिये ईश्वरताविहित है। यह श्रद्धाभक्तिपूर्वक सम्पन्न किया जाय तो सम्पादन करनेवाले को सम्यक् सिद्धि द्वारा बन्धनों से अतिशीघ्र मुक्तिप्रदान करता है। अपने सम्प्रदाय द्वारा प्रतिपादित कर्म से चित्त की शुद्धि पाकर विद्या द्वारा इसी जन्म में शिवरूप की प्राप्ति प्रबुद्ध व्यक्तियों द्वारा पुरुषार्थ से हो जाती है। इस प्रकार यथाक्रम से कर्म करके मूर्ख भी मुक्त हो जाते हैं। विना दीक्षा के ज्ञानसाधन कर्म में कोई अधिकारी नहीं होता। दीक्षाप्राप्त व्यक्ति स्वदेह के त्यागने पर परात्पर लोक को प्राप्त कर सदाशिव के साथ सम्यक्प्रकार से प्रबुद्ध हो शिवरूपही बन जाते हैं। कर्मीगण भी अप्रबुद्ध हों तो भी इस तान्त्रिक दीक्षा से शिवस्वरूप प्राप्त कर लेते हैं। हे भृगुवंशोद्भव ! इसलिये शुष्क वेदशास्त्रादि द्वारा सद्गति प्राप्त नहीं होती; भगवती श्रीत्रिपुरा की सेवा के विना प्रवृत्ति क्या हो ? हे भार्गव ! श्रीत्रिपुरेशानीकी कृपा के विना न तो साधन होता है; न फल और न प्रवृत्ति का लाभ ही। शिव एवं विष्णुआदि देवगण की आराधना कर जो फल प्राप्त होता है, वह भी उसकी कृपासे ही बनता है; यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है। पराशक्तिका पूजन करने से सम्पूर्ण देवगण की

फलप्रदानशक्तिन्तु विचार्याऽऽदौ विचक्षणाः। पूजयन्ति पृथक् देवं फलं विन्दन्ति तत्तथा॥५३॥
लोकेऽप्यशक्तः कुत्राऽपि न पूज्यः स्यात्तु भार्गव। आश्रयत्वाच्छिवमृते शक्तिर्नैव तु विद्यते॥५४॥
इति चेन्निजसत्तात्मशक्तिहीनः शिवस्तथा। प्रकाशशक्तिहीनो वै रविः कुत्र कदा भवेत्॥५५॥
यथा तथा चितिं शक्तिमृते स्याद्वै शिवः कथम्। चितिशक्त्या परित्यक्तं तृणं वाऽपि कथं भवेत्
सत्यां चिति ह्यस्मि सर्वमन्यथा न हि किञ्चन। यदस्ति तच्चितिरिति जानीहि भृगुनन्दन॥५७॥
एतच्छाक्तं हि विज्ञानं मत्तोऽन्यन्न हि विद्यते। एवं बुद्ध्या तु यत् किञ्चित् तृणञ्च त्रिपुरात्मकम्
संज्ञायामेव लोकेऽस्मिन् विवदन्ति मनीषिणः। तस्मात्त्यजाऽत्र सन्देहमेतत्सर्वत्र वै समम्॥५९॥
वाङ्निरुक्त्यै प्रवृत्ता वै विशेषाऽऽलम्बनं गता। निर्विशेषन्तु तद्रूपमखण्डैकचिदात्मकम्॥६०॥
विशेषज्ञो भवेद्यावत्तत्ववन्न स्याद्धि तत्परः। वेदा विशेषबहुला गूहयन्त्यविशेषकम्॥६१॥

पूजा होजाता है। शक्तिके विना पूजाका ग्रहण कहीं भी नहीं होता; इसलिये शक्तिकी पूजा ही सर्वत्र बुद्धिमान विद्वान् लोगों ने विहित की है। आदि में विचक्षण प्रज्ञावाले लोग फलदेनेकी शक्तिको विचार कर पृथक् पृथक् देवों की पूजन करते हैं और उसके अनुसार ही वैसा फल पाते हैं। हे भार्गव! लोक में अशक्त (शक्तिहीन) व्यक्ति कहीं भी पूज्य नहीं बना। शिव को छोड़ (शिवका आलम्बन होने से शक्ति) कहीं नहीं रहती अपनी सत्तारूपवाली शक्ति से हीन तथा प्रकाशशक्तिके विना सूर्य कहां और कब स्थित है? और उस प्रकार चितिशक्तिके विना शिव क्यों स्थित रहेगा? चितिशक्ति से छोड़ा गया तृण भी क्या स्थिति रख सकता है? चिति होने पर ही "अस्मि" (हूँ) यह सत्तात्मक भाव होता है नहीं तो कुछ भी नहीं। जो सत्तात्मक है वह सब चिति ही है, इसे हे भृगुनन्दन! तू जान। यह शाक्त-विज्ञान सद्भाव ही है उससे अन्य नहीं। इसप्रकार बुद्धिद्वारा जो कुछ भी है नीचे से नीचा तृण वह त्रिपुराका ही स्वरूप है। इस विषयमें नाम (संज्ञा) को लेकर सभी मनीषी विद्वान् विवाद करते हैं। इसलिये, तू इस विषय में सन्देहको छोड़। यह चितिरूपा सर्वत्र समभाव से स्थित है। वैखरीवाणी की निरुक्ति से अवश्य ही विशेष आलम्बन (आश्रय) को घट या पट आदि की आख्या (संज्ञा) प्राप्त है; निर्विशेष रूप से उसका परमार्थतः अखण्ड एक चिदात्मक सत्त्व है। जब तक साधक उसके लिये एकनिष्ठता से तत्पर न हो तब तक विशेषरूप से ज्ञान नहीं हो पाता। वेदों में विशेष (भेद) का बाहुल्य है; ये अविशेष (भेदाभाव), शिवाद्वैत (ऐक्य) को ही गूहन करते (छिपाते) हैं॥४२-६१॥

अतोऽगस्त्यस्तत्पुरं तु नाऽपश्यद्वैदिकोऽपि सन् । वेदार्थः परमो यस्तु त्रिपुरैव हि सा भवेत् ।६२
अतस्त्रैपुरसंसिद्धौ साधनं वेद उच्यते । वेदार्थस्यैव व्यसनं पुराणं व्यास ऊचिवान् ॥६३॥
वेदो ह्यागमभागः स्यात् शब्दराशिस्तथाऽऽगमः ।
तस्या मूर्त्तिरतः सर्वं प्रवृत्तं तस्य संश्रयात् ॥६४॥
त्रैवर्णिकाऽधिकारेण वेदरूपः प्रवर्तते । दयया परमेशानः सर्वानुद्धर्तुमिच्छया ॥६५॥
वेद आगमसंज्ञानं विभावयदनुत्तमम् । आगमः परमेशस्य विमर्श इति निश्चयः ॥६६॥
क्रमेण ब्रह्ममुख्यानां मुखादुद्भावयत्तु तम् । अपारो ह्यागमाऽम्भोधिः सर्वलोकेषु सङ्गतः ॥६७॥
कालेन मन्दधिषणान् कृपणानभिलक्ष्य तु । ऋषिभिस्तमागमाब्धिं मथित्वा प्राज्यया धिया ६८
सारसंग्रहरूपात्मतन्त्राऽमृतमनुत्तमम् । देशभेदविभेदेन पृथगेव विभावितम् ॥६९॥
तत्र द्विजानां वेदोक्तकर्मभिः संस्कृतात्मनाम् । श्रौतकर्ममुखेनैव तान्त्रिके ह्यधिकारिता ॥७०॥

इसलिये अगस्त्य स्वयं वैदिक होने पर भी भगवती के श्रीपुर को नहीं देख पाया। वेद का अर्थ वही परम है जो त्रिपुरात्मक है। इसीलिये त्रिपुरा के आत्मप्रकाश की सम्यक् प्रकार से सिद्धि के लिये जो साधन हैं उन्हें वेद कहा जाता है (इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट के परिहार के उपाय को जो बतावे वह वेद सत्य ही त्रिपुरात्मक हैं)। वेद के प्रतिपाद्य व्यसन को पुराणरूप में श्रीव्यास ने गाया है। आगम भाग ही वेद है, तथा आगम जिसे शब्दराशि का नाम है वह सब त्रिपुराकी मूर्ति है। अतः उसके आलम्बन होने से ही सब स्वधर्म में प्रवृत्त हैं। वेदरूप त्रैवर्णिकों को अधिकार के द्वारा प्रवृत्त करता है। परमेशान ने सब का उद्धार करने की इच्छा से दया कर आगमनाम से अति उत्तम अविशेष ज्ञानराशि वेद का विभावन किया। आगम परमेश का विमर्श है यह निश्चित सिद्धान्त है। क्रम से ब्रह्मादिप्रमुखों के मुखसे इसे उद्भावित किया गयाहै। आगमरूपी सागर अपार है, सब लोकों में सुविधानुसार सुलभरूप लोक इसे आचरण में लेते हैं। समय पाकर मन्द बुद्धिवाले लोगों को कृपण हुआ (सत्यासत्य विवेकशून्य और अकर्मण्य) देख ऋषियों ने आगम समुद्र का मन्थन कर अपनी प्रकृष्ट बुद्धि से सारसंग्रह कर उत्तमोत्तम आत्मतन्त्र-रूपी अमृत को देश-भेद और काल-भेद से पृथक् रूप में विभावित किया। उसमें वेदविहित कर्म से संस्कृत होनेवाले द्विजों का श्रौतकर्म के द्वारा ही तान्त्रिक कर्म में अधिकार प्राप्त होता है। शूद्र आदि को कैवल्य एकान्तनिष्ठा से

शूद्रादीनान्तु कैवल्याद्भवेत्तन्त्राधिकारिता । वेद एव हि तन्त्रं स्यात्तन्त्रं वेदः प्रकीर्तितम्॥७१॥
नाऽनयोर्विद्यते भेदो लेशांशेनाऽपि कुत्रचित् । तथा हि वेदभागेषु तन्त्रभागः प्रदृश्यते ॥७२॥
यत्र मन्त्रयन्त्रपूजाविधानं सुस्फुटं स्थितम् । एवंविधो वेदभागो यतस्तन्मूर्ध्नि संस्थितः ॥७३॥
तन्त्रसङ्केतसंयुक्तस्ततस्तन्त्रं समुत्तमम् । तन्त्रेष्वपि वेदभागा मन्त्रब्राह्मणभेदिताः ॥७४॥
दृश्यन्ते कर्मविधिषु तस्मात्तन्त्रं समुत्तमम् । एवं पुराणादिषु च तन्त्रभागः प्रदृश्यते ॥७५॥
तथा तन्त्रेषु सर्गादिलक्षणोंऽशः प्रदृश्यते । स पुराणप्रभागः स्यादेवं जानीहि भार्गव ! ॥७६॥
तस्माच्छ्रीत्रिपुराख्यायाः सहजाऽऽमर्शसम्भवः । आगमाब्धिस्ततो वेदांस्तन्त्राणि च विभावय ७७
नियतिर्या हि तच्छक्तिस्तया सर्वं व्यवस्थितम् ।
अतोऽगस्त्यस्तन्त्रदीक्षारहितो वैदिकोऽपि सन् ॥७८॥
नाऽपश्यत्तत्पुरं तत्र मेरौ नियतियन्त्रितः । अथ श्रुत्वा महादेव्या माहात्म्यं सर्वतोऽधिकम्॥७९॥

तन्त्र की अधिकारिता होती है। 'तनु विस्तारे' से वेद ही तन्त्र है और तन्त्र ही वेद कहा गया है। कहीं भी इन दोनों का लेशांश से (अणुमात्र) भी भेद नहीं है। उसी प्रकार वेद के भागों में तन्त्रभाग दीखता है। जहाँ मन्त्र, यन्त्र एवं पूजाविधान की स्पष्टरूप से स्थिति है, इस प्रकार का वेद भाग उसके मूर्धाभिषिक्त हो स्थित है, तन्त्र (विस्तारके) सङ्केत से युक्त हुआ तन्त्र सबसे उत्तम है। तन्त्रों में भी वेदभाग मन्त्र एवं ब्राह्मणात्मकरूप से हैं, ये कर्मविधियों में प्रयुक्त हैं तभी तन्त्र उत्तम है। इसीप्रकार पुराण आदि में तन्त्रभाग देखा जाता है और तन्त्रों में पुराणोंका सर्गादिदशक्षणवाला अंश देखा जाता है, ऐसे उस पुराण प्रभागको ही तू तन्त्ररूप जान। हे भार्गव ! इसलिये श्रीत्रिपुरा नामवाला देवी के सहज परामर्श से सम्भूत आगमसमुद्र इनसे युक्त सब वेदों तथा तन्त्रों को देख। उस परा की जो नियतिशक्ति है, उसी से सब सृष्टि व्यवस्थित है। इसलिये तन्त्रदीक्षा न लिया हुआ वैदिक होकर भी अगस्त्य मुनि वहां मेरु पर अधिष्ठित श्रीपुर को नियति में बंधा हुआ ही नहीं देख पाया। अनन्तर महादेवी का सबसे उत्कृष्ट माहात्म्य सुनकर उसमें भक्तियुक्त हो क्रमपूर्वक तान्त्रिकी दीक्षा अपनी पत्नी से प्राप्त कर त्रिपुरा की उपासना

भक्तियुक्तः प्राप्य दीक्षां तान्त्रिकीं क्रमसंयुताम्। पत्न्या उपास्य त्रिपुरां तत्र श्रीनाथमण्डले।८०।
स्थानं प्राप्य प्रियायुक्तः परमानन्दनिर्भरः। एवं तेन समाक्रान्तं दृष्टश्च स्थानमुत्तमम् ॥८१॥

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे आगमस्वरूपनिर्णयो
नामैकोनाऽशीतितमोऽध्यायः ॥६५४६॥

कर श्रीनाथमण्डल में वहां अपनी प्रिया लोपामुद्रा के साथ परमानन्द से परिपूर्ण हुआ स्वधाम को प्राप्तकर कृतकृत्य हुआ। इसप्रकार उसने श्रीपुर को पाया और अत्युत्तम धाम का दर्शन किया ॥६२-८१॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में आगमस्वरूप का निर्णय नामक
उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त।

अशीतितमोऽध्यायः

उपासकमुख्यधर्मवर्णनम्

एवं श्रुत्वा कथां रामो दत्तात्रेयनिरूपिताम् । भूयः प्राह प्रसन्नात्मा प्रणम्य रचिताऽञ्जलिः ॥१॥
भगवन्नाथ यत्प्रोक्तं श्रुतं तदमृतोपमम् । अभवं मुक्तसन्देहः किञ्चित् पृच्छामि वै पुनः ॥२॥
एवं दीक्षां समासाद्य त्रिपुराऽऽराधनोद्यतः । कुर्वन्नित्यक्रियां केन विशेषेण हि कर्मणा ॥३॥
शीघ्रं महाफलं प्रेयाद्राजा चाऽकिञ्चनोऽपि च । तन्मे समाचक्ष्व गुरो कृपया मयि सेवके ॥४॥
इति दत्तगुरुः पृष्टः प्राह तद्भक्तिहर्षितः । शृणु राम महागुह्यं त्रिपुराप्रीतिकारकम् ॥५॥
शिवो यथाऽभिषेकेन प्रणामैर्दिनकृद्यथा । नैवेद्यैस्तु गणेशानोऽलङ्काराद्धरिरेव च ॥६॥

अस्सीवां अध्याय

इस प्रकार श्रीपरशुराम ने महात्मा दत्तात्रेय द्वारा कही हुई कथा को सुन फिर प्रसन्नहृदय हो अञ्जलिबांधे प्रणाम कर कहा, "हे भगवन् ! नाथ ! आपके द्वारा जो अमृतोपम वर्णन किया गया है, उसे मैंने सुना अब मैं सन्देह से मुक्त हूँ फिर भी कुछ पूछता हूँ ॥ १-२॥

इसप्रकार विधिपूर्वक दीक्षा प्राप्त कर त्रिपुरा भगवती की आराधना में उद्यत हुआ व्यक्ति नित्यक्रिया सम्पन्न करता हुआ किस विशेष कर्म से अतिशीघ्र महाफल को प्राप्त कर सकता है; चाहे राजा हो अथवा अकिञ्चन छोटा वित्तहीन व्यक्ति हो दोनों ही कैसे फल प्राप्त करें ? हे गुरुवर्य ! इसलिये आप मुझ सेवक पर कृपा करके बताइये ।" ॥३-४॥

इसप्रकार पूछेजाने पर श्रीदत्तगुरु ने भगवती की भक्तिसे अत्यन्त प्रसन्नमना हो कहा, "हे परशुराम ! यह विधान महागुह्य और भगवती त्रिपुरा के प्रीतिकारक है, जिस प्रकार अभिषेक से शिव, प्रणाम से सूर्य, मोदक के नैवेद्य द्वारा गणेश और अलङ्कार सज्जा से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं वैसे ही पराशक्ति महेशानी विधिपूर्वक पूजने से और

पूजनेन विशेषैस्तु विधिना प्रीयते तथा । पराशक्तिर्महेशानी तत्र सर्वोत्तमं शृणु ॥७॥
प्रासादमुन्नतं चित्रं निर्माय निजशक्तितः । तत्र श्रीचक्रराजं वा मूर्तिं वाऽपि सुलक्षणाम् ॥८॥
संस्थाप्य विधिना तत्र स्वयं वाऽन्येन वाऽन्वहम् । पूजयेत् पञ्चकालं वा चतुस्त्रिर्द्व्येककालकम्
उषः प्रातर्मध्यदिने प्रदोषे चाऽर्धयामके । नित्यं वा द्वित्र्येककालं पञ्चकालञ्च पर्वसु ॥१०॥
उत्सवोऽपि प्रकर्तव्यो महापर्वसु सर्वथा । रथेन वाहनैर्यानैरुत्सवप्रतिमां बहिः ॥११॥
परिक्राम्याऽऽगमोक्तेन नृत्यमङ्गलगायनैः । एवं यः कुरुते लोके स वसेच्छ्रीपुराऽन्तरे ॥१२॥
नीलवप्राऽन्तरालेषु सर्वभोगोपसम्भृतः । असमर्थोऽन्यविहिते स्थापयेच्चक्रनायकम् ॥१३॥
चक्रस्थापनतुल्यं नो विद्यते त्रिपुराप्रियम् । न तस्य पुनरावृत्तिः सायुज्यं विन्दते क्रमात् ॥१४॥
श्रीचक्रस्थापनादेव फलानन्त्यं समीरितम् । यत्र स्यात् स्थावरं यन्त्रं निवसंस्तत्समीपतः ॥१५॥
उपासको हेममये वप्रे निवसति ध्रुवम् । उपासकस्तु जानीयात्तत्क्षेत्रं सर्वतोऽधिकम् ॥१६॥

विशेष सामग्रियों से अत्यन्त सन्तुष्ट होती है । उसमें सब से उत्तम विधि को तू सुन ॥५-७॥

अपनी शक्ति से अत्यन्त उच्च विचित्र प्रासाद (भवन) निर्माण करा श्रीचक्रराज को अथवा सुलक्षणा मूर्ति को भी विधिपूर्वक स्थापित कर उस स्थान पर स्वयं कर्त्ता अथवा अन्य व्यक्ति के द्वारा प्रतिदिन पांच वेला या चार समय या तीन काल या दो सन्ध्याओं या एक कालमें उषः;प्रातः, मध्याह्न, प्रदोष और अर्धरात्रि में नित्य पूजन करे; अथवा दो कालका, तीन कालकी अथवा एक कालकी पूजन नित्य करे । पर्वदिनों में पांच वार पूजन विधिपूर्वक सम्पन्न कर महापर्वों में सर्वथा महोत्सव मनावे । वाहनों एवं यानों के साथ उत्सवप्रतिमाको रथके द्वारा आगमों में प्रतिपादित विधानसे बाहर नगर परिक्रमा करवाकर नृत्य-मङ्गल एवं गायनपूर्वक सब विधि से आनन्दपूर्वक सम्पन्न करें । जो व्यक्ति इसप्रकार श्रीदेवी के महोत्सव मनाता है वह श्रीपुर के अन्दर के लोक में निवास करता है । नीलवप्र के अन्तराल में सम्पूर्ण भोगों से परिपूर्ण वह व्यक्ति देवीसायुज्य का अधिकारी हो जाता है । यदि कोई अन्य भवन के निर्माण में असमर्थ है तो श्रीचक्रनायक की स्थापना करे; चक्रस्थापन के समान त्रिपुरा भगवती को अन्य कुछ भी प्रिय नहीं । उस भगवती के चक्रनायक की स्थापना करनेवाले को इस भवसागर में भटकना नहीं पड़ता, क्रमसे वह सायुज्य (परमात्मभाव) प्राप्त कर लेता है । श्रीचक्रस्थापन से ही आनन्त्यफल कहा गया है । जहां स्थावर यन्त्र हो उसके समीप अर्चन करता हुआ उपासक हेममय वप्र (भवन) में ध्रुव निवास करता है । उपासक उस क्षेत्र को ही

तत्राप्यशक्तो विभवानुरोधाच्छुभपर्वसु । पूजयेत् स्थावरं चक्रं मूर्तिं वा भक्तिपूर्वकम् ॥१७॥
चरयन्त्रादिपूजायाः स्थिरयन्त्रादिपूजनम् । फलं समावहेल्लक्षगुणं राम ! न संशयः ॥१८॥
यन्त्रे सावृतिमभ्यान्तु विधानेन प्रपूजयेत् । तत्तत्स्थाने भावयन् वै महाफलसमाप्तये ॥१९॥
यथा सूर्यस्य किरणाः सर्वतः समवस्थिताः । सूर्याऽऽत्मभूतास्तस्यांऽशाः सर्वलोकप्रसादकाः २०
शीताऽन्धकाररोगादिनाशकाः प्राणिनस्तथा । त्रिपुरायाः पराशक्तेः परिवाराख्यदेवताः ॥२१॥
लोकवाञ्छार्थदानाय नियुक्तास्तु तयैव ताः । तस्यांऽशभूताः सर्वा वै तस्मात् पूज्या यथाविधि
किरणानां पिण्डमयो यथा सूर्यो नभःस्थितः । तथैवाऽऽवृतिशक्तीनामैक्यात्मा त्रिपुरा मता २३
बिन्दुचक्रे समासीना देवदेवमहेश्वरी । अशक्तः पूजयेद्भक्त्या यथामति यथाक्रमम् ॥२४॥
परिवारपिण्डमयीं सामान्यैर्द्रव्यवैभवैः । यथाकथञ्चिद्वा पूज्या स्थावरे परमेश्वरी ॥२५॥

सबसे अधिक जाने। उसमें भी अशक्त हो तो अपने वित्त की जितनी शक्ति हो उसके अनुसार शुभपर्वों में अचल चक्र की अथवा अचल मूर्ति की स्थापना भक्तिपूर्वक करे। स्थिर यन्त्र आदि की पूजन कर श्रीचक्रयन्त्र अथवा मूर्ति की पूजा के फल से लाख गुना अधिकफल प्रदान करता है इस में संशय नहीं समझना ॥८-१८॥

यन्त्र में आवरणदेवतासहित भगवती की विधि-विधान से महाफल की प्राप्ति के लिये तत्तत्स्थान में भावना करता हुआ सविशेष पूजन करे। जैसे सूर्य की किरणें सब ओर विद्यमान हैं, सूर्य के स्वरूपभूत उसके अंश (किरणें) सर्वलोकों को प्रसन्न करते हैं, प्रकाशित करते हैं और प्राणियों के शीत, अन्धकार और रोग आदि के नाशक है (आदिशब्द से असाध्य कार्य भी किरणों द्वारा साध्य बनते हैं) वैसे ही त्रिपुरा पराशक्ति के परिवार के देवता लोकवांछित अर्थों के देने के लिये उसीके द्वारा वे नियुक्त हैं, उसके अंशभूत वे सारे आवरणदेवता इसलिये विधिसहित पूजा के योग्य हैं ॥१९-२२॥

जैसे किरणों का पिण्डमय पुञ्ज सूर्य अन्तरिक्ष में स्थित है वैसे ही आवरण शक्तियों की ऐक्यरूपा त्रिपुरा बतायी गयी है, जो देवगण के देवों की महेश्वरी बिन्दुचक्र में विराजमान है। इतना करने में भी अशक्त हो तो भक्तिपूर्वक बुद्ध्यनुसार क्रमपूर्वक परिवार की पुञ्जरूपा उस भगवती की सामान्य द्रव्यवैभव से पूजा करे, अथवा परमेश्वरी जिस किसी प्रकार अचलचक्र या मूर्ति में पूजी जाय उसकी पूजा करे। जो स्थावर चक्र एवं मूर्ति आदि को

यस्तु प्राप्य स्थावरन्तु चक्राद्यं न प्रपूजयेत् । तमात्मघ्नं विजानीयात् सर्वलोकविनिन्दितम् २६
अशक्तो गन्धकुसुमफलाऽक्षतजलैस्तथा । दक्षिणाताम्बूलदीपप्रणामपरिवर्तनैः ? ॥२७॥
सर्वैरेकद्व्यादिभिर्वा शक्त्या तां तत्र पूजयेत् । सहस्राद्यैर्नामभिस्तु यश्चक्रादौ प्रपूजयेत्॥२८॥
सकृत् सम्पूज्य च नरो नारी वा सर्वपातकैः । मुच्यते नाऽस्ति सन्देह इत्याह भगवान् शिवः
अथ लक्षप्रपूजादिविधानं शृणु वच्मि ते । विशेषपर्वसु तथा शुक्रवारेऽपि वाऽऽरभेत् ॥३०॥
सङ्कल्प्य पूज्य गणपं स्वस्ति विप्रैर्हि वाचयेत् ।
ततः सम्पूज्य विधिना चाऽऽवृत्यन्तं महेश्वरीम् ॥३१॥
पूजयेत् सावृतिं देवीमुपचारैस्तु पञ्चभिः । तत्र पुष्पोपचारस्य स्थाने पूजां समाचरेत् ॥३२॥
सहस्राद्यैर्नामभिस्तु ततो धूपादिपूजनम् । समापयेद्यथावत्त प्रत्यहञ्चैवमर्चयेत् ॥३३॥
समसंख्याविधानेन प्रत्यहं पूजयेत् क्रमात् । एकजातीयकैः पुष्पैः यत्रैव पूजयेत् पराम् ॥३४॥

पाकर उसे न ही पूजे तो उसे सम्पूर्ण लोगों से विशेष निन्दित आत्मा को हनन करनेवाला ही व्यक्ति जाना चाहिये। इतना भी न करने की सामर्थ्य हो तो गन्ध, पुष्प, फल, अक्षत और जल से तथा दक्षिणा, ताम्बूल, दीप, प्रणाम और प्रदक्षिणा द्वारा सब को एकसाथ अथवा दो उपचारों या एक ही उपचार से यथाविभव अपनी शक्ति के सामर्थ्य से उसी पराम्बा का पूजन करे। देवी के सहस्रनामों के द्वारा जो चक्रादि में पूजन करता है वह स्त्री हो अथवा पुरुष तत्काल पूजन कर सम्पूर्ण पातकों से छुटकारा पा जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है; ऐसा भगवान् शङ्कर ने बताया है। ॥२३-२९॥

अब तुझे लक्षप्रपूजादि का विधान कहता हूँ, सुन। विशेष पर्वों में तथा शुक्रवार के दिन भी इसे प्रारम्भ करे। सङ्कल्प कर के गणपति का पूजन कर विप्रों द्वारा स्वस्तिवाचन करवावे। तब विधिपूर्वक महेश्वरी का उसके आवरण देवतापर्यन्त पूजन करे। वहाँ देवी की सावरण पूजा पांच उपचारों से करे उसमें पुष्पोपचार के स्थानमें सहस्रनामों द्वारा पूजन करे; तदनन्तर धूप, दीप एवं नैवेद्य आदिके द्वारा अर्चन करे। यथाव्यवस्थित समापन करे प्रतिदिन इसी प्रकार पूजन करताजाय सम संख्या के विधान से प्रतिदिन क्रम क्रम से पूजे। एकजातीयक (चमेली) पुष्पों द्वारा श्रीपराम्बा को पूजा करे। अर्चक स्वयं अथवा स्वपुत्रों या पत्नी आदि से अथवा ब्राह्मण से भी पूजन

स्वयं वा पुत्रपत्न्याद्यैर्ब्राह्मणद्वारतोऽपि वा । अन्ते तु सर्वतोभद्रे नवयोनिसमायुते ॥३५॥
कलशं सुप्रतिष्ठाप्य सौवर्णादिसमुद्भवम् । अलङ्कृतं सूत्रवस्त्रैर्मध्ये तण्डुलपुञ्जके ॥३६॥
अलङ्कृतं धूपितञ्च निधाय मनुमुच्चरन् । तमष्टगन्धतोयेन पूरयेत् पञ्चरत्नकम् ॥३७॥
निक्षिप्य तस्मिन् तद्वत् क्रमादाच्छाद्य पञ्चपल्लवैः (?) ।
सतण्डुलं फलं पूर्णं पात्रञ्चाऽपि मुखे न्यसेत् ॥३८॥
तत्र प्रतिकृतिं देव्याः सर्वाऽवयवशोभिताम् । विन्यस्य तस्यामावाह्य पूजनन्तु समाचरेत् ॥३९॥
तत्राऽऽदौ सर्वतोभद्रदेवताः क्रमतो यजेत् । दशदिक्षु च दिक्पालान् शृङ्खलासु चतुर्षु च ॥४०॥
धर्मादीन्मध्यभवने श्वेतेऽधर्मादिकान् यजेत् । रक्ताऽर्धभवने पूर्वात् प्रादक्षिण्येन पूजयेत् ॥४१॥
असिताङ्गादिमिथुनं मेखलासु गुणत्रयम् । एवं सम्पूज्य कलशे पीठपूजनपूर्वकम् ॥४२॥
विधिनाऽऽवाह्य त्रिपुरां पूजयेदुपचारकैः । तत्तत्पुष्पादिकं स्वर्णभवं वा रजतोद्भवम् ॥४३॥

यह करवा सकता है। भगवती मूर्त्ति को नव योन्यात्मक सर्वतोभद्र भण्डल में सौवर्ण आदि समुदभव कलश को सुप्रतिष्ठापित कर सूती वस्त्रों द्वारा सुष्ठु प्रकारेण अलंकृत कर उसके मध्य में नीचे तण्डुलों की कूढी पर रखने के अनन्तर भलीप्रकार सजाकर धूप देकर मन्त्र का उच्चारण करता हुआ अष्टगन्ध जल से भर दे उसमें पञ्चरत्न डाल दे; वैसे ही पञ्च पल्लवों से ऊपर से ढक कर तण्डुलों से भरा पूर्णपात्र उसके मुख पर रख फल धर दे ॥३०-३९॥

वहां देवी की सम्पूर्ण अवयवों से शोभित मूर्तिकी स्थापनाकर उसमें देवी का आवाहनकर पूजन करे। उस क्रम में सबसे आदि में कमशः सर्वतोभद्र के देवताओं का यजन करे; दशों दिशाओं में दिक्पालों को, चारों शृङ्खलाओं में मध्यभवन में श्वेत स्थान में धर्म आदि को, तथा रक्त किये अर्धभवनमें अधर्म आदि को पूर्वसे प्रदक्षिणक्रमसे अर्चन करे। असिताङ्गादिमिथुन जो गुणत्रय है उसे मेखलाओं में पूजन करे। इस प्रकार पीठपूजनपूर्वक कलश में पूजाकर त्रिपुराभगवती को प्रधान पीठ पर आवाहन कर उपचारों द्वारा पूजन करे। उन उन पुष्पों को स्वर्णमय रजतमय माष (१ माशा) के तोल की या कर्ष (१६ माशा) के तोल की अधिवासित मूर्त्ति बना; आधा अथवा चौथाई भाग का

माषाद्वा कर्षतो वाऽपि कुर्यादन्यूनमुत्तमम् । तदर्धं पादमपि वा कृत्वा तन्नवसङ्ख्यकम् ॥४४॥
पूजयेदुपचारेषु नामभिर्वशिनीमुखैः । मध्ये च त्रिपुरां रात्रौ पूजयेच्चक्रनायकम् ॥४५॥
कलशस्य पश्चिमतः सर्वतोभद्रमण्डले । स्वयं वा पूजयेदाचार्येण वा क्रमवेदिना ॥४६॥
पूजयित्वा यथाशास्त्रं कुमारीं वटुकं तथा ।
गुरुं सुवासिनीश्चापि ब्राह्मणादीनपि क्रमात् ॥४७॥
उद्वासरहितां पूजां समाप्याऽखिलसंवृतः । कथाभिर्गायनैर्नृत्यैः कुर्याज्जागरणं निशि ॥४८॥
परेद्युः कृतकृत्योऽथ पूजयेच्चक्रनायकम् । पूजाङ्गहोमतः पश्चादग्निं संसाध्य शास्त्रतः ॥४९॥
यथावत्तत्र जुहुयात्तत्तत्पुष्पैः सहस्रकम् । पूजां समाप्य चोद्वास्य कलशं वस्त्रसंयुतम् ॥५०॥
दक्षिणाप्रतिमायुक्तं सुवासिन्यै निवेदयेत् । ब्राह्मणानां षोडशकं सुवासिन्यष्टकं तथा ॥५१॥
वटुकांश्च कुमारींश्च वित्तशाठ्याद्विवर्जितः । भोजयेद्भक्ष्यभोज्याद्यैर्दक्षिणाद्यैश्च तोषयेत् ॥५२॥
एवं पूजनमात्रेण सर्वपापैर्विमुच्यते । प्रसन्ना त्रिपुरेशानी वाञ्छितार्थप्रदा भवेत् ॥५३॥

नौ संख्या में मूर्त्ति बना उपचार से वशिनीप्रमुख देवियों के नाम लेते हुए पूजन करे। मध्य में त्रिपुरा को रात्रिवेला में सर्वतोभद्रमण्डल में और कलश के पश्चिम में चक्रनायक का पूजन करे। इसे स्वयं पूजे अथवा इस क्रम को सम्प्रदायानुसार जाननेवाले आचार्य के द्वारा पूजन करावे ॥४०-४६॥

शास्त्रमें प्रतिपादित विधानानुसार कुमारी, वटुक, गुरु, सुवासिनी स्त्री और ब्राह्मण आदि को क्रमपूर्वक पूजकर उद्वास को छोड़ और और पूजा पूरी कर उसे अखिल सम्भारों से सज्जितकर देवी की कथाओं, गायनों और नृत्यों से रात्रिमें जागरण करे। दूसरे दिन कृतकृत्य (प्रातः कालके नित्य कृत्य सम्पन्न कर) हो श्रीचक्रराजका पूजन करे। पूजाङ्ग होम द्वारा विधिपूर्वक अग्नि तैयार कर उसमें उन उन पुष्पों की एक हजार संख्या से आहुतियां देकर हवन करे। पूजा को समाप्तकर वस्त्रसहित कलशको दक्षिणा एवं प्रतिमायुक्त यज्ञोपवीत विधि से उद्वासकर सुवासिनी को भेंटकर दे। सोलह ब्राह्मणों, तथा आठ सुवासिनी स्त्रियों, वटुकों और कुमारियों को वित्तशाठ्य न करता हुआ नाना भक्ष्यभोजन आदि से खूब भली प्रकार खिलावे और दक्षिणा आदि से उन्हें सन्तुष्ट करे। इसप्रकार पूजनमात्र से आराधना करनेवाला सब पापों से छुटकारा पाजाता है एवं त्रिपुरा महेशानी प्रसन्न हो उसको वांछित अभीष्टफल देती है। ऐसा

सर्वसौभाग्यसंयुक्तो वंशपुत्रैर्युतस्तथा । पितॄन् प्रोद्धरते सर्वानन्ते मोक्षं समश्नुते ॥५४॥
राज्यप्राप्तिस्तु कमलैः करवीरैर्महच्छ्रियम् । जपापुष्पैः सन्ततिं वै जातीपुष्पैर्गृहादिकम् ॥५५॥
योनिपुष्पैर्वंशवृद्धिं वकुलैः सौमनस्यताम् । किंशुकैरोगनिहतिं कुटजैः शत्रुनाशनम् ॥५६॥
एवमन्यैः सुगन्धाढ्यैः पुष्पैः पत्रैश्च भार्गव । पूजयित्वा विधानेन महाफलमवाप्नुयात् ॥५७॥
फलैर्धान्यैरर्चयेच्च प्रोक्तमार्गानुसारतः । लक्षवर्तिप्रदीपैर्वा पूजयेत्त्रिपुराऽम्बिकाम् ॥५८॥
समर्थस्तत्र वर्त्तिभ्यां दीपानेव प्रकल्पयेत् । दशकेन शतेनाऽपि सहस्रेणाऽपि वा तथा ॥५९॥
पञ्चाशद्दशसाहस्रैः सहस्रशतमेव वा । एकैकश्च घृताऽऽपूर्णमर्पयेदेकनामभिः ॥६०॥
सहस्रनामभिर्देव्याःशतनामभिरेववा । दशाऽऽवर्तनकैर्वापि चैकावर्तनकेन वा ॥६१॥
तथा पञ्चशताऽऽवृत्त्या दीपं देव्यै समर्पयेत् । अन्ते स्वर्णेन रौप्येण नवकं वर्त्तियुग्मकम् ॥६२॥

विधिपूर्वक पूजासम्पन्नकरनेवाला सम्पूर्ण सौभाग्ययुक्त होता है; अपने वंश के पुत्रपौत्रादि से भरेपूरे परिवारवाला बन सम्पूर्ण पित्रेश्वरों का उद्धार करता हैं और अन्त में मोक्ष का भागी बनता है ॥४७-५४॥

कमलों से श्रीभगवती का पूजन करने पर राज्यप्राप्ति, कनीरके पुष्पों से अतुललक्ष्मी, जावाके फूलों से सन्तान, चमेली के पुष्पों से गृहआदि, योनि-पुष्पों से वंशवृद्धि, वकुल पुष्पों (मौलसिरी के फूलों) से परमानन्द, किंशुक (पलाश) के पुष्पों से रोग का शमन तथा कुटज पुष्पों द्वारा श्रीदेवी की पूजा से शत्रु का नाश होता है। हे भृगुवंशोत्पन्न राम! इस तरह अन्य सुगन्धित पुष्पों ओर पत्रों से विधिविधानपूर्वक श्रीदेवी की पूजन करने से महाफल प्राप्त होता है। उपर्युक्त प्रतिपादित मार्ग के अनुसार फलों और नाना धान्यों से भगवती का अर्चन करे अथवा एक लाख दीपककी बत्तियों से भगवती त्रिपुराम्बा का नीराजन आरती करे। समर्थ हो तो दो दो बत्तियों से दीपकों को सजावे। दश, सौ, हजार, पाँच हजार एवं दस हजार एवं एक लोख दीपक रक्खे। एक एक दीपक को भगवती के एक एक नाम को लेकर घृत से पूरित कर निवेदन करे ॥५५-६०॥

देवी के सहस्रनामों से; सौ नामों से, दश आवृत्तियों से या एकावृत्तिसे तथा पाँच सौ आवृत्तियों से श्रीदेवी को दीपक समर्पण करे। फिर स्वर्णमय अथवा रौप्य दीपों से बत्तियों के जोड़े बनाकर ताम्रमय दीपक घृतवर्त्तिकाओं से

कृत्वा ताम्रमये दीपे घृतवर्तिसमुज्ज्वले । निवेदयेत्तु कलशे पायसेन हुनेत्तथा ॥६३॥
श्रीसूक्तेनाऽभिषेकं वै कुर्याच्छ्रीचक्रनायके । आवृत्तीनां लक्षकेन सहस्रेण शतेन वा ॥६४॥
स्वयं वा ब्राह्मणैर्वापि क्षीरैरिक्षुरसैर्घृतैः । मधुभिर्वा फलरसैर्दधिभिर्वा सुगन्धिभिः ॥६५॥
तोयैस्तीर्थोद्भवैर्वापि राम पूर्वोक्तवर्त्मना । अन्ते दशांऽशतो वन्हौ पायसेन हुनेत् क्रमात् ॥६६॥
प्रत्यृचं श्रीसूक्तकस्य पूर्ववत्तु समापयेत् । रुद्राभिषेकतो वाऽपि महाफलमुदीरितम् ॥६७॥
एवं भार्गव ! सम्प्रोक्तं धनिनां शुभसाधनम् । अधनैस्तु शरीरेण कर्तव्यं शुभसाधनम् ॥६८॥
समर्थस्तीर्थयात्रान्तु कृत्वा श्रेयः समावहेत् । अथ वा देवतास्थाने परिचर्यां समाचरे त् ॥६९॥
उपास्तितत्परान् वाऽपि सेवेत विगतस्पृहः । अतिमूढस्य चैतावदेव कृत्यमुदीरितम् ॥७०॥
मेधावी प्रजपात्पाठात् कथादीनां प्रवाचनात् । देवताशास्त्रपठनात् पाठनाच्छ्रेय आप्नुयात् ७१
योग्येषु देवतोपास्तिशास्त्रं यः सम्यगीरयेत् । स देहान्ते वैद्रुमे तु प्राकारे निवसेच्चिरम् ॥७२॥

प्रज्ज्वलित कर, कलश के निकट निवेदन करे और पायस से हवन करे। श्रीचक्रराज में श्रीसूक्त से अभिषेक करे। इस में लाख, हजार अथवा सौ आवृत्तियां करें स्वयं अथवा ब्राह्मणों द्वारा क्षीरयुक्त पदार्थों, इक्षुरस, घृत, मधु, फलों के रसों, दही अथवा सुगन्धियुक्त तीर्थों के जल से भी पूर्वोक्तविधि से हवन करवावे। अनुष्ठान के अन्त में दशांशसे अग्नि में पायस के साथ क्रमसे हवन करे; इसमें प्रत्येक ऋचा के साथ श्रीसूक्तके मन्त्रों से आहुति देकर पूर्ववत् समापन कर दे। श्रीचक्रपूजन में रुद्राभिषेक से भी महाफल कहा गया है। ॥६१-६७॥

इस प्रकार हे भार्गव ! मैंने धनी व्यक्तियों के करनेयोग्य देवी के अनुष्ठान का शुभसाधन तुझे बताया। अब धनहीन व्यक्तियों को तो शरीरसे ही शुभसाधन करना चाहिये। वह समस्त तीर्थों की यात्राकर भगवती का श्रेयोभाजन बने अथवा श्रीमाता के स्थान में सेवा करे। भगवती के जो उपासक हैं, उनकी सेवा फलकामना से रहित हो करे; जो अतिमूढ है उसका यही कृत्य कहा गया है। जो मेधासम्पन्न है उसे भगवती के इन मंत्र, जाप, पाठ, कथादि के प्रवचनों (उपन्यासों) व देवताविषयक शास्त्रों के पठन से तथा पाठन से श्रेयस्कर फल मिलजाता है। सुयोग्य अधिकारी विद्वान् व्यक्तियों में जेा देवता की उपासनाविषयकशास्त्र को भलीप्रकार सुनाता है वह देह के पात होने के अनन्तर विद्रुम के भवन में दीर्घ कालतक रहता है। जो भगवती के मन्दिरों में

चित्राणि यो लिखेद्देव्याः प्रासादेषु सुभक्तितः। निवसेद्वासन्तवप्रे चिरमानन्दिताऽन्तरः॥७३॥
सम्मार्ज्य शीततोयैश्च सेचयेत् यश्च मन्दिरम्। अभिषिञ्चेत्तथा शीततोयैरपि सुवासितैः॥७४॥
निवसेच्चान्द्रवप्रान्तः स सन्तापविवर्जितः। यस्तु रात्रौ दीपिकाभिः प्रकाशयति मन्दिरम्॥७५॥
निवसेत् सूर्यवप्रान्तः प्राप्य भोगान् यथेप्सितान्। एवमत्र यथा यो यः सेवां कुर्यात्तु मन्दिरे॥
स देहान्ते श्रीपुरे तु स्थानं प्राप्नोति तादृशम्।
उपासकेभ्यो दानानि कृत्वाऽपि स्थानमाप्नुयात्॥७७॥
यः पुस्तकं देवताया दद्याद्योग्याय भक्तितः। स सिद्धवप्रवसतिं प्राप्नुयात् सुसुखावहाम्॥७८॥
यस्तु पूजोपकरणं प्रदद्यात् साधकोत्तमे। स वसेद्दिक्पतीनां हि वप्रे सौख्यमवाप्नुयात्॥७९॥
एवं यद्यत् प्रदद्याद्वै भक्त्योपासनसत्तमे। तत्तत्तुल्यनिवसतिं प्राप्नुयान्नाऽत्र संशयः॥८०॥
अथ ते संप्रवक्ष्यामि दानानामुत्तमं परम्। श्रीचक्रराजदानन्तु महाफलविधायकम्॥८१॥

चित्रों का आलेखन भक्तिपूर्वक करता है, वह वासन्तवप्र में दीर्घ कालतक आनन्दपूर्ण आत्मा हो निवास करता है और जो शीतल जल से मन्दिर को धोता है और सुगन्धित शीतल जल से भगवती का अभिषेक करता है वह चान्द्रवप्र में सम्पूर्णतया सन्तापरहित हो निवास करता है। जो रात्रि में दीपकों द्वारा मन्दिर को प्रकाशमय करता है वह यथाभिलषित भोगों को पाकर सूर्यवप्र (लोक) में निवास करता है। इस प्रकार यहां भगवती के मन्दिर में जो जो व्यक्ति जैसी जैसी सेवा करता है वह श्रीदेवी को प्राप्त कर श्रीपुर में उसी प्रकार का स्थान पाता है। श्रीदेवी भगवती के उपासकों को दान देकर भी देवी के स्वधाम को प्राप्त करता है॥६८-७७॥

जो इस देवता की उपासनाका पुस्तक योग्य व्यक्ति को भक्तिपूर्वक देता है वह सुखदायक सिद्धवप्र के निवास को प्राप्त करता है। जो साधकोत्तम को पूजा के उपकरण (सामग्री) प्रदान करता है, वह दिक्पतियों के वप्र में सुख भोगता है। इसलिये जो जो वस्तुएँ भक्तिपूर्वक उपासना करनेवाले श्रेष्ठ व्यक्ति को देता है वह उस उसके तुय निवास स्थानों को प्राप्त करता है इसमें कोई संशय मत समझना॥७८-८०॥

अब तुझे सर्वोत्कृष्ट दानों में से उत्तम दान बताऊँगा। श्रीचक्रराज का दान महाफलदायक

सुपर्वणि समभ्यर्च्य चक्रराजं यथाविधि । पूजान्ते त्रिपुरापूजापरं विप्रं सुलक्षणम् ॥८२॥
सपत्नीकं समभ्यर्च्य विशेषद्रव्यसाधनैः । वस्त्रैराभरणैः शक्त्या गन्धपुष्पादिभिः क्रमात् ॥८३॥
सपीठं सोपकरणं साधनद्रव्यसंयुतम् । सामान्याऽर्घोदकं हस्ते विप्रस्य समवासृजेत् ॥८४॥
ततो विप्रस्तु तां पूजामुद्वासप्रमुखाश्चरेत् । भोजयेदावृतिमितान् ब्राह्मणान् सुविधानतः ॥८५॥
सुवासिनीर्भोजयेत्तु नित्यापोडशनामभिः । यथाशक्त्या वाऽपि विप्रान् भोजयेत्तु प्रयत्नतः ।८६।
अथ वा भोजयेन्नित्यानामभिस्तु सुवासिनीः। षोडश ब्राह्मणांश्चापि द्वादशाऽऽराध्य भोजयेत्
एवं दद्याद्यस्तु दानं चक्रराजस्य भक्तितः । तस्य प्रीता महादेवी स्वसायुज्यं प्रयच्छति ॥८८॥
सर्वतीर्थेषु स स्नातः तेन सर्वं व्रतं कृतम् । सर्वं दानं तेन दत्तं तेन यज्ञास्तथा कृताः ॥८९॥
तपस्तेन सुतप्तं वै पठिता निखिलागमाः । त्रिपुराऽपि च तत्कर्मसदृशं नाऽस्ति वै फलम् ॥९०॥
इति मत्वा स्वसायुज्यं तस्मै शीघ्रं प्रयच्छति । यतः सर्वजगद्रूपप्रतिमं राम चक्रकम् ॥९१॥

है । सुन्दर पर्वों पर महोत्सवों के दिनों में चक्रराज को विधिपूर्वक पूजन कर पूजा के बाद त्रिपुरा भगवती की पूजा में परायण सुलक्षण सपत्नीक विप्र को विशेष द्रव्य सामग्रियों से अच्छी प्रकार सत्कार कर यथाशक्ति वस्त्रों, आभरणों, गन्धपुष्प उपहार आदि से क्रमशः पीठ के सहित साधन द्रव्ययुक्त उपकरणपूर्वक सामान्यार्घ का जल विप्र के हाथ में दे दे । तब विप्र उस पूजा को विसर्जनपूर्वक सम्पूर्ण करे । जितनी आवृत्ति की गयी हैं उतने ब्राह्मणवृन्द को विधिपूर्वक भोजन करावे एवं नित्या के षोडशनामों से सुवासनी स्त्रियों को भोजन करावे । अथवा अपनी शक्तिभर विप्रगण को खूब भक्तिपूर्वक जिमावे ॥८१-८६॥

अथवा नित्या नाम से सुवासिनी स्त्रियों को आमन्त्रितकर भोजन करावे । सोलह ब्राह्मणों या बारह ब्राह्मणों को खूब आराधनपूर्वक भोजन करावे । जो इसप्रकार चक्रराज का भक्तिपूर्वक दान करता है उसके ऊपर महादेवी प्रसन्न हो अपने सायुज्य का लाभ कराती है । ऐसा व्यक्ति सब तीर्थों में स्नान कर चुका रहता है, उसने सब व्रतकर लिया । उसने सब ही दान में देदिया तथा यज्ञ भी सम्पन्न कर लिये, पुण्यलाभ किये उसव्यक्ति ने तप भलीप्रकार तप कर लिया और सम्पूर्ण आगम भी पढ लिये । भगवती त्रिपुरा भी उस दान के करनेवाले के सदृश कर्म का सिवय सायुज्य के कोई फल है ही नहीं ऐसा मानकर उसे अपना सायुज्य शीघ्र प्रदान करती है क्योंकि हे राम ! सम्पूर्ण जगत् के रूपकी प्रतिमा ही श्रीचक्र है जो भगवती का प्रतिनिधि है ॥ ८७-९१ ॥

अतस्तेन जगद्दत्तं न दत्तं किं कथं भवेत्। यदि कामनया कुर्याद्यं यं काममभीप्सति ॥९२॥
तं तं प्राप्नोति सहसा मोक्षश्चाऽन्ते समाप्नुयात्। एवन्तु स्थावरं यन्त्रमग्रे हारसमन्वितम् ९३
महादानयुतश्चाऽपि दद्याद्विप्राय यः पुमान्। तस्य पुण्यमनन्तोऽपि न शक्तः कथने क्वचित्॥९४।
मूर्तिं वापि नार्मदं वा शिवनाममथाऽपि वा। शालिग्रामं कुण्डलिनीमेव दद्यात्तु भक्तितः॥९५॥
श्रीपुरे तु चिरं स्थित्वा मुच्येद्देहाऽवसानके। मन्दिरं चक्रराजादेर्जीर्णं कुर्यान्नवन्तु यः ॥९६॥
तत्पुण्यं स्याच्छतगुणं नवमन्दिरनिर्मितेः। पूजां वाऽपि चिरोच्छिन्नां प्रवर्तयति यः पुनः ॥९७॥
धनभूमिप्रदानेन तस्याऽपि शतधा फलम्। सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु वक्ष्यामि भार्गव! ॥९८॥
यस्तु भक्तेषु योग्येषु सम्प्रदायं समादिशेत्। धनमानाद्यपेक्षः सन् क्रमदीक्षादिरीतितः ॥९९॥
तस्याऽनन्तफलं राम! कस्तद्वर्णयितुं क्षमः। यथेच्छं निवसेन्नाथमण्डलेऽन्ते विमुच्यते ॥१००॥

इसलिये चक्रराज के दान करनेवाले ने सारा जगत् का दानकर दिया। यह कैसे नहीं होगा? अवश्य ही यदि इस का दान कामना से करता है तो जिस जिस काम की इच्छा करता है उसे उसे अकस्मात् ही वह व्यक्ति प्राप्त कर लेता है तथा अपने शरीर के पात होने पर दिव्य मोक्ष को पाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति स्थावर (अचल) यन्त्र को अग्रभाग में हार समेत महादान सहित विप्र को देता है उसके पुण्य को अनन्त भी स्वयं नहीं कह सकता ॥ ९२-९४ ॥

जो मानव भक्तिपूर्वक मूर्त्ति, नर्मदेश्वर, शिवनाम-शालग्राम अथवा कुण्डलिनी को देता है तो देहमुक्ति होने पर श्रीपुर में दीर्घकाल तक रहकर इष्टसिद्धि प्राप्त करता है। चक्रराज आदि का पुराना मन्दिर को जो जीर्णाद्धार कर नवीन बनाता है उसका पुण्य नवीन मन्दिर के निर्माणसे सौगुना होजाता है। अथवा दीर्घकालतक छोड़ी गई श्रीदेवी की पूजा को जो फिर प्रवर्तित करता है उसका फल भी धन और भूमि के दान देने से भी शत प्रकार से अधिक फलदायक होता है। हे भार्गव! फिर सब से रहस्यपूर्ण बात तुम्हें बताऊँगा, सो सुन ॥९५-९८॥

हे राम! जो योग्य भक्तवृन्द में धनमान आदि की अपेक्षा रखता हुआ क्रमदीक्षा की रीति से सम्प्रदाय करत है उसका अनन्त गुणा फल कौन वर्णन करने में समर्थ है? ऐसा व्यक्ति यथेच्छ श्रीनाथमण्डल में निवास

यस्तु योग्यं सम्प्रदायं प्रार्थयन्तमुपासने। कामान्मोहात् प्रमादाद्वा वैराग्याद्वा निषेधति॥१०१
यश्च द्रव्यादिलोभेनाऽनर्हे शास्त्रं प्रयोजयेत्। तयोर्न विद्यते लोकः प्राप्स्यतो ह्यधमाङ्गतिम् १०२
तस्माद्यः सम्प्रदायं भक्तानां वैन निरूपयेत्। विद्यालोभयुतो मौर्ख्यात् सोऽपि यात्यधमां गतिम्
तस्मात् स्वशिष्यमन्यं वा युक्तं भक्तिसमन्वितम्। सम्प्रदायं विजिज्ञासुं न निषिध्येत् कथञ्चन ॥
एतन्महाफलं राम नैतत्तुल्यन्तु किञ्चन। अन्यद्दानमनात्माख्यमपि बन्धकरं भवेत् ॥१०५॥
एतदात्मप्रदानं वै यद्विद्याया निरूपणम्। यत्फलस्य न चान्तोऽस्ति तत्फलं स्यादनन्तकम्।१०६
यस्त्वशक्तो बुद्धिमान्द्याद्विद्यादाने विशेषतः। विद्यालिखितदानेन चाऽपि तत्फलमाप्नुयात्।१०७।
इदमत्यन्तसंगुप्तं प्रीत्या तव निरूपितम्। एवं महाफलप्राप्तिस्त्रिपुरोपासनाविधौ ॥१०८॥
एष भार्गव ते प्रोक्तस्त्रिपुराया रहस्यके। माहात्म्यवैभवो यस्य श्रवणाद्भक्तिमान् भवेत्॥१०९॥

कर अन्त में मुक्त हो जाता है। जो प्रार्थना करते हुए योग्य श्रीविद्या सम्प्रदाय के व्यक्ति को उपासना में कामना से; मोह से, प्रमाद से अथवा वैराग्य से निषेध करता है और द्रव्यादि के लोभ से अयोग्य व्यक्ति को शास्त्रानुसार प्रयुक्त करता है उन दोनों का लोक बिगड़ जाता है और ऐसे लोग अधम गति को पाने के अधिकारा बनते हैं। इसलिये जो व्यक्ति श्रीविद्या का लोभ रखता हुआ मूर्खता से देवी भक्तों को नहीं बतावेगा वह भी अधम गति को प्राप्त होता है ॥९९-१०३॥

इसलिये अपने शिष्य अथवा अन्य योग्य व्यक्ति को जो देवी का भक्त हो व सम्प्रदाय को जानने की अभिलाषा रखता हो उसे किसी भी रूपमें निषिद्ध न करे। हे राम ! यह महाफल देनेवाला है इसके समान अन्य कोई नहीं। अनात्माख्य नामवाला जो दान है वह भी बन्धनकारक है। यह जो आत्मप्रदान करनेवाला है वह श्रीविद्या का निरूपण करना है। जिसके फल का अन्त ही नहीं वह अनन्त फलवाला है। जो बुद्धि की मन्दता से विद्यादान करने में अशक्त है, वह इस विद्या का लिखित दान करके भी उस फल को प्राप्त कर लेता है। यह अत्यन्त शोभनरूप से गुप्त है मैंने तुम्हारे ऊपर प्रीति कर बताया है, इसप्रकार त्रिपुरा की उपासनाविधि में महाफल की प्राप्ति होती है हे भार्गव ! तुझे यह भगवती त्रिपुरा के रहस्य में माहात्म्य के वैभव को बताया, जिसके सुनने से मनुष्य श्रीदेवी के प्रति परमश्रद्धालु बन जाता है। हे देवर्षे ! अब तू ने सावधान मनसे इसे सुना कि नहीं ?

देवर्षे ! संश्रुतं कच्चित् सावधानेन चेतसा । एष माहात्म्यखण्डो वै त्रिपुराया रहस्यके ॥११०॥
यः शृणोति स सर्वेभ्यः पापेभ्यः प्रविमुच्यते । परमं साधनं ह्येतदात्मबन्धविमुक्तये ॥१११॥
यतो भक्तिर्हि मोक्षस्य जनयित्री निगद्यते। सा माहात्म्यश्रुतिमृते यतो न भवति क्वचित्॥११२।
तस्मात् पराख्यसौधस्य सोपानं प्रथमं ननु । माहात्म्यश्रवणं लोके मोक्षद्वारमिदं स्मृतम् ।११३।
महिमानमसंश्रुत्य कथं भक्तिर्भवेदिह । भक्त्या विना परं श्रेयः कथं स्याद्देवता परा ॥११४॥
मोक्षस्य साधनं सर्वं विना भक्त्या न किञ्चन। यथा तरुण्याः सौन्दर्यं विनसं सर्वथा तथा ॥११५॥
भुवं विना यथा बीजं नाङ्कुरं प्रतिरोहयेत् । तथा भक्तिं विना ज्ञानं फलं न जनयेत् क्वचित् ॥
अभक्तस्य न कर्मास्ति नोपास्तिर्नो विवेकिता ।
तस्माद्भक्तिविहीनस्य न काचित् स्याद् धृतिः क्वचित् ॥११७॥
माहात्म्यसंश्रुतिस्तस्या मूलं यस्माच्च नारद ! । तस्मादेतं संशृणुयात् खण्डं माहात्म्यसंज्ञितम् ॥११८॥

यह माहात्म्यखण्ड अत्यन्तचमत्कारपूर्ण है। जो व्यक्ति इसे सुनता है वह सम्पूर्ण पापों से छुटकारा पाजाता है। आतमबन्धन की विशिष्ट मुक्ति के लिये यह परम उत्कृष्ट साधन है ॥१०४-१११॥

क्योंकि भक्ति मोक्ष की जननी (उत्पन्नकरनेवाली) कही जाती है; वह माहात्म्य के श्रवण किये विना कहीं भी प्राप्त नहीं होती। इसलिये इसका श्रवण पराख्यभवन का प्रथम सोपान है। यह माहात्म्य का श्रवण लोक में मोक्षकारक कहा गया है। संसार में महिमा को सुने विना परमश्रेयस्करी परादेवता की भक्ति कैसे हो ? भक्ति के विना परा देवता का साक्षात्कार कैसे होगा ? मोक्ष का साधन सब भक्ति विना कैसे भी प्राप्त नहीं होता। जैसे तरुणी स्त्री का सौन्दर्य सर्वथा उसमें स्थित है वैसे ही भूमि के विना बीज के अङ्कुर का प्ररोहण नहीं करता और भक्ति के विना ज्ञान कहीं भी सुफल को उत्पन्न नहीं करता। भक्ति से हीन व्यक्ति को न तो सत्कर्म का अधिकारहै, न उपासना का, ही और न उसे विवेक ज्ञान ही होता है। इसलिये भक्तिहीनको कहीं भी धैर्य प्राप्त नहीं होता। अतः हे नारद ! कहीं भी भगवती के माहात्म्य का श्रवण ही उस इष्टदेव के प्रेम का मूलकारण है। इसलिये इस माहात्म्य नामक खण्ड को त्रिपुरा की भक्तिप्राप्ति के लिये अवश्य सुनो यह सुननेवाले और पढनेवाले लोगों के महापापों को प्रकृष्टरूप से नित्य नष्टकरनेवाला है। इसे प्रतिदिन पढ़ना चाहिये भले ही एक अध्याय हो या एक श्लोक। यह आयुष्यवर्धक और सौमङ्गल्य का बढानेवाला है। इसकी महिमा

श्रृण्वतां पठताञ्चाऽपि महापापप्रणाशनम् । पठितव्यं नित्यमेतदध्यायं श्लोकमेव वा ॥११९॥
प्रसादं त्रिपुराशक्तेर्वाञ्छता सर्वथा शुभम् । एतदायुष्यजननं सौमङ्गल्यविवर्धनम् ॥१२०॥
अधनो धनवान् भूयादपुत्रा पुत्रिणी भवेत् । यद्यत्समीहितं तत्तत्प्राप्यतेऽस्य हि संश्रुतेः ॥१२१॥
विद्याप्रदं विलिखितं पूजितं प्रेप्सितप्रदम् । विचारितं ज्ञानभक्तिवैराग्यादिप्रदं नृणाम् ॥१२२॥
सर्वाऽऽगमाब्धिमथनाद्यद्भक्त्यमृतमाप्य तु । अमृताः शिवमुख्याः स्युः सा माता त्रिपुरैव 'ह्रीम्' १२३

इति श्रीमदितिहासोत्तमे त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डे उपासकमुख्यधर्म-
वर्णनं नामाऽशीतितमोऽध्यायः ॥६६६९॥

त्रिपुराम्बार्पितमस्तु । ॐ तत् सत् ॥

समाप्तमिदं त्रिपुरारहस्ये माहात्म्यखण्डम् ।

शब्दोंसे वर्णन नहीं की जासकती । धनहीनव्यक्ति धनवान् हो जाता है, अपुत्रा स्त्री पुत्रवती बन जाती है और जो जो कामना की जाती है वह वह इसके श्रवण करने से प्राप्त हो जाती है । विशेषरूप से लिखित हो तो यह श्रीविद्याप्रद है; इसकी पूजा की जाती है तो प्रकृष्ट अभीष्ट फल को प्रदान करता है, इसे विशेष मननपूर्वक विचार किया जाता है तो मनुष्यों को ज्ञान भक्ति और वैराग्य आदि का प्रदान करनेवाला है सम्पूर्ण आगमरूपी समुद्र के मथन से जो भक्ति के अमृत को प्राप्त कर यह श्रेष्ठ तत्व ज्ञान हुआ है उसे प्राप्त कर ज्ञानी अमर हो जाते हैं और अन्तिम लक्ष्य वह परा माता इष्ट की प्राप्ति करा देती है जो ह्रीं रूप में त्रिपुरा है । (शिव शक्ति का ही सारा संसार है आरम्भ में "ओम्" से चालू कर जो ज्ञानप्राप्ति का द्वार है उसका इच्छा और क्रियारूपी शक्ति से संगम न होने से त्रिपुरा भगवती की प्राप्ति द्वारा साधक इष्ट सिद्धि पा लेता है । इच्छा और कृति ही ज्ञान का साधन है । अन्त में "ह्रीम्" द्वारा शिव और शक्ति के बीच ही संसार का सारा क्रिया-कलाप है यह प्रतिपादित किया है ।) ॥११२-१२३॥

इसप्रकार श्रीसम्पन्न इतिहासोत्तम त्रिपुरारहस्य के माहात्म्यखण्ड में उपासक के मुख्य धर्म और
इस ग्रन्थ की प्रकृष्ट फलस्तुति का निरूपण नामक अस्सीवां अध्याय समाप्त ॥

॥ त्रिपुराम्बार्पणमस्तु ॥

श्रीः

श्रीविद्यायै सादरमनुरोधः

जाग्रद्बोधसुधामयूखनिचयैराप्लाव्य सर्वादिशो, यस्याःकाऽपिकलाकलङ्करहिता षट्चक्रमाक्रामति ।
दैन्यध्वान्तविदारणैकचतुरा वाचंपरां तन्वती, सा नित्या भुवनेश्वरी विहरतां हंसीव मन्मानसे ॥

जिसकी विशिष्ट विच्छित्तिवाली कलङ्करहित निर्मल कला जाग्रत् प्रबोधरूपी सुधासिक्त किरणों से सब दिशाओं में प्रकाश की झड़ी बांधती हुई षट्चक्रों की समस्त कर्णिकाओं में समन्तात् व्याप्त रहती है। दैन्य अज्ञानान्धकार के विदारण में अद्वितीय दक्ष केवलमात्र परावाणी का अभिनिवेश करानेवाली परा नित्या भगवती भुवनेश्वरी मेरे मानस में हंसी के समान मुक्त विहार करे।

त्रिपुरा-रहस्यकम्

देवानां त्रितयं त्रयो हुतभुजां शक्तित्रयंत्रिस्वरा स्त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो त्रिब्रह्म वर्णात्रयः ।
यत्किञ्चिज्जगतित्रिधानियमितं वस्तुत्रिवर्गादिकं तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः ॥

[लघ्वाचार्यकृतलघुस्तवः]

तीनों ब्रह्मा, विष्णु और शिव त्रितय को अग्नि सूर्य एवं चन्द्र इन तीन ज्योतिर्मय हुतभुजों का समाहारमहाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वतीके सहित उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित तीन स्वरों तीनों लोक, (जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति) "त्रिपदवाली त्रिपुष्कर तथा त्रिब्रह्म अ, उ एवं म्" इन तीन वर्णोवाली इसके साथ-साथ जो भी त्रिधा रूप से नियत वस्तु त्रिवर्ग, त्रिधाम जहां तीन रूपों का समन्वित रूप हो वह सब ही त्रिपुरा इस नाम से हे भगवति ! आप में ही परमार्थतया अन्वित हो जाता है।

श्रीत्रिपुरा-प्रार्थनम्

सिन्दूरारुणविग्रहांत्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्तारानायकशेखरांस्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यामलिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलंबिभ्रतीं सौम्यांरत्नघटस्थरक्तचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम् ॥

सिन्दूर की रक्तकान्तिवाले सुमनोहर श्रीविग्रहधारिणी, तीन नेत्रवाली माणिक्य मौलि के रूप में अपने बंधे केश पाश में चन्द्रमा को धारी हुई। इषत् मन्द हास्यमुखी, उर्ध्वमुख पीनस्तन शोभिता दोनों हाथों में से निभृत भृङ्गसमूह से गुञ्जारित पूर्ण रत्नमय मद्यपात्र एक में, दूसरे में रक्तोत्पल (लाल कमल) धारण किये सौम्य रत्न घटस्थित रक्त चरणवाली पराम्बिका का मैं अभिनिवेश करता हूँ।

श्रीविद्याभावनम्

ध्यायेत्पद्मासनस्थांविकसितवदनां पद्मपत्रायताक्षीं हेमाभांपीतवस्त्रां करकलितलसद्धेमपद्मांवराङ्गीम् ।
सर्वालङ्कारयुक्तांसततमभयदांभक्तिगम्यांभवानीं श्रीविद्यांशान्तमूर्त्तिसकलसुरनुतांसर्वसम्पत्प्रदात्रीम् ॥

कमलासन पर विराजमान प्रफुल्ल देहयष्टिवाली, पद्मपत्रों के समान सुविशाल नेत्रवाली, सुवर्ण की आभा से भी अधिक दीप्त, पीतवस्त्रधारिणी, हाथ में हेम पद्म को धारी हुई, सर्वावयव सुन्दरी, सम्पूर्ण श्रेष्ठ आभूषणों से भूषित, सततं अभयदानकरनेवाली, केवल मात्र-भक्ति से गम्य प्राप्त होनेवाली भव=शिवपत्नी (श्री सदाशिव पतिव्रता) शान्तमूर्त्तिसम्पन्न सम्पूर्ण देवगण द्वारा नमस्कृत एवं सम्पूर्ण सम्पत्तियों की प्रदात्री श्रीविद्या का (साधक) ध्यान करे।

श्रीदेव्यै बलिदानसमर्पणम्

सलोमास्थिस्वैरं पललमपि मार्जारमसिते परं चोष्ट्रं मेषं नरमहिषयोश्छागमपि वा।
बलिं ते पूजायामपि वितरतां मर्त्यवसतां सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति।
(कर्पूरस्तवश्लोकः)

श्रीदेवी भगवती को छै पशुओं का बलिदान समर्पण करे—

हे मातः केश व अस्थियों सहित बिलाव, ऊँट, मेंढ़ा, मनुष्य, भैंसा व बकरा इनके मांसों से आपको पूजाकाल में बलिदान (भेंट) समर्पण करनेवाले सत्पुरुष साधक को प्रतिपद सभी अपूर्व सिद्धि प्राप्त होती है।

[व्याख्या—बिलाव=लोभ। ऊँट=मत्सर। मेंढा=मोह। मनुष्य=मद। महिष=क्रोध एवं बकरा=काम ये मानव जीवन के षड् रिपु हैं इन्हें भगवती के भेंट करने का अभिप्राय है कि लोभादि षड्रिपुओं का नाश अभीष्टदेवी महामहेशी भगवती की कृपा से ही सम्भव है। इन्हें उस परास्वा को समर्पण किया कि मनुष्य साधन सम्पन्नता व दिव्य भावापन्नता से चतुर्वर्ग प्राप्ति कर देवी के सायुज्यलोक का अधिकार पा लेता है।

त्रिपुरासमर्चनम्

आनन्दजन्म भवनं भवनं श्रुतीनां चैतन्यमात्रतनुमम्ब! तवाऽऽश्रयामि।
ब्रह्मेशविष्णुभिरुपासितपादपद्मां सौभाग्यजन्मवसतिं त्रिपुरे! यथावत्।

हे देवेशि मातः! आनन्द का अखण्ड स्रोत श्रुतियों के आविर्भाव करनेवाले चैतन्य मात्र शरीर मैं आपके आश्रय में आता हूँ आपके श्रीचरणकमल ब्रह्मा, शिव और विष्णु द्वारा उपासित है। श्रेष्ठ सौभाग्य के जन्मवास को हे त्रिपुरे! आप आकांक्षित से भी अधिक रूप में प्रदान करें।

ह्रींकारमाहात्म्यम्

ह्रीं ह्रीमिति प्रतिदिनं जपतां तवाख्यां किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराभिधाने।
मालाकिरीटमदवारणमाननीयांस्तान्सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मीः॥

हे त्रिपुरनाम्नी भगवती! जो साधक 'ह्रीं', 'ह्रीं' इस प्रकार आपके नाम का प्रतिदिन जप करता है उसके लिये कोई दुर्लभ नाम की क्या वस्तु है? अर्थात् कुछ भी नहीं। माला-किरीट मदोन्मत्त हाथियों पर आरूढ़ राजा लोगों से पूजित उन साधकों को मधुमती लक्ष्मी स्वयं सेवन करने को आ जाती है।